

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, कालविनाशिनि काली जय जय ।
 उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय ॥
 साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर ।
 हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर ॥
 हरे राम हरे राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
 जय-जय दुर्गा, जय मा तारा । जय गणेश, जय शुभ-आगारा ॥
 जयति शिवा-शिव जानकिराम । गौरी-शंकर सीताराम ॥
 जय रघुनन्दन जय सियाराम । ब्रज-गोपी-प्रिय राघवेश्याम ॥
 रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥

संत-वाणी-रवि-रश्मि

संत-वाणी-रवि-रश्मि विमलका जब जगमें होता विस्तार ।
 'समता'-'प्रेम'-'शान्ति'का तब होता शुभ शीतल शुभ प्रचार ॥
 'सत्य'-'अहिंसा'की आभा उज्ज्वलसे सुख पाता संसार ।
 'भक्ति'-'त्याग', शुचि 'शान्ति'-ज्योतिसे मिटता अघ-तम हाहाकार ॥

षेक मूल्य
 इतमें ७॥)
 (जामें १०)
 ५ शिल्पिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय ॥
 जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
 जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

[इस वक्ष्य
 मूल्य ७॥)
 विदेशमें १०)
 (१५ शिल्पिंग)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोहार, चिम्मनलाल गोस्वामी पम्० प०, शाली

मुद्रक-प्रकाशक—घनझामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

संत-वाणी-अङ्ककी विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
कृविता		१७—महर्षि विश्वमित्र	३० ५१
१—भक्त संतोंके लक्ष्य (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायण-दत्तजी शास्त्री 'राम') ...	१	१८—महर्षि भरद्वाज	३० ५१
२—संत-वाणी (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') ...	२	१९—महर्षि गौतम	३० ५२
लेख		२०—महर्षि जगदग्नि	३० ५२
१—संत-सूक्ति-सुधा (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)	३	२१—महर्षि पुलस्त्य	३० ५३
२—संतोंके सिद्धान्त (अद्वैत श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका एक भाषण) ...	४	२२—महर्षि पुलह	३० ५३
३—संत-वाणीकी लोकोत्तर महस्ता (पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा) ...	२२	२३—महर्षि मरीचि	३० ५३
४—संत-वाणीका महस्त्व (पं० श्रीसूरजचंद्रजी सत्यग्रेमी 'डॉगंगीजी') ...	२३	२४—भगवान् दत्तात्रेय	३० ५३
५—संत, संत-वाणी और क्षमा-ग्रार्थना (सम्पादक)	७९३	२५—महर्षि दधीचि	३० ५४
संत-वाणी		२६—महर्षि आरप्यक	३० ५४
१—देवर्षि नारदजी	२६	२७—महर्षि लोमश	३० ५५
२—मुनि श्रीसनकजी	२९	२८—महर्षि आपस्तम्ब	३० ५५
३—मुनि श्रीसनन्दन	३०	२९—महर्षि हुर्वासा	३० ५५
४—मुनि श्रीसनातन	३१	३०—महर्षि ऋतुभर	३० ५६
५—मुनि श्रीसनकुमार	३१	३१—महर्षि ओर्ब	३० ५६
६—कैनोपनिषद् के आचार्य	३२	३२—महर्षि गालव	३० ५८
७—महर्षि श्रेताश्वतर	३२	३३—महर्षि मार्कण्डेय	३० ५९
८—महर्षि याज्ञवल्क्य	३४	३४—महर्षि शाणिङ्गल्य	३० ६०
९—तैतिरीयोपनिषद् के आचार्य	३५	३५—महर्षि भगु	३० ६०
१०—शृष्टिकुमार नविकेता	३६	३६—महर्षि वास्मीकि	३० ६१
११—श्रीयमराज	३७	३७—महर्षि शतानन्द	३० ६२
१२—महर्षि अङ्गिरा	४१	३८—महर्षि अष्टावक	३० ६३
१३—महर्षि कश्यप	४३	३९—महारमा जडभरत	३० ६३
१४—महर्षि वसिष्ठ	४४	४०—महर्षि अगस्त्य	३० ६४
(१) उनी हुई वाणियाँ ...	४४	४१—भगवान् ऋषभदेव	३० ६५
(२) वैदिक वाणी (प्रेषक—श्रीश्रीपाद दामोदर सतवल्लेकर) ...	४५	४२—योगीश्वर कवि	३० ६५
१५—महर्षि पिप्पलाद	५०	४३—योगीश्वर हरि	३० ६७
१६—महर्षि अन्नि	५०	४४—योगीश्वर प्रबुद्ध	३० ६८
		४५—योगीश्वर चमस	३० ६९
		४६—महर्षि सारस्वत मुनि	३० ७०
		४७—महर्षि पतञ्जलि	३० ७१
		४८—भगवान् कपिलदेव	३० ७३
		४९—महर्षि शौनक	३० ७३
		५०—महर्षि पराशर	३० ७४
		५१—महर्षि वेदब्बास	३० ७५

५२—मुनि शुग्देव	...	८१	९३—भक्त वृत्रासुर	१२८
५३—महर्षि जैमिनि	...	८२	९४—शूद्र भक्त	१२८
५४—मुनि सनसुजात	...	८५	९५—व्याघ्र संत	१२९
५५—महर्षि वैशम्यायन	...	८६	९६—महर्षि अमृणकी कन्द्या वाक् देवी	१३०
५६—महात्मा भद्र	...	८७	९७—कपिल-माता देवहूति	१३१
५७—महर्षि मुहूल	...	८८	९८—वसिष्ठपत्नी अरुन्धती	१३२
५८—महर्षि मैत्रेय	...	८९	९९—सच्ची माता मदालसा	१३२
५९—भक्त सुकर्मा	...	९०	१००—सती सावित्री	१३४
६०—भक्त सुव्रत	...	९१	१०१—महारानी शैव्या(हरिश्चन्द्र-पत्नी)	१३५
६१—भिक्षु विप्र	...	९२	१०२—अविपत्ती श्रीअनन्दसूर्या	१३५
६२—महर्षि वक	...	९३	१०३—दधीचि-पत्नी प्रातिथेयी	१३७
६३—ऋग्यगण	...	९४	१०४—सती सुकला	१३७
६४—आचार्य कृप	...	९५	१०५—सती सुमना	१३८
६५—महात्मा गोकर्ण	...	९६	१०६—पाण्डव-जननी कुन्तीजी	१४०
६६—सिद्ध महर्षि	...	९७	१०७—पाण्डव-पत्नी द्रौपदी	१४०
६७—मुनिवर कण्ठु	...	९८	१०८—महाराज भर्तृहरि	१४२
६८—पुराण-वक्ता सूतजी	...	९९	१०९—आचार्य श्रीधर स्वामी	१४६
६९—मनु महाराज	...	१००	११०—श्रीमद्विद्यारण्य महामुनि	१४४
७०—महाराज पृथु	...	१०१	१११—श्रीजगद्वर भट्ट	१४४
७१—राजा अजातशत्रु	...	१०२	११२—श्रीलक्ष्मीधर	१४६
७२—भक्तराज ध्रुव	...	१०३	११३—भक्त दिल्वमङ्गल (श्रीलीलाशुक)	१४७
७३—शरणागतवत्सल शिवि	...	१०४	११४—श्रीअप्यय दीक्षित	१४८
७४—भक्त राजा अम्बरीष	...	१०५	११५—जगद्गुरु श्रीशंकरचार्य	१४९
७५—सत्यनिष्ठ राजा हरिश्चन्द्र	...	१०६	११६—श्रीयामुनाचार्य	१५२
७६—परदुखकातर रन्तिदेव	...	१०७	११७—जगद्गुरु श्रीरामानुजचार्य	१५३
७७—महाराजा जनक	...	१०८	११८—जगद्गुरु श्रीनिम्बार्कचार्य	१५५
७८—राजा महीरय	...	१०९	११९—जगद्गुरु श्रीमध्याचार्य	१५७
७९—राजा चित्रकेतु	...	११०	१२०—जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य (प्रेषक—पं० श्रीकृष्ण-	१५७
८०—राजा मुचुकुन्द	...	१११	चन्द्रजी शास्त्री, साहित्यरत्न)	१५७
८१—पितामह भीष्म	...	११२	१२१—जगद्गुरु श्रीरामानन्दचार्य	१५९
८२—महाराज वसुदेव	...	११३	१२२—महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव	१६२
८३—भक्त अक्षर	...	११४	१२३—गोस्वामी श्रीनारायण भद्राचार्य	१६४
८४—धर्मराज युधिष्ठिर	...	११५	१२४—सार्वमौम श्रीवासुदेव भद्राचार्य	१६५
८५—भक्त अर्जुन	...	११६	१२५—श्रीरामानन्द राय	१६५
८६—भक्त उद्धव	...	११७	१२६—श्रीसनातन गोस्वामी	१६५
८७—संत विदुर	...	११८	१२७—श्रीलूप गोस्वामी	१६६
८८—भक्त सञ्जय	...	११९	१२८—श्रीजीव गोस्वामी	१६७
८९—राजा परीक्षित्	...	१२०	१२९—स्वामी श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती	१६८
९०—मातलि	...	१२१	१३०—श्रीरघुनाथदास गोस्वामी	१६८
९१—भक्तराज ग्रह्णाद	...	१२२	१३१—महाकवि कर्णपूर	१६९
९२—दानवीर राजा बलि	...	१२३	१३२—आचार्य श्रीमधुसूहन सरस्वती	१६९

१३३—गोसाईजी श्रीमद्विष्णुलनाथजी (प्रेषक—पं०	१६८—महात्मा ईसामसीह	•••	•••	१८८
श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री, साहित्यरत्न)	१६९—महात्मा जरथुल	•••	•••	१८८
१३४—आचार्य श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती	१७०—योगी जालंधरनाथ	•••	•••	१८९
१३५—महाप्रसु श्रीहरिरायजी	१७१—योगी मत्स्येन्द्रनाथ	•••	•••	१८९
१३६—गोस्वामी श्रीखुनाथजी	१७२—योगी गुरु गोरखनाथ	•••	•••	१८९
१३७—श्रीकृष्णमिश्र यति	१७३—योगी निवृत्तिनाथ	•••	•••	१९०
१३८—पण्डितराज जगन्नाथ	१७४—संत शनेश्वर (प्रेषक—श्रीएम० एन० धारकर)	१९१		
१३९—श्रीविष्णुचित्त (पेरि-आलवार)	१७५—संत नामदेव	•••	•••	१९१
१४०—भक्तिमती श्रीआण्डाळ (रङ्गनायकी)	१७६—भक्त साँबता माली	•••	•••	१९२
१४१—श्रीकुलशेखर आलवार	१७७—संत सेना नाई	•••	•••	१९३
१४२—श्रीविग्रनारायण आलवार	१७८—भक्त नरहरि मुनार	•••	•••	१९३
१४३—श्रीमुनिवाहन तिरुप्पद्मालवार	१७९—जगमित्र नामा	•••	•••	१९३
१४४—श्रीपोर्यगे आलवार, भूतत्तालवार और पेया-	१८०—चोत्वा मेला (प्रेषक—श्रीएम० एन० धारकर)	१९३		
लवार	१८१—संत कवि श्रीभानुदास	•••	•••	१९३
१४५—श्रीमक्किसार (तिरुमडिसै आलवार)	१८२—संत निलोचन	•••	•••	१९३
१४६—श्रीनीलन् (तिरुमङ्गैयालवार)	१८३—संत एकनाथ	•••	•••	१९४
१४७—श्रीमधुर कवि आलवार	१८४—समर्थ गुरु रामदास	•••	•••	१९४
१४८—शैव संत माणिक्ष वाचक	(१) छुनी हुई वाणियाँ	•••	•••	१९४
१४९—संत श्रीनमालवार (शठकोपाचार्य)	(२) श्रीदासवोधसे (प्रेषक—श्रीएम० एन० धारकर)	•••	•••	१९६
१५०—शैव संत अप्पार	१८५—संत श्रीतुकाराम (प्रेषक—श्रीचन्द्रदेवजी मिश्र			
१५१—शैव संत सम्बन्ध	(चन्द्र)	•••	•••	१९७
१५२—शैव संत सुन्दरमूर्ति	१८६—संत महीपति	•••	•••	१९९
१५३—संत बसवेश्वर	१८७—संत श्रीचिनायकानन्द स्वामी (प्रेषक—श्रीकिसन			
१५४—संत वेमना	दासोदर नाईक)	•••	•••	२००
१५५—संत कवि तिरुवल्लुवर	१८८—महाराष्ट्रि य संत अमृतसाय महाराज			
१५६—भगवान् महाचीर (प्रेषक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)	(प्रेषक—पं० श्रीविष्णु वालकृष्ण जोशी)	•••	•••	२००
१५७—आचार्य कुंदकुंद (प्रेषक—श्रीअगरचन्दजी	१८९—संत मानपुरी महाराज (१) (प्रेषक—			
नाहटा)	पं० श्रीविष्णु वालकृष्ण जोशी)	•••	•••	२००
१५८—मुनि रामसिंह	(२) (प्रेषक—श्रीकिसन दासोदर नाईक)	•••	•••	२०१
१५९—मुनि देवसेन	१९०—महाराष्ट्रि य संत श्रीटीकारामनाथ (प्रेषक—पं०			
१६०—संत आनन्दघनजी (प्रेषक—सेठ तेजराजजी	श्रीविष्णु वालकृष्ण जोशी, करडकर)	•••	•••	२०१
लक्ष्मीनंद जैन)	१९१—संत कवीरदासजी	•••	•••	२०१
१६१—मस्तयोगी ज्ञानसागर	१९२—संत कमालजी	•••	•••	२१४
१६२—जैनयोगी चिदानन्द	१९३—संत धनी धरमदासजी	•••	•••	२१४
१६३—श्रीजिनदास	१९४—संत रैदास	•••	•••	२१४
१६४—आचार्य श्रीभिक्षुस्वामीजी (भीखणजी)	१९५—संत निष्ठानिरंजनजी	•••	•••	२२२
१६५—भगवान् बुद्ध	१९६—संत बील साहब	•••	•••	२२२
१६६—बौद्ध संत सिद्ध श्रीसरहपाद था सरहपा	१९७—श्रीवाचरी साहिवा	•••	•••	२२३
१६७—सिद्ध श्रीतिलोपाद (तिलोपा)				

१९८—यारी साहब	२२३	२३४—श्रीहीरासखीजी (बृन्दावन)	...	२८
१९९—संत बुद्धा (यूला) साहब (प्रेषक— श्रीवल्लभामणी शास्त्री)	२२४	२३५—भक्त श्रीसहचरित्तराणदेवजी	...	२८
२००—जगजीवन साहब	२२५	२३६—श्रीगोविन्दशरणदेवजी	...	२८
२०१—गुलाल साहब	२२६	२३७—श्रीविहारिनिदेवजी (विहारीदासजी)	...	२८
२०२—संत दूलनदासजी	२२८	२३८—सूरदास मदनमोहन (सूरज्ज)	...	२८
२०३—संत गरीबदासजी	२३१	२३९—श्रीललितमोहिनीदेवजी	...	२९
२०४—संत दरिया साहब विहारवाले	२३२	२४०—श्रीप्रेमसखीजी	...	२९
२०५—संत भीखिंदी साहब	२३३	२४१—श्रीसरसदेवजी	...	२९
२०६—बाबा मल्हूकदासजी	२३५	२४२—श्रीनरहरिदेवजी	...	२९
२०७—बाबा धरनीदासजी	२३८	२४३—श्रीरसिकदेवजी	...	२९
२०८—संत केशवदासजी	२४२	२४४—श्रीकिशोरीदासजी	...	२९
२०९—स्वामीजी श्रीतरणतारण मण्डलाचार्य (प्रेषक— श्रीअमीरचन्द्रजी शास्त्री)	२४२	२४५—आसामके संत श्रीशंकरदेव (प्रेषक—श्रीधर्मीश्वरजी) २९१	...	२९१
२१०—स्वामी श्रीदादूदयालजी	२४३	२४६—आसामके संत श्रीमाधवदेवजी	...	२९१
२११—संत सुन्दरदासजी	२५०	(प्रेषक—श्रीधर्मीश्वरजी) २९१	...	२९१
२१२—संत रज्जवजी	२५७	२४७—युष्मिमार्गीय श्रीमद्गोस्वामी श्रीलालजीदासजी	...	२९१
२१३—संत भीखजनजी (प्रेषक—श्रीदेवकीनन्दनजी खेडवाल)	२५८	(आठवें लालजी) (प्रेषक—श्रीपत्नालाल गोस्वामी) २९१	...	२९१
२१४—संत वाजिन्दजी	२५८	२४८—श्रीसुरदासजी	...	२९१
२१५—संत बखनाजी	२६१	२४९—श्रीपरमानन्ददासजी	...	२९१
२१६—संत गरीबदासजी दादूपन्थी	२६२	२५०—श्रीकृष्णदासजी	...	२९१
२१७—साधु निश्चलदासजी	२६३	२५१—श्रीकुम्भनदासजी	...	२९१
२१८—स्वामी श्रीहरिदासजी (हरिपुरुषजी)	२६४	२५२—श्रीनल्ददासजी	...	२९१
२१९—महत्मा श्रीजगन्नाथजी	२६४	२५३—श्रीचतुर्भुजदासजी	...	२९१
२२०—स्वामी श्रीचरणदासजी महाराज (प्रेषक—महन्त श्रीप्रेमदासजी)	२६४	२५४—श्रीछित्तस्वामीजी	...	२९१
२२१—दयाबाई	२७०	२५५—श्रीहनुमानशरण सिंहानिया)	...	२९१
२२२—सहजोबाई	२७३	२५७—धन्ना भक्त	...	२९१
२२३—भक्तवर श्रीभट्टजी	२७४	२५८—गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी	...	२९१
२२४—भक्तवर श्रीहरित्यास देवाचार्यजी	२७६	२५९—सिक संत विद्यापति	...	२९१
२२५—तेजस्वी संत श्रीपरशुरामदेवजी	२७७	२६०—सिक संतकवि चंडीदास	...	२९१
२२६—श्रीरूपरसिकदेवजी	२७९	२६१—शाक संत श्रीरमप्रसाद सेन	...	२९१
२२७—स्वामी श्रीहरिदासजी	२८०	२६२—संत रहीम	...	२९१
२२८—श्रीकृष्णदावनदेवजी	२८०	२६३—भक्त श्रीरसखानजी	...	२९०
२२९—आचार्य श्रीहित्तरिवंश महाप्रभु	२८१	२६४—मियाँ नजीर अकबरावादी	...	२९१
२३०—संत श्रीव्यासदासजी	२८२	२६५—भक्त श्रीगिदाधर भट्टजी	...	२९१
२३१—श्रीप्रबुदासजी	२८३	२६६—भक्त श्रीनागरीदासजी [महाराजा सांवतसिंहजी]	...	२९१
२३२—श्रीहठीजी	२६७—संत धनानन्द	...	२९५
२३३—राधावल्लभीय संत श्रीचतुर्भुजदासजी	२६८—राजा आशकरणजी	...	२९६
महाराज			...	२६९—महाराज व्रजनिधि	...	२९६
			...	२७०—भक्त श्रीगिदाधर मिश्रजी	...	२९७

११—भक्त श्रीभगवतरसिकजी	...	३५७	३०६—श्रीगुरु अंगदजी	३८६
१२—भक्त श्रीअनन्यअलीजी	...	३५८	३०७—गुरु अमरदासजी	३८७
१३—भक्त श्रीवंशीअलीजी	...	३५९	३०८—गुरु रामदासजी	३८९
१४—भक्त श्रीकिशोरीअलीजी	...	३५९	३०९—गुरु अर्जुनदेव	३९१
१५—भक्त श्रीबैजू वावरा	...	३५९	३१०—गुरु तेगबहादुर (क) चुनी हुई थाणी (ख) (प्रेषक—श्री पी० के० जगदीश-कुमारी)	३९४
७६—भक्त श्रीतानसेनजी	...	३५९	३११—गुरु गोविन्दसिंह	३९७
७७—संत जंभनाथ (जाम्भोजी)	...	३५९	३१२—उदासीनाचार्य	श्रीश्रीचन्द्रजी—उदासीन-	...	३९९
७८—भक्त श्रीपीपाजी	...	३५९	३६२—सम्प्रदायके प्रवर्तक (प्रेषक—पं० श्रीसीतारामजी चतुर्वेदी, एम० ए०, एल०-एल० वी०)	४०१
७९—संत श्रीद्वामदासजी	...	३६२	३१३—स्वामी श्रीसंतदासजी (प्रेषक—भण्डारी श्रीवंशी-दासजी साधु वैष्णव)	४०२
८०—अवधवासी संत श्रीरामदासजी	...	३६२	३१४—रामस्नेही-सम्प्रदायके स्वामी श्रीरामचरणजी महाराज (प्रेषक—संत रामकिशोरजी)	४०२
८१—संत श्रीसाकेतनिवासाचार्यजी (श्रीटीलजी)	३६२	३१५—संत श्रीरामजनजी वीतराग (प्रेषक—रामस्नेही-सम्प्रदायका मुख्य गुरुद्वारा, शाहपुरा)	४०३	
८२—संत श्रीरसरङ्गमणिजी (प्रेषक—श्रीअच्छू धर्मनाथसहायजी)	...	३६२	३१६—संत श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायका मुख्य गुरुद्वारा, शाहपुरा)	४०४
८३—संत श्रीरामप्रियाजी	...	३६३	३१७—संत श्रीभगवानदासजी (प्रेषक—श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायका मुख्य गुरुद्वारा, शाहपुरा)	४०५
८४—संत श्रीकाशुजिहा स्वामीजी	...	३६३	३१८—श्रीदरिया (दरियाव) महाराज—रामसनेही-धर्मचार्य	४०५
८५—संत श्रीअजवदासजी	...	३६४	३१९—श्रीकिशनदासजी महाराज	४०८
८६—स्वामी श्रीरामचरणदासजी	...	३६४	३२०—श्रीहरकारामजी महाराज	४०९
८७—आचार्य श्रीगुरुदत्तदासजी (सत्यनामी महंत)	३६४	३२१—स्वामी श्रीजमलदासजी महाराज (प्रेषक—श्रीभगवद्वासजी शास्त्री, आशुवेदाचार्य)	४०९	
८८—रामभक्त संत शाह जलाल्दीन वसाली	...	३६५	३२२—स्वामी श्रीहरिरामदासजी महाराज (प्रेषक—महंत श्रीभगवद्वासजी शास्त्री)	४०९
८९—शिवभक्ता ललेश्वरीजी	...	३६५	३२३—संत श्रीरामदासजी महाराज (प्रेषक—रामस्नेही-सम्प्रदायका मुख्य गुरुद्वारा, शाहपुरा)	४१२
९०—भक्त नरसी मेहता	...	३६५	३२४—संत श्रीदयालजी महाराज (लेडापा) (प्रेषक—श्रीहरिदासजी शास्त्री, दर्शनायुवेदाचार्य)	४१३
९१—संत प्रीतमजी	...	३६८	३२५—संत श्रीपूरणदासजी महाराज (प्रेषक—श्रीहरिदासजी शास्त्री, दर्शनायुवेदाचार्य)	४१४
९२—प्रेमदिवानी भीराँ	...	३६८	३२६—संत श्रीनारायणदासजी महाराज (प्रेषक—श्रीभगवद्वासजी)	४१४
९३—संत श्रीसिंगाजी (प्रेषक—श्रीमहेन्द्रकुमारजी जैन)	३७३	३२७—संत श्रीहरेवदासजी महाराज (प्रेषक—श्रीभगवद्वासजी)	४१५	
९४—स्वामी हंसराजजी (प्रेषक—श्रीविष्णुराव देशपांडे)	३७४					
९५—संत श्रीअग्रदासजी (प्रेषक—पं० श्रीबजरंगदासजी वैष्णव 'विजाराद')	...	३७५				
९६—संत श्रीनाभादासजी (नारायणदासजी)	...	३७५				
९७—संत श्रीप्रियादासजी	...	३७६				
९८—प्राणमी-पंथ-प्रवर्तक स्वामी प्राणनाथजी महाराज 'महामति' (प्रेषक—पं० श्रीमिश्रीललजी शास्त्री, साहित्यसाखी हिंदीप्रभाकर)	...	३७६				
९९—स्वामी लालदासजी	...	३७७				
१०—संत मंसरूर	...	३७७				
११—संत बुल्लेश्वाह	...	३७८				
१२—श्रीख फरीद	...	३७८				
१३—मौलाना रुमी	...	३७९				
१४—कृष्ण संत गुलामअलीशाह (प्रेषक—वैद्य श्रीवद्वीन राणपुरी)	...	३७९				
१५—गुरु नानकदेव	...	३८२				

३२८—संत श्रीपरश्यगमजी महाराज (प्रेषक—श्रीरामजी साधु)	...	४१५	३५९—रसिक संत सरसमाधुरी
३२९—संत श्रीसेवगरामजी महाराज (प्रेषक—श्रीरामजी साधु)	...	४१८	३६०—संत लक्ष्मणदासजी (प्रेषक—प्रिंसिपल श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०)
३३०—संत श्रीविरभद्रदासजी महाराज (रामस्नेही-सम्प्रदायक संत)	...	४२२	३६१—संत श्रीसगरामदासजी
३३१—संत श्रील्यालनाथजी परमहंस (प्रेषक—श्रीशंकरलालजी पारीक)	...	४२२	३६२—श्रीस्वामी रामकवीरजी (प्रेषक—श्रीअच्छू धर्म-नाथसहायजी बी० ए०, बी० एल०)
३३२—संत श्रीजयनाथजी (प्रेषक—श्रीशंकरलालजी पारीक)	...	४२२	३६३—संत दीनदरवेश (प्रेषक—वैद्य श्रीवद्रुदीन राणपुरी)
३३३—भक्त औपाजी आदा-चारण (प्रेषक—चौधरी श्रीशिवसिंह महारामजी)	...	४२२	३६४—संत पीरहीन (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्करलाल राणा)
३३४—भक्त कविश्वामी सामानवाई चारण (प्रेषक—चौधरी श्रीशिवसिंह महारामजी)	...	४२२	३६५—बाबा नवी (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्करलाल राणा)
३३५—संत बाबा लाल	...	४२३	३६६—बाबा फाजल (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्करलाल राणा)
३३६—भक्त श्रीनारायण स्वामीजी	...	४२३	३६७—संत नूरहीन (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्करलाल राणा)
३३७—स्वामी श्रीकुंजनदासजी	...	४२३	३६८—संत हुसैनखाँ (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्करलाल राणा)
३३८—श्रीपीताम्बरदेवजी	...	४२६	३६९—संत दरिया खान (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्करलाल राणा)
३३९—श्रीरामानन्दस्वामी	...	४२६	३७०—संत झूलन फकीर (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्करलाल राणा)
३४०—संत श्रीस्वामिनाथयणजी	...	४२६	३७१—संत शम्मद शेख (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्करलाल राणा)
३४१—संत श्रीमुक्तानन्द स्वामी	...	४२७	३७२—बाबा मलिक (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्करलाल राणा)
३४२—संत श्रीब्रह्मानन्द स्वामी	...	४२७	३७३—बाबा गुलशन (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्करलाल राणा)
३४३—संत श्रीनिष्ठुलानन्द स्वामी	...	४२७	३७४—संत दाना साहेब (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्करलाल राणा)
३४४—संत श्रीगुणातीतानन्द स्वामी	...	४२७	३७५—संत केशव हरि (प्रेषक—श्रीमाली गोमती-दासजी)
३४५—संत श्रीशिवनारायणजी	...	४२८	३७६—संत यकरंगजी
३४६—संत तुलसी साहब	...	४२८	३७७—संत पूरण साहेब
३४७—संत श्रीशिवदवालसिंहजी (स्वामीजी महाराज) (प्रेषक—श्रीजनकीप्रसादजी रायजादा विश्वारद)	...	४३२	३७८—मीर मुराद (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्करलाल राणा)
३४८—संत पल्लू साहब	...	४३२	३७९—संत भाण साहेब (प्रेषक—साधु दयालदास मङ्गलदास)
३४९—स्वामी निर्भयानन्दजी	...	४३६	३८०—संत रवि साहेब (१) (प्रेषक—साधु दयालदास मङ्गलदास) (२) (प्रेषक—वैद्य श्रीवद्रुदीन राणपुरी)
३५०—श्रीआदा भगत	...	४३७			
३५१—भक्त श्रीललितविद्योरीजी	...	४३७			
३५२—भक्त श्रीललितमाधुरीजी	...	४३८			
३५३—भक्त श्रीगुणमंजरीदासजी	...	४३८			
३५४—भक्त रसिकप्रीतमजी	...	४३८			
३५५—भक्त श्रीहितदामोदर स्वामीजी	...	४३८			
३५६—भक्त भगवान हितरामदासजी	...	४३९			
३५७—भक्त श्रीकृष्णजनजी	...	४३९			
३५८—महात्मा बनादासजी (प्रेषक—प्रिंसिपल श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०)	...	४३९			

३८१—संत मौजुदीन (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्कर- लाल राणा)	४५६
३८२—संत मोरार साहेब (१) (प्रेषक—साधु दयालदास मङ्गलदास) (२) (वैद्य श्रीवद्रहीन राणपुरी)	...	४५२	४५२
३८३—संत कादरशाह (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्कर- लाल राणा)	४५२
३८४—संत गंग साहेब (प्रेषक—साधु दयालदास मङ्गलदास)	४५२
३८५—ताई करीमशा (प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शङ्कर- लाल राणा)	४५३
३८६—संत बहादुर शा (प्रेषक—वैद्य श्रीवद्रहीन राणपुरी)	४५३
३८७—संत जीकम साहेब (प्रेषक—साधु दयालदास मङ्गलदास)	४५३
३८८—संत लाल साहेब (प्रेषक—साधु दयालदास मङ्गलदास)	४५३
३८९—संत शाह फकीर	४५३
३९०—गोस्वामी श्रीहरिरायजी महाराज	४५४
३९१—श्रीरामकृष्ण परमहंस	४५७
३९२—स्वामी श्रीविदेकनन्द	४७३
३९३—संत श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी	४७९
३९४—स्वामी श्रीशिवरामकिंकर योगचार्यानन्दजी महाराज	४८४
३९५—संत श्रीनन्दकिशोर सुखोपाद्याय	४८४
३९६—स्वामी रामतीर्थ	४८६
३९७—श्रीशिवयोगी सर्पभूषणजी (प्रेषक—के० श्रीहनुमंत- राब हणे)	५०१
३९८—महात्मा श्रीमत्तरामजी महाराज	५०४
३९९—संत रामदास वैरिया	५०४
४००—श्रीसत्यमोल स्वामीजी	५०४
४०१—स्वामी श्रीसन्तदेवजी	५०४
४०२—मक्त कारे खाँ	५०४
४०३—श्रीखालसजी	५०५
४०४—स्वामी श्रीसुगलानन्दशरणजी (प्रेषक—श्रीअच्चू धर्मनायसहायजी बी० ए०, बी० एल०)	५०५
४०५—स्वामी श्रीजानकीवरशरणजी	५०६
४०६—स्वामी श्रीसियालशरणजी 'प्रेमलता'	५०६
४०७—महात्मा श्रीगोमतीदासजी (प्रेषक—श्रीअच्चू धर्मनायसहायजी बी० ए०, बी० एल०)	५०७
४०८—संत प० श्रीरामबलभाशरणजी महाराज (प्रेषक— श्रीहनुमानशरणजी सिंहानिया)	५०७
४०९—संत श्रीहंसकलाजी (प्रेषक—श्रीअच्चू धर्मनाय- सहायजी बी० ए०, बी० एल०)	५०८
४१०—संत श्रीरूपकलाजी (प्रेषक—श्रीअच्चू धर्मनाय- सहायजी बी० ए०, बी० एल०)	५०८
४११—संत श्रीरामाजी	५०८
४१२—संत श्रीरामसलेजी	५०९
४१३—स्वामी श्रीमोहनीदासजी	५०९
४१४—संत बाबा श्रीरघुपतिदासजी महाराज (प्रेषक— श्रीरामप्रसाददासजी वैरिया)	५०९
४१५—श्रीमञ्जुकेशीजी	५०९
४१६—श्रीश्यामनायकाजी (प्रेषक—श्रीअच्चू धर्मनाय- सहायजी बी० ए०, बी० एल०)	५१०
४१७—भक्त भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी	५११
४१८—भक्त सत्यनारायण	५१०
४१९—महंत श्रीराधिकादासजी	५१०
४२०—(बुद्धावनवासी) सुप्रसिद्ध महात्मा श्रीरामकृष्ण- दासजी (प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा)	५११
४२१—भक्त श्रीराधिकादासजी [प० रामप्रसादजी चिङ्गावानिवासी]	५११
४२२—ठा० श्रीअमयरामजी बज्जवासी	५१२
४२३—महात्मा श्रीईश्वरदासजी	५१२
४२४—स्वामी श्रीयोगेश्वरानन्दजी सरखती (प्रेषक— श्रीसूरजमलजी ईसरका)	५१२
४२५—स्वामीजी श्रीपरिव्राटजी [जोधपुर-प्रान्तवासी] (प्रेषक—व्यास श्रीउद्देशरामजी इयामलाल)	५१२
४२६—अवधूत श्रीकेशवानन्दजी (प्रेषक—प० श्री- गोपीवल्लभजी उपाध्याय)	५१२
४२७—संत जयभारायणजी महाराज (प्रेषक—प० श्रीगोपीवल्लभजी उपाध्याय)	५१२
४२८—परमहंस अवधूत श्रीगुप्तानन्दजी महाराज (प्रेषक—प० श्रीगोपीवल्लभजी उपाध्याय)	५१२
४२९—अवधूत, महाप्रभु बापजी श्रीनित्यानन्दजी महाराज (प्रेषक—प० श्रीगोपीवल्लभजी उपाध्याय)	५१२
४३०—संत सुधाकर (प्रेषक—प० श्रीरामनिवासजी शर्मी)	५१२
४३१—योगी गम्भीरनाथजी	५१२
४३२—श्रीकृष्णनन्दजी महाराज [रंकनायजी] (प्रेषक—श्रीराधेश्यामजी परशार)	५१२

४३३—श्रीदीनदासजी महाराज (प्रेषक—श्रीराधेश्यामजी पाराशार) ५३९	४५९—स्वामी श्रीनिरंजनानन्दतीर्थजी महाराज (प्रेषक—पं० श्रीब्रह्मानन्दजी मिश्र)	... ५७५
४३४—संत श्रीनामा निरंकारीजी		... ५४०	४६०—स्वामी श्रीदयानन्दजी सरस्वती	... ५७४
४३५—सिंधी संत श्रीरामानन्द साद्य लुकिमान (प्रेषक—श्रीश्यामसुन्दरजी)		... ५४०	४६१—संत श्रीराजचन्द्रजी (प्रेषक—वैद्य श्रीब्रदरहीन राणपुरी)	... ५७६
४३६—संत अचलरामजी (प्रेषक—वैद्य श्रीचद्रकृतीनजी राणपुरी)		... ५४०	४६२—वावा किनारामजी अघोरी	... ५७६
४३७—पण्डित श्रीपीताम्बरजी (प्रेषक—श्रीधर्मदासजी)		५४१	४६३—श्रीकौलेश्वर वावा (प्रेषक—श्रीअच्चू धर्मनाथ-सहायजी वी० ए०, वी० एल०)	... ५७७
४३८—सदूरुक श्रीपतानन्द आत्मानन्द स्वामी महाराज (प्रेषक—श्रीआत्मानन्ददास रामानन्द वगदालवार)		... ५४१	४६४—महात्मा श्रीमंगतरामजी (प्रेषक—संगत समतावाद)	... ५७७
४३९—महाराज चतुरसिंहजी		... ५४२	४६५—साधु श्रीयशनारायणजी पाण्डेय	... ५७७
४४०—संत टैऊरामजी		... ५४२	४६६—संत श्रीपयोहारी वावा	... ५७८
४४१—स्वामी श्रीखयंत्रयोतिजी उदासीन		... ५४२	४६७—परमहंस स्वामी श्रीराधेश्यामजी सरस्वती (प्रेषक—डा० श्रीबालगोविन्दजी अग्रवाल)	५७८
४४२—स्वामीजी श्रीभोलेश्वावाजी		... ५४३	४६८—श्रीशंकराचार्य ज्योतिष्ठाधीश्वर स्वामीजी श्रीब्रह्मानन्दजी सरस्वती महाराज	... ५७८
४४३—स्वामी श्रीनिर्गुणानन्दजी		... ५४९	(१) चुनी हुई बाणियाँ	... ५७८
४४४—स्वामी श्रीदीनदयालगिरिजी		... ५४९	(२) (प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)	५८०
४४५—परमहंस श्रीबुद्धदेवजी (प्रेषक—श्रीबुद्धिग्रकाशजी शर्मा उपाध्याय)		... ५५२	(३) (श्रीशरदाप्रसादजी नेवरिया)	५८१
४४६—परिवाजकानन्द रामराजाजी (प्रेषक—श्रीगिरिजा-शंकरजी शाळी, अवस्थी, एम० एम० एस०)		५५२	४६९—महर्षि रसण	... ५८१
४४७—महात्मा श्रीतैलङ्घ स्वामी	...	५५२	४७०—स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज (प्रेषक—श्री-ब्रह्मदत्तजी)	... ५८१
४४८—परमहंस स्वामी श्रीदयालदासजी		५५४	४७१—भक्त श्रीरामदयाल मजूमदार (प्रेषक—श्रीविमल-कृष्ण 'विद्यारत्न')	... ५८३
४४९—स्वामी श्रीएकरसानन्दजी	...	५५६	४७२—प्रभु श्रीजगद्धन्धु	... ५८४
४५०—श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी श्रीदेवनायकाचार्यजी महाराज (प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)		५५६	४७३—महात्मा श्रीहरनाथ ठाकुर	... ५८४
४५१—स्वामी श्रीअद्वैतानन्दजी महाराज (प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)		५५७	४७४—महात्मा श्रीअद्विनीकुमारदत्त	... ५८४
४५२—स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजी महाराज (प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)		५५८	४७५—सोकमान्य श्रीबाल गंगाधर तिलक	... ५९२
४५३—स्वामी श्रीब्रह्मर्थिदासजी महाराज (प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)		५५९	४७६—महामना पं० श्रीमदनमोहनजी मालवीय	... ५९४
४५४—स्वामी श्रीआत्मानन्दजी महाराज (प्रेषक—श्रीरामशरणदासजी)		५६२	४७७—महात्मा गाँधी	... ६०२
४५५—काशीके सिद्ध संत श्रीहरिहरवावाजी महाराज (प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)		५६३	४७८—योगी श्रीअरविन्द	... ६१०
४५६—स्वामी श्रीमतानन्दजी (प्रेषक—डा० श्रीबाल-गोविन्दजी अग्रवाल, विश्वारद)		५६३	४७९—विश्वकर्मि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर	... ६१३
४५७—श्रीउद्धिया स्वामीजी महाराज		५६४	४८०—श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास	... ६१५
४५८—संत श्रीरामानन्दजी एम० ए० (प्रेषक—श्री-कपूरीलालजी अग्निहोत्री, एम० ए०)		५६१	४८१—संत श्रीमोतीलालजी महाराज (प्रेषक—श्रीहरि-किशनजी ज्ञवेरी)	... ६१६

४८८-तपस्वी हुसेन वसराई	...	५२५-संत शेख तादी (प्रेषक-श्रीरामअवतारजी चौरसिया 'अनन्त')	...	६३६
४८९-तपस्वी जुन्नुन मिसरी	...	५२६-सौलाना हजरत अली (प्रेषक-वैद्य श्रीबद्रदीन राणपुरी)	...	६३७
४९०-तपस्वी जुन्नेद बगदादी	...	५२७-श्रीअनवर मियाँ (प्रेषक-वैद्य श्रीबद्रदीन राणपुरी)	...	६३८
४९१-तपस्वी यूसुफ हुसेन रसी	...	५२८-श्रीखलील जिब्रान	...	६३८
४९२-तपस्वी बायजिद बस्तामी	...	५२९-संत पीथामोरस	...	६४०
४९३-तपस्वी रविया	...	५३०-चीनी संत कन्मयूतियस	...	६४०
४९४-तपस्वी अबूहसन खर्कानी	...	५३१-चीनी संत मेनसियस	...	६४२
४९५-तपस्वी महमद अली हकीम तरमोजी	...	५३२-दार्शनिक प्लेटो	...	६४२
४९६-तपस्वी अबूबकर वासती	...	५३३-महात्मा सुकरात (प्रेषक-श्रीकृष्णवहादुर सिन्हा, वी० ए०, एल-एल० वी०)	...	६४२
४९७-तपस्वी सहल तसरी	...	५३४-यूनानके संत एपिक्यूरस (प्रेषक-वैद्य श्री-बद्रदीन राणपुरी)	...	६४३
४९८-तपस्वी मारुफ गोरखी	...	५३५-रोमके संत भारकस-अरलियस	...	६४३
४९९-तपस्वी सरी सकती	...	५३६-संत पाल	...	६४४
५००-तपस्वी अबू उसान सैयद	...	५३७-ऐलस्टाइन (गैलिली) के संत फिलिप	...	६४४
५०१-तपस्वी अबुल कासिम नसरावादी	...	५३८-ऐलस्टाइनके संत पीटर बालसम	...	६४४
५०२-तपस्वी अबू अली दक्षाक	...	५३९-सीरियाके संत इस्तम	...	६४४
५०३-तपस्वी अबू हसाक इब्राहीम खेयास	...	५४०-सीरियाके संत थैलीलियस	...	६४५
५०४-तपस्वी हारेस महासवी	...	५४१-संत ग्रेगरी	...	६४५
५०५-तपस्वी अबू तोरब	...	५४२-अलेक्जान्द्रियाके संत भैक्षेरियस	...	६४५
५०६-तपस्वी मंसूर उमर	...	५४३-संत आगस्तीन	...	६४६
५०७-तपस्वी अहमद अन्ताकी	...	५४४-देवी सिन्हेटिका	...	६४६
५०८-तपस्वी अबू सैयद खैराज	...	५४५-संत वरनर्ड	...	६४६
५०९-तपस्वी अहमद खज़स्या बलखी	...	५४६-संत फ्रांसिस	...	६४७
५१०-तपस्वी अबू हाज़म मक्की	...	५४७-संत एडमंड	...	६४७
५११-तपस्वी बशाद हाफी	...	५४८-साल्वी एलिजाबेथ	...	६४७
५१२-तपस्वी यूसुफ आसवात	...	५४९-संत टॉमस अक्षिनस	...	६४८
५१३-तपस्वी अबू याकूब नहरजोरी	...	५५०-संत लेविस	...	६४८
५१४-तपस्वी अबू अबुल्ला मुहम्मद फ़ज़ल	...	५५१-साल्वी कैथेरिन	...	६४८
५१५-तपस्वी अबू बकर ईराक	...	५५२-संत योसेफ केमिस (प्रेषिका-दहिन श्रीकृष्णा सहाल)	...	६४९
५१६-तपस्वी अहमद मशरूक	...	५५३-दार्शनिक संत मिक्स	...	६५०
५१७-तपस्वी अबू अली जुरजानी	...	५५४-संत एग्नाशियस लायला	...	६५१
५१८-तपस्वी अबू बकर केतानी	...	५५५-कुमारी देरसा	...	६५१
५१९-तपस्वी अबू नसर शिराज	...	५५६-संत फिलिप नेरी	...	६५१
५२०-तपस्वी फतह मोसली	...	५५७-मेरी मगडालेन	...	६५२
५२१-तपस्वी मग्नाद दनयरी	...	५५८-जर्मन संत जेकेन ब्यूमी (प्रेषक-वैद्य श्रीबद्रदीन राणपुरी)	...	६५२
५२२-ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी (प्रेषक-डा० एम० हफीज सैयद एम० ए०, पी-एच० डी०)	...			
५२३-ख्वाजा कुतुबुद्दीन गंजशकर (प्रेषक-डा० एम० हफीज सैयद एम० ए०, पी-एच० डी०)	६३५			
५२४-ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती (प्रेषक-डा० एम० हफीज सैयद एम० ए०, पी-एच० डी०)	६३५			
५२५-ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती (प्रेषक-डा० एम० हफीज सैयद एम० ए०, पी-एच० डी०)	६३५			

५६९—भाई लारेस	...	५६६	५७२—लाकटर एनी वेसेट	...	५९४
५६०—संत दा-मोलेनस पिगल (प्रेषक—वेस्ट श्रीबद्रहीन राणपुरी)	...	५६६	५७३—संत सियारामजी	...	५६५
५६१—संत जॉन जोसफ	...	५६७	५७४—संत श्रीशहन्शाहजी	...	५६७
५६२—संत जान हंटर	...	५६८	५७५—भक्तराज श्रीयादवजी महाराज (प्रेषक— श्रीभवानीशक्तरसिंह जोशी)	...	५६९
५६३—संत वीचर (प्रेषिका—बहिन श्रीकृष्णा सहगल)	५६८		५७६—महात्मा श्रीनाथूरामजी शर्मा	...	५७०
५६४—श्रीरात्फ वाल्डो ट्राइन	...	५६८	५७७—भक्त श्रीरसिकमोहन विद्याभूषण	...	५७२
५६५—दार्शनिक इमर्सन	...	५६९	५७८—भक्त कोकिल साई	...	५७६
५६६—श्रीजान रस्किन	...	५६९	५७९—श्रीजीवाभक्त	...	५७७
५६७—श्रीस्टॉफोर्ड० ए० ब्रुक्स	...	५६९	५८०—भक्त श्रीबल्लभरसिकजी	...	५७९
५६८—संत चार्ल्स फिल्मोर	...	५६९	५८१—संत श्रीरामरूप स्वामीजी (प्रेषक—श्रीराम- लखनदासजी)	...	५७७
५६९—श्रीजेम्स एलन	...	५६०	५८२—संत श्रीखोबीजी महाराज	...	५८०
५७०—महात्मा टालस्टाय	...	५६२	५८३—श्रीब्रह्मदासजी महाराज (काठिया)	...	५८०
५७१—श्री एच० पी० ब्लेवास्टकी (प्रेषक— श्रीमदनविहारीजी)	...	५६४	५८४—श्रीबजरंगदासजी महाराज (श्रीखोबीजी)	...	५८०
			५८५—संत श्रीहरिहरप्रसादजी महाराज	...	५८०

~~~~~

## संत-वाणी-अङ्क दूसरा खण्ड

### संस्कृत-वाणियोंकी सूची

|                                                                                                  |     |     |
|--------------------------------------------------------------------------------------------------|-----|-----|
| १—प्रेमस्वरूपा गोपियोंद्वारा गाया हुआ वेणुगीत<br>( अनुवादक—स्वामीजी श्रीअखण्डनन्दजी<br>सरस्वती ) | ... | ६८१ |
| २—प्रेमस्वरूपा गोपियोंद्वारा गाया हुआ प्रणय-<br>गीत ( अनु०—स्वा० श्रीअ० सरस्वती )                | ... | ६८४ |
| ३—प्रेमस्वरूपा गोपियोंद्वारा गाया हुआ गोपिका-<br>गीत ( अनु०—स्वा० श्रीअ० सरस्वती )               | ... | ६८६ |
| ४—प्रेमस्वरूपा गोपियोंद्वारा गाया हुआ युगल-गीत<br>( अनु०—स्वा० श्रीअ० सरस्वती )                  | ... | ६८९ |
| ५—श्रेष्ठशायी भगवान् विष्णुका ध्यान<br>( अनु०—स्वा० श्रीअ० सरस्वती )                             | ... | ६९३ |
| ६—भगवान् विष्णुका ध्यान ( अनु०—स्वा०<br>श्रीअखण्डनन्दजी सरस्वती )                                | ... | ६९४ |
| ७—भगवान् श्रीरामका ध्यान ( अनु०—पाण्डेय<br>पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री )                    | ... | ६९७ |
| ८—भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान ( अनु०—पं०<br>श्रीरामनारायणजी शास्त्री )                              | ... | ६९८ |
| ९—भगवान् शिवका मनोहर ध्यान ( अनु०—पं०<br>श्रीरामनारायणजी शास्त्री )                              | ... | ७०३ |
| १०—जगज्जननी श्रीपार्वतीका ध्यान ( अनु०—पं०<br>श्रीरामनारायणजी शास्त्री )                         | ... | ७०६ |

|                                                                                   |     |
|-----------------------------------------------------------------------------------|-----|
| ११—भगवान् शिवका ध्यान ( अनु०—पं० श्रीरा० शा० )                                    | ७०६ |
| १२—सिद्ध नारायणवर्म ( अनु०—स्वा० श्रीअ० स० )                                      | ७०७ |
| १३—गजेन्द्र-स्तवन ( " " )                                                         | ७११ |
| १४—भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका स्तवन<br>( अनु०—पं० श्रीरा० शा० )                     | ७१५ |
| १५—श्रीहनुमान्जीद्वारा भगवान् श्रीराम और<br>सीताका स्तवन ( अनु०—पं० श्रीरा० शा० ) | ७१६ |
| १६—पापप्रश्नमस्तोत्र ( " " )                                                      | ७१९ |
| १७—क्षेत्रहर नामामृत ( " " )                                                      | ७२१ |
| १८—श्रीकनकधारास्तोत्रम् ( " " )                                                   | ७२२ |
| १९—दशस्तोकी ( " " )                                                               | ७२४ |
| २०—मनीषापञ्चकम् ( " " )                                                           | ७२६ |
| २१—अद्वैतपञ्चरत्नम् ( " " )                                                       | ७२६ |
| २२—निर्वाणघटकम् ( " " )                                                           | ७२७ |
| २३—ब्रह्मज्ञानावलीमाला ( " " )                                                    | ७२८ |
| २४—निर्वाणमङ्गली ( " " )                                                          | ७२९ |
| २५—मायापञ्चकम् ( " " )                                                            | ७३१ |
| २६—उपदेशपञ्चकम् ( " " )                                                           | ७३१ |
| २७—धन्याष्टकम् ( " " )                                                            | ७३३ |
| २८—दशस्तोकी स्तुति ( " " )                                                        | ७३४ |

|                                                                                               |         |                                            |         |
|-----------------------------------------------------------------------------------------------|---------|--------------------------------------------|---------|
| २९—षट्पदी-स्तोत्रम् ( अनु०—पं० शीरो-<br>शङ्करजी द्विवेदी )                                    | ... ७३५ | ४८—सिद्धान्तहस्यम् ( अनु०—पं० शीरा० शाली ) | ... ७६६ |
| ३०—श्रीकृष्णाष्टकस्तोत्रम् ( अनु०—पाण्डेय पं०<br>श्रीरामनारायणदत्तजी शाली )                   | ... ७३६ | ४९—नवरत्नम् ( " " )                        | ... ७६६ |
| ३१—भगवन्मानसपूजा ( अनु०—पं० श्रीरा० शा० )                                                     | ७३७     | ४६—अन्तःकरणप्रबोधः ( " " )                 | ... ७६७ |
| ३२—श्रीअच्युताष्टकम् ( " " )                                                                  | ७२९     | ४७—विवेक-घैर्याश्रय-निरूपण ( " " )         | ... ७६८ |
| ३३—श्रीगोविन्दाष्टकम् ( " " )                                                                 | ७४०     | ४८—श्रीकृष्णाश्रयः ( " " )                 | ... ७६९ |
| ३४—शरणागतिगद्यम् ( " " )                                                                      | ७४२     | ४९—चतुःश्लोकी ( " " )                      | ... ७७० |
| ३५—श्रीरङ्गगद्यम् ( " " )                                                                     | ७४६     | ५०—भक्तिवर्धिनी ( " " )                    | ... ७७१ |
| ३६—श्रीवैकुण्ठगद्यम् ( " " )                                                                  | ७४८     | ५१—जलमेदः ( " " )                          | ... ७७२ |
| ३७—श्रीरघाष्टकम् ( " " )                                                                      | ७५३     | ५२—पञ्चपद्मानि ( " " )                     | ... ७७३ |
| ३८—श्रातःसारणस्तोत्रम् [ प्रेषक—द्रव्यचारी श्री-<br>नन्दकुमारशरणजी ] ( अनु०—पं० श्रीरा० शा० ) | ७५४     | ५३—संन्यासनिर्णयः ( " " )                  | ... ७७४ |
| ३९—श्रीमधुराष्टकम् ( " " )                                                                    | ७५५     | ५४—निरोधलक्षणम् ( " " )                    | ... ७७५ |
| ४०—श्रीयमुनाष्टकम् ( " " )                                                                    | ७५६     | ५५—रोवाकलम् ( " " )                        | ... ७७६ |
| ४१—बालबोधः ( " " )                                                                            | ७६०     | ५६—श्रीदामोदराष्टकम् ( " " )               | ... ७७८ |
| ४२—सिद्धान्तमुक्तावली ( " " )                                                                 | ७६०     | ५७—श्रीजगन्नाथाष्टकम् ( " " )              | ... ७७९ |
| ४३—पुष्टिप्रवाहमर्यादामेदः ( " " )                                                            | ७६३     | ५८—श्रीमुकुन्दमुक्तावली ( " " )            | ... ७८१ |

### संतोंके विभिन्न आदर्शसूचक चित्रसूक्त लघु लेखोंकी सूची—

|                                                 |         |                                             |         |                                                  |         |
|-------------------------------------------------|---------|---------------------------------------------|---------|--------------------------------------------------|---------|
| १—महात्माका छुट्टय ( महर्षि<br>वशिष्ठकी क्षमा ) | ... २४  | १२—संत ज्ञानेश्वरका एकात्ममाव               | २१७     | २१—महान् त्यागी                                  | ... ३३६ |
| २—अन्त मति सो गति                               | ... २५  | १३—सर्वमें भगवद्वर्णन                       | ... २४० | ( १ ) रघु और कौत्स                               | ३३६     |
| ३—संतकी क्षमा                                   | ... ४८  | ( १ ) एकनाथजी                               |         | ( २ ) निमईका गृह-त्याग                           | ३३७     |
| ४—संतोंका अक्रोष                                | ... ४९  | गदहेमे                                      | ... २४० | २२—भगवत्तामका                                    | प्रभाव  |
| ( १ ) संत लुकाराम                               | ४९      | ( २ ) नामदेवजी कुत्तेमे                     | २४०     | ( अजामिल, गणिका,<br>व्याघ वाल्सीकि )             | ३६०     |
| ( २ ) संत एकनाथ                                 | ४९      | १४—भय और अभय                                | ... २४१ | २३—मन्दकरत जो करह भलाई                           |         |
| ५—दो ही मार्ग                                   | ... ७२  | ( १ ) भयका प्रभाव                           |         | ( जगाई-मवाई-उद्धार,<br>हरिदासजीकी कृपा )         | ३६१     |
| ६—शान्ति कहाँ है ?                              | ... १०४ | ( बुद्धका वैराग्य )                         | २४१     | २४—यह भी न रहेगा                                 | ... ३८० |
| ७—दो ही गति                                     | ... १०५ | ( २ ) अभयका प्रभाव                          |         | २५—ऐश्वर्य और दारिद्र्य                          | ... ३८१ |
| ८—खर्ग और मोक्ष                                 | ... १३६ | ( मीरौका विषपान )                           | २४१     | २६—मोहका महल होगा ही                             | ४००     |
| ९—परदुःखकातरता—परम<br>दयालु राजा रन्तिदेव       | ... १६० | १५—योगक्षेमं वहाम्यहम् ( तुलसी<br>और नरसी ) | ... २७२ | २७—सुखमें विस्मृति और<br>दुःखमें पूजा            | ... ४२० |
| १०—ये महामनस्वी—                                | ... १६१ | १६—सहस्राहु दसवदन आदि                       |         | २८—संसारके सम्मानका स्वरूप                       | ४२१     |
| ( १ ) दधीचिका                                   |         | वृप बचे न काल बली तैं                       | २८८     | २९—चन्दन-कुलहाड़ी ( गोस्वामी<br>श्रीतुलसीदासजी ) | ... ४४० |
| अस्थिदान                                        | ... १६१ | १७—अधिकारका अन्त                            | ... २८९ | ३०—संत और विच्छु                                 | ... ४४० |
| ( २ ) श्रिविका मांसदान                          | १६१     | १८—आर्त पक्षीकी प्रार्थना                   |         | ३१—भक्तोंकी क्षमा                                | ... ५०० |
| ( ३ ) हरिश्चन्द्रकी                             |         | ( श्रीसूरदासजी )                            | ... ३१६ | ( १ ) प्रहादकं                                   |         |
| सत्यनिष्ठा                                      | ... १६२ | १९—धूल-पर-धूल ( रङ्का-बाँका )               | ३१६     | ( २ ) अम्बरीष                                    |         |
| ११—पुण्यदान ( नरकीप्राणियोंके                   |         | २०—मालिकका दान ( विश्वकरि                   |         |                                                  |         |
| दुःखसे दुस्ती )                                 | ... २१६ | श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरकी                     |         |                                                  |         |
|                                                 |         | एक कविताका भावान्तर )                       | ३१७     |                                                  |         |

|                                  |     |                             |      |                                  |     |
|----------------------------------|-----|-----------------------------|------|----------------------------------|-----|
| ३४—परदुःखकातर सन्तिदेव           | १०६ | ७२—महात्मा ईसामसीह          | ३०८८ | १०८—गुरु गोविन्दसिंह             | ... |
| ३५—महाराजा जनक                   | ३०६ | ७३—महात्मा जरथुस्त्र        | ३०८८ | १०९—रामस्लेही सम्प्रदायके स्वामी |     |
| ३६—राजा चित्रकेतु                | ३०७ | ७४—योगी मत्स्येन्द्रनाथ     | ३०८९ | श्रीरामचरणजी महाराज              |     |
| ३७—पितामह भीष्म                  | ३०९ | ७५—योगी गुरु गोखलनाथ        | ३०८९ | ११०—स्वामी श्रीहरिरामदासजी       |     |
| ३८—भक्त अक्कर                    | ३१२ | ७६—संत ज्ञानेश्वर           | ३०९१ | महाराज                           | ... |
| ३९—धर्मराज युधिष्ठिर             | ३१२ | ७७—संत नामदेव               | ३०९१ | १११—संत श्रीरामदासजी महाराज      |     |
| ४०—भक्त अर्जुन                   | ३१५ | ७८—संत कवि श्रीभगतुदास      | ३०९३ | ११२—संत श्रीदयालजी महाराज        |     |
| ४१—भक्त उद्धव                    | ३१६ | ७९—संत एकनाथ                | ३०९४ | ११३—संत श्रीप्रसारामजी महाराज    |     |
| ४२—भक्त संजय                     | ३१८ | ८०—समर्थ गुरु रामदास        | ३०९४ | ११४—संत श्रीसेवगरामजी महाराज     |     |
| ४३—राजा परीक्षित्                | ३२२ | ८१—संत श्रीतुकाराम          | ३०९७ | ११५—भक्त श्रीनारायणस्वामीजी      |     |
| ४४—भक्तराज प्रह्लाद              | ३२४ | ८२—संत कबीरदासजी            | ३०१  | ११६—संत रवि साहेब                | ... |
| ४५—दानवीर राजा बलि               | ३२७ | ८३—संत वीरु साहब            | ३२२  | ११७—संत मोरार साहेब              | ... |
| ४६—भक्त वृत्तासुर                | ३२८ | ८४—संत वारी साहब            | ३२३  | ११८—श्रीरामकृष्ण परमहंस          | ... |
| ४७—कपिलमाता देवहृति              | ३३१ | ८५—संत बूला (बूला) साहब     | ३२४  | ११९—स्वामी विवेकानन्द            | ... |
| ४८—सज्जी माता मदालसा             | ३३२ | ८६—संत भीखा साहब            | ३२३  | १२०—स्वामी श्रीशिवरामकिंकर       |     |
| ४९—सती सावित्री                  | ३३४ | ८७—स्वामी श्रीदादूदयालजी    | ३४३  | योगचयाननदजी महाराज               |     |
| ५०—अचिपली श्रीअनसूया             | ३३५ | ८८—संत सुन्दरदासजी          | ३५०  | १२१—श्रीनन्दकिशोर मुखोपाध्याय    |     |
| ५१—पाण्डवजननी कुन्तीजी           | ३४० | ८९—स्वामी श्रीहरिदासजी      | ३६३  | १२२—स्वामी रामतीर्थ              | ... |
| ५२—पाण्डवपली द्रौपदी             | ३४० | ( हरिपुष्टजी )              | ३६३  | १२३—अवधूत श्रीकेशवानन्दजी        |     |
| ५३—श्रीमद्विद्यारण्य महामुनि     | ३४४ | ९०—स्वामी श्रीचरणदासजी      | ३६४  | १२४—संत जयनारायणजी महाराज        |     |
| ५४—जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य      | ३४९ | ९१—भक्तवर श्रीहरित्यासदेवा- |      | १२५—अवधूत श्रीनित्यानन्दजी       |     |
| ५५—, श्रीरामानुजाचार्य           | ३५३ | चार्यजी                     | ३७६  | १२६—सिंधी संत श्रीरामानन्द       |     |
| ५६—, श्रीनिम्बार्काचार्य         | ३५५ | ९२—तेजस्वी संत श्रीपरमहराम- |      | साहब लुकिमान                     | ... |
| ५७—, श्रीमध्वाचार्य              | ३५७ | देवजी                       | ३७७  | १२७—संत श्रीराजचन्द्र            | ... |
| ५८—, श्रीवल्लभाचार्य             | ३५७ | ९३—स्वामी श्रीहरिदासजी      | ३८०  | १२८—महात्मा श्रीमंगतरामजी        | ... |
| ५९—, श्रीरामानन्दाचार्य          | ३५९ | ९४—आचार्य श्रीहितारिवेश     |      | १२९—प्रभु श्रीजगद्दन्तु          | ... |
| ६०—महाप्रसु श्रीचैतन्यदेव        | ३६३ | महाप्रभु                    | ३८१  | १३०—महात्मा श्रीहरनाथ ढाकुर      |     |
| ६१—आचार्य श्रीमधुसूदन            |     | ९५—संत श्रीव्यासदासजी       | ३८१  | १३१—लोकमान्य बाल गंगाधर          |     |
| सरस्वती                          | ३६९ | ९६—भक्त श्रीसूरदासजी        | ३९३  | तिलक                             | ... |
| ६२—गुसाहीजी श्रीमहिद्दलनाथजी     | ३७० | ९७—धनो भक्त                 | ३१५  | १३२—महामाना पं० श्रीमदन-         |     |
| ६३—श्रीविघ्नुचित                 | ३७२ | ९८—गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी  | ३१८  | मोहनजी मालवीय                    | ... |
| ६४—भक्तिमती श्रीआण्डाल           |     | ९९—श्रीसाकानजी              | ३४०  | १३३—महात्मा गाँधी                | ... |
| ( रंगनायकी )                     | ३७३ | १००—श्रीनारादासजी           | ३४८  | १३४—श्रीअरविन्द                  | ६   |
| ६५—श्रीकुब्जोखर आळवार            | ३७३ | १०१—श्रीतानसेनजी            | ३५९  | १३५—श्रीमानलाल हरिमार्द          | ६   |
| ६६—श्रीमुनिवाहन तिरुप्पन्नाल्वार | ३७५ | १०२—श्रीसाकेतनिवासाचार्यजी  |      | व्यास                            | ६   |
| ६७—श्रीपोषगै आळवार, भूत-         |     | ( श्रीटीलजी )               | ३६२  | १३६—संत श्रीमोतीलालजी            |     |
| ताळवार और पेयालवार               | ३७५ | १०३—प्रेमदिवानी मीराँ       | ३६८  | महाराज                           | ६   |
| ६८—श्रीनीलन्(तिरुमङ्गैयाल्वार)   | ३७६ | १०४—श्रीयग्नदासजी           | ३७५  | १३७—तपस्तिनी रविया               | ६   |
| ६९—संत श्रीनमालवार               | ३७७ | १०५—श्रीप्रियादासजी         | ३७६  | १३८—महात्मा लुकरात               | ६   |
| ७०—भगवान् महावीर                 | ३७९ | १०६—गुरु नानकदेव            | ३८२  | १३९—संत फांसिस                   | ६   |
| ७१—भगवान् लुद्द                  | ३८६ | १०७—गुरु अर्जुनदेव          | ३९१  | १४०—महात्मा टालस्टाय             | ६   |

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णोऽपि पूर्णमुद्भवते । पूर्णस्य पूर्णमात्राय पूर्णमेवाक्षिप्त्वते ॥



स्मृतापि तरुणातपं करुणया इरन्ती चृणाम्भजुरतनुत्तिपां वलयिता शतविंश्युताम् ।

कालिन्दगिरिनिन्दनीतटभुमद्गुमालस्त्रिनी मदीयमतिचुम्बिनी भवतु कापि कादम्बिनी ॥

(पण्डितराज जगद्गुरु)

१२५

गोरखपुर, साँर माघ २०११, जनवरी १९५५

{ संख्या ?  
पूर्ण संख्या ३२८

### भक्त-संतोंकं लक्ष्य

कालिन्दी तट निकट कल्पतरु एक सुहावै ।

ता नीचे नद तरुन दिव्य कोड बेनु बजावै ॥

लयि लावन्य अनूप रूप ससि-कोटि लजावै ।

विविध वरन आभरन वसन-धूपन छवि पावै ॥

नद नदल नेह-करुना कलित ललित तयन मनहर लसै ।

यह मोहन मूरति स्याम की नंतन भक्त छिय बसै ॥

—पाण्डेय श्रीगण्डनारायणदत्त शास्त्री द्वामः

—३२८—

मं चा० अ० १—

## संत-वाणी

( रचयिता—पाठ्डेय पं, श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम' )

वन्दे संत उदार दयानिधि जिसकी मंजुल वाणी,  
भवसागर-संतरण तरणि-सी परहित-रत कल्याणी ।  
मृदु, कोमल, सुस्निग्ध, मधुरतम, निर्मल, नवल, निराली,  
काम-कोद्य-मद-लोभ-मोह सब दूर भगवेवाली ॥ १ ॥

जहाँ कर्मकी कालिन्दीमें मिलित भक्तिकी गङ्गा,  
सरस्वती है जहाँ शालकी गृह अगस्त्य अभङ्गा ।  
त्रिविधि साधनोंकी वहती है सुन्दर जहाँ त्रिवेणी,  
धन्य संत-वाणी प्रगाग-सी निःश्रेष्ठ स निःश्रेणी ॥ २ ॥

शुद्धती जहाँ सर्वं जातं ही त्रिविधि तापकी ज्वाला,  
भरती पुलक मोद तन मनमें भाव-जर्मिकी माला ।  
जहाँ न जाकर प्यासा लौटा है कोई भी प्राणी,  
सुरधुनि-सी सबको सुख देती वह संतोंकी वाणी ॥ ३ ॥

सद्भावोंके पोषणहित जो मधुर दुग्ध गौका है,  
देती सदा मुक्तिके पथपर बढ़नेको मौका है ।  
भीषणतम भवकी जलनिधिमें और द्रवलवालो,  
दौड़ो चढ़ो संतवाणी नौकापर होश सँभालो ॥ ४ ॥

संत-वचन वह सुधा देव भी जिसके सदा भिखारी,  
संत-वचन वह धन जिसका है नर प्रधान अधिकारी ।  
मर्त्य अमर बन जाता जिससे वह संजीवन रज है,  
संत-वचन सब भवरोगोंका रामवाण भेषज है ॥ ५ ॥

वेद, शास्त्र, अनुभूति, तपस्याका जिसमें संचय है,  
संतोंका वर वरद वचन वह मङ्गलमय निर्मय है ।  
क्यों बैठा कर्तव्यमृद नर बन चिन्ताका वाहन,  
संत-वचनके सुधा-सिन्धुमें कर संतत अवगाहन ॥ ६ ॥

दूर अस्तुसे कर सत्पथकी ओर लगालेवाला,  
और सृत्युसे हठा अमरता तक पहुँचानेवाला ।  
तमसे परे ज्योतिके जगमें होता जो जगमग है,  
सञ्चिन्मय उस परमधामका संत-वचन शुचि मग है ॥ ७ ॥

कौन बताये संतोंकी वाणीमें कितना बल है?  
दासी-सुत देवर्षि बन गया जीवन हुआ सफल है ।

उसी संतके प्रबचनले वह चमत्कार दिखलाया,  
दैत्यवंशमें देवोपम प्रहाद प्रकट हो आया ॥८॥

अगणित बार संत-वाणीने निज प्रभाव प्रकटाया,  
मान उसे ही बालक धुक्ने हरिका धुखपद पाया ।

एक लुटेरा था जो मनसे मान संतकी वाणी,  
बालमीकि बन गया आदिकवि भुवनविदित विज्ञानी ॥९॥

संत-बचनके अनुशीलनसे होती निर्मल मति है,  
थीहरिके चरणोंमें जिससे बढ़ती अविचल रति है ।

रीझ उसीसे भक्तजनोंके बश होते बनवारी,  
दर्शन दे राघा-प्यारी-सँग हरते वाधा सारी ॥१०॥

## संत-सूक्ति-सुधा

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा )

ऐसे तो संतका किसी भी देश-कालमें अभाव नहीं  
होता । वे सभी देशोंमें, सभी दिनोंमें, सभीके लिये  
वैर्या मुलम हैं—

सबहि मुलम सब दिन सब देसा ।

पर न तो संतोंकी कोई दूकान होती है और न  
कोई साइन-ओर्ड ही लगाये फिरते हैं, जिससे उन्हें  
पठ पहचान लिया जाय । साथ ही हतभाग्य ग्राणी  
संतमिलनकी उचित चेष्टा न कर उल्टे उपेक्षा कर  
रहे हैं—इसीलिये सत्संगति अत्यन्त दुर्लभ तथा दुर्बट  
गी कही गयी है—

सत्संगति दुर्लभ संसारा । निमिष दंड भरि पुकड बारा ॥१॥

कभी-कभी तो ऐसा होता है कि संतके वेषमें  
असंत और असंत-वेषमें संत मिल जाया करते हैं,  
जिससे और भी भ्रम तथा वशना हो जाती है । फिर  
भी इसमें तो किसी प्रकारका संदेह नहीं कि जिसे  
परम सौभाग्यवशात् कहीं एक बार भी विशुद्ध संत

१. सत्सङ्गो दुर्लभोऽगम्योऽमोवश्च ( नारद-भक्तिमूल )

जन्मार्जितानि पापानि नाशमायान्ति यस्त्र वै ।

सत्सङ्गतिभैवत्स्य नात्यथा घटते हि सा ॥

( ना० उ० प० ४० ४ )

मिल गये, उसपर भगवत्कृपा हो गयी और उसका  
सारा काम बन गया । सच्ची बात तो यह है कि संत-  
की प्राप्ति भगवत्यामि-सदृश ही या उससे भी अधिक  
महत्वकी घटना है ।—

निगमागम पुशन मत पुहा । कहाँ हि सिद्ध सुनि नहिं स  
संत बिसुद्ध मिलाहि परि तेही । चितवहिं राम कृष्ण करि  
‘मो ते अधिक संत करि क्लेशा ।’

‘जानेसि संत अनंत समाना’ ‘राम से अधिक राम कर द

यथपि संत सभी देश-कालमें होते हैं, फ  
भारत इसमें सबसे आगे है । संतोंकी वाणी ।  
कल्याणदायिनी होती है । उसका वर्णन नह  
सकता । यदि वे मिल जायें तब तो पूछना ही  
पर उनके अभावमें भी भारतीयोंका यह सौभाग्य है  
भगवान् बालमीकि, व्यास, नारद, वशिष्ठ, शुक्रदे  
गोखार्णी तुलसीदास-जैसे संतोंकी परम पवित्र  
मयी वाणीरूपा, भास्ती भगवती अनुकम्पा :  
प्रसाद पा तत्क्षण शोक-मोहसे मुक्त होकर अपार  
शान्ति प्राप्त कर सकते हैं ।

## सूक्ति-सार-सर्वस्व

संतजन वस्तुतः त्रिभुवनके ऐश्वर्यका लोभ ।  
या सम्पूर्ण विश्वके भोग उपस्थित होनेपर भी

ते विर्भावणको दुर्लभ भक्तिके साथ कल्पपर्यन्त लंकाका  
ने अचल राज्य मी मिल गया ।—

ते एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा । मौगा तुरत सिंधु कर नीरा ॥  
जदपि सखा तब इच्छा नाहीं । मोर दरसु अमोघ जग नाहीं ॥  
अस कहि राम विलक तेहि सारा । सुमन वृष्टि नभ भई अपारा ॥

भक्तिरससे परिणुत होकर पूज्य गोस्वामीजी कहने  
हैं कि कुबेरकी पुरी लंका सुगोरके समान थी । इसकी  
रचनामें ब्रह्माजीकी सारी बुद्धि लग गयी थी । वीर रावण  
कहै बार अपने सीमको इच्छाके घरणोंपर चढ़ाकर बहाँ-  
का राजा बना था । ऐसा लगता था मानो तीनों लोककी  
द्विभूति, सामग्री और सम्पत्तिकी राशिको एकत्रित कर  
चाँक लग दी गयी हो । पर यह सारी सम्पत्ति महाराज रामचन्द्रजीके बनमें रहते हुए भी तीन दिनके  
समुद्र-तटके उपवासके बाद एक ही दिनका दान बन  
गयो—

तीसरे उपास बन बास सिंधु पास सो,  
समाज महाराज जू को एक दिन दान भो ॥

भला, सुवनमोइन मगवान् श्रीराधवेन्द्रको स्थयं जब  
गहनोंके, आभूषणोंके लिये केवल वश्कल वस्त्रमात्र ही  
थे, भोजनको फल ही रह गया था, शश्या तुणाच्छादित  
भूमिमात्र थी और बृक्ष ही मकान बन रहे थे, उस  
समयमें तो विर्भावणको लंकाका राज्य दे डाला, फिर  
दूसरे समयका कथा कहना । सचमुच उनकी दया और  
प्रीतिकी शक्ति देखते ही बनती है—

बलकल भूषण फल असन, तुन सज्जा द्रुम प्रीति ।  
तिन समयन लंका दई, यह रघुवरकी रीति ॥

विर्भावण क्या लेकर प्रभुसे मिला और प्रभुने क्या  
ने डाला ? प्रभुके स्वभावको न समझने-जाननेवाले मूर्ख  
जीव हाथ ही मलने रह जायेंगे ।—

कहा विर्भावण लै मिल्यो कहा दियो स्वनाथ ।  
चुलसी यह जाने बिना मूरु मीजिहै हाथ ॥

### सूक्तिसुधा-संग्रह

यह अनुभूति केवल गोस्वामीजीकी ही नहीं, सभी  
संतोंकी है, इसमें अन्तर आ नहीं सकता । प्रभुकी कृपा-

में विर्सी कारणविशेषवशा किञ्चित् देर मले हीं हों, पर  
अन्धेर नहीं हो सकता । मगवान् व्यास नो कहने हैं  
कि 'नारायणवरणाश्रित व्यक्ति विना साधन-चतुष्पक्षं  
ही मोक्षतक पा लेता है और दूसरे पुरुषार्थोंकी क्या  
बात ?—

या है साधनसम्पत्तिः पुरुषार्थचतुष्पक्षे ।  
तां विना सर्वमामोति यदि नारायणाश्रयः ॥

चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिये जिस साधन-  
सम्पत्तिकी आवश्यकता है, उसके विना ही मनुष्य सब  
कुछ पा लेता है, यदि उसने मगवान् नारायणकी  
शरण ली है ।

इसलिये मैया ! प्राणी अकाम हो या सकाम, निष्पाम  
हो अथवा सर्वकामकामी, उसे एकमात्र तीव्र ध्यानयोग,  
भक्तियोगसे उन परम प्रभुकी ही आराधना कर ब्रह्मकृत्य  
हो जाना चाहिये—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।  
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत् पुरुषं परम् ॥  
( श्रीमद्भागवत २ । ३ । १० )

जो कुछ नहीं चाहता, जो सब कुछ चाहता है,  
अथवा जो केवल मोक्षकी इच्छा रखता है, वह उदार-  
बुद्धि मानव तीव्र भक्तियोगके द्वारा परमपुरुष श्रीहरिका  
आराधना करे ।

अब यहाँ इस प्रकारकी कुछ और सतत-व्याप्तियोंवाली  
सधुरताका खाद लंजिये । नारदजी श्रीकृष्णसे कहने हैं—

सनीषितं हि प्राप्नेति चिन्तयन् मधुसूदनम् ।  
एकान्तभक्तिः सततं नारायणपरायणः ॥  
( महा० शान्ति० अ० ३४३ )

१-तभी तो—

भाय कृगा ही को पंथ चितवत दीन हैं-दिन रात ।  
होइ धौं केहि काल दीन दयाल जानि न जात ॥  
और—

कबहि देखाइ है हरिचरन!  
तथा—

कबहुँ दरैगे राम आपनि दरनि  
—की मधुर आशा लगी रही ।

## संतोंक सिद्धान्त

( अदेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका एक भाषण )

### परमात्माकी प्राप्तिके विभिन्न मार्ग

#### अद्वैत-सिद्धान्त

अद्वैतवादी संतोंका यह सिद्धान्त है कि प्रश्नग  
धार्मिकित कर्मोंमें पृथ्वीसक्तिका स्थाग करके कर्मयोगका  
माध्यन करना चाहिये; उसमें दृगुण, दुरुचारद्वय मल-  
दंडामका नाश होकर अन्तःकरणकी शुद्धि होती है;  
तदनन्तर भगवान्के ज्ञानवान् अभ्यास करना चाहिये, उसमें  
विशेषका नाश होता है। इसके बाद आत्माके यथार्थ  
ज्ञानमें आवश्यका नाश होकर ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती  
है। वैदान्त-सिद्धान्तके इन आचार्योंका यह क्रम  
बताना आख्यसम्मत एवं युक्तियुक्त है। अतः इस  
मार्गिक अधिकारी साधकोंके लिये आचरण करनेयोग्य है।

#### निष्काम कर्मयोग

इसी प्रकार केवल निष्काम कर्मयोगके साधनमें भी अन्तः-  
करणकी शुद्धि होकर अपने-आप ही परमात्माके स्वरूप-  
का यथार्थ ज्ञान हो जाता है और उस परमपदकी प्राप्ति  
हो जाती है। स्वयं भगवान् गीतमें कहते हैं—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।  
तन्मवर्य गोगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥

( ४ । ३८ )

‘इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला  
निःसंदेह कोई भी पदार्थ नहीं है। उस ज्ञानको कितने  
ही कालमें कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य  
अपने-आप ही आत्मामें पा लेता है।’

तस्माद्दसकः सततं कार्यं कर्म समाच्चर ।  
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमामोति पूरुषः ॥  
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।

( ३ । १९, २० का पूर्वार्थ )

‘इसलिये तू निरन्तर आसक्तिसे रहित होकर सदा  
कर्त्तव्यकर्मको भलीभाँति करता रह; क्योंकि आसक्तिसे  
रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्माको प्राप्त  
हो जाता है। जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्तिरहित  
कर्मद्वारा ही परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे।’

यत्सांख्यैः प्राप्यते श्वानं तद्योगैरपि गम्यते ।

( ५ । ५ का पूर्वार्थ )

‘ज्ञानयोगियोंद्वारा जो परम धाम प्राप्त किया जाता  
है, कर्मयोगियोंद्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है।’

योगयुक्तो मुनिर्वृक्षा नन्दिरेणाद्विगच्छति ॥

( ५ । ६ का उत्तरार्थ )

‘कर्मयोगी मुनि परब्रह्म परमात्माको शीघ्र ही प्राप्त  
हो जाता है।’

#### भक्तिमिश्रित कर्मयोग

इसी प्रकार भक्तिमिश्रित कर्मयोगके द्वारा परमात्म-  
की प्राप्ति हो जाती है और वह सर्वथा उपशुल्क ही  
है। जब केवल निष्काम कर्मयोगमें परमात्माकी प्राप्ति  
हो जाती है, तब भक्तिमिश्रित कर्मयोगमें हो, इसमें तो  
कहना ही क्या है। इस विषयमें मी ख्यं भगवान्  
गीतामें कहते हैं—

यत्करोपि यदश्वासि यज्ञुहोपि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुत्वं मदर्पणम् ॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मवन्धनैः ।

संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मासुपैत्यसि ॥

( ९ । २७-२८ )

‘हे अर्जुन ! तू जो कर्म करता है, जो ज्ञान है  
जो हृत करता है, जो दान देता है और जो  
तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर। इस प्रकार  
जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान्के अर्पण होते हैं, ऐसे  
संन्यासयोगसे युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्म-  
वन्धनसे मुक्त हो जायगा और उनसे मुक्त होकर मुश्वरी  
ही प्राप्त होगा।’

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।

स्वकर्मणा तमभ्यन्दर्यं सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

( १८ । ४६ )

‘जिस परमेश्वरमें समूर्य ग्राणियोंका उत्तरि है

और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वर-

की अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य कर्म-

सिद्धिको प्राप्त हो जाता है।’

सर्वकर्मण्यपि सदा कुर्वाणो मद्रव्यपाक्षयः ।  
मत्प्रसादाद्वचाप्रोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥  
(१८।५६)

‘मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है।’

### भगवद्गति

इसके अतिरिक्त, केवल भगवद्गतिसे भी अनायास ही सतन्त्रतापूर्वक मनुष्योंका कल्याण हो जाता है। वस्तुतः यह सर्वोत्तम साधन है। इस विषयमें भगवान् गीतामें जगह-जगह कहते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।  
शद्वावान्मज्जते यो मां स मे युक्तमो मतः ॥  
(६।४७)

‘सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।’

दैवी ह्येषा शुण्यमयी मम माया दुरत्यया ।  
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥  
(७।१४)

‘यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है, परंतु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस मायाको उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसारसागरसे तर जाते हैं।’

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।  
ददामि बुद्धियोगं तं येन मासुपयान्ति ते ॥  
(१०।१०)

‘उन निरन्तर मेरे ध्यानमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।’

भक्त्या त्वत्स्त्वया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।  
ज्ञातुं द्वष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥  
(११।५४)

‘हे परंतप अर्जुन ! अनन्य भक्तिके द्वारा इस प्रकार

चतुर्मुज रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वमें जानेनेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकी-मावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।’

मध्यवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।  
शद्वया परयोगेतास्ते मे युक्ततमा मतः ॥  
(१२।२)

‘मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त होकर मुझ सम्पूर्णरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें अति उत्तम योगी मान्य हैं।’

मन्मता भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।  
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥  
(१८।६५)

‘हे अर्जुन ! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सब्द प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।’

इसी प्रकार गीतामें और भी बहुत-से श्लोक हैं; किंतु लेखका कल्पवर न बढ़ जाय, इसलिये नहीं दिये गये।

भक्तिमार्गके संतोंका ऐसा कथन है कि प्रथम कर्म-योगसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, फिर आत्मज्ञानसे जीवको आत्माका ज्ञान प्राप्त होता है, तदनन्तर परमात्माकी भक्तिसे परमात्माका ज्ञान होकर परमपदरूप परमात्माकी प्राप्ति होती है। भक्तिमार्गके इन आचार्योंके पद्धतिके अनुसार इनका यह क्रम बताना भी बहुत ही उचित है। इस मार्गके अधिकारी साधकोंको इसीवे अनुसार आचरण करना चाहिये।

### आत्मज्ञान

इसी प्रकार केवल आत्मज्ञानसे परमपदरूप परमात्माके प्राप्ति हो जाती है। उपर्युक्त विवेचनके अनुसार ज्ञानिष्ठाम कर्मके द्वारा ज्ञान होकर परमपदरूप परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है, तब आत्मज्ञानसे परमात्माकी प्राप्ति होने तो कहना ही क्या है ? स्वयं भगवान् जीतामें कहा है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।  
उपदेष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शीनः ॥

यज्ञात्मा न पुनर्माहसेवं यास्यसि पाण्डव।  
येन भूतान्त्यशोपेण द्रक्ष्यम्यात्मन्यथो मयि ॥  
(४।३४-३५)

‘उस तत्त्वज्ञानको तृत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ, उनको भलीभौति दण्डवत्-प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेले और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभौति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे, जिसको जानकर फिर तृत्त्व इस प्रकार मोहको नहीं प्राप्त होगा तथा हे अर्जुन। जिस ज्ञानके द्वारा तृत्त्व सम्पूर्ण भूतोंको निःशेषभावसे पहले अपनेमें और पीछे मुझ सच्चिदानन्दधन परमात्मामें देखेगा।’

तद्बुद्ध्यस्तदात्मानस्तन्निष्टास्तत्परायणाः ।  
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्पाः ॥(५।१७)

‘जिनका मन तद्रूप हो रहा है, जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है और सच्चिदानन्दधन परमात्मामें ही जिनकी निरन्तर एकीभावसे स्थिति है, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पापरहित होकर अपुनरावृत्तिको अर्थात् परम गतिको प्राप्त होते हैं।’

योऽन्तःसुखोऽन्तररामस्तथान्तर्जयोंतिरेव यः ।  
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं व्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥(५।२४)

‘जो पुरुष अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, आत्मामें ही रमण करनेवाला है तथा जो आत्मामें ही ज्ञानवाला है, वह सच्चिदानन्दधन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त ज्ञानयोगी शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है।’

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।

इक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥(६।२१)

‘सर्वव्यापी अनन्तचेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त अत्मावाला तथा सबमें समझावसे देखनेवाला योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें कल्पित देखता है।’

आत्मौपस्येन सर्वत्र सर्वं पश्यति योऽर्जुन ।  
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥(६।३२)

‘हे अर्जुन! जो योगी अपनी भौति सम्पूर्ण भूतोंमें

सम देखता है और सुख अथवा दुःखको भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।’

थेवक्षेवद्वयोरेवमन्तरं ज्ञानचम्भुषा ।

भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥(६।३४)

‘इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको तथा कार्यसहित प्रकृतिसे मुक्त होनेको जो पुरुष ज्ञाननेत्रोदारा तत्त्वसे जानते हैं, वे महात्माजन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं।’

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपदयति ।

गुणेभ्यश्च परं वेति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥(६।११)

‘जिस समय दृष्टि तीनों गुणोंके अतिरिक्त अन्य किसीको कर्ता नहीं देखता और तीनों गुणोंसे अत्यन्त परे सच्चिदानन्दधनस्तररूप मुक्त परमात्माको तत्त्वसे जानता है, उस समय वह मेरे स्तररूपको प्राप्त होता है।’

इससे यह सिद्ध हो गया कि केवल ज्ञानयोगके द्वारा ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। वह भगवान्की भक्ति करे तो उसकी इच्छा है; परंतु वह इसके लिये बाध्य नहीं है।

दुर्गण, दुराचारोंके रहते मुक्ति नहीं होती

यहाँ एक और भी सिद्धान्तकी बातपर विचार किया जाता है। कुछ सज्जन ऐसा मानते हैं कि काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुर्गण और झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार आदि दुराचारोंके रहते हुए भी ज्ञानके द्वारा मुक्ति हो जाती है। परंतु यह बात न तो शाखसम्मत है और न युक्तिसंगत ही। लोगोंको इस भ्रममें कहाँपि नहीं पड़ना चाहिये। यह सर्वथा सिद्धान्तविरुद्ध बात है। ऐसे दोषयुक्त लोगोंको तो स्वयं भगवान् ने गीतामें आसुरी सम्पदावाला बतलाया है (गीता अध्याय १६ श्लोक ४ से १९ तक देखिये)। और इनके लिये आसुरी योनियोंकी प्राप्ति, दुर्गति और घोर नरकवी प्राप्तिका निर्देश किया है। भगवान् कहते हैं—

आसुरीं योनिमापन्ना भूढा जन्मनि जन्मनि ।  
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥

त्रिविद्यं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।  
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्वयं त्यजेत् ॥  
(गीता १६। २०-२१)

‘हे अर्जुन ! वे मूढ़ मुझको न प्राप्त होकर जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं, फिर उससे भी अति नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोमें पड़ते हैं। काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं। अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये ।’

जो इन दुर्गुणों और विकारोंसे रहित हैं, वे ही भगवान्के सच्चे साधक हैं और वे ही उस परमात्माको प्राप्त हो सकते हैं। गीतामें बतलाया है—

पत्तैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैखिभिर्नरः ।  
आचरत्यात्मनः श्वेयस्ततो धरति परां गतिम् ॥(१६।२२)

‘हे अर्जुन ! इन तीनों नरकके द्वारोंसे मुक्त पुरुष अपने कल्याणका आचरण करता है, इससे वह परम-गतिको जाता है अर्थात् मुझको प्राप्त हो जाता है।’

यस्माऽन्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।  
हृष्टर्मर्षभयोद्वैर्गैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥(१२।१५)

‘जिससे कोई भी जीव उद्वेगको प्राप्त नहीं होता और जो खयं भी किसी जीवसे उद्वेगको प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है, वह मेरा भक्त मुझको प्रिय है।’

संत तुलसीदासजी भी कहते हैं—  
काम क्रोध मद् लोभ की जब लगि मन महँ खान ।  
तुलसी पुंडित मूरखा दीनों एक समान ॥

इससे यही सिद्धान्त निश्चित होता है कि दुर्गुण और दुराचारके रहते हुए कोई भी पुरुष मुक्त नहीं हो सकता। यही अटल सिद्धान्त है।

ईश्वर, परलोक और पुनर्जन्म सत्य हैं

कुछ लोग यह कहते हैं कि ‘न तो ईश्वर है और न परलोक तथा भावी जन्म ही है। पाँच जड़ भूतोंके इकड़े होनेपर उसमें एक चेतनशक्ति आ जाती है और

उसमें विकार होनेपर वह फिर नह हो जाती है।’ यह कहना भी बिल्कुल असंगत है। हम देखते हैं कि देहमें पाँच भूतोंके विद्यमान रहते हुए भी चेतन जीवात्मा चला जाता है और वह पुनः लौटकर वापस नहीं आ सकता। यदि पाँच भूतोंके मिश्रणसे ही चेतन आत्मा प्रकट होता हो तो ऐसा आजतक किसीने न तो करके दिखाया ही और न कोई दिखला ही सकता है। अतः यह कथन सर्वथा अयुक्त और त्याज्य है। जीव इस शरीरको त्यागकर दूसरे शरीरमें चला जाता है। गीतामें भी देहान्तरकी प्राप्ति होनेकी बात स्वयं भावान्तरे कही है—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।  
तथा देहान्तरप्राप्तिर्व्याप्तिरस्तत्र न मुहूर्ति ॥(२।१३)

‘जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकमन, जवानी और बृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है, उस विषयमें भी पुरुष मोहित नहीं होता।’

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-

न्यन्यानि संयानि नवानि देही ॥(२।२२)

‘जैसे मनुष्य पुराने बलोंको त्यागकर दूसरे नये बलोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।’

अतएव उन लोगोंका उपर्युक्त कथन शास्त्रसे भी असंगत है; क्योंकि मरनेके बाद भी आत्माका अस्तित्व रहता है तथा परलोक और पुनर्जन्म भी है।

इसी प्रकार उनका यह कथन भी धर्मपूर्ण है कि, ईश्वर नहीं है; क्योंकि—आकाश, आयु, तेज, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि पदार्थोंकी रचना और उनका संचालन एवं जीवोंके मन, बुद्धि, इन्द्रियोंकी यथास्थान स्थापित करना ईश्वरके बिना कदापि सम्भव नहीं है। संसारमें जो भौतिक विज्ञान (Science) के द्वारा यन्त्रादिकी रचना देखी जाती है, उन समीक्षा किसी बुद्धिमान्

चेतनके द्वारा ही निर्माण होता है। फिर यह जो इतना विशाल संसार-चक्ररूप यन्त्रालय है, उसकी रचना चेतनकी सत्ताके बिना जड़ प्रकृति ( Nature ) कर्मी नहीं कर सकती।

इसमें यह बात सिद्ध होती है कि इसका जो उत्तादक और संचालक है; वही ईश्वर है।

गातार्जीमें भी लिखा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशोऽर्जुन तिष्ठति ।  
भामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायथा ॥  
( १८।६१ )

‘हे अर्जुन ! शरीररूप यन्त्रमें आख्य द्वारा सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियोंके द्वयमें स्थित हैं।’

शुक्लयजुवेंदके चालीसवें अध्यायके प्रथम मन्त्रमें लिखा है—

ईशावास्यमिदः सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।  
तेन त्यक्तेन भुक्तिथा मा गृधः कस्यस्मिद् धनम् ॥

‘अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड़-चेतनस्तरूप गत है, वह समस्त ईश्वरसे व्याप्त है। उस ईश्वरके काशसे ( सहायतासे ) त्यागपूर्वक इसे भोगते रहो, समें आसक्त मत होओ; क्योंकि धन-ऐश्वर्य किसका अर्थात् किसीका भी नहीं है।’

पूर्व और भावी जन्म न मानकर बिना ही कारण विदोंकी उत्पत्ति माननेसे ईश्वरमें निर्दयता और विषमता-ता दोष भी आता है; क्योंकि संसारमें किसी जीवको तुष्ट्यकी और किसीको पशु आदिकी योनि प्राप्त होती है। ऐं जीव सुखी और कोई दुखी देखा जाता है। अतः विदोंके जन्मका कोई सबल और निश्चित हेतु होना नहिये। वह हेतु है पूर्वजन्मके गुण और कर्म। भगवान्-भी गीता ( ४।१३ ) में कहा है—

वातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।  
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तरमव्ययम् ॥

‘प्राह्ण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णों-

का समूह, गुण और कर्मोंके विभागपूर्वक मेरेद्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि-रचनादि कर्मका कर्ता होनेपर भी मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू वासनमें अकर्ता ही जान।’

इससे यह सिद्ध होता है कि मरनेके बाद भी जन्म है।

मुक्त पुरुष लौटकर नहीं आते

कितने ही लोग यह मानते हैं कि ‘जीव मुक्त तो होते हैं; किंतु महाप्रलयके बाद पुनः लौटकर वापस आ जाते हैं।’ किंतु उनकी यह मान्यता भी यथार्थ नहीं है; क्योंकि श्रुतियोंकी यह स्पष्ट घोषणा है—

न च पुनरावर्तते, न च पुनरावर्तते ।

( छान्दोग्य ८।१५।१ )

‘मुक्त हो जानेपर पुरुष ) फिर वापस लौटकर नहीं आता, वह पुनः वापस लौटकर आता ही नहीं।’

गीता ( ८।१६ ) में भी भगवान् कहते हैं—

आब्रह्ममुच्चनात्कोक्षः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।  
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥

‘हे अर्जुन ! ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती हैं, परंतु हे कुन्तीएन ! मुझको ग्रास होकर पुनर्जन्म नहीं होता; क्योंकि मैं कालातीत हूँ और ये सब ब्रह्मादि के लोक कालके द्वारा सीमित होनेसे अनियत हैं।’

यदि यह मान लिया जाय कि मुक्त होनेपर भी प्राणी वापस आता है तो फिर सर्वग्रासि और मुक्तिमें अन्तर ही क्या रहा ? इसलिये ऐसा मानना चाहिये कि लोकान्तरोंमें गथा हुआ जीव ही लौटकर आता है, जो ब्रह्मको ग्रास हो जाता है, वह नहीं आता। युक्तिसे भी यही बात सिद्ध है। जब परमात्माका यथार्थ ज्ञान होनेपर जीवकी चिजाड़प्रनिधि खुल जाती है, उसके सारे कर्म और संशयोंका सर्वथा नाश हो जाता है, तथा प्रकृति और प्रकृतिके कार्योंसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। ऐसी शितिमें गुण, कर्म और अज्ञानके सम्बन्ध बिना जीव वापस नहीं आ सकता। अज्ञानके सम्बन्ध बिना जीव वापस नहीं आ सकता। मुक्त तो यथार्थमें वही है, जिसके पूर्वके गुण और कर्म

तथा संशय और भ्रमका सर्वथा विनाश हो चुका है ।  
ऐसा होनेपर पूर्वके गुण और कर्मोंसे सम्बन्ध रहे  
बिना उसका किसी योनिमें जन्म लेना और सुख-दुःख-  
का उपभोग करना—सर्वथा असंगत और असम्भव है ।

यदि कहें कि ‘इस प्रकार जीव मुक्त होते रहेंगे  
तो शनैःशनैः सभी मुक्त हो जायेंगे ।’ तो यह ठीक  
ही है । यदि शनैःशनैः सभी मुक्त हो जायें तो  
इसमें क्या हानि है ! अच्छे पुरुष तो सबके कल्याणके  
लिये ईश्वरसे प्रार्थना करते ही रहते हैं ।

सभी देश, सभी काल, सभी आश्रमोंमें मनुष्य-  
मात्रकी मुक्ति हो सकती है

कितने ही लोग ऐसा कहते हैं कि ‘इस देशमें,  
इस कालमें और गृहस्थ-आश्रममें मुक्ति नहीं होती ।’  
यह कथन भी युक्तियुक्त नहीं है; क्योंकि ऐसा मान  
लेनेपर तो परमात्माकी प्राप्ति असम्भव-सी हो जाती है, फिर  
मुक्तिके लिये कोई प्रयत्न ही क्यों करेगा ? इससे तो  
फिर प्राप्तः सभी मुक्तिसे विचित रह जायेंगे । अतः इनका  
कहना भी शाखसंगत और युक्तिसंगत नहीं है । सत्य  
तो यह है कि मुक्ति ज्ञानसे होती है और ज्ञान होता है  
साधनके द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर, एवं साधन  
सभी देशमें, सभी कालमें, सभी वर्णश्रममें हो सकते  
हैं । ज्ञान और ज्ञानके साधन किसी देश-काल-आश्रमकी  
कैदमें नहीं हैं ।

भारतवर्ष तो आत्मोद्घारके लिये अन्य देशोंकी अपेक्षा  
वेशेष उत्तम माना गया है । श्रीभगवन्नी कहते हैं—

एतदेशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मतः ।  
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेत्रन् पुरिव्यां सर्वमानवाः ॥  
( मनुस्मृति २ । २० )

‘इसी देश ( भारतवर्ष ) में उत्तम हरे ब्राह्मणोंसे  
गुणिल भूमण्डलके मनुष्य अपने-अपने आचारकी शिक्षा  
हांहन करें ।’

अतः यह कहना कि इस देशमें मुक्ति नहीं होती,  
अनुचित है । इसी प्रकार यह कहना भी अनुचित है  
कि गृहस्थाश्रममें मुक्ति नहीं होती ।

क्योंकि मुक्तिमें मनुष्यमात्रका अधिकार है । भगवान्नने  
बतलाया है—

मां हि पार्थं व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।  
खियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

( गीता ९ । ३२ )

‘हे अर्जुन ! ज्ञी, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—  
चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरे शरण होकर  
परम गतिको ही प्राप्त होते हैं ।’

विष्णुपुराणके छठे अंशके दूसरे अध्यायमें एक कथा  
आती है । एक बार बहुत-से मुनिगण महामुनि  
श्रीवेदव्यासजीके पास एक प्रश्नका उत्तर जाननेके  
लिये आये । उस समय श्रीवेदव्यासजी गङ्गाजीमें  
स्नान कर रहे थे । उन्होंने मुनियोंके मनके  
अभिप्रायको जान लिया और गङ्गामें डुबकी लगाते हुए  
ही वे कहने लगे—‘कलियुग श्रेष्ठ है, शूद्र श्रेष्ठ हैं,  
खियाँ श्रेष्ठ हैं ।’ फिर उन्होंने गङ्गाके बाहर निकलकर  
मुनियोंसे पूछा—‘आपलोग यहाँ कैसे पधारे हैं ?’  
मुनियोंने कहा—

कलिः साधिवति यत्योक्तं शूद्रः साधिवति योषितः ।  
यदाह भगवान् साधु धन्याश्चेति पुनः पुनः ॥

( ६ । २ । १२ )

‘भगवन् ! आपने जो स्नान करते समय पुनः-  
पुनः यह कहा था कि कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही  
श्रेष्ठ है, खियाँ ही श्रेष्ठ और धन्य हैं, सो इसका क्या  
कारण है ?’

इसपर श्रीवेदव्यासजी बोले—

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत् ।  
द्वापरे तद्य यासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ ॥  
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेशं फलं द्विजाः ।  
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिः साधिवति भाषितम् ॥  
ध्यायन्त्वा यजन्यजैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।  
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

( ६ । २ । १५—१७ )

‘हे ब्राह्मणो ! जो परमात्माकी प्राप्तिरूप फल सत्य-  
युगमें दस वर्ष तपस्या, ब्रह्मचर्य और जप आदि करनेपर

भिला है उमेर गनुण शेषमें एक वर्षमें, द्वापरमें एक वार्षमें और कलियुगमें केवल एक दिन-रातमें प्राप्त कर लेता है, इनी व्यारण में कलियुगको श्रेष्ठ कहा है। जो परमात्माका प्राप्ति सत्ययुगमें आनमें, त्रेतामें यज्ञमें और द्वापरमें पूजा वरनमें होता है, वही कलियुगमें श्रीरामायानका नाम-कीर्तन करनमें हो जाती है।

यही अन्य सब कालोंकी अपेक्षा कलियुगकी विशेषता बतलायी गयी है। इसलिये इस कालमें मुक्ति नहीं होती, वह बात शास्त्रमें असंगत है।

श्रीतुलभीदासजीने मां कहा है—

कलियुग सम जुग आन नहि जाँ नर कर विस्तास ।  
गाह राम गुन गन घिमल भव तर खिनां प्रवास ॥

अब शूद्र क्यों श्रेष्ठ हैं, वह बतलाने हैं—

ब्रतचर्यापरैर्प्राणा वंदाः पूर्वं द्विजातिभिः ।  
ततः खद्यर्मसम्प्राप्नैर्यष्टुव्यं विधिवद् धनैः ॥  
द्विजशुश्रूपयैवैष्य पाकयज्ञाधिकारवान् ।  
तिजाञ्जयति वै लोकान्द्वयो धन्यतरस्ततः ॥

( ६।२। १९-२३ )

‘द्विजातियोंको पहले ब्रह्मन्त्रयवतका पालन करते हुए वेदाध्ययन करना चाहिये और फिर स्वर्धमके अनुसार उपार्जित धनके द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करना कर्तव्य है ( इस प्रकार करनेपर वे अत्यन्त क्लेशसे अपने पुण्यलोकोंको प्राप्त करते हैं। ) किंतु जिसे केवल ( मन्त्रहीन ) पाकयज्ञका ही अधिकार है, वह शूद्र तो द्विजाति—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकी सेवा करनेसे अनायास ही अपने पुण्यलोकोंको प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह अन्य जातियोंकी अपेक्षा धन्यतर है।’

अब छियोंको किसलिये श्रेष्ठ कहा, सो बतलाते हैं—

योविच्छुश्रूपणाद् भर्तुः कर्मणा मनसा गिरा ।  
तद्विता शुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः ॥  
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा ।  
तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति योषितः ॥

( ६।२। २८-२९ )

‘अपने वतिके हितमें रुत रहनेवाली छियों तो तन-

मन-चन्द्रनके द्वारा पतिकी सेवा करनेसे ही पतिके समान शुभ लोकोंको अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं जो वे पुरुषोंको अत्यन्त परिश्रमसे मिलते हैं। इसीलिये मैं तीसरी बार यह कहा था कि छियाँ श्रेष्ठ हैं।’

इसी प्रकार वैश्यके लिये भी अपने धर्मके पालनसे मुक्तिका प्राप्त होना शास्त्रमें बतलाया गया है। पद्मपुराण सृष्टिखण्डके ४७ वें अध्यायमें तुलाधार वैश्यके विषयमें भगवान् ने खबर कहा है कि “उसने कभी मन, वाणी या कियाद्वारा किसीका कुछ बिगड़ नहीं किया, वह कभी असत्य नहीं बोला और उसने दुष्टता नहीं की। वह सब लोगोंके हितमें तत्पर रहता है तथा मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुर्वर्णको समान समझता है। लोग जौ, नमक, तेल, धी, अनाजकी ढेरियाँ तथा अन्यान्य संग्रहीत वस्तुएँ उसकी जबानपर ही लेते-देते हैं। वह प्राणान्त उपस्थित होनेपर भी सत्य छोड़कर कभी झूठ नहीं बोलता। अतः वह ‘धर्म-तुलाधार’ कहलाता है। उसने सत्य और समतासे तीनों लोकोंको जीत लिया है, इसीलिये उसपर पितर, देवता तथा मुनि भी संतुष्ट रहते हैं। धर्मात्मा तुलाधार उपर्युक्त गुणोंके कारण ही भूत और भविष्यकी सब बातें जानता है\*। बुद्धिमान् तुलाधार धर्मात्मा है तथा सत्यमें प्रतिष्ठित है। इसीलिये देशान्तरमें होनेवाली बातें भी उसे ज्ञात हो जाती हैं। तुलाधारके समान प्रतिष्ठित व्यक्ति देव लोकमें भी नहीं है।”

वह तुलाधार वैश्य उपर्युक्त प्रकारसे अपने धर्मका पालन करता हुआ अन्तमें अपनी पत्नी और परिकरों सहित विमानमें बैठकर विष्णुधामको चला गया।

इसी प्रकार ‘मूक’ चाण्डाल भी माता-पिताकी सेवा करके उसके प्रभावसे भगवान् के परम धर्ममें चल

\* सत्येन समभावेन जितं तेन जगत्वयम्।

तेनात्मृप्यन्तं पितरो देवा मुनिगणैः सह ॥

नूतभव्यप्रवृत्तं च तेन जनाति आर्मिकः।

( ४७। १३-१४ )

गया । वह माता-पिताकी सेवा किस प्रकारसे किया करता था, इसका पद्मपुराण सृष्टिखण्डके ४७वें अध्यायमें बड़ा सुन्दर वर्णन है । वहाँ बतलाया है कि वह चाण्डाल सब प्रकारसे अपने माता-पिताकी सेवामें लगा रहता था । जाड़ेके दिनोंमें वह अपने माँ-बापको स्नानके लिये गरम जल देता, उनके शरीरमें तेल मलता, तापनेके लिये अँगीठी जलाता, भोजनके पश्चात् पान खिलाता और रुईदार कपड़े पहननेको देता था । प्रतिदिन भोजनके लिये मिठान परोसता और वसन्त ऋतुमें महुएके पुष्टोंकी सुगन्धित माला पहनाता था । इनके सिवा और भी जो भोग-सामग्रियाँ प्राप्त होती, उन्हें देता और भौति-भौतिकी आवश्यकताएँ पूर्ण किया करता था । गरमीकी मौसिममें प्रतिदिन माता-पिताको पंखा छलता था । इस प्रकार नित्यप्रति उनकी परिचर्या करके ही वह भोजन करता था । माता-पिताकी थकावट और कष्टका निवारण करना उसका सदाका नियम था ।

इन पुण्यकर्मोंके कारण उस चाण्डालका घर बिना किसी आधार और खंभेके ही आकाशमें स्थित था । उसके अंदर त्रिभुवनके सामी भगवान् श्रीहरि मनोहर ब्राह्मणका रूप धारण किये नित्य विराजमान रहते थे । वे सत्य-स्वरूप परमात्मा अपने महान् सत्यमय तेजस्वी विग्रहसे उस चाण्डालके घरकी शोभा बढ़ाते थे ।

उसी प्रसङ्गमें एक शुभा नामकी पतिव्रता छोका आख्यान भी आया है । जब तपस्वी नरोत्तम ब्राह्मण मूर्क चाण्डालके कथनानुसार पतिव्रताके घर गया और उसके विषयमें पूछने लगा तो अतिथिकी आवाज सुनकर वह पतिव्रता घरके दरवाजेपर आकर खड़ी हो गयी । उस समय ब्राह्मणने कहा—‘देवि ! तुमने जैसा देखा और समझा है, उसके अनुसार स्वयं ही सोचकर मेरे लिये प्रिय और हितकी बात बतलाओ ।’ शुभा बोली—बहन् ! इस समय मुझे पतिदेवकी सेवा करनी है, भतः अवकाश नहीं है, इसलिये आपका कार्य पीछे नहँगी, इस समय तो आप मेरा आतिथ्य ग्रहण कीजिये ।’ नरोत्तमने कहा—‘मेरे शरीरमें इस समय

भूख, प्यास और थकावट नहीं है, मुझे अभीष्ट बात बतलाओ, नहीं तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगा ।’ तब उस पतिव्रताने भी कहा—‘द्विजश्रेष्ठ ! मैं बगुला नहीं हूँ, आप धर्म-तुलाधारके पास जाइये और उन्हींसे अपने हितकी बात पूछिये ।’ यों कहकर वह पतिव्रता अपने घरके भीतर चली गयी । अपने धर्मपालनमें कितनी दृढ़ निष्ठा है । इस प्रतिव्रत्यके प्रभावसे ही वह देशान्तरमें घटनेवाली घटनाओंको भी जान लेती थी और इस प्रकार पतिसेवा करती हुई अन्तमें वह अपने पतिके सहित भगवान्के परम धाममें चली गयी । ऐसे ही द्वौपदी, अनसूया, सुकला आदि और भी बहुत-सी पतिव्रताएँ ईश्वरकी भक्ति और प्रतिव्रत्यके प्रभावसे परम पदको प्राप्त हो चुकी हैं ।

इसी प्रकार सत् शूद्रोंमें संजय, लोमहर्षण, उग्रश्रवा आदि सूत भी परम गतिको प्राप्त हुए हैं तथा निम्न जातियोंमें गुहा, केवट, शबरी ( भीलनी ) आदि मुक्त हो गये हैं ।

जब रुदी, वैश्य और शूद्रोंकी तथा पापयोनि—चाण्डालादि गृहस्थियोंकी मुक्ति हो जाती है, तो फिर उत्तम वर्ण और उत्तम आश्रमवालोंकी मुक्ति हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य है ?

शास्त्रोंके इन प्रमाणोंसे यह भलीभौति सिद्ध हो जाता है कि सभी देश, सभी काल और सभी जातिमें मनुष्यका कल्याण हो सकता है, इसमें कोई आपत्ति नहीं है ।

इसलिये प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह चाहे किसी भी देशमें हो, किसी भी कालमें हो और किसी भी जाति, वर्ण और आश्रममें हो, उसीमें शाश्वतिके अनुसार अपने कर्तव्यका पालन करता हुआ ज्ञानयोग, कर्मयोग या भक्तियोग—किसी भी अपनी रुचि और अविकारके अनुकूल साधनके द्वारा परमात्माको प्राप्त करनेका पूरा प्रयत्न करे ।

### निराशा नहीं होना चाहिये

पहले हमारे मनमें कई विचार हुए थे, किन्तु अभीतक विचारके अनुसार कोई काम नहीं हुआ । एक तो ऐसा

और सदाचारके सेवनसे तथा द्रोहशून्य बुद्धिसे बुद्धिमान्  
मनुष्य पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण कर सकता है।

दयालुरमदसर्ष  
उपकारी जितेन्द्रियः ।  
एतैश्च पुण्यस्तस्मैश्च चतुर्भिर्धार्थिते मही ॥

(शि० पु०, कोटिर० सं० २४। २६)

दयालु मनुष्य, अभिमानशून्य व्यक्ति, परोपकारी और  
जितेन्द्रिय—ये चार ऐसे पवित्र खण्डे हैं, जो पृथ्वीको  
थामे हुए हैं।

गास्ति विद्यासमं चक्षुनास्ति सत्यसमं तपः ।  
गास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम् ॥

(बृहन्ना० पु० ६०। ४३)

विद्याके समान दूसरा नेत्र नहीं है, सत्यके समान  
तप नहीं है, रागके समान कोई दुःख नहीं है और  
इस समान कोई सुख नहीं है।

धर्मः कामदुधा धेनुः संतोषो नन्दनं वभम् ।  
विद्या मोक्षकरी ग्रोक्ता तृष्णा वैतरणी नदी ॥

(बृहन्ना० पु० २७। ७२, चाणक्यनीति ८। १३)

धर्म ही कामधेनुके समान सारी अभिलाषाओंको पूर्ण  
गाला है, संतोष ही स्वर्गका नन्दन-कानन है, विद्या  
) ही मोक्षकी जननी है और तृष्णा वैतरणी नदीके  
नरकमें ले जानेवाली है।

मद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः ।  
ह्यचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृतिः ।  
मनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद् दुरासदम् ॥

(चाशुपु० ५७। ११७)

केसी भी प्राणीके साथ द्रोह न करना, लोभसे दूर  
इन्द्रियोंको वशमें रखना, प्रणिमात्रके प्रति दयाका  
रखना, स्वधर्मपालनके लिये कष्ट सहना, व्रतचर्यका  
करना, सच बोलना, दुर्गियोंमें भक्तानुभूति ग्रहना,  
धीको क्षमा कर देना और कष्ट पड़नेपर धैर्य धारण  
—मनातनधर्मकी जड़ यही है, जो अन्यत्र दूर्जन्म है।

मन्युतानन्तर्गोविन्दनमोच्चारणभैरवजात् ।  
श्याम्नि मकला रोगा: मन्ये मन्ये वदायहम् ॥

अच्युत, अनन्त एवं गोविन्द—इन नामोंका उच्छव  
ही एक ऐसी दवा है, जिससे सम्पूर्ण रोग भट्ट हो जाते  
हैं। मैं दावेके साथ यह कह रहा हूँ।

यत् क्रोधनो यजति यच्च ददाति नित्यं

यद् वा तपस्तपति यच्च जुहोति तस्य ।

प्राप्नोति नैव किमपीह फलं हि लोके

मोघं फलं भवति तस्य हि कोपनस्य ॥

(वामनपु० ४३। ११)

क्रोधी मनुष्य जो कुछ भी यजन-पूजन करता है,  
जो कुछ नित्यप्रति दान करता है, जो कुछ तपकर्ता है  
और जो कुछ भी हवन करता है, उसका इस लोकमें  
उसे कोई फल नहीं मिलता, उस क्रोधीका भवा इस  
किया-कराया व्यर्थ होता है।

वरं प्राणास्त्याज्या न वत् परहिसा त्वर्भिमता

वरं मौनं कार्यं न च बचनमुक्ते यद्यन्तम् ।

वरं बलीवैर्भव्यं न च परकलत्राभिगमनं

वरं भिक्षार्थित्वं न च परथनानां ति गरणम् ॥

ही चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि मेरे हृदयमें कभी केसी कामनाका बीज अङ्गुरित ही न हो ।'

यह है निष्कामभाव ! निष्कामका स्तर सबसे ऊँचा है । फिर भी हम भगवान्से अपनी आत्माके कल्याणके लिये, परमात्माके दर्शनके लिये, भगवान्में प्रेम होनेके लिये सुति-प्रार्थना करें, तो वह कामना शुद्ध होनेके कारण निष्काम ही है ।

### उच्च निष्कामभावका स्वरूप

अपने परम कल्याणकी, भगवान्में प्रेम होनेकी और भगवान्के दर्शनोंकी जो कामना है, यह शुभ और शुद्ध कामना है । इसलिये उसमें कोई दोष नहीं है । फिर भी अपने कर्तव्यका पालन करना और कुछ भी नहीं माँगना—यह और भी उच्चकोटिका भाव है । और देनेपर मुक्तिको भी स्वीकार न करना, यह उससे भी बढ़कर बात है । श्रीभगवान् और महात्माओंके पास तो माँगनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती; क्योंकि जैसे कोई सेवक नौकरी करता है और उसकी सेवाको स्वीकार करनेवाले स्वामी यदि उच्चकोटिके होते हैं तो वे स्वयं ही उसका ध्यान रखते हैं । वे न भी ध्यान रखें तो भी उस सेवककी कोई हानि नहीं होती । यदि उसमें सच्चा निष्कामभाव हो तो परमात्माकी प्राप्ति भी हो सकती है, किंतु ऐसा उच्चकोटिका भाव ईश्वरकी कृपासे ही होता है । इस समय ऐसे स्वामी बहुत ही कम हैं और ऐसे सेवक भी देखनेमें बहुत कम आते हैं । परंतु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि संसारमें ऐसे कोई हैं ही नहीं । अवश्य ही संसारमें सच्चे महात्मा बहुत ही कम हैं । करोड़ोंमें कोई एक ही होते हैं । भगवान्से भी गीतामें कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कथित्यदत्तति सिद्धये ।

यततामपि सिद्धानां कथित्यमां वेत्ति तत्त्वतः ॥ (७।३)

‘हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थ-रूपसे जानता है ।’

हमारा यह कहना नहीं है कि संसारमें महात्मा ही नहीं और हम यह भी नहीं कह सकते कि संसार कोई श्रद्धालु सच्चा सेवक ( पात्र ) भी नहीं हैं संसारमें ऐसे पात्र भी मिलते हैं और महात्मा भी, जिन्हें मिलते हैं बहुत कम । उस कमकी श्रेणीमें ही हे लोगोंको भाग लेना चाहिये अर्थात् उस प्रकारके वर्कोंको चाहिये करनी चाहिये ।

हमलोगोंको तो यह भाव रखना चाहिये कि केहमारे आत्माका ही नहीं, सबका कल्याण हो । अआत्माके कल्याणके लिये तो सब जिज्ञासु प्रयत्न वही हैं । इसकी अपेक्षा यह भाव बहुत उच्चकोटिका कि ‘सभी हमारे भाई हैं, अतः सभीके साथ हम कल्याण होना चाहिये ।’ इससे भी उच्चकोटिका : यह है कि सबका कल्याण होकर उसके बाद हम कल्याण हो । इसमें भी मुक्तिकी कामना है, जिन्हें कामना होनेपर भी निष्कामके तुल्य है । और अकल्याणके विषयमें कुछ भी कामना न करके अकर्तव्यका पालन करता रहे तथा अपना केवल उद्देश्य रखते कि ‘सबका उद्धार हो’, तो यह और विशेष उच्चकोटिका भाव है । लक्ष्य तो अपना सउच्चकोटिका ही होना चाहिये । कार्यमें परिणत न भी तो भी सिद्धान्त तो उच्चकोटिका ही रखना उचित है हमको इस बातका ज्ञान भी हो जाय कि पहंच कोटिकी चीज है तो किसी समय वह कार्यमें भी परिणत हो सकती है । ज्ञान ही न हो तो कार्यमें कैसे आनंद

भगवान्स्की भक्ति तो बहुत ही उत्तम वस्तु है जो मनुष्य भगवान्स्की भक्ति नहीं करता है, उससे वह श्रेष्ठ है कि जो धन, ऐश्वर्य, पुत्र, खालीकी कामन लिये भक्ति करता है । उस सकामी भक्तसे भी श्रेष्ठ है जो खी, पुत्र, धनके लिये तो नहीं कर किंतु घोर आपत्ति आ जानेपर उस संकट-निवारण लिये आर्तनाद करता है । उस आर्त भक्तसे भी श्रेष्ठ है, जो केवल अपनी मुक्तिके लिये, परमात्मा ज्ञानके लिये, उनमें प्रेम होनेके लिये या उनके दर्शन

लिये उनमे प्रार्थना करता है। ऐसा जिज्ञासु उपर्युक्त सबसे थ्रेषु है। उम्मे भी वह थ्रेषु है जो अपने आत्माके कल्याणके लिये भी भगवान्‌मे प्रार्थना नहीं करता; परंतु अपने कर्तव्यका निष्कामभावसे पालन ही करता रहता है अर्थात् निष्कामभावसे ईश्वरकी अनन्य भक्ति करता ही रहता है। उसको यह विश्वास है कि 'परमात्माकी प्राप्ति निश्चय अपने-आप ही होगी; इसमें कोई शक्तिकी बात नहीं है। भगवान् सर्वज्ञ है, वे सब जानते हैं। उनके पास प्रार्थना करनेकी आवश्यकता नहीं रहती, मुझको अपने कर्तव्यका पालन करते ही रहता चाहिये।' ऐसा निष्कामी उपर्युक्त सबसे थ्रेषु है। इसमें भी थ्रेषु वह पुरुष है जो अपना कल्याण हो, इसके लिये प्रयत्न करता रहता है, किंतु यह भाव भी नहीं रखता कि 'मैं नहीं भी माँगूँग तो भी भगवान् मेरा कल्याण अवश्य करेंगे। भगवान् तो सर्वज्ञ है, वे स्वयं सब जानते ही हैं।' पर इस भावमें भी सूक्ष्म कामना है। किंतु जो इस बातकी ओर भी ध्यान न देकर केवल अपने कर्तव्यका ही पालन करता रहता है; बल्कि यह समझता है कि 'निष्कामभावसे कर्तव्यका पालन करना—भगवान्‌की निष्कामभावसे सेवा करना—यह मुक्तिसे भी श्रेष्ठ है। अतः मैं सदा भगवान्‌की निष्कामभावसे ही सेवा करूँ, मेरा उत्तरोत्तर केवल भगवान्‌में ही प्रेम बढ़ा रहे—' उसका यह लक्ष्य और भाव बड़ा ही उच्च कोटिका है; क्योंकि वह समझता है कि प्रेम सबसे बढ़कर वस्तु है। परमात्माकी प्राप्तिसे भी परमात्मामें जो अनन्य और विशुद्ध प्रेम है, वह बहुत ही मूल्यवान् वस्तु है। इसपर भी भगवान् प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं, जैसे प्रह्लादको दर्शन दिये। दर्शन देकर भगवान् आग्रह करें कि मेरे संतोषके लिये जो तेरे जँचे वही माँग ले तो भी हमको प्रह्लादकी भाँति कुछ भी नहीं माँगना चाहिये। यह बहुत उच्च कोटिका निष्कामभाव है।

जैसे भगवान्‌की कृपा होनेपर भगवान्‌का दर्शन करनेसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है, इसी प्रकार उपर्युक्त निष्कामी भक्तकी कृपासे भी दूसरोंका कल्याण हो जाय तो कोई आश्र्वयकी बात नहीं। ऐसे पुरुषके हृदयमें यदि यह दयाका भाव हो जाय कि 'इन लोगोंका कल्याण होना चाहिये; क्योंकि ये पात्र हैं' तो इस भावसे भी लोगोंका कल्याण हो सकता है।

जब भगवान् यह समझते हैं कि इसके हृदयमें कभी यह बात अपने लिये नहीं आयी और इन लोगोंके लिये यह बात आती है कि इन लोगोंका कल्याण होना चाहिये तो भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं। भगवान् समझते हैं कि यह इसकी माँग तो नहीं है पर इसका भाव तो है न; इसके भावकी भी यदि मैं सिद्धि करूँ तो वह मेरे लिये गैरवकी बात है; क्योंकि जिसने अपने लिये कभी किसी पदार्थकी कामना की ही नहीं और न अभी करता है और उसके हृदयमें यह भाव है कि इन सबका कल्याण होना चाहिये तो ऐसी परिस्थितिमें भगवान् उनका कल्याण अवश्य ही करते हैं।

परंतु उस निष्कामी भक्तके हृदयमें यह बात आती है तो वह समझता है कि 'मैं भगवान्‌के तत्त्व, रहस्य और प्रभावको नहीं जानता, नहीं तो, यह बात भी मेरे हृदयमें क्यों आती?' क्योंकि भगवान् जो कुछ कर रहे हैं वह ठीक ही कर रहे हैं, वहाँ तो कोई अंधेर है ही नहीं। क्या भगवान् मुझसे कम दयालु हैं? मैं क्या भगवान्‌से अधिक दयालु हूँ? क्या मैं ही संसारके जीवोंका कल्याण चाहता हूँ, भगवान् नहीं चाहते। मेरे लिये ऐसा भाव होना या लक्ष्य रखना कि ये पात्र हैं, इनका कल्याण होना चाहिये, अनुचित है। उनकी पात्रताको क्या भगवान् नहीं देखते हैं? मैं ही पात्रकी पहचान करता हूँ, क्या भगवान्‌में इस बातकी कमी है? मुझको तो यह देखते रहना चाहिये कि भगवान्‌की लीला हो-

ही है, मेरे मनमें यह बात भी क्यों आये कि इनका तो कल्याण होना चाहिये और इनका नहीं; क्योंकि उसके सभी प्राणी मुक्तिके पात्र हैं और मनुष्यमात्र नहीं ही; फिर अपात्र कौन है? अपात्र होते तो भगवान् उन्हें मनुष्य क्यों बनाते? और भगवान्की दयाके तो सभी पात्र हैं; क्योंकि सभी भगवान्की दया चाहते हैं और भगवान्की दयासे सभीका उद्धार हो सकता है। अवश्य ही भगवान्की दयाके विषयमें यह मान्यता होनी चाहिये कि भगवान्की मुझपर अपर दया है तथा उनकी दयाके प्रभावसे समस्त संसारका उद्धार हो सकता है। इस प्रकार सब लोग इस यथार्थ बातको तत्त्वसे समझ लें तो सबका कल्याण होना कोई भी बड़ी बात नहीं है। कल्याण न होनेमें कारण—भगवान्की दयाके प्रभावकी कमी नहीं है, उसको समझने-माननेकी और श्रद्धाकी कमी है।

हमारे घरमें पारस पड़ा हुआ है, किंतु हम पारस-को और उसके प्रभावको न जाननेके कारण उसके लाभसे बच्चित हैं और दो-चार पैसोंके लिये दर-दर भटक रहे हैं तो यह पारसका दोष नहीं है। पारसको और उसके प्रभावको हम जानते नहीं हैं, उसीका यह दण्ड है। पारस तो जड़ है और भगवान् चेतन हैं, इसलिये भगवान् पारससे बढ़कर हैं। पारससे तो महात्मा भी बढ़कर हैं, फिर भगवान्की तो बात ही क्या? जो भगवान्की दयाके प्रभाव और तत्त्व-रहस्यको जानता है, वह तो सब्य ही कल्याणखूप ही है। ऐसे पुरुषों-के अपने कल्याणकी तो बात ही क्या है, उनकी दयासे दूसरोंका भी कल्याण हो सकता है। इसलिये हम-लोगोंको भगवान्की दयाके प्रभाव और तत्त्व-रहस्यको समझना चाहिये। फिर हमलोगोंके कल्याणमें कोई सुदेह नहीं है। भगवान्की कृपाके प्रभावसे हमलोग भी इस प्रकारके उच्च कोटिके भक्त बन सकते हैं।

कर्तव्यपालनकी आवश्यकता

इसलिये हमको तो उपचाप अपने कर्तव्यका

पालन करते रहना चाहिये। कर्तव्य ही साधन है और साधनको साध्यसे भी बढ़कर समझना चाहिये। यहाँ परमात्मा ही साध्य हैं और निष्काम प्रेमभावसे भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये भगवान्की अनन्य विशुद्ध भक्ति करना ही साधन है। इसलिये हमारी भक्ति अनन्य होनी चाहिये। उसीका नाम अनन्य प्रेम, उसीका नाम अनन्य भक्ति और उसीका नाम अनन्य शरण है। परंतु वह होनी चाहिये विशुद्ध। जिसमें किंचिन्मात्र भी कामना न हो, उसको विशुद्ध कहते हैं। मुक्तिकी कामना भी शुद्ध कामना है और विशुद्ध भावमें तो शुद्ध कामना भी नहीं रहती। अतः हमारा भाव और प्रेम विशुद्ध होना चाहिये। उसके लिये अपने कर्तव्यका पालन करते रहना चाहिये। कर्तव्य ही साधन है; इसलिये साधनको साध्य परमात्माकी प्राप्तिसे भी बढ़कर समझना चाहिये। जब यह भाव रहता है, तब परमात्माकी प्राप्तिकी भी कामना हृदयमें नहीं रहती। ऐसे पुरुषके लिये भगवान् उत्सुक रहते हैं कि मैं इसकी इच्छाकी पूर्ति करूँ, किंतु उसमें इच्छा होती ही नहीं। ऐसे भक्तके प्रेममें भगवान् बिक जाते हैं और उसके प्रति भगवान् अपनेको कृप्ती समझते हैं। जो सकामभावसे भगवान्की भक्ति करता है, भगवान् तो उसके भी अपने-आपको कृप्ती मान लेते हैं; फिर ऐसे निष्कामी प्रेमी महापुरुषके अपने-आपको भगवान् कृप्ती मानें, इसमें तो कहना ही क्या है। और वास्तवमें न्याययुक्त विचार करके देखा जाय तो यह बात सिद्ध हो जाती है कि जब एक निष्कामी भक्त साधनको साध्यसे भी बढ़कर समझता है तो भगवान् यह समझते हैं कि इसका भाव बहुत उच्च-कोटिका है, जिसके मूल्यमें मैं बिक जाता हूँ।

यह समझकर हमलोगोंको भगवान्की अनन्य और विशुद्ध भक्तिखूप साधन श्रद्धाप्रेमपूर्वक तत्परताके साथ करना चाहिये।

## महात्माका हृदय

### महर्षि वशिष्ठकी क्षमा

‘पुरो भगविं होना है—होना ही है !’ विश्वामित्रजीका आगाह इतना प्रबल था कि सुषिकर्ता ब्रह्माजी भी असमंजसमें पढ़ गये थे। जियमें दृढ़ निश्चय है, प्रबल उद्योग है, अग्निवार्य उत्साह है—अलग्य उसके लिये कुछ रह कैसे सकता है।

समस्या फिर भी सरल नहीं थी। ब्रह्माजी भी किसीको ब्रह्मर्पि धोपित कर नहीं सकते थे—करना नहीं चाहते थे, यही टीक जान पड़ता है। उन्होंने भी यही निर्णय दिया—‘महर्षि वशिष्ठ यदि ब्रह्मर्पि मान लें तो विश्वामित्र ब्रह्मर्पि हुए !’

विश्वामित्र थे जन्मसे क्षत्रिय—परम प्रतापी नरेवा। छुकना उन्होंने सीखा नहीं था। जिस वशिष्ठकी प्रतिद्वन्द्वितमें क्षत्रियत्वसे उटकर ब्रह्मण दोनेका निश्चय करना पड़ा उन्हें, उसी वशिष्ठके सामने वे शुक्र ! यह बात तो मनमें ही नहीं आयी उभके। उन्होंने तो प्रयत्नसे—गौरवसे प्राप्त करना सीखा था।

कठोर तप—असाध्यको साध्य करनेका एक ही मार्ग शास्त्रोंपर श्रद्धा करनेवाला जानता है। महातापस विश्वामित्रका तप—त्रिलोकीके अधीक्षरोंने भी ऐसा तपस्वी मानव कदाचित् ही देखा हो। अनेक विज्ञ आये, अनेक बार तप भंग हुआ—अथक या वह उद्योगी।

तपस्या भी असमर्थ रही। तपस्यासे भगवान् शिवतक प्रसन्न हुए और अकल्पनीय दिव्याङ्ग मिले; किंतु वशिष्ठके ब्रह्मतेजने उन्हें श्रितिहत कर दिया। तपस्याने नवीन सृष्टि करनेतककी सामर्थ्य दे दी। भले ब्रह्माजीकी आज्ञाका सम्मान करके सृष्टि-कार्य आरम्भमें ही रोक दिया गया हो। सब हुआ; किंतु वशिष्ठने ‘राजपिं’ कहना नहीं छोड़ा।

विश्वामित्रमें क्रोध जाग उठा। उन्होंने वशिष्ठजीके सभी पुत्रोंको राक्षसके द्वारा मरवा दिया। वशिष्ठ सब कुछ जानकर भी शान्त रहे। मैं वशिष्ठको ही

समात कर दूँगा !’ प्रतिहिंसा सीमापर पहुँच

समुख आक्रमण करके विश्वामित्र बार-बार मुँह चुके थे। अख-शस्त्र लेकर रात्रिके समय छिपकर वह आश्रममें जाना था उन्हें। रात्रिके समय वे पहुँ दृत्याका घोर संकल्प लेकर !

X X X

पूर्णिमाकी रात्रि, निर्मल गंगन, शुभ्र ज्योत्स्नाका। कुसुमित कानन। प्रकृति शान्त हो रही थी। महर्षि अपनी पत्नी अरुन्धतीजीके साथ कुटियासे बाहर एक पर विराजमान थे।

‘कितनी स्वच्छ, कितनी निर्मल ज्योत्स्ना अरुन्धतीने कहा।

‘यह चन्द्रिका दिशाओंको उसी प्रकार उज्ज्वल कर रहे हैं, जैसे आजकल विश्वामित्रकी तपस्याका तेज !’ बड़ी शान्त मधुर वाणी थी महर्षि वशिष्ठकी।

‘विश्वामित्रकी तपस्याका तेज !’ बृक्षोंके छुरमुरमें छिग एक मनुष्य चौंक गया। एकान्तमें अपनी पत्नीसे अपने शत्रुकी महिमाको इस सचाईसे प्रकट करनेवाले ये महापुरुष ! और इनकी दृत्याका संकल्प लेकर रात्रिमें चोरकी भाँति छिपकर आनेवाला मैं पुश्पाधम .. !’

महात्माके हृदयका परिचय मिलते ही प्रतिहिंसापूर्ण हृदय बदल गया। नोच फेंके अख-शस्त्र उस पुरुषने शरीर-परसे और दौड़कर वेदीके समुख भूमिपर गिर पड़ा—‘मुझ अधमको क्षमा करें !’

स्वरं पहिचाना हुआ था, भले आकृति न दीख पड़ी हो। श्रीअरुन्धतीजी चकित हो गयीं। महर्षि वशिष्ठ वेदीपे कूदे और चरणोंमें पड़े व्यक्तिको उठानेके लिये छुकते हुए उन्होंने स्नेहपूर्ण कण्ठसे पुकारा—‘ब्रह्मर्पि विश्वामित्र !’

शस्त्र त्यागकर, नम्रता और क्षमाको अपनाकर अज विश्वामित्र ‘ब्रह्मर्पि’ हो गये थे।



## अन्त मति सो गति

यं वायि स्वरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।  
तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥  
(गीता ८।६)

मृत्युके समय मनुष्य सबसे अन्तमें जो विचार करता है, वह चिन्तन करता है, उसका अगला जन्म उसी प्रकारका है।

भगवान् ऋषभदेवके पुत्र, सप्तद्वीपवती पृथिवीके एकच्छन्न भरत—वही भरत जिनके नामपर हमारे इस देशका नतम नाम अजनाभवर्ष बदल गया और सब इसे तवर्ष कहने लगे—वे धर्मात्मा समाट् वानप्रस्थका समय पर राज्य, कुदुम्ब, यहका त्याग करके बनमें चले गये। महाराज भरतके वैराग्यमें कोई कमी नहीं थी। राज्य समय उन्हें किसी वारतका अभाव भी नहीं रहा था। हित समस्त भूमण्डलके वे समाट् थे। उनको परम वता पत्नी मिली थीं और किसी भी राजपर्वकुलका गौरव सकें, ऐसे पाँच पुत्र थे। महाराज भरतने उद्देश्ये, विवेकपूर्वक भगवद्भजनके लिये यहका त्याग किया। हाश्ममें पहुँचकर वे निष्ठापूर्वक भजनमें लग गये।

संयोगकी बात थी—राजपर्व भरत एक दिन नदीमें निकलके संध्या कर रहे थे। उसी समय एक गर्भवती जी वहाँ जल पीने आयी। मृणी पानी पी ही रही थी कि में कहीं पास सिंहकी भयंकर गर्जना हुई। भयके मारे पी पानी पीना छोड़कर छल्लंग मार भागी। मृणीका प्रसव-ल समीप आ चुका था, भयकी अधिकता और पूरे वेगसे छलनेके कारण उसके पेटका मृगशावक बाहर निकल पड़ा और नदीके प्रवाहमें बहने लगा। हरिनी तो इस आघातसे हीं दूर जाकर मर गयी। सद्यःप्रसूत मृगशावक भी मरणात्मा था। राजपर्व भरतको दया आ गयी। वे उसे प्रवाहमें डाकर आश्रम ले आये।

किसी मरणासन्न प्राणीपर दया करके उसकी रक्षा करना गप नहीं है—यह तो पुण्य ही है। राजपर्व भरतने पुण्य ही केया था। वे वडे स्नेहसे उस मृगशावकका लालन-पालन करने लगे। इसमें भी कोई दोष नहीं था। लेकिन इसीमें, एक दोष, पता नहीं कब चुप्तचाप प्रविष्ट हो गया। उस मृगशावकसे उन्हें मोह हो गया। उसमें उनकी आसक्ति

हो गयी, वे चक्रवर्तीं समाट् अपने राज्य, स्त्री तथा सभे पुत्रोंके मोहका सर्वथा त्याग करके बनमें आये थे, उन्हें एक हरिणीके बच्चेसे मोह हो गया।

मृग-शावक जब हृष्ट-पुष्ट-समर्थ हो गया, उसके पालनका कर्तव्य पूरा हो चुका था। उसे बनमें स्वतन्त्र कर देना था, लेकिन मृगशावकका मोह—वह मृग भी राजपर्व भरतको उसी प्रकार स्नेह करने लगा था, जैसे परिवारके स्वजन करते हैं।

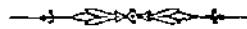
मृत्यु तो सबको अपना ग्राम बनाती ही है। राजपर्व भरतका भी अन्तिम समय पास आया। मृग-शावक उनके पास ही उदास वैठा था। उसीकी ओर देखते हुए, उसीकी चिन्ता करते हुए भरतका शरीर छूटा। फल यह हुआ कि दूसरे जन्ममें उन्हें मृग होना पड़ा।

भगवद्भजन व्यर्थ नहीं जाता। भरतको मृग-शरीरमें भी पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही। वहाँ भी उनमें वैराग्य एवं भक्तिका भाव उदय हुआ। मृग-देह छूटनेपर वे ब्राह्मण-कुमार हुए। पूर्वजन्मकी स्मृतिके कारण वे अब पूर्ण सावधान हो गये थे। कहीं मोह न हो जाय—इस भयसे अपनेको पागलके समान रखते थे। उनका नाम ही 'जड़ भरत' पड़ गया। वे महान् ज्ञानी हैं, यह तो तत्र पता लगा, जब राजा रहगणपर कृपा करके उन्होंने उपदेश किया।

इस पूरी कथामें देलनेकी बात यह है कि राजपर्व भरत-जैसे त्यागी, विस्तर, भगवद्भक्तको भी मृगशावकके मोहसे मृग होना पड़ा। अन्तमें मृगका स्मरण उन्हें मृग-योनिमें ले ही गया। दया करो, प्रेम करो, हित करो; पर कहीं आसक्ति मत करो, किसीमें मोह मत करो, कहीं भमताके बन्धनमें अपनेको मत बाँधो।

अन्त समय भगवान्का स्मरण कर लेंगे। 'यह कर लेंगे' अपने वशकी बात नहीं है। अन्त समय मनुष्य सावधान नहीं रहता। वह प्रायः इस अवस्थामें नहीं होता कि कुछ विचारपूर्वक सोचे। जीवनमें जिससे उसकी आसक्ति रही है, उसके मनका सर्वाधिक आकर्षण जहाँ है, अन्त समयमें वही उसे स्मरण होगा।

जीवनमें ही मन भगवान्में लग जाय। मनके आकर्षणके केन्द्र भगवान् बन जायें—अन्तमें तभी वे परम प्रभु स्मरण आयेंगे।





## देवर्षि नारदजी

मन, तन, वचनका व्रत

अदिला सन्यमस्तेयं प्राप्तवर्यमकल्कता।  
पृथानि मानसान्याहुर्वतानि हरितुष्टे॥  
एकमुक्तं तथा नन्दमुपवासमयाचितम्।

पृथये कायिकं पुंसां व्रतमुक्तं नरेश्वर॥  
वैद्यस्याग्रयमें धिणोः कीर्तनं सत्यभाषणम्।  
अर्पेशुन्नमिदं राजन् वाचिकं व्रतमुच्यते॥  
चक्रायुधस्य नामानि सदा सर्वत्र कीर्तयेत्।  
नार्दीचं कीर्तने तस्य सदाशुद्दिविधायिनः॥  
वर्णान्नमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।  
विष्णुराराध्यते पन्थाः सोऽयं तत्त्वोपकारणम्॥

( पत्र० पाता० ८४। ४२-४६ )

अहिंसा, सत्य, अस्तेय ( चोरी न करना ), व्रहन्यर्यपालन तथा निष्कर्षभावसे रहना—ये भगवान्‌की प्रमाणताके लिये मानसिक व्रत कहे गये हैं । नरेश्वर ! दिनमें एक बार भोजन करना, रात्रिमें उपवास करना और यिना माँगे जो अपने-आप प्राप्त हो जाय, उसी अन्नका उपयोग करना—यह पुरुषोंके लिये कायिक व्रत बताया गया है । राजन् ! वेदोंका स्वाध्याय, श्रीविष्णुके नाम एवं लीलाओंका कीर्तन तथा सत्य-भाषण करना एवं तुराली न करना—यह वाणीसे सम्बन्ध होनेवाला व्रत कहा गया है । चक्रधारी भगवान् विष्णुके नामोंका सदा और सर्वत्र कीर्तन करना चाहिये । वे नित्य शुद्धि करनेवाले हैं, अतः उनके कीर्तनमें कभी अपविन्नता आती ही नहीं । वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी आचारोंका विधिवत् पालन करनेवाले पुरुषके द्वारा परम पुरुष श्रीविष्णुकी सम्यक् आराधना होती है । यह मार्ग भगवान्‌को संतुष्ट करनेवाला है ।

**पूजाके आठ पुष्प**

अहिंसा प्रथमं पुष्पं द्वितीयं करणग्रहः।  
तृतीयकं भूतदया चतुर्थं क्षान्तिरेव च॥  
शमस्तु पञ्चमं पुष्पं च्यानं चैव तु सप्तमम्।  
सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेत्स्तुष्यति केशवः॥  
एतैरेवाष्टभिः पुष्पैस्तुष्यते वाचितो हरिः।  
पुष्पान्तरणि सप्तयेव वाद्यानि नृपसत्तम्॥

( पत्र० पाता० ८४। ५६-५८ )

अहिंसा पहला, इन्द्रिय-संयम दूसरा, जीवोंपर न करना तीसरा, क्षमा चौथा, शम पाँचवाँ, दस छठा, ८ सातवाँ और सत्य आठवाँ पुष्प हैं । इन पुष्पोंके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण संतुष्ट होते होते हैं । नृपत्रेषु ! अन्य पुष्प वे पूजाके बाहा अज्ञ हैं, भगवान् उपर्युक्त आठ पुष्पोंही पूजित होनेपर प्रसन्न होते होते हैं ( क्योंकि वे भक्तिके प्रेमी हैं ) ।

**धर्मके तीस लक्षण**

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षा शमः ।  
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय अर्जव्रतः ॥  
संतोषः समर्पक सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ।  
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥  
अन्नादादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।  
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां चृष्टु पाण्डवः ॥  
श्रवणं कीर्तनं चास्य सरणं महतां गतेः ।  
सेवेज्यावत्तिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥  
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहतः ।  
त्रिशल्लक्षणवाच् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥

( श्रीमद्भा० ७। ११। ८-१२ )

युधिष्ठिर ! धर्मके ये तीस लक्षण शास्त्रोंमें कहे गये हैं— सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित-अनुचितका विचार, भनका संयम, इन्द्रियोंका संयम, अहिंसा ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, संतोष, समर्पणता, महात्माओंकी सेवा, धीरे-धीरे सांसारिक भोगोंकी चेष्टाए निवृत्ति, मनुष्यके अभिमानपूर्ण प्रयत्नोंका फल उल्ला ही होता है—ऐसा विचार, मौन, आत्मचिन्तन, प्राणियोंके लिये अन्न आदिका यथायोग्य विभाजन, उनमें और विशेष करके मनुष्योंमें अपने आत्मा तथा इष्टदेवका भाव, संतोंके प्रस आश्रय भगवान् श्रीकृष्णके नाम-गुण-लीला आदिका श्रवण कीर्तन, सरण, उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार, उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्मसमर्पण—यह तीस प्रकारका आचरण सभी मनुष्योंका परम धर्म है । इसके पालने सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते होते हैं ।

**मनुष्यका हक वितनेपर ?**

यावद् भियेत जड़ं तावद् स्वत्वं हि देहिनाम् ।  
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

होती है। तथापि एतदर्थ स्वाध्यायाभ्यास भी आवश्यक है। यह योगवासिष्ठ ३। २०, महाभारतादिमें प्रतिपादित है।

भगवान् व्यास तो विष्णुधर्ममें स्वाध्यायसे ही सर्वसिद्धि-शापिकी बात कहकर तद्विरोधी सभी अर्थोंतकको त्याज्य कहते हैं—

स्वाध्यायेन हि संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः ।

कुर्यादन्यन्त्र वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्चते ॥

तथा—

सर्वान् परिहरेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः ॥

अर्थात् स्वाध्यायके विरोधी सभी अर्थ-विचार त्याज्य हैं।

गीतामें इसे वाङ्मय तप कहा गया है—

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।

शिक्षा और पाण्डित्य—स्वाध्यायादि साधनोंसे पूर्ण शिक्षित व्यक्तिको कोशोंमें निपुण, प्रबोध, विज्ञ, भिज्ञ, सुधी, पण्डित आदि कहा गया है। परं यह पाण्डित्य बुद्धियोग एवं संशय-नाशक गुरुशास्त्र-वचनोंके सहारे ही होता है 'अनेकसंशयोऽतेवि परोक्षार्थस्य दर्शकम् । सर्वस्य लोचनं शास्त्रम्'। शास्त्रोंमें शिक्षा और स्वाध्यायका फल पाण्डित्य, भगवत्याप्ति कहा गया है—योग० व्यासभाष्य १। ८२, २। ५१ तथा महाभारत, विदुर-प्रजागर ३३। ५। ३० में पण्डितका लक्षण निर्दिष्ट है। गीता ५। १९ आदिमें सच्चे पण्डितको भगवत्याप्त या भगवत्याप्तको सच्चा पण्डित कहा गया है। शुक्रनीति तथा विष्णुधर्मदिमें भगवान् व्यासद्वारा प्रशस्त धर्मगुणसेवी, निन्द्य राग-दोषके परित्यागी, श्रद्धालु, आस्तिक व्यक्तिको पण्डित कहा गया है। विदुरजी भी यही कहते हैं—

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।

अनास्तिकः अद्धान एतत् पण्डितलक्षणम् ॥

मनोदि। गान सुनकर निन्दा करते हैं, के गंगे द्वारके पाव होते हैं।

### कुल, जननी और जन्मभूमिकी महिमा कौन बड़ाता है ?

यमादितो मातृपरो प्रथादी  
शुद्धिमस्तुपैकामनरगिरिनिन्द्रियः ॥  
यमाद्युगाद् पोगमिर्म मातृमना  
विमुषितान्तोति ततश्च योगतः ॥  
कुलं पवित्रं जननी कृतार्थी  
वसुन्धरा भाग्यवत्ता च तेन ।  
विमुषिमार्म सुम्विन्द्युमग्नं  
लग्नं परे वदाणि यस्य धेतः ॥  
( स्क० वै० पु० १३१-१४० )

जो एकात्मनित्त, वर्णाचिन्तनपरग्रथम्, प्रमादयन्त्य, पावत्र, एकान्तप्रेमी और जितेन्द्रिय है, वह गहामना योगी इस योगमें सिद्धि प्राप्त करता है और उस योगके प्रभावमें मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जिसका चित्त मोक्षमार्ममें आकर परत्रात् परमात्मामें संलग्न हो सुन्धके अपार मिन्दुमें निमग्न हो गया है, उसका कुल पवित्र हो गया, उसकी माता कृतार्थ हो गयी तथा उसे प्राप्त करके यह भारी पृथ्वी भी गौमात्रवती हो गयी।

### वैष्णव कौन है ?

प्रशान्तचित्ताः सर्वेषां सौभ्याः कामजितेन्द्रियाः ॥  
कर्मणा मनसा वाचा परद्रोहमनिच्छ्यः ।  
दयार्दमनसो नित्यं स्तेयहिंसापराद्भुखाः ॥  
गुणेषु परकार्येषु पक्षपातमुदान्विताः ।  
सदाचारावदाताश्च परोत्सवनिजोत्सवाः ॥  
पश्यन्तः सर्वभूतस्थं वासुदेवमस्त्वराः ।  
दीनानुकम्पिनो नित्यं भृं परहितैषिणः ॥  
राजोपचारपूजायां लालनाः स्वकुमारवत् ।  
कृष्णसर्पादिव भवं वाल्ये परिचरन्ति ये ॥  
विषयेष्विवेकानां या प्रीतिरूपजायते ।  
वितन्वते हि तां प्रीतिं शतकीदिगुणां हरौ ॥  
नित्यकर्तव्यताबुद्ध्या यज्ञन्तः शङ्करादिकान् ।  
विष्णुस्वरूपान् ध्यायन्ति भक्ताः पितृगणेष्वपि ॥  
विष्णोरस्त्वन्न पश्यन्ति विष्णुं नान्यद् पृथग्गतम् ।  
पर्वत्यं न च पार्थक्यं समष्टिव्यष्टिरूपिणः ॥  
जगन्नाथ तवास्त्रीति दासस्त्वं चासि नो पृथक् ।  
सेव्यसेवकभावो हि भेदो जाथ प्रवर्तते ॥

अन्तर्यामी यदा देवः सर्वेषो हृदि संस्थितः ।  
सेव्यां वा सेवको वापि त्वत्तो नान्योऽस्ति कश्चन ॥  
इनिभावनया कृतावताः  
प्रणमन्तः सततं च कीर्तयन्तः ।  
हरिमद्वज्ञवन्यापाद्यद्वम्  
प्रभज्ञन्तस्तृणवज्जगज्जनेषु ॥  
उपकृतिकुशला जगस्त्रजस्त्र  
परकृशलग्नि निजानि सन्म्यमाताः ।  
अपि परपरिभावने दयाद्वीः  
दिव्यमनसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥  
रघु वरथने च लोधरवण्डे  
परवनितासु च कूटशालमलीषु ।  
समिहिषुरहजेषु वन्मुखर्गे  
सममतयः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥  
गुणमाणसुखाः परस्य मर्म-  
च्छदनपराः परिणामसौख्यदा हि ।  
भरवते सततं प्रदत्तचित्ताः  
प्रियवच्चनाः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥  
स्फुटमधुरपदं हि कंसहन्तुः  
कलुषमुषं शुभनाम चामनन्तः ।  
जय जय परिघोषणां रटन्तः  
किमुविभवाः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥  
हरिचरणसरोजयुग्मचित्ता  
जडिमधियः सुखदुःखसम्मल्याः ।  
अपचितिचतुरा हरौ निजात्म-  
नतवच्चसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥  
रथचरणगदावजशङ्कुमुद्रा  
कृतिलक्ष्मिक्षितबाहुमूलमध्याः ।  
मुररिषुचरणप्रणामधूर्ली-  
धृतकवचाः खलु वैष्णवा जयन्ति ॥  
मुरजिदप्यनापकृष्टवान्तो-  
तमस्तुलसीदलमाल्यचन्दनैर्ये ।  
वरयितुमिव मुक्तिमासभूषा-  
कृतिस्विराः खलु वैष्णवा जयन्ति ॥  
विगलितमदमानशुद्धचित्ताः  
प्रसभविनश्यदहंकृतिप्रशान्ताः ।  
नरहरिमभरासवन्धुमिष्ठा  
क्षपितशुचः खलु वैष्णवा जयन्ति ॥  
( स्क० वै० पु० १० मा० १० । ९६—११३ )

योगम् धनमयनिः प्रभुष्यमविदेकता ।  
एवेकमप्यनर्थांग किञ्चु पय चतुष्यम् ॥  
( नारद० पूर्व० प्रथम० ७ । १५ )

योगम् धनमयनि, प्रभुता और अविदेक—इनमेंमें  
एक-एक भी धनर्थका कारण होता है; फिर जहाँ ये चारों  
बृहद ही वालोंके लिये क्या कहना !

नास्तरपर्कार्तिसमो गृथ्युर्नामि क्षोधसमो रिः ।  
नामि निन्दासमं पापं नामि सोऽसमासवः ॥  
नास्तरपूर्यासमार्कार्तिर्नामि काससमोऽनलः ।  
नामि रागासमः पापो नामि सज्जसमं विषम् ॥  
( नारद० पूर्व० प्रथम० ७ । ४१-४२ )

अवरीतिं समान कोई मृत्यु नहीं है। कोधके समान  
र शत्रु नहीं है। निन्दाके समान कोई पाप नहीं है  
र मोहके समान कोई मात्रक वस्तु नहीं है; असूयाके  
गान कोई अवरीति नहीं है, कामके समान कोई  
ग नहीं है, रागके समान कोई वर्घन नहीं है और  
मर्तिके समान कोई विप नहीं है।

दानभोगविनाशाश्र रथः स्युर्गतयश्चिथा ।  
यो ददाति च नो भुद्भ्ये तद्वनं नाशकारणम् ॥  
तरवः किं न जीवन्ति तेऽपि लोके परार्थकाः ।  
यत्र मूलफलैर्वृक्षाः परकार्यं प्रकुर्वते ॥  
मनुष्या यदि विप्राश्च न परार्थस्तदा मृताः ।  
( ना० पु० पूर्व० १२ । २४-२६ )

दान, भोग और नाश—धनकी ये तीन प्रका  
गतियाँ हैं। जो न दान करता है, न भोगता है, उ  
धन नाशका कारण होता है। क्या वृक्ष जीवन-धारण  
करते ? ये भी इस जगत्में दूसरोंके हितके लिये हीं  
हैं। जहाँ वृक्ष भी अपनी जड़ों और फलोंके द्वारा दूसरं  
हितकार्य करते हैं, वहाँ यदि मनुष्य परोपकारी न हो...  
वे मरे हुएके समान ही हैं।

ये मानवा हरिकथाश्रवणास्तदोपाः  
कृष्णाद्विष्वद्वभजने रत्चेतनाश्र ।  
ते वै पुनन्ति च जगन्ति शरीरसङ्गात्  
सम्भाषणादपि ततो हरिरेव पूज्यः ॥  
हरिपूजापरा यत्र महान्तः शुद्धदुद्धयः ।  
तत्रैव सकलं भद्रं यथा निस्ते जलं हृज ॥  
( ना० पूर्व० ४० । ५३-५४ )

जो मानव भगवान्‌की कथा श्रवण करके अपने समस्त  
दोष-दुर्गुण दूर कर चुके हैं और जिनका चित्त भगवान्  
श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी आराधनामें अनुरक्त है, वे अपने  
शरीरके सङ्ग अथवा सम्भाषणसे भी संसारको पवित्र करते  
हैं। अतः सदा श्रीहरिकी ही पूजा करनी चाहिये। ब्रह्मन् ! जैसे  
नीची भूमिमें इधर-उधरका सारा जल सिमट-सिमटकर एकत्र  
हो जाता है, उसी प्रकार जहाँ भगवत्पूजापरायण शुद्धचित्त  
महापुरुष रहते हैं, वहाँ सम्पूर्ण कल्याणका बास होता है।

## मुनि श्रीसनन्दन

### भगवान्‌का स्वरूप

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।  
ज्ञानवैराग्ययोऽचैव पणां भग इतीरणा ॥  
( ना० पूर्व० ४६ । १७ )

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री,  
पूर्ण ज्ञान तथा सम्पूर्ण वैराग्य—इन छः का नाम 'भग' है।

उत्पत्ति प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम् ।  
वैत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥  
( ना० पूर्व० ४६ । २१ )

जो सब प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयको, आवागमनको  
तथा विद्या और अविद्याको जानता है, वही भगवान् कहलाने  
योग्य है।

## मुनि श्रीसनत्कुमार

**दशमी, एकादशी, द्वादशीके नियम**

अथ ते नियमान् वच्चिम ब्रते ह्यस्मिन् दिनब्रये ।  
कांस्यं मांसं मसूराचं चणकान् कोद्रवांस्तथा ॥  
शाकं मधुं पराजं च पुनर्भोजनमैथुने ।  
दशमीं दश वस्त्रनि वर्जयेद् वैष्णवः सदा ॥  
घूतकीडां च निङ्गां च ताम्बूलं दन्तधावनम् ।  
परापवादं वैशुन्यं स्तेयं हिंसां तथा रतिम् ॥  
झोपं हनूतवाक्यं च एकादशीं विवर्जयेत् ।  
कांस्यं मांसं सुरां क्षौभ्रं तैलं वितथभाषणम् ॥  
व्यायामं च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुने ।  
अस्पृश्यस्पर्शनासूरे द्वादशीं द्वादशा त्यजेत् ॥

( नारद० पूर्व० चतुर्थ० १२० । ८६-९० )

अब इस एकादशी-ब्रतमें तीन दिनोंके पालन करने योग्य नियम बतलाता हूँ । कॉसेकावर्तन, मांस (मांसाहारी भी न खाय), मसूर, चना, कोदो, शाक, मधु, पराया अन्न, दुवारा भोजन और मैथुन—दशमीके दिन इन दस वस्तुओंसे वैष्णव दूर रहे । जुआ खेलना, नींद लेना, पान खाना, दाँतुन करना, दूसरेकी निन्दा करना, चुगाली करना, चोरी करना, हिंसा करना, मैथुन करना और मिथ्या बोलना—एकादशीको ये ग्राह कर्त्य न करे । कॉसा, मांस (मांसाहारी भी), मधु, मधु, तेल, मिश्या-भाषण, व्यायाम, प्रदेश जाना, दुवारा भोजन, मैथुन तथा जो स्फर्द्य योग्य नहीं है, उसका स्फर्द्य करना और मसूर खाना—द्वादशीको इन वारह वस्तुओंका त्याग करे ।

## मुनि श्रीसनत्कुमार

**आत्माका स्वरूप**

स एवाभस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स  
स्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स युवेदः  
मित्यथातोऽहङ्कारादेश एवाहमेवाभस्ताद्ह-  
रिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽह-  
तरसोऽहमेवेदः सर्वमिति ॥

( छान्दोग्य० ७ । २५ । १ )

वही नीचे है, वही ऊपर है, वही पीछे है, वही आगे है, वही दाहिनी ओर है, वही बायीं ओर है और वही यह सब । अब उसीमें अहङ्कारादेश किया जाता है—मैं ही नीचे, मैं ही ऊपर हूँ, मैं ही पीछे हूँ, मैं ही आगे हूँ, मैं ही दिनी ओर हूँ, मैं ही बायीं ओर हूँ, और मैं ही यह सब हूँ ।

……न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताऽ-  
र्वेद् ह पश्यः पश्यति सर्वमामोति सर्वश इति । ५५५  
हारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे  
विद्यन्थीनां विप्रमोक्षः……

( छान्दोग्य० ७ । २६ । २ )

विद्वान् न तो मृत्युको देखता है न रोगको और न दुःखको ही । वह विद्वान् सबको (आत्मरूप ही) देखता



है, अतः सबको (आत्माको) प्राप्त हो जाता है । ५५५ आहारशुद्धि होनेपर अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर निश्चल स्मृति होती है तथा स्मृतिके प्राप्त होनेपर सम्पूर्ण ग्रन्थियोंकी निवृत्ति हो जाती है । (अज्ञानका नाश होकर आत्माकी प्राप्ति हो जाती है ।)

## उपदेश

निवृत्तिः कर्मणः पापात्सततं पुण्यशोलता ।

सदद्वृत्तिः सदुदाचारः श्रेय एतदनुच्छम ॥

मातुष्यमसुखं प्राप्य यः सज्जति स मुहृति ।

शालं स दुःखमोक्षाय सज्जी वै दुःखलक्षणः ॥

( ना० पूर्व० ६० । ४४-४५ )

पाप-कर्मसे दूर रहना, सदा पुण्यका संचय करते रहना, साधु पुरुषोंके वर्तावको अपभाना और उत्तम सदाचारका पालन करना—यह सर्वोत्तम श्रेयका साधन है । जहाँ सुखका नाम भी नहीं है, ऐसे मानवशरीरको पाकर जो विषयोंमें आसक्त होता है, वह मोहमें छूब जाता है । विषयोंका संयोग दुःखरूप है, वह कभी दुःखसे छुटकारा नहीं दिला सकता ।

निष्यं प्रोग्नातयो रक्षेभिल्यं रक्षेन मन्त्रान् ।  
निषां मानवगमनाभ्यामात्रान् तु प्रमादतः ॥  
आनृतान्यं परो भर्तः क्षमा च परमं वल्मी ।  
आत्मज्ञानं परं ज्ञानं सर्वं हि परमं हितम् ॥  
( ना० पू० ६० । १८-४९ )

मनुष्यो चाहिये हि तरको क्रीधो, मन्यत्तिको डार्यो,  
विजातो ग्रान-अभ्यानगे और अपनेको प्रमादते बचावे ।  
कह अभ्यानगा परंत्याग गवगे वदा धर्म है । क्षमा सबसे  
महान् वल है । आगश्न गर्वोंचम ज्ञान है और सत्य ही  
मध्ये वदकर हितका गाधन है ।

सचिन्पत्तेकर्मवैनं कामानामवित्तसकम् ।  
च्यावः पशुमियासात्त्र मृत्युरादात्र गच्छति ॥  
तथाप्युपायं सम्पर्शयेद् दुःखस्यास्य विमोक्षणे ॥  
( ना० पू० ६१ । ४१ )

जैसे बनमें नवी-नयी घासकी खोजमें विचरते हुए अत्रूप  
पशुको उसकी बातमें लगा हुआ व्याघ्र सहसा आकर दबोच लेता  
है, उसी प्रकार भोगोंमें लगे हुए अत्रूप मनुष्यको मृत्यु उटा ले  
जाती है । इसलिये इस हुखसे छुटकारा पानेका उपाय अवश्य  
सोचना चाहिये ।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्सनो मतम् ।  
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिद्भुपासते ॥  
( केन० १ । ५ )

जिसको कोई भी मनसे—अन्तःकरणके द्वारा नहीं  
समझ सकता; जिससे मन मनुष्यका जाना हुआ हो जाता है—  
यों कहते हैं, उसको ही तू ब्रह्म जान । मन और बुद्धिके  
द्वारा जाननेमें आनेवाले जिस तत्त्वकी लोग उपासना करते हैं,  
वह यह ब्रह्म नहीं है ।

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षु॒॒॑षि पश्यति ।  
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिद्भुपासते ॥  
( केन० १ । ६ )

जिसको कोई भी चक्षुके द्वारा नहीं देख सकता; वहिं  
जिससे मनुष्य नेत्र और उसकी वृत्तियोंको देखता है, उसको  
ही तू ब्रह्म जान । चक्षुके द्वारा देखनेमें आनेवाले जिस

## नामके दस अपराध

गुरुरेवज्ञां साधूमां निन्दां भेदं हरे हरै ।  
वेदनिन्दां हरेनामवलात् पापसमीहनम् ॥  
अर्थवादं हरेनान्नि पाप्तुण्डं नामसंग्रहे ।  
अलसे नास्तिके चैव हरिनामोपदेशनम् ॥  
नामविस्मरणं चापि नाम्यनादरमेव च ।  
संत्यजेत् दूरतो वत्स दोपानेतात् सुदारुणात् ॥  
( ना० पू० ८२ । २२-२ )

वत्स ! गुरुका अपमान, साधु-महात्माओंकी निन्दा, भगव  
शिव और विष्णुमें भेद, वेद-निन्दा, भगवन्नामके वह  
पाप करना, भगवन्नामकी महिमाको अर्थवाद समझ  
नाम लेनेमें पाप्तुण्ड फैलाना, आलसी और नास्तिक  
भगवन्नामका उपदेश करना, भगवन्नामको भूल जाना र  
नाममें अनादर-बुद्धि करना—ये ( दस ) भयानक दोष हैं  
इनको दूरसे ही त्यग देना चाहिये ।

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।  
द्विवसे द्विवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥  
( ना० पू० ६१ । ३ )

शोकके सहस्रों और भयके सैकड़ों स्थान हैं । वे प्रतिर  
मूढ मनुष्यपर ही अपना प्रभाव डालते हैं, विद्वान् पुरुषपर नहै

## केनोपनिषद् के आचार्य

हृश्यवर्गकी लोग उपासना करते हैं, यह ब्रह्म नहीं है  
नाहं मन्ये सुर्वेदेति नो न वेदेति वेद च ।  
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥  
( केन० २ । २ )

मैं ब्रह्मको भलीभाँति जान गया हूँ यों नहीं मानता औं  
न ऐसा ही मानता हूँ कि नहीं जानता; क्योंकि जानता न  
हूँ । किंतु यह जानना विलक्षण है । हम शिष्योंमें से जो को  
भी उस ब्रह्मको जानता है, वही मेरे उक्त वचनके अभिप्रायके  
भी जानता है कि मैं जानता हूँ और नहीं जानता—  
दोनों ही नहीं हैं ।

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।  
अविज्ञातं विज्ञानतां विज्ञातमविज्ञानताम् ॥  
( केन० २ । ३ )

जिसका यह मानना है कि ब्रह्म जाननेमें नहीं आता, सका तो वह जाना हुआ है और जिसका यह मानना है कि ब्रह्म मेरा जाना हुआ है, वह नहीं जानता; क्योंकि जानेका अभिमान रहनेवालोंके लिये वह ब्रह्मतत्त्व जाना हुआ नहीं है और जिनमें जातापनका अभिमान नहीं है, उनका वह ब्रह्मतत्त्व जाना हुआ है अर्थात् उनके लिये वह अपरोक्ष है।

इह चेदवेदीदय सत्यमस्ति  
न चेदिहावेदीन्महती विनिधिः ।

भूतेषु भूतेषु विचित्रं धीराः

प्रेत्यास्माहोकादमृता भवन्ति ॥

( श्वेता४० २ । ५ )

यदि इस मनुष्यशरीरमें परब्रह्मको जान लिया तो बहुत कुशल है। यदि इस शरीरके रहते-रहते उसे नहीं जान पाया तो महान् विनाश है। यही सोचकर बुद्धिगान् पुरुष प्राणी-प्राणीमें ( प्राणिमात्रमें ) परब्रह्म पुरुषोत्तमको समझकर इस लोकसे प्रयाण करके अमृत ( ब्रह्मरूप ) हो जाते हैं।

## महार्षि श्वेताश्वतर

### परमात्मा

एको देवः सर्वभूतेषु गृहः  
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।  
कर्माध्यक्षः सर्वभूताश्रिवासः  
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥  
( श्वेता४० अ० ६ । ११ )

वह एक देव ही सब प्राणियोंमें छिपा हुआ, सर्वव्यापी और समस्त प्राणियोंका अन्तर्यामी परमात्मा है। वही सबके कर्मोंका अधिकारी, सम्पूर्ण मूर्तोंका निवासस्थान, सबका साक्षी, चेतनस्वरूप एवं सबको चेतना प्रदान करनेवाला, सर्वथा विशुद्ध और गुणातीत भी है।

एको वशी निष्ठिक्याणां बहुना-  
मेकं वीजं बहुधा यः करोति ।  
तमात्मस्त्वं येऽनुपश्यन्ति धीरा-  
स्त्वेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥  
( श्वेता४० अ० ६ । १२ )

जो अकेला ही बहुत-से वास्तवमें अक्रिय जीवोंका शासक है और एक प्रकृतिरूप धीजको अनेक रूपोंमें परिणत कर देता है, उस हृदयस्थित परमेश्वरको जो धीर पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं, उन्हींको सदा रहनेवाला परमानन्द प्राप्त होता है, दूसरोंको नहीं।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-

मेको बहूनां यो विद्धाति कामान् ।  
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं  
शास्त्रा देवं सुन्धते सर्वाश्रेष्ठः ॥  
( श्वेता४० अ० ६ । १३ )

जो एक, नित्य, चेतन परमात्मा बहुत-से नित्य चेतन आत्माओंके कर्मफलभोगोंका विद्धान करता है, उस ज्ञानयोग और कर्मयोगसे प्राप्त करनेयोग्य, सबके कारणरूप परमदेव परमात्माको जानकर भनुष्य समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं  
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।  
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं  
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥  
( श्वेता४० अ० ६ । १४ )

वहाँ न तो सूर्य प्रकाश फैला सकता है न चन्द्रमा और ताराशरणका समुदाय ही, और न ऐ विजलियाँ ही के प्रकाशित हो सकती हैं। किर यह लैकिक अग्नि तो के प्रकाशित हो सकता है; क्योंकि उसके प्रकाशित होनेपर, उसीके प्रकाशसे उपर कहे हुए सूर्य आदि सब उसके पी प्रकाशित होते हैं। उसके प्रकाशसे यह सम्पूर्ण जग प्रकाशित होता है।

## महर्षि याज्ञवल्क्य

ब्रह्म और ब्रह्मवेत्ता

ए होयाच न या अरे पत्तुः  
कामाय परिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु  
कामाय परिः प्रियो भवति । न या  
अरे जागाये कामाय जाया प्रिया  
भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया  
भवति । न या अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः  
प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति । न या अरे  
पितृस्य कामाय पितृं प्रियं भवत्यात्मनस्तु  
कामाय पितृं प्रियं भवति । न या अरे क्षत्रस्य कामाय  
क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति । न या  
अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय  
लोकाः प्रिया भवन्ति । न या अरे देवानां कामाय देवाः  
प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति । न या  
अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवत्यात्मनस्तु कामाय  
भूतानि प्रियाणि भवन्ति । न या अरे सर्वस्य कामाय सर्वं  
प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मा वा  
अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्त्रव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो  
वा अरे ददृशेन श्रवणेन भवत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ॥५॥

( वृद्धराण्यकोपनिषद् अध्याय २ भाषण ४ )

श्रीयाज्ञवल्क्यजीने कहा—अरी मैत्रेयि ! यह निश्चय है कि पति के प्रयोजनके लिये पति प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजनके लिये पति प्रिय होता है; स्त्रीके प्रयोजनके लिये स्त्री प्रिया नहीं होती, अपने ही प्रयोजनके लिये स्त्री प्रिया होती है; पुत्रोंके प्रयोजनके लिये पुत्र प्रिय नहीं होते, अपने ही प्रयोजनके लिये पुत्र प्रिय होते हैं। धनके प्रयोजनके लिये धन प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजनके लिये धन प्रिय होता है; ब्राह्मणके प्रयोजनके लिये ब्राह्मण प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजनके लिये ब्राह्मण प्रिय होता है; क्षत्रियके प्रयोजनके लिये क्षत्रिय प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजनके लिये क्षत्रिय प्रिय होता है। लोकोंके प्रयोजनके लिये लोक प्रिय नहीं होते, अपने ही प्रयोजनके लिये लोक प्रिय होते हैं; देवताओंके प्रयोजनके लिये देवता प्रिय नहीं होते, अपने ही प्रयोजनके लिये देवता प्रिय होते हैं; प्राणियोंके प्रयोजनके लिये प्राणी प्रिय नहीं होते, अपने ही प्रयोजनके लिये प्राणी

प्रिय होते हैं तथा सबके प्रयोजनके लिये सब प्रिय नहीं है अपने ही प्रयोजनके लिये सब प्रिय होते हैं। अरी मैत्रेयि यह आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यान न जानेयाम्य है। हे मैत्रेयि ! इस आत्माके ही दर्शन, श्रवणन एवं विज्ञानसे इन सबका ज्ञान हो जाता है।

यो वा पृतदक्षरं गार्यविदित्वास्मांडोके जुहोति क तपस्यते वहूनि वर्द्धसहस्राण्यन्तवदेवास्य तद् भवति यो पृतदक्षरं गार्यविदित्वास्मांडोकात् प्रैति स कृपणोऽय पृतदक्षरं गार्गि विदित्वास्मांडोकात् प्रैति स व्राह्मणः ॥ १० ॥

( वृह० अ० ३ वा० ८ )

हे गार्गि ! जो कोई इस लोकमें इस अक्षरको न जान इहन करता, यज्ञ करता और अनेकों सहस्र वर्षपर्यन्त र करता है, उसका वह सब कर्म अन्तवान् ही होता है। कोई भी इस अक्षरको विना जाने इस लोकसे मरकर जा है, वह कृपण ( दीन ) है और हे गार्गि ! जो इस अक्षर जानकर इस लोकसे मरकर जाता है, वह व्राह्मण है।

तद् वा पृतदक्षरं गार्यदृष्टं द्रष्टुश्चतुर्थं श्रोत्रमतं मन्त्र-  
विज्ञातं विज्ञातु नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतु  
नान्यदतोऽस्ति भन्तु नान्यदतोऽस्ति विज्ञात्रेतस्मिन्तु खल्वक्षे  
गार्यकाश ओतश्च ग्रोतश्चेति ॥ ११ ॥

( वृह० अ० ३ वा० ८ )

हे गार्गि ! यह अक्षर स्वयं दृष्टिका विषय नहीं, किंतु द्रष्टा है; श्रवणका विषय नहीं, किंतु श्रोता है; मननका विषय नहीं, किंतु मन्ता है; स्वयं अविज्ञात रहकर दूसरोंका विज्ञाता है। इससे भिन्न कोई द्रष्टा नहीं है, इससे भिन्न कोई श्रोता नहीं है, इससे भिन्न कोई मन्ता नहीं है। इससे भिन्न कोई विज्ञाता नहीं है। हे गार्गि ! निश्चय इस अक्षरमें ही आकाश ओतश्चेति है।

स यो मनुष्याणाऽरादः समुद्धो भवत्यन्येषामधिपतिः  
सर्वैर्मानुष्यकैर्भैर्गैः समपन्नतमः स मनुष्याणां परम आनन्दोऽथ  
ये शतं मनुष्याणामानन्दाः स एकः पितृणां जितलोकानामा-  
नन्दोऽथ ये शतं पितृणां जितलोकानामानन्दाः स एको  
गन्धर्वलोक आनन्दोऽथ ये शतं गन्धर्वलोक आनन्दाः स  
एकः कर्मदेवानामानन्दो ये कर्मणा देवत्वमभिसम्पद्यन्तेऽय  
ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः स एक आज्ञानदेवानामानन्दो यश्च  
श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहृतोऽथ ये शतमाज्ञानदेवानामानन्दः।

## तैत्तिरीयोपनिषद् के आचार्य

### उपदेश

वेदमन्त्रायाचार्योऽस्मिन्नगनुगामिति । मर्यां पद ।  
भर्या भर । न्यायायायान्मा प्रमदः । आचार्याण्य शिष्यं भवत्माहत्य  
प्रमदित्वां त्वा इपादेष्याः । श्यायाप्त प्रमदित्यम् । धर्मात्म  
प्रमदित्यम् । न्यायायाप्त प्रमदित्यम् । भृत्यै न प्रमदित्यम् ।  
न्यायायाप्तायनाभ्यां न प्रमदित्यम् । देवपितृकार्याभ्यां न  
प्रमदित्यम् । (तैत्तिरीय० २ । ११ । १)

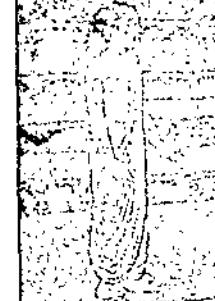
केवल भर्यीर्थांति अप्यग्नन करकर आचार्य अपने  
आपामे रहनेवाले विद्यार्थीको शिक्षा देते हैं—  
तुम गत्य बोलो । भर्यीता गत्यस्य करो । न्यायायामे कभी न  
कर्को । आचार्योऽस्मिन्देविष्णामे स्पर्में वाचित्त भन लाकर  
दो, पितृ उन्मी आपामे शृण्य-आधारामे प्रवेश करके संतान-  
परम्परगामो नाल् नको, उग्रामा उन्नेह न करना । तुमको  
मत्यसे कभी नहीं उिगना चाहिये । भर्यी नहीं उिगना चाहिये ।  
शुभ रहमें यमी नहीं चूकना चाहिये । उत्तरातिके साधनोंसे  
कभी नहीं चूकना चाहिये । वेदोंके पदने और पदानेमें कभी  
भूल नहीं करनी चाहिये । देवकार्यसे और पितृकार्यसे  
कभी नहीं चूकना चाहिये ।

मातृदेवो सद । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव ।  
अतिथिदेवो भव । यान्त्यनवश्चानि कर्मणि । तानि सेवितव्यानि ।  
नो इतराणि । यान्त्यस्माक९ सुचरितानि । तानि त्वथो-  
पास्यानि नो इतराणि । ये के चास्मच्छ्रेयाऽसो व्याघणा;  
तेषां त्वथाऽस्मनेन प्रश्वसितव्यम् । श्रद्धाया देयम् । अश्रद्धाया-  
देयम् । श्रिया देयम् । श्रिया देयम् । भिया देयम् ।  
संविदा देयम् । (तैत्तिरीय० १ । ११ । २)

—○—<३४४>—○—

### ऋषिकुमार नविकेता

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो  
लप्स्यामहे वित्तमद्वाक्षम चेत्वा ।  
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं  
वरस्तु मे वस्णीयः स एव ॥  
(कठ० १ । १ । २७)



मनुष्य धनसे कभी भी तृप्त नहीं किया जा सकता ।  
जब कि हमने आपके दर्शन पा लिये हैं, तब धन तो हम  
पा ही लेंगे और आप जबतक शासन करते रहेंगे, तबतक  
तो हम जीते ही रहेंगे । इन सबको भी क्या माँगना है, अतः  
मेरे माँगने लायक वर तो वह आत्मशान ही है ।

तुम मातामें देववृद्धि करनेवाले वनो । पिता को देव  
समझनेवाले होओ । आचार्यको देवस्त्र प्रमझनेवाले वन  
अतिथिको देवतुल्य समझनेवाले होओ । जो-जो निर्दोष ।  
ईं, उन्हेंका तुम्हें ऐवन करना चाहिये । दूसरे दोप्रयुक्त क  
का कभी आचरण नहीं करना चाहिये । हमारे आचरणों  
भी जो-जो अच्छे आचरण हैं, उनका ही तुमको सेवन क  
चाहिये । दूसरेका कभी नहीं । जो कोई भी हमसे श्रेष्ठ गुरु  
एवं व्राताण आयें, उनको तुम्हें आसन-दान आदिके द्वारा स  
करके विश्राम देना चाहिये । श्रद्धार्थक दान देना चाहिये  
विना श्रद्धाके नहीं देना चाहिये । आर्यिक स्थितिके अनुर  
देना चाहिये । लजासे देना चाहिये । भयसे भी देना चाहिये ।  
(तैत्तिरीय० २ । १ । १)

तत्वं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गुहायां प  
ज्योमन् । सोऽश्वनुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चित्तैरि  
(तैत्तिरीय० २ । १ । १)

ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है । जो मनुष्य क  
विशुद्ध आकाशमें रहते हुए भी प्राणियोंके हृदयरूप गुफ  
छिपे हुए उस ब्रह्मको जानता है, वह उस विश्वानस्वरूप ब्रह्म  
साय समस्त भोगोंका अनुभव करता है । इस प्रकार यह ऋग्वा-

यतो वाचो निर्वर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । आन  
ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चनेति । (तैत्तिरीय० २ । १ । १)

मनके सहित वाणी आदि समस्त इन्द्रियाँ जहाँसे उसे  
पाकर लौट आती हैं, उस ब्रह्मके आनन्दको जाननेया  
सहापुरुष किसीसे भी भय नहीं करता ।

अजीर्णताममृतानामुपेत्य

जीर्णन् सर्व्यः कवधःस्थः प्रजानन् ।

अभिध्याथन् वर्णरतिप्रमोदा-

नतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥

(कठ० १ । १ । २८)

यह मनुष्य जीर्ण होनेवाला है और मरणधर्मा है—इ  
तत्वको भलीभाँति समझनेवाला मनुष्यलोकका निवासी की  
ऐसा मनुष्य है जो कि बुद्धापेसे रहित, न मरनेवाले आप-सह  
महात्माओंका सङ्ग पाकर भी क्षियोंके सौन्दर्य, क्षीडा औं  
आमोद-प्रमोदका बार-बार चिन्तन करता हुआ बहुत काँ  
तक जीवित रहनेमें प्रेम करेगा ।

## श्रीयमराज

### आत्मज्ञान

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत-  
स्तौ सम्परीक्ष्य विविनक्तिधीरः।  
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते  
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते ॥  
( कठ० १।२।२ )



श्रेय और प्रेय—ये दोनों ही मनुष्यके सामने आते हैं। द्विमान् मनुष्य उन दोनोंके स्वरूपपर भलीभाँति विचार रके उनको पृथक्-पृथक् समझ लेता है और वह श्रेष्ठबुद्धि नुष्य परम कल्याणके साधनको ही भोग-साधनकी अपेक्षा छूट समझकर ग्रहण करता है। परंतु मन्दबुद्धिवाला मनुष्य गैरिक योगक्षेमकी इच्छासे भोगोंके साधनरूप प्रेयको मपनाता है।

स त्वं प्रियान् प्रियरूपाऽश्च कामा-  
नभिद्यायच्चन्विकेतोऽत्यस्त्वाक्षीः ।  
नैताऽसङ्कां वित्तसायीमवाप्तो  
यस्यां मज्जन्ति बहूतो मनुष्याः ॥  
( कठ० १।२।३ )

हे नचिकेता ! उन्हीं मनुष्योंमें तुम ऐसे निःस्पृह हो कि प्रिय लगानेवाले और अत्यन्त सुन्दर रूपवाले इस लोक और परलोकके समस्त भोगोंको भलीभाँति सौन्दर्यसमझकर तुमने छोड़ दिया। इस सम्पत्तिरूप शृङ्खलाको तुम नहीं प्राप्त हुए—इसके बन्धनमें नहीं फँसे, जिसमें बहुत-से मनुष्य फँस जाते हैं।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः  
स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।  
दन्तम्यमाणाः परियन्ति मूढा  
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥  
( कठ० १।२।५ )

अविद्याके भीतर रहते हुए भी अपने आपको बुद्धिमान् और विद्यान् माननेवाले, भोगकी इच्छा करनेवाले वे मूर्खलोग नाना योनियोंमें चारों ओर भटकते हुए ठीक वैसे ही ठोकरें खाते रहते हैं, जैसे अन्धे मनुष्यके द्वारा चलाये जानेवाले

अन्धे अपने लक्ष्यतक न पहुँचकर इधर-उधर भटकते और कष्ट भोगते हैं।

न जायते प्रियते वा विप्रिणि-  
क्षायं कुतश्चिन्न वभूव कश्चिन् ।  
अजो निल्यः शाश्वतोऽयं पुराणो  
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥  
( कठ० १।२।१८ )

नित्य शान्तस्वरूप आत्मा न तो जन्मता है और न मरता ही है। यह न तो स्वयं किसीसे हुआ है न इससे कोई भी हुआ है—अर्थात् यह न तो किसीका कार्य है और न कारण ही है। यह अजन्मा, नित्य, सदा एकरस रहनेवाला और पुरातन है अर्थात् क्षय और बुद्धिसे रहित है। शरीरके नाश किये जानेपर भी इसका नाश नहीं किया जा सकता।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो  
न मैघ्या न वहना श्रुतेन ।  
प्रमेवैष वृणुते तेन लभ्य-  
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूरस्याम् ॥  
( कठ० १।२।२३ )

यह परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचनसे, न बुद्धिसे और न बहुत सुननेसे ही प्राप्त हो सकता है। जिसको यह स्वीकार कर लेता है, उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि यह परमात्मा उसके लिये अपने यथार्थ स्वरूपको प्रकट कर देता है।

नाविरतो दुश्शरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।  
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानैनमाप्नुयात् ॥  
( कठ० १।२।२४ )

मूर्ख बुद्धिके द्वारा भी इस परमात्माको न तो वह मनुष्य प्राप्त कर सकता है, जो भुजे आचरणोंसे निवृत्त नहीं हुआ है; न वह प्राप्त कर सकता है, जो अशान्त है; न वह कि जिसके मन, इन्द्रियाँ संयत नहीं हैं और न वही प्राप्त करता है, जिसका मन शान्त नहीं है।

आत्मानः रथिनं विद्धि चरीरः रथमेव तु ।  
बुद्धिं तु सारथि विद्धि मनः प्रवहमेव च ॥  
( कठ० १।२।३ )

हे नचिकेता ! तुम जीवात्माको तो रथका स्थानी—

प्राणियोंका अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपोंमें  
उन्हेंके जैसे रूपवाला हो रहा है और उनके बाहर भी है।

सूर्यो वथा सर्वलोकस्य चक्षु-

नं लिप्यते चाक्षुरैर्बाह्यदोषैः ।

एकस्तथा

सर्वभूतान्तरात्मा

न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥

( कठ० २।२।११ )

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्डका प्रकाशक सूर्य देवता  
लोगोंकी आँखोंसे होनेवाले बाहरके दोषोंसे लिस नहीं होता,  
उसी प्रकार सब प्राणियोंका अन्तरात्मा एक परब्रह्म परमात्मा  
लोगोंके दुःखोंसे लिस नहीं होता । क्योंकि सबमें रहता हुआ  
भी वह सबसे अलग है ।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा

एकं रूपं बहुधा यः करोति ।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-

स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥

( कठ० २।२।१२ )

जो सब प्राणियोंका अन्तर्यामी, अद्वितीय एवं सबको  
बशमें रखनेवाला परमात्मा अपने एक ही रूपको बहुत प्रकारसे  
जना लेता है, उस अपने अंदर रहनेवाले परमात्माको जो  
शानी पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं, उन्हींको सदा अटल  
रहनेवाला परमात्मन्दस्तरूप वास्तविक सुख मिलता है ।  
दूसरोंको नहीं ।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-

मेको बहुनां यो विदधाति कामान् ।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-

स्तेषां ज्ञान्तिः ज्ञाश्रती नेतरेषाम् ॥

( कठ० २।२।१३ )

जो नित्योंका भी नित्य है, चेतनोंका भी चेतन है  
और अकेला ही इन अनेक जीवोंकी कामनाओंका विधान  
करता है, उस अपने अंदर रहनेवाले पुरुषोंतमको जो ज्ञानी  
निरन्तर देखते रहते हैं, उन्हींको सदा अटल रहनेवाली शान्ति  
प्राप्त होती है, दूसरोंको नहीं ।

यदा सर्वे प्रभुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।

अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यन्न ब्रह्म समश्नुते ॥

( कठ० २।३।१४ )

इस साधकके हृदयमें स्थित जो कामनाएँ हैं, वे सबकी-

सब जब समूल नष्ट हो जाती हैं, तब मरणधर्म मनुष्य अमर  
हो जाता है और वह यहीं ब्रह्मका भलीभाँति अनुभव कर  
लेता है ।

स्वर्गमें कौन जाते हैं ?

येऽर्चयन्ति हरिं देवं विष्णुं जिष्णुं सनातनम् ।  
नारायणमन्तं देवं विष्णुरूपं चतुर्भुजम् ॥  
ध्यायन्ति पुरुषं दिव्यमच्युतं ये स्मरन्ति च ।  
लमन्ते ते हरिस्थानं श्रुतिरेषा सनातनी ॥  
इदमेव हि माङ्गल्यमिदमेव धनार्जनम् ।  
जीवितस्य फलं चैतद् यदामोदरकीर्तनम् ॥  
कीर्तनाद् देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ।  
द्विरितानि विलीयन्ते तसांसीव द्विनोदये ॥  
गाथां गायन्ति ये नित्यं वैष्णवीं श्रद्धयान्विताः ।  
स्माध्यायन्तिरता नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
वासुदेवजपासक्तानपि पापकृती जनान् ।  
नौपसर्पन्ति तान् विप्रं यमदूताः सुदारुणाः ॥  
नान्यत् पश्यामि जन्मतां चिह्नाय हरिकीर्तनम् ।  
सर्वपापशमनं प्रायश्चिन्तं द्विजोत्सम् ॥  
ये आचिताः प्रहृष्टन्ति ग्रियं दस्वा वदन्ति च ।  
त्यक्तदानफला ये तु ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
वर्जयन्ति दिवास्वादं नराः सर्वसहाश्र ये ।  
पर्वण्याश्रयमूर्ता ये ते मर्त्याः स्वर्गगामिनः ॥  
द्विष्टासपि ये द्वेषात्र वदन्त्यहितं कदा ।  
कीर्तयन्ति गुणांश्चैव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
ये शान्ताः परदोरेषु कर्मणा मनसा गिरा ।  
स्मयन्ति न सत्यस्थास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
यस्मिन् कस्मिन् कुले जाता द्वयावन्तो यज्ञस्विनः ।  
सानुक्रोशाः सदाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
ब्रतं रक्षन्ति ये कोपाद्विष्यं रक्षन्ति मत्सरात् ।  
विद्या मानापमानाभ्यां द्यात्मानं तु प्रमादतः ॥  
मर्ति रक्षन्ति ये लोभान्मनो रक्षन्ति कामतः ।  
धर्मं रक्षन्ति दुःसङ्गाते नराः स्वर्गगामिनः ॥

( पद्मपु० पाताल० ९२।१०-२३ )

जो सब पापोंको हरनेवाले, दिव्यस्वरूप, व्यापक, विज्यी,  
सनातन, अजन्मा, चतुर्भुज, अन्युत, विष्णुरूप, दिव्य पुरुष  
श्रीनारायणदेवका पूजन, ध्यान और स्मरण करते हैं, वे  
श्रीहरिके परम धामको प्राप्त होते हैं—यह सनातन श्रुति है ।

देवसिद्धपरिगीतपविन्नगाथा

ये साधवः समदशो भगवत्प्रपन्नाः ।

न् नौपसीदत् हरेगदयभिगुसान्

नैवां वयं न च वदः प्रभवाम दण्डे ॥

( श्रीमद्भा० ६ । ३ । २७ )

। समदशीं साधु भगवान्को ही अपना साध्य और दोनों समझकर उनपर निर्भर हैं, वडे-वडे देवता और उनके पवित्र चरित्रोंका प्रेमसे गान करते रहते हैं । मेरे भगवान्की गदा उनकी सदा रक्षा करती रहती है । पास तुमलोग कभी भूलकर भी मत फटकाना । उन्हें देनेकी सामर्थ्य न हममें है और न साक्षात् कालमें ही ।

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं

चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।

कृष्णाय नो नस्ति यच्छ्र एकदापि

तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥

( श्रीमद्भा० ६ । ३ । २९ )

जिनकी जीभ भगवान्के गुणों और नामोंका उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त उनके चरणारविन्दोंका चिन्तन नहीं करता और जिनका सिर एक बार भी भगवान् श्रीकृष्ण-के चरणोंमें नहीं क्षुकता, उन भगवत्सेवा विमुख पापियोंको ही मेरे पास लाया करो ।

## महार्षि अङ्गिरा

**परब्रह्म परमात्मा और उनकी प्राप्तिके साधन**

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना

वयं कृतार्थी इत्यभिसन्ध्यन्ति वालाः ।

यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागाद्

तेनात्मुराः क्षीणलोकाश्चत्यवन्ते ॥

( सुण्डक० १ । २ । ९ )

वे मूर्ख लोग उपासनारहित सकाम कर्मोंमें बहुत प्रकारसे । हुए हम कृतार्थ हो गये ऐसा अभिमान कर लेते हैं । के वे सकाम कर्म करनेवाले लोग विषयोंकी आसक्तिके ग कल्याणके मार्गको नहीं जान पाते, इस कारण बारंबार त्वरे आतुर हो पुण्योपार्जित लोकोंसे हटाये जाकर नीचे जाते हैं ।

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्ध्यरप्ये

शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्या चरन्तः ।

सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति

यत्रामृतः स पुरुषो द्युष्मयात्मा ॥

( सुण्डक० १ । २ । ११ )

किंतु जो वनमें रहनेवाले, शान्त स्वभाववाले तथा शोके लिये विचरनेवाले विद्वान् संयमरूप तप तथा श्रद्धाका न करते हैं, वे रजोगुणरहित सूर्यके मार्गसे वहाँ चले जाते जहाँपर वह जन्म-मृत्युसे रहित नित्य, अविनाशी परम ईश रहता है ।

सत्यसेव जयति तानृतं

सत्येन पन्था वित्तो देवथानः ।

सं० वा० अ० ६—

येनाक्षमन्त्यृष्टयो

द्यात्सकामा

यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥

( सुण्डक० ३ । १ । ६ )

सत्य ही विजयी होता है, इन्हीं क्योंकि वह देवयान नामक भार्ग सत्यसे परिपूर्ण है, जिससे पूर्णकाम ऋषिलोग वहाँ गमन करते हैं, जहाँ वह सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्माका उत्कृष्ट धाम है ।

न चक्षुषा गृह्णते नापि वाचा

नान्यैदेवैस्तपसा कर्मणा वा ।

ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्व-

स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥

( सुण्डक० ३ । १ । ८ )

वह परमात्मा न तो नेत्रोंसे, न वाणीसे और न दूसरी इन्द्रियोंसे ही ग्रहण करनेमें आता है । तथा तपसे अथवा कर्मोंसे भी वह ग्रहण नहीं किया जा सकता । उस अवयव-रहित परमात्माको तो विशुद्ध अन्तःकरणवाला साधक उस विशुद्ध अन्तःकरणसे निरन्तर उसका ध्यान करता हुआ ही ज्ञानकी निर्मलतासे देख पाता है ।

नाथमात्मा प्रवचनेन लभ्यो

न मेधया न बहुना शुतेन ।

अमेवैष वृणुते तेन लभ्य-

स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥

( सुण्डक० ३ । २ । ३ )

वह परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचनसे, न बुद्धिसे और न बहुत सननेसे ही प्राप्त हो सकता है । यह जिसको स्वीकार

पर ऐता है, उगके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि यह परमात्मा उगके लिये अपने यथार्थ स्वरूपको प्रकट कर देता है।

नायमात्मा यद्गर्नेन लभ्यो  
न च प्रमादात्तपसो वाष्पलिङ्गत् ।  
एतेऽरुपायैर्थंते यस्तु विद्धाः-  
मन्त्यैष आत्मा विशते व्रजधाम ॥  
( मुण्डक० ३।२।४ )

यह परमात्मा बलहीन मनुष्यद्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता तथा प्रमादसे अथवा लक्षणरहित तपसे भी नहीं प्राप्त किया जा सकता। किंतु जो बुद्धिमान् साधक इन उपायोंके द्वारा प्रयत्न करता है, उसका यह आत्मा व्रजधाममें प्रविष्ट हो जाता है।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः  
स्वर्यं धीराः पण्डितं मन्त्रमानाः ।  
जस्तन्मानाः परियन्ति मूढा  
अन्वेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥  
( मुण्डक० १।२।८ )

अविद्याके भीतर स्थित होकर भी अपने-आप बुद्धिमान् बननेवाले तथा अपनेको विद्वान् माननेवाले वे मूर्खलोग वार-वार आघात (कष्ट) सहन करते हुए (टीक वैसे ही) भटकते रहते हैं जैसे अन्धेके द्वारा चलाये जानेवाले अंधे (अपने लक्ष्यतक न पहुँचकर बीचमें ही इधर-उधर भटकते और कष्ट भोगते रहते हैं।)

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं  
शरं लुपासानिशितं सन्ध्यात् ।  
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा  
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य चिद्रि ॥  
( मुण्डक० २।२।३ )

उपनिषद्में वर्णित प्रणव-स्वरूप महान् अत्र धनुषको लेकर (उसपर) निश्चय ही उपासनाद्वारा तीक्ष्ण किया हुआ बाण चढ़ाये। (फिर) भावपूर्ण चित्तके द्वारा उस बाणको खींचकर है प्रिय ! उस परम अक्षर पुरुषोत्तमको ही लक्ष्य मानकर बेधे।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुन्त्यते ।  
अग्रमत्तेन वेदव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥  
( मुण्डक० २।२।४ )

( यहाँ ) ओकार ही धनुष है, आत्मा ही बाण है,

( और ) परब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य कहा है। ( वह ) प्रमादरहित मनुष्यद्वारा ही धींधा जाने योग्य ( अतः ) उसे वेधकर बाणकी भाँति ( उस लक्ष्य तन्मय हो जाना चाहिये।

भिद्यते हृदयग्रन्थिविद्यन्ते सर्वसंशयाः ।  
क्षीयन्ते चास्य कर्मणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥  
( मुण्डक० २।२।११ )

कार्य-कारणस्वरूप उस परात्पर पुरुषोत्तमको तजान लेनेपर इस ( जीवात्मा )के हृदयकी गाँठ खुल जाए है, सम्पूर्ण संशय कट जाते हैं और समस्त शुभाश्रम नष्ट हो जाते हैं।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं  
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।  
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं  
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥  
( मुण्डक० २।२।१० )

वहाँ न ( तो ) सर्व प्रकाशित होता है न चन्द्रमा और तारगण ही ( तथा ) न ये विजलियाँ ही ( वहाँ ) कौन्ते हैं; फिर इस अग्निके लिये तो कहना ही क्या है। ( क्योंकि ) उसके प्रकाशित होनेपर ही ( उसके प्रकाशसे ) सभी प्रकाशित होते हैं, उसके प्रकाशसे वह सम्पूर्ण जाग विकाशित होता है।

ब्रह्मैवेदमस्तुं पुरस्ता-  
ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।  
अधश्चोर्ध्वं च प्रसूरं ब्रह्मैवेदं  
विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥  
( मुण्डक० २।२।११ )

यह अमृतस्वरूप परब्रह्म ही सामने है। ब्रह्म ही पैठे है, ब्रह्म ही दायीं और तथा बायीं और, नीचेकी ओर तथा ऊपरकी ओर भी फैला हुआ है। यह जो सम्पूर्ण जगत् है यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है।

हा सुपर्णा सयुजा सखाया  
समानं वृक्षं परिष्वजाते ।  
तयोरन्यः पिष्पलं स्वाद्वर्ष-  
नश्नन्नन्यो अभिन्नाकशीति ॥  
( मुण्डक० ३।१।११ )

एक साथ रहनेवाले ( तथा ) परस्पर सखामात्र रहनेवाले दो पक्षी ( जीवात्मा और परमात्मा ) एक ही हैं।

शरीर )का आश्रय लेकर रहते हैं, उन दोनोंमेंसे एक तो उ वृक्षके कर्मरूप फलोंका स्वाद ले-लेकर उपभोग करता ( किंतु ) दूसरा न खाता हुआ केवल देखता रहता है ।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो-

उनीशया शोचति मुहमानः ।

जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश-

मस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥

( मुण्डक० ३ । १ । २ )

पूर्वोक्त शरीररूपी समान वृक्षपर ( रहनेवाल ) जीवात्मा शरीरकी गहरी आसक्तिमें ) छावा हुआ है, असमर्थतारूप नीनताका अनुभव करता हुआ मोहित होकर शोक करता हता है । जब कभी ( भगवन्की अहेतुकी दयासे भक्तोद्वारा नेत्य ) सेवित ( तथा ) अपनेसे भिन्न परमेश्वरको ( और ) उनकी महिमाको यह प्रत्यक्ष कर लेता है, तब सर्वथा शोकसे प्रहित हो जाता है ।

सत्येन लभ्यत्सप्तसा ह्येष आत्मा

सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो

यं पश्यन्ति यत्यः क्षीणदोषाः ॥

( मुण्डक० ३ । १ । ५ )

यह शरीरके भीतर ही ( हृदयमें विराजमान ) प्रकाश-स्वरूप ( और ) परम विशुद्ध परमात्मा नित्संदेह सत्य-भाषण, तप ( और ) ब्रह्मचर्यपूर्वक यथार्थ ज्ञानसे ही सदा प्राप्त होनेवाला है, जिसे सब प्रकारके दोषोंसे रहित हुए यत्नशील साधक ही देख पाते हैं ।

वृहच्च तद्विष्वमचिन्त्यरूपं

सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभासि ।

कूरात् चुदूरे तदिहान्तिके च

पश्यतित्वहैव चिह्नितं गुहायाम् ॥

( मुण्डक० ३ । १ । ७ )

## महर्षि कदम्बप

धनका मोह

अन्यो ब्राह्मणस्यैष यदर्थनिचयो महान् ।  
अर्थैश्वर्यविमुदो हि श्रेयसो अश्यते ह्विजः ॥  
अर्थसम्पद्विमोहाय विमोहो नरकाय च ।  
तस्मादर्थमनर्थाय श्रेयोऽर्थी दूरतस्यजेत् ॥  
यस्य धर्मार्थमर्थेहा तस्यानीहा गरीयसी ।  
प्रक्षालनाद्धि पक्षस्य दूरादस्पर्दनं वरम् ॥

वह परब्रह्म महान् दिव्य और अचिन्त्यमत्यन्त है, तथा वह सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्मलघुमें प्रकाशित होता है । वह दूसरे भी अत्यन्त दूर है और इस शरीरमें रहकर अति समीप भी है, यहाँ देखनेवालोंके भीतर ही उनकी हृदयत्वांशी गुफामें स्थित है ।

थथा नवः स्यन्दमानाः समुद्रे-

इस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।

तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः

परत्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

( मुण्डक० ३ । २ । ८ )

जिस प्रकार वहती हुई नदियों नाम-रूपको छोड़कर समुद्रमें बिलीन हो जाती हैं, वैसे ही ज्ञानी महात्मा नाम-रूपसे रहित होकर उत्तम-से-उत्तम दिव्य परमपुरुष परमात्माको प्राप्त हो जाता है ।

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद वद्यैव भवति नास्याद्वाप-  
वित् कुले भवति । तरति शोकं तरति पापानं गुहाग्रन्थिभ्यो  
विमुक्तोऽमृतो भवति ॥

( मुण्डक० ३ । २ । ९ )

निश्चय ही जो कोई भी उस परब्रह्म परमात्माको जान लेता है, वह महात्मा ब्रह्म ही हो जाता है । उसके कुलमें ब्रह्मको न जानेवाला नहीं होता । वह शोकसे पार हो जाता है, पाप-समुदायसे तर जाता है, हृदयकी गाँठोंसे सर्वथा छूटकर अमर हो जाता है ।

पश्यान्तः सर्वमेवेदमन्युतस्याच्ययात्मनः ।

तमाराध्य गोविन्दं खानमग्न्यं यदीच्छसि ॥

( विष्णुपुराण १ । ११ । ४५ )

यदि त् श्रेष्ठ स्थानका इच्छुक है तो जिन अविनाशी अन्युतमें यह सम्पूर्ण जगत् ओत-ओत है, उन गोविन्दकी ही आराधना कर ।

योऽर्थेन साध्यते धर्मः क्षयिष्णुः स प्रकीर्तिः ।

यः परार्थं परित्यागः सोऽक्षयो मुक्तिलक्षणम् ॥

( पद० सृष्टि० १९ । २५०—२५३ )

यदि ब्राह्मणके पास धनका महान् संग्रह हो जाय तो वह उसके लिये अनर्थका ही हेतु है; धन-ऐश्वर्यसे मोहित ब्राह्मण कल्याणसे भ्रष्ट हो जाता है । धन-सम्पत्ति मोहमें डालनेवाली होती है । मोह नरकमें गिराता है, इसलिये कल्याण

जाह्नेवाले पुरुषको अनर्थके साधनभूत अर्थका दूसे शी परित्याग कर देना चाहिये। जिसको धर्मके लिये धन-संग्रही इच्छा होती है, उसके लिये उस इच्छाका त्याग ही श्रेष्ठ है; क्योंकि कीचड़को लगाकर भोगेकी अपेक्षा उसका दूसे सर्व न करना ही उत्तम है। धनके द्वारा जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह क्षणशील भाना गया है। दूसरेके लिये जो धनका परित्याग है, वही अद्य धर्म है, वही मोक्षकी गति करनेवाला है।

### पापी और पुण्यात्माओंके लोक

आसंग्योगात्पापकृतामपापां-

स्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात् ।

शुप्तेनादृं दद्यते मिश्रभाव-

ऋमिश्रः स्यात्पापकृद्धिः कथंचित् ॥२३॥

पुण्यस्य लोको मधुमान्वृताच्च-

हिरण्यज्योतिरमृतस्य नाभिः ।

तत्र प्रेत्य मोदते ब्रह्मचारी

न तत्र मृत्युर्जरा नोत दुःखम् ॥२६॥

पापस्य लोको निरयोऽप्रकाशो

नित्यं दुःखं शोकमूर्यिष्टमेव ।

तत्रात्मानं शोचति पापकर्मा

बहीः समाः प्रसप्त्वप्रतिष्ठः ॥२७॥

( महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ७३ )

जैसे सूखी लकड़ियोंके साथ मिली होनेसे गीली लकड़ी भी जल जाती है, उसी तरह पापियोंके सम्मर्कमें रहनेसे धर्मात्माओंको भी उनके समान दण्ड भोगना पड़ता है; इसलिये पापियोंका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये। पुण्यात्माओंको मिलनेवाले सभी लोक मधुर सुखकी खान और अमृतके केन्द्र होते हैं। वहाँ धीके चिराग जलते हैं। उनमें सुवर्णके समान प्रकाश फैला रहता है। वहाँ न मृत्युका प्रवेश है, न बृद्धावस्थाका। उनमें किसीको कोई दुःख भी नहीं होता। ब्रह्मचारीलोग मृत्युके पश्चात् उन्हें लोकोंमें जाकर आनन्दका अनुभव करते हैं। पापियोंका लोक है नरक, जहाँ सदा अँधेरा छाया रहता है। वहाँ अधिक-से-अधिक शोक और दुःख प्राप्त होते हैं। पापात्मा पुरुष वहाँ बहुत धर्षोंतक कष भोगते हुए अस्थिर एवं अशान्त रहते हैं, उन्हें अपने लिये बहुत शोक होता है।

### महर्षि वसिष्ठ

#### श्रीविष्णुकी आराधना

|                             |                    |
|-----------------------------|--------------------|
| प्रामोप्याराधिते            | विष्णो             |
| मगसा                        | यद्यदिच्छसि ।      |
| त्रैलोक्यान्तर्गतं          | स्थानं             |
| किञ्चु                      | वस्तोत्तमोत्तमम् ॥ |
| ( श्रीविष्णु० १ । ११ । ४५ ) |                    |

हे वत्स ! विष्णुभगवानकी आराधना करनेपर तू अपने मनसे जो कुछ चाहेगा, वही प्राप्त कर लेगा; फिर त्रिलोकीके उत्तमोत्तम स्थानकी तो वात ही क्या है ।

#### सानसतीर्थ

सत्यतीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्र्यनिप्रहः ।  
सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थानां सत्यवादिता ॥  
ज्ञानतीर्थं तपस्तीर्थं कथितं तीर्थससकम् ।  
सर्वभूतदयातीर्थं विशुद्धिर्मनसो भवेत् ॥  
न तोषपूतदेहस्य ज्ञानमित्यभिर्यसे ।  
स ज्ञातो यस्य वै धुंसः सुविशुद्धं मनो मतम् ॥

( स्क० पु० दै० अ० मा० १० । ४६—४८ )

तीर्थोंमें सत्यतीर्थ, क्षमातीर्थ, इन्द्रियनिग्रहतीर्थ, सर्वभूत-दयातीर्थ, सत्यवादितातीर्थ, ज्ञानतीर्थ और तपस्तीर्थ—ये सात मानसतीर्थ कहे गये हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दया करनाल्प जो तीर्थ है, उनमें मनकी विशेष शुद्धि होती है। केवल जलसे शरीरको पवित्र कर लेना ही खान नहीं कहलाता; जिस पुरुषका मन भलीभाँति शुद्ध है, उसीने वास्तवमें तीर्थस्नान किया है।

#### गङ्गा-नर्मदा-माहात्म्य

गङ्गा च नर्मदा तापी यमुना च सरस्वती ।  
गण्डकी गोमती पूर्णा एता नद्यः सुपावनाः ॥  
एतासां नर्मदां श्रेष्ठा गङ्गा त्रिपथ्यगमिनी ।  
दद्यते किल्विषं सर्वं दर्शनादेव राघव ॥  
दृष्ट्वा जन्मशतं पापं गत्वा जन्मशतत्रयम् ।  
स्तावा जन्मसहस्रं च हन्ति रेता कलौ तुर्गे ॥  
नर्मदातीर्थमित्य शाकमूलफलैरपि ।  
एकस्मिन् भोजिते विष्रो कोटिभोजफलं लभेत् ॥  
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूमाद् योजनानां जातैरपि ।  
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥

( स्क० पु० भा० ध० मा० ३१ । ३—७ )

गङ्गा, नर्मदा, तापी, यमुना, सरस्वती, गण्डकी, गोमती और पूर्णा—वे सभी नदियाँ परम पावन हैं। इन सबमें नर्मदा और त्रिपथगामिनी गङ्गा श्रेष्ठ हैं। खुनन्दन ! श्रीगङ्गाजी दर्शनमात्रसे ही सब पापोंको जला देती है। कलियुगमें नर्मदाका दर्शन करनेसे सौ जन्मोंके, समीप जानेसे तीन सौ जन्मोंके और जलमें स्नान करनेसे एक हजार जन्मोंके पापोंका वह नाश कर देती है। नर्मदाके तटर जाकर साग और मूल-फलसे भी एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे कोई ब्राह्मणोंको भोजन देनेका फल होता है। जो सौ योजन दूरसे भी गङ्गा-गङ्गाका उच्चारण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता है और भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

### अकिञ्चनता

तपःसंचय एवेह विशिष्टो धनंचयाद् ॥  
त्वज्ज्ञः संचयान् सर्वान् आन्ति नाशसुषद्वाः ।  
न हि संचयवान् कश्चित् सुखी भवति मानद ॥  
यथा यथा न गृह्णाति ब्राह्मणः सम्प्रतिप्रहम् ।  
तथा तथा हि संतोषाद् ब्रह्मतेजो विवर्तते ॥  
अकिञ्चनत्वं राज्यं च तुल्या समतोलयन् ।  
अकिञ्चनत्वमधिकं राज्याद्यि जितात्मनः ॥

( पद्म० सृष्टि० १९ । २४६—२४९ )

इस लोकमें धन-संचयकी अपेक्षा तपस्याका संचय ही श्रेष्ठ है। जो सब प्रकारके लौकिक संग्रहोंका परित्याग कर देता है, उसके सारे उपद्रव शान्त हो जाते हैं। मानद ! संग्रह करनेवाला कोई भी मनुष्य सुखी नहीं हो सकता। ब्राह्मण जैसे-जैसे प्रतिग्रहका त्याग करता है, वैसे-ही-वैसे संतोषके कारण उसके ब्रह्म-तेजकी वृद्धि होती है। एक ओर अकिञ्चनता और दूसरी ओर राज्यको तराजूपर रखकर तोला गया तो राज्यकी अपेक्षा जितात्मा पुरुषकी अकिञ्चनताका ही पलड़ा भारी रहा।

### इन्द्रियसंयम—मनकी समता

अवान्तरनिपातीनि स्वारूढानि मनोस्थम् ।  
पौरुषेणिन्द्रियाण्याशु संव्रय समतां नश ॥

( योगवाचिष्ठ )

मनोस्थ रथपर चढ़कर विषयोंकीओर दौड़नेवाली इन्द्रियाँ वशमें न होनेके कारण वीचमें ही पतनके गर्तमें गिरनेवाली हैं। अतः प्रवल पुरुषार्थद्वारा इन्हें शीघ्र आगे वशमें करके मनको समतामें ले जाइये।

### मोक्षके चार द्वारपाल

मोक्षद्वारे द्वारपालाश्वत्वारः परिकीर्तिं ।  
शमो विचारः संतोषश्वतुर्यः सातुरस्त्रमः ॥  
एते सेच्याः प्रथलेन चत्वारो द्वौ श्वयोऽथना ।  
द्वारसुद्वाट्यन्त्यते मोक्षराजभृहे तथा ॥  
एकं वा सर्वश्वलेन आणांस्त्यक्षत्वा समाश्वयेत् ।  
एकस्मिन् वशगे यान्ति चत्वारोऽपि वशं यतः ॥

( वाणगायत्रिष्ठ )

मोक्षके द्वारपर चार द्वारपाल कहे गये हैं—शम, विचार, संतोष और चौथा सत्सङ्ग । पहले तो इन चारोंका ही प्रयत्नपूर्वक सेवन करना चाहिये। यदि चारोंके सेवनकी शक्ति न हो तो तीनका सेवन करना चाहिये; तीनका रेतन न हो सकनेपर दोका सेवन करना चाहिये। इनका भलीभाँति सेवन होनेपर ये मोक्षरूपी रजयहमें मुशुकुका प्रवेश होनेवे लिये द्वार खोलते हैं। यदि दोके सेवनकी भी शक्ति न हो तो सभ्युर्ण प्रयत्नसे ग्राणोंकी बाजी लगाकर भी इनमेंसे एकक उव्वश्य आश्रयण करना चाहिये। यदि एक वशमें हो जात है तो शेष तीन भी वशमें हो जाते हैं।

### [ वैदिक वाणी ]

( प्रेषक—श्रीश्रीपाद दामोदर सातवलेकर )

१ सुवीरं स्वपत्वं प्रशस्तं रथं विद्या नः दा:—उत्तम वरिभावसे युक्त, उत्तम ऐत्र-पौत्रोंसे युक्त, प्रशंसायोः धन उत्तम बुद्धिके साथ हमें दो ।

२ यातुमावान् यावा च रथं न तरति—हिंसक डाः जिस धनको लूट नहीं सकता ( ऐसा धन हमें दे दो । )

३ विद्या अरातीः तपोभिः अपदह—सर्व शनुंयोऽव अपने तेजोंसे जला दो ( दूर करो । )

४ असीर्यां प्रचातवस्थ—रोगको भलीभाँति नष्ट कर दो

५ इह सुमनाः स्याः—यहाँ उत्तम मनसे युक्त होकर रहो

६ प्रशस्ता विद्यं पनथन्त—प्रशस्त विशाल बुद्धि प्रशंसा सब करते हैं ।

७ विद्या अदेवी माया अभिसन्तु—सब प्रकार राक्षसी कपट-जाल छिन-मिन हो जायें ।

८ अरस्थः अवायोः धूर्तेः पाहि—कृपण, पापामिला, तथा हिंसकसे हमारा रक्षण कर ।

९ असतये नः मा परादाः—मिरुद्धिता हमें प्राप्त न हो

१० सुरिभ्यः त्रृहन्तं रथिम् आवह—शानियोंके गुरु घन दो ।

११ आयुरा अविद्यितामः सुर्याः मदेम—आयुरे दीप म दोषर तथा उच्चम वीर वनेवाल मानन्द प्रसन्न रहेंगे ।  
( ऋग्वेद ७ । १ )

१२ गुणादः शुभम् प्रियंधाः—उत्तम कर्म करनेवाले, पवित्र वीर शुद्धिगाम रहो ।

१३ ईर्देन्त्युभ्य अग्नुर्ग तुदक्षं मात्यवाचं संमदेम—प्रशंसनीय भवनाम् इथ, गत्य धोटनेवालेकी द्वा रहुति करते हैं ।  
( ऋग्वेद ७ । २ )

१४ धर्माया तपुर्मुखी शृतादः पावकः—सत्य-पालन परनेवाला, तेजस्वी मुख्यवाला, भी खानेवाला और पवित्रता परनेवाला मनुष्य रहे ।

१५ सुचेतसं कर्तुं पतेम—उत्तम शुद्ध शुद्धिसे हम फर्तव्य करें ।  
( ऋग्वेद ७ । ३ )

१६ तरणः गृह्णः अस्तु—तरण शान्ति हो ।

१७ धर्मीके संसदि मर्त्यासः पौरुषेयों गृहं न्युकोच—सैनिक वीरोंकी तरामें बैठे वीर युद्धमें मरनेके लिये तैयार होकर पौरुषकी ही धारें करते हैं ।

१८ प्रवेता अमृतः कविः अकविषु भर्तौषु निवायि—विशेष शानी, अमरत्व प्राप्त करनेवाला विद्वान् अज्ञानी मनुष्योंमें जाकर बैठे ( और उनको ज्ञान दे । )  
( ऋग्वेद ७ । ४ )

१९ आर्याय उयोऽतिः जनयन्—आयोंके लिये प्रकाश किया है ।

२० दस्यून् वोकसः आजः—चौरोंको धरोंसे भगा दो ।

२१ एुमतीम् इपम् अस्मे आ ईरयस्व—तेजस्वी अज्ञ हमें दो दो ।  
( ऋग्वेद ७ । ५ )

२२ दाहं वन्दे—शत्रुके विदारण करनेवाले वीरको मैं प्रणाम करता हूँ ।

२३ अद्वैतः धार्ति भातुं कविं शं राज्यं उरुद्दरस्य महानि व्रतानि गतिभिः आ विवासे—कीलोंके धारणकर्ता, तेजस्वी, शानी, मुख्यवाली, राज्यशासक, शत्रुके नगरोंका भेद करनेवाले, वहे पुरुषार्थी वीरके शौर्यपूर्ण कार्योंकी मैं प्रशंसा करता हूँ ।

२४ अक्तून् अधिनः मृध्ववाचः, पणीन् अश्रद्धान्, अयज्ञान् दस्यून् निविद्याय—सत्कर्म न करनेवाले, वृथाभाषी, हिंसावादी, सूद लेनेवाले, श्रद्धाहीन, यज्ञ न करनेवाले डाकुओंको दूर करे ।

२५ वस्तः ईशानं अनानं पृतन्यून् दमयन्तं गृणीषि—

धनके स्वामी, शत्रुके आगे न छुकनेवाले सेना-संचालन करनेवाले, शत्रुका दमन करनेवाले वीरकी प्रशंसा करो ।

२६ वधस्त्वैः देवः अनमयत्—शास्त्रोंसे गुण्डोंको नम्र करना योग्य है ।  
( ऋग्वेद ७ । ६ )

२७ भासुपासः विचेतसः—मनुष्य विशेष बुद्धिमान् बने ।

२८ मन्दः मधुवचा धृतावा विष्पतिः विश्वा दुरोगे अधायि—आनन्द वढ़नेवाला मधुरभाषी शृजुगामी प्रजापालक राजा प्रजाजनोंके धरोंमें जाकर बैठता है ।  
( ऋग्वेद ७ । ७ )

२९ अर्पः राजा समित्ये—श्रेष्ठ राजा प्रकाशित होता है ।

३० मन्दः वहः मसुपः सुमहान् अवेदि—सुखदायक महावीर मानवोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ समझा जाता है ।

३१ विद्वैभिः अर्नीकैः सुमना भुवः—सब सैनिकोंके साथ प्रसन्नान्वितसे वर्ताव करो ।

३२ अमीविचातातं वां भवाति—रोग दूर करना सुख-दायी होता है ।  
( ऋग्वेद ७ । ८ )

३३ मन्दः जासः कवितमः पावकः उषसां उपस्थात् अबोधि—सानन्द—प्रसन्न, वृद्ध, शानी, शुद्धाचारी उषः कालके समय जागता है ।

३४ सुकृत्सु इविन्म्—अच्छा कर्म करनेवालेको धन दो ।

३५ असूरः सुसंस्कृ द्विवः कविः मित्रः भाति—जो मूर्ख नहीं, वह उत्तम सार्थी, कर्त्याणकारी, शानी, मित्र, तेजस्वी होता है ।

३६ गणेश ब्रह्मकृतः भा रिवणः—संघाः शानका प्रचार करनेवालेका नाश नहीं होता ।

३७ पुरनिष्ठं राये यक्षि—बहुत शुद्धिमान्को धन दो ।

३८ पुरुनीधा जस्त्व—विशेष नीतिमानोंकी रहुति करो ।  
( ऋग्वेद ७ । ९ )

३९ शुविः वृषा हरिः—शुद्ध और वलवान् वनमें दुश्खका हरण होता है ।

४० विद्वान् देवयावा वनिष्ठः—विद्वान् देवत्व प्राप्त करने लगा तो वह रहुतिके योग्य होता है ।

४१ मतयः देवयन्तीः—शुद्धियाँ देवत्व प्राप्त करने वाली हों ।

४२ उशिजः विशः मन्दं यविष्म ईडते—सुख चाहने वाली प्रजा सानन्द—प्रसन्न, तरुण वीरकी प्रशंसा करती है ।  
( ऋग्वेद ७ । १० )

४३ अध्यरस्य महान् प्रकेतः—हिंसा-कुटिलतारहित कर्मका दू प्रवर्तक बन। (ऋग्वेद ७। ११)

४४ महा विश्वा हुरितानि साहून्—अपने सामर्थ्यसे सब दुरबल्याओंको दूर कर। (ऋग्वेद ७। १२)

४५ विश्वशुचे विर्यं धे असुरने मन्मधीर्ति भरव्यम्—सब प्रकारसे दुश्म, दुद्धिमान्, असुरोंके नाशक वीरके लिये प्रशंसाके बचन बोलो।

४६ पश्चन् गोपा:—गशुओंका संरक्षण करो।

४७ ब्रह्मणे गातुं विन्द—ज्ञान-प्रचारका मर्ता जानो। (ऋग्वेद ७। १३)

४८ शुक्रशोचिषे दाशोम—बलवान् तेजस्वी वीरको दान देंगे। (ऋग्वेद ७। १४)

४९ पञ्चवर्षीयः दसे दसे कविः युवा गृहस्थिः निषसाद—पाँचों व्राह्मण, धत्रिय, वैद्य, शूद्र, निषादोंके घर-घरमें जानी तस्म गृहस्थ बैठा रहता है।

५० स विश्वतः नः रक्षतु, अहसः पातु—वह सब औरसे हमारा रक्षण करे और हमें पापसे बचावे।

५१ शुभन्तं सुवीरं निधीमहि—तेजस्वी श्रेष्ठ वीरको हम अपने सन्धिधिमें रखते हैं।

५२ सुवीरः अस्मयुः—उत्तम वीर हमारे पास आवे।

५३ वीरवद् वशः दृतिः—हमें वीरोंसे प्राप्त होनेवाला यश मिले।

५४ अहसः रक्ष—पापरो बचाओ। (ऋग्वेद ७। १५)

५५ सूर्यः प्रियासः सन्तु—ज्ञानी प्रिय करनेवाले हैं।

५६ दुहः निदः ज्ञायस्व—द्रोहियोंसे और निन्दकोंसे हमारा बचाव करो। (ऋग्वेद ७। १६)

५७ स्वर्वरा कृषुहि—उत्तम कर्म कुटिलतारहित होकर करो। (ऋग्वेद ७। १७)

५८ सुमतौ शर्मन् स्याम—उत्तम दुद्धि और सुखसे हम दुक्त हों।

५९ सत्या सत्यायम् अतरतः—मित्र मित्रको बचाता है।

६० सृष्टवाचे जेष्म—असत्य भाषण करनेवालोंसे हम परामृत करेंगे।

६१ मनुभ्यः मनुं मिमाय—क्रोधीसे क्रोधको दूर करो।

६२ सूरियः सुदिनानि व्युच्यान्—शनियोंको उत्तम दिन मिलें।

६३ क्षत्रं दूजादां अजरम्—आत्र तेज न न हो, पर बढ़ता जाव। (ऋग्वेद ७। १८)

६४ एकः भीमः विश्वः कृष्णः च्यावत्तिः—एक भयंकर शत्रु सब प्रजाको हिला देता है।

६५ धृषता विश्वाभिः ऋतिभिः प्रायः—पैर्यसे सब संरक्षक शक्तियोंसे अपना संरक्षण करो।

६६ अवृकेभिः वर्त्यैः आग्रस्य—गृहतारहित संरक्षणके सामनेंसे हमारा रक्षण करो।

६७ प्रियासः सत्यायः नः शरणे मदेम—श्रिय मित्रहाती मनुष्योंको प्राप्त करके अपने घरमें आनन्दसे रहेंगे।

६८ नृणां सखा शूरः शिवः अविता भूः—मनुष्योंके शूर और कल्याणकारी मित्र एवं रक्षक बनो। (ऋग्वेद ७। २१)

६९ नर्यः यत् करिष्यन् अपः चक्रिः—मानवोंका हित करनेवाला वीर जो करना चाहता है, उसके छोड़ता है।

७० वस्त्रे शक्तिः अस्तु—तुलसे निवास करनेवाली शक्ति हो। (ऋग्वेद ७। २०)

७१ क्रद्वा अमन् अभि भूः—पुरुषार्थसे पृथ्वीपर विजय प्राप्त करो। (ऋग्वेद ७। २१)

७२ ते सख्या शिवानि सन्तु—तेरी मित्रता हमारे लिये कल्याणकारी हो। (ऋग्वेद ७। २२)

७३ व्यं धीभिः वाजान् चिद्रथसे—त्रुद्धियोंके साथ वलों-को देता है। (ऋग्वेद ७। २३)

७४ तृष्णिः आ प्रयाहि—मनुष्योंके साथ प्रगति कर।

७५ वृषणं शुभं दधत्—बलवान् और सामर्थ्यवान् (वीर पुत्र) को घरमें रखो।

७६ सुवीराम् इषं पित्व—उत्तम वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाला धन्व प्राप्त करो। (ऋग्वेद ७। २४)

७७ समन्यवः सेनाः समन्वत—उत्साही सैनिक छड़ते हैं।

७८ मनः विष्वद्वयग् सा विचारीत—अपना मन चारे ओर भटकने न दो।

७९ देवजूर्व सहः हथानाः—देवोंको प्रिय होनेवाली शक्ति प्राप्त करो।

८० तस्त्राः वाजं सनुयाम—हम तारक बल प्राप्त करें। (ऋग्वेद ७। २५)

## संतकी क्षमा

अग्रोधारे एक पेण्याव संत नौकाद्वारा सरयू पर उत्तेजित हुआसे धातपर आये। वर्षा-वहतु—सरयूमें गाढ़ आयी थी। चाटपर एक छी नौका थी उस समय, और उसमें युद्ध पेण्ये लोग बैठे थे, जैसे लोगोंकी इस उगम में सर्वज्ञ बहुलता है। किसीको भी कष्ट देने, पैतरीका परिवास करनेमें उन्हें आनन्द आता था। साधुओंके तो वेशसे ही उन्हें चिढ़ थी। कोई साधु उनके साथ नौकामें बैठे, वह उनको पसंद नहीं था।

“यहाँ स्थान नहीं है। दूसरी नौकासे आना।” सबका स्वर एक-जैसा बन गया। साधुपर व्यंग भी करने गये। लेकिन साधुको पार जाना था, नौका दूसरी थी नहीं। संघ्या हो चुकी थी और सत्रिमें कोई नौका नहीं नहीं सकती थी। उन्होंने नम्रतासे प्रार्थना की। मल्लाहने कहा—“एक ओर बैठ जाइये।”

नौकामें पहलेसे बैठे, अपनेको सुसभ्य माननेवाले लोगोंको झूँझलाहटते वहुत हुई; किंतु साधुको नौकामें बैठनेसे वे रोक नहीं सके। अब अपना क्रोध उन्होंने साधुपर उतारना प्रारम्भ किया।

साधु पहलेसे नौकाके एक किनारेपर संकोचसे बैठे थे। उनपर व्यंग करने जा रहे थे, इसकी उन्हें चिन्ता नहीं थी। वे चुपचाप भावनासका जप करते रहे।

नौका तटसे दूर पड़ूँची। किसीने साधुपर जल

उलीचा, किसीने उनकी पीठ या गर्दनमें हाथसे आघात किया। इतनेपर भी जब साधुकी शान्ति भंग न हुई तो उन लोगोंने धक्का देकर साधुको बीच धारामें गिरा देनेका निश्चय किया। वे धक्का देने लगे।

सच्चे संतकी क्षमा अपार होती है; किंतु जो संतोंके सर्वस्व हैं, वे सर्वसमर्थ जगन्नायक अपने जनोंपर होते अत्याचारको चुपचाप सह नहीं पाते। साधुपर होता हुआ अत्याचार सीमा पार कर रहा था। आकाशवाणी सुनाया पड़ी—“महात्मन्! आप आज्ञा दें तो इन दुष्टोंको क्षणभरमें भस्म कर दिया जाय!”

आकाशवाणी सबने स्पष्ट सुनी। अब काठों तो खुन नहीं। अभीतक जो शेर बने हुए थे, उनको काठ मार गया। जो जैसे थे, वैसे ही रह गये। भयके मारे हो क्षण उनसे हिलातक नहीं गया।

लेकिन साधुने दोनों हाथ जोड़ लिये थे। वे गद्दद स्वरसे बह रहे थे—“मेरे दयामय स्वामी। ये भी आपके ही अबोध बच्चे हैं। आप ही इनके अपराध क्षमा न करेंगे तो कौन क्षमा करेगा। ये भूले हुए हैं। आप इन्हें क्षमा करें और यदि मुझपर आपका स्नेह है तो मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करें कि इन्हें सद्बुद्धि प्राप्त हो। इनके दोष दूर हों। आपके श्रीचरणोंमें इन्हें अतुरण प्राप्त हो।”

## संतोंका अक्रोध

### संत तुकाराम

श्रीतुकारामजीके माता-पिता परलोकबासी हो चुके हैं। बड़े भाई विरक्त होकर तीर्थयात्रा करने चले गये हैं। परिवारका पूरा भार तुकारामजीपर था और तुकारामजी थे कि उन्हें माया-मोह सिर पटककर थक देये, पर स्पर्श कर नहीं पाते थे।

पैतृक सम्पत्ति अस्त-व्यस्त हो गयी। कर्जदारोंने रेना बंद कर दिया। घरमें जो कुछ था, साधुओं और शीन-दुखियोंकी सेवामें समाप्त हो चुका। दूकानका काम ठप हो गया। परिवारमें उपचास करनेकी नौबत आ गयी। परिवार भी कितना बड़ा—दो लियाँ, एक बच्चा, छोटे भाई और बहिनें। सब निर्भर थे तुकारामजी-पर और तुकाराम—वे तो सांसारिक प्राणी थे ही नहीं।

एक बार खेतमें गन्ने तैयार हुए। तुकारामजीने गन्ने काटे और बोझा बाँधकर सिरपर रखदा। गन्ने बिकें तो बरके लोगोंके मुखमें अन जाय। लेकिन मार्गमें बच्चे इनके पीछे लग गये। वे गन्ना माँग रहे थे। जो सर्वत्र अपने गोपालके दर्शन करते हों, कैसे अस्तीकार कर दें। बच्चोंको गन्ने मिले। वे प्रसन्न होकर उन्हें तोड़ते, चूसते चले गये।

तुकारामजी जब घर पहुँचे, उनके पास केवल एक गन्ना था। उनकी पहली खी रखुमाई चिड़चिड़े स्वभावकी थीं। भूखी पक्की देखा कि उसके पतिदेव तो केवल एक गन्ना छड़ीकी भाँति लिये चले आ रहे हैं। क्रोध आ गया उसे। उसने तुकारामजीके हाथसे गन्ना छीनकर उनकी पीठपर दे मारा। गन्ना टूट गया। उसके दो टुकड़े हो गये।

तुकारामजीके मुखपर क्रोधके बदले हँसी आ गयी। वे बोले—“हम दोनोंके लिये गन्नेके दो टुकड़े मुझे करने ही पड़ते। तुमने बिना कहे

ही यह काम कर दिया। बड़ी साध्वी हो तुम।”

X X X

### संत एकनाथ

दक्षिणके ही दूसरे संत श्रीएकनाथजी महाराज—अक्रोध तो जैसे एकनाथजीका स्वरूप ही था।

ये परम भागवत योगिराज—नित्य गोदावरी-स्नान करने जाया करते थे वे। वह पैठणकी है, जो एकनाथ-जीकी पावन जन्मभूमि है। गोदावरी-स्नानके मार्गमें एक सराय पड़ती थी। उस सरायमें एक पठान रहता था। वह उस मार्गसे आने-जानेवाले, हिंदुओंको बहुत तंग किया करता था। एकनाथजी महाराजको भी उसने बहुत तंग किया। एकनाथजी जब स्नान करके लौटते, वह पठान उनके ऊपर कुछा कर देता। एकनाथजी फिर स्नान करने नदी लौट जाते और जब स्नान करके आने लगते, वह फिर कुछा कर देता उनके ऊपर। कभी-कभी पाँच-पाँच बार यह काण्ड होता।

‘यह काफिर गुस्सा क्यों नहीं करता?’ पठान एक दिन जिदपर आ गया। वह बार-बार कुछा करता गया और एकनाथजी बार-बार गोदावरी-स्नान करने लौटते गये। पूरे एक सौ आठ बार उसने कुलले किये और पूरे एक सौ आठ बार एकनाथजीने नदीमें स्नान किया।

“आप मुझे माफ कर दें। मैं ‘तोबा’ करता हूँ। अब किसीको तंग नहीं करूँगा। आप खुदाके सच्चे बदेहैं—माफ कर दें मुझे।” अन्तमें पठानको अपने कर्मपर लज्जा आयी। उसके भीतरकी पशुता संतकी क्षमासे पराजित हो गयी। वह एकनाथजीके चरणोंपर गिरकर क्षमायाचना करने लगा।

‘इसमें क्षमा करनेकी क्या बात है। आपकी कृपासे मुझे आज एक सौ आठ बार स्नान करनेका सुअवसर मिला।’ श्रीएकनाथजी महाराज बड़े ही प्रसन्न मनसे उस यवनको आश्वासन दे रहे थे।

## महर्षि पिपलाद

ब्रह्मलोक किसको मिलता है  
नेपामेवेष्ट प्रह्लादोको चेष्टा  
तपो प्राप्तवर्य येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ।  
( प्रश्न० १ । १५ )

जिनमें ता और ब्रह्मचर्य  
है, जिनमें सत्य प्रतिष्ठित है,  
उन्हींनो ब्रह्मलोक मिलता है ।  
नेपाममीं विरजो प्रह्लादेन्हो न येषु तिलमनृतं न साया चेति ॥  
( प्रश्न० १ । १६ )

जिनमें न तो कुटिलता और मिथ्याभाग है और न

कमठ ही है, उन्हींको वह विशुद्ध ब्रह्मलोक मिलता  
विज्ञानात्मा सह देवैश्च सत्त्वैः  
प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठित यत्र ।  
तदक्षरं वैदयते यस्तु सोम्य  
स र्वर्घजः सर्वमेवाविवेशेति ॥  
( प्रश्न० ४ । १ )

हे प्रिय ! जिसमें समस्त प्राण, पाँचों भूत तथा ३  
इन्द्रियों और अन्तःकरणके सहित विज्ञानस्वरूप आ  
आश्रय लेते हैं, उस अविनाशी परमात्माको जो जान ले  
है वह सर्वज्ञ है तथा वह सर्वस्वरूप परमात्मामें प्रविष्ट  
जाता है ।

## महर्षि अत्रि

द्वैवात्सं वसु प्रीत्यै प्रेत्य वै कटुकोदयम् ।  
तमात्म ग्राम्यमेवैतत् सुखमानन्त्यमिच्छता ॥  
( प्रश्न० सृष्टि० १९ । २४३ )

प्रात हुआ धन इसी लोकमें आनन्ददायक होता है, मृत्युके  
शाद तो वह यद्य ही कटु परिणामको उत्पन्न करता है; अतः  
जो सुख एवं अनन्त पदकी इच्छा रखता हो, उसे तो इसे  
कदापि नहीं देना चाहिये ।

परः पराणां पुरुषो धस्य तुष्टो जनार्दनः ।  
स प्राप्तोत्यक्षर्यं स्थानमेतत्सत्यं भयोदितम् ॥  
( विष्णुपुराण १ । ११ । ४४ )

जो परा प्रकृति आदिसे भी परे हैं, वे परमपुरुष जनार्दन  
जिससे संतुष्ट होते हैं, उसीको वह अक्षयपद मिलता है—यह  
मैं सत्य-सत्य कहता हूँ ।

न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति मन्दगुणानपि ।  
नान्यदोपेषु रमते सानसूया प्रकीर्तिं ॥  
परस्मिन् बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा ।  
आपन्ने रक्षितव्यं तु दयैषा परिकीर्तिं ॥

आनुशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दानमार्जवम् ।  
प्रीतिः प्रसादो माधुर्यं मार्दवं च यमा दश ॥  
शौचमिज्ञा तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः ।  
व्रतमैनोपवासं च स्नानं च नियमा दश ॥  
( अतिरसृति ३४, ४१, ४८, ४९ )

जो गुणियोंके गुणका खण्डन नहीं करता, किसीके थोड़े-से  
गुणोंकी भी प्रशंसा करता है, दूसरेके दोष देखनेमें मन नहीं  
लगाता, उसके इस भावको 'अनसुख' कहते हैं ।

परायोंमेंसे हो या अपने माई-बन्धुओंमेंसे, मित्र हो, द्वेषका  
पात्र या वैर रखनेवाला हो, जिस-किसीको भी विपत्तिमें  
देखकर उसकी रक्षा करनी ही 'दया' कहलाती है ।

अकूरता ( दया ), क्षमा, सत्य, अहिंसा, दान, नम्रता,  
प्रीति, प्रसन्नता, मधुर वाणी और कोमलता—ये दस  
यम हैं ।

परिवृत्ता, यज्ञः तप, दान, स्वाध्याय, जननेन्द्रियका  
निग्रह, व्रत, मौन, उपवास और स्नान—ये दस नियम हैं ।

## महर्षि विश्वामित्र

भोगसे कामनाकी शान्ति  
नहीं होती

कार्यं कामयमानस्य

यदि कामः समुद्घति ।

अथैनमपरः कामो

भूयो विद्यति बाणवन् ॥

न जातु कामः कामानासु पर्मो गेन शास्यति ।

हविषा कृष्णवर्तमेव भूय पूर्वाभिवर्धते ॥

कामानभिलषन्मोहान्न नरः सुखमेधते ।

( पञ्च० स० १९ । २६२—२६४ )

किसी कामनाकी पूर्ति चाहनेवाले मनुष्यकी यदि एक कामना पूर्ण होती है तो दूसरी नयी कामना उत्पन्न होकर उसे पुनः बाणके समान बींधने लगती है । भोगोंकी इच्छा उपभोगके द्वारा कभी शान्त नहीं होती, प्रत्युत धी डालनेसे प्रज्वलित

होनेवाली अग्रिमी भाँति वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है । भोगोंकी अमिलाषा रखनेवाला पुरुष मोहवश कभी सुख नहीं पाता ।

## सत्यकी महिमा

सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति सेदिनी ।

सत्यं चोक्तं परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ॥

अश्वेधसहस्रं च सत्यं च तुलशा धृतम् ।

अश्वेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥

( मार्क० ८ । ४१—४२ )

सत्यसे ही सूर्य तप रहा है । सत्यपर ही पृथ्वी टिकी हुई है । सत्य-भाषण सबसे बड़ा धर्म है । सत्यपर ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है । एक हजार अश्वेध और एक सत्यको यदि तराजूपर तोला जाय तो हजार अश्वेधसे सत्य ही भारी सिँड होगा ।

## महर्षि भरद्वाज

चिदाभन्दमयः साक्षी निर्मुणो निरुपाधिकः ।

नित्योऽपि भजते तां तामवस्थां स यदच्छ्या ॥

पवित्राणां पवित्रं यो द्युगतीनां परा गतिः ।

दैवतं देवतानां च श्रेयसां श्रेय उत्तमम् ॥

( स्त० पु० १० वै० १० । ३७—३८ )

भगवान् विष्णु चिदाभन्दस्वरूप, सबके साक्षी, निर्मुण, उपाधिशून्य तथा नित्य होते हुए भी स्वेच्छासे भिन्न-भिन्न अवस्थाओंको अझीकार करते हैं । वे पवित्रोंमें परम पवित्र हैं, निराश्रयोंकी परम गति है, देवताओंके भी देवता हैं तथा कल्याणमय वस्तुओंमें भी परम कल्याणस्वरूप हैं ।

## तृष्णा

जीर्णित जीर्णतः केशा दन्ता जीर्णित जीर्णतः ।

जीविताशा धनाशा च जीर्णतोऽपि न जीर्णति ॥

चक्षुः श्रोत्राणि जीर्णित तृष्णौका तरुणायते ।

सूच्या सूत्रं वथा वस्त्रे संसूचयति सूचिकः ॥

तद्वत्संसारसूत्रं हि तृष्णासूच्योपनीयते ।

वथा शङ्खं रुपोः कथे वर्धमाने च वर्धते ॥

तथैव तृष्णा वित्तेन वर्धमानेन वर्धते ।

अनन्तपारा दुष्पूरा तृष्णा दोषशतावहा ॥

अधर्मवद्गुला चैव लसान्तां परिवर्जयेत् ॥

( पञ्च० स० १९ । २५४—२५७ )

जब मनुष्यका शरीर जीर्ण होता है, तब उसके बाल पक जाते हैं और दाँत भी टूट जाते हैं; किंतु धन और जीवनकी आशा बूढ़े होनेपर भी जीर्ण नहीं होती—वह सदा नयी ही बनी रहती है । आँख और कान जीर्ण हो जाते हैं; पर एक तृष्णा ऐसी है, जो तरुणी ही होती रहती है । जैसे दरजी सूर्यसे बन्धमें सूतको प्रवेश करता रहता है, उसी प्रकार तृष्णा सूर्यसे संसार-रूपी सूतका अपने अन्तःकरणमें प्रवेश होता है; जैसे वारहसिंगे के सींग शरीर बढ़नेके साथ बढ़ते हैं, वैसे ही धनकी बृद्धिके साथ-साथ तृष्णा बढ़ती है । तृष्णाका कहीं और-छोर नहीं है, उसका पेट भरना कठिन होता है, वह सैकड़ों दोषोंको ढोये फिरती है, उसके द्वारा बहुत-से अधर्म होते हैं । अतः तृष्णा का परित्याग कर दे ।

## महर्षि पुलस्त्य

परं ब्रह्म परं धाम योऽसौ ब्रह्म तथा परम् ।  
तमाराध्य हरिं याति सुकिमप्यतिदुर्लभाम् ॥  
( विष्णुपु० १ । ११ । ४६ )

जो परब्रह्म, परमधाम और परस्वरूप हैं, उन हरिकी आराधना करनेसे मनुष्य अति दुर्लभ मोक्षपदको भी प्राप्त कर लेता है ।

**तीर्थसेवनका फल किसको मिलता है ?**

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।  
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥  
प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित् ।  
अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥

## महर्षि पुलह

ऐन्द्रमिन्द्रः परं स्थानं यमाराध्य जगत्पतिम् ।  
प्राप्य यज्ञपतिं विष्णुं तमाराध्य सुद्रवत् ॥  
( विष्णुपु० १ । ११ । ४७ )

हे सुव्रत ! जिन जगत्पतिकी आराधनासे इन्द्रने अत्युत्तम इन्द्रपद प्राप्त किया है, तू उन यज्ञपति भगवान् विष्णुकी आराधना कर ।

अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढवतः ।  
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥  
( पद्मो सृष्टि० १९ । ८—१० )

जिसके हाथ, पैर और मन संयममें रहते हैं तथा जो विद्वान्, तपसी और कीर्तिमान् होता है, वही तीर्थ-सेवनका फल प्राप्त करता है । जो प्रतिग्रहसे दूर रहता है—किसीका दिया हुआ दान नहीं लेता, प्रारब्धवश जो कुछ प्राप्त हो जाय उसीसे संतुष्ट रहता है तथा जिसका अहङ्कार दूर हो गया है, ऐसे मनुष्यको ही तीर्थ-सेवनका पूरा फल मिलता है । राजेन्द्र ! जो स्वभावतः क्रोधहीन, सत्यवादी, दृढ़ता-पूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाला तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मभाव रखनेवाला है, उसे तीर्थ-सेवनका फल प्राप्त होता है ।

## महर्षि मरीचि

अनाराधितगोविन्दैर्नरैः स्थानं नृपत्मज ।  
न हि सम्प्राप्यते श्रेष्ठं तस्माद्वाराधयाच्युतम् ॥  
( विष्णुपुराण १ । ११ । ४३ )

हे राजपुत्र ! बिना गोविन्दकी आराधना किये मनुष्योंको वह श्रेष्ठ स्थान नहीं मिल सकता; अतः तू श्रीअच्युतकी आराधना कर ।

## भगवान् दत्तात्रेय

### मोक्ष-प्राप्तिका उपाय

त्यक्तसङ्गे जितकोदो लब्धाहारो जितेन्द्रियः ।  
पिघाय बुद्ध्या द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत् ॥  
शून्येष्वेवाकाशेषु गुहासु च वनेषु च ।  
निष्ययुक्तः सदा योगी ध्यानं सम्यगुपक्षेत् ॥  
वाग्भृणः कर्मभृणश्च मनोदृणश्च ते त्रयः ।  
यस्यैते नियता दण्डाः स विद्वण्डी महायतिः ॥  
सर्वभात्मस्यं यस्य सदसञ्जगदीदृशम् ।  
गुणागुणमयं तस्य कः प्रियः को नृपाप्यिः ॥  
विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाङ्क्षनः ।

समस्तभूतेषु समः समाहितः ।  
स्थानं परं शाश्वतमव्यर्थं च  
परं हि गत्वा न पुनः प्रजायते ॥

वेदाच्छ्रेष्ठाः सर्ववज्ञकियाश्र  
यज्ञाऽजप्यं ज्ञानमार्गश्च जप्यात् ।  
ज्ञानाद् ध्यानं सङ्ग्रहागव्यनेतं  
तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलक्षिः ॥  
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्यमादी  
शुचिस्तथैकान्तरतियतेन्द्रियः ।  
समाप्त्याद् योगमिमं महाक्षा  
विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः ॥  
( मार्कण्डेय० ४१ । २०—२६ )

आसक्तिका त्याग करके, क्रोधको जीतकर, स्वल्पाहारी और जितेन्द्रिय हो, बुद्धिसे हन्त्रियदारोंको रोककर मनको ध्यानमें ल्पावे । नित्य योगयुक्त रहनेवाला योगी सदा एकान्त स्थानेमें रहे ।

आपके नामका स्वरण करता है तो वह सम्पूर्ण पापोंके महासागर को पार करके परमपदको प्राप्त होता है। सभी बेदों और इतिहासोंका यह स्पष्ट सिद्धान्त है कि राम-नामका जो स्वरण किया जाता है, वह पापोंसे उद्धार करनेवाला है। ब्रह्महत्या-जैसे पाप भी तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक आपके नामोंका सप्तरूपसे उच्चारण नहीं किया जाता। महाराज ! आपके नामोंकी गर्जना सुनकर महापातकरुपी

गजराज कहीं छिपनेके लिये स्थान ढूँढ़ते हुए भाग खड़े होते हैं। तावत्पापभियः पुंसां कातराणां सुपापिनाम् । यावन्न वदते वाचा रामनाम मनोहरस् ॥ ( पद्मपु० पाताल० ३७ । ५६ )

महान् पाप करनेके कारण कातर हृदयवाले पुरुषोंको तभीतक पापका भय बना रहता है, जबतक वे अपनी जिह्वासे परम मनोहर राम-नामका उच्चारण नहीं करते।

## महर्षि लोमश

रामाश्रास्ति परो देवो रामाश्रास्ति परं ब्रतम् ।  
न हि रामात् परो योनो न हि रामात्परो मखः ॥  
तं स्मृत्वा चैव जप्त्वा च पूजयित्वा नरः पदम् ।  
प्राप्नोति परमामृद्धिमैहिकामुष्मिकीं तथा ॥  
संस्मृतो मनसा ध्यातः सर्वकामफलप्रदः ।  
ददाति परमां भक्तिं संसाराम्भोधितरिणीम् ॥  
श्वप्नाकोऽपि हि संस्मृत्य सर्वं याति परां गतिम् ।  
ये वेदशास्त्रनिरतास्त्वाद्वास्तत्र किं पुनः ॥  
सर्वेषां वेदशास्त्राणां रहस्यं ते प्रकाशितम् ।  
समाचर तथा त्वं वै यथा स्यान्ते मनीषितम् ॥  
एको देवो रामचन्द्रो ब्रतमेकं तदर्चनम् ।  
मन्त्रोऽप्येकश्च तज्जाम शास्त्रं तद्वयेव तत्सुतिः ॥  
तस्मात्सर्वात्मना रामचन्द्रं भज मनोहरम् ।  
यथा गोप्यद्वत्तुञ्चो भवेत्संसारसागरः ॥

( पद्मपु० पाताल० ३५ । ४६—५२ )

श्रीरामसे बड़ा कोई देवता नहीं; श्रीरामसे बढ़कर कोई

ब्रत नहीं, श्रीरामसे बड़ा कोई योग नहीं तथा श्रीरामसे बढ़कर कोई यज्ञ नहीं है। श्रीरामका स्वरण, जप और पूजन करके मनुष्य परमपद तथा इस लोक और परलोककी उत्तम समुद्धिको प्राप्त करता है। श्रीखुनाथजी सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंके दाता हैं। मनके द्वारा स्वरण और ध्यान करनेपर वे अपनी उत्तम भक्ति प्रदान करते हैं, जो संसारसमुद्रसे तारनेवाली है। चाण्डाल 'भी श्रीरामका स्वरण करके परमगतिको प्राप्त कर लेता है। फिर तुम्हारे-जैसे वेदशास्त्र-परायण पुरुषोंके लिये तो कहना ही क्या है। यह सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंका रहस्य है, जिसे मैंने तुमपर प्रकट कर दिया। अब जैसा तुम्हारा विचार हो, वैसा ही करो। एक ही देवता है—श्रीराम; एक ही ब्रत है—उनका पूजन; एक ही मन्त्र है—उनका नाम तथा एक ही शास्त्र है—उनकी स्तुति। अतः तुम सब प्रकारसे परम मनोहर श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो, जिससे तुम्हारे लिये यह महान् संसारसागर गायके खुरुके समान तुच्छ हो जाय।

## महर्षि आपस्तम्ब

### दीनोंके प्रति सङ्क्षाव

दुःखितानीह भूतानि यो न भूतैः पृथग्विधैः ।  
केवलात्मसुखेच्छातोऽवेन्नृशंसतरोऽस्ति कः ॥  
अहो स्वस्थेष्वकाशृण्यं स्वार्थे चैव बलिवृथा ।  
शनिनामपि चेद्यस्तु केवलात्महिते रतः ॥  
शनिनो हि यथा स्वार्थमाश्रित्य ध्यानमाश्रिताः ।  
दुःखात्मानीह भूतानि प्रयान्ति शरणं कुतः ॥  
पोऽभिवाङ्गति भोक्तुं वै सुखान्येकान्ततो जनः ।  
पापाद् परतरं तं हि प्रवदन्ति मुमुक्षवः ॥

को नु मे स्यादुपायो हि येनाहं दुःखितात्मनाम् ।  
अन्तः प्रविश्य भूतानां भवेयं सर्वदुःखमुक् ॥  
यन्मास्ति शुभं किंचित्तदीनानुपगच्छतु ।  
थत् कृतं दुष्कृतं तैश्च तदशेषमुपैतु माम् ॥  
दध्वा तान् कृपणान् व्यङ्ग्यननङ्ग्यान् रोगिणस्तथा ।  
दया न जायते यस्य स रक्ष इति मे भविः ॥  
प्राणसंशयमापन्नान् प्राणिनो भयविह्वलान् ।  
यो न रक्षति शक्तोऽपि स तत्पापं समझन्ते ॥  
आहूतानां भयातीनां सुखं यदुपजायते ।  
तस्य स्वर्गापवर्गौ च कलां नार्हन्ति पोऽङ्गीम् ॥

प्राणिनामुपग्रहाणम् यज्ञेषां परब्रं च ।  
वर्गंशा मतमा रागा तदेव मतिमान् भवेत् ॥  
( पिण्ड० ३।१२।४५ ) आचरण करे ।

जो कार्य इहलोक और परलोकमें प्राणियोंके हितका साधक हो, मतिमान् पुरुष मन, वचन और कमसे उसका

## महर्षि शालग्राम

### शालग्राम-पूजन

शालग्रामगतं दासं निषेधं विद्धि सानद ।  
शालग्रामस्थि च साख्योनां नैवाभावः प्रकार्तितः ॥  
मा यंशयो भूते चात्र नाम्नुपे संशयात्कल्पम् ।  
शालग्रामार्चनपराः शुद्धदेहा विवेकिनः ॥  
न ते यमपुरं यान्ति चातुर्मास्येव पूजकाः ।  
शालग्रामार्चितं सात्यं शिरसा धारयन्ति ये ॥  
तेषां पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ।  
शालग्रामशिलाम् तु ये प्रयच्छन्ति दीपकम् ॥  
तेषां संरपुरे वासः कदाचिन्नैव जायते ।  
शालग्रामगतं विष्णुं सुमनोभिर्मनोहरैः ॥  
येऽर्घ्यस्ति महाद्वाद्रं सुक्ते देवे हरौ तथा ।  
एकासृनेन स्त्रनं ये कुर्वन्ति सदा नराः ॥  
शालग्रामशिलायां च न ते संसारिणो नराः ।  
भुक्तेन्द्रियान्तममर्लं शालग्रामगर्लं हरिम् ॥  
हृष्टि न्यस्य सदा भक्त्या यो ध्यायति स मुक्तिभाक् ।  
तुलसीदलजां मालां शालग्रामोपरि न्यसेत् ॥  
चातुर्मास्ये विशेषेण सर्वकामानवाप्न्यात् ।  
न तावत् पुण्यजा माला शालग्रामस्य बछुभा ॥  
सर्वदा तुलसी देवी विष्णोनिव्यं शुभा प्रिया ।  
तुलसी बहुभा नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥  
शालग्रामो महाविष्णुस्तुलसी श्रीनं संशयः ।  
अतो वासितपार्नीयैः स्नाप्य चन्दनचर्चितैः ॥  
मञ्जरीभिर्युतं देवं शालग्रामशिलाहरिम् ।  
तुलसीसम्भविनिश्च कृत्वा कामानवाप्न्यात् ॥  
पत्रे तु प्रथमे ब्रह्मा द्वितीये भगवान्नित्वः ।  
मञ्जरी भगवान् विष्णुस्तदेकत्रस्याया तदा ॥  
मञ्जरीदलसंयुक्ता ग्राहा बुधजनैः सदा ।  
तां विवेद्य हरौ भक्त्या जन्मादिक्षयकारणम् ॥  
शालग्रामे धूपराशि निवेद्य हरितपरः ।  
चातुर्मास्ये विशेषेण मनुष्यो नैव नारकी ॥

शालग्रामं नरो हृष्टा पूजितं कुसुमैः शुभैः ।  
सर्वपापविशुद्धात्मा याति तन्मयतां हरौ ॥

( स्क० पु० चा० मा० ११।४८-६३ )

दूसरोंको मान देनेवाले दास ! शुद्धोंमें केवल असत् शुद्धके लिये शालग्रामशिलाका निषेध है । लियोंमें भी पतित्रता छियोंके लिये उसका निषेध नहीं किया गया है । इस विषयमें तुम्हें संदेह नहीं होना चाहिये । संशयसे तुम्हें कोई फल नहीं मिलेगा । जो चातुर्मास्यमें शालग्रामकी पूजामें तत्पर रहकर अपने तन-मनको शुद्ध कर चुके हैं, वे विवेकी पुरुष कभी यमलोकमें नहीं जाते । जो शालग्राम-शिलाके ऊपर चढ़ायी हुई माला अपने मस्तकपर धारण करते हैं, उनके सहस्रों पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं । जो शालग्राम-शिलाके आगे दीपदान करते हैं, उनका कभी यमपुरमें निवास नहीं होता । जो शालग्राममें स्थित भगवान् विष्णुकी मनोहर पुष्पोद्घारा पूजा करते हैं तथा जो भगवान् विष्णुके शयनकाल -चातुर्मास्यमें शालग्राम-शिलाको पञ्चामृतसे स्नान करते हैं, वे मनुष्य संसार-वन्धनमें कभी नहीं पड़ते । मुक्तिके आदि-कारण निर्मल शालग्रामगत श्रीहरिको अपने हृदयमें स्थापित करके जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक उनका चिन्तन करता है, वह मोक्षका भागी होता है । जो सब समयमें, विशेषतः चातुर्मास्यकालमें, भगवान् शालग्रामके ऊपर तुलसीदलकी माला चढ़ाता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । तुलसीदेवी भगवान् विष्णुको सदा प्रिय हैं । शालग्राम महाविष्णुके स्वरूप हैं और तुलसीदेवी निःसंदेह साक्षात् लक्ष्मी हैं । इसलिये चन्दनचर्चित मुगन्धित जलसे तुलसीमञ्जरीसहित शालग्रामशिलारूप श्रीहरिको नहलकर जो तुलसीकी मञ्जरियोंसे उनका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको मञ्जरियोंसे उनका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाता है । तुलसीके प्रथम दलमें ब्रह्माजी, द्वितीय दलमें भगवान् शिव तथा मंजरीमें भगवान् विष्णु निवास करते हैं, अतः विद्वान् भक्तोंको सदा इन तीनोंके संनिधानसे मुक्त मञ्जरी और दलसहित तुलसीका चयन करना चाहिये । उसे भगवान् श्रीहरिकी सेवामें भक्तिपूर्वक अर्पण करनेसे जन्म, मृत्यु आदि

कलेशोंका नाश होता है। जो भगवान् श्रीहरिकी आराधनामें संलग्न हो सदा-विशेषतः चातुर्मास्यमें शालग्रामशिलाको धूप-राशि निवेदन करता है, वह मनुष्य कभी नरकमें नहीं पड़ता। उत्तम पुण्योंसे पूजित भगवान् शालग्रामका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर श्रीहरिसे तन्मयताको प्राप्त होता है।

शालग्रामस्तु गण्डक्यां नर्मदायां भवेश्वरः ।  
उत्पद्धते स्वर्यंभूश्च तावेतौ नैव कृत्रिमौ ॥

( स्क० पु० चा० मा० २८ । २ )

गण्डकी नदीमें भगवान् विष्णु शालग्रामरूपसे प्रकट होते हैं और नर्मदा नदीमें भगवान् शिव नर्मदेश्वररूपसे उत्पन्न होते हैं। ये दोनों साधात् विष्णु और शिव ही हैं, कृत्रिम नहीं हैं।

तस्माद्दर्दं लिङ्गरूपं शालग्रामगतं हरिम् ।  
येऽर्चयन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुःखयातनाः ॥

चातुर्मास्ये समायाते विशेषात् पूजयेच तौ ।  
अर्चितौ यावभेदेन स्वर्गमोक्षप्रदायकौ ॥  
देवौ हरिहरौ भक्त्या विग्रहहिंगवां गतौ ।  
येऽर्चयन्ति महाशूद्रं तेषां मोक्षप्रदो हरिः ॥  
विवेकादिगुणैर्युक्तः स इद्दो याति सद्वित्तम् ।

( स्क० पु० चा० मा० २८ । २, ३, ४, ६ )

शूद्रश्रेष्ठ ! जो लिङ्गरूपी शिव और शालग्रामगत श्रीविष्णुका भक्तिपूर्वक पूजन करते हैं, उन्हें दुःखमयी यातना नहीं भोगनी पड़ती। चौमासेमें शिव और विष्णुका विशेष रूपसे पूजन करना चाहिये। दोनोंमें भेदभाव न रखते हुए यदि उनकी पूजा की जाय तो वे स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले होते हैं। जो भक्तिपूर्वक व्राह्मण, अग्नि और गौमेस्थित हरि और हरकी पूजा करते हैं, उन्हें भगवान् श्रीहरि मोक्ष प्रदान करते हैं। जो विवेक आदि गुणोंसे युक्त है, वह शूद्र उत्तम गतिको प्राप्त होता है।

## महर्षि मार्कण्डेय

### उपदेश

दयावान् सर्वभूतेषु

हिते रत्तोऽन्तस्युकः ।

सत्यवादी सृदुर्दान्तः

प्रजानां रक्षणे रतः ॥

चर धर्मं त्यजाधर्मं

पितृन् देवांश्च पूजय ।

प्रमादाद् यत्कुतं तेऽभूत् सम्यग्दानेन तज्ज्य ॥

अलं ते मानमाश्रित्य सततं परवान् भव ॥

( महा० वन० १९१ । २३-२५ )

राजन् ! तुम सब प्राणियोंपर दया करो। सबका हित-साधन करनेमें लो रहो। किसीके गुणोंमें दोष न देखो। सदा सत्य-भाषण करो। सबके प्रति विनीत और कोमल बने रहो। हानिद्रियोंको वशमें रखो। प्रजाकी रक्षामें सदा उत्पर रहो। धर्मका आचरण और अधर्मका त्याग करो। देवताओं और पितरोंकी पूजा करो। यदि असावधानीके कारण किसीके मनके चिपरीत कोई व्यवहार हो जाय तो उसे अच्छी प्रकार दानसे संतुष्ट करके प्रसन्न करो। मैं सबका

स्वामी हूँ ऐसे अहंकारको कभी पास न आने दो, तुम अपनेको सदा पराधीन समझते रहो।

सर्वेषामेव दानानामन्त्रदानं परं विद्वः ।

सर्वप्रीतिकरं पुण्यं बलपुष्टिविवर्धनम् ॥

नाशदानसमं दानं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।

अन्नाद्यवन्नित भूतानि त्रियन्ते तद्भावतः ॥

( स्क० पु० रे० ख० ५२ । १०-११ )

सब दानोंमें अन्नदानको उत्तम माना गया है। वह सबको प्रसन्न करनेवाला, पुण्यजनक तथा बल और पुष्टिको बढ़ानेवाला है। तीनों लोकोंमें अन्नदानके समान दूसरा कोई दान नहीं है। अबसे ही प्राणी उत्पन्न होते और अन्नका अभाव होनेपर मर जाते हैं।

पुण्यतीर्थभिषेकं च पवित्राणां च कीर्तनम् ।

सद्मि: सम्माषणं चैव प्रशस्तं कीर्तयते तुर्थैः ॥

( महा० वन० २०० । ५४ )

पुण्यतीर्थोंमें स्नान, पवित्र वस्तुओंके नामका उच्चारण तथा सत्पुरुषोंके साथ वार्तालाप करना—यह सब विद्वानोंके द्वारा उत्तम बताया जाता है।

## गङ्गा-महिमा

प्रोत्तानां वदर्श्य गङ्गां भवति यो नः ।  
भूषि दुष्टकर्त्तयो चमो परमां नतिम् ॥  
विनिमयमुख्ये पर्वतंद्वा भद्राणि पदयति ।  
भूषादा च पूर्णा च पुद्माण्यसमग्नं कुलम् ॥  
मध्यवाही विनीतो भर्तियां परमां मित्रः ।  
भगवन्मारी गङ्गां गोदानाणितिः रतः ॥  
शहाष्मूर्षीर्मये ग्रातो मुख्येन विनिविष्ट ।  
भगवन्मारीन् शासन् सम्बद्धं प्राप्तोनि पुण्डलयन् ॥

( यद० नाम० ४१ । १४—१७ )

जो मनुष्य सहस्रो योजन दूरसे भी गङ्गाजीका सामने करता है, वह पापाचारी होनेपर भी परम गतिको प्राप्त होता है । मनुष्य गङ्गाका नाम लेनेसे पापमुक्त होता है, दर्शन करनेसे कथायाणका दर्शन करता है तथा सान करने और जल पीनेसे अपने कुलकी सात पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है । जो सत्यदाती, क्रोधजयी, अर्हिता-धर्ममें स्थित, धर्मतुणामी, तत्त्वज्ञ तथा गी और ब्राह्मणोंके हितमें तत्पर होकर गङ्गा-यमुनाके वीचमें स्थान करता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है तथा मन-चीते समस्त भोगोंको पूर्णस्वप्ने प्राप्त कर लेता है ।

## महर्षि शाष्ठित्य

### ब्रजभूमिमें भगवान्की लीला

प्रिय परिदित् और वज्ञानम् ।  
मैं हुमलोगोंसे ब्रजभूमिका रहस्य  
वस्तिलाता हूँ । तुम दत्तचित्त होकर  
मुझो । 'ब्रज' शब्दका अर्थ है व्यापक ।  
इस ब्रजवचनके अनुसार व्यापक  
दौनेके कारण ही इस भूमिका नाम  
'ब्रज' पड़ा है । सच्च, रज, तम—इन तीन गुणोंसे अतीत जो  
परदरादा है, वही व्यापक है । इसलिये उसे 'ब्रज' कहते हैं । वह  
वृद्धानन्दस्वरूप, परम व्योतीर्तमय और अविनाशी है । जीवन्मुक्त  
पुरुष उसमें स्थित रहते हैं । इस परदरास्वरूप ब्रजधाममें  
नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका निवास है । उनका एक-एक  
अङ्ग सच्चिदानन्दस्वरूप है । वे आत्माराम और आत्मकाम  
हैं । प्रेमरसमें झूंये हुए रसिकजन ही उनका अनुभव करते  
हैं । भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा है—राधिका; उसमें रसण  
करनेके कारण ही रहस्य-रसके भर्त्ति ज्ञानी पुरुष उन्हें



'आत्माराम' कहते हैं । 'काम' शब्दका अर्थ है कामना—  
अभिलाषा; ब्रजमें भगवान् श्रीकृष्णके वाञ्छित पदार्थ हैं—  
गौएँ, ग्वालबाल, गोपियाँ और उनके साथ लीला-विहार  
आदि; वे सब के सब यहाँ नित्य प्राप्त हैं । इसीसे श्रीकृष्णको  
'आत्मकाम' कहा गया है । भगवान् श्रीकृष्णकी यह रहस्य-  
लीला प्रकृतिसे पेरे है । वे जिस समय प्रकृतिके साथ खेलते  
लगते हैं, उस समय दूसरे लोग भी उनकी लीलाका अनुभव  
करते हैं । प्रकृतिके साथ होनेवाली लीलाएं ही रजोगुण,  
सच्चगुण और समोगुणके द्वारा सुषित, स्थिति और प्रलभकी  
प्रतीति होती है । इस प्रकार वह निश्चय होता है कि भगवान्  
की लीला दो प्रकारकी है—एक वास्तवी और दूसरी  
व्यावहारिकी । वास्तवी लीला स्वसंवेद्य है—उसे स्वयं भगवान्  
और उनके रसिक भक्तजन ही जानते हैं । जीवोंके सामने जो  
लीला होती है, वह व्यावहारिकी लीला है । वास्तवी लीलाके विना  
व्यावहारिकी लीला नहीं हो सकती; परंतु व्यावहारिकी लीला-  
का वास्तविक लीलाके राज्यमें कभी प्रवेश नहीं हो सकता ।

( स्कन्दपुराणान्तर्गत श्रीमद्भा० माहात्म्य ३ । १९-२६ )

## महर्षि भृगु

### साधु, धर्म, समता, शान्ति

ये लोकदेविणो मूर्खाः कुमारंरत्नज्ञयः ॥  
ते राजन् दुर्जना ज्ञेयाः सर्वधर्मविहिताः ॥  
धर्माधर्मविवेकेन वेदमार्गानुसारिणः ॥  
सर्वलोकहितासक्ताः साधवः परिकीर्तिः ॥  
इरिभक्तिकरं यत्तसद्भिष्म परिजितम् ॥

आत्मनः प्रीतिजनकं तद् पुण्यं परिकीर्तिम् ।  
सर्वं जगदिदं विष्णुविध्वणः सर्वस्य करणम् ॥  
अहं च विष्णुर्यज्ञानं तद्विष्णुस्वरणं विदुः ।  
सर्वदेवमयो विष्णुविधिना पूजयामि तम् ॥  
इति या भवति श्रद्धा सा तद्विद्धिः प्रकीर्तिः ।  
सर्वमूलमयो विष्णुः परिपूर्णः समात्मः ॥

इत्यभेदेन या बुद्धिः समता सा प्रकृतिता ।  
समता शत्रुमित्रेषु चक्षित्वं च तथा नृप ॥  
यद्वच्छालाभसंतुष्टिः सा शान्तिः परिकृतिता ।  
( ना० पु० १६ । २८-३५ )

जिनकी बुद्धि सदा कुमारगमें लगी रहती है, जो सब लोगोंसे देव रखनेवाले और मूर्ख हैं, उन्हें सम्पूर्ण धर्मोंसे बहिर्भूत दुष्ट पुरुष जानना चाहिये । जो लोग धर्म और अधर्मका विवेक करके वेदोक्त मार्गपर चलते हैं तथा सब लोगोंके हितमें संलग्न रहते हैं, उन्हें 'साधु' कहा गया है । जो भगवान्‌की भक्तिमें सहायक है, साधु पुरुष जिसका पालन करते हैं तथा जो अपने लिये भी आनन्ददायक है, उसे 'धर्म' कहते हैं । यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विष्णुका स्वरूप है, विष्णु सबके कारण है और मैं भी विष्णु हूँ—यह जो ज्ञान है, उसीको 'भगवान् विष्णुका सरण' समझना चाहिये । भगवान् विष्णु सर्वदेवमय है, मैं विष्णुर्वक उनकी पूजा करूँगा, इस प्रकारसे जो श्रद्धा होती है, वह उनकी 'भक्ति' कही गयी है । श्रीविष्णु सर्वभूतस्वरूप हैं, सर्वत्र परिपूर्ण सनातन परमेश्वर हैं, इस प्रकार जो भगवान्‌के प्रति अमेद-बुद्धि होती है, उसीका नाम 'समता' है । राजन् ! शत्रु और भित्रोंके प्रति समान भाव हो, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अपने वशमें हों और दैववश जो कुछ मिल जाय, उसीमें संतोष रहे तो इस स्थितिको 'शान्ति' कहते हैं ।

### संन्यासी

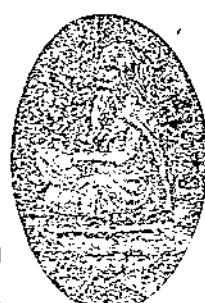
तद्यथा विमुच्याग्निघतकलत्रपरिवर्हणं सङ्गेष्वात्मनः स्तेह-  
पाशानवधू परिवर्जन्ति समलोष्याइम्काञ्चनाद्विवर्गप्रवृत्तेष्व-

सक्तबुद्धयोऽरिमित्रोदासीनानां तुल्यदर्शनाः स्थावरग्ररामु-  
जाण्डजस्वेदजोनिज्ञानां भूतानां वाज्ञानःकर्मभिरनभि-  
द्वोहिणोऽनिकेताः पर्वतपुलिनवृक्षमूलदेवतायतनान्यनुचरन्तोः  
वासार्थमुपेयुर्नगरं ग्रामं वा नगरे पञ्चरात्रिकाः ग्रामे वैकरात्रिकाः  
प्रविश्य च प्राणधारणार्थं द्विजातीनां भग्नान्यवंकर्णंकर्मगा-  
मुपतिष्ठेयुः पात्रपतितायाचित्तमैक्ष्याः कामकोशदर्पलोभमोऽ-  
कर्क्षयद्व्यभपरिशद्विभान्हिसनिवृत्ता इति ॥

( महा० शा० १९२ । ३ )

संन्यासमें प्रवेश करनेवाले पुरुष अग्निहोत्र, धन, सूर्य आदि परिवार तथा धर्मकी सारी सामग्रीका त्याग करके विषयात्मकके बन्धनोंको तोड़कर धरने निकल जाते हैं । हेले, पत्थर और सोनेको समान समझते हैं । धर्म, अर्थ और कानून के सेवनमें अपनी बुद्धि नहीं पाँसाते । शत्रु, मित्र तथा उदासीन—सबके प्रति समान दृष्टि रखते हैं । स्थावर, अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्दिज प्राणियोंके प्रति मन, वार्षी अथवा कर्मसे भी कभी द्रोह नहीं करते । कुटी या मठ बनाकर नहीं रहते । उन्हें चाहिये कि चारों ओर विचरते रहें और रातमें ठहरनेके लिये पर्वतकी गुफा, नदीका किनार, वृक्षकी जड़, देवमन्दिर, ग्राम अथवा नगर आदि स्थानोंमें चले जाय करें । नगरमें पाँच रात और गाँवोंमें एक रातमें अधिक न रहें । प्राण-धारण करनेके लिये गाँव या नगरमें प्रवेश करके अपने विद्युद्ध धर्मोंका पालन करनेवाले द्विजातीयोंके धरोंपर जाकर लड़े हो जायें । विना माँगे ही पात्रमें जितनी विज्ञा आ जाय, उतनी ही स्वीकार करें । काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कृपणता, दम्भ, निन्दा, अभिमान तथा हिंसा आदिसे दूर रहें ।

### महर्षि वाल्मीकि



भगवान् राम कहाँ निवास  
करते हैं ?

व्यमेव सर्वलोकानां निवासस्त्रानमुत्तमम् ।  
तदापि सर्वभूतानि निवाससद्वनानि हि ॥  
एवं सावारणं स्थानमुक्तं ते रघुनन्दन ।  
सीताया सहितस्येति विशेषं पृच्छतस्तथ ॥  
तथा वक्ष्यामि रघुश्चेष्ट यत्ते नियतमन्दिरम् ।  
शान्तानां समर्थीनामदेव्याणां च जन्मतुपु ।  
त्वानेव भजतां नित्यं हृदयं तेऽधिमन्दिरम् ॥

धर्मधर्मान् परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिश्चम् ।  
सीताया सह ते राम तस्य हृसुखमन्दिरम् ॥  
वन्मन्त्रजापको यस्तु त्वामेव शरणं गतः ।  
निर्दन्तो निःस्पृहस्तस्य हृदयं ते सुमन्दिरम् ॥  
निरहङ्कारिणः शान्ता ये रागदेववर्जिताः ।  
समलोष्याइसकलकास्तेषां ते हृदयं गृहम् ॥  
त्वयि दत्तमन्नाद्विद्युर्यः संतुष्टः सदा भवेत् ।  
त्वयि सन्त्यक्तमी यस्तमनस्ते शुभं गृहम् ॥  
यो न द्वेष्टश्चप्रियं प्राप्य प्रियं ग्राम्य न हर्ष्यते ।  
सर्वं मायेति निश्चित्वं द्वां भजतेत्तन्मनो गृहम् ॥

पद्माविद्विलासन यो एहे पवर्णत मामनि ।  
पूर्णपूर्ण भव्य दुःखं प्राणपूर्वकोर्निराशी ॥  
मंगलामंगलेन्द्रियस्थाय ने मानवं धृष्टम् ॥  
पवर्णत ने वर्णहास्याम् ।  
यहाँ विद्वानं पवर्णमन्दकम् ।  
भैश्वरं मंगलं परेष्ये  
तेषां हृदये यह मात्राया धम ॥  
निरन्तरःयामदर्शतामनां  
परायाद्येशपरितिष्ठिताम् ।  
प्रशामनामां हृष्टमपाणां  
मंगलामंगलस्य गृहं हृदये ॥  
गम विद्वाऽमहिमा पवर्णते केन वा कथम् ।  
प्रप्रगमादहं राम विद्विष्टमयासदान् ॥  
( अन्तराम ५३० ६ । ५२—८४ )

हे राम ! गम्भीरं प्राणियोंके आप ही एकमात्र उत्तम निवास-स्थान हैं और वह जीव भी आपके निवास-गृह हैं । हे रामनन्द ! इस प्रदार यह मैंने आपका साधारण निवास-स्थान चताया । परंतु आपने विदेषपूर्षसे सीताके सहित अपने इनका स्थान पूर्ण है; इसलिये हे राम ! अब मैं आपका जो निश्चित गृह है, वह चताता हूँ । जो शान्त, समदर्शी और सम्पूर्ण जीवोंके प्रति द्वैपर्हीन है तथा अहंकार आपका ही भजन करते हैं, उनका हृदय आपका प्रधान निवास-स्थान है । जो धर्म और अर्थ दोनोंको छोड़कर निरन्तर आपका ही भजन करता है, हे राम ! उसके हृदय-मन्दिरमें सीताके सहित आप

सुखपूर्वक रहते हैं । जो आपके ही मन्त्रका जाप के आपकी ही शरणमें रहता है तथा द्वन्द्वहीन और निःउत्तमका हृदय आपका मुन्द्र मन्दिर है । जो अहङ्का शान्तत्वभाव, राग-द्वेपर्हाहत और मृत्यिण्ड, पत्थर सुवर्णमें समान दृष्टि रखनेवाले हैं, उनका हृदय आप है । जो सुमर्द्दिमें मन और बुद्धिको ल्याकर सदा संतुष्ट र और आपने समस्त कर्मोंको तुम्हारे ही अर्पण कर के उसका मन ही आपका शुभ यह है । जो अप्रियको द्वैप नहीं करता और प्रियको पाकर हर्षित नहीं होता यह सम्पूर्ण प्रपञ्च मायामात्र है—ऐसा निश्चय कर सदा आ भजन करता है, उसका मन ही आपका धर है । जो लेना, सत्ता, वद्वना, वदलना, क्षीण होना और नष्ट होना—इन विकारोंको शरीरमें ही देखता है, आत्मामें नहीं तथा क्षुद्राया, सुख, दुःख और भय आदिको प्राण और बुद्धिके विकार मानता है और स्वयं सांसारिक धर्मोंसे मुक्त रहता उसका चित्त आपका निज यह है । जो लोग चिद्ध्र सल्लत्वरूप, अनन्त, एक, निलेंप, सर्वगत और स्तुत्य अपरमेश्वरको समस्त अन्तःकरणोंमें विराजमान देखते हैं, हे राम उनके हृदय-कमलमें आप सीताजीके सहित निवास कीजिये निरन्तर अभ्यास करनेसे जिनका चित्त स्थिर हो गया है जो सर्वदा आपकी चरणसेवामें लगे रहते हैं तथा आपके नाम संकीर्तनसे जिनके पाप नष्ट हो गये हैं उनके हृदय-कमलं सीताके सहित आपका निवास-गृह है । हे राम ! जिससे प्रभावसे मैंने ब्रह्मर्षि-पद प्राप्त किया है, आपके उस नामके महिमा कोई किस प्रकार वर्णन कर सकता है ।

## महापि शतानन्द

### तुलसी-महिमा

नामोच्चारे कृते तस्याः प्रीणात्यसुरदर्पहा ।  
पापानि विलयं धान्ति पुण्यं भवति चाक्षयम् ॥  
सा कर्थं तुलसी लोकैः पूज्यते वन्ध्यते न हि ।  
दर्शनादेव धन्यास्तु दानं कोटिगावां भवेत् ॥  
धन्यास्ते मानवा लोके यद्गृहे विद्यते कलौ ।  
शालग्रामशिलार्थं तु तुलसी प्रस्तुं क्षितौ ॥  
तुलसीं ये चिचिन्वन्ति धन्यास्ते करपलुवाः ।  
केशवार्थं कलौ ये च रोपयन्तीह भूतले ॥

किं करिष्यति संस्थो यमोऽपि सह किङ्करैः ।  
तुलसीदलेन देवेशः पूजितो यैर्न दुःखहा ॥  
... ... ...  
तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिया ॥  
केशवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने ।  
त्वद्विसम्भवैर्नित्यं पूजयामि यथा हरिम् ॥  
तथा कुरु पवित्राङ्गि कलौ मलविनाशिनि ।  
मन्त्रेणादेन यः कुर्याद्विचित्य तुलसीदलम् ॥  
पूजनं वासुदेवस्य लक्षकोटिगुणं भवेत् ।  
( अन्तराम ५३० ६ । ५२—८४ )

तुलसीका नामोच्चारण करनेपर अमुरोंका दर्प दलन करनेवाले भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं, मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जिसके दर्शनभावसे करोड़ों गोदानका फल होता है, उस तुलसीका पूजन और बन्धन लोग क्यों न करें। कल्युगके संतारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जिनके घरमें शालग्राम-शिलाका पूजन सम्पन्न करनेके लिये प्रतिदिन तुलसीका वृक्ष भूतलपर लहलहाता रहता है। जो कल्युगमें भगवान् श्रीकेशवकी पूजाके लिये पुर्वीपर तुलसीका वृक्ष लगाते हैं, उनपर यदि यमराज अपने किङ्गरोंसहित रुद्ध हो जायें तो भी वे उनका करोड़ोंगुना फल होता है।

क्या कर सकते हैं। तुलसी ! तुम अमृतसे उत्पन्न हो और केशबको सदा ही प्रिय हो। कल्याणी ! मैं भगवान्तुकी पूजाके लिये तुम्हरे पत्तोंको चुनता हूँ। तुम मेरे लिये वरदायिनी बनो। तुम्हारे श्रीबालोंसे उत्पन्न होनेवाले पत्तों और गङ्गागर्णे-द्वारा मैं सदा ही जिस प्रकार श्रीहरिका पूजन कर मर्हू, वैगा उपाय करो। पवित्राङ्गी तुलसी ! तुम कलि-मल्का नाम करनेवाली हो। इस भावके मन्त्रोंसे जो तुलसीदलोंको चुनाव उनसे भगवान् वासुदेवका पूजन करता है, उसकी पृज्ञका करोड़ोंगुना फल होता है।

## महर्षि अष्टावक्र

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात् विषयान् विषवस्यजे ॥

क्षमार्जवद्याशौचं स्वर्णं पीयूषवत् पिबेः ॥

( अष्टावक्रमीता )

भाई ! यदि तुझे मुक्तिकी इच्छा है तो विषयोंको विषयके समान त्याग दे तथा क्षमा, सरलता, दया, पवित्रता और सत्यको अमृतके समान ग्रहण कर।

न ज्ञायते कायद्वृद्धया विवृद्धि-

र्थार्थालाः शालम्लः सम्प्रद्वद्धाः ॥

हस्योऽल्पकायः फलितो विवृद्धो

यश्चाकलसत्य न वृद्धभावः ॥

( महा० वन० १३३ । ९ )

शरीर वद जानेसे ही किसीका बड़ा होना नहीं जाना

जाता, जैसे सेमलके फलकी गाँठ बड़ी होती है; किंतु इससे उसमें कोई विशेषता नहीं आ जाती। छोटेसे शरीरवाला छोटा ही वृक्ष क्यों न हो, यदि उसमें फल लगा हो तो वह बड़ा है। और ऊँचे-से-ऊँचा वृक्ष क्यों न हो, यदि वह फलसे शून्य है तो वह नहीं माना जाता।

न हायतैर्व पलितैर्व वित्तेन न बन्दुभिः ।

अष्टव्यश्रितिर धर्मं योजनूचानः स तो महाम् ॥

( महा० वन० १३३ । १२ )

अधिक वर्णोंकी आयु होनेसे, वाल पक जानेसे, धनसे अथवा बन्धुओंके होनेसे भी कोई बड़ा नहीं माना जाता। हमसेसे जो वेद-शास्त्रोंको जानता और उनकी व्याख्या करता है, वही बड़ा है—यह व्युषियोंने ही धर्म-मर्यादा स्थापित की है।

## महात्मा जडभरत

### महापुरुष-महिमा

रहूगणैतत्पसा न याति

न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।

तच्छन्दसा वैव जलानिन्दूयै-

विना महत्पादरबोउभिषेकम् ॥

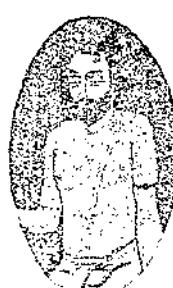
यत्रोत्तमदलोकगुणानुवादः:

प्रस्तूयते आम्यकथाविधातः ।

निषेद्यमाणोऽसुदिनं सुमुक्षो-

र्ति सत्त्वं यच्छति वासुदेवे ॥

( श्रीमद्भा० ५ । १२ । १२-१३ )



रहूगण ! महापुरुषोंके चरणोंकी धूलिसे अनेको नहलये बिना केवल तप-यज्ञादि वैदिक कर्म, अनादिके दान, अतिथि-सेवा, दीनसेवा आदि गृहस्तीवित धर्मार्तुडान, वेदाध्ययन अथवा जल, अश्वि या सूर्यकी उपासना आदि किसी भी साधनसे वह परमात्मजान प्राप्त नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि महापुरुषोंके समाजमें सदा पवित्रकीर्ति श्रीहरिके गुणोंकी चर्चा होती रहती है, जिससे विषयवार्ता तो पास ही नहीं

फटकने पाती। और जब भगवत्कथाका नित्यप्राप्ति सेवन किया जाता है, तब वह मोक्षाकोक्षी पुरुषकी शुद्ध बुद्धिको भगवान् वासुदेवमें लगा देती है।

## महर्षि अगस्त्य

मानस-तीर्थ

मायं तांपं दामा तांपं  
तांपंगिरिप्रथनिग्रहः ।  
मयेभृत्या तांपं  
तांपंमात्रंयमेय च ॥  
दामं तांपं दमकांपं  
संतोषमांपंमुच्यते ।  
यद्यापर्यं परं तांपं तांपं च प्रियगदित्या ॥  
दामं तांपं उत्तिलांपं तपमांपंमुदादाम् ।  
तांपंमामर्यं तांपं विशुद्धिमंसलः परा प  
म जग्याप्तुष्टेहम्य स्नानमिष्यभिर्धियते ।  
स दामो षो इमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः ॥  
यो लुप्तः पिशुनः कूरो द्विभक्तो विप्रशास्त्रकः ।  
दर्भांपेण्यपि ल्लातः पायो मलिन एव सः ॥  
न दर्शनमलायागाङ्गो भवति निर्मलः ।  
मादस्य तु मले त्वक्ते भवत्यन्तः सुनिर्षलः ॥  
जायन्ते च विष्यन्ते च जलेष्वेव जलोकसः ।  
न च गच्छन्ति ते स्वर्गमधिष्ठुद्भूम्नोमलाः ॥  
पिषयेव्विग्रामागो मानसो मल उच्चते ।  
तंप्रेव हि विशरोऽस्य तैर्मलं ससुदादत्म् ॥  
विज्ञमन्तर्गतं कुर्व तीर्थस्नानाद शुद्धयति ।  
शतशोऽपि जलैर्धैर्तं सुराभाण्डमिष्याशुचिः ॥  
दर्शनमित्या तपः शर्वं तीर्थसेवा शुर्वं सत्थ ।  
सर्वांप्येतानि तीर्थानि थदि भावो न निर्मलः ॥  
निगृहीतेन्द्रियग्रामो थव्रैव च वसेत्तरः ।  
तद तस्य तुर्खेवं वैमिपं पुष्करणि च ॥  
स्थानपूर्ते ज्ञामजले रागदेवमलापहे ।  
यः स्नाति मानसे तीर्थं स वासि परमां गतिम् ॥

( स्क० पु० का० प० ६ । ३०—४१ )

सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियोंको वशमें रखना भी तीर्थ है, सब प्राणियोंपर दया करना तीर्थ है और सरलता भी तीर्थ है । दान, दम, मनका संयम तथा संतोष—ये भी तीर्थ कहे गये हैं । ब्रह्मचर्यवा पालन उत्तम तीर्थ है । प्रिय वन्नन बोलना भी तीर्थ ही है । ज्ञान तीर्थ है, धैर्य तीर्थ है और तपस्याको भी तीर्थ कहा गया है । तीर्थोंमें भी सबसे बड़ा

तीर्थ है अन्तःकरणकी आत्मनिक शुद्धि । यानीमें शुद्धि लेना ही स्नान नहीं कहलता । जिसने दम-स्नान किया है, मन और इन्द्रियोंके संयममें रख उठाने वालविक स्नान किया है । जिसने मनकी मौद्दी है, वही शुद्ध है । जो लोभी, तुगल्खोरु क्रत, पाप और विप्रशास्त्रक है, वह सब तीर्थोंमें स्नान करके भी और मलिन ही रह जाता है । केवल शरीरके मलका करनेते ही मनुष्य निर्मल नहीं होता । मानसिक मपरिवाग करनेपर ही वह भीतरसे अत्यन्त निर्मल होता जलमें निवास करनेवाले जीव जलमें ही जन्म लेते सरते हैं, किंतु उनका मानसिक मल नहीं खुलता । इसलिए खर्गको नहीं जाते । विषयोंके बाति अत्यन्त राग होना यानी मल कहलता है और उन्हीं विषयोंमें विराग होना निर्मल कही गयी है । यदि आपने भीतरका मन दूषित है तो मनु तीर्थस्नानसे शुद्ध नहीं होता । बैचे भद्रिसे भरे हुए घड़ अपरसे जलद्वारा ऐकड़ों बार झोया जाय, तो भी वह वर्ष नहीं होता, उसी प्रकार दूषित अन्तःकरणबाला मनुष्य तीर्थस्नानसे शुद्ध नहीं होता । भीतरका भाव शुद्ध न हो, दान, यज्ञ, ताप, शौच, तीर्थस्वन, शश्वतोंका श्रद्धा ए स्वाध्याय—ये सभी अतीर्थ हो जाते हैं । जिसने अप इन्द्रियसमुद्रायको वशमें कर लिया है, वह मनुष्य जनिवास करता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैशिकारण और पुष्कर आदि तीर्थ हैं । ध्यानसे पवित्र तथा शानदान जलसे भरे हुए राग-द्वेषमध्य मलको दूर करनेवाले सानसतीर्थों जो पुरुष स्नान करता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है

यस्य हस्तै च पादै च मनस्त्वैव सुर्संश्लेषम् ।

विद्या तपश्च कातिंश्च स तीर्थफलमस्तुते ॥

प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो थेन क्रेनवित ।

अहंकरविमुक्तश्च स तीर्थफलमस्तुते ॥

अद्यमध्यो विशरम्भो लघ्वाहरो जितेन्द्रियः ।

विषुकः सर्वसङ्कर्मः स तीर्थफलमस्तुते ॥

अकोपनोऽस्मलमतिः सत्यवादी छद्मतः ।

आत्मोपमश्च भूतेषु च तीर्थफलमस्तुते ॥

तीर्थान्त्यसुसर्व धीरः अद्यानः समाहितः ।

कृत्यपो विशुद्धयेत किं पुनः शुद्धकर्मकृत ॥

तीर्थयोनि न वै मन्त्रेत् कुदेशे नैव जायते ।  
न दुःखी स्यात् स्वर्गभाक् च मोक्षोपायं च विन्दति ॥  
अश्रहथानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ।  
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः ॥  
(स्क० पु० का० प० ६ । ४८—५४)

जिसके हाथ, पैर, मन, विद्या, तप और कीर्ति—सभी संयममें हैं, वह तीर्थके पूर्ण फलका भागी होता है । जो प्रतिग्रह नहीं लेता और जिस किसी भी वस्तुसे संतुष्ट रहता है तथा जिसमें अहंकारका सर्वथा अभाव है, वह तीर्थफलका भागी होता है । जो दम्भी नहीं है, नयेनये कार्योंका प्रारम्भ नहीं करता; थोड़ा खाता है, इन्द्रियोंको कावूमें रखता है और सब प्रकारकी आसक्तियोंसे दूर रहता है, वह तीर्थफल-

का भागी होता है । जो कोधी नहीं है, जिसकी शुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलनेवाला और दृढ़तापूर्वक ग्रन्था पालन करनेवाला है, जो सब प्राणियोंके प्रति अपने ही गमन वर्ताव करता है, वह तीर्थफलका भागी होता है । जो तीर्थोंका सेवन करनेवाला, धीर, श्रद्धालु और एकाग्रचित्त है, वह पहलेका पापनाशी ही, तो भी शुद्ध हो जाता है । यिर जो पुण्यकर्म करनेवाला है, उसके लिये तां कहना ही कानून है । तीर्थसेवी मनुष्य कभी पश्योनिमें जन्म नहीं लेता । तुष्टेशमें उसका जन्म नहीं होता और वह कभी दुःखका भागी नहीं होता । वह स्वर्ग भोगता और मोक्षका उपाय प्राप्त कर लेता है । अश्रद्धालु, पापात्मा, नास्तिक, संशयात्मा और केवल तर्कका सहारा लेनेवाल—वे पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थमेवन् का फल नहीं पाते ।

## भगवान् इष्टभद्रेव

### उपदेश

नायं देहो देहभाजां नूलोके  
कषान् कामान्हृते विड्भुजां ये ।  
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्यं  
शुद्धयेवस्माद् व्रह्मसौर्यं व्यनन्तम् ॥  
महत्सेवां द्वारसाहुर्विमुक्ते-  
स्त्रमोद्वारं पोषितां सज्जिसङ्गम् ।  
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता  
विमन्त्वः सुहृदः सावतो ये ॥  
(श्रीमद्भा० ५ । ५ । १-२ )

पुत्रो! इस मर्त्यलोकमें यह मनुष्य-शरीर दुःखमय विषय-भोग प्राप्त करनेके लिये ही नहीं है । वे भोग तो विद्वाभोजी सूक्ष्म-कूकरादिकों भी मिलते ही हैं । इस शरीरसे दिव्य तप

ही करना चाहिये, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो; क्योंकि इसीसे अनन्त व्रह्मानन्दकी प्राप्ति होती है । शास्त्रोंने महापुरुषोंकी सेवाको मुक्तिका और स्त्रीसङ्गी कामियोंके सङ्गको नरकका द्वार बताया है । महापुरुष वे ही हैं जो समानचित्त, परम शान्त, क्रोधहीन, सबके हितचिन्तक और सदाचारसम्बन्ध हों ।

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्  
पिता न स स्याजननी न सा स्यात्  
दैवं न तत् स्याज पतिश्च स स्यात्  
त्र मोचयेद् समुपेतमृत्युम् ॥  
(श्रीमद्भा० ५ । ५ । १८ )

जो अपने पिय सम्बन्धीको भगवद्गतिका उपदेश देकर मृत्युकी फाँसीसे नहीं छुड़ा देता, वह गुरु गुरु नहीं है, त्वंजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पर्ति पर्ति नहीं है ।

## योगीश्वर कवि

### भगवत्-यम

ये वै भगवत् प्रोक्ता उपाया हात्मलव्यये ।  
भजः पुंसामविदुषां चिद्ग्री भागवतान् हि तान् ॥  
याज्ञायाय नरो राजन् न प्रमादेत् कहिंचित् ।  
शावन् निमील्य वा नेत्रे न सखलेन पतेदिव ॥

|         |                     |                                   |
|---------|---------------------|-----------------------------------|
| काप्रेत | वाचा                | मनसेन्द्रियैर्वा                  |
|         |                     | बुद्ध्याऽत्मता वासुस्तस्मभावात् । |
| करोति   | थद् यत् सकलं परस्मै |                                   |
|         |                     | तारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥        |

इस प्रकार जो प्रतिक्षण एक-एक वृत्तिके द्वारा भगवान् के चरणकमलोंका ही भजन करता है, उसे भगवान् के प्रति प्रेममयी भक्ति, संसारके प्रति वैराग्य और अपने

प्रियतम भगवान् के स्वरूपकी स्फुर्ति—ये सब अवदय ही प्राप्त होते हैं; वह भागवत हो जाता है और जब ये सब प्राप्त हो जाते हैं, तब वह सबं परम शान्तिका अनुभव करने लगता है।

## योगीश्वर हरि

ओषु भक्त कौन ?

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्वादमात्मनः ।  
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥

( श्रीमद्भा० ११।२।४५ )

आत्मस्वरूप भगवान् समस्त प्राणियोंमें आत्मारूपसे—नियन्तारूपसे थित हैं। जो कहीं भी न्यूनाधिकता न देखकर सर्वत्र परिपूर्ण भगवत्सत्त्वाको ही देखता है और साथ ही समस्त प्राणी और समस्त पदार्थ आत्मस्वरूप भगवान् में ही आधेयरूपसे अथवा अध्यस्तरूपसे थित हैं, अर्थात् वास्तवमें भगवत्स्वरूप ही है—इस प्रकारका जिसका अनुभव है, ऐसी जिसकी सिद्ध दृष्टि है, उसे भगवान् का परम प्रेमी उत्तम भगवत् समझना चाहिये।

गुहीत्वापीन्द्रियैर्थन् यो न दृष्टि न हृष्टि ।  
विष्णोर्मायाभिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः ॥

( श्रीमद्भा० ११।२।४८ )

जो ओन्न-नेत्र आदि इन्द्रियोंके द्वारा शब्द, रूप आदि विषयोंका ग्रहण तो करता है; परंतु अपनी इच्छाके प्रतिकूल विषयोंसे द्वेष नहीं करता और अनुकूल विषयोंके मिलनेपर हर्षित नहीं होता—उसकी यह दृष्टि बनी रहती है कि यह सब हमारे भगवान् की माया है—वह पुरुष उत्तम भगवत् है।

देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्मायथशुद्भयतर्पक्त्वच्छैः ।  
संसारधर्मैरविमुख्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥

( श्रीमद्भा० ११।२।४९ )

संसारके धर्म हैं—जन्म-मृत्यु, मूल-प्यास, शम-कष्ट, भय और तृणा। ये क्रमशः शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिको प्राप्त होते ही रहते हैं। जो पुरुष भगवान् की स्मृतिमें इतना तन्मय रहता है कि इनके बार-बार होते-जाते रहनेपर भी उनसे मोहित नहीं होता, परामृत नहीं होता, वह उत्तम भगवत् है।

न कामकर्मदीजानां यस्य चेतसि सम्भवः ।  
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥

( श्रीमद्भा० ११।२।५० )

जिसके मनमें विषय-भोगकी इच्छा, कर्म-प्रवृत्त और उनके बीज वासनाओंका उदय नहीं होता और जो एकमात्र भगवान् वासुदेवमें ही निवास करता है, वह उत्तम भगवद्गत्त है।

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमज्ञातिभिः ।  
सज्जतेऽस्मिन्ब्रह्मभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥

( श्रीमद्भा० ११।२।५१ )

जिनका इस शरीरमें न तो सत्कुलमें जन्म, तपश्चा आदि कर्मसे तथा न वर्ण, आश्रम एवं जातिसे ही अहंभाव होता है, वह निश्चय ही भगवान् का प्यारा है।

न यस्य स्वः पर इति विचेष्यत्वमनि वा मिदा ।  
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥

( श्रीमद्भा० ११।२।५२ )

जो धन-सम्पत्ति अथवा शरीर आदिसे ‘यह अपना है और यह पराया’—इस प्रकारका भेद-भाव नहीं रखता, समस्त पदार्थोंमें समस्वरूप परमात्माको देखता रहता है, समभाव रखता है तथा किसी भी घटना अथवा संकल्पसे विक्षिप्त न होकर शान्त रहता है, वह भगवान् का उत्तम भक्त है।

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-

स्मृतिरजितात्मसुराक्षिभिर्विमृग्यात् ।

न चलति भगवत्पदारविन्दा-

लवनिभिषार्वमपि यः स वैष्णवाऽन्यः ॥

( श्रीमद्भा० ११।२।५३ )

बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि भी अपने अन्तःकरणके भगवन्मय बनाते हुए जिन्हें दृँढ़ते रहते हैं—भगवान् के ऐसे चरणमें जापे जापे जापे जापे जापे हैं ।

हठत है यहोंगक कि कोरं भवयं उर्गे विश्ववनवी गजयदस्मी  
दं तो भी यह भगवान्मूर्तिरा तार नहीं छोड़ता, उस गज्य-  
मूर्तीरी पौर व्यान ती नहीं देता; की पुष्पद वास्तवमें  
भगवान् की जायेंगे अवगत्य है, मनमें श्रेष्ठ है।

भगवत् उम्भिकामाद्विधामा-  
नवगणिनन्दिकाया निरमताये ।  
हहि एवमुपसादतां पुरः स  
प्रश्वति चन्द्र इवोन्दितेऽकर्तापः ॥  
( श्रीमद्भा० ११।३।५४ )

भगवान्मूर्तिरी अवगत्य दृत्य-गतिये भौति-भौतिके पाद-  
विवाय दृग्मेयां निविल-भौत्य-माधुर्य-निवि भगवान्के  
भौत्यांकि अद्वृत्य-नवत्री मणि-नन्दिकाये जिन शरणागत

भक्तजनोंके हृदयका विहजन्य संताप एक बार दूर हो चुक  
उनके हृदयमें वह फिर कैषे आ सकता है, जैसे चन्द्रोदय हैं  
पर मूर्का ताप नहीं ल्या सकता।

विचुजति हृदयं न यत्वं साक्षा-  
द्वरिवशामिहितोऽप्यत्रैधनाशः ।  
प्रणयरथानश्च धृताद्विधियः  
स भवति भगवत्प्रधान उक्तः ॥  
( श्रीमद्भा० ११।२।५५ )

विवशतासे नामोच्चारण करनेपर भी समूर्ण अव-राशि  
नष्ट कर देनेवाले स्वयं भगवान् श्रीहरि जिनके हृदय  
क्षणभरके लिये भी नहीं छोड़ते, क्योंकि उसने प्रेम  
रसीसे उनके चरण-कमलोंको वाँध रखता है, वास्तवमें ऐस  
पुरुष ही भगवान्के मक्तोंमें प्रधान है।

## योगीश्वर प्रबुद्ध

क्या सीखे ?

सर्वतो मतसोऽस्तुत्यादै यज्ञं च साधुषु ।  
दृग्मां मैत्रीं प्रश्वरं च भूतेष्वद्वा वयोचितम् ॥  
( श्रीमद्भा० ११।३।२३ )

पहुँचे जारीर, संतान आदिये मनकी अनासक्ति सीखे।  
फिर भगवान्के भन्नोंसे प्रेम कैसा करना चाहिये—यह सीखे।  
इसके पश्चात् प्राणियोंके प्रति यशायोग्य दया, मैत्री और  
विनयकी निष्पट भावसे शिक्षा ग्रहण करे।

शौचं तपस्तितिष्ठां च मौनं साव्यायमार्त्तव्यम् ।  
व्रह्मचर्यमहिसां च समर्वं इन्द्रसंज्ञयोः ॥  
( श्रीमद्भा० ११।३।२४ )

मिथी, जल लादिसे वाहा शरीरकी पवित्रता, अपने धर्मका  
कपट आदिके त्यागसे भीतरकी पवित्रता, अपने धर्मका  
अनुग्रह, सहनशक्ति, मौन, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य,  
आहिता तथा शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि इन्द्रोंमें हर्ष-  
विपादसे रहित होना सीखे।

सर्वत्रात्मेशरात्मक्षां कैवल्यमनिकेतताद् ।  
विविक्तर्चीरक्षनं संतोषं येन केनचित् ॥  
( श्रीमद्भा० ११।३।२५ )

सर्वत्र अर्थात् समस्त देश, काल और वस्तुओंमें चेतन-  
ा और निगलारूपसे ईश्वरको देखना, एकान्त-

सेवन, वही भेरा घर है—ऐसा भाव न रखना, यहस्त हो तो  
पवित्र वस्त्र पहनना और त्वारी हो तो फटे पुराने पवित्र  
चिथड़े—जो कुछ प्रारुद्धके अनुसार मिल जाय, उसीमें  
संतोष करना सीखे।

श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्द्रामन्त्रव चापि हि ।  
मनोवाक्मर्त्तुङ्गं च सत्यं शमदसावपि ॥  
( श्रीमद्भा० ११।३।२५ )

भगवान्की प्रातिका मार्ग वतलनेवाले शास्त्रोंमें श्रद्धा  
और दूसरे किसी भी शास्त्रकी निन्दा न करना, प्राणायामने  
द्वारा मनका, मौनके द्वारा वाणीका और वासनाहीनताके  
अंध्याससे कमोंका संयम करना, सत्य धोलना, इन्द्रियोंको  
अपने-अपने मोलोंमें थिर सखना और मनको कहीं बाहा  
न जाने देना सीखे।

श्रवणं कीर्तनं च्यानं होरहुकर्मणः ।  
जनस्कर्मणुयानां च सदृशैऽस्तिलच्छित्रम् ॥  
( श्रीमद्भा० ११।३।२६ )

भगवान्की लीलाएँ अद्भुत हैं। उनके जन्म, कर्म और  
गुण दिव्य हैं। उन्होंका श्रवण, कीर्तन और च्यान करना  
तथा शरीरसे जितनी भी चेष्टाएँ हों, सब भगवान्के लिये  
करना सीखे।

इष्टं दत्तं तपो जसं वृत्तं यज्ञात्मनः प्रियम् ।  
दरान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम् ॥  
( श्रीमद्भा० ११ । ३ । २८ )

यज्ञ, दान, तप अथवा जप, सदाचारका पालन और  
स्त्री, पुत्र, धर, अपना जीवन, प्राण तथा जो कुछ अपनेको  
प्रिय लगता हो—सब-का-सब भगवान्‌के चरणोंमें निवेदन  
करना, उन्हें सौंप देना सीखे ।

एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ।  
परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साङ्घुषु ॥  
( श्रीमद्भा० ११ । ३ । २९ )

जिन संत पुरुषोंने सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण-  
का अपने आत्मा और स्वामीके रूपमें साक्षात्कार कर लिया  
हो, उनसे प्रेम और स्थावर-जगत् दोनों प्रकारके प्राणियोंकी  
सेवा, विशेष करके मनुष्योंकी, मनुष्योंमें भी परोपकारी  
सज्जनोंकी और उनमें भी भगवत्प्रेमी संतोंकी, करना सीखे ।

परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ।  
मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्तिवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥  
( श्रीमद्भा० ११ । ३ । ३० )

भगवान्‌के परम पावन वशके सम्बन्धमें ही एक दूसरेसे  
वातनीत करना और इस प्रकारके साधकोंका इकट्ठे होकर  
आपसमें प्रेम करना, आपसमें संतुष्ट रहना और ग्रपञ्चसे  
निवृत होकर आपसमें ही आध्यात्मिक शान्तिका अनुभव  
करना सीखे ।

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽवैघवहरं हरिम् ।  
भक्त्या संजातथा भक्त्या विश्वस्युपुलकां तनुम् ॥  
( श्रीमद्भा० ११ । ३ । ३१ )

श्रीकृष्ण राशि-राशि पापोंको एक क्षणमें भसा कर देते  
हैं । सब उन्हींका सरण करें और एक-दूसरेको सरण करावें ।  
इस प्रकार साधन-भक्तिका अनुष्ठान करते-करते प्रेमा-भक्तिका  
उदय हो जाता है और वे प्रेमोद्रेकसे पुलकित शरीर धारण  
करते हैं ।

क्षचिद् रुदस्यच्युतचिन्तया धनि-  
द्वसन्ति नन्दनित वदस्यलौकिकाः ।

चतुर्मिति गायन्त्यनुशीलयन्त्यज्ञं  
भवन्ति तूर्णां परमेत्य निर्वृताः ॥  
( श्रीमद्भा० ११ । ३ । ३२ )

उनके हृदयकी बड़ी विलक्षण स्थिति होती है । कभी-  
कभी वे इस प्रकार चिन्ता करने लगते हैं कि अवतार  
भगवान् नहीं मिले, क्या कहूँ, कहाँ जाऊँ, किससे पूछूँ,  
कौन मुझे उनकी प्राप्ति करावे ? इस तरह सोचते-सोचते वे  
रोने लगते हैं तो कभी भगवान्‌की लीलाकी मूर्ति हो जानेसे  
ऐसा देखकर कि परमैश्वर्यशाली भगवान् गोपियोंके डरसे छिपे  
हुए हैं, लिलाखिलाकर हँसने लगते हैं । कभी-कभी उनके  
प्रेम और दर्शनकी अनुभूतिसे आनन्दगम हो जाते हैं तो  
कभी लोकातीत भावमें स्थित होकर भगवान्‌के साथ वातनीत  
करने लगते हैं । कभी मानो उन्हें मुना रहे हों, इस प्रकार  
उनके गुणोंका गान छेड़ देते हैं । और कभी नाच-नाचकर  
उन्हें रिक्षाने लगते हैं । कभी-कभी उन्हें अपने पास न पाकर  
इधर-उधर हँसने लगते हैं तो कभी-कभी उनसे एक होकर,  
उनकी सत्रिधिमें स्थित होकर परम शान्तिका अनुभव करते  
और चुप हो जाते हैं ।

## योगीश्वर चमस

किनका अधःपतन होता है

गुरुवाहूस्पादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ।  
चत्वारो जन्मिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥  
य एवं पुरुषं साक्षादात्मप्रभवसीश्वरम् ।  
न भजन्त्यवजानन्ति शानाद् अष्टाः पतन्त्यधः ॥  
( श्रीमद्भा० ११ । ५ । २-३ )

पिराट् पुरुषके मुखसे सत्त्वप्रधान ब्राह्मण, भुजाओंसे  
सत्त्व-रज-प्रधान ध्यात्रीय, जाँधोंसे रज-तम-प्रधान वैश्य एवं  
चरणोंसे तम-प्रधान शूद्रकी उत्पत्ति हुई है । उन्होंकी  
जाँधोंसे गृहस्याथम, हृदयसे ब्रह्मचर्य, वक्षःस्थलसे वानप्रस्थ

और मस्तकसे संन्यास—ये चार आश्रम प्रकट हुए हैं । इन  
चारों वर्णों और आश्रमोंके जन्मदाता स्वयं भगवान् ही हैं ।  
एवं वे ही इनके स्वामी, नियन्ता और आत्मा भी हैं । इसलिये  
इन वर्ण और आश्रममें रहनेवाला जो मनुष्य भगवान्‌का  
भजन नहीं करता, वृत्क उस्ता उनका अनादर करता है,  
वह अपने स्थान, वर्ण, आश्रम और मनुष्य-योनिसे भी चुप्त  
हो जाता है ।

द्विवन्तः परकायेषु स्वात्मानं हरिमोशरम् ।

सृतके सानुबन्धेऽस्मिन् बद्धस्नेहाः पतन्त्यधः ॥

( श्रीमद्भा० ११ । ५ । ३५ )

यह शरीर मृतक-शरीर है । इसके सम्बन्धी भी इसके

आप ही दूर जाने हैं। जो लोग इस परियोगे से प्रेमकी गाँठ बोल रहे हैं; तो उनमें शरीर में शब्दों का अपने ही आत्मा का अवश्यक भगवान् भगवान्में देख करते हैं, उन गृहोंका अभ्यासन निश्चित है।

ये वैद्यन्यगमःप्राप्ता ये धार्तीताथ गृहताम्।  
प्रियगिर्जा धृष्णिका भाग्मानं धातयन्ति ते ॥

( श्रीमद्भा० ११। ५। १६ )

जिन लोगोंने आगमगान गायादान करके कैवल्य-मोक्ष नहीं प्राप्त किया है और जो पूरे-पूरे मृदृ भी नहीं हैं, वे अधूरे न इश्वर्ये हैं और न उभरते। ये धर्म, धर्म, काम—इन लोगों पृथग्यायीं को मैं रखते हैं। एक धणके लिये भी उन्हें धार्ति नहीं गिलती। ये अपने हाथों आपने पैरोंमें कुल्हाड़ी गार रहे हैं। ऐसे ही लोगोंको आगमगाती बहते हैं।

एत आग्मद्वाऽशान्ता भजाने ज्ञानमानिनः।  
साद्व्यपृत्तुत्त्व्या वै कालध्वन्मनोरथाः ॥

( श्रीमद्भा० ११। ५। १७ )

## भूमि, देश और नगरका भूपण

कामः क्रोधश्च लोभश्च मोहोम्यसदादयः ।  
मायामात्सर्यपैशुन्यमविवेकोऽविचारणा ॥  
अहङ्कारो यद्यद्या च चापत्यं लौल्यता नुप ।  
अत्यायासोऽप्यनायासः प्रमादो द्रोहसाहस्रम् ॥  
आलस्यं दीर्घसूत्रत्वं परदारोपसेवनम् ।  
अस्त्याहारो निराहारः शोकश्चैर्यं नृपेत्तम् ॥  
पृतान् दोपान् गृहे नित्यं वर्जयन् यदि वर्तते ।  
स नरो भग्नदं भूमेदेशस्य नगरस्य च ॥  
श्रीमान् विद्वान् कुलीनोऽसौ स एव पुरुषोत्तमः ।  
सर्वतीर्थाभियेकश्च नित्यं तस्य प्रजायते ॥

( स्क० पु० २० खं० दशाप्यथेवमाहा० १२। २३—२७ )

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद्यापान एवं मद आदि, माया, मात्सर्य, चुगली, अविवेक, अविचार, अहङ्कार, स्वच्छन्दता, चपलता, लोलुपता, अन्यायसाधन, आयास, प्रमाद, द्रोह, दुस्साहस, आलस्य, दीर्घसूत्रता, परस्तीगमन, अत्यधिक आहार, सर्वथा आहारका त्याग, शोक तथा चोरी इत्यादि दोषोंका त्याग-कर जो घरमें सदाचारपूर्वक रहता है, वह मनुष्य इस भूमिका, देशका तथा नगरका सूषण है। वह श्रीमान्, विद्वान् तथा कुलीन है और वही सब पुरुषोंसे श्रेष्ठ है। उसीके द्वारा कुलीन है और वही सब पुरुषोंसे श्रेष्ठ है।

ज्ञानको ही ज्ञान माननेवाले हन आत्मजातियोंके कभी शान्ति नहीं गिलती, इनके कर्मोंकी परम्परा कभी शात नहीं होती। कालभगवान् सदा-सर्वदा इनके मनोरूपोंपानी केरते रहते हैं। इनके हृदयकी जलत, विशद की मिट्टेका नहीं।

हित्वात्यागाससचिता

गृहापत्यसुहृद्दिष्यः ।

तस्मा विशन्त्वनिन्दृतो वासुदेवपराञ्जुखाः ॥

( श्रीमद्भा० ११। ५। १८ )

जो लोग अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णसे विमुख हैं, वे अत्यन्त परिश्रम करके यह, पुत्र, मित्र और धन-सम्पत्ति इकट्ठी करते हैं; परंतु उन्हें अन्तमें सब कुछ छोड़ देना पड़ता है और न चाहनेपर भी विवश होकर घोर नरकमें जाना पड़ता है। ( भगवान्का भजन न करनेवाले विषयी पुरुषोंकी यही गति होती है। )

## महर्षि सारस्वत मुनि

पृथ्वी किनके द्वारा धारण की जाती है ?

दरिद्रा व्याधिता मूर्खाः पर्येष्यकराः सदा ।

अद्रत्तदाना जायन्ते दुःखस्थैष हि भाजनाः ॥

धनव्रन्तमश्तारं दरिद्रं चातपस्त्रिनभ् ।

उभावस्पति मोक्षव्यौ गले बध्वा महाशिलाम् ॥

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः ।

वक्ता शतसहस्रेषु दाता जायेत वा न वा ॥

गोभिर्वित्रैश्च वैदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः ।

अलुवैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्वर्यते मही ॥

( स्क० मा० कुमा० २। ६८—७१ )

जो दान नहीं करते वे दरिद्र, रोगी, मूर्ख तथा सदा दूसरोंके सेवक होकर दुःखके ही भागी होते हैं। जो धनवान् होकर दान नहीं करता और दरिद्र होकर कष्टसहनरूप तरफे दूर भागता है, इन दोनोंके गलेमें बड़ा भारी पत्थर बाँधकर जलमें छोड़ देना चाहिये। सैकड़ों मनुष्योंमें कोई शूरवीर हो सकता है, सहस्रोंमें कोई पण्डित भी मिल सकता है तथा लाखोंमें कोई वक्ता भी निकल सकता है; परंतु इनमें एक भी दाता हो सकता है या नहीं, इसमें संदेह है। गौ, ब्राह्मण, वेद, सती ल्ली, सत्यवादी पुरुष, लोभीन तथा दानशील मनुष्य—इन सातोंके द्वारा ही यह पृथ्वी धारण की जाती है।

## महर्षि पतञ्जलि



### यम-नियम और उनका फल

यमनियमसनग्राणायामप्रत्याहार-धारणाध्यानसाधयोऽष्टावङ्गानि ।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये आठ ( योगके ) अङ्ग हैं ।

अहिंसासत्यास्तेयत्रह्यचर्यापरिग्रहा यमः ।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय ( चोरीका अभाव ) त्रह्यचर्य और अपरिग्रह ( संग्रहका अभाव )—ये पाँच यम हैं ।

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमामहाव्रतम् ।

( उक्त यम ) जाति, देश, काल और निमित्तकी सीमाएं रहित सार्वभौम होनेपर महाव्रत हो जाते हैं ।

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमः ।

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-शरणागति—( ये पाँच ) नियम हैं ।

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ।

जब वितर्क ( यम और नियमोंके विरोधी हिंसादिके भाव ) यम-नियमके पालनमें वाधा पहुँचावें, तब उनके प्रतिपक्षी विचारोंका बार-बार चिन्तन करना चाहिये ।

वितर्क हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोह-पूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ।

( यम और नियमोंके विरोधी ) हिंसा आदि वितर्क कहलाते हैं । ( वे तीन प्रकारके होते हैं—) स्वयं किये हुए, दूसरोंसे करवाये हुए और अनुमोदित किये हुए । इनके कारण लोभ, क्रोध और मोह हैं । इनमें भी कोई छोटा, कोई मध्यम और कोई बहुत बड़ा होता है । ये दुःख और अशान-रूप अनन्त फल देनेवाले हैं—इस प्रकार ( विचार करना ही ) प्रतिपक्षकी भावना है ।

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ धैर्यमः ।

अहिंसाकी दृढ़ स्थिति हो जानेपर उस योगीके निकट सब प्राणी वैरक्ता त्याग कर देते हैं ।

सत्यप्रतिष्ठायां

कियाफलाध्यरवम् ।

सत्यकी दृढ़ स्थिति हो जानेपर ( योगीमें ) किया-फलके आश्रयका भाव ( आ जाता है ) ।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरदोपस्थानम् ।

चोरीके अभावकी दृढ़ स्थिति हो जानेपर ( उस योगी-के सामने ) सब प्रकारके रद्द प्रकट हो जाते हैं ।

त्रह्यचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।

त्रह्यचर्यकी दृढ़ स्थिति हो जानेपर गामधर्यका लाभ होता है ।

अपरिग्रहस्यैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः ।

अपरिग्रहकी स्थिति हो जानेपर पूर्वजन्म कैसे हुए थे, इस बातका भलीभौति ज्ञान हो जाता है ।

शौचस्वाङ्गज्ञगुप्ता परैरसंसर्गः ।

शौचके अभ्याससे अपने अङ्गोंमें वृणा और दूसरोंसे संसर्ग न करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है ।

सत्यवृद्धिसौमनस्यैकाग्रयेन्द्रियजयत्मदर्शनयोगवत्त्वानि च

अन्तःकरणकी शुद्धि, मनमें प्रत्यन्ता, चित्तकी एकाग्रता, इन्द्रियोंका वशमें होना और आत्मसाक्षात्कारकी योग्यता—[ ये पाँचों भी होते हैं । ]

संतोषादनुचमसुखलाभः ।

संतोषसे ऐसे सर्वोत्तम सुखका लाभ होता है, जिससे उत्तम दूसरा कोई सुख नहीं है ।

कायेन्द्रियसिद्धिरुद्धिश्यात्तपसः ।

तपके प्रभावसे जब अशुद्धिका नाश हो जाता है, तब शरीर और इन्द्रियोंकी सिद्धि हो जाती है ।

स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ।

स्वाध्यायसे इष्टदेवताकी भलीभौति प्राप्ति ( साक्षात्कार ) हो जाती है ।

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ।

ईश्वर-प्रणिधानसे समाधिकी सिद्धि हो जाती है ।

( योग० २। २९-४५ )

## दो ही मार्ग

मिनि प्रार्थना में यह दिया—‘तपतो भा यामि। वे ही इस पथके परम गुह—परम निः  
पर्माणुम्। पृथ्योर्मा अप्तु यमग्।’

विज्ञान योगतमग्ना—आधुनिक यमग्ना—कोई तपत नहीं किये, यह एक नहीं है। आजके इस अर्थप्रबन्धन यमग्ना, उन योगदान शमयका यह नामित है—प्रगति यमग्नि। प्रगतिपर्याप्ति यमग्नि हो। क्योंकि—‘आवश्यकता ज्ञानियाँ चलनी है।’ यह प्रगति असंतोषग्री ओर, ज्ञानदयताकी वृत्तिकी ओर, संगर्भकी ओर है। यह प्रगति तोपरो टैक, टैकमे यायुशान और वम तथा उससे परगाणु-वम, दाहदोजन-वम, कोवाइट-वम, नाइट्रोजन यमर्दी ओर—जीवनसे पृथ्युकी ओर है। प्रकाशसे अन्धकारकी ओर है वह प्रगति—इसमें विश्वादके लिये ज्ञान नहीं है।

दो मार्ग हैं—प्रार्थनाका मार्ग और प्रगतिका मार्ग। एक द्वितिया मार्ग है और दूसरा मोगका मार्ग। एक जाता है अन्धकारसे प्रकाशकी ओर और दूसरा प्रकाशसे अन्धकारकी ओर।

मनुष्य एक दुराहेपर खड़ा है। मसुद्यजीवन जीवको सब ये एक दुराहेपर लाकर खड़ा कर देता है। वह किभी जायगा? उसे देव बनना है या दानव?

प्रकाशका मार्ग—संयम, सदाचार, द्याग, परोपकार, भगवद्गुजनका पवित्र मार्ग है। वहाँ सात्त्विकता है, सच्छिता है, शुभता है। संतोष और शान्ति उसके पुरस्कार हैं। अनन्त आनन्द, अखण्ड शान्ति ही उसके मन्त्रज्ञ हैं। शद्ग्रा और विश्वासका सम्बल लेकर यात्री इस मार्गसे सञ्चितानन्दघन परमात्मतत्त्वको प्राप्त करता है। शास्त्र ही इस मार्गका मार्गदर्शक है। भगवान् व्यासका ही अनुगमन करना है इस

आत्मय, प्रमाद, उच्छृङ्खला—एम, ड्रैप, मे खार्थ, इन्द्रियतृप्ति, परनिन्दा—कुछ जगहमें र प्रकृतिके प्राणी होते हैं। प्रकाशसे उनकी सहज र होती है। प्रकाशके पथमें अन्धकारके धर्मोंको नहीं हो सकता। अन्धकारके धर्मोंसे जिनका अ है, प्रकाशका पथ उन्हें कैसे प्रिय हो सकता। प्रकाशके पथमें कहाँ कोई आवर्षण सम्मुख दीर है। वहाँ तो चलना है—शश्वका, संतका अनुग करते चलना है।

अन्धकारका मार्ग—अज्ञान ही अन्धकारका समूह है। ठोकरे, संताप, क्रूर पशुओंके नृशंस आकरण—वह सहज किया है वहाँ।

काम, क्रोध, लोभ, मोह—अन्धकारके धर्म उसमें पनपेंगे, प्रफुल्ह रहेंगे। अज्ञात मनिष—छिपा भय और मोहक ज़िल्ही ढंगकारे—ऐसे मार्गमें मृत्यु, नरक एवं यातनाएँ तो होंगी ही।

सम्मुखका कल्पित सुख, कल्पित मोह—कुछ उद्घक्षयकृति प्राणी है विश्वमें। अन्धकार ही उन्हें आवर्षित करता है। कल्पित—ऐसे प्राणियोंकी बहुलताका युग ठहरा यह। कामका आवाहन है इस मार्गकी ओर। औँख, नाक, कर, लीभकी तृप्तिके प्रलोभक साधन इधर आवर्षण उत्पन्न करते हैं और इस आवर्षणमें जो फँसा—आगे भय है—अन्धकार है।

मनुष्य दुराहेपर खड़ा है। किन्तु जायगा वह—सब उसे सोचना है। प्रकाशका पथ और अन्धकारका मार्ग—मार्ग तो दो ही हैं।

## भगवान् कपिलदेव

**धन-मदान्धोंकी दशा**

ऐश्वर्यमहत्तानां

भुवितानां च कामिनाम् ।

अहङ्करविमूडानां

विवेको चैव जायते ॥

किमत्र चित्रं सुजनं

बाधन्ते अदि दुर्जनाः ।

महर्षिरहंशानुतटे पातयन्ति नदीस्याः ॥

यत्र श्रीयैवतं वापि परदारोऽपि तिष्ठति ।

तत्र सर्वान्धता नित्यं मूर्खत्वं चापि जायते ॥

भवेद्यदि खलस्य श्रीः सैव लोकविनाशिनी ।

यथा सखाग्नेः पवनः पञ्चमस्य पर्यो यथा ॥



अहो धनमदान्धस्तु पश्यत्तुपि न पश्यति ।

यदि पश्यत्यात्महितं ल पश्यति न संदायः ॥

(ना० १०८ । १०३, १०५, १०६, १०८, १०९)

जो ऐश्वर्यके मदसे उमत्त हैं, जो भूत्वा पीड़ित हैं, जो कामी हैं तथा जो अहङ्कारसे मूढ़ हो रहे हैं, ऐसे मनुष्योंको विवेक नहीं होता । यदि हुए मनुष्य सज्जनोंको मताते हैं तो इसमें कथा आश्र्य है । नदीका वेग किनारेपर उसे हुए वृक्षोंको भी गिरा देता है । जहाँ धन है, जवानी है तथा परस्ती भी है, वहाँ सदा सभी अधि और मूर्ख वने रहते हैं । हुएके पास लक्ष्मी हो तो वह लोकका नाश करनेवाली ही होती है । जैसे बायु अग्निकी ज्वालाको बढ़ानेमें सहायक होता है, और जैसे दूध साँपके विषको बढ़ानेमें कारण होता है, वैसे ही हुएकी लक्ष्मी उसकी दुष्टाको बढ़ा देती है । अहो ! धनके मदसे अंधा हुआ मनुष्य देखते हुए भी नहीं देखता । यदि वह अपने हितको देखता है, तभी वह वास्तवमें देखता है ।

## महर्षि शौनक

**तृष्णाका अन्त नहीं है**

शोकस्यात्सहस्रणि

भयस्थानदातानि च ।

दिवसे दिवसे भूदः

माविश्चन्ति न पण्डितम् ॥

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठ

नित्योहृणकरी स्मृता ।

अवर्मवहुला चैव धोरा पाणानुवन्धनी ॥

या हुस्तप्ता हुमैतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।

योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तो तृष्णा व्यजतः सुखम् ॥

अनादान्ता तु सा तृष्णा अन्तर्देहगता नृष्णम् ।

विनाशयति भूतानि अयोनिज इवान्तः ॥

अन्तो नस्ति पिपासायाः संतोषः परमं सुखम् ।

तस्मात् संतोषमेवेह परं पश्यन्ति पण्डितः ॥

अनित्यं यौवतं स्तुं जीवितं रदसञ्जयः ।

ऐश्वर्यं प्रियसंवासो गृथेत्तत्र न पण्डितः ॥

इज्याद्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा दमः ।

अलोभ इति भागोऽर्थं धर्मस्याद्विधः स्मृतः ॥

(महा० बन० २ । १५, ३४-३६, ४५, ४६, ७४ )

मूर्ख मनुष्योंके प्रतिदिन सैकड़ों और हजारों भय और शोकके अवसर आया करते हैं, शानियोंके सामने नहीं ।

यह तृष्णा महाभाषिनी है, उद्गेग पैदा करनेवाली है, अधर्मसे पूर्ण और भयङ्कर है तथा समस्त पापोंकी जड़ है । हुर्बुद्धिवाले मूर्ख इसका त्याग नहीं कर सकते । वूड़ होनेपर भी यह बूढ़ी नहीं होती । यह प्राणोंका अन्त कर देनेवाली बीमारी है, इसका त्याग कर देनेपर ही सुख मिलता है । जैसे लोहेके भीतर प्रवेश करके सर्वनाशक अग्नि उसका नाश कर देती है, वैसे ही प्राणियोंके हृदयमें प्रवेश करके यह तृष्णा भी उनका नाश कर देती है और स्वयं नहीं मिलती ।

तृष्णाका कहीं अन्त नहीं है, संतोषमें ही परम सुख है । इसलिये बुद्धिमान् पुरुष संतोषको ही श्रेष्ठ मानते हैं । यह जवानी, सुन्दरता, जीवन, रत्नोंके छेर, ऐश्वर्य और प्रिय वस्तुओं तथा प्राणियोंका समागम—सभी अनित्य हैं । इसलिये विद्वानोंको उचित है कि वे इनके संग्रह-परिवहका त्याग कर दें ।

यज्ञ, स्वाध्याय, दान, तप, सत्य, क्षमा, दम तथा लोगका अभाव—वे धर्मके आठ म

## महर्षि पराशार

प्रातिनिधि तथा मंगलामायाहादितु संसारम् ।

नारायणमवाप्नोति सत्ता पापक्षयाद्यतः ॥

( विष्णु० २।६।४३ )

प्राप्तवान् वार्ष्णेय, रथिमें जयया मध्याह्नमें किसी  
मी गमय अनागमणका सारण करनेसे पुरुषके समस्त पाप  
नाशाल धैर्य हो जाता है ।

तत्त्वाद्विनिः विष्णुं संसारम् पुण्ये मुने ।

न पापि नरकं मर्त्यः संक्षिणास्तिलपातकः ॥

( विष्णु० २।६।४५ )

दूर्घटयं मुने ! श्रीविष्णुभगवानका अहर्निश सारण  
करनेमें मध्याह्न पाप धीण हो जानेके कारण मनुष्य फिर नरकमें  
मर्हा जाता ।

अन्येषां यो न पापानि चिन्तयत्यात्मनो थथा ।

तस्य पापागमस्तात् हेत्यनावाच विद्यते ॥

कर्मणा भनसा वाचा परपीढां क्रोति यः ।

तद्वज्ञज्ञनम् फलति प्रभूतं तस्य चाशुभम् ॥

सोऽहं न पापमिच्छामि न करोमि वदामि वा ।

चिन्तयत् सर्वभूतस्यमात्मन्यपि च केशवम् ॥

शारीरं सानसं दुःखं दैवं भूतस्वर्वं तथा ।

सर्वत्र शुभचित्तस्य तस्य मे जायते कुतः ॥

पूर्वं सर्वेषु भूतेषु भक्तिर्भयभिर्वारिणी ।

कर्तव्या पविष्टैर्जन्मत्वा सर्वभूतमयं हरिम् ॥

( विष्णु० १।१९।५९ )

जो मनुष्य अपने समान दूसरोंका बुरा नहीं सोचता,  
है तात ! कोई करण न रहनेसे उसका भी कभी बुरा नहीं  
होता । जो मनुष्य मन, वचन या कर्मसे दूसरोंको कष्ट देता  
है, उसके उस परपीढाहूप बीजेसे ही उसका हुआ अत्यन्त  
अशुभ फल उसको मिलता है । अपने सदित समस्त प्राणियोंमें  
श्रीकिश्चिवको वर्तमान समझकर मैं न सो किसीका बुरा चाहता  
हूँ और न कहता या करता हूँ । इस प्रकार सर्वत्र शुभचित्त  
होनेसे मुझको शारीरिक, मानसिक, दैविक अथवा भौतिक  
दुःख कैसे प्राप्त हो सकता है । इसी प्रकार भगवान्को सर्व-  
भूतमय जानकर विद्वानोंको सभी प्राणियोंमें अनन्य भक्ति  
करनी चाहिये ।

तत्साद्वदुःखात्मकं नास्ति न च किञ्चित् सुखात्मकम् ।

भनसः परिणामोऽयं

सुखदुःखादिलक्षणः ॥

( विष्णु० २।६।४९ )

अतः कोई भी पदार्थ दुर्लभमय नहीं है और न कोई  
सुखमय है । ये सुख-दुःख तो मनके ही विकार हैं ।

मुद्दानमेव भवति क्रोधो शत्रुता कुतः ।

हन्त्यते तात कः केत यतः स्वकृतसुक् पुमान् ॥

संचितस्तपि महता वत्स क्लेशेन मात्रैः ।

धरासत्तपस्त्वैव क्रोधो नाशकः परः ॥

स्वर्गाप्यवर्गव्यासेभकारणं परमपूर्णः ।

वर्जयन्ति सदा क्रोधं तात मा तद्वारा भव ॥

( विष्णु० १।१।१७-१९ )

क्रोध तो मूर्खोंकी ही हुआ करता है, विचारवानोंको मला  
कैसे ही सकता है । मैया ! मला, कौन किसीको मारता है ।  
क्योंकि पुरुष स्वयं ही अपने कियेका फल भोगता है । श्रियवर !  
यह क्रोध तो मनुष्यके अत्यन्त कष्टसे संचित वश और तपका  
भी प्रबल नाशक है । है तात ! इस लोक और परलोक दोनों-  
को विगाड़नेवाले इस क्रोधका महर्षिगण सर्वदा त्याग करते  
हैं, इसलिये तू इसके वशीभूत मत हो ।

लिङ्गश्वेष क्रियमाणानि कर्माणोह निवर्तयेत् ।

हिंसात्मकानि सर्वाणि नायुस्त्वेष्यपायुषा ॥

( महा० शान्ति० २९७।९ )

अपने स्नेहीजन भी यदि यहाँ हिंसात्मक कर्म कर रहे हों  
तो उन्हें रोकें, कभी दूसरेकी आयुसे अपनी आयुकी इच्छा न  
करे ( दूसरोंके प्राण लेकर अपने जीवनकी रक्षा न चाहे । )

एकः शत्रुने द्वितीयोऽस्ति चतु-

रशानतुस्यः पुरुपस्य राजन् ।

येवाद्वृतः कुक्षते सम्प्रयुक्तौ

घोराणि कर्माणि सुदाशानानि ॥

( महा० शान्ति० २९७।२४ )

राजन् ! जीवका एक ही शत्रु है, उसके समान दूसरा  
कोई शत्रु नहीं है—वह है अज्ञान । उस अज्ञानसे आवृत और  
प्रेरित होकर मनुष्य अत्यन्त निर्दयतापूर्ण तथा मशकर कर  
कर बैठता है ।

यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुष्य द्विष्टते नः ।

धर्माद्विमन्ता कामात्मा भवेत् स खलु वन्ध्यते ॥

( महा० शान्ति० २९७।१४ )

जो मनुष्य परम दुर्लभ मानव-जन्मको पाकर भी काम-  
परायण हो दूसरोंसे देष करता और धर्मकी अवहेला करता  
रहता है, वह महान् लाभसे वञ्चित रह जाता है ।

## महर्षि वेदव्यास

### कलियुगकी महिमा

थल्कुते दशभिर्वै स्त्रेतायां हायनेन तम् ।  
द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तस्मल्लौ ॥  
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः ।  
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिस्साधिति भाषितम् ॥  
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चर्यन् ।  
यदास्तोति तदान्तोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

( विष्णु० ६। २। १५—१७ )

द्विजगण ! जो फल सत्ययुगमें दस वर्ष तपस्या, ब्रह्मचर्य और जप आदि करनेसे मिलता है, उसे मनुष्य व्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास और कलियुगमें केवल एक दिन-रातमें प्राप्त कर लेता है; इसी कारण मैंने कलियुगको श्रेष्ठ कहा है। जो फल सत्ययुगमें ध्यान, व्रेतामें यज्ञ और द्वापरमें देवार्चन करनेसे प्राप्त होता है, वही कलियुगमें श्रीकृष्णचन्द्रका नाम-कीर्तन करनेसे मिल जाता है।

### सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।  
पर्यथेणोपसर्पन्ते नरं नेतिमरा इव ॥

( महा० वन० २६१। ४९ )

मनुष्यके पास सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख क्रमशः आते रहते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे रथचक्रकी नेतिके इधर-उधर और धूमते रहते हैं।

जातस्य नियतो मृत्युः पतनं च तथोन्नतेः ।  
विप्रयोगावसानस्तु संयोगः संचयः क्षयः ॥  
विज्ञाय न त्रुधाः शोकं न हर्षसुप्यान्ति ये ।  
तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तः सन्ति तादृशाः ॥

( नहापुराण २१२। ९९-१० )

जो जन्म ले चुका है, उसकी मृत्यु निश्चित है। जो कॅचे चढ़ चुका है, उसका नीचे गिरना भी अवश्यमावी है। संयोगका अवसान वियोगमें ही होता है और संग्रह हो जानेके बाद उसका क्षय होना भी निश्चित बात है। यह समझकर विद्वान् पुरुष हर्ष और शोकके बशीभूत नहीं होते और दूसरे मनुष्य भी उन्हींके आचरणसे शिक्षा लेकर वैसे ही बनते हैं।



### पापके स्वीकारसे पाप-नाश

मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनः समनुस्तप्ते ।  
मनःसमाधिसंयुक्तो न स सेवेत दुष्कृतम् ॥  
यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते ।  
तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते ॥  
यदि विप्राः कथयते विप्राणां धर्मवादिनाम् ।  
ततोऽधर्मकृतात् क्षिप्रमपराधात् प्रमुच्यते ॥

यथा यथा नरः सम्यग्धर्मसमुभायते ।  
समाहितेन मनसा विसुच्यति तथा तथा ॥

( ब्रह्म० २१८। ४—७ )

ब्राह्मणो ! जो मोहवश अधर्मका आचरण कर लेनेपर उसके लिये पुनः सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप करता और मन को एकाग्र रखता है, वह पापका सेवन नहीं करता। ये ज्यों ज्यों मनुष्यका मन पाप-कर्मकी निन्दा करता है, त्यों-त्यों उसका शरीर उस अधर्मसे दूर होता जाता है। यदि धर्मवादी ब्राह्मणोंके सामने अपना पाप कह दिया जाय तो वह उस पापजनित अपराधसे शीघ्र मुक्त हो जाता है। मनुष्य जैसे-जैसे अपने अधर्मकी बात आरंबार प्रकट करता है, वैसे ही-वैसे वह एकाग्रचित्त होकर अधर्मको छोड़ता जाता है।

### संन्यासीका आचार

प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्गारे भुक्तव्यज्जने ।  
काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थी पर्यटेद् गृहान् ॥  
अलाभे न विषादी स्वाल्लाभे नैव च हर्षयेत् ।  
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥  
अतिपूजितलाभास्तु जुगुस्तेच्चैव सर्वतः ।  
अतिपूजितलाभैस्तु यतिसुक्तोऽपि बन्ध्यते ॥  
कामः क्षोब्धस्था दर्पो लोभमोहाद्यश्च ये ।  
तांस्तु दोषान् परित्यज्य परिद्वाण् निर्ममो भवेत् ॥

( ब्रह्म० २२२। ५०—५३ )

जीवन-निर्वाहके लिये वह उच्च वर्णवाले मनुष्योंके घरपर भिक्षाके लिये जाय—वह भी ऐसे समयमें जब कि रसोईकी आग लुझ गयी हो और घरके सब लोग ला-पी चुके हों। भिक्षा न मिलनेपर खेद और मिलनेपर हर्ष न मने। भिक्षा उतनी ही है। निजसे गापागापा नै—विषयासक्षिसे वह नित

प्राचिने पूजारी इसिये हेयोः प्रयोकि अधिक आदर-सत्कार  
मिलेंसे यन्मारी अन्य वन्यगोंसे मना होनेपर भी वैष्ण जाता  
है । उमा, गोप, दर्श, देव और गोद आदि जितने दोर हैं,  
उन वन्यगों नाम करके यन्मारी मगतारहित हो गईव  
हिन्दूसंस्कृत ।

### कलियुगकी प्रधानतामें क्या होता है ?

पदा पदा हि पाषण्डयुतिरत्नोपलक्ष्यते ।  
पदा तदा कलेयुक्तिरुमेया विचक्षणैः ॥  
पदा पदा सत्ता लनिवेदमर्मानुसारिणाम् ।  
पदा तदा फलेयुक्तिरुमेया विचक्षणैः ॥  
प्रारम्भाशावसीदन्ति यदा धर्मकुत्ता चृणाम् ।  
तदामुमेयं प्राप्तान्यं कलेयिप्रा विचक्षणैः ॥

( गान्धुरण २१९ । ४४—४६ )

आशानो ! जब-जब इस जगहमें पाषण्ड-वृत्ति दृष्टिगोचर  
होने लगे, तब-तब विक्षान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिका  
अनुमान बरना चाहिये । जब-जब वैदिक मार्मका अनुसरण  
करनेवाले साधु पुरुषोंकी हानि हो, तब-तब वृद्धिमान् पुरुषोंको  
कलियुगकी वृद्धिका अनुमान करना चाहिये । जब धर्मात्मा  
मनुष्योंके आरम्भ किये हुए कार्य शिथिल हो जायें, तब  
उसमें विद्वानोंको कलियुगकी प्रधानताका अनुमान करना  
चाहिये ।

### यम-नियम

सत्यं क्षमाऽर्जवं ध्यानमानृशस्यमहिसतम् ॥  
दसः प्रसादो मायुरं सृदुतेति यमा दश ।  
शौचं स्नानं तपो दानं मौनेज्यात्यवनं वतम् ॥  
उपोषणोपस्थदण्डो दृष्टैः नियमः स्पृताः ॥

( स्क० पु० श्रा० ध० मा० ५ । १९—२१ )

सत्य, क्षमा, सरलता, ध्यान, कूरताका अभाव, हिंसाका  
सर्वथा त्याग, मन और इन्द्रियोंका संयम, सदा प्रसन्न रहना;  
मधुर वर्ताव करना और सबके प्रति कोमल भाव रखना—ये  
दस 'यम' कहे गये हैं । शौच, स्नान, तप, दान, मौन,  
यज्ञ, साक्षात् व्रत, उपवास और उपस्थ-इन्द्रियका दमन—  
ये दस 'नियम' बताये गये हैं ।

### सत्य

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।  
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मो विधीयते ॥

( स्क० पु० श्रा० ध० मा० ६ । ८८ )

सत्य बोले, प्रिय बोले, अप्रिय सत्य कभी न बोले, प्रि  
भी असत्य हो तो न बोले । यह धर्म वेद-शास्त्रोंमें  
विहित है ।

... ... ... ...

सत्यपूतो वदेद् वाणीं सत्यपूतं समाचरेत् ॥

( पशुरण, सर्ग ५५ । ११ )

सत्यसे पवित्र हुई वाणी बोले तथा मनसे जो पवि  
जान पड़े, उसीका आचरण करे ।

### दानका फल

भूप्रदो मण्डलाधीशः सर्वत्र सुखितोऽज्ञदः ॥  
तोदाता सुरूपः स्वात् पुष्टश्वानप्रदो भवेत् ।  
प्रदीपदो निर्मलाक्षो गोदातार्थ्यमलोकभाक् ॥  
स्वर्णदाता च दीघायुसिलदः स्वात्वं सुग्रजः ।  
वेदमदोऽस्युच्चसौधेशो वेददशन्दलोकभाक् ॥  
हयप्रदो दिव्यदेहो लक्ष्मीवाद् वृषभप्रदः ।  
सुभर्यः श्रिविकादाता सुपर्यङ्गप्रदोऽपि च ॥  
श्रद्धया प्रतिगृह्णति श्रद्धया यः प्रथच्छति ।  
स्वर्णिणौ तामुभौ स्यतां पततोऽश्रद्धया त्वष्टः ॥

( स्क० पु० श्रा० ध० मा० ६ । ९५—९९ )

भूमिदान करनेवाला भण्डलेश्वर होता है, अबद्याता  
सर्वत्र सुखी होता है और जल देनेवाला सुन्दर रूप पाता है ।  
भोजन देनेवाला हृष्ट-पृष्ठ होता है । दीप देनेवाला निर्मल  
नेत्रसे युक्त होता है । गोदान देनेवाला सर्वलोकका  
भागी होता है, सुर्वा देनेवाला दीर्घायु और तिल  
देनेवाला उत्तम प्रजासे युक्त होता है । धर देनेवाला वृहत्  
ऊँच महलोंका मालिक होता है । वस्त्र देनेवाला चलन्द्रयोकमें  
जाता है । घोड़ा देनेवाला दिव्य शरीरसे युक्त होता है । पैल  
देनेवाला लक्ष्मीधान् होता है । पालकी देनेवाला सुन्दर खी  
पाता है । उत्तम पलंग देनेवालेको भी यही फल मिलता है ।  
जो श्रद्धापूर्वक दान देता और श्रद्धापूर्वक ग्रहण करता है, वे  
दोनों स्वर्णलोकके अधिकारी होते हैं तथा अश्रद्धासे दोनोंका  
अधःपतन होता है ।

### पाप और उसका फल

अनृतात् पारदार्याच्च तथाभक्षयस्य भक्षणतः ।  
अगोत्रघर्मात्त्वरणात् क्षित्रं नश्यति वै कुलम् ॥

( पशुरण, सर्ग ५५ । १८ )



अनुधः सर्वकार्येषु अज्ञातः सर्वकर्मसु ।  
समयाचारहीनस्तु पशुरेव स बलिशः ॥  
... ... ... ... ।

हिंसो ज्ञातिजनोद्ग्रेषी रते युद्धे च कातरः ॥  
विषसादिप्रियो नित्यं नरः श्वा कीर्तितो त्रुचैः ।  
ग्रकृत्या चपलो नित्यं सदा भोजनचञ्चलः ॥  
प्लवगः क्रान्तप्रीतो नरः शाम्खामृगो भुवि ।  
सूचको भाषया बुद्ध्या सज्जनेऽन्यजनेषु च ॥  
उद्गेगजनकत्वाच्च स पुमानुरगः स्मृतः ।  
बलवान् क्रान्तशीलश्च सततं वानपत्रपः ॥  
पूतिमांसप्रियो भोगी नृसिंहः समुद्राहृतः ।  
तत्स्वनादेव सीदन्ति भीता अन्ये बृकादयः ॥  
द्विरदादिनरा ये च ज्ञायन्तेऽदूरदर्शिनः ।  
एवमादिकमेणैव विजानीयान्नेषु च ॥

( पद्म० सृष्टि० ७४ । ९७-१०६ )

जो मनुष्य अपवित्र एवं दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंके भक्षणमें आनन्द मानता है, वरावर पाप करता है और रातमें घूम-घूमकर चोरी करता रहता है, उसे विद्वान् पुरुषोंको वश्चक समझना चाहिये । जो सम्पूर्ण कर्तव्य कार्योंसे अनभिज्ञ तथा सब प्रकारके कर्मोंसे अपरिचित है, जिसे समयोचित सदाचार-का ज्ञान नहीं है, वह मूर्ख वास्तवमें पश्च ही है । जो हिंसक सजातीय मनुष्योंको उद्देजित करनेवाला, कलह-प्रिय, कायर और उच्छिष्ठ भोजनका प्रेमी है, वह मनुष्य कुत्ता कहा गया है । जो स्वभावसे ही चञ्चल, भोजनके लिये सदा लालायित रहनेवाला, कूद-कूदकर चलनेवाला और जंगलमें रहनेका प्रेमी है, उस मनुष्यको इस पृथ्वीपर बंदर समझना चाहिये । जो वाणी और बुद्धिद्वारा अपने कुदम्भियों तथा दूसरे लोगोंकी भी चुगली लाता और सबके लिये उद्गेगजनक होता है, वह पुरुष सर्पके समान माना गया है । जो बलवान्, आक्रमण करनेवाला, नितान्त निर्लज्ज, दुर्गन्धयुक्त मांसका प्रेमी और भोगासक्त होता है, वह मनुष्योंमें सिंह कहा गया है । उसकी आवाज सुनते ही दूसरे भेड़िये आदिकी श्रेणीमें गिने जानेवाले लोग भयभीत और दुखी हो जाते हैं । जिनकी इष्ट दूरतक नहीं जाती, ऐसे लोग हाथी माने जाते हैं । इसी क्रमसे मनुष्योंमें अन्य पशुओंका विवेक कर लेना चाहिये ।

### मनुष्यरूपमें देवता

सुराणां लक्षणं ब्रूमो नररूपव्यवस्थितम् ।  
द्विजदेवातिथीनां च गुरुसाधुतपस्त्रिनाम् ॥  
पूजातपोरतो नित्यं धर्मशास्त्रेषु नीतिषु ।  
क्षमाशीलो जितक्रोधः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥  
अलुब्धः प्रियवाक् शान्तो धर्मशास्त्रार्थसम्प्रियः ।  
दयालुर्दीयितो लोके रूपवान् मधुरस्त्रः ॥  
वागीशः सर्वकार्येषु गुणी दक्षो महाबलः ।  
साक्षरश्चापि विद्वांश्च गतिनृत्यार्थतस्त्रवित् ॥  
आत्मविद्यादिकार्येषु सर्वतन्त्रस्त्रेषु च ।  
हविष्येषु च सर्वेषु गत्येषु च निरामिषे ॥  
सम्प्रीतश्चातिथौ दाने पर्वनीतिषु कर्मसु ।  
स्तानदानादिभिः कार्यैर्वृत्तैर्यज्ञैः सुरार्चनैः ॥  
कालो गच्छति पाठैश्च न छीबं वासरं भवेत् ।  
अयमेव मनुष्याणां सदाचारो निरन्तरम् ॥

( पद्म० सृष्टि० ७४ । १०७-१११, ११३-११४ )

अब हम नररूपमें स्थित देवताओंका लक्षण बतलाते हैं । जो द्विज, देवता, अतिथि, गुरु, साधु और तपस्त्रियोंके पूजनमें संलग्न रहनेवाला, नित्य तपस्यापरायण, धर्म एवं नीतिमें स्थित, क्षमाशील, क्रोधजयी, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, लोभहीन, प्रिय बोलनेवाला, शान्त, धर्मशास्त्रप्रेमी, दयालु, लोकप्रिय, मिष्ठभाषी, वाणीपर अधिकार रखनेवाला, सब कार्योंमें दक्ष, गुणवान्, महाबली, साक्षर, विद्वान्, आत्मविद्या आदिके लिये उपयोगी कार्योंमें संलग्न, वी और गायके दृध-दही आदिमें तथा निरामिष भोजनमें सचि रखनेवाला, अतिथिको दान देने और पार्वण आदि कर्मोंमें प्रवृत्त रहनेवाला है, जिसका समय स्तान-दान आदि शुभ कर्म, व्रत, यज्ञ, देवपूजन तथा स्वाध्याय आदिमें ही व्यतीत होता है, कोई भी दिन व्यर्थ नहीं जाने पाता, वही मनुष्य देवता है ।

### सबका उद्गारक

यो दान्तो विगुणेसुक्तो तीतिशास्त्रार्थतस्त्रः ।  
पृतैश्च विविवैः प्रीतः स भवेत्सुरलक्षणः ॥

प्राणागदपमाणि नमिष्यत च ये दिवः ।  
धयगायस्ते पूर्णं च भरोदरणक्षमः ॥  
यः दीपे विष्णु-व्यापदः मीरे गाण्यं पूर्णं च ।  
तारपिता पितॄभ भर्तुभ स भरोदरणक्षमः ॥  
पितॄषे विष्णुर् एषा ग्राण्ये पूर्णेष नमः ।  
पितॄः वर्षपापेभ्यः य भरोदरणक्षमः ॥  
परमामित्तो पितॄः सर्वज्ञतः सदा ।  
भगवान्पानप्रियो निष्पं च भरोदरणक्षमः ॥

( पद० सहित ७४-३४-३८ )

जो मन्त्र जितेन्द्रिय, दुर्युणेभि युक्त तथा नीतिशास्के तत्त्वों से अनेकाला है और प्रेरे ही नाना प्रकारके उत्तम गुणोंमें संतुष्ट दिलायी देता है, वह देवस्वरूप है। स्वर्गका निवासी ही या मनुष्यत्वोक्ता—जो पुराण और तन्त्रमें बताये हुए पृथ्वीमांश मध्ये आचरण करता है, वही इस पृथ्वीका उदाहर करनेमें समर्थ है। जो शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और गणेशका उपासक है, वह समस्त पितॄओंको तास्कर इस पृथ्वीका उदाहर करनेमें समर्थ है। विशेषतः जो वैष्णवको देखकर प्रसन्न होता और उसकी पूजा करता है, वह सगस्त पापोंसे मुक्त हो इस भूतलका उद्धार कर सकता है। जो ब्राह्मण यजन-याजन आदि छः कर्मोंमें संलग्न, सब प्रकारके यज्ञोंमें प्रवृत्त रहनेवाला और सदा धार्मिक उपाख्यान सुनाने-का प्रेमी है, वह भी इस पृथ्वीका उदाहर करनेमें समर्थ है।

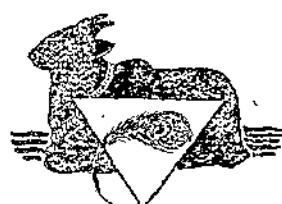
### सत्का नाशक

विश्वासद्वातिनी ये च कृतघ्ना ब्रतलोपिनः ।  
द्विजदेवेषु विद्विष्टाः शातयन्ते धरां नराः ॥  
पितॄरौ ये न पुण्यन्ति खियो गुरुजनाविश्वान् ।  
देवद्विजनृपाणां च वसु ये च हरन्ति वै ॥  
अपुनर्भवशाखे च शातयन्ति धरां नराः ।  
ये च मध्यरसाः पापा द्युत्कर्मरतास्था ॥  
पाषण्डपतितालापाः शातयन्ति धरां नराः ।  
महापातकिनो ये च अतिपातकिनस्था ॥

धातका वहुजन्तुनां शातयन्ति धरां नराः ।  
सुकर्मरहिता ये च नियोद्देशम् निर्भयाः ॥  
सृतिदास्त्वार्थकेद्विष्टाः शातयन्ति धरां नराः ।  
निजवृत्ति परित्यज्य कुर्वन्ति चाधमां च ये ॥  
गुरुनिन्दासता द्वेषाच्चातयन्ति धरां नराः ।  
दातारं ये रोधयन्ति पातके प्रेरन्ति च ॥  
दीनानाथान् पूर्णद्यन्ति शातयन्ति धरां नराः ।  
युते चान्ये च बहवः पापकर्मकृतो नराः ॥  
पुरुषान् पातचित्वा तु शातयन्ति धरां नराः ।

( पद० सहित ७४ । १३९-१४ )

जो लोग विश्वासघाती, कृतम्, व्रतका उल्लङ्घन करते; तथा ब्राह्मण और देवताओंके द्वेषी हैं, वे मनुष्य इस पृथ्वी नाश कर डालते हैं। जो माता-पिता, स्त्री, गुरुजन उबालकोंका पोषण नहीं करते, देवता, ब्राह्मण और राजाओं धन हर लेते हैं तथा जो मोक्षशास्त्रमें अद्वा नहीं रखते, मनुष्य भी इस पृथ्वीका नाश करते हैं। जो पापी मदि पीने और जुआ खेलनेमें आसक्त रहते और पालिष्ठियों तः पतितोंसे बातीलाप करते हैं, जो महापातकी और अतिपातकी हैं, जिनके द्वारा बहुतसे जीव-जन्तु मरे जाते हैं, वे लोग इस भूतलका विनाश करनेवाले हैं। जो सत्कर्मसे रहित, सद दूसरोंको उद्धिष्ठ करनेवाले और निर्भय हैं, स्मृतियों तथा धर्मशास्त्रोंमें बताये हुए शुभकर्मोंका नाम सुनकर जिनके हृदयमें उद्देश्य होता है, जो अपनी उत्तम जीविका छोड़क नीच वृत्तिका आश्रय लेते हैं तथा देववशा गुरुजनोंकी निन्दामें प्रवृत्त होते हैं, वे मनुष्य इस भूलोकका नाश कर डालते हैं। जो दाताको दानसे रोकते और पापकर्मकी ओर प्रेरित करते हैं तथा जो दीनों और अनाश्रोंको पीड़ा पहुँचाते हैं, वे लोग इस भूतलका सत्यानाश करते हैं। ये तथा और भी वहुतसे पापी मनुष्य हैं, जो दूसरे लोगोंको पापोंमें ढकेलकर इय पृथ्वीका सर्वनाश करते हैं।



## मुनि शुकदेव

**श्रीभगवान्‌के नाम-रूप-लीला-  
धारादिका माहात्म्य**



देहापत्यकलनादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि ।  
तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥  
तस्माद् भारत सर्वात्मा ।  
भगवान् हरिरीश्वरः ।  
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च  
स्मर्तेज्यश्चेच्छताभयम् ॥  
( श्रीमद्भा० २ । १ । ४-५ )

संसारमें जिन्हें अपना अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्धी कहा जाता है, वे शरीर, पुत्र, स्त्री आदि कुछ नहीं हैं, असत् हैं; परंतु जीव उनके मोहमें ऐसा पागल-सा हो जाता है कि रात-दिन उनको मृत्युका ग्रास होते देखकर भी चेत्ता नहीं। इसलिये परीक्षित् ! जो अभय पदको प्राप्त करना चाहता है, उसे तो सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी ही लीलाओंका श्रवण, कीर्तन और समरण करना चाहिये ।

न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संस्तविह ।  
वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥  
( श्रीमद्भा० २ । २ । ३३ )

संसार-चक्रमें पड़े हुए मनुष्यके लिये, जिस साधनके द्वारा उसे भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाय, उसके अतिरिक्त और कोई भी कल्याणकारी मार्ग नहीं है ।

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सत्तं  
कथामृतं श्रवणपुटेषु सम्भृतम् ।  
पुनन्ति ते विषयविद्विषिताशयं  
वजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥  
( श्रीमद्भा० २ । २ । ३७ )

राजन् ! संत पुरुष आत्मस्वरूप भगवान्‌की कथाका मधुर अमृत खाँटते ही रहते हैं; जो अपने कानके दोनोंमें भर-कर उसका प्राप्त करते हैं, उनके हृदयसे विषयोंका विषैला प्रभाव जाता रहता है, वह शुद्ध हो जाता है और वे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी संनिधि प्राप्त कर लेते हैं ।

सं० वा० अ० ११—

वासुदेवकथाप्रशः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि ।  
वक्तारं पृच्छकं श्रोतृस्त्वपादसलिलं यथा ॥  
( श्रीमद्भा० १० । ३ । १६ )

भगवान् श्रीकृष्णकी कथाके सम्बन्धमें प्रश्न करनेसे ही वक्ता, प्रश्नकर्ता और श्रोता तीनों ही पवित्र हो जाते हैं—जैसे गङ्गाजीका जल या भगवान् शालग्रामका चरणामृत सभीको पवित्र कर देता है ।

यस्तृत्तमश्लोकगुणानुवादः

संगीयतेऽभीक्षणमसङ्गलम्भः ।  
तमेव नित्यं श्रण्यादभीक्षणं  
कृष्णोऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥  
( श्रीमद्भा० १३ । ३ । ११ )

भगवान् श्रीकृष्णका गुणानुवाद समस्त अमङ्गलोंका नाश करनेवाला है, बड़े-बड़े महात्मा उसीका गान करते रहते हैं। जो भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्य प्रेममयी भक्तिकी लालसा रखता हो, उसे नित्य-निरन्तर भगवान्‌के दिव्य गुणानुवादका ही श्रवण करते रहना चाहिये ।

षष्ठामध्येयं प्रियमाण आत्मुरः  
पतन् स्वलन् वा विवशो गृणन् पुमान् ।  
विमुक्तकर्माग्निं उत्तमां गतिं  
ग्रामोति यद्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥  
( श्रीमद्भा० १२ । ३ । ४४ )

मनुष्य भरनेके समय आतुरताकी स्थितिमें अथवा गिरते या फिसलते समय विवश होकर भी यदि भगवान्‌के किसी एक नामका उच्चारण कर ले, तो उसके सारे कर्मबन्धन छिन्न-मिन्न हो जाते हैं और उसे उत्तम-से-उत्तम गति प्राप्त होती है; परंतु हाय रे कलियुग ! कलियुगसे प्रभावित होकर लोग उन भगवान्‌की आराधनासे भी विमुख हो जाते हैं ।

पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्यदेशात्मसम्भवान् ।  
सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान् पुरुषोत्तमः ॥  
( श्रीमद्भा० १२ । ३ । ४५ )

कलियुगके अनेकों दोष हैं। कुल वस्तुएँ दूषित हो जाती हैं, स्थानोंमें भी दोषकी प्रधानता हो जाती है। सब दोषोंका मूल स्रोत तो अन्तःकरण है ही; परंतु जब पुरुषोत्तम भगवान्

हृदयमें आ निगजते हैं, तब उनकी संनिधिमात्रसे ही सब-  
के सब थोप नहीं हो जाते हैं।

**श्रुतः संकार्तिंतो चातः पूजितश्चाद्योऽपि वा ।**

**गृणां पुरोति भगवान् हृदयो जन्मायुताशुभ्रम् ॥**

( श्रीमद्भा० १२।३।४६ )

भगवान्के रूप, गुण, लीला, धार्म और नामके अवण, मन्त्रीनंन, ध्यान, पूजन और आदरसे वे मनुष्यके हृदयमें आकर निगजमान हो जाते हैं और एक-दो जन्मके पापोंकी तो वात ही क्या, हजारों जन्मोंके पापके द्वेर-के-द्वेर भी क्षण-भरमें भसा कर देते हैं।

**यथा हेत्ति स्थितो वह्निर्दुर्बणं हन्ति धातुजम् ।**

**एवमात्मगतो विष्णुयोगिनामशुभ्राद्यायम् ॥**

( श्रीमद्भा० १२।३।४७ )

जैसे भोगेके साथ संयुक्त होकर अग्नि उसके धातुसम्बन्धी मलिनता आदि दोषोंको नष्ट कर देती है, वैसे ही साधकोंके हृदयमें स्थित होकर भगवान् विष्णु उनके अशुभ संस्कारोंको सदाके लिये मिटा देते हैं।

**विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्री-**

**तीर्थाभिषेकव्रतदानजप्त्यैः ।**

**भात्यन्तशुद्धिं लभ्यतेऽन्तरात्मा**

**यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥**

( श्रीमद्भा० १२।३।४८ )

**परीक्षित् ! विद्या, तपस्या, प्राणायाम, समस्त प्राणियोंके अति मित्र-भाव, तीर्थ-स्नान, व्रत, दान और जप आदि किसी नी साधनसे मनुष्यके अन्तःकरणकी वैसी वास्तविक शुद्धि हीं होती, जैसी शुद्धि भगवान् पुरुषोत्तमके हृदयमें विराजमान हो जानेपर होती है।**

**निधमागैरभिष्ठेयो भगवान् परमेश्वरः ।**

**आत्मभावं नयत्यङ्गं सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥**

**कलेदैषनिधे राजश्चलि ह्येको महान् गुणः ।**

**क्षीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्घः परं व्रजेत् ॥**

**कृते यद् ध्यायतो विष्णुं व्रेतायां यजतो मस्तः ।**

**द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्विकीर्तनात् ॥**

( श्रीमद्भा० १२।३।५०-५२ )

जो लोग मृत्युके निकट पहुँच रहे हैं, उन्हें सब प्रकारसे इम ऐश्वर्यशाली भगवान्का ही ध्यान करना चाहिये। प्यारे

परीक्षित् ! सबके परम आश्रय और सर्वात्मा भगवान् अध्यान करनेवालेको अपने स्वरूपमें लीन कर लेते हैं अपना स्वरूप बना लेते हैं। परीक्षित् ! यों तो कलियुग दो का खजाना है, परंतु इसमें एक बहुत बड़ा गुण है। गुण यही है कि कलियुगमें केवल भगवान् श्रीकृष्णका संकीर्तन से ही सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। सत्यमुगमें भगवान्का ध्यान करने व्रेतामें वडे-वडे यज्ञोंके द्वारा उनकी आराधना करनेवै व द्वापरमें विष्णुपूर्वक उनकी पूजा-सेवासे जो फल मिलता वह कलियुगमें केवल भगवन्नामका कीर्तन करनेसे ही प्राप्त जाता है।

**संसारसिन्धुमतिहुस्तरमुक्तिरीषे-**

**र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।**

**लीलाकथारसनिषेद्वणमन्तरेण**

**पुंसो भवेद् विविधदुःखदचार्दितस्य ॥**

( श्रीमद्भा० १२।४।४० )

जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं, अथवा जो लोग अनेकों प्रकारके दुःख-दावानलसे दग्ध हो रहे हैं; उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान्की लीला-कथारूप रसके सेवनके अतिरिक्त और कोई साधन, कोई नौका नहीं है। ये केवल लीला-रसायनका सेवन करके ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं।

**आत्मा**

**स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते ।**

**ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो भवः ॥**

**रजःस्वत्मोवृत्या जायतेऽथ विनश्यति ।**

**न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः ॥**

**आकाश इव चाधारे ध्रुवोऽनन्तोपमस्तः ॥**

( श्रीमद्भा० १२।५।७-८ )

जबतक तेल, तेल रखनेका पात्र, वृत्ति और आगका संयोग रहता है, तभीतक दीपकमें दीपकपना है, वैसे ही जबतक आत्माका कर्म, मन, शरीर और इनमें रहनेवाले चैतन्याध्यासके साथ सम्बन्ध रहता है, तभीतक उसे जन्म-मृत्युके चक्र संसारमें भटकना पड़ता है और जो गुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुणकी वृत्तियोंसे उसे उत्पन्न, विष एवं विनष्ट होना पड़ता है। परंतु जैसे दीपकके दुःख जानेवै तत्त्वरूप तेजका विनाश नहीं होता, वैसे ही संसारका नाश

होनेपर भी स्वयं प्रकाश आत्माका नाश नहीं होता। क्योंकि वह कार्य और कारण, व्यक्त और अव्यक्त—सबसे परे है, वह आकाशके समान सबका आधार है, नित्य और निश्चल है, वह अनन्त है। सचमुच आत्माकी उपमा आत्मा ही है।

### वैराग्य

सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासै-  
वौहौ स्वसिद्धे ह्युपर्वहौः किम् ।  
सत्यजलौ किं पुरुषाच्चपात्र्या  
दिग्बल्कलादौ सति किं दुक्ष्यैः ॥  
चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां  
नैवाढ्यिपाः परमृतः सरितोऽप्यशुद्ध्यन् ।  
हृदा गुहा: किमजितोऽवृत्ति नोपसक्तान्  
कस्माद् भजन्ति कवयो भनदुर्भदान्वान् ॥  
एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध  
आत्मा प्रियोऽर्थो भगवाननन्तः ।  
तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत  
संसारहेतूपरमश्च यत्र ॥

( श्रीमद्भा० २।२।४-६ )

### श्रद्धाकी महत्ता

श्रद्धा धर्मसुता देवी  
पावनी विश्वभाविनी ॥  
सावित्री प्रसवित्री च  
संसारार्णवतारिणी ।  
श्रद्धाया ध्यायते धर्मो  
विद्वद्भिश्चात्मवादिभिः ॥  
निर्णिकचनास्तु सुनयः श्रद्धावन्तो दिवं गताः ।  
( पद्म० भूमि० ९४ । ४४-४६ )

श्रद्धा देवी धर्मकी पुत्री हैं, वे विश्वको पवित्र एवं अभ्युदयशील बननेवाली हैं। हतना ही नहीं, वे सावित्रीके समान पावन, जगत्को उत्पन्न करनेवाली तथा संसारसागरसे उद्धार करनेवाली हैं। आत्मवादी विद्वान् श्रद्धासे ही धर्मका चिन्तन करते हैं। जिनके पास किसी भी वस्तुका संग्रह नहीं है, ऐसे अकिञ्चन मुनि श्रद्धालू होनेके कारण ही दिव्यलोकको प्राप्त हुए।



जब जमीनपर सोनेसे काम चल सकता है, तब पलंगके लिये प्रयत्नशील होनेसे क्या प्रयोजन। जब भुजाएँ अपनेको भगवान्की कृपासे स्वयं ही मिली हुई हैं, तब तकिये-की क्या आवश्यकता। जब अज्ञालिसे काम चल सकता है, तब बुहुत-से वर्तन क्यों बटोरे। बुक्षकी छाल पहनकर या घस्त्र-हीन रहकर भी यदि जीवन धारण किया जा सकता है तो वस्त्रोंकी क्या आवश्यकता। पहननेको क्या रास्तोंमें नियंत्रे नहीं हैं? भूख लगानेपर दूसरोंके लिये ही शरीर धारण करनेवाले वृक्ष क्या फल-फूलकी भिक्षा नहीं देते? जल चाहनेवालोंके लिये नदियाँ क्या बिल्कुल सूख गयी हैं? रहनेके लिये क्या पहाड़ोंकी गुफाएँ बंद कर दी गयी हैं? अरे भाई! सब न सही, क्या भगवान् भी अपने शरणागतोंकी रक्षा नहीं करते? ऐसी स्थितिमें बुद्धिमान् लोग भी धनके नशेमें चूर घमंडी धनियोंकी चापदूसी क्यों करते हैं? इस प्रकार विरक्त हो जानेपर अपने हृदयमें नित्य विराजमान, स्वतःसिद्ध, आत्म-स्वरूप, परम प्रियतम, परम सत्य जो अनन्त भगवान् हैं, वडे प्रेम और जानन्दसे हृदय निश्चय करके उन्हींका भजन करें; क्योंकि उनके भजनसे जन्म-मृत्युके चक्षरमें डालनेवाले अज्ञान-का नाश हो जाता है।

### महर्षि जैमिनि

#### नरक कौन जाते हैं?

ब्राह्मणं पुण्यमुत्सूज्य ये द्विजा स्वेभमोहिताः ।  
कुकर्मण्युपजीवन्ति ते वै निरयगामिनः ॥  
ब्राह्मणेभ्यः प्रतिश्रुत्यन् प्रयच्छन्ति ये धनम् ।  
ब्रह्मस्वानां च हर्तीरो वरा निरयगामिनः ॥  
ये परस्वापहर्तारः परदूषणसोत्सुकाः ।  
परश्चिया प्रत्यन्ते ते वै निरयगामिनः ॥  
प्राणिनां प्राणहिंसायां ये वरा निरताः सदा ।  
परनिदारता ये च ते वै निरयगामिनः ॥  
कूपारामतडागानां प्रपानां च विदूषकाः ।  
सरसां चैव भेत्तरो वरा निरयगामिनः ॥  
विपर्यं ब्रजेद्यस्ताङ्गशशून्मृत्यातिर्थीस्तः ।  
उत्सन्नपितृदेवेज्यास्ते वै निरयगामिनः ॥  
प्रवृज्यादूषका राजन् ये चैवाश्रमदूषकाः ।  
सखीनां दूषकाद्यचैव ते वै निरयगामिनः ॥  
( पद्म० भूमि० ९६ । २, ४, ६-१० )

जो दिज लोगसे गोहित हो पावन ब्राह्मणत्वका  
परिवार वरके मुकर्मसे जीविका चलाते हैं, वे नरकगामी  
होते हैं। जो नागिन है, जिन्होंने धर्मकी मर्यादा  
माझ भी है, जो काम-भोगके लिये उत्कण्ठित, दाम्भिक  
और रुदच इह है, जो ब्राह्मणोंको धन देनेकी प्रतिज्ञा  
उसके भी नहीं देते, तुगली खाते, अभिमान रखते और छठ  
गोलते हैं; जिनकी वातें परस्पर विकद होती हैं; जो दूसरोंका  
मन एकप लेते, दूसरोंपर कलङ्क लगानेके लिये उत्सुक रहते  
और परायी सम्पत्ति देखकर जलते हैं, वे नरकमें जाते हैं।  
जो मनुष्य सदा ग्राणियोंके प्राण लेनेमें लगे रहते, परायी  
नेन्द्रमें प्रवृत्त होते, कुएँ, नरीन्द्री, पोखरे और पौसलेको  
पित करते; यरोवरोंको नष्ट-भ्रष्ट करते तथा शिशुओं, भूत्यों  
और अतिथियोंको भोजन दिये विना ही स्वयं भोजन कर  
नहीं हैं; जिन्होंने पितृवाग (श्राद्ध) और देववाग (यज्ञ)  
न त्याग कर दिया है, जो सन्न्यास तथा अपने रहनेके  
ग्रामको कलङ्कित करते हैं और मित्रोंपर लाज्जन ल्याते हैं;  
सब-के-सब नरकगामी होते हैं।

### सर्व कौन जाते हैं ?

हन्त ते कथयिष्यामि नरान् वै स्वर्गगामिनः ।  
भोगिनः सर्वलोकस्य ये प्रोक्तास्त्राच्चिन्नोऽपि मे ॥  
सत्येन तपसा ज्ञानभ्यावेनाभ्ययनेन वा ।  
ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
ये च होमपरा ध्यानदेवतार्चनतत्पराः ।  
आददाना महात्मानस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
शुचयः शुचिदेशे वा वासुदेवपरायणाः ।  
भक्त्या च विष्णुमापन्नास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
भातपित्रोश्च शुश्रूषां ये कुर्वन्ति सदाऽदृताः ।  
वर्जयन्ति दिवा स्वप्नं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
सर्वहिंसानिवृत्ताश्च साधुसङ्गाश्च ये नराः ।  
सर्वस्यापि हिते युक्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
शुश्रूषाभिः समायुक्ता गुरुणां मानदा नराः ।  
प्रतिग्रहनिवृत्ताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
भयात्कामात्तथाऽक्षोशाद्विद्विन्द्रियान्पूर्वकर्णणः ।  
न कुस्वन्ति च ये नूनं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
सहस्रपरिद्युषारसत्यैव च सहस्रदाः ।  
दातारश्च सहस्राणां ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
आत्मसहस्रप्रभाजश्च यौवनस्थाः क्षमारताः ।  
ये वै जितेन्द्रिया धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

सुवर्णस्य प्रदातारो गवां भूमेश्व भारत ।  
अन्नानां वाससां चैव पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥  
निवेशनानां वन्यानां नराणां च परंतप ।  
स्वयमुत्पाद्य दातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥  
द्विष्टामपि ये दीपान्न वदन्ति कदाचन ।  
कीर्तयन्ति गुणांश्चैव ते ज्ञराः स्वर्गगामिनः ॥  
दृष्ट्वा विज्ञानप्रहृष्ट्यन्ति प्रियं दृश्वा वदन्ति च ।  
त्यक्तदानफलेच्छाश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
ये परेषां त्रियं दृश्वा न तप्यन्ति विमल्सराः ।  
प्रहृष्टाश्रामिनन्दन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च मुनिशास्त्रोक्तमेव च ।  
आचरन्ति महात्मानस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
ये नराणां वचो वक्तुं न जानन्ति च विप्रियम् ।  
प्रियवाक्येन विज्ञातास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
वापीकूपतडागानां प्रपानां चैव वेशमनाभ् ।  
आरामाणां च कर्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
असत्येष्वपि सत्या ये क्रज्जनोऽनार्जवेष्वपि ।  
प्रवक्तारश्च दातारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

( पद्म० भूमि० ९६ । २०-३८ )

अब मैं सर्वजानेवाले पुरुषोंका वर्णन करूँगा। जो मनुष्य  
सत्य, तपस्या, ज्ञान, ध्यान तथा स्वाध्यायके द्वारा धर्मका  
अनुसरण करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो प्रतिदिन हवन  
करते तथा भगवान्के ध्यान और देवताओंके पूजनमें संलग्न  
रहते हैं, वे महात्मा स्वर्गलोकके अतिथि होते हैं। जो बाहर-  
भीतरसे पवित्र रहते, पवित्र स्थानमें निवास करते, भगवान्  
वासुदेवके भजनमें लगे रहते तथा भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुकी  
शरणमें जाते हैं; जो सदा आदरपूर्वक माता-पिताकी सेवा  
करते और दिनमें नहीं सोते; जो सब प्रकारकी हिंसासे दूर  
रहते, साधुओंका सङ्ग करते और सबके हितमें संलग्न रहते  
हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो गुरुजनोंकी सेवामें  
संलग्न, बड़ोंको आदर देनेवाले, दान न लेनेवाले, भयते,  
कामसे तथा क्रोधसे दरिद्रोंके पिछले कर्मोंकी निन्दा न करनेवाले,  
सहस्रों मनुष्योंको भोजन परोसनेवाले, सहस्रों मुद्राओंका दान  
करनेवाले तथा सहस्रों मनुष्योंको दान देनेवाले हैं, वे पुरुष  
स्वर्गलोकको जाते हैं। जो युधादस्यामें भी क्षमाशील और  
जितेन्द्रिय हैं; जिनमें वीरता भरी है; जो सुवर्ण, गौ, भूमि, अश  
और वल्लका दान करते हैं, जो स्वयं गली जानवरों तथा  
मनुष्योंके लिये घर बनाकर दान कर देते हैं; जो अपनेसे दोप

रखनेवालोंके भी दोष कभी नहीं कहते, बल्कि उनके गुणोंका ही वर्णन करते हैं; जो विश पुरुषोंको देखकर प्रसन्न होते, दान देकर प्रिय वचन बोलते तथा दानके फलकी इच्छाका परित्याग कर देते हैं तथा जो दूसरोंकी सम्पत्तिको देखकर इच्छासे जलते तो हैं ही नहीं, उलटे हर्षित होकर उनका अभिनन्दन करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो पुरुष प्रवृत्तिमार्गमें तथा निवृत्तिमार्गमें भी मुनियों और शास्त्रोंके कथनानुसार ही आचरण करते हैं, वे स्वर्गलोकके अतिथि होते हैं। जो मनुष्योंसे कटुबचन बोलना नहीं जानते, जो प्रिय वचन धोलनेके लिये प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने बाबली, कुआँ, सरोवर, पौसला, धर्मशाला और बरीचे दनवाये हैं; जो मिथ्यावादियोंके लिये भी सत्यपूर्ण वर्ताव

करनेवाले और कुटिल मनुष्योंके लिये भी सरल हैं, वे दयालु तथा सदाचारी मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं।

**नरक और मुक्ति किसको मिलती है ?**

ततः परेषां प्रतिकूलमाचरन्

प्रयत्नि धोरं नरकं सुदुरवदम् ।

सदानुकूलस्य नरस्य जीवितः

सुखावहा मुक्तिरदूरसंस्थिता ॥

( पद्म० भूमि० ७६ । ५२ )

जो दूसरोंके प्रतिकूल आचरण करता है, उसे अत्यन्त दुःखदायी धोर नरकमें पिरना पड़ता है तथा जो सदा दूसरोंके अनुकूल चलता है, उस मनुष्यके लिये सुखदायिनी मुक्ति दूर नहीं है।

## मुनि सनत्सुजात

**बारह दोष, तेरह नृशंसताएँ**

क्रोधः कामो लोभमोहौ विघ्निसा-

कृपासूये मानशोकौ स्पृहा च ।

ईच्छा उग्रप्रसा च मनुष्यदोषा

वज्याः सदा द्वादशैते नरणाम् ॥

एकैकः पर्युपास्ते ह मनुष्यान् मनुजर्षेभ ।

लिङ्गसमावोऽन्तरं तेषां सृगाणामिव लुभकः ॥

विकल्पनः स्पृहयालुर्मनस्ती

विक्रलोपं चपलोऽरक्षणश्च ।

पृतान्पापाः षण्नराः पापधर्मान्

प्रकुर्वते नो त्रसन्तः सुदुर्गे ॥

सम्भोगसंविद् विषमोऽतिमानी

दत्तानुतापी कृपणो बलीयान् ।

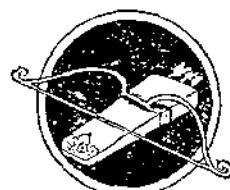
वर्गप्रशंसी वनिकासु द्वेषा

पुते परे सप्त नृशंसवर्गाः ॥

( उद्योगपर्व, अध्याय ४३ । १६—१९ )



काम, क्रोध, लोभ, मोह, असंतोष, निर्दयता, असूया, अभिमान, शोक, स्पृहा, ईच्छा और निन्दा—मनुष्योंमें रहनेवाले वे बारह दोष सदा ही त्याग देने योग्य हैं। भरश्रेष्ठ ! जैसे व्याधा मृगोंको मारनेका अवसर देखता हुआ उनकी टोहमें लगा रहता है, उसी प्रकार इनमेंसे एक-एक दोष मनुष्योंका छिद्र देखकर उनपर आक्रमण करता है। अपनी बहुत बड़ाई करनेवाले, लोकुप, अहंकारी, निरन्तर क्रोधी, चंचल और आश्रितोंकी रक्षा नहीं करनेवाले—ये छः प्रकारके मनुष्य पापी हैं। महान् संकटमें पड़नेपर भी ये निडर होकर इन पाप-कर्मोंका आचरण करते हैं। सम्भोगमें ही मन ल्यानेवाले, विषमता रखनेवाले, अत्यन्त मानी, दान देकर पश्चात्ताप करनेवाले, अत्यन्त कृपण और कामकी प्रशंसा करनेवाले तथा स्त्रियोंके द्वेषी—ये सात और पहलेके छः—कुल तेरह प्रकारके मनुष्य नृशंसवर्ग ( क्रूर-समुदाय ) कहे गये हैं।



## महर्षि वैशम्पायन

### विविध उपदेश

भोहजालस्य योनिर्हि मूढैरैव समागमः ।  
अहन्यहनि धर्मस्य योनिः साधुसमागमः ॥

( महा० बन० १ । २४ )

मूर्खोंका सङ्ग ही भोह-जालकी उत्पत्तिका कारण है तथा प्रतिदिन साधु पुरुषोंका सङ्ग धर्ममें प्रवृत्ति करानेवाला है ।

ये पां त्रीयवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च ।

तान् सेवेत्तैः समास्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी ॥

( महा० बन० १ । २६ )

जिनकी विद्या, कुल और कर्म—ये तीनों शुद्ध हों, उन साधु पुरुषोंकी सेवामें रहे । उनके साथका उठना-बैठना शास्त्रोंके स्वाध्यायसे भी श्रेष्ठतर है ।

वस्यमापस्तिलान् भूमि गन्धो वासयते यथा ।

पुष्पाणामधिवासेन तथा संसर्गजा गुणः ॥

( महा० बन० १ । २३ )

जैसे फूलोंकी गन्ध अपने सम्पर्कमें आनेपर वस्त्र, जल, तिल ( तैल ) और भूमिको भी सुवासित कर देती है, उसी प्रकार मनुष्यमें संसर्गजनित गुण आ जाते हैं ।

मानसं शमयेत्साज्ज्ञानेनाभिग्निवाम्बुद्धा ।

प्रशान्ते मानसे हस्य शरीरमुपशाम्यति ॥

( महा० बन० २ । २५ )

अतः जिस प्रकार जलसे अभिको शान्त किया जाता है, उसी प्रकार ज्ञानके द्वारा मानसिक संतापको शान्त करना चाहिये । जब मानसिक संताप शान्त होता है, तब शारीरिक ताप भी शान्त हो जाता है ।

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्देशगकरी स्मृता ।

अधर्मवहुला चैव घोरा पापानुबन्धनी ॥

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यसि जीर्यतः ।

योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥

( महा० बन० २ । ३४-३५ )

तृष्णा सबसे बढ़कर पापिष्ठा है, वह सदा उद्देशमें डालनेवाली मानी गयी है । उसके द्वारा अधिकतर अधर्ममें ही प्रवृत्ति होती है, वह अत्यन्त भयकर और पापकर्ममें ही बँध रखनेवाली है । खोटी बुद्धिवाले मनुष्योंके लिये जिसका परित्याग अत्यन्त कठिन है, जो मनुष्य-शरीरके बूढ़े होनेपर भी स्वयं बूढ़ी नहीं होती—अपितु नित्य तृष्णी ही बनी रहती है; जो मानवके

लिये एक प्राणान्तकारी रोगके सदृश है, ऐसी तृष्णाको जो त्याग देता है, उसीको सुख मिलता है ।

यथैधः स्वसमुत्थेन वहिना नाशमृच्छति ।  
तथाकृतात्मा लोभेन सहजेन विनश्यति ॥

( महा० बन० २ । ३७ )

जैसे लकड़ी अपने ही भीतरसे प्रकट हुई आगके द्वारा जलकर नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार जिसका मन वशमें नहीं हुआ, वह पुरुष अपने साथ ही दैदा हुई लोभवृत्ति ( तृष्णा ) से नाशको प्राप्त होता है ।

अन्तो नास्ति पिपासायाः संतोषः परमं सुखम् ।

तस्मात्संतोषमेवैह परं पश्यन्ति पण्डितः ॥

( महा० बन० २ । ४५ )

तृष्णाका कहीं अन्त नहीं है; संतोष ही परम सुख है । अतः विद्वान् पुरुष इस संसारमें संतोषको ही सबसे श्रेष्ठ मानते हैं ।

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं रक्तसंचयः ।

ऐश्वर्यं प्रियसंवासो गृह्येतत्र न पण्डितः ॥

( महा० बन० २ । ४६ )

यह तस्य अवस्था, यह रूप, यह जीवन, रक्तराशिका यह संग्रह, ऐश्वर्य तथा प्रिय-जनोंका सहवास—सब कुछ अनित्य है; अतः विवेकी पुरुषको इसमें आसक्त नहीं होना चाहिये ।

धर्मार्थं यस्य वित्तेष्टा वरं तस्य तिरीहता ।

प्रक्षालनाद्वि पक्षस्य श्रेयो न स्पर्शनं नृणाम् ॥

( महा० बन० २ । ४८ )

जो धर्मके लिये धन पाना चाहता है, उस पुरुषके लिये धनकी ओरसे निरीह हो जाना ही उत्तम है; क्योंकि कीचड़ीको लगाकर धोनेकी अपेक्षा उसका सर्व ही न करना मनुष्योंके लिये श्रेयस्कर है ।

सत्यवादी लभेतायुरनायासमथार्जवम् ।

अक्रोधनोऽनसूयश्च निर्वृतिं लभते परम् ॥

( महा० बन० २५७ । २२ )

सत्यवादी पुरुष आयु, आयासहीनता और सरलताको पाता है तथा क्रोध और अमूर्यासे रहित मनुष्य परम शान्ति प्राप्त करता है ।

## महात्मा भद्र

### शास्त्रोंका स्थिर सिद्धान्त

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।  
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥

( स्कन्द० पु० प्र० ख० ३१७ । १४ )

सब शास्त्रोंको देखकर और बार-बार विचार करके एक-मात्र यही सिद्धान्त स्थिर किया गया है कि सदा भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये ।

सकृदुचरितं गेन हरिरित्यक्षरद्यम् ।

बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥

( स्कन्द० पु० प्र० ख० ३१७ । १४ )

जिसने 'हरि' इन दो अधरोंका एक बार भी उशारण कर लिया, उसने मोक्षधामतक पहुँचनेके लिये मानो कगड़ कस ली है ।

### महर्षि मुद्रल

पतनान्ते महादुःखं

परितापः सुदाहणः ।

स्वर्गभाजश्चरन्तीह

तस्मात् स्वर्गं न कामये ॥

यत्र गत्वा न शोचन्ति

न व्यथन्ति चरन्ति वा ।



तदहं स्थानमल्यन्तं मार्गयिप्यामि केवलम् ॥

( महा० वन० २६१ । ४३-४४ )

( स्वर्गसे ) पतनके बाद स्वर्गवासियोंको महान् दुःख और बड़ा भारी दारण पश्चात्ताप होता है, इसलिये मुझे स्वर्ग नहीं चाहिये । अब मैं तो उसी स्थानको छूट दूँगा, जहाँ जाने-पर शोक और व्यथासे पिण्ड छूट जाता है ।

### महर्षि मैत्रेय

#### भगवद्गुण-माहिमा

एकान्तलाभं वचसो तु उंसां  
सुश्लोकसौलेखुणवादमाहुः ।  
श्रुतेश्च विद्वद्विस्तुपाकृतायां  
कथासुधायामुपसम्प्रयोगम् ॥

( श्रीमद्भा० ३ । ६ । ३७ )

महापुरुषोंका मत है कि पुण्यश्लोकशिरोमणि श्रीहरिके गुणोंका गान करना ही मनुष्योंकी वाणीका तथा विद्वानोंके मुखसे भगवत्कर्यामृतका पान करना ही उनके कानोंका सबसे बड़ा लाभ है ।

स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया ।  
भगवद्भक्तियोगेन तिरोघ्नते शनैरिह ॥  
यदेन्द्रियोपरामोऽथ द्रष्ट्वात्मनि परे हरौ ।  
विलीयन्ते तदा क्लेशाः संसुप्तस्थेव कृत्स्नशः ॥

अशेषसंक्लेशशार्मं विघ्नसे

गुणानुवादश्रवणं

मुरारेः ।

कुरुः पुनस्तत्त्वरणारविन्द-

परागसेवारतिरात्मलब्धा ॥

( श्रीमद्भा० ३ । ७ । १२-१४ )

निष्कामभावसे धर्मोंका आचरण करनेपर भगवत्कृपासे प्राप्त हुए भक्तियोगके द्वारा यह ( देहाभिमानी जीवमें ही देहके मिथ्याधर्मोंकी ) प्रतीति धीरे-धीरे निवृत्त हो जाती है । जिस समय समस्त इन्द्रियाँ विषयोंसे हटकर साक्षी परमात्मा श्रीहरिमें निश्चलभावसे स्थित हो जाती हैं, उस समय गाढ़ निद्रामें सोये हुए मनुष्यके समान जीवके राग-द्वेषादि सरे क्लेश सर्वथा नष्ट हो जाते हैं । श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन और श्रवण अशेष दुःखराशिको शान्त कर देता है; फिर यदि हमारे हृदयमें उनके चरण-कमलकी रजके सेवनका प्रेम जाग जाय, तब तो कहना ही क्या है ।

## भक्त सुकर्मा

### माता-पिताकी सेवा

स्फुटमेकं प्रजानामि पितृभावप्रपूजनम् ॥  
 उभयोस्तु स्वहस्तेन मातापित्रोश्च पिष्ठल ।  
 पादप्रक्षालनं पुण्यं स्वयमेव करोम्यहम् ॥  
 अङ्गसंवाहनं स्नानं भोजनादिकमेव च ।  
 त्रिकालोपासनं भीतः साधशामि दिने दिने ॥  
 गुरु मे जीवमानौ तौ यावत् कालं हि पिष्ठल ।  
 तावत् कालं तु मे लाभो हतुलश्च प्रजायते ।  
 त्रिकालं पूजयामयेतौ भावगुद्देन चेतसा ॥  
 किं मे चान्मेन तपसा किं मे कायस्य शोषणैः ।  
 किं मे सुतीर्थयात्राभिस्त्वैः पुण्येश्च साम्प्रतम् ॥  
 मखानामेव सर्वेषां यत्कलं प्राप्यते त्रुधैः ।  
 पितुः शुश्रूषणै तद्वन्महत्पुण्यं प्रजायते ॥  
 तत्र गङ्गा गया तीर्थं तत्र पुष्करमेव च ।  
 यत्र माता पिता तिष्ठेत्पुत्रस्यापि न संशयः ॥  
 अन्यानि तत्र तीर्थानि पुण्यानि विविधानि च ।  
 भजन्ते तानि पुत्रस्य पितुः शुश्रूषणादपि ॥  
 जीवमानौ गुरु एतौ स्वभातापितरौ तथा ।  
 शुश्रूषते सुतो भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥  
 देवास्तस्यापि तुष्ट्यन्ति त्रृष्णयः पुण्यवत्सलाः ।  
 त्रयो लोकाश्च तुष्ट्यन्ति पितुः शुश्रूषणादिह ॥  
 मातापित्रोस्तु यः पादौ नित्यं प्रक्षालयेत् सुरुः ।  
 तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि जायते ॥

( पद्म० भूमि० ६३ । ५८-७४ )

मैं तो स्पष्टरूपसे एक ही बात जानता हूँ—वह है पिता और माताकी सेवा-पूजा । पिष्ठल ! मैं स्वयं ही अपने हाथसे माता-पिताके चरण धोनेका पुण्यकार्य करता हूँ । उनके शरीरको दबाता तथा उन्हें स्नान और भोजन आदि करता हूँ । प्रतिदिन तीनों समय माता-पिताकी सेवामें ही लगा रहता हूँ । जबतक मेरे माँ-बाप जीवित हैं, तबतक मुझे यह अतुलनीय लाभ मिल रहा है कि तीनों समय मैं शुद्ध भावसे मन लगाकर इन दोनोंकी पूजा करता हूँ । पिष्ठल ! मुझे दूसरी तपस्यासे तथा शरीरको सुखानेसे क्या लेना है । तीर्थयात्रा तथा अन्य पुण्यकर्मोंसे क्या प्रयोगन । विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान करके जिस फलको प्राप्त करते हैं, वैसा ही महात् फल पिताकी सेवासे मिलता

है । जहाँ माता-पिता रहते हैं, वहाँ पुत्रके लिये गङ्गा, गया और पुष्कर तीर्थ हैं । इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । माता-पिताकी सेवासे पुत्रके पास अन्यान्य पवित्र तीर्थ भी स्वर्य ही पहुँच जाते हैं । जो पुत्र माता-पिताके जीते-जी उनकी सेवा भक्तिपूर्वक करता है, उसके ऊपर देवता तथा पुण्यात्मा महर्षि प्रसन्न होते हैं । पिताकी सेवासे तीनों लोक संतुष्ट हो जाते हैं । जो पुत्र प्रतिदिन माता-पिताके चरण पर्वारता है, उसे नित्यग्राति गङ्गास्नानका फल मिलता है ।

तयोश्चापि द्विजश्रेष्ठ मातापित्रोश्च स्नातयोः ।  
 पुत्रस्यापि हि सर्वाङ्गे पतन्त्यम्बुकणा यदा ।  
 सर्वतीर्थसमं स्नानं पुत्रस्यापि प्रजायते ॥  
 पसितं शुद्धितं वृद्धमशकं सर्वकर्मसु ।  
 व्याधितं कुष्ठिनं तातं मातरं च तथाविधाम् ॥  
 उपाचरति यः पुत्रस्तस्य पुण्यं वदाम्यहम् ।  
 विष्णुस्तस्य प्रसन्नात्मा जायते नात्र संशयः ॥  
 प्रथाति वैष्णवं लोकं यदप्राप्यं हि थोर्गिभिः ।  
 पितरौ विकलौ दीनौ वृद्धौ दुर्खितमानसौ ॥  
 महापादेन संतसौ परिस्वजति पापधीः ।  
 स पुत्रो नरकं याति दार्शणं कुमिसंकुलम् ॥  
 वृद्धाम्यर्थाः समाहृतो गुरुम्यमिह साम्प्रतम् ।  
 न प्रथाति सुतो भूत्वा तस्य पापं वदाम्यहम् ॥  
 विष्णाक्षी जायते मूढोऽमेघभोजी न संशयः ।  
 यावज्जन्मसहस्रं तु पुनः शानोऽभिजायते ॥  
 पुत्रो हे स्थितौ मातापितरौ वृद्धकौ तथा ।  
 स्वयं ताम्यां विना भुक्त्वा प्रथमं जायते वृणिः ॥  
 मूत्रं विष्णां च भुजीत यावज्जन्मसहस्रकम् ।  
 कृष्णसर्पो भवेत् पापी यावज्जन्मशतद्ययम् ॥  
 पितरौ कुत्सते पुत्रः कटुकर्वचनैरपि ।  
 स च पापी भवेद्व्याघ्रः पश्चादुस्तीं प्रजायते ॥  
 मातरं पितरं पुत्रो न नमस्यति पापधीः ।  
 कुम्भीयाके वसेत्तावद्यावद्युगसहस्रकम् ॥  
 नास्ति मातुः परं तीर्थं पुत्राणां च पितुस्तथा ।  
 नारायणसमावेताविह चैव परत्र च ॥  
 तस्मादहं महाप्राङ्मणं पितृदेवं प्रपूजये ।  
 मातरं च तथा नित्यं यथायोर्गं यथाहितम् ॥  
 पितृभावप्रसादेन संजातं ज्ञानमुत्तमम् ।  
 त्रैलोक्यं सकलं विद्र सम्प्राप्तं वद्यतां मम ॥

अर्वाचीनं परं ज्ञानं पितुश्चास्य प्रसादतः ।  
पराचीनं च विप्रेन्द्र वासुदेवस्वरूपकथ् ॥  
सर्वज्ञानं समुद्भूतं पितृमातृप्रसादतः ।  
को न पूजयते विद्वान् पितृं मातृं तथा ॥  
साङ्गोपाङ्गैरधीतैस्तैः श्रुतिशास्त्रसमन्वितैः ।  
वेदैरपि च किं विप्र पिता येन न पूजितः ॥  
माता न पूजिता येन तस्य वेदा निरर्थकाः ।  
यज्ञैश्च तपसा विप्र किं दातैः किं च पूजनैः ॥  
प्रयाति तस्य वैफल्यं न माता येन पूजिता ।  
न पिता पूजितो येन जीवमानो गृहे स्थितः ॥  
एष पुत्रस्य वै धर्मस्था तीर्थं नरेष्विह ।  
एष पुत्रस्य वै मोक्षस्था जन्मफलं शुभम् ॥  
एष पुत्रस्य वै यज्ञो दानमेव न संशयः ॥

(पद्म० भूमि० ६३ । १—२१ )

द्विजश्रेष्ठ ! माता-पिताको स्वान कराते समय जब उनके शरीरसे जलके छोटे उछलकर पुत्रके सम्पूर्ण अङ्गोंपर पड़ते हैं, उस समय उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्वान करनेका फल होता है । यदि पिता पतित, भूखसे व्याकुल, वृद्ध, सब कार्योंमें असमर्थ, रोगी और कोढ़ी हो गये हों तथा माताकी भी वही अवस्था हो, उस समयमें भी जो पुत्र उनकी सेवा करता है, उसपर निःसन्देह भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं । वह योगियोंके लिये भी दुर्लभ भगवान् श्रीविष्णुके धामको प्राप्त होता है । जो किसी अङ्गसे हीन, दीन, वृद्ध, दुखी तथा महान् रोगसे पीड़ित माता-पिताको त्याग देता है, वह पापात्मा पुत्र कीड़ोंसे भरे हुए दारण नरकमें पड़ता है । जो पुत्र बूढ़े माँ-बापके बुलानेपर भी उनके पास नहीं जाता, वह मूर्ख विष्णु खानेवाला

कीड़ा होता है तथा हजार जन्मोंतक उसे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है । वृद्ध माता-पिता जब धर्ममें मौजूद हों, उस समय जो पुत्र पहले उन्हें भोजन कराये तिना स्वयं अन्न ग्रहण करता है, वह घृणित कीड़ा होता है और हजार जन्मोंतक मल-मूत्र भोजन करता है । इसके सिवा वह पापी तीन सौ जन्मोंतक काला नाग होता है । जो पुत्र कदुचनोद्दारा माता-पिताकी निन्दा करता है, वह पापी वायकी योनिमें जन्म लेता है तथा और भी बहुत दुःख उठाता है । जो पापात्मा पुत्र माता-पिताको प्रणाम नहाए करता, वह हजार युगोंतक कुम्भीपाक नरकमें निवास करता है । पुत्रके लिये माता-पितासे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है । माता-पिता इस लोक और परलोकमें भी नारायणके समान हैं । इसलिये महाप्राप्ति । मैं प्रतिदिन माता-पिताकी पूजा करता और उनके योग-क्षेत्रकी चिन्तामें लगा रहता हूँ । पिता-माताकी कृपासे मुझे उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ है, इसीसे तीनों लोक मेरे वशमें हो गये हैं । माता-पिताके प्रसादसे ही मुझे प्राचीन तथा वासुदेवस्वरूप अर्वाचीन तत्त्वका उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ है । मेरी सर्वज्ञतामें माता-पिताकी सेवा ही कारण है । भला, कौन ऐसा विद्वान् पुरुष होगा, जो पिता-माताकी पूजा नहीं करेगा । ब्रह्मन् ! श्रुति (उपनिषद्) और शास्त्रोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके साङ्गोपाङ्ग अव्ययनसे ही क्या लाभ हुआ, यदि उसने माता-पिताका पूजन नहीं किया । उसका वेदाध्ययन व्यर्थ है । उसके यज्ञ, तप, दान और पूजनसे भी कोई लाभ नहीं । जिसने माँ-बापका आदर नहीं किया, उसके सभी शुभ कर्म निष्फल होते हैं । निःसन्देह माता-पिता ही पुत्रके लिये धर्म, तीर्थ, मोक्ष, जन्मके उत्तम फल, यज्ञ और दान आदि सब कुछ हैं ।

## भक्त सुव्रत

**प्रार्थना**

संसारसागरमतीव गभीरपारं  
दुःखोर्मिभिर्विविधमोहमयैस्तरङ्गैः ।  
सम्पूर्णमस्ति निजदोषगुणैस्तु ग्राप्तं ॥  
तस्मात् समुद्रं जनादेन मां सुदीनम् ॥  
कर्मान्वदे महति गर्जति वर्षतीव  
विद्युलतोल्लसति पातकसञ्चयो मे ।  
मोहान्धकारपटलैर्मम नष्टपृष्ठे-  
र्दीनस्य तस्य मधुसूदन देहि हस्तम् ॥

सं० वा० अ० १२—

संसारकाननवरं बहुदुःखवृक्षैः  
संसेव्यमानमपि मोहमयैश्च सिंहैः ।  
संदीप्तमस्ति करुणाबहुवह्निरेजः  
संतप्यमानमनसं परिपाहि कृष्ण ॥  
संसारवृक्षमतिर्जीर्णमपीह सूच्चं  
मायासुकन्दकरुणाबहुदुःखशारवम् ।  
जायादिसञ्जुष्ठदं फलितं सुरारे  
तं चाधिरुद्धपतितं भगवन् हि नमः ॥

दुःखानलैर्धिनिधमोहमयैः सुधसैः  
शोकैर्धियोगमरणान्तकलंनिभैश्च ।  
दग्धोऽस्मि कृष्ण सततं मम देहि मोक्षं  
ज्ञानामनुनाथ परिपित्य सदैव मात्खम् ॥  
मोहान्धकारपटले महतीव गते  
संसारनाम्नि सततं पतितं हि कृष्ण ।  
कृत्या तरीं मम हि दीनभयात्तुरस्य  
तस्माद् विकृप्य शरणं नय मामितस्त्वम् ॥  
व्यामेव ये नियतमानसभावयुक्ता  
भ्यायन्त्यन्तमनन्तया पदवीं लभन्ते ।  
नत्वैव पादयुगलं च महत्सुपुण्यं  
ये देवकिन्नरगणाः परिचिन्तयन्ति ॥  
नार्यं वदामि न भजामि न चिन्तयामि  
त्वत्पादपद्मयुगलं सततं नमामि ।  
एवं हि मासुपगतं शरणं च रक्ष  
द्वौरेण यन्तु मम पातकसञ्चयास्ते ।  
दासोऽस्मि भृत्यवदहं तव जन्म जन्म  
त्वत्पादपद्मयुगलं सततं नमामि ॥

( पद्म० भूमि० २१ । २०-२७ )

जनार्दन ! यह संसार-समुद्र अत्यन्त शहरा है, इसका पार पाना कठिन है। यह दुःखमयी लहरों और मोहसमयी भाँति-भाँतिकी तरङ्गोंसे भरा है। मैं अत्यन्त दीन हूँ और अपने ही दोषों तथा गुणोंसे—पाप-पुण्योंसे प्रेरित होकर इसमें आ फँसा हूँ; अतः आप मेरा इससे उद्धार कीजिये। कर्मरूपी ब्राह्मणोंकी भारी घटा घिरी हुई है, जो गरजती और वरसती भी है। मेरे पातकोंकी राशि विद्युलताकी भाँति उसमें थिरक रही है। मोहरूपी अन्धकारसमूहसे मेरी दृष्टि—विवेकशक्ति नष्ट हो गयी है, मैं अत्यन्त दीन हो रहा हूँ; मधुसूदन ! मुझे

अपने हाथका सहारा दीजिये। यह संसार एक महान् वक है इसमें वहुत-से दुःख ही वृक्षरूपमें स्थित हैं। मोहरूपी सिंह इसमें निर्भय होकर निवास करते हैं; इसके भीतर शोकली प्रचण्ड दावानल प्रज्वलित हो रहा है, जिसकी आँचसे मेरा चित्त संतप्त हो उठा है। श्रीकृष्ण ! इससे मुझे बचाइये। संसार एक वृक्षके समान है, यह अत्यन्त पुराना होनेके साथ बहुत ऊँचा भी है; माया इसकी जड़ है, शोक तथा नाना प्रकारके दुःख इसकी शाखाओंहैं, पढ़ी आदि परिवारके लोग पत्ते हैं और इसमें अनेक प्रकारके कल लगे हैं। मुरारे ! मैं इस संसार-वृक्षपर चढ़कर गिर रहा हूँ; भगवन् ! इस समय मेरी रक्षा कीजिये—मुझे बचाइये। श्रीकृष्ण ! मैं दुःखरूपी आग्नि, विविध प्रकारके मोहरूपी धूएँ तथा वियोग, मृत्यु और कालके समान शोकोंसे जल रहा हूँ; आप सर्वदा ज्ञानस्पी जलसे सीचकर मुझे सदाके लिये संसार-बन्धनसे छुड़ा दीजिये। श्रीकृष्ण ! मैं मोहरूपी अन्धकार-राशिसे भरे हुए संसार नामक महान् गड्ढोंमें सदासे गिरा हुआ हूँ, दीन हूँ और भयसे अत्यन्त व्यकुल हूँ, आप मेरे लिये नौका बनाकर मुझे उस गड्ढोंसे निकालिये, वहाँसे दौँचकर अपनी शरणमें ले लीजिये। जो संयमशील हृदयके भावसे युक्त होकर अनन्य चित्तसे आपका ध्यान करते हैं, वे आपके मार्गको पा लेते हैं। तथा जो देवता और किन्नरगण आपके दोनों परम पवित्र चरणोंको प्रणाम करके उनका चिन्तन करते हैं, वे भी आपकी पदवीको प्राप्त होते हैं। मैं न तो दूसरेका नाम लेता हूँ, न दूसरेको भजता हूँ और न दूसरेका चिन्तन ही करता हूँ; नित्य-निरन्तर आपके युगल चरणोंको प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें, मेरे पातकसमूह शीघ्र दूर हो जायें। मैं नौकरकी भाँति जन्म-जन्म आपका दास बना रहूँ। भगवन् ! आपके युगल चरण-कमलोंको सदा प्रणाम करता हूँ।

## भिक्षु विग्र

धनके पंद्रह दोप  
अर्थस्य साधने सिद्धे उक्तेष्वे रक्षणे व्यये ।  
नाशोपमोग आयासस्त्रासश्चिन्ता अमो नृणाम् ॥  
स्तेवं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्यो मदः ।  
भेदो वैरसविद्यासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥  
एते पञ्चदशानर्था शर्थमूला मता नृणाम् ।  
तस्माद्वर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्यजेत् ॥

भिद्यन्ते आतरो दाराः पितरः सुहृदस्त्वया ।  
एकास्तिनिधाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽस्यः श्रुताः ॥  
अर्थेनाल्पीयसा श्रेते संस्त्वया दीसमन्ययः ।  
त्वजन्त्याद्यु स्पृष्ठो व्यन्ति सहसोत्पृज्य सांक्षयम् ॥  
लक्ष्या जन्माभरणाद्यं मानुषं तद् द्विजाय्यताम् ।  
तदनादत्य ये स्वार्थं प्रस्ति यान्त्यग्नुभां गतिम् ॥

स्वर्गोपवर्गयोद्दीर्घं प्राप्य लोकमिमं पुमान् ।  
द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥  
( श्रीमद्भा० ११ । २३ । २७-२८ )

धन कमानेमें, कमा लेनेपर उसको बढ़ाने, रखने एवं सर्व करनेमें तथा उसके नाश और उपभोगमें—जहाँ देखो वहीं निरन्तर परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रमका ही सामना करना पड़ता है । चोरी, हिंसा, झूठ बोलना, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहङ्कार, भेद-बुद्धि, वैर, अविश्वास, स्वद्वारा, लम्पटता, जूझा और शराब—ये पंद्रह अनर्थ मनुष्योंमें धनके कारण ही माने गये हैं । इसलिये कल्याणकामी पुरुष को चाहिये कि स्वार्थ एवं परमार्थके विरोधी अर्थनामधारी अनर्थको दूरसे ही छोड़ दे । भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, माता-पिता,

सगे-सम्बन्धी—जो लेह-बन्धनसे बँधकर विस्कुल एक हुए रहते हैं —सब-के-सब कौड़ीके कारण इतने कट जाते हैं कि तुरंत एक दूसरे के बात्रु बन जाते हैं । ये लोग योड़े-से धनके लिये भी द्युवध और कुद्र हो जाते हैं । यात-की-शातमें सौहार्द-सम्बन्ध छोड़ देते हैं, लागड़ाँट रखने लगते हैं और एकाएक प्राण लेने-देनेपर उत्तारु हो जाते हैं । यहाँतक कि एक-दूसरे का सर्वनाश कर डालते हैं । देवताओंके भी प्रार्थनीय मनुष्य-जन्मको और उसमें भी श्रेष्ठ ब्राह्मण-शरीर प्राप्त करके जो उसका अनादर करते हैं, अपने सच्चे स्वार्थ—परमार्थका नाश करते हैं, वे अशुभ गतिको प्राप्त होते हैं । यह मनुष्य-शरीर मोक्ष और स्वर्गका द्वार है, इसको पाकर भी ऐसा कौन बुद्धिमान् मनुष्य है जो अनर्थके धाम धनके चक्रमें फँसा रहे ।

## महर्षि बक

### अतिथि-सत्कार

अपि शाकं पचानस्य सुखं वै मध्यवन् गृहे ।  
अर्जितं स्वेच्छं वीर्येण नाष्पपश्चित्य कञ्चन ॥  
( महा० चन० १९३ । २९ )

हे इन्द्र ! जो दूसरे किसीका आश्रय न लेकर अपने पराक्रमसे पैदा किये हुए शाकको भी घरमें पकाकर खाता है, उसे महान् सुख मिलता है ।

दस्ता यस्त्वसिथिभ्यो वै भुद्धके सेनैव नित्यशः ।  
यावतो ह्यन्वसः पिण्डानश्चाति सततं द्विजः ॥

तावतां गोसहस्राणां फलं प्राप्तोति दायकः ।

यदेनो यौवनकृतं तत्सर्वं नश्यते धूबम् ॥

( महा० चन० १९३ । ३४-३५ )

जो प्रतिदिन अतिथियोंको भोजन देकर स्वयं अन्न ग्रहण करता है, वह उसीसे महान् फलका भागी होता है । अतिथि ब्राह्मण अनन्तके जितने प्राप्त खाता है, दूता पुरुष उतने ही सहस्र गौर्योंके दानका फल सदा प्राप्त करता है और युवावस्थामें उसके द्वारा किये हुए सभी पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ।

## ऋषिगण

### इन्द्रियनिग्रहका महत्त्व

दमो दानं यमो यस्तु प्रोक्तस्तत्त्वार्थदर्शिभिः ॥  
ब्राह्मणानां विशेषेण दमो धर्मः सनातनः ।  
दमस्तेजो वर्धयति पवित्रो दम उत्तमः ॥  
चिपामा तेन तेजस्वी पुरुषो दमतो भवेत् ।  
ये केवित्यभ्या लोके ये च धर्मः शुभक्रियाः ॥  
सर्वयज्ञफलं वापि दमस्तेभ्यो विशिष्यते ।  
न दानस्य क्रियाशुद्धिर्यथावदुपलःस्यते ॥  
ततो यज्ञस्तो दानं दमदेव प्रवर्तते ।  
किमरणे त्यदानत्स्य दानत्स्यापि किमाश्रमे ॥  
यत्र यत्र वसेदानत्सदरण्यं महाश्रमः ।

शीलवृत्तनियुक्तस्य निगृहीतेनिद्रयस्य च ॥

आर्जिवे वर्तमानस्य आश्रमैः किं प्रयोजनम् ॥

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां

गृहेऽपि पञ्चेनिद्रयनिग्रहस्तपः ।

अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते

निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥

एकान्तशीलस्य दद्यतस्य

सर्वेनिद्रयश्रीतिनिचर्तरकस्य

अध्यात्मयोगे गतमानसस्य

मोक्षो धूर्वं नित्यमहिंसकस्य ॥

न तत्कुर्याद्विरः स्पृष्टः सप्तो वायतिरोपितः ।

अरिर्वा नित्यसंकुद्धो यथाऽऽस्मा दमवर्जितः ॥

( पद्म० सृष्टि० १९ । ३११-३२३ )

दम, दान एवं यम—ये तीनों तत्त्वार्थदर्शी पुरुषोद्भारा बताये हुए धर्म हैं। इनमें भी विशेषतः दम ( इन्द्रियदमन ) व्रातणोंका मनातन धर्म है। दम तेजको बढ़ाता है, दम परम पवित्र और उत्तम है। इसलिये दमसे पुरुष पापरहित एवं तेजस्वी होता है। संसारमें जो कुछ नियम, धर्म, शुभ कर्म अथवा सम्पूर्ण यज्ञोंके फल हैं, उन सबकी अपेक्षा दमका महत्व अधिक है। दमके बिना दानरूपी क्रियाकी यथावत् शुद्धि नहीं हो सकती। अतः दमसे ही यज्ञ और दमसे ही दानकी प्रवृत्ति होती है। जिसने इन्द्रियोंका दमन नहीं किया, उसके बनमें रहनेसे क्या लाभ। तथा जिसने मन और इन्द्रियोंका भली-भाँति दमन किया है, उसको ( घर छोड़कर ) किसी आश्रममें रहनेकी क्या आवश्यकता है। जितेन्द्रिय पुरुष जहाँ-जहाँ निवास करता है, उसके लिये वहाँ-वही स्थान बन एवं महान् आश्रम है। जो उत्तम शील और आचरणमें रत है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको काबूमें कर लिया है तथा जो सदा सरल भावसे रहता है, उसको आश्रमसे क्या प्रयोगिन। विषयासक्त मनुष्योंसे बनमें भी दोष बन जाते हैं तथा धर्में रहकर भी यदि पाँचों इन्द्रियोंका निग्रह कर लिया जाय तो वह तपस्या ही है। जो सदा शुभ कर्ममें ही प्रवृत्त होता है, उसके चीतरण पुरुषके लिये घर ही तपोवन है। जो एकान्तमें रहकर दृढ़तापूर्वक नियमोंका पालन करता, इन्द्रियोंकी आसक्तिको दूर हटाता, अध्यात्मतत्त्वके चिन्तनमें मन ल्पाता और सर्वदा अहिंसा-ब्रतका पालन करता है, उसीका मोक्ष निश्चित है। छेड़ा हुआ सिंह, अत्यन्त रोममें भरा हुआ सर्प तथा सदा कुपित रहनेवाला शत्रु भी वैष्ण अनिष्ट नहीं कर सकता, जैसा संयमराहित चित्त कर ढालता है।

### अपमान और निन्दासे लाभ

अकार्पणमपास्यं संतोषः श्रद्धानन्ता ।  
अनसूया गुरोः पूजा दया भूतेष्वपैशुनम् ॥  
सन्द्विरेष दमः प्रोक्त ऋषिभिः शान्तदुद्धिभिः ।  
दयाधीनौ धर्ममोक्षौ तथा स्वर्गश्च पार्यथैः ॥  
अपमाने न कुप्तेत सम्माने न प्रहृष्यति ।  
समद्वाख्यसुखो धीरः प्रशान्त दृष्टिं कीर्त्यते ॥

सुखं द्यवमतः शैते सुखं चैव प्रवृद्ध्यति ।

श्रेयस्तरमतिस्तिष्ठेद्वमन्ता विनश्यति ॥

अपमानी तु न ध्यायेत्तस्य पापं कदाचन ।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य परधर्मं न दूषयेत् ॥

( पद्म० सृष्टि० १९ । ३३०-३३४ )

उदारता, कोमल स्वभाव, संतोष, श्रद्धालुता, दोष-दृष्टि-का अभाव, गुरु-शुश्रूषा, प्राणियोंपर दया और उगली न करना—इन्हींको शान्त बुद्धिवाले संतो और ऋषियोंने दम कहा है। धर्म, मोक्ष तथा स्वर्ग—ये सभी दमके अधीन हैं। जो अपना अपमान होनेपर क्रोध नहीं करता और सम्मान होनेपर हर्षसे प्रूल नहीं उठता, जिसकी दृष्टिं दुःख और सुख समान हैं, उस धीर पुरुषको प्रशान्त कहते हैं। जिसका अपमान होता है, वह साधु पुरुष तो सुखसे सोता है और सुखसे जागता है तथा उसकी बुद्धि कल्याणमयी होती है। परंतु अपमान करनेवाला मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाता है। अपमानित पुरुषको चाहिये कि वह कभी अपमान करनेवालेकी बुराई न सोचे। अपने धर्मपर दृष्टि रखते हुए भी दूसरोंके धर्मकी निन्दा न करे।

अमृतयेव तुष्टेत अपमानस्य योगचित् ।

विषवच्च उग्रप्सेत सम्मानस्य सदा द्विजः ॥

अपमानात्पोद्वद्धिः सम्मानाच्च तपःक्षयः ।

अर्चितः पूजितो विष्रो दुष्धा गोत्रिव गच्छति ॥

पुनरप्यायते धेनुः सतृणैः सलिलैर्यथा ।

एवं जपेत्वा होमैत्र पुनरप्यायते द्विजः ॥

आक्रोशकसमो लोके सुहृदन्यो न विद्यते ।

यस्तु दुष्कृतमादाय सुकृतं स्वं प्रयच्छति ॥

आक्रोशमानान्नाकोशेनमनः स्वं विनिवर्तयेत् ।

संनियम्य तद्वाऽऽस्मानमृतेनभिपित्वति ॥

( पद्म० सृष्टि० १९ । ३४१-३४५ )

योगवेत्ता द्विजको चाहिये कि वह अपमानको अमृतके समझकर उससे प्रसन्नताका अनुभव करे और सम्मानको विषके तुल्य मानकर उससे वृणा करे। अपमाने उसके तभकी बुद्धि होती है और सम्मानसे धय। वृजा और सत्कार पानेवाला ब्राह्मण दुही हुई गायकी तरह न्यायी ही जाता है। जैसे गौ धारा और जल पीकर फिर पुष्ट हो जाती है, उसी प्रकार ब्राह्मण जप और होमके द्वारा पुनः ब्रह्मतंत्रमें सम्पन्न हो जाता है। संसारमें निन्दा करनेवालेके मगान दूसरा कोई मित्र नहीं है; क्योंकि वह पाप लेकर अपना

## सिद्ध महर्षि

### मुक्तके लक्षण

यः स्थादेकाथने लीनस्तूपीं किञ्चिद्विन्तयन् ।  
 पूर्वं पूर्वं परित्यज्य स तीर्णो भवत्वन्वनात् ॥  
 सर्वमित्रः सर्वसहः शसे रक्तो जितेन्द्रियः ।  
 व्यपेतभयमनुश आत्मवान् मुच्यते नः ॥  
 आत्मवत् सर्वभूतेषु यश्चेत्तियतः गुचिः ।  
 असामी निरभीमानः सर्वतो मुक्त एव सः ॥  
 जीवितं सरणं धोमे सुखदुःखे तथैव च ।  
 लाभालाभे ग्रिघ्रेष्ये यः समः स च मुच्यते ॥  
 न कस्यचित् स्पृहयते नावजानाति किञ्चन ।  
 निर्द्वन्द्वो वीतरागात्मा सर्वथा मुक्त एव सः ॥  
 अनमित्रश्च निर्बन्धुरनप्यथश्च यः क्रचित् ।  
 त्यक्तघर्मार्थकामश्च निराकाङ्क्षी च मुच्यते ॥  
 नैव धर्मी न चाधर्मी षुष्ठेष्वित्वाहपकः ।  
 धातुक्षयप्रशान्तात्मा निर्द्वन्द्वः स चिमुच्यते ॥  
 अकर्मवान् विकाङ्कुश पश्येजगदशावदत्तम् ।  
 अश्वत्यसदां निर्यं जन्मस्तुजरायुतम् ॥  
 वैराग्यबुद्धिः सततमात्मदोषव्यपेषकः ।  
 आत्मबन्धविनिर्मोक्षं स करोत्यचिरादिव ॥

(महा० अश्वमेष० १९। १-९)

जो स्थूल-सूक्ष्मादि पूर्व-पूर्व प्रपञ्चका वाय करके किसी भी प्रकारका संकल्प-विकल्प न करते हुए मौनभावसे सम्पूर्ण प्रपञ्चके एकमात्र लयस्थान परब्रह्ममें समाहित हैं, उसने इस

संसारवन्धनको पार कर लिया है। जो सबका सुहृद है, वह कुछ सह लेता है, मनोनिग्रहमें धनुराग रखता है, जितेन्द्रिय है तथा भय और क्रोधसे रहित है, वह मनस्वी नरश्रेष्ठ संसारसे मुक्त हो जाता है। जो पवित्रात्मा मनको वरमें रखता हुआ समस्त भूतोंके प्रति अपने ही समान वर्ताव करता है तथा जिसमें मान और गर्वका लेश भी नहीं है, वह सब प्रकार मुक्त ही है। जो जीवन और मरणमें, सुख और दुःखमें, लाभ और हानिमें तथा ग्रिय और अप्रियमें समभाव रखता है, वह मुक्त हो जाता है। जो किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता, किसीका तिरस्कार नहीं करता तथा सुख-दुःखादि द्रव्य और रागसे रहित है, वह सर्वथा मुक्त ही है। जिसका कोई शत्रु या मित्र नहीं है, जो किसीको अपना पुत्रादि भी नहीं समझता, जिसने धर्म, अर्थ-और इन्द्रिय-सुखका भी परित्याग कर दिया है, जिसे किसी वस्तुकी आकाङ्क्षा नहीं है, वह मुक्त हो जाता है। जो धर्म-व्यवस्थसे परे है, जिसने पूर्वके संचितका त्याग कर दिया है, वासनाओंका क्षय हो जानेसे जिसका चित्त शान्त हो गया है तथा जो सब प्रकारके द्रव्योंसे रहित है, वह मुक्त हो जाता है। जो कर्मकलापसे मुक्त है, पूर्णतया निष्काम है, संसारको अशत्र्य (वृक्ष) के समान अनित्य और सर्वदा जन्म, मृत्यु एवं जरादि दोषोंसे मुक्त देखता है, जिसकी बुद्धि वैराग्यनिष्ठ है और जो निरन्तर अपने दोषोंपर हासि रखता है, वह शीघ्र अपने समस्त वन्धनोंको तोड़ डालता है।

### मुनिवर कण्ठ

#### प्रार्थना

संसारेऽस्मि अग्रजाथ दुर्सरे लोमहर्षणे ।  
 अनित्ये दुःखबहुले कदलीदलसंनिमे ॥  
 निराश्रये निरालम्बे जलबुद्धुवच्छ्वले ।  
 सर्वोपद्रवसंयुक्ते दुर्सरे चातिभैरवे ॥  
 अमामि सुचिरं काळं मायथा भोहितस्व ।  
 न चान्तमभिगच्छामि विषयासक्तमानसः ॥  
 त्वमहं चाद्र देवेश संसारभयपीडितः ।  
 गतोऽस्मि शरणं कृष्ण मामुद्धर भवार्णयात् ॥

गन्तुमिच्छामि परमं पदं यत्ते सनातनम् ।

प्रसादात्तव देवेश पुनरावृतिलुभम् ॥

(ब्रह्मपुराण १७८। १७९-१८३)

जगद्वाय ! यह संसार अत्यन्त दुस्तर और रोगमयका है। इसमें दुःखोंकी ही अधिकता है। यह अनित्य और केलेके पत्तेकी माँति सारहीन है। इसमें न कहीं आश्रय है। न अवलम्ब। यह जलके शुल्कुलोंकी माँति चब्रल है। इसमें सब प्रकारके उपद्रव भेरे हुए हैं। यह दुम्नर द्योनेके नाम ही अत्यन्त भयानक है। मैं आपकी मायामे मांहित द्योनर निरकालये इस संसारमें भटक रहा हूँ, किंतु कर्णे भी शार्नि

नहीं पाता । मेरा मन विषयोंमें आसक्त है । देवेश ! इस संसारके भयसे पीड़ित होकर आज मैं आपकी शरणमें आया हूँ । श्रीकृष्ण ! आप इस भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये ।

सुरेश्वर ! मैं आपकी कृपासे आपके ही सनातन परम पद प्राप्त करना चाहता हूँ, जहाँ जानेसे किर इस संसारमें न आना पड़ता ।

## पुराण-वक्ता सूतजी

### शिवभक्तिकी महिमा

सा जिह्वा या शिवं सौति तन्मनो ध्यायते शिवम् ।  
तौ कणौ तत्कथालोलौ तौ हस्तौ तस्य पूजकौ ॥  
ते नेत्रे पश्यतः पूजां तच्छ्रः प्रणतं शिवे ।  
तौ पादौ यौ शिवस्त्रेन भक्त्या पर्यटतः सदा ॥  
यस्येन्द्रियाणि सर्वाणि वर्तन्ते शिवकर्मसु ।  
स निस्तरति संसारं भुक्ति मुक्तिं च विन्दति ॥

शिवभक्तियुतो सर्वश्चाण्डालः पुल्कसोऽपि च ।  
नारी नरो वा घण्डो वा सद्यो मुच्येत संस्कृतेः ॥  
( स्कन्द ० पु० ना० ब्रह्म० ४ । ७-१० )

वही जिह्वा सफल है, जो भगवान् शिवकी स्तुति करती है । वही मन सार्थक है, जो शिवके ध्यानमें संलग्न होता है । वे ही कान सफल हैं, जो भगवान् शिवकी कथा सुननेके लिये उत्सुक रहते हैं और वे ही दोनों हाथ सार्थक हैं, जो शिवजी-की पूजा करते हैं । वे नेत्र धन्य हैं, जो महादेवजीका दर्शन करते हैं । वह मस्तक धन्य है, जो शिवके सामने दुक जाता है । वे पैर धन्य हैं, जो भक्तिपूर्वक शिवके क्षेत्रमें सदा भ्रमण करते हैं । जिसकी सम्पूर्ण इन्द्रियों भगवान् शिवके कायोंमें लगी रहती हैं, वह संसारसागरके पार हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है । शिवकी भक्तिसे युक्त मनुष्य चाण्डाल, पुल्कस, नारी, पुरुष अथवा नपुंसक—कोई भी क्यों न हो; तत्काल संसार-बन्धनमें मुक्त हो जाता है ।

### अतिथि-सत्कार

गृहस्थानां परो धर्मो नाम्योऽस्त्यतिथिपूजनात् ।  
अतिथेन च दोषोऽस्ति तस्यातिक्रमणेन च ॥  
अतिथिर्यस्म भद्राशो गृहात्यतिरिक्तते ।  
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥  
सत्यं तथा तपोऽधीतं दत्तमिष्टं शर्तं समाः ।  
तस्य सर्वमिदं नष्टमतिथिं यो न पूजयेत् ॥  
दूरादतिथियो यस्य गृहमायान्ति निर्वताः ।  
स गृहस्थ इति प्रोक्तः शेषाश्च गृहरक्षिणः ॥  
( स्कन्द ० पु० ना० ड० १७६ । ४-७ )



यहस्योंके लिये अतिथि-सत्कारसे बढ़ दूसरा कोई महान् धर्म नहीं है । अतिथि-महान् कोई देवता नहीं है, अतिथिके उल्लङ्घन बड़ा भारी पाप होता है । जिसके धररे अतिथि-निराश होकर लौट जाता है, उसे वह अपाप देकर और उसका पुण्य लेकर चल नहीं है । जो अतिथिका आदर नहीं करता, उसकी सौ वर्षोंके सत्य, तप, स्वाध्याय, दान वगया है, शेष सब लोग तो गृहके रक्षकमात्र हैं ।

### भगवद्भक्ति—भगवन्नाम

कलौ नारायणं देवं यजते यः स धर्मभाक् ।  
दामोदरं हृषीकेशं पुरुहूतं सवातनम् ॥  
हृदि छृत्वा परं शान्तं जितमेव जगत्प्रथम् ।  
कलिकालोरगादेशात् किञ्चिषात् कालकूटतः ॥  
हरिभक्तिसुधां पीत्वा उल्लङ्घयो भवति द्विजः ।  
किं जपैः श्रीहरेनामं गृहीतं यदि मातुषैः ॥  
( पद्मपुराण, स्वर्ग ० ६१ । ६-८ )

जो कलियुगमें भगवान् नारायणका पूजन करता है, धर्मके फलका भागी होता है । अनेकों नामोंद्वारा जिपुकारा जाता है तथा जो इन्द्रियोंके नियन्ता हैं, उन पशान्त सनातन भगवान् दामोदरको हृदयमें स्थापित कर मनुष्य तीनों लोकोंपर विजय पा जाता है । जो द्विज हरिभासूपी अमृतका पान कर लेता है, वह कलिकालरूपी साँड़सेसे फैल हुए पापरूपी भयंकर विषसे आत्मरक्षा कर योग्य हो जाता है । यदि मनुष्योंने श्रीहरिके नामका आग्रहण कर लिया तो उन्हें अन्य मन्त्रोंके जपकी आवश्यकता है ।

हरिभक्तिश्च लोकेऽन्न दुर्लभा हि मता मम ।  
हरौ यस्य भवेद् भक्तः स कृतायों न संदयः ॥

तत्तदेवाचरेकर्म हरि: प्रीणाति येन हि ।  
तसिंहस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत् ॥  
हरौ भर्ति विना नृणां वृथा जन्म प्रकीर्तिम् ।  
वस्त्रादयः सुरा यस्य यजन्ते प्रीतिहेत्वे ॥  
नारायणमनायन्तं न तं सेवेत को जनः ॥  
तस्य माता महाभागा पिता तस्य महाकृती ।  
जनार्दनपदद्वन्द्वं हृदये येन धार्यते ॥  
जनार्दन जगद्वन्द्व शरणागतवत्सल ।  
इतीरयन्ति ये मर्ल्या न तेषां निरये गतिः ॥

( पद्म० सर्ग० ६१ । ४२-४६ )

मेरे विचारसे इस संसारमें श्रीहरिकी भक्ति दुर्लभ है । जिसकी भगवान्में भक्ति होती है, वह मनुष्य निःसदेह कृतार्थ हो जाता है । उसी-उसी कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये, जिससे भगवान् प्रसन्न हों । भगवान्के संतुष्ट और तृप्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् संतुष्ट एवं तृप्त हो जाता है । श्रीहरिकी भक्तिके विना मनुष्योंका जन्म व्यर्थ बताया गया है । जिनकी प्रसन्नताके लिये ब्रह्मा आदि देवता भी यजन करते हैं, उन आदि-अन्तरहित भगवान् नारायणका भजन कौन नहीं करेगा । जो अपने हृदयमें श्रीजनार्दनके युगल चरणोंकी स्थापना कर लेता है, उसकी माता परम सौभाग्यशालिनी और पिता महापुण्यात्मा हैं । ‘जगद्वन्द्व जनार्दन ! शरणागतवत्सल !’ आदि कहकर जो मनुष्य भगवान्को पुकारते हैं, उनको नरकमें नहीं जाना पड़ता ।

विष्णुमें भक्ति किये बिना मनुष्योंका जन्म निष्फल बताया जाता है । कलिकालरूपी भयानक समुद्र पापरूपी गङ्गामें भग दुआ है, विषयादिकि ही उसमें मँवर है, दुर्बोध ही केनका काम देता है, महादुष्टरूपी सर्पोंके कारण वह अत्यन्त भीषण प्रतीत होता है, हरिभक्तिकी नौकापर बैठे हुए मनुष्य उसे पार कर जाते हैं । इसलिये लोगोंको हरिभक्तिकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करना चाहिये । लोग बुरी-बुरी बातोंको सुननेमें क्या सुख जाते हैं, जो अद्भुत लीलाओंवाले श्रीहरिकी लीलाकथामें आसक्त नहीं होते । यदि मनुष्योंका मन विषयमें ही आसक्त हो तो श्रेकर्में नाना प्रकारके विषयोंसे मिश्रित उनकी विचित्र व्यथाओंका ही श्रवण करना चाहिये । द्विजो ! यदि निर्वाणमें मन रमता हो, तो भी भगवत्कथाओंको सुनना उचित है ; उन्हें अवहेलनापूर्वक सुननेपर भी श्रीहरि संतुष्ट हो जाते

हैं । भक्तवत्सल भगवान् हृषीकेश यद्यपि निष्क्रिय उन्होंने श्रवणकी इच्छावाले भक्तोंका हित करनेके प्रकारकी लीलाएँ की हैं । सौ वाजपेय आदि कर्म हजार राजसूय यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी भगवान् उतनी नहीं मिलते, जितनी सुगमतासे वे भक्तिके द्वारा हैं । जो हृदयसे सेवन करने योग्य, संतोंके द्वारा सेवित तथा भवसागरसे पार होनेके लिये सार श्रीहरिके उन चरणोंका आश्रय ले । रे विषयलोकुम और निष्ठुर मनुष्यो ! क्यों स्वयं अपने आपको रौरक गिरा रहे हो । यदि तुम अनायास ही दुःखोंके पांचाहते हो तो गोविन्दके चारु चरणोंका सेवन कि नहीं जा सकोगे । भगवान् श्रीकृष्णके युगल चरण हेतु हैं, उनका भजन करो । मनुष्य कहाँसे आया है औं पुनः उसे जाना है, इस बातका विचार करके बुद्धिमान धर्मका संग्रह करे । ( पद्म० सर्ग० ६१ । ७२-

जिसने मन, बाणी और क्रियाद्वारा श्रीहरिकी भक्ति की है, उसने बाजी सार ली, उसने विजय प्राप्त कर ली, उसकी निश्चय ही जीत हो गयी—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । सम्पूर्ण देवेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् श्रीहरिकी ही भलीभाँति आराधना करनी चाहिये । हरिनामरूपी महामन्त्रोंके द्वारा पापरूपी पिशाचोंका समुदाय नष्ट हो जाता है । एक बार भी श्रीहरिकी प्रदक्षिणा करके मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्वान करनेका जो फल होता है, उसे प्राप्त कर लेते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । मनुष्य श्रीहरिकी प्रतिमाका दर्शन करके सब तीर्थोंका फल प्राप्त करता है तथा विष्णुके उत्तम नामका जप करके सम्पूर्ण मन्त्रोंके जपका फल पा लेता है । द्विजवरो ! भगवान् विष्णुके प्रसादस्वरूप तुलसीदलको सूँघकर मनुष्य यमराजके प्रचण्ड एवं विकराल मुखका दर्शन नहीं करता । एक बार भी श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला मनुष्य पुनः माताके स्नानोंका दूध नहीं पीता—उसका दूसरा जन्म नहीं होता । जिस पुरुषोंका चित्त श्रीहरिके चरणोंमें ल्पा है, उन्हें प्रतिदिन मेरा वारंवार नमस्कार है । पुलकस, श्वप्न ( चाण्डाल ) तथा और भी जो म्लेच्छ जातिके मनुष्य हैं, वे भी यदि एकमात्र श्रीहरिके चरणोंकी सेवामें लगे हों तो वन्दनीय और परम सौभाग्यशाली हैं । फिर जो पुण्यात्मा व्राताण और गर्वार्थ भगवान्के भक्त हैं, उनकी तो बात ही क्या है । भगवान् श्रीहरिकी भक्ति करके ही मनुष्य गर्ववाहा दुःख नहीं

देखता । ब्राह्मणो ! भगवान्के सामने उच्चस्वरसे उनके नामोंका कीर्तन करते हुए नृत्य करनेवाला मनुष्य गङ्गा आदि नदियोंके जलकी भौति समस्त संसारको पवित्र कर देता है । उस भक्तके दर्शन और स्पर्शसे, उसके साथ वार्तालाप करनेसे तथा उसके प्रति भक्तिमाव रखनेसे मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । जो श्रीहरिकी प्रदक्षिणा करते हुए करताल आदि बजाकर उच्च स्वर तथा मनोहर वाणीसे उनके नामोंका कीर्तन करता है, उसने ब्रह्महत्या आदि पापोंको मानो ताली बजाकर भगा दिया । जो हरिमत्ति-कथाकी फुटकर आख्यायिका भी श्रवण करता है, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य पवित्र हो जाता है । मुनिबो ! फिर उसके विषयमें पापोंकी आशङ्का क्या रह सकती है । महर्षियो ! श्रीकृष्णका नाम सब तीर्थोंमें परम तीर्थ है । जिन्होंने श्रीकृष्ण-नामको अपनाया है, वे पृथ्वीको तीर्थ बना देते हैं । इसलिये श्रेष्ठ मुनिजन इससे बढ़कर पावन वस्तु और कुछ नहीं मानते । श्रीविष्णुके प्रसादभूत निर्माल्य-को खाकर और मस्तकपर धारण करके मनुष्य साक्षात् विष्णु ही हो जाता है, वह यमराजसे होनेवाले शोकका नाश करनेवाला होता है; वह पूजन और नमस्कारके योग्य साक्षात् श्रीहरिका ही स्वरूप है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । जो इन अव्यक्त विष्णु तथा भगवान् महेश्वरको एकभावसे देखते हैं, उनका पुनः इस संसारमें जन्म नहीं होता । अतः महर्षियो ! आप आदि-अन्तसे रहित अविनाशी परमात्मा विष्णु तथा महादेवजीको एकभावसे देखें तथा एक समझकर ही उनका पूजन करें । जो ‘हरि’ और ‘हर’ को समान भाव-से नहीं देखते, श्रीशिवको दूसरा देवता समझते हैं, वे धोर नरकमें पड़ते हैं, उन्हें श्रीहरि अपने भक्तोंमें नहीं शिनते । पण्डित ही या मूर्ख, ब्राह्मण ही या चाण्डाल, यदि वह भगवान्का प्यारा भक्त है तो स्वयं भगवान् नारायण उसे संकटोंसे छुड़ाते हैं । भगवान् नारायणसे बढ़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो पापपुण्डरी बनको जलानेके लिये दावानलके समान हो । भयंकर पातक करके भी मनुष्य श्रीकृष्णनामके उच्चारणसे मुक्त हो जाता है । उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षियो ! जगद्गुरु भगवान् नारायणने स्वयं ही अपने नाममें अपनेसे भी अधिक शक्ति स्पापित कर दी है । नाम-कीर्तनमें परिश्रम तो थोड़ा होता है, किंतु फल भारी-से-भारी प्राप्त होता है—यह देखकर जो लोग इसकी महिमाके विषयमें तर्क उपस्थित करते हैं, वे अनेकों वार

नरकमें पड़ते हैं । इसलिये हरिनामकी शरण लेकर भगवान्-की भक्ति करनी चाहिये । प्रभु अपने पुजारीको तो पीछे रखते हैं, किंतु नाम-जप करनेवालेको छातीसे ल्पाये रहते हैं । हरिनामरूपी महान् वत्र पापोंके पहाड़को विदीर्घ करनेवाला है । जो भगवान्की ओर आगे बढ़ते हैं, मनुष्यके वे ही पैर सफल हैं । वे ही हाथ धन्य कहे गये हैं, जो भगवान्की पूजामें संलग्न रहते हैं । जो मरतक भगवान्के आगे छुकता हो, वही उत्तम अङ्ग है । जीभ वही श्रेष्ठ है, जो भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करती है । मन भी वही अच्छा है, जो उनके चरणोंका अनुगमन—चिन्तन करता है तथा रोएँ भी वे ही सार्थक कहलाते हैं, जो भगवान्का नाम लेनेपर खड़े हो जाते हैं । इसी प्रकार आँख वे ही सार्थक हैं, जो भगवान्की चर्चाके अवसरपर निकलते हैं । अहो ! संसारके लोग भाग्यदोषसे अत्यन्त वञ्चित हो रहे हैं; क्योंकि वे नामोच्चारणमात्रसे मुक्ति देनेवाले भगवान्का भजन नहीं करते । स्त्रियोंके स्पर्श एवं चर्चासे जिन्हें रोमाञ्च हो आता है, श्रीकृष्णका नाम लेनेपर नहीं, वे मलिन तथा कल्याणसे वञ्चित हैं । जो अजितेन्द्रिय पुरुष पुत्रशोकादिसे व्याकुल होकर अत्यन्त विलाप करते हुए रोते हैं, किंतु श्रीकृष्णनामके अक्षरोंका कीर्तन करते हुए नहीं रोते, वे मूर्ख हैं । जो इस लोकमें जीभ पाकर भी श्रीकृष्णनामका जप नहीं करते, वे मोक्षतक पहुँचनेके लिये सीढ़ी पाकर भी अवहेलनावश नीचे गिरते हैं । इसलिये मनुष्यको उचित है कि वह कर्मयोगके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी यत्नपूर्वक आराधना करे । कर्मयोगसे पूजित होनेपर ही भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं, अन्यथा नहीं । भगवान् विष्णुका भजन तीर्थोंसे भी अधिक पावन तीर्थ कहा गया है । सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करने, उनका जल पीने और उनमें गोता ल्पानेसे मनुष्य जिस फलको पाता है, वह श्रीकृष्णके सेवनसे प्राप्त हो जाता है । भाग्यवान् मनुष्य ही कर्मयोगके द्वारा श्रीहरिका पूजन करते हैं । अतः मुनियो ! आपलोग परम मङ्गलमय श्रीकृष्णकी आराधना करें । ( पद्म० सर्ग० ५० । ४—३७ )

### भक्तिसे ही सबकी सार्थकता

पतितः स्वलितश्चार्तः क्षुद्धा वा विवशो हुवन् ।  
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥

संकीर्त्तमानो भगवाननन्तः  
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।

प्रचिन्थ चित्तं विधुनोत्यशेषं  
यथा तमोऽकोऽभिमिवालिघातः ॥

मृपा गिरस्ता ल्यसतीरसत्कथा  
न कथ्यते यद् भगवानबोक्षजः ।

तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं  
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥

तदेव सर्वं रुचिरं नवं नवं  
तदेव शक्तन्मतसो महोत्सवम् ।

तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां  
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥

न तद् वच्छिवपदं हर्येद्दो  
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कहिंचित् ।

तद् ध्वाङ्गतीर्थं न तु हंससेवितं  
यन्नान्युत्सत्र हि साध्वोऽमलाः ॥

स वाग्वस्तर्गो जनताधसम्पूर्वो  
यस्त्रिन् प्रतिश्लोकमन्दद्वत्यपि ।

नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्गितानि य-  
च्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभावर्जितं  
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।

कुतः पुनः शशदभद्रमीश्वरे  
न श्वर्णितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥

यशःश्रियमेव परिश्रमः परो  
वर्णाश्रमाचारतपःश्रुतादिपु ।

अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयो-  
र्णानुवादश्रवणादिभिर्हैः ॥

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः  
क्षिणोत्यभद्राणि शर्मं तनोति च ।

सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं  
ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥

( श्रीमद्भा० १२।१२।४६—५४ )

जो मनुष्य गिरते-पड़ते, किसलते, दुःख भोगते अथवा  
छींकते सभय विवशतासे भी ऊँचे खरसे बोल उठता है—  
“हरये नमः”, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। यदि देश,  
काल एवं वस्तुसे अपरिच्छिन्न भगवान् श्रीकृष्णके नाम,  
नीला, गण आदिका संकीर्तन किया जाय अथवा उनके

प्रभाव, माहिमा आदिका श्रवण किया जाय तो वे स्वयं  
हृदयमें आ विराजते हैं और श्रवण-कीर्तन करनेवाले पुरुष  
सारे दुःख मिया देते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे सर्व अंदकार  
और आँधी बादलोंको तितर-वितर कर देती है। जिस वाणी  
द्वारा घट-घटवासी अविनाशी भगवान्के नाम, लीला, गु  
आदिका उच्चारण नहीं होता, वह वाणी भावपूर्ण होनेपर  
निरर्थक है—सारहीन है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर  
और उत्तमोत्तम विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली होनेपर  
असत् कथा है। जो वाणी और वचन भगवान्के गुणों  
परिपूर्ण रहते हैं, वे ही परम पावन हैं, वे ही मङ्गलमय  
और वे ही परम सत्य हैं। जिस वचनके द्वारा भगवान् वे  
परम पवित्र यशका गान होता है, वही परम रमणीय  
रुचिकर एवं प्रतिक्षण नया-नया जान पड़ता है। उसीसे  
अनन्त कालिक मनको परमानन्दकी अनुभूति होती रहती है।  
मनुष्योंका सारा शोक, चाहे वह समुद्रके समान लंबा और  
गहरा क्यों न हो, उस वचनके प्रभावसे सदाके लिये सूख  
जाता है। जिस वाणीसे—ज्ञाहे वह रस, भाव, अलंकार  
आदिसे युक्त ही क्यों न हो—जगत्को पवित्र करनेवाले भगवान्  
श्रीकृष्णके यशका कभी गान नहीं होता, वह तो कौअोंके  
लिये उच्छिष्ट फैकनेके स्थानके समान अस्थन्त अपवित्र है।  
मानसरोवरनिवासी हंसोंके समान ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले  
भगवन्वरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त उसका कभी सेवन  
नहीं करते। निर्मल दृढ़दयवाले साधुजन तो वहाँ निवास करते  
हैं, जहाँ भगवान् रहते हैं। इसके विपरीत जिसमें सुन्दर  
रचना भी नहीं है और जो व्याकरण आदिकी दृष्टिसे दूरीत  
शब्दोंसे युक्त भी है, परंतु जिसके प्रत्येक श्लोकमें भगवान्के  
सुयशस्त्रचक नाम जड़े हुए हैं, वह वाणी लोगोंके सारे पांचोंका  
नाश कर देती है; क्योंकि सत्पुरुष ऐसी ही वाणीका श्रवण,  
गान और कीर्तन किया करते हैं। वह निर्मल ज्ञान भी, जो  
भोक्षकी प्राप्तिका साक्षात् गाधन है, यदि भगवान्की भक्तिये  
रहित हो तो उसकी उत्तीर्ण शोभा नहीं होती। फिर जो धर्म  
भगवान्को अर्पण नहीं किया गया है—वह चाहे कितना ही  
ऊँचा क्यों न हो—वर्वदा अमङ्गलरूप, दुःख देनेवाला ही  
है; वह तो शोभन—वरणीय ही ही कैसे भक्ता है। वर्णाश्रमण  
अनुकूल आचरण, तपस्या और अथयन आदिके लिये जो  
वहुत बड़ा परिश्रम किया जाता है, उसका पाल देनेवाला  
यश अथवा लक्ष्मीकी प्राप्ति। परंतु भगवान्के गुण, लीला,  
नाम आदिका श्रवण, कीर्तन आदि तो उनके श्रीचरणकर्माणी

अविचल स्मृति प्रदान करता है। भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी अविचल स्मृति सरे पाप-ताप और अमङ्गलोंको नष्ट कर देती और परम शान्तिका विस्तार करती है। उसीके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, भगवान्की भक्ति प्राप्त होती है एवं परवैराग्यसे युक्त भगवान्के स्वरूपका ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होता है।

### श्रोताओंके लक्षण

अब भगवान् श्रीकृष्णकी कथाका आश्रय लेनेवाले श्रोताओंका वर्णन करते हैं। श्रोता दो प्रकारके माने गये हैं— प्रवर ( उत्तम ) तथा अवर ( अधम )। प्रवर श्रोताओंके ‘चातक’, ‘हंस’, ‘शुक’ और ‘मीन’ आदि कई भेद हैं। अवरके भी ‘वृक्ष’, ‘भूरुण्ड’, ‘वृष्ट’ और ‘उष्ण’ आदि अनेकों भेद बताये गये हैं। ‘चातक’ कहते हैं पर्पीहिको। वह जैसे बादलसे बरसते हुए जलमें ही स्पृहा रखता है, दूसरे जलको छूता नहीं, उसी प्रकार जो श्रोता सब कुछ छोड़कर केवल श्रीकृष्णसम्बन्धी शास्त्रोंके श्रवणका व्रत ले लेता है, वह ‘चातक’ कहा गया है।

जैसे हंस दूधके साथ मिलकर एक हुए जलसे निर्मल दूध ग्रहण कर लेता और पानीको छोड़ देता है, उसी प्रकार जो श्रोता अनेकों शास्त्रोंका श्रवण करके भी उसमेंसे सारभाग अलग करके ग्रहण करता है, उसे ‘हंस’ कहते हैं।

जिस प्रकार भलीभाँति पढ़ाया हुआ तोता अपनी मधुर वाणीसे शिक्षकको तथा पास आनेवाले दूसरे लोगोंको भी प्रसन्न करता है, उसी प्रकार जो श्रोता कथावाचक व्यासके मुँहसे उपदेश सुनकर उसे सुन्दर और परिमित वाणीमें पुनः सुना देता है और व्यास एवं अन्यान्य श्रोताओंको अत्यन्त आनन्दित करता है, वह ‘शुक’ कहलाता है।

जैसे क्षीरसायरमें मछली मौन रहकर अपलक आँखोंसे देखती हुई सदा दुर्घटान करती रहती है, उसी प्रकार जो कथा सुनते समय निर्निमेष नयनोंसे देखता हुआ मुँहसे कभी एक शब्द भी नहीं निकालता और निरन्तर कथारसका ही आस्वादन करता रहता है, वह प्रेमी श्रोता ‘मीन’ कहा गया है।

( ये प्रवर अर्थात् उत्तम श्रोताओंके भेद बताये गये, अब अवर यानी अधम श्रोता बताये जाते हैं। ) ‘वृक्ष’ कहते हैं भेदियेको। जैसे भेदिया बनके भीतर वेणुकी मीठी आदाज सुननेमें लगे हुए मृगोंको डरानेवाली भयानक गर्जना

करता है, वैसे ही जो मूर्ख कथाश्रवणके समय रसिक श्रोताओंको उद्दिग्न करता हुआ बीच-बीचमें जोर-जोरसे बोल उठता है, वह ‘वृक्ष’ कहलाता है।

हिमालयके शिखरपर एक भूरुण्ड जातिका पक्षी होता है। वह किसीके शिशाप्रद वाक्य सुनकर वैसा ही बोला करता है, किंतु स्वयं उससे लाभ नहीं उठाता। इसी प्रकार जो उपदेशकी बात सुनकर उसे दूसरोंको तो सिखाये पर स्वयं आचरणमें न लाये, ऐसे श्रोताको ‘भूरुण्ड’ कहते हैं।

‘वृष’ कहते हैं बैलको। उसके सामने मीठे-मीठे अंगूर हूँ या कड़वी खली, दोनोंको वह एक-सा ही मानकर खाता है। उसी प्रकार जो सुनी हुई सभी बातें ग्रहण करता है, पर सार और असार वस्तुका विचार करनेमें उसकी बुद्धि अंधी—असमर्थ होती है, ऐसा श्रोता ‘वृष’ कहलाता है।

जिस प्रकार ऊँट माधुर्यगुणसे युक्त आमको भी छोड़कर केवल नीमकी ही पत्ती चबाता है, उसी प्रकार जो भगवान्की मधुर कथाको छोड़कर उसके विपरीत संसारी बातोंमें रमता रहता ह, उसे ‘ऊँट’ कहते हैं।

ये कुछ थोड़े-से भेद यहाँ बताये गये। इनके अतिरिक्त भी प्रवर-अवर दोनों प्रकारके श्रोताओंके ‘भ्रमर’ और ‘गदहा’ आदि बहुतसे भेद हैं, इन सब भेदोंको उन-उन श्रोताओंके स्वाभाविक आचार-व्यवहारोंसे परखना चाहिये।

जो वक्ताके सामने उन्हें विधिवत् प्रणाम करके बैठे और अन्य संसारी बातोंको छोड़कर केवल श्रीभगवान्की लीला-कथाओंको ही सुननेकी इच्छा रखते, समझनेमें अत्यन्त कुशल हूँ, नप्र हो, हाथ जोड़े रहे, शिष्य-भावसे उपदेश ग्रहण करे और भीतर श्रद्धा तथा विश्वास रखते, इसके सिवा जो कुछ सुने उसका बराबर चिन्तन करता रहे, जो बात समझनेमें न आये पूछे और पवित्र भावसे रहे तथा श्रीकृष्णके भक्तोंपर सदा ही प्रेम रखता हो, ऐसे ही श्रोताको वक्तालोग उत्तम श्रोता कहते हैं।

अब वक्ताके लक्षण बताते हैं। जिसका मन सदा भगवान्से ल्या रहे, जिसे किसी भी वस्तुकी अपेक्षा न हो, जो सबका सुहृद् और दीनोंपर दया करनेवाला हो तथा अनेकों युक्तियोंसे तत्त्वका बोध करा देनेमें चतुर हो, उसी वक्ताका मुनिलोग भी सम्मान करते हैं।

( स्कन्दपुराणान्तर्गत श्रीमद्भाग्वत ग्रन्थ ४। १०—२२ )

### भगवान्‌की कथा

असारे संसारे विषयविषयसङ्गाकुलधियः  
क्षणाधर्म क्षेमाधर्म पिबत शुक्रगाथातुलसुधाम् ।  
किमर्थं चर्यं भो वजत कुपथे कुर्सितकथे  
परीक्षित्साक्षी गच्छदणगतमुक्त्युक्तिकथने ॥  
( पशुपुराणान्तर्गत श्रीमद्भा० माहा० ६। १०० )

इप असार-संसारमें विषयरूप विषयकी आसक्तिके कारण व्याकुल शुद्धिवाले पुरुषो ! अपने कल्याणके उद्देश्यसे आधे क्षणके लिये भी इस शुक्रकथाल्प अनुपम सुधाका पान करो । प्यारे भाइयो ! निन्दित कथाओंसे युक्त कुपथमें व्यर्थ ही क्यों भटक रहे हो । इस कथाके कानमें प्रवेश करते ही मुक्ति हो जाती है, इस बातके साक्षी राजा परीक्षित हैं ।

### भगवान्‌का परमपद

परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्  
यनेति नेतीत्यतदुत्तिसूक्ष्मः ।  
विसृज्य दौरात्म्यमन्यसौहदा  
हृदोपगुह्याबसितं समाहितैः ॥  
त एतदधिगच्छन्ति विष्णोर्यत् परमं पदम् ।  
अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहोहजम् ॥

थतिवादांसितिक्षेत नावमन्येत कद्दन ।

न चेमं देहमाश्रित्वं वैरं कुर्यात केतवित् ॥  
( श्रीमद्भा० १२। ६। ३२—३४ )

जो मुमुक्षु एवं विचारशील पुरुष परमपदके अतिरिक्त वस्तु-मात्रका परित्याग करते हुए 'नेति नेति' के द्वारा उसका निषेध करके ऐसी वस्तु प्राप्त करते हैं, जिसका कभी निषेध नहीं हो सकता और भतोकभी त्याग ही, वही विष्णुभगवान्‌का परमपद है—यह बात सभी महात्मा और श्रुतियाँ एक मतसे स्वीकार करती हैं । अपने विस्तको एकाग्र करनेवाले पुरुष अन्तःकरणकी अशुद्धियोंको अनात्म-मावनाज्ञोंको सदा-सर्वदाके लिये मिटाकर अनन्य प्रेमभावसे परिषूर्ण हृदयके द्वारा उसी परमपदका आलिङ्गन करते हैं और उसीसे समा जाते हैं । विष्णुभगवान्‌का यही वास्तविक स्वरूप है, यही उनका परमपद है । इसकी प्राप्ति उन्हों लोगोंको होती है, जिनके अन्तःकरणमें शारीरिके प्रति अहंभाव नहीं है और उ तो इसके सम्बन्धी एह आदि पदार्थोंमें समता ही । सचमुच शारीरमें मैयन और जगत्‌की वस्तुओंमें मेरेपनका आरोप बहुत बड़ी हुर्जनाता है । जिसे इस परमपदकी प्राप्ति अभीष्ट है, उसे चाहिये कि वह दूसरोंकी कटुवाणी सहन कर ले और बदलेमें किसीका अपमान न करे तथा इस क्षणमहुर शारीरमें अहंता-समता करके किसी भी प्राणीसे कभी वैर न करे ।

### मनु महाराज

#### उपदेश

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।  
एतच्छ्रुतिर्विवेच्य ग्राहुः साक्षात्कृमेस्य लक्षणम् ॥  
( मनु० २। १२ )

वेद, स्मृति, सदाचार और अपने आत्माको प्रिय लगानेवाला—वह चार प्रकारका धर्मका साक्षात् लक्षण कहा गया है ।

वृत्तिः क्षमा दसोऽस्तेवं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।  
धीर्विद्या सत्यमकोघो दशकं धर्मलक्षणम् ॥  
( मनु० ६। १२ )

वृत्ति, क्षमा, दस, अस्तेवं ( चोरी न करना ), शौच ( मन, वाणी और शरीरकी पवित्रता ), इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध—ये दस धर्मके लक्षण हैं ।



एकोऽपि वेदविद्वर्म यं व्यवस्थेद् हिंजोत्तमः ।

स विशेषः परो धर्मो नाज्ञानासुदितोऽयुतैः ॥

( मनु० १२। ११३ )

वेदका मर्म जाननेवाला कोई एक द्विजप्रेत भी जिसका निर्णय कर दे, उसे परम धर्म जानना चाहिये; परंतु दस हजार भी मूर्ख जिसका निर्णय करें, वह धर्म नहीं है ।

धर्म एव हतो इन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।  
तस्माद्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥

( मनु० ८। १५ )

नष्ट हुआ धर्म ही मारता है और रक्षा किया हुआ धर्म ही रक्षा करता है । इसलिये नष्ट हुआ धर्म कहीं दम्भों न मारे—यह विचारकर धर्मका नाश नहीं करना चाहिये ।

न सीदन्नपि धर्मेण भ्रोडधर्मे निवेशयेत् ।  
अधर्मिकाणां पापानामाग्नु पश्यन्विष्यथस् ॥  
( मनु० ४ ) १७१ )

पापी अधर्मियोंकी शीघ्र ही बुरी गति होती है, यों समझकर पुरुषको चाहिये कि धर्मसे दुःख पाता हुआ भी अधर्ममें भन न लगावे ।

अधर्मैवधते लावततो भद्राणि पश्यति ।  
ततः सपदाभयति समूलस्तु विनश्यति ॥  
( मनु० ४ ) १७४ )

अधर्मी पहले अधर्मसे बढ़ता है, फिर उससे अपना भला देखता है, फिर शत्रुओंको जीतता है और फिर जड़सहित नष्ट हो जाता है ।

अभिवादनशीलस्य तित्यं वृद्धोपसेविनः ।  
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या धशो वलम् ॥  
मातापितृभ्यां धार्मिभिर्जीवा मुत्रेण भार्वया ।  
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥  
( मनु० २ ) १२१, ४ ) १८० )

जिसका प्रणाम करनेका स्वभाव है और जो नित्य वृद्धोंकी सेवा करता है, उसकी आयु, विद्या, यश और वल—ये चारों बढ़ते हैं ।

माता, पिता, बहन, भाई, पुत्र, ली, बेटी और नौकर-चाकर—इनके साथ वाद-विवाद न करे ।

अनारोप्यमनायुप्यमस्वर्यं चातिभोजनम् ।  
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्परिवर्जयेत् ॥  
सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्नं ब्रूयात्सत्यमपियम् ।  
प्रियं च नानुत्तं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥  
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।  
एतद्विद्यास्मासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥  
( मनु० २ ) ५७; ४ ) १३८, १६० )

अधिक भोजन करना आरोग्य, आयु, स्वर्ग और पुण्य-का नाशक तथा लोकनिनिदित है; इसलिये उसे त्याग दे ।

ऐसी सत्य बात बोले जो प्यारी लोगे और जो सत्य तो हो किंतु प्यारी न लगे ऐसी बात न कहे; और जो प्यारी बात शठी हो, उसे भी न कहे । यही सनातन धर्म है ।

पराधीनतामें सब कुछ दुःखरूप है और स्वाधीनतामें सब सुख-रूप है—यह संक्षेपसे सुख-दुःखका लक्षण जानना चाहिये ।

लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ।  
स विनाशं ब्रजत्याग्नु सूचकोऽशुचिरेव च ॥  
अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।  
संस्कर्ता चोपहर्ता च सादकइचेति धातकाः ॥

( मनु० ४ ) ७१; ५ ) ५१ )

जो मनुष्य मिठ्ठीके ढेलेको मलता है, तृण तोड़ता है, नसोंको चवाता है, चुगली खाता है और अपवित्र रहता है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है ।

मांसके लिये सम्मति देनेवाला, काठनेवाला, मारनेवाला, खरीदने-बेचनेवाला, पकनेवाला, लानेवाला और खानेवाला—ये (सभी) धातक होते हैं ।

सर्वैषामेव शौचानामर्थश्चैवं परं सृतम् ।  
योर्ये शुचिर्हि स शुचिनं सृद्धारिशुचिः शुचिः ॥

( मनु० ५ ) १०६ )

सब शुद्धियोंमें धनकी पवित्रता ही श्रेष्ठ कही गयी है; क्योंकि जो धनसे शुद्ध है, वही शुद्ध है । मिठ्ठी और जलकी शुद्ध शुद्धि नहीं कही जाती । भाव यह है कि जो पराया धन नहीं हरता और न्यायसे धनोपार्जन करता है, वह शुद्ध है और जो अन्यायसे द्रव्य हरता है, किंतु मिठ्ठी ल्याकर स्नान करता है, वह पवित्र नहीं है ।

## महाराज पृथु

### प्रार्थना

वरान् विभो त्वद्वरदेवराद् द्विधः  
कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाग् ।  
ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां  
तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥  
न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्  
न पत्र युप्मच्चराणाम्बुजासवः ।

महत्तमान्तर्हदेयान्सुखश्चयुतो

विधर्त्स्व कर्णाद्युतमेष मे वरः ॥

( श्रीमद्भा० ४ ) २० | २३-२४ )

मोक्षपति प्रभो ! आप वर देनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको भी वर देनेमें समर्थ हैं । कोई भी शुद्धिमाला पुरुष आपसे देहाभिमानियोंके भोगने योग्य विषयोंको कैसे माँग सकता है । वे तो नारकी जीवोंको भी मिलते हैं । अतः मैं इन तुच्छ

विपर्यांको आपसे नहीं माँगता । मुझे तो उस मोक्षपद-  
वी भी इच्छा नहीं है, जिसमें महापुरुषोंके हृदयसे उनके मुख-  
द्वारा निकला हुआ आपके चरण-कमलोंका मकरन्द नहीं है—  
जहाँ आपकी कीर्ति-कथा सुननेका सुख नहीं मिलता । इसलिये  
मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे  
दीजिये, जिनसे मैं आपके लीला-गुणोंको सुनता रहूँ ।

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विना-

मशेषजन्मोपचितं मलं चिथः ।

**सद्यः क्षिणोत्यन्वहुमेधती सती**

यथा पदाङ्गुष्ठविनिःसृता सरित् ॥

पुमा-

नसद्गविज्ञानविशेषवीर्यवान् ।

यदृढविमुले कृतकेतनः पुन-

८ संसृति क्लेशवहां ग्रपथते ॥

तमेव यथं भजतात्मवृत्तिभि-

सर्वनोवचः कायग्रणैः स्वकर्मभिः ।

आत्मा ही सत्यका सत्य

स यथोर्जनाभिसन्तुनोऽवैद्यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा  
व्युज्ञरन्त्येवमैवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः  
सर्वाणि भूतानि व्युज्ञरन्ति तस्योपनिषत् सत्यस्य सत्यमिति ॥ ४५ ॥

प्राथमा

नूनं विसुष्टमतयस्त्वा मायया ते  
ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ।

अर्चन्ति कल्पकतरं कुणपोपभौर्य-  
मिच्छन्ति यस्त्वर्दजं निरयेऽवि नृणाम् ॥

या निर्वृतिस्तुभृतां तव पादपद्म-  
पादपद्मवल्लनकथाश्रवणेषु वा स्यात् ।

सा व्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत  
विमानात् ॥

भक्ति किंवद्दन्ताकामात्मका असुखाद्यानाम् ।  
 भक्ति मुदुः प्रवहतां त्वयि से प्रसङ्गो  
 भृशादनन्त महताममलाद्यानाम् ।

अमायिनः कामदुघाड्ग्रिपङ्कजं

यथाधिकारावस्थितार्थसिद्ध्यः ॥

( श्रीमद्भाग ४ । २१ । ३१-३३

जिनके चरण-कमलोंकी सेवाके लिये सिरन्तर दद्वेषात्  
अभिलाषा, उन्हींके चरण-नखसे निकली हुई गङ्गाजीके समान  
संसार-तापसे संतस जीवोंके समस्त जन्मोंके संचित मनोगम  
को तत्काल नष्ट कर देती है, जिनके चरणतल्का आश्रय लेने  
बाला पुरुष सब प्रकारके मानसिक दोषोंको धो डालता तथा  
वैराग्य और तत्त्वसाक्षात्काररूप बल पाकर फिर इस दुर्घटनय  
संसारचक्रमें नहीं पड़ता और जिनके चरण-कमल सब प्रकार  
की कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, उन प्रभुको आपलोग  
अपनी-अपनी आजीविकाके उपयोगी वर्णाश्रिमोचित अध्यापनादि  
कर्मों तथा ध्यान-स्तुति-पूजादि भानसिक, वाचिक एवं  
शारीरिक क्रियाओंके द्वारा भजें। हृदयमें किसी प्रकारका  
कपट न रखें तथा यह निश्चय रखें कि हमें अपने-अपने  
अधिकारानुसार इसका फल अवश्य प्राप्त होगा।

## राजा अजातशत्रु

जिस प्रकार वह मकड़ा तारोंपर ऊपरकी ओर जाता है तथा जैसे अग्निसे अनेकों क्षुद्र चिनगारियाँ उढ़ती हैं, उसी प्रकार इस आत्मासे समस्त प्राण, समस्त लोक, समस्त देव-गण और समस्त प्राणी विविधरूपसे उत्पन्न होते हैं। सत्यका सत्य यह आत्मा ही उपनिषद् है।

भक्तराज ध्रुव

ग्रेनाभस्मोल्लिणमरुपसन् भवादिवं

नेत्रे भद्रुणकथामृतपानमतः ॥  
 ( श्रीमद्भा० ४। ९। ९—११ )

प्रभो ! इन शवतुल्य शरीरोंके द्वारा भोगा  
जानेवाला, इन्द्रिय और विषयोंके संसर्गसे उत्पन्न  
सुख तो मनुष्योंको नरकमें भी मिल सकता है। जो  
लोग इस विषयसुखके लिये लालायित रहते हैं  
और जो जन्म-मरणके बन्धनसे छुट्टा देनेवाले  
कल्पतरुखरूप आपकी उपासना भगवत्-प्राप्तिके लिया किनी  
अन्य उद्देश्यसे करते हैं, उनकी तुलि अवश्य ही आपकी  
मायाके द्वारा घरी गयी है। नाथ ! आपके चरणकम्ळोंपा  
ध्यान करनेसे और आपके भक्तोंके परिव्र चरिय मृगनेसे

प्राणियोंको जो आनन्द प्राप्त होता है, वह निजानन्दस्वरूप ब्रह्ममें भी नहीं मिल सकता। फिर जिन्हें कालकी तलवार काटे डालती है, उन स्वर्गीय विमानोंसे गिरनेवाले पुरुषोंको तो वह सुख मिल ही कैसे सकता है।

अनन्त परमात्मन् ! मुझे तो आप उन विशुद्धहृदय

महात्मा भक्तोंका सङ्ग दीजिये, जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्ति-भाव है; उनके सङ्गमें मैं आपके गुणों और लीलाओंकी कथा-सुधाको पी-पीकर उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही इस अनेक प्रकारके दुःखोंसे पूर्ण भयंकर संसार-सागरके उग पार पहुँच जाऊँगा।

## शरणागतवत्सल शिवि

### शरणागतकी रक्षा

यो हि कविचद् द्विजान् हन्याद्  
गां वा लोकस्य मातरम् ।  
शरणागतं च त्वजते  
तुल्यं तेषां हि पातकम् ॥  
( महा० वन० १३१ । ६ )

जो कोई भी मनुष्य ब्राह्मणोंकी अथवा लोकमाता गौकी हत्या करता है और जो शरणमें आये हुए दीन प्राणीको त्याग देता है—उसकी रक्षा नहीं करता; इन सबको एक-सा पातक लगता है।

नास्य वर्षं वर्षन्ति वर्षकाले  
नास्य बीजं रोहति काल उपम् ।  
भीतं प्रपन्नं यो हि ददाति शत्रवे  
न त्राणं लभते त्राणमिन्दन् सकाले ॥  
जाता हस्ता ग्रजा प्रसीयते सदा  
न वै वासं पितरोऽस्य कुर्वते ।

भीतं प्रपन्नं यो हि ददाति शत्रवे

नास्य देवाः प्रतिगृहन्ति हन्यम् ॥  
मोघमन्नं चिदन्ति वाप्रचेता:  
स्वर्गाण्होकाद्ब्रह्मयति शीघ्रमेव ।  
भीतं प्रपन्नं यो हि ददाति शत्रवे

सेन्द्रा देवाः प्रहरन्त्यस्य वज्रम् ॥

( महा० वन० १९७ । १२-१४ )

जो मनुष्य अपनी शरणमें आये हुए भयमीत प्राणीको उसके शत्रुके हाथमें सौंप देता है, उसके देशमें वर्षकालमें वर्षा नहीं होती, उसके बोये हुए वीज नहीं उगते और कभी संकटके समय वह जब अपनी रक्षा चाहता है, तब उसकी रक्षा नहीं होती। उसकी संतान बचपनमें ही मर जाती है, उसके पितरोंको पितृलोकमें रहनेको स्थान नहीं मिलता। ( वे स्वर्गमें जानेपर नरकोंमें ढकेल दिये जाते हैं ) और देवता उसके हाथका हन्य ग्रहण नहीं करते। उसका अन्न निष्कल होता है, वह स्वर्गसे तुरत ही नीचे गिर पड़ता है और इन्द्र आदि देवता उसपर वत्रका प्रहार करते हैं।

## भक्त राजा अम्बरीष

दुर्वासाको वचानेके लिये सुदर्शन  
चक्रसे ग्रार्थना  
स व्यं जगत्त्राण खलप्रहाणये  
निरुपितः सर्वसहो गदाभृता ।  
विप्रस्य चास्मकुलदैवतेत्वे  
विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥  
यद्यमिति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ।  
कुलं नो विप्रदैवं चेद् द्विजो भवतु विज्वरः ॥  
( श्रीमद्भा० ९ । ५ । ९-१० )

विश्वके रक्षक ! आप रणभूमिमें सबका प्रहार सह लेते हैं। आपका कोई कुछ नहीं विगड़ सकता। गदावारी भगवानने दुष्टोंके नाशके लिये ही आपको नियुक्त किया है। आप कृपा करके हमारे कुलके भाग्योदयके लिये दुर्वासाजीका कल्याण कीजिये। हमारे ऊपर आपका यह महान् अनुग्रह होगा। यदि मैंने कुछ भी दान किया हो, यज्ञ किया हो अथवा अपने धर्मका पालन किया हो, यदि हमारे वंशके लोग ब्राह्मणोंको ही अपना आराध्यदेव समझते रहे हों, तो दुर्वासा-जीकी जल्द मिट जाय।

## शान्ति कहाँ है ?

### दुःखज्वाला-दम्ध संसार और शान्ति-सुधासागर

योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने संसारके लिये कहा—  
 ‘दुःखालयमशाश्वतम् ।’ यह विश्व तो दुःखका घर है ।  
 दुःख ही इसमें निवास करते हैं । साथ ही यह  
 अशाश्वत है—नाशवान् है ।

सम्पूर्ण विश्व जल रहा है । दुःखकी दावाग्रिमें  
 निरन्तर भस्म हो रहा है यह संसार । क्या हुआ जो  
 हमें वे लपटें नहीं दीख पड़तीं । उछकको सूर्य नहीं  
 दीखते, अन्धोंको कुछ नहीं दीखता—अपनेको बुद्धिमान्  
 माननेवाला मनुष्य यदि सचमुच ज्ञानवान् होता—  
 लेकिन वह तो अज्ञानके अन्धकारमें आनन्द मनानेवाला  
 प्राणी बन गया है । उसके नेत्रोंपर मोहकी मोटी पट्टी  
 बँधी है । कैसे देखे वह संसारको दम्ध करती ज्वालाको ।

अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश—ये  
 पाँच क्लेश बतलाये महर्षि पतञ्जलिने । अज्ञान, अहंकार,  
 कुछ पदार्थों, प्राणियों, अवस्थाओंकी ममता, उनकी कामना  
 और उनसे राग तथा उनके विरोधी पदार्थों, प्राणियों,  
 अवस्थाओंसे द्वेष एवं शरीरको आत्मा मानना—कितने  
 ऐसे प्राणी हैं जो इन क्लेशोंसे मुक्त हैं ?

काम, क्रोध, लोभ, मोहकी ज्वालाओंमें जल रहा  
 है संसार । तृष्णा, वासना, अशान्ति—बैचैनीका पार  
 नहीं है । मद, मत्सर, वैर, हिंसा—चारों ओर दावानल  
 धधक रहा है । दुःख-दुःख—और दुःख । लेकिन जैसे  
 पतिगे प्रज्वलित दीपकको कोई सुखद सुमोग्य वस्तु  
 मानकर उसपर दूटते हैं—प्राणी मोहवश संसारकी इन  
 ज्वालाओंको ही अकर्षण मान बैठे हैं । अशान्ति—  
 दुःख-मृत्यु—और क्या मिलना है यहाँ ।

शान्ति और सुखकी आशा—संसारमें यह आशा !  
 जलते संसारमें भला शान्ति कहाँ ?

शान्ति है । सुख है । आनन्द है । अनन्त शान्ति,  
 अविनाशी सुख, शाश्वत आनन्द—शान्ति, सुख और  
 आनन्दका महासागर ही है एक । उस महासागरमें  
 खड़े हो जानेपर संसारकी ज्वाला—त्रितापका भय  
 स्पर्श भी नहीं कर पाते ।

कहाँ है वह ?

भगवान्को छोड़कर भला शान्ति, सुख और आनन्द  
 अन्यत्र कहाँ होंगे । भगवान्का भजन ही है वह महा-  
 समुद्र । भगवान्का भजन करनेवाला भक्त-साधु उस  
 महासमुद्रमें स्थित है ।

विषयोंसे वैराग्य, प्राणियोंमें भगवद्वात्मा, समता,  
 अक्रोध, सेवा, दृढ़ भगवद्विद्वास—जहाँ शीतलता और  
 पवित्रताका यह महासागर लहरा रहा है, कामनाओंकी  
 ज्वाला, त्रितापोंकी ऊषा वहाँतक पहुँच कैसे सकती है ।  
 वहाँ कामनाकी अग्नि नहीं है, स्पृहाकी ज्वाला नहीं है,  
 ममताके मीठे विषयका भीषण अन्तस्ताप नहीं है और  
 अहङ्कारकी लपटें सदाके लिये शान्त हो गयी हैं ।

‘विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।  
 निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥’  
 (गीता २ । ७१)

इस निरन्तर जलते त्रिताप-तप संसारमें तो शान्ति  
 है ही नहीं । वह तो है भगवान्में—भगवान्के भजन-  
 रूप महासमुद्रमें । उस शान्ति-सुवा-सागरमें स्थित होनेपर  
 ही इस ज्वालासे परित्राण पाया जा सकता है ।

## दो ही गति

हम कबसे भटक रहे हैं ? जन्म-मृत्युके चक्रमें हम कबसे पड़े हैं ? कोई गणना नहीं है। सुषिता अनादि है। अनादि कालसे जीव चौरासी लाख योनियोंमें भटक रहा है।

सगवान्की अहैतुकी कृपासे मनुष्य-जीवन प्राप्त हुआ। एक महान् अवसर दिया उस करुणा-वरुणालयने जीवको। इस अवसरका हम सदुपयोग करेंगे या नहीं—यह हमारे विचार करनेकी बात है; क्योंकि मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र है।

जीवनकी—मनुष्य-जीवनकी दो ही गतियाँ हैं—जन्म-मृत्युके चक्रसे छुटकारा प्राप्त कर लेना या फिर उसीमें भटकना।

चौरासी लाख योनियाँ—जीवको उसके कर्म-नुसार एक-एक योनिमें लाख-लाख बार भी जन्म लेना पड़ सकता है। चौरासी लाख योनियाँ—एक ही उनमेंसे है मनुष्ययोनि। मानव-जीवनके गिनेचुने वर्ष—केवल यही अवसर है, जब जीव आवागमनके अनादि चक्रसे छुटकारा पा सके। यह अवसर कहीं निकल गया—वही जन्म-मृत्युका चक्र और कबतक, किस अकल्पनीय कालतक वह चलता रहेगा—कोई कह नहीं सकता।

काम, क्रोध, लोभ, मोह—ये चारों नरक-के द्वार हैं। इनमेंसे किसीमें पैर पड़ा और गिरे नरकमें। नरक—नरककी दारुण यन्त्रणा और केवल मनुष्य ही वहाँ पहुँचनेकी सामग्री प्रस्तुत

करता है। केवल मनुष्य ही तो कर्म करनेमें स्वतन्त्र है। अन्य प्राणी तो भोगयोनिके प्राणी हैं। वे तो भोगके द्वारा अपने अशुभ कर्मोंका नाश कर रहे हैं। वे नवीन कर्मोंका उपार्जन नहीं करते।

मनुष्य कर्मयोनिका प्राणी है। मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र है। मनुष्य ही है जो कर्म-संस्कारोंका उपार्जन करता है। उसे सोचना है, वह कैसा उपार्जन करेगा। उसकी दो गतियाँ हो सकती हैं—बन्धन—नरक या फिर मोक्ष—भगवद्गाम।

काम, क्रोध, लोभ, मोह—इनमें लगनेपर मनुष्य नरक जायगा। संसारके भोगोंमें आसक्त हुआ और नरक धरा है।

दूसरी गति है मनुष्यकी—मनुष्यताकी परम सफलता उसीमें है। अनादि कालसे चलनेवाली मृत्युसे छुटकारा पा जाना—जन्म-मृत्युके चक्रसे परिचाण—मोक्ष।

सत्सङ्घ, परोपकार, वैराग्य और भजन—इसका परिपाक है भगवद्गामकी प्राप्ति। मोक्षका यही प्रशंसन मार्ग है। मनुष्यकी मनुष्यता इसीसे सफल होती है।

नरक या भगवद्गाम—गतियाँ तो ये दो ही हैं। मनुष्यको यदि सचमुच नरकमें नहीं पड़ना है, उसे दुःखसे आत्यन्तिक छुटकारा चाहिये, अखण्ड आनन्द उसे अभीष्ट है तो उसे अपनाना है—सत्सङ्घ, परोपकार, वैराग्य, भगवद्गजन।

## सत्यनिष्ठ राजा हरिश्चन्द्र

### सङ्घावना

शक्त भुद्गे नृपो राज्यं  
प्रभावेण कुटुम्बिनाम् ।  
यजते च महायज्ञैः  
कर्म पौत्रं करोति च ॥  
तच्च तेषां प्रभावेण  
मया सर्वमनुष्टितम् ।  
उपकर्त्तृन् न सन्त्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया ॥  
तस्माद् यन्मम देवेश किंचिदस्ति सुचेष्टितम् ।  
दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः ॥

( मार्क० ८ । २५७-२५९ )



### महत्त्वाकाङ्क्षा

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-  
मष्टद्वियुक्तामपुनर्भवं वा ।  
आतिं प्रपञ्चेऽस्तिलोहभाजा-  
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥  
क्षुत्तृश्वर्मो गात्रपरिश्रमच्च  
दैन्यं कुमः शोकविषादमोहाः ।  
सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तो-  
जिजीविषोर्जीवजलार्पणाम्ते ॥

( श्रीमद्भा० ९ । २१ । १२-१३ )



राजा अपने कुदुम्बियोंके ही प्रभावसे राज्य भोगता है ।

प्रजावर्ग भी राजा का कुटुम्बी ही है । उन्हींके सहयोगसे राजा बड़े-बड़े यज्ञ करता, पोखरे खुदवाता और वर्गीचे आदि ल्यावाता है । यह सब कुछ मैंने अयोध्यावासियोंके प्रभावसे किया है; अतः स्वर्गके लोभमें पड़कर मैं अपने उपकारियोंका त्याग नहीं कर सकता । देवेश! यदि मैंने कुछ भी पुण्य किया हो, दान, यज्ञ अथवा जपका अनुष्ठान सुन्नसे हुआ हो, तो सबका फल उन सबके साथ ही मुझे मिले । उसमें उनका समान अधिकार हो ।

## परदुःखकातर रन्तिदेव

मैं भगवान्से आठों सिद्धियोंसे युक्त परमगति नहीं चाहता । और तो क्या, मैं भोक्ता भी कामना नहीं करता । मैं चाहता हूँ तो केवल यही कि मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित हो जाऊँ और उनका सारा दुःख मैं ही सहन करूँ, जिससे और किसी भी प्राणिको दुःख न हो । यह दीन प्राणी जल पी करके जीना चाहता था, जल दे देनेसे इसके जीवनकी रक्षा हो गयी । अब मेरी भूख-प्यासकी पीड़ा, शरीरकी शिथिलता, दीनता, ग्लानि, शोक, विषाद और मोह—ये सब-के-सब जाते रहे । मैं सुखी हो गया ।'

## महाराजा जनक

संत, सद्गुरु, सद्गुरि  
दुर्लभो मानुषो देहो

देहिनां क्षणभङ्गः ।

तत्रापि दुर्लभं मन्ये  
वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥

( श्रीमद्भा० ११ । २ । २९ )

जीवोंके लिये मनुष्य-शरीरका  
प्राप्त होना दुर्लभ है । यदि यह प्राप्त भी हो जाता है  
तो प्रतिक्षण मृत्युका भय सिरपर सबार रहता है; क्योंकि  
यह क्षणभङ्ग है । इसलिये अनिश्चित मनुष्य-जीवनमें

भगवान्के प्यारे और उनको प्यार करनेवाले भक्तजनोंका,  
संतोंका दर्शन तो और भी दुर्लभ है ।

न विना ज्ञानविज्ञाने भोक्तस्याधिगमो भवेत् ।

न विना गुरुसम्बन्धं ज्ञानस्याधिगमः स्फूर्तः ॥

गुरुः प्लावयिता तस्य ज्ञानं प्लव इहोच्यते ।

विज्ञाय कृतकृत्यस्तु तीर्णस्तदुभयं ल्यजेत् ॥

( महा० शान्ति० ३२६ । २२-२३ )

जैसे ज्ञानविज्ञानके विना भोक्ता नहीं हो सकता, उगी प्रकार सद्गुरुसे सम्बन्ध हुए विना ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो

सकती । गुरु इस संसार-सागरसे पार उत्तरनेवाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान नौकाके समान बताया गया है । मनुष्य उस ज्ञानको पाकर भवसागरसे पार और कृतकृत्य हो जाता है, फिर उसे नौका और नाविक दोनोंकी ही अपेक्षा नहीं रहती ।

तमःपरिगतं वेशम् यथा दीपेन दृश्यते ।  
तथा दुद्धिग्रदीपेन शक्य आत्मा निरीक्षितुम् ॥  
( महा० शान्ति० ३२६।४० )

जिस प्रकार अन्धकारसे व्याप्त हुआ घर दीपकके प्रकाशसे स्पष्ट दील पड़ता है, उसी तरह दुद्धिरूपी दीपककी सहायतासे अज्ञानसे आवृत आत्माका साक्षात्कार हो सकता है ।

## राजा महीरथ

### पुण्यात्मा कौन है ?

परतापचिछदो ये तु चन्दना इव चन्दनाः ।  
परोपकृतये थे तु पीड्यन्ते कृतिनो हि ते ॥  
संतस्त एव ये लोके परदुःखविदारणाः ।  
आर्तानामार्तिनाशार्थं प्राणा येषां तुणोपमाः ॥  
तैरियं धार्यते भूमिन्दैः परहितोच्चतैः ।  
मनसो यस्युम्बं नित्यं स स्वर्गो नरकोपमः ॥  
तस्मात्परस्युत्तेनैव साधवः सुखिनः सदा ।  
वरं निरयपातोऽत्र वरं प्राणवियोजनम् ।  
न पुनः क्षणभार्त्तानामार्तिनाशस्त्रते सुखम् ॥

( पद्म० पाताल० ९७ । ३२-३५ )

जो चन्दन-बृक्षकी भाँति दूसरोंके ताप दूर करके उन्हें आहादित करते हैं तथा जो परोपकारके लिये स्वयं कष्ट उठाते हैं, वे ही पुण्यात्मा हैं । संसारमें वे ही संत हैं, जो दूसरोंके दुःखोंका नाश करते हैं तथा पीड़ित जीवोंकी पीड़ा दूर करनेके लिये जिन्होंने अपने प्राणोंको तिनकोके समान निछावर कर दिया है । जो मनुष्य सदा दूसरोंकी भलाईके लिये उच्चत रहते हैं, उन्होंने ही इस पृथ्वीको धारण कर रखा है । जहाँ सदा अपने मनको ही सुख मिलता है, वह स्वर्ग भी नरक-के ही समान है, अतः साधुपुरुष सदा दूसरोंके सुखसे ही सुखी होते हैं । यहाँ नरकमें गिरना अच्छा, प्राणोंसे वियोग हो जाना भी अच्छा; किंतु पीड़ित जीवोंकी पीड़ा दूर किये बिना एक क्षण भी सुख भोगना अच्छा नहीं है ।

## राजा चित्रकेतु

नैवात्मा न परश्चापि



कर्ता स्थात् सुखदुःखयोः ।

कर्ता रं मन्त्रतेऽप्राज्ञ

आत्मानं परमेव च ॥

गुणअवाह एतस्मिन्

कः शापः को न्वनुग्रहः ।

कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव वा ॥

एकः सूजति भूतानि भगवान्तत्त्वमार्थया ।

एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः ॥

न तस्य कथिद्वियतः प्रतीपो

न ज्ञातिबन्धुर्न परो न च स्वः ।

समस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य

सुखे न रागः कुत एव रोधः ॥

तथापि तच्छक्षिदिसर्गं एषां

सुखाय दुःखाय हिताहिताय ।

बन्धाय मोक्षाय च शृत्युजन्मनोः

शरीरिणां संसूतयेऽवकल्पते ॥

( श्रीमद्भा० ६ । १७ । १९-२३ )

माता पार्वतीजी ! सुख और दुःखको देनेवाली न तो अपना आत्मा है और न कोई दूसरा । जो अज्ञानी हैं, वे ही अपनेको अथवा दूसरोंको सुख-दुःखका कर्ता माना करते हैं । यह जगत् सर्व, रज आदि गुणोंका स्वाभाविक प्रवाह है । इसमें क्या शाप, क्या अनुग्रह, क्या स्वर्ग, क्या नरक और क्या सुख, क्या दुःख । एकमात्र परिपूर्णतम भगवान् ही विना किसीकी सहायताके अपनी आत्मस्वरूपिणी माया-के द्वारा समस्त प्राणियोंकी तथा उनके बन्धन, मोक्ष और सुख-दुःखकी रचना करते हैं । माताजी ! भगवान् श्रीहरि सबके

भग और माया आदि मलसे रहित हैं। उनका कोई प्रिय-  
अप्रिय, जाति-वन्धु, अपना-पराया नहीं है। जब उनका सुख-  
में गग दी नहीं है, तब उनमें रागजन्य क्रोध तो हो ही कैसे

सकता है। तथापि उनकी माया-शक्तिके कार्य पाप और पुण्य  
ही प्राणियोंके सुख-दुःख, हित-अहित, वन्ध-मोक्ष, मृत्यु-  
जन्म और आवागमनके कारण बनते हैं।

## राजा मुचुकुन्द

### प्रार्थना

लद्ध्या जनो दुर्लभमन्त्र मानुषं  
कथंचिद्व्यज्ञमयत्वतोऽनव  
पादारविन्दं न भजत्यसन्मति-  
गृहान्वक्षुपे पतितो यथा पशुः ॥  
ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो  
राज्यश्रियोश्चद्वमदस्य भूपतेः ।  
मत्योत्मवृद्धेः सुतदारकोशभू-  
प्वासज्जमानस्य दुर्लतचिन्तया ॥  
कलेवरेऽसिन् घटकुद्यसच्चिभे  
निरुद्धमानो नरदेव इत्यहम् ।  
वृतो रथेभाश्चपदात्यनीकपै-  
गं पर्यटस्वागणयन् सुदुर्मदः ॥  
प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया  
प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसभ् ।  
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे  
क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवासुमन्तकः ॥  
पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्  
मतज्जैवो नरदेवसंज्ञितः ।  
स पृच कालेन दुरत्ययेत ते  
कलेवरो विट्कुमिभस्संज्ञितः ॥  
निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो  
वरासनस्यः समराजवन्दितः ।  
गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां  
क्रीडामृगः पूरव हृश नीयते ॥  
करोति कर्मणि तपस्सुनिष्ठितो  
निवृत्तभोगस्तदपेक्षया ददत् ।  
पुनश्च भूयेयमहं स्वराङ्गिति  
प्रवृद्धतर्थो न सुखाय कल्पते ॥  
भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-  
उज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।  
सत्सङ्गमो यहि तदेव सद्गतौ  
परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥

( श्रीमद्भा० १० । ५१ । ४७-५४ )

इस पापरूप संसारसे सर्वथा रहित प्रभो! यह भूमि अत्यन्त पवित्र कर्मभूमि है, इसमें मनुष्यका जन्म होना अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य-जीवन इतना पूर्ण है कि उसमें भजनके लिये कोई भी असुविधा नहीं है। अपने परम सौभाग्य और भगवान्की अहैतुकी कृपासे उसे अनायास ही प्राप्त करके भी जो अपनी मति-गति असत् संसारमें ही लगा देते हैं और तुच्छ विषय-सुखके लिये ही सारा प्रयत्न करते हुए धर-गृहस्थिके अँधेरे कुएँमें पड़े रहते हैं—भगवान्के चरण-कमलोंकी उपासना नहीं करते—भजन नहीं करते, वे तो ठीक उस पशुके समान हैं, जो तुच्छ तृणके लोभसे तुणाच्छन्न कुएँमें गिर जाता है।

भगवन्! मैं राजा था, राज्यलक्ष्मीके मदसे मैं मतवाला हो रहा था। इस मरनेवाले शरीरको ही तो मैं आत्मा—अपना स्वरूप समझ रहा था और राजकुमार, रानी, खजाना तथा पृथ्वीके लोभ-मोहमें ही फँसा हुआ था। उन वस्तुओंकी चिन्ता दिन-रात मेरे गले लगी रहती थी। इस प्रकार मेरे जीवनका यह अमूल्य समय विल्कुल निष्फल—व्यर्थ चला गया।

जो शरीर प्रत्यक्ष ही घड़े और भीतके समान भिट्ठीका है और दृश्य होनेके कारण उन्हेंके समान अपनेसे अलग भी है, उसीको मैंने अपना स्वरूप मान लिया था और फिर अपनेको मान वैठा था 'नरदेव'! इस प्रकार मैंने मदान्ध होकर आपको तो कुछ समझा ही नहीं। रथ, हाथी, प्रोटे और पैदलकी चतुरज़िणी सेना तथा सेनापतियोंसे पिरकर मैं पृथ्वीपर इधर-उधर धूमता रहता।

मुझे यह करना चाहिये और यह नहीं करना नाहिये, इस प्रकार विविध कर्तव्य और अकर्तव्योंकी चिन्तामें पड़कर भनुष्य अपने एकमात्र कर्तव्य भगवत्यातिसे विमुक्त दोषात् प्रमत्त हो जाता है, असाधारण हो जाता है। मनारासों वांग प्रमत्त हो जाता है, असाधारण हो जाता है। मनारासों वांग रखनेवाले विषयोंके लिये उसकी लालसा दिन-दूरी रात-नीगुणी बढ़ती ही जाती है। परंतु जैसे भूरवके काणग जीभ लगलगाता हुआ साँप असाधारण चूहेको दबोच लेता है, वैसे ही काल-रूपसे सदा-सर्वदा साधारण रहनेवाले आप एकापक्ष उग्र प्रमादप्रस्त प्राणीपर दृट पड़ते हैं और उसे ले लीतते हैं।

जो पहले सोनेके रथोंपर अथवा बड़े-बड़े गजराजोंपर चढ़कर चलता था और नरदेव कहलाता था, वही शरीर आपके अबाध काल्का भ्रास बनकर बाहर फेंक देनेपर पक्षियोंकी विघ्ना, भरतीमें गाड़ देनेपर सड़कर कीड़ा और आगमें जला देनेपर राखका ढेर बन जाता है।

प्रभो ! जिससे सारी दिशाओंपर विजय प्राप्त कर ली है और जिससे लड़नेवाला संसारमें कोई रह नहीं गया है, जो श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठता है और बड़े-बड़े नरपति, जो पहले उसके समान थे, अब जिसके चरणोंमें सिर छुकाते हैं, वही पुरुष जब विषय-सुख भोगनेके लिये, जो धर्मगृहस्थीकी एक विशेष वस्तु है, स्त्रियोंके पास जाता है, तब उनके हाथका खिलौना, उनका पालतू पशु बन जाता है।

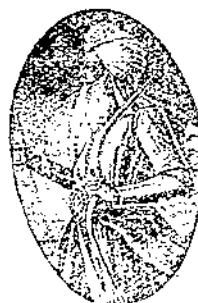
बहुत-से लोग विषय-भोग छोड़कर पुनः राज्यादि भोग मिलनेकी इच्छासे ही दान-पुण्य करते हैं और मैं फिर जन्म-लेकर सबसे बड़ा परम स्वतन्त्र समाट-होऊँ ऐसी कामना रखकर तपस्यामें भलीभाँति स्थित हो शुभ कर्म करते हैं। इस प्रकार जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई है, वह कदापि सुखी नहीं हो सकता।

## पितामह भीष्म

### अन्तकालकी अभिलाषा

विजयरथकुटुम्ब आत्मतोत्रे  
धृतहयरद्विमनि तन्त्र्येक्षणीये ।  
भगवति रतिरस्तु मे मुमूषो-  
र्यमिह निरीक्ष्य हृता गताः सरूपम् ॥

( श्रीमद्भा० १।९।३९ )



अर्जुनके रथकी रक्षामें सावधान जिन श्रीकृष्णके बायें हाथमें घोड़ोंकी रास थी और दाहिने हाथमें चाबुक, इन दोनोंकी शोभासे उस समय जिनकी अपूर्व छवि बन गयी थी, तथा महाभारत-युद्धमें भरनेवाले वीर जिनकी इस छविका दर्शन करते रहनेके कारण सार्वज्ञ मोक्षको प्राप्त हो गये, उन्हीं पार्थसारथि भगवान् श्रीकृष्णमें मुक्त मरणासन्नकी परम प्रीति हो।

### विजय किसकी होती है

येनोपायेन राजेन्द्र विष्णुर्भक्तसमर्चितः ।  
प्रीतो भवति विश्वात्मा तस्कुरुच्च सुविस्तरम् ॥

अपने स्वरूपमें एकरस स्थित रहनेवाले भगवन् ! जीव अनादिकालसे जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें भटक रहा है। जब उस चक्रसे छूटनेका समय आता है, तब उसे मरसङ्ग प्राप्त होता है। यह निश्चय है कि जिस क्षण सत्सङ्ग प्राप्त होता है, उसी क्षण संतोके आश्रय, कार्य-कारणस्वरूप जगत्के एकमात्र स्वामी आपमें जीवकी बुद्धि अत्यन्त हृदयासे लग जाती है।

न कामयेऽन्यं तत्र पादसेवनाः-  
दक्षिच्चनप्रार्थ्यतमाद् वरं विसो ।  
आराध्य कस्त्वा हृपवर्गादं हरे  
वृणीत आर्यो वरमात्मवन्धनम् ॥  
( श्रीमद्भा० १०।५१।५६ )

मैं आपके चरणोंकी सेवाके अतिरिक्त और कोई भी वर नहीं चाहता; क्योंकि जिनके पास किसी प्रकारका संग्रह-परिप्रह नहीं है, वे लोग केवल आपके चरण-कमलोंकी सेवाके लिये ही प्रार्थना करते हैं। भगवन् ! भला, बतलाइये तो सही-मोक्ष देनेवाले आपकी आराधना करके ऐसा कौन श्रेष्ठ पुरुष होगा, जो अपनेको बाँधनेवाले सांसारिक विषयोंका वर माँगे।

अश्रमेष्वशतैरिद्वा वाजपेयशतैरेषि ।

प्राप्तुवन्ति नरा नैव तारायणपराज्ञुखाः ॥

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।

बद्धः परिकरस्तेन भोक्षाय गमनं प्रति ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां त्रुतस्तेषां पराजयः ।

येषामिन्दीवरज्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥

( पद्म० उत्तर० ८१। १६२-१६५ )

राजन् ! जिस उपायसे भी भक्तपूजित विश्वात्मा भगवान् विष्णु प्रसन्न हों, वह विस्तारके साथ करो। जो मनुष्य भगवान् नारायणसे विसुख होते हैं, वे सौ अद्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञोंका अनुष्ठान करके भी उन्हें नहीं पा सकते। जिसने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षतक पहुँचनेके लिये मानो कमर कस ली। जिनके हृदयमें नील कमलके गमन व्यामुन्द्र भगवान् जनार्दन-विराजमान हैं, उन्हींका लाभ है, उन्हींकी विजय है, उनकी पराजय कैसे हो गयी है।

### श्रीकृष्ण-महिमा

वासुदेवो महज्ज्ञतः सर्वदैवतदैवतम् ।  
 न परं पुण्डरीकाक्षात् इश्यते भरतर्षभः ॥  
 मार्काण्डेयश्च गोविन्दे कथयत्यनुत्तमं महत् ।  
 सर्वभूतानि भूतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः ॥  
 आपो वायुश्च तेजश्च त्रयमेतदकल्पयत् ।  
 स सद्गुणां पृथिवीं देवीं सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ॥  
 अप्सु वै शयनं चक्रे महात्मा पुरुषोत्तमः ।  
 सर्वतेजोमयो देवो योगात् सुष्वाप तत्र ह ॥  
 मुखतः सोऽभिमस्तुत प्राणाद् वायुमथापि च ।  
 सरस्वतीं च वेदांश्च मनसः ससृजेऽन्युतः ॥  
 एष लोकान् सर्वज्ञादौ देवांश्च ऋषिभिः सह ।  
 निघनं चैव मृत्युं च प्रजानां प्रभवाप्ययौ ॥  
 एष धर्मश्च धर्मज्ञो वरदः सर्वकामदः ।  
 एष कर्ता च कार्यं च पूर्वदेवः स्वयं प्रभुः ॥

X            X            X            X

एष माता पिता चैव सर्वेषां प्राणिनां हरिः ॥  
 परं हि पुण्डरीकाक्षात् भूतं न भविष्यति ।

(महा० भीष्म० ६७ । २-८, १७-१८ )

भीष्मजीने कहा—भगवान् वासुदेव परम महान् हैं, ये सब देवताओंके भी देवता हैं। कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णसे बढ़कर कुछ भी नहीं दिखायी देता। महर्षि मार्काण्डेयने इनके विषयमें बड़ी अद्भुत बातें कही हैं। ये सर्वभूतस्वरूप हैं, सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा हैं, परमात्मा हैं और पुरुषोत्तम हैं। जल, वायु और तेज—इन तीनकी भी इन्होंने ही रचना की है। इन सर्वलोकेश्वर देवदेव भगवान् पुरुषोत्तमने पृथ्वीकी रचना करके जलमें शयन किया। बहाँ ये विशुद्ध तेजोमय प्रभु अपनी योगमायासे निद्राके वशीभूत हो गये। उस समय इन अविनाशी परमात्माने अपने मुखसे अग्नि, प्राणोंसे वायु और मनसे सरस्वती और वेदोंको ग्रकट किया। सर्वके आरम्भमें इन्होंने देवता और ऋषियोंके सहित सम्पूर्ण लोकोंकी रचना की, तथा मृत्युका कारण और प्रजाओंके उत्पत्ति और प्रलयके स्थानोंको बनाया। ये धर्म हैं, धर्मके ज्ञाता हैं, वरदायक हैं और समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। ये ही कर्ता, कार्य, आदिदेव और स्वयं भगवान् हैं तथा ये श्रीहरि ही समस्त प्राणियोंके माता-पिता हैं। इन कमलनयन श्रीकृष्णसे बढ़कर न तो कभी कोई हुआ है और न होगा ही।

### ब्रह्म-प्राप्तिके उपाय

संतोषो वै स्वर्गतमः संतोषः परमं सुखम् ।  
 तुष्टेन्द्रं किञ्चित् परतः सा सन्यक् प्रतिप्रिष्ठति ॥  
 यदा संहरते कामान् कूर्मोऽज्ञानीव सर्वशः ।  
 तदाऽऽस्त्वज्योतिरचिरात् स्वात्मन्येव प्रसीदति ॥  
 न विभेति यदा चार्यं यदा चासान्न विभ्यति ।  
 कामद्वेषौ च जयति तदाऽऽस्त्वानं च पद्यति ॥  
 यदासौ सर्वभूतानां न द्रुह्यति न काङ्क्षति ।  
 कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥

(महा० शान्ति० २१ । २-१)

संतोष ही सबसे बड़ा स्वर्ग है। संतोष ही सबसे बड़ा सुख है। संतोषसे बढ़कर और कुछ भी नहीं है। संतोषकी प्रतिष्ठा—स्थिरता—निम्नलिखित उपायोंसे होती है। कछुएकी भाँति जब सब ओरसे अपने अङ्गोंको समेट ले हैं, तब यह स्वयंप्रकाश आत्मा शीघ्र ही भेद-दृष्टिरूप भल त्यागकर अपने ही स्वरूपमें स्थित हो जाता है। जब न इसे दूसरोका भय रहता है और न इससे दूसरे भय खाते और जब यह इच्छा और द्वेषको जीत लेता है, तब इसे आत्माका साक्षात्कार होता है। जब यह मनसा-वाचा-कर्मणा किसी भी जीवके साथ न तो द्वोह करता है और न किसीसे राग ही करता है, तब इसे ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है।

### विविध उपदेश

लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रवर्तते ।  
 लोभान्मोहश्च माया च मानः स्तम्भः परासुता ॥

(महा० शान्ति० १५८ । ४)

लोभसे क्रोध होता है, लोभसे कामकी प्रवृत्ति होती है तथा लोभसे ही मोह, माया, अभिमान, उद्धृता और पराक्रित जीवनमें रुचि आदि दोष ग्रकट होते हैं।

सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं त्रैष्यं सनार्तनम् ।

सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥

(महा० शान्ति० १६२ । ५)

सत्य ही धर्म, सप्तश्च और योग है, मत्य ही सनातन ब्रह्म है और सत्य ही सबसे श्रेष्ठ यश है; यत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है।

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।

स्थितिर्हि सत्यं धर्मस्य तसान् सत्यं न लोपयेत् ॥

(महा० शान्ति० १६२ । २४)

सत्यसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है, जूठसे बढ़कर और कोई पातक नहीं है। सत्य ही धर्मका आधार है, अतः त्यका कभी लोप नहीं करे।

ब्रह्मने च सुरापे च चौरे भगवत्ते तथा ।

निष्कृतिर्विहिता राजन् कृतव्ये नास्ति निष्कृतिः ॥

मित्रदोही कृतधनश्च नृशंसश्च नराधमः ।

क्रचादैः कुमिभिश्चैव न भुज्यन्ते हि ताद्वासा ॥

( महा० शान्ति० १७२ । २५-२६ )

हे राजन् ! ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, चोर और व्रतका भज्ज करनेवाला, इनका प्रायश्चित्त शास्त्रमें कहा है, परंतु कृतधनका प्रायश्चित्त शास्त्रमें नहीं कहा है। जो मित्रोंके साथ द्रोह करनेवाले कृतज्ञी और मनुष्योंमें अधम तथा कूर हैं, ऐसे लोगोंको नरसांसभक्षी पशु तथा कीड़े भी नहीं खाते।

एक एव चरेद्वर्म नास्ति धर्मं सहायता ।

केवलं विधिमासाद्य सहायः किं करिष्यति ॥

( महा० शान्ति० १९३ । ३२ )

धर्माचरण करनेमें दूसरोंकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है, मनुष्य अकेला ही केवल वैदिक विधिका आश्रय लेकर धर्माचरण करे। उसमें सहायक कथा करेगा।

धर्मो योनिर्मनुष्याणां देवानामसृतं दिवि ।

प्रेत्यभावे सुखं धर्मान्तर्वर्तैरुपमुच्यते ॥

( महा० शान्ति० १९३ । ३३ )

धर्म मनुष्योंका मूल है, धर्म ही सर्वमें देवताओंको अमर बनानेवाला अमृत है, धर्मका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य मरनेके अनन्तर नित्य सुख भोगते हैं।

सदाचारः स्मृतिर्वेदाच्चिविधं धर्मलक्षणम् ।

चतुर्थमर्थमित्याहुः कवयो धर्मलक्षणम् ॥

( महा० शान्ति० २५९ । ३ )

परम्परागत सदाचार, स्मृति और वेद—ये तीनों धर्मके सरूपका बोध करनेवाले हैं। विद्वान् पुरुषोंने प्रयोजन अथवा फलको भी धर्मका चौथा लक्षण माना है ( अर्थात् जिसका उद्देश्य एवं परिणाम शुभ है, वह धर्म है ) ।

असाधुभ्योऽस्य न भयं न चोरेभ्यो न राजतः ।

अर्किचित्कस्थचित् कुर्वन्निर्भयः शुचिरावसेत् ॥

( महा० शान्ति० २५९ । १५ )

जो किसीका कुछ भी अनिष्ट नहीं करता, उसे न दुष्टोंसे भय है, न चोरोंसे और न राजा से ही। वह परम पवित्र एवं निर्भय होकर रहता है।

जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत्कर्यं सोऽन्यं प्रधातयेत् ।

यद्यदात्मनि चेच्छेत् तत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥

( महा० शान्ति० २५९ । २२ )

जो स्वयं जीवित रहना चाहता है, वह दूसरोंकी हिंसा कर्यों करावे। मनुष्य अपने लिये जिस-जिस बातकी इच्छा करे, वही दूसरोंको भी प्राप्त हो—यों सोचता रहे।

सर्वं प्रियाभ्युपगतं धर्ममाहुर्मनीविषः ।

पद्मैतं लक्षणोहेत्यं धर्माधर्ममें युविष्टिः ॥

( महा० शान्ति० २५९ । २५ )

युधिष्ठिर ! जो वर्ताव अपनेको प्रिय जान पड़ता है, वही सब यदि दूसरोंके प्रति किया जाय तो उसे मनीषी पुरुष धर्म मानते हैं। संक्षेपसे धर्म-अधर्मको पहचाननेका यही लक्षण समझो।

लोके यः सर्वभूतेभ्यो ददात्यभयदक्षिणाम् ।

स सर्वयज्ञरीजानः प्राप्नोत्यभयदक्षिणाम् ॥

( महा० शान्ति० २६२ । २९ )

जो मनुष्य जगत्‌में सम्पूर्ण जीवोंको अभय-दान देता है, वह समरत यज्ञोंका अनुष्ठान कर लेता है और उसे भी सब ओरसे अभयदान प्राप्त हो जाता है।

यस्मादुद्विजते लोकः सर्पद्वेषमगतादिव ।

न स धर्ममवाप्नोति इह लोके परत्र च ॥

( महा० शान्ति० २६२ । ३१ )

जैसे घरमें रहनेवाले सॉपसे सब लोग डरते हैं, उसी प्रकार जिस मनुष्यसे सब लोग उद्विग्न रहते हैं, वह इस लोक और परलोकमें भी किसी धर्मका फल नहीं पाता।

## महाराज वसुदेव

तस्मान्न कस्यचिद् द्वोहमाचरेत् स तथाविधः ।

आत्मनः क्षेममन्वच्छन् द्वोग्युवैं परतो भयम् ॥

( श्रीमद्भा० १० । १ । ४४ )

जो अपना कल्याण चाहता है, उसे किसीसे द्रोह नहीं करना चाहिये; क्योंकि जीव कर्मके अधीन हो गया है और जो किसीसे भी द्रोह करेगा, उसको इस जीवनमें शत्रुसे और जीवनके बाद परलोकसे भयभीत होना ही पड़ेगा।

हो उसे बैठनेके लिये आसन दे; तथा प्यासेको पानी और भूखेको भोजन दे।

पुत्रा दाराश्च सृत्याश्च निर्देहेयुरपूजिताः ।  
आत्मार्थं पाचयेकाङ्गं न वृथा धातयेत्पशुन् ।  
न च तत्स्वयमङ्गलीयाद् विधिवद्यन्न निर्विपेत् ॥

( महा० वन० २ । ५७ )

पुत्र, स्त्री और भृत्य—इनका भी यदि सकार न किया जाय तो ये अपने स्वामीको जला डालें। केवल अपने भोजन-के लिये कभी रसोई न बनावे। व्यर्थ पशुओंकी हिंसा न करे तथा जिस अन्नको विधिपूर्वक देवता, वितर आदिके लिये अर्पण न कर सका हो, उसे गृहस्थ पुरुष स्वयं भी भोजन न करे।

### अक्रोध और क्षमा

आत्मानं च परांश्चैव त्रायते महतो भयात् ।  
कुरुच्यन्तमप्रतिकृध्यन् द्वयोरेष चिकित्सकः ॥

( महा० वन० २९ । ९ )

जो क्रोध करनेवालेपर स्वयं क्रोध नहीं करता, वह अपनेको और दूसरेको भी महान् भयसे बचा लेता है। ऐसा पुरुष दोनोंके रोगका चिकित्सक है।

मन्योर्हि विजयं कृष्णे प्रशंसन्तीह साधवः ।  
क्षमावती जयो नित्यं साधोरिह सतां मतम् ॥

( महा० वन० २९ । १४ )

द्रौपदी ! साधुपुरुष इस संसारमें क्रोधको जीतनेकी ही प्रशंसा करते हैं। क्षमावान् साधुके लिये यहाँ नित्य विजय है—यह संतोंका भत है।

दाक्षं शमर्षः शीर्यञ्च शीघ्रत्वमिति तेजसः ।  
गुणाः क्रोधाभिमत्तेन न शक्याः प्राप्नुमञ्जसा ॥

( महा० वन० २९ । २० )

कार्यदक्षता, अमर्ष ( शत्रुघ्ना किये हुए तिरस्कारको सहन न कर सकनेका भाव ), शूरता और शीघ्रता—ये सब तेजके गुण हैं। क्रोधके वशमें रहनेवाले मनुष्यको ये गुण सुगमतासे नहीं प्राप्त होते।

क्षमा धर्मः क्षमा यज्ञः क्षमा वेदाः क्षमा श्रुतम् ।  
य पृतदेवं जानाति स सर्वं क्षन्तुर्मर्हति ॥  
क्षमा व्रह्म क्षमा सत्यं क्षमा भूतञ्च भाविति च ।  
क्षमा तपः क्षमा शौचं क्षमयेद्द्धर्तं जगत् ॥

सं० वा० अ० १५—

अति यज्ञविदां लोकान् क्षमिणः प्राप्नुवन्ति च ।  
अति व्रह्मविदां लोकान्ति चापि तपस्मिनाम् ॥  
अन्ये वै यजुषां लोकाः कर्मिणामपरे तथा ।  
क्षमावतां ब्रह्मलोके लोकाः परमपूजिताः ॥  
क्षमा तेजस्विनां तेजः क्षमा व्रह्म तपस्मिनाम् ।  
क्षमा सत्यं सत्यवतां क्षमा यज्ञः क्षमा यज्ञः ॥  
तां क्षमां तादर्थीं कृष्णे कथमसद्विधस्यजेत् ।  
यस्यां व्रह्म च सत्यं च यज्ञा लोकाश्च धिष्ठिताः ॥

( महा० वन० २९ । ३६-४१ )

क्षमा धर्म है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा वेद है, क्षमा स्वाध्याय है। जो मनुष्य क्षमाके इस सर्वोत्कृष्ट स्वरूपको जानता है, वह सब कुछ क्षमा कर सकता है। क्षमा व्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा ही भूत-भविष्यत् है। क्षमा तप है, क्षमा पवित्रता है, क्षमाने ही इस जगत्को धारण कर रखता है। याजिकोंको, वेदज्ञोंको और तर्पस्यियोंको जो लोक मिलते हैं, उनसे भी ऊपरके लोक क्षमावानोंको मिलते हैं। यज्ञ करनेवाले एवं कुँआ आदि बनवानेवालोंको दूसरे-दूसरे लोक मिलते हैं, परंतु क्षमावानोंको ब्रह्मलोके परम पूजित ( श्रेष्ठ ) लोक मिलते हैं। क्षमा तेजस्वियोंका तेज है, तपस्यियोंका व्रह्म है और सत्यवानोंका सत्य है। क्षमा ही लोकोपकार, क्षमा ही शान्ति है। क्षमामें ही सरे लोक, लोकोपकार—यज्ञ, सत्य और व्रह्म प्रतिष्ठित हैं। द्रौपदी ! ऐसी क्षमाका हम-जैसे लोग कैसे त्याग करें ?

क्षमावतामयं लोकः परश्चैव क्षमावताम् ।  
इह सम्मानमच्छन्ति परत्र च शुभां गतिम् ॥  
येषां मन्त्युर्मनुष्याणां क्षमयाभिहतः सदा ।  
तेषां परतरे लोकास्तसात्क्षान्तिः परा मता ॥

( महा० वन० २९ । ४३-४४ )

क्षमावान् पुरुषोंका ही यह लोक और परलोक है। क्षमावान् मनुष्य इस लोकमें सम्मान और परलोकमें शुभ गति पाते हैं। जिन मानवोंका क्रोध सदा क्षमासे दबा रहता है, उन्हें श्रेष्ठतर लोक प्राप्त होते हैं; इसलिये क्षमाको सदसे श्रेष्ठ गुण माना गया है।

### सदुपदेश

स्वधर्मे श्विरता स्वैर्यं वैर्यमिन्द्रियनिग्रहः ।  
स्वानं मनोमलस्यागो दानं वै भूतरक्षणम् ॥

( महा० वन० ३१३ । १६ )

मंथम ही धैर्य है, मानसिक मलका त्याग ही वास्तवमें स्नान है तथा गमरु प्राणियोंकी रक्षा ही दान है।

धर्मज्ञः पण्डितो ज्ञेयो नामित्को मूर्ख उच्यते ।

कामः संसारहेतुश्च हत्तापो मत्सरः स्मृतः ॥

(महा० वन० ३१३ । १८)

जो धर्मका ज्ञाता है, उसे ही पण्डित जानना चाहिये । जो नारिक है—ईश्वर और परलोककी सत्तापर विश्वास नहीं करता, वही मूर्ख कहलाता है। जो संसार-वन्धनका कारण है, उसकी नाम काम है और मानसिक संताप ही मत्सर माना गया है।

पठकाः पाठकाश्रैव ये नान्ये शास्त्रचिन्तकाः ।

सर्वे व्यसनिनो मूर्खाः यः क्रियावान् स पण्डितः ॥

(महा० वन० ३१३ । ११०)

पढ़नेवाले, पढ़ानेवाले तथा दूसरे-दूसरे जो शास्त्रविचारक लोग हैं, वे सभी बदि व्यपनी हैं (किसी व्यपनमें आसक्त हैं) तो मूर्ख हैं; जो कर्मठ है (शास्त्रज्ञाके अनुसार कार्य करनेवाला है), वही पण्डित है।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम् ।

शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥

(महा० वन० ३१३ । ११६)

जीव प्रतिदिन यहाँसे यमराजके घर जा रहे हैं; फिर भी जो लोग अभी शेष हैं, वे यहीं स्थिर रहना चाहते हैं। इससे बढ़कर आश्रय और क्या हो सकता है।

तकोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना

नैको मुनिर्यस्य मतं प्रमाणम् ।

धर्मस्य तस्वं निहितं गुहायां

महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

(महा० वन० ३१३ । ११७)

तर्कका कोई स्थिर आधार नहीं है (अतः वह किसी निश्चयपर नहीं पहुँचाता), श्रुतियाँ भिन्न-भिन्न हैं; कोई भी एक मुनि ऐसा नहीं, जिसका मत सबके लिये प्रमाणभूत हो; धर्मका वास्तविक रहस्य तो हृदयरूपी गुहामें छिपा है; अतः महापुरुष जिस मार्गसे गये हैं, वही उत्तम पथ है।

अस्मिन् महामोहमये कटाहे

सूर्यमिन्ना रात्रिदिवेन्द्रनेन ।

मासर्तुदर्शीपरिघटनेन

भूतानि कालः पचतीति वार्ता ॥

(महा० वन० ३१३ । ११८)

काल इस महामोहमय कड़ाहमें सब प्राणियोंको डाल सूर्यरूपी आग और रात्रि-दिवसरूपी ईंधनकी आँचदारा तमास-ऋतुरूपी करलुक्से चला-चलाकर पका रहा है—यहाँकी प्रसिद्ध वार्ता है।

देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः ।

न निर्वपति पञ्चानामुच्छूक्सन्न स जीवति ॥

(महा० वन० ३१३ । ५८)

देवता, अतिथि, भृत्यवर्ग, पितर और आत्मा—इन पाँचोंका जो पोषण नहीं करता, वह साँस लेता हुआ भी जीवित नहीं है।

माता गुरुतरा भूमैः खात् पितोचतरस्था ।

मनः शीघ्रतरं वाताचिन्ता वहुतरा तृणात् ॥

(महा० वन० ३१३ । ६०)

माता भूमिसे अधिक भारी (गौरवमयी) है, पिता आकाशसे भी अधिक ऊँचा है। मन वायुसे भी तेज चलनेवाला है और चिन्ता तृणसे भी अधिक (जलनेवाली) है।

धन्यानामुत्तमं दाश्यं धनानामुत्तमं श्रुतम् ।

लाभानां श्रेष्ठमारोग्यं सुखानां तुष्टिरुत्तमा ॥

(महा० वन० ३१३ । ७४)

धन-प्राप्तिके साधनोंमें दक्षता (चतुरता) ही सबसे उत्तम है, धनोंमें उत्तम है विद्या, लाभोंमें सबसे श्रेष्ठ लाभ है आरोग्य तथा सुखोंमें सबसे उत्तम है संतोष।

आनूर्धास्यं परो धर्मक्षयीधर्मः सदापलः ।

मनो यस्य न शोचन्ति सन्धिः सद्भिर्त जीर्यते ॥

(महा० वन० ३१३ । ७६)

कूरताका त्याग एवं दया ही सबसे उत्तम धर्म है। तीनों वेदोंमें वताया हुआ धर्म ही सदा फल देनेवाला है। मनका संयम करके मनुष्य शोकमें नहीं पड़ते और साधुपुरुषोंके साथ की हुई सन्धि (मैत्री) कभी नष्ट नहीं होती।

मानं हित्वा प्रियो भवति क्रोधं हित्वा न शोचति ।

कामं हित्वा र्थावान् भवति लोभं हित्वा सुखी भवेत् ॥

(महा० वन० ३१३ । ७७)

मान त्याग देनेपर मनुष्य सवन्। प्रिय होता है, दोष छोड़ देनेपर वह शोक नहीं करता, कामका त्याग कर देनेपर भवनान् होता है और लोभ छोड़ देनेपर सुखी ही जाता है।

क्रोधः सुदुर्जयः शत्रुलोभो व्याधिरनन्तकः ।  
सर्वभूतहितः साधुरसाधुर्निर्दयः स्मृतः ॥  
( ३१३ । ९२ )

क्रोध अत्यन्त दुर्जय शत्रु है, लोभ असाच्च रोग है, सब प्राणियोंका हित चाहनेवाला पुरुष साधु है और दयादीन मानव असाधु माना गया है ।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।  
तस्माद् धर्मं न त्यजामि मा तो धर्मो हतोऽवधीत् ॥  
( ३१३ । १२८ )

धर्म ही हत ( परिवर्त ) होनेपर मनुष्यको मारता है और वही रक्षित ( पालित ) होनेपर रक्षा करता है; अतः मैं धर्मका त्याग नहीं करता—इस भयसे कि कहीं मारा ( त्याग ) हुआ धर्म हमारा ही वध न कर डाले ।

## भक्त अर्जुन

### धर्मपालनका महान्य

जीवन्निवितं वाचिरांशु-  
समानं क्षणभद्रुरम् ।  
तच्चेद्वर्मकृते याति  
यातु दोषोऽस्ति को ननु ॥  
जीवितं च धनं दारा  
पुत्राः क्षेत्रं गुहाणि च ।  
याति येषां धर्मकृते त एव भुवि मानवाः ॥

( स्कन्द ० मा० कुमा० १ । २१-२२ )

जीवन विजलीकी चमकके उमान क्षणभद्रुर है । वह यदि धर्म-पालनके लिये चला जाता—नष्ट हो जाता है, तो जाय; इसमें क्या दोष है । जिनके जीवन, धन, छुटी, पुत्र, खेत और घर धर्मके काममें चले जाते हैं, वे ही इस पृथ्वीपर मनुष्य कहलानेके अधिकारी हैं ।

### प्रार्थना

कसाच्च ते न नमेन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मोऽस्यादिकर्त्रे ।  
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्त्वरं दत् ॥

महात्मन् ! ब्रह्माजीके भी आदिकारणभूत कर्ता और सबसे महान् आप परमेश्वरको वे ( सभी ) क्यों न नमस्कार करें । अनन्त, देवेश, जगन्निवास ! आप अक्षर, सत्, असत् और इनसे जो परे हैं, वे हैं ।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्यमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।  
वैत्तासि देवं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥

आप आदिदेव, पुरातन पुरुष, इस विश्वके परम निधान, (सबके)जाननेवाले और जाननेयोग्य तथा परम धाम भी

आप ही हैं । अनन्तरूप ! आपसे यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है । वायुर्यमोऽश्चिर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च । नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रद्रुत्यः पुनश्च भूत्रोऽपि नमो नमस्ते ॥

आप वायु, यम, अम्बि, चन्द्रमा, प्रजापति और पितामह हैं । आपको सहस्र-सहस्र नमस्कार है और किर बारन्चार आपको नमस्कार है ।

नमः पुरस्तादथ पुष्टतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।  
अनन्तवीर्यमितविकमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥

हे सर्वरूप ! आपको आगेसे, पछेसे तथा सभी ओरसे बार-बार नमस्कार है । आप अनन्त शक्ति और अपरिमेय पराक्रमवाले हैं । आप सबको व्याप्त कर रहे हैं, अतएव आप सर्वरूप हैं ।

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।  
न त्वत्समोऽस्यभ्यविकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽन्यप्रतिमप्रभाव ॥

आप इस चराचर लोकके पिता और शिक्षक हैं । अतः श्रेष्ठतम, परम पूज्य हैं । अप्रतिम प्रभावशाली ! तीनों लोकोंमें आपके समान भी दूसरा नहीं, फिर आपसे बढ़कर तो है ही कहाँ ।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिद्याय कायं ग्रसादये त्वामहमीशमीद्वयम् ।  
पितेव पुत्रस्य सदेव सख्युः प्रियः प्रियाद्यार्द्दसि देव सोऽम् ॥

अतएव मैं दण्डवत् प्रणाम करके आप स्तुति करने योग्य ईश्वरको प्रसन्न करता हूँ । जैसे पिता पुत्रकी, मित्र मित्रकी सब कुछ सहता है, वैसे ही है देव ! आप प्रियतम मुझ प्रेमीकी सब कुछ सहन कीजिये ।

( गीता ११ । ३७-४०, ४३-४४ )

## भक्त उद्घव

### भगवान् श्रीकृष्ण और गोपीजनोंकी महिमा

पसिभनः प्राणवियोगकाले  
क्षणं समावेश्य मनो विजुद्धम् ।  
निर्हत्य कर्माशयमाशु यति  
परां नति ब्रह्मयोऽर्कवर्णः ॥  
( श्रीमद्भा० १० । ४६ । ३२ )



जो जीव मृत्युके समय अपने शुद्ध भनको एक धणके लिये भी उनमें लगा देता है, वह समस्त कर्म-वासनाओंको धो वहाता है और शीघ्र ही सूर्यके समान तेजस्वी तथा ब्रह्म-समय होकर परम गतिको प्राप्त होता है ।

तस्मिन् भवन्तावखिलात्महेतौ  
नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ।  
भावं विधत्तां नितरां महात्मन्  
कि वावशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥  
( श्रीमद्भा० १० । ४६ । ३३ )

वे भगवान् ही, जो सबके आत्मा और परम कारण हैं, भक्तोंकी अभिलापा पूर्ण करने और पृथ्वीका भार उत्तरनेके लिये मनुष्यका-सा शरीर ग्रहण करके प्रकट हुए हैं । उनके प्रति आप दोनों (नन्द-यशोदा) का ऐसा सुदृढ़ वात्सल्य-भाव है; पिर महात्माओं ! आप दोनोंके लिये अब कौन-सा शुभ कर्म करना शेष रह जाता है ।

इष्टं श्रुतं भूतभवद् भविष्यत्  
स्यास्तु इच्छिष्ठुर्महदल्पकं च ।  
विनाच्युताद् वस्तु तरां न वात्यं  
स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥  
( श्रीमद्भा० १० । ४६ । ४३ )

जो कुछ देखा या सुना जाता है—वह वहाँ भूतसे सम्बन्ध रखता हो; वर्तमानसे अथवा भविष्यसे; स्थावर हो या जंगम हो, महान् हो अथवा अत्य हो—ऐसी कोई वस्तु या जंगम हो, जो भगवान् श्रीकृष्णसे पृथक् हो । श्रीकृष्णके ही नहीं हैं, जो भगवान् श्रीकृष्णसे पृथक् हो । अतिरिक्त ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे वस्तु कह सकें ।

एताः परं ततुभूतो भुवि गोपवध्वो  
गोविन्दं एव निखिलात्मनि रुदभावः ।  
वाऽछन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च  
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसत्यं ॥  
( श्रीमद्भा० १० । ४७ । ५८ )

इस पृथ्वीपर केवल इन गोपियोंका ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ एवं सफल है; क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रेमस्य दिव्य भावमें स्थित हो गयी हैं । प्रेमकी यह ऊँची-में-ऊँची स्थिति संसारके भयसे भीत मुमुक्षुज्ञोंके लिये ही नहीं, अपितु वडे-वडे मुनियों-मुक्त पुरुषों तथा हम भक्तजनोंके लिये भी अभी वाञ्छनीय ही है । हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी । सत्य है, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथाके रसका चक्रका लग गया है, उन्हें कुलीनताकी, द्विजातिसमुचित संस्कारकी और वडे-वडे यज्ञ-यागोंमें दीक्षित होनेकी क्या आवश्यकता है । अथवा यदि भगवान्की कथाका रस नहीं मिला, उसमें रुचि नहीं हुई, तो अनेक महाकल्पोंतक बार-बार ब्रह्म होनेसे ही क्या लाभ ।

क्षेमाः स्त्रियो वनचरीर्वभिचारदुष्टाः  
कृष्णे वृत्तैषै परमात्मनि रुदभावः ।  
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविद्युषोऽपि साक्षा-  
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इत्वोपयुक्तः ॥  
( श्रीमद्भा० १० । ४७ । ५९ )

कहाँ ये वनचरी आचार, ज्ञान और जातिसे हीन गाँव-की गँवार ग्वालिनें और कहाँ सच्चिदानन्दधन भगवान् श्रीकृष्णमें यह अनन्य परम प्रेम ! अहो, धन्य है ! इसठे सिद्ध होता है कि यदि कोई भगवान्के स्वरूप और रसयांके न जानकर भी उनसे प्रेम करे, उनका भजन करे, तो वे स्वयं अपनी शक्तिसे, अपनी दृष्टिसे उसका परम कल्पय कर देते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे कोई अनजानमें भी अग्रत पी ले तो वह अपनी वस्तुशक्तिसे ही पीनेवालेको अमर बना देता है ।

नामं श्रियोऽङ्गं उ नितान्तरतः प्रसादः  
स्वर्योपितां नलिनगन्धरूपां कुतोऽन्याः ।  
सासोल्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-  
लव्याशिषां य उद्गाद् वृत्यवलवर्णनाम् ॥  
( श्रीमद्भा० १० । ४७ । ६० )

भगवान् श्रीकृष्णने रासोत्सवके समय इन ब्रजाङ्गनाओंके गलेमें बाँह डाल-डालकर इनके मनोरथ पूर्ण किये । इन्हें भगवान्ने जिस कृपा-प्रसादका वितरण किया, इन्हें जैसा प्रेमदान किया, वैसा भगवानकी परमप्रेमवती नित्यसङ्गिनी वक्षःस्थलपर विराजमान लक्ष्मीजीको भी नहीं प्राप्त हुआ । कमलकी-सी सुगन्ध और कानितसे युक्त देवाङ्गनाओंको भी नहीं मिला । फिर दूसरी खियोंकी तो बात ही क्या करें ।

आसामहो चरणेरेणुजुषामहं स्यां

बृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।

या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपर्यं च हित्वा

भेजुसुर्कुन्दपदवीं श्रुतिमिविमृग्याम् ॥

( श्रीमद्भा० १० । ४७ । ६१ )

मेरे लिये तो सबसे अच्छी बात यही होगी कि मैं इस चृन्दावनधाममें कोई ज्ञाड़ी, लता अथवा ओषधि—जड़ी-बूटी ही बन जाऊँ ! अहा ! यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा, तो मुझे इन ब्रजाङ्गनाओंकी चरणधूलि निरन्तर सेवन करनेके लिये मिलती रहेगी—इनकी चरण-रक्षामें खान करके मैं धन्य हो जाऊँगा । धन्य हूँ ये गोपियाँ । देखो तो सही, जिनको छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उन स्वजन-सम्बन्धियों तथा लोक-वेदकी आर्य-मर्यादाका परिक्षण करके इन्होंने भगवान्की पदवी, उनके साथ तन्मयता, उनका परम प्रेम प्राप्त कर लिया है । औरोंकी तो बात ही क्या—भगवद्गुणी, नहीं-नहीं, उनकी निःश्वासरूप समस्त श्रुतियाँ, उपनिषदें भी अवतक

भगवान्के परम प्रेममय स्वरूपको हूँढ़ती ही रहती है, नहीं कर पाती ।

या धै श्रियार्चितमजादिभिरासकामै—

योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोप्याम् ।

कृष्णस्य तद् भगवत्तचरणारविन्दं

न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिस्म्य ताप्स् ॥

( श्रीमद्भा० १० । ४७ । ६१ )

स्वयं भगवती लक्ष्मीजी जिनकी पूजा करती रहत ब्रह्मा, शंकर आदि परम समर्थ देवता, पूर्णकाम आस्त और बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदयमें जिनका चिन्तन रहते हैं, भगवान् श्रीकृष्णके उन्हों चरणारविन्दोंको रास-र के समय गोपियोंने अपने वक्षःस्थलपर रक्खा और उ आलिङ्गन करके अपने हृदयकी जलन, विरह-शान्त की ।

वन्दे नन्दव्रजखीणां पादरेणुमभीक्षणशः ।

यासां हरिकथोदगीतं पुनाति सुवनत्रयम् ।

( श्रीमद्भा० १० । ४७ । ६१ )

नन्दवाचाके वज्रमें रहनेवाली गोपाङ्गनाओंकी चरण-धू मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ—उसे सिरपर चढ़ाता अहा ! इन गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाए सम्बन्धमें जो कुछ गान किया है, वह तीनों लोकोंको कर रहा है और सदा-सर्वदा पवित्र करता रहेगा ।

## संत विदुर

हरे:

पदानुसृतिनिरूपत्स्य

समस्तानुसात्ययमाशु

धत्ते ॥

( श्रीमद्भा० ३ । ५ ।

यह भगवत्कथाकी सचि श्रद्धालु पुरुषके हृदयमें बढ़ने लगती है, तब अन्य विषयोंसे उसे विरक्त कर देते वह भगवचरणोंके निरन्तर चिन्तनसे आनन्दमग्न हो जाएं और उस पुरुषके सभी दुर्लभोंका तत्काल अन्त हो जाएं ।

ताव्योच्यशोच्यानविदोऽनुशोचे

हरे: कथायां विमुखानघेन

क्षिणोति देवोऽविमिषस्तु येषा-

मायुर्यथावादगतिस्मृतीनाम्

( श्रीमद्भा० ३ । ५ ।

## हरिगुणानुवादकी महिमा

कस्त्रैनुयात्तीर्थपदोऽभिवानात्

सत्रेषु धः सूरिभिरीङ्ग्रमानात् ।

यः कर्णनाडों पुरुषस्य यातो

भवप्रदां गेहरतिं छिनति ॥

( श्रीमद्भा० ३ । ५ । ११ )

उन तीर्थपाद श्रीहरिके गुणानुवादसे तृप्त हो भी कौन सकता है । उनका तो नारदादि महात्मागण भी आप-जैसे साधुओंके समाजमें कीर्तन करते हैं तथा जब ये मनुष्योंके कर्णन्त्रोंमें प्रवेश करते हैं, तब उनकी संसार-चक्रमें डालने-वाली घर-गृहस्थीकी आसक्तिको काट डालते हैं ।

सा श्रद्धानस्य विवर्धमाना

दिरक्तिमन्यत्र करोति एंसः ।

मुझे तो उन शोक्नीयोंके भी शोक्नीय अज्ञानी पुरुषोंके  
लिये निरन्तर बेद महता है, जो अपने पिछले पांचोंके कारण  
श्रीहरिवी कथाओंगे विमुख रहते हैं। हाय ! काल भगवान्  
उनके अपूर्ण जीवनको काट रहे हैं और वे बाणी, देह तथा  
मनसे व्यर्थ वाद-विवाद, व्यर्थ चेष्टा और व्यर्थ चिन्तनमें लगे  
रहते हैं।

### विविध उपदेश

यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते ।  
कामादर्थं वृणाते यः स वै परिणित उच्यते ॥  
( महाऽ उद्घोग ३३ । २५ )

जिसकी लौकिक त्रुटि धर्म और अर्थका ही अनुसरण  
करती है तथा जो भोगको छोड़कर पुरुषार्थका ही वरण  
करता है, वही परिणित कहलाता है।

क्षमा व्यक्तिकृतिलोंके क्षमवा किं न साध्यते ।  
शान्तिरवद्गः करे यस्य किं करिष्यति हुर्जनः ॥  
( महाऽ उद्घोग ३३ । ५५ )

इस जगत्यै ज्ञाना व्यक्तिकरणल्प है। भला, ज्ञानसे क्या  
नहीं सिद्ध होता। जिसके हाथमें शान्तिरूपी तलवार है, उस-  
का दुष्टलोग दया कर लेंगे।

द्वाविसौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।  
प्रभुत्वं क्षमवा युक्तो दिरिद्वयं प्रदानवान् ॥  
( ३३ । ६३ )

राजन् । ये दो प्रकारके पुरुष स्वर्गके भी ऊपर स्थान  
पाते हैं—शक्तिशाली होनेपर भी क्षमा करनेवाला और निर्धन  
होनेपर भी दान देनेवाला।

द्वाविसौ निवेष्ट्यौ गते बद्ध्या इडों शिलाम् ।  
धनवन्तमदातारं इरिदं चातपस्विनम् ॥  
( ३३ । ६५ )

जो धनी होनेपर भी दान न दे और दरिद्र होनेपर भी  
कष्ट-सहन न कर सके इन दो प्रकारके मनुष्योंको गलेमें पत्थर  
बांधकर पानीमें डुबा देना चाहिये।

हृष्णं च एस्त्वानां पश्चाराभिमर्शनम् ।  
सुहृद्वयं पश्यत्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥  
( ३३ । ७० )

दूसरेके धनका अपहरण, दूसरेकी स्त्रीका संसर्ग तथा  
न-ज्ञान जैसीन दोष मनुष्यका नाश करनेवाले हैं।

भक्तं च भजमार्तं च तत्वाख्योति च वादिसम् ।  
त्रिमेताव्यचरणं प्राप्तान्विषमेऽपि च संव्यजेत् ॥  
( ३३ । ७३ )

भक्त, देवक तथा वै अपका ही हूँ ऐसा कहनेवाले—  
इन तीन प्रकारके शरणागत मनुष्योंको संकटमें पड़नेपर न  
नहीं छोड़ना चाहिये।

तत्वारि ते तात गुहे वसन्तु  
शिवाभिजुष्टस्य गृहस्थधर्मे ।  
बृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः  
सत्ता दिवद्वी भगिनी चानपत्या ॥  
( ३३ । ७५ )

तात ! गृहस्थधर्ममें स्थित एवं लक्ष्मीसे सेवित आप-  
धर्में इन चार प्रकारके मनुष्योंको सदा रहना चाहिये—अपने  
कुटुम्बका बृद्धा, संकटमें पड़ा हुआ उच्च कुलका मनुष्य, धन  
हीन मित्र और विना संतानकी वहिन। अर्थात् धनी गृहस्थ  
इन चारोंको आदरपूर्वक धर्में रखें।

षष्ठं दोषाः पुरुषेणह हातव्या भूतिमिच्छतः ।  
निद्रा तन्द्रा भयं झोध आलस्यं दीर्घसूक्ततः ॥  
( ३३ । ८३ )

उन्नति चाहनेवाले पुरुषोंकी निद्रा, तन्द्रा, भय, झोध,  
आलस्य और दीर्घसूक्तता—इन छः दोषोंका त्याग का  
देना चाहिये।

न स्वे सुखे वै कृते प्रदर्प  
नान्यस्य दुःखे भवति प्राप्तः ।  
दद्य न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं  
स कथ्यते सत्पुरुषार्थशीलः ॥  
( ३३ । ८४ )

जो अपने सुखमें प्रसन्न नहीं होता, दूसरेके दुःखके अमर  
हर्ष नहीं मानता तथा धन देकर पश्चात्ताप नहीं करता, वह  
सज्जनोंमें सदाचारी कहलाता है।

यस्मात्प्रस्थनित भूतानि सूरगव्याधान्मृगा इव ।  
सागरसन्तामपि महीं लङ्घना स परिदीयते ॥  
( ३४ । ८६ )

जैसे व्याधसे हरिण भयभीत होता है, उसी प्रकार तिर्यं  
समस्त प्राणी इसें है, वह मनुष्यपूर्वत पृथ्वीका गत्य ताक  
भी प्रजाजनोंके द्वारा त्याग दिया जाता है।

गन्वेन गादः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः ।  
चारैः पश्यन्ति राजानश्चुभ्यामितरे जनाः ॥  
( ३४ । ३४ )

गौँैँ गन्धसे, ब्राह्मणलोग वेद-शास्त्रोंसे, राजा जासूसोंसे  
और अन्य सब लोग आँखोंसे देखा करते हैं ।

अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः ।  
इन्द्रियाणामनैश्वर्यदैश्वर्याद्विकृद्यते हि सः ॥  
( ३४ । ६३ )

जो प्रचुर घनराशिका स्वामी होकर भी इन्द्रियोंपर  
अधिकार नहीं रखता, वह इन्द्रियोंको वशमें न रखनेके कारण  
ही ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाता है ।

अनसूयाऽर्जवं शौचं संतोषः प्रियवादिता ।  
दमः सत्यमनेयासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ॥  
( ३४ । ७२ )

गुणोंमें दोष न देखना, सरलता, पवित्रता, संतोष, प्रिय  
वचन बोलना, इन्द्रिय-दमन, सत्यमाषण तथा हळेशका  
अभाव—ये सदुण दुरात्मा पुरुषोंमें नहीं होते ।

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम् ।  
शुश्रूषा तु बलं छोड़ां क्षमा गुणवत्तां बलम् ॥  
( ३४ । ७५ )

दुष्ट पुरुषोंका बल है हिंसा, राजाओंका बल है दण्ड  
देना, स्त्रियोंका बल है सेवा और गुणवानोंका बल है क्षमा ।

अस्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता ।  
सैव दुर्भाषिता राजननर्थायोपद्यते ॥  
( ३४ । ७७ )

राजन् ! मधुर शब्दोंमें कही हुई बात अनेक प्रकारसे  
कल्याणकी प्राप्ति करती है; किंतु वही वादि कहु शब्दोंमें कही  
जाय तो महान् अनर्थका कारण बन जाती है ।

दाक्षायका दद्नान्निप्पत्तन्ति  
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।  
परस्य ना मर्मसु ते पतन्ति  
तान्पण्डितो नावसृजेत्परेभ्यः ॥  
( ३४ । ८० )

वचनरूपी वाण मुखसे निकलते और वे दूसरोंके मर्मपरहीं  
चोट पहुँचते हैं, जिनसे आहत हुआ मनुष्य रात-दिन शोक-  
ग्रस्त रहता है; अतः उनका प्रयोग विद्वान् पुरुष दूसरोंपर  
कदापि न करे ।

सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवस् ।  
उसे त्वेते सब्से स्वातामार्जवं वा विशिष्यते ॥  
( ३५ । २ )

सब तीर्थोंमें स्नान अथवा सब प्राणियोंके साथ कोमलता-  
का वर्तव—ये दोनों एक समान हो सकते हैं। अथवा  
कोमलताका वर्तव इनमें विशेष महत्व रखता है ।

जरा रूपं हरति हि वैर्यमाशा  
मृत्युः प्राणान्वर्मचर्यामसूया ।  
क्रोधः श्रिंशं शीलसनार्थसेवा  
हिंसं कामः सर्वमेवाभिमानः ॥  
( ३५ । ५० )

बुद्धापा सुन्दर रूपको, आशा धीरताको, मृत्यु प्राणोंको,  
दोष देखनेकी प्रवृत्ति धर्माचरणको, क्रोध लक्ष्मीको, नीच  
पुरुषोंकी सेवा अच्छे शील-स्वभावको, काम लज्जाको और  
अभिमान सबको नष्ट कर देता है ।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा  
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मस् ।  
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ते  
न तत्पत्यं यच्छ्लेषत्वम्युपेतत् ॥  
( ३५ । ५८ )

जिस सभामें बड़े-बड़े नहीं, वह सभा नहीं; जो धर्मकी  
बात न कहें, वे बड़े-बड़े नहीं; जिसमें सत्य नहीं है, वह धर्म  
नहीं और जो कपटसे पूर्ण हो, वह सत्य नहीं है ।

सत्यं रूपं श्रुतं दिद्या कौल्यं शीलं बलं धनम् ।  
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशैमे स्वर्गयोनयः ॥  
( ३५ । ५९ )

सत्य, रूप, शास्त्रज्ञान, विद्या, कुलीनता, शील, बल,  
धन, शूरता और विचित्र दंगसे चमलकारपूर्ण बातें कहना—  
ये दस स्वर्गके साधन हैं ।

तस्मात्पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितवतः ।  
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥  
( ३५ । ६१ )

इसलिये उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले पुरुषको पाप  
नहीं करना चाहिये; क्योंकि वारंवार क्रिया हुआ पाप बुद्धि-  
को नष्ट कर देता है ।

पूर्वे वत्सि तत्कृत्यादेन वृद्धः सुखं वसेत् ।  
यादजीवेन तत्कृत्यादेन प्रेत्य सुखं वसेत् ॥  
( ३५ । ६८ )

युवावस्थामें वह कर्म करे, जिससे वृद्धावस्थामें सुख-पूर्वक रह सके तथा सारे जीवनभर वह कार्य करे, जिससे मरनेके बाद भी सुखपूर्वक रह सके।

मा नः कुले वैरकृत्कथितस्तु  
राजामात्यो मा परस्वापहारी ।  
मित्रद्वीही नैकृतिकोऽनृती वा  
पूर्वादी वा षिरुदेवातिथिभ्यः ॥  
( ३६ ) ३३

हमारे कुलमें कोई वैर करनेवाला न हो, दूसरोंके धनका अपहरण करनेवाला राजा अथवा मन्त्री न हो और मित्रद्रोही, कपटी तथा असत्यवादी भी न हो । इसी प्रकार हमारे कुलमें कोई देवता एवं अतिथियोंको भोजन देनेसे पहले स्वयं भोजन करनेवाला भी न हो ।

तृणानि भूमिहृदकं वाक् चतुर्थी च सूरुता ।  
सत्तामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥  
( ३६ । ३४ )

तृणका आसन, पृथ्वी, जल और चौथी मीठी वाणी—  
सज्जनोंके घरमें इन चार वस्तुओंकी कमी नहीं होती।

संतापाद्वयते रूप संतापाद्वयते बलम् ।  
 संतापाद्वयते ज्ञानं संतापाद्वयाधिमृच्छति ॥  
 ( ३६ । ४४ )

संतापसे रूप नष्ट होता है, संतापसे बल नष्ट होता है, संतापसे ज्ञान नष्ट होता है और संतापसे मनुष्य रोगको प्राप्त होता है।

उत्थाद पुश्चाननृणांश्च कृत्वा  
वृत्तिं च सेम्योऽनुविधाय कांचित् ।  
थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वां  
अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुधेत् ॥

पुत्रोंको उत्पन्न कर उन्हें अष्टपाके भारसे मुक्त करके उनके लिये किसी जीविकाका प्रबन्ध कर दे । फिर कन्याओंका योग्य वरके साथ विवाह कर देनेके पश्चात् वनमें सुनिवृत्तिसे रहनेकी इच्छा करे ।

पूजनीया महाभगवान् पुण्याश्रम गृहस्तीसयः ।  
द्विषयः श्रियो गृहस्तीकास्तस्माद्रक्षया विशेषतः ॥  
( ३८ । १३ )

शालिनी, पूजाके योग्य, पवित्र तथा धरकी शोभा हैं; उनकी विशेषत्वपूर्ण सुरक्षा करनी चाहिये।

धृतिः शमो दसः शौचं कालण्यं वागरनिष्टुरा ।  
मित्राणां चानभिद्वोहः सप्तैः समिधः श्रियः ॥

धैर्य, मनोनिग्रह, इन्द्रियसंयम, पवित्रता, दया, को  
वाणी तथा भित्र से द्रोह न करना—ये सात बातें सम्पत्ति  
बढ़ानेवाली हैं ( धनरूपी आगको प्रज्वलित करनेवा  
ईंधन हैं ) ।

हुःखार्तेषु प्रसर्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च ।  
न श्रीवृस्त्यदान्तेषु ये चोत्साहचिवर्जिताः ॥

जो दुःख-पीड़ित, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय  
 और उत्साहहित हैं, उनके यहाँ लक्ष्मीका वास नहीं होता ।  
 इदं च स्वां सर्वपरं ब्रवीभि  
 पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम् ।  
 न जातु कामना भयान्न लोभाद्  
 धर्मं जग्नाजीवितस्यापि हेतोः ॥

तात ! मैं यह बहुत ही महत्वपूर्ण और सर्वोपरि पुण्य-  
जनक बात ब्रतां रहा हूँ—कामनासे, भयसे, लोभसे तथा इम  
जीवनके लिये भी कभी धर्मका त्याग न करे ।

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्थी  
 सत्योदया धृतिकूला दयोमिः ।  
 तस्यां स्नातः पूर्यते पुण्यकर्मी  
 पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभं पृथ ॥  
 (४०।३५)

भारत ! यह जीवात्मा एक नदी है, इसमें पुण्य ही पाए है, सत्यस्वरूप परमात्मा से ही इसका उद्भव हुआ है, धैर्य ही इसके किनारे हैं, इसमें दयाकी लहरें उठती हैं, पुण्यमें करनेवाला मनुष्य इसमें स्थान करके पवित्र होता है; और लोभरहित ही सदा पवित्र है।

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुपूँ।  
चक्षुः श्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा ॥  
( ४७ । ३१ )

और भूख के लेगको धैर्यपूर्वक सहे। इसी प्रकार नेत्रोद्धारा हाथ और पैरोंकी, मन के द्वारा नेत्र और कानोंकी तथा सत्कर्मोद्धारा मन और बाणीकी रक्षा करे।

क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमर्जवम् ।  
इन्द्रियाभिजयो धैर्यं मार्दवं हीरचापलम् ॥  
अकार्यप्रथमसंरम्भः संतोषः श्रद्धानन्ता ।  
एतानि यस्य राजेन्द्र स दान्तः पुरुषः समृतः ॥  
कामो लोकश्च दर्पश्च मन्युनिद्रा विकल्पनम् ।  
मान इर्ष्या च शोकश्च नैतदान्तो निषेवते ॥

अजिह्वमशां शुद्धमेतदान्तस्य लक्षणम् ।  
( महा० उद्योग० ६३ । १४—१५ )

राजन् ! जिस पुरुषमें क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, इन्द्रियनिग्रह, धैर्य, मुद्रुलता, लज्जा, अचञ्चलता, अदीनता, अक्रोध, संतोष और श्रद्धा—इतने गुण हैं, वह दान्त ( दमयुक्त ) कहा जाता है। दमनशील पुरुष काम, लोभ, दर्प, क्रोध, निद्रा, वद्-वद्धकर वाते करना, मान, इर्ष्या और शोक—इन्हें तो अपने पाम नहीं कटकने देता। कुटिलता और शठतासे रहित होना तथा शुद्धतासे रहना—यह दमशील पुरुषका लक्षण है।

## भक्त सञ्जय

### श्रीकृष्णकी महिमा

यतः सत्यं यतो धर्मो  
यतो हीरार्जवं यतः ।  
ततो भवति गोविन्दो  
यतः कृष्णस्ततो जयः ॥  
पृथिवीं चान्तरिकं च दिवं च पुरुषोत्तमः ।  
विचेष्यति भूतात्मा क्रीडश्चिव जनार्दनः ॥  
कालचक्रं जगच्छक्रं युगचक्रं च केशवः ।  
आत्मयोगेन भगवान् परिवर्तयेऽप्रिविशम् ॥  
कालस्य च हि मृत्योश्च जडमस्थावस्स्य च ।  
इष्टे हि भगवानेकः सत्यमेतद् व्रतीमि ते ॥  
तेन वंचयते लोकान् मायायोगेन केशवः ।  
ये तमेव प्रपद्यन्ते न ते मुहूर्नित मानवाः ॥

( महा० उद्योग० ६८ । ९-१०, १२-१३, १५ )



श्रीकृष्ण तो वहीं रहते हैं जहाँ सत्य, धर्म, लज्जा और सरलताका निवास होता है और जहाँ श्रीकृष्ण रहते हैं, वहीं विजय रहती है। वे सर्वान्तर्यामी पुरुषोत्तम जनार्दन मानों कीड़ा-से ही पृथ्वी, आकाश और स्वर्गलोकको प्रेरित कर रहे हैं। ये श्रीकेशव ही अपनी चिन्हाक्षिसे अहर्निश कालचक्र, जगचक्र और युगचक्रको बुमाते रहते हैं। मैं सच्च कहता हूँ—एकमात्र वे ही काल, मृत्यु और सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत् के स्वामी हैं तथा अपनी मायाके द्वारा लोकोंको मोहमें डाले रहते हैं। जो लोग केवल उन्हींकी शरण ले लेते हैं, वे ही मोहमें नहीं पड़ते।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

तत्र श्रीविजयो भूतिर्घुवा नृतिर्मर्तिम् ॥

( गीता १८ । ७८ )

जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव-धनुर्धारी अर्जुन हैं, वहीं श्री, विजय, विमृति और निश्चल नीति है—यह मेरा मत है।

### इन्द्रियनिग्रह

नाकृतात्मा कृतात्मानं जातु विद्याजनार्दनम् ।

आत्मनस्तु क्षियोपायो नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ॥

इन्द्रियाणामुदीर्णानां कामत्वागोऽप्रमादतः ।

अप्रभादोऽविहिंसा च ज्ञानयोनिरसंशयस् ॥

इन्द्रियाणां चमे यतो भव राजक्षतन्द्रितः ।

एतज्ञानं च पन्थाश्च

येन धान्ति मनीषिणः ॥

( महा० उद्योग० ६९ । १७-२० )

कोई अजितेन्द्रिय पुरुष श्रीहृषीकेश भगवान्को प्राप्त नहीं कर सकता। इसके सिवा उन्हें पानेका कोई और मार्ग नहीं है। इन्द्रियों वडी उन्मत्त हैं, इन्हें जीतनेका साधन सावधानीसे भोगोंको त्याग देना है। प्रमाद और हिंसासे दूर रहना—निःसंदेह ये ही ज्ञानके मुख्य कारण हैं। इन्द्रियोंको सावधानीके साथ अपने काबूमें रखलो। बास्तवमें यहीं ज्ञान है और यहीं मार्ग है जिससे कि बुद्धिमान् लोग उस परमपदकी ओर बढ़ते हैं।

पहले तो धनके पैदा करनेमें कष्ट होता है, फिर पैदा किये हुए धनकी खबालीमें क्षेत्र उठाना पड़ता है; इसके बाद यदि कहीं वह नष्ट हो जाय तो दुःख और खर्च हो जाय तो भी दुःख होता है। भला, धनमें सुख है ही कहाँ। जैसे देहधारी प्राणियोंको सदा मृत्युसे भय होता है, उसी प्रकार धनवानोंको चोर, पानी, आग, कुटुम्बियों तथा रजासे भी हमेशा डर बना रहता है। जैसे मांसको आकाशमें पक्षी, पृथ्वीपर हिंसक जीव और जलमें मत्स्य आदि जन्म भक्षण करते हैं, उसी प्रकार सर्वत्र धनवान् पुरुषको लोग नोचते-खोटते रहते हैं। सम्पत्तिमें धन सबको मोहित करता—उन्मत्त बना देता है, विपत्तिमें संताप पहुँचाता है और उपार्जनके समय दुःखका अनुभव करता है; फिर धनको कैसे सुखदायक कहा जाय।

### शुद्धि

चित्तं शोधय यत्नेन किमन्वैर्बाह्यशोधनैः ।  
भावतः शुचिः शुद्धात्मा स्वर्गं मोक्षं च विन्दति ॥  
ज्ञानामलाभसा पुंसः सद्वैराग्यमृदा पुनः ।  
अविद्यारागविष्णमूत्रलेपो नदयेद् विशोधनैः ॥  
एवमेतत्त्वरीर्हि निसर्गादशुचि विदुः ।  
अध्यात्मसारनिसारं कदलीसारसंनिभम् ॥  
ज्ञात्वैव देहदोषं यः प्राज्ञः स शिथिलो भवेत् ।  
सोऽस्तिकामति संसारं ॥  
एवमेतन्महाकर्ष्टं जन्मदुःखं प्रकीर्तितम् ।  
(पचा० भूमि० ६६ । ९०-९४)

तुम यत्नपूर्वक अपने मनको शुद्ध करो, दूसरी-दूसरी बात्य शुद्धियोंसे क्या लेना है। जो भावसे पवित्र है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, वही स्वर्गं तथा मोक्षको प्राप्त करता है। उत्तम वैराग्यरूपी मिद्दी तथा ज्ञानरूप निर्भल जल-से माँझने-धनेपर पुरुषके अविद्या तथा रागरूपी मल-मूत्रका लेप नष्ट होता है। इस प्रकार इस शरीरको स्वभावसः अपवित्र माना गया है। केलेके त्रुक्षकी भाँति यह सर्वथा सारहीन है; अध्यात्मज्ञान ही इसका सार है। देहके दोषोंको जानकर जिसे इससे वैराग्य हो जाता है, वह विद्वान् संसार-सागरसे पार हो जाता है। इस प्रकार महान् कष्टदायक जन्मकालीन दुःखका वर्णन किया गया।

### धर्मके दस साधन

अधाहिसा क्षमा सत्यं हीः श्रद्धेन्द्रियसंयमः ।  
शान्मिज्ञा ततो ध्यानं दशकं धर्मसाधनम् ॥

अन्नदः ग्राणदः ग्रोक्तः ग्राणदृच्छापि सर्वदः ॥  
तस्माद्ब्रह्मदानेन सर्वदानफलं भवेत् ।  
प्रस्तावनेन पुष्टाङ्गाः कुरुते पुण्यसंबयम् ।  
ब्रह्मप्रदातुस्तस्याधं कर्तुश्राधं न संशयः ॥  
धर्मार्थकाममोक्षाणां देहः परमसाधनम् ।  
स्थितिस्तस्यापानाभ्यामसत्स्तत् सर्वसाधनम् ॥  
तस्माद्ब्रह्मसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥  
व्रथाणामपि लोकानामुदकं जीवनं स्मृतम् ।  
पवित्रमुदकं दिव्यं शुद्धं सर्वरसाश्रयम् ॥  
(पचा० भूमि० ६९ । ५, १७-२२)

अहिंसा, क्षमा, सत्य, लज्जा, श्रद्धा, इन्द्रियसंयम दान, वज्र, ध्यान और ज्ञान—ये धर्मके दस साधन हैं। अब देनेवालेको प्राणदाता कहा गया है और जो प्राणदाता है, वह सब कुछ देनेवाला है। अतः अन्न-दान करनेसे सब दानोंवाले मिल जाता है। अन्नसे पुष्ट होकर ही मनुष्य पुण्यक संचय करता है। अतः पुण्यका आधा अंश अन्नदातार्ह और आधा भाग पुण्यकर्ताको प्राप्त होता है—इसमें तनिक भ संदेह नहीं है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका सबसे बड़ा साधन है शरीर। और शरीर स्थिर रहता है अन्न तथा जलसे अतः अन्न और जल ही सब पुरुषार्थोंके साधन हैं। अन्न दानके समान दान न हुआ है न होगा। जल तीनों लोकोंवाले जीवन माना गया है। यह परम पवित्र, दिव्य, शुद्ध तथा सब रसोंका आश्रय है।

### देवलोक

नानारूपाणि भावानां दृश्यन्ते कोटयस्त्वभाः ।  
अष्टाविंशतिरेवोर्ध्वंसुदीर्घाः सुकृतात्मनाम् ॥  
ये कुर्वन्ति नमस्कारमीश्वराय क्वचित् क्वचित् ।  
सम्पर्कात्कृतुकाल्लोभात्तद्विमानं लभन्ति ते ॥  
प्रसङ्गोनपि ये कुर्यारकण्ठं सरर्णं नरः ।  
ते लभन्तेऽतुलं सौख्यं किं पुनस्तत्परायणाः ॥  
विष्णुचिन्तां प्रकुर्वन्ति ध्यानेनाकुलमानसाः ।  
ते धान्ति परमं स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥  
शैवं च वैष्णवं लोकमेकरूपं नरोत्तम ।  
द्वयोश्चाप्यन्तरं नास्ति एकरूपं महात्मनोः ॥

शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे ।

शिवस्य हृदये दिष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः ॥

प्रकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरः ।

त्रयाणामन्तरं नास्ति गुणमेदाः प्रकीर्तिताः ॥

( पवा० भूमि० ७१ । १२-२० )

राजग् ! देवताओंके लोक भावमय हैं । भावोंके अनेक रूप दिखायी देते हैं, अतः भावात्मक जगत्की संख्या करोड़ोंका पहुँच जाती है; परंतु पुण्यात्माओंके लिये उनमेंसे अद्वाईस लोक ही प्राप्य हैं, जो एक दूसरेके ऊपर स्थित और उत्तरोत्तर अधिक विशाल हैं । जो लोग सङ्गवश, कौतूहलसे अथवा स्वार्थके लोभसे यदा-कदा भगवान् शङ्करको नमस्कार करते हैं, उन्हें शिवलोकका विमान प्राप्त होता है । जो प्रसङ्गवश भी शिवका सरण या नाम-कीर्तन अथवा उन्हें नमस्कार कर

लेता है, उसे अनुपम सुखकी प्राप्ति होती है । फिर निरन्तर उनके भजनमें ही लगे रहते हैं, उनके विषयमें कहना ही क्या है । जो ध्यानके द्वारा भगवान् श्रीविष्णु चिन्तन करते हैं और सदा उन्हींमें मन लगाये रहते हैं, उन्हींके परमपदको प्राप्त होते हैं । नरश्रेष्ठ ! श्रीशिव उ भगवान् श्रीविष्णुके लोक एक-से ही हैं, उन दोनोंमें व अन्तर नहीं है; व्योंकि उन दोनों महात्माओं—श्रीरात्मा तथा श्रीविष्णुका स्वरूप भी एक ही है । श्रीविष्णुरूपम् शिव और श्रीशिवरूपधारी विष्णुको नमस्कार है । श्रीशिव हृदयमें विष्णु और श्रीविष्णुके हृदयमें भगवान् श्री विराजमान हैं । ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीनों देव एकस्तुप ही हैं । इन तीनोंके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है केवल गुणोंका भेद बतलाया गया है ।

—००५००—

## भक्तराज प्रह्लाद

### आस्तिकता

शास्त्रा विष्णुरशेषस्य

जगतो यो हृदि स्थितः ।

तस्मै परमात्मानं

तात कः केन शास्यते ॥

( विष्णु० १ । १७ । २० )

पिताजी ! हृदयमें स्थित भगवान्

वेणु ही तो सम्पूर्ण जगत्के उपदेशक हैं । उन परमात्माको ग्रेहकर और कौन किसीको कुछ सिखा सकता है ।

भवं भयानामपहारिणि स्थिते

मनस्यनन्ते मम कुत्रि सिष्टति ।

अस्मिन् स्मृते जन्मजरान्तकादि-

भयानि सर्वाण्यपयान्ति तात ॥

( विष्णु० १ । १७ । ३६ )

जिनके सरणमात्रसे जन्म, जरा और मृत्यु आदिके अमस भय दूर हो जाते हैं, उन सकल भयहारी अनन्तके हृदयमें स्थित रहते मुझे भय कहाँ रह सकता है ।

### दैत्यबालकोंको उपदेश

बाल्ये क्रीडनकासत्ता यौवने विषयोन्मुखाः ।

अज्ञा नयन्यशक्त्या च वार्द्धकं समुपस्थितम् ॥

तस्माद्बाल्ये विवेकात्मा धरते श्रेयसे सदा ।

बाल्ययौवनवृद्धाधैर्देहभावैरसंयुतः ॥

( विष्णु० १ । १७ । ७५-७६ )

मूर्खलोग अपनी बाल्यावस्थामें खेल-कूदमें लगे रहते हैं युवावस्थामें विषयोंमें फँस जाते हैं और बुढ़ापा आनेपर उसे असमर्थतासे काटते हैं । इसलिये विवेकी पुरुषको चाहिये कि देहकी बाल्य, यौवन और बुढ़ापा आदि अवस्थाओंसे ऊपर उठकर बाल्यावस्थामें ही अपने कल्याणका यत्न करे ।

तदेतद्वो मयाल्यातं यदि जानीत नानुतम् ।

तदस्मल्यीतये विष्णुः स्मर्तां वन्धमुक्तिः ॥

प्रयासः स्मरणे कोऽस्य स्मृतो यच्छ्रुति शोभनम् ।

पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम् ॥

सर्वभूतस्थिते तस्मिन्मतिमंग्री द्विवानिशम् ।

भवतां जायतामेवं सर्वकलेशान् प्रहास्यथ ॥

( विष्णु० १ । १७ । ७७-७९ )

( दैत्यबालको ! ) मैंने तुमलोगोंसे जो कुछ वहाँ है, उसे यदि तुम मिथ्या नहीं भमझते तो मैंनी प्रमत्ताये लिये ही वन्धनको बुझानेवाले श्रीविष्णुभगवान्का सरण करा । उनका सरण करनेमें परिश्रम भी क्या है । मरणमाप्ने ही वे कल्याणप्रद फल देते हैं तथा रात-दिन उन्हींका मरण करनेवालोंका पाप भी नष्ट हो जाता है । उन मर्यादागत

प्रभुमें तुम्हारी बुद्धि अहर्निश लगी रहे और उनमें निरन्तर तुम्हारा प्रेम वढ़े। इस प्रकार तुम्हारे समस्त कलेश दूर हो जायेंगे।

तापत्रयेणासिहतं यदेतदरित्विलं जगत् ।  
तदा शोच्येषु भूतेषु द्वेषं प्राज्ञः करोति कः ॥  
( विष्णु० १ । १७ । ८० )

जब कि यह सभी संसार तापत्रयसे दग्ध हो रहा है, तब इन वेचारे शोचनीय जीवोंसे कौन बुद्धिमान् द्वेष करेगा।

बद्धैरेणि भूतानि द्वेषं कुर्वन्ति चेत्ततः ।  
सुशोच्यान्त्यतिमोहेन व्याहारीति मरीषिणाम् ॥  
( विष्णु० १ । १७ । ८२ )

यदि कोई प्राणी वैरभावसे द्वेष भी करें तो विचारवानोंके लिये तो वे 'अहो ! वे महामोहसे व्याप्त हैं।' इस दृष्टिसे अत्यन्त शोचनीय ही हैं।

### असारसंसारविवर्तनेषु

मा आत तोषं प्रस्तरं ब्रह्मीमि ।  
सर्वत्र दैत्याः समतामुषेत  
समव्यभाराधनमच्युतस्य ॥  
तस्मिन् प्रसन्ने किमिहास्यलभ्यं  
धर्मार्थकामैरलमपकास्ते ।  
समाश्रिताद् ब्रह्मतरोरनन्ता-  
शिःसंशर्यं प्राप्स्यथ वै महाकल्प ॥  
( विष्णु० १ । १७ । ९०-९१ )

दैत्यो ! मैं आग्रहपूर्वक कहता हूँ, तुम इस असार संसारके विषयोंसे कभी संतुष्ट मत होओ। ( तुम सर्वत्र समदृष्टि करो; क्योंकि समता ही श्रीअच्युतकी वास्तविक आराधना है। उन अच्युतके प्रसन्न होनेपर फिर संसारमें दुर्लभ ही क्षया है। तुम धर्म, अर्थ और भोगोंकी इच्छा कभी न करना। वे तो अत्यन्त तुच्छ हैं। उस ब्रह्मरूप महावृक्षका आश्रय लेनेपर तो तुम निःसंदेह मोक्षरूप महाकल प्राप्त कर लोगे।

हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्ति ईश्वरः ।  
इति भूतानि सनसा कामैस्तैः साधु मानयेत् ॥  
एवं निर्जितषट्ड्वयोः क्रियते भक्तिर्श्वरे ।  
वासुदेवे भगवति यथा संलभते रतिम् ॥  
( श्रीमद्भा० ७ । ७ । ३२-३३ )

सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि समस्त प्राणियोंमें

विराजमान हैं—ऐसी भावनासे यथाशक्ति सभी प्राणियोंकी इच्छा पूर्ण करे और हृदयसे उनका सम्मान करे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भद्र और मत्सर—इन छः शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके जो लोग इस प्रकार भगवान्की साधन-भक्तिका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें इस भक्तिके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्य प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है।

देवोऽसुरो सञ्ज्ञो वा यक्षो गन्धर्वं पूर्व च ।  
भगव् शुकुन्दवरणं खस्तिमान् स्याद् यथा वशम् ॥  
नालं द्विजलं देवत्वमृषित्वं वासुरामजाः ।  
प्रीणताय शुकुन्दस्य न वृत्तं न चहुश्चता ॥  
न दानं न तपो नेत्र्या न शौचं न व्रतानि च ।  
प्रीयतेऽमल्या भक्त्या हरिरन्यद् दिउरदनम् ॥

( श्रीमद्भा० ७ । ७ । ५०-५२ )

देवता, दैत्य, मनुष्य, यक्ष अथवा गन्धर्व—कोई भी क्यों न हो—जो भगवान्के चरणकमलोंका सेवन करता है, वह हमारे ही समान कल्याणका भाजन होता है। दैत्य-बालको ! भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये ब्राह्मण, देवता या ऋषि होना, सदाचार और विविध ज्ञानोंसे सम्पन्न होना तथा दान, तप, यज्ञ, शारीरिक और मानसिक शौच और वड़-वड़े घरोंका अनुष्ठान पर्याप्त नहीं है। भगवान् केवल निष्काम प्रेम-भक्तिसे ही प्रसन्न होते हैं। और सब तो विडम्बनामात्र है।

एतादानेव लोकेऽस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ।  
एकान्तभक्तिर्गांधिन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम् ॥

( श्रीमद्भा० ७ । ७ । ५५ )

इस संसारमें या मनुष्य-शरीरमें जीवका सबसे बड़ा स्वार्थ अर्थात् एकमात्र परमार्थ इतना ही है कि वह भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्य भक्ति प्राप्त करे। उस भक्तिका स्वरूप है—सर्वदा सर्वत्र सब वस्तुओंमें भगवान्का दर्शन।

### मारनेवालोंके प्रति भी मित्रभाव

ये हनुमानाता दत्तं यैर्विष्यं यैर्हृताशानः ।  
यैर्दिन्गजैरहं क्षुण्णो दषः सपैश्च यैरपि ॥  
तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न क्वचित् ।  
पथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः ॥

( विष्णु० १ । १८ । ४२-४३ )

जो लोग मुझे मारनेके लिये आये, जिन्होंने मुझे विश्रदिया, जिन्होंने आगमें जलाया, जिन्होंने दिग्गजोंसे रौंदरवा-

और जिन्होंने सपोंसे डॉक्साया, उन सबके प्रति यदि मैं अमान मिथ्याकरण सहा हूँ और मेरी कभी पाप-बुद्धि नहीं है तो उस सत्यके प्रभावसे ये दैत्यपुरोहित जी उठें।

### भक्तकी महिमा

पश्यामि भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना  
मर्वेगुणैस्तत्र समाप्ते सुराः ।  
द्वावभास्य कुतो महदुणा  
मनोस्थेनासति धावतो वहिः ॥  
( श्रीमद्भा० ५ । १८ । १२ )

जिस पुराणकी भगवान्में निष्काम भक्ति है, उसके हृदयमें समस्त देवता धर्म-ज्ञानादि सम्पूर्ण सदृशोंसहित सदा निवाप करते हैं। किंतु जो भगवान्का भक्त नहीं है, उसमें तो महापुरुषोंके गुण आ ही कहाँसे सकते हैं? वह तो तरहन्तरहके संकल्प करके निरन्तर बाहरी विषयोंकी ओर दौड़ता रहता है।

### भक्त चाण्डाल भी श्रेष्ठ

विप्राद्विषद्गुणयुतादरविन्दनाभ-  
पादारविन्दविमुखाद्वयचं वरिष्ठम् ।  
मन्ये तदपितमनोचच्चेहितार्थ-  
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥  
( श्रीमद्भा० ७ । १ । १० )

मेरी समझसे तो धन, कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, वल, पौरुष, बुद्धि और योग—इन बारहों गुणोंसे युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान् कमलनाभके चरण-कमलोंसे विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपने मन, वचन, कर्म, धन और प्राण भगवान्के चरणोंमें समर्पित कर रखे हैं; क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने कुलतकको पवित्र कर देता है, कतु अपने बड़पनका अभिमान रखनेवाला वह ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता।

### प्रार्थना

यदि रासीश से कामान् वरांस्वं वरदर्षभ ।  
कामानां हृदयसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥  
द्वन्द्वयाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्भिः ।  
हीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥  
विमुच्यति यदा कामान् मानवो मनसि शितान् ।  
तर्हैव पुण्डरीकाक्ष भगवत्याय कल्पते ॥  
( श्रीमद्भा० ७ । १० । ७-९ )

मेरे वरदानिशिरोमणि स्वामी! यदि आप मुझे मुँहसाँ वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि मेरे हृदयों कभी किसी कामनाका बीज अङ्गुरित ही न हो। हृदयों किसी भी कामनाके उदय होते ही इन्द्रिय, मन, प्राण, देह धर्म, धैर्य, बुद्धि, लज्जा, श्री, तेज, स्मृति और सत्य—ये सब-के-सब नष्ट हो जाते हैं। कमलनयन! जिस समर मनुष्य अपने मनमें रहनेवाली कामनाओंका परित्याग करता है, उसी समय वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त कर लेता है।

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजायहम् ।  
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ।  
आ प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।  
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥

( विष्णु० १ । २० । १८-१९ )

नाथ! सहस्रों योनियोंसे जिस-जिसमें जाँ, उसी-उसीमें है अच्युत! आपमें मेरी सर्वदा अक्षुण्ण भक्ति रहे। अविवेकी पुरुषोंकी विषयोंमें जैसी अविच्छल प्रीति होती है वैसी ही प्रीति आपमें आपका स्मरण करते हुए मेरे हृदयसे कभी दूर न हो।

### नमस्कार

यथा हि विद्वानपि मुद्दते यत्-  
स्तत् को विचरणे गतिमात्मनो पथा ।  
तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय वै  
नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥  
( श्रीमद्भा० ८ । २२ । १७ )

प्रभो! लक्ष्मीके मदसे तो विद्वान् पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। उसके रहते भला, अपने वास्तविक स्वरूपको ठीक-ठीक कौन जान सकता है। अतः उस लक्ष्मीको दीनकर महान् उपकार करनेवाले, समस्त जगत् के महान् ईश्वर, सबके हृदयमें विराजमान और सबके परम गाढ़ी श्रीनारायणदेवको मैं नमस्कार करता हूँ।

### सबमें भगवान्

गजेऽपि विष्णुर्भुजरोऽपि विष्णु-  
र्जलेऽपि विष्णुर्जवलनेऽपि विष्णुः ।  
त्वयि स्थितो दैत्य मयि स्थितश्च  
विष्णुं यिना दैत्यगणोऽपि नासि ॥  
स्तौमि विष्णुमहं येन वैलोक्यं सचराचरम् ॥  
कृतं संवर्धितं शान्तं स मै विष्णुः प्रसीदतु ॥

ब्रह्मा विष्णुहरो विष्णुरिन्द्रो वायुर्यमोऽनलः ॥  
प्रकृत्यादीनि तत्त्वानि पुरुषं पञ्चविंशकम् ।  
पितृदेहे गुरोदेहे मम देहेऽपि संस्थितः ।  
एवं जानन् कथं सौमि विष्णमाणं नराधमम् ॥  
भोजने शयने याने उवरे निष्ठिवने रणे ।  
हरिरित्यक्षरं नास्ति मरणोऽसौ नराधमः ॥  
माता नास्ति पिता नास्ति नास्ति मे स्वजनो जनः ।  
हरि विना न कोऽप्यस्ति यद्युक्तं तद् विश्वायताम् ॥

( रक्तद० प्रभा० वस्त्राप्यथ० १८ । ७६,८३—८६,८५,९० )

श्रीप्रह्लादजी कहते हैं—हाथीमें भी विष्णु, सर्वमें भी विष्णु, जलमें भी विष्णु और अस्त्रिमें भी भगवान् विष्णु ही हैं । दैत्यपते ! आपमें भी विष्णु और मुक्षमें भी विष्णु हैं, विष्णुके विना दैत्यगणकी भी कोई सत्ता नहीं है । मैं उन्हीं भगवान् विष्णुकी स्तुति करता हूँ, जिन्होंने अनेकों वार चराचर भूतसमुदायके सहित तीनों लोकोंकी रचना की है, संरक्षन किया है और अपने अंदर लीन भी किया है । वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों । ब्रह्मा भी विष्णुरूप ही है, भगवान् शंकर भी उन्हींके रूप हैं । इन्द्र, वायु, यम और अग्नि, प्रकृति आदि चौबीसों तत्त्व तथा पुरुष नामक पचीसवाँ तत्त्व भी भगवान् विष्णु ही हैं । पिताकी देहमें, गुरुजीकी देहमें और मेरी अपनी देहमें भी वे ही विराजमान हैं । यों जानता हुआ मैं मरणशील अधम मनुष्यकी स्तुति क्यों कहूँ । जिसके द्वारा भोजन करते, शयन करते, सवारीमें, ज्वरमें शूक्तोंसमय, रण और मरणमें 'हरि' इन शब्दोंका उच्चारण नहीं

होता, वह मनुष्योंमें अधम है । मैं यहीं न सो माना दूँ, न पिता है और न मेरे सरो-गमन्यन्वी दी है । श्रीगणिको शोदूँ, मेरा कोई भी नहीं है । भ्रतः जो उत्तेजत हो, यह करना चाहिये ।

### कृष्णनाम-माहात्म्य

नास्ति नास्ति महाभाग कलिकाल्यमं युगम् ।

स्मरणात् कीर्तनाद् विष्णोः प्राप्तं पदम् ॥

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति कलौ वद्यति प्रश्नम् ।

नित्यं यशायुतं पुण्यं तीर्थकोटिमुद्गवम् ॥

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति नित्यं जपनि यो जनः ।

तस्य प्रीतिः कलौ नित्यं कृष्णस्त्रोपरि वद्यते ॥

( स्क० पु० द्व० मा० ३८ । ४४-४५ )

महाभाग ! कलिकालके समान दूषण कोई युग महेतैः, क्योंकि उसमें भगवान् विष्णुके स्मरण और कीर्तनमें मनुष्य परमपद प्राप्त कर लेता है । जो कलियुगमें नियप्रति 'कृष्ण', 'कृष्ण', 'कृष्ण'का उच्चारण करेगा, उसे प्रतिदिन दस हजार यशों और करोड़ों तीर्थोंका पुण्य प्राप्त होगा । जो मनुष्य नित्य 'कृष्ण', 'कृष्ण', 'कृष्ण' का जप करता है, कलियुगमें श्रीकृष्णके ऊपर उसका प्रेम निरन्तर बढ़ता है ।

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति नित्यं जाग्रत्स्वप्नश्च यः ।

कीर्तयेत्तु कलौ चैव कृष्णरूपी भवेन्द्रि सः ॥

( स्क० पु० द्व० मा० ३९ । १ )

जो कलिमें प्रतिदिन जागते और सोते समय 'कृष्ण', 'कृष्ण', 'कृष्ण' का कीर्तन करता है, वह श्रीकृष्णस्वरूप हो जाता है ।

### दानवीर राजा बलि

#### हरि-नाम

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्वृतः ।  
अनिच्छयापि संस्थृष्टो दहस्येव हि पापकः ॥  
जिह्वाप्रे धसते यस्य हरिरित्यक्षरहस्यम् ।  
स विष्णुलोकमाप्नोति पुनराद्वित्तिद्वर्णम् ॥

( ना० पूर्व० ११ । १००-१०१ )

दूषित चित्तधाले पुरुषोंके स्मरण करनेपर भी भगवान् हरि उनके पापको वैसे ही हर लेते हैं, जैसे अग्निको विना इच्छा किये भी छू दिया जाय तो भी वह जला देती है । जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि' ये दो अधर वास करते हैं, वह पुनराद्वित्तिरहित श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है ।



#### भगवान्का दिया दण्ड वाञ्छनीय

पुंसां श्वास्यतमं मन्ये दण्डमहत्तमापितम् ।  
यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ॥  
वं नूनमसुराणां नः पारोद्ध्वः परमो गुरुः ।  
यो नोऽवेक्षमदान्वानां विश्रंदं वक्षुरादिशत् ॥

( श्रीमद्भा० ८ । २३ । ४५ )

अपने पूजनीय गुरुजनोंके द्वारा दिया हुआ दण्ड तो जीवमात्रके लिये अत्यन्त वाञ्छनीय है; क्योंकि वैसा दण्ड माता, पिता, भाई और सुहृद भी मोह-बद्ध नहीं दे पाते । आप छिपे हृपसे अवश्य ही दृम असुरोंको श्रेष्ठ शिक्षा दिया करते हैं, अतः आप हमारे परम गुरु हैं । जब दृम-लोग धन, कुलीनता, बल आदिके मदसे अंधे हो जाते हैं, तब आप उन वस्तुओंको हमसे छीनकर हमें नेत्रदान करते हैं ।

## भक्त वृत्रासुर

### प्रार्थना

अहं हरे तथ फादैकमूल-  
दासानुशासो भवितासि भूयः ।  
मनः स्वरेतासुपतेषुणास्ते  
गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥  
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ट्यं  
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।  
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा  
समज्जस त्वा विश्वस्य काङ्गे ॥  
अजातपक्षा इव मातरं खगाः  
स्तन्यं यथा वस्तस्तराः सुधारातः ।  
प्रियं प्रियेत्र व्युषितं विषषणा  
मनोऽरविन्दाक्ष दिव्यक्षते त्वाम् ॥  
ममीत्तमश्लोकजनेषु सर्वं  
संसारचक्रे अमतः दक्षकर्मभिः ।  
त्वन्माय्याऽस्त्वात्मजदासोहे-  
ष्वासक्त्वित्स्य न नाथ भूयात् ॥  
( श्रीमद्भा० ६। ११। २४-२७ )

भगवान् को प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए वृत्रासुरने प्रार्थना



की—प्रभो ! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि असत्त्व  
भावसे आपके चरणकम्लोंके आश्रित सेवकोंकी सेवा करनेके  
अवसर मुझे अगले जन्ममें भी प्राप्त हो । प्राणवल्लभ ! मेर  
मन आपके मङ्गलमय गुणोंका समरण करता रहे, मेरी वाण  
उन्हींका गान करे और शरीर आपकी सेवामें ही संलग्न रहे  
सर्वसौभाग्यनिधे ! मैं आपको छोड़कर सर्व, ब्रह्मलोक, भू  
मण्डलका साप्राज्य, रसातलका एकछत्र राज्य, योगक  
सिद्धियाँ—यहाँतक कि मोक्ष भी नहीं चाहता । जैसे पक्षियों  
पंखहीन बच्चे अपनी माकी बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूरं  
ब्रह्म अपनी माका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे  
वियोगिनी पली अपने प्रवासी श्रियतमसे मिलनेके लिये उत्कण्ठ  
रहती है, जैसे ही कमलनयन ! मेरा मन आपके दर्शनमें  
लिये छपटा रहा है । प्रभो ! मैं मुक्ति नहीं चाहता । मैं  
कर्मोंके कल्पवल्प मुझे बास-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें भटकन  
पड़े, इसकी परवा नहीं, परंतु मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ, जिस-जिस  
योनिमें जन्मूँ, वहाँ-वहाँ भगवान्‌के प्यारे भक्तजनोंसे मेर  
प्रेमसैन्ध्री बनी रहे । स्वामिन् ! मैं केवल यही चाहता हूँ यि  
जो लोग आपकी मायासे देह-गैह और स्त्री-पुत्र आदिं  
आसक्त हो रहे हैं, उनके साथ मेरा कभी किसी प्रकारक  
भी सम्बन्ध न हो ।"

## शूद्र भक्त

### धनके दोष

न मे वित्ते स्पृहा चास्ति धनं संसारवागुरा ।  
तद्विवौ पतितो मर्यो न पुनर्भोक्षकं ब्रजेत् ॥  
शृणु वित्तस्य यो दोष इह लोके परत्र च ।  
भर्यं चौरान्त्यं शतिष्यो राजभ्यस्तस्करदपि ॥  
सर्वे जिवांसवी मर्योः पशुमस्यविविष्करः ।  
तथा धनवतां नित्यं कथमर्योः सुखावहाः ॥  
प्राणस्यान्तकरो शृथः साधको दुरितस्य च ।  
कालादीनां प्रियं गेहं निदानं दुर्गंतेः परम् ॥  
( पद्म० सृष्टि० ५०। ५०—५३ )

मुझे धनकी इच्छा नहीं है । धन संसार-बन्धनमें डालने  
वाला एक जाल है । उसमें कैसे हुए मनुष्यका किर उद्धार  
नहीं होता । इस लोक और परलोकमें भी धनके जो दोष हैं,

उन्हें मुनो । धन रहनेपर चोर, बन्धु-बान्धव तथा राजार्थी  
भय प्राप्त होता है । सब मनुष्य [ उस धनको इड़ा  
लेनेके लिये ] हिंसक जन्माओंकी भाँति भनी व्यक्तियोंसे गर  
डालनेकी अभिलाषा रखते हैं, फिर धन कैसे सुखद हो सकता  
है ? धन प्राणोंका घातक और पापका माधक है । धनीका पा  
काल एवं काम आदि दोषोंका निकेतन वह जाता है । अतः  
धन दुर्गतिका प्रधान कारण है ।

अकामाच्च व्रतं सर्वमक्षोधाच्चीर्थसेवनम् ।  
दया जप्यसमा शुद्धं संतोषो धनमेव च ॥  
अहिंसा परमा सिद्धिः शिलोऽन्तर्वृतिगतम्  
( का० सृष्टि० ५०। ५३-५५ )

कामनाओंका ल्याग करनेमें ही ममस्त्रियोंका पालन हो  
जाता है । क्रोध छोड़ देनेमें तीर्थोंका गेवन यो लगा है ।  
दया ही जपके समान है । संतोष ही शुद्ध धन है, अदिगा ही

शाश्वतान और सदाचारसे सम्पन्न हैं, ऐसे सत्पुरुष स्वर्गलोकके निवासी होते हैं।

यत्करोत्यशुभं कर्म शुभं वा यदि सत्तम् ।

अवश्यं तत् समाप्तो युरुपो नात् संशयः ॥

( २०९ । ५ )

साधुश्रेष्ठ ! जो पुरुष जैसा भी शुभ या अशुभ कर्म करता है, अवश्य ही उसका फल भोगता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।

सतां धर्मेण वर्तेत क्रियां शिष्टवदाचरेत् ।

असंक्लेशेन लोकस्य वृत्तिं लिप्सेत वै द्विजः ॥

( २०९ । ४४ )

ब्रह्मन् ! सत्पुरुपोद्वारा पालित धर्मके अनुसार व्रताव करे, शिष्ट पुरुपोंकी भाँति श्रेष्ठ आचरण करे । दूसरे लोगोंको क्लेश पहुँचाये बिना ही जिससे जीवन-निर्वाह हो जाय, ऐसी ही वृत्ति अपनानेकी अभिलाषा करे ।

रथः शरीरं पुरुषस्य दुष्ट-

मात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यादुरक्षान् ।

तैरप्रमत्तः उक्षाली सदरवै-

दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः ॥

( २११ । २३ )

मनुष्यका यह दोषयुक्त शरीर मानो एक रथ है, आत्मा इसका सारथि है, इन्द्रियोंको अश्व कहते हैं । इन सबके द्वारा इन्द्रियरूपी श्रेष्ठ अश्वोंको वशमें करके सदा सावधान

रहनेवाले रथीकी भाँति धीर पुरुष कुशली रहकर सुखपूर्व यात्रा करता है ।

सर्वोपायैस्तु लोभस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः ।

एतत् पवित्रं लोकानां तपो वै संक्रमो मतः ॥

नित्यं क्रोधात् तपो रक्षेद् धर्मं रक्षेच्च मतसरात् ।

विद्यां मानापमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादितः ॥

आनुरांस्यं परो धर्मः क्षमा च परमं बलम् ।

आत्मज्ञानं परं ज्ञानं परं सत्यवतं वत्तम् ॥

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यं ज्ञानं हितं भवेत् ।

यद्गृहितमत्यन्तं तद्वै सत्यं परं मतम् ॥

यस्य सर्वे समारम्भाः निराशीर्बन्धनाः सदा ।

त्यागे यस्य हुतं सर्वं स त्यागी स च त्रुदिमान् ॥

( २१३ । २८-३२ )

सब प्रकारके उपायोंसे लोभ और क्रोधका दमन करना चाहिये । संसारमें यही लोगोंको पावन करनेवाला तप है और यही भवसागरसे पार उतारनेवाला पुल है । सदा-सर्वदा तपको क्रोधसे, धर्मको छाहसे, विद्याको मानापमानसे और अपनेको प्रमादसे बचाना चाहिये । कूरताका अभाव (द्या) परम धर्म है, क्षमा ही सबसे बड़ा बल है, सत्यका व्रत ही सबसे उत्तम व्रत है और आत्माका ज्ञान ही सर्वोत्तम ज्ञान है । सत्यभावण सदा कल्याण-मय है, सत्यमें ही ज्ञान निहित है; जिससे प्राणियोंका अत्यन्त कल्याण हो, वही सबसे बढ़कर सत्य माना गया है । जिसके सारे कर्म कभी कामनाओंसे बँधे नहीं होते, जिसने अपना सब कुछ त्यागकी अग्निमें होम दिया है, वही त्यागी है और वही त्रुदिमान् है ।

## महर्षि अम्बृणकी कन्या वाक्‌देवी

ॐ अहं रुद्रेभिर्भुमिन्द्रियरा-  
म्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।

अहं भित्रावरुणोभा विभर्म्य-  
हमिन्द्राग्नी अहमिव्वनोभा ॥

मैं सच्चिदानन्दमयी सर्वात्मा देवी रुद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वदेवगणोंके रूपमें विचरता हूँ । मैं ही भित्र और वरुण देवोंको, इन्द्र और अग्निको तथा देवों अधिनी-कुमारोंको धारण करती हूँ ।

अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं  
त्वष्टारमुत पूषण भगम् ।

अहं दध्मि द्रविणं हविष्मते

मैं ही हृषीकेशी अधीश्वरी, अपने उपायोंको धनरी-मैं सम्पूर्ण जगत्की अधीश्वरी, अपने उपायोंको धनरी-मैं सम्पूर्ण जगत्की अधीश्वरी, अपने उपायोंको धनरी-

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा  
भूरिस्यात्रां भूर्यविशयन्तीम् ॥

मैं सम्पूर्ण जगत्की अधीश्वरी, अपने उपायोंको धनरी-

मैं सम्पूर्ण जगत्की अधीश्वरी, अपने उपायोंको धनरी-

Hinduism Discord Server <https://discord.gg/dharma> MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

अभिन्न रूपमें जाननेवाली तथा पूजनीय देवताओंमें प्रधान हूँ। मैं प्रपञ्चरूपसे अनेक भावोंमें स्थित हूँ। सम्पूर्ण भूतोंमें मेरा प्रवेश है। अनेक स्थानोंमें रहनेवाले देवता जहाँ कहीं जो कुछ भी करते हैं, वह सब मेरे लिये करते हैं।

मया सो अन्नमति यो विपश्यति

यः प्राणिति यः इं शणोत्युक्तम् ।

अमन्त्रचो मां त उप क्षियन्ति

श्रुष्टि श्रुत श्रद्धिवं ते बदामि ॥

जो अन्न खाता है, वह मेरी शक्तिसे ही खाता है [ क्योंकि मैं ही भोक्तृ-शक्ति हूँ ]; इसी प्रकार जो देखता है, जो साँस लेता है तथा जो कही हुई वात सुनता है, वह मेरी ही सहायतासे उक्त सब कर्म करनेमें समर्थ होता है। जो मुझे इस रूपमें नहीं जानते, वे न जाननेके कारण ही हीन दशाको प्राप्त होते जाते हैं। हे बहुश्रुत ! मैं तुम्हें श्रद्धासे प्राप्त होनेवाले ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करती हूँ, मुनो—

अहमेव स्वयमिदं बदामि

जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।

मं कामये तं तसुग्रं कृणोमि तं

ब्रह्माणं तस्त्रिं तं सुमेधाम् ॥

मैं स्वयं ही देवताओं और मनुष्योंद्वारा सेवित इस दुर्लभ तत्त्वका वर्णन करती हूँ। मैं जिस-जिस पुरुषकी रक्षा करना चाहती हूँ, उस-उसको सबकी अपेक्षा अधिक शक्ति-शाली बना देती हूँ। उसीको सुषिकर्ता ब्रह्मा, अपरोक्षज्ञान-सम्पन्न ऋषि तथा उत्तम मेधाशक्तिसे युक्त बनाती हूँ।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि

ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।

अहं जनाय समदं कृणोम्यहं

धावापृथिवी आ विवेश ॥

मैं ही ब्रह्मद्वेषी हिंसक असुरोंका वध करनेके लिये उद्गते धनुरूपको चढ़ाती हूँ। मैं ही शरणागतजनोंकी रक्षाके लिये शत्रुओंसे युद्ध करती हूँ तथा अन्तर्यामीरूपसे पृथ्वी और आकाशके भीतर व्याप्त रहती हूँ।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन्मम

योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।

ततो वि तिष्ठे भुवना नु विश्वो-

ताम् यां वर्षणोप सृष्टामि ॥

मैं ही इस जगत्के पितारूप आकाशको सर्वाधिग्रान-स्वरूप परमात्माके ऊपर उत्पन्न करती हूँ। समुद्र ( सम्पूर्ण भूतोंके उत्पत्तिस्थान परमात्मा ) में तथा जल ( बुद्धिकी व्यापक वृत्तियों ) में मेरे कारण ( कारणस्वरूप चैतन्य ब्रह्म ) की स्थिति है; अतएव मैं समस्त भुवनमें व्याप्त रहती हूँ तथा उस स्वर्गलोकका भी अपने शरीरसे स्पर्श करती हूँ।

अहमेव वात इव प्रवास्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।

परो दिवा पर एता पृथिव्यैतावती महिना संबभूत ॥

मैं कारणरूपसे जब समस्त विश्वकी रक्षा आरम्भ करती हूँ, तब दूसरोंकी प्रेरणाके बिना स्वयं ही वायुकी भाँति चलती हूँ, स्वेच्छासे ही कर्ममें प्रवृत्त होती हूँ। मैं पृथ्वी और आकाश दोनोंसे परे हूँ। अपनी महिमासे ही मैं ऐसी हुई हूँ। ( क्रमवेद १०। १०। १२५। १०८ )

## कपिल-माता देवहृति

नाम-जापक चाण्डाल भी सर्वश्रेष्ठ



अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्

यजिजह्वग्रे वर्तते नाम सुभ्यम् ।

तेषुस्तपस्ते षुडुवुः सस्तुरार्या

ब्रह्मान्तर्जुनाम गृणन्ति ये ते ॥

( श्रीमद्भा० ३। ३३। ७ ) कर लिया ।

अहो ! वह चाण्डाल भी सर्वश्रेष्ठ है कि जिसकी जिह्वाके

अग्रभागमें आपका नाम विराजमान है। जो श्रेष्ठ पुरुष

आपका नाम उच्चारण करते हैं, उन्होंने तप, हवन,

तीर्थस्नान, सदाचारका पालन और वेदाध्ययन—सब कुछ

## वशिष्ठपत्री अरुन्धती

### दुस्त्यज तृष्णा

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।  
योऽस्मां प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्वज्जतः सुखम् ॥

( पद्म० सृष्टि० १९ । २७१ )

दुष्ट बृद्धिवाले पुरुषोंके लिये जिसका त्याग करना कठिन है, जो शरीरके जीर्ण होनेपर भी जीर्ण नहीं होती तथा जो प्राणान्तिकारी रोगके समान है, उस तृष्णाका त्याग करने वालेको ही सुख मिलता है ।

### सच्ची माता मदालसा

#### पुत्रको उपदेश

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम  
कृतं हि ते कल्पनयाध्युनैव ।  
पञ्चात्मकं देहसिदं न तेऽस्ति  
नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः ॥  
न वा भवान् रोदिति वै स्वजन्मा  
शब्दोऽथमासाद्य महीशसूचुम् ।

विकल्प्यमाना विविधा गुणस्ते-  
शुणाश्च भौताः सकलेन्द्रियेषु ॥

भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि  
बृद्धि समायान्ति यथेह पुंसः ।  
अन्नाम्बुद्धानादिभिरेव कस्य  
न तेऽस्ति बृद्धिर्न च तेऽस्ति हानिः ॥

त्वं कञ्चुके शीर्यमाणे निक्षेऽस्मि-  
स्तस्मिंश्च देहे मूढतां मा व्रजेथाः ।

शुभाद्युभैः कर्मभिर्दैहमेतत्  
X X X X X ॥

तातेति किञ्चित् तनवेति किञ्चि-  
दम्बेति किञ्चिद्विथितेति किञ्चित् ।

ममेति किञ्चिच्च ममेति किञ्चित्  
त्वं भूतसङ्घं बहु मानवेथाः ॥

दुःखानि दुःखोपगमाय भोगान्  
सुखाय जानाति किमूढचेताः ।

ताम्येव दुःखानि पुनः सुखानि  
जानाति विद्वानकिमूढचेताः ॥

हासोऽस्तिसंदर्शनमक्षियुग्म-  
मस्तुजज्वलं धक्कलुपं वसायाः ।

कुचादि पीनं पिशितं धनं तत्  
स्थानं रतेः किं नरकं न योषित् ॥

यानं क्षितौ यानगतश्च देहो  
देहेऽपि चान्यः पुरुषो निविष्टः ।  
ममत्वमुच्यां न तथा यथा स्वे  
देहेऽतिमात्रं च विमूढतैषा ॥

( मार्क० २५ । ११—१८ )

पुत्र ! तू तो शुद्ध आत्मा है, तेरा कोई नाम नहीं है । यह कल्पित नाम तो तुझे अभी मिला है । यह शरीर भी पाँच भूतोंका बना हुआ है । न यह तेरा है, न तू इसका है । फिर किसलिये रो रहा है ।

अथवा तू नहीं रोता है, वह शब्द तो राजकुमारके पास पहुँचकर अपने-आप ही प्रकट होता है । तेरी सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें जो भाँति-भाँतिके गुण-अवगुणोंकी कल्पना होती है, वे भी पाञ्चभौतिक ही हैं ।

जैसे इस जगत्‌में अत्यन्त दुर्बल भूत अन्य भूतोंके सहयोगसे बृद्धिको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार अन्न और जल आदि भौतिक पदार्थोंको देनेसे पुरुषके पाञ्चभौतिक शरीरकी ही पुष्टि होती है । इससे तुझ शुद्ध आत्माकी न तो बृद्धि होती है और न हानि ही होती है ।

तू अपने इस अंगे और देहस्ती चोलेके जीर्ण-शीर्ण होनेपर मोह न करना । शुभाशुभ कर्मोंके अनुगार यह देह प्राप्त हुआ है ।

कोई जीव पिताके रूपमें प्रसिद्ध है, कोई पुत्र करन्याता है, किसीको माता और किसीको प्यारी स्त्री कहते हैं; यों ‘यह मेरा है’ कहकर अपनाया जाता है और कोई पोग नहीं है, इस भावसे प्राया माना जाता है । इस प्रकार ये भूत-समुदायके ही नामा रूप हैं, ऐसा तुझे मानना चाहिये ।

यद्यपि समस्त भोग दुःखरूप हैं, तथापि मूर्दान्तिमानम् उन्हें दुःख दूर करनेवाला तथा सुखकी प्राप्ति करनेवाला



## सती सावित्री

सकृदंशो निपतति

सकृत् कन्या प्रदीयते ।

सकृदाह ददानीति

त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥

( मण० वन० २५४ । २६ )

पिताजी ! वैट्वारा एक ही बार होता है, कन्यादान एक बार ही किया जाता है और 'मैंने दिया' ऐसा संकल्प भी एक बार ही होता है। ये तीन बातें एक-एक बार ही हुआ करती हैं।

सतां सकृत् सङ्गतमीप्सितं परं

ततः परं मित्रमिति प्रचक्षते ।

न चाफलं सत्पुरुषेण सङ्गतं

ततः सतां संनिवेशेत् समागमे ॥

( २५७ । ३० )

सत्पुरुषोंका तो एक बारका समागम भी अत्यन्त अभीष्ट होता है। यदि कहीं उनके साथ मैत्रीभाव हो गया तो वह उससे बढ़कर बताया जाता है। संत-समागम कभी निफल नहीं होता; अतः सदा सत्पुरुषोंके ही सङ्गमें रहना चाहिये।

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।

अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः ॥

एवंप्रायश्च लोकोऽयं मनुष्योऽशक्तपेशः ।

सन्तस्त्वेवाप्यमित्रेषु दयां प्राप्तेषु कुर्वते ॥

( २५७ । ३५-३६ )

मन, वचन और कर्मसे समस्त प्राणियोंके प्रति अद्रोह, सब्बपर कृपा करना और दान देना—यह सत्पुरुषोंका सनातन धर्म है। लोग सभी प्रायः अल्पायु हैं और शक्ति एवं कौशलसे हीन हैं। किंतु जो सत्पुरुष हैं, वे तो अपने पास आये शत्रुओंपर भी दया करते हैं।

आत्मन्यपि न विश्वासस्था भवति सत्यु यः ।

तस्मात् सत्यु विशेषेण सर्वः प्रणथमिच्छति ॥

( २५७ । ४२ )

सत्पुरुषोंके प्रति जो विश्वास होता है, वैसा विश्वास मनुष्योंको अपनेमें भी नहीं होता; अतः प्रायः सभी लोग साधुपुरुषोंके साथ प्रेम करना चाहते हैं।



सौहृदात् सर्वभूतानां विश्वासो नाम जायते ।  
तस्मात् सत्यु विशेषेण विश्वासं कुरुते जनः ॥

( २५७ । ४४ )

सत्पुरुषोंका सब भूतोंके प्रति अकारण स्तेह है उनके प्रति विश्वास पैदा होता है; अतः सभी लोग सत्यु स अधिक विश्वास करते हैं।

सतां सदा शाश्वतधर्मवृत्तिः

सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति ।

सतां सम्भिर्फलः संगमोऽस्ति

सद्गम्यो भयं नानुवर्त्तन्ति सन्तः ॥

सन्तो हि सत्येन नयन्ति सूर्यं

सन्तो भूमि तपसा धारयन्ति ।

सन्तो गतिर्भूतभव्यस्य राजन्

सतां भये नावसीदन्ति सन्तः ॥

आर्यजुष्टमिदं वृत्तमिति विज्ञाय शाश्वतम् ।

सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ति परस्परम् ॥

( २५७ । ४७-४९ )

सत्पुरुषोंकी वृत्ति निरन्तर धर्ममें ही रहा करती है, कभी दुःखित या व्यथित नहीं होते। सत्पुरुषोंके साथ उस तरह सत्पुरुषोंका समागम होता है, वह कभी निफल नहीं होता और सतोंसे संतोंको कभी भय भी नहीं होता। सत्पुरुष सत्यं वलसे सूर्यको भी अपने समीप बुला लेते हैं, वे अपने तांड़ प्रभावसे पृथ्वीको धारण किये हुए हैं। संत ही भूत और भविष्यतके आधार हैं, उनके बीचमें रहकर सत्पुरुषोंको कभी खेद नहीं होता। यह सनातन सदाचार सत्पुरुषोंद्वारा सेवित है—यह जानकर सत्पुरुष परोपकार करते हैं और प्रत्युपकारीकी ओर कभी दृष्टि नहीं ढालते।

न च प्रसादः सत्पुरुषेषु मोघो

न चार्यर्थो नद्यति नपि मानः ।

यसादेतज्जियतं सत्यु निर्यं

तस्मात् सन्तो रक्षितारो भवन्ति ॥

( २५७ । ५० )

सत्पुरुषोंमें जो प्रसाद ( कृपा एवं अनुग्रहात् भाव ) होता है, वह कभी व्यर्थ नहीं जाता। सत्पुरुषोंमें न तो किसीका कोई प्रयोजन नष्ट होता है और न गमानयोंमें धक्का पहुँचता है। ये तीनों बातें ( प्रसाद, अर्थमिदिएवं मान ) साधुपुरुषोंमें सदा निश्चितस्थितमें रहती हैं; इसीलिए संत सबके रक्षक होते हैं।

## दधीचि-पत्नी प्रातिथेयी

गौ-ब्राह्मण-देवताके लिये प्राण-त्याग करनेवाले  
धन्य हैं

उत्पथते यतु विनाशि सर्व  
न शोच्यमस्तीति मनुष्यलोके ।  
गोविग्रदेवार्थमिद्या त्यजन्ति  
प्राणान् ग्रियान् पुण्यभाजो मनुष्याः ॥  
( ब्रह्मपुराण ११० । ६३ )

संसारमें जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह सब नश्वर है;  
अतः उसके लिये शोक नहीं करना चाहिये । मनुष्योंमें  
पुण्यके भागी वे ही होते हैं जो गौ, ब्राह्मण तथा देवताओंके  
लिये अपने प्यारे प्राणोंका उत्सर्ग कर देते हैं ।

संसारचक्रे परिवर्तनमन्ते  
देहं समर्थं धर्मयुक्तं त्वाप्य ।

ग्रियान् प्राणान् देवविग्रार्थहेतो-  
स्ते वै धन्याः प्राणिनो ये त्यजन्ति ॥  
( ब्रह्म ११० । ६४ )

इस परिवर्तनशील संसारचक्रमें धर्मप्रायण तथा  
शक्तिशाली शरीर पाकर जो प्राणी देवताओं तथा ब्राह्मणोंके  
लिये अपने प्यारे प्राणोंका त्याग करते हैं, वे ही धन्य हैं ।

प्राणाः सर्वेऽस्यापि देहान्वितस्य  
यातारो वै नाशं संदेहलेशः ।

एवं ज्ञात्वा विग्रगोदेवदीना-  
दर्थं चैनानुत्सज्जन्तीश्वरास्ते ॥  
( ब्रह्म ११० । ६५ )

जिसने देह धारण किया है, उसके प्राण एक-न-एक  
दिन अवश्य जायेंगे—यह जानकर जो ब्राह्मण, गौ, देवता तथा  
दीन आदिके लिये इन प्राणोंका उत्सर्ग करते हैं, वे ईश्वर हैं ।

## सती सुकला

### पति-तीर्थ

पुण्या स्त्री कथ्यसे लोके या स्याद् पतिपरायणा ।  
युवतीनां पृथक्तीर्थं विना भर्तुद्विजोत्तम ।  
सुखदं नास्ति वै लोके सर्वगमोक्षप्रदायकम् ॥  
सर्वं पादं स्वभर्तुश्च प्रयागं विद्धि सत्तम ।  
वामं च पुष्करं तस्य या नारी परिकल्पयेत् ॥  
तस्य पादोदकस्त्रानात्तुण्यं परिजायते ।  
प्रयागपुष्करसमं स्त्रानं स्त्रीणां न संशयः ॥  
सर्वतीर्थसमो भर्ता सर्वधर्मभयः पतिः ।  
मराणां यजनात्तुण्यं यद् वै भवति दीक्षिते ।  
तत्पुण्यं समवाप्नोति भर्तुश्चैव हि साम्प्रतम् ॥  
( पञ्च ० भूमि ० ४१ । ११—१५ )

जो स्त्री पतिपरायणा होती है, वह संसारमें पुण्यमयी  
कहलाती है । युवतीयोंके लिये पतिके सिवा दूसरा कोई ऐसा  
तीर्थ नहीं है, जो इस लोकमें सुखद और परलोकमें स्वर्ग  
तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला हो । साधुश्चेष्ट ! स्वामीके दाहिने  
चरणको प्रयाग समझिये और वायेंको पुष्कर । जो स्त्री  
ऐसा मानती है तथा इसी भावनाके अनुसार पतिके  
चरणोदक्षते ज्ञान करती है, उसे उन तीर्थोंमें ज्ञान

करनेका पुण्य प्राप्त होता है । इसमें तनिक भी संदेह  
नहीं है कि खियोंके लिये पतिके चरणोदक्षते अभिषेक प्रयाग  
और पुष्कर तीर्थमें ज्ञान करनेके समान है । पति समस्त  
तीर्थोंके समान है । पति सम्पूर्ण धर्मोंका स्वरूप है । यसकी  
दीक्षा लेनेवाले पुष्करों यज्ञोंके अनुष्ठानसे जो पुण्य प्राप्त  
होता है, वही पुण्य साढ़ी स्त्री अपने पतिकी पूजा करके  
तत्काल प्राप्त कर लेती है ।

नारीणां च सदा तीर्थं भर्ता शास्त्रेषु पश्यते ॥  
तमेवावाहयेत्रित्यं वाचा कायेन कर्मभिः ।  
मनसा पूजयेत्रित्यं सत्यभावेन तत्परा ॥  
एतत्वाद्वैं भहतीर्थं दक्षिणाङ्गं सदैव हि ।  
तमाश्रित्य यदा नारी गृहस्था परिवर्तते ॥  
यजते दानपुण्येत्वं तस्य दानस्य यत्कलम् ।  
वाराणस्यां च गङ्गायां यत्कलं न च पुष्करे ॥  
द्वारकायां न चावन्त्यां केदरे शशिभूषणे ।  
लभते नैव सा नारी यजमाना सदा किल ॥  
तादृशं फलमेवं सा न प्राप्नोति कदा सखि ।  
सुसुखं पुत्रसौभाग्यं स्त्रान् दानं च भूषणम् ॥  
वस्त्रालंकारसौभाग्यं रूपं लेजः फलं सदा ।  
पश्चां कीर्तिमवाप्नोति गुणं च वरवर्णिनि ॥

भर्तुः प्रदादाचा सर्वं लसते गत्र संशयः ॥  
 विद्यमाने यदा कान्ते अन्यधर्मं करोति या ।  
 निष्कले जायते तस्याः पुंशली परिकथ्यते ॥  
 नारीणां योवनं रूपमवतारं स्मृतं धूचम् ।  
 एकधापि हि भर्तुश्च तस्यार्थे भूमिमण्डले ॥  
 पतिहीना यजा नारी भवेत् सा भूमिमण्डले ।  
 कुतस्याः सुखं रूपं यदा कीर्तिः सुता भुवि ॥  
 सुदौभीग्यं महादुःखं संसारे परियुज्यते ।  
 पापभागा भवेत् सा च दुखाचारा सदैव हि ॥  
 तुष्टे भर्तरि तस्यास्तु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।  
 तुष्टे भर्तरि तुष्टन्ति श्रवणयो देवमानवाः ॥  
 भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता देवता दैवतैः सह ।  
 भर्ता तीर्थश्च पुण्यश्च नारीणां नृपनन्दनम् ॥

( पद्म० भूमि० ४१ । ६२-७५ )

शास्त्रोंका वचन है कि पति ही सदा नारीयोंके लिये तीर्थ है। इसलिये स्त्रीको उचित है कि वह सब्जे भावसे पति-सेवामें प्रवृत्त होकर प्रतिदिन मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा पतिका ही आवाहन करे और सदा पतिका ही पूजन करे। पति स्त्रीका दक्षिण अङ्ग है, उसका वाम पार्श्व ही पतिके लिये महान् तीर्थ है। यद्यपि-नारी पतिके वाम पार्श्वमें बैठकर जो दान-पूज्य और यज्ञ करती है, उसका बहुत बड़ा फल बताया गया है। काशीकी गङ्गा,

पुष्कर तीर्थ, द्वारकापुरी, उज्जैन तथा केदार नाममें प्रतिद्वं महादेवजीके तीर्थमें स्नान करनेसे भी वैसा फल नहीं मिल सकता। यदि स्त्री अपने पतिको साथ लिये बिना ही कोई यज्ञ करती है, तो उसे उसका फल नहीं मिलता। पतिकी स्त्री उत्तम सुख, पुत्रका सौभाग्य, स्नान, पान, खेल आभूषण, सौभाग्य, रूप, तेज, फल, वश, कीर्ति और उत्तम गुण प्राप्त करती है। पतिकी प्रसन्नतासे उसे सब कुछ मिल जाता है, इसमें तानिक भी संदेह नहीं है। जो स्त्री पतिके रहते हुए उसकी रेवाको छोड़कर दूसरे किसी धर्मका अनुश्रान करती है, उसका वह कार्य निफल होता है तथा लोकमें वह व्यभिचारिणी कही जाती है। नारीयोंका यौवन, रूप और जन्म—सब कुछ पतिके लिये होते हैं; इस भूमण्डलमें नारीकी प्रत्येक वस्तु उसके पतिकी आवश्यकता-पूर्तिका ही साधन है। जब स्त्री पतिहीन हो जाती है, तब उसे भूतलभर सुख, रूप, वश, कीर्ति और पुत्र कहाँ मिलते हैं। वह तो संसारमें परम दुर्भाग्य और महान् दुःख भोगती है। पापका भोग ही उसके हिस्सेमें पड़ता है। उसे सदा दुःखमय आचारका पालन करना पड़ता है। पतिके संतुष्ट रहनेपर समलूप देवता स्त्रीसे संतुष्ट रहते हैं तथा श्रृंगि और मनुष्य भी प्रसन्न रहते हैं। राजन्। पति ही स्त्रीका सामी, पति ही गुरु, पति ही देवताओंसहित उसका इष्टदेव और पति ही तीर्थ एवं पूज्य है।

## सती सुमना

### श्रेष्ठ विचार और सदाचार

लोभः पापस्य दीजं हि सोहो मूलं च तस्य हि ।  
 असत्यं तस्य वै स्कन्धो माया शाखासुविस्तरः ॥  
 द्रष्टव्यक्षेत्रिव्यपत्राणि कुञ्जद्रव्या पुण्यितः सदा ।  
 तुशंसं तस्य सौगम्यं फलमज्ज्ञानमेव च ॥  
 छ्वापाखण्डनैर्योर्याः क्रूराः कूदाशा पापिनः ।  
 पक्षिणो मोहवृक्षस्य मायाशाखासामाश्रिताः ॥  
 अज्ञानं पत्नफलं तस्य रसोऽधर्मः प्रकीर्तिः ।  
 तृणोदकेन संवृद्धिस्तस्याश्रद्धा ऋतुः प्रिय ॥

X X X X X

अस्त्वच्छायां समाश्रित्य यो नरः परितुष्यते ।  
 कलाविं तस्य चास्नाति सुपक्षणि दिने दिने ॥

फलानां तु रसेनापि द्युधर्मेण तु पालितः ।

स संतुष्टो भवेन्मर्त्यः पतनायाभिगच्छति ॥

तस्माच्चिन्तां परियज्य पुमांश्वेभं न कारयेत् ।

धनपुत्रकलद्राणां चिन्तामेव न कारयेत् ॥

यो हि विद्वान् भवेत् कान्त मूर्खाणां पथमेति हि ।

सुभार्यामिह विन्द्यमि कर्य पुत्रानां लमे ॥

एवं चिन्तयते नित्यं दिव्यरात्रौ धिमोहितः ।

( पद्म० भूमि० ११ । १६-२५ )

पाप एक दृक्षके समान है, उसका वीज है लोभ। मोह उसकी जड़ है। असत्य उसका तना और माया उसकी शाखाओंका विस्तार है। द्रष्टव्य और कुञ्जद्रव्य पचे हैं। कुञ्जद्रव्य है और श्रवणसता उसकी गम्य तथा अज्ञान फल है। छ्वाप-पाखण्ड, चोरी, ईप्या, कूरता, कूटर्नाति और पापनारामे पुण्य

प्राणी उस मोहमूलक वृक्षके पक्षी हैं, जो मायारूपी शालाओंपर बसेरा लेते हैं। अज्ञान उस वृक्षका फल है और अधर्मको उसका रस वताया गया है। तुष्णारूप जलसे सीचनेपर उसकी वृद्धि होती है। अश्रद्धा उसके घूलने-फलनेकी भूतु है। जो मनुष्य उस वृक्षकी छायाका आश्रय लेकर संतुष्ट रहता है, उसके पके हुए फलोंको प्रतिदिन खाता है और उन फलोंके अधर्मरूप रससे पुष्ट होता है, वह ऊपरसे कितना ही प्रसन्न क्यों न हो, बास्तवमें पतनकी ओर ही जाता है। इसलिये पुरुषको चिन्ता छोड़कर लोभका भी त्याग कर देना चाहिये। छी, पुत्र और धनकी चिन्ता तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। प्रियतम ! कितने ही विद्वान् भी मूल्योंके मार्गका अवलम्बन करते हैं। दिन-रात मोहमें झूले रहकर निरन्तर इसी चिन्तामें पड़े रहते हैं कि किस प्रकार मुझे अच्छी छी मिले और कैसे मैं बहुत-से पुत्र प्राप्त करूँ।

ब्रह्मचर्येण तपसा पञ्चपञ्चकर्त्तैः ।  
दानेन नियमैश्चापि क्षमाशौचेन वल्लभम् ॥  
अहिंसया सुशक्त्या च द्वास्तेनेनापि वर्तनैः ।  
एतैर्देशभिरङ्गैस्तु धर्ममेव प्रपूरयेत् ॥  
सस्पूर्णो जायते धर्मो आसैभौंगो यथोदरे ।  
धर्मं सूजति धर्माद्मा त्रिविधेनैव कर्मणा ॥  
यं यं चिन्तयते प्राज्ञस्तं तं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥

( पद्म० भूमि० १३ । ४४—४७ )

ब्रह्मचर्य, तपस्या, पञ्चमहायशोंका अनुष्ठान, दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, उत्तम शक्ति ( ईश्वरीय बल ) और चोरीका अभाव—ये धर्मके दस अङ्ग हैं, इनके अनुष्ठानसे धर्मकी पूर्ति करनी चाहिये। धर्माद्मा पुरुष मन, वाणी और शरीर—तीनोंकी क्रियासे धर्मका सम्पादन करता है। किर वह जिस-जिस वस्तुका चिन्तन करता है, वह दुर्लभ होनेपर भी उसे प्राप्त हो जाती है।

नित्यं सत्ये रतिर्यस्य पुण्यात्मा सुषुप्तां वज्रेत् ।  
ऋतौ प्राप्ते वजेज्ञारीं स्वीयां दोषविवर्जितः ॥  
स्वकुलस्य सदाचारं कदा नैव विमुच्यति ।  
एतसे हि समाख्यातं गृहस्थस्य द्विजोत्तम ॥

ब्रह्मचर्यं भग्ना प्रोक्तं गृहिणां मुक्तिंदं किल ॥  
( पद्म० भूमि० १३ । २—४ )

सदा सत्यमावणमें जिसका अनुराग है, जो पुण्यात्मा होकर साधुताका आश्रय लेता है, भूतुकाल प्राप्त होनेपर ( ही ) अपनी छीके साथ समागम करता है, स्वयं दोपरेसे दूर रहता है और अपने कुलके सदाचारका कभी त्याग नहीं करता, वही सच्चा ब्रह्मचारी है। यह मैंने गृहस्थके ब्रह्मचर्यका वर्णन किया है। यह ब्रह्मचर्य गृहस्थ पुरुषोंको सदा मुक्ति प्रदान करनेवाला है।

परदद्वयेषु लोलत्वात् परस्परीषु तथैव च ॥  
दद्वा मतिर्व अस्य स्यात् स सत्यः परिकीर्तिः ।  
( पद्म० भूमि० १३ । ८-९ )

जिसकी बुद्धि पराये धन और परावी स्त्रियोंको देखकर लोलुपतावश उनके प्रति आसक्त नहीं होती, वही पुरुष सत्यनिष्ठ कहा गया है।

आसमात्रं तथा देयं क्षुधातांय न संशयः ।  
दत्ते सति महत्पुण्यममृतं सोऽस्तुते सदा ॥  
दिने दिने प्रदातव्यं यथाविभवविस्तरम् ।  
वचनं च तृणं शस्यां गृहच्छायां सुशीतलाम् ॥  
भूमिमापत्त्या चानन्दं प्रियवाक्यमनुत्तमम् ।  
आसनं वसनं पादं कौटिल्येन विवर्जितः ॥  
आरम्भो जीवनार्थाय नित्यमेवं करोति यः ।  
इत्येवं भोदतेऽसौ वै परत्रेह तथैव च ॥

( पद्म० भूमि० १३ । ११—१४ )

भूखसे पीड़ित मनुष्यको भोजनके लिये अब्र अवश्य देना चाहिये। उसको देनेसे महान् पुण्य होता है तथा दाता मनुष्य सदा अमृतका उपभोग करता है। अपने वैभवके अनुसार प्रतिदिन कुछ-न-कुछ दान करना चाहिये। सहानुभूतिपूर्ण वचन, तृण, शस्या, घरकी शीतल छाया, पृथ्वी, जल, अब्र, मीठी बोली, आसन, वस्त्र या निवास-स्थान और पैर धोनेके लिये जल—ये सब वस्तुएँ जो प्रतिदिन अतिथिको निष्कपट भावसे अपूर्ण करता है, वह इस लोक और परलोकमें भी आनन्दका अनुभव करता है।

( जिस समय हुःशासन द्रौपदीका बल खींचने लगा, द्रौपदी भगवान् श्रीकृष्णका स्वरण करके मन-ही-मन प्रार्थना करने लगी—) गोविन्द ! द्वारकावासी ! सच्चिदानन्द-स्वरूप प्रेमधन ! गोपीजनवल्लभ ! सर्वसक्षिमान् प्रभो ! कौरव मुझे अपमानित कर रहे हैं । कथा यह बात आपको मालूम नहीं है ? नाथ ! रमानाथ ! ब्रजनाथ ! आर्तिनाशन जनार्दन ! मैं कौरवोंके समुद्रमें हूँ रही हूँ । आप मेरी रक्षा कीजिये । श्रीकृष्ण ! आप सच्चिदानन्द महायोगी हैं । आप सर्वस्वरूप एवं सबके जीवनदाता हैं । गोविन्द ! मैं कौरवोंसे घिरकर वडे संकटमें पड़ गयी हूँ । आपकी शरणमें हूँ । आप मेरी रक्षा कीजिये ।

### आर्त प्रार्थना ( दुर्वासाके शापसे बचनेके लिये )

कृष्ण कृष्ण महाब्राह्मो देवकीनन्दनाव्यय ॥  
यासुदेव जगक्षाय प्रणतार्तिविनाशन ।  
विश्वास्मन् विश्वजसक विश्वहतैः प्रभोऽव्यय ॥  
प्रपञ्चपाल गोपाल प्रजापाल परात्पर ।  
अकूतीनां च चित्तीनां प्रवर्तक नतासि ते ॥  
वरेण्य वरदानन्द अगतीनां गतिर्भव ।  
पुराणपुरुष प्राणमनेवृस्थायगोचर ॥  
सर्वाव्यक्ष पराव्यक्ष त्वमहं शरणं गता ।  
पाहि मां कृपया देव शरणाशतवस्तु ॥  
नीलोद्यलदलश्याम पश्चार्भार्हणेक्षण ।  
पीताम्बरपरीधान लस्तुकैस्तुभमूषण ॥  
त्वमादिरन्ती भूतानां त्वमेव च परायणम् ।  
परात्परतरं ज्योतिविश्वात्मा सर्वतोमुखः ॥  
त्वमेवाहुः वरं वीरं निधानं सर्वसम्पदाम् ।  
त्वया नाथेन देवेश सर्वपद्मभ्यो भयं न हि ॥  
हुःशासनादहं पूर्वं सभायां मोक्षिता यथा ।  
तथैव संकटादसान्मासुदूर्तुमिहर्हसि ॥

( नहा० वन० २६३ । ८-१६ )

श्रीकृष्ण ! महायाहो कृष्ण ! देवकीनन्दन ! हे अविनाशी वासुदेव ! चरणोंमें पड़े हुए हुसियोंका हुःख दूर करनेवाले जगदीक्षक ! तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हो । इस

विश्वको बनाना और विगाहना तुम्हारे ही हाथोंका रेल है । प्रभो ! तुम अविनाशी हो ; शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले गोपाल ! तुम्हीं सम्पूर्ण प्रजाके रक्षक परात्पर परमेश्वर हो, चित्तकी वृत्तियों और चिद्वृत्तियोंके प्रेरक तुम्हीं हो, मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ । सबके वरण करने योग्य वरदाता अनन्त ! आओ ; जिन्हे तुम्हारे सिवा दूसरा कोई सहारा देनेवाला नहीं है, उन अरहाव भक्तोंकी सहायता करो । पुराणपुरुष ! प्राण और मनकी वृत्तियाँ तुम्हारे पासतक नहीं पहुँच पातीं । सबके साक्षी परमात्मा ! मैं तुम्हारी शरणमें हूँ । शशणाशतवस्तु । कृष्ण करके मुझे बचाओ । नील कमलदलके समान श्वाससुन्दर ! कमलपुष्पके भीतरी भागके समान किञ्चित् लाल नेववाले ! कौस्तुभमणिविभूषित एवं पीताम्बर धारण करनेवाले श्रीकृष्ण ! तुम्हीं सम्पूर्ण भूतोंके आदि और अन्त हो, तुम्हीं परम आश्रय हो । तुम्हीं परात्पर, ज्योतिर्मय, सर्वव्यापक एवं सर्वात्मा हो । ज्ञानी पुरुषोंने तुम्हींको इस जगत्का परम वीज और सम्पूर्ण सम्पदाओंका अधिष्ठान कहा है । देवेश ! यदि तुम मेरे रक्षक हो, तो मुझर दारी विपक्षियाँ दूष पड़ें तो भी भय नहीं है । आजसे पहले सभामें हुःशासनके हाथसे जैसे तुमने मुझे बचाया था, उसी प्रकार इस वर्तमान संकटसे भी मेरा उद्धार करो ।

### पति देवता

|            |           |                                       |
|------------|-----------|---------------------------------------|
| नैताद्वारा | देवतस्ति  | सत्ये                                 |
| सर्वेषु    | लोकेषु    | सदेवकेषु ।                            |
| यथा        | पतिस्तस्य | तु सर्वकामा                           |
|            |           | लभ्या; प्रसादात् कुपितश्च हन्त्यात् ॥ |
| सुखं       | सुखेनेह   | न जातु लभ्यं                          |
|            |           | दुःखेन साध्वी लभते सुखानि ॥           |
|            |           | ( महा० वन० २३४ । २, ४ )               |

सत्यमामाजी ! स्त्रीके लिये इस लोक या परलोकमें पतिके समान कोई दूसरा देवता नहीं है । पतिकी प्रसन्नता होनेपर वह सब प्रकारके सुख पा सकती है और असंतुष्ट पति उसके सब सब प्रकारके सुख पा सकती है । साद्यी ! सुखके द्वारा सुख कभी नहीं मिल सकता, सुखप्राप्तिका साधन तो हुःख ही है ।

## महाराज भर्तृहरि

( महान् शिवभक्त और सिद्धयोगी, उज्जीवके अधिष्ठित )

यदाऽकिंचिज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं  
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवद्वचलित्सं भम भनः ।  
यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशाद्वगतं  
तदा मूर्खोऽस्मीति उद्व इव मदो मे व्यपगतः ॥

( नीतिशतक ८ )

जब मैं विल्कुल ही अशान था, तब मदोभवत्त हाथीके  
समान मदान्ध हो रहा था; उस समय मेरा मन 'मैं ही सर्वज्ञ  
हूँ' यह सोचकर घमंडमें चूर था । परंतु जब विद्वानोंके  
पास रहकर कुछ-कुछ ज्ञान प्राप्त किया, तब 'मैं मूर्ख हूँ' यों  
समझनेके कारण जबरके समान मेरा गर्व दूर हो गया ।

येषां न विद्या न तपो न द्वानं  
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।  
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता  
मनुष्यस्त्वेण मृगाश्वरन्ति ॥

( नीतिशतक ९ )

जिनमें न विद्या है न ज्ञान है, न शील है न गुण है और  
न धर्म ही है, वे मृत्युलोकमें पृथ्वीके भार धने हुए मनुष्यरूपसे  
मानो पशु ही धूमते-फिरते हैं ।

जाङ्गतं धियो हरति सिद्धति वाचि सत्यं  
मानोन्ति दिशति पापमपाकरोति ।  
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति  
सत्यंगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

( नीतिशतक १० )

कहिये, सत्यंगति पुरुषोंका क्या उपकार नहीं करती ?  
वह बुद्धिकी जड़ताको हरती है, धार्णीमें सत्यका सञ्चार करती  
है, सभान बढ़ाती है, पापको दूर करती है, चिक्को आनन्दित  
करती है और सभास्त दिशाओंमें कीर्तिका विस्तार करती है ।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-  
स्तपो न तप्तं वयमेव तपाः ।  
कालो न यातो वयमेव याता-  
स्तुष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥

( वैराग्यशतक ११ )

हमने भोगोंको नहीं भोगा, भोगोंने ही हमें भोग लिया ।  
हमने तप नहीं किया, स्वयं ही लत हो गये । काल व्यतीत

नहीं हुआ, हम ही व्यतीत हो गये और मेरी तृणा भी  
जीर्ण हुई, हम ही जीर्ण हो गये ।

भक्तिर्भवे मरणजन्मभवं हृदिस्थं

स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः ।

संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता

वैराग्यमस्ति किमतः परमर्थनीयम् ॥

( वैराग्यशतक १२ )

सबके आदि कारण भगवान् शिवके पाद-पद्मोंमें प्रीति  
हो । हृदयमें जन्म-मृत्युका भय हो । संसारी भाई, बन्धु  
तथा कुटुंबियोंमें ममता न हो और हृदयमें काम-विकारका  
अभाव हो—कामिनीके कमनीय कलेवरको देवकर उसमें  
आसक्ति न होती हो, संसारी लोगोंके गंगार्जन्य दोपरो  
रहित पवित्र और शान्त विजन वनमें निवास हो तथा  
मनमें वैराग्य हो तो इससे बढ़कर वाढ़नीय और ही ही  
क्या सकता है ।

मातमेदिनितात भास्तु सखे ज्योतिः सुचन्धो जल

आत्म्योम निबद्ध एष भवतामन्त्यः प्रणामाज्जलिः ।

युपमस्त्रहवशोपजातसुधुतोद्रेकस्फुरन्निमल-

ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीये परे ब्रह्मणि ॥

( वैराग्यशतक १३ )

माता पृथ्वी ! पिता पवन ! मित्र तेज ! बन्धु जल !  
और भाई आकाश ! यह आपलोगोंको अन्तिम प्राणाम है  
क्योंकि आपके सङ्गसे प्राप्त पुण्यके द्वारा प्रकटित निर्मल ज्ञानमें  
सम्पूर्ण मोह-जंजालको नाश करके मैं परव्रह्ममें लीन हो रहा हूँ ।

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा  
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावक्षयो नायुपः ।

आत्मश्रोत्यसि तावदेव विदुया कार्यः प्रयत्नो महान्

प्रोद्धीसे भवते च कृपसनन्म ग्रद्युद्यमः कीटदः ॥

( वैराग्यशतक १४ )

जबतक शरीर स्वस्थ है, बुद्धापा नहीं आया है, इन्द्रियों  
की शक्ति पूरी बनी हुई है, आयुके दिन शीर है, तमीम  
बुद्धिमान् पुरुषको अपने कल्याणके लिये अच्छी तरफ यह  
देना चाहिये । धरमें आग लगा जानेपर कुओं स्तोत्रोंमें रक्षा  
होगा ।

भन्यानां गिरिकन्द्रे निवसतां ऊपोतिः परं भ्यायता-  
मानन्दाश्रुजर्लं पिबन्ति शकुना निःशङ्कमङ्गेशयाः ।  
असाकं तु सनोरथोपरचितप्रासादवापीतट-  
क्रीडाकाननकेलिकौतुकजुशामायुः परिक्षीयते ॥

( वैराग्यशतक १०२ )

गिरिकन्द्रामें निवास करनेवाले, परब्रह्मके ध्यानमें मग्न अन्य योगीजनोंके आनन्दाश्रुओंको गोदामें बैठे हुए पक्षीण झङ्क होकर पीते हैं, पर हमलोगोंकी आयु तो मनोरथ-महलके संरोवरतटोंपर स्थित विहार-विपिनमें आमोद-द करते व्यर्थ ही व्यतीत हो रही है ।

भोगे रोगभयं कुले स्युतिभयं विज्ञे नृपालाद् भयं  
भाने दैन्यभयं बले रिषुभयं रूपे जराया भयम् ।  
शास्त्रे वादभयं गुणे स्वलभयं काये कृतान्तमङ्गयं  
सर्वं वस्तु भयावहं भुवि नृणां वैराग्यमेष्वाभयम् ॥

( वैराग्यशतक ११६ )

भोगोंमें रोगका भय है, ऊँचे कुलमें पतनका भय है, धनमें राजाका, मानमें दीनेताका, बलमें शत्रुका तथा स्त्रीमें दृद्धावस्थाका भय है और शास्त्रमें वाद-विचादका, गुणमें दुष्टजनोंका तथा शरीरमें कालका भय है । इस प्रकार संसारमें मनुष्योंके लिये सभी वस्तुएँ भयपूर्ण हैं, भयसे रहित तो केवल वैराग्य ही है ।

## आचार्य श्रीधरस्वामी

( श्रीमद्भागवतके सर्वमान्य टीकाकार )

तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वता-  
दटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान् ।  
प्रजन्तु यातौर्विवदन्तु वादै-  
ईरि विना नैव मृतिं तरन्ति ॥

चाहे कोई तप करे, पर्वतांसे भगुपतन करे, तीर्थोंमें भ्रमण रे, शास्त्र पढ़े, वश-यागादि करे अथवा तर्क-वित्कोङ्कारा वाद-वेचाद करे, परंतु श्रीहरि ( की कृपा ) के विना कोई भी मृत्युको नहीं लाँघ सकता ।

उदरदितु यः पुंसा चिन्तितो मुनिवर्मभिः ।  
हन्ति मृत्युभयं देवो हृदयतं तमुपास्त्वे ॥

मनुष्य ऋषि-मुनियोङ्कारा वत्तलायी हुई पद्धतियोंसे उदर आदि स्थानोंमें जिनका चिन्तन करते हैं और जो प्रभु उनके चिन्तन करनेपर मृत्युभयका नाश कर देते हैं, उन हृदयस्थित प्रभुकी इम उपासना करते हैं ।

स्वल्पधामृतपाथोधौ विहरन्तो महासुदः ।  
कुर्वन्ति दृतिनः केचिच्चतुर्वर्णं लृणोपमम् ॥

प्रभो ! कुछ सुकृतीलोग आपकी कथारूप अमृतसमुद्रमें अत्यन्त आनन्दपूर्वक विहार करते हुए वर्थ, धर्म, काम,

मोक्ष—इन चारों पुरुषायोंको तृणवत् समझकर त्याग कर देते हैं ।

अंहः संहरदविलं सङ्कुदुदयादेव सकललोकस्य ।  
तरणिरिव तिभिरजलविं जथति जगन्मङ्गलं हरेनाम् ॥

सम्पूर्ण जगत्का मङ्गल करनेवाला भगवान् श्रीहरिका नाम सर्वोपरि विराजमान है । एक बार ही प्रकट होनेपर वह अद्विल विश्रकी समस्त पापराशिका उसी प्रकार विनाश कर देता है, जैसे भगवान् भुवनभास्कर अन्धकारके समुद्रको सोख लेते हैं ।

सदा सर्वत्रास्ते ननु विमलस्माद्यं तव पदं  
तथाप्येकं स्तोकं नहि भवतरोः पत्रमभिनत् ।  
क्षणं जिह्वाग्रस्थं तव तु भगवन्नाम निखिलं  
समूलं संसारं कपति कतरत् सेव्यमन्योः ॥

प्रभो ! आपका मायारूपी मलसे रहित अनादि ब्रह्मरूप पद निश्चय ही सब समय और सब जगह व्याप्त है । फिर भी संसाररूपी बृक्षके एक छोटे-से पत्तेको भी वह काटनेमें समर्थ नहीं हुआ । इधर आपका नाम एक क्षणके लिये जिह्वाके अग्रभागपर स्थित होकर सरे जन्म-मृत्युरूप बन्धनको अविद्यारूपी मूलके साथ काट देता है । फिर, आप ही बताइये, इन दोनोंमें कौन-सा सेवन करने योग्य है ।

## श्रीमद्दिविदारण्य महामुनि

( स्थितिकाल अनुमानितः सन् १३०० और १३९१ ई० के बीच। तैतिरीय शतावके ब्राह्मण। पिताका नाम भाषणनार्चे है। गाताका नाम श्रीमती था। संत्यासके पश्चात् श्रीगोप्तविद्वान् जगद्गुरु शङ्करानार्थ। वेदान्तसन्कल्पी प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पञ्चदशी' के स्वतिता )

मन गृह मनुष्याणां कारणं वन्धमोक्षयोः ।  
वन्ध्राय विषयासकं मुक्त्ये तिर्तिष्यं स्मृतम् ॥

मनसे ही बन्धन और मनसे ही मनुष्योंको मोक्ष मिला करता है। विषयासक मन बँधवा देता है। निर्विषय मन मुक्ति दिला देता है।

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो  
निवेशितस्यात्मनि यत् सुखं भवेत् ।  
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा  
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्णते ॥

जिस चित्तको आत्ममें लगा दिया जाता है, जिस चित्त के रज-तमरुपी मल समाधिरुपी जलसे धी दिये जाते हैं, उस चित्तको समाधिमें जो आनन्द आता है, उस आनन्द-



का वर्णन वाणीसे तो किया ही नहीं जा सकता क्योंकि वह तो एक अलौकिक भाषामें ही समझा जा कहा जा सकता है। वह स्वरूपभूत सुख तो केवल अन्तःकरणसे ही गृहीत हुआ करता है।

भारताही शिरोभरं मुक्त्वारडस्ते दिश्रमं गतः संसाराव्याप्तिव्यागे ताद्युदिस्तु विश्रमः

बोद्धा उठानेवाला पुरुष थकानेवाले सिं

बोद्धेको उत्तरकर जैसे अमरहित हो जाता है, उसी प्रक संसारके व्यापारोंका परित्याग कर देनेपर जब किसीको वै ही बुद्धि हो जाय कि मैं अब अमरहित हो गया हूँ, तब, वह इसीको 'विश्राम' कहा जाता है।

( पञ्चदशी; योगानन्द-प्रकरण ११७ । ११८, १२५

## श्रीजगद्ग्र भट्ट

( महान् शिवभक्त और प्रसिद्ध कवि। स्थितिकाल १३५० ईस्वीके लगभग। स्थान कश्मीर, पिताका नाम राधार । )

### स्तुति

पापः खलोऽहमिति नार्हसि मां विहार्तुं  
किं रक्षया कृतमतेरकुतोभयस्य ।  
प्रसादसाधुरधर्मोऽहमपुण्यकर्मा  
तस्मात्तद्वास्मि सुतरामनुकम्पनीयः ॥

( ११ । ३७ )

मैं पापी हूँ, मैं दुष्कर्मकारी हूँ—क्या यह समझकर ही आप मेरा परित्याग कर रहे हैं? नहीं-नहीं, ऐसा करना तो आपको उचित नहीं; क्योंकि भयरहित प्राण और मुक्तताकारीको रक्षा से क्या ग्रथोजन! रक्षा तो पापियों, भयात्मों और खलोंकी ही की जाती है। जो स्वयं ही सक्षित है, उसकी रक्षा नहीं की जाती। रक्षा तो असक्षितोंकी ही की जाती है। मुझ महापापी, महान् अधम और महान् असाधुकी जाती है। आपके द्वारा की गयी रक्षा आप न करेंगे तो फिर करेंगे किसकी। मैं ही तो आप-रक्षा आप न करेंगे तो किसकी। मैं ही तो आप-रक्षा की दया (आपके द्वारा की गयी रक्षा) का सबसे बड़ा अधिकारी हूँ।

तावस्प्रसीदि तुरु नः करुणाममन्द-  
माक्लन्दभिन्दुधर ! मर्पय मा विहासीः ।  
अृहि त्वमेव भगवन् ! करुणार्णवेन  
स्पक्षास्त्वया कमपरं शारणं ददासः ॥

( १ । ५४

इन्दुशेखर! मैत आनेके पृष्ठे ही आप मुक्तापर हुए हो दीजिये। मेरे इस रोने-चित्तलानेसे दुरा मत मानिये। मेरा त्व न कीजिये। आप ही कहिये, यदि आपके सदृश कर्म सापने भी मेरी रक्षा न की तो मैं किर और विमली धार जाऊँगा! क्या आपसे बढ़कर भी कोई ऐसा है जो हर सदृश पापीको पार लगा सके?

तद्वैर्चनान्तसमये तत्र पादर्पण-  
मालिङ्गय निर्भरमभद्रभगिभावः ।  
निद्रानिमेन विनिमालितलोचनस्य  
प्रणाः प्रयान्तु मम नाथ ! तत्र प्रसादात् ॥

( १ । ५५

मैं आपकी नित्य पूजा करता हूँ। पूजा हो चुकनेपर के सिंहासनके नीचे स्थित आपके पैर रखनेकी चौकीपर नासिर रखकर मैं बड़े ही भक्तिमावसे उसका आलिङ्गन लगा हूँने बस, आप इतना कर दीजिये कि उसी दशामें नींद आ जाय और उस नींदके ही बहाने मेरे प्राणोंका कषण हो जाय।

सणि: सुसूक्ष्मोऽपि यथोद्दर्शं विष्णु-

कृशोऽपि वह्निः सुमहद्यथा तृणम् ।

शिशुर्मृगेन्द्रोऽपि यथा गजव्रजं

तनुः प्रदीपोऽपि यथा तमोभरम् ॥

यथाल्यसम्यौषधसुन्मदं गदं

यथासूतं स्तोकमपि क्षयाङ्गयम् ।

भूवं तथैचाणुरपि स्तवः प्रभोः

क्षणाद्धं दीर्घमपि व्यपोहति ॥

जैसे अत्यन्त युक्तम् भी गारुड मणि तीव्र विषको धारणमें ही शान्त कर देता है, जैसे श्रीण भी अग्नि बहुत-से तृणोंके द्वेरको नष्ट कर देता है, जैसे छोटा-सा एक या दो भासका भी सिंह हायिथोंके हुँडको भगा देता है, जैसे अत्यन्त युक्तम् दीपक भी बड़े गाढ़ अन्धकारको नष्ट कर देता है, रक्तीभर भी महोषधि जैसे महान् उग्र—भयंकर रोगको शान्त कर देती है और जैसे थोड़ा-सा—एक विन्दुभर भी अमृत मरण अथवा श्रय-रोगके भयको दूर कर देता है, वैसे ही थोड़ा-सा—एक या आधा श्लोक भी जिस किसी भी भाष्यमें किया हुआ ईश्वरका स्वरूप जन्म-जन्मान्तरमें किये हुए कायिद, वाचिक और मानसिक पार्योंका नाश अतिशीघ्र ही यह देता है।

विचिन्तयत्त्वीवन्मेव जीवनं

समर्थयन् पार्थिवमेव पार्थिवम् ।

विभावयन् वैभवमेव वैभवं

कदाऽध्यये शङ्करमेव शङ्करम् ॥

मैं एकमात्र जलको ही अपने जीवनका साधन समझता हुआ अर्थात् मैं केवल गङ्गाजल ही पीकर देह धारण करूँगा ऐसा दृढ़ निश्चय करता हुआ, राजाको 'पार्थिवमेव' प्रथिकी ही एक विकार समझता हुआ और इस संसारके वैभवको सर्वव्यापी भगवान्का ही मानता हुआ कल्याणकारी भगवान् शङ्करका ही आश्रय—शरण ग्रहण करूँगा।

वरं भवेदप्यवरं कलेवरं

परं हरसाधनसाधनं हि यत् ।

न तु क्लुधंसिनियेवणोत्सर्वं  
विनिष्ठती मुक्तिरुक्तिपासिनी ॥

जो केवल भगवान् शंकरके ही आराधनका साधन है, वह अबर भी अर्थात् अति अपवित्र और अभम भी नर-देह श्रेष्ठ है; किंतु श्रीप्रभुकी आराधनारूप महोत्सवके भज्ञ करने-वाली और प्रभुके ही महान् अनुग्रहसे अकस्मात् प्राप्त होनेवाली मुक्ति भी श्रेष्ठ नहीं है।

अक्लेशपैशालमलङ्घयकृतान्तदृत-

हुंकारमङ्गभिद्वुरं दुरितेन्वनामिनम् ।

को नाम नामयहरं हरपादपद्म-

सेवासुखं सुमतिरन्वहमादियेत ॥

आहा ! अविद्या आदि पञ्चवेद्योंके संसरणसे रहित होनेके कारण अतीव कोमल तथा अनिवार्य यमदूर्तोंके हुंकार-जन्य त्रासका भेदन करनेवाले, पापरूप काष्ठको भस्म करनेमें अग्निके समान, जन्म-जरा-मरण-रूप भयंकर रोगको समूल नष्ट कर देनेवाले श्रीशिव-पादारविन्दकी सेवाके सुगवका कौन बुद्धिमान् पुरुष प्रतिदिन सेवन नहीं करेगा ?

इदं सधुसुखं विष्णुं हस्ति जीवितं तत्क्षणा-

दपथ्यमिदमशितं व्यथयते विपाके वपुः ।

इदं तृणगणाघृतं बिलमधो विधत्ते क्षणा-

ददत्र मलिनोद्वैद्र्विणमर्जितं कर्मभिः ॥

अतः प्रत्युत्त्वभवोद्वद्वर्वगवृक्षमा-

पतिप्रणयसम्भवं सुविद्विडम्बनाडम्बरम् ।

विहाय सुरवाहिनीपुलिनवासहेवाकिनो

मजन्ति कृतिनस्तसीरमणस्त्वद्चूडामणिम् ॥

इस संसारमें अत्यन्त मलिन और उग्र कर्मोंके द्वारा मनुष्य जिस धनको संचित करते हैं, वह धन ओरभमें मधुर प्रतीत होनेवाला विष्णुः अतएव वह तत्क्षण अर्थात् उपभोग करते समय ही उनके जीवनको नष्ट कर देता है, उपभोग करनेसे परिणाममें अतीव अपथ्य-कारक होता है और अन्तमें शरीरको अत्यन्त ही दुरिति कर देता है। इसलिये वह मलिन कर्मोंद्वारा उपार्जित धन मानो तृणोंमें ढका हुआ एक बड़ा विल ( अन्धकूप ) है। अतः उसमें प्रवेश ( उपभोग ) करनेमात्रसे ही वह मनुष्यका अप्राप्यत अवदय ही कर देता है। विशाल वैभव-जनित प्रचण्ड गर्वका भारी वोक्षा सिरपर ढोनेवाले भूपाल्याण तो प्रीतिका दम ही भरते हैं। उनके प्रीतिभाजन जन जगत्में उपहासास्पद ही बनते

८५। इसीलिये विवेकीजन इन भूपालोंके प्रेमकी परवा न करके—  
दूनका आश्रम छोड़कर भगवती भागीरथीके पावन टटकी  
और ही दृष्टि लगाये रहते हैं और भगवान् शशाङ्कशेखरकी  
कृपा प्राप्त करने—उन्हींको रिक्षानेके लिये अपने जीवनकी  
बाजी लगा देते हैं। उन्हींकी प्रभन्नता उनके जीवनका एकमात्र  
नेत्र नह जाती है।

किं भूयांभिः परुषविषयैः श्रीविकारसारैः

किं वा भूयः पतनविरसैः स्वर्गभोगाभिलाषैः ।

मन्ये नान्यद् भवभयविपलकातराणां नराणां

मुक्तवा भक्तिं भगवति भवेदशस्यमाशास्यमस्ति ॥

दूरोद्भव्यद्वलहरीहरिहस्त्युदस्त-

व्यापत्तापत्रिवदशतटिनीमज्जनोन्मज्जनेषु ।

ध्रद्यावन्धं शशाधरशिरःपादराजीवसेवा-

हेवाकैकव्यसनमनसस्तेन तन्वन्ति सन्तः ॥

अत्यन्त नीरस बहुत-से कठोर ( शब्द-स्पर्श-रूप-रस आदि ) विषयोंसे प्राणीको क्या लाभ हो सकता है ! क्षणमें ही विनाश होनेवाले इन ऐहिक धनके विकारोंसे भी क्या लाभ होता है और ‘क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति’ इस प्रकार पुनः-पुनः पतन होनेके कारण उन अत्यन्त नीरस स्वर्णीय भोगोंकी लालसाओंसे भी प्राणीको क्या परम लाभ हो सकता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ! अतः मेरा तो यह निश्चय है कि

इस जन्म-मरण-हृप सांसारिक विपत्तिसे अत्यन्त कातर हुए ग्राणियोंके लिये केवल भगवान् शङ्करकी भक्तिको छोड़ अन्य कोई भी अभिलाषित वस्तु कल्याणदायक नहीं सकती । इसी कारण विद्वान् लोग ( इन सांसारिक क्षणि सुखोंमें आसक्त न होकर ) केवल परमदेवके ही चर कमलोंकी सेवामें तप्तपर रहकर दूरतक फैलेवाली चक्र तरङ्गरूपी भुजाओंसे जीवोंके जन्म-मरणरूपी महाब्यापि अनिवार्य तापोंको दूर करनेवाली भगवती गङ्गाके अवगाहन ही निरन्तर दृढ़ अनुराग करते हैं ।

इन्ताहन्ता प्रथयति मतिहासमासज्जयन्ती

मात्यामायासितसितशमाऽस्यामिनी यामिनीव ।

तस्मादसामान् रविशिकिरिचिर्द्वितोहमधाम

क्षिप्त्वा चक्षुर्मुदितमुदितावन्ध्यबोधाद्यविधेहि ॥

हाय ! अतीव स्वच्छ शम ( जितेन्द्रियता ) को दुर्बल बना देनेवाली और अशानुरूप अन्धकारको पैदा करनेवाली अहंता अत्यन्त विस्तारवती महारात्रिके समान हमारी सद्बुद्धि-का हास करती जा रही है ; इसलिये है दयासामर ! मूर्य, चन्द्रमा और अग्नि—इन तीनों तेजोभय पिण्डोंसे प्रदीप हुए अपनी प्रसाद-भरी दृष्टि ( प्रसन्नादि ) डालकर हमें उग्र अखण्ड तत्त्वज्ञानसे पूर्ण बना दीजिये । ( चुतिपुरुषमाला ७। ९, १०, २३, २४, ३४, ३९, ४०, ४१, ४२, १६, २७ )

## श्रीलक्ष्मीधर

( श्लितिकाल लगभग ईसकी ५ वीं शताब्दीके पूर्व हा. माना जाता है । ये श्रीचुतिहजीके पुत्र और परमहंस श्रीअच्युतानन्दजीके शिष्य ने । )

### भगवत्ताम-निष्ठा

नन्दानन्दकरं करम्बितकरं हैयज्ञवैनैर्वैः  
शोभामादधर्तं नवीनजलदे भीलुसुधादोः स्फुटम् ।  
भक्तानां हृदयस्थितं सततमप्याभीरदग्नोचरं  
गोपालं भजतां मनो मम सदा संसारविचिछित्ये ॥  
वद जिह्वे वद जिह्वे चतुरे श्रीराम रमेति ।  
पुनरपि जिह्वे वद वद जिह्वे वद राम रामेति ॥  
अनादौ संसारे निरवधिकजन्मस्ववित्ते-  
मंहावैरेवान्तश्रितकलुषताया हि वहनम् ।  
महीञ्जाणां भस्माकृतिगहनसंवर्तशिष्ठिनो  
भवत्तामः कुक्षेः कियदिव हरे खण्डनलक्ष्य ॥  
( श्रीभगवत्ताम-कौमुदी )

जो नवीन मालगुणे हाथ भरकर नन्दजीको आनन्द दे

रहे हैं, नूतन मेघमें छिपते हुए चन्द्रमाकी स्फुट शोभाओं धारण करते हैं, सदा अपने भक्तोंके दृदयमें रहते हुए भी वज्रके ग्वालोंके प्रतिदिन दृष्टिगोचर होते हैं, उन भगवान् गोपालको मेरा मन अपने संसारबन्धनका उच्छेद करने के लिये सदा ही भजे ।

अरी बुद्धमती रसने ! त् श्रीराम-श्रीरामः गाह । श्री  
जिह्वे ! त् वारंवार श्राम-रामः रुद्धी रह ।

हे हरे ! अनादि संसारके भीतर अनन्त जग्मोंगे निरन्तर संचित किये हुए महान् पापोंसे मेरे दृदयों जो कालिमा जम गयी है, वह तो आपके नामरूपी प्रनाश अग्नि-के उदरमें तिनकेके एक ढुकड़ेके बराबर भी नहीं हो गती, उसको जलाना क्या बड़ी जात है ! प्रभो ! आपका नाम तो वर्तोंको भी भस्त कर देनेवाले महान् प्रलयानन्दके समान है ।

आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसा-  
माचाण्डालममूकलोकसुलभो वश्यश्च मोक्षश्रियः ।  
नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनारीक्षते  
मन्त्रोऽयं रसनास्पृशेव फलति श्रीरामनामात्मकः ॥  
श्रीरामेति जनार्दनेति जगतां नाथेति नारायणे-  
त्यानन्देति दयाधरेति कमलाकान्तेति कृष्णेति च ।  
श्रीमत्तामहामृताब्धिलहरीकल्लोलमग्नं सुहु-  
र्मुहान्तं गलदश्वधारमवशं भां नाथ नित्यं कुरु ॥  
यह रामनामरूपी मन्त्र शुद्धचेता महात्माओंके चित्तको  
हठात् अपनी ओर आकृष्ट करनेवाला तथा बड़े-से-बड़े पापों-

का भूलोच्छेद करनेवाला है । मोक्षहरिणी लक्ष्मीके लिये ते  
यह वशीकरण ही है । इतना ही नहीं, यह केवल गौँगोंको  
छोड़कर चाण्डालसे लेकर उत्तम जातितके सभी मनुष्योंवे  
लिये सुलभ है । दीक्षा, दक्षिणा, पुरश्चरणका यह तनिक भी  
विचार नहीं करता, यह मन्त्र जिद्वाका स्पर्श करते ही सभीके  
लिये पूर्ण फलद होता है । नाथ ! आप मुझे सदाके लिये  
ऐसी स्थितिमें पहुँचा दें कि मैं श्रीमान्‌के 'श्रीराम !  
जनार्दन ! जगद्धात्म ! नारायण ! आनन्दमय ! दयाधर !  
कमलाकान्त ! कृष्ण ! आदि नामरूपी अमृतसे पूर्ण महा-  
सागरकी लहरोंकी हिलोरोंमें झटकर आँख बहाता हूँआ विवश  
और बेसुध हो जाऊँ ।

## भक्त विल्वमङ्गल

( श्रीलीलाशुक )

( दक्षिण-प्रदेशमें कृष्णवीणा नदी-नेटके एक ग्राममें जन्म, ब्राह्मण, पिताका नाम रामदास )

### मङ्गल-मनोरथ

यावत्त्र मे नरदशा दशमी दशोऽपि  
रन्धादुदेति तिमिरीकृतसर्वभावा ।  
लावण्यकेलिभवनं तव तावदेतु  
लक्ष्म्या समुक्तपितवेषु सुखेन्दुविम्बम् ॥  
आलोकलोचनधिलोकितकेलिभावा-  
नीराजिताग्रसरणे: करुणाम्बुदाशोः ।  
धार्दीणि वेणुनिनदैः प्रतिनादपूरै-  
राकर्णयामि मणिनूपुरविजितानि ॥  
( श्रीकृष्णकाण्डमृत १ । ३८-३९ )

प्रभो ! इसके पूर्व ही कि मेरी अन्यान्य इन्द्रियोंके साथ  
नपन-रन्धोंसे भी मनुष्य-जारीरकी अन्तिम दशा ( मरणावस्था )  
प्रकट ही जाय—जिस अवस्थामें सारी वस्तुएँ अन्धकारमय,  
आहश्य हो जाती हैं—ऐसी कृपा होनी चाहिये कि आपका गोल-  
गोल चाँद-सा मुखङ्गा, जो लावण्यका श्रीडास्थल है और जिसके  
अभरोंसे लगी हुई चाँसुरी ऊँचे स्वरसे बजती रहती है, अपनी  
भगव शोभाके साथ उन नेत्र-रन्धोंके सामने उपस्थित हो  
जाय ! प्रभो ! वह दिन कब होगा जब करुणा-वरुणालय  
आपके आगेके मार्गका श्रीगोपीजनोंके नेत्रोंसे निकलती हुई  
निलासपूर्ण दृष्टिकी परम्परासे नीराजन होता चलेगा और मैं  
भूजते हुए आपके वंशी-नादके साथ-साथ आपके मणिजटित  
पूरोंकी रसमयी ध्वनिको सुनकर निहल होता रहूँगा ।

हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो  
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो ।  
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम  
हा हा कदा तु भवितासि पर्द द्वशोर्मे ॥

( ११४० )

हे देव ! प्रियतम ! एकमात्र जगद्धन्धो ! श्रीकृष्ण !  
चपल ! करुणाके अनुपम सागर ! नाथ ! प्राणराम !  
नयनाभिराम श्याम ! आप हमारे नेत्रगोचर कब होंगे ?

प्रेमदं च मे कामदं च मे वेदनं च मे वैभवं च मे ।  
जीवनं च मे जीवितं च मे दैवतं च मे देव नापरम ॥

( ११५५ )

हे देव ! आपके सिवा मुझे प्रेम-दान करनेवाला, मेरे  
मनोरथ पूर्ण करनेवाला, मेरा अनुभव, ऐक्षर्य, जीवन,  
प्राणधार और देवता अन्य कोई नहीं है ।

परमिमसुपदेशमाद्विद्यध्वं

|                  |                     |
|------------------|---------------------|
| निगमवनेषु        | नितान्तचरितिश्चाः । |
| विचिन्तु भवनेषु  | बल्लवीना-           |
| सुपनिषदर्थसुलखले | निबद्धम् ॥          |

( ११५६ )

उपनिषदोंके बीहड़ जंगलोंमें घूमते-घूमते नितान्त श्रान्त  
हुए लोगों ! मेरे इस सर्वश्रेष्ठ उपदेशको आदरपूर्वक सुनो !

तुम्हें उपनिषदोंके सार-तत्त्व—वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्मकी यदि खोज हो तो उसे ब्रजाङ्गनाओंके घरोंमें ऊखलसे बँधा हुआ देख लो ।

गोपालाजिरकर्दमे विहरसे विश्राध्वरे लज्जसे  
ब्रूपे गोधनहुंकृतैः स्तुतिशतैर्मौनं विधत्से विदाम् ।  
भास्यं गोकुलपुंश्चर्लीपु कुरुपे स्वास्यं न दान्तात्मसु  
ज्ञातं कृष्ण तवाङ्गिपङ्कजयुगं प्रेमाचलं भञ्जुलम् ॥

( २ । ८३ )

श्रीकृष्ण ! तुम ग्वालोंके आँगनकी कीचड़में बड़े चावसे खेलते हो—किंतु वेदपाठी ब्राह्मणोंकी यज्ञशालामें पैर रखनेमें

भी लज्जते हो; गौओं एवं बछड़ोंका शब्द सुनते ही उन्हें हीयो-हीयो करके बड़े प्रेमसे पुकारने लगते हों, किंतु वडे-वहें ज्ञानियोंके सैकड़ों बार स्तुति करनेपर भी तुम्हारे मुखसे एक शब्द भी नहीं निकलता, तुम मौनी बाबा बन जाते हों। गोकुलकी पुंश्चर्लियोंकी गुलामी करनेमें—उनके घरके मामूली से-मामूली काम करनेमें भी अपना अहोभाग्य समझते हों और जिन्होंने योगभ्यासके द्वारा अपने मनको वशमें कर लिया है—ऐसे योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंके स्वामी बननेमें भी सकुचाते हों। उन्हें अपनी सेवाका सौभाग्य नहीं प्रदान करते ! मैंने जग लिया कि तुम्हारे मनोहर चरणरविन्द्र प्रेमते ही वशीभूत होते हैं, अन्य किसी साधनसे उन्हें वशमें करना शक्य नहीं है ।

## श्रीअप्पय दीक्षित

( पितामह आचार्य दीक्षित और पिता रङ्गराजाध्वरि, जन्म सन् १५५० ई०, मृत्यु ७२ वर्षोंकी आयुमें सन् १६२२ ई० ।  
महान् शिव-भक्त और उच्चकोटिके विद्वान् । )

नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः ।  
अस्मज्ञा अपि लभ्याः स्वाज्ञानज्ञानिनो विरलाः ॥  
त्यक्तव्यो ममकारस्यकुं यदि शक्यते नासौ ।  
कर्त्तव्यो ममकारः किन्तु स सर्वत्र कर्त्तव्यः ॥

संसारमें नीति, अदृष्ट, वेद, शास्त्र और ब्रह्म—सबके जाननेवाले मिल सकते हैं; परंतु अपने अज्ञानके जाननेवाले मनुष्य विरले ही हैं। या तो ममत्व विलकुल छोड़ दे और यदि न छोड़ सके, ममत्व करना ही हो, तो सर्वत्र करे ।

अर्कद्वेषप्रभृतिकुसुमैरर्चनं ते विधेयं  
प्राप्य तेन सरहर ! फलं मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः ।  
एतद्जानन्नपि शिव शिव व्यर्थन् कालभात्म-  
आत्मद्वोही करणविवशो भूयसाधः पतमि ॥

मरारे ! आपके पूजनके लिये न तो पैसा चाहिये और न विद्योप सामग्रीकीही अपेक्षा है। आककी डोडियों और धन्द्रोके पुष्पोंसे ही आप प्रसन्न हो जाते हैं ( कौडियोंमें काम धन्द्रोके पुष्पोंसे ही आप प्रसन्न हो जाते हैं )। किंतु आपका पूजन इतना सस्ता होनेपर भी आप होता है। उसके बदलेमेंदेते क्या हैं ? आक और धन्द्रोके विनिमयमें आप उसके बदलेमेंदेते क्या हैं ? आक और धन्द्रोको भी दुर्लभ है। देते हैं मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मी, जो देवताओंको भी दुर्लभ है। कितना सस्ता सौदा है ! इसीलिये तो आप ‘आशुतोष’ एवं ‘औदरदानी’ की उपाधियोंसे विभूषित हैं। किंतु शिव ! शिव !

मैं ऐसा आत्मद्रोही हूँ कि यह सब कुछ जानता हुआ हूँ। अपना जीवन व्यर्थ ही नहीं खो रहा हूँ, अपितु इन्द्रियोंके वशीभूत होकर बार-बार पापोंके गड्ढेमें गिरता हूँ ।

कीर्ता नामास्तरव इति वा किं न सन्ति भ्लेषु  
त्वत्पादाम्भोरुहपरिमलोद्वाहिमन्दनिलेषु ।  
तेष्वेकं वा सूज पुनरिमं नाथ ! दीनार्तिहारि-  
आतोषं ते मृद भवमहाज्ञारनथां लुठन्तम् ॥

नाथ ! जिन-जिन ख्यलोंमें आपके चरण-कमल जाने हैं, उन-उन ख्यलोंमें कीड़े-मकोड़े, साँप-विन्दू, अथवा शंख-झंखाड़ भी तो अवश्य होंगे। यदि और कुछ नहीं तो उर्द्धमें कोई शरीर मुझे दे दें, जिससे उन चरण-कमलोंके मुग्धा गन्धसे समृक्त सुशीतल वायुका मुखकर स्पर्श पाकर मैं धान शरीर और आत्मा—( दोनों ) की तपनकी वृद्धा मर्के गी। सुतस अंगारोंसे पूर्ण भवनदीसे छुटकारा पाऊँ। उन योनिमें मुझे आप, जवतक आपकी इच्छा हो, रस मर्की है। उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी, बन्धक जितने चाहे। समयतक आप मुझे उस शरीरमें रखवेंगे, उतना ही अपन समयतक आप मुझे होगा और मैं अपना अद्योमाग्य नमयूँगा। मेरी इस प्रार्थनाका भी आप मीकार नहीं करेंगे ! करेंगे ।

अनीत पिबत खादत जाग्रत संविशत तिष्ठत वा ।  
सङ्कृदपि चिन्तयताह्वा सावधिको देहबन्ध इति ॥

खाओ, पीओ, जागो, बैठो, अथवा खड़े रहो; पर दिनमें  
एक बार भी यह बात सोच लो कि इस शरीरका नाश निश्चय है।

अयुतं नियुतं चापि प्रदिशन्तु प्राकृताय भोगाय ।  
क्रीणन्ति न विलवदलैः कैवल्यं पञ्चपूर्णदाः ॥  
संसारके भोगके लिये तो मूढ़जन हजारों-लाखों पूर्ण  
कर दिया करते हैं, पर पाँच-छः विलवपत्रोंसे मुक्ति उनसे नहीं  
खरीदी जाती ।

## जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य

( युरुपरम्परागत मठोंके अनुसार आविर्भावकाल ईसासे पूर्व ५०८ या ४७६ वर्ष, पाश्चात्य विद्वानोंके मतानुसार ३०८ नवं द६८ या ७२०, अयु ३२ या ३८ वर्ष, आविर्भावस्थान वैरलप्रदेश । पूर्ण नदीके तटपर कलादि नामक ग्राम । पिताका नाम श्रीशंखरु, माताका नाम श्रीसुभद्रामाता अथवा विशिष्टा । जन्मतिथि वैशाख शुक्ल पञ्चमी । जाति आद्या । तुरु श्रीसामा गोविन्द भगवत्पाद । महात् दर्शनिक विद्वान् और भक्त । अद्वैत-सम्प्रदायके प्रधानतम आचार्य, वे साक्षात् भगवान् शङ्करके शिवाराम भाने जाते हैं । )



### ब्रह्म ही सत्य है

सर्पादौ रज्जुसत्तेव ब्रह्मसत्तैव केवलम् ।  
प्रपञ्चाद्याररूपेण वर्तते तद् जगत् हि ॥  
( स्वात्मप्रकाशिका ६ )

( मिथ्या ) सर्प आदिमें रज्जु-सत्ता-  
की भाँति जगत् के आधार या अधिकार-  
के रूपमें केवल ब्रह्मसत्ता ही है अतएव  
ब्रह्म ही है, जगत् नहीं ।

वटावभासको भानुर्धृतनाशे न नश्यति ।  
देहावभासकः साक्षी देहनाशे न नश्यति ॥  
( स्वात्मप्रकाशिका १४ )

घटका प्रकाश सूर्य करता है; किन्तु घटके नाश होनेपर  
जैसे सूर्यका नाश नहीं होता, वैसे ही देहका प्रकाशक साक्षी  
( आत्मा ) भी देहका नाश होनेपर नष्ट नहीं होता ।

न हि प्रपञ्चो न हि भूतज्ञातं  
न चेन्द्रियं प्राणगणो न देहः ।

न बुद्धिनितं न मनो न कर्ता  
ब्रह्मैव सर्वं परमात्मस्वरूपम् ॥  
( स्वात्मप्रकाशिका १७ )

यह जगत् ( सत्य ) नहीं है, प्राणिसमूह नहीं है, इन्द्रिय नहीं है,  
प्राण ( सत्य ) नहीं है, देह नहीं है, बुद्धिनित नहीं है, मन  
नहीं है, अद्विकार नहीं है, परमात्मस्वरूप ब्रह्म ही ( सत्य ) है ।

### ब्रह्मप्राप्तिके साधन

विवेकिनो विरक्तस्य शम्भिर्गुणशालिनः ।  
भुमुक्षरेव हि ब्रह्मजिज्ञासायोग्यता मता ॥  
( विवेकचूडामणि १७ )

जो सदसदिवेकी, वैराग्यवान्, शम-दमादि पट्टमध्यन्ति-  
युक्त और मुमुक्षु हो, उसीमें ब्रह्मजिज्ञासाकी योग्यता भानी  
जाती है ।

वैराग्यं च मुमुक्षुव्यं तीव्रं यस्य तु विद्यते ।  
तस्मिन्नेवार्थवत्तः स्युः फलवत्तः शमादयः ॥

( विवेकचूडामणि ३० )

जिसमें वैराग्य और मुमुक्षुव्य तीव्र होते हैं, उसीमें  
शमादि चरितार्थ और सफल होते हैं ।

भोक्त्वकारणसामग्रीयां भक्तिरेव गरीयसी ।  
स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते ॥

( विवेकचूडामणि ३२ )

मुक्तिकी कारणरूप सामग्रीमें भक्ति ही सबसे बढ़कर  
है और अपने बास्तविक स्वरूपका अनुसंधान करना ही  
भक्ति कहलाती है ।

अनात्मचिन्तनं त्यक्तेवा कदमलं दुःखकारणम् ।  
चिन्तयात्मानमानन्दरूपं ग्रन्थमुक्तिकारणम् ॥

( विवेकचूडामणि ३८० )

अनात्मपदार्थोंका चिन्तन मोहमय है और दुःखका  
कारण है । उसका त्याग करके मुक्तिके कारण आनन्दरूप  
आत्माका चिन्तन करो ।

### भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप

कन्दर्पकेऽसुभरं वाङ्छितकलदं द्वयार्णवं कृष्णम् ।  
त्यक्त्वा कमन्यविषयं नेत्रयुगं दद्वसुसहस्रे ॥  
पुण्यतमामृतसुरसां मनोऽभिरामां हरेःकथां त्यक्त्वा ।  
श्रोतुं श्रवणद्वन्द्वं ग्राम्यं कथमाद्रं वदति ॥

गौमीणमिन्याणां कृष्णे विषये हि शाश्वतिके ।  
क्षणिकेषु पापकर्णेष्वपि भूत्वात्मे यदन्विषयेषु ॥  
( प्रोपसुषाकर १९१—१९२ )

जो करोड़ों कामदेवोंसे भी सुन्दर हैं जानित कलके  
दास हैं, उन दयासागर श्रीकृष्णको छोड़कर ये उगल नेत्र  
और किंविषयका दर्शन करनेको उत्सुक हैं ! अति पवित्र,  
अति सुन्दर और सरस हरिकथाको छोड़कर ये कर्णेषुगल  
संसारिक विषयोंकी चर्चा सुननेको कभी अद्वा प्रकट करते हैं !  
लहर लिखमान श्रीकृष्णही विषयके रहते हुए भी पापके  
भापन अन्य क्षणिक विषयोंमें जो इन्द्रियाँ आतक होती हैं,  
वह इनका दुर्भाग्य ही है ।

प्रश्नावानि वहूनि फङ्गनभवान् प्रद्युम्नमल्लुतान् ।  
गोवान् वस्तुतानदर्शयदज्ञं विष्णुलोकेष्वां वा ।  
शम्भुर्यज्ञरणोदकृं स्वशिरसा धर्ते च शूर्तिरथान् ।  
कृष्णो वै पृथगसिं कोऽच्युविकृतः सचिन्मयो नीलिमा ॥

( प्रोपसुषाकर २५२ )

जिल्हने रहगीजीको अनेक ब्रह्मण्ड और प्रत्येक ब्रह्मण्डमें  
पुरुक्-पृथक्, अति विचित्र ब्रह्मा, प्रोत्योत्सवित गोव और  
अनन्त विष्णु दिवलये तथा जिसके चरणोदको विवरी  
आपने सिरपर धारण करते हैं वह श्रीकृष्ण मूर्तिरथ ब्रह्मा,  
विष्णु और महादेवसे पृथक् कोई सचिन्मयी निर्विकर  
नीलिमा है ।

### चित्रको प्रदोष

चेताद्वलतां विहारं पुरतः संबाधं कोटिद्वयं  
तत्रैकत्र निधेहि सर्वविषयान्वयं च श्रीरतिम् ।  
विश्रान्तिहृतमप्यहोवच सुतयोर्मर्ये तदलोच्यतां  
भुवल्या ब्राह्मणेन यथा परमानन्दश वत्सेव्यताम् ॥  
पुरान् पौश्रमयस्त्रियोऽन्युपतीर्वित्ताम्बोऽन्यद्वर्तं  
भोज्यादिष्वपि तातात्मवशतो नालं समुकण्ठया ।  
नैवाद्वदुनायके समुदिते जेतस्यभवते विभी  
सान्द्रानन्दसुधापांवे विहृति स्वैरं घरो निर्भयम् ॥  
काम्योपासनयार्थं वन्यसुदिनं केचिक्षलं स्वेषितं  
केचित्सर्वगांमधापवामपरे योगादिक्यशादिः ।  
अस्माकं यदुनन्दनाङ्गिर्युगलातात्रभावार्थीनां  
कि लोकेन दमेव कि शृणिता स्वर्गापवर्तीन्द्र किम् ॥  
आश्रितभावं पुरुषे स्वामिसुखं कर्त्ति श्रीदेवः ।  
लोहमयि सुभकाशमा सम्मुखस्मरं लहै यहू ॥

अथमुख्योऽप्यमवसी जाया रूपेण सम्पदा वयसा  
श्वास्योऽश्वास्ये वेत्य व वेत्य भगवान्मुग्रहावत्ते

( प्रोपसुषाकर २४८ )

अरे विष्णु, नचलताको छोड़कर सामने ताज्जू  
पलङ्गोंमेंसे एकमें तब विषयोंको और दूसरेंमें भगवान्  
को रख और इसका विचार कर कि दोरोंके शीर्षमें  
और हित किरणें हैं । फिर युक्त और अनुभवे  
प्रसानन्द मिले, उसीका सेवन कर । युवा पौत्र ।  
अन्य युतियों, अपना घन, परमन और भोज्यादि प्र-  
मूलाधिक भाव होनेसे कभी इच्छा शान्त नहीं होती ।  
जब धनानन्दामुख्येन्द्रु विष्णु यमुषाक श्रीकृष्ण ।  
प्रकट होकर इच्छाके विहार करते हैं, तब यह वात  
खट्टी, स्वर्णकी उत्त समय चित्त स्वच्छत्व एवं निर्भ  
जात है । कुछ लोग प्रतिदिन उकाम उपासनासे मनोवास  
फलकी प्राप्यता करते हैं और कोई वज्रादिते सर्व  
योगादिषे सोक्षकी कामना करते हैं, किंतु यहनन्द  
चरणयुगलोंके ज्यानमें सावधान रहनेके इच्छुक हमाके लैं  
इन्द्रियसनिहृ, गजा, स्वर्ण और सोलोंके क्षयाप्रोजन है । श्री  
श्रीकृष्ण अपने आश्रित पुरुषको अपनी और वैसे ही लीं  
है, जैसे सामने आये हुए बड़े लोहेको तुम्हक अपनी ३  
खोन्चता है । कुआ करते समय भगवान् यह नहीं विचा  
कि जाति, रूप, धन और असुरे यह उत्तम है या अप  
सुख है या निन्दा ।

मणिरत्मालाके और असोन्तरत्मालिकाके कुट

### प्रश्नोचरोंका अनुयाद

इह कौन है ? विषयात्मक । युक्ति यथा है ? विषयों  
विषय । भयालक नएक बया है ? अपना देव ( देवानि )  
सर्वं यथा है ? तृष्णाका देव ।

संसारवर्गने किसीसे बाटता है ? धुतिगिरित भावानाम्  
सुखाका द्वृत यथा है ? यूर्योक्त आलयान । नर्याना यमाम्  
द्वारा दवा है । नारी ( कामात्मकि — युद्धकी नारीमें भी  
नारीकी पुरुषमें ) । स्वर्णकी प्राप्ति किसमें होती है ?  
जीवोंकी अहिंसे ।

सुखोंसे कौन योता है ? गम्भानिः ( गम्भानि  
निमद्वित्ति ) । ब्राह्म योनि है । सत्-अग्नद्वारा दिवीर्या । यह  
कौन है ? अपनी श्रद्धियाँ, परम् जीव योग ने ही इन्द्रिय  
मिश्र वत् जाती हैं ।

दरिद्र कौन है ? जिसकी तुष्णा बढ़ी हुई है । श्रीमान् (धनी) कौन है ? जो पूर्ण संतोषी है । जीता ही कौन मर चुका है ? उद्धमहीन । अमृत (जीवित) कौन है ? जो (भोगोंसे) निराश है ।

फँसी क्या है ? ममता और अभिमान । मदिराकी भाँति मोहित कौन करती है ? नारी (कामासत्ति) । महान् अन्धा कौन है ? कामातुर । मृत्यु क्या है ? अपना अपयश ।

गुरु कौन है ? जो हितका उपदेश करता है । शिष्य कौन है ? जो गुरुका भक्त है । लंबा रोग क्या है ? भव-रोग । उसके पिटानेकी दबा क्या है ? असत्-सत्का विचार ।

भूषणोंमें उत्तम भूषण क्या है ? सच्चित्रता । परस तीर्थ क्या है ? अपना विचुद्ध मन । कौन बस्तु हैय है ? कामिनी-काञ्छन । सदा क्या सुनना चाहिये ? गुरुका उपदेश और वेदाक्षय । ब्रह्मकी प्रासिके उपाय क्या हैं ? सत्सङ्घ, दान, विचार और संतोष । संत कौन है ? जो समस्त विषयोंसे वीतरण हैं, भोहरहित हैं और शिवस्वरूप ब्रह्मतत्त्वमें निष्ठावान् हैं ! प्राणियोंका ज्वर क्या है ? चिन्ता । मूर्ख कौन है ? विवेकीन । किसको प्रिय बनाना है ? शिव-विष्णु-भक्तिको । गम्भीर जीवन क्या है ? जो दोषवर्जित है ।

विद्या क्या है ? जो ब्रह्मकी प्राप्ति करती है । ज्ञान किसे कहते हैं ? जो मुक्तिका हेतु है । लाभ क्या है ? आत्मज्ञान । जगत्‌को किसने जीता है ? जिसने मनको जीत लिया ।

वीरोंमें महावीर कौन है ? जो कामवाणसे पीड़ित नहीं होता । समतावान्, धीर और प्राज्ञ कौन है ? जो लठना-कटाक्षसे भोहित नहीं होता ।

विषवत्र भी विष क्या है ? समस्त विषय । सदा दुखी नैम है ? विषयानुरागी । धन्य कौन है ? परोपकारी । पूजनीय कौन है ? शिवतत्त्वमें निष्ठावान् ।

गार्भी अवस्थाओंमें क्या नहीं करना चाहिये ? (विवरोंमें) स्नेह और पाप । विद्वानोंको प्रयत्नके साथ क्या करना चाहिये ? शास्त्रका पठन और धर्म । संसारका मूल क्या है ? (विषय- ) चिन्ता ।

जिसका सङ्घ और किसके साथ निवास नहीं करना चाहिये ? मूर्ख, पापी, नीच और खलूका सङ्घ और उनके साथ वास नहीं करे । सुमुक्षु व्यक्तियोंको शीघ्र-से-शीघ्र क्या करना चाहिये ? सत्सङ्घ, निर्भर्ता और ईश्वरभक्ति ।

हीनताका मूल क्या है ? याचना । महत्त्वका मूल क्या है ? अयाचना । किसका जन्म सार्थक है ? जिसका फिर जन्म न हो । अमर कौन है ? जिसकी फिर मृत्यु न हो ।

शब्दोंमें महाग्रन्थ कौन है ? काम, क्रोध, असत्य, लोभ, तुष्णा । विषयमेंसे तृप्ति कौन नहीं होती ? कामना । दुःखका कारण क्या है ? भमता ।

मृत्यु समीप होनेपर बुद्धिमान् पुरुषको क्या करना चाहिये ? तन, मन, वचनके द्वारा यमके भयका निवारण करनेवाले सुखदायक श्रीहरिके चरणकमलोंका चिन्तन ।

दिन-रात ध्येय क्या है ? संसारकी अनित्यता और आत्मस्वरूप शिवतत्त्व । कर्म किसे कहते हैं ? जो श्रीबृह्णके लिये प्रीतिकर हो । सदा किसमें अनास्था करनी चाहिये ? भवसमुद्गमें ।

मार्गका पथेय क्या है ? धर्म । पवित्र कौन है ? जिसका मन पवित्र है । पण्डित कौन है ? विवेकी । विष क्या है ? गुरुजनों (बड़ों) का अपमान ।

मदिराके समान मोहजनक क्या है ? स्नेह । डाकू कौन है ? विषयसमूह । संसार-न्वेल क्या है ? विषय-तृष्णा । शत्रु कौन है ? उद्योगका अभाव (अकर्मण्यता) ।

कमलपत्रपर स्थित जलकी तरह चञ्चल क्या है ? यौवन, धन और आशु । चन्द्रकिरणोंके समान निर्मल कौन है ? संत-महात्मा ।

नरक क्या है ? परब्रह्मता । सुख क्या है ? समस्त सङ्घोंका त्यग । सत्य क्या है ? जिसके द्वारा प्राणियोंका हित हो । प्राणियोंके प्रिय क्या है ? प्राण ।

(यथार्थ) दान क्या है ? कामनारहित दान । मित्र कौन है ? जो पापसे हटाये । आभूषण क्या है ? शील । वाणीका भूषण क्या है ? सत्य ।

अनर्थकारी कौन है ? मान । सुखदायक कौन है ? सज्जनोंकी मित्रता । समस्त व्यसनोंके नाशमें कौन समर्थ है ? सर्वदा स्यागी ।

अन्धा कौन है ? जो अकर्तव्यमें लगा है । वहिरा कौन है ? जो हितकी वास नहीं सुनता । गूँगा कौन है ? जो समयपर प्रिय वचन बोलना नहीं जानता ।

मरण क्या है ? मूर्खता । अमूल्य वस्तु क्या है ? उपमुक्त अवसरका दान । मरते समयतक क्या चुमता है ? गुप पाप ।

गाधु कौन है ? मध्यरिति । अधम कौन है ? चरित्रहीन । त्रगत्यो जीतनेमें कौन समर्थ है ? मत्यनिष्ठ और सहनदील (धर्माधान) । शोचनीय क्या है ? धन होनेपर भी कृपणता । प्रशंसनीय क्या है ? उदारता । पण्डितोंमें पूजनीय कौन है ? गदा स्वाभाविक विनयी ।

तमोगुणगहित पुरुष वारन्वार जिसका व्यवान करते हैं, वह 'न्तुर्भृद' क्या है ? प्रिय बचनके साथ दान, गर्वरहित गान, धमायुक्त शूरता और त्यागयुक्त धन—यह दुर्लभ चतुर्भृद है ।

गत-दिन ध्येय क्या है ? भगवच्चरण, न कि संसार । अँखें होते हुए अन्धे कौन है ? नास्तिक ।

पुरुषोंको सदा किसका स्मरण करना चाहिये ? हरिनामका । सदबुद्धि पुरुषोंको क्या नहीं कहना चाहिये ?

पराया दोप तथा मिथ्या ब्रात ।

मुक्ति किससे मिलती है ? मुकुन्दपक्षिसे । मुकुन्द कौन है ? जो अविद्यासे तार देता है । अविद्या क्या है ? आत्माकी स्फूर्ति न होना ।

मायी कौन है ? परमेश्वर । इन्द्रजालकी तरह क्या बस्तु है ? जगत्-प्रपञ्च । स्वप्नतुल्य क्या है ? जाग्रत् का व्यवहार । सत्य क्या है ? ब्रह्म ।

प्रत्यक्ष देवता कौन है ? माता । पूज्य और गुरु कौन है ? पिता । सर्वदेवतास्वरूप कौन है ? विद्या और कर्मसे गुरु ब्राह्मण ।

भगवद्गुरुका फल क्या है ? भगवद्गामकी प्राप्ति गा स्वरूपसाक्षात्कार । मोक्ष क्या है ? अविद्याकी मित्रिति । समस्त वेदोंमें प्रधान क्या है ? ओंकार ।

### श्रीयामुनाचार्य

( श्रीवैष्णवसम्प्रदायके महान् आचार्य, श्रीनाथनुनिके पौत्र और श्रीईश्वरसुनिके पुत्र । आविर्भाव १०१० वि० सं०, शान वीर-नारायणपुर (मुदुरा) । यतिराज श्रीरामानुजाचार्यके परम गुरु )

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवैदी  
न भक्तिमास्त्वक्षरणारविन्दे ।  
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्ये  
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ॥  
न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके  
सहस्रो यत्र मया व्यधायि ।  
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द  
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्त्वाग्रे ॥

निमज्जतोऽनन्तभवार्णवान्त-  
श्रीराय मे कूलमिवासि लब्धः ।  
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानी-  
मनुक्तमं पात्रमिदं दयायाः ॥  
( श्रीआलबन्दारसोन्न ३०० २५, २६, २७ )

मैं न धर्मनिष्ठ हूँ न आत्मजानी हूँ, और न आपके चरणारविन्दोंका भक्त ही हूँ । मैं तो अकिञ्चन हूँ, अनन्यगति हूँ और दरणारवत्रक आपके चरणकमलोंकी शरण आया हूँ । और दरणारवत्रक आपके चरणकमलोंकी शरण आया हूँ । मैं सारमें ऐसा कोई निन्दित कर्म नहीं है, जिसको हजारों वार मैंने न किया है । ऐसा मैं अब फलभोगके समयपर विवश हूँ है ! हजारों अपराधोंमें भग तुझा ने भर्या है ।

रोता—क्रन्दन करता हूँ । अनन्त महासागरके भीतर हृथरे हुए मुझको आज अति विलम्बसे आप तटरूप होकर मिले हैं औरं मंगवन् । आपको भी आज यह दयाका अनुपम पात्र मिले हैं ।

अभूतपूर्वं भस्म भावि किं वा  
सर्वं सहे मे सद्गं हि दुःखम् ।  
किं तु त्वदग्रे शरणागतानां  
प्राभचो नाथ न तेऽनुरूपः ॥  
( आलबन्दार शो० २८ )

हे नाथ ! नुक्खपर जो कुछ बीत चुका है, उससे विलगा कौन-सा नृतन दुःख अब मुझे मिलेगा । मेरे लिये मौं भी कष्ट नया नहीं है, सब कुछ भोग चुका हूँ । जो होगा, सब सह लेंगा; दुःख तो मेरे साथ ही उत्पन्न हुआ है । परन्तु आपकी शरणमें आये हुएका आपके सामने ही अपगमन हो । यह आपको शोभा नहीं देता—अतः मेरे उत्तरामें देर न लगाएं ।

अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णयोदये ।  
अगति दरणागतं हरे कृपया केवलमात्रमात्मामुक्त ॥  
( आलबन्दार शो० २९ )

हे हरे ! हजारों अपराधोंमें भग तुझा ने भर्या है ।



मगान् ऐश्वर्यसे युक्त श्रीगज्जारायण ! हे वैदुष्टनाथ ! आप अपार करुणा, सुशील्ता, वत्सलता, उदारता, ऐश्वर्य और सौन्दर्य आदि गुणोंके महासागर हैं; छोटे-बड़ेका विचार न करके सामान्यतः सभी लोगोंको आप शरण देते हैं, प्रणतजनोंकी पीड़ा हर लेते हैं। शरणागतोंके लिये तो आप वत्सलताके गमुद्र ही हैं। आप सदा ही समस्त भूतोंकी यथार्थताका ज्ञान रखते हैं। सामूर्ण चराचर भूतोंके सारे नियमों और समस्त जड़-चेतन वस्तुओंके आप अवयवी हैं (ये सभी आपके अवयव हैं)। आप समस्त संसारके आधार हैं, अखिल जगत् तथा हम सभी लोगोंके स्वामी हैं। आपकी कामनाएँ पूर्ण और आपका संकल्प सच्चा है। आप समस्त प्रपञ्चसे भिन्न और विलयण हैं। शाचकोंके तो आप कल्पवृक्ष हैं, विषयोंमें फड़े हुए लोगोंके सहायक हैं। पेसी महिमावाले तथा आश्रयहीनोंको आश्रय देनेवाले हे श्रीगज्जारायण ! मैं आपके चरणारविन्द-युगलकी शरणमें आता हूँ; क्योंकि उनके लिवा मेरे लिये कहीं भी शरण नहीं है।

पितरं मातरं दारान् पुत्रान् बन्धून् सखीन् गुरुन् ।

रक्षनि धनधान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च ॥

सर्वधर्माश्च संत्यज्य सर्वकामाश्च साक्षराम् ।

लोकविकान्तचरणौ शरणं तेऽवजं विभो ॥

‘हे प्रभो ! मैं पिता, माता, सौ, पुत्र, बन्धु, मित्र, गुरु, रक्ष, शशि, धन-धान्य, खेत, घर, सारे धर्म और अद्विनशी मोक्षपद-सहित समूर्ण कामनाओंका त्यागकर समस्त ब्रह्माण्डको आक्रान्त करनेवाले आपके दोनों चरणोंकी शरणमें आया हूँ।’

मनोवाक्यैरनादिकालप्रवृत्तानन्ताकृत्यकरणकृत्यकरण-भगवदपचारभागदत्तापचारासहायपचारसूपनानाविधानन्तापचारानारूपकार्यविनारचनकार्यान् कुत्सान् क्रियमाणान् करिष्यमाणांश्च सर्वान् अर्थातः क्षमस्व ।

अनादिकालप्रवृत्तविषरीतज्ञानमात्मविषयं कृत्स्नजगद्विषयं च विषरीतवृत्तं चाशेषविषयमव्यापि वर्तमानं वर्तिष्यमाणं च सर्वं क्षमस्व ।

मदीयनादिकर्मप्रवाहप्रवृत्तां भगवत्स्वरूपतिरोधानकर्त्तव्यिषरीतज्ञनन्तर्नीस्त्रविषयायाश्र भोग्यदुर्जनन्तर्नी देहेन्द्रियत्वेन भोग्यत्वेन सूक्ष्मरूपेण चावस्थितं दैवीं गुणमर्थी मायां दास-भूतः शरणागतोऽस्मि तत्वस्मि दास इति वक्तारं मां तापय ।

( शरणागतिग्रन्थ )

हे भगवन् ! मन, वाणी और शरीरके द्वारा अनादि कालसे अनेकों न करने योग्य कर्मोंका करना, करने योग्य

कर्मोंको न करना, भगवान्का अपराध, भगवद्गतोंका अपराध तथा और भी जो अक्षम्य अनाचारहृष्प नाना प्रकारके अनत अपराध सुझसे हुए हैं, उनमें जो प्रारब्ध वन् सुके हैं अथवा जो प्रारब्ध नहीं बने हैं, उन सभी पापोंको तथा जिन्हें कर चुका हूँ, जिन्हें कर रहा हूँ और जिन्हें अभी करनेवाल हूँ, उन सबको आप क्षमा कर दीजिये ।

‘आत्मा और सारे संसारके विषयों जो मुझे अनादि कालसे विपरीत ज्ञान होता चला आ रहा है तथा सभी विषयोंमें जो मेरा विपरीत आचरण आज भी है और आगे भी रहने-वाल्य है, वह सब-का-सब आप क्षमा कर दें ।’

‘मेरे अनादि कर्मोंके प्रवाहमें जो चली आ रही है, जो सुझसे भगवान्के त्वरूपको छिया लेती है, जो विपरीत ज्ञान-की जननी, अपने विषयोंमें भोग्य-दुदिको उत्पन्न करनेवाली और देह, इन्द्रिय, भोग्य तथा सूक्ष्मरूपसे स्थित रहनेवाली है, उस दैवी विगुणमयी मायासे भैं आपका दास हूँ, किन्तु हूँ, आपकी शरणमें आया हूँ’ इस प्रकार ए लगानेवाले मुझ दीनका आप उद्धार कर दीजिये ।’ ( गुपत्रय )

( प्रेषक—दा० श्रीकृष्णदत्त भारद्वाज, एम्-ए०, फी-ए०-३०, आनार्य, शाली, साहित्यरत )

मातापितृसहस्रोऽपि वस्त्वत्वरं शास्त्रम् ।

शास्त्र हमें इतना प्यार करता है जितना सहस्री माता-पिता भी नहीं कर सकते ।

यथाभूतवादि हि शास्त्रम् ।

शास्त्र हमें वैसी ही वात वताता है जैसी वह है ।

यथा ज्ञानाद्यः परस्य वृद्ध्याः स्वरूपतया निर्देशान् स्वरूपभूतगुणस्थेदमपि रूपं श्रुत्वा स्वरूपतया निर्देशान् स्वरूपभूतम् ।

ज्ञान, आनन्द, सत्यकाम, सत्यसंकल्प आदि गुण परं व्रह्मके स्वरूपभूत सुन हैं; क्योंकि शास्त्र ( वेद ) ने उन्हें स्वरूपभूत कहा है; इसी प्रकार यह ( शद्व-क्रमाग्राम-पाणि-वनमाला-विमृप्ति, अमल-कमल-दल-नयन-युगल, परम-धारी वनमाला-विमृप्ति, अमल-कमल-दल-नयन-युगल, परम-सुन्दर ) रूप भी परमहंसा स्वरूपभूत रूप हैं; क्योंकि शास्त्रने इसे स्वरूपभूत वताया है ।

वासुदेवस्य निरिलजगदुपकारय स्वेन्द्र्या स्वेन्द्र्य रूपं देवादिपत्रतारः ।

समस्त संसारके कल्पाणके लिये भगवान् वासुदेव अपनी इच्छासे, अपने ही रूपमें, देव आदिमें अवतार लेने हैं ।

इयमेव भक्तिरूपा सेवा ब्रह्मविद्या ।

यह भक्तिरूपा आराधना ही ब्रह्मविद्या है।

शारीरक्षेऽपि भाव्ये या गोपिता शरणागतिः ।

अन्न गद्यन्नये व्यक्तां तां चिद्यां प्रणतोऽस्म्यहम् ॥

त्रहसुत्रके भाष्यमें भी शरणाभिति-विद्याको मैंने गुप्त ही रखा। किंतु गद्यत्रय नामक मेरे ग्रन्थमें वह प्रकट हो गयी है। मैं उस विद्याको प्रणाम करता हूँ।

अनन्तानन्तवायनं पुराणपुस्थोत्तम ।

रहुनाथ जगन्नाथ नाथ तुम्हर्य नमो नमः ॥

हे अनन्त, हे शेषशायिन्, हे सनातन, हे पुरुषोत्तम,  
हे रुद्रनाथ, हे जगद्वाथ, हे नाथ! आपको बार-बार नमस्कर !

तवानुभवित्वमभवत्प्रीतिकारित्वास्तुम्

देहि मे क्रपया नाथ न जाने गतिमन्यथा ॥

हे नाथ, कृपा करके मुझे अपना सेवक बना लीजिये ।  
मुझे अपनी दासता, किंकरताका दान दे दीजिये । कैसी  
दासता ? जो कि प्रीतिसे होती है—प्रेम जिमको करा देता  
है । कैसा प्रेम ? आपके अनुभवसे होनेवाला । मैं अनन्त  
लादण्य, अपार माधुर्य, परम सौन्दर्यकी प्रतिशब्द आपकी  
दिव्य मूर्तिका एवं आपके अनन्त सौशील्य, बास्तव्य आदि  
गुणोंका अनुभव करूँ । वह अनुभव ऐसा होगा कि मेरे  
हृदयमें आपके प्रति तैलधारके समान अविनिष्ठन प्रेम लहरा  
देगा । वह प्रेम मुझसे आपकी सेवा करायेगा । मैं उस प्रेममें  
विभोर होकर आपकी सेवा-भपर्या, भजन-भक्ति करूँगा । आप-  
की ऐसी सुन्दर सेवा-भक्तिके अतिरिक्त मुझे अन्य कोई उपाय  
अपने उद्घारका और अन्य कोई लक्ष्य अपने जीवनका नहीं  
रखा रहा है । यह सेवा ही मेरी गति है—उपाय है और  
जीवनका लक्ष्य है ।

जगद्गुरु श्रीनिष्ठार्काचार्य

( अविभाव—भक्तोंके विश्वासानुसार द्वापरयुग । वर्तमान अन्येषकोंके मतानुसार ग्यारहवीं शताब्दी । कुछ महानुभावोंके मतानुसार पाँचवीं शताब्दी । जन्म—दिक्षिण देशमें गोदावरीके तटपर वैद्यर्यपत्तनके तिकट अरण्याश्रममें श्रीअरुण सुनिकी पली श्रीजक्षीदेवीके गर्भसे । कोइ-कोई आपके पिताज्ञा नाम श्रीजग्नाथ बताते हैं । हैताहैतपाके आचार्य, महान् दार्शनिक विदान्, महात् भक्त, इन्हें सूर्यका, किंतु-किंसिके मतमें भगवानके प्रिय आत्मुत्थ सुदर्शनचक्रका अवतार माना जाता है । )

ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं

शारीरसंयोगवियोगयोग्यम् ।

अणु हि जीवं प्रतिदेहसिन्धं

ज्ञातुत्त्ववन्ते यमनन्तमहुः ॥

जीव ज्ञानस्वरूप है, वह भगवान् श्रीहरिके  
अधीन है। उसमें एक शरीरको छोड़कर दूसरे  
नूतन शरीरको ग्रहण करनेकी योग्यता है। वह  
प्रत्येक शरीरमें मिश्र, अणु, ज्ञानयुक्त और अनन्त  
वत्तया गया है।

अनादिमायापरिवर्त्तकरूपं

त्वेत विद्यै भगवत्प्रसादात् ।

मुक्त ए बहु किल बहुमुक्त

प्रभेदुवाहूल्यसधापि वौध्यम् ॥

जीवको अनादिमायासे संयुक्त भाना गया है। भगवान्‌की कुपसे ही इसके स्वरूपका शान होता है। जीवोंमेंसे कुछ नित्यमुक्त हैं, कुछ वद्ध हैं और कुछ पहले ब्रह्मनमें रहकर पीछे



भगवत्कृपासे मुक्त हो गये हैं, ऐसे जीवोंकी बद्धमुक्त संज्ञा है। इस प्रकार जीवोंके वहुत-से भेद जानने चाहिये।

अप्राकृतं प्राकृतरूपकं च

कालस्त्ररूपं तदचेतनं सत्त्वा ।

मायाप्रधानदिवद्विवाच्यं

गुह्यादिभेदाश्च समेऽपि तत्र ॥

अचेतन तत्त्व सामान्यतः तीन प्रकारका माना गया है—अप्राकृत, प्राकृतरूप तथा काल (क्षण, लव, निमेषादि) स्वरूप। (अप्राकृत तत्त्व त्रिसुणात्मक प्रकृति और कालसे विलक्षण है।) प्राकृतरूप जो अचेतन तत्त्व है, वह माया और प्रधान आदि पदोंद्वारा कहा जाता है। शुक्र, रक्त और कृष्ण (सत्त्व, रज और तम) —ये सभी मेद उसी (प्राकृत रूप) में हैं।

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोप-

मशेषकल्याणगुणेकराशिम्

## जगद्गुरु श्रीविल्लभाचार्य

(वैष्णव द्वैत-सम्प्रदायके महान् आचार्य, आविर्भाव वि० सं० १२९५ मध्य शु० ७ ( कई लोग आश्चिन शुड्डा १० को भी इनका जन्म-स्थिति समान है ) । स्थान भद्रासप्रान्तके मंगल्कुर जिल्हे के अन्तर्गत उड्डीपीक्षीन से दो-तीन मील दूर बेललि ( या बेलि ) ग्राम । पिताका नाम श्रीनारायण या मधिजी भट्ट । भार्गवगोत्रीय, माताका नाम वेदवती । इन्हें वा पुदेवताका अवतार माना जाता है । )



श्रीभगवान्का नित्य-निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिये, जिससे अन्तकालमें उनकी विस्मृति न हो; क्योंकि सैकड़ों विच्छुओंके एक साथ डंक भारनेसे शरीरमें जैसी पीड़ा होती है, मरणकालमें मनुष्यको वैसी ही पीड़ा होती है, वात, पित्त, कफसे कष्ठ अवश्य हो जाता है और नाना प्रकारके सांतारिक पाशोंसे जकड़े रहनेके कारण मनुष्यको बड़ी घबराहट हो जाती है । ऐसे समयमें भगवान्की स्मृतिको श्रवणे रखना बड़ा कठिन हो जाता है । ( द्वा० स्तो० १ । १२ )

सुख-दुःखोंकी स्थिति कर्मनुसार होनेसे उनका अनुभव समीकै लिये अनिवार्य है । इसीलिये सुखका अनुभव करते समय भी भगवान्को न भूलो तथा दुःखकालमें भी उनकी मिन्दा न करो । वेद-शास्त्रसम्मत कर्ममार्गपर अटल रहो । कोई भी कर्म करते समय बड़े दीनभावसे भगवान्का स्मरण करो । भगवान् ही सबसे बड़े, सबके गुरु तथा जगत्के

माता-पिता हैं । इसीलिये अपने गारे कर्म उन्होंके अर्पण करने चाहिये । ( द्वा० स्तो० ३ । १ )

व्यर्थकी सांसारिक झंझटोंके चिन्तनमें अपना अमूल्य समय नष्ट न करो । भगवान्में ही अपने अन्तःकरणको लीन करो । विचार, श्रवण, ध्यान, स्वावनसे बढ़कर संसारमें अन्य कोई पदार्थ नहीं है । ( द्वा० स्तो० ३ । २ )

भगवान्के चरणकमलोंका स्मरण करनेकी चेष्टामात्रसे ही तुम्हारे पाँवेंका पर्वत-सा देर नष्ट हो जायगा । फिर स्मरणसे तो मोक्ष होगा ही, यह स्पष्ट है । ऐसे सरणका परित्याग दयों करते हो । ( द्वा० स्तो० ३ । ३ )

सज्जनो ! हमारी निर्मल वाणी सुनो । दोनों हाथ उठाकर शरथपूर्वक हम कहते हैं कि 'भगवान्की वरावरी करनेवाला भी इस चरन्तरजगत्में कोई नहीं है । फिर उनसे श्रेष्ठ तो कोई हो ही कैसे सकता है । वे ही सबसे श्रेष्ठ हैं ।' ( द्वा० स्तो० ३ । ४ )

यदि भगवान् सबसे श्रेष्ठ न होते तो समस्त संसार उनके अधीन किस प्रकार रहता और यदि समस्त संसार उनके अधीन न होता तो संपादके सभी प्राणियोंको सदा-सर्वदा सुखकी ही अनुभूति होनी चाहिये थी । ( द्वा० स्तो० ३ । ५ )

## जगद्गुरु श्रीविल्लभाचार्य

( प्रेषक—प० श्रीकृष्णचन्द्रजी शाळी, साहिलरल )

( आविर्भाव वि० सं० १५३५ वैशाख कृ० ११ । स्थान चम्पारण । उत्तरादि तैलंग वास्तव । पिताका नाम लक्ष्मणभट्टजी, माताका नाम श्रीदल्लभा गारु । तिरोभाव वि० सं० १५८७ आपाह शु० ३, काशी । उत्र ५२ वर्ष । शुद्धादैत सम्प्रशय या पुष्टिमार्गके प्रवान आचार्य, महान् दार्शनिक विद्वान् और परम भक्त, इन्हें साक्षात् भगवान्का, कई महानुभावोंके मतसे जश्निदेवका अवतार मानते हैं । )

अहंताममतानाशे

सर्वथा निरहंकृतौ ।

स्वस्वप्त्यो यदा जीवः

कुरार्थः स निराद्यते ॥

अहंताममताके नाश होनेपर भैं  
कुछ भी नहीं करता, इस प्रकार सम्पूर्ण  
अहंकारके निवृत्त होनेपर जीवात्मा  
जय आने स्वस्पृष्टमें स्थित अर्थात् आत्मशानमें निष्ठावान् होता



है, तब वह जीव कृतार्थ ( मुक्त ) कहा जाता है । कृपणसेवा सदा कर्त्ता मानसी सा परा मता ।

श्रीकृष्णकी सेवा निरन्तर करते रहना चाहिये, उसमें मानसी सेवा सबसे उत्तम मानी जाती है ।

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तस्मिन्दद्यै तनुवित्तजा ।  
ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिवृहस्योधनम् ॥

पूर्णल्पसे चित्तको ग्रन्थमें तल्लीन कर देना ही सेवा है । उसकी मिथिके लिये तनुजा ( शरीरसे ) एवं वित्तजा ( धनसे )

ज्यूदाक्षिणे द्रष्टु परं विशेषं  
ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् ॥

जिसमें स्वभावमें ही भगवत् दोषोंवाला धर्माव है तथा जो भगवत् कल्याणमय गुणोंके एकमात्र समुदाय है। वासुदेव, मंकर्ण, प्रशुभ और अनिश्चद—ये चारों व्यूह जिनके अङ्गभूत हैं तथा जो सर्वश्रेष्ठ परमहात्मरूप हैं, उन पापहरी कमलनयन मन्त्रिदानन्दप्रगम भगवान् श्रीकृष्णका हम चिन्तन करें।

अहो तु वासि वृषभातुजां सुदा  
विशज्जामानामगुरुपतौभगाम् ।  
सखीसहस्रैः परिसेवितं सदा  
सरेम देवीं सकलेष्टकामदीम् ॥

जो उन्हीं श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके वासाङ्गमें प्रसन्नता-पूर्वक विराजमान हो रही हैं, जिनका रूप-शील-कौमाण्य अपने प्रियतमके सर्वथा अनुरूप है, सहस्रों सखियों सदा जिनकी सेवाके लिये उद्यत रहती हैं, उन सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको देनेवाली देवी वृषभातुनन्दिनी श्रीराधाका हम सदा स्मरण करें।

उपासनीयं नितरां जनैः सदा  
प्रह्लादेऽज्ञानतमोऽनुवृत्ते: ।  
सनन्दगार्हीर्मुनिभिस्थोत्तं  
श्रीनारदाद्याखिलतत्त्वसाक्षिणे ॥

अज्ञानान्धकारकी परमप्रकाका नाश करनेके लिये सब लोगोंको सदा इस युगलस्वरूपकी निरन्तर उपासना करनी चाहिये। सनन्दनादि मुनियोंने सम्पूर्ण तत्त्वोंके शाता श्रीनारदजीको यही उपदेश दिया था।

सर्वं हि विज्ञानमतो वयार्थकं  
श्रुतिस्त्रृतिभ्यो निविलस्य वस्तुनः ।  
ब्रह्मात्मकव्यादिति वेदविन्मत्तं  
त्रिरूपतापि श्रुतिसूक्ष्माधिता ॥

श्रुतियों और स्मृतियोंसे यह तिदृश है कि सम्पूर्ण वस्तुएँ ब्रह्मस्वरूप हैं। इसलिये सरा विज्ञान वयार्थ है ( मिथ्या या श्रम नहीं ) —यही वेदवेत्ताओंका मत है। एक ही ब्रह्म चित्;

अनित् एवं इस दोनोंसे विलक्षण परब्रह्मस्वरूपसे लिखित होमें स्थित है। यह वात भी श्रुतियों तथा ब्रह्मसे प्रमाणोंद्वारा तिदृश की गयी है।

जल्या गतिः कृष्णदारविन्दितात्  
संदृशते ब्रह्मशिवादिविन्दितात् ।  
भक्तेऽच्छायापात्त्वमुचित्यविग्रहात्  
दिवित्यशक्तेऽरविचित्यसाशयात् ॥

ब्रह्मा और शिव आदि देवेशर भी जिनकी कल्पना करते हैं, जो भक्तोंकी इच्छाके अनुसार परम मुन्दर एवं नित्य करनेयोग्य छीलाशरीर धरण करते हैं, जिनकी शक्ति अनित् है तथा जिनके अभिप्रायको उनकी कृपाके लिया कोई न जान सकता; उन श्रीकृष्णचरणरविदोंके सिवा जीव दूसरी कोई गति नहीं दिखाती देती।

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते  
यथा भवेत् प्रेमविशेषलक्षणा ।  
भक्तिर्वृत्त्वाधिपतेनेहात्मतः:  
सा चौतमा साधनस्थिका परा ॥

जिसमें दीनता और अभिमानशून्यता आदि महसूस होते हैं, ऐसे जीवपर भगवान् श्रीकृष्णकी विद्योग दृष्टा हो जिससे उसके हृदयमें उन सर्वेश्वर परमात्माके भरणे प्रति प्रेमलक्षणा भक्तिका उदय होता है। वही उत्तम प्राथ्य भक्ति है। उससे मित्र जो भक्तोंके अन्य प्रकार साध्य भक्ति है। उससे साधनप्रक्रियके अन्तर्गत हैं।

उपास्यरूपं तदुपासकस्य च  
कृपाकलं भक्तिसमतः परम् ।  
विशेषिनो रूपमयैतदाप्ते-  
ज्ञेया इमेऽधी अपि पत्रं सामृद्धिः ॥

उपासनीय परमात्मा श्रीकृष्णका स्वरूप, उनके उपर्युक्त जीवका स्वरूप, भगवान् की इमाका पत्र, तदनतर भावकरण आस्तादन तथा भगवत्प्राप्तिके विशेषी भावका परम— साधकोंको इन पाँच वर्णतुर्भूमिका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

## जगद्गुरु श्रीमध्वाचार्य

(वैष्णव द्वैत-सम्प्रदायके महान् आचार्य, आविर्भाव वि० सं० १२९५ ग्रा० ७ ( कई लोग आभिन्न शुश्रा० १० को भी इनका अन्म-दिवस मानते हैं ) । स्थान मद्रासप्रान्तके मंगलुर जिलेके अन्तर्गत उड्डीपीक्षेत्रसे दो-तीन मील दूर वेळलि ( या वेलि ) ग्राम । पिताका नाम श्रीनारायण या मध्वी मट्ट । भार्गवोत्त्रेय, माताका नाम वेदवती । इन्हें दो युद्धेवताका अवतार माना जाता है । )



श्रीभगवान्का नित्यनिरन्तर सरण करते रहना चाहिये, जिससे अन्तकालमें उनकी विस्मृति न हो; क्योंकि सैकड़ों विच्छुओंके एक साथ डंक मारनेसे शरीरमें जैसी पीड़ा होती है, मरणकालमें सनुष्यको वैसी ही पीड़ा होती है, बात, पितृ, कफसे कण्ठ

अवसर्द्ध हो जाता है और नाना प्रकारके सांघारिक पाशोंसे जकड़े रहनेके कारण मनुष्यको बड़ी धन्यराहट हो जाती है । ऐसे समयमें भगवान्की स्मृतिको वनस्थे रखना बड़ा कठिन हो जाता है । ( द्वा० स्तो० १ । १२ )

सुख-दुःखोंकी स्थिति कर्मानुसार होनेसे उनका अनुभव सभीके लिये अनिवार्य है । इसीलिये सुखका अनुभव करते समय भी भगवान्को न भूले तथा दुःखकालमें भी उनकी मिन्दा न करो । वेद-शास्त्रसम्मत कर्ममार्गपर अद्यल रहो । कोई भी कर्म करते समय बड़े दीनभावसे भगवान्का सरण करो । भगवान् ही सबसे बड़े, सबके गुरु तथा जगत्के

भाता-पिता हैं । इसीलिये अपने सारे कर्म उन्हके अर्थात् करने चाहिये । ( द्वा० स्तो० ३ । १ )

व्यर्थकी सांसारिक झंझटोंके चिन्तनमें अपना अमूल्य समय नष्ट न करो । भगवान्में ही अपने अन्तःकरणको लीन करो । विचार, शब्दन, ध्यान, स्तवनसे बढ़कर संसारमें अन्य कोई पदार्थ नहीं है । ( द्वा० स्तो० ३ । २ )

भगवान्के चरणकमलोंका सरण करनेकी चेष्टामात्रसे ही तुम्हारे पापोंका पर्वत-सा द्वेर नष्ट हो जायगा । किर सरणसे तो मोक्ष होगा ही, यह स्पष्ट है । ऐसे सरणका परित्याग क्यों करते हो । ( द्वा० स्तो० ३ । ३ )

सज्जो ! हमारी निर्मल वाणी सुनो । दोनों हाथ उठाकर शाश्वपूर्वक हम कहते हैं कि भगवान्की वरावरी करनेवाला भी इस चराचर जगत्में कोई नहीं है । किर उनसे श्रेष्ठ तो कोई होही कैसे सकता है । वे ही सबसे श्रेष्ठ हैं । ( द्वा० स्तो० ३ । ४ )

यदि भगवान् सबसे श्रेष्ठ न होते तो समस्त संसार उनके अधीन किस प्रकार रहता और यदि समस्त संसार उनके अधीन न होता तो संसारके सभी प्राणियोंको सदा-सर्वदा सुखकी ही अनुभूति होनी चाहिये थी । ( द्वा० स्तो० ३ । ५ )

## जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य

( प्रेषक—पं० श्रीकृष्णबन्दुजी शास्त्री, साहित्यरत्न )

( आविर्भाव वि० सं० १५३५ वैशाख कृ० ११ । स्थान चम्पारण । उत्तरादि तैलंग ब्राह्मण । पिताका नाम लक्षणभट्टजी, माताका नाम श्रीइष्टन्मा गारु । तिरोभाव वि० सं० १५८७ आषाढ़ कृ० ३, काशी । उम्र ५२ वर्ष । शुद्धादैत सम्प्रदाय या पुष्टिमार्गके प्रधान आचार्य, महान् दार्शनिक विद्वान् और परम भक्त, इन्हें साक्षात् भगवान्का, कई महानुसारोंके मतसे अविद्येवता अवतार मानते हैं । )

अहंताममतानादो

सर्वथा निरहंकृतौ ।

स्वरूपस्य यदा जीवः

कृतार्थः स निगद्यते ॥

अहंता-ममताके नाश होनेपर मैं  
कुछ भी नहीं करता, इस प्रकार सम्पूर्ण  
अहंकारके निष्टुत होनेपर जीवात्मा  
जब अपने स्वरूपमें स्थित अर्थात् आत्मज्ञानमें निष्ठावान् होता



है, तब वह जीव कुरार्थ ( मुक्त ) कहा जाता है ।

कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा सत्ता ।

श्रीकृष्णकी सेवा निरन्तर करते रहना चाहिये, उसमें मानसी सेवा सबसे उत्तम भानी जाती है ।

चेतस्तप्तव्रणं सेवा तत्सद्धै तनुवित्तजा ।

ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मोदधनम् ॥

पूर्णरूपसे चित्तको प्रभुमें तह्यीन कर देना ही सेवा है ।  
उसकी सिद्धिके लिये तनुजा ( शरीरसे ) एवं वित्तजा ( धनसे )

प्रभुकी सेवा करनी चाहिये । यों करनेपर जन्म-मरणके दुःखोंकी निवृत्ति और ब्रह्मका ओध होता है ।

वहासम्बन्धकरणात्मवेदां देहजीवयोः ।

सर्वदोषपनिवृत्तिर्थं दोपाः पञ्चविश्वाः स्मृताः ॥

सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः ।

संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्या कथंचन ।

अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथंचन ॥

ब्रह्मसे सम्बन्ध हो जानेपर सबके देह और जीव-सम्बन्धी सभी दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है । दोष पाँच प्रकारके होते हैं— सहज, देशज, कालज, संयोगज और स्पर्शज । सहज दोष वे हैं, जो जीवके साथ उत्पन्न होते हैं । देशज देशसे, कालज कालके अनुसार उत्पन्न होते हैं; संयोगज संयोगके हारा और स्पर्शज वे हैं, जो स्पर्शसे प्रकट होते हैं । ब्रह्मसे सम्बन्ध हुए बिना इन सभी दोषोंकी निवृत्ति कभी नहीं होती ।

चिन्ता कापि न कार्या तिवेदितात्मभिः कदापीति ।

भगवान्पुष्टिस्यो न कस्यिति लौकिकीं च गतिम् ॥

जिन्होंने प्रभुको आत्मनिवेदन कर दिया है, उन्हें कभी किसी प्रकारकी भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये । पुष्टि ( कृपा ) करनेवाले प्रभु अङ्गीकृत जीवकी लौकिक ( संसारी मनुष्योंकी-ही आवागमनशील ) गति नहीं करेंगे ।

तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम ।

बद्धिरेव सततं स्थेभित्येव मे मतिः ॥

इसलिये नित्यनिरन्तर सर्वात्मभावसे 'श्रीकृष्णः शरणं मम' इस पवित्र मन्त्रका उच्चारण करते हुए ही स्थित रहना चाहिये । यह मेरी सम्मति है ।

अन्तःकरण मद्राक्षं सावधानतया श्रणु ।

कृष्णात्परं नास्ति दैवं वस्तु दोषविवर्जितम् ॥

ओ मेरे अन्तःकरण ! मेरी जातको सावधानीके साथ मुनो—श्रीकृष्णके सिवा दोषोंसे सर्वथा राहित वस्तु-तत्त्व अन्य कोई भी देवता नहीं है ।

सर्वमर्गेषु नप्तेषु कलौ च खलप्रसिणि ।

पारदण्डग्रन्थुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम ॥

म्लेच्छाक्रान्तेषु देवोषु पापैकनिलयेषु च ।

सरपीडाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥

नानावादविनष्टेषु सर्वकर्मद्विषु ।

पारदण्डैकप्रथलेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥

विवेकघैर्यभत्यादिरहितस्य

विशेषतः ।

पापासक्तस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम ॥

दुष्ट धर्मवाले इस कलिकालमें कल्याणके साधनसम सभी सन्मार्ग नष्ट हो चुके हैं । लोकमें पारदण्डकी प्रजुट हो गयी है । इस अवस्थामें एकमात्र श्रीकृष्ण ही मेरी गति है ( उनके अतिरिक्त और कोई भी रक्षक या तारक नहीं है ) । समस्त पवित्र देश म्लेच्छोंसे आक्रान्त हो गये औं एकमात्र पापके स्थान बनते जा रहे हैं । लोग साधु-संतों पीड़ा पहुँचानेमें व्यस्त हैं । ऐसे समय श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरी गति है । नाना प्रकारके नास्तिकवादोंसे सम्पूर्ण सक्षम व्रतादिका नाश हो गया है और लोग कैवल पारदण्डमें प्रवृत्त हैं; ऐसे समयमें एकमात्र श्रीकृष्ण ही मेरी गति हैं विवेक, धैर्य, भक्ति आदिसे रहित, विशेषतः पापोंमें आसक्त मुदीनके लिये एकमात्र श्रीकृष्ण ही गति है ।

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो भजाधिपः ।

स्स्यायमेव धर्मो हि नान्यः कापि कदाचन ॥

सदा-सर्वदा पति, पुत्र, धन, यह—सब युक्त श्रीकृष्ण ही हैं—इस भावसे वजेश्वर श्रीकृष्णकी सेवा करनी चाहिये भक्तोंका यही धर्म है । इसके अतिरिक्त किसी भी देश, किसी भी वर्ण, किसी भी आश्रम, किसी भी अवस्थामें और किसी भी समय अन्य कोई धर्म नहीं है ।

एवं सदा स्वकर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति ।

प्रभुः सर्वसमयोः हि ततो निश्चिन्तां वजेन् ॥

भगवान् अपने कर्तव्योंकी स्वयं सदा करेंगे, काशन वे सर्वसमर्थ हैं । इसलिये ऐहिक एवं पारलैकिक याम मनोरथोंके लिये निश्चिन्त रहना चाहिये ।

यदि श्रीगोकुलाधीशो धतः सर्वात्मना हृदि ।

ततः किमपरं व्रूहि लौकिकं वैदिकैरपि ॥

यदि भगवान् श्रीकृष्ण सब प्रकापते हृदयमें धारण कर लिये जायें तो फिर लौकिक श्रेय और वैदिक श्रेय आपके फलोंसे क्या प्रयोजन है ।

अतः सर्वात्मना शशद् गोपुलंश्वपादयोः ।

सरणं भजनं चापि न व्याप्तिमिति मे मतिः ॥

भगवान् श्रीगोकुलेश्वर श्रीकृष्णके चरणकर्मणोऽन्न भजन—उनकी चरणरुजका रोबन भद्र मनोरथमार्ग रह चाहिये । उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिये । यह मेरी समर्पण ॥

## जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

( श्रीरामानन्दी वैष्णव-सम्प्रदायके महान् आचार्य औं प्रवतेक । आविषोव वि० सं० २२४, माघ छात्रा सप्तमी । स्थान—प्रद्वाम विडेगी-लटपर कान्यकुड़ब ब्राह्मणकुलमें । पिंका का नाम पुण्यसदन, मातका नाम लूकीला । अन्तर्भास वि० सं० १५१३ )

सर्वे... प्रपत्तेऽधिकारिणः सदा  
शक्ता अदाक्ष अपि नित्यरङ्गिणः ।  
अपेक्षये तत्र कुलं कर्लं च नो  
न चरिष्य कालो न हि शुद्धता च ॥  
( वैष्णवमत्ताम्बास्कर ५९ )

भगवानके चरणोंमें अटूट अनुराग रखने-  
वाले सभी लोग—वे समर्थ हों या असमर्थ,  
भगवन्नचरणागतिके नित्य अधिकारी हैं । भगवन्नचरणागतिके  
लिये न तो श्रेष्ठ कुलकी आवश्यकता है, न किसी प्रकारके  
वल्लभी । वहाँ न उत्तम कालकी आवश्यकता है और न  
किसी प्रकारकी शुद्धि ही अपेक्षित है । सब समय और  
शृंच-भग्नुचि सभी अवश्याओंमें जीव उनकी शरण प्रहण  
कर सकता है ।

लोकसंग्रहार्थं तु श्रुतिचोदितकर्मणाम् ।  
सेषभूतैस्तुष्टानं तत्कर्त्त्वपरायाः ॥  
( वैष्णव १०२ )

भगवानके सेषापारायण दासोंके लिये लोकतंग्रह ( मर्यादा-  
साधन ) के उद्देश्यसे ही वेदविहित कर्मोंके अनुष्ठानका विधान  
किया गया है । ( अन्यथा सम्पूर्ण कर्मोंका स्वरूपतः लाग  
ही उनके लिये बाल्चर्नीय है । )

दानं तपसीर्थनिषेद्वर्णं जपो  
न चास्तर्पाहिसासदर्थं सुपुण्यम् ।  
हिंसामतसर्वं परिवर्जयेत्ततः  
सुत्रमनिष्टो ददर्शमूर्द्धये ॥  
( वैष्णव १११ )

दान, तप, तपीर्थनिषेद्वर्ण एवं मन्त्रजप—इनमेंसे कोई भी  
अहिंसके समान पुण्यदायक नहीं है । अतः सर्वत्रैष वैष्णव-  
धर्मका पालन करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह अपने  
मुर्द्ध धर्मकी शुद्धिके लिये सब प्रकारकी हिंसाका परिवाप  
कर दे ।



वित्तेन्द्रियधारालयतो तु योज्यकृत्  
सुलिखितं चाम हरेनुचमन् ।  
अपारसंसारनिवारणक्षमं  
समुद्धरैदिकमाचन् तदा ॥  
( वैष्णव १०९ )

विदेशी तथा अत्यन्यरायण पुरुषों चाहिये  
कि वह जिर्तेन्द्रिय रहनेर तथा ( लोक-संप्रदाय-  
लिये निष्कामसाक्षरे ) वैदिक कर्मोंका आचरण करता हुआ  
वारंवार ( निरन्तर ) भगवानके सर्वश्रेष्ठ नाम ( शम-नाम  
का उच्चारण करता है ), जो निश्चित ही अपार लेसार-मायरके  
सुख देनेकी क्षमता रखता है ।

भक्तपात्रासोऽु दद्युत्तिपि स प्रसुः ।  
न शक्तेन सुप्राप्तिः कर्त्त्वायो न च स क्षमित् ॥  
( श्रीरामानन्ददिविजय २० । ६३ )  
यथापि प्रभु दद्यात् है, तथापि अनेभक्तोंकी अवहेलना  
को नहीं सह सकते । अतः तुमलोग कर्मी भी प्रभु-भक्तके  
अपराध न करना ।

धेयः स एव भगवाननिर्तं हृदये  
भक्तौ स्वन् श्रीसुलोऽवधिभारिमस्या ।  
कि त्वन्देवपिधेये भनसापि चिन्त्यो  
हृषेः कृत्विदपि भैव तदीयमक्तौः ॥  
( श्रीरामानन्ददिविजय २२ । ५ )

भगवद्वक्तव्योंको उन्नित है कि अनन्त-कल्याण-गुणाक  
स्वरूप उन्हीं यगात् ( श्रीरामचन्द्रजी ) का अव्याप्ति  
कारिणीभक्तिसे निरन्तर हृदय-कमलमें व्याप करें तथ  
कर्मी भी अन्यदेवके विषयमें द्वैष-शुद्धि न करें ।

अर्थेन्द्रीविजनाममें तुरन्तते गोपीजनानं विषयम् ।  
व्रह्मोशादिकिरोद्योवितपदाम्बोर्ज सुजङ्गाध्रयम् ॥  
( श्रीवैष्णवमत्ताम्बास्कर १५८ )  
श्रीकृष्ण भासवालं पवित्र धाममें देवोंसे सुति किये द्वारा  
गोपीजनोंके प्रिय और व्रस्यादि देवोंके सुकुटोंमें नेवित लग्न  
कमलवान्ते कालिक्य

## परदुःखकातरता

### परम दध्यालु राजा रन्तिदेव

रन्तिदेव राजा थे—संसारने ऐसा राजा कभी कदाचित् ही पाया हो। एक राजा और वह अन्नके विना भूखों मर रहा था। वह अकेला नहीं था, उसकी छी और बच्चे थे—कहना चाहिये कि राजाके साथ रानी और राजकुमार थे। सब भूखों मर रहे थे। अन्नका एक दाना भी उनके मुखमें पूरे अड़तालीस दिनोंसे नहीं गया था। अन्न तो दूर—जलके दर्शन नहीं हुए थे उन्हें।

राजा रन्तिदेवको न शब्दोंमें हराया था, न डाकुओंमें लटा था और न उनकी प्रजाने विद्रोह किया था। उनके राज्यमें अकाल पड़ गया था। अवर्षण जब लगातार बर्षों चलता रहे—इन्द्र जब अपना उत्तरदायित्व भूल जाय—असहाय मानव कैसे जीवन-निर्वाह करे। महाराज रन्तिदेव उन लोगोंमें नहीं थे, जो प्रजाके अनश्वर गुलछें उड़ाया करते हैं। प्रजा भूखी रहे तो राजाको पहले उपवास करना चाहिये, यह मन्यता थी रन्तिदेवकी। राज्यमें अकाल पड़ा, अन्नके अभावसे प्रजा पीड़ित हुई—राज्यकोष और अन्नामारमें जो कुछ था, पूरे-का-पूरा वितरित कर दिया गया।

जब राज्यकोष और अन्नामार रिक्त हो गये—राजाको भी रानी तथा पुत्रके साथ राजधानी छोड़नी पड़ी। पेटके कभी न भर्नेवाले गहुँमें उन्हें भी तो डालनेके लिये कुछ चाहिये था। राजमहलकी दीवारोंको देखकर पेट कैसे भरता। लेकिन पूरे देशमें अवर्षण चल रहा था। कूप और सरोवरतक सूख गये थे। धूरे अड़तालीस दिन बीत गये, अन्न-जलके दर्शन नहीं हुए।

उनक्षासवाँ दिन आया। किसीने महाराज रन्तिदेवको पहिचान लिया था। सबैरे ही उसने उनके पास थोड़ा-सा धी, खीर, हलवा और जल पहुँचा दिया। भूख-प्याससे व्याकुल, मरणासन्न उस परिवारको भोजन क्या मिला, जैसे जीवन-दान मिला। लेकिन भोजन मिलकर भी मिलना नहीं था। महाराज रन्तिदेव प्रपञ्च ही हुए जब उन्होंने एक ब्राह्मण अतिथिको आया देखा। इस विशेषितमें भी अतिथिको भोजन कराये विना भोजन करनेके दोषसे बच जानेकी प्रसन्नता हुई उन्हें।

ब्राह्मण अतिथि भोजन करके गया ही था शूद्र आ पहुँचा। महाराजने उसे भी आदरसे लेकिन शूद्रके जाते ही एक दूसरा अतिथि आय अतिथि अन्त्यज था और उसके साथ जीम नि कई कुत्ते थे। वह दूरसे ही पुकार रहा था—कुत्ते बहुत भूखे हैं। मुझे कृपा करके दीजिये।

समस्त प्राणियोंमें जो अपने आराध्यको देख माँगनेपर किसीको अस्वीकार कैसे कर दे—अप जब भूखे बनकर भोजन माँगते हों। रन्तिदेवने पूरा भोजन इस नये अतिथिको दे दिया। वह उक्ते तृप्त होकर चले गये। अब बचा था थोड़ा। इस जलसे ही रन्तिदेव अपना कण्ठ सीचने जा रहे

‘महाराज ! मैं बहुत प्यासा हूँ। मुझे दीजिये।’ एक चाण्डालकी पुकार सुनायी पड़ी। वह इतना प्यासा था कि वडे कष्टसे थोल रहा है—प्रतीत होता था।

महाराज रन्तिदेवने पानीका पात्र उठाया, उभर आये। उन्होंने सर्वव्यापक सर्वेश्वरसे प्रार्थ ‘प्रभो ! मैं ऋद्धि, सिद्धि आदि ऐश्वर्य या मोक्ष मर्ह मैं तो चाहता हूँ कि समस्त प्राणियोंके हृदयमें भी हो। उनके सब दुःख में भोग लिया करूँ और रहें। यह जल इस समय भेरा जीवन है—मैं ही रहनेकी इच्छावाले इस चाण्डालको दे रहा हूँ। इसकुछ पुण्य-कल हो तो उसके प्रभावसे संमारक ! भूख, प्यास, श्रान्ति, दीनता, शोक, विपाद और ही जायें। संसरके सारे प्राणी सुनी हीं।’

उस चाण्डालकी राजा रन्तिदेवने जल पिला लेकिन वे स्थंय—उन्हें जब जलकी आवश्यकता का विभिन्न वेप बनाकर उनके अतिथि होनेवाले चिप्र व्रहा, भगवान् विष्णु, भगवान् शिव और धर्मग्रहोंमें प्रत्यक्ष लड़े थे उनके सम्मुख।

## ये महामनस्त्री

### दधीचिका अस्थिदान

बृत्रासुरने अमरावतीपर अधिकार कर लिया था। देवता उससे युद्ध करके कैसे पार पा सकते थे। जिन अस्त्र-शस्त्रोंपर देवताओंके बड़ा गर्व था, उन्हें वह महाप्रण तभी निगल चुका था, जब देवताओंने उसपर प्रथम आक्रमण किया। बृत्रकी अध्यक्षतामें असुर स्वर्गके उद्यानोंका मनमाना उपभोग कर रहे थे।

‘महर्षि दधीचिकी अस्थिसे विश्वकर्मा वज्र बनावें तो उस वज्रके द्वारा इन्द्र बृत्रासुरका वध कर सकेंगे।’ जगत्पालनकर्ता भगवान् विष्णुने शरणागत देवताओंको एक उपाय बता दिया।

दधीचिकी अस्थि—लेकिन महर्षि दधीचिकीसे महातापसके साथ बल-प्रयोग करनेका संकल्प करनेपर तो अमरोंकी अपनी अस्थियाँ भी कदाचित् भस्त हो जायें। दधीचिकी शरणमें जाकर याचना करना ही एकमात्र उपाय था। समस्त देवता पहुँचे महर्षिके अश्रममें और उन्होंने याचना की—अस्थिकी याचना।

‘शरीर तो नश्वर है। वह एक-न-एक दिन नष्ट होगा ही। इस नश्वर शरीरके द्वारा किसीका कुछ उपकार हो जाय—यह तो सौमाण्यकी बात है।’ उस महातापसके मुख्यपर आनन्द उछासित हुआ, देवताओंकी दारुण याचना सुनकर।

‘मैं समाधिमें श्वित होकर देहत्याग करता हूँ। आपलोग मेरी अस्थि लेकर अपना उद्देश्य सिद्ध करें।’ महर्षि दधीचि आसन लगाकर बैठ गये। जैसे कोई सङ्ग-पुराना वस्त्र शरीरसे उतार फेंके—योगके द्वारा देह त्याग दिया उन्होंने

पशुओंने उनके निष्ठाण देहको चाटना प्रारंभिक्या। चर्म, यांसादिको ले जंगली पशु रुग्ये। अवशिष्ट शीली अस्थियोंसे विश्वकर्म बनाया गहनन्द्रका असोध अस्त्र बज्र।

X X X

### शिविका मांसदान

महाराज शिविकी शरणागतरक्षा इतनी प्रसिद्धी, उनका यश इतना उज्ज्वल था कि देवता इन्द्र तथा अग्निदेवको भी स्पर्धा हो उठी। महाराजके यशकी उज्ज्वलताकी परीक्षा लेनेवाल्यत हो गये।

महाराज शिवि अपने प्राङ्गणमें बैठे थे। सहर एक कबूतर आकाशसे सीधे आकर उनकी गोद गिरा और वस्त्रोंमें छिपने लगा। कपोत भयां काँप रहा था। महाराजने स्नेहसे उसपर हाथ फेरा कबूतर जिसके भयसे काँप रहा था, वह वासी भी दो ही क्षणोंमें आ पहुँचा। वाजने स्पष्ट मानवी भाषामें कहा—‘महाराज ! आप किसीका आहा है। मैं भूख्ये मर रहा हूँ। मेरा आहार मुझे दीजिये।’

‘मैं शरणागतका त्याग नहीं करूँगा। तुम्हारे पेट तो किसीके भी मांससे भर जायगा।’ महाराज शिविने अपना निश्चय सूचित कर दिया।

किसी भी दूसरे प्राणीकी हत्यापाप है। वाज को मांस चाहिवे था। महाराज शिविने अपने शरीरका मांस देना निश्चित किया। कपोतके

## ये महामनस्वी

### दधीचिका अस्थिदान

वृत्रासुरने अमरावतीपर अधिकार कर लिया था। देवता उससे युद्ध करके कैसे पार पा सकते थे। जिन अख्ति-शस्त्रोंपर देवताओंके बड़ा गर्व था, उन्हें वह महाप्राण तभी निगल चुका था, जब देवताओंने उसपर प्रथम आक्रमण किया। वृत्रकी अध्यक्षतामें असुर स्वर्गके उद्यानोंका मनमाना उपभोग कर रहे थे।

‘महर्षि दधीचिकी अस्थिसे विश्वकर्मा वज्र बनावें तो उस वज्रके द्वारा इन्द्र वृत्रासुरका वध कर सकेंगे।’ जगत्यालनकर्ता भगवान् विष्णुने शरणागत देवताओंको एक उपाय बता दिया।

**दधीचिकी अस्थि—**लेकिन महर्षि दधीचि-  
जैसे महातापसके साथ बल-प्रयोग करनेका संकल्प करनेपर तो अमरोंकी अपनी अस्थियाँ भी कदाचित् भस हो जायें। दधीचिकी शरणमें जाकर याचना करना ही एकमात्र उपाय था। समस्त देवता पहुँचे महर्षिके अश्रममें और उन्होंने याचना की—  
अस्थिकी याचना !

‘शरीर तो नश्वर है। वह एक-न-एक दिन नष्ट होगा ही। इस नश्वर शरीरके द्वारा किसीका कुछ उपकार हो जाय—यह तो सौभाग्यकी बात है।’ उस महातापसके मुख्यपर आनन्द उत्सुकित हुआ, देवताओंकी दारुण याचना सुनकर।

‘मैं समाधिमें स्थित होकर देहत्याग करता हूँ। आपलोग मेरी अस्थि लेकर अपना उद्देश्य सिद्ध करें।’ महर्षि दधीचि असन लगाकर बैठ गये। जैसे कोई सड़ा-पुराना वस्त्र शरीरसे उत्तर फेंके—  
योगके द्वारा देह त्याग दिया उन्होंने। लंगली

पशुओंने उनके निष्ठाण देहको चाटना प्रारम्भ किया। चर्म, मांसादिको वे लंगली पशु चाट गये। अवशिष्ट गीली अस्थियोंसे विश्वकर्मीने बनाया महेन्द्रका अमोघ अख्ति वज्र।

X            X            X

### शिविका मांसदान

महाराज शिविकी शरणागतरक्षा इतनी प्रसिद्ध थी, उनका यश इतना उज्ज्वल था कि देवराज इन्द्र तथा अग्निदेवको भी स्पृधी हो उठी। वे महाराजके यशकी उज्ज्वलताकी परीक्षा लेनेको उद्यत हो गये।

महाराज शिवि अपने प्राङ्गणमें बैठे थे। सहसा एक कबूतर आकाशसे सीधे आकर उनकी गोदमें गिरा और बस्त्रोंमें छिपने लगा। कपोत भयसे काँप रहा था। महाराजने स्नेहसे उसपर हाथ फेरा।

कबूतर जिसके भयसे काँप रहा था, वह यज भी दो ही क्षणोंमें आ पहुँचा। बाजने स्पष्ट मानवी-भाषामें कहा—‘महाराज ! आप किसीका आहार छीन लें, यह धर्म नहीं है। कपोत मेरा आहार है। मैं भूखसे मर रहा हूँ। मेरा आहार मुझे दीजिये।’

‘मैं शरणागतका त्याग नहीं करूँगा। तुम्हारा पेट तो किसीके भी मांससे भर जायगा।’ महाराज शिविने अपना निश्चय सूचित कर दिया।

किसी भी दूसरे प्राणीकी हत्या पाप है। बाज-को मांस चाहिये था। महाराज शिविने अपने शरीरका मांस देना निश्चित किया। कपोतके बराबर तौला हुआ मांस बाज माँग रहा था।

तराजूके एक पलड़ेमें कपोतको बैठाकर अपने हाथसे अपना अङ्ग काटकर महाराजने दूसरे पलड़ेमें स्फुरता, किंतु कपोत उस अङ्गसे भारी रहा। महाराज अपने अङ्ग काट-काटकर पलड़ेपर चढ़ाते गये और जब इतनेसे कपोतका वजन पूरा न हुआ तो स्वर्य पलड़ेमें जा बैठे।

वाज बने देवराज इन्द्र और कपोत बने अग्नि-देव अपने असली रूपोंमें प्रकट हो गये। महाराज विश्विके अङ्ग देवराजकी कृपासे पूर्ववत् स्वस्थ हो गये। दोनों देवता उन महामनस्वीकी प्रशंसा करके भी अपनेको कृतार्थ मानते थे। ऐसे पुण्यात्मा स्वर्गमें भी उन्हें कहाँ प्राप्त थे।

X            X            X

### हरिश्चन्द्रकी सत्यनिष्ठा

अयोध्यानरेश महाराज हरिश्चन्द्रकी कथा प्रख्यात है। देवराज इन्द्रकी प्रेरणासे महर्षि विश्वामित्रने उनकी सत्यनिष्ठाकी परीक्षा ली।

महाराज हरिश्चन्द्रकी परीक्षा—परीक्षाने उनकी निष्ठाको अधिक उज्ज्वल ही किया। स्वमें महाराजने ब्राह्मणको राज्य-दान किया था। स्वमेंके उस दानको सत्य करनेके लिये वे अयोध्याधीश स्त्री तथा पुत्रके साथ राज्य त्यागकर काशी आ गये। ब्राह्मणको दक्षिणा देनेके लिये अपनी स्त्रीको उन्होंने ब्राह्मणके हाथ बेचा। स्वयं वे विके चाण्डालके हाथ। अयोध्याके नरेश चाण्डालके चाकर होकर उमशानके चौकीदार बने।

ब्राह्मणके यहाँ छुमार रोहिताशको सर्पने काट लिया। बेचारी महारानी—अब तो वे दासीमात्र थीं। पुत्रके शरदको उठाये अकेली उमशान पहुँची। हाय रे दुर्भाग्य—उमशानका चौकीदार

विना 'कर' लिये शवको जलाने दे नहीं सक था। कौन चौकीदार—उस मृतक पुत्रका पिता-स्वर्य महाराज हरिश्चन्द्र। छातीपर पत्थर रख कर्तव्यका पालन करना था—स्वामीने आज्ञा दी थी कि 'कर' दिये विना कोई शव न जल पावे।

एक साड़ी—महारानीके पास उस साड़ी छोड़कर था क्या जो 'कर' दे। वह साड़ी। आधी फाड़कर 'कर' दे सकती थी। उस परि परायणा, धर्मशीला नारीने साड़ी फाड़नेके लिए हाथ लगाया। उसी समय आकाशमें प्रकाश हो गया। बड़ी गम्भीर ध्वनि सुनायी पड़ी—

अहो दानमहो धैर्यमहो व्रीर्यमखण्डितम् ।  
उदाधीरवीराणां हरिश्चन्द्रो निरर्घनम् ॥

'आप धन्य हैं, आपका दान धन्य है, आपकी धीरता और वीरता धन्य है, आप उदार, धीर और वीर पुरुषोंके आदर्श हैं।'

देखते-ही-देखते धर्मके साथ भगवान् नरायण, शङ्कर, ब्रह्मा, इन्द्र आदि प्रकट हो गये। विश्वामित्र क्षमा माँगने लगे। हरिश्चन्द्रने सबको ग्रणाम किया। रोहिताश जीवित हो गया। हरिश्चन्द्र और शैवाके देह दिव्य हो गये और वे भगवद्गामको प्राप्त हुए। उनके इच्छानुसार समस्त अयोध्या नगरीके लोग विसानोंपर सवार होकर स्वर्ग चले गये। शुद्धाचार्यने गाया—

हरिश्चन्द्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति ।  
'हरिश्चन्द्रके समान राजा न कोई हुआ, न होगा।'

स्वर्य महर्षि विश्वामित्रने रोहिताशको अयोध्याके सिंहासनपर अभिप्ति किया। गर्नीकि गम्य महाराज हरिश्चन्द्रको सुदूर्लम्ब भगवद्गाम प्राप्त हुआ।

## महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव

( श्रीगौडीय वैष्णवसम्प्रदायके प्रवर्तक, गौडीय वैष्णवोंके मतानुसार भगवान् श्रीराधा-कृष्णके साक्षात् स्वरूप । आविर्भाव शाके १४०७, फालुन शुक्र १५ । तिरोभाव १४५५ । स्थितिकाल ४८ वर्ष । पिता श्रीजगद्वाय मिश्र, माता श्रीश्रीचैतेवी । स्थान नवदीप ( बंगाल )  
महान् दार्शनिक, विद्वान्, साक्षात् प्रेमावतार )



चेतोदर्पणमार्जनं भवमहा-  
दावास्त्रिनिर्वापणं  
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं  
विद्यावध्याजीवनम् ।  
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं  
पूर्णामृतस्वादनं  
सर्वात्मस्तपनं परं विजयते  
श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥१॥

चित्तरूपी दर्पणको परिमार्जित करनेवाला, संसाररूपी  
महादावानल्को बुद्धा देनेवाला, कल्याणरूप कुमुदको विकसित  
करनेवाली उद्योग्यको फैलनेवाला, पराविद्यारूपी वधूका जीवन-  
रूप, आनन्द-समुद्रको बढ़ानेवाला, पद-पदपर पूर्ण अमृतका  
आस्वादन प्रदान करनेवाला, सम्पूर्ण आत्माको आनन्दसे  
समावेश कर देनेवाला अद्वितीय श्रीकृष्ण-संकीर्तन सर्वोपरि  
विराजमान है ।

नाशामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-  
स्तवार्पिता नियमितः सरणे न कालः ।  
ऐतादशी तव कृपा भगवन्ममापि  
हुदैवसीद्विमिहाजनि नानुशागः ॥२॥

भगवन् ! आपने अपने गोविन्द, गोपाल, वनमाली  
इत्यादि अनेक नाम प्रकट किये हैं और उन नामोंमें  
अपनी सम्पूर्ण शक्ति निहित कर दी है । श्रीनाम-सरणमें  
कोई कालाकालका विचार भी नहीं रखता है । आपकी तो इस  
प्रकारकी कृपा है और इधर मेरा भी इस प्रकारका दुर्भाग्य  
है कि ऐसे श्रीहरिनाममें अनुराग नहीं हुआ ।

तृणादधि सुनीचेन तरोपि सहिष्णुना ।  
अमानिना भानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥३॥

तृणकी अपेक्षा भी अतिशय नीच एवं वृक्षसे भी  
अधिक सहिष्णु होकर स्वयं अमानी रहते हुए दूसरेको मान  
प्रदान करके निरन्तर श्रीहरिनाम या उनकी लीलादिका गान  
करना ही एकमात्र कर्तव्य है ।

न धनं न जनं न सुन्दरीं  
कवितां वा जगदीशा कामये ।  
सम जन्मनि जन्मनीश्वरे  
भवताम्भितिरहैतुकी त्वयि ॥४॥

जगक्षाथ ! मैं धन, जन, कामिनी, काव्य अथवा  
पाणिडत्यकी कामना नहीं करता । परमेश्वर-स्वरूप तुम्हारे प्रति  
जन्म-जन्मान्तरमें मेरी अकारण भक्ति हो ।

अथि नन्दननूज किङ्करं  
पतितं मां चिष्मे भद्राम्बुधौ ।  
कृपया तव पादपङ्कज-  
स्थितधूलीसदां चिचिन्तय ॥५॥

नन्दनन्दन ! तुम्हारा दास मैं इस धोर दुप्पार संकार-  
सामरमें पड़ा हुआ हूँ । मुझको कृपापूर्वक अपने पाद-पद्मकी  
धूलके समान समर्पिये ।

नयनं गलदशुधारया  
बद्नं गद्ददरुदया गिरा ।  
पुलकैर्निचितं व्रुपुः कदा  
तव नामग्रहणे भविष्यति ॥६॥

गोपीजनवह्नभ ! कब आपके श्रीनामग्रहणके समय मेरे  
दोनों नेत्र वहती हुई अश्रुधारासे, मेरा बदन गद्दद होनेके कारण  
रुकी हुई वाणीते तथा मेरा शरीर रोमाछसे युक्त होगा ?

युगायितं निमेषेण चशुषा प्रावृष्टायितम् ।  
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्दविरहेण मे ॥७॥

गोविन्द ! आपके विरहमें मेरा एक-एक निमेष युगके  
समान बीत रहा है, नेत्रोंसे वर्षकी धारके समान अश्रुवर्षा हो  
रही है और सारा जगत् शून्य जान पड़ता है ।

आश्लिष्य वा पादरतां पिन्दु मा-  
मदर्शनान्मर्हतां करोतु वा ।

यथा तथा वा विदधातु लम्पये  
मत्यागनायस्तु स एव नापरः ॥८॥

चरण-सेवामें लगी हुई मुझको वे गलेसे लगा लें या धैर्यतके

रोंद डालें, अथवा दर्शन न देकर मर्माहत ही करें। उन परम स्वतन्त्र श्रीकृष्णांजी जो हङ्का हो, वही करें; तथापि मेरे तो वे ही प्राप्तिनाथ हैं, दूसरा कोई नहीं। (श्रीधिकाश्कम्)

(श्रीनैतान्यदेवके द्वारा रचे और गाये हुए स्तोक)

क्षुतस्यांपनिषद् द्वूरे हरिकथामृतात् ।

यद्य सन्ति द्रविचित्तकम्भ्रुतुलकाद्यः ॥

(श्रीपद्मावली ३९ श्रीगजिसंदर्भ०—६९ अनुच्छेद)

उपनिषत्-प्रतिपाद्य ब्रह्मका शब्दण हरिकथामृतसे बहुत दूर हैं; इसीसे ब्रह्मखलफकी बात ल्यातार सुनते रहनेपर भी विच द्रवित नहीं होता।

दधिमयननिनादैस्यक्तनिदः प्रभाते

निभूतपदमगारं बहुवीर्यं प्रविष्टः ।

मुखकमलसमीरैश्च निर्वाय दीपान्

कवलितनवनीतः पाणु माँ बालकृष्णः ॥

(श्रीपद्मावली ४४)

प्रातःकालमें माता यशोदाके दधि-मन्थनका शब्द सुनकर निद्रा त्याग करके ब्रजगोपीयोंके धर्घोंमें पैरोंका शब्द न करते हुए चुपचाप प्रवेश कर तथा श्रीमुखकमलकी वायुके द्वारा शीघ्र ही दीपोंको बुझाकर नवनीतको गटकनेमें रत श्रीबालकृष्ण भेरी रक्खा करें।

सर्वे पाणी तिविमितरं किञ्चिणादाम शुद्धा

कुञ्जीभूय प्रदग्निभिर्मद्दमन्दं विहस्य ।

अक्षणोभैङ्ग्या विहसितमुख्यावौरयन् सम्मुखीना

मातुः पश्चादहरत हरिजन्तु हैयक्वीनम् ॥

(श्रीपद्मावली ४४)

एह बार किंकिणीश्वनिको बंद करनेके लिये शर्किणीकी ढोरिको पकड़े, शरीरको कुबड़ा करके अँगुलियोंके बलपर चलते हुए भृत्यमन्दहास्य-वदन ३ को देखकर समुख लड़ी हुई गोपियाँ जब हँसने लगीं श्रीहरिने अपनी नैत्र-भज्जिमाके द्वारा उनके हास्यको निष माताके पश्चात् स्थित सद्योजात नवनीतको हरण किय

प्रासादाद्ये निवसति युरः स्मैवक्षाविनदो

ममालोऽय स्मितसुवदनो बालगोपालमूर्ति

(चै० भा० अ० ८।४

जिसका वदनारविल्द विकसित है; वे बालगोप श्रीकृष्ण सुन्दे देखकर मृदु मधुर हास्यसे श्रीमुखकी शो समधिक विस्तार करते हुए प्रातादके ऊपरी भाग ममुख आकर स्थित ही रहे हैं।

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरोऽपि मे हरै

क्लद्विमि सौभात्यभर्त प्रकाशितुम् ।

बृशीविलास्यानत्तेलोकनं विना

विभर्मि यत् प्राणपतञ्जकान् वृथा ॥

(चै० भा० म० २।४

मेरे अंदर श्रीकृष्ण-प्रेमकी तातिक सीगन्ध भी नहीं है, वे सौभाग्यातिव्यक्तो (मैं स्वयं जो अस्यत लौभाग्यशाली हूसे) प्रकट करनेके लिये ही कन्दन करता है (मुझमें प्रेमका लेशमात्र भी नहीं है, इसका प्रमाण है कि) बृशीविलासी श्रीकृष्णके मुख-दर्शनके विना व्यर्थ ही प्राणस्त्री पश्चियोंको धारण कर रक्खता है।

## गोस्वामी श्रीनारायण भट्टतार्थ

(जन्म सं० १५८८। तैलंग ब्रह्मण, श्रीगदापर पण्डितजीके शिष्य, श्रीश्लुकेश्वरद्वारा श्रीकृष्णशामनी विद्यार्थी)

अभक्तसङ्गो देहोत्थो वाचिको मानसस्था ।

त्रिविष्योऽपि परित्यज्यो भक्तिकामनया तुधैः ॥

कथिकः कायस्मन्धन्धाद् वचसा भरणाल्मकः ।

अन्नादिना मानसस्तु परम्पर्यार्थदोषः ॥

भक्तिके इन्द्रुक व्यक्ति देहोत्थ, वाचिक और मानसिक— तीनों प्रकारके अभक्त-सङ्गका परिस्थान करें। देह-समव्यवसे दैहिक, भाषणादिसे वाचिक और अन्नादिसे मानसिक जाने। क्रमसे उपर्युक्ति अधिक दीपावल हैं।

कृष्णस्त्रय एव श्वाद् वृत्तिरिद्विद्वयोः ।

सौव भक्तिरिति ग्रोक्ता युष्मित्रे गुणात्मिका ॥

श्रीकृष्ण-स्वरूपमें इन्द्रिय तथा देही वृत्तियाँ नहीं भक्ति है। वह भक्ति ऐश्वर्यादि पद्मगुणोंसे युग्म श्रीकृष्ण होनेसे गुणात्मिका कही जाती है।

भक्तस्वेकादर्शीं कुर्याद्यन्दण्डादर्शीं तथा ।

जन्माष्टमीं हि रमाय नवमीं च चतुर्दशीम् ॥

भक्तों नहीं कि वह एकादशी, अष्टमाष्टमी, नवमी, रामनवमी, नवदिवचतुर्दशी प्रमुख त्रय अवसर हैं।

## सार्वभौम श्रीवासुदेव भट्टाचार्य

( चैतन्य महाप्रभुके प्रसिद्ध अनुयायी, महेश्वर विश्वारदके पुत्र और श्रीमध्बूद्धन वाचस्पति के भाई, स्थितिकाल १५ वीं शताब्दी, स्थान विद्यानगर ( नवद्वीप ), जाति ब्राह्मण )

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो  
नाहं वर्णो न च गृह्यतिनो वनस्पो यतिवा ।  
किन्तु प्रोद्धन्निरिलपरमानन्दपूर्णस्ताव्ये-  
गोपीमर्तुः पदकमलयोर्दासासानुदासः ॥

न मैं ब्राह्मण हूँ न धन्विय हूँ, न वैश्य हूँ और न  
शूद्र ही हूँ । मैं न ब्रह्मचारी हूँ न गृहस्य हूँ, न वानप्रस्थ  
हूँ और न संन्यासी ही हूँ; किंतु सम्पूर्ण परमानन्दमय अमृतके  
उमड़ते हुए महासागररूप गोपीकान्त श्रीदयामसुन्दरके चरण-  
कमलोंके दासोंका दासानुदास हूँ ।

## श्रीरामानन्दराय

( पुरीसे ग्रायः छः कोस पश्चिम 'बैटपुर' ग्रामके श्रीरामानन्दके सुपुत्र, महान् प्रेमी भक्त, श्रीचैतन्य महाप्रभुके सज्जी )

नानोपचारकृतपूजनमार्तवन्धोः  
प्रेमण्व भक्तहृदयं सुखविद्वुतं स्यात् ।  
वावत् क्षुद्रस्ति जडे जरसा पिपासा  
तावत् सुखाय भवतो ननु भक्ष्यपेये ॥

( पदावली १३ )

भक्तका हृदय तो आर्तवन्धु श्रीकृष्णके विविध उपचारों-  
द्वारा किये हुए पूजनके विना ही केवल प्रेमसे ही सुखपूर्वक  
द्रवित होता है। पेटमें जबतक भूखकी ज्वाला एवं तीव्र पिपासा  
रहती है, तभीतक भोजन-पान सुखदायी प्रतीत होते हैं।

## श्रीसनातन गोस्वामी

( श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रधान अनुयायी । जन्म सन् १४८७ ई०, विजाका नाम कुमारदेव, माताका नाम रेवती, भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण,  
मृत्यु सन् १५५८ ई०, लचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्त, गौडीय वैष्णव-सम्प्रदायके प्रधान पुरुष, उच्च कोटि के ल्यागी, संत, बड़े विद्वान् )

जयति जयति कृष्णप्रेमभक्तिर्यद्भूमिं  
निखिलनिगमतत्त्वं गृहमाङ्गाय मुक्तिः ।  
भजति शरणकामा वैष्णवस्त्यज्यमाना  
जपयजन्तपस्यान्यासनिष्ठां विहाय ॥

( बृहद्भागवतानुसृत १।१।८ )

श्रीकृष्णकी प्रेमा-भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है, वही सर्वोपरि है।  
और तो और, स्वयं मुक्ति भी—जब वैष्णवलोग उसका परित्याग  
कर देते हैं—आश्रयकी कामनासे जप, यज्ञ, तपस्या एवं  
संन्यासकी निष्ठाको छोड़कर उन मुक्ति-महारानीके चरणोंका  
ही सेवन करती है; क्योंकि वह जानती है कि सम्पूर्ण वेदोंका  
सार-तत्त्व इन्हीं चरणोंमें छिपा हुआ है !

जयति जयति नामानन्दरूपं मुरारे-  
विरमितनिजघर्मध्यानपूजादियत्तम् ।  
कथमपि सकृदातं मुक्तिं प्राणिनां यत्  
परमममृतमेकं जीवनं भूषणं मे ॥

( बृह ० १।१।८ )

मुर दानवका उद्धार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका  
आनन्दरूप नाम सर्वोपरि विराजमान है—वही सर्वोत्कृष्ट है।  
उसके जिह्वापर आ जानेपर स्वधर्मपालन, ध्यान, पूजा  
आदि साधन ( अपने-आप ) छूट जाते हैं। वह ऐसा श्रेष्ठ  
अमृत है कि किसी भी प्राणीके द्वारा एक बार भी ग्रहण  
किये जानेपर जन्म-मृत्युके पाशसे छुड़ा देता है; वही मेरा  
एकमात्र जीवन, वही मेरा एकमात्र भूषण है।

मूलोत्त्वात्विधायिनी भवतरोः कृष्णान्ततृष्णाक्षयात्  
खेलद्वभिर्मुनिचक्रवाक्तिचैरैचम्यमाना सुहुः ।  
कर्णान्निदिक्लस्वना वहसु मे जिह्वामहीश्राङ्गणे  
वृण्णोत्तज्जरसावलिस्व कथापीयृषकल्लोलिनी ॥

( श्रीशमचरित्र )

श्रीकृष्ण ! तुम्हारी लीला-कथारूपी अमृत नदी संसार-वृक्ष-  
की जड़ उखाड़ डालती है। श्रीकृष्णकी तृष्णाके अतिरिक्त  
अन्य तृष्णामात्र ही संसार-वृक्षको बढ़ानेवाली है, परंतु तुम्हारी  
लीला-कथा-नदी श्रीकृष्ण-तृष्णाके अतिरिक्त अन्य तृष्णाका

थथ यह देती है। तुम्हारी लीलाकथाहरी तटिनीमें नारदादि मनिष्य चरवाक आगम-रस-पानसे भक्ष हुए विचरण गम्भीर हैं। उमयी कल-कल ध्वनि कानोंको महात् अनन्द

देती है। उसमें उल्लृष्ट रसका प्रवाह वृण्णित हो रहा है तुम्हारी यह लीलाकथाहरी पीयूपकल्लोलिनी तटिनी ये जिहाके प्राङ्गणमें प्रवाहित हो।

### श्रीरूप गोस्वामी

( तनान गोस्वामीके द्वारे भाई । जन्म सन् १४९९ ई०, यिताका नाम कुमारदेव, मताका नाम रेती । भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण देव, सन् १५६३ ई० ) अशिष्मदोपार्दमतके—श्रीरूपीयैष्वामसम्भायके प्रकाश विद्वान्, परम भक्त, त्यागी । श्रीचैतन्याप्रभुसे प्रथम अनुयायी । )

मुखारभिन्दनिस्यन्दमसन्दभरतुनिदला ।

मसावन्दं सुकुन्दस्य सन्तुरधां वैणकरली ॥

श्रीगुरुन्दके मुखारविन्दसे निर्गत मकरन्दके द्वारा परिषुष्ठ श्रीमुरीकी मधुर ध्वनि मेरे आनन्दको बढ़ाये ।

सुधानां चान्द्रीणामपि मतुरिमोन्माइदमनी

दधाना राधादिग्रन्थवत्सरैः सुरभिताम् ।

कमन्दवत्तरंतपोद्दसविष्पमसंसारसरणी-

प्रगतिं दे तृप्णां हरतु हरिलीलाशिखरिणी ॥

( विद्युप्रसाधव १ । १ )

श्रीकृष्णकी लीला एक ऐसी अहुत खिलख ( दूध और दहीके मिशणसे तैयार किया जानेवाला एक सुमधुर पाँड मुगान्नित पेय ) है जो चन्द्रमाकी शिरोंसे झरनेवाली सुधा-धाराओंके भी मिटाके गर्वको चूर्ण कर डालती है तथा जो श्रीराधादि प्रेयती-जनोंके गाढ एवं अविचल प्रेम-स्त्री कर्तृ-कणोंसे सुवासित है। व्यासों और संसारका सुखन करनेवाले संसारलीला कुबड़ीखावह मार्गपर चलनेसे उत्पन्न हुई तुम्हारी तृप्णालिणी तृप्णाको वह शान्त करे ।

अप्रेक्ष्य कुम्भमात्रमनो विद्युतिं प्रीत्या परेदां प्रियं

लज्जन्ते हुरितोद्गमादिव लिज्जोश्चानुभवन्वदपि ।

विद्याविचत्तुलादिभिष्ठ यद्मो यान्ति कमाश्वरतां

रम्या कापि सदामियं विजयते नैसर्गिकी प्रक्रिया ॥

( विद० १ । ११ )

संतलोग अपने अमज्जित केनका कुछ भी विचार न करके सहज स्नेहवश दूसरोंका प्रिय कार्य करते रहते हैं, अपनी प्रशंसाकी प्रसावनासे भी उसी प्रकार लज्जित होते हैं जैसे कोई अपने पापके प्रकट होनेपर लज्जित होता है और विद्या, सम्पत्ति तथा कुलीनता आदिके कारण—जो संसारण लोकोंमें वहुधा अभिमान उत्पन्न करती हुई पायी जाती है—

अधिकाधिक नम्रता धारण करते हैं। संतोंकी यह एक अनिवार्यीय स्वाभाविक सुन्दर परिवारी है।

प्रपञ्चसुरोदयः शुक्रदम्भदृष्टाव्याकृ-

निकुञ्जमध्यगडप्रकटमध्यवद्वेष्टिः ।

निरहृषाकृष्णसुविधर्वजविहारजन्मतः ।

सनातनतः सदा मयि ततोऽु तुष्टि प्रभुः ॥

( विद० १ । १५ )

मेरे प्रभु सनातन-विद्युत भगवान् श्रीकृष्णका अवतार शरणार्थातोंके लिये अत्यन्त सुखदाकी सिद्ध होता है। वे जन्मय प्रकाशतुक्त महामहिमशाली श्रीद्वन्दवरके निकुञ्जभयनोंकी पंक्तिके बीच सदा विराजमान रहते हैं—वहाँमें कभी एक पग भी दूर नहीं होते । वे असीम एवं निर्वाद कृपाके सामर हैं। व्रजविहारसे उनका मन सदा रंजित रहता है। वे श्रीकृष्ण मुखपर सदा प्रसन्न रहते हैं। ( इस द्वयर्थके श्लोकों द्वारा श्रीरूप गोस्वामीने अपने बड़े भाई एवं गुरुतुल्य श्री-सनातन गोस्वामीसे भी कृपा-याचना की है । )

तुष्टे तद्विनी रति वित्तुरे तुण्डावलीलप्ये

कणोद्देवकुडिविनी घटयते कर्णविदेयः स्पृहाम् ।

वेतःप्राङ्गणलक्ष्मी विजयते सर्वेन्द्रियाणां हृषि

नो जाने जनिता कियद्विस्मृतौः कुण्डेविकर्णद्वयोः ॥

( विद० १ । १२ )

कृष्णः यह दो अंकरोंका नाम जब जिहार गृह करने लगता है, तब ऐसी इच्छा होती है कि हमसे अनेक ( करोड़ों ) मुख—भजेक जिहारे हो जायें। उगमे जानेमें प्रवेश करते ही ऐसी लालसा उत्तम हो जाती है कि दो अरबों कान हो जायें। कानोंके द्वारा जब यह गम्भुर चित्तग्राङ्में आती है तब समस्त दुनियोंकी तृप्णियोंमें दृष्ट जाता है। वित्त सब कुछ भूल्कर नामसुधामें दृष्ट जाता है।

ग्र जाने इस सुमधुर नाम-सुधाकी सुषिं कितने प्रकारके  
मत्तोंसे हुई है ।

दुतकनकसुगौरस्तिरधमेघौघनील-  
च्छविपिरखिलवृन्दारण्यसुद्भासयन्तौ ।  
सृदुलनवदुक्ले नीलपीते दधानौ  
सर निमृतनिकुञ्जे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥  
( निकुञ्जरहस्यसोन्न १ । २ )

ऐ मन ! द्रवायमाण सुवर्णं तथा सधन मेध-समूहकी  
माँति गौर-नील कान्तियोंसे समग्र वृन्दावनको उद्भासित  
करनेवाले; नवीन सृदुल नील-पीत-पाटमरधारी निमृत  
निकुञ्जमें विराजमान श्रीराधिका-कृष्णचन्द्रका तू सरण कर ।

अन्याभिलाषिताद्वृन्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।  
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरूपम् ॥  
( हरिमत्तिरत्समृतसिन्धु पूर्व० १ । ११ )

अनुकूल-भावनासे ( प्रेमपूर्वक ) श्रीकृष्णका भजन करना  
ही श्रेष्ठ भक्ति है, जिस भजनमें और किसी प्रकारकी कामना  
न हो तथा जिसपर ज्ञान-कर्म आदिका आवरण न हो ।

भुक्तिमुक्तिपूर्हा थावत् पिशाची हृदि वर्तते ।  
तावद्भक्तिसुखस्यात्र कथमन्युदयो भवेत् ॥  
( हरिमत्ति० पूर्व० २ । ११ )

जबतक भोग और मोक्षकी वासनारूपिणी पिशाची  
हृदयमें वसती है, तबतक उसमें भक्ति-रसका आविर्भाव कैसे  
हो सकता है ।

श्रीकृष्णचरणाम्भोजसेवानिर्वृतचेतसाम् ।  
पृष्ठां मोक्षाय भक्तानां न कदापि स्तुहा भवेत् ॥  
( हरिमत्ति० पूर्व० २ । १३ )

जिन भक्तोंका चित्त श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी सेवासे  
शान्त एवं सुखी हो गया है, उन्हें मोक्षकी इच्छा कदापि  
नहीं होती ।

तत्राप्येकान्तिनां श्रेष्ठा गोविन्दहृतमानसाः ।  
येषां श्रीशप्रसादोऽपि मतो हर्तुं न शब्दनुयात् ॥  
( हरिमत्ति० पूर्व० २ । १७ )

उपर्युक्त अनन्य भक्तोंमें भी वे प्रेमीजन श्रेष्ठ हैं, जिनके  
चित्तको गोकुलेश्वर श्रीकृष्णने चुरा लिया है और जिनके मनको  
लक्ष्मीपति भगवान्का दिया हुआ ग्रसाद ( वर ) भी खोन्न  
नहीं सकता ।

स्याकृष्णनामचरितादिसिताप्यविद्या-  
पित्तोपत्तस्तसनस्य न रोचिका तु ।  
किंत्वादुरादनुदिनं खलु मैव जुषा  
स्वाद्वी क्रमादभवति तद्वद्मूलहन्त्री ॥  
( उपदेशमृत० ७ )

जिनकी जिह्वाका स्वाद अविद्याही पित्तके दोषसे दिग्जा  
हुआ है, उन्हें कृष्ण-नाम एवं उनकी लीलादिका गानलत्य मिश्री  
भी भीठी नहीं लगती । किंतु उसी मिश्रीका आदरपूर्वक  
प्रतिदिन सेवन किया जाय तो क्रमशः वह निश्चय ही मीठी  
लगाने लगती है और पित्तके विकारका समूल नाश हो  
जाता है ।

तत्रामरूपचरितादिसुकीर्त्तनाम्-  
स्मृत्योः क्रमेण रसनामनसी नियोज्य ।  
तिष्ठन् वज्रे तदनुरागिजनानुगामी  
कालं नयेददिलभित्युपदेशसारम् ॥  
( उपदेशमृत० ८ )

श्रीकृष्णके नाम, रूप, चरितादिकोंके कीर्तन और  
सरणमें क्रमसे रसना और मनको लगा दे—जिह्वासे श्रीकृष्ण-  
नाम रटा रहे और मनसे उनकी रूप-लीलाओंका समरण करता  
रहे तथा श्रीकृष्णके अनन्यभक्तोंका दास होकर वज्रमें निवास  
करते हुए अपने जीवनके सम्पूर्ण कालको व्यतीत करे । यही  
सारे उपदेशोंका सार है ।

## श्रीजीव गोस्वामी

( श्रीसनातन और श्रीरूप गोस्वामीके छोटे भाई श्रीजित्युपम ( नामान्तर श्रीवल्लभ ) के सुपुत्र । गुरु श्रीसनातन गोस्वामी । ख्यातिकाल  
सौख्यवी शतान्दीके अन्तसे सत्रहवीं शताव्यीका प्रथम भाग । गौडीय वैष्णवसम्प्रदाय अनित्यभेदभेद मतके प्रधान और प्रसिद्ध  
दार्शनिक विदान् । )

किं भयमूलमध्यं किं शरणं श्रीहरेभक्तः ।  
किं प्राध्यं तद्भक्तिः किं सौख्यं तत्परप्रेम ॥  
( गोपलचम्पू पूर्व० ३ )

भयका हेतु क्या है ? अहंकारपूर्वक किये हुए शुभ-  
शुभ कर्म । परम आश्रय कौन है ? भगवान् श्रीहरि-  
का भक्त । माँगने योग्य वस्तु क्या है—श्रीहरिकी

भगि । सुख क्या है—उन्हीं श्रीहरिका परम प्रेम ।  
 श्रीमद्भून्दावनेन्द्रोर्मुखवस्त्राः श्रेणिलोका हिजाता  
 दाया लालाः सुरम्याः सहचरहलभृत्तमात्रादिवर्गः ।  
 ग्रेयस्यस्तासु राधाप्रमुखवरदशश्चेतिवृन्दे वर्थोद्दे  
 तद्रपालोकशुण्डक्ष्मगदमनुदिने हन्ते पश्याम कहिं ॥  
 ( गोपाल ३० ३७ )

आह ! वह दिन कब होगा जब श्रीदृष्ट्यावनके चन्द्रमा  
 गमगान् श्रीकृष्णके भ्रमर, पशु-पश्ची, तेली-तमोली आदि  
 व्यवसायिन्वर्गके लोग, ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि द्विजाति वर्णके  
 मनुष्य, दास-दासियाँ, उनकी पोत्य गौएँ, सखा  
 गोप-शालक, श्रीवलदाऊ भैया तथा उनके पितृवर्ग एवं  
 मातृवर्गके गोप-गोपीद्वन्द्व, उनकी प्रियतमा श्रीगोपीजन  
 और उनमें भी सर्वथेषु श्रीराधा आदि—इन समस्त

परिकरोंके समूहको—जो उनकी अन्तर्य  
 दर्शन करके लोकातिशायी आनन्दमें सा

हम प्रतिदिन अवलोकन करके निहाल हो जाएं  
 अद्वैतसिद्धिविजयिता सत्यघर्षी  
 वैहासन्दी गुह्यपि चमाकारस्येव  
 याकृत् प्रेमणां मधुरिषुवशीकारसिद्धै  
 गच्छोऽप्यन्तःकरणसरणी पान्थितं त

भगवान् मधुसूदन श्रीकृष्णको वशमें बरं  
 औषधरूप प्रेमकी मन्त्र भी जबतक अ  
 प्रवेश नहीं कर पाती, तर्मीतक अद्वैतोंके सहि  
 समुदायभर विजय, सत्यकम्युक्त समाधि  
 ब्रह्मानन्द—ये मनुष्यको चमत्कृत करते रहते  
 श्रीकृष्ण-प्रेमका उदय होते ही ब्रह्मानन्द भी तुच्छ

## स्वामी श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती

( श्रीचैतन्य महाप्रभुके सम-सामर्थिक एवं अनुयायी )

आतस्ते किमु निश्चयेत विदितः स्वस्यान्तकालः किमु  
 त्वं जानतिर महामनु बलवतो मूल्योर्गतिसम्पन्ने ।  
 मूल्युस्वक्वरणं प्रतीक्षत इति त्वं वेदिति किंवा यतो  
 द्वारं वारमदाङ् एव चलसे धून्दावनादन्त्यतः ॥  
 ( बृहदावनसहिता १ ५० )

आई ! क्या तुमने अपना अन्तकाल निश्चय जान लिया  
 है ? और क्या तुम इस बलवान् मूल्यकी रातिको योग्यनामें  
 समर्थ किंतु महामन्त्रको जानते हो ? वथवा क्या तुम ऐसा  
 समझते हो कि मृत्यु तुम्हारे कार्यकी प्रतीक्षा केरसी, जिससे  
 तुम ब्राह्म-वर, निःशङ्क होकर श्रीदृष्ट्यावनधामसे अन्वय चले  
 जाते हो ?

आत्मिष्ठ तले तले विदितानां प्रामेषु भिक्ष  
 खद्गदं पिव यामुने जलमर्लं चौरैः सुकृष्टां  
 सम्मानं कल्यातियोस्यरलं नीचामानं ह  
 श्रीराधामुखलीधरैः भज रसद्भून्दावनं मा ।  
 ( ब्रह्मानन्द )

आई ! श्रीदृष्ट्यावनके वृक्षोंके नीचे विश्राम  
 ग्रामस्मिंसे मिशा के अपाकरो तथा स्थेष्यापूर्वक श  
 जलका भरपेट पान करो । फटे-पुराने वृक्षोंमी  
 ले, समानको धोर घिप और नीचों द्वारा किये गये  
 उत्तम अमृत समझो तथा श्रीराधामुखलीधरका  
 भजन करते हुए श्रीदृष्ट्यावनका कमी परित्याग म

## श्रीरघुनाथदास गोस्वामी

( हुगली जिले के सप्तश्चामके अन्तर्गत झुण्डपुर यात्रके जर्मीदार श्रीराधार्मिनदासके द्वयुम । महान् देशी ! श्रीचैतन्य महाप्रभुके अं

ओरे चेतः ग्रोवाकृष्णकुटिलायीभरवर  
 क्षरम्भवे ज्ञात्वा दद्यसि कथमात्मानमपि मात् ।  
 सद्य त्वं गर्वन्वर्त्यगिविष्वरवद्ग्रेमविलसन्  
 सुधाम्भोधी ज्ञात्वा स्वप्नपि नितरां मां च सुख्य ॥  
 ( मनःशिक्षा ६ )

रे चित्त ! वडे हुए कपट एवं तुरुठिलां  
 गधेके मूर्तमें सान करके तुम क्यों अपेक्षो और  
 जल रहे हो ? तुम सर्वदा श्रीराधामिनिराधारिति न  
 प्रेमलक्षी सुन्दर सुधा-सागरमें जान करके भी  
 हमसो भी पूर्ण सुखी वरो ।

## महाकवि कर्णपूर्

( श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुयायी, श्रीशिवानंदसेनके सुपुत्र, महाकवि )

ईद्वा पुरुषभूषणेन या  
भृपथन्ति हृदयं न सुभ्रुवः ।  
धिक् तदीयकुलशीलयैवनं  
धिक् तदीयगुणरूपसम्पदः ॥  
जाग्रितं सखि पणीकृतं मया  
कि गुरोश्च सुहृदश्च मे भयम् ।  
लभ्यते स यदि कस्य वा भयं  
लभ्यते न यदि कस्य वा भयम् ॥  
भावधो यदि निहन्ति हन्त्यतां  
बान्धवो यदि जहाति हीयताम् ।  
साधवो यदि हसन्ति हस्यतां  
माधवः स्वयमुरीकृतो मया ॥  
ब्रीडां विलोडयति लुड्यति धैर्यमार्य-  
भीतिं भिनत्ति परिलुम्पति चित्तवृत्तिम् ।  
नामैव यस्य कलितं श्रवणोपकण्ठ-  
दृष्टः स किं न कुरुतां सखि महिंधानाम् ॥  
( आनन्दवृत्तावनन्तम् ८ । ९५-९६ )

जो सुन्दर भौंहोंवाली सुन्दरियाँ ऐसे पुरुषभूषण  
श्रीश्यामसुन्दरके द्वारा अपने हृदयको विभूषित नहीं करतीं,  
उनके कुल, शील और योक्तनको धिकार है। उनकी

गुण-सम्पत्ति तथा रूप-सम्पत्तिको भी धिकार है।

सखि ! मैंने इश्यामसुन्दरके लिये अपने जीवनकी वाजी  
लगा दी है, मुझे गुरुजनोंसे और सुहृदों ( सगे-रामधन्ययों )  
से क्या भय है। यदि इश्यामसुन्दर मिलते हैं, तो ( उनके  
मिल जानेपर ) किसका भय है। और यदि नहीं मिलते,  
तो भी ( मुझ मरणार्थिनीको ) किसका भय है।

यदि माधव ( क्षणभरके लिये मुझे स्वीकार कर लेते हैं  
और मैं सर्वस्व उन्हें सौंपकर उनके चरणोंमें विक जाती हूँ,  
फिर यदि वे मुझे ) मारते हैं, तो उनके हाथसे ( हर्षके  
साथ ) मर जाऊँगी; यदि भाई-ब्रन्दु श्रीकृष्णप्रेमके कारण मेरा  
त्याग करते हैं, तो उस त्यागको सहर्ष घरण कर लै़ूँगी; यदि  
साधु पुरुष ( श्रीकृष्णप्रेमके कारण ) मेरी हँसी उड़ाते हैं, तो  
मुझे उस उपहासका पात्र बनना स्वीकार है। मैंने स्वयं  
सोच-समझकर रमावहङ्गभ प्यारे इश्यामसुन्दरको अपने हृदय-  
मन्दिरमें विठाया है !

सखि ! जिनका ( केवल ) नाम ही कानोंके निकट  
आकर मेरी लज्जाको मथ डालता है, धैर्यके बाँधको तोड़  
डालता है, गुरुजनोंके भयको भङ्ग कर देता है तथा मेरी चित्त-  
वृत्तिको लूट लेता है। फिर वे यदि स्वयं आँखोंके सामने आ  
जायें, तब तो मुझ-जैसी अबलाओंका क्या नहीं कर डालें ।

## आचार्य श्रीमधुसूदन सरस्वती

( बंगदेशके फरीदपुर जिलेके अन्तर्गत कोटालिपाड़ा आमके निवासी । आजीवन बहानारी । विद्यागुरु श्रीमाधव सरस्वती और  
दीक्षागुरु श्रीविश्वेश्वर सरस्वती । प्रकाण्ड पण्डित एवं वैदे भारी योगी । गीतके प्रसिद्ध दीक्षाकार )



वंशीविभूषितकरात्रवनीरदाभात्  
पीताम्बराद्वृण्डविम्बफलाधरोषात् ।  
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविनदनेत्रात्  
कृष्णात्परं किमपि तस्महं हन जाने ॥  
( श्रीगीतागृहीर्दीपिका टीका १५ । २० )

जिनके करकमल चंशीसे  
विभूषित हैं, जिनकी नवीन मेशकी-सी  
आमा है, जिनके पीत बल्कि है, अचण विम्बफलके  
समान अधरोष हैं, पूर्ण चन्द्रके सदृश सुन्दर मुख और

कमलके से नयन हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णको छोड़कर अन्य  
किसी भी तत्त्वको मैं नहीं जानता ।

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं  
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते ।

अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काशयं भूयाच्चिरं  
कालिन्दीपुलिनेषु यक्षिमपि तनीलं महो धावति ॥

( गीता० गृहा० १३ । १ )

ध्यानाभ्याससे मान्यता नहीं करके गोगीजन गति किए  
प्रसिद्ध निर्गुण, निष्ठि

भं द्वी देखें; हमारे लिये तो श्रीयमुनाजीके लग्नर जो वृणवनमवाली वह अलौकिक नील ल्योति दौड़ती फिरती है, वही चिरकालतक लोननोंको लकाचौधमें डालनेवाली है।

चित्तद्रव्यं हि जनुवत् स्वभावात् कठिनात्मकम् ।  
तापकैर्त्तिपर्योगी द्रवत्वं प्रतिपद्यते ॥

( भक्तिसायन १ । ४ )

नित नामकी वस्तु एक ऐसी धातुसे बनी है, जो लाहकी भाँति स्वभावसे ही कटोर है। तपानेवाली सामग्रीका समर्क रोनेपर ही वह पिघलती है।

भगवान् परमानन्दस्वरूपः स्वयमेव हि ।  
मनोगतस्तदकारस्ततमेति पुष्कलम् ॥

( भक्तिसायन १ । १० )

भगवान् स्वयं परमानन्दस्वरूप हैं। वे जब मनमें प्रवेश कर जाते हैं, तब वह मन पूर्णरूपसे भगवान्के आकारका होकर रसमय बन जाता है।

भरवन्सं विभुं चित्यं पूर्णोद्धसुखात्मकम् ।  
थद् गृहणाति द्रुतं चित्तं किमन्यद्विषिष्यते ॥

( भक्तिसायन १ । २८ )

पिघला हुआ नित ज एवं चिदानन्दस्वरूप भगव है, तब उसके लिये और क हुते चित्ते प्रविष्ट य सा भक्तिरित्यभिहित

पिघले हुए नितका सा आकारका बन जाना ही भक्ति विषयमें विशेष बात आगे कही

इष्टादृष्टफला भक्ति  
निदापूजदेहस्य गङ्गा

भक्तिका फल प्रत्यक्ष भी प्रकार गङ्गास्त्रानसे ताप-पीड़ित मिलती है और उसका पापन शास्त्रमें कहा गया है, उसी प्रकार शान्तिकी अनुभूति होती है और मोक्ष आदि फलकी प्राप्ति भी मुनी

## गुसाईजी श्रीमद्विठ्ठलनाथजी

( गोसाई श्रीवड्डभानाथजीके सुपुत्र )

( प्रेषक—प० श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री, साहित्यरत्न )

सदा सर्वात्मभावेन  
स्मरत्व्यः स्वप्रभुस्वया ।  
यादशा तादशा एव  
महान्तसे मुनिति नः ॥

तुम्हें सदा सर्वात्मभावसे एक  
प्रभु श्रीकृष्णका ही सरण करना  
चाहिये। हमलोग चाहे जैसे भी हों;  
वे महान् हैं, हमलोगोंको पवित्र करेंगे ही।

सदा सर्वात्मभावेन भजनीयो व्रजेश्वरः ।  
कृष्णति स एवास्तद्विक्षिकं पारलौकिकम् ॥



कालादि दोषको निवारण करने सर्वत्सभावसे सेवन करना चाहिए निर्दोषभावसे आश्रक्ती स्थापना करने

भगवस्येव सततं स्थापनीय  
कालोऽयं कठिनोऽपि श्रीकृष्ण

भगवान् श्रीकृष्णमें ही अपने देना चाहिये। यह कठिन कल्पिकाल कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकेगा।

सर्वसाधनशून्योऽहं सर्वसामर्थ्यं

यदि तुष्टोऽसि रुष्टो वा त्वमेव शरणं सम ।  
मारणे धरणे चापि दीनानं नः प्रसुर्गतिः ॥

आप चाहे संतुष्ट हों या रुष्ट, मेरे तो आश्रय—रक्षक आप ही हैं। हम दीनोंको मारने या स्वीकार करनेमें आप ही समर्थ हैं एवं आप ही प्रभु हमारी गति हैं।

यद्दैन्यं त्वकृपाहेतुर्न तदस्ति ममाणविपि ।  
तां कृपां कुरु राधेश यथा ते दैन्यमाप्नुयाम् ॥

जो दीनता आपकी कृपामें हेतु है—जिस दैन्यपर आप रीझते हैं, उसका तो मुक्षमें लेश भी नहीं है। अतः हे राधानाथ ! ऐसी कृपा कीजिये जिस कृपासे मैं उस दैन्यको प्राप्त कर सकूँ।

## आचार्य श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती

( स्थितिकाल १८ वीं शताब्दी । बंगालके प्रसिद्ध विद्वान्, महात्मा । गीताके टीकाकार )

गोपरामाजनग्राणप्रेयसेऽतिप्रभूष्णवे ।  
तदीयप्रियदास्याय मां भद्रिष्महं ददे ॥  
( श्रीमद्भागवतकी साराख्यदर्शिनीटीका ७ । ३ । १ )

श्रीगोपललनाथोंके प्राणोंसे भी प्यारे एवं अत्यन्त प्रभाव-शाली भगवान् श्रीकृष्णको उन्होंके प्रेमीजनोंका दास्य प्राप्त करनेके लिये मैं अपने आपको तथा अपना सब कुछ अर्पण करता हूँ।

तत् संरक्ष्य सततामागःकुञ्जरात् तत्प्रसादजा ।

दीनतामानदत्त्वादिशिलाकल्पसमहावृत्तिः ।

भक्तिवल्ली नृभिः पाल्या श्रवणाद्यम्बुद्धेचनैः ॥

( सारांश ७ । १ । १ )

भक्ति एक ऐसी लता है, जो संतोंकी कृपासे ही उत्पन्न होती है। दीनता एवं दूसरोंको मान देनेकी वृत्ति आदि शिलाओंकी बाड़के द्वारा उस वेलको संतापराधस्थी हाथीसे बचाकर अचन-कीर्तन आदि बलसे सीचते और बढ़ाते रहना चाहिये।

## महाप्रभु श्रीहरिरायजी

सदोद्दिसमनाः कृष्णदर्शने क्षिष्ठमानसः ।  
लौकिकं वैदिकं चापि कार्यं कुर्वन्नास्याय ॥  
सिरुद्वच्चनो वाक्यमावश्यकमुदाहरन् ।  
मनसा भावयेन्नित्यं लीलाः सर्वाः क्रमागताः ॥  
( बड़ा शिक्षापत्र १ । १०२ )

वृथा चिन्ता न कर्तव्या स्वस्मनोमोहकारणम् ।

यथा सच्छिद्वकलशाजलं स्वति सर्वशः ॥

तथायुः सक्तं याति ज्ञायते न गृहस्थितैः ।

एवं हि गच्छत्यायुष्ये क्षणं नैव विलम्बयेत् ॥

भगवच्चरणे चेतःस्थापनेऽतिविचक्षणः ।

( बड़ा शिक्षा ० ३६ । ८-१० )

अपने मनके भोइके कारण वृथा चिन्ता न करे। जैसे छिद्रयुक्त कलशसे चारों ओर जल चूता रहता है, वैसे ही आयु निरन्तर धीण होती चली जा रही है किंतु गृहस्थाश्रमी जनों-के जाननेमें नहीं आती। इस प्रकार आयु जा रही है, अतः श्रीभगवान्के चरणारविन्दोंमें चित्त स्थापन करनेमें अति चतुर भनुष्यको क्षणमात्रका भी विलम्ब नहीं करना चाहिये।

## गोस्वामी श्रीरघुनाथजी

( पुष्टिमार्गके आचार्य )

गोपवालसुन्दरीगणावृतं कलानिधिं  
रासमण्डलीविहारकरिकामसुन्दरम् ।  
पद्मयोनिशङ्करादिदेववृन्दवन्दितं  
नीलचारिवाहकान्तिगोकुलेशमाश्रये ॥

जो सुन्दर गोपवालाओंसे आवृत हैं, समस्त कलाओंके आधार हैं, रास-मण्डलमें विहार करनेवाले और कामदेवसे भी अधिक सुन्दर हैं तथा श्रीब्रह्माजी और शङ्करादि देववृन्दोंसे बन्दित हैं, उन नील जलधरके समान कान्तिवाले गोकुलेश्वर श्यामसुन्दरकी मैं शरण जाता हूँ।

## श्रीकृष्णमिश्र यति

( समय ११ वीं शताब्दी, 'प्रवेषन्वद्रोदश' नामक धर्म और भक्तिप्रक नाटकके रचयिता ) .

अन्धकरोमि भुवनं वधिरीकरोमि

धीरं सचेतनसचेतनतां नयामि ।

कृत्यं न पश्यति न येत हितं श्रणोति

धीमानधीतमयि न प्रतिसंदधाति ॥

क्रोध कहता है कि मैं लोगोंको अंधा बना देता हूँ, वहरा बना देता हूँ, भीर एवं चेतनको अचेतन बना देता हूँ । मैं ऐसा कर देता हूँ जिससे मनुष्य अपना कर्तव्य भूल जाता है, दिनकी घात भी नहीं सुनता तथा बुद्धिमान् मनुष्य भी पढ़े हुए विषयोंका स्मरण नहीं कर सकता ।

प्रायन्ति यां सुखिनि दुःखिनि चानुकम्पां

पुण्यक्रियासु मुदितां कुमतावुपेक्षाम् ।

एवं प्रसादमुपयाति हि रागलोभ-

द्वैषदिदोषकलुषोऽप्ययमन्तरोत्तमा ॥

जो सुखियोंसे मैत्री, दुखियोंपर दया, पुण्यसे प्रसन्नताका अनुभव और कुबुद्धिकी उपेक्षा करते हैं, उनका अत्तरामा राग-लोभ-द्वैषआदि दोषोंसे कल्पित होनेपरभी शुद्ध हो जाता है।

प्रायः सुकृतिनामर्थे देवा यान्ति सहायताम् ।

अपन्यानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति ॥

पुण्यात्माओंके कार्योंमें प्रायः देवतालोग भी सहायता करते हैं और कुमारगंगामीका साथ सहोदर भाई भी द्वोइ देता है ।

## पण्डितराज जगन्नाथ

अक्षरोंकी सदा जय हो ।

ऐ चेतः कथामि ते हितमिदं वृन्दावने चारथम्

वृन्दं कोऽपि गवां नवाम्बुद्धिभो वन्धुर्न कार्यस्त्वया ।

सौन्दर्यामृतमुद्दिरण्डिरभितः सम्मोहा मन्दस्मितै-

रेष त्वां तत्र वल्लभांश्च विषयानाशु क्षये नेत्यति ॥

ऐ चित्त! तेरोहितके लिये तुझे सावधान किये देता हूँ— कहीं तु उस वृन्दावनमें गाय चरनेवाले, नवीन नील मेषके समान कान्तिवाले छैलको अपना वन्धु न बना लेना । यह सौन्दर्यरूप अमृत वरसानेवाली अपनी मन्द मुसकानसे तुझे मोहित करके तेरे प्रिय समस्त विषयोंको तुरंत नष्ट कर देगा ।

## श्रीविष्णुचित्त ( पेरि-आळवार )

( महान् मत्त, वे गरुड़के अवतार माने जाते हैं । जन्म-स्थान—मद्रासप्रदेशके तिन्वेवेली जिलेमें विल्लीपुतूर नामक स्थान, यिताका नाम—श्रीमुकुन्दाचार्य, माताका नाम—श्रीपदा )

भगवान् नारायण ही सर्वोपरि हैं और उनके चरणोंमें अपनेको सर्वतोभावेन समर्पित कर देना ही कल्याणका एकमात्र उपाय है । भगवान् नारायण ही हमारे रक्षक हैं, वे अपनी योगमायासे साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंके दलन करनेके लिये समय-समयपर अवतार लेते हैं । वे समस्त मूर्तिके हृदयमें स्थित हैं । भगवान् मायासे परे हैं और उनकी



उपासना ही मायासे छूटनेका एकमात्र उपाय है । उनार विश्वास करो, उनकी आराधना करो, उनके नामकी रट लगाओ और उनका गुणानुवाद करो । ( ३० नमो नारायणाय । )

वे वास्तवमें दयाके पात्र हैं, जो भगवान्, नामग्रन्थी उपासना नहीं करते । उन्होंने अपनी माताकी व्यर्थ ही प्रभाव का कष्ट दिया । जो लोग 'नारायण' नामका उन्नायण नहीं करते वे पाप ही लाते और पापमें ही गँते हैं । जो लोग भगवान् मायाको अपने हृदयमन्दिरमें स्थापितकर प्रभावी सुमनसे उनकी पूजा करते हैं, वे ही मृत्युगामी दृढ़ते हैं ।

## भक्तिमती श्रीआण्डाळ (रंगनायकी)

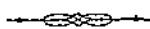
(यथार्थ नाम 'कोदई', अर्थात् पुष्पोंके हारके समान कमरीय दक्षिणकी महान् भक्तिमती देवी, जन्म-स्थान—दक्षिण भारतमें कावेरी-तटपर स्थित कोई गाँव, श्रीविष्णुचित्तदारा पालित, इन्हें भूदेवीका अवतार मानते हैं।)

[ये गोपीभावमें विभोर हुई कहती हैं—]

पुष्करिके भाग्यवान् निवासियो ! क्षीरसमुद्रमें  
शेषकी शश्यापर पौड़े हुए सर्वेश्वरके चरणोंकी  
महिमाका गान करती हुई हम अपने व्रतकी  
पूर्तिके लिये क्या-क्या करेंगी—यह सुनो । हम पौड़े  
फटनेपर खान करेंगी । शी और दूधका परित्याग  
कर देंगी । नेत्रोंमें आँजन नहीं देंगी । बालोंको  
फूलोंसे नहीं सजायेंगी । कोई अशोभन कार्य नहीं करेंगी ।  
अशुभ वाणी नहीं बोलेंगी, गरीबोंको दान देंगी और बड़े  
चावसे इसी सरणिका चिन्तन करेंगी ।



गौयोंके पीछे हम बनमें जाती हैं और वहीं छाक खाती  
है—हम गँवार ग्वालिनें जो ठहरीं । किंतु हमारा कितना  
बड़ाभाग्य है कि तुमने भी हम ग्वालिनेंके यहों ही जन्म लिया—  
तुम गोपाल कहलाये ! प्यारे गोविन्द, तुम पूर्णकाम हो; फिर  
भी तुम्हारे साथ जो हमारा जाति और कुलका सम्बन्ध है,  
वह कभी धोये नहीं मिटेगा । यदि हम दुलारके कारण तुम्हें  
छोटे नामोंसे पुकारते हैं—कन्हैया या कनूँ कहकर सम्मोहित  
करते हैं तो कृपा करके हमपर रुष्ट न होना, अच्छा ! क्योंकि  
हम तो निरी अबोध बालिकाएँ हैं । क्या तुम हमें हमारे बख्त  
नहीं लौटाओगे ?



## श्रीकुलशेखर आल्वार

(कोल्हिनगर (केरल) के धर्मात्मा नरेश दद्वतके पुत्र, स्थान-पहले श्रीरंगक्षेत्र, बादमें तिरुपति, ये कौस्तुभमणिके  
अवतार कहे जाते हैं।)

प्रभो ! मुझे न धन चाहिये न  
शरीरका सुख चाहिये, न मुझे राज्यकी  
कामना है न मैं इन्द्रका पद चाहता  
हूँ और न मुझे सार्वभौम पद ही  
चाहिये । मेरी तो केवल यही अभिलाषा  
है कि मैं तुम्हारे मन्दिरकी एक सीढ़ी  
वनकर रहूँ, जिससे तुम्हारे भक्तोंके  
चरण चार-चार मेरे मस्तकपर पड़ें । अथवा स्वामिन् ! जिस



रास्तेसे भक्तलोग तुम्हारे श्रीविग्रहका दर्शन करनेके लिये प्रतिदिन  
जाया करते हैं, उस मार्गका मुझे एक छोटा-सा रजःकणही बना  
दो, अथवा जिस नालीसे तुम्हारे वर्गीचेके बृक्षोंकी सिंचाई होती  
है, उस नालीका जल ही बना दो अथवा अपने वर्गीचेका  
एक चम्पाका पेड़ ही बना दो, जिससे मैं अपने फूलोंके  
द्वारा तुम्हारी नित्य पूजा कर सकूँ, अथवा मुझे अपने यहाँके  
सरोवरका एक छोटा-सा जलजन्तु ही बना दो ।

यदि माता खीझकर बच्चेको अपनी गोदसे उतार भी

देती है, तो भी वहा उसीमें अपनी लौ छाये रहता है और उसीको याद करके रोता-चिल्हाता और छटपटाता है। उमी प्रकार है नाश ! तुम चाहे कितनी ही उपेक्षा करो और मेरे दुर्लभोंकी ओर ध्यान न दो, तो भी मैं तुम्हारे चरणोंको छोड़कर और कहीं नहीं जा सकता, तुम्हारे चरणोंके गिरा मेरे लिये और कोई दूसरी गति ही नहीं है।

यदि पति अपनी प्रतिव्रता स्त्रीका सवके सामने तिरस्कार भी करे, तो भी वह उसका परित्याग नहीं कर सकती। इसी प्रकार चाहे तुम मुझे कितना ही दुखकारो, मैं तुम्हारे अवश्य चरणोंको छोड़कर अन्यत्र कहीं जानेकी बात भी नहीं सोच सकता। तुम चाहे मेरी ओर आँख उठाकर भी न देखो, मुझे तो केवल तुम्हारा और तुम्हारी कृपाका ही अवलम्बन है। मेरी अभिलाप्तिके एकमात्र विषय तुम्हीं हो। जो तुम्हें चाहता है, उसे त्रिसुवनकी सम्पत्तिसे कोई सतलज नहीं।

हे ! मैं आपके चरणयुगलमें इसलिये नमस्कार नहीं करता कि मेरे द्वन्द्वों ( शतीषाणादि ) का नाश हो, मैं कुम्भी-पाकादि घड़े-घड़े नरकोंसे बचा रहूँ और नन्दनवनमें कोमलजड़ी अप्सरायोंके साथ रमण करूँ, अपितु इसलिये कि मैं सदा हृदय-मन्दिरमें आपकी ही भावना करता रहूँ।

हे भगवन् ! मैं धर्म, धन-संग्रह और कामोपभोगकी आशा नहीं रखता, पूर्वकर्मानुसार जो कुछ होना हो सो ही जाय; पर मेरी यही वार-वार प्रार्थना है कि जन्म-जन्मान्तरोंमें भी आपके चरणारविन्द-युगलमें मेरी निश्चल भक्ति बनी रहे।

हे सर्वव्यापी वरदाता ! तृष्णारूपी जल, कामरूपी आँधीसे उठी हुई भीहमी तरङ्गमाल, स्त्रीरूप भँवर और भाई-पुत्ररूपी ग्राहेसे भरे हुए इस संसाररूपी महान्-समुद्रमें छूकते हुए हमलेहोंको अपने चरणारविन्दकी भक्ति दीजिये।

जो संसार-सागरमें गिरे हुए हैं, ( सुख-दुःखादि ) द्वन्द्वरूपी वायुसे आहत हो रहे हैं, पुत्र, पुत्री, स्त्री आदिके पालन-पोषणके भारसे आर्त हैं और विषयरूपी विषम-जलराशिमें विना नौकाके छूकते हैं, उन पुरुषोंके लिये एकमात्र जहाजरूप भगवान् विष्णु ही शरण हो।

नरकासुरका अन्त करनेवाले मध्यसूदन ! खगमि, मूलक अथवा भले ही नरकमें मुझे रहना पड़े, उसकी चिन्ता न है; किंतु शारदू शूलके प्रशुल कमलोंकी शोभाको तिरह करनेवाले आपके युगल चरणोंका चिन्तन मूलुकालोंमें न छूटे।

श्रीकृष्ण ! मेरा मानसरूपी राजहंस आपके चरणारविन्द रूपी दिल्जिलेमें आज ही प्रविष्ट हो जाय। प्राण निकलनेके समर जब बात-पित्त और कफसे गला रुँध जायगा, उस अवश्यमें आपका स्मरण कैसे सम्भव होगा।

रे मेरे मन ! मैं अगाध एवं दुस्तर भवतागरके ऊर कैसे होऊँगा? इस चिन्तासे तू कातर न हो; नरकासुर नाश करनेवाले कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णमें जो तेरी अनन्य भक्ति है, वह तुझे अवश्य हँस संसार-सागरसे पान कर देगी।

कमलनयन श्रीकृष्ण ! हम हाथ जोड़कर, मस्तक नवाकर, रोमाञ्चित शरीर, गृहगद कण्ठ तथा आँखोंकी धारण बहानेवाले नेत्रोंसे आपकी रुति करते हुए नित्य-निरन्तर आपके युगल चरणारविन्दोंके ध्यानरूपी अमृतराजा आस्वादन करते रहें, ऐसा हमारा जीवन दून जाय।

ओ खोटी हुद्दिवाले मूढ़ मानव ! यह शरीर सैकड़ों श्वासोंमें जोड़ होनेके कारण जर्जर है। देखनेमें कोमल और मुन्द्र होनेपर भी परिणामी है ( हृद होनेवाला है )। एक दिन इसका पतन अवश्यमात्री है। तू आपधियोंके चप्पामें पड़कर क्यों कलेश उठा रहा है। रोग-शोकको यदाके लिये दूर भगा देनेवाले श्रीकृष्ण-नामरूपी रसायनका निरन्तर पान करता रह।

श्रीगोविन्दके चरण-कमलोंसे निकले हुए मधुवी श्विलक्षणता है कि उसका पान करनेवाले तो मोहित नहीं होते, उसे न पीनेवालेंपर ही मोह आया रहता है।

अब मूढ़ मन ! तू नाना प्रकारकी सुदीर्घ आत्मजांगी विचार करके भवभीत मत हो। भगवान् श्रीधर तिरंस्त्री है, उनका ये पापरूपी शत्रु कुल भी नहीं रिपाद सकते। तू तो आलस्यको दूर भगाकर भक्तिये गढ़ती ही मिल जानेवाले भगवान् नारायणका ध्यान कर। तैं यह संसारकी वासनाओंका नाश करनेवाला है, वह न या नाहीं भी नहीं बचा सकेगा।

## श्रीविग्रनारायण आळवार

( जाति—ब्राह्मण; ये भगवान्की बनमालाके अवतार कहे जाते हैं )

प्रभो ! मैं बड़ा नीच हूँ, बड़ा पतित हूँ, बड़ा पापी हूँ। किर मी तुमने मेरी रक्षा की। मैंने अवतार अपना जीवन व्यर्थ ही खोया, मेरा हृदय बड़ा कल्पित है। मेरी जिहाने तुम्हारे मधुर नामका परित्याग कर दिया, मैंने सत्य और सदाचारको तिलाङ्गलि दे दी, मैं अब इसीलिये जीवन धारण करता हूँ जिससे तुम्हारी सेवा कर सकूँ। मैं जानता हूँ

हूँ तुम अपने सेवकोंका कदापि परित्याग नहीं करते। मैं जनताकी दृष्टिये गिर गया, मेरी सम्मति जाती रही। संसारमें तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं। पुरुषोत्तम ! अब मैंने तुम्हारे चरणोंको दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया है। तुम्हीं मेरे माता-पिता हो, तुम्हारे सिवा मेरा कोई स्वरक नहीं है। जीवनधन ! अब मुझे तुम्हारी कृपाके सिवा और किसीका भरोसा नहीं है।

## श्रीमुनिवाहन तिरुप्तभाळवार

( ये अन्तज माने जाते थे। इन्हें श्रीवासका अवतार कहा जाता है। )



प्रभो ! आपने मेरे कर्मकी बेड़ियोंको काट दिया और मुझे अपना जन बना लिया। आज आपके दर्शन प्राप्तकर मेरा जन्म सफल हो गया ।

## श्रीपोयगै आळवार, भूतत्ताळवार और पेयाळवार

( श्रीपोयगै आळवार—पहलेका नाम सरोयोगी, पात्रजन्मकि अवतार, जन्मस्थान काशीनगरी ; श्रीभूतत्ताळवार—जन्मस्थान महावलीपुर, गदाके अवतार। श्रीपेयाळवार—जन्मस्थान मद्रासका मैलापुर नामक स्थान, ये खड़के अवतार माने जाते हैं। )



भगवान्के सदृश और कोई वस्तु संसारमें नहीं है। सारे रूपउसके हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, दिशाएँ, नक्षत्र और ग्रह, वेद एवं वेदोंका तात्पर्य, सब कुछ वे ही हैं। अतः उन्हींके चरणोंकी शरण ग्रहण करो, मनुप्रयज्ञनका साकल्य इसीमें है। वे

समझो। भटकते हुए मन और इन्द्रियोंको काबूमें करो, एकमात्र उन्हींकी इच्छा करो और उन्हींकी अनन्य भावसे उपासना करो। वे भक्तोंके लिये सुगुणरूप धारण करते हैं। जिस प्रकार लता किसी वृक्षका आश्रय ढूँढ़ती है, उसी प्रकार मेरा मन भी भगवान्के चरणोंका आश्रय ढूँढ़ता है। उम्मेद प्रेममें जितना सुख है, उतना ही अनित्य विषयोंमें कहाँ। प्रभो ! अब ऐसी कृपा कीजिये कि मेरी बाणी केवल तुम्हारा ही गुणगान करे, मेरे हाथ तुम्हींको प्रणाम करें, मेरे नेत्र सर्वत्र तुम्हारे ही दर्शन करें, मेरे कान तुम्हारे ही गुणोंका श्रवण करें, मेरे नित्तके द्वारा तुम्हारा ही चिन्तन हो और मेरे हृदयको तुम्हारा ही सर्व प्राप्त हो।

## श्रीभक्तिसार (तिरुमडिसे आळवार)

(जगराल—दक्षिणमें तिरुमडिसे (भृहीसरपुर)। गिरकार नाम श्रीभार्गव, माताका नाम श्रीमती कनकवती, तिरुलाल न्यायने इनको पाला था, उनीसे इनका नाम भक्तिसार रखा।)

प्रभो ! मुझे इस जग्ममणके छक्करसे छुड़ायो । मैंने अपनी इच्छाको तुम्हारी इच्छाके अंदर विलीन कर दिया है, मेरा चित्त सदा तुम्हारे चरणोंका ध्यान किया करता है । तुम्हीं आकाश हो, तुम्हीं पुष्टी हो और तुम्हीं पवन हो । तुम्हीं मेरे सामी हो, तुम्हीं मेरे पिता हो । तुम्हीं ही अस्ति हो । तुम्हीं बाणी और मन दोनोंके पंथ वह जगत् तुम्हारे ही अंदर स्थित है और तुम्हारे ही लीन हो जाता है । तुम्हारे ही अंदर सारे भूतप्राणी होते हैं, तुम्हारे ही अंदर चलते-फिरते हैं और किर ही अंदर लीन हो जाते हैं । दूधमें धीकी भौंति तुम सभी माता हो और तुम्हीं मेरे रक्षक हो । तुम्हीं शब्द हो और विश्वाम हो ।

## श्रीनीलन् (तिरुमङ्गल्याळवार)

(जग—चोल देशके किसी गाँवमें एक शैवके पर, पहाड़ीका नाम—तुमुदवंही, ये भगवान्के शर्कारभूवके अवतार माने जाते हैं)



हाय ! मैं कितना नीच हूँ । किंतु साथ ही, अहा खामी कितने दयाल हैं । प्रभो ! मेरे अपराधोंमें कौजिये और सुझे अपनी शरणमें लीजिये । प्रभो ! तुमने मुझे बचा लिया । प्रभो ! मैंने तुम्हारे लाप अत्याचार किये, परंतु तुमने मेरे अपराधोंकी ओर न के सभी खका की ।

## श्रीमधुर कवि आळवार

(इन्हें लोग गढ़का अवतार मानते हैं । अपका वर्ण तिरुमङ्गल नामक स्थानमें एक सामडेड़ी ब्राह्मण-कुलमें उभा था ।)

(गुरुकी सुनिमें हीड़िन्हेने निष्ठालिखित शब्द कहे हैं—)

मैं इन्हें छोड़कर दूसरे किसी परमात्माको नहीं जानता । मैं इन्हींके गुण गाँझेगा, मैं इन्हींका भक्त हूँ । हाय ! मैंने अवतार कंसारके पदार्थोंका ही भरोला किया । मैं कितना

अभिमानी और मूर्ख था । सर्व तो वे ही हैं । मुझे उसकी उपलब्धिहृदय हुई । अब मैं अपने शेष जीवनको इन कीर्तिका जागे दिशाओंमें प्रनार करनेमें विताऊंगा । हम आज सुझे वेदोंका तत्त्व विदाया है । हमके चरणोंमें करना ही मेरे जीवनका एकमात्र साधन होगा ।

## शैव संत माणिक वाचक

(जग—मधुरके पास बदहुर थाम, जग—आहाण, तत्त्वालीन पाण्डुरनदेशके प्रश्नन मनी)

मेरा शरीर रोमालित और कमित है, मेरे हाथ ऊर उठे हुए हैं हि चित्र ! लिसकरे और रेते हुए मैं उकारता हूँ; मिथ्या—असत्यका परिकाग करते हुए मैं आपकी जय

बोलता हूँ, सुनि करता हूँ । मेरे प्राणामाय ! मेरे शीर्णो ! सदा आपकी ही पूजा करते रहेंगे ।

## संत श्रीनम्माल्वार (शठकोपाचार्य)

प्रथम—तिरुकुरुकूर [श्रीनगरी], पिताका नाम—कारिमारन्, माताका नाम—उद्यनगौ, ये विष्वकुसेनके अवतार माने जाते हैं ।)

गुण्यकम्भिद्वारा अर्जित ज्ञानके ज्ञानीलोग कहा करते हैं—  
ज्ञ वर्ण, दिव्य रूप, नाम तथा  
ए श्रीविग्रह अमुक प्रकारके हैं ।  
उनका सारा प्रयास मेरे प्रभुकी  
माका थाह जानेमें असमर्थ ही  
। उनके ज्ञानकी ज्योति एक  
टिमटिमाते हुए दीपकके समान है ।



जो लोग अपने हृदयपर अपना अधिकार मानते हैं और उसे निष्पक्ष समझते हैं, उनकी यह धारणा हंकारपूर्ण है । मैंने तो जब अपना हृदय हिरण्यकशिपुके किंशाली वक्षःस्थलको विदीर्ण करनेवाले प्रभु (श्रीनृसिंह)  
चरणप्रान्तमें भेजा, वह मेरे हाथसे जाता रहा और अबतक

हठपूर्वक उन्हींके पीछे पड़ा हुआ है—वहाँसे हटनेका नाम भी नहीं लेता ।

उपासनाकी अनेकों भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ हैं और विभिन्न बुद्धियोंसे अनेकों परस्परविरोधी मत निकले हैं तथा उन अनेक मतोंमें उन-उन मतोंके अनेकों उपास्य-देवोंका वर्णन है, जिनकी तुम्हारी अपने स्वरूपका किसार करके सृष्टि की है ! ओ उपमारहित ! मैं तो तुम्हारे ही चरणोंमें अपनी भक्तिका उद्घोष करूँगा ।

निद्राको जीते हुए आपियों तथा अन्य उपासकों-के अनन्त जन्मोंकी व्यथाको वह हरण कर लेता है । उसके शक्तिशाली विग्रहका रहस्य निराल एवं स्वतन्त्र है । 'मालन-चौर !' इस अपमानबोधक नामके भावको हृदयझम करना देवताओंके लिये भी कठिन है ।

## शैव संत अपार

(जन्म—६०० ई० । देहावसान—६८१ ई० । आयु—८१ वर्ष ।)

मैं प्रतिदिन लौकिक पापमें डूब रहा हूँ; मुझे जो कुछ जानना चाहिये, उसे तनिक भी नहीं जानता; मैं सगो-सम्बन्धियोंकी तरह अवगुणोंमें तल्लीन होकर आगे चलनेका पथ नहीं देख पा रहा हूँ । नीलकण्ठ ! कृपालु ! हे अतिहि विराटानम्, मन्दिरके अधिपति ! सुझपर कृपा कीजिये, जिससे मैं आपके सुन्दर चरणोंका दर्शन कर सकूँ ।

मेरा चञ्चल हृदय एकको छोड़कर शीघ्रतासे दूसरेमें आसक्त हो जाता है; वही तेजीसे किसीमें लगता है और उसी प्रकार उससे अलग हो जाता है । हे अतिहि विराटानम्के देव चन्द्रमौलि ! मैं आपके चरणोंके शरणागते हूँ, आपने मेरी आत्माको बन्धन-मुक्त कर दिया है ।

## शैव संत सम्बन्ध

(तमिळ प्रदेशके शैवाचार्योंमें सर्वश्रेष्ठ । जन्म—लगभग ६३९ ईस्ली । निवासस्थान—शैयाली, तम्जोर ज़िला )

आहर मन्दिरके शिवके लिये प्रेम-पृष्ठ विलेरो ! तुम्हारे हृदयमें सत्यकी ज्योति प्रकाशित होगी, प्रत्येक बन्धनसे मुक्त होगे ।

आहर मन्दिरके परम पवित्र शिवका कीर्तन-स्तवन

कभी मत भूलो ! जन्मके बन्धन कट जायेंगे और सांसारिक प्रपञ्च पीछे छूट जायेंगे ।

अपने परमप्रेमास्पद आहरमें स्वर्णिम और कमनीय कुसुम विलेरो ! तुम अपने शोकका अन्त कर दोगे, तुम अनुपम आनन्द (कल्याण) प्राप्त करोगे ।

## शैव संत सुन्दरमूर्ति

( सहमार्गके आचार्य, जन्म-स्थान—दक्षिण आरकाट जिला । जाति—ब्रह्मण । )

मुझ पापीने प्रेम और पवित्र उपासनाके पथका परित्याग हूँ । मैं पूजा करने जाऊँगा ।  
कर दिया है !

मैं आपने रोग और दुःखका अर्थ अच्छी तरह समझता आरुर सन्दिशके अधिष्ठितसे दूर रह सकता हूँ ।

## संत वसवेश्वर

( 'वीरशैव' मतके प्रवर्तक, कर्णीटकके महात्मा । अस्तित्व-काल—बारहवीं शताब्दी ( ई० ), जन्म-स्थान—ईंगलेशर वारेवाडी गांव ( कर्णीटक-ग्राम ), पिताका नाम—मादिराजा, माताका नाम—मादलामिका । जाति—ब्राह्मण । )

एक ईश्वर ही हमारे पूज्य हैं । अहिंसा ही धर्म है । अधर्मसे प्राप्त वस्तुको अस्तीकार करना ही प्रत है । अनिच्छासे रहना ही तप है, किसीसे कषट न करना ही भक्ति है । सुख-दुःख आदि द्रव्योंमें सम्भावसे रहना ही समयाचार है । यही सत्य है । हे देव ! इसके आप साक्षी हैं ।

सच्चा भक्त वही है, जो अपनेसे मिलनेवाले सब भक्तोंको प्रणाम करता है । दूसरेंसे मृदु वचन बोलना जप है—एक-मात्र तप है । हम नम्रतासे ही सदाशिवको प्राप्त कर सकते हैं । इन गुणोंके अतिरिक्त हमारे देव कोई दूसरी वस्तु पसंद नहीं करते ।

मैं भक्त नहीं हूँ । मैं भक्तका केवल वेदधारी हूँ । निर्दर्थी, पापी और पतित मेरे नास हैं । हे शिव ! मैं आपके भक्तोंके घरका केवल बालक हूँ ।

हे शिव ! आप मुझे पंगु कर दीजिये, जिससे मैं जहाँ-तहाँ न फिरूँ । मुझे अन्धा कर दीजिये, जिससे मेरे नेत्र दूसरी वस्तु न देव सकें । मुझे बहरा बना दीजिये, जिससे मैं

आपके नामोच्चारण और चर्चाके अतिरिक्त दूसरी वात न तुरूँ । मेरे मनकी ऐसी स्थिति कर दीजिये कि वह आपके भक्तोंकी चरण-सेवाकी इच्छाके अतिरिक्त कोई भी दूसरी इच्छा न करे ।

—चकोर चन्द्रमाके प्रकाशकी खोजमें रहता है । अभ्युज सूर्योदयकी विन्ता करता है, भ्रमर सुगन्धकी विन्ता करता है, मुझे परमात्माके नाम-स्मरणकी ही धुन है ।

मेरा हाल ऐसा है जैसा सरखोपर सागर बहनेसे सरणी-का होता है । यदि परमात्माके भक्त आते हैं तो मैं हरपे-लोट-पोट हो जाता हूँ, हरपे फूल नहीं समाता, आनन्दसे मेरा हृदय-कमल खिल जाता है ।

यह नहीं कहना चाहिये कि अमुक दिन अमुम है और अमुक शुभ है । जो मनुष्य यह कहता है कि ईश्वर मंग आश्रय हैं, उसके लिये सब दिन समान है । जिसका ईश्वरर भरोसा है, विश्वास है, उसके लिये सब दिन एक-से हैं ।

मनुष्यको चाहिये कि अपने आत्माको पहचाने, शह आत्मज्ञान ही उसके लिये गुरु है ।

## संत वेमना

[ अग्राहवीं सदीके पूर्वाधिके आस-पास । जन्म-स्थान—कोंडडीडु ( गुण्डूर जिला ), विहार-स्थल—प्रायः समस्त द्रविड़ प्रदेश । जाति—दूरी ( शूद्रोंकी एक उपशाखा ) । समाधिस्थल—सम्भवतः पासूर गाँव जिला कडपा । ]

हे भगवान् ! बुद्धामें जब वात, पितृ पूर्व कक्षका प्रकोप बढ़ जाता है, नेत्रोंकी ज्योति श्रीण हो जाती है, मृत्यु समीप आ जाती है तब किस प्रकार मूर्ख मानव आपका अन्वेषण क्या है ?

जीव तथा परमात्माका तत्त्व नम्रतानेवाल्य की व्रजवरी मात होता है । एक बार व्रजभावको प्राप्त प्राणी [ त्रिसंसारिकाके मायाजालमें नहीं फँसता है । भन्य, गुण ( गोत्री ) कहीं किरणे अपना एवंहृष—जलविन्दुका स्व—प्रमक्षरा !

साधुओंके सङ्गमें रहकर मनुष्य सभी तीच गुणोंसे—  
अबुणोंसे मुक्त हो जाता है, चन्द्रनके लेपसे देहकी दुर्गम्ब  
दृढ़ हो जाती है। संतगोपीष्ठके समान उचम कर्म दूसरा  
नहीं है।

मानसरोवरमें विहार करनेवाला हंस उसके जलसे अलित  
ही रहता है। सच्चा योगी कर्मस्य संसुक्तिके तीच रहते हुए  
भी उसके फलाफलसे निर्लिप्त रहता है। इसलिये फलकी  
आकाशका रखते विना ही मनुष्यको कर्म करना चाहिये।

मनुष्य पहले माताके गर्भसे जन्म लेता है, किर पनीमें  
प्रवेश कर युजके रूपमें पैदा होता है। इस प्रकार एक शरीर  
होनेपर भी उसके लिये माताँ दो होती हैं।

जो हाथ हमें अमृतका भान करता है, वह स्वयं उसका

स्वाद अनुभव नहीं कर पाता; इसी प्रकार आपने आप-प्र  
धूमनेवाले परम योगीका महत्व भी संसारी ग्राणी समझ न  
सकते।

गङ्गाधर शिव ही सच्चे देव हैं। स्वरूपके लिये संगीत  
( अनाहत नाद ) कर्णभूर वस्तु है। संपादमें सर्व  
उपभोग्य धातु है। चोबन-विचार कर देखें तो अङ्गज—कामने  
ही मृत्युका हेतु है। नैतिक पतन ही वास्तविक मृत्यु है। ऐसे  
ऐमनाका दृढ़ विवास है।

परमात्माका इस विश्वसे पुरुषक अस्तित्व नहीं है। समर  
ब्रह्माप्त ही उसका धरीर है, चायु प्राण है, सूर्य, चन्द्र औ  
अग्नि नैत्रसमूह हैं। इस प्रकार यह विश्व उन व्यक्ति  
महादेवका ही विराट् रूप है।

## संत कवि तिरुवल्लुवर

( ये जातिके जुआहे एवं मैलापुर ( मद्रास ) कविके जिवासी थे )

जिस प्रकार अश्रुरोग 'अ' है, उसी प्रकार जगत्-में  
भगवान् है।

विद्याका क्या सदुपयोग है, यदि सच्चिदानन्द भगवान्के  
चरणपर विद्वानुका मस्तक नत नहीं है—विद्वान् भगवत्कृपा-  
का पात्र नहीं है।

खजनोंके हृदय-कमलमें निवास करनेवाले भगवान्के  
मस्तक सदा बैकुण्ठमें रहते।

इच्छारहित निर्विकल्प भगवान्का भजन करनेवालोंको  
कभी बुःस्की प्राप्ति नहीं होती।

जो भगवान्के कीर्तन-स्तवनमें भलीभैंति लो रहते हैं, वे  
पाप-पुण्यसे परे रहते हैं—पाप-पुण्यके भागी नहीं होते।

भगवान् द्विषीकेशके सत्य-पथपर सुदृढ़ रहनेवाले अम  
रहोंगे।

अप्रतिम—अनुपम भगवान्के भजन और कृपाके विन  
मानसिक चिन्ताका अन्त होना कठिन है।

कल्याण-स्वरूप करुणासामर भगवान्की कृपाके विन  
अपार संसार-सागरको पार करना कठिन है।

जो सिर परमेश्वरके सम्मुख विनात नहीं होता, वे  
चेतनाद्वय इन्द्रियकी तरह व्यर्थ है।

जो लोग हमारे स्वासी परमेश्वरकी कृपाज्योति नहै  
प्राप्त करते, क्या वे जन्म-मरणके सागरके पार ज  
सकते हैं? ( तमिल वेद 'कुरुक्षे

## भगवान् महावीर

( ग्रेषक—श्रीअग्रचन्द्रजी नाड्या )

( लैनपरमें अन्तिम तीर्थद्वारा । घरका नाम—वर्द्धमान । जन्म बाजसे करीव २५५४ वर्ष पूर्व, चैत्र शुक्ल १३ । आविर्भाव-स्थान—विहारायल  
क्षत्रियकुण्ड नगर । पिताका नाम—तिलार्थ । माताका नाम—विश्वला देवी । प्रवाप—७२ वर्षकी आयुमें, कालिक कृष्ण ३० पावापुरीमें । )

### धर्म-सूत्र

धर्म सर्वश्रेष्ठ मङ्गल है। ( कौन-सा धर्म ? )  
अदिष्ट, संयम और तप । जिस मनुष्यका मन  
उस धर्ममें सदा संलग्न रहता है, उसे देखता  
भी न मस्तकर करते हैं।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, व्रह्मचर्य और



अपरिग्रह—इन पाँच महाविलोको स्वीकार करने  
बुद्धिमान् मनुष्य जिन्दारा उपदिष्ट धर्मका  
आचरण करे।

छोटे-बड़े किसी भी ग्राणीकी हिंसा न  
करना, अदत्त ( बिना दी हुई वस्तु ) न लेना,  
विद्यासारी असत्य न बोलना—यह आत्म-  
नियही—सशुल्पयोंका धर्म है।

जो रात और दिन एक बार अतीतकी ओर चले जाते हैं, वे कभी वापस नहीं आते; जो मनुष्य अर्थम् ( पाप ) करता है, उसके वे रात-दिन विलकुल निष्फल जाते हैं ।

जो रात और दिन एक बार अतीतकी ओर चले जाते हैं, वे कभी वापस नहीं आते; जो मनुष्य धर्म करता है, उसके वे रात और दिन सफल हो जाते हैं ।

जगतक बुद्धापा नहीं सताता, जगतक व्याधियाँ नहीं भड़तीं, जगतक इन्द्रियाँ हीन् ( अशक्त ) नहीं होतीं, तबतक धर्मका आचरण कर लेना चाहिये—वादमें कुछ नहीं होनेका ।

जो मनुष्य प्राणियोंकी स्थियं हिंसा करता है, दूसरोंसे हिंसा करवाता है और हिंसा करनेवालोंका अनुमोदन करता है, वह संसारमें अपने लिये वैरको बढ़ाता है ।

संसारमें रहनेवाले चर और साक्षर जीवोंपर मनसे, वचनसे और शरीरसे—किसी भी तरह दण्डका प्रयोग नहीं करना चाहिये ।

सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता । इसीलिये निर्गन्ध ( जैन सुनि ) घोर प्राणि-वधका सर्वथा परित्याग करते हैं ।

आनी होनेका सार यही है कि वह किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे । इतना ही अहिंसाके सिद्धान्तका शान यथोष्ट है । यही अहिंसाका विशान है ।

अपने स्वार्थके लिये अथवा दूसरोंके लिये, क्रोधसे अथवा भयसे—किसी भी प्रसङ्गपर दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेवाला असत्य वचन न तो स्थियं बोलना, न दूसरोंसे बुलावाना चाहिये ।

श्रेष्ठ साधु पापकारी, निश्चयकारी और दूसरोंको दुःख पहुँचानेवाली वाणी न बोले ।

श्रेष्ठ मानव इसी तरह कौश, लोभ, भय और हास्यसे भी पापकारी वाणी न बोले ।

हँसते हुए भी पाप-वचन नहीं बोलना चाहिये ।

आत्मार्थी साधकको दृश्य ( सत्य ), परिमित, असंदिग्ध, परिपूर्ण, स्पष्ट—अनुभूत, वाचालतारहित और किसीको भी उद्दिष्ट न करनेवाली वाणी बोलना चाहिये ।

कानेको काना, नपुंसकको नपुंसक, रोगीको रोगी और चोरको चोर कहना व्यापि सत्य है तथापि ऐसा नहीं कहना चाहिये । ( क्योंकि इससे इन व्यक्तियोंको दुःख पहुँचता है । )

जो भाषा कठोर हो, दूसरोंकी मारी दुःख पहुँचानेवाली

हो—वह सत्य ही क्यों न हो—नहीं बोलनी चाहिये । ( सर्वोक्तु उससे पापका आसूच होता है । )

### अस्तानेक-सूत्र

पदार्थ सचेतन हो या अचेतन, अल्प हो या बहुत—और तो क्यां, दाँत कुरेदेवीं सींकके बराबर भी जिस गृहस्थ के अधिकारमें हो, उसकी आशा लिये बिना पूर्ण संग्रही साथक न तो स्वयं ग्रहण करते हैं, न दूसरोंको ग्रहण करनेके लिये प्रेरित करते हैं और न ग्रहण करनेवालोंका अनुमोदन ही करते हैं ।

### ब्रह्मचर्य-सूत्र

यह अब्रह्मचर्य अधर्मका मूल है, महादीयोंका खान है, इसलिये निर्गन्ध सुनि मैथुन-संतर्गका सर्वथा परित्याग करते हैं ।

आत्म-शोधक मनुष्यके लिये शरीरका शङ्कार, लियोंका संसर्ग और पौष्टिक—स्वादिष्ट भीजन—सब ताल्पुट विषके समान महान् भयंकर हैं ।

श्रमण तपस्वी लियोंके रूप, लावण्य, विलास, हास्य, मधुर वचन, संकेत, चैषा, हाव-भाव और कटाक्ष आदिका मनमें तनिक भी विचार न लाये और न इन्हें देखनेका कभी प्रयत्न करे ।

लियोंको रागपूर्वक देखना, उनकी अभिलापा करना, उनका चिन्तन करना, उनका कीर्तन करना आदि कार्य ब्रह्मचारी पुरुषको कदापि नहीं करने चाहिये । ब्रह्मचर्यवतां सदा रत रहनेकी इच्छा रहनेवाले पुरुषोंके लिये यह नियम अस्त्यन्त हितकर है और उत्तम ध्यान प्राप्त करनेमें सहायक है ।

ब्रह्मचर्यमें अनुरक्त मिथुको मनमें वैपर्यक आनन्द पैदा करनेवाली तथा काम-भोगकी असत्ति बढ़ानेवाली श्रीकरण को छोड़ देना चाहिये ।

ब्रह्मचर्य-रत मिथुको लियोंके माथ बातचीत करना और उनसे वार-चार परिचय प्राप्त करना सदाके लिये लाद देना चाहिये ।

ब्रह्मचर्य-रत मिथुको शीघ्र ही वासना-शर्दूल पुर्दारा भोजन-ध्यानका सदाके लिये परित्याग कर देना चाहिये ।

जैसे वहुत ज्यादा ईश्वरवाल ज़ंगलमें वर्षाये उर्देंग

जनामि शान्तं नहीं होती, उसी तरह मर्यादासे अधिक  
भोजन करनेवाले ब्रह्मचारीकी इन्द्रियामि भी शान्तं नहीं होती।  
अधिक भोजन किसीके लिये भी हितकर नहीं होता।

ब्रह्मचर्य-रत्त मिथुको शृङ्खले के लिये शारीरकी शोभा और  
सजावटका कोई भी शृङ्खलारी काम नहीं करना चाहिये।

ब्रह्मचारी मिथुको शब्द, रूप, गन्ध, रस और सर्व—  
इन पाँच प्रकारके काम-गुणोंको सदाके लिये छोड़ देना चाहिये।

देव-लोकसहित समस्त संसारके शारीरिक तथा मानसिक—  
सभी प्रकारके दुःखका मूल एकमात्र काम-भोगोंकी वासना  
ही है। जो साधक इस सम्बन्धमें बीतराग हो जाता है, वह  
शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकारके दुःखोंसे छूट जाता है।

जो मनुष्य इस प्रकार दुष्कर ब्रह्मचर्यका पालन करता  
है, उसे देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किंवर आदि  
सभी नमस्कार करते हैं।

यह ब्रह्मचर्य-धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और  
जिनोपदिष्ट है। इसके द्वारा पूर्वकालमें कितने ही जीव खिद्द हो  
गये हैं, वर्तमानमें हो रहे हैं और भविष्यमें होंगे।

### अपरिग्रह-सूत्र

प्राणिभावके संरक्षक ज्ञानपुत्र ( भगवान् महावीर ) ने  
कुछ वस्त्र आदि स्थूल पदार्थोंको परिग्रह नहीं बतलाया है।  
वास्तविक परिग्रह तो उन्होंने किसी भी पदार्थपर मूर्च्छाका—  
आसक्तिका रखना बतलाया है।

पूर्ण संयमीको धन-धान्य और नौकर-चाकर आदि सभी  
प्रकारके परिग्रहोंका ल्याग करना होता है। समस्त पाप-  
कर्मोंका परित्याग करके सर्वथा निर्मम होना तो और भी  
कठिन बात है।

जो संयमी ज्ञानपुत्र ( भगवान् महावीर ) के प्रवचनोंमें  
रहे हैं, वे विड़ी और उद्देश्य आदि नमक तथा तेल, धी,  
गुड़ आदि किसी भी वस्तुके संग्रह करनेका मनमें संकल्प तक  
नहीं करते।

जानी पुरुष संयम-साधक उपकरणोंके लेने और रखनेमें  
कहीं भी किसी भी प्रकारका ममत्व नहीं करते। और तो यथा,  
अपने शारीरकपर भी ममता नहीं रखते।

संग्रह करना, यह अन्तर रहनेवाले लोभका झलक है।  
अतएव मैं भानता हूँ कि जो साधु मर्यादा-विरुद्ध कुछ भी  
संग्रह करना चाहता है, वह गृहस्थ है—साधु नहीं है।

### अरात्रि-भोजन-सूत्र

सूर्यके उदय होनेसे पहले और सूर्यके अस्त हो जानेके  
बाद निर्गन्ध मुनिको सभी प्रकारके भोजन-पान आदिकी मन-  
से भी इच्छा नहीं करनी चाहिये।

संसारमें बहुतसे चर और स्थावर प्राणी वडे ही यक्षम  
होते हैं—वे रात्रिमें देखे नहीं जा सकते। तब रात्रिमें भोजन  
कैसे किया जा सकता है।

हिंसा, शृङ्ख, चोरी, मैथुन, परिग्रह और राजि-भोजन—जो  
जीव इनसे विरल ( पृथक् ) रहता है, वह अनास्व ( आत्मामें  
पाप-कर्मके प्रविष्ट होनेके द्वारा आहत बहलते हैं, उनसे  
रहित ) हो जाता है।

### विनय-सूत्र

( इसी भाँति ) धर्मका मूल विनय है और मोक्ष  
उसका अनित्य रस है। विनयसे मनुष्य बहुत जलदी  
शलायात्रुत्त सम्पूर्ण शास्त्र-शान तथा कीर्तिका सम्पादन करता है।

इन पाँच कारणोंसे मनुष्य सच्ची शिक्षा प्राप्त नहीं  
कर सकता—

अभिमानसे, क्रोधसे, प्रमादसे, कुष्ठ आदि रोग और  
आलससे।

जो गुरुकी आशा रालता है, उनके पास रहता है,  
उनके इङ्जितों तथा आकारोंको जानता है, वही शिष्य विनीत  
कहलाता है।

इन पंद्रह कारणोंसे बुद्धिमान् मनुष्य सुविनीत कहलाता है—  
उद्धत न हो—नम्र हो, चपल न हो—स्थिर हो।  
भायावी न हो—सरल हो। कुतूहली न हो—गम्भीर हो।  
किसीका लिंगस्तार न करता हो। क्रोधको अधिक  
समर्थक न रखता हो—शीश ही शान्त हो जाता  
हो, अपनेसे मित्रताका व्यवहार रखनेवालोंके प्रति  
सद्भाव रखता हो, शास्त्रके अध्ययनका गर्व न करता  
हो, मित्रपर क्रोधित न होता हो, अप्रिय मित्रकी भी  
पीठ पीछे भलाई ही करता हो, किसी प्रकारका शंगड़ा-  
फक्षाद न करता हो, किसीके दोषोंका भंडाफोड़ न  
करता हो, बुद्धिमान् हो, अभिजात अर्थात् कुलीन हो, लज्जा-  
शील हो; एकाध हो।

शिष्यका कर्तव्य है कि वह जिस गुरुसे धर्म-  
प्रवचन सीखे, उसकी निरन्तर भक्ति करे। मत्स्यका

अड़ालि चढ़ाकर गुरुके प्रति सम्मान प्रदर्शित करे । जिस तरह भी हो सके—मनसे, वचनसे और शरीरसे हमेशा गुरुकी रोगे करे ।

अविनीतिको विपत्ति प्राप्त होती है और विनीतिको सम्पत्ति—ये दो बातें जिसने जान ली हैं, वही शिक्षा प्राप्त कर सकता है ।

### चतुरज्ञीय-सूत्र

मंसारमें जीवोंको इन चार श्रेष्ठ अड्डों—(जीवन-विकासके साधनों) की प्राप्ति बड़ी कठिन है—

मनुष्यत्व, धर्मश्रवण, श्रद्धा और संयममें पुरुषार्थ ।

मनुष्य-शरीर पा लेनेपर भी सद्गमका श्रवण दुर्लभ है, जिसे सुनकर मनुष्य तप, क्षमा, अहिंसाको स्वीकार करते हैं ।

सौभाग्यसे यदि कभी धर्मका श्रवण हो भी जाय तो उसपर श्रद्धा होना अत्यन्त दुर्लभ है । कारण कि बहुत-से लोग न्याय-मार्गको—सत्य-सिद्धान्तको—सुनकर भी उससे दूर रहते हैं—उसपर विश्वास नहीं रखते ।

सद्गमका श्रवण और उसपर श्रद्धा—दोनों प्राप्त कर लेनेपर भी उनके अनुसार पुरुषार्थ करना तो और भी कठिन है; क्योंकि संसारमें बहुत-से लोग ऐसे हैं, जो सद्गम-पर दृढ़ किश्वास रखते हुए भी उसे आचरणमें नहीं लाते ।

परंतु जो तपस्वी मनुष्यत्वको पाकर, सद्गमका श्रवण कर, उसपर श्रद्धा लाता है और तदनुसार पुरुषार्थ कर आत्मन-रहित हो जाता है, वह अन्तरास्पायरसे कर्म-रजको क्षट्टक देता है ।

जो मनुष्य निष्कपट एवं सरल होता है, उसीकी आत्मा शुद्ध होती है और जिसकी आत्मा शुद्ध होती है, उसीके पास धर्म ऊहर सकता है । वीसे सौची हुई अर्न जिस प्रकार पूर्ण प्रकाशको पाती है, उसीप्रकार सरल शुद्ध साधक ही पूर्ण निर्वाणको प्राप्त होता है ।

### अप्रमाद-सूत्र

जीवन असंकृत है—अथात् एक बार दृढ़ जीवेके बाद फिर नहीं जुड़ता, अतः एक क्षण भी प्रमाद न करे । बास फिर नहीं जुड़ता, अतः एक क्षण भी प्रमाद न करे । ग्राहण द्विसा और असंब्रह्मसे अमूल्य यौवनकाल वित्त प्रमाद, हिंसा और असंब्रह्मसे अमूल्य यौवनकाल वित्त प्रमाद हमें बाद जब बृद्धोवस्था आयेगी, तब तुम्हारी कौन रक्षा हमेंके बाद जब बृद्धोवस्था आयेगी, तब किसकी रक्षा होगी । यह बृद्ध विचार लो ।

करेगा—तब किसकी रक्षा होगी । यह बृद्ध विचार लो ।

प्रमत्त पुरुष धनके द्वारा न तो इस लोकमें ही उखां कर सकता है और न परलोकमें । पिर भी असीम भौमें सूद मनुष्य दीपकके बुझ जानेवाले जैसे नहीं दीख पड़ता, वैसे ही न्याय-मार्गको देखते हुए नहीं देख पाता ।

संसारी मनुष्य अपने प्रिय कुटुम्बयोंके लिये दुर्वे पाप-कर्म भी कर डालता है, पर जब उनके हुए भोगनेका समय आता है, तब अकेला ही दुर्ख भोगता कोई भी भाई-बन्धु उसका हुख बँटानेवाला—एहां पहुँचानेवाला नहीं होता ।

संयम-जीवनमें मन्दता लानेवाले काम-भोग वही लुभावने मालूम होते हैं, परंतु संयमी पुरुष उन और अपने मनको कभी आकृष्ट न होने दे । आत्मशो साधकका कर्तव्य है कि वह क्रोधको दशाये, अहंकारको करे । मायाका सेशन न करे और लोभको छोड़ दे ।

जैसे बृक्षका पत्ता पतझड़-ऋतुकालिक रात्रि-समृद्धी जीवेके बाद पीला होकर गिर जाता है, वैसे ही मनुष्यों जीवन भी आयु समाप्त होनेपर सहसा नष्ट हो जाता । इसलिये है गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर ।

जैसे घोसकी बूँद कुदाकी नोकपर योड़ी देशक रहती है, वैसे ही मनुष्योंका जीवन भी बहुत अल्प है—शीघ्र ही नष्ट हो जानेवाला है । इसलिये है गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर ।

अनेक प्रकारके विवेन्द्रीय सुक्त अत्यन्त अल्प आयु इस मानव-जीवनमें पूर्वसंचित कर्मोंकी धूल पूरी तरह रह दे । इसके लिये है गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर ।

तेह शरीर दिन-प्रतिदिन जीर्ण होता जा रहा है, पर वाल पक्कार द्वेष होने लगे हैं, अधिक क्षय—गारीर और माससिक सभी प्रकारका बल घटता जा रहा है । गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर ।

जैसे कमल शरत्कालके निर्मल जलों भी नहीं छूता—अद्यग्र अलित रहता है, उसी प्रकार तुम्हीं गंताये अपनी समस्त आसक्तियाँ दूर कर मय प्रसादके निहंद-वर्णनमें रहित हो जा । है गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर ।

### प्रमाद-स्थान-सूत्र

प्रमादको कर्म कहा गया है और अप्रमाद अकर्म—अर्थात् जो प्रवृत्तियाँ प्रमादयुक्त हैं, वे कर्म-बन्धन करने-वाली हैं और जो प्रवृत्तियाँ प्रमादरहित हैं, वे कर्म-बन्धन नहीं करतीं। प्रमादके होने और न होनेसे मनुष्य क्रमशः मूर्ख और पण्डित कहलाता है।

राग और द्वेष—दोनों कर्मके बीज हैं। अतः मोह ही कर्मका उत्पादन माना गया है। कर्म-पिद्वान्तके अनुभवी लोग कहते हैं कि संसारमें जन्म-मरणका मूल कर्म है और जन्म-मरण यही एकमात्र दुःख है।

( वीरवाणीके नवीन संस्करणसे संकलित )

### आचार्य कुंदकुंद

( प्रेषक—श्रीअगरचन्द्रजी नाहदा )

अशानसे मोहित मतिवाला तथा राग-द्वेषादि अनेक भावोंसे युक्त मूढ़ पुरुष ही अपने साथ सम्बद्ध या असम्बद्ध शरीर, स्त्री, पुत्रादि, धन-धान्यादि तथा आमन्नारादि गच्छ, अनित्य या मिश्र परद्रव्योंमें मैं यह हूँ, मैं इनका हूँ, ये मेरे हैं, ये मेरे थे, मैं इनका था, ये मेरे होंगे, मैं इनका होऊँगा। इस प्रकारके इूठे विकल्प किया करता है। परंतु जानी पुरुषोंने कहा है, जीव चैतन्यस्वरूप तथा व्यापार ( उपयोग ) लक्षणवाला है।

आत्मा कहाँ जड़ द्रव्य है कि तुम जड़ पदार्थको 'यह मेरा है' इस प्रकार कहते हो ?

विशुद्ध आत्मा ही परमार्थ है, मुक्ति है, केवल ज्ञान है, मुनिपन है। उस परमार्थमें स्थित हुए चिना जो भी तप करते हैं, व्रत धारण करते हैं, वह सब अज्ञान है। परमार्थसे दूर रहकर व्रतशील, तपका आचरण करनेवाला निर्वाण-लाभ नहीं कर सकता।

अत्त्वर्में श्रद्धा और तत्त्वमें अश्रद्धा होना 'सिद्धात्म' है। विषयकवायसे अन्ध वृत्तिको अविरति या 'असंयम' कहते हैं। क्रोधादिसे होनेवाली जीवकी कल्पता 'कधाय' कहलाती है।

और मन-बन्धन-कायकी हेतु एवं उपाधिरूप शुभाशुभ प्रवृत्तिमें जो उत्साह है, वह 'योग' कहलाता है। ये चार आश्रव ही कर्म—मनके कारण हैं। वस्तुतः राग-द्वेष और मोह ही कर्मबन्धके द्वार हैं। जिसमें अंशमात्र भी राग विद्यमान है, वह शास्त्रोंका ज्ञाता भले ही हो, आत्मा और अनात्माका ज्ञान उसे नहीं है। जानी निरीह होनेसे कोई भी इच्छा नहीं रखता। जीवगत प्रत्येक विभाव—दोषकी उत्पत्तिका कारण पर-द्रव्य है; जिसे विवेक-ज्ञान हो जुका है, वह पर-पदार्थमें थहर-ममत्व-बुद्धि नहीं रखता। जबतक अहं-मम-बुद्धि है, तबतक वह अज्ञानी है।

रागादि आत्माके अशुद्ध परिणाम हैं। पर-पदार्थोंपर क्रोध करना वृथा है। वे तुम्हें अच्छा या बुरा करनेका कहनेको नहीं आते। शुभ और अशुभ मनकी कल्पना है। इन्द्रियोंसे प्राप्त सुख दुःखरूप है—पराधीन है, वाधाओंसे परिपूर्ण, नाशशील, बन्धका कारण और अतृसिकर है। जिसे देहादिमें अणुमात्र भी आसक्ति है, वह शास्त्रोंका होनेपर भी मुक्त नहीं हो सकता। ( 'आचार्य कुंदकुंदके रूप' पुस्तकसे संकलित )

### मुनि रामसिंह

( उच्चकोटिके जैनमुनि, अस्तित्वकाल ११ वीं शताब्दी, सुप्रसिद्ध प्राकृत वैयाकरण हेमचन्द्राचार्यके पूर्ववर्ती । )

जीव मोहवशात् दुःखको सुख और सुखको दुःख मान वैठा है, यही कारण है कि तुम्हे मोक्ष-लाभ नहीं हो सका है।

इन्द्रियोंके विग्रहमें तू ढील मत दे। पौन्चमेंसे इन दोका तो अवश्य निवारण कर—एक तो जिहा और दूसरा उपस्थ।

न द्वेष कर, न रोप कर, न क्रोध कर। क्रोध धनाश कर देता है। और धर्म नष्ट होनेसे मनुष्य-जन्म ही हो गया।

थुतियोंका अन्त नहीं, काल थोड़ा और हम उड़ें अतः तू केवल वही सीख, जिससे कि जरा और मरक्षय कर सके।

प्राणियोंके वधसे नरक और थम्यदानसे स्वर्ग मिलता है। ये दो पथ हैं, जाहे जिसपर चला जा।

हे ज्ञानवान् योगी ! बिना दयाके धर्म हो नहीं सकता।

कितना ही पानी विलोया जाय, उससे हाथ चिकना होनेका नहीं।

## मुनि देवसेन

(उच्चकोटिके जैन-संत, मालवा प्रदेशके निवासी, समय १०वीं शताब्दी)

ऐसा दुर्घन मत कह कि धर्म धन प्राप्त हो जाय तो मैं धर्म करूँ। कौन जाने यमदूत आज खुलाने आ जायें या कल।

अधिक क्या कहें—जो अपने प्रतिकूल हो, उसे दूसरोंके प्रति कभी न करो। धर्मका यही मूल है।

वही धर्म विशुद्ध है, जो अपनी कायसे किया जाता है और धन भी वही उच्छ्वल है, जो न्यायसे प्राप्त होता है।

हे जीव ! स्पदेन्द्रियका लालन मत कर। लालन करनेसे यह शत्रु बन जाता है। हथिनीके स्पर्शसे हाथी साँकल और अंकुशके वशमें पड़ा है।

हे जीव ! जिह्वेन्द्रियका संवरण कर। स्वादिष्ट भोजन अच्छा

नहीं होता। चोरके लोपसे मछली स्थलका दुःख रहती है और तड़प-तड़पकर मरती है।

जरे मूढ़ ! आगेन्द्रियको वशमें रख और विषय-कायसे बच। गन्धका लोभी भ्रमर कमल-कोषके अंदर मूर्छित पड़ा है।

रूपसे प्रीति मत कर। रूपपर खिचते हुए नेत्रोंको रोक ले। रूपात्क परिगेको तू दीपकर पड़ते हुए देख।

हे जीव ! अच्छे मनोमोहक गीत सुननेकी ललसा न कर। देख, कर्णमधुर संगीत-रससे हरिणका विनाश हुआ।

जब एक ही इन्द्रियके स्वच्छन्द विचरणसे जीव सैकड़ों दुःख पाता है, तब जिसकी पाँचों इन्द्रियाँ सच्छन्द हैं, उसका तो किर पूँजा ही क्या !

## संत आनन्दधनजी

[ ग्रेवक—सेठ तेजराजी लक्ष्मीन्द जैन ]

{ गुजरात या राजस्थानके आस-पासके निवासी जैनमुनि, पूर्वाश्रमका नाम—लाभानंद या लाभविजय, जीवन-काल—विकाशी १७ वीं शताब्दीका अन्त, स्थान—(अन्तिम दिनोंमें)—मेता (जोधपुर) }

कथा सोवै १ उठ, जाम, बाऊरे ॥ कथा० ॥

अंजलि जल ड्यू अमु घटत है।

देत पहोरिया घरिय बाड रे ॥ १ ॥

इन्द्र चन्द्र नामेन्द्र मुनीन्द्र चले

कुण राजा घत साह राड रे ॥

भमत भमत भवजलधि पायेक।

भगवत भजन विन भाड न्याड रे ॥ २ ॥

कहा विलंब करे अब बाऊरे।

तरि भवजलनिधि पार पाड रे ॥

आनन्दधन चेतनमय भूरति।

सुदु निरंजन देव ध्याड रे ॥ ३ ॥

राम कहा, रहमान कहो कोड, कान्ह कहो, महादेव री।

पारसनाथ कहो, कोड ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री ॥ ५ ॥

भाजन भेद कहावत नामा, एक गृतिका रूप री।

तैसे खंड कल्पना रोपित, आप अखेंड स्वरूप री ॥ २ ॥

निज पद रमै राम सो कहिये, रहिम कहै रहमान री।

करवै कर्म कल सो कहिये, महादेव निर्बन्ध री ॥ ३ ॥

परसे रूप पारस सो कहिये, ब्रह्म चिह्न सो ब्रह्म री।

इस विध साथो आप अनंदधन, चेतनमय निःकर्म री ॥ ४ ॥

मेरे घट भ्यान-भानु भयो भीर।

चेतन चक्का, चेतना चक्की, मानो विरहगी सोर ॥

फैली चहुँ दिस चतुर भाव स्वच्छि, मिठ्ठो भरमत्तन झार ॥

आपकी चोरी आप ही जानत, और कहत ना चीर ॥

अमल जु कमल विकच भए भूतल, मंद विषय-ससि-कीर ॥

‘अनंदधन’ एक बलभ लागत, और न लाख किरांग ॥

अब मेरे पतिभूति देव निरंजन ।

भट्टूं कहौं, कहौं सिर पट्टूं, कहा कहौं जन-जन ॥

संजन-हास्ये दृष्ट न लगड़े, चाहुँ न वित्तन अंतर ॥

संजन घट अंतर परमात्म, सकल दुरित-पर्य-नेत्र ॥

पह काम-पति, एह काम-घट, एही सुगारन-भैरव ॥

‘अनंदधन’ प्रभु घट-व्यन्दकेरि, कम-भत्त-गन-रूप ॥

## मस्त योगी ज्ञानसागर

कैन किसीका मीत जपतमे कौन किसीका मीत ।  
मात तात और जात सजनसे कोइ न रहे मिच्चौंत ॥  
सब ही जग अपने स्वारथके परमारथ नहिं प्रीत ।  
स्वारथ बिनसे सगो न होसी, मीता मनमें चौंत ॥

उठ छोलो आप अकेलो तूही तू सुरिद्वित ।  
को नहीं तेरा, तू नहिं किसका, यही अनदी रीत ॥  
ताते एक भगवान भजनकी राखो मनमें चौंत ।  
ज्ञानसागर कहे यह घनासरी गयी आतमधीत ॥

## जैन योगी चिदानन्द

एती सीख हमारी प्यारे चित में धरो ।

थोड़े से जीवन के कारण अरे नर कहे छल परपंच करो ॥१॥ चिदानन्द प्रभु प्राण जिवनकृं मोतियन थाल भरो ॥

## श्रीजिनदास

करम की कैसे कटे फासी ।  
संजम सिव सुख सज्या तजकर दुर्गति दिल भासी ॥  
धर्म उपर तैने हाथ उपाड़यो, म्यान गयो नासी ।  
हिसा करी हार हिङड़ा की, दया करी दासी ॥  
कामदार थारे कोष बन्यो हैं, ममता बनि मासी ।  
कहे जीनदास मैं पाप प्रभावे पायो तन रासी ।  
नवी सरत्ती में पके न बौंधी खाइ खोइ वासी ॥

करम की ऐसे कटे फासी ।

म्यान जु गंगा, दया द्वारका, क्रिया करी कासी ।  
जेने जमुना बीच नहायो, पाप गयो नासी ॥  
त्याग दीनी तृस्ला तन की, जान्यो जगत रासी ।  
दुर्गति के सिर दाढ़ लगाई, मनमें सुखत भासी ॥  
जनग सुश्रार कर साधु-संत की आत्म हुइ प्यासी ।  
उनके चरण जिनदास नमत हैं, मत करो मेरी हासी ॥

## आचार्य श्रीभिक्षुस्वामीजी ( भीखणजी )

‘अंधा और पँगुला—दोनों एक साथ मिलकर अटवीको पर कर डालते हैं; उसी तरह ज्ञानक्रियाके संयोगसे ही मोक्ष पाता है। क्रिया ज्ञान नहीं है। वह ज्ञानती-देखती नहीं। क्रिया तो कर्मको रोकने, तोड़ने रूप—संवर निर्जरा रूप भाव है। ज्ञान और दर्शन उपयोग हैं। वे बतलाते हैं—किस ओर हृषि रखना और किस मार्गपर चलना। जो क्रियाको उपयोग कहते हैं, उनके मिथ्यात्मका गुरुतर रोग है। इसी तरह जो ज्ञानको क्रिया कहते हैं, उनके भी मिथ्यात्म हैं। ज्ञान और क्रिया भिन्न-भिन्न हैं। दोनोंको एक मत जानो। दोनोंके स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। ज्ञानसे जीवादि पदार्थ जाने जाते हैं, क्रियासे सन्मार्गपर चला जाता है।

एक आदमी जानता है, पर करता नहीं। दूसरा करता है, पर जानता नहीं। ये दोनों ही मोक्ष नहीं पा सकते। जो जानता है ( कि क्या करना ) और ( जो करना है वह ) करता है, वही मोक्ष पाता है।

तौंदिके पैसेकी भी कीमत है और चौंदीके रूपयेकी भी कीमत होती है। इन दोनोंमें किसीको पास रखनेसे सौदा

मिल सकता है। परंतु मेवधारी तो उस नकली रूपयेको चलानेवाले हैं, जिससे सौदा मिलना तो दूर रहा, उल्टी फजीहत होती है।

वदि तुम्हें साधु-भावका पालन असम्भव मालूम दे तो तुम श्रावक ही कहलाओ और अपने शक्त्यनुसार ब्रतोंका अच्छी तरह पालन करो। साधु बनकर दोषोंका सेवन मत करो। साधु-जीवनमें ढिलाई लानेकी चेष्ठा मत करो।

पैसेको पानीमें ढालनेसे वह छूब जाता है। पर उस पैसेको तपा और शीटकर उसकी कटोरी बना ली जाय और पानीपर छोड़ दी जाय, तो वह तैरने लगेगी। इस कटोरीमें दूसरे पैसेको रखनेसे वह भी कटोरीके साथ तैरता रहेगा। इस तरह संयम—इन्द्रिय-दमन और कोधादिके उपशमसे तथा तपसे आत्माको कृश कर हल्का बनाओ। कर्मभारके दूर होनेसे आत्मा स्वयं भी संतार-समुद्रके पार पहुँचेगी और अपने साथ दूसरोंका निस्तार करनेमें भी सफल होगी।

जो लोग सच्चे धार्मिक हैं, उनके अंदर एक ऐसी स्थिर होती है, जो समृद्ध-विपत्से विचलित नहीं होती। आध्यात्मि

जीवनका सार ही मह है कि भयानक-भयानक वियति भी उसे डिगा नहीं सकती। जो आत्मवान् है, वे दुनियासे ऊपर रहते हैं, दुनियाको उन्हें जीत लिया है। उनपर गोलियाँ बरस रही हों, तो भी वे सच बोल सकते हैं। उनकी बोटी-बोटी भी काटी जाय, तो भी प्रतिशोधकी भावना उनके हृदयमें आग नहीं

लगा सकती। उनकी दृष्टि विश्वव्यापिनी होती है। इसे किसी सांसारिक आसक्ति या स्वार्थमें रत होना वे मूर्खता और व्यर्थता समझते हैं। बलिदान, जो कीमतका विचार नहीं करता तथा आत्मोत्सर्ग, जो बदलेमें कोई चीज़ नहीं बहता, वही उनका नित्य जीवन होता है।

### भगवान् बुद्ध

( चौदूर्धमर्तके आदिमर्ताङ्क, प्रथम नाम—गिरार्थ, गोत्र गौतम होनेसे लोग इन्हें गौतमबुद्ध भी कहते हैं। पिताज्ञा नाम—शुद्धेष्वद् गाताका नाम—माया। जन्म ५५७ वर्ष ईसापूर्व । )

यहाँ ( संसारमें ) वैरसे वैर कभी शान्त नहीं होता, अवैरसे ही शान्त होता है, यही सनातन धर्म ( नियम ) है। ( धर्मपद १ । ५ )

अन्य ( अश्व लोग ) नहीं जानते कि हम इस ( संसार ) से जानेवाले हैं। जो इसे जानते हैं, किर उनके मनके ( सभी चिकार ) शान्त हो जाते हैं। ( धर्मपद १ । ६ )

( जो ) उद्योगी, सचेत, शुचि कर्मवाला तथा सोनवकर काम करनेवाला है और संयत, धर्मानुसार जीविकावाला एवं अग्रमादी है, ( उसका ) यश बढ़ता है। ( धर्मपद २ । ४ )

मत प्रमादमें फँसो, मत कामोमें रत होओ, मत काम-रतिमें लित हो। प्रमादरहित ( पुरुष ) ध्यान करके सहानुसुखको प्राप्त होता है। ( धर्मपद २ । ७ )

अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनारहित हो निरर्थक काठकी भाँति पृथ्वीपर पड़ रहेगा। ( धर्मपद ३ । ९ )

इस काथाको फेनके समान जानो, या ( मरु ) मरीचिकाके समान मानो। फेनको तोड़कर, अमरजको फिर न देखनेवाले बनो। ( धर्मपद ४ । ३ )

तजे दूधकी भाँति किया पापकर्म ( तुरंत ) चिकार नहीं लाता, वह मससे ढँकी आगकी भाँति दग्ध करता, अश-जनका पीछा करता है। ( धर्मपद ५ । १२ )

दुष्ट मित्रोंका सेवन न करे, न अधम पुरुषोंका सेवन करे। अन्ये मित्रोंका सेवन करे, उत्तम पुरुषोंका सेवन करे। ( धर्मपद ६ । ३ )

जैसे दोस पहाड़ हवासे कम्पायेमान नहीं होता, ऐसे ही पण्डित निनदा और प्रशंसासे विचलित नहीं होते। ( धर्मपद ६ । ६ )



सारथिदारा सुदान्त ( =सुशिक्षित ) अशोकी माँति जिसकी इन्द्रियाँ शान्त हैं, जिसका अभिमान नष्ट हो गया, ( और ) जो आत्मवरहित है, ऐसे उस ( पुरुष ) की देवता भी सुखा करते हैं।

( धर्मपद ७ । ५ )

यदि पुरुष ( कभी ) पाप कर डाले तो उसे पुनः-पुनः न करे, उसमें रत नहीं; ( क्योंकि ) पापका संचय दुःख ( का कारण ) होता है। ( धर्मपद ९ । २ )

यदि पुरुष पुण्य करे तो उसे पुनः-पुनः करे, उसमें रत हो; ( क्योंकि ) पुण्यका संचय सुखकर होता है। ( धर्मपद ९ । ३ )

कठोर बचन न बोलो, बोलनेपर ( दूसरे भी बैठे ही ) तुम्हें बोलेगे, दुर्बचन दुःखदायक ( होते हैं ), ( बोलनेसे ) बदलेमें तुम्हें दण्ड मिलेगा। दूटा कँसा जैसे निःशब्द रहता है, ( बैठे ) यदि तुम अपनेको ( निःशब्द रखवो ) तो तुमने निर्वाणको पा लिया, तुम्हारे लिये कल्प ( हिंसा ) नहीं रही। ( धर्मपद १० । ६ )

पापकर्म करते समय मूळ ( पुरुष उसे ) नहीं जानता, पीछे दुर्बुद्ध अपने ही कर्मके कारण आगसे जंलजी भाँति अनुत्तप करता है। ( धर्मपद १० । ८ )

जिस पुरुषकी आकांक्षाँ समात नहीं हो गयी, उस मनुष्यकी शुद्धि न नये रहनेसे, न जटासे, न पद्म ( लंबने ) से, न पाका ( उपवास ) करनेसे, न कड़ी भूमिपर बौद्धने, न धूल लपेटनेसे और न उकड़ै बैठनेसे होती है। ( धर्मपद १० । ९ )

पाप ( नीच धर्म ) का सेवन न करे, न प्रमादो लिये हो, इष्टी धरणाका सेवन न करे, ( आदर्शीनो ) लंब ( जन्म-मरण )-बद्रक नहीं बनना चाहिये। ( धर्मपद ११ । १ )

उत्तमाही बने, आलसी न बने, सुचरित धर्मका आचरण करे, धर्मचारी ( पुरुष ) इस लोक और यरलोकमें सुखपूर्वक सोता है। सुचरित धर्मका आचरण करे, दुश्चरित कर्म ( धर्म ) का सेवन न करे। ( धर्मपद १३ । ३ )

धर्मचारी पुरुष जैसे बुद्धुलेको देखता है, जैसे ( महेर ) मरीचिकाको देखता है, लोकगो वैसे ही ( जो पुरुष ) देखता है, उसकी ओर अस्त्रमराज ( आँख उठाकर ) नहीं देख सकता। ( धर्मपद १३ । ४ )

यदि रूपयों ( कहापण ) की वर्षा हो, तो भी ( मनुष्यकी ) कामों ( भोगों ) से तुर्ति नहीं हो सकती। ( सभी ) काम ( भोग ) अल्प-स्वाद ( और ) दुःखद हैं, यों जानकर परिष्ठित देवताओंके भोगोंमें भी रति नहीं करता; और सम्यक्संबुद्ध ( बुद्ध ) का श्रावक ( अनुयायी ) तृष्णाको नाश करनेमें लगता है। ( धर्मपद १४ । ९ )

रागके समान अद्वि नहीं, द्वेषके समान भल नहीं, ( पाँच ) स्वन्धोंके समान दुःख नहीं, शान्तिसे बढ़कर सुख नहीं। ( धर्मपद १५ । ७ )

ग्रिय ( वस्तु ) से शोक उत्पन्न होता है, ग्रियसे भय उत्पन्न होता है, ग्रिय ( के बन्धन ) से जो मुक्त है, उसे

शोक नहीं है, फिर भय कहाँसे ( हो )।

( धर्मपद १६ । ५ )

कामसे शोक उत्पन्न होता है। ( धर्मपद १६ । ७ )

जो चहें क्रोधको भ्रमण करते रथकी भाँति पकड़ ले, उसे मैं सरयि कहता हूँ, दूसरे लोग लगाम पकड़नेवाले ( मात्र ) हैं। ( धर्मपद १७ । २ )

अक्रोधसे क्रोधको जीते, असाधुको साधु ( भलाई ) से जीते, कृपणको दानसे जीते, झट बोलनेवालेको सत्यसे ( जीते )। ( धर्मपद १७ । ३ )

सच बोले, कोध न करे, थोड़ा भी माँगनेपर दें; इन तीन बातोंसे ( पुरुष ) देवताओंके पास जाता है। ( धर्मपद १७ । ४ )

एक ही आसन रखनेवाला, एक शाय्य रखनेवाला, अकेला विचरनेवाला ( वन ), आल्पस्त्रहित हो, अपनेको दमन कर अकेला ही बनान्तमें रमण करे। ( धर्मपद २१ । १६ )

तृष्णाके पीछे पढ़े ग्राणी वैष्ण खरगोशकी भाँति चक्र काटते हैं; संयोजनों ( मनके बन्धनों ) से कैसे ( जन ) पुनः-पुनः चिरकालतक दुःख पाते हैं। ( धर्मपद २४ । ९ )

## बौद्ध संत सिद्ध श्रीसरहपाद या सरहपा

( बज्यानी चौरासी सिद्धोंमें आदिम सिद्ध, इन्हें कई लोग राहुलमद्र या सरोजवज्रके नामसे भी पुकारते हैं। अस्तित्वकाल—१० ६ ३ ३ । स्थान—पूर्वीप्रदेशके किसी नगरोके निवासी। जाति—वाह्यण, भाद्रमें बौद्ध )

यदि परोपकार नहीं किया और न दान किया तो इस दंसारमें आसेका फल ही क्या; इससे तो अपने-आपका उत्तर्मी कर देना ही अच्छा है।

हे नाविक ! चित्तको स्थिर कर सहजके किनारे अपनी नौका लिये चल, रसीसे र्णीचिता चल। और कोई उपाय नहीं।

## सिद्ध श्रीतिलोपाद ( तिलोपा )

( बज्यानके चौरासी सिद्धोंमें एक मरणात सिद्ध चिक्षु, नाम प्रज्ञामद्र, अस्तित्वकाल—१०वीं शताब्दी, जन्म-प्रदेश—विद्वार, जाति—वाह्यण, शुरुका नाम—विजयपाद ( कण्हपा या कृष्णपादके शिष्य )

सहजकी साधनासे चित्तको तू अच्छी तरह विशुद्ध कर ले। इसी जीवनमें तुझे सिद्धि प्राप्त होगी और मोक्ष भी।

मैं भी शून्य हूँ, जगत् भी शून्य है, ग्रियुचन भी शून्य है।

महासुख निर्मल सहजस्वरूप है, न वहाँ पाप है न पुण्य।

\* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान—ये पाँच रक्षय हैं। वेदना, संज्ञा, संस्कार विज्ञानके अंदर हैं। पृथ्वी, जल, अदि, वायु ही रूप-स्वरूप हैं। जिसमें न भारीपन है और जो न जगद् धेरता है, वह विज्ञान-स्वरूप है। रूप ( Matter ) और विज्ञान ( Mind )—उन्हींमेंसे सारा संतार बवा है।

## महात्मा ईसामसीह

जिनके अंदर दैत्यभाव उत्पन्न हो गया है, वे धन्य हैं; क्योंकि भगवान्‌का साम्राज्य उन्हींको प्राप्त होगा।

जो आत्मभावसे रोते हैं, वे धन्य हैं; क्योंकि उन्हें भगवान्‌की ओरसे आशासन मिलेगा।

जिनयी पुरुष धन्य हैं, क्योंकि वे पृथ्वीपर विजय प्राप्त कर लेंगे। जिन्हें धर्मचरणकी तीव्र अभिलापा है, वे धन्य हैं; क्योंकि उन्हें पूर्णताकी प्राप्ति होगी।

दयालु पुरुष धन्य हैं; क्योंकि वे ही भगवान्‌की दयाको प्राप्त कर सकेंगे।

जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, वे धन्य हैं; क्योंकि ईश्वरका साक्षात्कार उन्हींको होगा।

शान्तिका प्रचार करनेवाले धन्य हैं; क्योंकि वे ही भगवान्‌के पुत्र कहे जायेंगे।

धर्मपर दृढ़ रहनेके कारण जिन्हें कष्ट मिलता है, वे धन्य हैं; क्योंकि भगवान्‌का साम्राज्य उन्हींको प्राप्त होता है।

यदि तुम्हारा दक्षिण केत्र तुम्हें सम्मार्गसे अष्ट करनेका कारण बने तो उसे उत्तराढ़कर दूर फेंक दो; क्योंकि तुम्हारे लिये यह हितकर है कि तुम्हारा एक अङ्ग जिनष्ट हो, न कि समग्र शरीर नरकमें डाला जाय।

असाधुका प्रतिरोध न करो; किंतु जो कोई तुम्हारे देती है।



दक्षिण कनपटीपर आघात करे, उसकी ओर दूसरा कनपटी भी फेर दो।

अपने शंखोंसे प्यार करो, और जो तुम्हारा अनिष्ट चाहे, उन्हें आशीर्वाद दो; जो तुमसे वृणा करें, उनका मङ्गल करो और जो तुम्हारी जिन्दा अथवा तुमसे हेष करें और तुम्हें सतायें, उनके लिये प्रभुसे प्रार्थना करो।

कोई भी दो प्रभुओंकी सेवा नहीं कर सकता; क्योंकि चाहे वह एककी वृणा करेगा और दूसरेको प्यार करेगा, अथवा वह एकमें अनुरक्त होगा और दूसरेसे विरक्त होगा। तुम ईश्वर और धन-देवता, दोनोंकी सेवा एक साथ नहीं कर सकते। अपने जीवनके लिये उद्दिष्ट न हो कि तुम या खाओगे, या याद क्या पीओगे और न शरीरके लिये कि तुम क्या पहनोगे।

याचना करो और तुम्हें दिया जायेगा; अन्वेषण करो और तुम या जाजोगे, द्वार खट्टलटाओ और तुम्हें खोल दिया जायगा।

वहाँ मैं मनुष्यों और स्त्रीदूतोंकी शोलियाँ बोढ़ और 'प्रेम' न रखूँ तो मैं उठनठनता हुआ पीतल और ज्ञानशानाई जाँच हूँ और वहाँ मैं नवूत कर सकूँ और सब मेंदोंके जानको समझूँ तथा मुझे यहाँतक विश्वास हो कि मैं परादोंपर हटा दूँ पर प्रेम न रखूँ तो मैं कुछ भी नहीं।

प्रेम वह सुनहरी कुखी है; जो मानवोंके हृदयोंको लोट

## महात्मा जरथुस्त्र

रहता है और ज्यो-ज्यो द्वारा शक्ति चढ़ती है; त्योहाँ त्योहाँ हमारे द्वारा मनुष्यसेवा भी अधिक होती है।

ईश्वर एक है। वह सर्वोपरि है और वही चरण जगत्का उत्पन्न करनेवाला है। मारी सुष्टि उत्पन्निति विश्वाली है और उसीमें लग्य हो जाती है। विश्वमें जो कुछ भी हो रहा है, वह केवल उसके कारण ही है। ईश्वर विश्वका प्रभु है। वह गर सन्दर्भ एकनक्षत्राधारी अद्वितीय स्वामी है। वह गर प्रकारसे पूर्ण है और उसकी सम्पूर्णताकी प्राप्त नहीं हो सकती। प्रत्येक लीब प्रयत्नवाल है।



इश्वरने हमलोगोंको जो कुछ भी दिया है, वह बटोरकर रखनेके लिये नहीं, प्रत्युत योग्य पात्रोंको देनेके लिये है। हमलोगोंको एक जगह पड़े तालाबके जलकी तरह न बनकर बहुती नदी बनता चाहिये। इस प्रकार दूसरोंको देनेसे हमारी शक्ति, धन, ज्ञान, बल अथवा धर्म आदि कभी घटते नहीं, उल्टे बढ़ते हैं। ऐसे मनुष्यको ईश्वर अधिकाधिक देता ही

## योगी जालंधरनाथ

[ योगी मत्स्येन्द्रनाथजी ( महान्द्रनाथजी ) के गुरु, कोई कोई इन्हें उनका गुरुभाई भी मानते हैं । इनके शतिवृत्तके बारेमें अनेक मान्यताएँ चलित हैं; तथ्य क्या है, कहा नहीं जा सकता । ]

थोड़ो खाइ तो करुपे-करुपै; धणो खाइ लै, रोगी ।

इहुं पखोंकी संधि बिचारै ते को विरला जोभी ॥

वह संसार कुबुचि का देत । जबलगि जीव, तबलगि ब्रेत ॥  
आँख्याँ देखै, कान्हाँ सुणै । जैसा बाए बैसा तुणै ॥

योद्धा खाता है तो भूखके मारे कल्पना-जल्पना करता है, अधिक खाता है तो रोगी हो जाता है । कोई विरला योगी ही दोनों पक्षोंकी सम्बिधिका विचार करता है आर्यात् सुक्त आहार करता है ।

## योगी मत्स्येन्द्रनाथ

( नाथ-परम्पराके अदि आचार्य, जालंधरनाथजीके शिष्य एवं गोरखनाथजीके गुरु । अस्तित्वकाल अनुभानतः विक्रमी दसवीं शताब्दीके ज्ञास-पास । )

अवधू रहिवा हटे बाटे रुख विरख की छाया ।

तजिबा काम कोव और तिस्ता और संसार की माया ॥

हाट, बाजार, या वृक्ष-पेड़की छायामें कहीं रहो; काम,  
क्रोध, तृष्णा और संसारकी मायाका त्याग करो ।



## योगी गुरु गोरखनाथ

( महान् योगी और सुप्रसिद्ध महापुरुष, जीवन-वृत्तान्त आदिके बारेमें अनेकों धारणाएँ हैं । जन्म—विक्रम संवत्सरी दसवीं शताब्दीके अन्तमें अथवा भ्यारहीं शताब्दीके आदिमें । ये सुप्रसिद्ध कौलज्ञानी योगी मत्स्येन्द्रनाथके शिष्य हैं । )

हवकि न बोलिवा, ठवकि न चलिवा, धीर धरिवा पावं ।

परथ न करिवा, सहजै रहिवा, भणत गोरख रावं ॥

मन मैं रहिणं, भेद न कहिणं, बोलिवा अंसृत वाणीं ।

आगिला अगनी होइवा अवधू, तौ आपण होइवा पाणीं ॥

भेषण कहैं सुण्हु रे अवधू जग मैं ऐसै रहणं ।

आँखे देलिवा, काणे सुणिवा, मुष थैं कलू न कहणा ॥

नाथ कहै तुम आपा रायी, हठ करि बाद न करणा ।

यहु जय है कौटी की बाड़ी, देवि देवि पर धरणा ॥



या अनुभूतिका ) भेद—रहस्य किसीसे नहीं कहना चाहिये । मीठी बाणी बोलनी चाहिये । सामनेबाला आदमी आगबबूला हो जाय तो अपने पानी हो रहना चाहिये ( क्रोधके बदले क्रोध न करके विनय या क्षमा करना चाहिये ) ।

गोरखनाथ कहते हैं कि संसारमें ऐसे ( द्रष्ट-साक्षीकी भाँति ) रहना चाहिये कि आँखसे सब कुछ देखे, कानसे सुनें, परंतु मुँहसे कुछ भी बोले नहीं ।

गोरखनाथ कहते हैं कि तुम अपना आपा रखो ( आत्म-स्वरूपमें स्थित रहो ) । हठपूर्वक बाद-विवाद मत करो । यह जगत् काँटोंकी बाड़ी है, देखने-देखकर पैर रखना चाहिये । ( बाद-विवादके काँटोंमें पड़नेसे साधन भ्रष्ट हो जाता है । )

मनमें ( अन्तर्मुख दृच्छिसे ) रहना चाहिये । ( साधन

स्वामी बनसेंट जाँते हैं। सुधा वियापे, नदी जाँते हैं माथा।  
महि परि जाँते हैं त मिंद वियापे, क्यूं सोक्षत जा त्यंव की काया ॥  
साप भी मरिए, अणखाय मी मरिए, गोरख कहे पूजा संजमि ही तरिए ॥  
पांग न खाहवा, भूंब न मरिवा, अहनिसि लेवा ब्रह्म अग्नि का भें ॥  
हठ न करिवा, पड़वा न रहिवा धू वोल्मा गंगरख दें ॥

खामिन, बनमें जाता हूँ तो भूख लग जाती है। शहरमें  
जाता हूँ तो माया अपनी और खींच लेती है, ऐट भर-भर  
जाता हूँ तो नींद आने लगती है । जलकी वृँदसे बनी हुई  
इन वग्याको कैसे सिद्ध किया जाय ।

(बहुत) खानेसे भी मरता है, बिल्कुल न खानेपर भी मर  
जाता है । गोरखनाथ कहते हैं कि वच्चा । संयमसे रहनेपर ही  
नितार होता है ।

न तो खानेपर दूट पहना चाहिये और न बिल्कुल  
भूख मरना चाहिये । रात-दिन ब्रह्माग्रिका भेद लेना चाहिये ।  
अर्थात् ब्रह्मरूप अग्निमें संयमरूप आहुति देनी चाहिये । न  
हठ करना चाहिये न (आलस्यमें) पढ़े रहना चाहिये ।  
यों गोरखनाथने कहा ।

हसिवा खेलिवा धरिवा ध्यान, अहनिसि कथिवा ब्रह्म वियान ।  
हूँसे खेले न कर मन भंग, ते निहच्छल सदा नाथ के संग ॥

हँसना, खेलना और ध्यान धरना चाहिये । रात-दिन  
ब्रह्मज्ञानका कथन करना चाहिये । इस प्रकार (संयमपूर्वक)

हँसते-खेलते हुए जो अपने मनको भंग नहीं करते, वे सि-  
होकर ब्रह्मके सथ रमण करते हैं ।

अजपा जै सुनि मन धरै, पैंचौ इन्द्री निवह रहे  
ब्रह्म अग्निमें जो होमे काया, तस गहदेव वैरे पाल

जो अजपाका जाप करता है, ब्रह्मरन्त्र (शून्य) में म  
को लीन किये रहता है, पैंचौ इन्द्रियोंको अपने क  
रखता है, ब्रह्मानुभूतिरूप अग्निमें अपने भौतिक धृति  
(काया) की आहुति कर डालता है, (योगीद्वर) महां  
भी उसके चरणोंकी बन्दना करते हैं ।

धन जोवनकी करै न आस, चित्त न राखै कामिनि पास ।  
नाद बिंद जाकै घटि जरै, ताकी सेवा पारदर्शि करै ॥

जो धन-नौवनकी आशा नहीं करता, जीमें मन न  
लगाता, जिसके शरीरमें नाद और बिन्दु जीर्ण होते रहते हैं  
पार्वती भी उसकी सेवा करती है ।

बालै जोवनि ज नर जसी, काल-नुकालां ते नर सती ॥  
फुरतै भोजन अलप अहरी, नाथ कहै सो काया हमारी ॥

ब्रह्मवस्ता और योवनमें जो व्यक्ति संयमके द्वारा इन्द्रिय  
निग्रह करते हैं, वे समय-असमयमें सर्वदा अपने सत्पर रिति  
रह सकते हैं । वे फुरवीसे भोजन करते हैं, कम खाते हैं  
नाथ कहते हैं कि वे हमारे शरीर हैं । उनमें और मुझमें कुछ  
अन्तर नहीं ।

## योगी निवृत्तिनाथ

(श्रीक्षानेश्वरजीके बड़े भाई और श्रीविट्ठलपंतके पुत्र, माताका नाम लक्ष्मणीवाइ, जन्म सं० १३३० कालगुन शूला । समर्थ-  
सं० १३५४ आधाद कृष्ण १२ ।)

यह (श्रीकृष्ण) नाम उनका है जो अनन्त है, जिनका  
कोई संकेत नहीं मिलता, वेद भी जिनका पता लगाते थक  
जाते हैं और पर नहीं पाते, जिनमें समग्र चराचर विश्व होता,  
जाता, रहता है, वे ही अनन्त यशोदा मैथाकी गोदमें नन्दे-से  
कन्हैया बनकर खेल रहे हैं और भक्तजन उसका आनन्द

बिना मूल्य ले रहे हैं । ये हरि हैं जिनके घर सोलद गर्म  
नारियाँ हैं और जो स्वयं गौओंके चरानेबाल बालब्रह्मचारी हैं ।  
ब्रह्मत्वको प्राप्त योगियोंके वे ही परम धन हैं, जो नद-निंद  
में नृत्य कर रहे हैं ।

## संत ज्ञानेश्वर

(महाराष्ट्र के महान् संत, जन्म—सं० १३३२ भाद्रकृष्णा आठमी महियरात्रि । पिताका नाम—श्रीविद्वलपंत, माताका नाम—इ । समाधि—सं० १३५३ मार्गशीर्ष कृष्णा १३ ।)

[ प्रेषक—श्रीप्रभुपाल । धारक—]

### ईश्वरसे प्रसाद-याचना—

मेरे इस बाध्यज्ञसे विद्यात्मक ईश्वर यतुष्ट

द्वे यह प्रसाद दें—

की त्रुटिलता जाकर उनकी सत्कर्ममें प्रीति हो और कमल जीवोंमें परस्पर मित्रभाव त हो ।



खिल विश्वका पापरूप अन्धकार नष्ट होकर

न्यूर्यका उदय हो, उसका प्रकाश हो और प्राणिमात्रकी छाँ पूर्ण हों ।

इस भूतलपर अखिल मङ्गलोंकी वर्षा करनेवाले द्वाकोंके समूहोंकी सदा प्राप्ति हो ।

वे भगवद्गत चलने-बोलनेवाले कथतरके उच्चान, नायुक्त चिन्तामणिके गाँव और अमृतके चलने-बोलनेवाले द्र हैं ।

वे कलहरहित चन्द्रमा हैं, तापहीन सूर्य हैं । वे सजन त सबोंके प्रियजन हीं ।

बहुत कथा (माँगा जाय), त्रैलोक्य सुखसे परिषूर्ण हो— (प्राणिमात्रको ईश्वरका अखण्ड भजन करनेकी इच्छा हो ।

जबतक इच्छा अभी हुई है, तबतक उच्चोग भी है; पर जब संतोष हो गया, तब उच्चोग समाप्त हुआ ।

X X X

बैराम्यके सहरे यदि यह मन अभ्यासमें लगाया जाय तो कुछ काल बाद यह स्थिर होगा । कारण, इस मनमें एक बात बड़ी अच्छी है—यह यह कि जहाँ इसे चक्रका लगाता है, वहाँ यह लग ही जाता है । इसलिये इसे सदा अनुभव-सुख ही देते रहना चाहिये ।

X X X

भावबलसे भगवान् मिलते हैं, नहीं तो नहीं । करतला-मलकवत् श्रीहरि हैं ।

X X X

हरि आया, हरि आया, संत-सङ्गसे ब्रह्मानन्द हो गया । हरि यहाँ है, हरि वहाँ है, हरिसे कुछ भी खाली नहीं है, हरि देखता है, हरि ज्याता है, हरि बिना और कुछ नहीं है । हरि पढ़ता है, हरि नाचता है, हरि देखते सज्जा आनन्द है । हरि आदिमें है, हरि अन्तमें है, हरि सब भूतोंमें व्यापक है । हरिको जानो, हरिको बतानो ।

## संत नामदेव

(जन्म—वि० सं० १३२७ कार्तिक शुक्ल ११ रविवार । जन्मस्थान—नश्ती बकरी (जिला सतारा) । जाति—छोपी । पिताका नाम—श्रीदामा शेठ, माताका नाम—गोपाई । शुरुका नाम—देवनन्द नायपर्य, योगमार्ग-प्रेषक श्रीशानदेवजी महाराज । नेवंग—वि० सं० १४०७ पण्डरपुर ।)

परधन परदारा परिहरी ।

ता के निकट बसहि नरहरी ॥

जै न भजते जारायन ।

जिनका मैं न करौं दरसना ॥

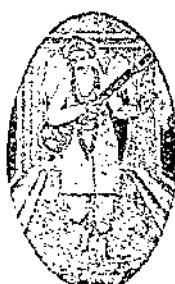
जिनके भीतर रह अंतरा ॥

जैसा पर्यु तैसा वह नरा ॥

अनमत 'नामदेव' तके बिना ।

ना सोहै बत्तीस लक्ष्मना ॥

१. छल-कपड, देतभाव ।



तत्त गहनको नाम है, भजि लौजै सोई ।

लीला सिंध अगाध है, गति लवै न कोई ॥

कंचन में सुमेरु, हय गज दैजै दाना ।

कोटि पञ्च जो दान दे, नहिं नाम समाना ॥

अस मन लव राम रसना ।

तेरो बहुरि न होइ जरा-मरना ॥

जैसे मूळा नाद लव लौडै ।

बाज लगे वहि ध्यान लगावै ॥

जैसे श्रीट मृग मन दीन् । अपु सरीसे वा को कीन् ॥  
नामदेव मन दासनदास । अब न तर्हि हरि चरम निवास ॥

माई रे इन भैनन हरि पेखो ।

हरि की भक्ति साधु की संगति, सोई यह दिल लेखो ॥  
चरन सोई जो नक्षत्र प्रेम से, कर सोई जो पूजा ।  
सीस सोई जो नवै साधु के, रसना और न दूजा ।  
यह संसार हाट को लेखा, सब कोउ बनिजहि आधा ।  
जिन जस लादा तिन तत पाया, मूरख मूरु गँवाया ॥  
आतम राम देह धरि आया, ता में हरिको देखो ।  
कहत नामदेव बसि थिं जैहाँ, हरि भजि और न लेखो ॥

काहे मन विषया बन जाय । भूले रे डगभूरी खाय ॥  
जसे मीन पानी में रहै । कालजाल की सुधि नहिं लहै ॥  
जिभ्या स्लादी लीलत लोह । ऐसे कनिक कामिनी मोह ॥  
ज्यों मधुमाली संचि अपरा । मधु लीन्हो, मुखदीन्हो छारा ॥  
गऊ बाल को संचै छैर । गल्य वाँधि दुहि लेहि अहीर ॥  
माया कारन रहु अति करै । सो माया ले गाड़ी धरै ॥  
अति संचै समझै नहिं मूढ़ । धन धरती तन होइ गयो धड़ ॥  
काम कोथ तुसना अति जरै । साध संगति कवहूँ नहिं करै ॥  
कहत नामदेव साँची मान । निरमै होइ भजिलै भगवान ॥

हमरा करता राम सनेही ।  
काहे रे नर गरब करत है, बिनास जाइ शृंगी देही ॥  
मेरी-मेरी कौशल करते दुरजोधन-से माई ।

वारह जाजन छव चलै था, देही गिरधन खाई ॥  
सरब सोनेकी लंका होती, रामन से अभिनाई ।  
कहा भगो दर बैधि हाथी, खिन महिं मई पराई ॥  
दुरवासा सूँ करत ठारैर, जादव वे फल पाये ।  
कृष्ण करी जन अपने ऊपर नामा हरिगुन गाये ॥

पण्डुरङ्गमें ही मैं सब सुख प्राप्त कर लेता हूँ । कहीं जाँ  
तो किसके लिये कहौं जाँ ैं । इस लोककी या परलोककी, कोहं  
भी इच्छा मुझे नहीं है । न कोई युरुषार्थ करना है, न चारों  
मुक्तियोंमेंसे कोई मुक्ति पानी है । रङ्ग होकर पण्डिरमें इस  
महादारकी देहरीपर ही बैठा रहना चाहता हूँ ।

X X X

मुझे नाम-संकीर्तन अच्छा लगता है, बाकी सब व्यर्थ है ।  
नमन वह नछता है जो गुण-दोष नहीं देखती और जिसके  
जंदर आनन्द प्रकाशित होता है । निर्विकार ध्यान उसको  
कहना चाहिये जिसमें अखिल विश्वमें मेरे विद्वल्के दर्शन हों  
और इंटपर जो समन्वय शोभा पा रहे हैं, हृदयमें उनकी  
अवाणि स्मृति हो । कृपण जैसे अपने रोजारमें ही मग रहता  
और रात-दिन नफेका ही ध्यान किया करता है, अथवा कीट  
जैसे भृङ्का करता है वैसे ही सम्पूर्ण भावके साथ एक विद्वल-  
का ही ध्यान हो, सब भूतोंमें उसीका रूप प्रकाशित हो ।  
रज-तमसे अलग, सबसे निराला प्रेमकलाका जो भोग है, वही  
भक्ति है । ग्रीतिसे एकान्तमें गोविन्दको भजिये । ऐसी निशानि  
और कहीं नहीं है ।

## भक्ति साँचता भाली

(जन्म—शाके ११७२ । जन्म-स्थान—अरणभैंडी नामक धाम ( पण्डिरपुर ) । पिताका नाम परसुवा और माताका नाम नामिनी ।  
समाधि—शाके १२१७ की आषाढ़ कृष्णा १४ )

नामका ऐसा बल है कि मैं किसीसे भी नहीं डरता और  
कलिकालके सिरपर डंडे जमाया करता हूँ । 'विद्वल' नाम  
गाकर और नाचकर हमलोग उन बैकुण्ठपतिको यहीं अपने  
कीर्तनमें बुला लिया करते हैं । इसी भजनानन्दकी दिवाली

मनाते हैं और चित्तमें उन दममालीको पकड़कर पूजा  
किया करते हैं । साँचता कहता है कि भक्तिके इस भारी  
चले चलो, चारों मुक्तियाँ दारपर आ गिरेंगी ।

## संत सेना नाई

(अस्तित्वकाल—अनुमानतः पाँच-छः सौ साल पूर्व; स्थान—  
बाघवगड, वधेलवण्डके राजपरिवारके नाई )

हम प्रतिबार बड़ी वारीक हजामत बनाते हैं, विवेकरुणी  
दर्पण दिखाते और वैराग्यकी कैची चलाते हैं, सिरपर  
शान्तिका उदक छिड़कते और अहंकारकी तुटिया बुमाकर  
वाँधते हैं, मावाश्रोकी वराले साफ करते और काम-क्रोधके नख  
क्षाटते हैं, चारों वर्णोंकी सेवा करते और निश्चिन्त रहते हैं।

शूप दीप छित सजि आरती । जड़ बासने कमलापती ॥  
मंगला हरि मंगल । नित मंगलु राजा राम राह को ॥  
उत्तम दिवारा निरमल बाती । तुही निरंजनु कमलापती ॥  
रामभगति रामनान्दु जानै । पूर्न परमानंदु बासनै ॥  
मदन-मुराति मै-तारि गोविंदे । सेन मणे मंजु परमानंदे ॥

## भक्त नरहरि सुनार

(पण्डिपुरके महान् शिवभक्त )

मैं आपका सुनार हूँ, आपके नामका व्यवहार करता  
हूँ। यह गलेका हार देह है, इसका अन्तरात्मा सोना है।  
ग्रिगुणका साँचा बनाकर उसमें ब्रह्मरस भर दिया। विवेक-  
का हृषीड़ा लेकर उससे काम-क्रोधको चूर किया और मन-  
बुद्धिकी कैचीसे रामनाम बराबर चुराता रहा। शानके कैट्टेसे  
दोनों अक्षरोंको तौल और थैलीमें रखकर थैलीकंघेपर उठाये  
रखता पार कर गया। यह नरहरि सुनार, हे हरि! तेरा दास  
है, रात-दिन तेरा ही भजन करता है।

## जगमित्र नागा

भीषमदेवको रणमें, कर्णको अर्जुनके वेधनेवाले बाणमें,  
हरिश्चन्द्रको शमशानमें और परीक्षितको आमन्नमृत्युमें  
भगवान् ने आलिङ्गन किया है। इसलिये जगमित्र कहते हैं,  
गोविन्द, नाम भजो, गोविन्दरूप हृदयमें धरो, गोविन्द  
तुम्हें सब संकटोंके पार कर देंगे।

## चोखा मेला

(प्रेषक—श्रीदम० एन० धरकर )

गजा गटीला होता है, परंतु रस गटीला नहीं होता।  
ऊपरके आकारपर क्या भूला है! कमान टेढ़ी होती है, परंतु  
तीर सीधा ही जाता है। ऊपरके आकारपर क्या भूला है!  
नदी टेढ़ी-येढ़ी जाती है, परंतु जल तो अच्छा ही होता है।  
ऊपरके आकारपर क्या भूला है! चोखामेला भाहर, हल्की  
जातिका है; परंतु उसका भाव (ईश्वरके प्रति) हल्का नहीं  
है। जातिपर क्या भूला है!



## संत कवि श्रीभानुदास

(एकनाथजी महाराजके प्रपिता मह। जन्म—  
वि० सं० १५०५ के आसपास, पैठण  
(प्रतिष्ठान) क्षेत्र। जाति—आश्वलायन-  
शास्त्रके कल्पवेदी ब्राह्मण, महाराष्ट्रीय।  
देहावसान—वि० सं० १५७० के  
लाभग।)

जमुना के टट खेनु चरत ।

रातत है गइयाँ । मोहन मेरा सइयाँ ॥  
मोर पत्र शिर छत्र मुहावे, मोरी धरत वहियाँ ।  
भानुदास प्रमु भगतको बत्सु, करत छत्र-छइयाँ ॥

## संत त्रिलोचन

(दक्षिण देशके भक्त कवि। जन्म-सं० १३२४, निर्बोण-तिथि—अक्षात् । )

अति कालि जो लहरी सिमरै, ऐसी चिंता महि जे मरै ।  
सरप जौनि बलि बलि अउतरै ।  
अरी बाई मंविद नामु मति वीसरै ॥  
अति कालि जो द्वी सिमरै, ऐसी चिंता महि जे मरै ।  
बेसा जौनि बलि बलि अउतरै ॥

अति कालि जो लहिके सिमरै, ऐसी चिंता महि जे मरै ।  
सुकर जौनि बलि बलि अउतरै ॥  
अति कालि जो मंदर सिमरै, ऐसी चिंता महि जे मरै ।  
प्रेत जौनि बलि बलि अउतरै ॥  
अति कालि नरहणु सिमरै, ऐसी चिंता महि जे मरै ।  
बदसि त्रिलोचनु ते न रुकुता, पीतबद थके रिदै बसै ॥

## संत सेना नाई

( अस्तित्वकाल—अनुमानतः पाँच-छः सौ साल पूर्व; स्थान—  
दाम्पत्यगढ़, द्वेषलखण्डके राजपरिवारके नारे )

हम प्रतिवार बड़ी वारीक हजासत बनाते हैं, विवेकरूपी  
दर्पण दिखाते और वैराग्यकी कैंची चलाते हैं, सिरपर  
शान्तिका उदक छिड़कते और अहंकारकी चुटिया बुमाकर  
बाँधते हैं, भावावैयकी बगलें साफ करते और काम-क्रोधके नद  
काटते हैं, चारों वर्णोंकी सेवा करते और निश्चिन्त रहते हैं।

पूर्ण दीप छित्र सजि असती । जँड़ वारने कमलापती ॥  
मंगल हरि मंगल । नित मंगलु राजा राम राह को ॥  
उत्तम दिवारा निरमल बाती । तुही निरंजनु कमलापती ॥  
रामभगति रामानंदु जाने । पूर्ण परमानंदु वपने ॥  
मदम-मुरति मै-तारि भोविदे । सेत मणे मञ्जु परमानदि ॥

## भक्त नरहरि सुनार

( पण्डितपुरके महान् शिवमत्त )

मैं आपका सुनार हूँ, आपके नामका व्यवहार करता  
हूँ । यह गलेका हार देह है, इसका अन्तरात्मा सोना है ।  
त्रिगुणका सौंचा बनाकर उसमें व्रहरस मर दिया । विवेक-  
का हयौद्धा लेकर उससे काम-क्रोधको चूर किया और मन-  
बुद्धिकी कैंचीसे रामनाम वरावर छुराता रहा । शनके कौटेसे  
दोनों अक्षरोंको तौला और थैलीमें रखकर थैलीकंधेपर उठाये  
गएता पार कर गया । यह नरहरि सुनार, हे हरि ! तेरा दास  
है, रात-दिन तेरा ही भजन करता है ।

## जगमित्र नागा

भीज्जदेवको रणमें, कर्णको अर्जुनके वेधनेवाले बाणमें,  
हरिश्चन्द्रको दमज्जानमें और परीक्षितको आमन्नमृतयुमें  
भगवान्ने आलिङ्गन किया है । इसलिये जगमित्र कहते हैं,  
‘गोविन्द’ नाम भजो, गोविन्दस्त्रप हृदयमें धरो, गोविन्द  
तुम्हें सब संकटोंके पार कर देंगे ।

## चोखा मेला

( भ्रेष्टक—श्रीदग्द एन० धारकर )

गजा गठील होता है, परंतु रस गठील नहीं होता ।  
ऊपरके आकारपर क्या भूला है ! कमान टेढ़ी होती है, परंतु  
तीर सीधा ही जाता है । ऊपरके आकारपर क्या भूला है !  
नदी टेढ़ी-मेढ़ी जाती है, परंतु जल तो अच्छा ही होता है ।  
ऊपरके आकारपर क्या भूला है ! चोखामेला महार, हस्ती  
जातिका है, परंतु उसका भाव ( ईश्वरके प्रति ) हस्तका नहीं  
है । जातिपर क्या भूला है !



## संत कवि श्रीभानुदास

( दद्यनाथजी महाराजके प्रपिता मह । जन्म—  
दिन० सं० १५०५ के आसपास, पैठण  
( प्रतिष्ठान ) थेव । जाति—आधलायन-  
शास्त्रके कठवेदी ग्राहण, महाराष्ट्रीय ।  
दैहवसान—दिन० सं० १५७० के  
लगभग । )

जमुना के तट धेनु चरायत ।  
राहत है गङ्गायाँ । तोहन मेरा सद्याँ ।  
मेर पत्र शिर छत्र सुहाने, मोरी धरत वहियाँ ।  
भानुदास प्रभु भगतको बत्सल, करत छत्र-छइयाँ ॥

## संत त्रिलोचन

( दक्षिण देशके भक्त कवि । जन्म-सं० १३२४, निर्वाण-तिथि—ब्रह्मत । )

अति कालि जो लहरी सिमरै, ऐसी चिंता महि जे मरै ।  
सरप जोनि बलि बलि अउतरै ।  
अरी बाई मोविद नामु मति बीसरै ॥  
अति कालि जो स्त्री सिमरै, ऐसी चिंता महि जे मरै ।  
बेसा जोनि बलि बलि अउतरै ॥

अति कालि जो लहिके सिमरै, ऐसा चिंता महि जे मरै ।  
तुकर जोनि बलि बलि अउतरै ॥  
अति कालि जो मंदर सिमरै, ऐसी चिंता महि जे मरै ।  
प्रेत जोनि बलि बलि अउतरै ॥  
अति कालि नाराइणु सिमरै, ऐसी चिंता महि जे मरै ।  
बदसि त्रिलोचनु ते नर मुकता, पीतंवस बकेस्त्रै बसै ॥

## संत एकनाथ

( जन्म—वि० सं० १५०० के लगभग । पिताका नाम—सर्वनारायण । माताका नाम—हृषिमणी । श्रीजनार्दनसामीके शिष्यीरान्—वि० सं० १६५६ की चैत्र कृष्ण पञ्ची, गोदावरीतीर )

भगवान्के मगुण चरित्र जो परम पवित्र हैं, उन्हींका वर्णन करना चाहिये । मध्यसे पहले सज्जनवृन्दोंका मनोभावसे बन्दन करना चाहिये । सत्त्वङ्गमें अन्तरङ्गसे भगवान्का नाम लेना चाहिये और कीर्तन-रंगमें भगवान्के समीप आनन्दसे द्वूमना चाहिये । भक्ति-ज्ञान-विरहित बातें न करके प्रेमभरे भावसे वैराग्यके ही उपाय सोलकर वत्ताने चाहिये, जिससे भगवान्की मूर्ति अन्तःकरणमें बैठ जाय । यही संतोंके धरकी कीर्तन-मर्यादा है । अहय और अखण्ड स्मरणसे करताल वजे तो एक क्षणमें श्रीजनार्दनके अंदर एका—एकनाथ कहते हैं कि मुक्ति हो जाय ।



मैं जो हूँ, वही मेरी प्रतिमा है; वहाँ कोई दूसरा धर्म नहीं है । उसमें मेरा ही वास है । भेद और आयासका कुछ काम नहीं । कलिमें प्रतिमा ही सबसे श्रेष्ठ साधन है; ऐसा दूसरा साधन नहीं । एका जनार्दनकी शरणमें है । दोनों रूप भगवान्के ही हैं ।

X X X

एकत्वके साथ सृष्टिको देखनेसे दृष्टिमें भगवान् ही भर जाते हैं । वहाँ द्वैतकी भावना नहीं होती, ध्यान भगवान्में ही लगा रहता है । वहाँ मैं-तू या मेरा-तेरा कुछ भी नहीं



### मनको प्रबोध

सर्वदा श्रीरामचन्द्रजीके प्रति प्रीति धारण कर । मनसे दुःखको निकाल दे और देह-दुःखको सुखके समान ही समझकर सदैव आत्मस्वरूपमें (नित्या-नित्यका) सोच-विचारकर लीन हो ।

मन ! तू अपने अंदर दुःखको

रहता, रहते हैं केवल भगवान् ही । ध्यानमें, मतमें, व जगत्में और वहिर्जगत्में एक जनार्दन ही हैं । एक भग ही हैं ।

X X X

विछल नाम खुला मन्त्र है, वाणीसे सदा इस नां जपो । इससे अनन्त जन्मोंके दोष निकल जायेंगे । संस जो आये हो तो निरन्तर विछलनाम लेनेमें जरा भी आ मत करो । इससे साधन संघो, भव-वन्धन दूर होंगे । व नामका जप करो । एकनाथ जनार्दनमें रहकर उठते-ब सोते-जागते, रात-दिन विछलनामका जप करता है ।

X X X

जिसने एक बार श्रीकृष्णरूपको देखा, उसकी ३ फिर उससे नहीं किरणी, अधिकाधिक उसी रूपको आलि करती हैं और उसीमें लीन हो जाती हैं ।

X X X

सारांश—स्त्री, धन और प्रतिष्ठा चिरजीव-पद-प्राप्ति साधनमें तीन महान् विघ्न हैं । सच्चा अनुताप और सार्विक वैराग्य यदि न हो तो श्रीकृष्ण-पद प्राप्त करना आदा करना केवल अज्ञान है । नाथ कहते हैं कि या नहीं कह रहा हूँ, यह हितका वचन श्रीकृष्णने उद्घवसे और वही मैंने दोहराया है । इसलिये इसे जिसका मन न माने, वह नाना विकल्पोंसे श्रीकृष्ण-चरण कदापि नहीं कर सकता ।

## समर्थ गुरु रामदास

( धरका नाम—नारायण । जन्म—वि० सं० १६६५ चैत्र शुक्ल ९ । जन्म-स्थान—जाम्बुद्धी ग्राम ( औरंगाबाद-दक्षिण ) । वि० सं० १७३९, माघ कृष्ण ९ )

तथा शोक और चिन्ताको कहीं स्थान न दे । देह-गोदानी आसक्ति विदेक करके छोड़ दे और उसी विदेही वाम मुक्ति-सुखका उपभोग कर ।

एक मर जाता है उसके लिये दूसरा दुःख बनता है और एकाएक वह भी उसी प्रकार एक दिन गर जाता । मनुष्यके लोभकी पूर्ति कभी नहीं होती, इसलिये उसके हृ में क्षोभ सदा बना ही रहता है । अतः जीवकी गंगा किर जन्म लेना पड़ता है ।

रे मन ! राघवके अतिरिक्त तू ( दूसरी ) कोई बात न कर । जनतामें वृथा बोलनेसे सुख नहीं होता । काल घड़ी-घड़ी आयुको हरण कर रहा है । देहावसानके समय तुझे बुद्धिमेवाला ( विना श्रीरामचन्द्रजीके ) और कौन है ?

देहकी रक्षा करनेके लिये यत्न किया तो भी अन्तमें काल ले ही गया । अतः ऐ मन ! तू भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी मर्त्ति कर और मनमेंसे इस संसारकी चिन्ता छोड़ दे ।

बहुत प्रकारकी वार्तामेंसे यही बात दृढ़तापूर्वक ( ध्यानमें ) धारण कर कि श्रीरामचन्द्रजीको तू अपना बना ले । उनके नामों ( की हँकार ) में 'दीनोंके नाथ' होनेका यश गरज रहा है । ( इसलिये ) मेरे भले मन ! तू रामचन्द्रजी ( की शरण ) में निवास कर ।

जिसकी संगतिसे मनःशान्ति नष्ट हो जाती है, एकाएक अहंताका सम्पर्क होता है तथा श्रीरामचन्द्रजीसे ( अपनी ) बुद्धि हट जाती है, ऐसी संगतिकी संसारमें किसको रुचि होगी ।

अपने ( बुरे ) आचरणमें सीच-विचार करके परिवर्तन कर । अति आदरके साथ शुद्ध आचरण कर । लोगोंके सामने जैसा कह, वैसा कर । ( और ) मन ! कल्पना और संसारके दुःखको छोड़ दे ।

रे मन ! क्रोधकी उत्पत्ति मत होने दे । सत्सङ्गमें बुद्धिका निवास हो । दुष्टसङ्ग छोड़ दे । ( इस प्रकार ) मोक्षका अधिकारी बन ।

कई पाण्डित संसारमें आजतक अपने हितसे बच्चित हो गये ( और ) अहंभावके कारण वे ब्रह्मराक्षसतक हो गये । सचमुचमें उस ( ईश्वर ) की अपेक्षा विद्वान् कौन हो सकता है ? ( अतः ) ऐ मन ! ( मैं सब कुछ जानता हूँ ) ऐसा अहङ्कार छोड़ दे ।

जो सीच-विचारकर बोलता है और विवेकपूर्ण आचरण करता है, उसकी सङ्गतिसे अत्यन्त व्रस्त लोगोंको भी शान्ति मिलती है, अतः हितकी खोज किये विना कुछ मत शेष और लोगोंमें संयमित और शुद्ध आचरण कर ।

जिसने अहंभावकी मरणी खा ली, उसको जानल्पी भोजनमें शान्त कैसे होगी ? जिसके मनमेंसे अहंभाव नष्ट नहीं होता, उसको जानल्पी अब कभी नहीं परेगा ।

रे मन ! सभी आसक्ति छोड़ और अत्यादरपूर्वक तज्ज्ञोंकी संगति कर । उनकी संगतिसे संसारका महान् दुःख

दूर हो जाता है और विना किसी अन्य साधनके संसारमें सन्मार्गकी प्राप्ति होती है ।

रे मन ! सत्सङ्ग सर्व ( संसारके ) सङ्गोंसे बुद्धिमेवाला है । उससे तुरंत मोक्षकी प्राप्ति होती है । यह सङ्ग साधककी भवसागरसे शीघ्र पार करता है । सत्सङ्ग द्वैत-भावनाका समूल नाश करता है ।

### संसारमें कौन धन्य है ?

सदा भगवान्के कार्यमें जो अपनी देहकी कष्ट देता है, मुखसे अलगड़ राम-नामका उच्चारण करता है, स्वधर्मपालनमें विलकूल तत्पर है, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा दास इस संसारमें धन्य है ।

( वह ) जैसा कहता है, वैसा ही करता है । नामा ह्यों-में एक ईश्वर ( रूप ) को ही देखता है और जिसे सगुण-भजनमें जरा भी संदेह नहीं है, वही मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम-चन्द्रजीका सेवक इस संसारमें धन्य है ।

जिसने मद, मत्सर और स्वार्थका त्याग कर दिया है, जिसके सांसारिक उत्पाद नहीं है और जिसकी धार्मी सदैव नम्र और मधुर होती है, ऐसा सर्वोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका सेवक इस संसारमें धन्य है ।

जो अतिविल संसारमें सदा-सर्वदा सरल, प्रिय, सत्यवादी और विवेकी होता है तथा निश्चयपूर्वक कभी भी सिद्ध्य-भाषण नहीं करता, वह सर्वोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका सेवक इस संसारमें धन्य है ।

जो दीनोंपर दया करनेवाला, मनका कोमल, स्त्रिय-हृदय, कृपाशील और रामजीके सेवकराणोंकी रक्षा करनेवाला है, ऐसे दासके मनमें क्रोध और चिङ्गचिङ्गाहट कहोंसे आयेगी ! सर्वोत्तम श्रमचन्द्रजीका ऐसा दास संसारमें धन्य है ।

### रामनाम

अनेक नाम-मन्त्रोंकी तुलना इस रामनामके साथ नहीं हो सकती । ( किंतु ) यह, भाग्यहीन शुद्ध मनुष्यकी समझमें नहीं आता । महादेवजीने भी विष ( का दाह शमन करने ) के लिये ( नाम ) औषधका उपयोग किया था, तब वेचारे मासधके लिये तो कहना ही क्या । ( उसको चाहिये कि वह सर्वदा नाम लेता रहे । )

जिसके मुँहमें राम (रहता है); उसको वहीं शान्ति मिलती है। वह अद्यष्ट आनन्दस्था आनन्दका सेवन करता है। रामनामके अतिरिक्त सब कुछ (अन्य चेष्टाएँ) खेदेह और गकावट उत्तम ऋणेवाला है; परंतु वह नाम हुखदारी परमतावाना धाम है।

जिसकी भागमें रुचि नहीं होती, उसीको अम हुख देता है (तथा) जिसके मरमें संदेह होनेके कारण तर्क उत्तम होता है, उसको शोत्रतर नरकमें ही जाना पड़ता है। इसलिये अति आदरके साथ मन लगाकर नाम-सरण कर। मुखसे (गम) नाम ठेनेसे सब दोप आप-से आप नष्ट हो जाते हैं।

### उपदेश

जो विना आन्दरण किये हुए नामा प्रकारकी (भ्रातानकी) वार्ता करता है, परंतु जिसका यापी मन उसे मन-ही-मन धिकारता है, जिसके मरमें कल्पनाओंकी मनमानी दौड़ चलती है, ऐसे मनुष्यको ईश्वरकी प्राप्ति कैसे होती।

मृत्यु नहीं जानती कि यही आशार है और न वह समझती है कि यह उदार है। मृत्यु सुन्दर पुरुष और तब प्रकार निष्णात पुरुषको भी कुछ नहीं समझती। पुण्य पुरुष, हरिदास या कीर्तनकार और वड़े-पड़े सत्कर्म करनेवालोंको भी मृत्यु नहीं छोड़ती।

यदि संदेह किया भी जाय, तो क्या यह मृत्युलोक नहीं रहेगा? वह मृत्युलोक तो है ही; और यहाँ जो पैदा होगा, वह मरेगा ही।

भगवान् भक्ति-भावका भूता है, वह भक्ति-भावपर ही प्रसन्न होता है और मात्रकभर प्रसन्न होकर संकटमें उसकी रक्षा करता है।

वह आमु एक रक्षाकी संदूक है—इसमें सुन्दर भजन-रक भेर है—इसे ईश्वरको उपर्युक्त करके आनन्दकी लूट मचाओ। हरिभक्त सांसारिक दैमवसे हीन होते हैं, परंतु वासुदेवे वे ब्रह्मा आदिसे मी श्रेष्ठ हैं; क्योंकि वे सदा-सर्वदा नैराश्यके आनन्दद्वारे ही संतुष्ट रहते हैं। केवल ईश्वरकी कमर पकड़कर जो संसारसे नैराश्य रखते हैं, उन भावुकोंको जगादीश सब प्रकारसे सँभालता है। भावुक भक्त संसारके हुखोंको ही विवेकसे परम सुख मानता है, परंतु अभक्त लोग संसार-सुखोंमें ही कैसे पड़े रहते हैं।

वासनाके ही करण सरे हुख भिलते हैं; इसलिये जो

उत्तम हुए, जिसने सुख है, उनमें घेर हुख भरा है उनका नियम ह कि पहले वे मीठे ल्पते हैं, परंतु फिर उनके कारण शोक ही होता है।

ईश्वरमें संत रक्षक जो कोई हरिकथा कहता है, उसी इस संसारमें धन्य जानी। जिसे हरिकथा पीति है वह नियम नयी प्रीति यहती जाती है, उसे भगवानकी प्राप्ति होती। जहाँ हरिकथा हो रही है, वहाँके लिये सब गोङ्गा जो दौड़ता है और आलस्य, निद्रा तथा स्वार्थको छोड़कर हरिकथामें तत्पर होता है, उसे भगवानकी प्राप्ति होती।

(प्रेक्ष—श्रीराम धन० धरकर)

जिस परमेश्वरने संतरमें भेजा, जिसने अद्विल द्रश्य उत्पन्न किया, उस परमेश्वरको जिसने वहीं पहचाना, वह प है। इसलिये ईश्वरको पहचानना चाहिये और जन्म सार्थक कर लेना चाहिये; समझता न हो तो सत्सङ्ग के चाहिये, जिससे समझमें आ जाता है। जो ईश्वर जानते हैं और शाश्वत-अशाश्वतका भेद बता देते हैं, संदर्भ है। जिनका ईश्वरविवेक ज्ञानलय भाव के चलायमान नहीं होता, वे ही मध्यात्माव साधु बोहे हैं—जानो। जो जनसमुदायमें बरतते हैं, परंतु लोगोंकी जिन जान नहीं, ऐसी वार्ता बताते हैं और जिनके अन्तर ज्ञान जानता रहता है, वे ही साधु हैं। जिससे प्र० परमात्मा जाननेमें आता है, वही ज्ञान है; उससे अतिरिक्त कुछ अश्वन है। उदरभणके लिये अदेव विद्या का अभ्यास किया जाता है, उसे भी ज्ञान कहते हैं; प उससे कोई सार्थक नहीं होता। एक ईश्वरको पहचानना चाहिये—वही ज्ञान है, उससे सब सा है; शेष सब कुछ निर्वर्थक और उदरभणकी विद्या। जीवनभर वेद भरा और देवका संरक्षण किया, प अन्तकालमें सब कुछ वर्ध्य हो गया। इस प्रवार भरनेकी विद्याको सद्विद्या नहीं कहना चाहिये; असू ज अमी, इसी समय, सर्वव्यापक परमेश्वरकी प्राप्ति ये ज वही ज्ञान है। और इस प्रकारका ज्ञान जिसे हो, उसको न आनो एवं उससे वह पूछो जिससे नमायान हो।

(श्रीदासबेप-दशक ३, गमा०

### नरदेहस्तभन

धन्य है वह नरदेह, धन्य है! इमर्ही अपूर्वता० देखो कि जो-जो परमार्थ-गाधन इससे किया जाए, उ

सिद्धि प्राप्त होती है। वहुतोंने सलोकता, समीपता, सरूपता और सायुज्य, जिस मुक्तिकी इच्छा हुई, प्राप्त कर ली। इस प्रकार अनेक सिद्धों-साधुओंने इस नरदेहके आश्रयसे ही अपना हित कर लिया; ऐसे इस नरदेहको कहा—

तक वसाना जाय ! यदि देहको परमार्थमें लगाया तो यह सार्थक हुआ, अन्यथा अनेक आवातोंसे यह व्यर्थमें ही मृत्युपथको प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥

( थीदासबोध—दशक १, समाप्त १० )

## संत श्रीतुकाराम

( जन्म—वि० सं० १६६५ । पिताका नाम—श्रीबोलोजी । माताका नाम—कलकावाई । खीका नाम—( १ ) रखुमार्द, दूसरीका नाम ( २ ) जिजाई । जन्म-स्थान—दक्षिणके देह नामक ग्राममें । वि० सं० १७०६ चैत्र कृष्ण २ को प्रवाण किया )

( प्रेषक—श्रीचन्द्रदेवजी मिश्र, 'चन्द्र' )

श्रीहरिसे मिलनेके लिये क्या करें—

'वस, केवल आशा-तृष्णासे विलुप्त खाली हो जाओ । जो नाम तो हरिका लेते हैं, पर हाथ लोभमें फँसाये रखते तथा असत्, अन्याय और अनीतिको लिये चलते हैं, वे अपने ( पूर्व ) पुरुषोंको नरकमें गिराते और स्वयं नरकके कीड़े बनते हैं।

अभिमानका मुँह ही काला है और उसका काम अँधेरा फैलाता है । सब काम मटियामेट करनेके लिये लोकलाज साथ लगी रहती है ।

खाँग कनामेसे भगवान् नहीं मिलते । निर्मल चित्तकी ग्रेमभरी चाह नहीं तो जो कुछ भी करो, अन्तमें केवल आह ! मिलेगी । तुका कहता है—लोग जानते हैं पर जानकर भी अंधे बनते हैं ।

बाद-विचाद जहाँ होता है, वहाँ खड़े रहेगे तो फर्देमें फँसेगे । मिलो उन्होंसे जो सर्वतोभावसे श्रीहरिकी शरण हो चुके हैं । वे तुम्हारे कुलके कुद्रम्बी हैं ।

तुकाराम कहते हैं—

जिसका जैसा भाव होता है, उसीके अनुसार ईश्वर उसके पास या दूर है एवं उसे देता-नहेता है ।

ईश्वर ऐसा कृपालु है कि उसके दासको उसे सुख-दुःख कहना नहीं पड़ता ।

जहाँ उसके नामका घोष होता है, उस स्थानमें नारायण भय नहीं आने देता ।

श्रीहरिके रंगमें जो सर्वभावसे रँग गये, उनका ही जगत्में जन्म लेना धन्य है ।

जिसका नाम पापोंका नाश करता है, लक्ष्मी जिसकी दासी है, जो तेजका समुद्र है, तुकाराम उसकी शरणमें सर्वभावसे है ।



सनकादि जिसका ध्यान धरते हैं, वही पाण्डुरंग मेरा कुल-देवता है ।

बिठ्ठलका नाम लेते ही मुझे सुख मिला और मेरा मुँह मीठा हो गया ।

बिठ्ठलका नाम-संकीर्तन ही मेरा सब कुछ साधन है ।

तेरा नाम ही मेरा तप, दान, अनुष्ठान, तीर्थ, व्रत, सत्य, सुकृत, धर्म, कर्म, नित्यनियम, योग, यज्ञ, जप, ध्यान, ज्ञान, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, कुलाचार, कुलधर्म, आचार-विचार और निर्धार है । नामके अतिरिक्त और कोई धन-वित्त मेरे पास कहनेके लिये नहीं है ।

मेरी दृष्टि ( नारायणके ) सुखपर संतुष्ट होकर फिर पीछे नहीं लौटती ।

हे पण्डीरीनाथ ! तेरा मुख देखनेकी मुझे भूख लगी ही रहती है ।

हे नारायण ! तुम त्वरासे आओ, यही मेरे अन्तरङ्गकी आर्त पुकार है ।

हरि-कीर्तनमें भगवान्, भक्त और भगवन्नामका जिवेणी-संगम होता है । कीर्तनमें भगवान्के गुण गाये जाते हैं, नामका जय-धोष होता है और अनायास भक्तजनोंका समागम होता है । कथा-प्रथागमें ये तीनों लाभ होते हैं । इसमेंसे प्रत्येक लाभ अमूल्य है । जहाँ ये तीनों लाभ एक साथ अनायास प्राप्त होते हैं, उस हरिकथामें योगदान कर आदरपूर्वक उसे श्रवण करनेवाले नर-नारी यदि अनायास ही तर जाते हैं तो इसमें आश्रय ही क्या है । हरि-कथा पवित्र, फिर उसे गानेवाले जब पवित्रता-पूर्वक गाते और सुननेवाले जब पवित्रतापूर्वक सुनते हैं तब ऐसे हरि-कीर्तनसे बढ़कर आत्मोद्धार और लोक-शिक्षाका दूसरा साधन क्या हो सकता है ?

अमृतका बीज, आत्मतत्त्वका सार, गुह्यका भी गुह्य-गद्द्य श्रीराम-नाम है। यही सुख में सदा लेता रहता हूँ और निर्मल हरि-कथा किया करता हूँ। हरि-कथामें सबकी भगवान्माधि लग जाती है। लोभ, मोह, माया, आशा, तृष्णा सब हरि-गुण-गानसे रफ़्तरकर हो जाते हैं। पांडुरंगने इसी रीतिसे भुजे अंगीकार किया और अपने रंगमें रँग डाल। हम विष्टलके लाडिले लाल हैं—जो असुर हैं, वे कालके भयसे काँपते रहते हैं। संत-वचनोंको सत्य मानकर तुमलोग नागयणकी शरणमें जाओ।

जहाँ भी बैठें, बैलें, भोजन करें, वहाँ तुम्हारा नाम गायेंगे। राम-कृष्ण नामकी माला गूँथकर गलेमें डालेंगे।

आमन, शयन, भोजन, गमन—सर्वत्र सब काममें श्रीविष्टलका मङ्ग रहे। तुका कहता है—गोविन्दसे यह अविल काल सुकाल है।

नाम-भक्तीर्तनका साधन है तो बहुत सरल, पर इससे जन्म-जन्मान्तरके पाप भस्म हो जायेंगे। इस साधनको करते हुए बन-बन भयकरेका कुछ काम नहीं है। नारायण स्वयं ही मीधे घर चले जाते हैं। अपने ही स्थानमें बैठे चित्तको एकाग्र करो और प्रेमसे अनन्तको भजो। राम कृष्ण हरि विष्टल केशवः यह मन्त्र सदा जपो। इसे छोड़कर और कोई साधन नहीं है। यह मैं विष्टलकी शपथ करके कहता हूँ। तुका कहता है—यह साधन सबसे सुगम है, बुद्धिमान धनी ही इस धनको यहाँ हस्तगत कर लेता है।

इन्द्रियोंकी अभिलाषा मिट जाती है। पर यह चिन्तन सदा बना रहता है। ब्रह्मानन्दमें काल समाप्त हो जाता है; जो कुछ रहता है, वह चिन्तन ही रहता है। वही अन्न पवित्र है, जिसका भोग हरि-चिन्तनमें है। तुका कहता है—वही भोजन स्वादिष्ट है, जिसमें श्रीविष्टल मिश्रित है।

मातासे बच्चेको यह नहीं कहना पड़ता कि तुम सुके सँभालो। माता तो स्वभावसे ही उसे अपनी छातीसे लगाये रहती है। इसलिये मैं भी सोन-विचार क्यों करूँ? जिसके सिर जो भार है, वह तो है ही। यिन माँगे ही माँ बच्चेको खिलाती है और बच्चा जितना भी खाय, खिलानेसे माता खिलाती है। खेल लेलनेमें बच्चा भूल रहे तो भी माता उसे नहीं भुलाती, बरबर पकड़कर उसे छातीसे चिपटा लेती और सतन-पान कराती है। बच्चेको कोई पीड़ा नहीं तो तो माता भाड़की लाई-सी बिकल हो उठती है। अपनी

देहकी सुख भुला देती है और बच्चेपर कोई चोट नहीं आने देती। इसलिये मैं भी क्यों सोन-विचार करूँ? जिसके सिंगों जो भार है, वह तो है ही।

भगवान् भक्तको शृंगपञ्च करने ही नहीं देते, बन झंझटोंसे अलग रखते हैं। उसे यदि वैभवशाली बनायें तो गर्व उसे धर दबायेगा। गुणवती छी यदि उसे दें तो उसीमें उसकी आसक्ति लगी रहेगी। इसलिये कर्कशा उसके पीछे लगा देते हैं। तुका कहता है, यह सब तो मैंने प्रत्यय देख लिया। अब और इन लोगोंसे क्या कहूँ?

X            X            X

पंडरपुरकी बारी मेरा कुलधर्म है, मेरे और कोई कर्म, तीर्थ-नत नहीं है। एकादशीका उपवास करता हूँ और दिन-रात हरिनामका गान करता हूँ। श्रीविष्टलके नामका मुख्ये उच्चारण करता हूँ—तुका कहता है कि यह कल्पवृक्षका बीज है।

X            X            X

कीर्तन बड़ी अच्छी चीज है। इससे शरीर हरिल्प हो जाता है, प्रेमलङ्घनसे नाचो-कूदो। इससे देहभावमिट जायगा।

X            X            X

लौकिक व्यवहार छोड़नेका काम नहीं, बन-बन भटकने या भस्म और दण्ड धारण करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं। कलियुगमें यही उपाय है कि नाम-कीर्तन करो, इसमें नारायण दर्शन देंगे।

अनुताप-तीर्थमें स्नान करो, दिशाओंको ओढ़ लो और आशारूपी परीना विल्कुल निकल जाने दो और वैष्णवी की दशा भोग करो। इससे, पहले जैसे तुम थे, वैसे हो जाओगे।

सच्चा पण्डित वही है जो नित्य विष्टलको भजता है और यह देखता है कि यह सम्पूर्ण समव्रत है। सब गच्छाना जगतमें श्रीविष्टल ही रम रहे हैं।

संत-चरणोंकी रेज जहाँ पड़ती है, वहाँ वामनाका वीर सहज ही जल जाता है, तब राम-नाममें रुचि होती है। और वही-वही सुख बढ़ने लगता है। कण्ठ प्रेमसे गद्दर होता, नथनोंसे नीर बहता और हृदयमें नाम-रूप प्रदर्श होता है। तुका कहता है—यह बड़ा ही मुन्ह सुख माधव है, पर पूर्व-पुण्यसे ही यह प्राप्त होता है।

X            X            X

इन्द्रियोंका नियमन नहीं, मुख्यमें नाम नहीं। ऐसा हीरा तो भोजनके साथ मनवी निगल जाना है, ऐसा भोजन कई कभी सुख दे सकता है।

सबके अलग-अलग राग हैं, उनके पीछे अपने मनको मत बाँटते फिरो। अपने विश्वासको जतनसे रखतो, दूसरोंके रंगमें न आओ।

खोल, खोल, आँखें खोल। खोल, अभीतक क्या आँखें नहीं खुलीं? अरे, अपनी माताकी कोखमें तू क्या पस्थर पैदा हुआ? तैने यह जो नरतनु पाया है, वह बड़ी भारी निधि है, जिस विधिसे कर सके, इसे सार्थक कर। संत तुझे जगाकर पार उत्तर जायेगे।

श्रीहरिके जागरणमें तेरा मन क्यों नहीं रमता? इसमें क्या थाटा है? क्यों अपना जीवन व्यर्थमें खो रहा है? जिनमें अपना मन अटकाये वैठा है, वे तो तुझे अन्तमें छोड़ ही देंगे। तुका कहता है—सोच ले, तेरा लाभ किसमें है?

पर-द्रव्य और पर-नारीकी अभिलाषा जहाँ हुई, वहाँसे भाग्यका हास आरम्भ हुआ।

(हे केशव! तुम्हारे वियोगमें) मेरी वैसी ही स्थिति है, जैसे पानीसे अलग होनेपर मछली तड़फड़ाती है।

मुझे अब धीरज नहीं रहा; पाण्डुरंग! कब मिलोगे?

श्रीहरि पास आ गये। उनके हाथमें शङ्ख-चक्र शोभा दे रहे हैं। गरुड़ फड़फड़ाता हुआ आ रहा है और कहता है, 'मत डरो, मत डरो!' मुकुट और कुण्डलोंकी दीपिसे सूर्य-

का लोप हो गया है। हरिका वर्ण मेवश्याम है। उनकी मूर्ति बहुत ही सुन्दर है। चार भुजाएँ हैं और कण्ठमें वैजयन्ती माला झूल रही है। पीताम्बरकी आभा ऐसी है कि दसों दिशाएँ प्रकाशमान हो गयी हैं। तुकाराम संतुष्ट हो गये; क्योंकि वैकुण्ठवारी भगवान् भ्र आ गये।

हम अपने गाँव चले। हमारा राम-राम बंचना। अब हमारा-तुम्हारा यही मिलना है। यहाँसे जन्म-बन्धन टूट गया। अब हमपर दया रखना। तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ। कोई निज धामको पधारते हुए 'विछल-विछल' वाणी तोलो। मुखसे राम-कृष्ण कहो। तुकाराम वैकुण्ठको चला!

### हिंदी दोहे

लोमीके चित धन बैठ (अरु), कामिनिके चित काम।  
माताके चित पूत बैठ, तुकाके मन राम॥१॥  
कहे तुका जग भूला रे, कहा न ममत कोय।  
हाथ पड़े जब कालके, मारत फोरत डोय॥२॥  
तुका मिलना तो भला, (जब) मनसू मन मिल जाय।  
उपर उपर माटी धसी, उनकी कोत बराय॥३॥  
कहे तुका भला भया, हुआ संतनका दास।  
क्या जानूँ कैसे मरता, न मिट्ठी मनकी आस॥४॥

### संत महीपति

(जन्म—सन् १७१५ ई०। जन्म-स्थान—ताहरायाद। जाति—काव्येशी वसिष्ठगोत्री वाल्मीकि। पिताका नाम—श्रीदादोपतं। दीक्षा-युरु—संत तुकारामजी। उम्र—७५ वर्ष। देहावसान—१७५०।)

भगवत्प्रिय भक्त ही सौभाग्यशाली हैं, उनका सौभाग्य असीम और अपार है। उनके पूर्व-जन्म धन्य हैं। उनका यह जन्म भी सपल और धन्य है। उनके कुदुम्ब, कुल और जाति आदि धन्य हैं। जो श्रीहरिके शरणागत हैं, उनका जन्म धन्य है, उनका संसारमें आना धन्य है। वे प्राणी धन्य हैं, जो अनन्यभावसे हरिकी शरणमें हैं। उन्होंने अपने पूर्वजोंका उदार कर दिया और असंख्य प्राणियोंको भवसागमके पार

उतार दिया। भगवान्के भक्त वडे पुण्यशाली होते हैं, उनके दर्शनमात्रसे लोग भवसागरसे तर जाते हैं.....इन्द्र और ब्रह्मा भगवान्के भक्तकी महिमा नहीं कह सकते। वे पुरुषोत्तम भारायणके विषय पान हैं और वैकुण्ठमें जाते हैं। वे वैकुण्ठमें निवास करते हैं और दृपीकेशके निकट रहते हैं, ऐसे महाभग्यशाली हैं वे। ऐसे संतो—भक्तोंके चरणपर महीपति अपना मस्तक रखते हैं।



## संत श्रीविनायकानन्द स्वामी

( श्रीक्षेत्र पेरुल मृणोश्वर । जन्म—शाके १८०५ । समाधि—शाके १८६१, भाद्रपद कृष्ण ८ शुक्रवार । )

( प्रेषक—श्रीकिलन दामोदर नाईक )

|                                                      |                                                    |
|------------------------------------------------------|----------------------------------------------------|
| वंदे कृष्ण घनसंकार्ण । निष्ठजन-हृदय-निवासम् ॥        | भणिमय-सुकृदं, पीत हुकूलं । कृपया सेवित-अमुनाकूलं ॥ |
| धिमलं सन्धं ज्ञानमनन्तं । माया-मानुष देह धरतं ॥      | वृन्दावन-कृत-रासम् ॥ ३ ॥                           |
| गोपीजन-सहवासम् ॥ १ ॥                                 | नन्द-नशोदा-वत्सल बालं । मृगमद-चंद्र-शोभित भालं ॥   |
| त्रिभुवन-मुन्दर-वदनारविदं । मंजुल मुरली गान विनोदं ॥ | राधाकृत परिहासम् ॥ ४ ॥                             |
| सदयं सम्प्रितद्वासम् ॥ २ ॥                           | धजवद्रांकुश-चिन्हित-चरणं । कविनायकमुनि-मानस-हरणं ॥ |
|                                                      | सुखदं भवभयनाशम् ॥ ५ ॥                              |

## महाराष्ट्रीय संत अमृतराय महाराज

( स्थान—साप्तरसेशा—ओरंगाबाद । जन्मकाल—संवत् १७५५, समाधिकाल—संवत् १८१० । )

( प्रेषक—पं० श्रीविष्णु वालकृष्ण जोशी )

वो नर कहाँ पावे, निशदिन हरिगुन गावे ।  
कुछ रोटी कुछ लंगोटिया, खुशाल गुजर चलावे ॥  
मिन्नत कर कर देव, तो ही पैसा हाथ न लावे ।  
दो दिनकी दुनियामें वो, वाहवा कर कर जावे ॥  
औरत आगे आवे, माह वहेन बराबर भावे ।  
फिर चली रात भजनकी, भीमा चिद्रंगामें न्हावे ॥  
अमृतरायके नाम-सुधारस, मन भरपूर पिलावे ।  
वो नर कहाँ पावे, निशदिन हरिगुन गावे ॥  
  
काया नहिं तेरी नहिं तेरी । भत कर मेरी मेरी ॥४०॥  
न्हावे हाँडा पानी गरम । नहिं करता कौड़ीका धरम ॥  
इस कायाका कौन भरेसा । आकर जम डोरेगा फासा ॥  
वाँधे टाम-टीमकी पगड़ी । चौथे दिन मुडावे दाढ़ी ॥  
खावे धी-सिंचड़ीका खुराक । आखर जलकर होवे खाक ॥

चन्दन सीस ल्यावे टीका । आखर राम-भजन बिन फीका॥  
चावे पान सुपारी लक्खा । गल्लो गल्ल फिरत वेढेगा ॥  
बाजे टंड अनाया डगला । ऊपर काल फिरत है बगला ॥  
ओढ़े शाल दुशाला पट्ठू । इसमें क्या भूला रे लट्ठू ॥  
नया हाली पलंगपर सोवे । उत्तरे खातर जीवा सोवे ॥  
अमृत कहे सब छठा धंधा । भज ले राम कृष्ण गोविदा ॥  
तुम चिरंजीव कल्याण रहो, हरिकथा सुरस पीओ ।  
हरिकीर्तनके साथी सज्जन, बहुत बरस जीओ ॥  
सस्ता दाना पानी निमल, गंगाजल लहरा ।  
राग-रंग और बाग-बगीचे, रुपये हो न मोहरा ॥  
ऊँचा मन्दिर, महल सुनेरी, माल मुलुक बहती ।  
पुत्र-पौत्र मुन्दर कामिनी, सहुण गुण आती ॥  
अमृतरायके अमृत बचनले, सदा सुली रहिये ।  
सबल पुष्टि आरोग्य नामसे, आर्नदमें रहिये ॥

## संत मानपुरी महाराज

( जन्मकाल—संवत् १७१० । समाधिकाल—संवत् १७८७ । )

( प्रेषक—पं० श्रीविष्णु वालकृष्ण जोशी )

( भजन राग वंकावली )

हरि बोलो अखियाँ खोलो, करि करि दरसन ढोलो ।  
ग्यान गुरुको सोई पावे, जो कोइ होवे भोलो ॥

जितदेसोति रुप साईका, संपूरन नाद योगे ।  
मानपुरी साई विभरत नाही, जो जी, हरपट जो नाही ॥

नाम सनेही जब मिलै, तब ही सचु पावै ।  
अजर अमर घर ले चैरै, भव-जल नहिं आवै ॥  
ज्यों पानी दरियाव का, दूजा न कहावै ।  
हिल मिल एकौं है रहे, सतगुरु समुज्जावै ॥  
दास कवीर विचारि कै, कहि कहि जतलावै ।  
आपा मिटि साहिव मिलै, तब वह घर पावै ॥

( ३ )

भजि ले गिरजनहार, सुधर तन पाइ कै ॥  
कादे रहै अचेत, कहाँ यह औसर पैहै ।  
फिर नहिं ऐसी देह, बहुरि पाछे पछिहै ॥  
लख चौरासी जोनि मे, मानुष जनम अनूप ।  
ताहि पाइ नर चेतत नहीं, कहा रंक कहा भूप ॥  
गर्भयास में ख्यो कहो, मैं भजिहैं तोहीं ।  
निसदिन सुमिरैं नाम, कष्ट से काढ़े मोहीं ॥  
चरनम ध्यान लगाइकै, रहौं नाम लौ लय ।  
तनिक न तोहिं विसारिहौं, यह तन रहै कि जाय ॥  
इतना कियौं करार, काढि गुरु बाहर कीहा ।  
भूलि गयौ वह बात, भयो माया आधीना ॥  
भूलीं बातें उदर की, आनि पड़ी सुधि एत ।  
बालकपन बीत्यौ बृथा, खेलत फिरत अचेत ॥  
विषया बान समान, देह जोवन मद माते ।  
चलत निहारत छाँह, तमक के बोलत बातें ॥  
चोवा-चंदन लाइ के, पहिरे बसन रँगाय ।  
गली-गली झाँकत फिरे, पर-तिय लखि मुसकाय ॥  
तस्वनपन गइ बीत, बुढापा आन तुलाने ।  
काँपन लागो सीस, चलत दोउ चरन पिराने ॥  
नैन-नाक चूबन लगो, मुख तैं आवत बास ।  
कफ-निपत धेरे कंठ सब, छुटि गइ धर की आस ॥  
मातु पिता सुत नारि, कहौं का के सँग जाई ।  
तन धन धर औं काम धाम, सब ही छुटि जाई ॥  
आखिर काल घसीटिहै, परिहै जम के फंद ।  
विन सतगुरु नहिं बाचिहै, समुक्ष देख मतिमंद ॥  
सुफल होत यह देह, नेह सतगुरहसों कीजै ।  
मुक्ती मारा जानि, चरन सतगुरु नित दीजै ॥  
नाम गहौं निमय रहौं, तनिक न व्यापै पीर ।  
यह लील है मुक्ति की, गावत दास कवीर ॥

१०  
नाम-लगन छूटै नहीं, सोइ साधु सयाना है  
मधीं को वरतन बन्यो, पानी लै साना है  
विनसत बार न लागिहै, राजा क्या राना है  
क्या सराय का बासना, सब लोग बेगाना है  
होत भोर सब उठि चले, दूर देस को जाना है  
आठ पहर समुख लड़ै, सो बौधै बाना है  
जीत चला भवसगर सोइ, सूरा भरदाना है  
सतगुरु की सेवा करै पावै परस्याना है  
कहै कवीर धर्मदास से, तैहि काल डेरना है

( ५ )

सुमिरन करि ले, नाम सुमिरले, को जानै कल की  
जगत में खबर नहीं पल की ॥  
शूठ-कपट करि माथा जोसिन, बात करै छल की  
पाप की पोट धेरे सिर ऊपर, किस निधि है इलकी  
यह मन तो है हस्ती मस्ती, काया मट्ठी की  
साँस-साँस में नाम सुमिर ले, अवधि धैर तन की ।  
काया अंदर हंसा बोलै, खुसियाँ कर दिल की  
जब यह हंसा निकरि जाहिंगे, मट्ठी जंगल की ॥  
काम कोध मद लोभ निवारो, बात यह अस्मल की ।  
ज्ञान बैरगा दया मन रखो, कहै कवीर दिल की ॥

( ६ )

मन रे अब की बेर सम्भारे ।

जन्म अनेक दगा में खोये, यिन गुरु बाजी हारो ॥  
बालापने ज्ञान नहिं तन में, जब जन्मो तब वारो ।  
तरुनाई सुख वास में खोयो, बाल्यो कूच-नगारो ॥  
सुत दारा मतलब के साथी, तिन को कहत हमरो ॥  
तीन लोक औं भवन चुप्रदम, तब हि काल को जारो ॥  
पूर रहो जगदीश गुरु तन, वारे रहो नियारो ॥  
कहै कवीर सुनो भाई साथो, सब धट देखनदारो ॥

( ७ )

मन करि ले साहिव से प्रीत ।

सरन आये सो सब ही उदर, ऐसी उन की रीत ॥  
सुंदर देह देखि मत भूलो, जैसे तृन रर भीत ॥  
काँची देह गिरे आखिर को, ज्यों याद भी भीत ॥  
ऐसो जन्म बहुरि नहिं पैदो, जात उमिरि भव रीत ॥  
दास कवीर चढ़े गद ऊर, देव नामा नहिं ॥

नाम सनेही जब मिलै, तब ही सचु पावै ।  
अजर अमर घर ले चैदै, भव-जल नहि आवै ॥  
ज्यों पानी दरियाव का, दूजा न कहावै ।  
हिल मिल एकौ है रहै, सतगुर समुझावै ॥  
दास कवीर विचारि कै, कहि कहि जतलावै ।  
आपा मिठि साहिव मिलै, तब वह घर पावै ॥

( ३ )

भजि ले मिरजनहार, सुधर तन पाइ कै ॥  
काहे रहै अचेत, कहाँ यह औसर पैहै ।  
फिर नहि ऐसी देह, बहुरि पाछे परछतैहै ॥  
लख चौरसी जोनि मे, मानुष जनम अमृप ।  
ताहि पाइ नर चेतत नाहीं, कहा रंक कहा भूप ॥  
गर्भवास में रहो कहो, मैं भजिहौं तोहीं ।  
निसदिन सुमिरौं नाम, कष्ट से काढो मोहीं ॥  
चरनन ध्यान लगाइकै, रहों नाम लौ लाय ।  
तनिक न तोहि विसारिहौं, यह तन रहै कि जाय ॥  
इतना कियौं करार, काढि गुरु बाहर कीन्हा ।  
भूलि गयौ वह बात, भयौ माया आधीना ॥  
भूलीं बातें उदर की, आनि पड़ी सुधि एत ।  
बालकपन बीत्यौ बृशा, खेलत फिरत अचेत ॥

विषया बान समान, देह जोबन मद माते ।  
चलत निहरत छाँह, तमक के बोलत बातें ॥  
चोदा-चंदन लाइ के, पहिरे बसन रँगाय ।  
गली-गली झाँकत फिरे, पर-तिय लखि मुस्काय ॥  
तरनापन गइ बीत, छुदापा आन तुलने ।  
काँपन लागो सीस, चलत दोउ चरत पिराने ॥  
नैन-नाक चूबन लगो, मुख तं आबत बास ।  
कफ-पित धेरे कंठ सब, छुटि गइ घर की आस ॥

मातु पिता सुत नारि, कहौं का के सँग जाई ।  
तन धन धर औं काम धाम, सब ही छुटि जाई ॥  
आखिर काल धरीठिहै, परिहौं जम के फंद ।  
विन सतगुर नहि बाच्चिहै, समुद्दि देख मतिमंद ॥  
सुफल होत वह देह, नेह सतगुरसों कीजै ।  
मुक्ती मारा जानि, चरन सतगुर चित दीजै ॥  
नाम गहौं निरभय रहौं, तनिक न व्यापै पीर ।  
गह लोला है द्रुक्ति की, गावत दास कवीर ॥

( ४ )

नाम-लगन छूटै नहीं, सोइ साधु सयाना हो ॥  
माटी को बरतन बन्धो, पानी लै साना हो ।  
विनसत बार न लागिहै, राजा क्या राना हो ॥  
क्या सराय का बासना, सब लोग बेगाना हो ।  
होत भोर सब उठि चले, दूर देम को जाना हो ॥  
आठ पहर सन्मुख लड़ै, सो बाँधै बाना हो ।  
जीत चला भवसागर सोइ, सूरा मरदाना हो ॥  
सतगुर की सेवा करै, पावै परवाना हो ।  
कहै कवीर धर्मदास से, तेहि काल डेराना हो ॥

( ५ )

सुमिरन करि ले, नाम सुमिरले, को जानै कल की  
जगत में खबर नहीं पल की ॥  
झुड़कपट करि माया जोरिन, बात करै छल की ।  
पाप की पोट धेरे सिर ऊपर, किस विधि है हलकी ॥  
वह मन तो है हस्ती मस्ती, काया मट्ठी की ।  
साँस-साँस में नाम सुमिरि ले, अधिष धै तन की ।  
काया अंदर हंसा बोलै, खुसियाँ कर दिल की ।  
जब यह हंसा निकरि जाहिंगे, मट्ठी जंगल की ।  
काया कोध मद लोभ निबारो, बात वह अस्तुल की ।  
ज्ञान बैराग दया मन राखो, कहै कवीर दिल की ॥

( ६ )

मन रे अब की देर सम्हारो ।  
जन्म अनेक दरा में खोये, विन गुरु बाजी दरो ॥  
बालापने जान नहिं तन में, जब जनमो तय बरो ।  
तरनाई सुख नास में खोयो, ग्राज्यो कृच-नगारो ॥  
सुत दारा मतलन के साथी, तिन को कहत दृशये ।  
तीन लोक औं भवन चतुरदम, सब हि काल को चारो ।  
पूर रहो जगदीस गुरु तन, वासे रहो नियारो ।  
कहै कवीर सुनो भाई साथो, सब घट देखनदारो ॥

( ७ )

मन करि ले साहिव से प्रीत ।  
सरन आये सो सब ही उवरे, ऐसी उन की रीत ॥  
सुंदर देह देखि मत भूलो, जैसे दृग र भीत ।  
कैन्नी देह सिरे आखिर को, ज्यों बाद की भीत ।  
ऐसो जन्म बहुरि नहिं पैदा, जात उमिरि नहीं ।  
दास कवीर चढ़े मद ऊर, देव नगार नहीं ॥

नाम सनेही जब मिलै, तब ही सतु पावै।  
अजर अमर घर ले चैकै, भव-जल नहि आवै॥  
ज्यों पानी दरियाथ का, दूजा न कहावै।  
हिल मिल एकौ है रहै, सतगुरु समुझावै॥  
दास कवीर विचारि कै, कहि कहि जतलावै।  
आपा मिठि साहिव मिलै, तब वह घर पावै॥

( ३ )

भजि ले मिरजनहर, सुपर तन पाइ कै॥  
काहै रहै अचेत, कहाँ यह औमर पैहै॥  
फिर नहि ऐसी देह, बहुरि पछि पछिलैहै॥  
लख चौरासी जोनि मे, मानुष जनम अदृश॥  
ताहि पाइ नर चेतत नाहौं, कहा रंक कहा भ्रू॥  
गर्भवास मे रखो कहो, मैं भजिहौं तोहौं॥  
नियादिन सुमिरौं नाम, कष्ट से काढ़ी मोहौं॥  
चरनत ध्यान लगाइकै, रहौं नाम लौं लाय॥  
तनिक न तोहि विसारिहौं, यह तन रहै कि जाय॥  
इतना कियौं करार, काढ़ि गुरु बाहर कीन्हा।  
भूलि गयौं वह बात, भयौं माया आधीना॥  
भूली वार्ते उदर कौ, आनि पड़ी सुधि यत।  
बालकपन बीत्यौं वृथा, खेलत फिरत अचेत॥

)  
विषया बान समान, देह जोवन मद भाते।  
चलत निहारत छाँह, तमक के बोलत बाते॥  
चोवा-चंदन लाइ के, पहिरे बसन रँगथ।  
गली-गली झाँकत फिरे, पर-तिय लखि मुसकाव॥  
तरुनामन गह बीत, बुदाया आग तुलाने।  
काँपन लापो सीस, चलत दोउ चरन मिराने॥  
नैन-नाक चूबन लगो, मुख तैं आवत बास।  
कफ-पित घेरे कंठ सब, छुटि गह घर की आस॥  
मातु पिता सुन नारि, कहो का के सँग जाई।  
तन धन घर औ काम धाम, सब ही छुटि जाई॥  
आखिर काल श्लीटिहै, परही जम के फंद।  
यिन सतगुरु नहि नाचिहै, समुक्षि देख मतिमंद॥  
सुकल हत यह देह, नेह सतगुरस्तों कीजै।  
मुक्ती मारम जानि, चरन सतगुर चित दीजै॥  
नाम रहै निरभय रहै, तनिक न व्यापै धीर।  
यह लीला है मुक्ति की, गावत दास कवीर॥

( ४ )

नाम-लगन छूटै नहीं, सोइ लायु सयाजा है  
माटी को बरतन बन्हो, पानी लै साना है  
बिनसत बार न लागिहै, राजा क्या याना है  
क्या सरय का बासना, सब लोग बेगाना है  
होत भोर सब डडि चले, दूर देस को जाना है  
आठ पहर समुख लड़ै, सो बैधै बाजा है  
जीत चला भवधार सोइ, सूरा मरदाना है।  
सतगुरु की सेवा करै, पावै परवाना है।  
कहै कवीर धर्मदास से, तोहि काल डेराना है।

( ५ )

सुमिरन करि ले, नाम सुमिरले, को जावै कल की  
जात मे खबर नहीं पल की॥  
छूठकपट करि माया जौरिन, बात करै छल की॥  
पाप की पोट धरे सिर ऊपर, किस विधि दै हलकी॥  
यह मन तो है हस्ती मस्ती, काया मटी की॥  
साँस-साँस मे नाम सुमिरि ले, अचाधि धरै तन की॥  
काया अंदर हंसा जोलै, खुलियाँ कर दिल की॥  
जब यह हंसा निकरि जाहिंगे, मटी जंगल की॥  
काम कोष्ठ मद लोभ निजारो, बात यह अस्मल की॥  
ज्ञान बैरग दिया मन राखो, कहै कवीर दिल की॥

( ६ )

मन रे अब की द्वेर सम्भारो।  
जन्म अनेक दरा मे खोये, यिन गुरु बाजी शारो॥  
बालापने ज्ञान नहि तन मे, जब जन्मो तब बारो।  
तरुनार्द सुख बास मे लोयो, याज्यो इन्द्र-गणयो॥  
सुत दासा मतलब के साथी, तिन को कहत इमरो॥  
तीन लोक औ भवन चतुरदम, तब हि काल को चारी॥  
पूर रखो जगदीस गुरु तन, वासे रखो निशांस।  
कहै कवीर सुनो भाई साथो, सब घट देलनदरो॥

( ७ )

मन करि ले साहिव से प्रीत।  
सरन आये सो सब ही उत्तर, ऐसी उत्र की तीत॥  
सुंदर देह देखि मत भूये, जैसे तृण पर गीत॥  
काँची देह गिरे आखिर को, उयो धाद ही गीत॥  
ऐसो जन्म बहुरि नहि पैदो, जात उग्निरे नव नीत॥  
दास कवीर चढ़े गढ़ ऊपर, देव नामा नीत॥

नाम सनेही जब मिलै, तब ही सचु पावै ।  
अजर अमर धर ले चैकै, भव-जल नहि आवै ॥  
उयों पानी दरियाव का, दूजा न कहावै ।  
दिल मिल एकौ है रहै, सतगुरु समुद्गावै ॥  
दास कवीर विचारि कै, कहि कहि जतलावै ।  
आपा मिठि साहिव मिलै, तब वह धर पावै ॥

( ३ )

भजि ले भिजनहार, सुधर तत पाइ कै ॥  
काहे रहौ अचेत, कहाँ वह औसर पैहौ ।  
फिर नहि ऐसी देह, बहुरि पाछे पछितैहै ॥  
लख चौरासी जोनि मे, मानुष जनम अनुप ।  
ताहि पाइ नर चेतत नाहौं, कहा रंक कहा भूप ॥  
गर्भवास में रह्यो कह्यो, मैं भजिहौं तोहौं ।  
निसदिन सुमिरौं नाम, कष्ट से काहो मोहौं ॥  
चरनन ध्यान लाइकै, रहौं नाम लै लाय ।  
तनिक न तोहिं विसारिहौं, यह तन रहै कि जाय ॥  
इतना कियौं करार, काहि गुरु बाहर कीन्हा ।  
भूलि गयौ वह बात, भयौ माया आधीना ॥  
भूलीं बातैं उदर की, आनि पड़ी सुधि एत ।  
बालकपन बीत्यौ बृथा, खेलत फिरत अचेत ॥

विषया बान समान, देह जोबन भद माते ।  
चलत निहारत छाँह, तमक के बोलत बातें ॥  
चोबा-चंदन लाइ के, पहिरे बसन रँगाय ।  
गली-गली झाँकत फिरे, पर-तिय लखि मुसकाय ॥  
तरुनापन गह बीत, बुढापा आन तुलाने ।  
काँपन लगो सीस, चलत दोउ चरन पिराने ॥  
नैन-नाक चूबन लगो, मुख तें आवत बास ।  
कफ-पिल धेरे कंठ सब, छुटि गई धर की आस ॥

मातु पिता सुत नारि, कहौं का के सँग जाई ।  
तन धन धर औं काम धाम, सब ही छुटि जाई ॥  
आखिर काल बरीटहै, परिहै जम के फंद ।  
विन सतगुरु नहि बाचिहै, समुद्धि देल मतिमंद ॥  
सुफल होत यह देह, नेह सतगुरुओं कीजै ।  
मुक्ती मारण जानि, चरन सतगुरु नित दीजै ॥  
नाम गहौं निरमय रहौं, तनिक न व्यापै पीर ।  
दास कवीर चड़े गढ़ ऊर, देव नगार ईर ॥

( ४ )

नाम-लगन छूटै नहीं, सोइ साधु सथाना है ।  
माटी को बरतन बन्यो, पानी लै साना है ।  
विनसत बार न लागिहै, राजा क्या राना है ॥  
क्या सराय का बासना, सब लोग बेगाना है ।  
होत भेर सब उठि चले, दूर देम को जाना है ॥  
आठ पहर सन्मुख लड़ै, सो बाँधै बाना है ।  
जीत चला भवसगर सोइ, सूर्य सरदाना है ॥  
सतगुरु की सेवा करै, पावै परवाना है ।  
कहै कवीर धर्मदास से, तेहि काल डेराना है ॥

( ५ )

सुमिरन करि ले, नाम सुमिरले, को जानै कल की  
जगत में खबर नहीं पठ की ॥  
झूठ-कपट करि माया जोरिन, बात करै छल की ।  
पाप की पोट धेरे सिर अपर, किस विधि है इलकी ॥  
वह मन तो है हस्ती मस्ती, काया मट्ठी की ।  
साँस-साँस में नाम सुमिरि ले, अवधि घटै तन की ॥  
काया अंदर हंसा बोडै, खुसियाँ कर दिल की ।  
जब यह हंसा निकारि जाहिंगो, मट्ठी जंगल की ॥  
काम कोष मद लोभ निवारो, जात यह अस्मल की ।  
शान वैराग दया मन राखो, कहै कवीर दिल की ॥

( ६ )

मन रे अब की बेर सम्हारो ।  
जन्म अनेक दगा में खोये, विन गुरु बाजी द्वारो ॥  
बालापने ज्ञान नहि तन में, जब जन्मो तब बारो ।  
तरुनाई सुख बास में खोयो, बाज्यो कृच-नगारो ॥  
सुत दारा मतलब के साथी, तिन को कहत दमारो ॥  
तीन लोक औं भवन चतुरदम, सब हि काल को चारो ॥  
पूर रह्यो जगदीस गुरु तन, बाये रह्यो नियारो ॥  
कहै कवीर सुनो भाई साथो, सब घट देसनश्यो ॥

( ७ )

मन करि ले साहिव से प्रीत ।  
सरन आये सो सब ही उवरे, ऐसी उन की गीत ॥  
सुंदर देह देखि मत भूलो, जैसे तन पर मीठ ॥  
काँची देह गिरे आनिर को, उयो बाल की भित ॥  
ऐसो जन्म बहुरि नहि पैदो, जात उगिनि सब रीठ ॥  
दास कवीर चड़े गढ़ ऊर, देव नगार ईर ॥

( ८ )

समुझ देख मन मीढ़ पियारे, आसिक होकर सोना क्यारे ॥  
खुबा दुखा राम का दुकड़ा, जिकना और सलोना क्यारे ॥  
पथा हो तो दे ले प्यारे, पाथ-पाय फिर खोना क्यारे ॥  
जिन अँखेन मैं नीद घनेरी, तकिया और बिछौना क्यारे ॥  
कहै कवीर सुनो भाई साधो, सीस दिया तब गोता क्यारे ॥

( ९ )

है कोई भूल मन समुझावै ।

या मन चंचल चोर होर लो, छुटा हाथ न आवै ॥  
जोर-जोरि धन गहिरे गाड़े, जहँ कोइ लेन न पावै ॥  
कठ का पौल आइ जम बेरे, दै-दै सैन बतावै ॥  
खोटा दाम गाँठि ले बाँधै, बड़ि-बड़ि बस्तु भुलावै ॥  
बौय बबूल दाख कल चाहै, सो कल कैसे पावै ॥  
गुरु की सेवा साध की संगत, भाव-भगति बनि आवै ॥  
कहै कवीर सुनो भाई साधो, बहुरि न भव-जल आवै ॥

( १० )

सत्संग लाँग रहौ रे भाई, तेरी विगरि बात बन जाई ॥  
दौलत-दुनियाँ माल-खजाने, बधिया नैल चराई ॥  
जर्हाई काल के हुंडा बाजै, खोज खबरि नहिं पाई ॥  
ऐसी भगति करौ घट भीतर, छाँड़ कपट-चतुराई ॥  
सेवा वंदसी अरु अधीनता, सहज मिलैं गुरु आई ॥  
कहत कवीर सुनो भाई साधो, सतशुरु बात बताई ॥  
यह दुनियाँ दिन चार दहाड़े, रहो अलख लौ लाई ॥

( ११ )

जब कोइ रतन पारखी पैहो, हीरा खोल भैजहौ ॥  
उन को तुला सुरतकौ पलरा, मनकौ सेर बनैहौ ॥  
मासा पाँच पचीस रतीकौ, लोला तीन चढ़ैहौ ॥  
अगम अगोचर वस्तु गुरु की, ले सराफ पै जैहौ ॥  
जहँ देरखौ सतन की महिमा, तहाँ खोलि भैजहौ ॥  
पाँच चोर मिलि धुसे महल में, इन से वस्तु छिपैहौ ॥  
जम राजा के कठिन दूत हैं, उन से आप बचैहौ ॥  
दया-धरम से पार उतरहौ, सहज परम कल पैहौ ॥  
कहै कवीर सुनो भाई साधो, हीरा गाँठि लौहौ ॥

( १२ )

चार दिन अपनी चले बजाइ ।

उत्तनै साटिया, गाइले मटिया, सेंग न कलू लै जाइ ॥  
देढ़ी बैटी मेहरी रेवै, द्वारे लौ तँग माइ ॥  
मरघट लौं सब लोग कुदूँव मिलि, हंस अकेल जाइ ॥

वहि सुत वहि नित वहि पुर पाठन, बहुरि न देखै आइ ।

कहत कवीर भजन बिन बंदे, जनस अकारथ जाइ ॥

( १३ )

ओर बनिजरता लादे जाय, मैं तो देखतु न पौल्यै ॥  
करस कै सेर धरम कै पलरा, बैल पचीस छदाय ॥  
भूल गई है सुमारग पैड़ा, कोइ नहिं देत बताय ॥  
माया पापिन गरिया, विपति न कहिये रोय ॥  
जो माया होती नहीं, विपति कहते होय ॥  
माया काली नापिनी, जिन दसिया संसार ॥  
एक छस्यै ना साध जन, जिन के नाम अधार ॥  
मंगन से क्या माँगिये, दिन माँगी जो देय ॥  
कहै कवीर मैं हैं वाहि को, होनी होय सो होय ॥

( १४ )

खलक सब रैन का सपना । समझ मन कोइ नहीं अपना ॥  
कठिन है मोह की धारा । वहा सब जात संसारा ॥  
षड़ा ज्यों नीर का पूटा । पन ज्यों दार से दूटा ॥  
ऐसे नर जात जिंदगानी । अजहूँ तो चेत अभिमानी ॥  
निरक्षि भत भूल तन गोरा । जरात मैं जीकना धोरा ॥  
तजो मद लोभ चतुराई । रहो निःसंक जग माही ॥  
सजन परिवार सुत दाया । सभी इक रोज है न्याया ॥  
निकमि जब प्रान जावेगे । कोई नहिं काम अवेगे ॥  
सदा जिनि जान यह देही । लगा ले नाम से नेही ॥  
कहत कवीर अविनासी । लिये जम काल की फौसी ॥

( १५ )

अब कहै चले अकेले यीता, उटि क्यों करहु न घर की चीता ॥  
खीर खाँड़ पृत मिंड सँवारा, सो तन लै शाहर करि डारा ॥  
जेहि सिरचि-रचि वाँचि सुपागा, सो लिररतन विडारै कागा ॥  
हाड़ बरै जस शुली लकड़ी, केस जै जस वुन की कड़ी ॥  
आवत संग न जात मैंचाती, कहा भये दल बाँधे हायी ॥  
माया कै रस लेन न पाया, अंतर निलार होइ के धाया ॥  
कहै कवीर न अजहूँ जागा, जम का मुँगग वरयन लागा ॥

( १६ )

जनम तेरो धोखे मैं यीता जाय ॥  
माटी कै गोद हंस बनिजारा, उटिये पंछी बोलनहारा ॥  
चार पहर धंधा मैं यीता, तेन बाय मुख सोवत धाय ॥  
जस अंशुल जल छीजित देया, तेसे झग्गे तरवर पात ॥  
भौमारग मैं केहि गुहाँधो, उटि जीम जम मारे लात ॥  
कहै कवीर दुनो भाई साधो, किरि परिताही मल-मल धाय ॥

नाम सनेही जब मिलै, तब ही सजु पावै ।  
 अजर अमर घर ले चलै, भव-जल नहि आवै ॥  
 यहां पानी दरियाव का, दूजा न कहावै ।  
 हिल मिल एको है रहै, सतगुरु समुदावै ॥  
 दास कवीर विचारि कै, कहि कहि जतलावै ।  
 आपा मिटि साहिव मिलै, तब वह घर पावै ॥

( ३ )

भजि ले मिरजनहार, सुधर तन पाइ कै ॥  
 कहै रहै अचेत, कहाँ वह औसर पैहै ।  
 किर नहिं ऐसी देह, वहुरि पाछे पछितैहै ॥  
 लख चौरासी जोनि मे, मानुष जनम अनूप ।  
 ताहि पाइ नर चेतत नाहिं, कहा रंक कहा भूप ॥  
 गर्भदास में रहो कहो, मैं भजिहैं तोहीं ।  
 निसदिन सुमिरी नाम, कष्ट से काढ़ो मोहीं ॥  
 चरनन ध्यान ल्याइकै, रहै नाम लौ लाय ।  
 तनिक न तोहिं विसारिहौं, यह तन रहै कि जाय ॥  
 हतना कियौं करार, काढ़ि गुरु बाहर कीन्हा ।  
 भूलि गयौं वह बात, भयौं भाया आधीना ॥  
 भूर्ली बातें उदर की, जानि पढ़ी सुषि एत ।  
 बाल्कपन वीस्तौ बृथा, चलत फिरत अचेत ॥  
 विषया बान समान, देह जोवन मद माते ।  
 चलत निहारत छाँह, तमक के बोलत बातें ॥  
 चोवा-चंदन लाह कै, पहरे बसन रँगाय ।  
 गली-गली शाँकत फिरे, परतिय लखि मुसकाय ॥  
 तकनापन गइ बीत, बुदापा आन तुलाने ।  
 काँपन लागो सीस, चलत दोउ चरन पिराने ॥  
 नैन-नाक चूबन लगो, मुख तैं आवत बास ।  
 कफ-पित वेरे कंठ सब, छुटि गइ घर की आस ॥  
 मातु पिता सुत नारि, कहै का के सँग जाई ।  
 तन धन धर औ काम धाम, सब ही छुटि जाई ॥  
 आखिर काल घसीटहै, परिहौं जम के फंद ।  
 बिन सतगुरु नहिं बाच्चिहौं, समुद्दि देख मतिमंद ॥  
 सुफल होत यह देह, नैह सतगुरुओं कीजै ।  
 मुक्ती मासग जानि, चरन सतगुरु चित दीजै ॥  
 नाम गहौं मिरभय रहै, तनिक न व्यापै पीर ।  
 यह लीला है मुक्ति की, गावत दास कवीर ॥

( ४ )

नाम-लग्न छूटै नहीं, सोइ साधु सयाना हो ॥  
 माटी को बरतन बन्यो, पानी लै साना हो ।  
 बिनकत बार न लाशिहै, राजा क्या रसा हो ॥  
 क्या सराय का बासना, सब लोग बेगाना हो ।  
 होत भोर सब उठि चले, दूर देस को जाना हो ॥  
 आठ पहर सन्मुख लड़ै, सो वाँधि बाना हो ।  
 जीत चला भवसागर सोइ, सूरा मरदाना हो ॥  
 सतगुरु की तेबा करै, पावै परवाना हो ।  
 कहै कवीर धर्मदास से, तेहि काल डेरना हो ॥

( ५ )

सुमिरन करि ले, नाम सुमिर ले, को जानै कल की  
 जगत में खबर नहीं पल की ॥  
 शूद्र-कपट करि भाया जोरिन, बात करै छल की ।  
 पाप की पोट धरे सिर ऊपर, किस विधि है हलकी ॥  
 यह मन तो है हस्ती मस्ती, काया मझी की ।  
 साँस-साँस में नाम सुमिरि ले, अवधि घटै तन की ॥  
 काया अंदर हंसा बोलै, खुसियाँ कर दिल की ।  
 जब वह हसा निकरि जाहिंगे, मझी जंगल की ॥  
 काम कोध मद लोभ निकारो, चाल यह अस्तल की ।  
 ज्ञान बैराग दया मन रखो, कहै कवीर दिल की ॥

( ६ )

मन रे अब की बेर सम्हारो ।

जन्म अनेक दगा में खोये, बिन गुरु बाजी हारो ॥  
 बालापने ज्ञान नहिं तन में, जब जनमो तब यारो ।  
 तहनाई सुख बास में खोयो, बाज्यो दूस-नारो ॥  
 सुत दारा मतलब के साथी, तिन को कहत दमारो ।  
 तीन लोक औ भवन चतुरदस, सब हि काल को जारो ।  
 पूर रही आदीस गुरु तन, वासे रहो नियरो ।  
 कहै कवीर सुनो भाई साधो, सब षट देखनहरो ॥

( ७ )

मन करि ले साहिव से प्रीत ।

सरन आये सो सब ही उत्तरे, ऐसी उन की रीत ॥  
 सुंदर देह देखि मत भूलो, जैसे तृन पर आय ।  
 काँची देह गिरे आदिर की, द्याँ बाल की भीत ॥  
 ऐसो जन्म बहुर नहिं पैद्हा, जात उमिरि यह दीर ।  
 दास कवीर चढ़े गढ़ ऊपर, देव नामग रीत ॥

( ८ )

समुझ देख मन मीत पियारे, आसिक होकर सोना क्यारे ॥  
खुबा सूखा राम का दुकड़ा, चिकना और सलोना क्यारे ।  
पाथा हो तो दे ले प्यारे, पाथ-पाथ फिर खोना क्यारे ॥  
जिन अँखन में नीद धनेरी, तकिया और बिछौना क्यारे ।  
कहै कवीर सुनो भाई साधो, सीस दिया तब रोना क्यारे ॥

( ९ )

है कोई भूल मन समुझावै ।

या मन चंचल चोर हेरि लो, छूटा हाथ न आवै ॥  
जेरि-जोरि धन गहिरे गाड़े, जहँ कोइ लेन न पावै ।  
कंठ का पौल आइ जम धेरे, दै-दै सैन बतावै ॥  
खोय दाम गाँठ ले वाँधै, बड़ि-बड़ि वस्तु भुलावै ।  
बोय बबूल दाख फल चाहै, सो फल कैसे पावै ॥  
गुरु की सेवा साध की संगत, भाव-भगति बनि आवै ।  
कहै कवीर सुनो भाई साधो, बहुरि न भव-जल आवै ॥

( १० )

सतसँग लागि रहै रे भाई, तेरी विश्वरि बात बन जाई ॥  
दौलत-दुनियाँ माल-खजाने, बधिया बैल चराई ।  
जबहि काल के ढंडा बाजै, खोज-खबरि नहिं पाई ॥  
ऐसी भगति करौ घट भीतर, छाँड़ कपट-न्तुराई ।  
सेवा बंदगी अह अधीनता, सहज मिलै गुरु आई ॥  
कहत कवीर सुनो भाई साधो, सतगुर बात बताई ।  
यह दुनियाँ दिन चार दहाड़े, रहो अलख लौ लाई ॥

( ११ )

जब कोइ रतन पारखी पैहो, हीरा खोल भैजहै ॥  
तन को तुला सुरत्तकौ पलरा, मनकौ सेर बनैहै ।  
मासा पाँच पचीस रतीकौ, तोला तीन चढ़ैहै ॥  
अगम अगोचर वस्तु गुरु की, ले सरफ पै जैहै ।  
जहँ देख्यै संतन की महिमा, तहवाँ खोलि भैजहै ॥  
पाँच चोर मिलि धुसे महल में, इन से वस्तु छिपैहै ।  
जम राजा के कठिन दूत हैं, उन से आप बचैहै ।  
दया-धरम से पार उतरिहै, सहज परम फल पैहै ।  
कहै कवीर सुनो भाई साधो, हीरा गाँठ लैहै ॥

( १२ )

चार दिन अपनी चले बजाइ ।  
उत्तनै खटिया, गड़िले मटिया, संग न कछु लै जाइ ॥  
देहरी बैटी मेहरी रोवै, द्वारै लौ संग माइ ।  
मरघट लौ सब लोग कुँड़व मिलि, हंस अकेला जाइ ॥

बहि सुत बहि नित बहि पुर पाटन, बहुरि न देखै आह ।  
कहत कवीर भजन दिन ब्रंदे, जनम अकारथ जाइ ॥

( १३ )

सोर बनिजरवा लादे जाय, मैं तो देखहु न पौल्यै ॥  
करस कै सेर धरम कै पलरा, बैल पचीस लदाय ।  
भूल गई है सुमारग पैँड़ा, कोइ नहिं देत बताय ॥  
माया पापिन गर्विया, विपति न कहिये रोय ।  
जो माया होती नहीं, विपति कहाँते होय ॥  
माया काली नागिनी, जिन डसिया संसार ।  
एक डस्यो ना साध जन, जिन के नाम अधार ॥  
मंगन से कथा माँगिये, विन माँगे जो देय ।  
कहै कवीर मैं हैं वाहि को, होनी होय सी होय ॥

( १४ )

खलक सब रैन का सपना । समझ मन कोइ नहीं अपना ॥  
कठिन है मोह की धारा । वहा सब जात संसार ॥  
धड़ा ज्यों नीर का फूटा । पत्र ज्यों हार से दूटा ॥  
ऐसे नर जात जिंदगानी । अजहुँ तौ चेत अभिमानी ॥  
निरखि भत भूल तन गोरा । जगत मैं जीकना योरा ॥  
तजो मद लोभ चतुराई । रहो निःसंक जग माहो ॥  
सजन परिवार सुत दारा । सभी इक रोज है न्यारा ॥  
निकमि जब प्रान जावेंगे । कोई नहिं काम आवेंगे ॥  
सदा जिनि जान यह देही । लगा ले नम से नेही ॥  
कहत कवीर अविनासी । लिये जम काल की फाँसी ॥

( १५ )

अब कहै चलेअकेले मीता, उठि क्यों करहु न धर की चीता ॥  
खीर खाँड़ धूत पिंड सँवारा, सो तन लै बाहर करि डारा ॥  
लेहि सिररच्च-रच्च बाँचि सुपागा, सो सिरशतन बिडारै कागा ॥  
हाङ जैरे जस सूखी लकरी, केस जरै जस तून की कूरी ॥  
आवत संग न जात सँधाती, कहा भये दल वाँधि हाथी ॥  
माया कै रस लेन न पाया, अँतर बिलार होइ के धाया ॥  
कहै कवीर न अजहुँ जागा, जम का मुँगरा वरसन लागा ॥

( १६ )

जनम तेरो धोखे मैं वीता जाय ॥  
माटी कै गोंद हंस बनिजारा, उड़िगे पंछी बोलनहारा ॥  
चार पहर धंधा मैं वीता, रैन गँधाय सुख मोवत खाट ॥  
जस अंजल जल द्वीजत देन्वा, तैसे शरिगे तरबर पात ॥  
भौसागर मैं केहि गुहरेको, ऐष्ठि जीभ जम मोरे लात ॥  
कहै कवीर सुनो भाई साधो, फिर पछितहै भल-भल हाथ ॥

नाम सनेही जब मिलै, तब ही सचु पावै।  
अजर अमर घर ले चड़ै, भव-जल नहि आवै॥  
ज्यों पानी दरियाव का, दूजा न कहावै।  
हिल मिल एकौ है रहै, सतगुर समृद्धावै॥  
दास कवीर शिर्चारि कै, कहि कहि जतलावै।  
आपा मिटि साहिव मिलै, तब वह घर पावै॥

( ३ )

भजि ले मिस्जनहार, सुवर तन पाइ कै॥  
काहै रहौ अचेत, कहौं यह औसर पैहौ।  
फिर नहि ऐसी देह, बहुरि पछे पछितैहौ॥  
लद चौरासी जोनि मै, मानुष जनम अनूप।  
ताहि पाइ नर चेतत नाहीं, कहा रंक कहा भूप॥  
गर्भवास मै रहो कहो, मै भजिहौं तोहौं।  
निखदिन सुमिरौं नाम, कष से कढ़ो मोहौं॥  
चरनन ध्यान लगाइकै, रहौं नाम लौ लाय।  
तनिक न तोहि बिसारहौं, यह तन रहै कि जाय॥  
इतना कियौं करार, काढि गुर बाहर कीहा।  
भूलि गयौं वह बात, भयौं माया आधीना॥  
भूली बातैं उदर की, आनि पड़ी सुधि एत।  
बालकपन बीत्यौं बृथा, खेलत फिरत अचेत॥

विषया बान समान, देह जोवन मद माते।  
चलत निहारत छाँह, तमक के बोलत बातें॥  
चोवा-चंदन लाह के, पहिरे बसन रँगाय।  
गली-गली झाँकत फिरे, परतिय लखि सुसकाय॥  
तरनापन गइ बीत, बुढ़ापा आन तुलाने।  
काँपन लगो सीस, चलत दोउ चरन पिराने॥  
नैन-नाक चूकन लगो, मुख तैं आवत बास।  
कफ-पित वेरे कंठ सब, छुटि गइ घर की आस॥

मातु पिता सुत नारि, कहौं का के सँग जाई।  
तन धन घर औं काम धाम, सब ही छुटि जाई॥  
आखिर काल धसीठहै, परिहौ जम के फंद।  
विन सतगुर नहि बाच्चिहौं, समृद्धि देख मतिमंद॥  
सुफल होत यह देह, नेह सतगुरसों कीजै।  
मुझी मारण जानि, चरन सतगुर चित दीजै॥  
नाम गहौं निरभय रहौं, तनिक न व्यापै पी।

( ४ )

नाम-ल्यन छूटै नहीं, सोइ साधु तयार  
माटी को बरतन बन्यो, पानी लै साना  
बिनसत बार न लागिहै, राजा क्या राजा  
क्या सराय का बासना, सब लोग बेगना  
होत भोर सब उठि चले, दूर देस को जाना  
आठ पहर सन्मुख लड़ै, सो बँधै बाना  
जीत चला भवसागर सोइ, सूरा मरदाना  
सतगुर की सेवा करै, पावै परखाना  
कहै कवीर धर्मदास से, तेहि काल डेराना

( ५ )

सुमिरन करि ले, नाम सुमिरले, को जानै कल १  
जगत मैं खबर नहीं पल की॥  
झूट-कपट करि माया जोरिन, बात करै छल के  
पाप की पोट धरे सिर ऊपर, किस विधि है इलक  
यह मन तो है हस्ती मस्ती, काया मट्ठी व  
साँस-साँस मैं नाम सुमिरि ले, अवधि घटै तन की  
काया अंदर हंसा बौलै, खुसियाँ कर दिल के  
जब वह हंसा निकरि जाहिंगी, मट्ठी जंगल की  
कायम क्रोध मद लोभ निवारो, बात यह अस्मल की  
ज्ञान वैराग दया मन राखो, कहै कवीर दिल की

( ६ )

मन रे अब की बेर सम्हारो !

जन्म अनेक दगा मैं खोयै, विन गुर बाजी हारो।  
बालापने ज्ञान नहि तन मैं, जब जनमो तब बारो।  
तरहाई सुख बास मैं खोयो, बाज्यो कूच-नगारो॥  
सुत दरा मतलन के साथी, तिन को कहत हमारो॥  
तीन लोक औं भवन चतुरदम, सब हि काल को चारो॥  
पूर रहो जगदीस गुरु तन, बारे रहो नियारो॥  
कहै कवीर सुनो भाई साथो, सब घट देवनदारो॥

( ७ )

मन करि ले साहिव से ग्रीत !  
उत्तर आये सो सब ही उत्तरे, ऐसी उन की गति॥  
सुंदर देव देखि मत भूलो, जैसे तृत गर गति॥  
कँची देह गिरे आखिर को, ज्यों बाह की गति॥  
ऐसो जन्म बहुरि नहि पैदी, जात उमिरे सब दै॥

( ८ )

देख मन मीत पियारे, आसिक होकर सोना क्यारे ॥  
खूबा राम का दुकड़ा, चिकना और सलोना क्यारे ।  
ही तो दे ले प्यारे, पाथ-पाय किरखोना क्यारे ॥  
भाँखन में नींद धनेरी; तकिया और विछौना क्यारे ।  
वहार सुनो भाई साधो, सीस दिया तवरोना क्यारे ॥

( ९ )

है कोई भूला मन समुझावै ।

मन चंचल चोर हैरि लो, छूटा हाथ न आवै ॥  
जोरि धन गहिरे गाड़े, जहँ कोइ लेन न पावै ।  
का पौल आइ जम धेरे, दैदै सैन बतावै ॥  
ग दाम गाँठे ले वाँधे, बड़िबड़ि वस्तु भुलावै ।  
बबूल दाल फल नहै, सो फल कैसे पावै ।  
की सेवा साध की संगत, भाव-भगति बनि आवै ।  
कवीर सुनो भाई साधो, वहुरि न भव-जल आवै ॥

( १० )

त्रृणग लागि रहौ रे भाई, तेरी विश्वारि बात कन जाई ॥  
लत-दुनियाँ माल-खजाने, वधिया बैल चराई ।  
बाहि काल के डडा बाजै, खोज-खबरि नहि पाई ॥  
सी भगति करौ घट भीतर, छाँड़ कपट-चतुराई ।  
बा बंदगी अरु अधीनता, सहज मिलै गुरु आई ॥  
कहत कवीर सुनो भाई साधो, सतगुरु बात बताई ।  
यह दुनियाँ दिन चार दहाड़े, रहो अलख लौ लाई ॥

( ११ )

जब कोइ रतन पारखी पैहो, हीरा लोल भैजहै ॥  
तन को तुला सुरतकौ पलथा, मनकौ सेर बनैही ।  
मासा पाँच पञ्चीस रतीकौ, तोला तीन चढ़है ॥  
अग्रम अग्रोचर बस्तु गुरु की, ले सराफ पै लैहै ।  
जहँ देख्यौ संतन की महिमा, तहवाँ खोलि भैजहै ॥  
पाँच चोर मिलि धुसे महल में, इन से वस्तु छिपैहै ।  
जम राजा के कठिन दूत हैं, उन से आप बचैहै ।  
दया-धरम से पार उतरिहै, सहज परम फल पैहै ।  
कहै कवीर सुनो भाई साधो, हीरा गाँठि ल्यैहै ॥

( १२ )

चार दिन अपनी चले बजाई ।

उतानै खटिया, गडिले मरिया, संग न कछु लै जाइ ॥  
देहरी बैठी मेहरी रोवै, द्वारे लौं सँग माइ ।  
मरघट लैं सब लोल कुद्दून मिलि, हंस अकेला जाइ ॥

बहि सुत बहि बित बहि पुर पाटन, नहुरि न देखै आइ ।

कहत कवीर भजन दिन धंदे, जनम अकारण जाइ ॥

( १३ )

मोर बनिजरवा लादे जाय, मैं तो देखहु न पौल्यौ ॥  
करम के सेर धरम के पलरा, बैल पञ्चीस लदाय ।  
भूल गई है सुमारा पैङ्गा, कोइ नहिं देत धताय ।  
माया पापिन गर्विया, विपति न कहिये रोय ।  
जो माया होती नहीं, विपति कहते होय ॥  
माया काली नागिनी, जिन डसिया संसार ।  
एक डस्यौ ना ताय जन, जिन के नाम अधार ॥  
मंगन से बया माँगिये, विन माँगे जो देय ।  
कहै कवीर मैं हैं बाहि को, होनी होय से होय ॥

( १४ )

खलक सब रैन का सपना । समझ मन कोइ नहीं अपना ॥  
कठिन है मोह की धारा । वहा सब जात संसारा ॥  
धड़ा ल्यौ नीर का धूटा । पञ्च ल्यौ ढार से धूटा ॥  
ऐसे नर जात जिंदगानी । अजहुँ तौ चेत अभिमानी ॥  
निराखि मत भूल तन गोरा । जगत में जीवना धोरा ॥  
तजो मद लोम चतुराई । रहो निःसंक जग सार्ही ॥  
सजन परिवार सुत दारा । सभी इक रोज ढै न्याय ॥  
निकासि जब प्रान जावेगे । कोई नहि काम आवेगे ॥  
सदा जिनि जान यह देही । ल्या ले नाम से नेही ॥  
कहत कवीर अविनासी । लिये जम काल की काँसी ॥

( १५ )

अब कहँ चले अकेले मीता, उठि क्यों करहु न धर की चीता ॥  
खीर खाँड़ धूत पिंड सँवारा, सो तन लै बाहर करि डारा ॥  
जेहि सिररचि-रचि बौचि सुपाणा, सो किररसन बिडारै काणा ॥  
हाड़ जरै जस सूखी लकरी, केस जरै जस तुन की कूरी ॥  
आबत संग न जात सँधाती, कहा भये दल बौधे हाथी ॥  
माया कै रस लेन न पाया, अंतर विलार होइ के धाया ॥  
कहै कवीर न अजहुँ जाना, जम का मुँगरा वरसन लागा ॥

( १६ )

जनम तेरो धोखे मैं बीता जाय ॥

माटी के गोंद हंस धनिजारा, उडिगे पंछी बोलनहारा ॥  
चार पहर धंधा मैं बीता, रैन गँवाय सुख सोवत खाइ ॥  
जस अंजुल जल छीजत देखा, तैसे झरिये तरबर पात ॥  
भौसागर मैं केहि गुहरैयो, ऐंठि जीभ जम मारे लात ॥  
कहै कवीर सुनो भाई साधो, फिरि पछितैहै मल-मल हाय ॥

( १७ )

जेत सवेरे नलमा बाट ॥

मन गाली तन थाग लगाया, चलत मुमापित को विलमाया ।  
निधि के लेलुवा देत लियाई, दृट लीन्ह मारग पर हाट ॥  
तन थगथ मैं मन अड़ाना, भियारिन के रूप लुभाना ।  
निमि दिन दासे खचि के रदना, सौदा कर सतगुर की हाट ॥  
मन के घोड़ा लिये बनाई, सुरत लगाम ताहि पहिराई ।  
जुगति के एझ छिये लगाई, भौमागर के चौड़ा पाट ॥  
जल्दी चतों, यादिव सुमिरी, दसों दार जम देर लियौ है ।  
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जम का सोवै विछाये खाट ॥

( १८ )

जनम विरान, भजन कथ करिहै ॥

गर्भ-वासमें भगति कबूल्यौ, याहर आय भुलान ।  
बालामन लो खेल मैवायौ, तस्वाई अभिमान ॥  
बृद्ध भये तन काँसन लागा, सिर धुन-धुन पछितान ।  
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जम के हाय विकान ॥

( १९ )

चलना है दूर मुसाफिर, काहे सोवै रे ॥

चेत अनेत नर, सोच बावरे, बहुत नाई मत सोवै रे ।  
काम क्रोध मद लोभ मैं कैंसिकर, उमिरिया काहे खोवै रे ॥  
सिर पर माया-मोह की गठरी, संग दूत तेरे होवै रे ।  
सो गठरी तोरी दीन्ह मैंछिनि गइ, मूँड़ पकरि कहा रोवै रे ॥  
रस्ता तौ वह दूरी निकट है, तजि चलत अकेला होवै रे ।  
संग-साथ तेरे कोइ न चलैगा, का कै इगरिया जोवै रे ॥  
नदिया गहरी नव पुगानी, केहि विधि पर तू होवै रे ।  
कहै कबीर सुनो भाई साधो, व्याघ खोले मूल मत सोवै रे ॥

( २० )

या जग अंधा मैं केहि समझावौं ॥

इक दुइ होयै उन्है समझावौं ।

सबहि भुलाना पेठ के धंधा ॥ मैं केहि० ॥

पानी कै घोड़ा पवन असवरवा ।

हरकि परे जस ओस कै बुंदा ॥ मैं केहि० ॥

गहरी नदिया अगम वहै धरवा ।

खेबनहारा पड़िगा कंदा ॥ मैं केहि० ॥

धर की वस्तु निकट नहै आवत ।

दियना बारि कै हूँडत अंधा ॥ मैं केहि० ॥

लारी आग, सकल बन जरिगा ।

विन गुरु-शन भटकिगा बंदा ॥ मैं केहि० ॥

कहै कबीर सुनो भाई साधो ।

इक दिन जाइ लँगोटी क्षार बंदा ॥ मैं केहि० ॥

( २१ )

जाया सराय मैं जीव मुसाफिर, कहा करत उनमाद रे ।  
रैन बदेरा बरि ले डेरा, चला सबैरे लाद रे ॥  
तन कै चोला लरा अमोल, ल्या दाग पर दाग रे ।  
दोदिनकी जिंदगानी मैं क्या, जरै जगत की आग रे ।  
क्रोध कैचुली उठी चित्त मैं, भये मनुष तें नाग रे ।  
सूक्ष्म नाहि समुद्र सुख सागर, बिना प्रेम दैरग रे ॥  
सरवन सबद बूँझि सतगुर से, पूरन प्राप्ते भाग रे ।  
कहै कबीर सुनो भाई साधो, पाया अचल सुहाग रे ॥

( २२ )

‘हे ! करि के आप निवेरा ।

आप चेत लख आप ठैर कर, सुए कहाँ धर तेरा ॥  
थहि औसर छहि चेतो श्रानी, अंत कोई नहि तेरा ।  
कहै कबीर सुनो भाई साधो, कठिन काल का भेरा ॥

( २३ )

भजन बिन यौं ही जनम गँवाये ॥

गर्भ बास मैं कौल कियो तैं, तथ तोहि बाहर लायो ।  
लठर अग्नित तैं काढि निकारो, माँडि बौंधि बया लायो ॥  
बह-बह मुझे बैल की नाई, सोइ रखो उठि लायो ।  
कहै कबीर सुनो भाई साधो, चौरासी भरमायो ॥

( २४ )

का नर सोबत मोह निसा मैं, जागत नाहि कूच नियराना ॥  
पहिले नगरा सेत केस मे, दृजे बैन सुनत नहि काना ॥  
तीजे नैन हाहि नहि सूझै, चौथे आइ गिरा परवाना ॥  
मातु-पिता कहना नहि मानै, विजन से कीदा अभिमाना ॥  
धरम की नाव चढ़न नहि जानै, अब जमराज ने मेद बलाना ॥  
होत पुकार नगर कसबे मैं, रैयत लोग सबै अकुलाना ॥  
पूरन ब्रह्म की होत तशारी, अंत भवन विच्च प्रान छुकाना ॥  
प्रेम-नगरिया ने हाट लगतु है, जहँ रँगोज़ा हैं सतनाना ॥  
कहै कबीर कोइ काम न ऐहै, माटी कै देहिया माटी मिल जाना ॥

( २५ )

अरे दिल गाफिल ! गफलत मत कर,

इक दिन जम तेरे आवेग ॥

सौदा करन को या जग आया, पूँजी लाया मूल गँवाया ।  
प्रेम-नगर का अंत न पाया, दर्यों आया तर्ही जदैगा ॥

सुन मेरे साजन, सुन मेरे मीता, या जीवन में क्या-क्या कीर्ता, सिर पाहन का बोझा लीता, आगे कौन छुड़ावेगा ॥ परली पार सेरा भीता खड़िया, उस मिलने का ध्यान न धरिया, दूधी नाव उपर जा बैठा, गाफिल गोता खावेगा ॥ दास कवीर कहै समुझाई, अंत काल तेरो कौन सहाई, चल अकेला संग न कोई, किया आपना पावेगा ॥

( २६ )

तेरो को है रोकनहार, मगन से आव चली ॥ लोक लाज कुल की मर्जदा, सिर से ढारि अली । पटक्यो भार मोह-माया कौ, निरभय राह गही ॥ काम क्रोध हंकार कल्पना, दुरमति दूर करी । मान-अभिमान दोऊ धर पटके, होइ निसंक रली ॥ पाँच-पचीस करे बस अपने, करि गुह ज्ञान छड़ी । अगल-बगल के मारि उड़ाये, सनसुख डगर धरी ॥ दया-धर्म हिरदै धरि राख्यो, पर उपकार बड़ी । दया सरूप सकल जीवन पर, ज्ञान गुपान भरी ॥ छिमा सील संतोष धीर धरि, करि सिंगार खड़ी । भई हुलास मिली जब पिय को, जगत विसारि चली ॥ चुनरी सबद बिवेक पहरिकै, धर की खबर परी । कपट-किवरियाँ खोल अंतर की, सतगुरु मेहर करी ॥ दीपक ज्ञान धरे कर अपने, पिय को मिलन चली । विहसत बदन रु मगन छवीली, ज्यों फूली कमल-कली ॥ देख पिया को रूप मगन भइ, आनंद प्रेम भरी । कहै कवीर मिली जब पिय से, पिय हिय लागि रही ॥

( २७ )

नाम अमल उत्तरै ना भाई ।  
और अमल छिन-छिन चढ़ि उत्तरै, नाम-अमल दिन बढ़ै सबाई ॥  
देखत चढ़ै, सुनत हिय लागै, सुरत किये तन देत धुमाई ।  
पियत पियाला भये भतवाला, पायौ नाम मिटी, दुचिताई ॥  
जो जन नाम-अमल-रस चाखा, तर गइ गनिका सदन कसाई ।  
कहै कवीर गैरे गुह खाया, बिन रसना क्या करै बड़ाई ॥

( २८ )

नित मंगल होरी खेलो, नित बसंत नित फाग ॥  
दया-धर्म की केसर घोरो, प्रेम प्रीति पिन्चकार ।  
भाव-भगति से भरि सतगुरु तन, उम्मेंग रँग डार ॥  
छिमा अवीर चरन्च चित नंदन, सुभिरन-ध्यान धमर ।  
शन गुलाल, अगर कस्तूरी सुफल जनम नरनार ॥

चरनामृत परसाद चरन-रज, अपने सीस चढ़ाव ।  
लोक-लाज, कुल-कान छाडि कै, निरभय निमान बजाव ॥  
कथा-कीरतन मँगल महोछव, कर माधन की भीर ।  
कभी न काज विगरहै तेरो, सत-सत कहत कवीर ॥

( २९ )

मन ! तोहिं नाच ननावै माया ॥

आसा-डोरि लगाइ गले निच, नट जिमि कपिहि ननाया ।  
नावत सीम फिरै सबही को, नाम सुरत विसरावा ॥  
काम हेतु तुम निमि-दिन नाचे, का तुम भरम भुलाया ।  
नाम हेतु तुम कर्वहु न नाचे, जो निरजल तोरी काया ॥  
ध्रुव-ग्रहलाद अचल भये जासे, राज विभीषन पाया ।  
अजहूँ चेत हेत कर पिठ से, हे रे निलज बेहाया ॥  
सुख-संपति मब्र माज बड़ाई, लिखि तेरे साय पटाया ।  
कहै कवीर सुनो भाई सायो, गनिका विमान चढ़ाया ॥

( ३० )

दुविधा को करि हूर, धनी को सेब रे ।  
तेरी भौतागर में नाव, सुरत से खेब रे ॥  
सुमिरि-सुमिरि गुरु-नाम, चिरंजिव जीव रे ।  
नाम-खाँडि बिन भोल, धोल कर पीव रे ॥  
काया में नहिं नाम, गुरु के हेत का ।  
नाम बिना बेकाम, मटीला खेत का ॥  
ऊँचे बैठि कचहरी, न्याव चुकावते ।  
ते माटी मिलि गये, नजर नहिं आवते ॥  
दू माया धन धाम, देखि मत धूल रे ।  
दिना चार का रंग, मिलैगा धूल रे ॥  
धार-धार नर-देह, नहीं यह धीर रे ।  
चेत् सकै तो चेत, कहै कब्वीर रे ॥  
यह कलि ना कोइ अपनो, का संग बोलिये रे ।  
ज्यों मैदानी रुख, अकेला ढोलिये रे ॥  
माया के मद माते, सुनैं नहिं कोइ रे ।  
क्या राजा क्या रंक, बियकुल दोई रे ॥  
माया का विस्तार, रहै नहिं कोई रे ।  
ज्यों पुरहनि पर नीर, थीर नहिं होई रे ॥  
विष बोयो संसार, अमृत कस पावै रे ।  
पुरव जन्म तेरो कीन्ह, दोस कित लावै रे ॥  
मन आवै मन जावै, मनहिं बटोरो रे ।  
मन झुइवै मन तारै, मनहिं निदोरो रे ॥  
कहै कवीर यह मंगल, मन समझावो रे ।  
समझि के कहों पयाम, बहुरि नहिं आवो रे ॥

( ३१ )

तोरी गठरीमें लगे भोर, बटोहिया का सोवै ॥  
 पाँच पनीस तीनहै चुरवा, यह सब कीन्हा सोर ।  
 जामु भवेरा बाट अनेरा, पिर नहिं लागै जोर ॥  
 भवसागर इक नदी बहुतुहै, विन उतरे जाव घोर ।  
 कहै कवीर सुनो भाई साधो, जागत कीजै भोर ॥

( ३२ )

कौनी ट्रगवा नगरिया छूटल हो ।

चंदन काठ कै बनल खटोलना, तापर दुलहिन सूतल हो ॥  
 उठो गी सखी मोरी मांग सँवारी, दुलहा मों से रुठल हो ।  
 आये जमराज पलेंग चढ़ि बैठे, नैनन अँसुआ दूटल हो ॥  
 चारिजने मिलि खाट उठाइन, चहुँदिसि धू-धू ऊठल हो ।  
 कहत कवीर सुनो भाई साधो ! जग से नाता छूटल हो ॥

( ३३ )

नैहरवा हम को न भावै ॥

साँझकी नगरि परम अति सुंदर, जहै कोई जाय न आवै ।  
 चांद सूरज जहै पवन न पानी, को सँदेस पहुँचावै ॥  
 दरद यह साई को सुनावै ॥ नैहर० ॥

आगे चलौ पंथ नहि सूझै पाले दोष लगावै ।  
 केहि विधि मसुरे जाउं मोरी सज्जनी, विरहा जोर जनावै ॥  
 विषेस नाच नचावै ॥ नैहर० ॥  
 विन सतगुर अपनो नहि कोई, जो यह राह बतावै ।  
 कहत कवीर सुनो भाई साधो, सुपने न पीतम पावै ॥  
 तपन यह जिय की बुझावै ॥ नैहर० ॥

( ३४ )

धूघट का पट खोल री,  
 तोहे पील मिलेंगे ॥ -

धट-धट सभता राम रमैया,  
 कटुक बचन मत बोल री ॥ तोहे० ॥

रंग महल में दीप वरत है,  
 आसन से मत ढोल री ॥ तोहे० ॥

कहत कवीर सुनो भाई साधू,  
 अनहद बाजत ढोल री ॥ तोहे० ॥

( ३५ )

आई गँवनवाँ की सारी, उमिर अब ही मोरि बारी ॥ टेक॥  
 साज-नमाज पिया लै आये, और कहरिया चारी ।  
 बहना बेदरदी अँचरा पकरि कै, जोरत गठिया हमारी ॥  
 सखी सब पारत गारी ॥ आई० ॥

विधि गति शाम कहु ममुक्षि परति ना, बैरी भई महतारी ।  
 रोय-रोय अँसियाँ मोरि पौँछत, धरवा सो देत निकारी ॥

भई सब को हम भारी ॥ आई० ॥  
 गैन कराय पिया लै चालै, इत-उत बाट निहारी ।  
 छूटत गँवनगर सो नाता, छूटे महल-अटारी ॥

करम-गति टैरे न दरी ॥ आई० ॥  
 नदिया किनारे बलम भोर रसिया, दीन्ह धूँघट पट दारी ।

थरथराय तनु काँपन लगे, काहु न देख हमारी ॥  
 पिया लै आये गोहारी ॥ आई० ॥

कहत कवीर सुनो भाई साधो, यह पद लेहु विचारी ।  
 अब के गैना बहुरि नहि औना, करि ले मेंट अँकवारी ॥

एक बेर मिलि ले व्यारी ॥ आई० ॥

( ३६ )

हमकाँ ओढ़ावै चदरिया, चलती विरियाँ ॥  
 प्रान राम जब निकसन लागे, उलटि गई दोउ नैन पुतरिया ।  
 भीतर से जब बाहर लाये, छूटि गई सब महल-अटरिया ॥  
 चार जने मिलि खाट उठाइनि, रोवत लै चले डगर-डगरिया ।  
 कहत कवीर सुनो भाई साधो, संग चली वह सुखी लकरिया ॥

( ३७ )

हसन है इश्क मस्ताना, हमन को होसियारी क्या ।  
 रहै आजाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या ॥  
 जो बिछुइ है पियरे से, भटकते दर-बदर फिरते ।  
 हमारा यार है हम में, हमन को इन्तजारी क्या ॥  
 खलक सब नाम अपने को, बहुत करसिर पटकता है ।  
 हमन गुरु-नाम सौंचा है, हमन दुनिया से यारी क्या ॥  
 न पल बिछुइ पिया हम से, न हम बिछुइ पियरे से ।  
 उन्हीं से नेह लगी है, हमन को बेकरारी क्या ॥  
 कवीर इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से ।  
 जो चलना राह नाजुक है, हमन तिर बोझ भारी क्या ॥

( ३८ )

मन लगो भेरो यार फकीरी मैं ॥  
 जो सुख पावै नाम भजन मैं, सो सुख नाहिं अमीरी मैं ॥  
 भली-बुरी उब की सुनि लीजै, कर गुजरान गरीबी मैं ॥  
 प्रेम-नगर मैं रहनि हमारी, भलि दृनि आई गवूरी मैं ॥  
 हाथ मैं कँडी बगल मैं सोंटा, जारो दियि जामीबी मैं ॥  
 आखिर यह तन खाक मिलैगा, कहा फिरत मगरुरी मैं ॥  
 कहै कवीर सुनो भाई साधो, साहिय मिलै गवूरी मैं ॥

( ३९ )

हरि जननी मैं बालक तेरा, काहे न औगुन वक्स हु मेरा ॥  
सुत अपराध करै दिन केते, जननी के चित रहै न तेते ॥  
कर महिं केस करै जौधाता, तऊ न हेत उतारै माता ॥  
कहै कबीर एक बुद्धि विचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥

( ४० )

अब मोहि राम भरोसा तेरा ।  
और कौन का करौं निहोरा ॥  
जा के राम सरीखा साहिव भाई ।  
सो क्यूँ अनत पुकारन जाई ॥  
जा सिरि तीनि लोक कौ भारा ।  
सो क्यूँ न करै जन की प्रतिपारा ॥  
कहै कबीर सेवौ बनवारी ।  
सीचौ पेड़ पीवैं सब ढारी ॥  
हरि नामैं दिन जाइ रे जा कौ ।  
सोइ दिन लेखै लाइ राम ताकौ ॥

( ४१ )

हरि नाम मैं जन जागै, ता कै गोविंद साथी आगै ॥  
दीपक एक अभंगा, तामैं सुर-नर पड़ैं पतंगा ॥  
जँच नीच सस सरिया, तातैं जन कबीर निसतरिया ॥

( ४२ )

लोका जानि न भूलौ भाई ।  
खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई ॥  
अल्ला एक नूर उपजाया, ता की कैसी निंदा ।  
ता नूर तें सब जग कीया, कौन भला कौन मदा ॥  
ता अल्ला की गति नहीं जानी, गुरि गुड़ दीया मीठा ।  
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहिव दीठा ॥

( ४३ )

रे सुख अब मोहि बिष भरि लागा ।  
इनि सुख दृष्टके मोटे-मोटे, केतिक छत्रपति राजा ॥  
उपजै बिनचै जाइ बिलाई, संपति काहु कै संग न जाई ॥  
धन-जोवन गरव्यौ संसारा, यहु तन जरि-बरि है छारा ॥  
चरन-कँवल मन राखि ले धीरा, राम रमत सुख कहै कबीरा ॥

( ४४ )

चलत कत टेहौ-टेहौ रे ।  
नवौं दुवार नरक धरि मैंदे, तू दुरगंधि कौ बेहौ रे ॥  
जे जारै तौ होइ भस्म तन, रहि त किरम उहिं खाई ।

सूकर स्वान काग को भकिलन, ता मैं कहा भलाई ॥  
फूटे नैन दृदै नहि सूझै, मति एके नहि जानी ।  
माया मोह ममिता सूँ याँध्या, बूढ़ि मुचौ विन पानी ॥  
बाल के घरवा मैं वैटो, चेतत नहीं अयानी ।  
कहै कबीर एक राम भगाति विन, बूड़े वहुत सयानी ॥

( ४५ )

कहूँ रे जे कहिवे की होहि ।

ना कोउ जत्नै ना कोउ मानै, तातैं अचिरज मोहि ॥  
अपने-अपने रँगके राजा, मानत नहीं कोइ ।  
अति अभिमान-लोभ के धाले, चले अपनतौ द्वोइ ॥  
मैं-मेरी करि यहु तन खोयौ, समझत नहीं गँवार ।  
भौजलि अधेपक धाकि रहै, बूड़े वहुत अपार ॥  
मोहि अग्या दहै दयाल दया करि, काहू दूँ समझाई ।  
कहै कबीर मैं कहि-कहि हाँच्यौ, अब मोहि दोप न लाई ॥

( ४६ )

मन रे राम सुमिरि राम सुमिरि, राम सुमिरि भाई ।  
राम नाम सुमिरन विना, बूड़त अधिकाई ॥  
दरा-सुत गेहन्नेह, संपति अधिकाई ।  
या मैं कछु नाहिं तेरी, काल अवधि आई ॥  
अजामेल गज गनिका, पतित करम कीन्हा ।  
तेउ उतरि पारि गये, राम नाम लीन्हा ॥  
स्वान सूकर काग कीन्हौं, तऊ लाज न आई ।  
राम नाम अमृत छाड़ि, काहे विष खाई ॥  
तजि भरम-करम दिधि-नवेद, राम नाम लेही ।  
जन कबीर गुर-प्रसादि, राम करि सनेही ॥

( ४७ )

राम भजै सो जानिये, याकै आतुर नहीं ।  
संत संतोष लिये रहै, धीरज मन महीं ॥  
जन कौ काम-क्रोध व्यापै नहीं, जिज्ञा न जरावै ।  
प्रकुलित आनंद मैं रहै, गोविंद गुन गावै ॥  
जनकौ परनिंदा भावै नहीं, अरु असति न भावै ।  
जन सम द्रिष्टि सीतल सदा, दुविधा नहीं आनै ॥  
कहै कबीर ता दास सूँ, मेरा मन मानै ॥

( ४८ )

कहा नर गरवसि थोरी बात ।

मन दस नाज, टका चार गठिया, ऐहौ टेहौ जात ॥  
कहा लै आयौ यहौ धन कोऊ, कहा कोऊ लै जात ।  
दिवस चारि की है पतिथाही, ज्यूँ बनि हरियल पत्र ॥

राजा भयो, गाँव मौ पाये, टका लाख, दस प्रात ।  
रावण दोत लक वौ शतपति, पल मैं गई विहात ॥  
माता पिता लोक सुत बनिता, अति न चले संगात ।  
कहे कबीर राम भजि वैरि, जनम अकारथ जात ॥

( ४९ )

अब मोहि जलत राम जल पाइया ।  
राम उदक तन जलत बुझाइया ॥  
मन मारन कारन यन जाइये ।  
सो जल बिन भगवंत न पाइये ॥  
जेहि पावक सुर-नर हैं जारे ।  
राम उदक जन जलत उवारे ॥  
भवसागर सुखसागर माँहीं ।  
पीव रहे जल निखुटत नाहीं ॥  
कहि कबीर भजु सारिंगपानी ।  
राम-उदक मेरी त्रिपा बुझानी ॥

( ५० )

तू तो राम सुमर, जग लडवा दे ।  
कोरा कागज काली स्थाही, लिखत पढ़त वा कौ पढ़वा दे ॥  
हाथी चलत है अपनी गत में, कुतर भुक्त वा कौ भुक्वा दे ।  
कहत कबीर सुनो भाई साधो, नरक पचत वा कौ पचवा दे ॥

( ५१ )

नहीं छोड़ू रे बाबा रामनाम, मेरे और पढन मौं नहीं काम ॥  
प्रह्लाद पठाये पढन साल, संग सखा बहु लिये बाल ॥  
मोक्ष कहा पदावत आलजाल, मेरी पटिया दै लिव दे श्रीगोपाल ॥  
यह पंडामरकै कहो जाय, प्रह्लाद बुलाये चैग धाय ॥  
रू राम कहन की छोड़ बान, तोहे तुरत छुडाऊं कहो मान ॥  
मोक्ष कहा मताओ यारबार, प्रभु जल थल नभ कीन्हें पहार ॥  
एक राम न छोड़ गुहदि गार, मो को धालजार, चाहे मार डाल ॥  
काढ खडग कोप्यो रिमाथ, कहुं राखनहारे, मोहि बताय ॥  
प्रभु खंभ तै निकसे है विसार, हरिणाकुस छेद्यो नख विदार ॥  
श्रीपरमपुरुष देवाधिदेव ! भक्त हेत नरसिंह भेद ॥  
कहे कबीर कोऊ लख न पार, प्रह्लाद उवारे अनेक बार ॥

( ५२ )

ज्ञीनी-ज्ञीनी बीनी चदरिया ॥  
काहे कै ताना, काहे कै भरनी ,  
कौन तार से बीनी चदरिया ॥  
झूँगला-पिंगला ताना-भरनी ,  
सुषमन-तार से बीनी चदरिया ॥

आठ कँवल दल चरला छोड़ै  
फँच तत्त गुन तीनि चदरिया  
साँह कौ सियत मास दास लागै  
ठोक-ठोक कै बीनी चदरिया  
सो चादर सुर नर सुनि ओढ़ी  
ओढ़ि कै मैली कीन्हीं चदरिया  
दास कबीर जतन सो ओढ़ी  
ज्यों-की-त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

( ५३ )

बीत गये दिन भजन बिना रे ।  
बाल अवस्था खेल गँवाई, जब जवानि तब नारि तना  
जा के कारन मूल गँवायो, अजहुँ न गइ भन की तृस्ना  
कहत कबीर सुनो भाई साधो, पारउतर गये संत जना

( ५४ )

मन ! तोहे केहि चिधि कर समझाऊँ ॥

सोना होय तो सुहाग मँगाऊँ, बंकनाल रस लाल  
ग्यान शब्द की झँक चलाऊँ, पनी कर पिचलाऊँ  
घोड़ा होय तो ल्याम लगाऊँ, ऊपर जीन कसाऊँ  
होय सबार तेरे पर बैठूँ, चाबुक दे कै चलाऊँ  
हाथी होय तो जंजीर गदाऊँ, चारों पैर बँधाऊँ  
होय महावत तेरे पर बैठूँ अंकुस लै कै चलाऊँ  
लोहा हो तो ऐरन मँगाऊँ, ऊपर धुवन धुवाऊँ  
धूवन की धनघोर मचाऊँ, जंतर तार खिचाऊँ  
ग्यानी होय तो ग्यान खिलाऊँ, सत्य की राह चलाऊँ  
कहत कबीर सुनो भाई साधो, अमरापुर पहुँचाऊँ

( ५५ )

रहना नहि देस निगाना है ॥

यह संसार कागज की पुड़िया धूँद पड़े धुल जाना है  
यह संसार काँटों की बाढ़ी उलझ-उलझ मर जाना है  
यह संसार झाड़ अरु झाँखर, आग लगे जल जाना है  
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुर नाम ठिकाना है ।

( ५६ )

इन तन-धन की कौन बड़ाई, देखत नैनों में माटी मिलाएं ।  
अपने खातिर महल बनाया, आप हि जाकर जंगल सोया ॥  
हाड जलै जैसे लकड़ीकी कोली, बाल जलै जैसे वानकी पोली ॥  
कहत कबीर सुनो मेरे गुनिया, आप मुवे पीछे छूय गर्धी दुनिया

( ५७ )

भजो रे भैया राम गोविंद हरी ।

जप तप साधन कछु नहि लगत खरचत नहि गठरी ॥  
संतति संपति सुख के कारन जास्तों भूल परी ।  
कहत कवीर जा मुख में राम नहि ता मुख धूल भरी ॥

( ५८ )

निर्धन को धन राम, हमारे निर्धन को धन राम ।  
चोर न लेवे, घटहु न जावे, कष्ट में आवे काम ॥  
सोवत-जागत, ऊठत, बैठत जपो निरंतर नाम ।  
दिन-दिन होत सबाई दौलत, खूटत नहाँ छदाम ॥  
अंतकाल में छोड़ चलत सब, पास न एक बदाम ।  
कहत कवीर ए धन के आगे पारस को क्या काम ॥

( ५९ )

कब सुमिरोगे राम, अब तुम कब सुमिरोगे राम ।  
गर्भवास में जप-तप कीहै, निकल हुए बेइमान ॥  
बाल्पनो हँसि खेल गँवायो, तस्तु भये मन काम ।  
हाथ-पाँव जब काँपन लागे, निकल गयो अवसान ॥  
झुठी काया, झुठी माया, आखिर मौत निदान ।  
कहत कवीर सुनो भाई सधो, दो दिन का मेहमान ॥

( ६० )

इस सराय के बीच मुशाफिर क्या-क्या तमाशा हो रहा ॥  
कोइ समेटत बिस्तरा है, कोइ जमा के सो रहा ।  
कोइ बजावे, कोइ गावे, कोइ बैठा रो रहा ॥  
कोई ल्यावत है सुगंधी, कोइ मैला धो रहा ।  
कोइ लेवै राम नाम औ कोइ काँटा छो रहा ॥  
कोई चटोर माल-दौलत, कोइ गाँठ से खो रहा ।  
हो रही हलचल कवीरा, आज-कल दिन दो रहा ॥

दोहा

गुरु

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, का के लागूँ पाँय ।  
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविंद दिशा मिलाय ॥  
तब धरती कागद कहूँ, लेखनि सब बनराय ।  
सात समुद्र की मसि कहूँ, गुरुगुन लिखा न जाय ॥  
कवीर ते नर अंध है, गुरु को कहते और ।  
हरि रुठे गुरु ठौर है, गुरु रुठे नहि ठौर ॥  
गुरु रुढ़े गोविंद तैं, मन में देखु विचारि ।  
हरि सुमिरे सो वार है, गुरु सुमिरे सो पार ॥

६० वा० अ० २७—

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।  
सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी रस्ता जान ॥  
जा का गुरु है औंधरा, चेला नियट निरंध ।  
अंधे अंधा डेलिया, दोऊ कूप परंत ॥  
समदृष्टि सतगुरु किया, मेटा भरस विकार ।  
जहँ देखैं तहँ एक ही, साहिव का दीदार ॥  
कवीर जोगी जगत गुरु, तजै जगत की आस ।  
जो जग की आसा करै, तो जगत गुरु, वह दास ॥

नाम

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह ।  
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह ॥  
नाम जो रक्ती एक है, पाप जो रक्ती हजार ।  
आध रक्ती धट संचरै, जारि करै सब छार ॥  
राम नाम निज औषधी, सत गुरु दई बताय ।  
औषधि खाय रु पथ रहै, ला को बेदन जाय ॥  
सपनेहुँ मैं वर्णइ कै, धोखेहु निकरै नाम ।  
बा के पग की पैतरी, मेरे तन की चाम ॥  
नाम जगत कुष्ठी भला, चुइ चुइ परै जु चाम ।  
कंचन देह केहि काम की, जा मुख नाहीं नाम ॥  
मुख के माथे सिलि परै, जो नाम दृदय तें जाय ।  
बलिहारी वा दुखल की, पल-पल नाम रथाय ॥  
लेने को सत नाम है, देने को अन दान ।  
तरने को आधीनता, बूँदन को अभिमान ॥  
मोर-तोर की जेवरी, बटि बाँधा संसार ।  
दास कवीरा क्यों बँधे, जा के नाम अधर ॥

सुमिरन

सुमिरन सों सुख होत है, सुमिरन सों दुख जाय ।  
कह कवीर सुमिरन किये, साँई माहिं समाय ॥  
दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय ।  
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ॥  
सुमिरन की सुधि यों करै, जैसे दाम कँगाल ।  
कह कवीर बिसरै नहीं, पल-पल लेह सम्हाल ॥  
जय तप संज्ञा साधना, सब सुमिरन के माहिं ।  
कवीर जाने भक्त जन, सुमिरन सम कछु नाहिं ॥

साधन

समदृष्टि तब जानिये, सीतल समता होय ।  
सब जीवन की आत्मा, लखै एक-सी सोय ॥

एंसा पथ को काढ़ि ले, छीर-नीर  
ऐसे गहै जो सर को, सो जन उतरै पार ॥  
द्वार धनी के पढ़ि रहै, धका धनी का खाय ।  
कवर्हुंक धनी निवाजर्ह, जो दर छाड़ि न जाय ॥  
भवगमर में यों रही, ज्यों जल कँवल निराल ।  
मनुचाँ बहाँ ले राखिये, जहाँ नहीं जम काल ॥  
जानि-चूक्षि जड़ होइ रहै, बल तजि निर्वल होय ।  
कह कबीर वा दास को, गंजि सकै नहिं कोय ॥  
बाद-विचादे शिप धना, बोले बहुत उपाध ।  
मीन गहै, सब की सहै, सुमिरै नाम अगाध ॥  
रंडा होइ रहु बाट का, तजि आपा अभिमान ।  
लोभ मोइ तृस्ना तजै, ताहि मिलै भगवान ॥  
जग में बैरी कोउ नहीं, जो मन सीतल होय ।  
यह आपा तू डारि दे, दया करै सब कोय ॥  
बहुत पसारा जनि करै, करु थोरे की आस ।  
बहुत पसारा जिन किया, तई गये निरास ॥  
मन के भते न चालिये, मन के भते अनेक ।  
जो मन पर असवार है, सो साधू कोइ एक ॥  
निन्दक नियरे राखिये, अँगन कुटी छवाय ।  
विन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥

### उद्घोषन

कबीर गर्व न कीजिये, काल गहे कर केस ।  
ना जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस ॥  
रात गँवाई सोय करि, दिवस गँवायो खाय ।  
हीरा जनम अमोल यह, कौड़ी बदले जाय ॥  
कालह करै सो आज करु, आज करै सो अब ।  
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥  
पाव पलक की सुधि नहीं, करै कालह का सज्ज ।  
काल अचानक मरसी, ज्यों तीतर कौं बाज ॥  
कबीर नौवत आपनी, दिन दस लेहु बजाय ।  
यह पुर पठन यह गली, बहुरि न देखौ आय ॥  
या दुनिया में आइ कै, छाड़ि देह तू ऐठ ।  
लेना होय सो लेइ ले, उठी जात है फैठ ॥  
मैं मैं बड़ी बलाय है, सको तो निकसो भागि ।  
कहै कबीर कब लगि रहै, रहै लपेटी आगि ॥  
देह धरे का गुन यही, देह देह कछु देह ।  
बहुरि न देही पाहये, अब की देह सो देह ॥  
धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय ।  
मैंचै सौ धड़ा, श्रुत आये फल होय ॥

निवार ।  
कबीर तूँ काहे डौरै चिर पर सिरजनहाँ  
हस्ती चढ़ि कर ढोलिये, क्लकर भुसै हजा  
जो तू चाहै मुज्ज्ञ को, राहौ और न आर  
मुझ्हाँहि सरीखा होइ रहु, सब सुख तेरे पास  
कबीर सोया क्या करै, जागि के जपे सुरार  
एक दिना है सोबना, लौंबे पाँच पलर  
कबीर सोया क्या करै, उठिल न रोवै दुख्ख  
जा का बासा गोर मैं, सो क्यों सोचै सुख  
कबीर सोया क्या करै, जागन की करु चौप  
ये दम हीरा लाल हैं, गिनि-गिनि गुरु कैं सौंप

### शरीर एवं जगत्की नश्वरता

हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों धास  
सब जग जरता देख करि, भये कबीर उदास  
झूठे सुख को सुख कहै, मानत हैं मन सोद  
ज्ञयत चबेना काल का, कुछ सुख में कुछ गोद  
कुसल-कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय  
जरा मुई ना भय मुआ, कुसल कहाँ ते होय ।  
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जाति ।  
देखत ही छिपि जायगी, ज्यों तारा परभाति ।  
पाँचौं नौवत बाजती, होते छतीसों राग ।  
सो मंदिर खाली परे, वैठन लागे काग ॥  
कबीर थोड़ा जीवना, माँडै बहुत मँडान ।  
सबही ऊभा मौत सुँह, राव रंक सुखान ॥  
कहा चुनावै मेडियाँ, लंबी भीति उसारि ।  
घर तो साड़े तीन हथ, धना तो पैने चारि ॥  
कबिरा गर्व न कीजिये, ऊँचा देखि अवास ।  
काल परै भुइँ लेटना, ऊपर जमसी पास ॥  
माटी कहै कुम्हार कौं, तूँ क्या हँदै मोहि ।  
इक दिन ऐसा होइगा, मैं लूँदूँगी तोहि ॥  
कबीर यह तन जात है, सकै तो राखु बहोरि ।  
खाली हाथों वे गये, जिन के लाल-कपेरि ॥  
आसपास जोधा खड़े, सभी बजावै गाल ।  
मंश महल से लै चला, ऐसा काल कराल ॥  
चलती चक्की देखि कै दिया कबीर योय ।  
दो पाठन के बीच मैं बाकी बचा न कोय ॥  
हाँकों परवत फटते, समुंदर धूँट भराम ।  
ते भुनिवर धरती गले, क्या कोइ गर्व कराय ॥  
तन सराय मन पाइल, मनसा उतरी आय ।  
कोउ काहू का है नहीं, (सब) देखाठैक दजाय ॥

प्रीति जो लागी मुल गई, पैटि गई मन माहिं ।  
 गेम-गेम पितृ-पितृ करे, मुख की सरधा नाहिं ॥  
 नैनी अंतर आव तै, नैन शाँषि तोहि लेवै ।  
 ना मैं देलीं और कों, ना तोहि देखन देवै ॥  
 कबीर या जग आह के, कीया बहुतक मित्त ।  
 जिन दिल वाँधा एक से, ते सोबै निःचित्त ॥  
 पितृ परिचय तब जानिये, पितृ से हिलमिल होय ।  
 पितृ की लाली मुख पड़े, परगट दीसै सोय ॥  
 लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल ।  
 लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥  
 मन पंछी तब लगि उड़ै, विषय वासना माहिं ।  
 प्रेम वाज की झपट मैं, जब लगि आयो नाहिं ॥

## विनय

मैं अपराधी जनम का, नख-सिख भरा विकार ।  
 तुम दाता दुख-भंजना, मेरी करी सम्हार ॥  
 अवगुन मेरे वाप जी, वक्स गरीब निवाज ।  
 जो मैं पूत कपूत हूं, तज पिता को लाज ॥  
 औगुन किये तो बहु किये, करत न मानी हार ।  
 भावै वंदा वक्सिये, भावै गरदन मार ॥  
 साहिव तुमहि दयाल है, तुम लगि मेरी दौर ।  
 जैसे काग जहाज को, सूझौ और न ठौर ॥  
 भुक्ति मुक्ति माँगों नहीं, भक्ति दान दे मोहिं ।  
 और कोई जाँचों नहीं, निसि दिन जाँचों तोहिं ॥  
 कबीर साईं मुज्जा को, रुखी रोटी देय ।  
 चुपड़ी माँगत मैं ड़ूँह, रुखी छीनि न लेय ॥

## साधु

सिंहों के लेहँडे नहीं, हँसों की नहिं पाँत ।  
 लालों की नहिं बोरियाँ, साध न चले जमात ॥  
 सिंह साधु का एक मत, जीवत ही को खाय ।  
 भाव हीन मिरतक दसा, ता के निकट न जाय ॥  
 गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी सों नेह ।  
 कह कबीर ता साध के, हम चरनन की खेह ॥  
 जाति न पूछौं साध की, पूछि लीजिये ख्यान ।  
 मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो ख्यान ॥  
 संगति कीजे संत की, जिन का पूरा मन ।  
 अनतोले ही देत हैं, नाम-सरीखा घन ॥  
 कबीर संगत साध की, हरै और की व्याधि ।  
 -३- और ही व्याधि ॥

कबीर संगत साध की, ज्यों गंधी का वास ।  
 जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी वास मुदास ॥  
 साधु ऐसा चाहिये, जैसा सूप मुभाय ।  
 सार-सार को गहि रहै, थोथा देह उड़ाय ॥  
 औगुन को तो ना गहै, गुन ही को लै थीन ।  
 घट-घट महकै मधु ज्यों, परमात्म लै चीन ॥  
 हरिजन तो हारा भला, जीतन दे संसार ।  
 हारा सत्तगुर से मिलै, जीता जमकी लार ॥  
 कथा कीरतन रात-दिन, जा के उद्धम येह ।  
 कह कबीर ता साधु की, हम चरनन की खेह ॥  
 साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं विचार ।  
 हैतै पराई आतमा, जीभ वाँधि तरवार ॥

## पतिव्रता

ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पिय माहिं ।  
 ऐसे जन जग मैं रहैं, हरि को भूलत नाहिं ॥  
 हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय ।  
 हाँसी खेले पितृ मिलै, तो कौन दुहागिनि होय ॥  
 पतिव्रता मैली भली, काली कुचिल कुरुप ।  
 पतिव्रता के रूप पर, वराँ कोटि सरूप ॥  
 पतिव्रता पति कौ भजै, और न आन सुहाय ।  
 सिंह बचा जो लंधना, तो भी घास न खाय ॥

## सत्य

साँच बरावर तप नहीं, छठ बरावर पाप ।  
 जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप ॥  
 साँइ सों साँचा रहौ, साँइ साँच सुहाय ।  
 भावै लंबे केस रखु, भावै घोट मुँदाय ॥  
 तेरे अंदर साँच जो, बाहर कछु न जनाव ।  
 जाननहाय जानिहै, अंतरगति का भाव ॥  
 साँचे छाप न लागई, साँचे काल न खाय ।  
 साँचे को साँचा मिलै, साँचे माहिं सगाय ॥

## सिद्धान्त

जिन दूँढा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि ।  
 मैं बधुरा बूँड़न ढरा, रहा किनारे पैठि ॥  
 संगति भई तो क्या भया, हिरदा भया कटोर ।  
 नौ नेजा पानी चढ़ै, तज न भैजै कोर ॥  
 कस्तूरी कुँडल बसै, मृग दूँढ़ै घन माहिं ।  
 ऐसे घट मैं बीव है, दुनियाँ जाने नाहिं ॥

सब घट मेरा साईयाँ, सूनी सेज न कोय ।  
बलिहारी वा घट की, जा घट परगट होय ॥  
पावक रुपी साईयाँ, सब घट रहा समाय ।  
चित्त चक्रमक लागै नहीं, ता तें बुद्धि-बुद्धि जाय ॥  
भय बिनु भाव न ऊपजै, भय बिनु होय न प्रीति ।  
जब हिरदै से भय गया, मिटी सकल रस रीति ॥  
डर करनी, डर परम गुरु, डर पारस, डर सार ।  
इरत रहे सो ऊपरै, गाफिल खावै भार ॥  
जहाँ दया तहै धर्म है, जहाँ लोभ तहै पाप ।  
जहाँ क्रोध तहै काल है, जहाँ छिमा तहै आप ॥  
चाह गई चिता मिटी, मतुक्षु बैपरवाह ।  
जिन को कछू न चाहिये, सो जग साहनसाह ॥

### मनके दोष

कामी क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय ।  
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरत कुल खोय ॥  
कामी कबहुँ न गुरु भजै, मिटै न संसय सूल ।  
और गुनह सब बकसिहाँ, कामी डार न मूल ॥  
जहाँ काम तहै राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम ।  
दोनों कबहुँ ना मिलै, रवि रजनी इक ठाम ॥  
काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि घट मैं खान ।  
कहा मूरख कहा पंडिता, दोनों एक समान ॥  
कोटि करम लागै रहैं, एक क्रोध की लार ।  
किया-कराया सब गया, जब आया अहँकार ॥  
दसों दिया से क्रोध की, उठी अपरबल आणि ।  
सीतल संगति साध की, तहै उवरिये भागि ॥  
कुबुधि कमानी चढ़ि रही, कुटिल बचन का तीर ।  
भरि भरि मारै कान में, सालै सकल सरीर ॥  
जब मन लगा लोभ से, गया विषय में सोय ।  
कहै कबीर विचारि कै, कस भक्ती धन होय ॥  
आद गई, आदर गया, नैनन गया सनेह ।  
वै तीनों जनहीं गये, जबहैं कहा कछु देह ॥  
जग मैं भक्त कहावहै, चुकट चून नहिं देय ।  
सिष जोरु का है रहा, नाम गुरु का लेय ॥  
जब घट मोह समाइया, सचै भया अंधिगार ।  
निमोंह न्यान विचारि कै, कोइ साधू उत्तरै पार ॥  
सलिल मोह की धार मैं, वहि गये गाहिर गँभीर ।  
दुच्छम मठरी सुरत है, चढ़िहै उलट नीर ॥

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह ।  
मान बड़ाई ईरणा, दुरलभ तजनी येह ॥  
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजर ।  
पंछी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर ॥  
जहै आप तहै आपदा, जहै संसद तहै सोग ।  
कह कबीर कैसे मिटै, चारों दीरघ रेग ॥  
बड़ा बड़ाई ना तजै, छोटा बहु इतराय ।  
ज्यों प्यादा फज्जी भया, देहांदेहा जाय ॥  
चित्त कपटी सब से मिलै, नाहीं कुटिल कठोर ।  
इक दुरजन इक आरती, आगे पीछे और ॥  
की त्रिस्ता है ढाकिनी, की जीवन का काल ।  
और-और निसु दिन चहै, जीवन करै विहाल ॥  
त्रिस्ता अग्नि प्रलय किया, रुप न कबहुँ होय ।  
सुर नर मुनि और रंक सब, भस्स करत है सोय ॥  
दोष पराये देखि करि, त्रले हसंत-हसंत ।  
अपने याद न आवहीं, जिनका आदि न अंत ॥  
खदा मीठा चरपरा, जिम्मा सब रस लेय ।  
चोरों कुतिया मिलि गई, पहरा किस का देय ॥  
माली गुड़ मैं गड़ि रही, पंख रखो लिपटाय ।  
हाथ मलै और सिर धुने, लालच तुरी बलाय ॥  
विद्यामद अरु गुनहुँ भद, राजमद्द उत्तमद्द ।  
इतने मद कौं रद करै, तब पावै अनहद्द ॥

### गुण

दीन लखै मुख सबन को, दीनहि लखै न कोय ।  
भली विचारी दीनता, नरहूँ देवता होय ॥  
कबीर नवै से आप को, पर कौं नवै न कोय ।  
धालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय ॥  
ऊँचै पानी ना टिकै, नीचै ही ठहराय ।  
तीचा होय सो भरि दिवै, ऊँचा प्यासा जाय ॥  
सब तें लहुताई भली, लहुता तें सब होय ।  
जस दुश्यिया को चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय ॥  
बुरा जो देवन मैं चल, बुरा न मिलिया कोय ।  
जो दिल खोजा आपना, नुश-सा बुरा न होय ॥  
दाया दिल मैं राखिये, तूँ क्यों निरदह होय ।  
साँई के सब जीव हैं, कीझी कुंजर चोय ॥  
बोली तो अमोल है, जो कोइ जानै बोल ।  
हिये तराजू तौल कै, तब मुख बाहर जोन ॥

गहन तरायू आन चरि, सब रस देखा तोल ।  
सब रस माईं जीभ रस, जो कोह जाने बोल ॥

## माया

माया उच्छ एवन्सी, विरला जाने कोय ।  
भगवा के पाले पिरे, यन्मुख भागै सोय ॥  
कवीर माया रुखझी, दो फल की दातार ।  
प्रायत वरन्त मुक्ति दे, सन्तत नरक दुधार ॥  
सी भान का गूँड है, एक रूपैया योक ।  
साधू है संग्रह करै, हारै हरिसा थोक ॥

## आहंसा

मांस अहारी मानवा, परतछ रान्छस अंग ।  
ता की संगति करे हैं, परत भजन मैं भंग ॥

मांस मछरिया खात हैं, सुरा भान से हेत ।  
सो नर जड़ सों जाहिंगे, जो मूरी का खेत ॥  
मांस मांस सब एक है, सुररी हिरनी गाय ।  
आँखि देखि नर खात है, ते नर नरकहि जाय ॥  
सुररी मुख्ला से कहै, जिवह करत है मोहि ।  
साहिव लेखा माँगसी, संकट परहै तोहि ॥  
कहता हैं कहि जात हैं, कहा जो भान हमार ।  
जा का गर तुम काटिहै, सो किर काटि तुम्हार ॥  
हिंदू के दाया नहीं, मिहर तुम्हक के नहीं ।  
कहै कवीर दोनों गये, लज चौरासी ।

## संत कमालजी

(कवीरजीके पुत्र पर्ण शिष्य । समाधि, भगवरमें कवीर साइको समापिके पास ।)

## चेतावनी और उपदेश

इतना लोग कमाय के साधू, क्या तने फल पाया ।  
जंगल जाके खाक ल्याये, फेर चौरासी आया ॥  
राम भजन है अच्छा रे । दिल में रखो सच्चा रे ।  
जोग जुगत की गत है न्यायी, जोग जहर का पाला ।  
जीने पावे उने छुपाये, वो ही रहे मतवाला ॥  
जोग कमाय के बाष्प होना, ये तो बड़ा मुश्कल है ।  
दोनों हात जब निकल गये, फेर सुबरन भी मुश्कल है ।  
मुख से दैठो आपने मेहल में, राम भजन अच्छा है ।  
कद्धु काया छीजे नहीं खरचे, व्यान धरो सच्चा है ॥  
कहत कमाल मुनो भाई साधू, सब से पंथ न्याय है ।  
ब्रह्म शास्त्र की बात येही, जम के माये पथरा है ॥

ये तनु किसोकी किसोकी । आखर ब्रह्मी लंगल के  
काहे कूँ दिवाने सोच करे, मेरी माता और पुत्र  
ये तो सब झुठ परारा, राम करो अमना सार्थ  
खाये तिये सुख से बैठे, फेर उठ के ज्वे जारी  
विरख की छाया, सुख की मीठी, एक घड़ी का सार्थ  
कहत कमाल मुनो भाई साधू, सपन भया रात  
खिन मैं राजा खिन मैं रंक, ऐसी राह चली

आसरा एक करतार का रस तू,  
दीच मैदान के बाँध ताठी ।

रहेगा बोही जिन्हें खलक देदा किया,  
और सब होयगा खाक माटी ॥

अमीर उमराव दिन चार के पाहुने,  
धूमता है दरबार हाथी ।

कहत कमाल कवीर का बाल्का,  
राम नाम तेरा संग काथी ॥

## संत धनी धर्मदासजी

(जन्म-संकल्प—अनुमानतः १४९०वि०, जन्म-साल—बैंगेसद, जाति—नविया, शरीरप्रत्यक्ष, विशेषण सं० ३६०० के लगभग । युरु कवीरजी)

नाम रस ऐसो है भाई ॥  
आगे आगे दाहि चलै, पाले हरियर, होइ ।  
बलिहारी वा बुँद की, जड़ काटे फल होइ ॥  
अति कहुवा लट्ठ बना रे, वा को रस है भाई ।  
साधत साधत साध गये हैं, अपली होय सो खाई ॥

सूँघत के बौरा भये हो, पीयत के मरि जाई ।  
नाम रस सी जन पिये, धह पर सीत न होई ॥  
संत जवाहिस सो जन पावे, जा को ज्यान परगाया ।  
धर्मदास पी छक्कित भये हैं, और पिये कोइ दाना ॥

धडा एक नीर का फूटा । पच एक डार से दूटा ॥  
ऐसे हि नर जात जिंदगानी । अजहु नहिं चेत अभिमानी ॥  
भूलो जनि देख तन गोरा । जगत मैं जीवना योरा ॥  
निकरि जब प्रान जावैगा । कोई नहिं काम आवैगा ॥  
सजन परिवार सुत दारा । सभी एक रोज होइ न्यारा ॥  
तजो मद लोभ चतुराई । रहो निरसंक जग माही ॥  
सदा ना जान ये देही । ल्यावो नाम से नेही ॥  
कहै धर्मदास कर जोरी । चलो जहँ देस हैं तोरी ॥

सुचित होइ सब्द विचारो हो ॥

सब्द विचार नाम धर दीपक, लै उर बारो हो ।  
जुगन जुगन कै अख्षणि, छन मैं निरवारो हो ॥  
थे चलो गरीब होय, मद मोह निवारो हो ॥  
साहेब नैन निकट बसै, सत दरस निहारो हो ॥  
आपे जगत जिताइ के, मन सब से हारो हो ॥  
जबन विधी मनुया मरे, सोइ भाँति सम्हारो हो ॥  
शास करो सत लोक मैं, दुख नगर उजारो हो ॥  
धर्मदास निज नाम पर, तन मन धन बारो हो ॥

साहेब दीनवंधु हितकारी ।

कोटिन ऐगुन बाल्क करई, मात पिता चित एक न धारी ॥  
तुम गुरु मात पिता जीवन के, मैं आति दीन दुखारी ॥  
प्रनत पाल कलनानिधान प्रसु, हमरी ओर निहारी ॥  
जुगन जुगन से तुम चलि आये, जीवन के हितकारी ॥  
सदा भरोसे रहूँ तुम्हारे, तुम प्रतिपाल हमारी ॥  
मोरे तुम हीं सत्त सुकृत हौं, अंतर और न धारी ॥  
जानत हौं जन के तन मन की, अब कस मोहि विसारी ॥  
को कहि सकै तुम्हारी महिमा, केहि न दिल्हो पद भारी ॥  
धर्मदास पर दाया कीन्हीं, सेवक अहौं तुम्हारी ॥

साहेब मोरी बहियाँ सम्हारि गही ॥

गहिरी नदिया नाव झाँझारी, बोशा अधिक भई ।  
मोह लोभ की लहर उठत है, नदिया झकोर वही ॥  
तुमहि विगारो तुमहि सँवारो, तुमहि भंडार मरो ॥  
जब चाहो तब पार ल्यायो, नहिं तो जात वही ॥  
कुमति काटि के सुमति बढ़ाओ, बल बुधि र्यान दई ॥  
मैं पापी वहु बेरी चूरँ, तुम मेरी चूक सही ॥  
धर्मदास सरन सतगुर के, अब धुनि लाग रही ॥  
अभर लोक मैं डेरा परिगै, समरथ नाम सही ॥

पिया परदेसिया, गवन लै जा मोर ॥

आब भाव का अनवट विछुआ, सब्द के धुँधुर उठे घनघोर ।  
तन सारी मन रतन लहँगवा, ग्यान की अँगिया भई सरवोर ॥  
चारि जना मिलि लेइ चले हैं, जाइ उतारे जमुनवाँ के कोर ।  
धर्मदास विनवै कर जोरी, नगरी के लोग कहैं कुल वोर ॥  
गर्भ दुक्ल तैं काढि, प्रगट प्रभु बाहर कीन्हो ॥  
मक्ति अंग को छापि, अंक दस्तक लिखि दीन्हो ॥  
वा को नाम विसरि गयो, जिन पठयो संसार ।  
चक सुख के कारने, विसरि गयो निज सार ॥  
नहिं जाने केहि पुन्य, प्रगट भे मानुष देही ।  
मन बच कर्म सुभाव, नाम सौं कर ले नेही ॥  
लख चौरासी भरमि के, पायो मानुष देह ।  
सो मिथ्या कस खोवते, इडी प्रीति सनेह ॥  
माया रंग दुसुम्म, महा देखन को नीको ।  
सीठो दिन चुइ चार, अंत लगत है फीको ॥  
कोटिन जतन रह्यो नहीं, एक अंग निज मूल ।  
ज्यों पतंग उड़ि जायगो, ज्यों माया काफूर ॥  
नाम क रंग मँजीठ, लगै छूटै नहिं भाई ।  
लचपन रहो समाय, सार ता मैं अधिकाई ॥  
केती बार धुलाइये दे दे करडा धोय ।  
ज्यों ज्यों भट्ठो पर दिये, त्यो त्यो उजले होय ॥  
सोबत हो केहि नौद, मूढ़ मूरख अग्यानी ।  
भोर भये परमात, अबहि तुम करो पथानी ॥  
अब हम साँची कहत हैं, उड़ियो पंख पसार ।  
छुटि जैहै या दुक्ल तैं, तन-सरवर के पर ॥  
ऐसा यह संसार, रहेंट की जैसी धरियाँ ।  
इक रीती फिर जाय, एक आयै फिर भरियाँ ॥  
उपजि उपजि विनाशन करै, फिरि फिरि जमै गिरास ।  
यही तमासा देवि कै, मनुवा भयो उदास ॥  
जैसे कलपि कलपि के, भये हैं गुड़ की भाली ।  
चालन लाणी बैठि, लपट गइ दोनों पाँखी ॥  
पंख लैपटे सिर धुनै, मनहीं मन पछिताय ।  
वह मलयागिरि छाँडि कै, इहौं कौन विधि आय ॥  
रहे दूध के दूध, जाय पानी के पानी ।  
सुनो सबन चित लाय, कहौं कछु अकथ कहानी ॥  
अकह कमल तैं सुते उठी, अनुभव सब्द प्रकास ।  
केवल नाम कीर है, गावै धनि धर्मदास ॥

## पुण्यदान

### नरकी प्राणियोंके दुःखसे दुखी

पुराणकी प्रक कथा है—

एक महान् पुण्यात्मा नरेशका शरीरान्त हो गया। शरीर तो अन्त ऐनेवाला है—क्या पापी, क्या पुण्यात्मा; किंतु शरीरका अन्त द्वैते ही यह समुख आ जाता है कि शरीरसे रत्नर्म या दुष्कर्म करनेका क्या फल है। महान् पुण्यात्मा नरेशका शरीर छूटा गा। संयमनीके स्वामी धर्मराजके दूत यहे सुन्दर स्वरूप धारण कर उस राजाके जीवको लेने आये। वहे आदरसे वे उसे ले चले।

मनुष्य कितना भी सावधान हो—छोटी-मोटी भूल हो जाना स्वाभाविक रहता है। राजासे भी जीवनमें कोई साधारण भूल हुई थी। धर्मराजने अपने सेवकोंको आदेश दिया था—‘उस पुण्यात्माको कोई कष्ट न हो, उसका तनिक भी तिरस्कार न हो, यह स्थान रखना। उसे पूरे सम्मानसे और सुखपूर्वक ले आना। लेकिन इस प्रकार ले आना कि वह नरकोंको देख ले। उसके साधारण प्रभादका फल इतना ही है कि उसको नरक-दर्शन हो जाय। उसके पुण्य अनन्त हैं। स्वर्गमें उसके स्वागतकी प्रस्तुति हो चुकी है।’

दूतोंको अपने अध्यक्षकी आशका पालन करना था। राजा नरकके मध्यसे होकर जाने लगे। उनके लिये तो वह मार्ग भी सुखद, शीतल ही था; किंतु चारों ओरसे आती लक्ष-लक्ष जीवोंके करुण क्रन्दनकी ध्वनि, भयंकर चीत्कारें, हृदयद्रावक आहें वहाँ सुनायी पड़े रही थीं। राजाने पूछा धर्मराजके दूतोंसे—‘यहाँ कौन क्रन्दन कर रहे हैं?’

धर्मराजके दूतोंने कहा—‘ये सब पापी जीव हैं। ये अपने-अपने पापोंका दण्ड यहाँ नरकोंमें पा रहे हैं।’

‘लेकिन अब इनकी चीत्कारें बंद क्यों हो गयीं।’ राजाने इधर-उधर देखकर पूछा।

‘आप-जैसे महान् पुण्यात्मा यहाँसे जा रहे हैं। आपके शरीरसे ल्पी वायु नरकोंमें जाकर वहाँकी ज्वाला शान्त कर

देती है। नरकके प्राणियोंका दारण ताप इससे क्षणभरको शान्त हो गया है। इसीसे उनका चिल्डाना बंद है।’ धर्मराज के दूतोंको सच्ची बात ही कहनी थी।

‘महाराज ! कृपा करके आप अभी जायें नहीं। आपके यहाँ लड़े रहनेसे हमें वडी शान्ति मिली है।’ चारों ओरसे नरकमें पढ़े प्राणियोंकी प्रार्थना उसी समय सुनायी पड़ी।

‘आप सब धैर्य रखतें। मेरे यहाँ रहनेसे आप सबको सुख मिलता है तो मैं सदा यहाँ रहूँगा।’ पुण्यात्मा राजाने नरकके प्राणियोंको आश्वासन दिया।

धर्मराजके दूत वहे संकटमें पड़े गये। वे उस महान् धर्मात्माको बल्यूर्वक वहाँसे ले नहीं जा सकते थे और सब उसने आगे जाना अस्वीकार कर दिया। ‘एक पुण्यात्मा पुरुष नरकमें कैसे रह सकता है।’ सबं धर्मराज, देवराज इन्द्रके साथ वहाँ पहुँचे। वहाँ—नरकमें अमरावतीके अधीश्वर इन्द्रको आना पड़ा उस पुण्यात्माको समझाने।

‘मैं अपना सब पुण्य इन नरकमें पढ़े जीवोंको दान करता हूँ।’ राजाने धर्मराज और देवराजके समक्ष हाथमें जल लेकर संकल्प कर दिया।

‘अब आप पधारें।’ देवराज इन्द्र अपने साथ विनाम ले आये थे। ‘आप देल ही रहे हैं कि नरककी दारण ज्वाला शान्त हो गयी है। नरकमें पढ़े सभी जीव विमानोंमें पैठ-बैठकर स्वर्ग जा रहे हैं। अब आप भी चलें।’

‘मैंने अपना सब पुण्यदान कर दिया है। मैं अब सभी कैसे जा सकता हूँ। मैं अकेला ही नरकमें रहूँगा।’ राजाने धर्मराजकी ओर देखा। देवराज यदि भूल करते हों—अमावे निर्णयिक धर्मराज भूल नहीं कर सकते।

‘आप स्वर्ग पधारें।’ धर्मराजके मुखपर सित रेता आयी। ‘अपने समस्त पुण्योंका दान करके जो महान् पुण्य किया है, उसका फल तो आपको मिलना ही चाहिये। दिव्यलोक आपका है।’

## संत ज्ञानेश्वरका एकात्मभाव

निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव और उनकी छोटी वहिन मुक्तावाई—ये चार बालक—बालक ही थे चारों। सबसे बड़े निवृत्तिनाथकी आशु भी केवल सोलह वर्षकी थी। ज्ञानेश्वर चौदह वर्षके, सोपानदेव बाहर वर्षसे कुछ अधिक और मुक्तावाई तो ग्यारहवें वर्षमें पदार्पण करनेवाली बच्ची थी। ये चारों बालक आलन्दीसे पैदल चलकर पैठण आये थे।

यह बाल संतोंकी मंडली—कोई किसीसे कम कहने योग्य नहीं। बड़े भाई निवृत्तिनाथ तो साक्षात् निवृत्तिकी मूर्ति थे। वे ही गुरु थे अपने छोटे भाइयों और वहिनके। सांसारिक कोई प्रवृत्ति उनके चित्तको स्पर्श ही नहीं करती थी।

ज्ञानदेव—ज्ञानेश्वरजी तो जन्मसे योगिराज थे। योगकी सभी सिद्धियाँ उनके चरणोंमें निवास करती थीं। वे ज्ञानकी साक्षात् पूर्ति—अपने नामका अर्थ बतलाते हुए उन्होंने पैठणमें कहा—‘मैं सकल आमका बैत्ता हूँ।’

सोपानदेव तो परमार्थके सोपान थे जीवोंके लिये। सांसारिक प्राणियोंको भजनमें लगाना, उन्हें भगवद्गामका मार्ग सुलझ कराना—यह कार्य उनका ही था। जीवकी उन्नतिके बे सोपान थे और मुक्तावाईकी बात कोई क्या कहेगा। महाराष्ट्रके वारकरी-साहित्यसे तनिक भी जिसका परिचय है, वह जानता है कि मुक्तावाईका तो अवतार ही जीवोंको मुक्त करनेके लिये हुआ था।

परम पावन जन्मजात ये चार बाल संत पैठण आये थे। उन्हें ब्राह्मणोंसे शुद्धिपत्र लेना था। जो लोकको अपनी चरण-रससे शुद्ध कर रहे थे, उन्हें शुद्धि-पत्र चाहिये था। बात समझमें आनेकी

है—यदि सर्वथेषु पुरुष ही मर्यादाका पालन करें, शास्त्रकी मर्यादा लोकमें प्रतिष्ठित करें रहे संन्यासी पिताने गुरुकी आज्ञासे गृहस्थ-धर्मीकार कर लिया—वे संन्यासीके बालक थे शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंसे शुद्धिपत्र लेने आये थे वे।

‘इस भैसेका नाम भी ज्ञानदेव है।’ दुष्ट कहे नहीं होते? एक दुष्ट श्रकृतिके व्यक्तिने पैठणमें ज्ञानदेवको चिदाते हुए एक भैसेकी ओर संकेत किया।

‘हाँ, है ही तो।’ ज्ञानदेव चिद जानेवाले होते तो ज्ञानदेव क्यों कहलाते। वे कह रहे थे—‘भैसेमें और हममें अन्तर क्या है। नाम और रूप तो कलिपत हैं और आत्मतत्त्व एक ही है। भेदकी कल्पना ही अज्ञान है।’

‘अच्छा, यह बात है?’ उस दुष्टने भैसेकी पीठपर सटासट कई चाबुक मार दिये।

यह क्या हुआ? चाबुक पड़ी भैसेकी पीठपर और उसकी चोटके चिह्न—रक्त-जमी काली सार्वज्ञानेश्वरकी पीठपर उमड़ आयीं। उनमें रक्त छलछला आया।

‘मैं अज्ञानी हूँ। मुझे क्षमा करें।’ दुष्टके लिये ज्ञानदेवके चरणोंमें गिरकर क्षमा माँगनेके अतिरिक्त उपाय क्या था।

‘तुम भी ज्ञानदेव हो। क्षमा कौन किसे करेगा?’ ज्ञानेश्वर महाराजकी एकात्मभावना अखण्ड थी—‘किसीने किसीका अपराध किया हो तो क्षमाकी बात आवे। सद्यमें एक ही पण्डरीनाथ व्यापक हैं।’

सर्वव्यापक पण्डरीनाथको सर्वत्र देखनेवाले सुवनवन्द्य संत धन्य हैं।

भगति न इन्द्री बाँधा भगति न जोगा साधा ।  
 भगति न अहार घटाई ये सब करम कहाई ॥  
 भगति न इन्द्री साधे भगति न वैराग बाँधे ।  
 भगति न ये सब वेद बड़ाई ॥  
 भगति न मूँह मुँडाये भगति न माला दिखाये ।  
 भगति न चरन धुवाये ये सब गुनी जन कहाई ॥  
 भगति न तौ लौं जाना आप को आप बखाना ।  
 जोइ-जोइ करै सो-सो करम-बड़ाई ॥  
 आपो गयो तब भगति पाई ऐसी भगति भाई ।  
 राम मिल्यो आपो गुन खोयो रिधि-सिधि सबै गँवाई ॥  
 कह रैदास छूटी आस सब, तब हरि ताही के पास ।  
 आत्मा थिर भई तब सबही निधि पाई ॥

( ८ )

केसवे बिकट माया तोर, ताते बिकल गति-मति मोर ॥  
 सुविंशंग सन कराल अहिमुख, ग्रसति सुटल सुभेष ।  
 निराखि माखी बकै ब्याकुल, लोभ कालर देख ॥  
 इंद्रियादिक दुकुल दारुन, असंख्यादिक पाप ।  
 तोहि भजन खुनाथ अंतर, ताहि त्रास न ताप ॥  
 प्रतिशा प्रतिपाल प्रतिशा चिह्न, जुग भगति पूरन काम ।  
 आस तोर भरोस है, रैदास जै जै राम ॥

( ९ )

तुझ चरनारबिंद भँवर मन ।

पान करत मैं पायो राम-धन ॥

संपति-चिपति पटल माया धन ।

तामैं भगन होइ कैसे तेरो जन ॥

कहा भयो जो गत तन छन-छन ।

त्रेम जाइ तौ ढैरे तेरो निज जन ॥

प्रेमरजा लै राखो हृदै धरि,

कह रैदास छूटियो कवन परि ॥

( १० )

ऐ चित ! चेत अचेत काहे, बालक को देख रे ।  
 जाति ते कोई पद नहि पहुँचा, रामभगति बिसेख रे ॥  
 वटकम सहित जे निप होते, हरिभगति चित हड़ नाहिं रे ।  
 हरि की कथा सुहाय नाही, सुपच तूलै ताहि रे ॥  
 मित्र-दानु अजात सब ते, अंतर लावै हेत रे ।  
 ल्यग वा की कहाँ जानै, तीन लोक पवेत रे ॥  
 अजायील गज गनिका तारी, काटी कुंजर की पास रे ।  
 ऐसे दुरमत मुक्त किये, तो क्यों न तरै रैदास रे ॥

( ११ )

जो तुम तोरो राम ! मैं नहिं तोरै ।

तुम से तोरि कवन से जोरै ॥  
 तीरथ-ब्रह्म न करै अँदेसा ।

तुम्हरे चरन-कमल क भरोसा ॥  
 जहँ-जहँ जाउँ तुम्हारी पूजा ।

तुम-सा देव और नहिं दूजा ॥  
 मैं अपनो मन हरि से जोन्यों ।

हरि से जोरि सबन से तोन्यों ॥  
 सब ही पहर तुम्हारी आसा ।

मन-क्रम-बच्चन कहै रैदासा ॥

( १२ )

योथो जनि पछोरो रे कोई ।

जोइरे पछोरो, जा मैं नाज-कम होई ॥

थोथी काया, थोथी माया,

योथा हरि बिन जनम गँवाभा ॥

योथा पंडित, योथी बानी ।

योथी हरि बिन सबै कहानी ॥

योथा मंदिर भोग-बिलासा ।

योथी आन देव की आसा ॥

साचा सुमिरन नाम विसासा ।

मन बच कर्म कहै रैदासा ॥

( १३ )

का तूँ सोचै, जाग दिवाना ।

शूठी जिडन सच्च करि जाना ॥

जिन जनम दिया सो रिजक उमड़ावै,

घट-घट भीतर रहट चलावै ।

करि बंदगी छाड़ि मैं-मेरा,

हृदय करीम सँभारि भुवेरा ॥

जो दिन आवै सो दुख मैं जाई,

कीजै कूच रह्यो सच्च नाहीं ।

सगि चली है, हम भी चलना,

दूर गवन, सिर ऊपर मरना ॥

जो कुछु बोया, लुनिये सोई,

ता मैं फेर-फार कस होई ।

छाड़िय कुर, भजै हरि-चरना,

ताको मिटै जनम अह मरना ॥

आगे पंथ यगा है शीता,  
वाँड़-भार जैसा है पैना ।

जिस कर मारा है तेरा,  
पंथी पंथ सेवार उद्वेष ॥  
नथा है खम्भा, क्या है खाया, चल दरहाल दिवान बुलाया ।  
गाहिव तो पै लेया लेयी, भीड़ पड़े तूँ भरि-भरि देसी ॥  
अगम भिराना, किया पसारा, सृशि परशो चहुँदिसि अँधियारा ।  
कह रेनाग आग्यान दिवाना, अजहुँ न चेतहु नीफँद म्यामा ॥

( १४ )

हर जिन नहिं काँइ परीत-पावन, आनहिं ध्यावेरे ।  
हम अपूज्य पूज्य भये हरि ते, नाम अनूपम गावेरे ॥  
अश्रद्य ध्याकरन व्यानै, तीन काल पट जीता रे ।  
प्रेम भगति अंतरगति नाहीं, ता ते धानुक नीका रे ॥  
ता ते भले स्थान को भन्हूँ, हरि चरनन चित लावैरे ।  
मुझा मुक्त वैकुंठ वास, जिवत यहाँ जस पावैरे ॥  
हम अपराधी नीन्ह वर जनमे, कुरुँव लोक करै हाँसी रे ।  
कह रैदास राम जपु रमना, कटै जनम की फौसी रे ॥

( १५ )

चल मन ! हरि-चटसाल पढ़ाऊँ ॥  
गुरु की साठी, ध्यान का अच्छर,  
विसरै तौ सहज समाधि ल्याऊँ ॥  
प्रेम की पाठी, सुराति की लेखनि,  
ररै ममौ लिखि औँक लखाऊँ ॥  
येरहि विधि मुक्त भये सनकादिक,  
हृदय विचार-प्रकास दिखाऊँ ॥  
कामद कँवल सति ससि करि निर्मल,  
जिन रसना निसदिन गुन गाऊँ ॥  
कह रैदास राम भजु भाई,  
मंत साखि दे वहुरि न आऊँ ॥

( १६ )

बहु मन ! राम नाम सँभारि ।  
माथा के भ्रम कहा भूल्यो, जाहुरे कर जारि ।  
देखि धौं इहाँ कौन तेरो, सगा सुत नाह नारि ।  
तोरि उत्तंग सब दूरि करिहैं, देहिंगे तन जारि ।  
प्रान गये कहो कौन तेरा, देखि सोन्ह-विचारि ।  
बहुरि येरि कलिकाल नाहीं, जीति भावै हरि ।  
बहु माया सब थोशरी रे, भगति दिस प्रतिहारि ।  
कह रैदास सत वचन गुरुके, सो जिब ते न बिसारि ॥

( १७ )

तेरी प्रीत गोपाल सों जनि घटै हे  
मैं मोलि महँगे लई  
हृदय सुमिरन करूँ, जैन अ  
लक्ष्मी हरिक धूर राखूँ ।  
मन मधुकर करौं, चित्त चरना धरौं,  
राम-रसायन रसना चाहूँ ॥  
साधु सँगत बिन भाव न उपजै,  
भाव-भगति क्यों होइ तेरी ।  
बदत रैदास रुनाथ सुनु बीनती,  
गुरु-प्रसाद कृपा करौं मेरी ॥

( १८ )

जो तुम गोपालहि नहिं गैहौ ।  
तो तुम काँ शुख मैं दुख उपजै, सुख हि कहाँ ते पैहै ॥  
माला नाय सकल जग डहको छूँठो भेख बनैहै ।  
छूँठे ते साँचे तब होइहै, हरिकी सरन जब येहै ॥  
कनरस बतरस और यबै रस छूँठहि मूँड ढोलैहै ।  
जब लगि तेल दिया मैं बाती देखत ही बुझि जैहै ।  
जो जन यम नाम रँग राते और रंग न सुहैहै ।  
कह रैदास ! सुनो रे कृपानिधि प्रान गये पलितैहै ॥

( १९ )

अब कैसे छुटै नाम-रट लागी ॥  
प्रभुजी ! तुम चंदन, हम यानी ।  
जा की अँग-अँग वाम समानी ॥  
प्रभुजी ! तुम बन, वस हम मोरा ।  
जैसे चितवत चंद चकोग ॥  
प्रभुजी ! तुम दीपक, हम बाती ।  
जा की जोति वरे दिन गती ॥  
प्रभुजी ! तुम मोती, हम धागा ।  
जैसे लोनहि मिलत मुहागा ॥  
प्रभुजी ! तुम स्वामी, हम दासा ।  
ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥

( २० )

प्रभुजी ! नगति सरन तिहारी ।  
जग-जीवन गम गमी ॥  
गली-गली को जल नहि आया,  
सुरसरि जाय समाया ॥

संगत ६

खाँति बूँद के

हाह जाई ।

ओही बूँद कै मोता, ऊपजै,  
संगति की अधिकाई ॥  
तुम चंदन, हम रेड वापुरे,  
निकडु तुम्हरे आसा ।

संगत कै परताप महातम,  
आवै वाम सुवासा ॥

जाति भी ओढ़ी, करम भी ओढ़ा,  
ओढ़ा कमव हमारा ।  
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है,  
कह रैदास चमारा ॥

( २१ )

जो दिन आवहि सो दिन जाही ।

करना कूच, रहनु थिरु नाही ॥

ऐ चलत है, हम भी चलना ।

दूरि गवनु, सिर ऊपरि मरना ॥

झगा तू सोया, जागु अयाना ।

तैं जीवन-जग सचु करि जाना ॥

जिन दीया सु रिजकु ऊँचरावै ।

सभ घट भीतरि हाड चलावै ॥

करि बंदियी, छाँड़ि मैं-मेरा ।

हिरदै नासु सम्हारि सबेरा ॥

बगु मिरानो, पथु न सँचारा ।

साँझ परी, दह दिसि ऊँभियारा ॥

कह रविदास नदान दिवाने ।

चेतसि नहि दुनिया फन खाने ॥

( २२ )

गिर भिरन करौं, नैन अबलोकनो,  
खनग-बानी सुजसु पूरि राखो ॥

उकर करौं चरन हिरदे धरौं,

रसन अमृत रामनाम भालौं ॥

मेरी प्रीति गोविंद से जानि बैठै,

मैं तो मोलि महँगी लई जीव सटै ॥

साध-संगति विना भाव नहि ऊपजै,

भाव विन भगति नहि होय तेरी ॥

कहै रविदास एक बेनती हरि सिंड़,

पैज राखहु राजा रम ! मेरी ॥

( २३ )

मौ कहा जानै पीर पराई,

जा के दिल में दरद न आई ॥

दुखी दुहागिनि होइ प्रियहीना,

नैह निरति करि सेव न कीना ।

स्वाम-प्रेम का पंथ दुहेला,

चलन अकेला, कोइ संग न हेला ॥

सुख की सार सुहागिनि जानै,

तन-नमन देय अंतर नहि आनै ।

आन सुनाय और नहि भावै,

राम-रसायन रसना जावै ॥

खालिक तौ दरमंद जगाया,

बहुत उमेद, जवाब न पाया ।

कह रैदास कवन गंति मेरी,

सेवा-न्यंदंगी न जानै तेरी ॥

( २४ )

दरमन दीजै राम ! दरसन दीजै ।

दरसन दीजै, बिलैव न कजै ॥

दरसन तोरा जीवन मोरा । बिन दरसन क्यूँ जिवै नकोरा ॥

साधो सत गुरु, सब जग चेला । अबकै बिछुरे मिलन दुहेला ॥

धन-जीवन की फूलै आसा । सत-सत भावै जन रैदासा ॥

रैदास रात न सोइये, दिवस न करिये स्वाद ॥

अहनिसि हरिजी सुमिरिये, छाँड़ि सकल प्रतिवाद ॥

## संत निपटनिरंजनजी

(जन्म सं० १६८०, चैदरीगाँव (बुन्देलखण्ड), देहावसान सं० १७९५ अगहन कृष्ण ११, आयु ११५ वर्ष।)

संगत साधुन की करिये,  
कपटी लोगन सों डरिये ।

कौन नफा दुरजन की संगत, हाय-हाय करि भरिये ॥  
शानी मधुर सरस मुख गोलत, अवस सुनिध भव तरिये ।  
'निरंजन' प्रभु अन्तर निरमल, हीये भेद विसरिये ॥

दरि के दात कहावत हो,  
मन में कौतुकी आस ।

राम-नाम को परगट बेने, करत भक्ति को नास ॥  
मारा भोह लोभ नहि छूटे, चाहत प्रेम प्रकास ।  
कहत 'निरंजन' तव प्रभु रीसे, जब मन होत निरास ॥  
  
दोस्ती में विवाद वसै, विद्या अचिक बाद वसै,  
भोग माहि रोग पुनि सेवा माहि हीनता ।  
अदर मैं मान वसै, सुन्ति मैं गिलान वसै,  
आवन मैं जान वसै, रूप माहि दीनता ॥

भोग मैं अभोग, औ संयोग मैं वियोग वसै,  
पुन्य माहि वंधन औ लोभ मैं अथीत  
'निपट' नवीन ये प्रबीननी सुबीन लीन,  
हरिजू सों प्रीति सब ही सों उदासीन  
सीख्यौ है सिलोक औ कवित्त छंद नाद सदै,  
ज्योतिषको सीख्यौ मन रहत गहर  
सीख्यौ सौदागिरी त्यौं बजाजी और रस रीति,  
सीख्यौ लाख फेरन ज्यौं बहाँ जात पूर  
सीख्यौ सब जंत्र-मंत्र, तंत्रनहू सीखि लीन्हे,  
पिंगल पुरान सीख्यौ सीखि भयौ स  
सब गुन खान भयौ 'निपट' स्थानो, हरि  
भजिन्हो न सीख्यौ, सबै सीख्यौ गयौ धूर  
ऊँट की पूँछ सों ऊँट बैध्यौ हमि ऊँटन की-सी कतार च  
कौन चलाइ कहाँ कों चली, बलि जैहै तहाँ कछु फूल फर  
ये सिगरे भत ताकी यही गति, गाँव को नाँव न कौन गा  
ग्यान विना सुधि नाहि 'निरंजन', जीव न जाने बुरी कि भ

## संत बीरु शाहव

(जन्म-स्थान और जीवनकालका कुछ लिखित पता नहीं। सम्भवतः किसी पूर्वी जिलेके निवासी, वावरी साहिशके द्विष्टक । जाविर्भावनाल अनुमानतः विक्रमकी १७ वीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध रहा ।)



हंसा ! रे बाह्यल मोर याहि घराँ,  
करनो मैं कवनि उपाय ।  
मोतिया चुगन हंसा आयल हो,  
सो तो रहल मुलाय ॥  
झीलर को बगुला भयो है,  
कर्म कीट धर खाय ।  
  
सतगुर सत्य दया कियो, भव-वंधन लियो छुडाय ॥

यह संसार सकल है उंधा, मोहन-माया लप्या  
'बीरु' भक्त हंसा भयो, सुखन-सागर चल्यो है नदी  
आली ! रूप लागी लौ आछे मं  
हियरा मध्य मोहनि मूरति राखिलो जरं  
अलखवान पुरि आसन ध्यान माँझ विपुनि<sup>\*</sup> जो  
दरस परम मोहन मूरति देखिलो तरं  
कोठि ब्रह्मा जाको पारन पावैं सुर नर मुनि को ग  
'बीरु' भक्त केरा मन स्थिर नाही मैं पापी भजियो कंग-

## श्रीबावरी साहिबा

(समय अकअरसे पूर्व, गुरु महात्मा माथानंद, स्थान दिल्ली।)

बावरी रावरी का कहिये, मन हूँ के परंग भरै नित भाँवरी ।  
भाँवरी जानहि संत मुजान, जिन्हें हरिरूप हिये दरसाव री ॥  
साँवरी सूरत, मोहिनी मूरत, देकर ग्यान अनंत लखाव री ।  
लावरी गौह निहारी प्रभू, गति रावरी देखि भई मति वावरी ॥  
जप-माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम ।  
कचै मन नाचै बृथा, साँचै राचै राम ॥

मनका फेरत जुग गया, गया न मन का केर ।  
कर का मनका छाँड़ि कै, मन का मनका फेर ॥  
अजपा जाप सकल घट ब्रतै, जो जानै सोइ पेला ।  
गुरुगम ज्योति अगम धट ब्रासा, जो पापा सोइ देला ॥  
मैं बंदी हैं परम तत्त्व की, जग जानत की भोरी ।  
कहत 'बावरी' सुनो हो बीरु, सुरति कमल पर डोरी ॥

## यारी साहब

(जन्म वि० सं० १७२५ अनुमानतः, जन्म-स्थान—सम्भवतः दिल्ली, जाति—मुसलमान, गुरु—बीरु साहब, शरीरान्त—अनुमानतः वि० सं० १७८० )



नैनन आगे देखिये  
तेज-पुंज जगदीप ।  
बाहर-मीर रमि रहयो,  
सौ धरि राखो सीस ॥  
आठ पहर निरखत रहो,  
सनमुख सदा हजूर ।  
कह यारी बरही मिलै, कहे जाते दूर ॥  
आतम नारि सुहागिनी, सुंदर आमु सँवारि ।  
पिय मिलिये को उठि चली, चौमुख दियना बारि ॥  
हीं तो खेलौं पिया सँग होरी ।

दरस-परस पतिवरता पिय की, छवि निरखत भद्र बैरी ॥  
रोरह कला सँपूरन देवौं, रवि-ससि भे इक टौरी ॥  
जव तें दृष्टि परो अधिनासी, लगो रूप-ठगौरी ॥  
रसना रक्षत रहत निस-बासर, नैन लगो यहि ढौरी ॥  
कह यारी भक्ती करु हरि की, कोई कहे सो कहौ री ॥

दिन-दिन प्रीति अधिक मोहि हरि की ।  
काम क्रोध जंजाल भसम भयो,  
निरह-अगिनि लगो धधकी ॥  
धुकुधुकि धुधुकि सुलगति अतिनिर्मल,  
झिलमिल झिलमिल झलकी ।  
झरि-झरि परत अँगार अधर चारी,  
चढि अकास आगे सरकी ॥

विरहिनी ! मंदिर दियना बार ॥  
विन वाती बिन तैल जुगति सों, बिन दीपक डंजियार ।  
प्रानपिया मेरे धर आयो, रचि-रचि सेज सँबार ॥  
सुखमन सेज परम तत रहिया, पिय निरगुन निरकार ।  
गावहु री मिलि आनंद-मंगल, 'यारी' मिलि के थार ॥

सना, राम कहत तें आको ।  
पानी कहे कहुँ प्यास बुझति है,  
प्यास बुझै जदि चालो ॥  
पुरुष-नाम नारि ज्यों जानै,  
जानि-बूँझि नहि भालो ।  
दृष्टि से मुश्टि नहि आवै,  
नाम निरंजन वा को ॥  
गुरु-परताप साथु की संगति,  
उलटि दृष्टि जव ताको ॥  
यारी कहै, सुनो भाई सतो,  
बज्र बेधि कियो नाको ॥  
देखु विचारि हिये अपने नर,  
देह धरो तौ कहा बिगरो है ॥  
यह मट्टी का खेल-खिलौना बनो,  
एक भाजन, नाम अनंत धरो है ॥  
नेक प्रतीति हिये नहि आवति,  
मर्म भूलो नर अवर करो है ॥  
भूधन ताहि गलाइके देखु,  
'यारी' कंचन ऐनको ऐन धरो है ॥

## संत बुद्धा (बूला) साहब

( यारोग्यादानके शिष्य, सिंहिवाल विठ्ठल विठ्ठल सं० १७५० से १८२५ के बीच। जन्मस्थान—मुरुकुड़ा गाँव, जिला गढ़ीपुर  
गढ़ी, परन्तु नाम नुमानीराम। इसके मतसे—कल्य—विठ्ठल सं० १८८९। मृत्यु—विठ्ठल सं० १७६६। आयु ७७ वर्ष । )

( प्रेषण—श्रीदलरामजी शास्त्री )



माई के नाम वी चलि जावै ।  
मुगिरत नाम वहुत सुख पायो,  
अंत कतड़ै नहिं ठावै ॥  
नाम विना मन स्वान-मैंजारी,  
बगधर चिता लै जावै ।  
विन दरभन-परभन मन कैसो,  
उयो लूले को गावै ॥  
मवन मथानी हिरदे हैंदो, तब पावै मन ठावै ।  
जन बुद्धा बोलहि कर जोरे, सतगुरु चरन समावै ॥

थन तुलवती जिन जानल अपना नाह ॥  
जेकरे हेतू ये जग छोड़यो, सो दहुँ कैसन बाट ।  
रैन-दिवस लव लाइ रहो है, हृदय निहारत बाट ॥  
प्राथ-संगति मिलि बेदा बौधल, भवजल उतस्य पार ।  
अब वी गवने वहुरि नहिं अवने, परखि-परखि टकसार ॥  
वारीदार परम गुरु भेरे, बेदा दिहल लखाय ।  
जन बुद्धा चरन बलिहारी, आमेंद मंगल गाय ॥  
आची भक्ति गुपाल की, मेरो मन माना ।  
मनसा बाचा कर्मना, सुनु मंत्र सुजाना ॥  
दृग्यय लुजा है रहो, बहिरा अरु काना ।  
गम नाम से खेल है, दीजै तन दाना ॥  
भक्ति हेतु यह छोड़िये, तजि गर्व-गुमाना ।  
जन बुद्धा पायो बाक है, सुमिरो मगवाना ॥

लान चकोर मानो चंद ।  
निरखि दहुँ दिलि हेरि आनो, होत जोव अनेद ॥  
जत उदित उजल सीप बरसै, नैन हूँ झार लाय ।  
होत अगम अगाध सोमा, सो पै वरनि न जाय ॥  
जग आउ बास निरास कीरही, लीन्ही प्रेम निचोय ।  
प्रियत रुचि-रुचि दास बुद्धा, नाम निर्मल लोय ॥  
भय की बार मो पै होहु दयाल । रोम रोम जन होइ निहाल ॥  
जन विनवै आठौ पहवार । तुम्हेरे चरन पर आपा धार ॥  
तुम तौ राम हु निर्णुन लार । मीरे हिय महुँ तुम आवार ॥  
कुम विनु जीवन कैने काज । बार-बार मो कौं आवै लाज ॥

मतुगुरु चरनन साज समाज । बुद्धा भाँगे भक्ती

है मन ! कह गोनिंद से प्रीति ।

बीच मैदान मै देइयो, चैहट नगरा  
छबन सुनि लै नाद प्रभु की, नैन दरसन  
अचल अमर अलेख प्रभुजी, देख ही कोउ  
भाव संग तू भक्ति करि ले, प्रेम से लव  
सुरति से तू वैर वौधो, सुखुक तीनो ।  
अधम अधीन अजाति बुद्धा, नाम से लव  
अर्थ धर्म अरु काम भोछाइ, आपने पद  
एकै ब्रह्म सकल माँ अद्वै । काम-कोष से भरमत  
काम-कोष है जम की फाँसी । मरि-मरि जिव भरमै चै  
लव चौरासी भरन गँवाया । मानुष जनम चहुरि के  
मानुष जनम दुर्लभ रे भाई । कह बुद्धा आदी जरा ।

आली आजु कि रैन प्रीति मन भावै ॥

गाय बजावत हँसत हँसावत, सब रस-लेय म  
जनबुद्धा हेरि-चरन मनावै, निरखि सुरति गति आपु ।  
हरि हम देख्यो नैनन बीच । तहों ब्रह्मत धमारि व  
आदि अंत सभि बन्धो बनाय । निरसुन-सरसुन दोनों  
चीन्हेव तिन्ह को लियो लगाय । अनबूझो रहिगो मैर  
सुन्न भवन मन रहो समाय । सहै कुटस लहरि अनेत  
जगमग-जगमग हैं अंजोर । जन बुद्धा है सेवक

कोटि शुल्के भुव र्यान हिये नहिं आद्या  
राम नाम को ध्यान धरो मन लाद्या  
विना व्यान नहिं मुक्ति विछे पछिताद्या  
बुद्धा हृदय निचारि राम गुन गाद्या  
जिवन हमार सुफल मो हो, सद्याँ सुलल गा  
एक पलक नहिं त्रिलुरे हो, मौई मेर ग  
पुलकि-पुलकि रति मानल हो, जानल  
मन एवना नेजासन हो, तिलेनी  
हम धन तहाँ विगजल हो, लिलेन  
सुरति निरति ले जाद्य हो, पादप गुर  
वहुरि न यह जग आदव हो, नादव निर्णुन गो

जन बुल्ला धर छाइब हो, वारब तहँ जौति ।  
अनहद डंक बजाइब हो, हानि कबहुँ न होति ॥

भाई इक साँई जग-न्यारा है ।

सो मुझ में, मैं वाही माहीं, ज्यों जल मढ़े तारा है ॥  
वा के रूप रेख काया नहिं, विता सीस विसतारा है ।  
अगम अपार अमर अविनासी, सो संतन का प्यारा है ॥  
अनत कला जाके लहरि उठतुहै, परम तत्त्व निरकारा है ।  
जन बुल्ला ब्रह्मशान बोलतुहै, सतगुरु शब्द अधारा है ॥

या विधि करहु आपुहि पार ।

जस भीन जल की प्रीति जानै, देखु आपु विचार ॥  
जस सीप रहत समुद्र माहीं, गहत नाहिन वार ।  
वा की सुरत अकास लागी, स्वाति बूँद अधार ॥  
चकोर चौंद सों दृष्टि लखै, अहार करत अँगार ।  
दहत नाहिन पान कीन्हे, अधिक होत उजार ॥

कीट भूँग की रहनि जानो, जाति-पाँति गँदाय ।  
ब्रह्म-अब्रह्म एक मिल भे, निरंकार समाय ॥  
दास बुल्ला आस निरखहिं राम-चरन अपार ।  
देहु दरसन, मुक्ति परसन, आवा-गवन निवार ॥  
आठ पहर चौंसठ घरी, जन बुल्ला धर ध्यान ।  
नहिं जानौं कौनी धरी, आह मिठैं भगवान ॥  
आठ पहर चौंसठ घरी, भरो पियाला प्रेम ।  
बुल्ला कहै विचारि कै, इहै हमारे नैम ॥  
जग आये जग जागिये, परिये हरि के नाम ।  
'बुल्ला' कहै विचारि कै, छोड़ि देहु तन-धाम ॥  
बोलत-डोलत हँसि खेलत, आपुहि करत कलेल ।  
अरज करो बिन दाम ही, 'बुल्लहिं' लीजै भोल ॥  
ना वह दूरै ना वह फूरै, ना कवहीं कुम्हिलाय ।  
सर्व कला गुन आगरो, मो पै वरनि न जाय ॥

## जगजीवन साहब

( जन्म-संवत् १७२७ वि०, जन्म-स्थान सरदहा गाँव ( वारांकी जिला ), जाति—चंदेल क्षत्रिय । शरीरान्त वि० सं० १८१८ कोटवा, वारांकी जिला )

मैंतैं गाफिल होहु नहिं, समुद्दि कै सुद्द सेंभार ।  
जैमै धर तैं आयहू, तहँ का करेहु बिचार ॥  
इहाँ तो कोऊ रहि नहिं, जो-जो धरहै देह ।  
अंत काल दुख पाइहै, नाम तैं करहु सनेह ॥  
तजु आसा सब झूठ ही, सँग साथी नहिं कोय ।  
केउ केहु न उदारही, जेहि पर होय सो होय ॥  
सत समरथ तैं राखि मन, करिय जगत को काम ।  
जगजीवन यह मंत्र है, सदा सुख-विसराम ॥  
कहवाँ तैं चलि आयहू, कहाँ रहा अस्थान ।

सो मुधि विसरि गई तोहिं, अब कस भयसि हेवान ॥  
अबहुँ समुद्दि के देहु तैं, तजु हंकार-गुमान ।  
यहि परिहरि सब जाइ है, होइ अंत नुकसान ॥  
दीन लीन रहु निसुन्दिना, और सर्वसौ त्यागु ।  
अंतर बासा किये रहु, महा हितू तैं लागु ॥  
काया नगर सोहावना, सुख तब हीं पै होय ।  
रमत रहै तेहि भीतरे, दुख नहिं व्यापै कोय ॥  
मृत मंडल कोउ घिर नहीं, आवा सो चलि जाय ।  
गाफिल छै फंदा परयौ, जहँ तहँ गयो विलाय ॥

## गुलाल साहब

( सुप्रसिद्ध संत बुल्ला साहबके शिष्य, जन्म वि० सं० १७५० के लगभग । जन्म-स्थान तालुका वसहरि ( जिला गाजीपुर ) के निरान्त भुखुड़ा गाँव । जाति—क्षत्रिय । शरीरान्त अनुमानतः वि० सं० १८१६, किसीके मतसे १८५० के लगभग । )

तुम जात न जान रँवारा हो ।  
को तुम आहु, कहाँ तैं आयौ, झुडो करत पसारा हो ॥  
माटी कै बुंद पिंड कै रचना, ता मैं प्रान प्रियारा हो ।  
लोभ लहरि मैं मोह को धारा, सिरजनहार विसारा हो ॥  
अपने नाह को चीन्हत नाहीं नैम धरम आचारा हो ।

सपनेहुँ साहब सुधि नहिं जान्यौ, जमदुत देत पछारा हो ॥  
उल्लहौ जीव ब्रह्म में मेल्यौ, पाँच-पचिस धरि मारा हो ।  
कहैं गुलाल साधु मैं गनती, मनुवा भइल हमारा हो ॥  
राम मोर पुंजिया, राम मोर धना । निस-बासर लागल रहु मना ॥  
आठ पहर तहँ सुरति निहारी । जस वालक पालै महतारी ॥

धन सुत लछमी रथो लोभाय । गर्भ मूल सव चल्ये गँवाय ॥  
वहुत जनन भेख रख्ये बनाय । विन हरि-भजन इँद्रोरन पाय ॥  
दिदू तुरका नव गयल बहाय । चौरासी में रहि लिपाय ॥  
करै गुलाल सत्तगुरु वलिहारी । जाति-पाँति अब छुटल हमारी ॥  
मूढ़हु रे निर्फल दिन जाय । मानुष-जन्म बहुरि नहिं पाय ॥  
कोइ कासी कोइ प्राण नहाय । पाँच चोर घर छुड़हिं बनाय ॥  
करि अद्वान रायहि भन आसा । किरिन्फिरि नरक कुँडमें बासा ॥  
खोजो आप चित्त के ग्याना । सत्तगुरु सत्त बचन परवाना ॥  
समय गये पाढ़े पछिताव । कहै गुलाल जात है दाव ॥

जो दे कोउ चरन-कमल चित लावै ।

तवहीं कटै करम के फंदा, जमदुत निकट न आवै ॥  
पाँच-पचिस सुनि थकित भये हैं, तिरुन-ताप मिटावै ॥  
सत्तगुरु-कृष्ण परम पद पावै, फिर नहिं भव-जल धावै ॥  
हर दम नाम उठत है करारी, संतन मिलि-जुलि पावै ॥  
मगन ययो, सुख-दुख नहिं व्यापै, अनहट दोल बजावै ॥  
धरन-प्रताप कहाँ लंगि वर्सौ, मो भन उक्ति न आवै ॥  
कहैं गुलाल हम नाम-भिलारी, चरनमें घर पावै ॥

तन में राम और कित जाय । घर वैठल भेटल खुराय ॥  
जोगी-जती बहु भेख बनावै । आपन मनुवाँ नहिं समुक्षावै ॥  
पूजहिं पृथल, जल को ध्यान । खोजत धूरहिं कहत पिसान ॥  
आसा-नुज्जा करै न थर । दुबिधा मातल फिरत सरीर ॥  
ओक पुजावहि धर-घर धाय । दोजख कारन मिल्ल गँवाय ॥  
झुर नर नाग मनुष औतार । विनु हरि-भजन न पावहि पार ॥  
कारन धै धै रहत सुल्यम । तारें फिर-फिर नरक समाय ॥  
अब की बेर जो जनहु भावै । अवधि बिते कहु हाथ न लाई ॥  
कह गुलाल न तौजस्मपुर धाम । सदा सुखद निज जानहु राम ॥

नाहक गर्व के हो अंतहि, लाक में मिलि जायगा ॥  
दिना चारि को रंग कुसुम है, मैमैं करि दिन जायगा ॥  
बालु क मंदिल दहत बार नहिं, फिर पाढ़े पछितावेगा ॥  
रचि-रचि मंदिल कनक बनायो, ता पर कियो है अवासा ॥  
धर में चोर रैनि-दिनि मूरहिं, कहड़ कहाँ है बासा ॥  
पहिर पठंवर मयो लाडिला, बन्यो छैल मद माता ॥  
मैवी चक फिरै सिर ऊपर, छिन में करै निपाता ॥  
नेकु धीर नहिं धरत बाबरे, ठौर-ठौर चित जाते ॥  
देवहर पूजत तीर्थ नेम व्रत, फोकट को रंग राते ॥  
का से कहुँ, कोड संग न साथी, खलक सचै हैगना ॥  
कहै गुलाल संतपुर-बासी, जन जीतो है दिवाना ॥

कह भन सहज नाम ब्यौपर, छोड़ि सकल ज्योहर ॥  
निसु-बासर दिन-रैन ढहत है, नेक न धरत करा ॥  
धंधा धोख रहत लपटानो, अमत कित संधर ॥  
मात पिता सुत बंधू नारी, कुल कुदम्ब परिवार ॥  
माया-फाँसि वाँधि भत झूबहु, छिन मे होहु संधर ॥  
हरि की भाकि करी नहिं कबहों, संत-बचन आगार ॥  
करि हँकार मद-गर्व भुलानो, जन्म गये जरि छार ॥  
अनुभव घर के सुधिशे न जानत, का सो कहुँ गँवार ॥  
कहै गुलाल सर्वे नर गाफिल, कौन उत्तरै पार ॥

लगो रंग झुठो खेल बनाया ।

जहै लगि ताको सबै पतारा, गिर्या है यह काया ॥  
मोर-तोर छुट्टा नहिं कबहों, काम कोध अह माया ॥  
आतम राम नहीं पहिजानत, भौंदू जन्म गँवाया ॥  
नेम के आस धरत नर मूढ़हु, चढ़त चरव दिन जाया ॥  
धुमत-धुमत कहिं पार न पावै, का लै आया, का लै जाया ॥  
साध-सँगति कीन्हें नहिं कबहों, साहव प्रीति न लाया ॥  
कहै गुलाल यह अवसर बीतै, हाथ कछू नहिं आया ॥

अभि-अंतर ही लै लाव मना ।

ना तौ जन्म-जन्म जहजहै हो ॥

धन दारा सुध देखि कै, काहे बौशाई हो ॥  
काल अचानक भारहै, कोउ संग न जाई हो ॥  
धीरज धरि संतोष कर, गुरु-बचन सहाई हो ॥  
पद एकज अंबुज कर नवका, भवसामर तरि जाई हो ॥  
अनेक बार कहि कहि के हारो, कहै लग कहों बुशाई हो ॥  
जन गुलाल अनुमौ पद पायो, छुटलि सकल तुतियाई हो ॥

संतो नारि सों प्रीति न लावै ।

प्रीति जो लावै, आपु ठगावै, मूल बहुत को गावै ॥  
गुरु को बचन हृदय लै लावै, पाँची इंद्री जारै ॥  
गुरु को बचन हृदय लै लावै, पाँची इंद्री जारै ॥  
भनहिं जीति, माया बसि करिकै, काम कोध को भारै ॥  
लोभ मोह ममता को त्यागै, तृक्षा जीयि निहाई ॥  
सील-संतोष सो आसन माडै, निसु-दिन सम्बद विचारै ॥  
जीव दमा करि आपु संभारै, ताव सँगति नित लावै ॥  
कह गुलाल सत्तगुरु वलिहारी, बहुरि न मवजल आवै ॥

अधम भन ! जानत नाहिं राम ।

भरसत किरै धाट हैं जाम ॥  
अपनो कहा करत है सबहीं पावत पतु आगम ॥  
दुरविनिया छोड़त नहिं कबहों, दोह गोर भा गाम ॥

ऊङ्गत रहत विना पर जामे, त्यागि कनक ले ताम ।  
नीक बस्तु के निकट न लागे, भरत है झोरी खाम ॥  
अब की ओर कहा कर मेरो, छोड़ो अपनी हाम ।  
कह गुलाल तोहिं जियत न छोड़ों, खात दोहाई राम ॥

राम राम राम नाम सोई गुन गावै ।  
आपु मारि पवन जारि, गगना गरजावै ॥  
अतिही आनंद-कंद बानिहूँ सुनावै ।  
सत्तगुरु जब दया जानि प्रेम हूँ लगावै ।  
अगम जोति झरत मोति, झिलमिल झारि लावै ।  
चित चकोर निरखि जोति आपु में समावै ॥  
काम क्रोध लोभ मोह तन मन विसरावै ।  
सोइ सुधित धीर सोइ फकीर सोइ कहावै ॥  
जाति मान कुल के कान गरब हूँ गँवावै ।  
कह गुलाल सोई संत आपुहीं कहावै ॥

राम चरन चित अटको ।

सहज सरूप भेल जब कीन्हो, प्रेमलग्न हिय लटको ॥  
लागि लान हिय निरखि-निरखि छबि, सुधि बुधि विसरी अटके नयन  
उठत गुंज नभ गरजि दसहूँ दिसि, निरझर झरत रतन ॥  
भयो है मगन पूरन प्रभु पायो, निर्मल निर्गुन सत तटनी ।  
कह गुलाल मेरे यही लगन है, उलटि गयो जैसे नटनी ॥

हौं अनाथ चरनन लपटानो ।

पंथ और दिस सूक्ष्म नाहीं, छोड़ो तौ फिरौं भुलानो ॥  
जासु चरन सुर नर मुनि सेवहिं, कहा वरनि मुख करौं वयानो ।  
हौं तौ पतित तुम पतितपावन, गति औगति एको नहि जानो ॥  
आठों पहर निरत धुनि होवै उठत गुंज चहुँ दिसा समानो ।  
शरि-शरि परत अगर नैन भारि, पियत ब्रह्म रुचि असी अघानो  
विगस्यो कमल चरन पायो जब, यह मत संतन के मन मानो ।  
जना गुलाल नाम धन पायो, निरखत रूप भयो है दिवानो ॥

तुम्हरी मेरे साहब ! क्या लाऊँ सेवा ।

अस्थिर काहु न देखऊँ, सब फिरत बहेवा ॥  
सुर नर मुनि दुखिया देखों, सुखिया नहि केवा ।  
डंक मारि जम लुटत है, लुटि करत कलेवा ॥  
अपने-अपने रुयाल में सुखिया सब कोई ।  
मूल मंत्र नहि जानहीं, दुखिया मैं रोई ॥  
अचकि चार प्रभु बीनती सुनिये दे काना ।  
जन गुलाल यह दुखिया दीजै भक्ती दाना ॥

प्रभुजी ! वरणा प्रेम निहारो ।

ऊठत-बैठत छिन नहि बीतत याही रीत तुम्हारो ॥  
समय होय भा असमय होवै, भरत न लागत चारो ।  
जैसे प्रीति किसान खेत सों, तैसो है जन प्यारो ॥  
भक्तबछल है बान तिहारो, शुन-औगुन न विचारो ।  
जहँ जहँ जावै नाम गुन गावत, जम को सोच निवारो ॥  
सोचत-जागत सरन धरम यह पुलकित मनहि विचारो ।  
कह गुलाल तुम ऐसो साहब; देखत न्यारो-न्यारो ॥

प्रभु को तन मन धन सब दीजै ।

रैन-दिवस चित अनत न जावै, नाम पदारथ पीजै ॥  
जब तैं प्रीति ल्याँ चरनन सों, जग-संगत नहि कीजै ।  
दीन-दयाल कुपाल दया-निध, जौ आपन करि लीजै ॥  
हूँढत-फिरत जहाँ-तहाँ जग मौं काहु घोष न कीजै ।  
प्रभु कै कुणा औं संत बचन ले, हिरदे मैं लिख लीजै ॥  
कह बरनों, बरनत नहि आवै, दिल-चरबी न पसजै ।  
कह गुलाल याही बर माँगों, संत चरन मोहिं दीजै ॥

माया-मोह के साथ सदा नर सोइया ।

आखिर खाक निदान, सत्त नहि जोइया ॥  
विना नाम नहि मुक्ति, अंध सब खोइया ।  
कह गुलाल संत लोग, गाफिल सब रोइया ॥

राम भजहु लव लाइ, प्रेम पद पाइया ।

सफल-मनोरथ होय, सत्त गुन गाइया ॥  
संत-साध सों नेह, न काहु संताइया ।  
कह गुलाल हरि-नाम तवहिं नर पाइया ॥

झूँठि लगन नर ख्याल, सबै कोइ धाइया ।

हर दम माया सों रीति, सत्त नहि आइया ॥  
बहत-फिरत हर रोज, काल धरि खाइया ।  
कह गुलाल नर अंध, धोख लपटाइया ॥

खोलि देखु नर आँख, अंध का सोइया ।

दिन-दिन होतु है छीन, अंत फिर रोइया ॥  
इश्क करहु हरि-नाम, कर्म सब खोइया ।  
कह गुलाल नर सत्त, पाक तब होइया ॥

केवल प्रभु को जानि के इलिम लखाइया ।  
पर होइ तब जीव, काल नहि खाइया ॥  
नैम करहु नर आप, दोजात नहि धाइया ।  
कह गुलाल मन पाक, तवहिं नर पाइया ॥

राम के नाम मोक्षम नहि करत नर,  
फिरत संसार चुँग और धाशा।  
परत संताप सब पाप सिरपर लिये,  
साध औ संत नहि नेह लाया॥  
वाँधि है काल जंजाल जम जाल में,  
रहत नहि चेत, सब सुधि हेराया।  
कहै गुलाल जो नाम को जानि है,  
जीति है काल सोइ यान पाया॥  
मोहि नाथ मिलावहु कौने गुना,  
प्रभु करि लौजै अपनो जना।  
दुख सुख संपति जीव को लायी,  
अंत काल वसि सात जना॥  
यह मन चंचल चोर अन्याई,  
भक्ति न आवत एक किना।  
कृपा कियो प्रभु दृष्टि निहारथो,  
सब थकि लागि रहल कोना॥  
अमर मोर पिय, उपजे न बिनसे,  
पुलकि-पुलकि मिलि कै गवना।  
कह गुलाल हम भये सोहागिनि,  
अब नहि अवना नहि जवना॥

जो चित लगे राम नाम अस।  
तृष्णावंत जल पियत अमैंद अति,  
शकलहि गाँव मिलत है जौन जस॥  
निर्धन धन सुत बाँझ वसत चित,  
संपति बदत न घटत जौन अस।  
करत है कपट सौंच करि मानत,  
मरान होत नर मूढ़ सकल पसु॥  
प्रेम गलित चित सहनसील अति,  
सर्व भूत पर करत दया रस।  
आमैंद उदित अमम गति यानी,  
विलोकनाथ पति काहे न होइ वस॥  
सतगुरु-प्रीति परम तत सत-भत,  
विमल विमल बानी में रहत लस।  
कह गुलाल मिल संत-सिरोमन,  
काहे करत कहु करत कवन कस॥

सोई दिन लेखे जा दिन संत-मिलाय।

संत के चरन-कमल की महिमा, मोरे बूते बरनि न जाहि॥  
जल तरंग जल ही तें उपजे, फिर जल माहि समाहि॥  
हरि में साध, साध में हरि है, साध से अंतर नाहि॥  
ब्रह्मा बिस्तु महेस साध सँग, पाछे लगे जाहि॥  
दास गुलाल साध की संगति, नीच परम पद पाहि॥

## संत दूलनदासजी

( जन्म-संवत्—१७१७ वि०, जन्म-स्थान—समेसी आम ( जिला लखनऊ ), जाति—क्षत्रिय, जगजीवन साइके शिष्य,  
शरीरान्त सं० १८३५ वि० )

नाम सुमिरु मन मुख अनारी।  
छिन-छिन आयू धटत जातु है,  
समुद्धि गहु सत-डोरि सँभारी॥  
यह जीवन सुपने को लेखा,  
का भूलसि झूठी संसारी।  
अंतकाल कोइ काम न अहै,  
मातु पिता सुत बंधु नारी॥  
दिवस चारि को जगत-सगाई,  
आखिर नाम-सनेहु करारी।  
रसना सत्त नाम रटि लावहु,  
उधरि जाइ तोरि कपट-किवारी॥  
नाम कि डोरि पोढ़ि धरनी धर,  
उलठि पवन चहु गगन अटारी।

तहुं सत साहिव अलख रूप वै,

जन दूलन करु दरस दिदारी॥

रहु मन नाम की डोरि सँभारे।

धृग जीवन नर! नाम-भजन विनु, सब गुन वृथा तुम्हारे॥  
पाँच-पचीसो के मद माते, नित-दिन सौँझ-यकरे।  
बंदी-छोर नाम-सुमिरन विनु, जन्म-पदारथ धारे॥  
अजहु चेत कर हेत नाम है, गज-गनिका जिन्द तारे॥  
चालि नाम-रस भर्त-भगन है, बैठहु गगन दुयारे॥  
यहि कछिकाल उपाई अवर नहि, बनिहै नाम पुकारे॥  
जगजीवन साई के चरन, लगे दाम दुलारे॥  
यह नहिया इगमगि नाम विना। लाइ ले मर नाम रठना॥  
इत-उत भैजिल अगम वना। अहै जहर यार तना॥

मैं निशुनी, गुन एकौ नहीं। माँझ धार नहिं कोऊ अपना॥  
दिहेउँ सीस सत्तगुर चरना। नाम अधार है दुलन जना॥

रहु तोहँ राम-राम रठ लाई।

जाइ रठहु तुम नाम अच्छर दुइ, जैनी विधि रटि जाई॥  
राम-राम तुम रठहु निरंतर, स्वोजु न जतन उभाई॥  
जानि परत मौहिं भजन पंथ की, यहौ अरुज्जनि भाई॥  
शालमीकि उल्टा जप कीन्हेउ, भयौ सिद्ध सिधि पाई॥  
सुवा पढ़ावत गणिका तारी, देखु नाम-प्रभुताई॥  
दूलनदास तू राम नाम रठ, सकल सबै विसराई॥  
सत्तगुर साई जगजीवन के, रहु चरनन लघाई॥

मन वहि नाम की धुनि लाउ।

रठ निरंतर नाम केबल, अबर सब विसराउ॥  
साधि सूरत आपनो, करि सुवा सिखर चड़ाउ।  
पोषि प्रेम प्रतीत, तै, कहि राम नाम पढ़ाउ॥  
नामही अनुग्रहु निसु-दिन, नाम के गुन गाउ।  
बनी तौ का अब्रहिं, आगे और बनी बनाउ॥  
जगजीवन सत्तगुर-बन्नन साचे, साच मन माँ लाउ।  
करु बाल दूलनदास सत माँ, फिरि न यहि जग आउ॥

जब गज अरघ नाम गुहरायो।

जब लगि आवै दूसर अच्छर, तब लगि आपुहि धायो॥  
पामैं पियादे मे कहनासय, गरुडासन विसरायो॥  
धाय गजंद, गोद प्रभु लीहो, आपनि भक्ति दिद्धयो॥  
भीरा को विष अमृत कीन्हो, विमल सुजस जग छायो॥  
नामदेव हित कारन प्रभु तुम, मिर्तक गाय जियायो॥  
भक्त हैत तुम जुग-जुग जन्मेउ, तुमहिं सदा यह भायो॥  
बलि-बलि दूलनदास नाम की, नामहि ते चित लायो॥

द्रुपदी राम छस्त कहि टेरी।

सुनत द्वारिका तै उठि धायो, जानि आपनी चेरी॥  
रही लाज, पछितात दुसासन, अंबर लायो देरी॥  
हरि-लीला अबलोकि चकित चित, सकल सभा भुई हेरी॥  
हरि रखवार सामरथ जा के, मूळ अचल तैहि केरी॥  
कवहुँ न लगति ताति बाव तैहि, फिरत सुदरसन केरी॥  
अये मोहि आसा नाम सरन की, सीस चरन दियो तेरी॥  
दूलनदास के साई जगजीवन, इतनी विनती मेरी॥  
तू काहे को जग मे आया, जो पै नाम से प्रीति न लाया रे॥  
तृप्ता काम सबाद घनेरे, मन से नहिं विसराय।  
भोग विलास आस निस-नासर, इत-उत चित भरमायारे॥

चिकुडी-लीर्थ प्रेम-जल निर्मल, सुरत नहीं अन्दवाया।  
दुर्मति करम! मैल सब मन के, सुमिरि-सुमिरि न छुड़ाया रे॥  
कहैं से आये, कहैं को जैहे, अंत खोज नहिं पाया।  
उपजि-उपजि के विनयि गये सब, काल सबै जग खाया रे॥  
कर सतसंग आपने अंतर, तजि तन मोह औ माया।  
जन दूलन बलि-बलि सत्तगुर के, जिन मोहिं अलख लाया रे॥

प्रानी। जप ले त् सतनाम॥

मात पिता सुत कुदुम कचीला, यह नहिं आवै काम।  
सब अपने स्वारथ के संगी, संग न चलै छदाम॥  
देना-लेना जो कुछ होवै, करि ले अपना काम।  
आगे हाट-बजार न पावै, कोइ नहिं पावै ग्राम॥  
काम क्रोध मद लोम मोह ने, आन विलाया दाम।  
कथों मतवारा भया बावरे, भजन करो निःकाम॥  
यह नर-देही हाथ न आवै, चल तू अपने धाम।  
अब की चूक भाफ नहिं होगी, दूलन अचल मुकाम॥

जग में जै दिन है जिंदगानी।

लाइ लेब चित गुरु के चरन, आलस करहु न प्रानी॥  
या देही का कौन भरोसा, उभसा भाडा पानी।  
उपजत-मिटत बार नहिं लागत, क्या मगरुर गुमानी॥  
यह तो है करता की कुदरत, नाम तू ले पहचानी।  
आज भलो भजने को औसर, काल की काहु न जानी॥  
काहु के हाथ साय कछु नाहीं, दुनियाँ है हैरानी।  
दूलनदास विस्वास भजन करु, यहि है नाम निरानी॥  
तै राम राम भजु राम रे, राम गरीब-निबाज हो॥  
राम कहे सुख पाइहो, मुफल होइ सब काज।  
परम सनेही रामजी, रामहिं जन की लाज हो॥  
जनस दीन्ह है रामजी, राम करत प्रतिपाल।  
राम-राम रठ लाव रे, रामहिं दीनदयाल हो॥  
मात पिता गुरु रामजी, रामहि जिन विसराव।  
रहो भरोसे राम के, रामहि से चित चाबहो॥  
धर-बन निसु-दिन रामजी, भक्तन के रखवार।  
दुखिया दूलनदास को रे, राम लगाहै पार हो॥  
राम राम रठ राम राम सुनु, मनुवाँ सुवा सलोना रे॥  
तन हरियाले, बदन सुलाले, बोल अमोल सुहौना रे॥  
सत तंत्र अरु सिद्ध मंत्र पढ, सोई मृतक-जियैना रे॥  
सुवचन तैरे भौजल बैरे, आवारावन-मिटौना रे॥  
दूलनदासके साई जगजीवन, चरन-सनेह दृढ़ीना रे॥

मन ! रामभजन रहु राजी रे ॥

दुनियाँ-दौलत काम न अड़ै, मति भूलहु गज बाजी रे ।  
निमुदिन लगन लगी भगवानहि, काह करै जम पाजी रे ॥  
तन-गम गमन रही किथि साधो, अमर-लोक सुधि साजी रे ।  
दुलनदास के साईं जगजीवन, हरि-भक्ति कहि गाजी रे ॥

साईं हो गरीब निवाज ॥

देखि तुम्हे धिन लागत नाहीं, अपने सेवक के साज ।  
मोहियम निलजन यहि जग कोऊ, तुमऐसे प्रभु लाज जहाज ॥  
बौर कल्पूद्धम चाहित नाहीं, तुम्हरे नाम चरन तें काज ।  
दुलनदास गरीब निवाजहु, साईं जगजीवन महराज ॥

साईं तेरे कारन नैना भये बैरागी ।

तेरा सत दरसन चहौं, कछु और न माँगी ॥  
निसु आसर तेरे नाम की, अंतर धुनि जागी ।  
केरत हैं माला मनौं, अँसुवन शरि लागी ॥  
पलक तजी इत उक्ति तें, मन माया त्यागी ।  
हृषि सदा सत सनमुखी, दरसन अनुरागी ॥  
मदमाते राते मनौं, दाघे विरह आगी ।  
मिलु प्रभु दुलनदास के, कह परम सुभागी ॥

साईं सुनहु विनती मोरि ॥

बुधि बल सकल उपायहीन मैं,  
पायन परौं दोऊ कर जोरि ।

इत-उत कतहूं जाइ न मनुवाँ,  
लगि रहै चरनन माँ डोरि ॥

राखहु दासहि पास आपने,  
कस को सकिहै तोरि ।

आपन जानि के मेटहु मेरे,  
औगुन सब क्रम भरम खोरि ॥

केवल एक हितू तुम मेरे,  
दुनियाँ भरि लाख करोरि ।

दुलनदास के साईं जगजीवन,  
माँसौं सत दरस निहोरि ॥

साईं-भजन ना करि जाइ ।

पाँच तसकर संग लागे, मोहिं हटकत धाइ ॥  
चहत मन सतयंग करनो, अधर वैठि न पाइ ।  
चहत उतरत रहत छिन नाहिं तहूं ठहराइ ॥  
कठिन फाँसी अहै जग की, लियो सबहि बझाइ ॥  
पास मन मनि नैन निकटहि, सत्य गयो भुलाइ ॥  
जगजीवन सतगुरु करहु दाया, चरन मन लपटाइ ॥  
दास दुलन बास सत माँ, सुरत नहिं अलगाइ ॥

भक्तन नाम चरन धुनि लाई ।

चारिहु जुग गोहारि प्रभु लागे, जब दासन गोहराई ॥  
हिरनाकुस रावन अभिमानी, छिन माँ खाक मिलाई ॥  
आविच्चल भक्ति नाम की महिमा, कोउ न सकत मिटाई ॥  
कोउ उसदास न एकौ मानहु, दिनदिन की दिनताई ॥  
दुलनदास के साईं जगजीवन, है सत नाम दुर्वाई ॥  
नाम सनेही बावरे, हुग भरि-भरि आवत नीर हो ।  
रस मतवाले रसमसे, यहि लागी लगन गँभीर हो ॥  
सखि इश्क-पियासे आशिकाँ, तजि दौलत दुनिया भीर हो ।  
सखि 'दूलन' कासे कहै, यह अटपटि प्रेम की पीर हो ॥

### दोहा

दूलन यहि जग जनमि कै, हरदम रटना नाम ।  
केवल नाम-सनेह बिनु, जन्म-समूह हराम ॥  
स्वास-स्वास माँ नाम भजु, बृथा स्वास जिनि खोउ ।  
दूलन ऐसी स्वास से, आवन होउ न होउ ॥  
सुरपति नरपति नागपति, तीनउ तिलक लिलार ।  
दूलन नाम-सनेह बिनु, धूरा जीवन संसार ॥  
यहि कलिकाल कुचाल तकि, आयो भागि डेराइ ।  
दूलन चरनन परि रहे, नाम की रटनि लगाइ ॥  
नाम अछर दुइ रहु भन, करि चरनन तर बास ।  
जन दूलन लौ लीन रहु, कनहु न होहु उदास ॥  
पांडव-सुत हित कारने, कियो हुतारन सीत ।  
दूलन कैसे छाड़िये, हरि गाड़े के मीत ॥  
दूलन यह परिवार सब, नदी नाव संजोग ।  
उतरि परे जहूं-तहूं चले, सबै बटाऊ लोग ॥  
दूलन यहि जग आइके, का को रहा दिमाक ।  
चंद रोज को जीवना, आखिर होना खाक ॥  
दूलन काथा कवर है, कहूं लगि करौं बखान ।  
जीवित मनुओं मरि रहै, फिरि यहि कवर समान ॥  
भूखेहि भोजन दिहे भल, प्यासे दीनहें पानि ।  
दूलन आये आदी, कहि सु सघद सनमान ॥  
दूलन कथा पुरान मुनि, मते न माते लोग ।  
बृथा जन्म रस-भोग बिनु, खोया को संजोग ॥  
'दूलन' रामरस चारिय सोइ, पुष्ट पुरुष परवीन ।  
जिन के नाम हृदय गर्हि, भये ते दिजरा दीन ॥  
विषपति सनेही मीत सो, नीति सनेही काउ ।  
'दूलन' नाम-सनेह दद, मोई भक्त फहाइ ॥

## संत गरीबदासजी

(आविर्भाव—सं० १७७४ वैशाख शु० १५, स्थान—छुड़ानी मौजा (रोहतक-पंजाब), जाति—जाट, तिरोभाव—सं० ८८३  
मुद्री २, अन्न ६१ कर्ष, गरीब पंथके प्रवर्तक)

। की इक बूँद सूँ साज बनाया जीव ।  
अंदर बहुत अँदेस था बाहर बिसरा पीव ॥  
। की इक बूँद सूँ साज बनाया साँच ।  
राखनहारा राखिया जठर अग्नि की आँच ॥  
। सेमर सेहया ऐसे नर या देह ।  
जम-किकर तुझ ले गया मुख में देकर खेह ॥  
॥ कान्सा धौरहर बालू की-सी भीत ।  
उस खाविंद कूँ याद कर महल बनाया सीत ॥  
माटी का महल है खाक भिलेगा धूर ।  
साँई के जाने बिना गदहा कुत्ता सूर ॥  
माटी का महल है छार मिलै छिन भाहि ।  
चार सक्स काँधे धरे मरघट कूँ ले जाहि ॥  
बार तन फूँकिया होगा हाहाकार ।  
चेत सकै तो चेतिये सतगुरु कहै पुकार ॥  
बार तन फूँकिया मरघट मंडन माँड ।  
या तन की होरी बनी मिटी न जम की ढाँड ॥  
बार तन फूँकिया मेटा खोज खलील ।  
तू जानै मैं रहूँगा यहाँ तो कछू न ढील ॥  
बार तन फूँकिया फोकट मिटे फिराक ।  
चेत सकै तो चेतिये सतगुरु बोलै साख ॥  
बार कोइला किया हो गया मरघट राख ।  
छाँड़े महल मँडेरिया कथा कौड़ी धन लाख ॥  
इ कर तुरँग कुंदावते और पालकी फील ।  
तै नर जंगल जा बसे जम कूँ केरा लील ॥  
रव खरब लौं द्रव्य है उदय अस्त विच जाह ।  
विन साँई की बंदगी झब सुए दह भाँह ॥  
ख खरब लौं द्रव्य है रावत कोटि अनंत  
नाहक जग में आइवा जिन्ह सेये नहिं सत ॥

इस माटी के महल में मगन भया क्यों मूढ ।  
कर साहब की बंदगी उस साँई कूँ हूँड ॥  
कुटिल बचनकूँ छाँड़ि दे मान मनोकूँ मार ।  
सतगुरु हेला देत जनि छूवै काली धार ॥  
धन संचै तो सील का दूजा परम संतोल ।  
ग्यान रतन भाजन भरो असल खजाना रोक ॥  
दया धर्म दो मुकट हैं बुद्धि विदेक विचार ।  
हर दम हाजिर हूजिये सौदा त्यारत्यार ॥  
चेत सकै तो चेतिये कूँकै संत सुमेर ।  
चौरासी कूँ जात है केर सकै तो फेर ॥  
नंगा आथा जगतमें नंगा ही तू जाय ।  
विच कर खवाची ख्याल है मन भावा भरमाय ॥  
सुरत लगै अरु मन लगै लगै निरत धुन ध्यान ।  
चार बुगन की बंदगी एक पलक परमान ॥  
नाम रसायन पीजिये थहि औसर थहि दाव ।  
फिर पछि पछतायगा चला चली हो जाव ॥  
लै लागी तब जानिये हरदम नाम उचार ।  
एकै मन एकै दिसा साँई के दरवार ॥  
यह सौदा सतभाय करो परमात रे ।  
तन मन रतन अमोल बटाऊ साथ रे ॥  
बिद्धुर जायेंगे मीत मता सुन लीजिये ।  
बहुर न मेला होय कहो क्या कीजिये ॥  
सील संतोष विदेक दया के धाम हैं ।  
जान रतन गुलजार संधाती राम हैं ॥  
धरम धजा फरकंत फरहरैं लोक रे ।  
ता मध अजपा नाम सु सौदा रोक रे ॥  
चलै बनिजवा ऊट हूँठ गढ छाँड़ि रे ।  
हरे हारे कहता दास गरीब लगै जम-डॉड़ि रे ॥

## संत दरिया साहब बिहारवाले

( जन्म-संदर्भ, १७३१, जन्म-स्थान धरकंथा ( ज़िला आरा ), पिताका नाम पीरनशाह ( पूर्वनाम पृथुदास ), जाति-भर्माल्लित न ( पहले क्षत्रिय ), शरीरान्त सं० १८३७ वि० भाद्रो वदी ४ )

मैं कुलवंती खसम-पियारी ।

जाँचत तू लै दीपक बारी ॥

गंध सुगंध भार भरि लीन्हा ।

चंदन चर्चित आरति कीन्हा ॥

कुलन सेज सुगंध बिछायौ ।

आपन पिया पलँग पौढ़ायौ ॥

सेवत चरन रैनि गइ बीती ।

प्रेम-प्रीति तुम ही सों रीती ॥

कह दरिया ऐसो चित लागा ।

भई सुलच्छनि प्रेम-अनुरंगा ॥

मैं जानहुँ तुम दीनदयाल ।

तुम सुमिरे नहिं तापत काल ॥

ज्यों जननी प्रतिगलै सूत ।

गर्भवास जिन दियो अकूल ॥

जठर-अगिनि तैं लियो है काढि ।

ऐसी वा की ठवर गाढि ॥

गाढ़े जो जन सुमिरन कीन्ह ।

परघट जग में तेहि गति दीन्ह ॥

गरबी मारेऊ गैबी बान ।

संत को राखेउ जीव जान ॥

जल में कुमुदिनि इंदु अकास ।

प्रेम सदा गुरु-चरननि पास ॥

जैसे पपिहा जल से नेह ।

बुंद एक विश्वास है तेह ॥

स्वर्ग पताल मृतमंडल तीन ।

तुम ऐसो सहिव मैं अधीन ॥

जानि आयो तुम चरन पास ।

निज मुख बोलेउ कहेउ दास ॥

सतपुरुष बचन नहिं होहिं आन ।

बलु पुरव से पञ्चिम उगहिं भान ॥

कहै दरिया तुम हमहि एक ।

ज्यों हारिल की लकड़ी टेक ॥

विहंगम, कौन दिसा उड़ि जैहौ ।

नाम बिहूना सो परहीना, भरमि-भरमि भौ रहिहौ ॥

गुरुनिंदक बद संत के द्रोही, निन्दै जनम गँवैहौ ॥

परदारा परसंग परस्पर, कहहु कौन गुन लहिहौ ॥

मद पी माति मदन तन ब्यापेउ, अमृत तजि विष खैहौ ॥

समुझहु नहिं वा दिन की बातें, पल-पल घात लगैहौ ॥

चरनकँवल बिनु सो नर बूढ़ेउ, उमि चुमि थाह न पैहौ ॥

कहै दरिया सतनाम भजन बिनु, रोइ रोइ जनम गँवैहौ ॥

चौपाई

भूले संपति स्वारथ मूढ़ा । परे भवन में अगम अगूढ़ा ॥

संत निकट फिनि जाहिं दुराई । विषय-वासरस केरि लपटाई ॥

अब का सोचनि मदहिं भुलाना । सेमर सेइ सुगा पछताना ॥

मरनकालकोइ संगि न साथा । जब जम मस्तक दीन्हेउ हाथा ॥

मात पिता घरनी घर ठाड़ी । देखत प्रान लियो जम काढ़ी ॥

धन सब गाढ़ गहिर जो गाढ़े । छूटेउ माल जहाँ लगि भाँड़े ॥

भवन भया बन बाहर डेरा । रोचहिं सब मिलि आँगन धेरा ॥

खाट उठाइ कँध करि लीन्हा । बाहर जाइ अगिनि जो दीन्हा ॥

जरिगहि खलरी, भसम उड़ाना । सोचि चारि दिन कीन्हेउ ग्याना ॥

फिर धंधे लपटाना ग्रानी । विसरिगया ओइ नाम निसानी ॥

खरन्हु खाहु दया करु प्रानी । ऐसे बुड़े बहुत अभिमानी ॥

सतगुरु-सबद सौच एह मानी । कह दरिया कह भगति वजानी ॥

भूलि भरम एह मूल गँवावै । ऐसा जनम कहाँ जिरि पावै ॥

धन संपति हाथी अब धोरा । भरन अंत सेंग जाहिन तोंग ॥

मातु पिता सुत वंधौ नारी । हूँ सब पामर तोहि विसारी ॥

दोहा

कोठा महल अटारिया, सुनेउ सबन वहु गण ।

सतगुर सबद चीन्हें विना, ज्यों पञ्चिन महै काग ॥

## संत भीखा साहब

( जन्म विं० सं० १७७०, जन्म-स्थान—झानपुर दोहना गाँव, बिला आजमगढ़ । घरु नाम भीखासन्द, जाति—ब्राह्मण चौधे, लालसाहबके शिष्य, मृत्यु विं० सं० १८२० )

मन तुम राम नाम चित्र धारो ।  
जो निज कर अपनो भल चाहो,  
ममता मोह विसारो ॥  
अंदर में परपंच वसायो,  
बाहर भेल सँचारो ।  
बहु विश्रीति कपट चतुराई,  
विन हरि भजन विकारो ॥



जप तप मख करि विधि विधान, जत तत उदयेग निवारो ।  
विन गुरु लच्छ सुदृष्टि न आवे, जन्म मरन दुख भारो ॥  
ग्यान ध्यान उर करहु धरहु इह, सच्च सच्च विचारो ।  
कह भीखा लौ लीन रहो उठ, इत मत लुगति उतारो ॥  
या जग में रहना दित चारी । ताते हरि चरनन चित्र चारी ॥  
सिर पर बाल सदा सर साधे । अधसर पेरे तुरतहीं भारी ॥  
भीखा केवल नाम भजे विनु । प्रापति कष्ट भरक भारी ॥

मन तोहिं कहत कहत सठ हरे ।  
अपर और अंतर कछु और, नहि विस्वास तिहार ॥  
आदिहि एक अंत पुनि एकै, मझहुँ एक विचारे ।  
लज्ज-लज्ज एहमर ओहमर करि, करम दुइत करि डारे ॥  
विषया रत परपंच अपरबल, पाप पुन्न परचारे ।  
काम क्रोध मद लोभ मोह कब, चोर चहत डैंडियरे ॥  
कपटी कुटिल कुमति विभिचारी, हो लाको अधिकारे ।  
महा निलज कछु लाज न तो को, दिन-दिन प्रति मोहिं जारे ॥  
पाँच पचीस तीन मिलि चाह्यो, बतलिड थात लिगारे ।  
सदा करहु बैरार कपट को, भरम बजार फउरे ॥  
हम मन ब्रह्म जीव तुम आतम, चेतन मिलि तन खारे ।  
सकल दोस हम को कहे दह, होन चहत है न्यारे ॥  
खोलि कहैं तरंग नहि केन्यो, यह आपुहि महिमा रे ।  
विनु रेरे कछु भय ना हैहैं, हम का करहि विचारे ॥  
हमरी रुचि जा खेल खेलौना, बालक साज सँचारे ।  
पिता अनादि अनन्द नहि मानहि, रालत रहहि दुलरे ॥  
अन ता भजन तकल है विरथा, व्यापक जशहि विसारे ।  
भीखा लखहु आपु आतम कहैं, गुन ना तजहु खमा रे ॥

जो कोउ था विधि हरि हिय लावे ।  
सेती वनिज चाकरी मन तैं, काण्ड कुचाल लहावै ॥

सं० वा० अ० ३०—

या विधि करम अधर्म करतु है, ऊसर दीज शोवावै ।  
कोटि कला करि जतन करै जो, अंत सो निसफल जावै ॥  
चौराती लछ जीव जहाँ लगि, भ्रम-भ्रमि भटका ल्लावै ।  
सुरसरि नाम सरूप की धारा, सो तजि छाँहि गहावै ॥  
सतरुक वचन सच्च सुकिरित सों, नित नव प्रीति बढ़ावै ।  
भीखा उमन्यो सावन भाद्रों, आपु तं आपु समावै ॥

समुद्धि गहो हरिनाम,  
मन तुम समुद्धि गहो हरिनाम ।  
दिन दस सुख यहि तन के कारन,  
लथटि रहो धन धाम ॥  
देखु विचारि जिया अपने,  
जत गुनना गुनन चेकाम ।  
ओग तुकि अरु ग्यान ध्यान हैं,  
निकट चुलभ नहि लाम ॥  
इत उत की अब आसा तजि कै,  
मिलि रहु आतम राम ।  
भीखा दीन कहाँ लगि बरनै,  
धन्य बरी बहि जाम ॥

राम सों करु प्रीति रे मन, राम सों करु प्रीति ।  
राम विना कोउ काम न आवे, अंत ढहो जिमि भीति ॥  
बूझि विचारि देखु जिय अपनो, हरि विन नाहि कोउ हीति ।  
गुरु गुलाल के चरन कमल रज, धरु भीखा उर चीति ॥

प्रभुजी करहु अपनो चेर ।  
मैं तौ सदा जनम को रिनिया, लेहु लिखि पोहि केर ॥  
काम क्रोध मद लोभ मोह यह, करत सबहिन जेर ।  
झुर नर मुनि सब पचि पचि हरे, परे करम के केर ॥  
सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक, ऐसे ऐसे देर ।  
खोजत सहज समाधि लगावे, प्रभु को नाम न नेर ॥  
अपरंपर अपार है साहब, होय अर्थन तन हेर ॥  
गुरु परताप साध की संगति, छुटे सो काल अहेर ॥  
जाहि जाहि सरनागत आयो, प्रभु दरवौ यहि केर ॥  
जन भीखा को उगिन कीजिये, इब कागद जिन हेर ॥

दीजै हो प्रभु बास चरन में, मन अस्थिर नहिं पास ॥  
हीं सठ मदा जीव को कर्णचो, नहिं समात उर साँस ।  
भीमा पतिस आनि जनि छाँडो, जगत करैगो हाँस ॥

मोहिं रामों जी अपनी सरन ॥

आपांपार पार नहि तेरो, काह कहों का करन ।  
मन वन्दम वन्नन आस इक तेरी, होउ जनम या मरन ॥  
अविग्ल भक्ति के कारन तुम पर, है ब्राह्मन देउँ धरन ।  
जन भीमा अभिलाल इहो नहिं, चर्हाँ मुक्ति गति तरन ॥

करुनामय हरि करुना करिये,  
कृपा कटाच्छ ढरन ढरिये ॥

भक्ति को प्रतिपाल करन को,  
चरन कँवल हिरदै धरिये ।

व्यापक पूरन जहाँ तहाँ ल्यु,  
रीतो न कहूँ भरन भरिये ॥

अद्य की बार सबाल राखिये,  
नाम सदा इक फर फरिये ।

जन भीखा के दाता सतरुद,  
नूर जहूर बरन बरिये ॥

ए साहब तुम दीनदयाल ।  
आयहु करत सदा प्रतिपाला ॥

केतिक अधम तरे तुम चरनन ।  
करम तुम्हार कहा कहि जाला ॥

मन उनमेल लुटत नहि कवहीं ।  
सौच तिलक पहिरे गल माला ॥

तनिकौ कृपा करहु जेहि जन पर ।  
खुल्यो भाग लालु को ताला ॥

भीखा हरि नटवर बहु रूपी ।  
जनहि आपु आपनी काला ॥

प्रीति की यह रीति बखानौ ॥

कितनौ दुख सुख परे देह पर, चरन कमल कर ध्यानौ ।  
हो चेतन्य विचारि तजो भ्रम, खाँड धूरि जनि सानौ ॥  
जैसे चात्रिक स्वाति छुंद बिनु, प्रान समरपन ठानौ ।  
भीखा जेहि तन राम भजन नहिं, काल रूप तेहि जानौ ॥

कोऊ जजन जपन कोऊ तीरथ अटन ब्रत,

कोउ बन खंड कोऊ द्रुष्ट को अधर है ।

कोउ धूम पानि तप कोऊ जल सैन लेवै,  
कोउ मेघडम्बरी सो लिये सिर भार है ॥

कोउ बाँह को उठाय ढेड़सुरी कहाइ जाय,

कोउ तौ मौन कोउ नगम विचार है ।

कोउ गुफा ही में बास मन मोच्छ ही की आस,

तब भीखा सत्त सोई जाके नाम को अधार है ॥

रामजी सौ नेह नाहीं सदा अविवेक माहीं,

मनुषाँ रहत नित करत गल्लौज है ।

ग्यान औ वैराग हीन जीवन सदा मलीन,

आत्मा प्रगट आपु जानि ले भानौज है ॥

साह सौ कौल छूटी काम क्रोध लोभ लटी,

जानि कै बैंधायो मीठी विषै माया फौज है ।

साहब की मौज जहाँ भीखा कीन्ह मौज तहाँ,

साहब की मौज जोई सोई मौज मौज है ॥

एक नाम सुखदाई दूजो है मलिनताई,

जिव चाहहु भलाई तौ पै राम नाम जगा ।

तात मात सुत बास लोग बाग धन धाम,

साँच नाहीं झूँठ सानो रैनि कै सुपना ॥

माया परपंच येहि करम कुटिल जेहि,

जनम भरन फल पाप पुन तपना ।

बोलता है आप ओई जेते औतार कोई,

भीखा सुद रूप सोई देहु निज अपना ॥

भयो अचेत नर चित चिता लग्यो,

काम अह क्रोध मद लोभ राते ।

सकल परपंच में खूब फाजिल हुआ,

माया मद चालि मन मगन मरि ॥

बढ़ो दीमांग मगलर हय गज चढ़ा,

कह्यो नहिं फौज त्वार जाते ।

भीखा यह ख्याव की लहरि जग जानिये,

जागि करि देखु सब झूँठ नाते ॥

उठ्यो दिल अनुमान हरि ध्यान ॥

भर्म करि भूल्यो आपु अपान ।

अब चीन्हो निज पति भगवान ॥

मन बच कम दृढ मत परवान ।

वारे प्रभु पर तन मन प्रान ॥

सब्द प्रकाश दियो गुर दान ।

देखत सुनत नैन विठु कान ।

जाको सुख सोइ जानत जान ।

हरि रस मधुर कियो जिन पान ॥

निर्गुन ब्रह्म रूप निर्वान ।  
भीखा जल ओला गलतान ॥

### छप्पय

जग्य दान तप का किये जौ हिये न हरि अनुराग ॥  
हिये न हरि अनुराग पागि मन विषै मिठाई ॥  
जग प्रपञ्च में सिद्ध साध्य मानो नव निधि पाई ॥  
जहाँ कथा हरि भक्ति भक्त कै रहनि न भावै ॥  
गुनना गुनै बेकाम झूँठ में मन सुख पावै ॥  
भीखा राम जाने बिना लगो करम माँ दाग ॥  
जग्य दान तप का किये जौ हिये न हरि अनुराग ॥  
मन क्रम वचन विचारिकै राम भजे सो धन्य ॥  
राम भजे सो धन्य धन्य वपु मंगलकारी ।  
राम वचन अनुराग परम पद को अधिकारी ॥  
काम क्रोध मद लोभ मोह की लहरि न आवै ।  
परमात्म चेतन्य रूप महँ दृष्टि समावै ॥  
व्यापक पूरन व्रद्धि है भीखा रहनि अनन्य ।  
मन क्रम वचन विचारिकै राम भजे सो धन्य ॥

धनि सो भाग जो हरि भजै ता सम तुलै न कोइ ॥  
ता सम तुलै न कोइ होइ निज हरि को दासा ॥  
रहे चरन लौलीन राम को सेवक खासा ॥  
सेवक सेवकाई लहै भाव भक्ति परवान ॥  
सेवा को फल जोग है भक्तवस्य भगवान ॥  
केवल पूरन व्रद्धि है भीखा एक न दोइ ॥  
धन्य सो भाग जो हरि भजै ता सम तुलै न कोइ ॥

### दोहा

नाम पढ़ै जो भाव सौं, ता पर होहि दयाल ।  
भीखा' ने क्रिया कियो, नाम सुदृष्टि गुलाल ॥  
राम को नाम अनंत है, अंत न पावे कोय ।  
‘भीखा’ जस लघु बुद्धि है, नाम तबन सुख होय ॥  
एकै धागा नाम का, सब घट मनिया माल ।  
केरत कोई संत जन, सतगुरु नाम गुलाल ॥  
जाप जपै जो प्रीति सौं, वहु विधि रुचि उपजाय ।  
साँझ समय औ प्रात लगि, तत पदारथ पाय ॥

## बाबा मल्कदासजी

( जन्म-संवत्—वि० सं० १६३१, जन्म-स्थान—कडा ( जिला इलाहाबाद ), जाति—ककड़ खनी, पिताका नाम—चुन्दरदासजी शरीरान्त—वि० सं० १७३९ )

हरि समान दाता कोउ नाहीं । सदा विराजैं संतन भाहीं ॥  
नाभ विसंभर विस्व जिशावै । साँझ विहान रिजिक पहुँचावै ॥  
देह अनेकन मुख पर ऐने । औगुन करै सो गुन कर भानै ॥  
काहू भाँति अजार न देई । जाही को अपना कर लैई ॥  
धरी धरी देता दीदार । जन अपने का खिजमतगार ॥  
तीन लोक जाके औसाफ । जाका गुनह करै सब भाफ ॥  
गरवा ठाकुर है रघुराई । कहैं मल्क क्या करूँ वडाई ॥  
  
सदा सोहागिन नारि सो, जा के राम भतारा ।  
मुख भाँगे सुख देत हैं, जगजीवन धारा ॥  
कवहु न नहै रँडपुरा, जानै सब कोई ।  
अजर अमर अविनासिया, ता को नास न होई ॥  
नर देही दिन दोय की, सुन गुरजन भेरी ।  
क्या ऐसों का नेहरा, मुण विपति भनेरी ॥  
गा उपजै ना चीनसै, संतन गुडदाई ।  
कहैं मल्क यह जानि के, मैं प्रीति लगाई ॥  
  
अय तेरी सरन आयो राम ।  
जये सुनिया साध के मुख, पतित-पावन नाम ॥

यही जान पुकार कीन्हीं, अति सतायो काम ।  
विषय सेती भयो आजिज, कह मल्क गुलाम ॥  
साँचा तू गोपाल, साँच तेरा नाम है ।  
जहाँ सुमिरन होय, धन्य सो टाम है ॥  
साँचा तेरा भक्त, जो तुझ को जानता ।  
तीन लोक को राज, भनै नहि अनन्ता ॥  
झठा नाता छोड़ि, तुझे लब लाइया ।  
सुमिरि तिहारो नाम, परम पद पाइया ॥  
जिन यह लाह पायो, यह जग आइ कै ।  
उतारि गयो भव पार केरो गुप गाइ कै ॥  
तुही मातु तुहि पिता, तुही दितु चंधु है ।  
कहत मल्कदास, बिना तुझ धुंध है ॥

तेग मैं दीदार दिवाना ।  
घड़ी घड़ी तुझे देवा चाहूँ, सुन माइय रहमाना ॥  
हुआ अलमस्त व्यवर नहि तन की, वीया प्रेम रियाना ।  
ठाढ़ होड़ै तो गिर-गिर परता, तेरे रंग मतवाला ॥  
लड़ा रहै दरवार तिहारे, जर्या वर का बंदगारा ॥

नेवी की कुलाह चिर दीये, गले पैरहन साजा ॥  
तौजी और निमाज न जानूँ, ना जानूँ धरि रोजा ।  
वांग जिकर तवही से विभरी, जब से यह दिल खोजा ॥  
पहें मल्दूक अब कजान करिहीं, दिल ही सों दिल लाया ।  
ममका दृज हिये मैं देखा, पूरा मुरसिद पाया ॥

दर्द-दिवाने वावरे, अलमस्त फकीरा ।  
एक अकीदा लै रहे, ऐसे मन-धीरा ॥  
प्रेम पिथाला पीवते, श्रिसरे सब साथी ।  
आठ पहर यों झूमते, ज्यों माता हाथी ॥  
उन की नजर न आवते, कोइ राजा रंक ।  
वंधन तोड़ि मोह के, फिरते निहसंक ॥  
साहेब मिल साहेब भये, कछु रही न तमाई ।  
कहैं मल्दूक तिस घर गये, जहँ पवन न जाई ॥

देव पितर मेरे हरि के दास । गाजत हैं तिन के विस्वास ॥  
साधू जन पूजौं चित लाई । जिन के दरसन हिया जुडाई ॥  
चरन पखारत होई अनंदा । जन्म जन्म के काटे फंदा ॥  
भाव-भक्ति करते निस्काम । निसि दिन सुमिरैं केवल राम ॥  
घर बन का उन के भय नाहीं । ज्यों पुरहनि रहता जल माहीं ॥  
भूत परेतन देव बहाई । देवखर लौपै मोर बलाई ॥  
वस्तु अनूठी संतन लाऊँ । कहैं मल्दूक सब भरस न साऊँ ॥

हम से जनि लागे तू भाया ।

थोरे से किर बहुत हो गयी, सुनि पैहैं रघुराया ॥  
अपने मैं है साहेब हमरा, अजहूँ चेतु दिवानी ।  
काहू जन के बस परि जैही, भरत भरहुगी पानी ॥  
तर है चितै लाज कर जन की, डारु हाय की फाँसी ।  
जन तैं तेरो जोर न लहिहै, रच्छपाल अविनासी ॥  
कहै मल्दूक चुप कर ठगानी, औगुन राखु दुराई ।  
जो जन उबरै राम नाम कहि, तातें कछु न बसाई ॥

जा दिन का डर मानता, सोइ बेल आई ।  
भक्ति न कीन्ही राम की, टकमूरी लाई ॥  
जिन के कारन पचि मुवा, सब दुख की रासी ।  
रोइ रोइ जन्म गँवाया, परी मोह की फाँसी ॥  
तन मन धन नहि आपना, नहि सुत औ नारी ।  
विछुरत वार न लागई, जिय देखु विचारी ॥  
मनुष जन्म दुर्लभ अहै, बड़े पुन्ने याया ।  
सोऊ अकारथ खोइया, नहि ठौर लगाया ॥  
साध संगत कब करोगे, यह औसर बीता ।  
कहै मल्दूक पाँच मैं, बैरी एक न जीता ॥

राम मिलन क्यों पड़े, मोहिं राखा ठगवन धेरि हो ।  
क्रोध तो काला नाश है, काम तो परघट काल  
आप आप को लैंचते, मोहिं कर ढाल बेहाल हो ।  
एक कनक और कामिनी यह दोनों बटमार,  
मिसरी की छुरी गर लाय के, इन मारा सब संसार हो ॥  
इन में कोई ना भला, सब का एक विचार,  
दैड़ा मारें भजन का, कोइ कैसे के उत्तरै पार हो ।  
उपजत विनशत थकि पड़ा, जियरा गया उकताय,  
कहैं मल्दूक बहु भरमिया, मोपै अब नहिं भरमो जाय हो ॥

सोते सोते जन्म गँवाया ।

भाया मोह मैं सानि पड़ो सो, राम नाम नहि पाया ॥  
मीठी नींद सोये सुख अपने, कबहूँ नहि अलजाने ।  
गाफिल होके महल मैं सोये, फिर पाछे पछिताने ॥

अजहूँ उठो कहाँ तुम बैठे, बिनती सुनो हमारी ।  
चहूँ और मैं आहट पाया, बहुत भई भुइँ भारी ॥  
बंदीछोर रहत धट भीतर, खबर न काहू पाई ।  
कहत मल्दूक राम के पहरा, जागो मेरे भाई ॥

नाम हमारा खाक है, हम खाकी बंदे ।  
खाकहिं ते पैदा किये, अति गाफिल गंदे ॥  
कबहूँ न करते बंदगी, दुनिया मैं भूले ।  
आसमान को ताकते, घोड़े चढ़ि फूले ॥  
जोरु लड़के खुस किये, साहेब विसराया ।  
राह नेकी की छोड़ि के, बुरा अमल कमाया ॥  
हर दम तिस को याद कर, जिन बजूद संचारा ।  
सबै खाक दर खाक है, कुछ समुद्ध गँवारा ॥  
हाथी घोड़े खाक के, खाक खान खानी ।  
कहै मल्दूक रहि जायगा, औसाफ निमानी ॥

ऐ अर्जीज ईमान तू, कहे को खोचै ।  
हिय राखै दरगाह मैं तो प्यारा होवै ॥  
यह दुनिया नाचीज के, जो आसिक होवै ।  
भूलै जात खोदाय को, सिर धुन धुन रोवै ॥  
इस दुनियाँ नाचीज के तालिय हैं कुत्ते ।  
लज्जत मैं मोहित हुए, दुख संद बहूते ॥  
जन लगे अपने आप को, तहकीक न जानै ।  
दास मल्दूक रच्छको, क्योंकर पर्दिजानै ॥  
आपा मेटि न हरि भजे, तैद नर दूरै ।  
हरि का मर्म न पाइया, कारन कर ऊरै ॥

करें भरोसा पुन का, साहेब विसराया ।  
बूढ़ गये तरबोर को, कहुँ खोज न पाया ॥  
साध मंडली बैठि के, मूढ़ जाति बखानी ।  
हमवड़ हम बड़ करि मुए, बूढ़े बिन पानी ॥  
तब के बाँधे तेई नर, अजहुँ नहिं छूटे ।  
पकरि पकरि भलि भाँति से, जमदूतन लूटे ॥  
काम क्रोध सब त्यागि कै, जो रामै गावै ।  
दास मलूका यों कहै, तेहिं अलख लखावै ॥

गर्व न किजे बावरे, हरि गर्व प्रहारी ।  
गर्वहिं ते राबन गया, पाया दुख भारी ॥  
जरन खुदी रघुनाथ के, मन नाहिं सोहाती ।  
जाके जिय अभिमान है, ता की तोरत छाती ॥  
एक दया और दीनता, ले रहिये भाई ।  
चरन गहो जाय साध के, रीझे रघुराई ॥  
यही बड़ा उपदेस है, परद्रोह न करिये ।  
कह मलूक हरि सुमिर कै, भौसागर तरिये ॥  
ना वह रीझै जप तप कीन्हे, ना आतम को जारे ।  
ना वह रीझै धोती टाँगे, ना काया के पखारे ॥  
दाया करै धरम भन राखै, घर में रहै उदासी ।  
अपना सा दुख सब का जानै, ताहि मिलै अविनासी ॥  
सहै कुसब्द बाद हू त्यागै, छाँड़े गरब गुमाना ।  
यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दिवाना ॥

सब से लालच का भत खोया ।  
लालच तैं बैपारी सिद्धी, दिन दिन आवे टोया ॥  
हाथ पसरे आँधर जाता, पानी परहि न भाई ।  
माँगे तैं मुक भीच भली, अस जीने कौन बड़ाई ॥  
माँगे तैं जग नाक सिकोरे, गोविंद भला न मानै ।  
अनभाँगे राम गले ल्यावै, विरला जन कोइ जानै ॥  
जब लग जिव का लोभ न छूटै, तब लग तजै न माया ।  
घर घर द्वार फिरै माया के, पूरा गुरु नहिं पाया ॥  
यह मैं कही जे हरि रँग राते, संसारी को नाहीं ।  
संसारी तो लालच बंधा, देस देसान्तर जाहीं ॥  
जो माँगे सो कछू न पावै, बिन माँगे हरि देता ।  
कहै मलूक निःकाम भजै जे, ते आपन करि लेता ॥

राम कहो राम कहो राम कहो बावरे ।  
अवसर न चूक भौदू, पायो भलो दाँव रे ॥  
जिन लोको तन दीन्हो, ताको न भजन कीन्हो ,  
जनम रिरानो जात, लोहे कैसो ताब रे ॥

रामजी को गाय गाय, रामजी को रिझाव रे ,  
रामजी के चरन कमल, चित माहिं लव रे ॥  
कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झट्ठी आस ,  
आनेंद भगन होइ कै, हरि गुन गाव रे ॥  
बाबा मनका है सिर तले ।

माया के अभिमान भूले, गर्वही में गले ॥  
जिभ्या कारन खून कीये, बाँधि जमपुर चले ।  
रामजी सों भये बेमुख, अग्नि अपनी जले ॥  
हरि भजे से भये निरभय, ठारह नहिं दरे ।  
कह मलूका जहुँ गरीबी, तेई सब से भले ॥

परम दयाल राया राय परसोत्तमजी ,  
ऐसो प्रभु छाँड़ि और कौन के कहाइये ।  
सीतल सुभाव जाके तामस को लेस नहीं ,  
मधुर बच्चन कहि राखै समझाइये ॥  
भक्त बछल गुन सागर कला निधान ,  
जा को जस पाँत नित वेदन में गाइये ।  
कहत मलूक बल जाड़ेसे दरस कीं ,  
अधम उधार जाके देखे सुख पाइये ॥  
बंदा तैं गंदा गुनाह करै बार बार ,  
साईं तू सिरजनहार मन में न आनिये ।  
हाथ कलु मेरे नहीं हाथ सब तेरे साईं ,  
खलक कै हिसाब बीच सुझ को मत सानिये ॥  
रहम की नजर कर कुरहम दिल से दूर कर ,  
किसी के कहे सुने चुगली मत मानिये ।  
कहता मलूक मैं रहता पनाह तेरी ,  
दाता दयाल सुझे अपना कर जानिये ॥

### नाम

#### ( दोहा )

राम राम के नाम को, जहुँ नहीं लवलेस ।  
पानी तहुँ न पीजिये, परिहरिये सो देस ॥  
राम नाम जिन जानिया, तेई बड़े सपूत ।  
एक राम के भजन बिन, काँगा फिरै कपूत ॥  
उहाँ न कवहुँ जाइये, जहुँ न हरि का नाम ।  
झोगंबर के गाँव में, धोवी का क्या काम ॥  
राम नाम एकै रती, पाप के कोटि पहाड़ ।  
ऐसी महिमा नाम की, जारि करै सब छार ॥  
राम नाम औषध करो, हिरदै राजो याद ।  
संकट में लै लाइये, दूर करै सब व्याघ ॥

भर्महि का सौदा भला, दाया जग व्योहार ।  
गम नाम की हाट ले, बैठा खोल किवार ॥  
औरहि चिन्ता करन दे, तू मत मरे आह ।  
जाके सौदी राम से, ताहि कहा परवाह ॥  
जीवहु ते ध्येरे अधिक, लागें मोहीं राम ।  
विन दरि नाम नहीं सुझे, और किसी से काम ॥  
कह मल्क दृम जवहिं ते, लीन्हीं दृरि की ओट ।  
मोहत हैं सुख नीद भरि, डारि भरम की पोट ॥  
गाँठी सस कुपीन में, सदा फिरै निःसंक ।  
नाम अमल माता रहै, गिनै इन्द्र को रंक ॥

### भक्तिकी महिमा एवं स्वरूप

प्रेम नेम जिन ना कियो, जीतो नाहीं मैन ।  
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन ॥  
कटिन पियाला प्रेम का, पिये जो हरि के हाथ ।  
चारों जुग माता रहै, उत्तरै जिय के साथ ॥  
विना अमल माता रहै, विन लस्कर बलवंत ।  
विना विलयत साहेबी, अंत माहिं बेअंत ॥  
करै भक्ति भगवंत की, करै कबहुँ नहिं चूक ।  
हरि रस में राचो रहै, साँची भक्ति मल्क ॥  
सोई पूत सपूत है, जो भक्ति करे चित लाय ।  
जरा मरन ते छुटि परै, अजर अमर होइ जाय ॥  
जो तेरे धट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव ।  
अंतरजामी जानिहै, अंतरगत का भाव ॥  
सुमिरन ऐसा कीजिये, दूजा लड़ै न कोय ।  
ओंठ न फरकत देखिये, प्रेम राखिये गोय ॥  
जहाँ जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ तहाँ फिरै गाय ।  
कह मल्क जहाँ संत जन, तहाँ रमैया जाय ॥

माला जपै न कर जपै, जिह्वा जपै न रा  
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाश विश्रा

### फुटकर उपदेश

भेष फकीरी जे करै, मन नहि आवै हा  
दिल फकीर जे हो रहे, साहेब तिन के सा  
दया धर्म हिरदै बसै, बोलै अमृत बै  
तेहि ऊँचे जानिये, जिन के नीचे नै  
सब पानी की चूपरी, एक दया जग सा  
जिन पर आतम चीन्हिया, ते ही उतरे पा  
मल्क बाद न कीजिये, क्रोधै देव वहा  
हर मानु अनजान ते, बक बक मरै बला  
गर्व भुलाने देह के, रचि रचि चौथे पा  
सो देही नित देखि कै, चौंच सँवारे कां  
सुंदर देही पाह कै, मत कोइ करै गुमान  
काल दरेरा खायगा, क्या बूढ़ा क्या ज्वान  
सुंदर देही देखिकै, उपजत है अनुराग  
मढ़ी न होती चाम की, तो जीवत खाते कां  
इस जीने का गर्व क्या, कहाँ देह की प्रीत  
बात कहत ढह जात है, बास की-सी भीत  
देही होय न आपनी, समझ परी है मोरि  
अबहीं तैं तजि राख तू आखिर तजिहै तोहि  
आदर मान महत्व सत, चालापन को नै  
यह चारों तबहीं गये, जबहिं कहा कछु देह  
प्रभुताही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय  
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होए  
अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम  
दास मल्का कह गये, सब के दाता राम

### बाबा धरनीदासजी

(जन्म—वि० सं० १७१३ । जन्म-स्थान—मौजी गाँव । (जिला—छपरा), पिता का नाम—परसरामदासजी, माता का ना  
विरमा, जाति—कायस्थ, शुरुका नाम—स्वामी विनोदानन्द । मृत्यु-काल—अशात )

हित करि हरि नामहि लाग रे ।  
भरी धरी धरियाल युकारै, का सोबै उठि जाग रे ॥  
चोआ चंदन चुपड़ तेलना, और अलबेली पाग रे ।  
सो तन जेरे खड़े जग देखो, गूद निकारत काग रे ॥  
मात पिता परिवार सुता सुत, वंधु विया रस त्याग रे ।  
साधु के संगति सुमिर सुचित होइ, जो सिर मोटे भाग रे ॥

संबत जरै वरै नहिं जब लगि खेलहु फाग रे  
धरनीदास तासु बलिहारी, जहाँ उपजै अनुराग रे  
तब कैसे करिहै राम भजन ।  
अबहिं करौ जब कछु करि जानौ, अबनक कीन मिलैगौ ।  
अंत समौ कस सीस उठैही, बोल न घेहै दमन रम  
शक्ति नासिका नैन स्वन बल, विकल सकल धैंग नम विय

ओङ्का वैद सगुनिया पंडित, द्वौलत आँगन द्वार भवन ।  
मातु पितापरिवार विलखि मन, तोरि लिये तन सब अभरन ॥  
वार-दार गुनि-गुनि पछितैहै, परवस परिहै तन मन धन ।  
धरनी कहत सुनो नर प्रानी, वेगि भजो हरि चरन सरन ॥

मैं निरगुनियाँ गुन नहिं जाना ।

एक धनी के हाथ विकाना ॥

सोइ प्रभु पक्षा मैं अति कच्छा ।

मैं झूँठा मेरा साहब सच्चा ॥

मैं ओछा मेरा साहब पूरा ।

मैं कायर मेरा साहब सूरा ॥

मैं मूरख मेरा प्रभु जाता ।

मैं किरणिन मेरा साहब दाता ॥

धरनी मन मानो इक ठाँ ।

सो प्रभु जीवो मैं मरि जाँ ॥

मन भज ले पुरुष पुराना ।

जाते वहुरि न आवन जाना ॥

सब साइ सकल जाको ध्यावै ।

गुरु गम विरला जन पावै ॥

निसि वासर जिन्ह मन लाया ।

तिन्ह प्रगट परम पद पाया ॥

नहिं मातु पिता परिवारा ।

नहिं वंधु सुता सुत दारा ॥

वै तो घट घट रहत समाना ।

धनि सोइ जो ता कहै जाना ॥

चारो जुग संतन भासी ।

सो तो वेद कितेवा साखी ॥

प्रगटे जाके पूरन भागा ।

सो तो हैगो सोन सोहगा ॥

उन्ह निकट निरंतर वासा ।

तहै जगमग जोति प्रकासा ॥

धरनी जन दासन दासा ।

कह विस्वभर विस्वासा ॥

करता राम करै सोइ होय ।

कल बल छल नुभि ग्यान सयानप, कोटि करै जो कोय ॥

देइं देवा सेवा करिके, भरम सुले नर लोय ।  
आवत जात मरत औ जनमत, करम काट अरुशोय ॥  
काहे भवन तजि भेष बनायो, ममता मैल न धोय ।  
मन मवास चपरि नहिं तोडेउ, आस फाँस नहिं ढोय ॥  
सत्युरु चरन सरन सच पायो, अपनी देह विलोय ।  
धरनी धरनि फिरत जेहि कारन, वरहि मिले प्रभु सोय ॥

दिन चार को संपति संगति है, इतने लगि कौन मनो करना ।  
इक भालिक नाम धरो दिल में, धरनी भवसागर जो तरना ॥  
निज हक पहिचानु हकीकत जानु, नछोड़ इमान दुनी शरना ।  
पग पीर गहो पर पीर हरो, जिवना न कछू हक है मरना ॥

जीवन थोर बचा भौ भोर, कहा धन जोरि करोर बढ़ाये ।  
जीव दया कह साधु की संगति, पैहो अभय पद दास कहाये ॥  
जा सन कर्म छिपावत है, सो तो देखत है घट में धर छाये ।  
वेग भजो धरनी सरनी, ना तो आवत काल कमान बढ़ाये ॥

जननी पितु वंधु सुता सुत संपति, सीत महा हित संतत जोई ।  
आवत संगन संग सिधावत, फाँस मया परि नाहक सोइ ॥  
केवल नाम निरंजन को जपु, चारि पदशरथ जेहि तें होई ।  
बृक्षि विचारि कहै धरनी, जग कोइ न काहु के संग सगोई ॥

धर्म दया कीजे नर प्रानी ।

ध्यान धनी को धरिये जानी ॥  
धन तन चंचल थिर न रहाई ।

‘धरनी’ गुरु की कह सेवकाई ॥  
भेष बनाय कपट जिय माही ।

भवसागर तरिहैं सो नाही ॥  
भाग होय जाके सिर पूरा ।

भक्ति काज त्रिले जन सुर ॥

### दोहा

धरनी धोख न लाइये, कवहीं अपनी ओर ।  
प्रभु सों प्रीति निवाहिये, जीवन है जग थोर ॥  
धरनी कोउ निंदा करै, तू अस्तुति कह लाहि ।  
तुरत तमासा देखिये, इहै साधु मत आहि ॥

## सबमें भगवदर्शन

### एकनाथजी गदहेमे

मयोद्यापुस्पोत्तम प्रणु श्रीरामने अपने अनन्य भक्त  
श्रीएनुगानजीको भक्तका लक्षण बताया—

सो अनन्य जाके असि मति न दृढ़ हनुमत ।  
मैं सेवक सच्चराचर रूप स्वामि भगवंत ॥

—श्रीरामचरितमानस

(सच्चराचर रूप स्वामि भगवंत्) —समस्त जड-चेतनमें  
यास एक ही परमात्मतत्त्व । लेकिन इसे देख पावे—जो  
देख पावे, वही तो संत है ।

देखा या श्रीएकनाथजीने—

विवेणीकी पैदल तीर्थयात्रा करके, काँवरोंमें गङ्गाजल  
लेये श्रीरामेश्वरधामकी यात्रा कर रहे थे महाराष्ट्रके कुछ भक्त ।  
श्रीरामेश्वरजीको गङ्गाजल चढ़ाना—कितनी श्रद्धा—कितना  
भ्रम था इस श्रद्धाके साथ । विवेणीसे रामेश्वरतककी पैदल  
यात्रा—जहाँ शरीर चलनेमें ही असमर्थताका अनुभव करे,  
कृ काँवर—दो कलश जल और ढोते चलना । कितना  
प्रश्नापूर्त था वह जल ।

मार्गमें मश्मूमि आयी । दोपहरीका समय, श्रीम  
दृष्टु, प्रचण्ड ताप—बेचारा एक गधा तड़प रहा था जलती  
ई रेतमें । प्याससे उसके प्राण निकलनेहीवाले थे । असमर्थ  
टपटा रहा था वह ।

तीर्थयात्री पास पहुँचे गधेके । वे दयालु थे, गधेपर  
नहैं दया भी आयी; किंतु उपाय क्या ? वहाँ आस-पास  
हीं जल नहीं था कि वे गधेको बहाँ ले जायें या बहाँसे जल  
उसे पिलावें । उनके कंधेपर काँवर हैं, प्रत्येक  
पाँवरमें आगे-पीछे एक-एक कलश है और कलशमें.....  
इः, छिः ! यह क्या सोचनेकी बात है । कलशमें विवेणीका  
वित्र जल है और वह है रामेश्वरमें भगवान् शङ्करको  
अभिषिञ्जक करनेके लिये । एक गधेको—वे स्वयं प्याससे  
एं त्याग करते हों तो भी उस जलके उपयोगकी बात  
नके मनमें नहीं आवेदी ।

तीर्थयात्रियोंमें एक अद्भुत यात्री भी था । वह आगे  
द्वा । गधेके पास उसने काँवर उतारकर रख दी । काँवरके

कलशका प्रवित्र जल विना हिन्दक गधेके सुखमें उँड़ेलो ल

तीर्थयात्री ठक्कर से रह गये । किसीने कहा—  
श्रीरामेश्वरके अभिषेकके लिये आया जल आप गधेको

बीचमें ही ओला बह महापुरुष—‘कहाँ है  
श्रीरामेश्वर ही तो वहाँ मुखसे जल माँग रहे हैं । मैं  
ही अभिषेक कर रहा हूँ ।’

वे तीर्थयात्री थे महाभागवत श्रीएकनाथजी महारा

X X X X

### नामदेवजी कुचेमें

परम भक्त श्रीनामदेवजीने भी उस सच्चराचरन्य  
झाँकी की थी—

भगवान्को नैवेद्य अर्पित करनेके लिये ही भक्त  
बनाता है । वह खाना नहीं पकाता और न खाना खाता  
वह तो प्रभुके प्रसादका भूखा रहता है । उसका जीव  
उसके जीवनके समस्त कार्य भगवत्सेवाके लिये ही होते हैं

प्रभुको नैवेद्य अर्पित करना था । श्रीनामदेवजीने भी  
बनाया । रोटियाँ सेंककर वे किसी वस्तुको लेनेके लिये चौ  
बाहर गये । लौटे तो देखते हैं कि एक कुत्ता चैकेसे र  
रोटियाँ मुँहमें लेकर बाहर निकल रहा है । नामदेवजीको उ  
देखकर कुत्ता रोटियाँ लिये भागा ।

भगवान्को भोग लगानेके लिये बनायी रोटियाँ कु  
ले गया—कोई साधारण पुरुष वही सीचता, दुखी होता  
कदाचित् कुचेको मारने दौड़ता ।

भगवान् स्वयं इस रूपमें मेरी रोटियाँ सीधार कर  
पधारे । कितने दयामय हैं प्रभु ! नामदेवजी तो अपने  
आराध्यका कुचेमें भी दर्शन कर रहे थे । लेकिन रोटियाँ  
खली हैं । उनमें धी नहीं लगा है । स्वतंत्र रोटियाँ प्रयु के  
खायेंगे । देर करनेका समय नहीं था । क्षपटकर धीका पाप  
उठाया उस संतने और दौड़े कुचेके पीछे वह पुकारते हुए—  
प्रभो ! भगवन् ! तनिक रुकिये । मुझे रोटियोंमें धी नहीं  
लेने दीजिये ।

वे भावके भूखे भगवान् ऐसे भननेकी गंभीर्याँ नहीं  
खायेंगे वह भी कभी सम्भव है ?

## भय और अभय

संसारसागरसे मनुष्यको पार करनेमें दोनों समर्थ हैं, भय तो जीवन-त्री, अभय भी। सच्चा भय हो या सच्चा अभय हो। जीवन-त्री क्षणमधुरता, एवं मृत्युकी स्मृति—मनुष्य यदि सच्चसुच्च मृत्युसे डरे, अमरत्व अवश्य उसका हो जायगा।

अभय—अभय तो अभयस्वरूप श्रीहरिके चरणकमलोंमा आश्रय पावे त्रिना प्राप्त होनेसे रहा। जिसने उन पाद-झड़ोंको अपना आश्रय बना लिया है—अभय वही है। माया और मृत्यु उसकी छायाओंको भी दूरसे नमस्कार करती हैं।

X      X      X

### भयका प्रभाव—(बुद्धका वैरास्य)

महाराज शुद्धोदनके एकमात्र कुमार सिद्धार्थ रथपर बैठकर मन्त्री-पुत्र छन्दकके साथ नगर-दर्शन करने निकले थे। राजाशा हो चुकी थी कि युवराजके मार्गमें कोई बुद्ध, रोगी, कुरुक्षय या मृतक शव न आने पावे। लेकिन सुषिकर्ताके विधानपर राजाजाका प्रभाव पड़ता जो नहीं। संयोगवश एक बूढ़ा मार्गमें दीख गया। उक्ती कमर, जर्जर देह, लाटी टेकता बुद्ध—जीवनमें पहिली बार सिद्धार्थको पता लगा कि यौवन स्थिर नहीं है। सबको बुद्ध होना है—स्वयं उन्हें भी।

सिद्धार्थकुमार दूसरी बार नगरदर्शन करने निकले। नारी सावधानी व्यर्थ गयी। इस बार मार्गमें एक रोगी दीखा। बार-बार भूमिग्र गिरता, पछाड़े खाता, मुखसे फेन गिरता—सम्भवतः मृगीका रोगी। दूसरे किसी रोगका भी रोगी हो सकता है। युवराज स्वयं दौड़ गये उसके पास। उसे उठाया, सहारा दिया। आज दूसरे सत्यके दर्शन हुए उन्हें—स्वास्थ्य स्थिर वस्तु नहीं। कोई कभी रोगी हो सकता है। प्रोई कभी कुरुक्षय और दारण पीड़ायस्त बन सकता है। वे वयं या उनकी प्राणाधिका पक्षी यशोधरा भी.....।

तीसरी यात्रा थी सिद्धार्थकुमारका नगरदर्शनके लिये। २ विभक्त विभाता ही कोई विधान करना चाहे, उसके परीत फिरीती सावधानीका क्या अर्थ? महाराज शुद्धोदन नहीं नहते थे, हुआ वही। सिद्धार्थकुमारने एक मृतक-रोगी अशान जाते देखी। जीवनका महासत्य उसके

सम्मुख प्रकट हो गया—सबको मरना है। कोई नदा जीनित नहीं रह सकता। किसीको पता नहीं, मृत्यु कब उसे ग्राम बना लेगी।

बुद्धपे, रोग और मृत्युसे जीवन बरसा है—सिद्धार्थको सच्चा भय हुआ। वे अमरत्वकी खोजमें निकल पड़े। बुद्धल प्राप्त किया उन्होंने।

X      X      X

### अभयका प्रभाव—(मीराँका विपान)

गिरिधरगोपालकी दासी—मीराँ तो मतवाली हो भयी थी उपने गिरिधरके अनुरागमें। राणाको पढ़ी थी आजनी लोकप्रतिष्ठाकी चिन्ता। उनकी भावज, मेवाइकी राजरानी मंदिरमें नाचे, गावे—कितनी भद्री वात। लेकिन मीराँ माननेवाली कहाँ थी। राणा समझाकर, धमकाकर—सभ सम्पद प्रयत्न करके थंक गये। अन्तमें उन्होंने ‘न रहे बौस—न बजे बौसुरी’ बाल उगाथ सोचा। ‘मीराँको मार दिया जाए’.....।

सुषिका सञ्चालक भारने-जिलानेका अधिकार दूसरेके हाथमें दिया नहीं करता। मनुष्य केवल अपनीबाली कर सकता है। राणाने भी अपनीबाली की। तीव्रतम विष मेजा उन्होंने भीराँके पास यह कहलाकर कि—‘यह ठाकुरजीका चरणामृत है।’

विष ले जानेवालीसे काट न हो सका। उसको हृदय काँप गया। उसने स्पष्ट कह दिया—‘यह भयकर विष है। चरणामृत वताकर आपको देनेको कहा गया है।’

लेकिन मीराँको तो सच्चा अभय प्राप्त था। भय उसके पास फटकनेका साहत कैसे करता? वह हँसी—‘याली है तु! और जिस पदार्थमें चरणामृतका भाव किया गया, वह किय हो कैसे सकता है। वह तो अमृत है—अमृत।’

विषके प्यालेमें भी मीराँको अपने गिरिधरझी सॉफ्टी दीख रही थी। विष पी लिया उसने—लेकिन विष था कहाँ? मीराँके लिये तो उसके गिरिधरीलालने उस विषमें प्रवेश करके उसको पहिले ही अमृत बना दिया था।

## संत केशवदासजी

( जन्म—वि० सं० १६१२, सनात्त्व ग्राहण, कृष्णदत्तके पौत्र एवं काशीनाथके पुत्र, स्थान—ओडियो में रहा करते थे ।  
मृ० सं० १६७४ । )

धनि सो धरी धनि वार, जबहिं प्रभु पाइये ।  
प्रगट प्रकाश हजूर, दूर नहि जाइये ॥  
पूर्ण सरव निशान, जानि सोइ लीजिये ।  
निमल निर्गुन कंत, ताहि चित दीजिये ॥

( छन्द )

दीजिये चित वहुर जी कै, इत वहुर नहि आइये ।  
जहाँ तेज पुंज अनंत सूरज, गगन मैं भठ छाइये ॥  
लियो क्षट को पट सोलिकै, प्रभु अगमगति तब गति करी ।  
वादो सो अधिक सोहाग 'केसव', छुट्ट नहि एको घरी ॥  
अद्भुत भेस बनाय कै तब अल्ल अपन भनाइये ।  
निसु-वासरहि करि प्रेम तो निज नह कठ लगाइये ॥

दौलत निसान बान धरे खुदी अभिमान,  
करत न दाया काहू जीव की जगत  
जानत है निके यह फीको है सकल रंग,  
गहे फिरै काल फंद मारैगो छिनव  
धेरा डेरा गज वाज, झूठो है सकल साज,  
बादि हरि नाम कोऊ काज नाहिं अंत  
बार-बार कहाँ तोहि छाहु मान माया भोह,  
केसो काहे को करै छोभ मोह कास  
दोहा

आसा मनसा सब थकी, मन निज मनहि मिल  
ज्यों सरिता समुँदर मिली, मिटिगो आवन जा  
जेहि धर केसो नहि भजन, जीवन प्रान अध  
सो धर जम का गेह है, अंत भये ते शा

## खामीजी श्रीतरणतारण मण्डलाचार्य

( १६ वीं शताब्दी )

( प्रेषक—पै० श्रीजमीरचन्द्रजी शास्त्री )

मिथ्या इष्टिहि पर सहियो परपर्जय संजुचुरिना ।  
न्यान उवएस न संपजै, अन्यानी नरय निवासुरिना ।  
जनरंजन राग जु समय भउ जन उत्तहंत विसेषुरिना ।  
आरति ध्यानहं तुव सहियो, थावर गश विलसंतुरिना ।  
कल रंजन दोसह सहियो, पर्जय दिस्ति अनंतुरिना ।  
मोह महा भय पूरि वउ, भवसागर भयंतुरिना ।  
राव सहियो गारव सहियो, मिथ्या मय उवएसुरिना ।  
अन्मोय विरोहु न जानियो, दुग्गद गमन सहंतुरिना ।  
धम्मह भेउ न जानि पउ, कम्मह किय उवएसुरिना ।  
अन्यानी वय तब सहियो, भमियो काल अनंतुरिना ।  
अब किन मूढा ! नितवहि, न्यान सिरी सिहु भेउरिना ।  
न्यान विन्यानहं समय पउ, कम्म विसेष गलंतुरिना ॥

( १ ) दूसरेका सहारा लेनेसे और शारीरकी आसक्तिसे  
नरकका वास होता है, जानका उदय नहीं होता ।

( २ ) संसारमें मनुष्योंका साथ राग प्राप्त कर  
और आर्तिध्यानसे मर कर पञ्चतत्त्वोंमें जन्मता है ।

( ३ ) शरीरसक्त ही मोही है, वही संतारों  
मरणके चक्रकर काढता है ।

( ४ ) जो राग-द्वेष और मोहके वशमें हुआ अ  
विरोधमें असमर्थ है, वह दुर्भागिता पात्र है ।

( ५ ) भूत, प्यास, वीसारी, दुःखापा, राग, द्वेष,  
निद्रा, चिन्ता, भय, लैद, जन्म, भरण, स्वद, विसय,  
मंद, अरति—इन १८ दोर्पोंसे रहित देव व कथा, मार्दव, अ  
सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, अकिञ्चनता, व्रताचार्य १  
म जानकर अनन्तकालतक ध्यमण करता है । गुरुदेव कहते  
मृदृ ! अब चेत ! शान-लक्ष्मीसे प्रीति कर, भेद-विग्राम २  
दर्शन कर; तब अनन्त कमांको नष्ट कर सकेगा ।

## स्वामी श्रीदादूदयालजी

[ जन्म-संबत्—वि० १६०१, स्थान—अहमदाबाद ( गुजरात ), कुल—नागर ब्राह्मण, शशीराम वि० सं० १६६० नाराणा ग्राम  
जयपुरसे २० कोस दूर ) ]

शान

धीर दूध में रमि रहा, व्यापक सब ही ठौर ।  
दादू वक्ता बहुत हैं, सथि काढ़ें ते और ॥  
दादू सब ही शुर किये, पछु पंखी बनराइ ।  
तीन लोक गुण पंच सूँ, सब ही माहिं खुदाइ ॥  
निमिष एक न्यारा नहीं, तन मन भंगि समाइ ।



एक अंग लागा रहे, ताकूँ काल न खाइ ॥  
अदिनासी सों एक छै, निमिष न इत उत जाइ ।  
बहुत चिलाइ क्या करे, जे हरि हरि सबद सुणाइ ॥  
सोई सन्मुख जीवताँ, मरताँ सन्मुख होइ ।  
दादू जीवण मरण का, सोच करै जिनि कोइ ॥  
साहिव मिल्या त सब मिले, भेटे भेटा होइ ।  
साहिव रहा त सब रहे, नहीं त नाहीं कोइ ॥  
साहिव रहताँ सब रहा, साहिव जाताँ जाइ ।  
दादू साहिव राखिये, दूजा सहज सुभाइ ॥  
दादू सीचे मूल के, सब सीच्या विस्तार ।  
दादू सीचे मूल विन, बादि गई वेगार ॥  
सब आया उस एक में, डाल पान फल फूल ।  
दादू पीछे क्या रहा, जब निज पकड़ाया मूल ॥  
दादू एके आतमा, साहिव है सब माहिं ।  
साहिव के नाते मिडै, भैरव पंथ के नाहिं ॥  
मातृ तुम्हारा तुम्ह करने, तुम हीं लेहु पिण्डाणि ।  
दादू दूर न देखिये, प्रतिव्यंव ज्यूं जाणि ॥  
मन हँसी परारे नहीं, अह निसि एके ध्यान ।  
पर उपसारी प्राणिया, दादू उत्तिम र्यान ॥

गुरु और साधुकी भहिमा

‘दादू’ मनहीं सूँ मल ऊपजै, मनहीं सूँ मल धोइ ।  
भाव कलै गुर साध की, तौं तौं निर्मल होइ ॥  
राम झै सचि साध कूँ, साध जै सचि राम ।  
दादू दून्हें एकट्या, यहु अरभ यहु काम ॥  
‘दादू’ हरि साधु यों पाइये, अविगत के आराध ।  
साधु संगति हरि मिलै, हरि संगति नूँ साध ॥  
मन भुवंग यहु यिं भन्या, निर्विष क्यूँहिं न होइ ।  
दादू मिल्या गुर गान्डी, निर्विष कीया नोइ ॥

पूजा मान बड़ाइयाँ, आदर माँगै मन ।  
राम गहै सब परिहरै, सोई साधू जन ॥  
विष सुख माहीं रमि रहा, माया हित चित लाइ ।  
सोई संत जन ऊबरे, स्वाद छोड़ि गुण गाइ ॥  
साध मिलै तब ऊपजै, हरिदै हरि की प्यास ।

दादू संगति साध की, अविगत पुरबै आस ॥

प्रेम कथा हरि की कहै, करै भगति ल्यौ लाइ ।  
पिवै पिलावै राम रस, सो जन मिल्यो आइ ॥  
साहिव सूँ सन्मुख रहै, सत संगति मैं आइ ।  
दादू साधू सब कहै, सो निरफल क्यूँ जाइ ॥  
निरवैरी सब जीव सूँ, संत जना सोई ।  
दादू एकै आतमा, वैरी नहिं कोई ॥  
कहै कूँ दुख दीजिये, घट घट आतम राम ।  
दादू सब संतोषिये, यहु साधू का कास ॥

नम

एकै अच्छर पीव का, सोई सत करि जाणि ।  
राम नाम सतगुर कह्या, दादू सो परवाणि ॥  
दादू नीका नांव है, तीन लोक तत सार ।  
राति दिवस रटियो करी, रे मन इहै बिचार ॥  
दादू नीका नांव है, हरि हिरदै न बिसारि ।  
सूरति मन माहीं वसै, साँसै साँस सँभारि ॥  
दादू नीका नांव है, आप कहै समझाइ ।  
और आँखें सब छाड़ि दे, राम नाम ल्यौ लाइ ॥  
राम भजन का सोच क्या, करताँ होइ सो होइ ।  
दादू राम सँभालिये, किरि बूक्खिये न कोइ ॥  
राम तुम्हारे नाँव विन, जे मुख निकसे और ।  
तौं इस अगराधी जीव कूँ, तीन लोक कत ठौर ॥  
एक राम की टेक गहि, दूजा सहज सुभाइ ।  
राम नाम छोड़े नहीं, दूजा आवै जाइ ॥  
निमिष न न्यारा कीजिये, अंतर सूँ हरि नाम ।  
कोटि पतित पावन भये, केवल कहताँ राम ॥  
दादू राम सँभालि ले, जब लग सुखी सरीर ।  
किरि पीछे पछिताइगा, जब तन मन धरै न धीर ॥

तुम्ह दरिया संमार है, सुख का सागर राम।  
 सुख यागर चलि जाइये, दादू तजि बेकाम॥  
 दादू दुखिया तब लो, जब लग नाँव न लेहि।  
 तब दी पावन परम सुख, मेरी जीवन थेहि॥  
 दादू पिय का नाँव ले, तौ मैरे शिर साल।  
 भड़ी महूरत चालना, कैसी आवै काल॥  
 'दादू' रावत राजा राम का, कदे न विसारी नाँव।  
 आत्म राम सँभालिये, तौ सूख स काया गाँव॥  
 'दादू' जहाँ रहूँ तहूँ राम लूँ, भावै कंदलि जाइ।  
 भावै गिर परवत रहूँ, भावै गेह वकाइ॥  
 'दादू' सौई सेवै सब भले, बुरा न कहिये कोइ।  
 साराँ मार्दीं सो बुरा, जिस घट नाँव न होइ॥  
 दादू जिवत राम विन, दुखिया थेहि संसार।  
 उथजै बिनसै खायि सैर, सुख दुख बारंबार॥  
 राम नाम रुचि ऊपजै, लेवे हित चित लाइ।  
 दादू सोई जीयरा, कहै जमपुर जाइ॥  
 दादू सब जग विष भर्या, निर्विष विरला कोइ।  
 सोई निर्विष होइगा, जा के नाँव निरंजन होइ॥  
 दादू निर्विष नाँव सौं, तन मन सहजै होइ।  
 राम निरोग करैगा, दूजा नाहीं कोइ॥  
 नाँव सरीझ लैजिये, प्रेम भगति गुन गाइ।  
 दादू सुमिरण प्रीति सौ, हेत सहित ल्यौ लाइ॥  
 'दादू' कहताँ सुशताँ यम कहि, लेताँ देताँ राम।  
 खाताँ पीताँ राम कहि, आत्म कँवल विषराम॥  
 ना धर भला न बन भला, जहाँ नहीं निज नाँव।  
 दादू उनमुनि मन रहै, भला न सोई ठाँव॥  
 कौण पठंतर दीजिये, दूजा नाहीं कोइ।  
 राम सरीखा राम है, सुमिरयाँ ही सुख होइ॥  
 'दादू' सबही वेदपुरान पढि, मेहि नाँव निरधार।  
 सब कुछ इन ही माहिं है, कथा करिये बिस्तार॥  
 दादू हरि रस वीवताँ, रती विलंब न लाइ।  
 बारंबार सँभालिये, मति वै बीसरि जाइ॥  
 नाँव न आवै तब दुखी, आवै सुख संतोष।  
 दादू सेवक राम का, दूजा हरप न सोक॥  
 मिले तो सब सुख पाइये, विलुरे बहु दुख होइ।  
 दादू सुख दुख राम का, दूजा नाहीं कोइ॥  
 दादू हरि का नाँव जल, मैं मछली ता माहिं।  
 संग सदा आनंद करै, बिछुरत ही मरि जाइ॥

दादू राम विसारि करि, जीवै कैहिं आधार।  
 ज्यूँ चातक जल बूँद कौं, करै पुकार पुकार॥  
 दादू सब जग निरधार, धनदेता नहिं कोइ।  
 सो धनदेता जानिये, जाके राम पदारथ होइ॥  
 संगहि लगा सब फिरै, राम नाम के सभ।  
 चितामणि हिरदै बसै, तो सकल पदारथ हाथ॥  
 जेता पशु सब जग करै, तेता नाँव विसारै होइ॥  
 दादू राम सँभालिये, तौ एता डारै धोइ॥  
 अलत नाँव अंतरि कहै, सब घटि हरि हरि होइ॥  
 दादू पाणी लूण ज्यूँ, नाँव कहैजै भोइ॥  
 राम विना किल काम का, नहिं कौड़ी का जीव।  
 सौई सरिखा इवै गया, दादू परसे वीव॥  
 'दादू' जेहिं घट दीपक राम का, तेहिं घट तिमिर न होइ॥  
 उस उजियारे जोति के, सब जग देखै सोइ॥  
 गूँगे का गुड़ का कहूँ, मन जानत है खाह।  
 त्यूँ राम रसाइण पीवताँ, सो सुख कहा न जाइ॥  
 'दादू' राम कहूँ ते जोडिवा, राम कहूँ ते सालि॥  
 राम कहूँ ते गाइवा, राम कहूँ ते रालि॥  
 देत न निपजै बीज विन, जल सीने क्या होइ॥  
 सब लिसफल दादू राम विन, जाणत है सब कोइ॥  
 कोटि वरस वया जीवणा, अमर भये क्या होइ॥  
 प्रेम भगति रस राम विन का दादू जीवनि सोइ॥  
 सहजै हीं सब होइगा, गुण इंद्री का नाम।  
 दादू राम सँभालताँ, कर्टै करम के पाय॥  
 एक राम के नाम विन, जिव की जला न जाइ॥  
 दादू केते पनि मुण, करि करि बहुत उपाय॥  
 राम कहै सब रहत है, नव सिल सकल सरीर।  
 राम कहै बिन जात है, समझो मनवाँ वीर॥  
 आपा पर सब दूरि करि, राम नाम रस लागि।  
 दादू औसर जात है, जागि उकै तौ जागि॥  
 दादू नीका नाँव है, सो तै हिरदै रायि।  
 पार्खेड पर्खेच दूरि करि, सुनि साधू जन की सालि॥  
 विषै हलहल खाइ करि, सब जग मरि मरि जाइ॥  
 दादू मुहरा नाँव ले, हृदै गायि लौ लाइ॥  
 'दादू' कनक कलस विप सूँ भन्या, भो किस आवै याम॥  
 सो धनि कँडा चाम का, जा मैं अमृत गग॥  
 'दादू' राम नाम निज औशदी, कायै कोटि विकार।  
 विषम व्याधि धं ऊरै, आया कन्चन नाम॥

विप्रति भली हरि नॉव सूँ, काया कसौटी दुक्ख।  
राम विना किंत काम का, दादू सम्पति सुख।  
मरै त पावै पीव कूँ, जीवत बंचै काल।  
दादू निर्भय नॉव ले, दून्हों हाथ दयाल।  
नाम लिया तब जाणिये, जे तन मन रहे समाइ।  
आदि अंत मध एक रस कवहूँ भूलि न जाइ।  
नॉव न आवै तब दुखी, आवै सुख मंतोष।  
दादू ऐवक राम का दूजा हरख न सोक।

### स्मरण

‘दादू’ अहनिमि सदा सरीर में, हरि चिंतत दिन जाइ।  
प्रेम मगत ल्य लीन मन, अंतर गति ल्यौ लाइ।  
दादू आनेंद आतमा, अविनासी के साथ।  
प्राणनाथ हिरदे वै, तौ सकल पदारथ हाथ।  
अंतर गति हरि हरि करै, तब मुख की हाजत नाहिं।  
महजै धुनि लागी रहै, दादू मन ही माहिं।

### विषय-निदा

दादू विषै विकार सौ, जब लग मन राता।  
तब लग चीत न आवई, त्रिभुवन पति दाता॥  
‘दादू’ जिन विष पीवै नावरे, दिन दिन बाड़े रोग।  
देखत हीं मरि जाइगा, तजि विषया रस भोग॥  
‘दादू’ स्वाद लागि संतार सब, देखत परलै जाइ।  
इंद्री स्वारथ माच तजि, सबै वैष्णवों आइ॥  
‘दादू’ काम कठिन घाट चोरहै, घर फोड़ै दिन रात।  
सोबत भाव न जागई, तत्त वस्त लै जात॥  
ज्यों धुन लागै काठ कौ, लोहै लागै काट।  
काम किया घट जाजरा, दादू वारह वाट॥  
काल कनक अह कामिनी, परिहरि इन का संग।  
दादू सब जग जलि मुद्या, ज्यों दीपक जोति पतंग॥

### अनन्यता

‘दादू’ एकै दसा अनन्य की, दूजी दसा न जाइ।  
आपा भूलै आन सब, एकड़ रहे भमाइ॥  
दादू देखूँ निज पीव कूँ, और न देखौं कोइ।  
पूरा देखूँ पीव कूँ, वाहर भीतर भोइ॥  
एक मना लागा रहै, अंत मिलेगा माइ।  
दादू जाके मन बहै, ता कूँ दरसन होइ॥  
दादू रीझे राम पर, अनत न रीझे मन।  
मीठा भावै एक रस, दादू सोइ जन॥

‘दादू’ दूजा नैन न देखिये, स्ववणहुँ सुनै न जाइ।  
जिम्या आन न बोलिये, अंग न और सुहाइ॥

### आश्रय

हम जीवें इहि आसैर, सुमिरण के आधार।  
दादू छिटकै हाथ सूँ, तौ हम कूँ बार न पार॥  
‘दादू’ करणहार करता पुरिप, हम कौं कैसी चिंत।  
सब काहू की करत है, सो दादू का भिंत॥  
ज्यूँ तुम भावै ल्यूँ खुसी, हम राजी उस बात।  
दादू के दिल सिदक र्यूँ, भावै दिन कूँ रात॥  
‘दादू’ डोरी हरि के हाथ है, गल माहीं मेरै।  
बाजीगर का बंदरा, भावै तहूँ केरै॥  
‘दादू’ तन मन काम करीम के, आवै तौ नीका।  
जिस का तिप कूँ सौंसिये, सोच क्या जी का॥  
जे सिर सौंप्या राम कूँ, सो तिर भया सनाश।  
दादू दे ऊरण भया, जिस का तिप के हाथ॥  
जिस का है तिप कूँ चड़े, दादू ऊरण होइ॥  
पहिली देवै सौ भला, पीछे तौ सब कोइ॥  
‘दादू’ कहै जे त्यूँ राखै साइयाँ, तौ मारिन सककैकोइ॥  
बाल न बाँका करि सकै, जो जग वैरी होइ॥

### भगवान्की भहिमा

धर बन माहीं सुख नहीं, सुख है साईं पास।  
दादू ता सूँ मन मिल्या, इन सूँ भया उदास॥  
‘दादू’ सोइ हमारा सौँदैयाँ, जे सब का पूरणहार।  
दादू जीवण मरण का, जाके हाथ विचार॥  
‘दादू’ जिन पहुँचाया प्राण कूँ, उदर उर्धमुख पीर।  
जठर अगनि मैं राखिया, कोमल कागा सरीर॥  
धनि धनि साहिव तू बड़ा, कैन अनूपम रीति।  
सकल लोक तिर सौँदैयाँ, है करि रहा अतीत॥  
‘दादू’ हूँ बलिहारी सुरत की, सब की करै सेंभाल।  
कीड़ी कुंजर पलक में, करता है प्रतिपाल॥  
मीरा मुक्ति सूँ मिहरि करि तिर पर दीया हाथ।  
दादू कलियुग क्या करै, साईं मेरा साथ॥  
इक लख चंदा आणि घर, सूरज कोटि मिलाइ।  
‘दादू’ गुरुगोविन्द विन तौ भी तिमिर न जाइ॥

### वैराग्य

सुगनैं सब कुछ देखिये, जागै तौ कुछ नाहिं।  
ऐसा यहुँ संसार है, समझि देखि मन माहिं॥

‘दादू’ इठे तन के कारण, कीये बहुत विकार।  
गृह दास धन संपदा, पृत कुट्टव परिवार॥  
‘दादू’ यहु घट कान्चा जल भरथा, विनसत नहीं बार।  
यहु घट कूटा जल गया, समझत नहीं गँवार॥  
भूटी काया जाजरी, नव ठाहर काणी।  
ता में दादू क्यों रहै, जीव सरीखा पाणी॥  
जब भगी इस खाल का, झटा गर्व गुमान।  
दादू विनसै देखताँ, तिसका क्या अभिमान॥  
काल गिरासै जीव कूँ, पल पल सौसै सौस।  
पग पग माही दिन घड़ी, दादू ल्खै न तास॥  
दादू काया कार्यी, देखत ही चलि जाइ।  
जब लग साँउ सरीर में, राम नाम ल्खै लाइ॥  
दादू देही देखताँ, सब किसी की जाइ।  
जब लग साँग सरीर में, गोविंद के गुण गाइ॥  
दादू सब को पाहुण्झा, दिवस चारि संसार।  
औसरि औसरि सब चले, हम भी इहै विचार॥  
सब को बैठे पंथ सिरि, रहे बदाऊ होइ।  
जे आये ते जाहिंग, इस मारग सब कोइ॥  
संझया चलै उतावला, बदाउ बनखँड भाहिं।  
विरियाँ नाहीं ढोल की, दादू वेशी धरिजाहिं॥  
सब जीव विसाहैं काल कूँ, करिकरि कोटि उपाइ।  
साहिंच कूँ समझैं नहीं, यौं परल्य है जाइ॥  
दादू अमृत छोड़ि करि, विषै हल्लहल खाइ।  
जीव विसाहै काल कूँ, मूढ़ा मरि मरि जाइ॥  
ये दिन बैते चलि गये, वे दिन आये धाइ।  
राम नाम विन जीव कूँ, काल गरासै जाइ॥  
‘दादू’ घरती करते एक डग, दरिया करते फाल।  
हँकौं परबत फँड़ते, सो भी खाये काल॥

## नाम-विस्तरणसे हानि

‘दादू’ जब ही राम विसारिये, तबही झैंपै काल।  
तिर ऊपरि करबत बैहै, आइ पड़ै जम जाल॥  
‘दादू’ जब ही राम विसारिये, तब ही कंध विनाय।  
पग पग परल्य पिंड पड़ै, प्राणी जाइ निरास॥  
‘दादू’ जब ही राम विसारिये, तब ही हानी होइ।  
प्राण पिंड सरबत गया, सुखी न देखा कोइ॥  
ता कारण हति आतमा, इठ कपट अहँकार।  
सो भाटी मिलि जाइगा, विस्त्या सिरजनहार॥

सुरग भरक संसद नहीं, जिवण मरण भय नाहिं।  
राम विमुख जे दिन गये, सो साँहैं मन माहिं॥

## विरह

विरहिनि शेवै रात दिन, द्यूरै मनहीं माहिं।  
दादू औसर चलि गया, प्रीतम पाये नाहिं॥  
विव विन पल पल बुग भया, कठिन दिवस क्यूँ जाइ।  
दादू दुखिया राम विन, काल रुप सब खाइ॥  
सहजैं मनसा मन सधै, सहजैं पवना सोइ।  
सहजैं पाँचौं थिर भये, जे चोट विरह की होइ॥  
दादू पड़ा पलक का, एता अंतर होइ।  
दादू विरही राम विन, क्यूँ करि जीवै सोइ॥  
रोम रोम रस प्यास है, दादू करहि पुकार।  
राम घटा दल उमंगि करि, वरसहु निरजनहार॥  
तलफि तलफि विरहणि मरै, करि करि बहुत विलाप।  
विरह अगिनि में जल गई, पीव न पूँछै बात॥  
राम विरहिणी हैं गया, विरहिणि हैं गई राम।  
दादू विरहा बापुरा, ऐसे करि गया काम॥

## प्रेम

मैंवरा लुबधी बास का, मोहा नाद कुरंग।  
यौं दादू का मन राम सूँ, ज्यूँ दीपक जोति पतंग॥  
प्रेम भगति माता रहै, तालाबेली अंग।  
सदा सपीड़ा मन रहै, राम रमै उन संग॥  
‘दादू’ बाताँ विरह न उपजै, बाताँ प्रीति न होइ।  
बाताँ प्रेम न पाइये, जिन रे पतीने कोइ॥  
दादू तौ पिव पाइये, कस मल है सो जाइ।  
निरमल मन करि आरसी, मूरति माहिं लजाइ॥  
प्रीत जो मेरे पीव की, पैठी पिंजर भाहिं।  
रोम रोम पिति पिति करै, दादू दूसर नाहिं॥  
दादू देखूँ निज पीव कूँ, देखत ही दुख जाइ।  
हूँ तौ देखूँ पीव कूँ, तब मैं रखा भगाइ॥  
दादू देखैं दयाल कीं, बाहिरी भीतरि गोइ।  
सब दिसि देखूँ पीव कूँ, दूसर नाहीं कोइ॥  
दादू देखूँ दयाल कूँ, रोकि रखा मव ढाइ॥  
घटि घटि मेरा साइयाँ, तूँ जिनि जाये ओइ॥  
सदा लीन-आनंद में, महज रुप गव ढाइ॥  
दादू देखै एक कूँ, दूजा नाहीं ओइ॥  
‘दादू’ जहँ तहँ साखी संग है, मेरे गदा अंग॥  
नैन बैन हिरदै रहै, पूरण परमानंद॥

सब तजि देलि विचारि करि, मेरा नहीं कोइ ।  
अन दिन राता राम सूँ, भाव भगति रत होइ ॥  
दादू जल पायाण ज्यूँ, सेवै सब संसार ।  
दादू पाणी लूण ज्यूँ, कोइ विरला पूजनहार ॥  
‘दादू’जव दिल मिला दयालसूँ, तब सब पड़ा दूरि ।  
ऐसे मिलि एकै भया, बहु दीपक पावक पूरि ॥  
‘दादू’जव दिल मिला दयालसौँ, तब पलक न पड़ा कोइ ।  
डाल मूल फल बीज मैं, सब मिलि एकै होइ ॥  
दादू हरि रस पीवताँ, कवहुँ असचि न होइ ।  
पीवत प्यासा नित नवा, पीवण हारा सोइ ॥  
ज्यूँ ज्यूँ पवि राम रस, लूँ लूँ बहै पिवास ।  
ऐसा कोई एक है, विरला दादू दास ॥  
रोम रोम रस पीजिये, एती रमना होइ ।  
दादू प्यासा प्रेम का, यौं विन तृपति न होइ ॥  
परचै पीवि राम रस, सो अविनासी अंग ।  
काल भीच लगै नहीं, दादू साँइ संग ॥  
आदि अंत मधि एक रस, दूटै नहिं धगा ।  
दादू एकै रहि गया, तब जाणी जागा ॥  
‘दादू’ मेरे हिरहै रहि वते, दूजा नहीं और ।  
कहौं कहौं धौं राखिये, नहीं आन कौं ठौर ॥  
‘दादू’ तन मन मेरा पीव सूँ, एक सेज सुख सोइ ।  
महिला लोग न जाण ही, पचि पचि आपा खोइ ॥  
पर पुरिपा सब परिहरै, सुंदरि देखै जागि ।  
अपणा पीव पिछाणि करि दादू रहिये लागि ॥  
राम रसिक बांछै नहीं, परम पदरथ चार ।  
अठ सिधि नौ निधि का करै, राता सिरजनहार ॥  
वैष्टे सदा एक रस पीवै, निरवैरी कत जूँझै ।  
आत्म राम मिलै जब दादू, तब अंगि न लगै दूँझै ॥  
‘दादू’ जिन यह दिल मंदिर किया, दिल मंदिर मैं सोइ ।  
दिल माही दिलदार है, और न दूजा कोइ ॥  
ना यहु मिलै न मैं तुली, कहु क्यूँ जीवन होइ ।  
जिन मुझको शायल किया, मेरी दान नोइ ॥

### अहंभावकी वाधकता

जहाँ राम तहँ मैं नहीं, मैं तहँ नहीं राम ।  
दादू महल वरीक है, दूजे को नाहीं राम ॥  
दादू आग जब लये, तब लय दूजा होइ ।  
जब यहु अगा भिटि नवा, तब दूजा नहि कोइ ॥

‘दादू’ मैं नाहीं तब एक है, मैं आई तब दोइ ।  
मैं तैं पड़ा मिटि गया, तब ज्यूँ था ल्यूँही होइ ॥  
‘दादू’ है कौं भय घणा, ‘नाहीं’ कौं कुछ नाहिं ।  
दादू ‘नाहीं’ होय रह, अपणे साहिव माहिं ॥

### दीनता

कीया मन का भावताँ, मेरी आग्याकार ।  
क्या ले सुख दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥  
कुछ खाताँ कुछ खेलताँ, कुछ सोवत दिन जाइ ।  
कुछ विषियाँ रस विलसताँ, दादू गये विलाइ ॥  
जैसे कुंजर कास वस, आप वैधाणा आई ।  
ऐसे दादू हम भये, क्यों करि निकस्या जाइ ॥  
जैसे मरकट जीम रस, आप वैधाणा अंध ।  
बैसे दादू हम भये, क्यूँ करि दूटै फंद ॥  
ज्यों सूखा सुख कारणे, वंध्या मूरख भाहिं ।  
ऐसे दादू हम भये, क्यूँ ही निकसैं नाहिं ॥  
जैसे अंध अग्यान यह, वंध्या मूरख स्वादि ।  
ऐसे दादू हम भये, जन्म गँवावा वादि ॥  
दादू राम विसारि करि, कीवै बहु अपराध ।  
लाजौं मरे साध सब, नाँव हमारा ताथ ॥  
जब दरबै तब दीजियौ, तुम पैं मार्मी वेहु ।  
दिन प्रति दरसन साध का, प्रेम भगति दिड़ देहु ॥  
दादू जीवण मरण का, मुझ पछितावा नाहिं ।  
मुझ पछितावा पीव का, रहा न नैनहुँ माहिं ॥  
जो साहिव कूँ भावै नहीं, सो हम तैं जिनि होइ ।  
सतगुर लजै आर्या, साध न मानै कोइ ॥

### साधन

‘दादू’ जो साहिव कूँ भावै नहीं, सो सब परिहरि प्राण ।  
मनमा वाचा कर्मना, जे तैं चतुर तुजाग ॥  
‘दादू’ जो साहिव कूँ भावै नहीं, जो वाड न बड़ी रे ।  
मौंह दूँ तन्मुख रही, इन मन मूँ बड़ी रे ॥  
जब लगि यहु मन शिर नहीं, तब लगि फूस न होइ ।  
दादू मनवा पिर भया, महजि मिलैगा मोइ ॥  
‘दादू’ जिन अदलेवन क्यूँ रहै, मन चंचलि चलि जाइ ।  
इस्तिर मनवा तौं रहै, मुमिरण मेती लाइ ॥  
क्या उँह के तैंति बोलिये, दादू दीजै रोइ ।  
जन्म अमोलक आर्या, चडे अकारथ मोइ ॥  
कहा दमाग मानि नन, धारी पनिहरि काम ।  
विद्या का मैंग छोड़ि दे, दादू कहि रे राम ॥

दादू खोई आपणी, लज्या कुल की कार।  
मान बड़ाई पति गई, तब सनमुख सिरजनहार॥

## भक्ति

फल कारण सेवा करै, जाचै विसुवन राव।  
दादू सो सेवा नहीं, खेलै अपणा दाव॥  
तन मन ले लागा रहै, गता सिरजनहार।  
दादू कुछ माँगै नहीं, ते विरल संसार॥  
जा कारण जग जीजिये, सो पद हिरदै नाहिं।  
दादू दरि की भगति विन, धृग जीवण कलि माहिं॥

## माया

यहु सब माया मिर्ग जल, झटा विलिमिलि होइ।  
दादू चिलका देखि करि, सत करि जाना सोइ॥  
'दादू' बूढ़ि रह्या रे बापुरे, माया यह के कूप।  
मोहा कनक अरु कामिनी, नाना विधि के रूप॥  
'दादू' झटी काया झट घर, झटा यह परिवार।  
झटी माया देखि करि, फूल्यौ कहा गँवार॥  
'दादू' जन्म गया सब देखताँ, झटी के सँग लागि।  
साचे प्रीतम कौं मिलै, भागि सकै तौ भागि॥

## उपदेश

'दादू' ऐसे महेंगे मोल का, एक साँस जे जाइ।  
चौदह लोक समान सो, काहे रेत मिलाइ॥  
नैनहुँ वाला निरपि करि, दादू धालै हाथ।  
तब हीं पावै रमधन, निकट निरंजन नाथ॥  
मन मायिक मूरखे राखि रे, जण जण हाथि न देहु।  
दादू पारिख जौहरी, राम साध होइ लेहु॥  
दुनियाँ के पीछे पड़या, दौड़या दौड़या जाइ।  
दादू जिन दैदा किया, ता साहिव कूँ छिटकाइ॥  
'दादू' जा कूँ मारण जाइये, सोइ फिर मारै।  
जा कूँ तारण जाइये, सोइ फिर तारै॥  
दादू चारै चित दिया, चितामणि कूँ भूलि।  
जन्म अमोलिक जात है, बैठे माँझी छूलि॥  
'दादू' कहे कहे का होत है, कहे न सीझै काम।  
कहे कहे का प्राइये, जब लग हूदैन आवै राम॥  
तूँ सुझ कूँ मोटा कहै, हाँ तुझे बड़ाई मान।  
साँई कूँ समझै नहीं, दादू झटा ग्यान॥  
नाँव धरावै दास का, दास तन सूँ दूर।  
दादू कारज क्यूँ सरै, हरि सूँ नहीं हजूरि॥

'दादू' वातों ही पहुँचै नहीं, घर दूरि पथान।  
मारग पंथी उठि चलै, दादू सोइ सयान॥  
दादू पैडे पाप के, कदे न दीजै पाँव।  
जिहिं पैडे मेरा पिव मिलै, तिहिं पैडे का चाव॥  
'दादू' सुकिरत मारा चालताँ, बुरा न कबहुँ होइ।  
अमृत खाताँ प्राणियाँ, सुवा न सुनिये कोइ॥  
झटा साचा करि लिया, विष अमृत जाना।  
दुख कौं सुख सब कोइ कहै, ऐसा जगत दिवाना॥  
'दादू' पाखँड पीव न पाइये, जे अंतरि सॉच न होइ।  
ऊपरि सूँ क्यौं हीं रहौ, भीतर के मल धोइ॥  
'दादू' भावै तहाँ छिपाइये, साच न छाना होइ॥  
सेस रसातल गगन धू, परगट कहिये सोइ॥  
'दादू' जे तूँ समझै तौ कहौ, साचा एक अलेप।  
डाल पात तजि मूल गहि, क्या दिखलावै भेष॥  
सो दिसा कतहुँ रही, जेहिं दिसि पहुँचे साध।  
मैं तैं मूरिख गहि रहे, लोभ बड़ाई बाद॥  
प्रेम प्रीत सनेह विन, सब झटे सिंगार।  
दादू जातम रत नहीं, क्यूँ मानै भरतार॥  
देह रहे संसार मैं, जीव राम के पास।  
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल ज्ञाल दुख त्रास॥  
'दादू' सहजैं सहजै होइगा, जे कुछ रचया राम।  
कहै कौं कलै मरै, दुखी होत वेकाम॥  
पूरिक पूरा पासि है, नाहीं दूरि गँवार॥  
सब जानत है वावरे, देवे कूँ हुसियार॥  
दादू चिता राम कूँ, समरथ सब जाँ॥  
'दादू' राम सँभालिये, चिता जिनि आँ॥  
गोविंद के गुण चीत करि, नैन बैन पा सीस।  
जिन मुख दीया कान कर, प्राणनाथ जगदीम॥  
हिरदै राम सँभालि ले, मन राखै बेगार।  
दादू समरथ माझाँ, सब नी पूरे आग॥  
'दादू' छाजन भोजन सहज मैं, मँझाँ देह गो लै॥  
ताँ अधिका और कुछ, सो तूँ कोइ करेइ॥  
'दादू' जे कुछ खुसी खुशाइ की, होवेगा गो॥  
पचि पचि कोई जिनि मरै, सुणि लीज्यो येइ॥  
'दादू' विना राम कहीं को नहीं, फिरही देम विठेगा॥  
दूजी दहणि दूरि कर बौरे, सुणि यहु भाग गेइ॥  
मीठे का सब मीठा लागै, भावै विष भरि देइ॥  
दादू कडवा ना कहै, अमृत करि देइ॥

दादू एक विसास विन, जियरा डाप्रैंडोल ।  
निकटै निधि दुख पाइये, चिंतामणी अमोल ॥  
‘दादू’ विन विसवासी जीयरा, चंचल नहीं ठौर ।  
निहचय निहचल ना रहै, कछू और की और ॥  
‘दादू’ होणा था सो है रह्या, जे कुछ कीया पीव ।  
पल वधै ना छिन घटे, ऐसी जाणी जीब ॥  
ज्यूँ रचिया त्यूँ होइगा, काहे कुँ सिर लेइ ।  
साहिब ऊपर राखिये, देखि तमाजा येह ॥  
दादू करता हम नहीं, करता औरै कोइ ।  
करता है सो करैगा, तू जिनि करता होइ ॥  
बैरी मरे मरि गये, चित सूँ विसरे नाहिं ।  
दादू अजहुँ साल है, समझि देख मन माहिं ॥  
साँई कारण सब तजै, जन का ऐसा भाव ।  
दादू राम न छोड़िये, भावै तन मन जाव ॥  
जहुँ जहुँ दादू पग धरै, तहाँ काल का फंध ।  
सिर ऊर साँधे खड़ा, अजहुँ न चेतै अंध ॥  
दादू मरिये राम विन, जीजै राम सँभाल ।  
अमृत पीवै आतमा, यौं साधू बचै काल ॥  
बैम बद्राऊ पथ सिरि, अब विलंब न कीजै ।  
दादू बैठा क्या करै, राम जपि लीजै ॥  
‘दादू’ सब जग मरि जात है, अमर उपावणहार ।  
रहता रमता राम है, बहता सब संसार ॥  
यहु जग जाता देखि करि, दादू करी पुकार ।  
घड़ी महूरत चालणाँ, राखै सिरजनहार ॥  
जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै, आव घटै तन छीजै ।  
अंत काल दिन आइ पहुँच्या, दादू ढील न कीजै ॥  
दादू गाफिल है रह्या, गहिला हुआ गँवार ।  
सो दिन चीति न आवर्दि, सोवै पाँव पसार ॥  
‘दादू’ काल हमारा कर गहे, दिन दिन खैंचत जाइ ।  
अजहुँ जीब जगै नहीं, सोवत गई विहाइ ॥  
दादू देखत ही भया, स्याम वरण तै सेत ।  
तन मन जोवन सब गया, अजहुँ न हरि सूँहेत ॥  
जीवत मेला ना भया, जीवत परम न होइ ।  
जीवत जगति ना मिले, दादू बूड़े सोइ ॥  
जीवत परगड ना भया, जीवत परचा नाहिं ।  
जिवत न पाया पीव कुँ, बूड़े भौ-जल माहिं ॥  
किस सूँ बैरी है रह्या, दूजा कोई नाहिं ।  
जिस के अंग तै ऊरज्या, सोई है सब माहिं ॥

ज्यौ आपै देखै आप कुँ, यौं जे दूसर होइ ।  
तौ दादू दूसर नहीं, दुखल न पावै कोइ ॥  
दादू सम करि देखिये, कुंजर कीट समान ।  
दादू दुविधा दूरि करि, तजि आपा अभिमान ॥  
‘दादू’ बुरा न बाँहै जीब का, मदा मजीवन सोइ ।  
परलै विषै विकार सब, भाव भगति रत होइ ॥  
‘दादू’ निया नौव न लीजिये, सुविनै हीं जिनि होइ ।  
ना हम कहै न तुम सुणौ, हम जिनि माखै कोइ ॥  
‘दादू’ निदक बपुरा जिनि मरै, पर उमारी सोइ ।  
हम कुँ करता ऊजला, अपिण मैला होइ ॥  
अणदेख्या अनरथ कहै, अपराधी संसार ।  
जद तद लेखा लेहगा, समरथ सिरजनहार ॥  
दादू बहुत बुरा किया, तुम्है न करणा योस ।  
साहिव समाई का धनी, बदे कुँ सब दोस ॥  
ज्यौं आपै देखै आप कुँ, सो नैना दे मुज्ज्ञ ।  
मीरा मेरा सेहर करि, दादू देखै तुज्ज्ञ ॥  
‘दादू’ संगी सोई कीजिये, जे कलि अजराँवर होइ ।  
ना वह मरै न बीछुड़ै, ना दुख व्यापै कोइ ॥  
‘दादू’ संगी सोई कीजिये, जे स्थिर इहि संसार ।  
ना वहु लिरै न हम खैं, ऐसा लेहु विचार ॥  
‘दादू’ संगी सोई कीजिये, जे कबहु पलटि न जाइ ।  
आदि अंत विहाइ नहीं, ता सन यहु मन लाइ ॥  
जिहि घर निंदा साधु की, सो घर गये समूल ।  
तिन की नौव न पाइये, नौव न ठाँव न धूल ॥  
दादू मारग कठिन है, जीवत चलै न कोइ ।  
सोई चलि है बापुरा, जे जीवत मिरतक होइ ॥  
जे सिर सौंप्या राम कुँ, सो सिर भया सनाथ ।  
दादू दे ऊरण भया, जिस का तिथ के हाथ ॥

### भक्तके लक्षण एवं महिमा

‘दादू’ सोई सेवग यम का, जिसै न दूजी चित ।  
दूजा को भावै नहीं, एक पियार मित ॥  
सोइ जन साचे सोइ सती, सोइ साधक सूजान ।  
सोइ ग्यानी सोइ पंडिता, जे राते भगवान ॥  
‘दादू’ भेष बहुत संतार मैं, हरिजन विरला कोइ ।  
हरिजन राता राम सूँ, दादू एकै सोइ ॥  
कादर काम न उगारै, यह मरे न ॥

ऐसा राम हमारे आवै (वार पार कोइ अंत न पावै ॥टेका॥  
हल्लवा भारी कहा न जाइ । मोल-माप नहिं रहा समाइ ॥  
कीमत लेवा नहिं परिमाण । सब पचि हरे साव सुजाण ॥  
आगौ पीछी परिमित नाहीं । केते पारिय आवहि जाही ॥  
आदि-अंत-गाधि लखै न कोइ । दादू देखे अचरज होइ ॥

वयऊ रे चलना आज कि काल ।

लमश न देखै कहा सुख सोवै, रे मन राम सँभाल ॥  
जैसै तरवर विरल बसेरा, पंखी बैठे आइ ।  
ऐसै यह सब हाट पसारा, आप आप कुँ जाइ ॥  
कोइ नहिं तेरा सजन सँगाती, मति खोवै मन मूल ।  
यह संमर देख मत भूलै, सबही संचल झूल ॥  
तन नहिं तेरा, धन नहिं तेरा, कहा रहो इहिं लागि ।  
दादू हरिविन क्यूँ सुख सोवै, काहे न देखै जागि ॥

मन मुरिखा तैं योहीं जनम गँवायौ ।

सौई केरी सेवा न कीर्ही, इहि कलि काहे कुँ आवै ॥  
जिन बातम तेरै छूटिक नाहीं, सौई मन तेरै भावै ।  
कासी है विषयासँग लाघो, रेम रैम लपटायौ ॥  
कुछ इक चेत विचारी देखौ, कहा पाप जिय लायौ ।  
दादूदास भजन करि लीजै, सुनने जग छहकायौ ॥

हिंदू तुरक न जाणू दोइ ।

सौई सब का सौई है रे, और न दूजा देखूँ कोइ ॥  
कीट-पतंग सबै जोनिन में, जल-थल संग समाना सोइ ।  
पीर पैगंबर देव-दानव, मीर-मलिक मुनि-जनकूँ मोहि ॥

करता है रे सोई चीन्हों, जिन वै क्रोध करै रे कोइ ।  
जैसै आरसी मंजन कीजै, राम-रहीम देही तम धोइ ॥  
सौई केरी सेवा कीजै, पायौ धन काहे कुँ खोइ ।  
दादू रे जन हरि भज लीजै, जनम जनस जे सुरजन होइ ॥

मेरा मेरा छोइ मँवारा, सिर पर तेरे सिरजनहारा  
अपने जीव विचारत नाहीं, क्या ले गहला बंस तुम्हारा ।  
तब मेरा कल करता नाहीं, आवत है हंकारा  
काल चक्र सूँ खरी परी रे, विसर गया घर वारा ।  
जाइ तहाँ का संयम कीजै, विकट धर्थ गिरधारा  
वे 'दादू' रे तन अपणा नाहीं, तौ कैसे भयो संक्षारा ॥

उजहुँ न निकसे प्राण कठोर ।

दरसन विना बहुत दिन बीते, सुंदर प्रीतम मोर ॥  
चारि पहर चारी जुग बीते, रैनि गँवाई भोर ।  
अधिध गई उजहुँ नहिं आये, कतहुँ रहे चितचोर ॥  
कवहुँ नैन निरखि नहिं देखे, मरण चितवत चोर ।  
दादू ऐसे आतुर विरहिणि, जैसे चंद चकोर ॥

दादू विषै के कारणे रुप राते रहै,

नैन नापाक वूँ कीन्ह भाई ।

बदी की बात सुष्ठत सासा दिन,  
सुखन नापाक हौं कीन्ह जाई ॥

खाद के कारणे छुट्ठि लागी रहै,

जिया नापाक वौं कीन्ह खाई ।

भोग के कारणे भूल लागी रहै,

अंग नापाक वौं कीन्ह लाई ॥

## संत सुन्दरदासजी

(प्रसिद्ध महात्मा श्रीदादूदयालजीके शिष्य, जन्म वि० सं० १६५३ चैत्र शुक्ल १; जन्मस्थान—चौता (जयपुर-राजस्थानी)  
पितामा नाम—चौता (परमानन्द), मातामा नाम—सती, जाति—वृहस्पति (खण्डेलवाल वैद्य), निर्वाणसंवत् २७४६ वि० )

### गुरु-महिमा

काहू सौं न रोप तोष, काहू सौं न राम द्रेष,  
काहू सौं न वैर भाव, काहू सौं न धात है ।  
काहू सौं न ब्रक्षाद, काहू सौं नहीं विषाद  
काहू सौं न संग, न तौं काहू पञ्चपात है ॥  
काहू सौं न दुष्ट बैव, काहू सौं न लेन देन,  
ब्रह्म को विचार कहूँ और न सुहात है ।  
मुंदर कहत सोई, ईसन को महा ईस,  
सोई गुरुदेव जाके दूसरी न वात है ॥



गुरु विन आतम विचार न लहतु है ।  
गुरु विन प्रेस नहिं, गुरु विन नैम नहिं,

गुरु विन सीलहु, संतोष न गहतु है ।  
गुरु विन व्यास नहिं, बुद्धि को प्रकाश नहिं,

भ्रमहु को नाप नहिं, भर्तुई गहतु है ।  
गुरु विन बाट नहिं, कौड़ी विन हाट नहिं,

सुंदर प्रगट लोक ब्रह्म वौं गहतु है ।  
गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दमा को गहतु है ।

गुरु के प्रयाद भवदुःख विमगाइ है ।

गुरु के प्रसाद ग्रेम, प्रीतिहु अधिक बाढ़े,  
गुरु के प्रसाद, राम नाम गुण गाइये ॥  
गुरु के प्रसाद, सब जोग की जुगति जानै,  
गुरु के प्रसाद, सून्य में समाधि लाइये ।  
सुंदर कहत, गुरुदेव जो कृपालु होइ,  
तिन के प्रसाद, तत्त्वग्रान्ति पुनि पाइये ॥  
गुरु मात गुरु तात, गुरु वंधु निज गात,  
गुरुदेव नखसिख, सकल सँवारथो है ।  
गुरु दिये दिव्य नैन, गुरु दिये सुख बैन,  
गुरुदेव सरवण दे, सबद उच्चारथो है ॥  
गुरु दिये हाथ पाँव, गुरु दिये सीस भाव,  
गुरुदेव पिंड माहि, प्राण आइ डारथो है ।  
सुंदर कहत गुरुदेव, जो कृपालु होइ,  
फिरि धाट धड़ि करि, मोहि निस्तारथो है ॥

### उपदेश

बार बार कहो तोहिं सावधान क्यूँ न होइ,  
ममता की सोट सिर काहे को धरतु है ।  
मेरो धन मेरो धाम मेरे सुत मेरी नाम,  
मेरे पसु मेरे ग्राम भूल्यो ही फिरतु है ॥  
तू तो भयो बावरो बिकाइ गई बुद्धि तेरी,  
ऐसो अंधकृप गेह तामें तू परतु है ।  
सुंदर कहत तोहिं नेकहू न आवै लाज,  
काज को बिगार के अकाज क्यों करतु है ॥  
पायो है मनुध्य देह, औसर बन्यौ है येह,  
ऐसी देह बार बार कहो कहाँ पाइये ।  
भूलत है बावरे ! तू अब के सयानो होइ,  
रतन अमोल लो तौ काहे कूँ ठगाइये ॥  
समुद्दि विचार करि ठगान को संग त्यागि,  
ठगावाजी देखि करि मन न डुलाइये ।  
सुंदर कहत ता तें सावधान क्यूँ न होइ,  
हरि को भजन करि हरि में समाइये ॥  
इन्द्रिन के सुख मानत है सठ,  
याहि हि तें बहुते दुख पावै ।  
ज्यूँ जल में झस्त मांसहि लीलत,  
स्वाद वंध्यो जल बाहरि आवै ॥  
ज्यूँ कपि मूँठि न छाइत है,  
रसना वस वंध परथो विललावै ।

सुंदर क्यूँ पहिले न सँभारत,  
जो गुड़ खाथ सु कान विंधावै ॥  
पेट तें बाहिर होताहि बालक,  
आइ के मातु पयोधर पीनो ।  
मोह वंध्यो दिनहीं दिन और,  
तरुण भयो तिथ के रस भीनो ॥  
पुत्र प्रपुत्र वंध्यो परिवार सु,  
ऐतिहि भाँति गथे पन तीनो ।  
सुंदर राम को नाम विसारिके,  
आपहि आप कूँ वंधन कीनो ॥

जनम सिरान्यो जाइ भजन विमुख सठ,  
काहे कूँ भवन कूप दिन मीच मरै है ।  
गहत अविद्या जानि सुक नलिनी ज्यूँ मूढ़,  
कर्म औ विकर्म करै करत न डरै है ॥  
आपही तें जात अंध नरक में बार-बार,  
अजहूँ न संक भन माहिं अब करै है ।  
दुक्खव को समूह अवलोकिके न त्रास होइ,  
सुंदर कहत नर नाग पास परै है ॥

झठो जग ऐन सुन नित्य गुरु बैन देखे,  
आपने हूँ नैन तेऊँ अंध रहे ज्यानी में ।  
केते राव राजा रंक भये रहे चले गये,  
मिलि गये धूर माहीं आवे ते कहानी में ॥  
सुंदर कहत अब ताहि न सुरत आवै,  
चेतै क्यों न मूढ़ चित लाय हिरदानी में ।  
भूले जन दाँच जात लोह कैसो ताव ज्ञात,  
आयु जात ऐसे जैसे नाव जात पानी में ॥  
जग मग धग तजि सजि भजि राम नाम,  
काम क्रोध तन मन घेरि घेरि मारिये ।  
झठ मूढ़ हठ त्याग जाग भाग सुनि पुनि,  
गुण ग्यान आनि आन वारि वारि डारिये ॥  
गहि ताहि जाहि सेस ईस सप्ति सुर नर,  
और वात हेतु तात केरि केरि जाइये ।  
सुंदर दरद खोइ धोइ-धोइ बार-बार  
सार संग रंग अंग हेरि हेरि धारिये ॥

संत सदा उपदेश बतावत, कैस सवै सिर स्वेत भये हैं ।  
तू समता अजहूँ नहि छाइत, मौतहु आय सँदेस दये हैं ॥

आज कि वाल्ह चलै उठि मूरख, तेरे तो देखत केते गये हैं।  
सुंदर क्यों नहि गम सँभारत, या जग में कहो कौन रहे हैं॥

### कालकी विकरालता

मंदिर महल विलायत है गज,  
ऊँट दमामा दिना इक दो हैं।  
तात्त्व मात तिया सुत बोधव,  
देख धुँ पासर होत विछोई॥

शुट प्रपञ्च सूँ राचि रहो सठ।  
काठ की पूतरि ज्यूँ कपि मोहै।  
मेरि हि मेरि कहै नित सुंदर,  
आँखि लगे कहि कौन कुँ को है॥

कै यह देह जराइ के छार,  
किया कि किया कि किया कि किया है।  
कै यह देह जमी महि गाड़ि,  
दिया कि दिया कि दिया कि दिया है॥

कै यह देह रहै दिन चारि,  
जिया कि जिया कि जिया कि जिया है।  
सुंदर काल अचानक आह,  
लिया कि लिया कि लिया कि लिया है॥

देह सनेह न छाड़त है नर,  
जानत है थिर है यह देह।  
छीजत जाय घटै दिनही दिन,  
दीसत है घट को नित छेह॥

काल अचानक आइ गहै कर,  
ढाहि गिराइ करै तनु खेह।  
सुंदर जानि यहै निहचै धरि,  
एक निरंजन सूँ केरि नेह॥

सोइ रहो कहाँ गाफिल है करि,  
तो सिर ऊपर काल दहारै।  
धामस-धूमस लागि रहो सठ,  
आह अचानक तोहें पछारै॥

ज्यूँ बन में मुग कूदत फँदत,  
चित्र गले नल सूँ उर कारै।  
सुंदर काल डरै जिन के डर  
ता प्रभु कुँ कहु क्यूँ न सँभारै॥

जब तें जनम लेत, तब ही तें आयु घटै,

माई सौं कहत मेरो बड़ो होत जात है।  
आज और काल्ह और, दिन-दिन होत और,  
दौरयो दौरयो फिरत, खेलत अरु खात है।  
आलपन बीतौ जब, जोबन लयो है आह,  
जोबनहुँ बीते बूढ़ो, डोकरो दिलात है।  
सुंदर कहत ऐसे, देखत ही बूझि गयो,  
तेल घटि गये जैसे दीपक बुझात है॥

माया जोरि जोरि नर राखत जतन करि,  
कहत है एक दिन मेरे काम आहै।  
तोहिं तो मरत कछु बेर नहीं लागै सठ,  
देखत ही देखत, बबूला सो बिलाइहै॥

धन तो धन्यौ ही रहै, चलत न कौझी गहै,  
रीते हाथन से जैसो आयो तैसो जाह है।  
करि ले सुकृत यह बैरिया न आवै फिरि,  
सुंदर कहत नर, पुनि पछताइहै॥

झूँठ धुँ बैध्यो है जाल, ताही तें ग्रसत काल,  
काल विकराल व्याल सबही कुँ खात है।  
नदी को प्रवाह चल्यो जात है समुद्र माहिं,  
तैसे जग काल ही के मुख में समात है॥

देह धुँ ममता ता तें काल को भय मानत है,  
न्यान उपजे तें वह कालहू चिलात है।  
सुंदर कहत परव्रह है सदा अखंड,  
आदि मध्य अंत एक सोई ठहरात है॥

देह एवं जगत्की नश्वरता

कौन भाँति करतार, कियो है सरीर यह,  
पावक के माहिं देखौ पानी को जमानो।  
तासिका स्वन नैन, बदन रउन बैन,  
हाथ पाँव अंग नद, सीउ को बगानो॥

अजब अनृप हप, चमक दमक ऊ,  
सुंदर मोभित अति अधिक सुहानो।  
जाही छिन चेतन, सकात लीन होइ गई,  
ताही छिन लागते हैं, सब कुँ अभानो॥

मातु तौ पुकार छाती, कूटि कूटि रोवति है,  
बागहू कहत मेरो नंदन कहा गयो।  
मैयाहू कहत मेरी बाँह आउ दूरि मही,  
बहिन कहति मेरो बीर दुष ई गयो॥

कामिनी कहत मेरो सीम भिरताज कहो,

उन्हें ततकाल रोइ हाथ में धोरा लयो ।  
सुंदर कहत कोऊ, ताहि नहिं जानि सकै,  
बोलत हुतो सो यह, छिन में कहाँ गयो ॥

### आशा-त्रृप्ति

नैनन की पल ही पल में छिन,  
आधि घरी घटिका जु गई है ।  
जाग गयो युग याम गयो पुनि,  
साँझ गई तब रात भई है ॥  
आज गई अरु कालह गई,  
परसों तरसों कछु और ठई है ।  
सुंदर ऐसहि आयु गई,  
तृक्षा दिन ही दिन होत नई है ॥  
  
कन ही कन कुँ बिललात फिरै,  
सठ याचत है जनही जन कुँ ।  
तन ही तन कुँ अति सोच करै,  
नर खात रहे अन ही अन कुँ ॥  
मन ही मन की तृक्षा न मिटी,  
पुनि धावत है धन ही धन कुँ ।  
छिन ही छिन सुंदर आयु घटी,  
कवहूँ न गयो बन ही बन कुँ ॥  
  
जो दस वीस पचास भये सत,  
होइ हजार तु लाख मँगैगी ।  
कोटि अरवूँ खरवूँ असंख्य,  
पृथ्वीपति होन की चाह जगैगी ॥  
स्वर्ग पताल को राज करौ,  
तृक्षा अधिकी अति आग लगैगी ।  
सुंदर एक सँतोष बिना सठ,  
तेरी तो भूख कधी न भगैगी ॥  
  
तीनहूँ लोक अहार कियो सब,  
सात समुद्र पियो पुनि पानी ।  
और जहाँ तहूँ ताकत ढोलत,  
काढत आँख डरावत प्रानी ॥  
दोत दिलावत जीभ हलावत,  
याहि तै मैं यह डाकिनि जानी ।  
सुंदर खात भये कितने दिन,  
है तृक्षा अजूँ न अघानी ॥  
  
गोइ तरयो पुनि गोइ तरयो पुनि, येह ल्याइ के देह मँचारी ।  
मेष मरे भिर सीत सई तन, धूप समै जु पँचागिनि वारी ॥

भूख कहै रहि रुख तेर, पर नुंदरद्याग गहे दुल भारी ।  
डासन छाडि के कालग ऊपर, आमन मारि पै शास न मारी ॥

### आश्वासन

पाँच दिये चलने छिरने कहै,  
हाथ दिये हरि कुल्य करायो ।  
कान दिये सुनिये हरि को जप,  
नैन दिये तिन मार्ग दिलायो ॥  
नाक दिये सुख सोभत ता करि,  
जीभ दई हरि को युण गायो ।  
सुंदर साज दियो परमेसुग,  
पेट दियो वड पाप लगायो ॥  
  
होइ निचित करै मत चितहिं,  
चोंच दई सोइ चित करैगो ।  
पाड़ पसार परयो किन सोबत,  
पेट दियो सोइ पेट भरैगो ॥  
जीव जिते जल के थल के पुनि,  
पाहन में पहुँचाय धरैगो ।  
भूखहि भूख पुकारत है नर,  
सुंदर तू कह भूख मरैगो ॥  
  
भाजन आप बड़े जितने,  
भरिहैं भरिहैं भरिहैं भरिहैं जू ।  
गावत हैं जिनके गुण कुँ,  
दरिहैं दरिहैं दरिहैं दरिहैं जू ॥  
आदिहु अंतहु मच्य सदा,  
हरिहैं हरिहैं हरिहैं हरिहैं जू ।  
सुंदरदास सहाय सही,  
करिहैं करिहैं करिहैं करिहैं जू ॥

### विश्वास

काहि कुँ दौरत है दसहूँ दिसि,  
तुँ नर देल कियो दरिजू को ।  
वैठि रहै दुरि कै मुख मूँदि,  
उत्तरत दाँत खवाइ है दूको ॥  
गर्भ थके प्रतिगाल करी जिन,  
होइ रखो तबही जड़ मूको ।  
सुंदर क्यों बिललात फिरै अव,  
राख छद्य विस्वास प्रभू को ॥

लेचर भूत्र जे जल कै भर,  
देत अहार चराचर पोखै ।  
वे हरि जो सब को प्रतिगत्त,  
जँगू जिह भाँति तिही निधि तोखै ॥

त् अव कर्यू विस्वास न राखत,  
भूलत है कित धोखाहि धोखै ।  
तोहि तहाँ पहुँचाय रहै प्रभु,  
उदर बैठि रहै किन ओखै ॥

## देहकी मलिनता

देह तौ मलिन आति, बहुत विकार भरी,  
ताहू भाहि जरा व्याधि, सब दुख रसी है ।  
कवहूँक पेट पीर कवहूँक सिर वाय,  
कवहूँक आँख कान सुख मैं विथा सी है ॥

आँखहूँ अनेक रोग नख सिर पूरि रहे,  
कवहूँक स्वास चलै कवहूँक खाँसी है ।  
ऐसो ये सरीर ताहि अपनो कै मानत है,  
सुंदर कहत या मैं कौन सुख वासी है ॥

जा सरीर माहिं त् अनेक सुख भानि रहो,  
ताहि त् विचार था मैं कौन बात भली है ।  
मेद मजा मांस रा रय मैं रकत भरथो,  
पेटहू यिदरी सी मैं ठौर ठौर मली है ॥

हाङ्गन सूँ भरथो सुख हाङ्गन कै नैन नाक,  
हाथ पाँड़ सोऊ सब हाङ्गन की नली है ।  
सुंदर कहत याहि देखि जनि भूलै कोई,  
भीतर भंगार भरी ऊपर तौ कली है ॥

## मूर्खता

अपने न दोष देखे, पर के औगुण पेले,  
हुष्ट को सुभाव, उठि निंदाही करतु है ।  
जैसे क्रोई महल सँधारि राख्यो निके करि,  
कीरी तहाँ जाय, छिद्र टूँठत फिरतु है ॥

भोगही तैं साँझ लग, साँझाही तैं भोर लग,  
सुंदर कहत दिन ऐसे ही भरतु है ।  
पाँच के तरे की नहीं सूझै आग मूरख कूँ,  
और सूँ कहत तेरे सिर पै बरतु है ॥

## मन

जो मन नारि कि और निहारत,  
तौ मन होत है ताहि को रूपा ।

जो मन काहु सुँ कोध करै पुनि,  
तौ मन है तब ही तरहा ॥

जो मन मायहि माया रटै निल,  
तो मन बूढ़त माया के कूपा ।  
सुंदर जो भन ब्रह्म विचारत,  
तौ मन होत है ब्रह्म स्वरूपा ॥

मनहीं के भ्रम तैं जगत यह देखियत,  
मनहीं के भ्रम गये, जगत विलात है ।  
मनहीं के भ्रम जेवरी मैं उपजत सौंप,  
मन के विचारे सौंप जेवरी समात है ॥

मनहीं के भ्रम तैं मरीचिका कूँ जल कहै,  
मनहीं के भ्रम सीप रुपो सो दिलात है ।  
सुंदर सकल यह दीसे मनहीं को भ्रम,  
मनहीं को भ्रम गये ब्रह्म होइ जात है ॥

## वाणीका महरत्व

वचन तैं दूर मिलै, वचन विरोध होइ,  
वचन तैं राग बढ़ै, वचन तैं दोष जू ।  
वचन तैं ज्याल उठै, वचन सीतल होइ,  
वचन तैं मुदित, वचन ही तैं रोप जू ॥

वचन तैं प्यारै लगै, वचन तैं दूर भगै,  
वचन तैं मुरझाय, वचन तैं फोप जू ।  
सुंदर कहत यह, वचन को भेद ऐसो,  
वचन तैं वंध होत, वचन तैं मोच्य जू ॥

## भजन न करनेवाले

एक जु सबही के उर अंतर,  
ता प्रभु कूँ कहु काहि न गावै ।  
संकट माहिं सहाय करै पुनि,  
तो अपनो पति कर्यू विशरवै ॥

चार पदारथ और जहाँ लगि,  
आठहु सिद्धि नवो निधि पावै ।  
सुंदर छार परै तिन के सुख,  
जो हरि कूँ तजि आन कूँ ध्यावै ॥

पूरण काम सदा सुख धाम,  
निरंजन राम मिरजनपानी ।  
सेवक होइ रथो सब को नित,  
कीषहि कुंजर देत आपां ॥

मंजन दुक्ख दरिद्र निवारण,  
चिंत करै पुनि सँझ सवारे ।  
ऐसे प्रभु तजि आन उपासत,  
सुंदर है तिन को मुख कारे ॥

### सब राम ही राम है

स्त्रोत्र उहै स्त्रुति सार सुने, अह नैन उहै निज रूप निहारै ।  
नाक उहै हरि नाकहि राधत, जीभ उहै जगदीस उचारे ॥  
हाथ उहै करिये हरि को कृत, पाँव उहै प्रसु के पथ धारै ।  
सीसि उहै करि स्याम समर्पण, सुंदर यूँ सब कारज सरै ॥  
बैठत रामहि ऊठत रामहि, बोलत रामहि राम रहो है ।  
जीमत रामहि पीवत रामहि, धामहि रामहि राम गद्धो है ॥  
जागत रामहि सोवत रामहि, जोवत रामहि राम लहो है ।  
देतहु रामहि लेतहु रामहि, सुंदर रामहि राम रहो है ॥  
स्त्रोत्रहु रामहि नेत्रहु रामहि, वक्त्रहु रामहि रामहि गाजै ।  
सीसहु रामहि हाथहु रामहि, पाँवहु रामहि रामहि छाजै ॥  
पेतहु रामहि पीठिहु रामहि, रोमहु रामहि रामहि बाजै ।  
अंतर राम निरंतर रामहि, सुंदर रामहि राम विराजै ॥  
भूमिहु रामहि आपहु रामहि, तेजहु रामहि वायुहु रामे ।  
ब्योमहु रामहि चंदहु रामहि, सूरहु रामहि सीतहु बामे ॥  
आदिहु रामहि अंतहु रामहि, मध्यहु रामहि पुरुष रु बामे ।  
आजहु रामहि कालहु रामहि, सुंदर रामहि रामहि थामे ॥  
देखहु राम अदेखहु रामहि, लेखहु राम अलेखहु रामे ।  
एकहु राम अनेकहु रामहि, सेषहु राम असेषहु ता मैं ॥  
मौनहु राम अमौनहु रामहि, गौनहु रामहि ठाम कुठामे ।  
बाहिर रामहि भीतर रामहि, सुंदर रामहि है जग जा मैं ॥  
दूरहु राम नजीकहु रामहि, देसहु राम प्रदेसहु रामे ।  
पूरब रामहि पञ्चिम रामहि, दक्षिण रामहि उत्तर धामे ॥  
आगेहु रामहि पीछेहु रामहि, व्यापक रामहि है धन ग्रामे ।  
सुंदर राम दसो दिसि पूरण, स्वर्गहु राम पतालहु ता मैं ॥  
आपहु राम उपावत रामहि, मंजन राम सँवारन वा मैं ।  
इष्टहु राम अदृष्टहु रामहि, इष्टहु राम करे सब कामे ॥  
पूर्णहु राम अपूर्णहु रामहि, रक्त न पीत न स्वेत न स्यामे ।  
सून्यहु राम असून्यहु रामहि, सुंदर रामहि नाम अनामे ॥

### अश्वा

जो कोउ कष करै यहु भाँतिनि, जात अग्यान नहीं मन केरो ।  
रथू तम पूरि रथो घर भीतर, कैसहु दूर न होय अँधेरो ॥

लाठिनि मारिय ठेलि निकारिय, और उपाय करे वहुतेरो ।  
सुंदर सूर प्रकास भयो, तब तौ कितहु नहिं देखिय नेरो ॥  
जैसे मीन माँस कँ निगलि जात लोभ लगि,

लोह को कंटक नहिं जानत उमाहे तें ।  
जैसे कपि गागर मैं मूठ बाँधि राखे सठ,  
छाड़ि नहिं देत सो तो स्वादही के बाहे तें ॥  
जैसे सुक नारियर चूँच मारि लटकत,  
सुंदर कहत दुक्ख देत याहि लाहे तें ।  
देह को संजोग पाइ इंद्रिन के वस परयो,  
आपही कँ आप, भूलि गयो सुख चाहे तें ॥

आपहि चेतन ब्रह्म असंडित, सो भ्रम तें कछु अन्य परेखै ।  
झैंठत ताहि फिरै जितही तित, साधत जोग बनावत भेलै ॥  
औरहु कष्ट करै अतिसय करि, प्रत्यक आतम तत्त्व न पेखै ।  
सुंदर भूलि गयो निज रूपाहि, है कर कंकण दर्पण देखै ॥

मेरो देह मेरो गेह मेरो परिवार सब,  
मेरो धन माल मैं तो बहुविधि भारो हूँ ।  
मेरे सब सेवक हुक्म कोउ मेटै नाहिं,  
मेरी युवती कों मैं तो अधिक पियारो हूँ ॥  
मेरो बंस ऊँचो मेरे बाप दादा ऐसे भये,  
करत बडाई मैं तो जगत उज्ज्वारो हूँ ।  
'सुंदर' कहत मेरो मेरो कर जानै सठ,  
ऐसे नहीं जानै मैं तो कालही को चारो हूँ ॥

देह तो स्वरूप जोलौं तोलौं है अरूप माहिं,  
सब कोउ आदर करत सनमान है ।  
टेढ़ी पाग बाँधि वार-वारहि मरोरै मैँछ,  
बाहू उसकारै अति धरत गुमान है ॥  
देस-देस ही केलोग आइ कै हजूर होहिं,  
बैठकर तखत कहावै सुलतान है ।  
'सुंदर' कहत जब चेतना सकति गई,  
बही देह ताकी कोऊ मानत न आन है ॥

### अद्वैत ज्ञान

तोहि मैं जगत यह, तूँ ही है जगत माहिं,  
तो मैं अह जगत मैं, मिद्रता कहाँ रही ।  
भूमि ही तैं भाजन, अनेक विधि नाम रूप,  
भाजम विचारि देखे उहै एक ही मही ॥  
जल तैं तरंग फेन, बुद्धुदा अनेक भाँति,  
सोउ तौ विचारे एक, वहै जल है सही ॥

जेते मदापुरुष हैं, सब को भिद्धांत एक,  
सुंदर अविल ब्रह्म, अंत वेद ये कही ॥

### साधुका स्वरूप एवं महिमा

पोउक गिरत कोउक बंदत, कोउक देतहि आह जु भच्छन ।  
कोउक आय लगावत चंदन, कोउक डारत धूरि ततच्छन ॥  
पोउ कहै यह मूरख दीसत, कोउ कहै यह आहि विच्छन ।  
सुंदर वाहु सुँ राग न द्वेष न, ये सब जानहु साधु के लच्छन ॥

जिन तन मन प्राण, दीन्हो सब मेरे हैत,  
औरहू ममत्व बुद्धि, आपनी उठाई है ।  
जागत हू सोवत हू, गावत हैं मेरे शुण,  
करत भजन ध्यान दूसरे न काई है ॥  
तिन के मैं पीछे लग्यो, फिरत हूँ निसिदिन,  
सुंदर कहत मेरी, उन तें बड़ाई है ।  
वर्च मेरे प्रिय मैं हूँ, उनके आधीन सदा,  
संतन की महिमा तौ, श्रीमुख सुनाई है ॥

### निःसंशय ज्ञानी

कै यह देह गिरो बन पर्वत, कै यह देह नराहि बहो जू ।  
कै यह देह धरो धरती महिं, कै यह देह कुसानु दहो जू ॥  
कै यह देह निरादर निंदहु, कै यह देह सराह कहो जू ।  
सुंदर संसय दूर भयो सद, कै यह देह चलो कि रहो जू ॥  
कै यह देह सदा सुख संपत्ति, कै यह देह विपत्ति परो जू ।  
कै यह देह निरोग रहो नित, कै यह देहहि रोग चरो जू ॥  
कै यह देह हुतासन पैठहु, कै यह देह हिमार गरो जू ।  
सुंदर संसय दूर भयो सद, कै यह देह जिवो कि मरो जू ॥

एक कि दोइ ! न एक न दोइ,  
उही कि इही ! न उही न इही है ।  
सून्य कि स्थूल ? न सून्य न स्थूल,  
जिही कि तिही ? न जिही न तिही है ॥  
मूल कि डाल ? न मूल न डाल,  
वही कि मँही ? न वही न मँही है ।  
जीव कि ब्रह्म ? न जीव न ब्रह्म,  
तु है कि नहीं ? कहु है न नहीं है ॥

### प्रेम

जो हार को तजि आन उपासत सो मतिमंद, फजीहत होई ।  
द्यों अपने भरतारहि छाँडि भई विभिन्नारिणि कामिनि कोई ॥  
सुंदर ताहि न आदर भान, फिरै बिमुखी अपनी पत खोई ।  
बूँडि मरै किन कूप मँझार कहा जग जीवत है सठ सोई ॥

प्रीतम मेरा एक तूँ, सुंदर और न कोइ ।

गुप्त भया किस कानै, काहि न परगढ होइ ॥

प्रेम लयो परमेस्वर सौं, तब भूलि गयो सब ही धरवारा  
ज्यों उनमत्त फिरै जित ही तित, नैकु रही न सरीर संभारा  
साँस उसास उठै सब रोम, चलै दग नीर अदंडित धारा  
सुंदर कौन करै नवधा विधि, छाकि पर्यौ रस पी मतवारा  
न लाज काँनि लोक की, न वेद को कहो करे ॥

न संक भूत प्रेत की, न देव वक्ष तें डरे ॥  
सुनै न कौन और की, द्रसै न और इच्छा ॥

कहै न कहू और बात, भक्ति प्रेम लच्छना ॥  
प्रेम अधीनो छाक्यो ढोलै, क्यों की क्यों ही बानी बोलै ।  
जैसे गोपी भूली देहा, ता कौं चाहै जासों नेहा ॥  
नीर बिनु मीन दुखी, क्षीर बिनु सिसु जैसे,

पीर जाकै ओपथि बिनु, कैसैं रहौ जात है ।  
चातक ज्यों स्वातिबूँद, चंद कौं चकोर जैसैं,  
चंदन की चाह करि, सर्व शकुलत है ॥  
निर्धन कौं धन चाहै, कामिनी कौं कंत चाहै,  
ऐसी जाकै चाह ता कौं, कहु न सुहात है ।  
प्रेम कौं भाव ऐसौ, प्रेम तहाँ नेम कैसौ,

सुंदर कहत यह, प्रेम ही की चात है ॥  
कबहुँकै हँसि उठै वृत्य करि, रोवन लागै ।  
कबहुँक गदगाद कंठ, सब्द निकसै नहिं आगै ॥  
कबहुँक हृदय उमंगि, बहुत ऊचे स्वर गावै ।  
कबहुँक कै मुख मौनि, मगन ऐसैं रहि जावै ॥  
चित बृत्त हरिसों लाली, सावधान कैतैं रहै ।  
यह प्रेम लच्छना भक्ति है, विष्व सुवहि सुंदर कहै ॥

### सहुर

लोह कों ज्यों पारस पखान हू पलटि लेत,  
कंचन छुचत होत जग मैं प्रमानिये ।  
दुम कों ज्यों चंदन हू पलटि ल्याइ चारा,  
आप के समान ता के भीतलता आनिये ॥  
कीट कों ज्यों भूंग हू पलटि कै कल भूंग,  
सोऊ उड़ि जाइ ताको अचरज न गानिये ।  
‘सुंदर’ कहत यह सररे प्रभिल चात,  
सद्ग सिद्य पलटै सु मत्युग जानिये ॥

### सत्सङ्ग

तात मिलै पुनि मात मिलै सुत ब्रात मिलै जुवती सुखदाई ।  
राज मिलै गज वाजि मिलै सब सोंज मिलै मन बांछित पाई ॥  
लोक मिलै सुरलोक मिलै विधिलोक मिलै बइकुंठहु जाई ।  
(‘सुंदर’ और मिलें सबही सुख, संत-समागम दुर्लभ भाई ॥)

### भजनके विना पश्चात्ताप

तू कछु और विचार धरयौ ही रहेगो ।  
कोटि उपाय कियें धनके हित भाग लिख्यौ तितनो ही लहेगो ॥  
भोरकि साँझ धरी पल माँझ सो काल अचानक आइ गहेगो ।  
राम भज्यो न कियौ कछु सुकृत ‘सुंदर’ यौं पछिताइ वहेगो ॥

### संत रज्जबजी

(प्रसिद्ध महात्मा श्रीदादूदयालजीके शिष्य, जन्म-सं० १६२४, स्थान सॉगानेर ।)

रे मन सूर संक बानी क्यूँ मानै ।  
मरणे माहिं एक पग ऊमा, जीवन जुगति न जानै ॥  
तन मन जाका ताकूँ सौंपै, सोच पोच नहिं आनै ।  
छिन छिन होइ जाहिं हरि आगे, सहजे आपा मानै ॥  
जैसे सती मरै पति पीछे, जलतो जीव न जानै ।  
तिल में त्यागि देहि जग सारा, पुरुष नेह पहिचानै ॥  
नखसिख सब साँसत सिर सहताँ, हरि कारज-परिवानै ।  
जन रज्जब जगपति सोइ पावै, उर अंतरि यूँ ठानै ॥

म्हारो मंदिर सूर्णो राम विन विरहिण नींद न आवैरे ।  
पर उपगारी नर मिलै, कोइ गोविंद आन मिलावैरे ॥  
चेती विरहिण चित न भाजै, अविनासी नहिं पावैरे ।  
यहु वियोग जागै निसवासर, विरहा बहुत सतावैरे ॥  
विरह वियोग विरहिणी बींधी, घर बन कछु न सुहावैरे ।  
दह दिसि देखि भयो चित चकरित, कौन दसा दरसावैरे ॥  
ऐसा सोच पड़ाया मन माहीं, समझि समझि धूँ धावैरे ।  
विरहवान धटि अंतर लाग्या, धायल ज्यूँ धूमावैरे ॥  
विरह अग्नि तनपिंजर छीनाँ, पिंव कूँ कौन सुनावैरे ।  
जन रज्जब जगदीस मिलै विन, पल पल बज्र विहावैरे ॥

राम रस पीजिये रे पीये सब सुख होइ ।  
पीवत हीं पातक कटै, सब संतन दिसि जोइ ॥  
निसदिन सुमिरण कीजिये, तन मन प्राण समोइ ।  
जनम सुफल साहीं मिलै, सोइ जपि साधुहु होइ ॥  
राकल पतितपावन किये, जे लागे लै होइ ।  
अति उज्जल, अध उत्तरै, किलविधि रावै धोइ ॥  
यहि रस रसिया सब सुखी, दुखी न सुनिये कोइ ।  
जन रज्जब रस पीजिये, संतनि पीया सोइ ॥

मन रे, कर संतोष सनेही ।  
दृख्या तरति मिटै जुग जुग की, दुख पावै नहिं देही ॥

मिल्या सुत्याग माहिं जे सिरज्या, गह्या अधिक नहिं आवै ।  
ता मैं फेर सार कछु नाहीं, राम रच्या सोइ पावै ॥  
वांछै सरग सरग नहिं पहुँचै, और पताल न जाई ।  
ऐसैं जाति मनोरथ मेटहु, समझि सुखी रहु भाई ॥  
रेमन, मानि सीख सतगुरु की, हिरदै धरि विस्वासा ।  
जन रज्जब यूँ जानि भजन कर, गोविंद है घर पासा ॥

### भजन विन भूलि परथो संसार ।

चाहै पच्छिम, जात पुरब दिस, हिरदै नहीं विचार ॥  
बाँछै ऊरध अरध सूँ लागे, भूले मुगध गँवार ।  
खाइ हलाहल जीयो चाहै, मरत न लागै बार ॥  
बैठे सिला समुद्र तिरन कूँ, सो सब बूँदनहार ।  
नाम विना नाहीं निसतारा, कबहुँ न पहुँचै पार ॥  
सुख के काज धसे दीरघ दुख, बहे काल की धार ।  
जन रज्जब यूँ जगत विगूच्यो, इस माया की लार ॥  
मन रे, राम न सुमरयो भाई, जो सब संतनि सुखदाई ॥  
पल पल धरी पहर निसिवासर, लेखै मैं सो जाई ।  
अजहुँ अचेत नैन नहिं खोलत, आयु अवधि पै आई ॥  
बार पच्छ वरष बहु बीते, कहि धौं कहा कमाई ।  
कहत हि कहत कछु नहिं समझत, कहि कैसी मति पाई ॥  
जनम जीव हारयो सब हारि विन, कहिये कहा बनाई ।  
जन रज्जब जगदीस भजे विन, दह दिसि सों जग माई ॥

### दोहा

दरद नहीं दीदार का, तालिब नाहीं जीव ।  
रज्जब विरह वियोग विन, कहाँ मिलै सो पीव ॥  
सबही वेद विलोय करि, अंत दिदावै नाम ।  
तौ रज्जब तैं राम भजि, तजि दे योथा काम ॥  
रज्जब अज्जब यह मता, निसदिन नाम न भूलि ।  
मनसा वाचा करमना, सुमिरण सब सुखमूलि ॥

ज्यूँ कामिनि सिर कुंभ धरि, मन रखै ता माहिं ।  
 ज्यूँ रजब करि राम सूँ, कारज विनतै नाहिं ॥  
 मिनवा देह अलभ्य धन, जा मै भजन भैंडार ।  
 सो सुटप्पि समझै नहीं, मानुप मुख गँवार ॥  
 अब कै जीते जीत है, अब कै हारे हर ।  
 तौ रजब रामहिं भजौ, अलप आयु दिन चार ॥  
 हिंदू पावैगा वही, वोही मूसलमान ।  
 रजब किणका रहम का, जिस कैँ दे रहमान ॥  
 नारायण अह नगर के, रजब पंथ अनेक ।  
 कोई आवौ कहीं दिसि, आगे अस्थल एक ॥

जब लगि, तुझ में तू रहै, तब लगि वह रस नाहिं ।  
 रजब आपा अरपि दे, तौ आवै हरि माहिं ॥  
 मुख सौं भजै सो मानवी, दिल सौं भजै सो देव ।  
 जीव सौं जपै सो जोति मैं, 'रजब' साँची सेव ॥  
 सरणा साहै साध की, पकड़ि लेहि रै प्राण ।  
 तौ रजब लगै नहीं, जम जालिम का लाग ॥  
 नामरदौं भुगती नहीं, भरद गये करि लाग ।  
 'रजब' रिधि क्वाँरी रही, पुरुष-पाणि नहिं लाग ॥  
 समये मीठा बोलना, समये मीठा चूप ।  
 ऊङ्घाले छाया भली, 'रजब' स्त्रियाले धूप ॥

## संत भीखजनजी

[ फतेहपुर ( जयपुरराज्यान्तर्गत ) के प्रसिद्ध संत, जन्म वि० सं० १६०० के लगभग, महावाक्षणकुलमें । पिता आदिके नाम पर्व निधनतिथि आदिका विवरण नहीं मिलता । ]

( प्रेषक—श्रीदेवकीनन्दनजी खेडवाल )

आहि पुहुप जिमि बास प्रगट तिमि बसै निरंतर ।  
 ज्यों तिलयिन में तेल मेल यों नाहिन अंतर ॥  
 ज्यूँ पय धृत संजोग सकल यों है संपूरम ।  
 काष्ठ अगनि प्रसंग प्रगट कीये कहुँ दूर न ॥  
 ज्यूँ दर्पण प्रतिविम्ब मैं होत जाहि विश्राम है ।  
 सकल वियापी 'भीखजन' ऐसे धटि धटि राम है ॥  
 - रवि आकरघै नीर विमल मल हेत न जानत ।  
 हंस क्षीर निज पान सूप तजि तुस कन आनत ॥  
 मधु भाखी संग्रहै ताहि नहिं कूकस काजै ।  
 बाजीगर भणि लेत नाहिं विष देत विराजै ॥  
 ज्यूँ अहीरी काढि धृत तक देत है डारि कै ।  
 यूँ गुन ग्रहै सु भीखजन औगुन तजै विचारि कै ॥  
 एक रस बरति जमीन छीन कैसे सुख पावै ।  
 गाय मैस हद सॉँड फिरत फिरी तहाँ सु आवै ॥

सबै भीतकी दौर ठैर विन कहाँ समावै ।  
 उडे पंख विन आहि सुतो धरती फिर आवै ॥  
 पात सीचिये पेड़ विन पोस नाहिं हुम ताहि को ।  
 ऐसे हरि विन भीखजन भजसो दूजो काहि को ॥  
 कहाँ कुरु बलवंत कहाँ लंकेस सीस दस ।  
 कहाँ अर्जुन कहाँ भीम, कहाँ दानव हिरनाकुस ॥  
 कहाँ चक्रवे मंडली कहाँ साँवत सेना वर ।  
 कहाँ विक्रम कहाँ भोज कहाँ वलि वेन करन कर ॥  
 उग्रदेन कलि कंस कहाँ जम-ज्वाला में जग जले ।  
 बदत भीखजन पंथ एहि को को आये न को चले ॥  
 नाद स्वाद तन वाद तज्यो मुग है मन मोहत ।  
 परथो जाल जल मीन लीन रसना रस मोहत ॥  
 झंग नासिका बास केतकी कंटक धीनो ।  
 दीपक ज्योति पतंग रूप रस नयनन्द धीनो ॥  
 एक व्याधि गज काम वस पर्यो खाडे सिर कूर्याई ।  
 पंच व्याधि वस भीखजन सो कैसे करि छूटि है ॥

## संत वाजिन्दजी

( जाति पठान, गुरु श्रीदादूदयालजी, दादूजीके १५२ शिर्योमें इनकी गणना होती है । )

सुंदर पाईं देह नेह कर राम सों,  
 कथा लुब्धा वेकाम धरा धन धाम सों ?  
 आत्म रुंग पतंग, संग नहि आवसी,  
 जमहूँ के दरवार, सार वहु खावसी ॥ १ ॥

गाफिल मूँह गँवार अनेतन चेत रे !  
 समझै संत सुजान, सिलायन देत रे !  
 विषय माँहि विहाल लगा दिन रेन रे !  
 सिर वैरी जमराज, न यही नीन रे ॥ २ ॥

देह गेह में नेह निवारे दीजिए,  
राजी जातें राम, काम सोह कीजिए ।  
रहा न वेसी कोय रंक अरु राव रे !  
कर ले अपना काज, बन्धा हृद दाव रे ॥३॥

बंधत ईस गनेस एह नर देह को,  
श्रीपति चरण सरोज बढ़ावन नेह को ।  
सो नर देही पाय अकाज न खोइए,  
साहै के दरवार गुनाही होइए ॥४॥

केती तेरी जान, किता तेरा जीवना ?  
जैसा स्वप्न विलास, तृष्णा जल धीवना ।  
ऐसे सुख के काज, अकाज कमावना,  
बार बार जम द्वार मार बहु खावना ॥५॥

नहिं है तेरा कोय, नहीं तू कोय का ,  
स्वारथ का संसार, बना दिन दोय का ।  
'मेरी मेरी' मान फिरत अभिमान में ,  
इतराते नर मूढ़ एहि अज्ञान में ॥६॥

कूड़ा नेह कुट्टब धनौ हित धायता ,  
जब धेरै जमराज करै को स्हायता ?  
अंतर फूटी आँख न सूझै आँधरे !  
अजहूँ चेत अजान ! हरी से साध रे ॥७॥

बार बार नर देह कहो कित पाइये ?  
गोविंद के गुण गान कहो कब गाइये ?  
मत चूकै अवसान अवै तन माँ धरे ,  
पाणी पहली पाल अरयानी बाँध रे ॥८॥

झटा जग जंजाल पड़ाया तैं फंद में ,  
छूटन की नहिं करत, फिरत आनंद में !  
या मैं तेरा कैन, समाँ जब अंत का ,  
उबरन का उपाय सरण इक संत का ॥९॥

मंदिर माल विलास खजाना मेड़ियाँ ,  
राज भोग सुख साज औ चंचल चेड़ियाँ ।  
रहता पास खब्बास हमेस हुजूर में ,  
ऐसे लाव असंख्य गये मिल धूर में ॥१०॥

भद्रमाते भग्नर वै मूँछ मरोइते ,  
नवल त्रिया का मोह छिनक नहिं छोइते ।  
तीने करते तरक, गरक मद पान में ,  
गये पलक मैं ढलक तलव मैदान में ॥११॥

अत्तर तेल फुलेल लगते अंग में ,  
अंघ धुंध दिन रैन तिया के संग में ।  
महल अवासा बैठ करंता मौज रे ।  
ऐसे गये अपार, मिला नहिं खोज रे ॥१२॥

रहते भीने छैल सदा रँग राग में ,  
गजरा फुलाँ गुरंत धरंता पाग में ।  
दर्पण में मुख देख के मुछबा तानता ,  
जग मैं वा का कोइ नाम नहिं जानता ॥१३॥

महल फवारा हौज के मोजाँ माणता ,  
समरथ आप समान और नहिं जानता ।  
कैसा तेज प्रताप चलंता दूर मैं ,  
भला भला भूपाल गया जमपूर में ॥१४॥

सुंदर नारी संग हिडोले झूलते ,  
पैन्ह पटंबर अंग फिरंता फूलते ।  
जो थे खूबी खेल के बैठ बजार की ,  
सो भी हो गये छैलन ढेरी छार की ॥१५॥

इन्द्रपुरी सी मान बसंती नगरियाँ ,  
भरती जल पनिहारि कनक सिर गगरियाँ ।  
हीरा लाल श्वेर जड़ी सुखमा मई ,  
ऐसी पुरी उजाइ भवंकर हो गई ॥१६॥

होती जाके सीस पै छत्र की छाइयाँ ,  
अटल फिरंती आन दसो दिति माँड़ियाँ ।  
उदै अस्त लूँ राज जिनूँ का वहावता ,  
हो गये ढेरी धूर नजर नहिं आवता ॥१७॥

या तन रंग पतंग काल उड़ जायगा ,  
जम के द्वार जर्लर खता बहु खायगा ।  
मन की तजरे घात, बात सत मान ले ,  
मनुषाकार भुरार ताहि कूँ जान ले ॥१८॥

यह दुनियाँ 'वाजिद' पलक का पेखना ,  
या मैं बहुत विकार कहो क्या देखना ।  
सब जीवन का जीव, जगत आधार है ,  
जो न भजै भगवंत, भाग मैं छार है ॥१९॥

दो दो दीपक बाल महल में सोवते ,  
नारी से कर नेह जगत नहिं जोवते ।  
सूँधा तेल लगाय पान मुख खायेंगे ,  
विना भजन भगवान के मिथ्या जायेंगे ॥२०॥

राम नाम की लद्द फैरै है जीव को ,  
निसि वासर कर ध्यान सुमर तू पीव को ।  
यहै वात परसिद्र कहत सब गाम रे !  
अधम अजामिल तरे नरायण नाम रे ॥२१॥

गाफिल हूए जीव कहो क्यूँ बनत है ?  
या मानुप के सांस जो कोऊ रनत है ॥  
जांग, लेय हरिनाम, कहाँ लों सोय है ?  
चक्री के मुख पञ्चो, सो मैदा होय है ॥२२॥

आज सुनै कै काल, कहत हैं तुज्ज्ञ को ,  
भाँवै वैरी जान कै जो तूँ मुज्ज्ञ को ।  
देखत अपनी दृष्टि खता क्या खात है !  
लोहे कैसो ताव जनम यह जात है ॥२३॥

हैं जाना कछु मीठ, अंत वह तीत है,  
देखो देह विचार ये देह अनीत है ।  
पान फूल रस भोग अंत सब रोग है,  
प्रीतम प्रसु के नाम विना सब सोग है ॥२४॥

राम कहत कलि माहि न छूता कोइ रे,  
अर्ध नाम पाखान तरा, सब होइ रे ।  
कर्म कि केतिक वात विलग है जायेंगे,  
हाथी के असवार कुते क्यों खायेंगे ? ॥२५॥

कुंजर मन मदमत्त मरै तो मारिए,  
कामिनि कनक कलेस दरै तो टारिए ।  
हरि भक्तन सों नेह पलै तो पालिए,  
राम भजन में देह गलै तो गालिए ॥२६॥

घड़ी घड़ी घड़ियाल पुकारै कही है,  
बहुत गयी है अवधि अल्प ही रही है ।  
सोबै कहा अचेत, जाग जप पीव रे !  
चलिहै आज कि काल बटाऊ जीव रे ॥२७॥

विना बास का फूल न ताहि सराहिए,  
बहुत मित्र की नारि सों प्रीति न चाहिए ।  
सठ साहिव की सेवा कवहुँ न कीजिए,  
या असार संसार में चित्त न दीजिए ॥२८॥

जो जिय में कछु ग्यान, पकड़ रह मन को,  
निपटहि हरि को हेत, सुझावत जन को ।  
प्रीति सहित दिन रैन राम मुख बोलई,  
रोटी कीये हाथ, नाथ संग डोलई ॥२९॥

एकै नाम अनंत किहुँ के लीजिए,  
जन्म जन्म के पाप चुनौती दीजिए  
लेकर चिनगी आन धरै तू अब्ब रे !  
कोठी भरी कपास जाय जर सब्ब रे  
ओढ़ै साल दुसाल क जामा जरकसी ,  
टेढ़ी बाँधे पाग क दो दो तरकस  
खड़ा दलाँ कै बीच कसे भट सोहता ,  
से नर खा गया काल सिंह ज्यौं गरजता  
तीखा तुरी पलाण सँवारथा राखता ,  
टेढ़ी चालै चाल छयाँ कूँ झाँकत  
हटवाड़ा बाजार खड़ा नर सोहता ,  
से नर खा गया काल रहा सबै रोवता  
वाजिदा बाजी रची, जैसे संभल फूल ।  
दिनाँ चार का देखना, अन्त धूल की धूल  
कह कह वचन कठोर खरुँड न छोलिए ,  
सीतल राख सुभाव सबन सूँ बोलिए  
आपन सीतल होइ और कूँ कीजिए ,  
बछती में सुन मित, न पूलो दीजिए  
टेढ़ी पगड़ी बाँध शरोखाँ झाँकते ,  
ताता तुरा पिलाण च्छूटे ढाकते  
लोरे चढ़ती फौज नगारा बाजते ,  
‘वाजिद’ वे नर गये विलाय सिंह ज्यूं गाजते  
काल फिरत है हाल रैण दिन लोइ रे !  
हणै राव अरु रंक गिणै नहि कोइ  
यह दुनिया ‘वाजिद’ बाट की दूब है ,  
पाणी पहिले पाल बँधे तु खूब है  
भगत जगत में बीर जानिये ऐन रे !  
स्वास सरद मुख जरद निर्मले नैन  
दुरस्ति गह सब दूर निकट नहि आवही ,  
साध रहे मुख मौन कि गोविंद गावह  
अरध नाम पापाण तिरे नर लोय रे !  
तेरा नाम कहो कलि माहि न बूढ़े कोय  
कर्म सुकृत इकवार विलै हो जाहिये ,  
वाजिद, हस्ती के असवार न कूकर लाहिं  
एक राम को नाम लीजिये नित रे !  
और वात वाजिद चहै नहिं नित  
ब्रेठे धोयव हाथ आपणै जीय रैं ,  
दास आस तज और बँधे हैं पीव मैं

हुदै न राखी वीर कल्पना कोय रे !  
 राई धटे न मेर होय सो होय रे ।  
 ससदीप नवखंड जोय किन ध्यावही ,  
 लिख्यो कलम की कोर बोहि पुनि पावही ॥३९॥

भूखो दुर्बल देख नाहिं मुँह मोड़िये ,  
 जो हरि सारी देय तो आधी तोड़िये ।  
 दे आधी की आध अरथ की कोर रे !  
 अब सरीखा पुन्न नहीं कोह और रे ॥४०॥

जल में झीणा जीव थाह नहिं कोय रे !  
 बिन छाण्या जल पियाँ पाप बहु होय रे ।  
 काठै कपड़े छाण नीर क्वँ पीजिये ,  
 वाजिंद, जीवाणी जल माँहि जुगत मूँ कीजिये ॥४१॥

माया बेटी बढ़ै सूम घर माँय रे !  
 छिन मैं ऊङ्गल जाय क रहती नायँ रे ।

अपने हाथों हाथ विदा करि दीजिये ,  
 मिनख जमारो पाथ पड़यो जस लीजिये ॥४२॥

हरिजन बैठा होय जहाँ चलि जाइये ,  
 हिरदै उपजै ग्यान राम लब लाइये ।  
 परिहरिये वा ठौड़ भगति नहिं राम की ,  
 बींद बिहूणी जान कहै कुण काम की ॥४३॥

फुलाँ सेज विछायक ता पर पौढ़ते ,  
 आछे दुष्टे साल दुसाले ओढ़ते ।  
 ले के दर्षण हाथ नीके मुख जोवते ,  
 ले गये दूत उपाड़, रहे सब रोवते ॥४४॥

दिल के अंदर देख, कि तेरा कौन है ,  
 चले न बोले ! साथ अकेला गौन है ।  
 देख देह धन दार इन्हों से चित दिया ,  
 रहा न निचिदिन राम काम तैं क्या किया ॥४५॥

### संत बखनाजी

( जन्म—अनुमानतः विक्रमी १७ वीं शती, प्रथम चरण । जन्म-स्थान—नरणा ग्राम ( साँभरसे पाँच कोस दक्षिण ) । जाति—भीमसी, मत्तान्तरसे लखारा, कलाल तथा राजभूत । गुरुका नाम—स्वामी दाढ़द्याल । देहावस्थान—नरणा ग्राम । )

राम नाम जिन ओशदी, सत्सुर दई बताइ ।  
 ओषदि खाइ र पछ रहै, बखना बैदन जाइ ॥  
 सत जत सौँच खिसा दया, भाव भगति पछ लेह ।  
 तौ अमर ओशदी गुण करै, बखना उधरै देह ॥  
 अमर जड़ी पानै पड़ी, सो सूँधी सत जाण ।  
 बखना बिसहर सूँ लड़ै, न्योल जड़ी के पाणि ॥  
 पहली था सो अब नहीं, अब सो पछै न थाइ ।  
 हरि भजि विलम न कीजिये, बखना आरै जाइ ॥  
 जे बोल्या तौ राम कहि, जे चुपका तौ राम ।  
 मन मनसा हिरदा मही, बखना यहु विश्राम ॥  
 पै याणी भेला पीवै, नहीं ग्यान को अंस ।  
 तजि पाणी पै नैं पिवै, बखना साधू इंस ॥  
 कण कड़वी भेला चरै, अंधा विषर्दि ग्राण ।  
 बखना पसु भरम्याँ भरै, सुनि भगौत पुराण ॥  
 सीता राम वियोग नित, मिलि न कियो विश्राम ।  
 सीता लंक उधान मैं, बखना बन मैं राम ॥  
 कैल पांडू सारिखा, देता परदल मोड़ि ।  
 बखना बल को गर्व करि, अंति मुवो सिर फोड़ि ॥  
 इसा बड़ा गड़ै गढ़ा, बल को कर अहँकार ।  
 थे बखना अब दीन है, मुमिरो सिरजनहार ॥

पिरथी परमेशुर की सारी ।  
 कोइ राजा अपणै सिर पर, भार लेहु मत भारी ॥  
 पिरथी कै कारण कैरूं पांडू, करते जुद्ध दिनाई ।  
 मेरी मेरी करि करि मूर्ये, निहचै भई पराई ॥  
 जाकै नौ ग्रह पइडे क्वाँधे, कूचै मीच उसारी ।  
 ता रावण की टोर न ठाहर, गोविंद गर्वप्रहरी ॥  
 केते राजा राज बईठे, केते छत्र धरेंगे ।  
 दिन दो च्यार मुकाम भयो है, फिर मी क्वँच करेंगे ॥  
 अटल एक राजा अविनासी, जाकी अंत लोक दुहाई ।  
 बखना कहै, पिरथी है लाकी, नहीं तुम्हारी भाई ॥  
 सोई जागै रे सोई जागै रे । राम नाम ल्यो लागै रे ॥  
 आप अलंबण नींद अयाणा । जागत सूता होय सवाणा ॥  
 तिंहि चिरियाँ गुरु आया । जिनि सूता जीव जगाया ॥  
 थी तो रैणि धणेरी । नींद गई तब मेरी ॥  
 डरलाँ पलक न लाऊँ । हूँ जाग्यो और जगाऊँ ॥  
 सोवत सुपना माँहीं । जागूँ तो कछु नाहीं ॥  
 सुरति की सुरति विचारी । तब नेहा नींद निवारी ॥  
 एक सबद गुरु दीया । तिंहि सोबत बैठा कीया ॥  
 बखना साध सभागा । जे अपने पहरे जागा ॥

भाजन भाव समान जल, भरं दे सागर धीव ।  
जैसी उपजै तन त्रिषा, तैसी पावै जीव ॥  
अमरितलीपी रामरस, पीवै जे जन मस्त ।  
जैसी पूँजी गाँठड़ी, तैसी वणजै वस्त ॥  
मैं अति अपराधी दुरमती, तृँ अवगुण वक्सनहार ।  
गरिदास की बीनती, संम्रथ सुणो पुकार ॥

जेते दोष मैंगाल में, मैंते हैं सुख मारि ।  
गरिदास केते कहे, अगमिन परमित भारि ॥  
जेते रोम तेती खता, गविन वदुस उदाम ।  
गरिदास कलणा करी, यगमो निरजनदाम ॥  
कोण सुणै कायै, कहूँ, यो जानै परमि ।  
प्रीतम विछुईं जीव कै, कौन रंभाई भी ॥

## साधु निश्चलदासजी

( जन्म-स्थान—कुंगड़ गाँव ( हिसार जिला ), संत दाहूजीका सम्प्रदायमें )

अंतर बाहिर एकरस, जो चेतन भरपूर ।  
चिमु नभ सम सो ब्रह्म है, नहि नैरे नहि दूर ॥  
ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, ताकी वानी वेद ।  
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद ॥  
सत्यवंध की ग्यान तैं, नहीं निवृत्ति समुक्त ।  
नित्य कर्म संतत करै, भयो चहै जो मुक्त ॥  
भ्रमन करत उँगूँ पवन तैं, सूको पीपर पात ।  
शेष कर्म प्रारब्ध तैं, किया करत दरसात ॥  
दीनता कुँ त्यागि नर ! आपनो स्वरूप देखि,  
तू तो सुद्ध ब्रह्म अज दृस्य को प्रकासी है ।  
आपने अग्यान तैं जगत सब तूँ ही रचै,  
सर्व को संहार करै आप अविनासी है ॥

मिथ्या परपंच देवि दुःख जिन आनि त्रिय,  
देवन को देव तूँ तो मय सुखगमी है ।  
जीव जग हंस होय माया मे प्रभासे तूँ ही,  
जैसे रज्जु सौप, सीप रूप है प्रभासी है ॥  
माटी का कारज बद जैसे, माटी ता के बादर मारि ।  
जल के फेन तरंग बुद्धुदा, उपजत जल तैं जु है सु नारि ॥  
ऐसे जो जाको है कारज, कारनरूप पिद्यानहु तारि ।  
कारनहंस सकल को 'सो मै' लक्ष्यचितन जानहु विधि यारि ॥

चेतन मिथ्या स्वन को, अधिष्ठान निवार ;  
सोइ द्रष्टा भिन्न नहिं, तैसे जगत विचार ॥  
परमानन्द-स्वरूप तूँ नहिं तो मैं दुख लेस ।  
अज अविनासी ब्रह्म चित, जिन आनै हिसे फ्लेस ॥

## स्वामी श्रीहरिदासजी ( हरिपुरुषजी )

( समय—सोलहवीं शताब्दीका अन्त या सतरहवींका आरम्भ, स्थान—कापड़ोद घास, डीडवाण, मारवाड़, जाति—क्षत्रिय, पूर्व नाम हरिसेहजी । )



मन रे ! गोविंद के गुन गाय ।  
अनकि जब तब उठि चलैयो,  
कहत हैं समुझाय ॥  
अटक अरि हरिध्यान धर मन,  
सुरति हरिसौं लाय ।  
भज तू भगवत भरम्भंजन,  
संत करन सहाय ॥  
तरल तृप्ना त्रिधिध रस-वस, गलित गति तहूँ चंद ।  
जाय जोवन, जरा आसै, जाग रे मतिमंद ! ॥  
मोह मन रिपु आस में तैं, गहर गुन जलदेह ।  
जन 'हरिदास' आज सकाल नहीं, हरि-भजन करि लेह ॥

माया चढ़ी सिकार तुरी चटकाइया ।  
कै मारै कै मारि पताखा लाइया ॥  
जन 'हरिदास' भज राम सकल जन वेरिया ।  
हरिहौ मुनि जाय वसे दरबार तहौ तै केरिया ॥  
अब मैं हरि जिन और न जानूँ,  
भजि भगवंत मगन है नानूँ ।  
हरि मेरा करता हूँ हरिलीया,  
मैं मेरा मन हरि कुँ दीया ॥  
व्यान ध्यान प्रेम हम पाया,  
जब पाया तब आप गमाया ।  
राम नाम ब्रत हिरहै धारूँ,  
परम उदार निमिल न विसारूँ ॥

मन रे, हरत परत दिन हार्यो ।  
राम चरण जो तैं हिरदै विसरयो ॥  
माया मोहोरे, क्यूँ चित्त न आयो ।  
मिनप जनम तैं अहलो गमायो ॥  
वण आज्ञो, निकाँ चित लायो ।  
शोथयो गिलोड्यो, क्यूँ हाथ न लायो ॥  
साच तज्यो, छटै मन मान्यो ।  
बखना भूल्यो रे, तैं भेद न जान्यो ॥  
हरि आओ हो कव देख्यूँ, आँगण म्हरै ।  
कोइ इसो दिन होय रे, जा दिन चरण्यां धारै ॥  
सुंदर रूप तुम्हारो देख्यूँ, नैणाँ भेरे ।  
तग मन ऊपर चारी, नौछावर करे ॥  
तारा गिणताँ सोहि विहावै, रैणि निशासी ।

बीरहणी विलाप करै, हरि दरसन की प्यासी ॥  
यिन देखे तन तालवेली, कामणि करै ।  
मेरा मन मोहन विना, धीरज ना धरै ॥  
बखना वार वार, हरी का मासग देखै ।  
दीनदयाल दया करि आओ, सोइ दिन लेखै ॥  
हेर लै केर लै वेर लै पालो,  
रामभगति करि होय मन आओ ।  
जाण ताँ अपूठो आण,  
जे वाणी तो हरि सों वाण ॥  
बावरो भयो कै लाभी बाइ,  
रीती तलाइवाँ शल्य जाइ ।  
साध संत में रहो रे भाई,  
बखना तूनै रामदुहाई ॥

### संत गरीबदासजी दादूपन्थी

( जन्म-वि० सं० १६६२ । जन्म-स्थान—सॉभर ( राजस्थान ) । पिता—दामोहर ( मतान्तरसे स्वर्य श्रीखासी दादूदयाल-जी ) । शुरुका नाम—स्वामी दादूदयालजी, देहावसान—वि० सं० १६९३ । )

हाँ, मन राम भज्यो यिथ न तज्यो तैं, शूँ ही जनम गमायो ॥  
माया मोह मौहि लपटायो, साधसंगति नहिं आयो ।  
हेत सहित हरिनाम न गायो, विष अमरित करि खायो ॥  
सतसुरु बहुत भाँति समझायो, सब तज चित नहिं लायो ।  
गरीबदास जनम जे पायो, करि लै पिथ को भायो ॥

प्रगटहु सकल लोक के राय ।  
पतितपावन प्रभु भगतबछल हो, तो यहु तुणा जाय ॥  
दरसन विना दुखी अति विरहणि, निमिष वैँधै नहिं धीर ।  
तेजपुंज सूँ परस कीजै, यो मेटहु या पीर ॥  
अंतर मेट दयाल दया करि निसदिन देख्यूँ तूर ।  
भौ-वंधन सब ही दुख छटै, सनमुख रहो हजूर ॥  
तुम उदार मंगत यह तेरो, और कछू नहिं जाचै ।  
प्रगटो जोति निमिष नहिं टारो औरै अंग न राचै ॥  
जानराह सबही विधि जानो, अब प्रगटो दरहल ।  
गरीबदास कूँ अपनो जानिकै आय मिलौ किन लाल ॥

प्रीत न तूटै जीव की, जो अंतर होइ ।  
तन मन हरि के रँग रँग्यो, जानै जन कोइ ॥  
लख जोजन देही रहै, चित सनमुख राखै ।  
ताको काज न ऊङ्डै, जो हरिगुन भालै ॥

कँवल रहै जल अंतरै, रवि वरै अकास ।  
संपुट तबही विगसिहै, जब जोति प्रकास ॥  
सब संसार असार है, मन मानै नहीं ।  
गरीबदास नहिं बीसरै, चित तुम्ही माँही ॥

जबही तुम दरसन पायो ।  
सकल बोल भयो सिद्ध, आज भलो दिन आयो ।  
तन मन धन त्यौलावरि अरण्ण, दरसन परमन प्रेम बढ़ायो ॥  
सब दुख गये हेतु जे जिय में, पीतम पेतन भायो ।  
गरीबदास सोभा कहा बरण्ण, आनंद अंग न गायो ॥

मन रे ! बहुत भाँति समझायो ।  
रूप सत्य निरालि नैमनि कै, छविम माँहि वैथायो ॥  
ताँ भ्रीति बाँध मन मूरल, सुख दुख सदा सँगायो ।  
विकुड़ै नहीं अमर अविनासी, और ग्रीति खप जार्यो ॥  
हरि सो हितू छाँडि जीवनि सौं, काहे हेत चित लाधै ।  
सुपनो सौ सुख जान जीय में, काहे न हरिगुण गार्यो ॥  
रूप अरूप जोति लैवि निरमल, सब ही गुण जा मारै ॥

गरीबदास भज अंतर ताँ, सुर नर मुनिजन नाँ ॥  
रामजी, सबमूँ भेंक गाइ ।

जाके जैसी प्रीति है, तैयी करै मगाइ ॥

भाजन भाव समान जल, भरं दे सागर पीव ।  
जैसी उपजै तन त्रिषा, तैसी पावै जीव ॥  
अमरितरूपी रामरस, पीवै जे जन मस्त ।  
जैसी पूँछी गौँठड़ी, तैसी वणजै वस्त ॥  
मैं अति अपराधी दुरमती, तैं अवगुण वक्सनहार ।  
गरिवदास की बीनती, संग्रथ सुणो पुकार ॥

जेते दोष मँगार मे, तेते हैं मुख माहि ।  
गरिवदास केते कहै, शरणित परमित नाहि ॥  
जेते रोम लेती लता, गुलियम वक्तुत आगर ।  
गरिवदास करणा करौ, वगामो गिरजनहार ॥  
कोण सुणै कासै कहूँ, को जानै परपीर ।  
प्रीतम विद्युइं जीव कूँ, कौन वैधार्य भोर ॥

## साधु निश्चलदासजी

( जन्म-स्थान—कूंगड़ गाँव ( हिंसार ज़िला ), संत दादूजीके सम्प्रदायमें )

अंतर बाहिर एकरस, जो चेतन भरपूर ।  
मिसु नभ सम सो ब्रह्म है, नहि नेरे नहि दूर ॥  
ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मचित, ताकी बानी वेद ।  
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद ॥  
सत्यवंध की ग्यान हैं, नहीं निवृत्ति सयुक्त ।  
नित्य कर्म संतत करै, भयो चहै जो मुक्त ॥  
भ्रमन करत ज्यूँ पवन हैं, सूक्तो पीपर पात ।  
शेष कर्म प्रारब्ध हैं, किया करत दरसात ॥  
दीनता कूँ थागि नर ! आपनो स्वरूप देखि,  
तू तो सुद ब्रह्म अज दस्य को प्रकासी है ।  
आपने अग्यान हैं जगत सब तूँ ही रखै,  
सर्व को संहार करै आप अविनासी है ॥

मिथ्या परपंच देखि दुःख जिन आनि जिय,  
देवन को देव तूँ तौ सब सुख गासी है ।  
जीव जग हंस होय माथा से प्रभासे तूँ ही,  
जैसे रज्जु साँप, सीप रूप हैं प्रभासी है ॥  
माटी का करज घट जैसे, माटी ता के नाहर माहि ।  
जल के फेन तरंग बुद्धुदा, उपजत जलते लु हैं मुना नाहि ॥  
ऐसे जो जाको है कारज, कारनरूप पिछानहु ताहि ।  
कारन हंस सकल को 'सो मै' लघु-नितन जानहु विधि नाहि ॥

चेतन मिथ्या स्वाम को, अधिष्ठान निर्धार ।  
सोहं द्रष्टा भिन्न नहि, तैसे जगत विचार ॥  
परमानन्द-स्वरूप तूँ, नहि तो मैं दुख लेस ।  
अज अविनासी ब्रह्म चित, जिन आनै हिय क्लेस ॥

## स्वामी श्रीहरिदासजी ( हरिपुरुषजी )

( समय—सोलहवीं शताब्दीका अन्त या सतरहवींका गारम्भ, स्थान—कापड़ोद ग्राम, डीडवाणा, मारवाड़, जाति—क्षत्रिय, पूर्व नाम हरिसिंहजी । )



मन रे ! गोविंद के गुन गाय ।  
अबकि जब तब उठि चलैगो,  
कहत हैं समुझाय ॥  
अटक अरि हरि-ध्यान धर मन,  
सुरति हरिसौं लाय ।  
भज तू भगवत भरमंजन,  
संत करन सहाय ॥  
  
तरल तुप्ता त्रिविध रस-वस, गलित गति तहैं चंद ।  
जाय जोवन, जरा ग्रासै, जाग रे मतिमंद ! ॥  
मोह मन रिय ग्रास में हैं, गहर गुन जलदेह ।  
जन 'हरिदास' आज सकाल नाहि, हरि-भजन करि लेह ॥

माया चढ़ी सिकार तुरी चटकाइया ।  
कै मारै कै मगरि पताखा लाइया ॥  
जन 'हरिदास' भज राम सकल जन वेरिया ।  
हरिहौ मुनि जाय वसे दरवार तहैं तै केरिया ॥  
अब मैं हरि विन और न जानूँ,  
भजि भगवंत मगन हूँ नानूँ ।  
हरि मेरा करता हूँ हरिकीया,  
मैं मेरा मन हरि कूँ दीया ॥  
ध्यान ध्यान प्रेम हम पाया,  
जब पाया तब आप गमाया ।  
राम नाम ब्रत हिरदै धारूँ,  
परम उदार निमिल न विसाहूँ ॥

गाय गाय गवेथा गाया,  
मन मया मगन गगन मठ छाया ।

जन हरिदास आस तजि पासा,  
हरि निरगुण निजपुरी निवासा ॥

## महात्मा श्रीजगन्नाथजी

( श्रीदादूजीके शिष्य )

'जगन्नाथ' जगदीस की, राह सु अति बारीक ।  
पहले चलियो कठिन है, पीछे श्रम नहिं सीक ॥  
मारग अगम सुगम अति होवै,  
जो हरि सतगुर होहिं सहाय ।

जुगन्जुग कष्ट करै नहिं पहुँचै,  
'जगन्नाथ' तहौं सहजै जाय ॥  
सौंस-सौंस सुमिरन करै, जैवे जगदुरुजाप ।  
'जगन्नाथ' संसार की, कछू न व्यापै ताप ॥

## स्वामी श्रीचरणदासजी महाराज

[ जन्म वि० सं० १७६० में श्रीश्रीभनजीके कुलमें भार्गव वंशमें । ( कोई-कोई दूसर वनिया बताते हैं । ) जन्मभूमि—आम देहर ( अलवर ), देह-त्याग वि० सं० १८३९, ७५ वर्षकी आयुमें । गुरु श्रीशुकदेवजी । )  
( ग्रेवक—महन्त श्रीप्रेमदासजी )

( १ )

भाई रे तजौ जग जंजाल ।  
संग तोरे नाहि चाले  
महल बाहन माल ॥  
मातु पितु छुत और नारी  
बोल मीठे बैन ।  
डारि फाँसी मोह की तोहि  
ठगत है दिन रैन ॥

छल घटूरो दियो सब मिलि लाज लाहू माँहि ।  
जान अपने कह भुलानो चेतता क्यों नाहिं ॥  
बाज जैसे चिड़ी ऊपर अभ्रत तोपर काल ।  
मार के गहि ले चलेंगे थम सरीखे साल ॥  
सदा सँधाती हरि विसारो जन्म दीन्हो हार ।  
चरणदास सुकदेव कहिया समझ मूँह गँवार ॥

( २ )

मनुआ राम के व्यौपारी ।

अब के खेय भक्ति की लादी, वणिज कियो तैं भारी ॥  
पाँचों ओर लदा मग रोकत इन सों कर छुटकारी ।  
सतगुर नायक के देंग मिलि चल लूट सकै नहिं धारी ॥  
दो ठग मारग माँहि मिलेंगे एक कनक एक नारी ।  
सावधान हो वेच न खड़ियो रहियो आप सँभारी ॥  
हरि के नगर मैं जा पहुँचोगे पैहो लाभ अपारा ।  
चरणदास तो को समझावै रामन वारम्वार ॥

( ३ )

जीवित मर जाय, उलट आप मैं समाय,  
कहीं नहीं जाय मन छुद्ध दिल्लीरी है ।  
करै विधिन वास, इन्द्रिय जीत तजै भूल ज्यास,  
मेटै पर-आस खास पूरन सबूरी है ॥  
परम तत्व को विचार चिंता विसार सबै,  
टार भत बाद हरि भज ले अमीरी है ।  
कहै चरणदास दीन दुनिया मैं उकार,  
सब आसान थार सुशकिल फकीरी है ॥

( ४ )

रिद्धि सिद्धि फल कछू न चाहूँ ।  
जगत कामना को नहिं लाऊँ ॥  
और कामना मैं नहिं राखूँ ।  
रसना नाम तुम्हारे भावूँ ॥  
चौराही मैं बहु दुख पायो ।  
तोते सरन तिहारी आयो ॥  
मुक्त होन की मन मैं आवै ।  
आवागवन दूँ जीव दरवै ॥  
प्रेम प्रीत मैं हिरदा भीजै ।  
यही दान दाता मोहि थीजै ॥  
अपना कीजै गहिये वाही ।  
धरिये मिर पर हाथ उगाई ॥  
चरणदास को लेहु उवारे ।  
मैं अंहा तुम सेवनारे ॥

( ५ )

धन नगरी धन देस है धन पुर पहन गाँव ।  
जहाँ साधू जन उपजियो ताकी बलि बलि जाँव ॥  
भक्त जो आवै जगत मैं परमारथ के हेत ।  
आप तरै तारै परा, मंडै भजन के खेत ॥  
तप के वरस हजार हों, सत संगति घड़ि एक ।  
तौ भी सरवरि ना करै, सुकदेव किया विवेक ॥  
हन्द्री मन के बसू करै, मन करै बुधि के संग ।  
बुधि राखै हरि पद जहाँ, लगे ध्यान अभंग ॥  
मीठा बचन उचारिये, नवता सबसू थोल ।  
हिरदय माहिं विचारि करि, जब मुख बाहर खोल ॥  
विना स्वाद ही खाइये, राम भजन के हेत ।  
चरनदास कहैं सूरमा, ऐसे जीतौ खेत ॥  
जो बोलै तौ हरि कथा, मैन गहै तौ ध्यान ।  
चरनदास यह धारना, धारै सो सज्जन ॥

( ६ )

अरे नर ! परनारी मत तक रे ।  
जिन-जिन और तको डायन की, बहुतन कूँ गइ भख रे ॥  
दूध आक को पात कैथा, झाल अगिनि की जानो ।  
सिंह मुछरे बिस कारे को, ऐसे ताहि पिछानो ॥  
खानि नरक की अति दुखदाई, चौरासी भरमावै ।  
जनम जनम कूँ दाग लगावै, हरि गुरु तुरत छुटावै ॥  
जग मैं किरि किरि महिमा खोवै, राखै तन मन मैला ।  
चरनदास सुकदेव चितावै, सुमिरौ राम सुहेला ॥

( ७ )

राखिजो लाज गरीबनिवाज ।  
तुम निन हमरे कौन सेवरै सबही विगरे काज ॥  
भक्तबछल हरि नाम कहावो पतित उधारनहार ।  
करो मनोरथ पूरन जन को सीतल दृष्टि निहार ॥  
तुम जहाज मैं काग तिहारो तुम तजि अंत न जाऊँ ।  
जो तुम हरि जू भारि निकासो और ठौर नहिं पाऊँ ॥  
चरनदास प्रभु सरन तिहारी जानत सब संसार ।  
मेरी हँसी सो हँसी तुम्हारी तुम हँ देखु विचार ॥

( ८ )

साथो जो पकरी सो पकरी ।  
अब तौ टेक गही सुमिरन की ज्यों हारिल की लकरी ॥  
ज्यों सूरा ने सस्तर लीन्हो ज्यों बनिये ने तखरी ।

सं० वा० अ० ३४—

ज्यों सतवंती लियो सिंधौरा तार गहो ज्यों मकरी ॥  
ज्यों कामी कूँ तिरिया प्यारी ज्यों किरपिन कूँ दमरी ।  
ऐसे हम कूँ राम पियोरे ज्यों नालक कूँ ममरी ॥  
ज्यों दीपक कूँ तेल पियारो ज्यों पावक कूँ समरी ।  
ज्यों मछली कूँ नीर पियारो बिल्लुरें देखै जम री ॥  
साधों के सँग हरि गुन गाँजँ ता ते जीवन हमरी ।  
चरनदास सुकदेव दृढायो और छुटी सब गम री ॥

( ९ )

वह राजा सो यह विधि जानै । काया नार जीतियो ठानै ॥  
काम क्रोध दोउ बल के पूरे । मोह लोभ अति सावैत सूरे ॥  
बल अपनो अभिमान दिखावै । इन को मारि राह गढ़ धावै ॥  
पाँचो प्यादे देहि उठाई । जब गढ़ मैं कूदै मन लाई ॥  
ग्यान खङ्ग लै दुंद मचावै । कपट कुटिल्ला रहन न पावै ॥  
चुनि चुनि दुरजन हनि सब डारै । रहते सहते सकल बिडारै ॥  
मन सूँ ब्रह्म होय गति सोई । लब्धन जीव रहे नहिं कोई ॥  
अचल सिंहासन जब तू पावै । मुक्ति खबासी चैवर दुरावै ॥  
आठौ सिद्धि जहाँ कर जोरै । सौं ही ताकैं सुख नाहिं मोरै ॥  
निस्चल राज अमल करै पूरा । ब्राजै नौवत अनहंद तूरा ॥  
तीन देव अस कोटि अठासी । वै सब तेरी करैं खबासी ॥  
गुरु सुकदेव भेद दियो नीको । चरनदास भस्तक किंगोटीको ॥  
रनजीता यह रहनी पावै । योथी करनी कथनि बहावै ॥

( १० )

जो नर इकछत भूप कहावै ।

सत सिंहासन ऊपर वैठै जत ही चैवर दुरावै ॥  
दया धर्म दोउ फौज महा लै भक्ति निषान चलावै ॥  
पुर नगारा नौवत ब्रजै दुरजन सकल हलावै ॥  
पाप जलाय करै चौगाना हिंसा कुबुधि नसावै ॥  
मोह मुकद्दम काढ़ि मुलक सूँ ला वैराग बसावै ॥  
साधन नायब जित तित भेजै दै दै संज्ञम साथा ।  
राम होहाई सिगरे केरै कोइ न उठावै माथा ॥  
निरभय राज करै निस्चल है गुरु सुकदेव सुनावै ।  
चरनदास निस्त्रै करि जानौ ब्रिला जन कोइ पावै ॥

( ११ )

अपना हरि निन और न कोई ।

मातु पिता सुत बंधु कुड़ुन्न सब स्वारथ ही के होई ॥  
या काया कूँ भोग बहुत दे मरदन करि करि धोई ।  
सो भी छूटत नेक तनिकन्सी संग न चाली वोई ॥

पर यही नारि वहुत ही प्यारी तिनमें नाहीं दोई ।  
जीवत कहती साथ चल्ही डरपन लागी सोई ॥  
जो कहिये यह द्रव्य आपनो जिन उज्ज्वल मति खोई ।  
आवत कष्ट रखत रखवारी चलत प्रान ले जोई ॥  
या जग में कोइ हितू न दीखै मैं समझाऊँ तोई ।  
चरनदास सुकदेव कहे यों सुनि लीजै नर लोई ॥

( १२ )

हमारे राम भक्ति धन भारी ।  
राज न ढाँडे चोर न चोरै लूटि सकै नहिं धारी ॥  
प्रभु वैसे अरु नाम रघैये मुहर मोहब्बत हरि की ।  
हीरा रथान जुक्किके मोती कहा कमी है जर की ॥  
सोना सील भैंडार भरे हैं रूपा रूप अभारा ।  
ऐसी दौलत सत्युरु दीन्ही जा का सकल पसारा ॥  
बाँटौ वहुत धटै नहिं कवहुँ दिन दिन ड्योढी ड्योवढी ।  
चोका भाल द्रव्य अति नीका बटा लगे न कौड़ी ॥  
साह गुरु सुकदेव विराजै चरनदास बन जोटा ।  
मिलि मिलि रंक भूप होइ बैठे कवहुँ न आवै टोटा ॥

( १३ )

आवो साधो हिलि मिलि हरि जस गावै ।  
प्रेम भक्ति की रीति समुझ करि हित सूँ राम रिजावै ॥  
गोविंद के कौतुक गुन लीला ता को ध्यान लगावै ।  
सेवा सुमिरन बंदन अरचन नौधा सूँ चित लावै ॥  
अबकी औसर भलो बनो है बहुरि दाँव कब पावै ।  
भजन प्रताप तरै मवसागर उर आनन्द बढ़ावै ॥  
सतसंगति को साकुन लेकर ममता मैल बहावै ।  
मन कूँ घो निरमल करि उज्जल मगन रूप होजावै ॥  
ताल पखावज झाँझ मजीरा मुरली संख बजावै ।  
चरनदास सुकदेव दया सूँ आवागवन मिटावै ॥

( १४ )

छिनमंगी छलरूप यह तन ऐसा रे ॥  
जाको मौत लगौ बहु विधि सूँ नाना अँग ले बान ।  
विल अरु रोग सख्त बहुतक हैं और विधन बहु हान ॥  
निस्त्वै विनसै बचै न क्यों हीं जतन किये बहु दान ।  
ग्रह नछत्र अरु देव मनावै साधै प्रान अपान ॥  
अचरज जीवन, मरिबो साँचो, यह औसर किरनाहिं ।  
पिछले दिन ठरियन सँग खोये, रहे सो योहीं जाहिं ॥

जो पल है सो हरि कूँ सुमिरौ साध संगति गुरुसेव ।  
चरनदास सुकदेव बतावै परम पुरातन भेव ॥

( १५ )

वह बोलता कित गथा नगरिया तजिकै ।  
दस दरवाजे ज्यों-केत्यों हीं कौन राह गया भजिकै ॥  
सूना देस गाँव भया सूना सूने घर के बासी ।  
रूप रंग कच्छु औरै हूचा, देही भथी उदासी ॥  
साजन थे सो दुरजन हूए तन को बाँधि निकारा ।  
चिता सँवारि लिटाकर तामें ऊपर धरा अँगारा ॥  
दह गया महल चुहल थी जामें मिलगया माटी माही ।  
पुत्र कलत्तर याई बंधू सबही ठोक जलाही ॥  
देखत ही का नाता जग में मुएं संग नहिं कोई ।  
चरनदास सुकदेव कहत है हरि बिन मुक्ति न होई ॥

( १६ )

समझो रे भाई लोगो, समझो रे,  
अरे हाँ नहिं रहना, करना, अंत पथना ॥  
मोह कुड़ेव के औसर खोयो, हरि की सुधि विसराई ।  
दिन धंधे में रैन नींद में, ऐसे आयु गँवाई ॥  
आठ पहर की साठौ धरियाँ सो तो विरथा खोई ।  
छिन इक हरि को नाम न लीन्हो कुसल कहाँ ते होई ॥  
बालक थाजब खेलत डोला, तरुन भया मद माता ।  
बृद्ध भये चिंता अति उपजी, दुख में कच्छु न सुहाता ॥  
भूला कहा चेत नर मूरख, काल खड़ो सर सामे ।  
विष को तीर खैंचिकै मारै, आय अचानक वाँधे ।  
झूँठे जग से नेह छोड़ करि, साँचो नाम उचारो ।  
चरनदास सुकदेव कहत हैं, अपनो भलो विचारो ॥

( १७ )

रे नर ! हरि प्रताप ना जाना ।  
तन कारन सब कुछ नित कीन्हा सो करता न विद्याना ॥  
जेहिं प्रताप तेरी सुंदर काया, हाथ पाँव भुव नाना ।  
नैन दिये जासों सब रहजै, होव रहा परकामा ॥  
जेहिं प्रताप नाना विधि भोजन वस्तर भूपन धाई ।  
वा का नाहिं निहोरा मानै, वा को नाहिं गैंधारै ॥  
जेहिं प्रताप त् भूप भयो है भोग करै मन मानै ।  
सुख लै वाको भूलि गयो है करि-करि बहु अम्भमानै ॥  
अधिकी प्यार करै माता सूँ, पल-पल में मुख लेयै ।  
तू तौ पीठि दिये ही नितहीं सुमिरन मुरति न देयै ॥

कृत्यधनी और नूनहरामी न्याय-इंसाफ न तेरे ।  
चरनदास सुकदेव कहत हैं अजहैं चेतु भवेरे ॥

( १८ )

मेरो कहो मान रे भाई ।

ग्यान गुरु के राखि हिय में, सचै बंध कटि जाई ॥  
बाल्यन तैं खेलि खोये गई तरुनाई ।  
चेत अजहूँ भली वर है जग हूँ आई ॥  
जिन के कारन विसुख हरि तैं फिरत भटकाई ।  
कुड़ौंव सबही सुख के लोभी तैरे हुखदाई ॥  
साधु पदवी धासना घर छाइ कुटिलाई ।  
धासना तजि भोग जग की होय मुक्ताई ॥  
बहुरि जोनी नाहिं आवै परम पद पाई ।  
चरनदास सुकदेव के घर अनेंद अधिकाई ॥

( १९ )

दो दिन का जग में जीवना करता है क्यों गुमान ।

ऐ वेसहूर गीदी डुक राम को पिछान ॥  
दाचा खुदी का दूर कर अपने तु दिछ सेती ।  
चलता है अकड़-अकड़ के ज्वानी का जोस आन ॥  
मुरसिद का ग्यान समझ के हुसियार हो सिताव ।  
गफलत को छोड़ सुहबत सर्थों की खूब जान ॥  
दौलत का जौक ऐसे ज्यों आब का हुबाव ।

जाता रहैगा छिन में पछतायगा निदान ॥  
दिन रात खोवता है दुनिया के कारबार ।  
इक पल भी याद सौँह की करता नहीं अजान ॥  
सुकदेव गुरु ग्यान चरनदास को कहै ।  
भज राम-नाम सौँचा पद मुक्ति का निधान ॥

( २० )

भक्ति गरीबी लीजिये तजिये अभिमाना ।  
दो दिन जग में जीवना आखिर मरि जाना ॥

( २१ )

घड़ी दोय में मेला बिछुरै साधो देलि तमासा चलना ।  
जो हाँ आकर हुए इकठे तिन सूँ बहुरि न मिलना ॥  
जैसे नाव नदी के ऊपर बाट बटाऊ आवै ।  
मिल मिल लुदे होयें पल माहीं आप आप को जावै ॥  
या वारी विच पूल धनेरे रंग बुरंग सुहावै ।  
लागें लिलैं केरि कुमिल्यावै झरैं दूटि बिनमावै ॥

दरा सुत समति को सुल ज्यों मोती ओप बिलवै ।  
छाँई मिलैं और हाँ नासैं ता को क्यों पछितावै ॥  
है कुछ लै कुछ करि ले करनी रहनी गहनी भारी ।  
हरि सूँ नेह लगाव आपनो सो तेरो हितकारी ॥  
सत संगति को लाम वडो है साध भक्त समुदावै ।  
चरनदास ही राम सुमिर ले गुरु सुकदेव बतावै ॥

( २२ )

गुमराही छोड़ दिवाने मूरख बाकरे ।  
अति दुरलम नर देह भया  
गुरुदेव सरन तू आब रे ॥  
जग जीवन है निति को सुपनो  
अपनो हाँ कौन बताव रे ।  
तोहिं पाँच पच्चीस ने धेरि लियो  
लल चौरासी भरमाव रे ॥  
बीति गयी सो बीति गयी  
अजहूँ मन कूँ समुदाव रे ।  
मोहलोम सूँ भागि कै त्यागि विप्रय  
काम क्रोध कूँ धोय वहाव रे ॥  
गुरु सुकदेव कहैं सबहीं तजि  
मनमोहन सूँ मन लाब रे ।  
चरनदास पुकारि चिताय दियौ  
मत चूकै ऐसे दाँब रे ॥

( २३ )

भाई रे ! अवधि बीती जात ।  
अंजुली जल घटत जैसे, तारे ज्यों परमात ॥  
स्वाँस पूँजी गाँठि तेरे, सो घटत दिन-रात ।  
साधु संगत पैठ लागी, ले लगै सोइ हाथ ॥  
बड़ो सौदा हरि सैंभारै, सुमिर लीजै प्रात ।  
काम क्रोध दलाल हैं, मत बनिज कर इन साथ ॥  
लोम मोह बजाज ठगिया, लगे हैं तेरी धात ।  
शब्द गुरु को राखि हिरदय, तौ दंगा नहिं खात ॥  
आपनी चतुराइ बुधि पर, मत फिरै इतरात ।  
चरनदास सुकदेव चरनन, परस तजि कुल जात ॥

( २४ )

साधो ! निंदक मित्र हमारा ।  
निंदक कों निकटे ही राखों, होन न देउँ नियारा ॥

पाके मिदा करि अब धोवै, सुनि मन मिटै बिकारा।  
जैसे गोना तापि अगिन में, निरमल करै सोनारा॥  
घन अद्रन कसि हीरा निवटै, कीमत लच्छ हजारा॥  
ऐरो जाँचत हुए संतकूँ, करन जगत उजियारा॥  
जोग जग्य जप पाप कठन हितु करै सकल संसारा॥  
विन करनी मम करम कठिन सब, मेटै निंदक प्यारा॥  
सुखी रहे निंदक जग माँहीं रेग न हो तन सारा॥  
हमरी निदा करनेवाला, उतरै भवनिधि पारा॥  
निंदक के चरनों की अस्तुति, भावौं बारंबारा॥  
चरनदास कहें सुनियो साधो, निंदक साधक भार॥

( २५ )

जिन्हैं हरिभगती प्यारी हो !

मात-पिता सहजै छुट्ठै, छुट्ठै सुत अरु नारी हो॥  
लोक भोग फीके लाँू, सम अस्तुति गारी हो॥  
हानि-लाभ नहिं चाहिये, सब आसा हारी हो॥  
जगसूँ मुख मोरे रहें, करै ध्यान मुरारी हो॥  
जित मनुचाँ लागे रहे, भइ घट उजियारी हो॥  
गुरु सुकदेव बताइया, प्रेमी गति भारी हो॥  
चरनदास चारौं बेद सूँ, औरे कछु न्यारी हो॥

फकीर कौन है ?

मन भारै तन बस करै, साधै सकल संरीर।  
फिकिर फारि कफनी करै, ताको नाम फकीर॥

काम

यह काम बुरा रे भाई। सब देवै तन बैराई॥  
पंचौं में नाक कटावै। वह जूती मार दिलावै॥  
मुँह काला गधे चढ़ावै। बहु लोग तमारे आवै॥  
झिड़का ज्यों डोलै दुक्ता। सबहीं के मन सूँ उत्ता॥  
कोइ नीके मुख नहिं बोलै। सरमिदा हो जग डोलै॥  
वह जीवत नरक मँशारी। सुन चेतो नर अरु नारी॥  
काम अंग तजि दीजै। सतसंगति ही करि लीजै॥  
अस कहें चरन ही दासा। हरि भक्तन मैं कर बसा॥

तन मन जारै काम ही, चित कर डावाँडोल।  
धरम सरम सब खोय के, रहै आप हिय खोल॥  
नर नारी सब चेतियो, दीन्हो प्रगट दिखाय।  
पर तिरिया पर पुरुष हो, भोग नरक को जाय॥

क्रोध

क्रोध महा चंडाल है, जानत हैं सब कोय।  
जाके अंग बरनन करूँ, सुनियो सुरत समोय॥

जेहिं घट आवै धूम सूँ, करै बहुत ही ख्वार  
पति खोवै बुधि कूँ हनै, कहा पुरुष कहा नार।  
वह बुद्धि भ्रष्ट करि डारै। वह मारहिं मार पुकारै।  
वह सब तन हिंसा छावै। कहिं दया न रहने पावै।  
वह गुरु सूँ बोलै बेंडा। साधू सूँ डोलै ऐंडा।  
वह हरि सूँ नेह छुटावै। वह नरक माहिं ले जावै॥  
वह आतमधारी जानौ। वह महा भूढ़ पहिचानौ॥  
सोटों की मार दिलावै। कवहूँ कै सीस कटावै॥  
वह नीच कमीना कहिये। ऐसे सूँ डरता रहिये॥  
वह निकट न आवन दीजै। अरु छिमा अंक भरि लीजै॥  
जब छिमा आय कियो थाना। तब सबहीं क्रोध हिरान॥  
कहै गुरु सुकदेव खिलारी। सुन चरनदास उपकारी॥

मोह

मोह बड़ा दुखरूप है, ताकूँ मारि निकास।  
प्रीत जगत की छोड़ दे, जब होवै निर्वास॥  
जग मार्ही ऐसे रहो, ज्यों अंबुज सर माहि।  
रहै नीर के आसरे, ऐ जल धूधत नाहि॥

लोभ

लोभ नीच बरनन करूँ, महा पाप की खानि।  
मंत्री जाका शूँठ है, बहुत अधरमी जानि॥  
तृक्षा जाकी जोय है, सो अंधा करि देय।  
धटी बढ़ी सूझै नहीं, नहीं काल का भेय॥  
दम्भ मकर छल भगल जो, रहत लोभ के संग।  
मुए नरक ले जायेंगे, जीवत करै अतंग॥  
देहैं धर्म छोड़ाय हो, आन धर्म ले जाय।  
हरि गुरु तै बेमुख करै, लालच लोभ ल्याय॥  
चहूँ दैस भरमत फिरैं, कलह कल्पना साथ।  
लोभ खंभ उठि उठि लाँू, दोऊ पसारे हाय॥  
चीटी बांदर खगन कूँ, लोभ बहुत दुख दीन।  
या कूँ तजि हरि कूँ भजै, चरनदास परवीन॥  
लोभ धटावै मान कूँ, करै जगत आधीन।  
धर्म घटा भिष्ट करै, करै बुद्धि की हीन॥  
लोभ गये ते आवहै, महा वली संतोग।  
त्याग सत्य कूँ संग ले, कलह निवारन गोक॥  
घट आवै संतोष ही, कह चहै जग भोग।  
स्वर्ग आदि लौं सुख जिते, सब कूँ जानै रोग॥  
संतोषी निर्मल सदा, रहै राम लै स्वय।  
आसन ऊपर दृढ़ रहै, इत उत कूँ नहि जाय॥

काहू से नहिं राखिये, काहू विधि की चाह ।  
परम संतोषी हूजिये, रहिये बेपरबाह ॥  
चाह जगत की दास है, हरि अपना न करै ।  
चरनदास यों कहत है, व्याधा नाहिं ठरै ॥

### अभिमान

अभिमानी चढ़ि कर गिरे, गये वासना माहिं ।  
चौरासी भरमत भये, तब हीं निकरै नाहिं ॥  
अभिमानी मंजि गये, लट लिये धन बाम ।  
निरअभिमानी हो चले, पहुँचे हरि के धाम ॥  
चरनदास यों कहत है, सुनियो संत सुजान ।  
सुक्ति मूल आधीनता, नरक मूल अभिमान ॥  
मन में लाय विचार कूँ, दीजै गर्व निकार ।  
नान्हापन तब आय है, छूटै सकल विकार ॥

### नाम-भक्ति

ज्यों सेमर का सेवना, ज्यों लोभी का धर्म ।  
अन्न बिना भुस कूटना, नाम बिना यों कर्म ॥  
चार वेद किये व्यास ने, अर्थ विचार विचार ।  
तो में निकसी भक्ति ही, राम नाम तत्त्वार ॥  
नामहिं ले जल पीजिये, नामहिं ले कर खाह ।  
नामहिं लेकर बैठिये, नामहिं ले चल राह ॥  
जीवत ही स्वारथ लगे, मूए देह जराय ।  
हे मन सुमिरौ राम कूँ, धोखे काहि पराय ॥  
हाथी धोड़े धन धना, चंद्रमुखी बहु नार ।  
नाम बिना जमलोक में, पावै दुख अपार ॥  
तुम साहब करतार हो हम घेरे तेरे ।  
रोम रोम गुनेगार हैं बखसो हरि भेरे ॥  
दसौ दुवारे मैल है सब गंदम गंदा ।  
उत्तम तेरो नाम है विसरै सो अंधा ॥  
गुन तजि कै औगुन कियो तुम सब पहिचानो ।  
तुम सूँ कहा छिपाइये हरि ! घट की जानो ॥  
रहम करो रहमान सूँ यह दास तिहारो ।  
भक्ति पदारथ दीजिये आवागवन निवारो ॥  
गुरु सुकदेव उदारि लो अब मेहर करीजै ।  
चरनहिंदास गरीब कूँ अपनो करी लीजै ॥

### साधन

करि ले प्रभु सूँ नेहरा मन माली यार ।  
कहा गर्व मन में धरै जीवन दिन चार ॥

शन थेलि गहु टेक की दया क्षारि सँवार ।  
जत सत दृढ़ के दीजहीं बोबो तासु मँझार ॥  
सील छिमा के कूप को जल प्रेम अपार ।  
नेम डोल भरि खैचि के सींचो बाय विचार ॥  
छल कीकर कूँ काटिके बांधो धीरज बार ।  
सुमति सुबुद्धि किसान कूँ राखौ रखबार ॥  
धर्म गुलेल जु प्रीत की हित धनुष सुधार ।  
झुठ कपट पच्छीन कूँ ताहूँ मार बिडार ॥  
भक्ति भाव पौधा लगे फूलै रँग फुलबार ।  
हरि से माता होयके देखै लाल बहार ॥  
सत संगति फल पाहये मिटे कुबुधि बिकार ।  
जब सतगुर पूरा मिलै चाहै अमृत सार ॥  
समझावै सुकदेवजी चरनदास सँभार ।  
तेरी काया में खिलै सँचो गुलजार ॥

### जगत्का विनाशी रूप

या तन को कहा गर्व करत है,  
खोला ज्यों गलि जावै रे ॥  
जैसे भरतन बनो काँच को,  
ठपक लगे बिनसावै रे ॥  
झूँठ कपट अरु छलबल करि कै,  
खोटे कर्म कमावै रे ॥  
बाजीगर के बांदर की ज्यों,  
नाचत नाहिं लजावै रे ॥  
जब लौं तेरी देह पराक्रम,  
तब लौं सवन सोहावै रे ॥  
माय कहै मेरा पूत सपूता,  
नारी हुकुम उठावै रे ॥  
.पल पल पल पलटै काया,  
छिन-छिन माहिं घटावै रे ॥  
धालक तरन होय फिर बूढ़ा,  
जरा मरन पुनि आवै रे ॥  
तेल फुलेल सुगंध उवटनो,  
अम्बर अतर लगावै रे ॥  
नाना विधि सूँ बिंड सँधरे,  
जरि वरि धूर समावै रे ॥  
कोटि जतन सूँ बचै न क्यों ही,  
देवी देव मनावै रे ॥  
जिनकूँ त् अपनो करि जानै,  
इख में पास न आवै रे ॥

कोई क्षिङ्के कोई अनखावै,  
कोई नाक चढ़ावै रे ॥  
यदि गति देखि कुट्ठंब अपने की,  
इन में मत उरझावै रे ।  
अवर्दीं जम सूँ पाला परहै,  
कोई नाहि छुड़ावै रे ॥  
ओमर खोवै पर के काजे,  
अपनो मूल गँवावै रे ।  
विन हरि नाम नहीं छुटकारो,  
वेदपुरान बतावै रे ॥  
चेतन रूप वसै घटअंतर,  
भर्म सूल विसरावै रे ।  
जो दुक हूँड खोज करि देखै,  
सौ आपहि में पावै रे ॥  
जो चाहे चौरासी छूटै,  
आवागवन नसावै रे ।  
चरनदास सुकदेव कहत है,  
सतसंगति मन लावै रे ॥  
दम का नहीं भरोसा रे,  
करि ले चलने का सामान ।  
तन पिजेरे सूँ निकस जायगो,  
पल में पंछी प्रान ॥  
चलते फिरते सोबत जागत,  
करत खान अरु पान ।  
छिन छिन छिन आयु घटत है,  
होत देह की हान ॥  
माल मुल्क औ मुख सम्पति में,  
क्यों हुआ गलतान ।  
देखत देखत बिनसि जायगो,  
मत कर मान गुमान ॥

कोई रहन न पावै जग में,  
यह तू निहचै जान ।  
अजहूँ समुहि छाँहु कुटिलाई,  
मूरख नर अशन ॥  
ऐरि चितावै ग्यान बतावै,  
गीता-वेद-पुरान ।  
चरनदास सुकदेव कहत है  
राम नाम उर आन ॥

### प्रेमीका स्वरूप

दया, नम्रता, दीनता, क्षमा शील संतोष ।  
इनकूँ लै सुमिरन करै निहचै पावै मोख ॥  
गद्गद बाणी कंठ में, ओँसू टपकै नैन ।  
वह तो विरहन राम की तड़फत है दिन रैन ॥  
हाय हाय हरि कब मिलै, छाती फाटी जाय ।  
ऐसा दिन कब होयगा दरसन करुँ अघाय ॥  
मैं मिरगा शुरु पारधी, सबद लंगायो धान ।  
चरनदास घायल गिरे, तन मन बीधे प्रान ॥  
सकल सिरोमनि नाम है, सब धरमन के गाँहि ॥  
अनन्य भक्त वह जानिये, सुमिरन भूलै नाँहि ॥  
जग माँहीं न्यारे रहो, लगे रहो हरि ध्यान ।  
पृथ्वी पर देही रहै, परमेसुर में प्रान ॥  
पीव चहौ के मत चहौ, वह तो पी की दास ।  
पी के रँगराती रहै, जग सूँ होय उदास ॥  
यह सिर नवै तो रामकूँ, नहीं गिरियो दूढ ।  
आन देव नहि परसिये, यह तन जायो छूट ॥  
आग्याकारी पीव की, रहै पिया के संग ।  
तन मन सौं सेवा करै, और न दृजो रंग ॥

### दयावाई

( महात्मा चरणदासजीकी शिष्या )

हरि भजते लगै नहीं, काल व्याल दुख झाल ।  
तातैं राम सँभालिये, 'दया' छोड़ि जग जाल ॥  
मनमोहन को ध्याइये, तन मन करिये प्रीति ।  
हरि तज जे जग में परो, देखो बड़ी अनीति ॥  
राम नाम के लेत ही, पातक होरे अनेक ।  
रे नर हरि ! के नाम की, रखो मन में टेक ॥

सोबत जागत हरि भजो, हरि हिरदे न विगार ।  
डोरी गहि हरि नाम की, 'दया' न दृटी तार ॥  
दया देह सूँ नेह तजि, हरि भजु आठी जाग ।  
मन निर्मल है तनिक में, पावै निज विदाम ॥  
दया नाव हरि नाम की, मतगुरु लेदवार ।  
साधू जन के संग मिलि, तिरत न लागे दार ॥

'दया' सुपन संसार में, ना पचि मरिये बीर ।  
बहुतक दिन बीते बृथा, अब भजिये रघुबीर ॥  
छिन छिन बिनस्यो जात है, ऐसो जग निरमूल ।  
नाम रूप जो धूस है, ताहि देखि मत भूल ॥  
जनम जनम के बीछुरे, हरि ! अब रहो न जाय ।  
क्यों मन कूँ दुख देत हो, विरह तपाय तपाय ॥  
काग उड़ावत थके कर, नैन निहारत बाट ।  
प्रेम सिन्ध में पर्यो मन, ना निकसन को धाट ॥  
बौरी है चितवत फिलूँ, हरि आवे केहि और ।  
छिन ऊँ छिन गिरि पर्लूँ, राम दुखी मन मोह ॥  
सोवत जागत एक पल, नाहिन बिसलूँ तोहिं ।  
करुनासागर दया निधि, हरि लीजै सुधि मोहिं ॥  
'दया' प्रेम प्रगट्यौ तिन्हैं, तन की तनि न सँभार ।  
हरि रस में माते फिरें, गृह बन कौन विचार ॥  
प्रेम मगन जे साधवा, विचरत रहत निसंक ।  
हरि रस के माते 'दया', गिनैं राव नहि रंक ॥  
प्रेम भगन जे साध जन, तिन गति कही न जात ।  
रोय रोय गावत हसत, 'दया' अटपटी बात ॥  
हरि रस माते जे रहैं, तिन को मतो अगाध ।  
त्रिमुचन की संपति 'दया' तृन सम जानत साध ॥  
प्रेम मगन गद्गद बचन, पुलकि रोम सब अंग ।  
पुलकि रहो मन रूप में, 'दया' न है चित भंग ॥  
कहूँ धरत पग परत कहूँ, डिगमिगात सब देह ।  
दया मगन हरि रूप में, दिन-दिन अधिक सनेह ॥  
चित चिता हरि रूप बिन, मो मन कछु न सुहाय ।  
हरि हरवित हमकूँ 'दया', कब रे मिलेंगे आय ॥  
केहि विधि रीझत हो प्रभू, का कहि टेरूँ नाथ ।  
लहर महर जवहीं करो, तवहीं होउँ समाथ ॥  
भवजल नदी भयावनी, किस विधि उतरूँ पार ।  
साहिव मेरी अरज है, सुनिये वारम्बार ॥  
पैरत थाको है प्रभू, सूझत वार न पार ।  
महर मौज जवहीं करो, तव पाऊँ दरवार ॥  
कर्म रूप दरियाव से, लीजै मोहि बचाय ।  
चरन कमल तर राखिये, महर जहाज चढ़ाय ॥  
निरपच्छी के पच्छ त्रुम, निराधार के धार ।  
मेरे तुमहीं नाथ इक, जीवन प्रान अधार ॥  
काहूँ वल अप देह को, काहूँ राजहि मान ।  
मोहि भरोसो तेरो ही, दीनवंधु भगवान ॥

हैं गरीब सुन गोविंदा, तुहीं गरीब निवाज ।  
दयादास आधीन के, सदा सुधारन काज ॥  
हैं अनाथ के नाथ त्रुम, नेक निहारो मोहि ।  
दयादास तन है प्रभू, लहर महर की होहि ॥  
नर देही दीन्हों जबै, कीन्हे कोई करार ।  
भक्ति कबूली आदि में, जग में भयो लवार ॥  
कछूँ दोष तुम्हरौ नहीं, हमरी है तकशीर ।  
बीचहिं बीच विवास भयो, पाँच पचिस के भीर ॥  
त्रुम ठाकुर ब्रैलोक पति, ये टग बस करि देहु ।  
दयादास आधीन की, यह बिनती सुनि लेहु ॥  
है पाँचर त्रुम हो प्रभू, अधम उधारन ईस ।  
दयादासपर दया हो, दयासिधु जगदीस ॥  
जेते करम हैं पाप के, मोसे वचे न एक ।  
मेरी और लखों कहा, विरद आपनों देख ॥  
जो जाकी ताकै सरन, ताको ताहि खभार ।  
त्रुम सब जानत नाथ जू, कहा कहैं विस्तार ॥  
नहि संज्ञम नहिं साधना, नहि तीरथ व्रत दान ।  
मात भरोसे रहत है, ज्यों बालक नादान ॥  
लाख चूक सुख से परै, सो कछु तजि नहिं देह ।  
पोष तुम्हुक ले गोद में, दिन दिन दूमों नेह ॥  
तुख तजि सुख की चाह नहिं, नहिं वैकुण्ठ विचान ।  
चरन कमल चित चहत है, मोहि तुम्हारी आन ॥  
वेर वेर चूकत गयों, दीजै गुसा विसार ।  
मिहरवान होइ रावरे, मेरी ओर निहार ॥  
सीस नवै तो तुम्हिं कूँ, तुम्हिं सूँ भालूँ दीन ।  
जो हशगलूँ तो तुम्हिं सूँ, त्रुम चरनन आधीन ॥  
और नजर आवै नहीं, रंक राव का साह ।  
चीरहटा के पंख ज्यों, योदो काम दिखाह ॥  
जगत सनेही जीव है, राम सनेही साध ।  
तन मन धन तजि हरि भजै, जिन का मता अगाध ॥  
कलि केवल संसार में, और न कोउ उपाय ।  
साध संग हरि नाम बिन, मन की लपन न जाय ॥  
जग तजि हरि भजि दया गहि, कूर कपट सब छाँड़ि ।  
हरि सन्मुख गुरु ग्यान गहि, मनहीं सूँ रन मॉड़ि ॥  
सूर्य वहीं सराहिये, बिन सिर लड़त कवंद ।  
लोक लाल कुल कान कूँ, जोड़ि होत है निर्वेद ।  
सब साधन की दास हूँ, मो में नहिं कछु ग्यान ।  
हरिजन ! मो पै दया करि, अपनी लीजै जान ॥

## सहजोबाई

( महात्मा चरणदासजीकी शिखा )

जगत में सुमिल करै, सोवत में लौ जाय ।  
 सहजो इकरस हो रहै, तार दूट नहि जाय ॥  
 सील छिमा दंतोष गहि, पैचो इन्द्री जीत ।  
 राम नाम ले सहजिया, मुक्ति होन की रीत ॥  
 एक बड़ी का मोल ना, दिन का कहा बखान ।  
 सहजो ताहि न लोइये, विना भजन भरवान ॥  
 और लेटे चालते, खान पान ब्यौहार ।  
 जहाँ तहाँ सुमिल करै, सहजो हिये निहार ॥  
 सहजो भज हार नाम कूँ, तजो जगत सूँ नेह ।  
 अपना तो कोइ है नहीं, अपनी सगी न देह ॥  
 जैसे सैद्धांशी लोह की, छिन पानी छिन आग ।  
 ऐसे दुख सुख जगत के, सहजो त् मत पाग ॥  
 अचरज जीवन जगत में, मरियो चाचो जान ।  
 सहजो अधसर जात है, हरि सूँ ना पहिचान ॥  
 दरद बयाय सकै नहीं, मुए न चालै साथ ।  
 सहजो क्योंकर आपने, सब नाते बरंबाद ॥  
 सहजो जीवत सब सरे, मुए निकट नहि जाय ।  
 रोवैं स्वारथ आपने, सुपने देख डराय ॥  
 सहजो फिर पछतायगी, खाल निकसि जब जाय ।  
 जबलग रहै सरीर में, राम सुमिर गुन गाय ॥  
 जग देखत तुम जावगे, तुम देखत जग जाय ।  
 सहजो याही रीति है, मत कर सोन उपाय ॥  
 देह निकट तेरे पड़ी, जीव अमर है नित ।  
 दुइ मैं सूचा कौन सा, का सूँ तेरा हित ॥  
 कल्प रेय पछिताय थक, नेह तजौगे कूर ।  
 पर्हिले ही सूँ जो तजै, सहजो सो जन कूर ॥  
 थामे मुए सो जा चुके, त् भी रहै न कोय ।  
 सहजो पर कूँ क्या चुरै, आपन ही कूँ रोय ॥  
 प्रेम दिवाने जी भगे, मन भयो चकनाचूर ।  
 चुके रहैं घूमत रहैं, सहजो देखि हजूर ॥  
 प्रभुतार कूँ नहत है, प्रभु को चहै न कोय ।  
 अभिमानी भट नीच है, सहजो कॅच न होय ॥  
 भग ठोड़ान मुख महा, धिरय बड़ाई खार ।  
 सहजो नन्हा हूनिये, गुरु के बचन सम्हार ॥  
 अभिमानी नाहर यहो, भरमत फिरत उलाइ ।

सहजो नन्ही बाकरी, प्यार करै संसार ॥  
 नन्ही चीटी भवन में, जहाँ तहाँ रस लेह ।  
 सहजो कुंजर अति बड़ो, सिर में डारै खेह ॥  
 सहजो नन्हा बालका, महल भूप के जाय ।  
 नारी परदा ना करै, गोदहिं गोद खेलय ॥  
 बड़ा न जाने पाइहै, साहिव के दरवार ।  
 द्वारे ही सूँ लागिहै, सहजो मोटी मार ॥  
 भली गरीबी नवनता, सकै नन्ही कोइ मार ।  
 सहजो हई कपास की, काटै ना तरवार ॥  
 साहन कूँ तो भय धना, सहजो निर्भय रंक ।  
 कुंजर के पग बेडियाँ, चीटी फिरै निरंक ॥  
 जगत तरथौ भोर की, सहजो ठहरत नाहिं ।  
 जैसे मोती ओस की, पानी अङ्गुली माहिं ॥  
 धन जोधन मुख सम्हदा, बादर की सी छाहिं ।  
 सहजो आखिर धूप है, चौरासी के माहिं ॥  
 चौरासी जोनी मुगत, पायो मनुष सरीर ।  
 सहजो चूकै भक्ति निनु, फिर चौरासी पीर ॥

पानी कासा बुलबुला, यह तन ऐसा होय ।  
 पीव भिलन की ठानिये, रहिये ना पड़ि सोय ॥  
 रहिये ना पड़ि सोइ, बहुरि नहि मनुखा देही ।  
 आपन ही कूँ खोजु, मिलै तब राम सनेही ॥  
 हरि कूँ भूले जो फिरै, सहजो जीवन छार ।  
 सुखिया जब ही होयगे, सुमिरगो करतार ॥  
 चौरासी भुगती धनी, बहुत तही जम मार ।  
 भरमि फिरे तिहुँ लोक में, लहू न मानी हार ॥  
 लहू न मानी हार, मुक्ति की चाह न कीनही ।  
 हीरा देही पाइ, मोल माटी के दीनही ॥  
 गूरख नर समझै नहीं, समुद्राया वहु कार ।  
 चरनदास कहै सहजिया, सुमिरै ना करतार ॥

हम बलक तुम माव हमारी । पल पल माहिं करो रखवारी ॥  
 निस दिन गोदी ही मेराखो । इत जिस धनन चितावन भालो ॥  
 द्विवै ओर जाने नहि देवो । दुरि दुरि जाऊँ तो महि गहि लेवो ॥  
 मैं अरजान कछु नहि जानूँ । शुरी भली को नहि पहिचारूँ ॥  
 जैसी तैसी तुमर्ही चीन्हेव । गुरु हो ध्यान सिलौना दीन्हेव ॥  
 तुम्हरी रुचा ही से जीऊँ । नाम दुरद्वारे अमृत पीजूँ ॥

दिए तुम्हारी ऊपर मेरे । सदा रहूँ मैं सख्त तेरे ॥  
मारी क्षिडको तो नहि जाऊँ । सरकि सरकि तुम ही पै आऊँ ॥  
चरनदास है सद्गुर दासी । हो रच्छक पूरन अविदासी ॥

अब तुम अपनी ओर निहारो ।

इमेरे औगुन वै नहि जाओ, तुम्हाँ अपना विरद उम्हारो ॥  
छुग छुग साथ तुम्हारी ऐसी, वेद पुरानन गर्वै ।  
पतित उधारन नाम तुम्हारो, यह सुनके भन दृढ़ता आई ॥  
मैं अजान तुम सब कछु जानो, घट घट अंतरामी ।  
मैं तो चरन तुम्हारे लगी, हो किराल दवालहि स्वामी ॥  
हाथ जोरि के अरज करत हैं, अपनाओ गहि आही ।  
द्वार तिहारे आय परी है, पौरुष गुन मेरै कछु नाही ॥

सुमिर सुमिर नर उत्तो पार

भौमागर की तीछन धार ॥

धर्म जहाज माहि चढ़ि लीजै,

सेंभल सेंभल तमें परा दीजै ।

सम करि मन को संघी कीजै,

हरि मारग को लगो धार ॥

बादवान पुनि ताहि चलवै,

पाप भरै तौ इलन न पावै ।

काम क्रोध लूटन को आवै,

साक्षान है करै सेभार ॥

मान पहाड़ी तहाँ अड़त है,

आसा तृष्णा मैंवर पड़त है ।

पाँच भन्छ जहँ चोट करत हैं,

ग्यान औंखि बल चलो निहार ॥

ध्यान धनी का हिरदै धरे,

गुरु किरपा सूँ लड़े किनारे ।

जब देरी बोहित उत्तरे परे,

जन्म मरन दुख विपता दारे ॥

चैथे पद मैं आनंद पावै,  
या जय मैं तू बहुरि न आवै ।  
चरनदास गुरुदेव चितवैं,  
सहजोबाई यही विचार ॥

ऐसो चरंत नहि बार बार । तैं पाई मानुष देव सार  
थह औसर विरथा न खोव । भक्ति चीज हिय धरती वो  
सतसंगत को संच नीर । सतगुरजी सूँ करै सीर  
नीकी बार विचार देव । परन गाव काँ झु सेव  
रखवारी कर हेत लेत । जब तेरी होवै जैत जैत  
खोट कपट पंछी उड़ाव । मोहप्यात सब ही जलव  
समझ वाडी नज़ अंग । ग्रेम-फूल फूलै रंग रंग  
पुष्प गूँथ माला बनाव । आदिपुष्ट कूँजा चढ़ाव  
तो सहजोबाई चरनदास । तेरे मन की पूरे सकल आत

जग मैं कहा कियो तुम आय ।

स्वान जैसो वेट भरिकै, सोयो जन्म गँवाय ॥

पहर पछिले नाहिं जागो, कियो ना दुम कर्म ।

आन मारग जाय लगो, लियो ना गुरुधर्म ॥

जप न कीयो तप न साथो, दियो ना तैं दान ।

बहुत उरझे मोह मद में, आपु कापा मान ॥

देह धर है सौत का रे, आन काढ़े तोहि ।

एक दिन नहिं रहन पावै, कहा कैसे होय ॥

ऐस दिन आराम ना, काटे जो तेरी आव ।

चरनदास कहै सुन सहजिया, करो भजन उपर ॥

बैठि बैठि बहुतक गये, जग तखर वी छैदि ।

सहजो बटाऊ बाट के, मिलि मिलि विद्वुदत जाइ ॥

द्रव्य हेत हरि काँ भजै, धनही की परतीत ।

स्वारथ ले सब सूँ मिलै, अंतर की नहिं प्रीत ॥

### भक्तवर श्रीभट्टजी

(महाकवि केशव काश्मीरीजीके अन्तरक शिष्य और श्रीराधाकृष्णके अन्तरमङ्गल विद्वानी ।)

शताब्दीक लाभा ।

चरन चरन पर लकुट कर धरें कक्ष तर धुंग ।  
मुकट चटक छवि लटकि लखि बने जु लटित त्रिभंग ॥  
दुर्घ संघ और सूल सब जो कछु हैं हिय मैंहि ।  
देखतही मुख दहन को सबै सुखद है जैहि ॥  
वा तुख देखन कों कहौं कीजै कहा उपाय ।  
कहा कहौं केही करैं परी कठिन यह आय ॥

ये लोकन आतुर अधिक उन्हें परी कछु नाहि ।  
जल ते न्यारी मीन व्यां तरफि तरकि अमुखाहि ।  
वा मुख की आसा लगी तजी आस गव लंग ।  
अब जाता हू तजीगी जो न वने गंगोग ।  
कहा करै कादों कहों को वृक्षि कित जाहे ।  
वन ही बन दोलत किरै योखत ले है नाहि ।

जो चन चन बोलत फिरै वाहि मिलन की फेट ।  
अनजाने ही होयगी कहूँ अचानक भेट ॥  
जँचे स्वर से ऐरि के कहों पुकारि पुकारि ।  
श्रीराधा गोविंद हरि रठो बार ही बार ॥  
कोई नाम तौ कर्णपथ कहूँ परेगो जाय ।  
बोलत बोलत बबहूं लो बोलेगे अकुलाय ॥  
हो प्यारी हे प्राणपति अहो प्रेम प्रतिपाल ।  
दुख मोचन रोचन सदा लोचन कमल लिसाल ॥  
हो निकुंज नागरि कुँवरि नव नेही घनस्याम ।  
नयननि मे निसिदिन रहो आहो नैन अभिग्राम ॥  
आहो लडैती लाडिली अलक लडी सुकुमारु ।  
मन हरनी तरनी तनक दिवरावहु सुख चार ॥  
गुननि अगधा राधिका श्रीराधा रसधाम ।  
सब सुख साधा पाइये आधा जाके नाम ॥  
अदो सलोने साँवरे सुंदर सुखद सरूप ।  
मनमोहन मोहन हिये महामोह को रूप ॥  
रतनिधि रसनिधि रूपनिधि अरु निधि परम हुलास ।  
गुन अगार नागर नवल सुखमागर की रास ॥  
अनियारे कारे अरुन कजारे कल बाम ।  
वा चष चाहनि चाह कौ मो चल सदा सकाम ॥  
मोहन मोहन सब कहै मोहन साँचौ नाम ।  
मोहन मोहन के कछु नयों मोहत सब गाम ॥  
जा कारन छाड़ी सबै लोक बेद कुल कानि ।  
सो कबहूँ नहिं भूलि के देत दिखाई आनि ॥  
सदा लटपटी चित बसे समुक्षि सकै नहिं कोइ ।  
कोउ लटपटी हीय में कहत लटपटी होइ ॥  
एक बार तौ आय के नयनन ही मिल जाउ ।  
सौंह भोहि जो साँवरे नेकु यहाँ ठहराउ ॥  
  
अय तो तिहारी मन कठिन भयो है अति  
देखिही यहि दुख देखतै सिरायगौ ।  
जो पै तो तिहारे जीय ऐसी ही बसी है आय  
तुम सों हमारौ कहो कहा धों बसायगौ ॥  
एक बार आय नैक दूर सों दिखाई दै के  
जाउ किरि जौ न यहाँ मन ठहरायगौ ।  
आनाकानी कियें नेक आगें हैं निकसि चलौ  
इतने में तिहारो कहो कहा बढ़ि जायगौ ॥  
रे मन ! बृद्धाविपिन निहार ।  
ज्ञायि मिलैं कोटि वितामनि, तरपि न हाथ पसार ॥

ब्रजमंडल सीमा के बाहर, हरि हूँ को न निहार ।  
जै 'श्रीभट' धूरि-धूसर तन, यह आता उर धार ॥  
सेव्य हमारे श्रीप्रिय प्यारी बृन्दाविपिन विलासी ।  
नंदनाँदन बृषभानुनंदिनी चरन अनन्य उपासी ॥  
मत्त प्रनयनस सदा एकरस विविध निकुंज निवासी ।  
'श्रीभट' जुगलरूप वंसीवट सेवत सब सुखरासी ॥

### दोहा

चरनकमल की दीजिए सेवा सहज रसाल ।  
धर जायो मोहि जानि कै चेरो मदनगुपाल ॥

### ( पद )

मदनगुपाल ! सरन तेरी आयो ।

चरनकमल की सेवा दीजे चेरो करि राखो धरजायो ॥  
धनि-धनि मात, पिता, सुत, वन्धु, धनि जननी जिन गोद दिलायो ॥  
धनि-धनि चरन चलत तीरथ को धनि गुरु जिन हरिनाम सुनायो ॥  
जे नर विमुद भये गोविंद तो जनम अनेक महा दुख पायो ।  
'श्रीभट' के प्रभु दियो अभय-पद जम डरप्यो जब दास कहायो ॥

जाको मन बृद्धावन हरधो ।

निरिलि निकुंज पुंज-छवि राधेकृष्ण नाम उर धरघो ॥  
स्यामास्याम-स्वरूप-सरोवर परि स्वारय विसरयो ।  
श्रीभट राधे रसिकराथ तिन्ह सर्वस दै निवरयो ॥

जय जय बृद्धावन आनेंदमूल ।

नाम लेत पावत छ प्रनयरति जुगल किसोर देत निं कूल ॥  
सरन आय पाए राधाधव मिटी अनेक जन्म की भूल ।  
ऐसेहि जानि बृद्धावन श्रीभट रज पर बारि कोटि मरतूल ॥

### दोहा

आन कहे आनै न उर हरि गुरु सों रति होय ।  
सुखनिधि स्याम-स्याम के पद पावै भूल सोय ॥

### पद

स्याम-स्याम-पद पावै सोई ।

मन-न्त्रन-कम करि सदा निरंतर, हरि-गुरुपद-पंकज रति होई ॥  
नंद-सुवन बृषभानु-सुता-पद, भजै तजै मन आनै जोई ।  
'श्रीभट' अटकि रहे स्यामीपन आन कहै मानै सब थोई ॥

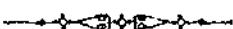
### दोहा

जनम जनम जिन के सदा हम चाकर निषि भोर ।  
त्रिमुदन पोथन सुधाकर ढाकुर जुगलकिसोर ॥

पद

जुगल किसोर हमारे छाकुर ।  
महा भवेदा हम जिन के हैं,  
जनम जनम घरजाये चाकर ॥  
भूक पर्यं परमिहै न कबहूँ,  
सब ही भाँति दया के आकर ।

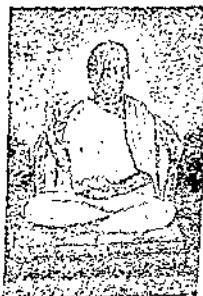
जै श्रीभट्ट प्रगट त्रिसुवन में,  
प्रनतनि पोषत परम सुधाकर ॥  
बसो मेरे नैनम में दर्द चंद ।  
गौवरनि बृषभातुन्दिनी, स्यामवरन नँदनं ॥  
गोलकु रहे लुभाय रूप में, निरखत आनंदकंद ।  
जै श्रीभट्ट प्रेमरसन्बधन, कथों छूटै हड़ फंद ॥



## भक्तवर श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी

( अविर्भाव सं० १३२० के लगभग, जालि ब्राह्मण, जन्मभूमि मथुरा, आचार्य श्रीश्रीभट्टजीके शिष्य । )

मैनन को ल्यहो लीजिये ।  
मोरी स्याम गलेनी जोरी  
मुरस माधुरी पीजिये ॥  
छिन छिन प्राति प्रसुदित नित चाहिं  
निज भावहि में भीजिये ।  
'श्रीहरिप्रिया' निरखि तन, मन, धन  
है न्योदावर कीजिये ॥



दोहा

निरखि निरखि संपति सुखै सहजहि नैन सिराय ।  
जीजतु हैं बलि जाउँ या जग माँही जस गाय ॥

पद

जुगल जस गाय-गाय जीजिये ।  
या जग में बलि जाउँ अहो अब जीवनफल लीजिये ॥  
निरखि-निरखि नैन सुखसंपति सहज सुकृत कीजिये ।  
'श्रीहरिप्रिया' बदन पर पानी चारि-चारि पीजिये ॥

मिलि चलौ मिलि चलौ मिलि चले सुख महा,  
बहुत है विधन जग मगहि माही ।

मिलि चले सकल मंगल मिले संहजहीं,

अनमिलि चले सुख नहिं कदही ॥

मिलि चले होत सो अनमिलि चले कहाँ ?

फूट ते होत हैं फटफटाही ।

'श्रीहरिप्रिया' जूँ को यह परम-पद धावनों,

अतिहि दुर्लभ महा सुलभ नाही ॥

प्रभु आध्यके द्वादश साधन

दोहा

विधि निषेध आदिक जिते कर्म धर्म तजि ताल ।  
प्रभु के आश्रय आवहीं सो कहिये निजदास ॥

पद

जो कोउ प्रसु के आश्रय आवै । सो अन्याश्रय सब छिटकावै ॥  
विधि-निषेध के जे जे धर्म । तिन को त्यागि रहे निष्कर्म ॥  
हठ, ओध, निदा तजि देहीं । विन प्रसाद सुख औरन लेही ॥  
सब जीवन पर करुना राखै । कबहूँ कठोर वचन नहिं भालै ॥  
मन साधुरस साहिं समोक्षै । धरी पहर फल वृथा न लोवै ॥  
सत्तशुर के भारत पग धारै । हरि सत्तशुर विच मेदन पारै ॥  
ए द्वादश लक्ष्म अवगाहै । जे जन परा परमपद चाहै ॥

आध्यके दस सोपान

जाके दस पैदी अति दृढ़ हैं । विन अधिकार कौन तहाँ नहिं ॥  
पहिले सुसिक जननकों सेवै । दूजी दया दृदय धरि लेवै ॥  
तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनिहै । चौथी कथा अनुस है सुनिहै ॥  
पंचमि पद-नक्कज अनुरागै । पठी रूप अधिकता पाएँ ॥  
सप्तमि ब्रेम हिये विरावै । अष्टमि रूप ध्यान गुन गानै ॥  
नौमी दृदता निश्चय गहिहैं । दसमी रस की सत्ता वहिहैं ॥  
या अनुक्रम करि जे अनुसरहीं । शनै-शनै जग ते निरवर्णैं ॥  
परमधाम परिकर मधि बयहीं । 'श्रीहरिप्रिया' हितूँ मैग लगाहीं ॥

दोहा

अमृत जस जुग लाल की या विनु अँची न आने ।  
मेरे रसना करियो करो याही रस की शन ॥

पद

करौ मेरे रसना यहि रम धान ।  
लाड्डी लालम को मधु अमृत ।  
या विन अँची न आने ॥  
याही छक में छके गही दग ।  
अहो निमा उम्मान ।  
मुदित रहै नित 'श्रीहरिप्रिया' की  
गाय-गाय । उगमग ॥

### दोहा

पूरन प्रेम प्रकास के परी पयोनिधि पूरि ।  
जय श्रीराधा रसभरी स्याम सजीवनमूरि ॥  
पद

जय श्रीराधिका रसभरी ।

रसिक सुंदर साँचेरे की प्रानजीवनि-जरी ॥  
गौर अंग-अंग अद्भुत सुरति रंगन रही ।  
सहज-अंग अमंग-जोरी सुभग साँचे ढरी ॥  
परम-प्रेम-प्रकास-पूरन पर-पयोनिधि परी ।  
हितू 'श्रीहरिप्रिया' निरखति निकट निज सहचरी ॥

### दोहा

शुद्ध, सत्त्व, परदृश सो सिखधत नाना भेद ।  
निर्गुन सगुन बलानि के बरनत जाको बेद ॥

### पद

निर्गुन सगुन कहत जिहि बेद ।  
निज इच्छा विस्तारि विविध विधि  
बहु अनवहो दिखावत भेद ॥  
आप अलिम लिस लीला रच  
करत कोटि ब्रह्मण्ड विलास ।  
शुद्ध, सत्त्व, पर के परमेशुर  
जुगलकिशोर सकल सुख रास ॥

अनंत-सक्ति आधीस अन्तिक  
ऐश्वर्यादि अविल गुम्भाग ।  
सब कारन के कर्ता धर्ता  
नित नैमित्य नियंता स्याम ॥  
सकल लोक चूडामनि जोरी  
धोरी रस माधुर्य असेय ।  
कोटि-कोटि कंदर्प दर्पदल-  
मलन मनोहर विसद सुनेय ॥  
पारावरादि असत-सत-स्वामी  
निरवधि नामी गामनिकाय ।  
नित्य-सिद्ध सबोपरि 'हरि-प्रिया'  
सब सुखदायक सहज सुभास ॥

### दोहा

तिहि समान बड़भग को सो सब के शिरमौर ।  
मन वच, क्रम सर्वस सदा जिन के जुगलकिशोर ॥

### पद

जिन के सर्वस जुगलकिशोर ।  
तिहि समान अस को बड़भागी गनि सब के रिसमौर ।  
नित्य विहार निरंतर जाको करत पान निसिभोर ।  
'श्रीहरिप्रिया' निहस्त छिन-छिन चितथ चत्वन की कोर ॥

## तेजस्वी संत श्रीपरशुरामदेवजी

( जन्मस्थान जयपुर-राज्यान्तर्गत कोई ग्राम । जन्मकाल १६वीं शताब्दी । शुरु श्रीहरिप्रिया-सदेवजी )

साँच छूठ नहि राचहीं,  
छूठो मिलै न साँच ।  
छूडे छूठ समायगो,  
साँचो मिलिहै साँच ॥  
परसा, तब मन निर्मला  
लीजै हरिजल धोय ।  
हरि सुमिरन विन आत्मा  
निर्मल कभी न होय ॥  
साँचो सीझै भव तरै हरि पुर आइ नाहि ।  
परसुराम छूठो दहै बूढ़े भव जल माहि ॥  
साधु समागम सत्य करि करै कलंक दिछोह ।  
परसुराम पारस परसि भयो कनक दयो लोह ॥  
परसुराम सतमंग सुख और सकल दुख जान ।  
निर्वैरी निरमल सदा सुमिरन सील पिछान ॥



परसुराम साहिव भलै  
सुनै सकल की बात ।  
दुरै न काहु की कभू  
लखै लखी नहि जात ॥  
सुख दुख जन्महि भरन को  
कहै सुनै कोउ बीस ।  
परसा जीव न जानहीं  
सब जानै जगदीस ॥  
परसुराम जलविंदु ते जिन हरि दीनैं दान ।  
सो जाने गति जीव की हरि गति जीव न जान ॥  
दिष्टक दीखै विनसतो अविनासी हरि नाउँ ।  
सो हरि भजिये हेत करि परसुराम बल जाउँ ॥  
सर्व सिद्धिकी सिद्धि हरि सब साधन को मूल ।  
सर्व सिद्धि सिद्धार्थ हरि सिद्धिविना सब स्थूल ॥

रथ की पाले पोप दे सब को सिरजनहार ।  
परमा सो न विसारिये हरि भज बारंबार ॥  
परमा जिन पैदा किये ताकी सदा सम्हारि ।  
गित पोपे रक्षा करे हरि पीतम न विसारि ॥  
जे हरि ! जानै आप कीं तौ जानी भल लाभ ।  
परमा हरि जानी नहीं तौ अति भई अलाम ॥  
परमराम हरि भजन सुख भेव न कछू अभेव ।  
सब काहू कीं एक सौ जेहि भावै सो लेव ॥

हरि सौं प्रेम नेम जो रहिहैं ।  
तौ कहा जा उपराम प्रीति ते  
सरै कहा कोऊ कछु कहिहैं ॥  
हरि निज रूप अमृप अभैवर  
सुखम भयो ऐसौ सुख जहिहैं ।  
परम पवित्र पवित्र पवन जत  
सो तजि कौन स्वर्ग चहि ढहिहैं ॥  
पवित्र गयौ तौ रह्यौ नहीं कछु,  
यां बड़ हानि जानि को सहिहैं ।  
कौन पवित्र पवि कौ बत परिहरि  
भ्रमि संसार धारमै बहिहैं ॥  
आन उपसन करि पवि परिहरि  
धूम सोभा ऐसौ जो महि है ।  
तजि पारस पाषाण बाँधि उर  
बसि घर में घर कीं को दहिहैं ॥  
हरि सुख सिंहु अपर ग्रगट जस  
सोइ सुमिरि सुनि करि जस लहिहैं ।  
‘परसुराम’ निराह समझि यह  
तजि हरि सिंह स्वान को खहिहैं ॥

हरि सुमिरन करिए निसतरिए ।  
हरि सुमिरन विन पार न परिए ॥  
हरि सुमिरै सोई हरि भावी ।  
हरि न भजै सोइ आतम घावी ॥  
हरि सुमिरै हरि कौं हितकारी ।  
हरि न भजै सोई व्यभिचारी ॥  
हरि सुमिरै सेवक सुखनामी ।  
हरि न भजै सोइ लोनहरामी ॥  
‘परसा’ हरि सुमिरै हरि तोवी ।  
हरि न भजै सोई हरि दोवी ॥

हरि सुमिरन विन तन मन झूँडा ।  
जैसे फिरत पद्म सर सूकर उदर भरत इदिन भ्रमि कू  
अकरम कर्म करत दुख देखत, मध्यम जीव जगत का लू  
निर्धन मये स्वाम धन हार्यौ, माया मोह विषै मिलि गू  
हरि सुमिरन अरमरथ पति विन, जमपुर जात न कित अू  
‘परसुराम’ तिन सौं का कहिये, जो पारबहा प्रीतम सौं रु

हरि परिहरि भरमत महि मेरी ।  
कहत पुकारि दुरावत नाहिन, यह तौ प्रगट फिरत नहिं के  
श्रीगुरु सब्द न मानत कबहूँ, उमयि चलत अपनी हरि है;  
तजि निज रूप विषय भन उरझत, हित सौंचहि घूँडन की वेर  
नाहिन संक करत काहू कीं चरत निसंक कूप हैं ते  
‘परसा’ छिटकि परी भव जल में, अब कैरैं पैयत छो है

मनुज ! मनमोहन गाय रे ।  
अति आतुर होय के हरि हरि, सुमिरि सुमिरि सुख पाय  
हरि सुख सिंधु भजत भजताँ, सुनि तब दुख दोत दुराय  
यौ औसर फिरि मिलै न मिलै, तौ भजि लीजै हरि सय  
पवित्र पवित्र पावन करि कैं, जमपुर ते लैहि बुलाय  
यह हरि शति समुद्दिन सुनि चिल करि भज भन विनेन न याय  
करि आरति हित सौं हरि सन्मुख, सक्यौ न सीम न याय  
जनमि जनमि जमदार निरादर बारंबार विकाय  
अति संकट बूढ़त भव जल में अंत न और महाय  
तोहि और हरि परम हित दिन दो राहैं अपनाय

जग पंडित सुवापल छव्याति, हरि विन गये दिमाय  
अति बलवंत न बदत और कीं, काल सबन कीं साय रे  
पाहौ नर औतार विगारयौ, कहा कियों यहाँ आय  
करि न सक्यौ हारि बनिज अचेतन ! चाल्यौ जनम टायाय  
हरि सेवा सुमिरन विन जाकौ, तन मन वादि विलाय  
‘परसुराम’ प्रभु विन नर निफल, वहि गयो वस्तु गमाय

कहा सरयौ नंसाह रूप हैं, भूति भूष बदाँ  
जीवन जनम गयौ दुख महि, हरि गुप भिंधु न पा  
वेर उपान बुन्धौ सब सीजौ, गायौ गाय मुताँ  
मेटि न सक्यौ कर्म मन तम हैं, हरि निलकर्म न गाय  
कियौ करायौ सवै गंवायौ, जो हरि मन न याय  
तन के दोप मिँट क्यौं ‘परसा’ हरि मन मार्दि न थाँ

सखी ! हरि परम मंगल गाय ।  
आज तेरे भवन आये अकल अशिगद ग

लोक वेद प्रजात कुल की कानि बानि बहाय ।  
परम पद निस्तान निर्मय प्रगट होय बजाय ॥  
उमभि सन्मुख अंक भरि भरि भैठि कंठ लगाय ।  
बिलसि सुखनिधि नेम धरि सखि प्रेम सौं लौ लाय ॥  
वारि तन मन प्रान धन कड़ु राखिये न दुराय ।  
'परसा' प्रभु को सौंपि सर्वत सरन रहि सुख पाय ॥

हरि-हरि सुमिरि न कोई हारयौ ॥  
जिन सुमिरयौ तिनहीं गति पाई राखि सरन अपनीं निस्तारयौ ॥  
कौरव सभा सकल नृप देवत सती विपति पति गाहिं संभारयौ ॥  
हाहाकार सब्द सुनि संकट तिहि औसर प्रभु प्रगट पधारयौ ॥  
हरि सौं समरथ और न कोई महापतित कौं दुख टारयौ ॥

दीनानाथ अनाथ निवाजन भगतबछल जु विरद जिन धारयौ ।  
'परसुराम' प्रभु मिटै न कबहूँ साखि निगम प्रहाद पुकारयौ ॥  
जब कबहूँ मन हरि भजै तवहि जाह छूटै;  
नातरि जग जंजाल ते कबहूँ न निधूटै ।  
काम कोष मद लोभ सौं बैरी सिर कूटै;  
हरि बिन माया मोह कौं तंतू नहि दूटै ॥  
हरष सोक संताप ते निज नेह न खूटै;  
हरि निर्मल नीर न ठाहरै मन बारुनि फूटै ।  
सोच मोह संसै सदा सर्पन ज्यों चूटै;  
'परसा' प्रभु बिन जीव कौं दुख सुख मिलि लटै ॥

## श्रीरूपरसिकदेवजी

( श्रीनिमाकंसन्प्रदायके महान् भगवद्गत । आपके परिचयके विषयमें विशेष जाते उपरब्ध नहीं होतीं । अनुमानसे इनका स्थिति-  
ज्ञाल लगभग विं की चौदहवीं शती माल्यम होता है । )

नैक विलोकि री ! इक बार ।  
ओ तूँ प्रीति करन की गाहक मोहन हैं रिझार ॥  
महारूप की रासि नागरी नागर नंदकुमार ।  
हाव, भाव, लीला ललचौहीं लालन नवल विहार ॥  
मोहि भरोसौ स्यामसुंदर कौं करि राख्यौ निरधार ।  
नैक एक घल जो अभिलाखैं रूपरसिक बलिहार ॥

नैना प्रकृति गही थह न्यारी ।  
जाचत जे लै स्याम स्वरूपहि बन बन विकल महा री ॥  
अटके नैक न रहे लालचीं सीख दये सब हारी ।  
रूपरसिक दरसै मनमोहन तवहीं होय सुखारी ॥

कहा तैं जग मैं आय कियौ रे ।  
श्रीभासौत सुधारस गटक्यौ श्वन पुटा न पियौ रे ॥  
नर तन रतन जतन बहु पायौ व्यर्थहि खोय दियौ रे ।  
ताको सठ तोहि सोच न आयौ धूक है तेरौ नियौ रे ॥  
क्यों नहि रही चाँझ जननी थह जिहि धरि उदर लियौ रे ।  
रूपरसिकहीं कष्ट होत है, देखि तिहारौ हियौ रे ॥  
'रूपरसिक' संसार मैं कोउ न अपनौ जान ।  
एक दोय की कहा चली सबही स्वप्न समान ॥

मलौ कहै रीझै नहीं बुरै कहै न लिजंत ।  
'रूपरसिक' सोइ जानिये आँदरूपी संत ॥  
हरिजन निरंगि न हरषत हिए ।  
ते नर अधम महा पालंडी,  
धूक धूक है जग जिन के जिए ॥  
मुख मीठे अमृत गर गटके,  
द्वद्य कूर ना छिए ।  
क्यों नहि मार पैर तिन के सिर,  
जिन की ऐसी कुटिल धिए ॥  
स्वाँग पहरि स्वकिया को सुंदरि,  
लक्ष प्रत्यक्ष पोषत परकिये ।  
रूपरसिक ऐसे चिमुखन कौं,  
कुम्भीपाक नरक नाखिए ॥  
हो प्रभु ! छमा करै मम खोट ।  
मैं नहि जान्यौ त्रिसुखनायक, धोय तिहारैं ओट ॥  
शूलत हैं संसार-समुद्र मैं वैर्धि कर्म कौं, पोट ।  
तिन कौं कहा दोय प्रभु दीजै महामूढ मति छोट ॥  
सुरपति कौं कौंपत मुख आगे, देख्यौ ब्रजपति धोट ।  
'रूपरसिक' प्रभु मया करी महा, परम दया के कोट ॥

## स्वामी श्रीहरिदासजी

( भगवन्नन—हरिदासपुर ( जिला अलीगढ़ ); जन्म—संवत् १५६९, पौप शुक्ल १३ भग्वार; पिताका नाम—श्रीआशुधीर्जी, नाम—नम—गरामेधी; जाति—ब्राह्मण; अन्तसमय—संवत् १६६४ । )

हरि भजि, हरि भजि  
ठाँड़ि मान नर तन कौं ।  
मति बैठे, मति बैठे रे  
तिल तिल धन कौं ॥  
अनमाँग्यौ आगै आवैगो  
ज्यौं पल लागै पल कौं ।  
कहि(श्री)हरिदास भीच ज्यौं आचै  
ल्यौं धन है आपुन कौं ॥

महो मन सब रस कौं रस सार ।  
वेद कुल करमै तजिये, भजिये नित्य विहार ॥  
कागिनि कंचन धन स्यागौ, सुमित्री स्याम उदार ।  
हरिदास रीति संतन की, गादी कौं अधिकार ॥  
ज्यौंहीं ज्यौंहीं तुम राखत है,  
त्यौंहीं त्यौंहीं रहियतु हो हरि ।  
और अचरन्ते पाइ धरौं, सु तौ  
कहौं कौन के पैदूं भरि ॥  
जदपि हैं अपनों भायौं कियौं चाहौं,  
सु तौं कैसे करि सकौं, जो तुम राखो पकरि ।

कह 'हरिदास' पिजरा के जनावर लैं,  
तरफराइ रहौं उड़िवे कौं कितौड़ करि ॥

तिनका वियारि के बस ।  
ज्यों भावै, त्यों उड़ाइ, लै जाइ अपने रस ॥

ब्रह्मलोक सिवलोक और लोक अस ।

कहि 'हरिदास' विचारि देख्यौ बिना विहारी नाहि जस ॥  
हरि के नाम कौं आलस क्यौं, करत हैरे काल फिरत सर सँधैं ।  
हीरा बहुत जबाहर संचे, कहा भयो हस्ती दर वाँधैं ।  
बेर कुबेर कछू नहिं जानत, चढ़ौं फिरत है काँधैं ।  
कह 'हरिदास' कछू न चलत जब आवत अंत की आँधैं ॥  
मन लगाइ प्रीत कीजै करवा सौं, (ब्रज) बीथिनदीजै सोहनी ।  
बृंदावन सौं बन-उपवन सौं, गुंजमाल कर पोहनी ।  
गो-गोखुतनि सौं मृग छुतन सौं और तन नैकु न जोहनी ।  
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारीसौं, चित ज्यौंपिरपर दोहनी  
जौलौं जीवै तौलौं हरि भजु रे मन, और बात भन बादि ।  
द्यौस चारि के हला भला में तैं कहा लेहगो लादि ।  
माया मद गुन मद जोवन मद भूल्यौ नगर विचादि ।  
कह (श्री) हरिदास लोभ चरपट भमौ, काहे की लाँगे फिरादि ॥

## श्रीवृन्दावनदेवजी

( श्रीनिष्ठार्क-सम्प्रदायके आचार्य श्रीनारायणदेवजीके प्रमुख शिष्य—स्थितिकाल वि० सं० की १८ वीं शती । दीश्वाल सं०  
वि० के लगभग, जाति गौड ब्राह्मणकुल । इनके द्वारा निर्मित समस्त वाणी वृन्दावन एवं सलेमायादमें सुरक्षित है । )

### वानी

प्रेम को रुप सु इहै कहावै ।  
तम के सुख सुख अपनो दुख  
वाहिर होत न नेक लखावै ॥  
रजन वरजन तरजन ज्यौं-ज्यौं  
त्यौं-त्यौं रति नित-नित अधिकावै ।  
रजन धर-धर करत विनिदन  
चंदन सम सीतल खोउ भावै ॥  
क ओटहूं कोटि वरस के  
छिनक ओटि सुख कोटि जनावै ।

'वृन्दावन' प्रभु नेहीं की गति  
देही त्यागि धरै सोइ यावै ॥

नेह निगोड़े को पैंडो ही न्यारौ ।  
जो कोइ होय के आँधी नहै

सु लहै प्रियवसु नहैया उजारौ ॥  
सो तो इतै उत भूचौ फिरै

न लहै कछु जो काउ दोय आँखारौ ।  
'वृन्दावन' सोइ याको पथिक है,

जापै कृष्ण दरै कान्दर धारौ ॥

## आचार्य श्रीहितहरिविंश महाप्रभु

( राधावल्लभीय सिद्धान्तके प्रवर्तक और महान् भक्तकवि, अविर्भान-संवत् १५३०, किसी-किसीके मतानुसार सं० १५५९, पिताका नाम केशदास मिश्र ( उपनाम व्यासजी ), माताका नाम तारावती, जन्मस्थान 'बाद' आम ( मथुरा ), तिरोभाव अनुनानतः सं० १६०९ या १६१० । )

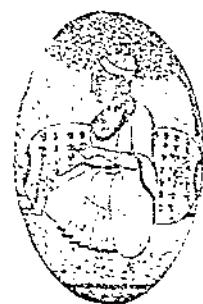


जोई जोई प्यारो करै  
सोई मोहि भावै ।  
भावै मोहि जोई सोई  
सोई करै प्यारे ॥  
मोकों तो भावति ठौर  
प्यारे के नैनन में ।  
प्यारे भये चाहैं मेरे नैनन के तरे ॥  
मेरे तन मन ग्रानहूँ ते प्रीतम प्रिय आपने ।  
कोटिक परान प्रीतम मोसों हारे ॥  
जै श्री हितहरिविंश हंस हंसिनी स्यामल गौर ।  
कहौं कौन करै जल तरंगिनी न्यारे ॥  
  
तातै भैया मेरी सौं, कृष्णगुन संचु ॥  
कुत्सित बाद विकारहि परधनु सुनु सिख परतिय बंचु ।  
मनि गुन पुंज जु ब्रजपति छाँड़त हित हरिविंश सुकर गहि कंचु ॥  
पायो जानि जगत मैं सब जन कपटी कुटिल कलिजुगी टंचु ।  
इहि पर लोक सकल सुख पावत, मेरी सौंह कृष्ण गुन संचु ॥  
  
मानुष कौं तन पाइ भजौ ब्रजनाथ कौं ।  
दर्दीं लै कैं मूढ़ जराकत हाथ कौं ॥  
हित हरिविंश प्रपञ्च विषयरस मोह के ।  
विनु कंचन क्यों चलैं पच्चीसा लोह के ॥

( ब्रजमण्डलके प्रसिद्ध भक्तकवि, ओरछाके सनाध्य ब्राह्मण । जन्म-सं० १५६७, वचपनका नाम श्रीहरिरामजी । पिताका नाम सुखोमनि शर्मा । )

### वानी

हरि दासन के निकट न आवत  
प्रेत वितर जमदूत ।  
जोगी भोगी संन्मासी अरु  
पंडित सुंडित भूत ॥  
प्रह गन्नेस सुरेत सिवा सिव  
उर करि भागत भूत ।



६० शा० अ० ३६—

### दोहा

तनहि राख सत्संग मैं, मनहि प्रेमरस भेव ।  
सुख चाहत हरिविंश हित कृष्ण-कल्पतरु सेव ॥  
निकसि कुंज ठाड़े भये, भुजा परस्पर अंस ।  
राधावल्लभ मुख कमल, निरस्त हित हरिविंश ॥  
सबसौं हित निहकाम मन, बृंदावन विश्राम ।  
राधावल्लभलाल कौं हृदय ध्यान, मुख नाम ॥  
रसना कटौ जु अनर्टौ, निरसि अन झुटौ नैन ।  
सबन कुटौ जो अन सुनौ, विनु राधा जसु बैन ॥  
ते भाजन कृत जटिल बिमल चंदन कृत इंधन ।  
अमृत पूरि तिहि मध्य करत सरषप बल रिधन ॥  
अद्भुत धर पर करत कष्ट कंचन हल ब्राह्मत ।  
वारि करत पावारि मंद ! बोवन विष चाहत ॥  
हितहरिविंश विचारि कै, यह मनुज देह गुरु चरन गाहि ।  
सकहि तो सब परमंच तजि, श्रीकृष्ण कृष्ण गोविंद कहि ॥  
  
मोहन लाल के रँग राची ।  
मेरे ख्याल परौ जिन कोऊ, बात दसौं दिसि माची ॥  
कंत अनंत करो किनि कोऊ, नाहि धारना साँची ।  
यह जिय जाहु भले सिर ऊपर, हौं तु प्रगट है नाची ।  
जाग्रत सयन रहत ऊपर मनि ज्यों कंचन सँग पाँची ।  
हितहरिविंश डरौं काके डर, हौं नाहिन मति काँची ॥

### संत श्रीव्यासदासजी

सिधि निधि विधि नियेव हरिनामहि डरपत रहत कपूत ॥  
सुख दुख पाप पुन्य मायामय ईति भीति आकृत ।  
'व्यास' आस तजि सब क्वी भजिए ब्रज वसि भगत सपूत ॥  
  
ऐसैं ही वसिये ब्रज वीथिन ।  
साधुन के पनवारे :  
घूरन मैं के वीन  
कुंज कुंज प्रति लों

नितप्रति दूरग स्थाग स्थामा की, नित जमुना जल पीतन ।  
ऐसेहि व्याप्ति देख तन पायन, ऐसेहि मिलत अतीतन ॥

जैये कीन के अब धार ।

जो भिय धाय प्रीति काहू के दृव सहिये सौ चार ॥  
भर घर राजग लाम्ब बाढ़ी, धन जोवन की गार ।  
काम नितन द्वे दान देत, नीचन कों होत उदार ॥  
नामु न यशस, वात न वृक्षस, ये कलि के व्यौहार ।  
'व्यासदास' नृत भाव उचारिये, परिये माँझीधार ॥

कहा कहा नहि सहस सरीर ।

स्थाग भरन विनु, घरम सहाइ न, जनम मरन की धीर ॥  
कशनावंत नामु संगति विनु, मनहि देय को धीर ।  
भक्त भागवत विनु को मेटै, सुख दै दुख की भीर ॥  
विनु अपराध चहूँ दिसि वरसत, पिसुन वचन अति तीर ।  
कृष्ण-कृपा कवची तें उवरै, पवै तत्रहीं सीर ॥  
नेतहु भैया, वेगि वढ़ी कलि-काल-नदी गम्भीर ।  
'व्यास' वचन बलि वृद्धवन चसि, सेवहु कुंज कुटीर ॥

भजौ सुत, सौन्ने स्थाम पिताहि ।

जाके सरन जातहीं मिटिहै, दारून दुख की दाहि ॥  
कृपावंत भगवंत सुनै मै, छिन छाँड़ी जिनि ताहि ।  
तेरे सकल मनोरथ पूँजै, जो मथुरा लौ जाहि ॥  
वे गोपाल दयाल, दीन दूँ, करिहै कृपा निशाहि ।  
और न ठौर अनाथ दुखिन कों, मैं देख्यौं जग भाहि ॥  
करना वचनालय की महिमा, मो पै कही न जाहि ।  
'व्यासदास' के प्रसु को सेवत, हारि मई कहु कहाहि ॥

मुने न देखे भक्त मिखारी ।

तिन के दाम काम कौ लोम न, जिन के कुंजविहारी ॥  
सुक नारद अह सिव सनकादिक, ये अनुरागी भारी ।  
तिन कौ भत भागवत न समूझै, सब की बुधि पन्चि हारी ॥

### श्रीधुवदासजी

(गोकर्णी श्रीहितहरिवंशजीके स्तम्भशिष्य । रचना-कालसे अनुमानतः इनका जन्म वि० सं० १६५० के आसपास हुआ होगा ।  
देवहवसान वि० सं० १७४० के सनीय । स्थान—वृद्धवन )

जिन नहि समुद्दै प्रेम यह, तिनसों कौन अल्प ।

दाहुर हूँ जल में रहै, जानै मीन मिलाप ॥

सात पान छुव चाहत अपने ।

तिन को प्रेम छुवत नहि उपने ॥

रुना इंद्री दोऊ बैरित, जिन की अन्यारी  
करि आहार विहार परस्पर, वैर करत विभिन्नारी  
विपविनि की परतीति न हरि सों, प्रीति रीति बीजारी  
'व्यास' आस सागर में बूँदैं, आई भक्ति विसारी

जो सुख होत मक्त धर आये ।

सो सुख होत नहीं बहु संपत्ति, बाँझहि बेदा जाये ।  
जो सुख होत भक्त चरनोदक, पीवत गात लगाये ।  
सो सुख अति सपनेहुँ नहि पैयतु, कोटिक तीरथ न्हाये ॥  
जो सुख कबहुँ न पैयतु पितु धर, सुत कौ पूत विलाये ।  
सो सुख होत भक्त वचननि सुनि, नैननि नीर वहाये ॥  
जो सुख होत मिलत साधुन सों, छिन छिन रंग बढ़ाये ।  
सो सुख होत न नैकु 'व्यास' कों, लंक सुमेरहुँ पाये ॥

हरि विनु को अपनो संसार ।

माया मोह बँध्यौ जग बूँडत, काल नदी की धार ॥  
जैसे संशष्ट होत नाव मैं, रहत न पैले पार ।  
सुत संपत्ति दारा सों ऐसे, विद्धुरत लगै न चार ॥  
जैसे सपने रंक पाय निधि, जाने कहु न सार ।  
ऐसे छिनमेयुर देही को, गरवत कहा गँवार ॥  
जैसे अँधेरे टेकत डोलत, गनत न खाए पनार ।  
ऐसे 'व्यास' बहुत उपदेसे, सुनि सुनि गये न पार ॥

जो पै हरि की भक्ति न सजी ॥

जीवत हूँ ते मुतक भये अपराधी जननी लाजी ।  
जोग जग्य तीरथ ब्रत जप तप सब स्वारथ की वाजी ॥  
पीडित धर धर भटकत डोलत पंडित मुंडित वाजी ।  
पुन्र कलन सजन की देही गीध स्वान की साजी ।  
दीत गये तीनों पन कपटी लज न तृणा भाजी ।  
'व्यास' निरास भयौ याही तें कृष्णनसन रति राजी ॥  
'व्यास' बडाई लोक की, कूकर की पहिचान ।  
प्रीति करैं सुख चाटहीं, वैर करैं तनु हानि ॥

जो या प्रेम हिंदोरे शुद्धे ।

ताको और सबै सुख भूमि ॥

प्रेम रससव चाल्यौ जघानी ।

और न रंग चर्चे 'धूम' नक्ष ॥

या रस में जब मन परै आई ।  
मैंन नीर की गति है जाई ॥  
निसि दिन ताहि न कछू सुहाई ।  
प्रीतम के रस रहै समाई ॥  
जाकौ जासौ है मन मान्यौ ।  
सो है ताके हाथ विकान्यौ ॥  
अरु ताके ऊँग सँग की बातें ।  
प्यारी सब लागति तिहि नातें ॥  
रुचै सोइ जो ताकों भावै ।  
ऐसी नेह की रीति कहावै ॥

### खोरडा

तृन सम जब है जाहिं, प्रभुता सुख वैलोक के ।  
यह आवै मन माहिं, उपजै रंचक प्रेम तय ॥  
भक्तन सों आभिमान, प्रभुता भए न कीजिए ।  
मन वच निहचैजान, इहि सम नहि अपराध कछु ॥  
चलत रहै दिन-रैन, प्रेम-वारि-धारा नयन ।  
जाग्रत अरु सुख-सैन, चितै-चितै विवि कुँवर-छवि ॥

### दोहा

निदा भक्तनि की करै, सुनत जैन अघरसि ।  
वे तो एकै संग दोउ, वँधत भानुसुत पासि ॥  
दुरलभ मानुष जनम है, पैयतु केहू भाँति ।  
सोइ देखौ कौन विधि, वादि भजन विनु जाति ॥  
निसि वासर मग करतली, लिये काल कर बाहि ।  
कागद सम भइ आयु तव, छिन छिन कतरत ताहि ॥  
जिहि तन कोंसुर आदि सद, यांछत है दिन आहि ।  
सो पाये मतिहीन है, वृथा गँवावत ताहि ॥  
रे मन, प्रभुता काल की, करहु जतन है ज्यों न ?  
तँ पिरि भजन कुठार लों, काटत ताही क्यों न ॥  
पुरुष सोइ जो पुरिष सम, छाँडि भजै संसार ।  
विजन भजन दृढ़ गहि रहै, तजि कुदुम्य परिवार ॥

### श्रीहठीजी

( भस्तित्वकाल विक्रमकी १० वी सर्वी, श्रीदिल्लुलदे अनुयायी और भक्तकवि )

कोऊ उमागज, रमारज, जगाराज कोऊ,  
कोऊ रामनंद सुखकंद नाम नाथे मैं ।  
कोऊ ध्यावै गनपति, फनपति, सुरपति,  
कोऊ देव ध्याय कल लेत पल आधे मैं ॥

सुख मैं सुमिरे नाहि जो, राधावल्लभ लाल ।  
तथ कैसे सुख कहि सकत, चलत प्रान तिहि काल ॥  
कैसेहूँ हरि-नाम लै, खेलत हँसत अजान ।  
ऐसेहूँ कों देत हैं, उच्चम गति भगवान ॥  
जो कोउ साँची प्रीति सौं, हरि-हरि कहत लडाय ।  
तिन को ध्रुव कहा देहिंगे, यह जानी नहि जाय ॥  
इष मिलै अरु मन मिलै, मिलै भजन की रीति ।  
मिलिये 'ध्रुव' निःसंक है, कीजै तिन सौं प्रीति ॥  
रे मन ! चंचल तजि विसै, ढरो भजन की ओर ।  
छाँडि कुमति अब सुमति गहि, भजि लै नवलकिसोर ॥  
मन है नीके समुझि कै, सुनिये तिन की बात ।  
जिन कें लुगल-विहार की, आत चलै दिन-रात ॥  
जेहि सुख सम नहि और सुख, सुख की गति कहै कौन ।  
बारि डारि 'ध्रुव' प्रेम पर, राज चतुर्दस भौन ॥  
बहु बीती, योरी रही, सोइ बीती जाइ ।  
'हित ध्रुव' देखि विचारि कैं, वसि वृदावन आइ ॥  
बणि वृदावन आइ, लाज तजि कैं अभिमानहि ।  
प्रेम लीन है दीन, आप कों तृन सम जानहि ॥  
सकल सार कौ सार, भजन तँ करि रस रीति ।  
रे मन, सोच विचार, रही योरी, बहु बीती ॥  
हम को सुमेर दान, रतन अनेक दान,  
गजदान, अगदान, भूमिदान करहीं ।  
मोतिन के तुलादान, मकर प्रयाप न्दान,  
ग्रहन मैं कासी दान, चित्त सुद्ध धरहीं ॥  
सेजदान, कन्यादान, कुरुक्षेत्र गजदान,  
इत मैं पापन को नेकहूँ न हरहीं ।  
कृष्ण केसरी को नाम एक बार लीन्हे 'ध्रुव'  
पापी तिहुँ लोकन के छिनहि माहि तरहीं ॥

'हठी'को अधार निराधार की अधार तुही,  
जप तप जोग जय कुद्धै न साधे मैं ।  
कटै कोटि वाधे मुनि धरत समाधे ऐसे,  
राधे पद रावरे सदा ही अवराधे मैं ॥

गिरि कीजै गोधन, मशूर नव कुंजन कौ,  
पसु कीजै महाराज नंद के बगर कौ।  
नर कौन ? तौन, जौन 'राधे राधे' नाम रटै,  
ठट कीजै वर कूल कालिदी कगर कौ ॥  
इतने पै जोई कछु कीजिए कुँबर कान्ह,  
राखिए न आन केर 'हठी' के झगर कौ।  
गोपी पद पंकज पराग कीजै महाराज !  
तून कीजै रावरेई गोकुलनगर कौ ॥

नवनीत गुलाव ते कोमल हैं, 'हठी' कंज की मंजुलता इन में ।  
गुललाला गुलाल प्रवाल जपा छावि, ऐसी न देखी ललाइन में ॥  
मुनि मानस मंदिर मध्य बसें, बस होत हैं सूखे सुभाइन में ।  
रहुरे मन, तू चित चाइन सों, वृषभानुकुमारि के पाइन में ॥

सुर-रखवारी सुरराज-रखवारी सुक-  
सम्भु-रखवारी रवि-चंद-रखवारी है ।

रिषि-रखवारी विधि-वेद-रखवारी, करी  
जाने रानी कीरति की कीरति सुभारी है ॥  
दिग-रखवारी दिगपाल-रखवारी लोक-  
थोक-रखवारी गावै धराधरधारी है ।  
ब्रज-रखवारी ब्रजराज-रखवारी 'हठी'  
जन-रखवारी वृषभान की दुलारी है ॥

### दोहा

कीरति कीरति कुमरि की, कहि-कहि थके गनेस ।  
दससतमुख वरनन करत, पार न पावत सेस ॥  
अज सिव यिद्ध सुरेस मुख जपत रहत बसु जाम ।  
बाधा जन की हरत है, राधा-राधा नाम ॥  
राधा-राधा जे कहैं, ते न परैं भव-फंद ।  
जासु कंध पर कमल-कर, धरे रहत ब्रजचंद ॥  
राधा-राधा कहत हैं, जे नर आठौं जाम ।  
ते भव-सिंधु उलंघि कै, बसत सदा ब्रजधाम ॥

## राधावल्लभीय संत श्रीचतुर्भुजदासजी महाराज

### भजनका महत्व

हरि चरननि भजि और न धावै ।  
ताको जस हरि आपुन गावै ॥  
जै लगि कनक कामिनी भावै ।  
तौ लगि कृष्ण उर साहिं न आवै ॥  
धरम सोई जो धरम गमावै ।  
साधन सो, हरि सो रति लावै ॥  
लो हरि भजहि तो होइ महासुख ।  
नातरु जम-वस है सत-गुन दुख ॥

### वर्ताव

कर्कश वचन हृदौ छूवै न कहिजै ।  
बध समान सो पातक लहिजै ॥  
त्रिनु ते तन नीचौ अति कीजै ।  
होइ अमान मान तिहि दीजै ॥  
सहन सुभाव बृच्छ कौ-सौ करि ।  
रसना सदाँ कहत रहियै हरि ॥  
परत्रिय तौ माता करि जानै ।  
लोह समान कनक उनमानै ॥  
तूनहि अदि चोरी नहि करिये ।  
आपु समान जीव सब धरिये ॥

### मंदिरमें भगवान्के सामने कैसे रहे ?

सावधान हरि सद्वन सिघारै ।  
करै नहीं अपराध विचारै ॥  
पनहीं पहिर न सन्मुख जाई ।  
जल कल आदि न सन्मुख खाई ॥  
असुचि उछिट न मन्दिर पैसे ।  
आसन बौधि न सन्मुख वैसे ॥  
अरु सन्मुख नहि पाँव पसारै ।  
अनुग्रह करै न काहू भ  
होइ न आपु दान कौ मानी ।  
कहै न नृपति की असत कहा  
निन्दा अरु असुति ते रहिये ।  
आन देव की बात न कहि  
अग्नि पीठि वाम दिसि भाई ।  
करै दण्डवत हरि पहुँ जा  
यथाशक्ति उपहार सु दीजै ।  
हरि दर्शन तन पीठ न दी  
सकल पुण्य हरि कौ जस गवै ।  
पाप सबै हरि कौ विषण

## जीमसे नाम रटो

प्रगट बदन रसना जु प्रगट अस प्रगट नाम रहि ।  
 जीभ निसेनी मुक्ति तिहि बल आरोहि मूढ़ चढ़ि ॥  
 ऊँच नीच पर चहत लाहि कामिक कर्म करिहै ।  
 कबहुँ होइ सुरराज कबहुँ तिर्यक-तनु धरिहै ॥  
 चत्रमुज मुरलीधर-भक्ति अनन्य बिनु हौ तुर्ग एकपरि पारि-परि ।  
 विद्या-वल, कर्म-वल ना तरै भव-सिंधु स्वान की पूँछ धरि ॥  
 अविल लोक के जीव हैं जु तिन को जीवन जल ।  
 सकल सिद्धि अरु रिद्धि जानि जीवन जु भक्ति-फल ॥

## श्रीहीरासखीजी ( वृन्दावन )

सब तजि बुंदावन सुख लीजै ।  
 प्रकुलित ललित सोहनो वहु दिसि, लखि उर धीर धरीजै ।  
 राधावल्लभ नाम मधुर रस लै मुख, निसिदिन पीजै ।  
 'हीरासखि' हित नित अवलोकत, चित अनूप रँग भीजै ॥  
 राधावल्लभ कहत ही, होत हिये अनुराग ।  
 निरखत छावि तिन नरनि को, बढ़त चौगुनी लाग ॥  
 बढ़त चौगुनी लाग भाग सौं यह सुख पावै ।  
 जानि नाम निज सार वही निसिदिन गुहरावै ॥

## भक्त श्रीसहचरिशारणदेवजी

( जन्म—संवत् १८२९-३०, द्वी-स्थानाधिपति श्रीरथिकादासजीके शिष्य )

हरदम याद किया करि हरि की दरद निदान हैरगा, ।  
 मेरा कहा न खाली ऐ दिल ! आनेंदकंद ढैरगा ॥  
 ऐसा नहीं जहाँ विच कोई लंगर लोग लैरगा ।  
 'सहचरिसरन' शेर दा बचा क्या गजराज करैगा ॥  
 अब तकरार करौ मति यारौ लगी लगन नित चंगी ।  
 जीवन प्रान जुगल जोरी के जगत जाहिरा अंगी ॥  
 मतलब नहीं फिरिस्तों से हम इश्क दिलौं दे संगी ।  
 'सहचरिसरन' रसिक सुलतांबर महिराना रसरंगी ॥  
 कुंजविहारीलाल मझे जनि कीजिये ।  
 भव भय भजन भौर सुदाहर दीजिये ॥  
 चरन कमल की सौंह और नहिं टौर है ।  
 'सहचरिसरन' गरीब करौ किन गैर है ॥

और धर्म अरु कर्म करत भव-भटक न मिटिहै ।  
 जुगम-महाशृंखला जु हरि-भजन कटिहै ॥  
 'चत्रमुज' मुरलीधर-कृपा परै पर, हरि-भजन-वल ।  
 छीप, चमार, ताँती, तुरक, जगमगात जाने सकल ॥  
 सकल तू बल-छल छाँडि मुगध सेवै मुरलीधर ।  
 मिटाहै महा भव-दंद फंद कटि रटि राधाबर ॥  
 बत्सलता अस अभय सदा आरत-अघ-सोखन ।  
 दीनबंधु सुखसिंधु सकल सुख दै दुख-मोचन ॥  
 'चत्रमुज' कल्यान अनंत हुव हरि-रति गति सब साखि हुव ।  
 प्रहाद विभीषण गज सु द्विज पंचालि अहिल्या प्रगट ध्रुव ॥

विना भजन कहु नाहिं जतन किन करै अनाधा ।  
 'हीरा'हित उर ग्रीति ग्रीतित बह्लभ राधा ॥  
 रसना ! जो रस-सुख चहै, निरस मानि जग ख्याल ।  
 तौ अनुदिन भजि लाडिली-लाल सदा प्रतिपाल ॥  
 अचल यह स्नाम राधिका नाम ।  
 रसिकन उर रठ नामन ही की, रहत आठहू जाम ॥  
 छके नवल आनंद-कंद-रस, वसि वृदावन धाम ।  
 'हीरासखि' हित नाम रैन दिन, और न दूजो काम ॥\*

इयाम कठोर न होहु हमारी वार को ।  
 नैक दया उर ख्याय उदय करि प्यार ओ ॥  
 'सहचरिसरन' अनाय थकेलौ जानि कै ।  
 कियौ चहत खल ख्यार बचावौ आनि कै ॥  
 सरल मुभाव, सील संतोषी, जीव दया चित चारी ।  
 काम क्रोध लोभादि विदा करि, समुक्षि चृद्धि अवतारी ॥  
 ख्यान भक्ति वैराग विमलता, दसधा पर अनुसारी ।  
 'सहचरिसरन' राधि उर सहुन, जिमि सुयात फुलवारी ॥  
 धीरज धर्म विवेक लभाज्ञत भजन यज्ञ दुखदारी ।  
 तजि अनीति मन सेइ संत जन मानि दीनता भागी ॥  
 भीड़ वचन बोल सुभ सौंच, कै चुप अनेंदकारी ।  
 कीरति विजय विभूति मिलै, श्रीदरि गुरु गुजा अपारी ॥

\* इनके 'अनुभवरह' मध्यसे उद्दन । ये सात श्रीहीरासखीजीके यदों सुनित सं० १९६४ ।

गिरि यीजे गोधन, मयूर नव कुंजन को,  
पुसु यीजे मद्याम नंद के बगर कौ।  
नर-यीन ? तीन, जीन 'राधे गधे' नाम रहे,  
तट यीजे वर कूल कालिदी कगर कौ॥  
इतने पे जोई कहु कीजिए युँवर कान्ह,  
शमिया, न आन फेर 'हठी' के झगर कौ।  
गोरी पद पंकज पराम कीजे महाराज !  
बूम यीजे रावरेई गोकुलनगर कौ॥

नननीत हुआव ते कोमल हैं, 'हठी' कंज की मंजुलता इन में।  
गुललाला गुलाल प्रवाल जगद्युधि, ऐंगी न देखी ललाइन में॥  
मुनि भानु मंदिर मध्य वसें, वस होत हैं सवे सुभाइन में।  
रहु रे मन, त चित जाइन सों, उपभानुकुमारि के पाइन में॥

सुर-रखवारी सुरराज-रखवारी सुक-  
सम्भु-रखवारी रवि-चंद-रखवारी है।

## राधावल्लभीय संत श्रीचतुर्भुजदासजी महाराज

### भजनका महत्व

हरि चरननि भजि और न ध्यावै।  
ताको जस हरि आपुन गावै॥  
जै लगि कनक कामिनी भावै।  
तौ लगि कृष्ण उर माहि न आवै॥  
धरम सोई जो भरम गमावै।  
साधन सो, हरि सों रति लावै॥  
जो हरि भजहि तो होइ महासुख।  
नातरु जम-वस है सत-गुन दुख॥

### बर्ताव

कर्कश वचन हृदौ छूवै न कहिजै।  
बध समान सो पातक लहिजै॥  
त्रिनु ते तन नीचौ अति कीजै।  
होइ अमान मान तिहि दीजै॥  
सहन सुभाव बृच्छ कौ-सौ करि।  
रसना सदौं कहत रहियै हरि॥  
परत्रिय तौ माता करि जानै।  
लोह समान कनक उनमानै॥  
नूनहि आदि चोरी नहि करिये।  
आपु समान जीव सब धरिये॥

रिपि-रखवारी विधि-वेद-रखवारी, करी  
जाने रानी कीरति की कीरति सुभारी है॥  
दिग-रखवारी दिगपाल-रखवारी लोक-  
थोक-रखवारी गावै धराधरधारी है।  
ब्रज-रखवारी ब्रजराज-रखवारी 'हठी'  
जन-रखवारी वृषभान की दुलारी है॥

### दोहा

कीरति कीरति कुमरि की, कहि-कहि थके गनेस।  
दससतमुख बरनन करत, पार न पावत सेस॥  
अज सिव सिद्ध सुरेस मुख जपत रहत बसु जाम।  
बाधा जन की हरत है, राधा-राधा नाम॥  
राधा-राधा जे कहैं, ते न परैं भव-फंद।  
जासु कंध पर कमल-कर, धरे रहत ब्रजचंद॥  
राधा-राधा कहत हैं, जे नर आँठें जाम।  
ते भव-सिंधु उलंघि कै, बसत सदा ब्रजधाम॥

### मंदिरमें भगवान्के सामने कैसे रहे ?

सावधान हरि सदन सिधारै।  
करै नहीं अपराध विचारै॥  
पनहीं पहिर न सन्मुख जाई।  
जल फल आदि न सन्मुख खाई॥  
असुचि उछिष्ट न मन्दिर पैसे।  
आसन बाँधि न सन्मुख वैसे॥  
अह सन्मुख नहि पाँव पसारै।  
अनुग्रह करै न काहू मारै॥  
होइ न आपु दान कौ मानी।  
कहै न वृपति की असत कहानी॥  
निन्दा अह अस्तुति तैं रहिये।  
आन देव की बात न कहिये॥  
अग्र न पीठि थाम दिसि भाई।  
करै दण्डवत दरि पहँ जाई॥  
यथाशक्ति उपहार सु दीजै।  
हरि दर्शन तन पीठ न दीजै॥  
सकल पुण्य हरि कौ जस गावै।  
पाप सबै दरि कॉ विसरवै॥

## जीमसे नाम रटे

प्रगट बदन रसना जु प्रगट अरु प्रगट नाम रहि ।  
 जीम निसेनी मुक्ति तिहि बल आरोहि मूढ़ चढि ॥  
 कँच नीच पद चहत लाहि कामिक कर्म करिहै ।  
 कवहुँ होइ सुरराज कवहुँ तिर्यक-तनु धरिहै ॥  
 चत्रसुज मुरलीधर-भक्ति अनन्य विनु द्वै तुर्ग-एकपरि पारि-परि ।  
 विद्या-बल, कर्म-बल ना तरै भव-सिंहु स्वान की पूँछ धरि ॥  
 अविल लोक के जीव हैं जु तिन को जीवन जल ।  
 सकल सिद्धि अरु रिद्धि जानि जीवन जु भक्ति-फल ॥

## श्रीहीरासखीजी ( बृन्दावन )

सब तजि बृन्दावन सुख लीजै ।  
 प्रकुलित ललित सोहनो बहु दिसि, लखि उर धीर धरीजै ॥  
 राधावह्यम नाम मधुर रस लै मुख, निसिदिन पीजै ।  
 'हीरासखि' हित नित अबलोक्त, चित अनूप रँग भीजै ॥  
 राधावह्यम कहत ही, होत हिये अनुराग ।  
 निरखत छवि तिन नरनि को, बढत चौगुनी लाग ॥  
 बढत चौगुनी लाग भाग सौं यह सुख पावै ।  
 जानि नाम निज सार वही निसिदिन गुहरावै ॥

और धर्म अरु कर्म करत भव-भटक न मिटिहै ।  
 जुगम-महाश्रृंखला जु हरि-भजन न कहिहै ॥  
 'चत्रसुज' मुरलीधर-कृपा परै पार, हरि-भजन-बल ।  
 छीपा, चमार, ताँती, तुरक, जगमगात जाने सकल ॥  
 सकल तू बल-छल छाँडि मुख सेवै मुरलीधर ।  
 मिटिहै महा भव-द्वंद्व फंद कटि रटि राधाकर ॥  
 बत्सलता अरु अभय सदा आरत अद्व-सोखन ।  
 दीनबंधु सुखसिंधु सकल सुख दै दुख-मोचन ॥  
 'चत्रसुज' कल्यान अनंत तुव हरि-रति गति सब साखि हुव ।  
 प्रह्लाद विभीषण गज सु द्विज पंचालि अहिल्या प्रगट धुव ॥

विना भजन कद्दु नाहि जतन किन करौ अगाधा ।  
 'हीरा'हित उर प्रीति प्रतीति बह्यम राधा ॥  
 रसना ! जो रस-सुख चहै, निरस मानि जग ख्याल ।  
 तौ अनुदिन भजि लाडिली-लाल सदा प्रतिषाठ ॥

अचल यह स्याम-रथिका नाम ।  
 रसिकन उर रट नामन ही की, रहत आठहू जाम ॥  
 छके नवल आनंद-कंद-रस, वसि बृन्दावन धाम ।  
 'हीरासखि' हित नाम रैन दिन, और न दूजो क्षाम ॥\*

## भक्त श्रीसहचरिशरणदेवजी

( जन्म—संवद १८२९-३०, टटी-स्थानाधिपति श्रीराधिकादासजीके शिष्य )

हरदम आद किया करि हरि की दरद निदान हैरागा ।  
 मेरा कहा न खाली ऐ दिल ! आनंदकंद दैरागा ॥  
 ऐसा नहीं जहाँ विच कोई लंगर लोग लैरागा ।  
 'सहचरिसरन' शेर दा बच्चा क्या गजराज करैगा ॥  
 अब तकरार करौ मति थारौ लगी लगन चित चंगी ।  
 जीवन प्रान जुगल जोरी के जगत जाहिरा अंगी ॥  
 भरतलब नहीं फिरिस्तों से हम इश्क दिल्हौं दे संगी ।  
 'सहचरिसरन' रसिक सुलतांबर महिरवान रसरंगी ॥  
 कुंजविहारीलाल मजे जनि कीजिये ।  
 भव भय भंजन भीर मुदारू दीजिये ॥  
 चरन कमल की सौंह और नहि ठौर है ।  
 'सहचरिसरन' गरीब करौ किन गौर है ॥

श्याम कठोर न होहु हमारी बार को ।  
 नैक दया उर ल्याथ उदय करि प्यार को ॥  
 'सहचरिसरन' अनाथ अकेलै जानि कै ।  
 कियौ चहत खल खवार बचावौ आनि कै ॥  
 सरल सुभाव, सील संतोषी, जीव दया चित चारी ।  
 काम क्रोध लोभादि विदा करि, समुक्षि बूँदि अबतारी ॥  
 यान भक्ति वैराग विमलता, दसधा पर अनुसारी ।  
 'सहचरिसरन' राखि उर सहून, जिमि सुवास फुलवारी ॥  
 धीरज धर्म विक्रेक छमाजुत भजन यजन दुखदारी ।  
 तजि अनीति मन सेइ संत जन मानि दीनता भारी ॥  
 मीठे बचन बोल सुम साँचै, कै सुप आनंदकारी ।  
 कीरति विजय विभूति मिलै, श्रीहरि गुरु कृपा अपारी ॥

\* इनके 'अनुभ्यरस' ज्ञानसे उद्दत । सेमाज श्रीकृष्ण-दासके यद्दो मुद्रित सं० १९६४ ।

## श्रीगोविन्दशारणदेवजी

( निष्ठाक-सम्प्रदायके आचार्य श्रीगोविन्ददेवजीके शिष्य )

मर्यं पिंत मित पवन सोइ तुरवल ब्रहु नाही ।  
वन के गज तृण पात मस्त धीर तन आही ॥  
यांत मूळ करि असन मुनी यांत काल निवाहे ।  
जल गल जग में जीव सहज ही सुख अवगाहे ॥  
आ इहि भिन्ने विरचि पद, शिपति न पावै अथम मन ।  
गोविन्दसरन वर्द्धे नरन कैं इक संतोष जु परमधन ॥  
  
यांत पिंत तफ मूळ संघ साखा सरसाही ।  
यांत प्रानन वौ अपन दिव्ये इंद्री त्रिसाही ॥  
तथ देवन को मूळ एक अस्युत कौं गयायौ ।  
तावरी सेवा विवें सहज ही सुख सब पायौ ॥

यह प्रगट वचन भागवत में रिपिव्र जु परीच्छित प्रति कहं  
सौ सार भजन हरिदेव को गोविन्दसरन निज जन गहे  
संगल-निधान भजि कृष्णचंद । जाके नाम अग्नि जरैं पाप-वृं  
द्वुम धर्म भूल कदना निकेतु । पवना पवित्र कर अभय हैं  
विश्राम धाम जन जासु नाम । कविजन रसना अवलम्बु साम  
जन परमहंस मुक्ता सुनास । जग त्रिविष ताप विश्राम धाम  
हैं पाप विपिनकौं हरि कुठार । वासना बृंद कैरप तुष्टर  
भक्ति भूमि मृगपति उदार । मृग आन धर्म बर्जित विहर  
भयसितुं पोत हरि नाम एक । समतूल नाहि साथन अतोक  
विपिन चंद जुग गौर साम । सोभा निकेत जन पूर्ण काम  
'गोविन्दसरन' जन जिवन मूळ । भजि पद पंकज सिँट सकल सू

## श्रीविहारिनिदेवजी (विहारीदासजी)

( निष्ठाक-सम्प्रदायान्तर्गत श्रीविहारिनिदेवजीके शिष्य; जाति—सूख्ख्य ब्रह्मण, पिताका नाम पित्रसेन, स्थिति-काल—विकार  
१७ वीं शती । )

हैहै प्रीति हीं परतीति ।  
गुनग्राही नित लाल विहारी, नहिं भानत कपट अनीति ॥  
करिहें कृपा कृतय जानि हित जिन कैं सहस तमीति ।  
'विहारीदास' गुन गाइ विमल जस नित नौतन रउ रीति ॥  
  
हरि भली करी प्रभुता न दई ।  
होते पतित अजित इंद्री रत तत्र हम कछु सुमत्यौ न लई ॥  
डहकायौ वहु जन्म गमयौ कर कुर्संग सब ब्रुधि वित्तै ।  
भान अमान ग्राम्यौ भक्तन तन भूलि न कवहूँ दृष्टि गई ॥  
पढ़ि पढ़ि परमरथ न विचारथौ स्वारथ बक बक विष अँचरै ।  
लै लै उपज्यो सफल वासुता जो जिहि जैसी बीज वई ॥  
अब सेवत साधुत को सततंग सीचत फूलै मूल जई ।  
'विहारीदास' यो भजै दीन हैं दिन वाढ़ी प्रीति नरै ॥

परि गइ कौनहूँ भौति टेव धृत कैसे कै निरवारै ?  
सुख संतोष होत जिय जवहीं आनेंद वदग निहारै ॥  
भन अरु प्रकृति परी उन के आँग धंतर बैठि विचारै ।  
क्षुटि गइ लाज काज सुत वित हित निमिष न इत उत टारै ।  
बाधक वहुत तकत मुसिवे कों काहू की सी नोहिं सम्हारै ।  
कोउ कछु कहौं सुनौ न घटै रुचि यंत्रु पिता पञ्चि हारै ॥

जैसे कंचन पाव कृपन बन गनत रहैं न विचारैं  
'विहारीदास' हरिदास नरन रज काज धापनीं सारैं  
हरि जस गावत सब सुधरे ।

नीच अधम अकुलीन विमुख खल कितने गुनौ तुरे  
नाऊ छीपा जाट छुलहौ सनमुख आइ तुरे  
तिन तिन कौं सुख दियौ साँचेर मादिन विरद तुरे  
विवस असावधान सुत के हित हूँ अच्छर उन्ने ।  
'विहारीदास' प्रभु अजामील से पतित पवित्र करे ॥

ताते भजन साम करि लीजै ।  
विट कृमि भस सहज ताके गुन तवहि कहा लै कीजै ॥  
ऐसोहि घटत अंबु अंजलि यों तैसैं यद बन लीजै ।  
जीवौ अल्प विकल्प परे घट तुर यों दार चरीजै ॥  
वहै उपाइ सुन्यौ संतग यै हरि भक्त मुन जीजै ।  
अवग धीरतन भक्ति भागवत गौ परकार तीजै ।  
विषय विकार विरत रहि मन कम दनन नरन चित दीजै ।  
'विहारीदास' प्रभु सदा सजीवन वदन औंजुर रण धीजै ॥

जोरी अद्भुत आज वर्णी ।  
बारौं कोटि काम नख छावि पर उज्ज्वल नीर मर्णी ॥

उपमा देत सकुच निर-उपमित घन दामिनि लजनी ।  
करत हाँस परिहाँस प्रेमजुत सरस विलास सनी ॥  
कहा कहाँ लावन्य रूप गुन सोभा सहज बनी ।  
'विहारिनीदास' दुलरावत श्रीहरिदास कृपा बरनी ॥

वासिद्वौ श्रीबुदावन कौ नीकौ ।

ठिन छिन प्रति अनुराग बढ़त दिन दरस विहारी जू कौ ॥  
नैन श्रवन रसना रस अँचवत अँग सँग प्यारी पिय कौ ।  
'श्रीविहारिनिदास' अंग सँग विद्वुरत नाहिन कांत रती कौ ॥

हरि पथ चलहु न साँझ सवेरौ ।

ज्याल सकाल उद्धुक लागिहै आलस होत अवेरौ ॥  
कर्म कांद सनवंध सवन सौं जन्म जन्म कौ झेरौ ।  
जानि चूक्षि अब होत कृपन अवहीं किन करहु निवेरौ ॥  
कहा करत ममता छूडे सौं दिन दस छ्यौं बसेरौ ।  
लैहैं ऐंचि वधिक बनसी लौं छुटि जैहै तन तेरौ ॥  
जुदिन सुदिन जीवै तूँ है रहि हरिदासन को चेरौ ।  
'विहारीदास' बस तिन्हैं भरोसै स्याम चरन रति केरौ ॥

हरि बिन कूकर सूकर हैहै ।

दौँत न पूँछ कुरार पाछले पायन मूँड खुजैहै ॥  
साँझ भोर भटकत भडियाई तउ न अहार अघैहै ।  
जहँ तहँ विपति विडारे त्रसकरेहू लटि कटि खैहै ॥  
मीरा मुए निगोडे हैं खसमैहू लज लजैहै ।

लोक परलोक परमारथ बिन घर बाहिर बुरे कहैहै ॥  
कहा भयो मानुस को आकृत उनहुँ ते दुगुनहि खैहै ।  
'विहारीदास' बिन भजे सॉवरौ मुख संतोष न दैहै ॥

स्थामाजू के सरन जे सुख न सिराने ।

तिन कौं सुख सपनै न लिल्हौ जे किरत विद्यि बौराने ॥

X X X X

सीचत अंड आम की आसा फूँल फलै न पिछाने ।  
दरसत परसत खात न जानत औँखि अछत औँधराने ॥  
बहुरो उद्धम करत निल्ज है इंद्र भए न अधाने ।  
ताहू भए अवगण निर्धन निघटि गएं पछिताने ॥  
जरत हरित गीली लकरी लौं तन मन मिलन धुँधाने ।  
ते जानौ आतमहन पसु संसार सोक मैं साने ॥  
ओरी आयु मनोरथ लाँबे बिना बाहु बल ताने ।  
'विहारीदास' बिन भए बौरिया बूँडे सबै अयाने ॥

याते मोहि कुंजविहारी भाए ।

सब दिन करत सहाय सुने मैं सुक नारद मुनि गाए ॥  
भूलि परौ अपनो घर तबहीं उझाकत फिरथौ पराए ।  
ए गुन सुमिरि लिये सुख दुख के पैँडे सबै बताए ॥  
जिनको प्यार तुमहिं तन चितवत ते न जात बैराए ।  
'विहारीदास' किये ते हित करि अपने संग बसाए ॥

## सूरदास मदनमोहन ( सूरध्वज )

( जातिके ग्राहण और श्रीचैतन्यसम्प्रदायके नैषिक वैष्णव । रचनाकाल—वि० सं० १५९० के लगभग )

मेरी गति तुम्हीं अनेक तोष पाऊ ॥

चरन कमल नक्ष मनि पर विषै सुख बहाऊ ।

घर घर जो ढोलों तौ हरि तुम्हे लजाऊ ॥

तुम्हरो कहाय कहौ कौन को कहाऊ ।

तुम से प्रभु छाँडि कहा दीनन को ध्याऊ ॥

सीस तुम्हे नाय कहौ कौन को नवाऊ ।

कंचन उर हार छाँडि काँच क्यों बनाऊ ॥

सोभा सब हानि करूँ जगत को हँसाऊ ।

हाथी तैं उतरि कहा गदहा च्छिधि धाऊ ॥

कुमकुम लेप छाँडि काजर मुँह लाऊ ।

कामधेन घर मैं तजि अजा क्यों दुहाऊ ॥

कनक महल छाँडि क्योंडव परनकुटीछाऊ ।

पाइन जो पेलौ प्रभु ! तौ न अनत जाऊ ॥

'सूरदास मदनमोहन' जनम जनम गाऊ ।

संतन की पनही को रच्छक कहाऊ ॥

मधु के मतवारे स्याम, खोलौ प्यारे पलकौ ।

सीस सुकुट लय छुटी और छुटी अलकौ ॥

चुरन-नर-मुनि द्वार ढाढे दरस हेतु किलकौ ।

नासिका के भोती सोहै शीन लाल ललकौ ॥

कटि पीताम्बर मुरली कर स्वन कुँडल झलकौ ।

सूरदास मदनमोहन दरस दैहै भलकौ ॥

## सहस्राहु दसवदन आदि नृप बचे न काल बली तें

दो वातनको भूल मत, जो चाहे कल्यान।  
नारायण एक मौत को, दूजे श्रीभगवान॥

बड़ा प्रतापी था राक्षसराज रावण। उसके दस मस्तक  
और दीस भुजाएँ थीं। जब वह चलता था, पृथ्वी  
कोंपती थी उसके पैरोंकी धमकासे। उसकी सेनाके  
राक्षस देवताओंके लिये भी अजेय थे। उसका भाई  
कुम्हकर्ण—उस महाकायको देखकर सुषिकर्ता भी  
चिन्तित हो उठे थे। राक्षसराजका पुत्र मेघनाद—  
मुद्रमें ब्रजपाणि देवराज हन्द्रको उसने बंदी बना लिया  
था। स्वयं रावणकी शक्ति अपरिसीम थी। भगवान्  
शङ्करके महापूर्वत कैलाशको उसने अपने हाथोंपर उठा  
लिया था।

बायु उसके उपवनों एवं भवनोंकी स्वच्छता करते  
तथा उसे पंखा झला करते थे। अग्निदेव उसके  
आवासको आवश्यकता-जितना उष्ण बनाते और  
भोजनालयमें व्यक्षन परिपक्व करते। वरुणदेवको उपवनों  
को सींचने, गृहके जलपात्रोंको पूर्ण रखने तथा  
राक्षसराजको स्थान करानेकी सेवा करनी पड़ती थी।  
सभी लोकपाल करवद्व उपस्थित रहते थे सेवामें।  
स्वयं मृत्युदेव रावणके कारणारमें बंदी हो गये थे।

मृत्युदेव किसीके हारा सदाके लिये बंदी नहीं हुए।  
इतना वैभव, इतना प्रताप, हुक्कारमात्रसे खर्गतकको  
संतप्त करनेवाला तेज—लेकिन रावणको भी मरना  
पड़ा एक दिन।

सुरसुरजीयी, त्रिमुखनको रुणनेवाला, परम प्रतापी  
रावण—रणभूमिमें उसके मस्तकोंको शृगाल भी ढुकरा  
सकते थे। छुटके पड़े थे वे दसों मस्तक, कठी पड़ी  
थीं बीसों भुजाएँ। मृत्युने रावणका सारा गर्व समाप्त

कर दिया। रक्त मांससे पटी भूमिपर राक्षसराजका छिप  
मस्तक कबन्ध अनाथकी भाँति पड़ा था।

X X X

रावणसे भी बढ़कर प्रतापी था कार्तिकेय सहस्राहु  
अर्जुन। रावणको उसने खेल-खेलमें पकड़ लिया और  
खेटमें लाकर इस भाँति बाँध दिया, जैसे कोई कुत्तेके  
बाँध दे तथा उसके दसों सिरोंको दीवट बताका  
उसने दीपक जला दिये।

एक सहस्र भुजाएँ थीं। पाँच सौ धनुष एक सां  
चढ़ाकर युद्ध कर सकता था। भगवान् दत्तत्रेष्व  
कृपा प्राप्त हो गयी थी। शारीरिक बल तो था ही  
योगकी भी अनेक सिद्धियाँ मिल गयीं। कहीं तुल्य  
नहीं थी सहस्रार्जुनके बलकी।

क्या काम आया वह बल। युद्धस्थलमें भगवा  
परशुरामजीके परशुसे कठी भुजाएँ बृक्षकी दहनियों  
समान विषुरी पड़ी रह गयीं। सदा गर्वसे उत्तत रह  
वाला मस्तक धड़से पृथक् हो गया। सहस्राहु अर्जुन  
भी मृत्युने पृथ्वीपर पछाड़ पटका।

X X X

जिसके दस मस्तक और दीस भुजाएँ थीं, वह रावण  
अमर नहीं हुआ। जिसने रावणको भी बाँध लेनेवाला  
बल और हजार भुजाएँ पायीं, वह सहस्राहु अर्जुन  
अमर नहीं हुआ। उनको भी मरना पड़ा। एक सिर  
और दो हाथका अस्थन्त ढुकल मनुष्य—ओर भाई।  
भूल मत कि तुझे भी मरना है। सबको मरना है—  
केवल यही जीवनका सत्य है। इसे भूल मत और  
भगवान्को समरण कर।

## अधिकारका अन्त

आज तो प्रजातन्त्र शासन है भारतमें। आज किसी अधिकारका कोई अर्थ रह ही नहीं गया। आज जो प्रधान गन्त्री है कहींका—अगले चुनावमें वह एक साधारण सदस्य भी न रहे किसी शासन-परिषदका, वह सहज सम्भव है।

सेवक तो सेवक ही है। किसी भी पदका क्या अर्थ है, यदि वह पद सेवकका पद है। वैतनिक सेवक—कितने भी उच्चपदपर वह हो, है तो सेवक ही। उसे पदन्युत होते, निष्कासित होते, दण्ड मिलते देर कितनी लगती है।

आज जिसे अधिकार कहा जाता है, जिसके लिये नाना प्रकारके छल-छन्द और संघर्ष चलते हैं, प्रचारके नामपर जो असत्य, आत्मप्रशंसा, परमिन्दाका निर्लज्जतापूर्ण प्रदर्शन वही भूमधामसे प्रायः प्रत्येक देशमें, देशके सबसे अधिक भमानित एवं बुद्धिमान् कहे जानेवाले पुस्त्रोंके द्वारा अपनाया जाता है………।

मनुष्यका यह मोह—यह मिथ्या तृष्णा—यह पत्तन !

X            X            X

अभी बहुत पुरानी बात नहीं हुई—देशमें राज्य थे। राज्योंके स्वतन्त्र शासक थे। परम्परागत प्राप्त था उन्हें शासनाधिकार। अपने राज्यमें वे मण्डण स्वतन्त्र थे। उनका वाक्य ही कानून था। उनकी इच्छा अप्रतिहत थी।

मैं नाममात्रके स्वतन्त्र राजाओंकी बात नहीं कह रहा हूँ। इतिहासके कुछ पक्षे उल्ट ढालिये। भारतमें—पृथ्वीके अनेक प्रदेशोंमें स्वतन्त्र राज्य थे। उन राज्योंके स्वतन्त्र राजा थे। उन राजाओंको अपने राज्योंमें पूर्ण अधिकार प्राप्त था।

राजाओंका पूर्णाधिकार—अधिकारकी ही महानता गानी जाय तो किनीके लिये स्पृहणीय होगी वह स्थिति। अधिकारकी उस स्थिति ही अधिनायकवादको जन्म दिया। नेतृत्व अधिनायक भी—निरङ्कुशतम अधिनायक भी अपने

यहाँ किसी नरेशके समान सर्वाधिकारप्राप्त नहीं बन सका। अपने दल, अपने समर्थक—पता नहीं कितने नियमोंकी विवशता उसे भी मानकर ही चलना पड़ता था।

X            X            X

सर्वाधिकारसम्पन्न राजा। ऐस्थर्य एवं अधिकारके इस उन्मादका भी कोई अर्थ नहीं था। कभी नहीं था—कभी नहीं रहेगा।

कोई राजा कभी निश्चिन्त नहीं रहा। कोई प्रबल शत्रु कभी भी चढ़ाई कर बैठता था और इतिहासमें ऐसी घटनाएँ थोड़ी नहीं हैं, जब युद्धमें पराजित नरेशको भागना पड़ा हो।

देश-कोष, सेना-सेवककी तो चर्चा क्या, पुत्र-स्त्रीतकको उनके प्रारब्ध या शत्रुकी दयापर छोड़कर राजा प्राण बचानेके लिये भाग पड़ा जंगलकी ओर—जनशून्य राहसे। उसके पास सवारीतक नहीं। जिसे अपने ही भवनमें जाते समय सेवक सादर मार्गनिर्देश करते थे, वह अकेला, अज्ञात वन-प्रदेशमें भागा जा रहा है। उसे स्वयं पता नहीं—कहाँ जा रहा है।

वैभव गया, अधिकार गया—प्राण बच जायें तो बहुत। पीनेके लिये जल और क्षुधा-तृप्तिके लिये एक मुही चने भी उसे किसीकी कृपासे मिलेगे।

जो कल राजा था—आज अनाश्रित है। एक साधारण मजदूर, एक पथका भिखारी उससे अच्छा है। उसके समान प्राण बचानेके लिये वन-वन भटकनेकी आवश्यकता न मजदूरको है, न मिक्षुकको।

X            X            X

अधिकार—व्यर्थ मोह है मनुष्यका। आशङ्काओंका एक छुंड लिये आंता है अधिकार और उसका अन्त भी निश्चित है। बड़ा दारूण है उसका अन्त।

## श्रीललितमोहिनीदेवजी

( २३२ भग्नपत्रन अष्टावचनोंमें भग्नसे शनिय चान्याय, ज्ञमशान—जोदहा, जन्म—वि० सं० २७८० आश्विन शुक्ल २० )

जय जय कुंजविहारिनि प्यारी ।  
नय जय कुंजगाल सुखदायक जय जय लालन कुंजविहारी ॥  
नय जय कुंदावन रागागर जय जय जमुना निधु-सुखारी ॥  
नय जय ललितमोहिनी भग्न-धनि सुखदायक सिरमौरहमरी ॥

क्षण नियोकी बग किये कहा विद्योकी दान ?  
कहा विद्योकी बग किए करी न भक्ति निदान ॥  
कुंदावन में परि रहौ देवि विहारी-रूप ।  
नामु वरान्न को करे सब भूपन कौ भूप ॥

नैन विहारी रूप निरसि रसन विहारी ना  
अद्वन विहारी सुजस छुनि निसदिन आठों जा  
साथु साधु सब एक है ठाकुर ठाकुर ए  
संतन सों जो हित करे सोई जान विवेच  
ना काहु सो रुतनो ना काहु सों रं  
ललितमोहिनीदासकी अद्वृत केलि अभग्न  
निदा करै सो धोकी कहिए, अस्तुति करै सो भाट  
अस्तुति निदा से अल्पा, सोई भक्त निगद

## श्रीप्रेमसखीजी

( वास्तविक नाम अस्त्री हंसराज, सखीभावके उपासक होनेके कारण इनके पुरु श्रीविजयसखी नामक गहात्माने इनका : १५ रसद्वा था : जन्म—विक्रम-संवत् १७१९, स्थान—पत्ता, जाति—श्रीवास्तव काव्याल )

दो रसिया, मैं तो सरन तिहारी ॥  
नहि लाधन बल वचन चातुरी,  
एक भरोसो चरन गिरिधारी ।  
करह तुँवरिया मैं तो नीच भूमि की,  
गुनसागर पिय तुमहि सेवारी ॥

मैं अति दीन वालक तुम सरजै,  
नाथ न दीजै अनाथ ग्रिसारी ।  
निज जन जानि सँभारैगे प्रीतम्,  
प्रेमसखी नित जाऊँ चलिहारी ॥

## श्रीसरसदेवजी

( श्रीनिमायो-सुभ्रद्रायासन्तान श्रीविहारीदासजीके शिष्य, गौडकुलोत्तम ब्रह्मण, पिताका नाम—श्रीकमलपति, भाईका नाम—गागरोदासजी, स्थिति-काल—विक्रमकी १७ की शती )

अच लोभ कौ छोभ चल्यो मन चंचल चित्त भयो भति वौरे ।  
के स्वारथ आरत है परमारथ प्रेम लह्यौ नहि टौरे ॥  
त सनेह को रंग विसार विचार ले श्रीगुरु हैं सिरमौरे ।  
श्री विहारिनिदास विना नेकहु सुख संग सुहाइ न जौरे ॥  
ग्राथ कौ परमारथ सोबत रोकत पेटन कौं दहसरे ।  
त्रिख कौं भेख अनेक बनावत जाचत सूद्र भहा भतवरे ॥  
द्यु बड़ी भगत्यौ न सम्हारत आतुर है परदेस सिध्वरे ।  
रस अनन्य निहाल भए जिन कोटि वैकुंठ लता परवरे ॥  
कुटिल ! गाफिल होत भन न इचै देत  
काहे अचेत भए जरत है भरम सों ।

और न कोउ सुहाउ प्रभु के सरन आउ  
ओसर महा चुकाउ समझ लै मन मौं ॥  
काहे कौं मरत चहि श्रीबृंदावन वस रहि  
सरस साहिव कहि लाडिली ललन मौं ।  
तन धन सब गयौ काम क्रोध लोभ नयौ  
चौंक परथौ तय जय काम परथौ जम मौं ॥  
अय कै जनम जान्यौ जनयौ न हुती  
केतेक जनम धरि थीर ऐसै ही जारीही ।  
यहै धौस तू अधिक जियौ चाहत भानौ  
अय कै तू काल नेमिही दिल्लायौ है ॥

ऐसे छठे प्रपञ्च में ऐसी वस्तु हाथ न पायै  
ताहि तू गमयै ऐसे कौनै भरमायै है ।  
ऐसे सुखद समझि लेहि चित वित दृत देहि  
सरस सनेह स्याम संग सुख पायै है ॥  
अबही वनी है बात औसर समझ बात  
तड़ न खिसात वार मौक समझायै है ।

आज काल जैहै मर काल व्याल हू ते डर  
भौड़े! भजन कर कैसै संग पायै है ॥  
चित वित इत देह सुखहि समझि  
लेहि सरस गुरु ग्रन्थ पंथ यों बतायै है ।  
चरन सरने भय हरन करन सुख  
तरन संसार को तू मान सब नायै है ॥

### श्रीनरहरिदेवजी

(जन्म—वि० सं० १६५० बुन्देलखण्डके अन्तर्गत गूढ़ो आममें, पिताका नाम श्रीविष्णुदासजी, माताका नाम उत्तमा, गुरुका नाम श्रीसरसदेवजी, स्थान—बृन्दावन, अन्तर्धान—वि० सं० १७४१, उम्र १०१ वर्ष ।)

जाकों मनमोहन दृष्टि परे ।  
मो तो भयो सावन को अंधी लूक्षत रंग हरे ॥  
जड़ चैतन्य कल्प नहि समझत जित देखै तित स्याम खरे ।

विद्वल विकल सम्हार न तन की धूमत नैना रूप भरे ॥  
करनि अकरनी दोऊ विधि भली विधि निषेध सब रहे धरे ।  
'नरहरिदास' जै भए बावरे ते प्रेम प्रबाह परे ॥

### श्रीरसिकदेवजी

(निष्वार्क-सम्प्रदायान्तर्गत श्रीहरिदासजीकी परम्परामें प्रधान गद्दीके आनन्द एवं महान् भक्तकवि, श्रीनरहरिदेवजीके शिष्य, आविर्भाव वि० सं० १६९२, तिरोभाव १७५८ ।)

सोहत नैन-कमल रतनारे ।  
रूप भरे मटकत खेजन से, मनो बान अनियारे ॥  
माथे मुकुट लटक ग्रीवा की, चित ते टरत न टारे ।  
अलिगन जनु स्थुकि रहे घदन पर, केस ते धूँधुरवरे ॥  
छूटे बंद ज्ञीन तन बागो मुकर रूप तन कारे ।  
दण्डकि रही माला मोतिन की, छकित छैल मतवारे ॥  
अंग-अंग की सोभा निरखत, हरषत प्रान हमारे ।  
'रसिक विहारी'की छानि निरखत, कोटि कविजन हारे ॥

स्याम हैं तुमरे गरे परै ।  
जो बीती तुमही सौं बीती मन माने सो करै ॥  
करी अनीति कछू मित नाहीं नख शिष देखि भरै ।  
मो तन चितै आप तन चितवो अपने विरद ढरै ॥  
कीजै लाज सरन आये की जिनि जिय दोष धरै ।  
अपनी जाँघ उधारै नहिं सुख तुमहीं लाज मरै ॥  
बिनती करों काहि हैं मिलि कै सब कोउ कहत बुरै ।  
'रसिकदास'की आस करुनानिधि तुमहि ढरै सो दरै ॥

### श्रीकिशोरीदासजी

(महान् भक्तकवि तथा एकान्तनिष्ठ भगवद्भक्त सहात्मा । आपका जन्म पंजाब-प्रान्तान्तर्गत ब्राह्मणकुलमें हुआ था । आपके जिला, आम, पिता-माता आदिका नाम नहीं मिलता । आप प्रायः बृन्दावनमें ही रहते थे और श्रीगोपालदासजीके शिष्य थे । आपका स्थितिकाल प्रिकामली २०वीं शती शालम होता है ।)

#### बानी

करौ मन ! हरि भक्तन कौ संग ।  
भक्तन विन भगवत दुर्लभ अति जग यह प्रगट प्रसंग ॥  
ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, कपिपनि कामी मरकट झंग ।  
पृथ्य भयं जम पाय जगत में जीत्यौ गवन जंग ॥

गीध, व्याघ, गनिका, ब्रजगोपी, दिज-वधु सुखन उक्ता ।  
अजामील अपमारग-गामी लम्पट विवस अनंग ॥  
जाहुधान, चारन, विद्याधर वनपर्ति हिंसक अर्मग ।  
मध्यरी केवट पूर्य भये जग राम उत्तरे गंगा ॥  
श्रीहरिद्यास विना गति नाहीं तजौ मान मद रंग ।  
किसोरीदास जाचत दीजै प्रभु, भन्तन संग सुरंग ॥

हरिपद होय या विधि लगन ।

भगवत् परत् महज दुख नाना जाय मति को उगन ॥

भगवत् तन, मन, पाय पुनि-पुनि लक्षत पग रहि पगन ।

नामे बल मदमत्त ढोलत जगत दीसत जग न ॥

दीत दूर दरिद्र दुख भव दुष्टत तीनो अगन ।

किसोरीदास हरिव्याम मिले तब महल सुरत लह लगन ॥

नव र्मि या मारग पग धरिहौं ।

नेद, पुगन, संत जो गावत

करि विस्वाम अचल अनुसरिहौं ॥

माधव परम-भाम मिलिये के

मन्मुख हूँ का दिन आचरिहौं ।

दंद रहित विश्यान ग्यान रति

मान-अनल कबहूँ नहि जरिहौं ॥

कोटि भाँति अपमान करै जो

देस न मान पायें पुनि परिहौं ।

परिहरि विष तम स्वाद जगत के

संतन भीथ उदर अमि भरिहौं ॥

अतिहि दुसह दुख होय कर्मवस

हरिपद-कमल निमिध नहि र्ट

हरि विमुखन कौ संग त्यागि कै

संत सजातिन में सुख चरि

जग उदाम निज इष्ट आस बल

निर्भय हरिजस विमल उचरि

श्रीब्रुंदाबन ब्रास निरंतर

राधाकृष्ण रूप लखि अरि

सुनिये लाल कृपाल दयानिधि

वह निस्त्वय दृढ़ कबहूँ कि करि

किसोरीदास हरिव्यास कृपावल

महल दहल सेवा सुख भरिहै

मन श्रीराधाकृष्ण-धन हूँडौ ।

नहि तौ परिहौ भवसागर में मिलत न पंथ भेद अति ऊँ

काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्षा, जहाँ ब्रासना सू

यह अवसर दुर्लभ श्रुति साखी पायौ नर तन सब तन चूँड

विन सत्तंग न होत सुद्ध मन बनत न कारज पूर्व

भटक्यौ जन्म अनेक महाखललहौ न तत्त्व रसनिधि जो गू

किसोरीदास हरिव्यास चरन लग जुगल रतन पायौ भव

## आसामके संत श्रीशंकरदेव

(प्रेषक—श्रीधरीश्वरजी)

(जन्म-संघर्ष—ई० सन् १४५९, जाति—काब्य, जन्मस्थान—आसाम प्रान्त, पिताका नाम—कुसुमबरा, देहाक्षान—ई० १५६९ में, आयु—१२० वर्ष ।)

नाहि नाहि रमया बिन ताप-तारक कोइ ।

परमान्द पद-मकरँद सेवहु मन सोई ॥

तीर्थ वरत तप जप अर याग योग युगुती ।

मंत्र परम धरम करम करत नाहि मुकुती ॥

मात पिता पलि तनय जानय सब भरना ।

ज्ञानहु धन्व मानस अन्ध धर दू हरिचरना ॥

कृष्णकिङ्कर शंकर कह विछुरि विषय कमा ।

रामचरन लेहु शरण जप गोविन्द नामा ॥

दोन्हु राम नाम से मुकुति निदान ।

भव वैतरणि तरणि सुख सरणी

नहि नहि नाम समान ॥

नाम पैचानन नादे पलावत

पाप दर्ति भयभीत ।

बुलिते एक सुनिते सत नित रे

नाम धरम विपरीत ॥

बचने बुलि राम धरम अरथ काम

मुकुति सुख उखे पाइ ।

सब कहु परम सुद्ध हरिमामा

छुटे अन्त केरि दाइ ॥

नारद शुकसुनि राम नाम विनि

नाहि कहल गति आर ।

कृष्णकिंकर कय छोइ मायमय

राम परम तत्त्व आर ॥

[... वडगीत]

## आसामके संत श्रीमाधवदेवजी

( ओङकारेवजीके शिष्य, इनके अनुगामी 'नहायुरुषीय' कहलाते हैं । )

( प्रेषक—श्रीवर्माशरजी )

भवि सेव हो राम चरण दूजा ।  
काहे करो हो हामो आवर पूजा ॥  
धर्मे धरे राम व्यापक होई ।  
आत्मा राम विना नाहि कोई ॥

चैतन्य छोड़ि काहे जड़ सेवा ।  
राम विने नाहि आवर देवा ॥  
कहय माधव सुन हे नरलोई ।  
राम विने कसि सुकुति ना होई ॥

## पुष्टिमार्गीय श्रीमद्गोस्वामी श्रीलालजीदासजी ( आठवें लालजी )

( पुष्टिमार्गीय वैष्णव-सम्प्रदायके आठवें लालजी, श्रीविद्वलनाथजीके शिष्य )

( प्रेषक—श्रीपत्रालाल गोस्वामी )

जे जे कर्म गोविन्द विन, सब बन्धन संसार ।  
लालशस सुख पाइये, कीजिय करम विचार ॥  
जे जे बचन विचार विन, ते ते बचन विकार ।  
लालदास सुख पाइये, बोलिय बचन विचार ॥  
श्रीकृष्ण भजन में मनुज का, जो अतीत है काल ।  
लालदास सुख निधि बही, और मकल जंजाल ॥  
जे जे कारज नर करै, सकी अपनी जान ।  
लालदास सुख नहिं लहै, करै बृथा सब काम ॥  
उत्तम तेऊ वर्म है, जो सेवा भगवान ।  
अधिक कहे क्या होवही, हरि रति लाल प्रधान ॥  
पर ममति को देखि के, मत्सर हृदय न आन ।

लालदास तिस पर रहो, जो दीनो भगवान ॥  
दीन रह निसदिन सदा, करै न कभि अभिमान ।  
लालदास तिस पुरुष का, होय सदा कल्याण ॥  
वेद-सास्त्र सब सत्य है, यह राखो विश्वास ।  
लालदास तिस पुरुष का, निश्चय हरिपद वास ॥  
जान अलय जग जीवना, ज्यौं बादर की छाय ।  
रे नर आलस छाँड़ दे, ऊँचे ठेर सुनाय ॥  
पूरण त्रिभुवन बिछुला, संसय हृदय न धार ।  
गर्भ विषे प्रतिपालियो, देवो हृदय विचार ॥  
तुम देखत तज जावहि, केती भये विनाश ।  
धिक जीवन घल ठीक तुम, अजहुँ न उपज्यो त्रास ॥

## श्रीसूरदासजी

( महान् भक्तकवि और प्रसिद्ध अध्य सूरदासगढ़े रचयिता, जन्मसंबत्—१५४० वि० के लाभग, जन्मस्थान—हनुकांगा आगरा-गढ़ुराकी सड़गढ़पर ) कोई-जोई दिल्लीके समीपवर्ती सीही स्थानको भी इनका जन्म-स्थान कहते हैं । जाति ब्राह्मण, पिताका नाम रामदास, उम आनार्य, श्रीवल्लभाचार्यजी । वि० सं० १६२० के लगभग पारासोली आममें सूरदासजीका शरीरान्त हुआ था । )



### विचय-प्रार्थना

चरन कमल वंदौं हरि राह ।  
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै,  
अँधेरे कों सब कछु दरसाह ॥  
वहिरौ सुनै, गँग पुनि बोलै,  
रंक चलै सिर छव धराह ।  
सूरदास स्वामी करुनामय, बारबार वंदौं तिहि पाह ॥

बंदौं चरन सरोज तिहारे ।

सुंदर स्याम कमल दल लोचन, ललित त्रिर्भगी प्रान पियारे ॥  
जे पद पदुम सदा सिव के धन, लिंगु सुता उर तैं नहि टारे ।  
जे पद पदुम तात रिस त्रासत, मन बच कम प्रहलाद सँभारे ॥  
जे पद पदुम परस जल पावन सुरसरि दरस कटत अध भारे ।  
जे पद पदुम रस रिपि पतिनी वलि, वृग, व्याध, पतित वहु तरे ॥  
जे पद पदुम रस रिपि पतिनी वलि, वृग, व्याध, पतित वहु तरे ॥  
जे पद पदुम परसि ब्रज भामिनि सरवस दै, सुत गदेन विसरे ॥

जे पद पदुम ग्रात पांडव दल दूत भग, सब काज सँवारे ।  
ग्राम नेर पंड गंकज चियन ताप दुख हरन इमरे ॥

तुम तजि और कौन मे जाऊँ ?  
उमे प्रार जाइ मिर, नाऊँ, पर हथ कहाँ विकाऊँ ॥  
मनो यो दाता है अमरथ, जाके दियें अधाऊँ ।  
अत काल तुम्हरें सुमिरन गात, अनत कहूँ नहिं राऊँ ॥  
मन सुदामा किनी अजानी, दियौ अभय पद छाऊँ ।  
नामधेनु, नितामनि, दीनहै कलवृच्छ तर छाऊँ ॥  
नाथ भमुद्र अति देखि भयनक, मन मैं अधिक छाऊँ ।  
कोई कुण सुमिरि अपनौ प्रन, सूरदास बलि जाऊँ ॥

स्थाम बलाम कौं सदा गाऊँ ।

स्थाम बलाम बिनु दूसरे देव कौं,  
स्थम्भू माहिन नहिं हृदय ल्याऊँ ॥  
यहै जन, यहै तप, यहै मम नेम व्रत,  
यहै मम प्रेम, फल यहै ध्याऊँ ।  
यहै मम ध्यान, यहै शान, सुमिरन यहै,  
सूर प्रभु रेहु हैं यहै पाऊँ ॥

जीं हम भले बुरे तौ तेरे ।

तुम्हें हमारी लाज बढ़ाई, बिनती सुनि प्रश्न मेरे ॥  
सब तजितुम सरनागत आयौ, छढ़ करि चरन गहे रे ।  
तुम प्रताप घल बदत न कहूँ, निढ़र भए घर जेरे ॥  
और देव सब रंक भिखारी, त्यागे, बहुत जाने ।  
सूरदास प्रश्न तुम्हरि कुण तें, पाए सुख लु जनेरे ॥

ऐसी कव करिहै गोपाल ।

मनसा नाथ, मनोरथ दाता, है प्रभु दीनदयाल ॥  
चरनानि चित्त निरंतर अनुरत, रसना चरित रसाल ।  
लोचन सजल, ग्रेम पुलकित तन, घर अंचल, कर माल ॥  
इहिं चिवि लखत, चुकाइ रहै, जम अपनै हीं भय भाल ।  
हर सुजास रागी न डरत मन, सुनि जातना कराल ॥

सवनि सनेही छोड़ि दयौ ।

हा जटुनाथ ! जरा तन ग्रास्यौ, ग्रालौ उतरि गयौ ॥  
सोइ तिथि वार नछव ल्याम ग्रह, सोइ जिहिं टाट रयौ ।  
तिन अंकनि कोउ फिरि नहि बाँचत, गत स्वारथ समयौ ॥  
सोइ धन धाम, नाम सोई, कुल नोई जिहिं चिलयौ ।  
अब मनही कौ बदन स्वान लौं, चितवत दूर भयौ ॥  
बरप दिवम करि होत पुरान, फिरि मिर लिखत नयौ ।  
निज कृति दोष चिनारि सूर प्रभु, तुम्हरी नरन गयौ ॥

अब मैं नाच्यौ बहुत गुफाल ।

काम कोघ कौं पहिरि चोलना कंठ विषय क  
महा भोहके नूपुर वाजत निंदा सब्द  
भ्रम भोयौ मन भयौ पलावज चलत असंगत  
तुष्णा नाद करति घट भीतर नाना विषि दै  
याया की कटि कैटा बैंध्यौ लोभ तिलक दियौ  
कोटिक कला काछि दिखयाई जल थल सुषि नहिं  
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करै नैद

हमारे प्रश्न औगुन चित्त न धरौ ।

समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार  
इक लोहा पूजा मैं रखत, इक घर बधिक ।  
सो दुविधा पास स नहिं जानत, कंचन करत रे  
इक नदिया इक नार कहावत, मैलै नीर भ  
लब सिलि गए तब एक बरन है, गंगा नाम भै  
तन माया ज्यौ बहा कहावत, हर सु मिलि विग  
कै इन कौं निरधार कीजियै, कै प्रन जात रे  
अब की टेक हमारी लाज राखौ गिरिशर  
जैसी लाज रखी पारथ की भारत खुद मैश  
सारथि हो के रथ कौं हाँक्यौ चक सुदरसन धार  
भक्त की टेक न टार  
जैसी लाज रखी द्वौपदि की होन न दीहिं उधार  
चैचत खैचत दोउ भुज याके दुस्सासन पचि हार  
चौर बहायौ शुरार्त

सूरदास की लजा राखौ, अब को है रखवार  
राखे राखे श्रीवर प्यारी श्रीपालदुलार  
तरन तक आयौ तुम्हारी

गोविंद गाड़े दिन के मीत ।

गज अह वज प्रहलाद, द्वौपदि, दुमिस्त ही निहवीत  
लालागह पांडवनि उनरे, साक पत्र कुल नाए  
अंबरीम हित साप निवरे, च्याकुल चले पराए  
तृप कन्या कौ ब्रत प्रतिपाद्‌यौ, कपट ऐप इक शम्पू  
तामैं प्रगट भए श्रीपति जू, अरि गन मर्द प्रदायौ ।  
कोटि छानन्ते चृष्ट सेना सब, जरासंध वैष छों  
ऐसैं जन, परतिग्या रखत, जुद्ध प्रगट कर जों ।  
गुर वंधव हित मिले सुदरमहि, तेदुल पुनि पुर्ण जोनव ।  
भगत विरह की अतिहीं कादर, अमुग गर्व कल नायत ॥

संकट हरन चरन हरि प्रगटे, ब्रेद विदित जस गावै ।  
सूरदास ऐसे प्रभु तजि कै, घर वर देव मनावै ॥

तातैं तुम्हारै भरोसौ आवै ।

दीनानाथ पतितपाधन जस ब्रेद उपनिषद गावै ।  
जौ तुम कहौ कौन खल तारयो, तौ हौं बोलौ साखी ।  
पुन्ह हेत सुरलोक गयौ द्विज, सक्यौ न कोऊ राखी ॥  
गनिका किए कौन ब्रत संजम, सुक हित नाम पढ़ावै ।  
मनमा करि सुमिरथौ गज बपुरै, ग्राह प्रथम गति पावै ॥  
बकी जु गई धोष में छल करि, जसुदा की गति दीनी ।  
और कहति श्रुति वृषभ व्याध की जैसी गति तुम कीनी ॥  
दुपद सुताहि दुष्ट दुरजोधन सभा माहिं पकरावै ।  
ऐसौ और कौन करनामय, बसन प्रवाह बढ़ावै ॥  
दुखित जानि कै सुत कुयेर कै, तिन्ह लगि आपु बँधावै ।  
ऐसौ को ठाकुर जन कारन दुख सहि भलै मनावै ॥  
दुरबासा दुरजोधन पठयो पांडव अहित विचारी ।  
गाक पत्र लै सबै अघाए, न्हात भजे कुस डारी ॥  
देवराज मख भंग जानि कै बरध्यौ ब्रज पर आई ।  
सूर स्याम राखे सब निज कर, गिरि लै भए सहाई ॥

वाँच गति करिहौ मेरी नाय !

हौं तो कुटिल कुचील कुदरसन, रहत विषय के साथ ॥  
दिन वीतत माया कैं लालच, कुल कुदुंव कैं हेत ।  
सिगरी रैनि नींद भरि सोवत जैसैं पसू अचेत ॥  
कागद धरनि करै द्रुम लेखनि, जल सायर मसि धोरै ।  
लिखै गनेस जनम भरि मम कृत तऊ दोष नहिं ओरै ॥  
गज गनिका अरु विष्र अजामिल, अगनित अधम उधरे ।  
यहै जानि अपराध करे मैं तिनहूं सौं अति भरे ॥  
लिलिलि लिखि मम अपराध जनम के, चित्रगुस अकुलाप ।  
भृगु रिषि आदि सुनत चकित भए, जम सुनि सीस डुलाए ॥  
अरम उनीति पवित्र कृपानिधि, पावन नाम कहायौ ।  
अरु पतित जब सुन्दौ विरद यह, तब धीरज मन आयौ ॥

प्रभु ! हौं बढ़ी वेर कौ ठाढ़ौ ।

और पतित हुम जैसे तारे, तिनही मैं लिखि काढ़ौ ॥  
तुग जग विरद यहै चलि आयौ, टेरि कहत है यातैं ।  
मरियत लाज पाँच पतितनि मैं, हौंडव कहौं घटि कातैं ॥  
तैं प्रभु हारि मानि कै दैठो, कै करौ विरद सही ।  
मूर पतित जो इट कहत है, देयौ घोजि वही ।

हमारी तुम कौं लाज हरी !

जानत है प्रभु अंतरजामी, जो मोहि माँझ परी ॥  
अपने औगुन कहौं लौं वरनौं, पल पल घरी धरी ।  
अति प्रपञ्च की मोट वाँधि कै अपनैं मीस धरी ॥  
खेबनहार न खेबट मेरैं, अब मो नाव धरी ।  
सूरदास प्रभु ! तब चरननि की आम लागि उत्री ॥

जो जग और विहौ कोउ पाऊँ ।

तौ हौं विनती बार बार करि, कत प्रभु तुम्हाह सुनाऊँ ॥  
गिव विरचि सुर असुर नाग मुनि, सु तौ जाँचि जन आयौ ।  
भूल्यौ भ्रम्यौ तृपातुर मृग लौं काहूं सम न गँवायौ ॥  
अपथ सकल चलि चाहि चहूं दिसि, ग्रम उभटत मतिमंद ।  
थकित होत रथ चक्रहीन ज्यौं, निरसि कर्म गुन फंट ॥  
पौरुष रहित अजित इंद्रिनि बस, ज्यौं गज पंक परयौ ।  
विषयासक्त नटी के कपि ज्यौं, जोइ जोइ कहौं करथौ ॥  
मध अगाव जल मधन महा सठ, तजि पद कूल रहौ ।  
गिरा रहित वृक ग्रसित जालौं, अंतक आनि गहौ ॥  
अपने ही अँखियानि दोष तैं, रविहि उद्धक न मानत ।  
अतिसय सुकृत रहित अध व्याकुल वृथा समित रज छानत ॥  
सुनु त्रयताप हरन करनामय, संतत दीनदयाल !  
सूर कुटिल राखौ सरनाई, इहिं व्याकुल कलिकाल ॥

अब मेरी राखौ लाज मुरारी !

संकट मैं इक संकट उपजौ, कहै मिरग सौं नारै ॥  
और कछू हम ज्ञानति नाहीं, आईं सरन तिहारी ।  
उलटि पवन जब बावर जरियौ, स्वान चल्यौ सिर झारी ॥  
नाचन कूदन मृगिनी लागी, चरन कमल पर चारी ।  
सूर स्याम प्रभु अविगत लीला, आपुहिं आपु सँवारी ॥

### नाम

कहत है, आगे जपिहैं राम ।

बीचहिं भई और की औरै परथौ काल सौं काम ॥  
गरम बास दस मास अधोमुख, तहैं न भयौ विश्राम ।  
बालापन खेलतहौं खोयौ, जोवन जोरत दाम ॥  
अब तौं जरा निपट नियरानी, करथौ न कछुवै काम ।  
सूरदास प्रभु कौं विसरायौ, त्रिना लिये हारि नाम ॥

अद्भुत राम नाम के अंक ।

अर्म अँकुर के पावन दै दल, सुक्ति वधू ताटंक ॥  
सुनि मन हंस पच्छ जुग, जाके बल उड़ि ऊरध जात ।  
जनम मरन काटन कौं कर्तरि तीचन वहु विरुद्यात ॥

अथवा अग्यान दरन कीः रनि ससि जुगल प्रकाश ।  
यामप निधि दोउ कर्म प्रकामित मदा कुमग अनयास ॥  
दृष्टे लोक सुखश्चन, दरन दुख, वेद युक्तनि राखि ।  
गणि ग्यान के पंथ सूर ये, प्रेम निरंतर भालि ॥

अथ तुम नाम यही मन ! नागर ।

जर्वि याए आगिनि तैं वौचौ, मदा रही सुखसागर ॥  
यारि न स्वै, निष्पग्नहि ग्रामे, जम न चढ़ावै कागर ।  
भिया कर्म करत हि निर्ग वामपर भक्ति की पंथ उजागर ॥  
गोचरिचारि शक्त श्रुति सामति, हरि तैं और न आगर ।  
सूरदास प्रगु हहि औपर भजि उतरि चलौ भवमागर ॥

बड़ी है गम नाम की ओट ।

मरन गए, प्रभु काढि देत नहि, करत कुपा के कोट ॥  
वैटत सधै सभा दरि जू की, कौन बड़ी को छोट ।  
सूरदास पारन के परमें, भिन्नति लोह की खोट ॥

जो तू राम नाम थन धरतौ ।

अब कौ जन्म आगिलौ तैरौ, दोऊ जन्म सुधरतौ ॥  
जम कौ त्राम सधै मिटि जातौ, भक्त नाम तैरौ परतौ ।  
तंदुल घिरत समर्पि स्नाम कौ, संत भरोसौ करतौ ॥  
दोतौ नफा साधु की संगति, मूल गाँठि नहि टरतौ ।  
सूरदास वैकुंठ वैट मैं, कोड न केट एकतौ ॥

ऐ मन, कृष्णनाम कहि लीजै ।

गुरु के वचन अटल करि मानहि, साधु समागम कीजै ॥  
पढ़िये गुनिये भगति भागवत, और कहा कथि कीजै ।  
कृष्णनाम बिनु जनमु वार्दिही, विरथा कहै जीजै ॥  
कृष्णनाम रस बहौ जात है, तृष्णवेत है पीजै ।  
सूरदास हरि सरन ताकिये, जनम सफल करि लीजै ॥

प्रभु ! तैरौ वचन भरोसौ सौचौ ।

पोषन भरन विसंभर साहब, जो कल्पै सो काँचौ ॥  
जब गजराज ग्राह सौं अटकौ, बली बहुत दुख पायौ ।  
नाम लेत ताही छिन हरि जु गरडहि छाँडि छुड़ायौ ॥  
दुस्सासन जब गही द्रौपदी, तब तिहि वसन बढ़ायौ ।  
सूरदास प्रभु भक्तवच्छल है, चरन सरन हैं आयौ ॥

भरोसौ नाम कौ भारी ।

प्रेम सौं जिन नाम लीन्हौ, भए अधिकारी ॥  
ग्राह जब गजराज वेरचौ, बल गयौ हारी ।  
हरि कै जब टेरि दीन्हौ, पहुँचे गिरिधारी ॥

सुदामा दारिद्र भंजे, कूवरी  
द्रौपदी कौ नीर बाढ़वौ, दुस्सासन ।  
विभीतन कौं लंक दीनी, रावनहि  
दाम प्रुच कौं अटल पद दियौ, राम दरब  
सत्य भक्तहि तरिवे कौं लीला विस्त  
वेर मेरि क्यों ढील कीन्ही, यूर बलिहा

सगवान् और भक्तिकी महिमा

सोइ भलौ जो रामहि गावै ।

स्वपचहु सेष्ठ होत पद सेवत, बिनु गोपाल द्विज जनमन मा  
बाद विवाद, जग्य ब्रत साधन, कितहुँ जाइ, जनम डहका  
होइ अटल जगदीस भजन में, अनायास चारिहुँ फल पावै  
कहुँ दौरनहि चरन कमल बिनु, धूंगी ज्वरीं दसहुँ दिसि धावै  
सूरदास प्रभु संत समागम, आनंद अभय निसान वजावै

काहु के बैर कहा सरै ।

ताकी सरवरि करै सो शूठो, जाहि गुपाल बड़ो करै  
ससि सन्मुख जो धूरि उड़ावै, उलटि ताहि कैं मुख परै  
चिरिया कहा समुद उलीनै, पवन कहा परबत टैरै  
जाकी कुपा पतित है पावन, पग परसत पाहन तरै  
यूर केस नहि टारिसकै कोउ, दाँत पीभि जौ जग मरै ।

करी गोपाल की सब होइ ।

जो अपनौ पुक्षारथ मानत, अति शूठो है सोइ ।  
आधन, मंत्र, जंत्र, उद्यम, बल, वे सब डारौ थोड़ ।  
जो कलु लिखि शस्त्री नैन्दनेदन, मेटि सकै नहि कोइ ॥  
दुख सुख, लाम अलाम समुक्ति तुम, कतहि मरत हौरोइ ।  
सूरदास स्वामी करुनामय, स्याम चरन भन पोइ ॥

ताते सेहयै श्री जदुराइ ।

संपति विपति विपति तैं संपति, देह कौ यहे सुभाइ ॥  
तस्वर फूलै करै पतझरै, अपने कालहि पाइ ।  
सरदर नीर भरै भरि उमड़ै, युतै, लेह उड़ाइ ॥  
दुतिया बंद बढ़त ही बाढ़ै, बटत बदत धटि जाइ ।  
सूरदास संपदा धापदा, जिनि कोऊ पतिशाइ ॥

अब वे विपदा हू न रही ।

मनसा करि सुमिरत हे जब जब, मिलते तब नवहाइ ॥  
अपने दीन दास के हित लगि, फिलते मैंग मैंगी ।  
लेते राखि पलक गोलक ज्यों, मंतत तिन नवहाइ ॥

रन अरु बन, विग्रह, डर आर्में, आवत जहाँ तहीं ।  
राखि लियौ तुमहीं जग जीवन, त्रासनि तैं सबहीं ॥  
कृपा सिंधु की कथा एक रस, क्यों करि जाति कही ।  
कीजै कहा सूख सुख संपति, जहँ जदु नाथ नहीं ?

भक्ति विनु बैल विराने हैंहै ।

पाउँ चारि, सिरसुंग, सुंग मुख, तब कैसे गुन गैहै ॥  
चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अधैहै ।  
दूटे कंध रु फूटी नाकनि, कौ लौं धौं सुस लैहै ॥  
लादत जोतत लकुट बाजिहै, तब कहँ मूँड़ दुरैहै ?  
सीत, घास, घन, विपति बहुत चिधि भार तरैं सरि जैहै ॥  
हरि संतनि कौ कह्यौ न मानत, कियौ आपुनौ पैहै ।  
सूरदास भगवंत भजन विनु, मिथ्या जनम गैवहै ॥

जो सुख होत गुपालहिं गाएँ ।

सौ सुख होत न जपतय कीनहैं, कोटिक तीरथ न्हाएँ ॥  
दिए लेत नहिं चारि पदारथ, चरन कमल चित लाएँ ।  
तीनि लोक तृन सम करि लेखत, नैदनंदन उर आएँ ॥  
बंसीबट, बृंदावन जमुना, तजि वैकुण्ठ न जावै ।  
सूरदास हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव जल आवै ॥

सोइ रसना जो हरि गुन गावै ।

नैननि की छवि यहै चतुरता, जौ मुकुंद मकरंदहि ध्यावै ॥  
निर्मल चित तौ सोई साँचौ, कृष्ण विना जिहिं और न भावै ।  
खबननि की जु यहै अधिकाई, सुनि हरि कथा सुधा रस पावै ॥  
कर तेई जे स्थामहिं सेवैं, चरननि चलि बृंदावन जावै ।  
सूरदास जैये बलि वाकी, जो हरि जू सौं प्रीति बढ़ावै ॥

जिहिं तन हरि भजियौ न कियौ ।

सो तन सूकर स्वान भीन ज्यों, इहिं सुख कहा जियौ ॥  
जो जगदीस ईस सबहिनि कौ, ताहि न विच्छ दियौ ।  
प्रगट जानि जदुनाथ विसान्यौ, आसा भद जु पियौ ॥  
चारि पदारथ के प्रभु दाता, तिन्हैं न मिल्यौ हियौ ।  
सूरदास रसना यस अपनै, टेरि न नाम लियौ ॥

अजहैं सावधान किन होहि ।

भाथा विषम भुजिगिनि कौ विष, उतरदो नाहिन तोहि ॥  
कृष्ण सुमंत्र जियादग मूरी, जिन जन मरत जिवायौ ।  
चारंबार निकट खबननि है, हुर गारुडी सुनायौ ॥  
युतक जीव देह अभिमानी, देखत ही इन खायौ ।  
कोउ बोउ उतरदो खाधु मंग, जिन स्थाम सजीवनि पायौ ॥

जाकौ मोह मैर अति छूटै, सुजस गीत के गाएँ ।  
सूर मिटै अग्यान मूरछा, ग्यान सुमेषज खाएँ ॥

सुने री मैने निरबल के बल राम ।  
पिछली साल भरूं संतन की,  
अरे सेवारे काम ॥

जब लगि गज बल अपनो बरत्यौ,  
नैक· सरथौ नहिं काम ।  
निरबल है बल राम पुकारयौ,  
आए आधे नाम ॥

द्रुपद सुता निरबल भइ ता दिन,  
तजि आए निज धाम ।  
दुस्सासन की भुजा थकित भइ,  
बसनरूप भए स्याम ॥

अप बल तप बल और बाहु बल,  
चौथी है बल दाम ।  
दूर किसोर दृपा तैं सब बल,  
हरे को हरि नाम ॥

सब से ऊँची प्रेम सगाई ।

दुर्जोधन को मेवा त्यागौ साग विदुर घर पाई ॥  
जूठे फल सबरी के खाए बहुविधि प्रेम लगाई ।  
प्रेम विवस रूप सेवा कीन्ही आप बने हरि नाई ॥  
राजसु जम्य जुविष्ठि कीहौ तामैं जूठ उठाई ।  
प्रेम के बस अर्जुन रथ हाँस्यौ भूलि गए ठकुराई ॥  
ऐसी प्रीति बढ़ी बृंदावन गोपिन नच नचाई ।  
दूर कूर इहि लायक नाहीं कहँ लगि करौं बड़ाई ॥

अविगत गति कछु कहत न आवै ।

ज्यों गूँगौ मठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै ॥  
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै ।  
मन बानी कौं अगम अगोचर, सो जानै जो पवै ॥  
रूप रेख गुन जाति जुगति विनु निरालंब कित धावै ।  
सब विधि अगम विचारहिं तातैं सूर सगुन पद गावै ॥

वासुदेव की बड़ी बड़ाई ।

जगत पिता, जगदीस, जगत गुरु,  
निज भक्तनि की सहत ढिठाई ॥  
भगु कौ चरन राखि उर ऊपर,  
बोल वचन सकल सुखदाई ।

गिर विरचि मारन कों धाए,  
यह गति काहू देव न पाई ॥  
नित चढ़ते आवार करत हैं,  
स्वरथ विना करत मित्राई ।  
राघन अरि को अनुज विभीषण,  
ताकों मिले भरत की नाई ॥  
भद्री कपट कर मारन आई,  
सो हरि जू बैकुंठ पठाई ।  
यितु दीन्है ही देत सूर प्रमु,  
ऐसे हैं जडुनाथ गुराई ॥

प्रमु को देखी एक सुभाइ ।

अति गंभीर उदार उदधि हरि, जान सिरोमनि राइ ॥  
तिनका सौं अपने जन को गुन मानत मेरु समान ।  
सकुचि गनत अपराध समुद्रहि बैंद तुल्य भगवान ॥  
वदन प्रसन्न कमल सनमुख है देवत हैं हरि जैसे ।  
विमुख भएँ अकृपा न निमियहूँ, किरि चितयौं तौ तैसे ॥  
भक्त विरह कातर करनामय, डोलत पाछे लगे ।  
सूरदास ऐसे स्वामी कों देहि पीठि सो अभागे ॥

हरि सौ टाकुर और न जन कों ।

जिहिं जिहिं विधि सेवक सुल पावै,  
तिहिं विधि राखत मन कों ॥  
भूख भएँ भोजन लु उदर कों,  
तृपा तोय, पट तन कों ।  
लग्यौ फिरत सुरभी ज्यों सुत सँग,  
ओैचट गुनि यह बन कों ॥  
परम उदार चतुर चितामनि,  
कौटि कुबेर निधन कों ।  
राखत है जन की परतिग्या,  
हाथ पसारत कन कों ॥  
संकट परें तुरत उठि धावत,  
परम सुभट निज पन कों ।  
कोटिक करै एक नहि मानै  
सूर महा कृतघन कों ॥

हरि सौ मीत न देख्यौ कोई ।

विपत्तिकाल सुमित तिहिं औसर आनि तिरिछो होई ॥  
ग्राह गहे गजपति सुकरायौ, हाथ चक लै धायौ ।  
तजि बैकुंठ गद्दि तजि श्री तजि, निकट दास कैं आयौ ॥

दुर्वासा कौ साप नियारथौ, अंबरीप पति राह  
ब्रह्मल्येक परजंत फिरचौ तहैं देव मुनी जन साख  
लखायह तैं जरत पांडु सुत बुधि बल नाथ उवा  
सूरदास प्रमु अपने जन के नाना ब्राम नियां

राम भक्तवत्सल निज धानौ ।

जाति गोत कुल नाम गनत नहि रंक होइ कै रा  
सिव ब्रह्मादिक कौन जाति प्रमु, हौं अजान नहि जा  
हमता जहैं तहैं प्रमु नाहैं, सो हमता क्यौं सा  
प्रगट खंभ तैं दह दिसाई, जद्यधि कुल कौ द  
खुकुल राघव कृष्ण सदा ही गोकुल कीन्हैं या  
वरनि न जाइ भक्त की महिमा, बारंबार बदा  
धूध रजपूत, बिदुर दासी सुत, कौन कौन अरगां  
जुग जुग विरद यहै चलि आयौ, भक्तनि हाथ विका  
राजस्य मैं चरन पखरे स्याम लिए कर पर  
रसना एक अनेक स्याम गुन, कहैं लगि करैं ब्राम  
सूरदास प्रमु की महिमा अति, सावी वेद पुराने

गोविंद प्रीति सन्वनि की मानत ।

जिहिं जिहिं भाइ करत जन ऐवा, अंतर की गति जान  
सबरी कदुक वेर तजि मीठे चालि गोद भरि ल्या  
जूटिनि की कद्धु संक न मानी, भच्छ किये सत्त भा  
संतत भक्त मीत हितकारी स्याम बिदुर कैं आ  
प्रेस विकल अति आनेंद उर धरि, कदली हिकुला ला  
कौरब काज चले रिषि सापन साक पत्र मु अथा  
सूरदास करना निधान प्रमु, जुग जुग भक्त बदा

सरन गएँ को को न उत्तारयौ ।

जब जब भीर परी संतनि कौं, चक सुदरसन तहैं सँभार  
भयौ प्रसाद जु अंबरीष कौं, दुर्लासा कौं कोथ निवार  
ग्वालनि हेत धरचौ गोवर्धन, प्रकट इंद्र कौं गर्व प्रहार  
कृष्ण करी प्रहलाद भक्त पर, खंभ फारि हिरनाकुस मार  
नरहरि रूप धरचौ करनाकर, छिनक माहि उर नखनि निशा  
ग्राह ग्रसत गज कौं जल बूझत, नाम लेत धाकी दुख टार  
सूर स्याम विनु और करै को, रंगभूमि मैं कंस गद्धार

जन की ओर कौन पति राखै ?

जाति पाँति कुल कानि न मानत, वेद पुरानि गा  
जिहिं कुल राज द्वारिका कीन्हैं, सो कुल साप तैं नार  
सोह मुनि अंबरीप कैं कारन तीनि भुवन प्रथि ग्राम

जाकौ चरनोदक सिव सिर धरि, तीनि लोक हितकारी ।  
सोइ प्रभु पांडुसुतनि के कारन निज कर चरन पखारी ॥  
शारह वरस बसुदेव देवकिहि कंस महा दुख दीन्हौ ।  
तिनि प्रभु प्रहलादहि सुमिरत हीं नरहरि रूप जु कीन्हौ ॥  
जग जानत जदुनाथ जिते जन निज भुज स्वम सुख पायौ ।  
ऐसो को जु न सरन गहे तैं कहत सूर उतरायौ ॥

जब जब दीननि कठिन परी ।

जानत हौं, कहनामय जन कौं तब तब सुगम करी ॥  
सभा मङ्गार दुष्ट दुसासन द्रौपदि आनि धरी ।  
सुमिरत पट कौं कोट चढ़यौ तब, दुख सागर उबरी ॥  
ब्रह्म वाण तैं गर्व उवारथौ, देरत जरी जरी ।  
विपति काल पांडव-बधु बन मैं राखी स्वाम ढरी ॥  
करि भोजन अवसेस जग्य कौं विभुवन भूख हरी ।  
पाइ पियादे धाइ ग्राह सौं लीन्हौ राखि करी ॥  
तब तब रच्छा करी भगत पर जब जब विपति परी ।  
महा मोह मैं परथौ सूर प्रभु, काहैं सुवि विसरी ॥

जैसैं तुम गज कौं पाउँ छुड़ायौ ।

अपने जन कौं दुखित जानि कै पाउँ पियादे धायौ ॥  
जहैं जहैं गाढ़ परी भक्तनि कौं, तहैं तहैं आपु जनयौ ।  
भक्ति हेत प्रहलाद उवारथौ, द्रौपदि चौर बढ़ायौ ॥  
प्रीति जानि हरि गए विद्वुर कै, नामदेव घर छायौ ।  
सूरदास द्विज दीन सुदमा, तिहिं दरिद्र नसायौ ॥

नाथ अनाथनि ही के संगी ।

दीनदयाल परम करनामय, जन हित हरि बहु रंगी ॥  
पारथ तिय कुरुराज सभा मैं बोलि करन चहै नंगी ।  
लघन सुनत करना सरिता भए, बाढ़यौ वसन उमंगी ॥  
कहा विद्वुर की जाति वरन है, आइ साभ लियौ मंगी ।  
कहा कूकरी सील रूप गुन, बस भए स्वाम त्रिभंगी ॥  
ग्राह गण्यौ गज वल विनु व्याकुल, विकल गात, गति लंगी ।  
भाइ चक्र लै ताहि उवारथौ, मारथौ ग्राह विहंगी ॥  
कहा कहौं हरि कैतिक तारे, पावन-पद परतंगी ।  
सूरदास गद विशद व्यवन सुनि, गरजत अधम अनंगी ॥

स्वाम भजन यितु कौन वदाई ?

वल विदा भन धाम रूप गुन और सकल मिथ्या सौंजाई ॥  
जनवीर प्रहलाद नृति चलि भदा ऊँच पदवी तिन पाई ।  
महि मारैग रन रावन जीत्यौ, लंक विभीषण निरी दुहाई ॥

मानी हार विमुख दुर्जोधन, जाके जोधा है सौ भाई ।  
पांडव ऊँच भजे प्रभु चरनानि, रनहि जिताए हैं जदुराई ॥  
राज रवनि सुमिरे पति कारन असुर बंदि तैं दिए छुड़ाई ।  
अति आनंद यूर तिहिं औसर, कीरति निगम कोटि सुख गाई ॥

ऐसे कान्ह भक्त हितकारी ।

जहाँ जहाँ जिहि काल सम्हरे, तहैं तहैं त्रास निवारी ॥  
धर्मपुत्र जब जग्य उपायौ, द्विज सुख है पन लीन्हौ ।  
अस्व निभित उत्तर दिसि कै पथ गमन धनंजय कीन्हौ ॥  
अहिपति सुता सुवन सन्मुख है बचन कहौ इक हीनौ ।  
पारथ विमल वभ्रुवाहन कौ सीर लिलौना दीनौ ॥  
इतनी सुनत कुति उठि धाई, वरषत लोचन नीर ।  
पुच्र कबंध अंक भरि लीन्हौ, धरति न इक छिन धीर ॥  
लै लै खोन हृदय लपटावति, चुंबति भुजा गँभीर ।  
त्यागति प्रान निरलि सायक धनु, गति मति विकल सरीर ॥  
ठाड़े भीम नकुल सहदेवर रूप सब कृष्ण समेत ।  
पैढ़े कहा समर सेज्या सुत, उठि किन उत्तर देत !  
थकित भए कछु मंत्र न फुरई, कीने मोह अचेत ।  
या रथ बैठि बंधु की गर्जहि पुरवै को कुरुक्षेत ?  
काकौ धदन निहारि द्रौपदी दीन दुखी संभरहै ?  
काकी ध्वजा बैठि कपि किलकिहि, किहि भय दुर्जन डरहै ?  
काके हित श्रीपति याँ ऐहैं, संकट इच्छा करहैं ?  
को कौरव-दल-सिंधु मथन करि या दुख पार उतरहै ?  
चिता मानि चितै अंतरगति, नाग-लोक कौं धाए ।  
पारथ सीस सोधि अष्टाकुल, तब जदुनंदन द्याए ॥  
अमृत गिरा बहु वरधि सूर प्रभु, सुज गहि पार्थ उडाए ।  
अस्व समेत वभ्रुवाहन लै, सुफल जग्य हित आए ॥

जापर दीननाथ ढरै ।

सोइ कुलीन वडौ सुंदर सोइ, जिहिं पर कृपा करै ॥  
कौन विमीधन रंक निसाचर, हरि हँसि छत्र धरै ।  
राजा कौन वडौ राघन तैं, गर्वहि गर्व गरै ॥  
रंकव कौन सुदामाहू तैं, आप समान करै ।  
अधम कौन है अजामील तैं, जम तहैं जात डरै ॥  
कौन विरक्त अधिक नारद तैं, निसि दिन भ्रमत फिरै ।  
जोगी कौन वडौ संकर तैं, ताकौ काम छरै ॥  
अधिक कुरुप कौन कुविजा तैं, हरि पति पाइ तरै ।  
अधिक सुरुप कौन सीता तैं, जनम विवेष भरै ॥  
यह गति मति जानै नहिं कोऊ, किहि रस रसिक ढरै ।  
सूरदास भग

जाकौं दीनानाथ निवार्जे ।

भव यामर में कवहुँ न इकै, अभय निगमे बार्जे ॥  
विग्र सुशाशा कौं निधि दीन्हीं, अर्जुन एन में गार्जे ।  
लंगा राज विष्णुपद सर्जे, भ्रुव आकास विराजे ॥  
गार कंस केमी मधुरा में, मेघ्यौ सबै दुराजे ।  
उग्रसेन सिर लज धरयौ है, दानव दस दिमि भार्जे ॥  
अंवर गद्धत प्रौपदी राली, पलटि अंध सुत लाजे ।  
सूरदास प्रभु महा भक्ति तैं, जाति अजातिहि सार्जे ॥

जाकौं मनमोहन अंग करै ।

ताकौं केस खसै नहिं सिर तैं, जौ जग वैर परै ॥  
हिरनकसिषु परदार यक्यौ, प्रहलाद न नैकु डरै ।  
अजहुँ लगि उत्तानपाद सुत, अविचल राज करै ॥  
राखी लाज द्वृपदतनया की, कुरुपति चीर हरै ।  
दुरजोधन कौं मान भंग करि वसन प्रवाह भरै ॥  
जौ सुरपति कोण्यौ ब्रज ऊपर कोध न कछू सरै ।  
ब्रज जन राखि नंद कौं लाला, गिरिधर विरद धरै ॥  
जाकौं विरद है गर्व प्रहरी, सो कैसै विसरै ।  
सूरदास भगवंत भजन करि, सरन गर्ये उवरै ॥

जाकौं हरि अंगीकार कियौ ।

ताके कोठि विघ्न हरि हरि कै, अमै प्रताप दियौ ॥  
दुखासा अङ्गरीष सत्तायौ, सो हरि सरन गयौ ।  
परतिरथा राखी मन भोहन फिरि तायैं पठयौ ॥  
बहुत सासना दद प्रहलादहि, ताहि निसंक कियौ ॥  
निकसि खंभ तैं नाथ निरंतर, निज जन राखि लियौ ॥  
मुत्तक भए सब सखा जिवाए, विष जल जाइ पियौ ।  
सूरदास प्रभु भक्तबछल हैं, उपमा कौं न वियौ ॥

हम भक्तनि के भक्त हमारे ।

सुनि अर्जुन ! परतिरथा मेरी, यह व्रत टरत न टारे ॥  
भक्तनि काज लाज जिय धरि कै, पाइ पियादे धाऊँ ।  
जहुँ जहुँ भीर परै भक्तनि कौं, तहुँ तहुँ जाइ छुडाऊँ ॥  
जो भक्तनि सौं वैर करत है, सो वैरी निज मेरौ ।  
देखि विचारि भक्त हित कारन, हाँकत हौं रथ तेरौ ॥  
जीतैं जीत भक्त अपने के, हारैं हार विचारै ।  
सूरदास सुनि भक्त विरोधी, चक्र सुदरसन जारौ ॥

दैन्य

जन्म सिरानौ अटकै अटकै ।

राज काज, सुत वित की डोरी, विनु विवेक फिरथौ भटकै ॥

कठिन जो गाँठि परी माया की, तोरी जाति न जटकै ।  
ना हरि भक्ति, न साधु समागम, रथो बीचहीं लटकै ॥  
ज्यौं वहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत नट कै ।  
सूरदास सोभा क्यों पावै, पिय बिहीन धनि भटकै ॥

विरथा जन्म लियौ संसार ।

करी कवहुँ न भक्ति हरि की, मारी जननी भार ॥  
जग्य, जप, तप नहिं कीन्हौं, अत्य मति विस्तार ।  
प्रगट प्रभु नहिं दूरि हैं, तू देखि नैन पसार ॥  
प्रबल माया ठग्यौ सब जग, जन्म जूआ हार ।  
सूर हरि कौं बुजस गावौं, जाहि मिटि भव भार ॥

काया हरि कै काम न आई ।

भाव भक्ति जहुँ हरि जस सुनियत, तहुँ जात अलमाई ॥  
लोभातुर है काम मनोरथ, तहुँ सुनत उठि धाई ।  
चरन कमल सुंदर जहुँ हरि के, क्योंहुँ न जात नवाई ॥  
जब लगि स्याम अंग नहिं परसत, अंधे ज्यौं भरमाई ।  
सूरदास भगवंत भजन तजि, विषय परम विद खाई ॥

सबै दिन गए विषय के हेत ।

तीनौं पन ऐसैं हीं खोए, केस भए सिर सेत ॥  
आँखिनि अंध, खवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत ।  
गंगा जल तजि पिथत कूप जल, हरि तजि पूजत प्रेत ॥  
सन व्रत कम जौ भजे स्याम कौं, चारि पदारथ देत ।  
ऐसो प्रभू छाँडि क्यों भटकै, अजहुँ चेति अचेत ॥  
राम नाम विनु क्यों छूटौगे, चंद गहैं ज्यौं बेत ।  
सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुल लेत ॥

अब हौं माया हाथ विकानौ ।

परवस भयौ पसू ज्यौं रुख बस, भज्यौ न श्रीपति रानौ ॥  
हिंसा मद ममता रस भूल्यौ, आगाहीं लग्यानौ ।  
याहीं करत अधीन भयौ हैं, निद्रा अति न अधानौ ॥  
अपने हैं अग्यान तिमिर मैं, विसरथौ परम ठिकानौ ।  
सूरदास की एक आँखि है, ताहू में कछु कानौ ॥

किते दिन हरि सुमिरन विनु खोए ।

परनेदा रसना के रस करि, केतिक जनम गिरोए ॥  
तेल लगाइ कियौ रुचि मर्दन, वस्तर मलि मलि भोए ।  
तिलक बनाइ चले खामी है, विषयिनि के मुख जोए ॥  
काल बली तैं सब जग काँध्यौ, ग्रामादिक हैं रोए ।  
सूर अधम की कहौं कैन गति, उदर भेर परि गोए ॥

जन्म तौ ऐसेहि बीति गयौ ।

जैसैं रंक पदारथ पाँँ, लोभ विसाहि लयौ ॥  
बहुतक जन्म पुरीष परायन, स्कर्न-स्वान भयौ ।  
अब मेरी मेरी करि वैरे, बहुरौ बीज बयौ ॥  
नर कौ नाम परगामी हौ, सो तोहिं स्याम दयौ ।  
तैं जड़ नारिकेल कपि कर ज्यौं, पायौ नाहिं पश्यौ ॥  
खनी गत ब्राह्म सृग तृष्णा रस हरि कौ न चयौ ।  
सूर नंदनंदन जेहि विसरथौ, आपुहि आपु हयौ ॥

विनती करत मरत हैं लाज ।

नख सिख लौं मेरी यह देही है पाप की जहाज ॥  
और पतित आवत न आँखि तर देखत अपनौ साज ।  
तीनों पन भरि ओर नियाहौ तऊ न आयौ धाज ॥  
पाठैं भयौ न आएँ हैं, सब पतितनि सिरताज ।  
नरकौ भज्यौ नाम सुनि मेरौ, पीठ दई जमराज ॥  
अब लौं नान्हे-नन्हे तरे, ते सब वृथा अकाज ।  
साँचै विस्द सूर के तारत, लोकनि लोक अवाज ॥

प्रभु ! हैं सब पतितन कौ टीकौ ।

और पतित सब दिवस चारि के, हैं तौ जन्मत ही कौ ॥  
धधिक अजामील गणिका तारी और पूतना ही कौ ।  
मोहि छाँड़ि तुम और उधारे, मिट्टि सूल क्यौं जीकौ ॥  
कोउ न समरथ अघ करिवे कौं, दैनि कहत हैं लीकौ ।  
मरियत लाज सूर पतितन में, मोहूं तैं को नीकौ ॥

हैं तौ पतित सिरोमनि माधौ ।

अजामील बातनि हीं तारयो, हुतौ जु मोतैं आधौ ॥  
कै प्रभु हार मानि कै बैठौ, कै अवहीं निस्तारौ ।  
सूर पतित कौं और डौर नहिं, है हरि नाम सहारौ ॥

माधौ जू ! मोतैं और न पापी ।

धातक कुटिल चवाई कपटी, महाकूर संतापी ॥  
लंपट धूत पूज दमरी कौ, विषय जाप कै जापी ।  
भन्छि अभच्छि, अपान पान करि, कच्छुं न भनसा धापी ॥  
कामी विषव कामिनी कैं रस, लोभ लालसा शापी ।  
मन क्रम वचन दुसह सद्विन सौं कटुक वचन आलपी ॥  
जेतिक अधम उधारे प्रभु ! तुम तिन की गति मैं नापी ।  
सागर सूर विकार भरग्नौ जल, वधिक अजामील नापी ॥

हरि ! हैं सब पतितन कौ राजा ।

निश घर मुल पूरि रख्नौ जग, यह निसान नित बाजा ॥

तृष्णा देसर सुभट मनोरथ, इंद्री खद्ग हमारी ।  
मंत्री काम कुमति देवे कौं, क्रोध रहत प्रतिहारी ॥  
गज अहंकार चब्दौ दिगविजयी, लोभ छत करि सीस ।  
फौज असत संगति की मेरैं, ऐसौ हैं मैं ईस ॥  
मोह मया बंदी गुन गावत, मागध दोष अपार ।  
सूर पाप कौ गढ़ इद कीनहौ, गुहकम लाह किंवार ॥

हरि ! हैं सब पतितनि कौ राज ।

को करि सकै बरावरि मेरी, सो धौं मोहिं बताउ ॥  
व्याध गीध अरु पतित पूतना, तिन तैं बड़ौ जु और ।  
तिन मैं अजामील गणिकादिक, उन मैं मैं सिरमौर ॥  
जहँ तहँ सुनियत यहै बडाई, मो समान नहिं आन ।  
और हैं आजकाल के राजा, मैं तिन मैं सुलतान ॥  
अब लगि प्रभु तुम विरद बुलाए, भई न मोसौं भेंट ।  
तजौं विरद कै मोहि उधारौ, सूर कहै कसि केंट ॥

हरि ! हैं सब पतितन कौ नायक ।

को करि सकै बरावरि मेरी, और नहीं कोउ लायक ॥  
जो प्रभु अजामील कौं दीन्हौ, सो पाटौ लिखि पाँँ ।  
तौ विस्वास होइ मन मेरैं, बैरौ पतित बुलाँ ॥  
बचन मानि लै चलौं गाँठ दै, पाँँ सुख अति भारी ।  
यह मारग चौगुनौ चलाँ, तौ पूरै व्यौपरी ॥  
पतित उधारन नाम सुन्यौ जब, सरन गही तकि दौर ।  
अब कैं तौ अपनी लै आयौ, देर बहुर की और ॥  
होड़ा होड़ी मनहिं भावते किए पाप भरि घेट ।  
ते सब पतित पाय तर डारौं यहै हमारी भेंट ॥  
बहुत भरोसौ जानि तुम्हारौ, अब कीन्है भरि भाँड़ौ ।  
लीजै बैगि निवैरि तुरतहीं सूर पतित कौ दैँहौ ॥

मो सभ कौन कुटिल खल कामी ।

तुम सौं कहा छिपी कश्नामय, सब के अंतरजामी ।  
जो तन दियौ ताहि विसरायौ, ऐसौ नोनहरामी ।  
भरि भरि उदर विषै कैं धावत, जैसैं सूकर आमी ।  
सुनि सतरंग होत जिय आलस, विषयिनि सँग विसरामी ।  
धीहरि चरन छाँड़ि विसुद्धन की निसि दिन करत गुलामी ।  
पापी परम अधम अपराधी, सब पतितनि मैं नामी ।  
सूरदास प्रभु अधम उधारन सुनियै श्रीपति स्वामी ॥

मोसौं पतित न और हरे ।

जानत है प्रभु अंतरजामी, जे मैं कर्म करे ॥

ऐसो अंध अधम अविवेकी, लोकनि करत खेरे।  
धिष्ठी भजे विरक्त न सेए, मन धन धाम धरे॥  
ज्यौं गाली सूगमद मंडित तन परिहरि, पूर्य परै।  
त्यौं मन गढ़ विषय रुंजा गहि, चितामनि विसरै॥  
ऐसे और पतित अबलेवित, ते छिन माहि तेरे।  
धर पतित तुम पतित उधारन, विरद कि लाज धरे॥

## वैराग्य

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै।  
ता दिन तेरे तन तहवर के सवै पात शरि जैहै॥  
या देही कौ गरव न करियै, स्थार काग गिव लैहै।  
तीननि मैं तन कुमि, कै विश्वा, कै है लाक उडैहै॥  
कहै यह नीर, कहौं वह सोभा, कहै रंग रूप दिलैहै।  
जिन लोगानि साँ नैह करत है, तेर्ह देखि धिनैहै॥  
धर के कहत लबारे काढी, भृत होइ धरि लैहै।  
जिन पुत्रनिहि बहुत प्रतिपाल्यौ, देवी देव मनैहै॥  
तेरं लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि विलैहै॥  
अजहूँ मूढ़ करै सततंगति, संतनि मैं कछु पैहै॥  
नर वपु धारिनाहि जन हरि कौं, जम की मार सो लैहै॥  
सूरदास भगवंत भजन विनु बृथा सु जनम गैहै॥

नहि अस जनम बारंबार।

पुरवलौ धौं पुन्य प्रगट्यौ, लहौ नर अवतार॥  
घटै पल पल बढ़ै छिन छिन, जात लागि न बार।  
धरनि पत्ता गिरि पेरे ते फिरि न लाँ छार॥  
भय उदधि जमलोक दरसै, निपट ही अँधियार।  
दूर हरि कौ भजन करि उत्तरि पल्ले पार॥

जग मैं जीवत ही कौ नातौ।

मन विल्लौं तन छार होइगौ, कोउ न बात पुछातौ॥  
झैं मेरी कबहूँ नहि कीजै, कीजै वंच सुहातौ॥  
विषयासक्त रहत निसि वासर, सुख सिथरौ, दुख तातौ॥  
साँच झूठ करि माया जोरी, आपुत रखौ खातौ॥  
सूरदास कछु घिर न रहैगौ, जो आयौ सो जातौ॥

दिन द्वै लेहु गोविंद गाइ।

मोह माया लोम लागौ, काढ पेरे आइ॥  
बारि मैं ज्यौं उठत बुद्धुद, लागि बाइ विलाइ॥  
यहै तन गति जनम झटौ, खान कागन खाइ॥  
कर्म कामद वाँचि देखौ, जौ न मन पतियाइ॥  
अखिल लोकनि भटकि आयौ, लिखौ मेडि न जाइ॥

सुरति के दस द्वार हैं, जरा धेरयौ ६  
धर हरि की भक्ति कीहै, जन्म पातक ८

## उद्घोषन एवं उपदेश

रे मन, गोविंद के हैं रहिये।  
इहि संसार अपार विरत है, जम की ज्ञान न सहियै॥  
दुख, सुख, कीरति, भाग आपने आइ परे सो गहियै॥  
सूरदास भगवंत भजन करि अंत यार कछु लहियै॥

नर ! तैं जनम पाइ कहा कीनौ ?

उदर भरथौ कूकर सूकर लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ॥  
श्रीभागवत सुनी नहि श्रवननि, सुरु गोविंद नहि लीनौ॥  
भाव भक्ति कछु हृदय न उक्जी, मन विषया मैं दीनौ॥  
झूठौ सुख अपनौ करि जान्यौ, परस प्रिया कै मीनौ॥  
अध कौ मैर बढ़ाइ अधम ! दूर अंत भयौ बहानौ॥  
लख ज्वारासी जोनि भरसि कै फिरि वाही मन दीनौ॥  
सूरदास भगवंत भजन विनु ज्यौं अंजलि जल छीनौ॥

सब तजि भजिए नंदकुमार।

और भजे तैं काम सरै नहि, मिटै न भव जंजार॥  
जिहि जिहि जोनि जन्म धारयौ, वहु जोरशै अध कौ भार॥  
तिहि क्राटन कौं समरथ हरि कौ तीजन नाम कुठार॥  
ब्रेद, पुरान, भरावत, गीता, सब कौ यह मत यार॥  
भव समुद्र हरि पद नौका विनु कोउ न उतारै पार॥  
यह जिय जानि, इहों छिन भजि, दिन दीते जात असार॥  
सूर पाइ यह समौ लहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार॥

नर देही पाइ चित चरन कमल दीजै।

दीन बचन, संतनि लैग दरस परस कीजै॥  
लीला गुन अमृत रस लुबननि पुट पीजै॥  
मुंदर सुख निरसि, ध्यान नैन माहि लीजै॥  
मद्गद सुर, पुलक रोम, अंग प्रेम भीजै॥  
सूरदास विशिधर जस गाइ गाइ जीजै॥

गाइ लेहु मेरे गोसालिहि।  
नातर काल व्याल ले लेहै,  
आडि देहु तुम सब जंजालिहि॥  
अंजलि के जल ज्यौं तन छीजत,  
ओटे कपट तिळक अह मालिहि॥  
कनक कामिनी साँ मन वाँचौ,  
है गज चत्वारी स्थान की जालिहि॥

सकल सुखनि के दानि आनि उर,  
दृढ़ विख्वास भजौ नँदलालहिं ।  
सूरदास जो संतनि कौं हित,  
झपावंत मेटत दुख जालहिं ॥

जो अपनौ मन हरि सौं राँचै ।

आन उपाय प्रसंग छाँड़ि कै, मन वच कम अनुसाँचै ॥  
निसि दिन नाम लेत हीरसना, फिरि जु प्रेम रस माँचै ।  
इहि विधि सकल लोक में बाँचै, कौन कहै अब साँचै ॥  
सीत उधन, सुख दुख नहिं मानै, हर्ष सोक नहिं खाँचै ।  
जाइ समाइ सूर वा निधि मैं, वहुरि जगत नहिं नाचै ॥

करि हरि सौं सनेह मन साँचै ।

निषट कथ की छाँड़ि अयपदी, इद्रिय वस राखहि किन पाँचै ॥  
सुमिरन कथा सदा सुखदायक, विषधर विषय विषम विष बाँचै ।  
सूरदास प्रभु हित कै सुमिरौ आनंद करिकै नाँचै ॥

इहिं विधि कहा घटैगौ तेरौ ?

नंदनैदन करि धर कौ ठाकुर, आयुन है रहु चेरै ॥  
कहा भयौ जौ संपति बाढ़ी, कियौ वहुत धर बेरै ।  
कहुँ हरि कथा, कहुँ हरि पूजा, कहुँ संतनि कौ डेरै ॥  
जो बनिता सुत जूथ सकेले, हय गय विभव धनेरै ।  
सबै सभवौं सूर स्थाम कौं, यह साँचौं मत मेरै ॥

रे मन, राम सौं करि हेत ।

हरि भजन की वारि करि लै, उत्तरै तेरौ खेत ॥  
मन सुआ, तन पीजारा, तिहि माँझ राखै खेत ।  
काल फिरत विलार तनु धरि, अब धरी तिहि लेत ॥  
भकल विषय विकार तजि, तू उतरि साकर सेत ।  
सूर भजि गोविंद के गुन, गुरु वताएँ देत ॥

तिहारौ कृष्ण कहत कहा जात ?

विद्युरैं मिलन वहुरि कव है है, ज्यौं तरबर के पात ॥  
मीत वात कफ कंठ विरोधै, रसना दूरै वात ।  
प्रान लए जम जात मूढमति ! देखत जननी तात ॥  
उन इक माहि कोटि जुग वीतत, नर की केतिक चात ?  
यह जग प्रीति सुवा सेमर ज्यौं, चालत ही उड़ि जात ॥  
जम कैं फंद परथौ नहिं जय लगि, चरननि किन लागात ?  
कहत सूर विरथा यह देही, एतौं कत इतरात ॥

ते दिन विमरि गए इहाँ आए ।

अति उन्मत्त मोह मद आकथौ, फिरत कैन वगगाए ॥

जिन दिवसनि तैं जननि जठर मैं, रहत वहुत दुख पाए ।  
अति संकट मैं भरत मँया लैं, मल मैं मूँड गड़ाए ॥  
बुधि विवेक वल हीन छीन तन, सबही हाथ पराए ।  
तब धौं कौन माय रहि तेरैं, खान पान पहुँचाए ॥  
तिहि न करत चित अधम ! अजहुँ लौं जीवत जाके ज्याए ।  
सूर सो मृग ज्यौं वान महत नित विषय व्याध के गाए ॥

भक्ति कव करिहै, जनम चिरानौ ।

चालपन लेलतहीं खोयौ, तरुनाई गरवानौ ॥

वहुत प्रपञ्च किए माया के, तऊ न अधम ! अधानौ ।

जतन जतन करि माया जोरी, लै गयौ रंक न रानौ ॥

सुत वित बनिता प्रीति लगाई, झटे भरम भुलानौ ।

लोभ मोह तैं चेत्यौ नाहीं, सुमनैं ज्यौं डहकानौ ॥

विरध भरैं कक्ष कंठ निरोध्यौ, मिर धुनि धुनि पछितानौ ।

सूरदाम भगवंत भजन विनु, जम कैं हाथ विकानौ ॥

(मन) राम नाम सुमिरन विनु, वादि जनम खोयौ ।

रंचक सुख कारन तैं अत क्यौं विगेयौ ॥

साधु संग भक्ति विना, तन अकारथ जाई ।

ज्वारी ज्यौं हाथ ज्ञारि, चालै अटकाई ॥

दारा सुत, देह गेह, संपति सुखदाई ।

इन मैं कछु नाहिं तेरै, काल अवशि आई ॥

काम कोध लोभ मोह तृप्ता मन मोयौ ।

गोविंद गुन चित विमारि, कौन नींद गोयौ ॥

गूर कहै चित विचारि, भूल्यौ भ्रम अंधा ।

राम नाम भजि लै, तजि और सकल धंधा ॥

तजौ मन ! हरि विमुखनि कौ मंग ।

जिन कैं संग कुमति उपजति है, परत भजन मैं भंग ॥

कहा होत पय वान कराएँ, विषनहिं तजत भुजंग ।

कागहि कहा कपूर चुगाएँ, स्वान न्हवाएँ गंग ॥

खर कौं कहा अरणजा लेपन, मरकट भूपन अंग ।

गज कौं कहा मरित अन्दवाएँ, वहुरि धरै वह ढंग ॥

पाहन पतित वान नहिं वैधत, रीतौं करत निरंग ।

गूरदाम कारी कामरि पै, चड़त न दूजौं रंग ॥

रे मन, जनम अकारथ वोइनि ।

हरि की भक्ति न कवहुँ कोन्दी, उदर भरे परि सोइनि ॥

निमि दिन किरत रहत मूँड दाए, अद्विति जनम विगोइनि ।

गोड़ पमारि धरयौ दोड नीकैं, अब कैसी कड वोइनि ॥

काल जननि मौं आनि वती है, देवि देवि भूत गोइनि ।

सूर साम विनु कौन चुड़ाई, चंद जब करि पोइनि ॥

एर रस तोड़व जाइ कहुँ लहियै ।

गएं सोच आएँ नहि आनेंद, ऐसो मारग गहियै ॥  
कोपल वचन दीनता सब मौं, नदा अनंदित रहियै ।  
याद त्रिवाद एर्य आतुरता, इतौ दंद जिय सहियै ॥  
ऐसी जो आवै या मन मैं, तौ सुख कहुँ लौं कहियै ।  
आए यिद्धि नव निधि युरज प्रभु, पहुँचै जो कछु चहियै ॥

एर विनु कोऊ काम न आयै ।

हहि माया शुटी प्रपञ्च द्यग, रतन सौं जनम गँवायै ॥  
कंचन कलग, विचित्र चित्र करि, रचि पचि भवन बनायै ।  
त्रामैं हैं तत्त्वन ही काढ्यै, पल भर रहन न पायै ॥  
हीं तब संग जरांगी, यौं कहि, तिथा धूति धन खायै ।  
चलत रही चित चोरि, मोरि सुख, एक न पग पहुँचायै ॥  
बोलि बोलि सुत स्वजन गित्रजन, लीन्यौ सुजस सुहायै ।  
परयौ जु काज अंत की विरियौं, तिनहुँ न आनिछुड़ायै ॥  
आसा करि करि जनगी जायो, कोटिक लाङ लड़ायै ।  
तोरि लयौ कटिहू कौ डोरा, तापर वदन जरायै ॥  
पतित उधारन, गनिका तरन, सो मैं सठ विसरायै ।  
लियौ न नाम कबहुँ धोखैं हूँ, सूरदास पछितायै ॥

ऐसैंहि जनम बहुत बौरायै ।

निमुख भयौ हरि चरन कमल तजि, मन संतोष न आयै ॥  
जब जब प्रगट भयौ जल यल मैं, तब तब बहु वधु धारे ।  
काम क्रोध मद लोभ मोह बस, अतिहि किए अघ भारे ॥  
तृग, कपि, त्रिप्र, गीध, गनिका, गज, कंस केसि खल तारे ।  
अघ वक वृषभ बकी धेनुक हति, भव जलनिधि तैं उद्बोरे ॥  
संखचूड मुष्टिक प्रलंब अरु वृनावर्त संहरे ।  
गज चानूर हते दव नास्यौ, व्याल मथ्यौ भव हरे ॥  
जन दुख जानि जमल दुम भंजन, अति आतुर हैं घाए ।  
गिरि कर धारि इंद्र मद मर्याँ, दालनि सुख उपजाए ॥  
रिपु कच गहत द्रुपद तनया जब सरन सरन कहि भावी ।  
बढ़े दुर्दूल कोट अंबर लौं, सभा मौक्ष पति रखी ॥  
मृतक जिवाइ दिए गुरु के सुत, व्याघ परम गति पाई ।  
नंद वहन वंधन भय मोचन, सूर पतित सरनाई ॥

माया देखत ही जु गई ।

ना हरिहित, ना तूहित, इन मैं एकौ तौ न भई ॥  
ज्यौं मधुमाली सँचति निरंतर धन की ओट लहै ।  
व्याकुल होत हरे ज्यौं सरवस, आँखिनि धूरि दहै ॥  
सुत संतान स्वजन बनिता रति, धन समान उनई ।  
रहदे सूर पवन पाञ्जड हति, करी जो प्रीति नहै ॥

### भगवान्‌की स्वरूप-माधुरी

हरि सुख निरखत नैन भुलाने ।

वे मधुकर रुचि पंकज लोभी, ताही तैं न उड़ाने ॥  
कुंडल मकर कपोलनि कैं दिग, जनु रवि रैति बिहाने ।  
भ्रुष सुंदर नैननि गति निरखत, खंजन मीन लजाने ॥  
अरुन अधर दुज कोटि बज्र दुर्ति, ससि गत रूप समाने ।  
कुंचित अलक सिलीसुख मिलि सनु लै मकरंद उड़ाने ॥  
तिलक ललाट कंठ सुकुतावलि, भूषण मनिमय साने ।  
सूर स्याम रस निधि नागर के कवौं गुन जात बखाने ॥

देवि री नबल नंदकिसीर ।

लकुट सौं लपटाइ ठाहे, जुवति जन मन चोर ॥  
चार लोचन हैंसि विलोकनि, देवि कै चित मोर ।  
मोहिनी मोहन लगावत, लटकि सुकुट शकोर ॥  
ब्रह्म धुनि सुनि नाद पोहत, करत हिरदै पोर ।  
सूर अंग विरंग लुंदर, छवि निरवि दून तोर ॥

हरि तन मोहिनी माई ।

अंग अंग अंग सत सत, भरनि नहि जाई ॥  
कोउ निरखि सिर सुकुट की छवि, सुरति निराई ।  
कोउ निरखि विशुरी अलक सुख छाई ॥  
कोउ निरखि रहि भाल चंदन, एक चित लाई ॥  
कोउ निरखि विश्वकी भ्रकुटि पर, नैन ठहराई ॥  
कोउ निरखि रहि चार लोचन, निमिय भरमाई ।  
सूर प्रभु की निरखि सोभा, कहत नहि जाई ॥

नैना (माई) भूलै अनत न जात ।

देखि सखी सोभा जु बती है, मोहन कैं मुसुकात ॥  
दाढ़िम दसन निकट नासा सुक, चौंच चलाइ न खात ।  
मनु रतिनाथ हाथ भ्रुकुटी धनु, विहिं अवलोकि दशत ॥  
बदन प्रभामय चंचल लोचन, आनंद उर न समात ।  
मानहुँ धौंह जुत्रा रथ जोते, यसि नचवत मृग मात ॥  
दुंचित केस अधर धुनि मुरली, सूरदास मुरात ।  
मनहुँ कमल पहुँ कोकिल कूजत, अलिगन उपर उडात ॥

स्याम कमल पद नख की सोभा ।

जे नख चंद्र इंद्र सिर परसे, सिव विरचि मन लोगा ॥  
जे नख चंद्र सनक सुनि वावत, नहि पावत भरमाई ।  
जे नख चंद्र सनक सुनि वावत, निरखि निरखि दरयाई ॥  
ते नख चंद्र प्रलाट वज जुवति, निरखि निरखि दरयाई ।  
जे नख चंद्र कनिंद्र हृदय हैं, एकौ निमिय न दान ।  
जे नख चंद्र महामुनि नारद, पलक न कहै विमान ॥

जे नख चंद्र भजन खल नासल, रसा हृदय जे परसति ।  
सूर स्याम नख चंद्र विमल छवि, गोपी जन मिलि दरसति ॥

स्याम हृदय जलसुत की माला, अतिहिं अनूपम छाजै(री) ।  
मनहुँ बलक पाँति नव घन पर, यह उपमा कदु भ्राजै(री) ॥  
पीत हरित सित अरुन माल बन, राजति हृदय विसाल(री) ।  
मानहुँ इंद्रधनुष नभ मंडल, प्रगट भयौ तिहि काल (री) ॥  
भगु पद चिह्न उरस्थल प्रगटे, कौस्तुभ मनि ढिग दरसत (री) ।  
बैठे मानौ षट विधु इक सँग, अर्द्ध निसा मिलि हरषत (री) ॥  
मुजाविसाल स्यामसुंदर की, चंदन सौरि चढाए (री) ।  
सूर सुभग अङ्ग वैंगकी सोमा, ब्रजललना ललचाए (री) ॥

निरखि सखि सुंदरता की सींवा ।

अधर अनूप सुरलिका राजति, लटकि रहति अध ग्रीवा ॥  
मंद मंद सुर पूरत मोहन, रण मलार वजावत ।  
कवहुँ रीक्षि मुरलि पर गिरिधर, आपुहि रस भरि गावत ॥  
हँसत लसति दसमावलि पंगति, ब्रजबनिता मन मोहत ।  
मरकतमनि पुट विच मुकुताहल, बैदून भेरे मनु सोहत ॥  
सुख निकसत सोभा इक आवति, मनु राजीव प्रकास ।  
सूर अरुन आगमन देखि कै, प्रकुलित भए हुलास ॥

मनोहर है नैननि की भाँति ।

मानहुँ दूरि करत बल अपनै, सरद कमल की काँति ॥  
इंदीवर राजीव कुसेसय, जीते सब गुन जाति ।  
अति आनंद सुप्रौढ़ा तातै, विकसत दिन अरु राति ॥  
खंजरीट मृग मीन विचारति, उपमा कौं अकुलाति ।  
चंचल चार चपल अवलोकनि, चितहि न एक समाति ॥  
जय कहुँ परत निमेषहु अंतर, जुग समान पल जाति ।  
सूरदास वह रसिक राधिका, निमि पर अति अनखाति ॥

देखि री हरि के चंचल नैन ।

खंजन मीन मृगज चपलाई, नहि पटतर इक सैन ॥  
राजव दल इंदीवर सतदल, कमल कुसेसय जाति ।  
निसि मुद्रित प्रातहि वै विकसित, ये विकसित दिनराति ॥  
अरुन द्वेषत, सित झलक पलक प्रति को वरनै उपमाह ।  
मनु सरसुति गंगा जमुना मिलि, आखम कौन्हौ आह ॥  
अवलोकनि जलधार तेज अति, तहाँ न मन ठहराह ।  
सूर स्याम लोचन अपार छवि, उपमा सुनि सरमाह ॥

देखि सखि ! मोहन मन चोरत ।

नैन कटाल्ल विलोकनि मधुरी, सुभग भकुटि विचि मोरत ॥

चंदन सौरि ललाट स्याम कै, निरखत अति सुखदाह ।  
मनौ एक सँग गंग जमुन नभ, तिरछी धार वहाई ॥  
मलथज भाल भकुटि रेखा की, कवि उपमा इक पाई ।  
मानहुँ अर्द्धचंद्र तट अहिनी, सुधा चुरावत आई ॥  
भकुटी चाह निरखि ब्रजसुंदरि, यह मन करति विचार ।  
सूरदास प्रभु सोभा सागर, कोउ न पावत पर ॥

हरि सुख निरखति नागरि नारि ।

कमल नैन के कमल बदन परु वारिज वारिज वारि ॥  
सुमति सुंदरी सरस पिया रस लंपट माँझी आरि ।  
हरिहि जुहारि जु करत बसीठी, प्रश्नमहि प्रथम चिन्हारि ॥  
राखति ओट कोटि जतननि करि, झाँपति अंचल झारि ।  
खंजन मनहुँ उड़न कौं आहुरे, सकत न पंख पसारि ॥  
देखि सरूप स्यामसुंदर कौं, रही न पलक सम्हारि ।  
देखहु सूरज अधिक सूर तन, अजहुँ न मानी हारि ॥

हरि सुख किधौं मोहिनी भाई ।

बोलत बचन मंत्र सौ लागत, गति मति जाति भुलाई ॥  
कुटिल अलक राजति भ्रुव ऊपर, जहाँ तहाँ वगराई ।  
स्याम काँसि मन करध्यौ हमरौ, अब समुझी चतुराई ॥  
कुंडल लंगिल कपोलनि झलकत, इन की गति मैं पाई ।  
सूर स्याम जुवती मन मोहन, ये सँग करत सहाई ॥

देखि री देखि सोभा रासि ।

काम पटतर कहा दीजै, रसा जिन की दासि ॥  
भुकुट सीस सिलंड सोहै, निरखि रहि ब्रजनारि ।  
कोटि भुरकोरेंड आभा, जिरकि छारै वारि ॥  
केस कुंचित विथुरि भ्रुव ऊर, बीच सोभा भाल ।  
मनौ खंजन बीच सुक मिलि, बैठे हैं इक पाँति ॥  
सुभग सुख व्यवननि, को सकै उपमाह ।  
कोटि कोटि कल तरनि छवि, देखि तनु भरमाह ॥  
सुभग मुख पर चार लोचन, नासिका इहि भाँति ।  
मनौ खंजन बीच सुक मिलि, बैठे हैं इक पाँति ॥  
सुभग नाथा तर अधर छवि, रस धरै अस्नाह ।  
मनौ विव निशारि सुख, भ्रुव भनुष देखि डाह ॥  
हँसत दसननि चमकताई, बज्र कन रचि पाँति ।  
दासिनी दाङिम नहीं सरि, कियौ मन अति औति ॥  
चिकुक ऊर चित वित चुरावत, नवल नंदकिसीर ।  
सूर प्रभु की निरखि सोभा भई तस्नी भोर ॥

बेटी यह मदनमोहन की, मुंदर वदन विशेषि ।  
 आ यासन दैप्रय पट थाव ली, अँखियाँ सार्वी रोकि ॥  
 अधीर रह मोर चंद्रिका मायै, छवि की उठति तरंग ।  
 मग्नु अमरणति धनुष विराजत नव जलधर के संग ॥  
 दानर नाम नमनीय भाल धर, कुंकुम तिळक दिएँ ।  
 पानु अविल धुवन की सोभा राजति उदय किएँ ॥  
 मनिमय जटिल लोल कुंडल की, आभा क्षालकरि गड ।  
 नहुँ यमल ऊपर ठिकर की, पसरि किरन प्रचंड ॥  
 कुटुंडि युटिल निकट दैननि कीं, चपल होति इहि मौति ।  
 नहुँ तापरन के संग खेलत चाल धूंग की पांति ॥  
 यमल स्वाम कुटिल अलकायलि, लिलित कपोलनि तीर ।  
 नहुँ सुभग ईदीवर ऊपर, मधुपुनि की यति भीर ॥  
 रह अधर नाहिका निकाई, वदत परसपर होइ ।  
 सुमनसा भई पाँगुरी, निरखि छगमगे घोइ ॥

## नैनानि ध्यान नंदकुमार ।

तीम मुकुट सिंखें ध्रुति नहीं उपमा पर ॥  
 कुटिल केस सुरेत राजत, मरहुँ मधुकर जाल ।  
 रुनिर केसर तिळक दीन्हे, परम सोभा भाल ॥  
 भृशुटि वंकट चार लोक्यम, रहीं जुबली देखि ।  
 मनी लंजन चाप डरडरि, उद्दरन्हि तिहि पेखि ॥  
 मकर कुंडल गंड झलमल, निरखि लज्जित काम ।  
 नासिका छवि कीर लज्जित, कर्विनि वरनत नाम ॥  
 अधर चिद्रुम दसन दाहिम, चिद्रुम है चित चोर ।  
 दूर प्रभु मुख चंद धूरन, नारि नैन चकोर ॥

## नंदनैदन सुख देखी नीकै ।

अंग प्रति कोटि माधुरी, निरखि होत सुख जी कै ॥  
 प्रस्तुत कुंडल की आभा, जलक कपोलनि पी कै ।  
 इह अमृत मकर कीदत मनु, यह उपमा कलु ही कै ॥  
 अंग की सुधि नहि जानै, करै कहति हैं लीकै ।  
 तुल प्रभु नदवर काले, रहत हैं रति पति बीकै ॥

## देखि ससी अधरनि की लाली ।

मस्कत तै लुभग कलेवर, ऐसे हैं बनमाली ॥  
 प्रात की धटा साँबरी, तापर अहन प्रकरस ।  
 दासिनि दिव चमकि रहत है, फहरत पीत सुवास ॥  
 तरन तमाल बेलि चढ़ि, जुग कल छिव सुराकि ।  
 कीर आइ मनु बैद्धौ, लेत वनत नहि ताकै ॥

हँसत दसन इक सोभा उपजति,  
 मनौ नीलमनि पुट सुकुला धन,;  
 किधौं बज कत, लाल नगनि खैनि  
 किधौं सुभग वंधुक कुमुम तर, जल  
 किधौं असन अंबुज विच वैठ  
 सह अरुन अधरनि की सोभा, व

ऐसे सुने नंदकुमार ।

नल निरखि सखि कोटि वारत,  
 अनु जंथ निहारि करना, क  
 कालनी पर प्राम वारत, देखि  
 कटि निरखि ततु सिंह वारत, ॥  
 नामियर हृद आपु वारत, रोम :  
 हृदय मुक्ता माल निरखत, वारि  
 करज कर पर कमल वारत, चल  
 मुजनि पर धर नाम वारत, गद  
 श्रीव की उपमा नहीं कहुँ, लसति  
 चिद्रुम पर चित वारि ढारत, अक  
 वंधुक चिद्रुम छिव वारत, ते  
 वचन सुनि कोकिल वारति, दसन  
 नासिका पर कीर वारत, चाह  
 केज लंजन मीन मृग सावकहु  
 भ्रुउटि पर सुर चाप वारत, तानि  
 अलक पर वारति अँधारी, तिळक  
 सूर प्रभु लिर मुकुट धारे, धरै

सुख पर नंद धारै वारि ।

कुटिल कन्ह पर भैर वारै, भौंह  
 भाल केसर तिळक लवि पर, मदन  
 मनु चली वहि सुआ धारा, निरखि  
 दैन सरसुलि जमुन नंगा, उपम  
 मीन लंजन मुगल वारै, कमल के  
 निराकृ कुंडल तरनि वारै, कूप  
 शलक ललित कपोल छवि पर, मुकुट स  
 नासिका पर कीर वारै, अधर नि  
 दलन पर कन बज वारै, शैज इ  
 चिद्रुम पर चित छिव वारै, धान  
 सूर हरि की अंग सोभा, को न

गोपी-प्रेम

अब तौ प्रगट भई जग जानी ।

॥ मोहन सों प्रीति निरंतर क्यैं निवैश्वी जानी ॥  
कहा करैं सुंदर मूरति इन नैननि माँझ समानी ।  
निकसत नाहि बहुत पचि हारी रोम रोम अरक्षानी ॥  
अब कैसैं निरवारि जाति है, मिल्यौ दूध छ्यौं पानी ।  
सूरदास प्रभु अंतरजामी ग्वालिन मन की जानी ॥

मन मैं रखौं नाहिन दौर ।

नंदनंदन अछत कैसैं, आनियै उर और ॥  
चलत चित्तवत दिवस जागत, स्वप्न सोकत राति ।  
हृदय तैं वह मदन मूरति, छिन न इत उर जाति ॥  
कहत कथा अनेक ऊँधी, लोकलाज दिवाइ ।  
कहा करैं मन प्रेम पूरन, घट न सिधु समाइ ॥  
स्याम गात सरोज आनन, ललित गति मूँडु हास ।  
सूर ऐसे स्वप्न कारन, मरत लोचन प्यास ॥

इदि उर मालन चोर गडे ।

अब कैसैं निकलत सुनि ऊँधी, तिरछे हैं उ अडे ॥  
जदपि अहीर जगोदा नंदन, कैसैं जात छँडे ।  
झौं जादौपति प्रभु कहियत हैं, हमैं न ल्यात बडे ॥  
को बसुदेव देवकीनंदन, को जानै कौ बूँडै ।  
सूर नंदनंदन के देखत, और न कोऊँ झूँडै ॥

सखी, इन नैननि तैं धन हारे ।

विनहों रितु वरथत निसि बासर, सदा मलिन दोड तारे ॥  
ऊरथ स्वास सभीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डोरे ।  
वहन सदन करि घरे वधन खर, दुख पावस के मारे ॥  
धुमरि धुमरि गरजत जल छाँडित, औँसु सलिल के धरे ।  
धूडित ब्रजहि भूरः को राखै, नितु गिरिवरधर प्यारे ॥

निसदिन वरमत नयन हमरे ।

सदा रहति वरथा रितु हम पर जव तैं स्याम सिधरे ॥  
अंजन घिर न रहत अँखियन मैं, कर कपोल भए कारे ।  
कंजुकि पट सूखत नहि कवहूं, उर विच वहत पतरे ॥

आँखू सलिल बहे पथ याके, भए जात सित तारे ।  
सूरदास अब हृषत है ब्रज, काहे न लेत उत्तरे ॥

हम न भई हुंदाबन रेतु ।

जहाँ चरननि डोलत नंदनंदन नित प्रति चारत धेतु ॥  
हम तैं धन्य परम थे द्रुम बन बाल बच्छ अर धेतु ।  
सूर सकल लेलत हैसि बोलत सँग मधि पीवत धेतु ॥

मधुकर स्याम हमारे चोर ।

मन हर लियौ माधुरी मूरति निरख नयन की कोर ॥  
पकरे हुते आनि उर अंतर प्रेम प्रीति कैं जोर ।  
गए छुड़ाय लोरि सब वंधन दै गए हँसनि अँकोर ॥  
चौंक परी जागत निषि चीती तारे गिनत भइ भोर ।  
सूरदास प्रभु सरबस लूँधौ, नागर नवल किसोर ॥

कबौं मन न भए इस बीउ ।

एक हुतौ सो गयौ स्याम सँग, को अवराधै इस ॥  
इंद्री सिधिल भई केसव बितु, ज्यौं देही बिनु सीस ।  
आसा आगि रहित तन स्वासा, जीवहि कोटि द्वीस ॥  
तुम तौ सस्ता स्यामसुंदर के, सकल जोग कै इस ।  
सूर हमारै नंदनंदन बितु, और नहीं जादीस ॥

दोहा

सदा सँघाती आपनो जिय कौ जीवन ग्रान ।  
सो तू विसरथो सहज ही हरि इस्वर भगवान ॥  
वेद पुरान सुमृति सचैं सुर नर सेवत जाहि ।  
महामूढ अज्ञानमति क्यों न सँभारत ताहि ॥  
प्रभु पूरन पावन सखा, ग्राननहू कौ नाथ ।  
परम दयालु कुपालु प्रभु जीवन याके हाथ ॥  
रामबास अति चाल मैं, जहाँ न एकौ अंग ।  
सुनि सठ तेरौ ग्रानपति तहाँ न छाँड़ायौ संग ॥  
दिवस राति पोषत रहशौ ज्यौं तंबोली पान ।  
वा दुख तैं तोहि काढि कै लै दीनो पथ पान ॥  
जिन जडे तैं चेतन कियौ, रचि गुन तत्त्व निधान ।  
चरन चिकुर कर नख दिए, नैन नासिका कान ॥  
जो पै जिय लजा नहीं, कहा कहौं सौ बार ।  
एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ 'सूर' गँवार ॥

कहाँ वह मंद सुरांध अमल रस  
 कहाँ वह प्रथम जलजातन कौ ॥  
 कहाँ वह सेज पौटियौ बन कौ  
 फूल विछौना मृदु पातन कौ ।  
 कहाँ वह दरस परस परमानंद  
 कोमल तन कोमल गातन कौ ॥

मेरी माई माधौ सौ मन मान्यौ ।

अपनौ तन और वा दोटा कौ एकमेक करि सान्यौ ॥  
 लोक वेद की कानि तज्जी मैं न्यौति धापनै आन्यौ ।  
 एक नंदनंदन के कारन वैर सत्तन सौं ठान्यौ ॥  
 अब क्यौं मिल होय मेरी सजनी ! मिल्यौ दूध अरु पान्यौ ।  
 परमानंद दास की ठाकुर पहलौ ही पहचान्यौ ॥

नंदलाल यौं मेरो मन मान्यौ कहा करैगौ कोय री ।  
 हीं तौ चरन कमल लघ्यानी जो भावै सो होय री ॥  
 यह परि मात पिता मोहि त्रासत हँसत बटाऊ लेग री ।  
 अब तौ जिय ऐसी शनि आई विधना रख्यौ है संजोग री ॥  
 जो मेरै वह लोक जायगौ और परलोक नसाय री ।  
 नंदनंदन कों तौउ न छाँड़ौ मिल्यौ निशान बजाय री ॥  
 यह तम धर बहुस्त्री नहि पइयै बल्लभ वेस सुरार री ।  
 रमानंद स्वामी के ऊपर सरबस ढारै वार री ॥

हैं नंदलाल बिना न रहूँ ।  
 नसा बाचा और कर्मणा हित की तोसीं कहूँ ॥

जो कछु कहौ लोई सिर ऊपर लो हौं सबै ॥  
 सदौं समीप रहूँ गिरिधर के सुंदर बदन च  
 थह तन अरपन हरि कौं कीनौं वह सुख कहाँ ले  
 परमानंद मदनमोहन के चरन सरोज गढ़

### विरह

जिय की साधन जियहि रही री ।

बहुरि गुपाल देखि नहीं पाए, बिल्यत कुंज अहीं री ।  
 इक दिन सौंज समीप ये मारग, बेचन जात दही री ।  
 प्रीति के लिए दान मिस मोहन, मेरी चाँह गही री ॥  
 बिन देखैं घड़ी जात कल्प सम, विरह अनल दही री ।  
 'परमानंद' स्वामी बिन दरसन, नैन न नीद वही री ॥

ब्रज के विरही लोग बिचारे ।

बिन गोपाल ठगे से ठाड़े, अति दुर्बल तन हारे ॥  
 भात जसोदा पंथ निहारत, निरखत साँझ सकारे ।  
 जो कोउ कान्ह कान्ह कहि बोलत, अँखियन बहत पनरे ॥  
 ये मधुरा काजर की रेखा, जे तिकसे ते करे ।  
 'परमानंद' स्वामी बिन ऐसे, ल्यौं चंदा बिनु तारे ॥

वह धात कमल दल नैन की ।

बार बार सुनि आवत रजनी, बहु दुरिदैनी रैन की ॥  
 वह लीला, वह रास सरद कौ, गोरज रजनी आवनि ।  
 अस वह ऊँची टेर मनोहर, मिस कर मोहि सुनावनि ॥  
 वहि कुंजनि में रास खिलायौ, निया शमाई मन की ।  
 'परमानंद' प्रभु से क्यों जीवै, जो पोरी मृदु वैन की ॥

कैन वेर भह चलैं री गुपालै ।

हैं नगरार गई ही न्यौते,  
 वर बार बोलत ब्रजधालै ॥

तेर तन कौ रूप कहाँ गयौ भामिनि ।  
 अस मुख कमल मुखाय रह्यौ ।

सब सौभाग्य गयौ हरि के लँग,  
 हृदय कमल सौं विर दयौ ॥

को बोलै, को नैन उचारै,  
 को प्रतिउत्तर देइ विकल मन ।

जो सरबस अकूर चुरायौ,  
‘परमानन्द’ स्वामी जीवन धन ॥

चलौ सखि ! देखौं नंदकिसोर !

रधा संग लिए विहरत हैं, सघन कुंज बन खोर ॥  
तैसिय घटा धुमडि चहुँ दिसि तैं, गरजति हैं धनधोर ।  
तैसिय लहलहात सौदामिनि, पवन चलत अति जोर ॥  
पीत वसन बनमाल स्याम कै, सारी सुरँग तन गोर ।  
सदा विहार करौ ‘परमानन्द’ सदा वसौ मन मोर ॥

माई, हैं आनन्द गुन गाँऊ ।

गोकुल की चिंतामनि माधौ, जो माँगौ सो पाऊ ॥  
जब हैं कसलैन ब्रज आए, सकल संपदा बाढ़ी ।  
नंदराय के द्वारे देखौ, अष्ट महासिधि ठाड़ी ॥  
फूल्यौ फल्यौ सकल बृंदावन, कामधेनु दुहि लीजै ।  
माँगै मेह इंद्र वरसावै, कृष्ण कृपा सुख जीजै ॥

## श्रीकृष्णदासजी

( श्रीबल्लभानार्थजीके शिष्य और अष्टद्वापके महाकवि, जन्म-वि० सं० १५९० ।  
जाति—शूद्र )

बाल दसा गोपाल की, सब काहू प्यारी ।  
लै लै गोद खिलावहीं, जसुमति महतारी ॥  
पीत झगुल तन सोहहीं, सिर कुलह विराजै ।  
झुट्र घटिका कटि बनी, पग नूपुर बाजै ॥  
सुरि सुरि नाचै मोर ज्यौं, सुर नर सुनि मोहै ।  
‘कृष्णदास’ प्रभु नंद के ओँगन अति सोहै ॥

भादौं सुदि आठैं उजियारी, आनन्द को निधि आई ॥  
रस की रासि, रूप की सीमा, अँग अँग सुंदरताई ।  
कोटि वदन वारों मुसिकनि पर, मुख छवि वरनि न जाई ॥  
पूरन सुख पायौ ब्रजबासी, नैनन निरखि सिहाई ।  
‘कृष्णदास’ स्वामिनि ब्रज प्रगटीं, श्री गिरिधर सुखदाई ॥

हिंटोरैं माई शूलत लाल विहारी ।

सँग शूलति वृपमानु नंदिनी, प्रानन हूँ तैं प्यारी ॥  
लीलांवर पीतांवर की छयि, धन दामिनि अनुहारी ।  
बलि बलि जाय जुगल चंदन पर ‘कृष्णदास’ वलिहारी ॥

कमल मुख देखत कौन अद्याय ।

सुनि री सखी लोचन अलि मेरे मुदित रहे अद्याय ॥  
भृक्तामाल लाल उर ऊपर जनु फूली बन राय ।  
गोवधनधर अँग अँगपर ‘कृष्णदास’ वलि जाय ॥

## श्रीकुम्भनदासजी

(गदापति श्रीकामाचार्यजीके प्रस्तुता शिष्य और अष्टापके कवि) निवासस्थान, जगुमालोयाम (गोवर्धन), जाति—  
नाम सुभग तन मोभित छीटे, नीकी लागी चंदन की।  
गंगित तुँग अवीर कुमुकगा और सुदेस रज वंदन की॥

‘कुम्भनदास’ मन्दन तन मन चलिहर कियौ नैदनंदन की।  
गिरधरलाल रची विधि भासीं जुवती तन मन फंदन की॥

मार्ट गिरधर के गुन गाँऊ।

इरो तौ व्रत ये है निति दिन और न रुचि उपजाऊ॥  
खेलन आँगन आउ लाडिले ! नैकहुँ दरसन पाऊ॥  
‘कुम्भनदास’ इह जग के करन लालच लागि रहाऊ॥

चिलगु जिन मानी री कोउ हारि कौ।

भोरहि आवत नाच नचावत, खल दही घर घर कौ॥  
प्यारो प्रान दीजै जो पड़ये, नापर नंद महर कौ॥  
‘कुम्भनदास’ प्रभु गोवर्धनधर, रसिक राधिका घर कौ॥

नैन भरि देख्यौ नंदकुमार।

ता दिन तें सब भूलि गयौ हौं बिसरयौ पन परिवार॥  
निन देखै हौं बिकल भयौ हौं अंग अंग सब हारि।  
ताते सुधि साँवरि भूरति की लोचन भरि भरि बारि॥  
लव रस पैमित नहिं मानों कैसे मिलै कनहाइ।  
‘कुम्भनदास’ प्रभु गोवर्धनधर मिलियै वहुरि री माइ॥

जो पै चौंप मिलन की होय।

तौ क्यौं रहै ताहि निनु देखै लाल करौ किन  
जो यह विरह परसपर व्यापै जो कुछु जीवन  
लोक लाज कुल की मरजादा एकौ चितं न  
‘कुम्भनदास’ प्रभु जा तन लागी और न कहु इ  
गिरधरलाल तोहि निनु देखै छिन कल्प है

हिलगन कठिन है या मन की।

जाके लियै देखि मेरी सजनी, लाज गयी सब तन  
धर्म जाउ अरु लोग हँसौ सब, अरु गाओ झुल ग  
सो क्यौं रहै ताहि निन देखै, जो जाकौ हितका  
ज्यौं रस लुध निमध नहिं छाँड़त, है आधीन मृग ग  
‘कुम्भनदास’ सनेह मरम श्रीगोवरधनधर उ

कवहुँ देखिहौं इन नैनतु।

सुंदर स्याम मनोहर मूरत अंग अंग सुख देन  
बृंदावन बिहार दिन दिन प्रति गोपवृद्ध सँग लै  
हँसि हँसि हरपि पतौवन पावन बाँटि बाँटि पय  
‘कुम्भनदास’ किते दिन बीते, किए रैनु सुख कै  
अब गिरधर निन नित और बासर मन न रहत क्यों कै

## श्रीनन्ददासजी

(श्रीविठ्ठलनाथजीके शिष्य और अष्टापके महान् भक्त-कवि। आम—रामपुर)

चिरैश्य तुहुबुहानी, सुनि चकई की आनी,  
कहति जसोदा रानी, जागौ भेरे लाला।  
रवि की किरन आनी, कुमुदिनी सकुचानी,  
कमल बिकानी, दधि मथै बाल।  
सुब्रल सुदामा तोक उज्ज्वल बसन पहिरै,  
द्वारे ठाढ़े हेत वै बाल गोपाल।  
‘नंददास’ बलिहारी उठि बैठै गिरधारी,  
सब कोउ देख्यौ चाहै लेचन बिसाल।

सुंदर स्याम पालनै झूलै॥  
जगुमति भाय निकट अति बैठी, निरखि निरखि मन झूलै।  
झुक्का लैकै बजावत रुचि सौं, लालहि के अनुकूलै॥  
बदन चाह पर छुटी अलक रहि, देखि मिट्ट उर सूलै॥

अंबुज पर मानहुँ अलि छैना, चिर आए वहुँ  
दसन दोउ उधरत जब हार के, कहा कहुँ अम  
‘नंददास’ घन मैं ज्यौं दाभिनि, चमकि उरति कुछु  
माचो जू! तनिक सै बदन सदन सोपा कौ  
तनिक भकुटि वै तनिक दिंदि  
तनिक लूटी युनि मन भोई  
मानों कमल बैटे अलि दी  
तनिक सै रज लागी निरखत बड़मारी  
कंठ कट्टल सोई औ बधवल  
(‘नंददास’) प्रभु जसुदा आँगन नैन  
जाकंग जम गाइ गाइ मृग भये मर

नंदभवन को भूभन माई ।

जमुदा कौ लाल वीर हलधर कौ, राधारमन परम सुखदाई ॥  
सिव कौ धन संतन कौ सरबस, महिमा वेद पुरानन गाई ।  
इंद्र कौ इंद्र देव देवन कौ, ब्रह्म कौ ब्रह्म अधिक अधिकाई ॥  
काल कौ काल ईस ईसन कौ, अतिहि अतुल तोल्यौ नहिं जाई ।  
'नंददास' कौ जीवन गिरिधर, गोकुल गाँव कौ कुँचर कन्हाई ॥

नंद गाँउ नीकौ लागत री ।

प्रात समैं दधि मथत भालिनी,  
विपुल मधुर धुनि गाजत री ॥  
धन गोपी, धन भाल संग के,  
जिन के मोहन उर लागत री ।  
हलधर संग सखा सब राजत,  
गिरिधर लै दधि भागत री ॥  
जहाँ वसत सुर, देव, महा सुनि,  
एकौ पल नहिं त्यागत री ।  
'नंददास' प्रभु कृष्ण कौ इहि फल,  
गिरिधर देखि मन जागत री ॥

काह कुँचर के कर पहड़न पर, मनौं गोवर्धन बृत्य करै ।  
ज्यौं ज्यौं तान उठत मुरली की, त्यौं त्यौं लालन अधर धरै ॥  
मेघ मृदंगी मृदंग बजावत, दामिनि दम्क मानौं दीप जरै ।  
भाल ताल दै नीकैं गाधत, गायन कैं थंग सुर जु भरै ॥  
देत असीस भक्त गोपीजन, वरणा कौ जल अमित झरै ।  
अति अद्भुत अवसर गिरिधर कौ, 'नंददास' के दुख हरै ॥

कृष्ण नाम जब तैं श्रवन सुन्धौं री आली,  
भूली री भवन हौं तो वावरी भई री ।  
भरि भरि आवै नैन चित हू न परै चैन,  
मूर्ख हू न आवै वैन तन कीदसा कछु औरै भई री ॥  
जेतेक नैम धर्म कीने री बहुत विधि,  
अंग अंग भई हौं तौ श्रवन मई री ।  
'नंददास' जाके श्रवन सुनै यह गति भई  
माधुरी मूरति कैसौं कैसी दई री ॥  
ठाही री स्वरै भाई कौन कौ किसोर ।  
गाँवरै वरन, मन दरन, वंसी धरन,  
वाम करन कैसी गति जोर ॥  
पौर परसि जान चल होत देवि,  
रिये पट कौ नटकीलौ छोर ।

सुभग साँवरी छोटी घटा तैं निकसि आवै,  
छबीली छटा कौ जैसौं छबीलौ छोर ॥  
पूछति पाहुनी न्वारि हा हा हो मेरी आली,  
कहा नाम को है, चितवन कौ चोर ।  
'नंददास' जाहि चाहि चकचौंधी आई जाय,  
भूल्यौ री भवन गमन भूल्यौ रजनी भोर ॥

देखन देत न बैरन पलकै ।

निरखत बदन लाल गिरिधर कौ बीच परत मानौं बज्र की सलकै ॥  
बन तैं आवत बेनु बजावत गोरज मंडित राजत अलकै ।  
माथे मुकुट श्रवन मनि कुंडल ललित कपोलन ज्ञाई ज्ञलकै ॥  
ऐसे मुख देखन कौं सजनी ! कहा कियौ यह पूर कमल कै ।  
'नंददास' सब जड़न की इहि गति मीन मरत भायें नहिं जल कै ॥  
देखौं री नागर नट निरतत कालिदी तट,  
गोपिन के मध्य राजै मुकुट लटक ।  
कालनी किंकनी कटि पीतांवर की चटक  
कुंडल किरन रवि रथ की अटक ॥  
ततथेई ततथेई सबद सकल वट  
उरप तिरप गति पद की पटक ।  
रास मध्य राधे राधे मुरली मैं यैह रट  
'नंददास' गावै तहाँ निपट निकट ॥

गम कृष्ण कहिए उठि भोर ।  
अवध ईस वे धनुष धरे हैं,  
यह ब्रज मालन जोर ॥  
उन के छत्र चैवर सिंहासन,  
भरत सबुहन लछमन जोर ।  
इन के लकुट मुकुट पीतांवर,  
नित गायन संग नंद किसोर ॥  
उन सागर मैं सिला तराई  
इन राखौं गिरि नव की कोर ।  
नंददास प्रभु सब तजि भजिए,  
जैसे निरखत चंद नकोर ॥  
जो गिरि हचै तौ वसौं श्रीगोवर्धन,  
गाम लचै तौ वसौं नैदगाम ।  
नगर रचै तौ वसौं श्रीमधुपुरी,  
सोभा सागर अति अमिराम ॥  
सरिता रचै तौ वसौं श्रीज्ञना तट,  
सकल भनोग्य पूरन काम ।

नंददाम कानमहि रुचे ती,  
यमी भूमि वृदावन धाम ॥  
पूलन की गाला धाय, पूली किरे आली साय,  
शोकत शगोर्खे टाढ़ी नंदिनी जनक की ।

कुँवर कोमल गाल, को कहै पिता सौं बात  
छाँड़ि है यह मन तोरन धनुष  
'नंददास' प्रभु जानि तोन्हौ है पिनाक तानि  
बाँस की धनेया जैसैं बालक तनक

### श्रीचतुर्भुजदासजी

(श्रीपिट्ठलनाथजीके दिव्य पवं पुष्टिमार्गके महान् भगवदस्मृततथा अष्टापके महाकवि, जन्म—वि० सं० १५७५ जमुनायते पितामा नाम—कुम्भनदासजी । देशवसान—वि० सं० १६४२ में रुद्रकुण्डपर । )

गदा महोत्तर गोकुल गाम ।  
प्रेम मुद्रित गोपी जस गावत, लै है स्याम सुंदर को नाम ॥  
जहाँ तहाँ लीला अवगाहत, खरिक लोरि दधिमंथन धाम ।  
परम कुत्तल निसि अरु वासर, आनंद ही वीतत सब जाम ॥  
नंदगोप खुत सब सुखदायक, मोहन मूरति पूरन काम ।  
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर आनंद निधि,  
नव सिख रूप सुभग अभिराम ॥

भोर भयो नैंद जसुदा बोलत, जागौ मेरे गिरधर लाल ।  
रतन जटित सिंहासन बैठौ, देखन कौं आई ब्रज बाल ॥  
नियरै जाइ सुपेती खैचत, ब्रह्मरौ ढाँपत बदन रसाल ।  
दूध दही और माखन मेवा, भामिनि भरि लाइ हैं थाल ॥  
तब हरि हरपि गोद उठि बैठे, करत कलेउ तिलक दै भाल ।  
दै बीरा आरति वारति हैं, 'चत्रभुज' गावत गीत रसाल ॥

मंगल आरती गोपाल की ।  
नित उठि मंगल होत निरखि सुख, चितवन नैन विसाल की ॥  
मंगल रूप स्याम सुंदर कौ, मंगल भृकुटी भाल की ।  
'चत्रभुजदास' सदा मंगल निधि, वानिक गिरिधर लाल की ॥

मोहन चलत बाजत पैजनि पग ।  
सब्द सुनत चकित है चितवत,  
दुमकि दुमकि त्यौं धरत जु हैं डग ॥  
मुदित जसोदा चितवति सिसु तन,  
लै उछंगा लावै कंठ सु ल्या ।  
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन लाल कौ,  
ब्रज जन निरखत ठड़े ठग ठग ॥

करत हो सैवे सयानी बात ।  
जै लैं देखे नाहिन सुंदर, कमल नयन मुसिकात ॥

सब चतुराई विसर जात है, खान पान की  
विनु देखैं छिन कल न परत है, पल भरि कल्प विह  
सुनि भामिनि के बचन मनोहर, सन महँ अति सुकुच  
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन लाल सँग सदा बसौं दिन रा

नैनन ऐसी बान परी ।

बिन देखैं गिरिधरन लाल सुख, जुग भर जात घ  
भारग जात उल्ट तन चितयौ, मो तन दृष्टि प  
तबहि तैं लागी चटपटि इकट्ठक कुल मरजाद ह  
चत्रभुजदास छुड़वन कौं हठ मैं बहु भाँति क  
तब सरबस हर मन हर लीनो देह दसा विस

बात हिल्या की कासों कहिये ।

सुन री सखी व्यथा यातन की समझ समझ मन चुप करर  
मरमी बिना मरम को जानै यह उपहास जान जग स  
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन मिलैं जब तबहीं सब सुख

ब्रज पर उनर्ह आजु धटा ।

नह नह बैंद सुहावनि लागति, चमकति विज्ञु ।  
गरजत गगन मुर्दंग बजावत, नाचत मोर ।  
गावत हैं सुर दै चातक पिक, प्रगाढ़ी मदन  
सब मिलि भेट देत नंदलालैं, बैठे जँचे ।  
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन लाल सिर, कसुंभी पीत ।

हिंडोरैं माई श्लूलत गिरिधरधारी ।

बाम भाग बृप्तमानुनंदिनी, पहरै कसुंभी गा  
ब्रज जुवती चहुँ दिसि तैं टाढ़ी, निरखत तन मन व

'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन लाल सँग,  
बाढ़यौ रँग अति भा

नैदलाल बजाई बाँसुरी श्री जमुनाजी के तीर री ।  
अधर कर मिल सप्त स्वर सौं उपज्ञत राग रसाल री ॥  
ब्रज जुबती धुनि सुनि उठ धाई, रही न अंग सेंभाल री ।  
छूटी लट लपटात बदन पर, दूटी मुक्ता माल री ॥  
बहत न नीर, समीर न डोलत, बृंदा विपिन सँकेत री ।  
सुन थाबरहु अचेत चेत भये, जंगम भये अचेत री ॥  
अफर करे फल कूल भये री, जरे हरे भये पात री ।  
उमग प्रेम जल छहयौ सिखर तैं, गरे गिरिन के गात री ॥

तून नहिं चरत मृगा मृगि दोऊ, तान परी जब कान री ।  
सुनत गान पिर परे धरनि पर, मानौं लगे बान री ॥  
सुरभी लग दियौ केहरि कौं, रहत अवन हीं डार री ।  
मेक भुजंग फनहिं चढ वैठे, निरखत श्रीमुख चाढ री ॥  
खग रसना रस चाल बदन अरु नयन मूँद, मौन धार री ।  
चालत फलहि न परे चौंच तैं, वैठे पाँख पसार री ॥  
सुर नर असुर देव सब मोहे, छाये व्योम विमान री ।  
चत्रभुजदास कहौंको न बस भये, या मुरली की तान री ॥

—३४८—

## श्रीछीतस्वामीजी

( श्रीविष्णुलनाथजीके प्रमुख शिष्य और अष्टावके महाकवि । आविर्माव—वि० सं० १५७२ के लगभग, जाति—मधुराके बौद्धे,  
अन्तर्धान—वि० सं० १६४२ में पूँछरी स्थानपर । )

मेरी अँखियन के भूषण गिरिधारी ।

बल बल जाँ छबीली छवि पर अति आँद सुखकारी ॥  
परम उदार चतुर चितामनि दरस परस दुखहारी ।  
अतुल प्रताप तनिक तुलसीदल मानत सेवा भारी ॥  
‘छीतस्वामी’ गिरिधरन विसद जस गावत गोकुल नारी ।  
कहा वरनौं गुणगाथ नाथ के श्रीविष्णु दृदय विहारी ॥

मेरी अँखियन देखौ गिरिधर भावै ।

कहा कहौं तो सौं सुनि सजनी, उत्थी कौं उठि धावै ॥  
मेर मुकुट कानन कुँडल लखि, तन गति सब विसरावै ।  
बाजू घंड कठ मनि भूषण, निरखि निरखि सचु पावै ॥  
‘छीतस्वामी’ कटि छुद्र धंटिका, नूपुर पदहि सुनावै ।  
इदि छवि सदा श्रीविष्णु के उर, मो मन मोद बढ़ावै ॥

सुमरौ गोपाल लाल, सुंदर अति रूप जाल,

मिठैं जंजाल सकल, निरखत संग गोप बाल ।

मेर मुकुट सीस धरैं, बनमाला सुभग गरैं,

सब कौ मन हैं देखि, कुँडल की क्लक गाल ॥

आसूग संग योहैं, भोतिन के हर योहैं,

कंठशी सोहैं, हरा गोपी निरखत निहाल ।

‘छीतस्वामी’ गोवरधनधारी, कुँवर नंद सुवन,

गायन के पाछे पाछे, धरत है लक्कीली चाल ॥

राधिका स्याम सुँदर कौं प्यारी ।

नव सिल अंग अनूप विराजत, कोटि चंद दुति वारी ॥  
एक छिन संग न छाँडत मोहन, निरखि निरखि चलिहारी ।  
‘छीतस्वामी’ गिरिधर बस जाके, सौं वृषभानुदुलारी ॥

गुन अपार एक मूल कहौं लौं कहिये ।

तजौ साधन भजौ नाम श्रीजमुनाजी कौ

लाल गिरिधरन बर तवहि पैये ॥

परम पुनीत ग्रीति रीति सब जानि कै

दृढ करि चरन पर चित्त लैये ।

‘छीतस्वामी’ गिरिधरन श्रीविष्णु

ऐसी निधि छाँड़ि अब कहैं जु जैये ॥

जा मुख तैं श्रीजमुना नाम आवै ।

जाके ऊपर कृपा करत श्रीविष्णु प्रभु

सोईं श्रीजमुनाजी को भेद पावै ॥

तन मन धन सब लाल गिरिधरन कौं

दै कै चरन पर चित्त लावै ।

‘छीतस्वामी’ गिरिधरन श्रीविष्णु

नैनन प्रगट लीला दिखावै ॥

## श्रीगोविन्दस्वामीजी

( गोपिन्दनानन्द भगवत् शिष्य और अवश्यक के महान् मठगान्ककारी, जम-जि. २० १९६२ वर्ष के विकट अन्न, गोपनी, गोपनी-गोपनी, न० १८८२ गोपनीके समीप। )

### चाल-लीला

कभी कृष्ण ; बोलोद्य थोरै, हरि अवगत थोउ सोये हो ।  
मानव युग गोपन भारिनी, हरित दही बिलेवै हो ॥  
गोपोद्य दुनि पूर्व रथी बजे गोवी दीप संजोये हो ।  
मुरमी हृक, वलम्भा जाग, अनगिय मारण जोरै हो ॥  
दग्ध भगुन भुजुर दृजित, देत गहं कर रोली हो ।  
अनमी गाय एव घोल हुहत है, तुझरी गाय अकेली हो ॥  
जागे कृष्ण लगत के जिवत, अरन रेन सुख सोइ हो ।  
(गोविन्द) प्रभु जो दुहत है छोरी, गोपन्धू मन मोइ हो ॥

अहीं दधि मथति ओप की रानी ।

दिव्य नीर वहै दक्षिण कौ, किंकिनि रुद्धुन वानी ॥  
मुत के कम गावत आवेद भरि, शाल चरित जानि जानी ।  
क्षम-जल राजे वदन कमल पर, मनहूँ लरद अरसानी ॥  
पुत्र मनेह चुआत योवार, प्रसुदित अति हरयानी ।  
(गोविन्द) प्रभु दुदुदनि चलधाए पकडी रहे मथनी ॥

प्रात् समय उठि जसोमति, दधि चंथन कीन्है ।  
प्रेम लहित नवरीत है, सुत के मुव दीन्है ॥  
औट दूध धेया कियै हरि सन्दि जौ दीन्है ।  
मधु मेवा पकवान है, हरे आगे कीन्है ।  
इहि विधि नित कीड़ा करै, जमनी कुक पावै ।  
(गोविन्द) प्रभु आरंद मै, आँगन में धावै ॥

प्रात् समय उठि जसुमति जननी,

गिरिधर तुत कौ उबटि नवालति ।

करि लियारु चतन भूपन सजि,  
फूल्ल रचि रचि पाग बनावति ॥  
कूट श्रेद, बांग अति सोमिति,  
विच विच चौब असगजा अवति ।  
मूदन लाल फुदन सोमिति  
आजु की छवि कच्छु कहत न आवति ॥  
शिविध कुमुम की भाल उर धरि,  
श्रीकर मुरली बेतु गहावति ।  
है दर्पन देखे श्रीमुल कौ,  
(गोविन्द) प्रभु चरनत लिर नावति ॥

क्रीड़त मनिय आँगन रंग ।  
दीत तापता की झुमुल वन्यै, कुछही लाल झुरंग ॥

कटि किंकिनी धोर विसित सुदि, धाय चलत सौह  
गोमुत्र पूँछ भ्रमावत कर गदि, पंकरग सौह  
राजमोत्तेन लर लशकत सौहै, धुंदर लहरत  
गोविन्द! प्रभु के अंग अंग पर चरै कीटि अ

आउ मेरे गोविन्द, गोकुल चंदा ।

मह वही भार खेलत जमगतद, वदन दिलास देहु अ  
गमन की आवनि की विरियाँ हिनदिन किरन होत अति  
आए तात मात छतियाँ ल्लो, गोविन्द! प्रभु ब्रजन मुख

वैठे गोवरधन लिर गोद ।

मंडल सत्ता समय धल मोहन, खेलत हँसत ग्रीद  
मई अप्रेर भूम जब लागी, चिलते पर की कोद  
गोविन्द! तहीं छाक लै आओ, पठई मात जोड़-

कदम लदि काह बुलावत गेया ।

मोहन मुरली लवद मुनत ही, जहैं तहैं ते उठि धै  
आवहु आवहु साला सिभिटि लव, पाई हैं इक छै  
गोविन्द! प्रभु दाक धो कहन लागे अब पर की वगैरे  
विमल कंदव नूल इवलंवित, ठाड़े हैं जिय भासुमुता ॥  
सीस उपरी, लाल काढिनी; उपरीना फलहरत पीत ।  
पारिजात अवतेस सरित सरित, सीस रेहरौ, बनी अलक र  
विमल कोपेल धुंडल की जोमा, भंद हास जित कोठि मदन ।  
बाम करोल वास भुजपर धरि, मुरल बजावत तान विकरप  
(गोविन्द) प्रभु श्रीदाम प्रायुति तदा करत प्रसंसार जनारन

केनु शजावत री मोहन कल ।

बाम कोल वास भुजही पर, बलगित धुब रस चाल द्वंगन  
लिंदूरादन अधर सुधारह, पूरित रेत्र महुल अंगुली द  
जीवर विकट तान उपत्तत रस, गोविन्द! प्रभु वालि मुख अतुर

विद्याति तेजै तोहन ही की तारै ।

कुमु जसुमति लेहे युत सपूत अति, कुल दीर्घ उत्तिरत  
धैनु आवत जात धूरि जव, हैल मवत अति भारि  
धोप जैनीवन नूरि द्वमरै, छिम इत उत जिन धरि  
सात दौठ गिरियाज धरवै कर, सात वरम की धरि  
गोविन्द! प्रभु चिरियावै शमी! तेजै युत गोपन्धू रववारी

विधाति विवहु न जानी ।

दुंदर बदन धान करिते धूं रोम रोम प्रसि नयन त धै  
करी यह चात भ्रानी

लदन सकल वसु होती री मेरे सुनती पिय मुख अमृत बानी।  
एरी मेरै भुजा होति कोटिक तौ हैं मेंटि गोविंद प्रभु सौं  
तौउ न तपत बुझानी॥

हमैं ब्रजराज लाडिले सौं काज।  
जस अपजम कौ हमैं कहा डर कहनौ होय सो कहिलेउ आज॥

कैयौं काहू कृपा करी बौं न करी जो सनसुख ब्रजन्दप जुवराज।  
गोविंद प्रभु की कृपा चाहियै जो है सकल घोप तिरताज॥  
प्रीतम प्रीति ही तैं पैयै।  
जर्दपि रूप, गुन, सील, सुधरता, इन बातन न रिखैयै॥  
सत कुल जनम करम सुभ लच्छन, वेद पुरान पढ़ैयै॥  
'गोविंद' प्रभु विन ल्लैह सुवा लौ, रसगा कह नचैयै॥

## खामी श्रीयोगानन्दाचार्य

(अस्तित्व-काल—आजसे करीब ५०० वर्ष पूर्व—)

(प्रेषक—श्रीहनुमानशरण सिंहनिया )

प्रात भए आवत दिवस ऐसेइ जीवन जात॥  
ऐसेइ जीवन जात कमाई करत पाप की॥  
पुनि पुनि भोगत नरक विपति सहि त्रिविधताप की॥  
जुवा भनो मदभन्त किए, हरि नाम न भावै॥  
'जोगानंद' गवाँथ जन्म पाछे पछतावै॥  
गाँझ भई पुनि रात पुनि, रात भईं पुनि प्रात॥  
प्रात भईं आवत दिवस, ऐसेइ जीवन जात॥  
तर्प डसै केहरि ग्रसै, ताहि भलौ करि मानि॥  
ताहि भलौ करि मानि दुष्ट कौ संग न कीजै॥  
खल की भीठी बात जहर ज्यौं जानि न पीजै॥  
बात करै मन लिये, यान अरु ध्यान न भावै॥  
'जोगानंद' कुसंग साधु कौं व्याध बनावै॥  
दुर्जन की संगति तजौं, दुष्ट संग अति हानि॥  
मर्प डसै केहरि ग्रसै ताहि भलौ करि मानि॥  
  
मंथन करि पथ तक तजि, लह नवनीत अहीर॥  
लह नवनीत अहीर लहै मधु जिमि मधुमाली॥  
तैसेइ गहिये सार सकल ग्रंथन रस बाली॥  
साधन सौं धन मिलै लगै जब राम नाम सन॥  
'जोगानंद' निहारि नयन सत चित आनंद धन॥  
हंस सार ग्राही गहत, छीर तजत सब नीर॥  
मंथन करि पथ तक तजि, लह नवनीत अहीर॥

प्रीत कीजिये राम सौं जिमि पतिवरता नारि॥  
जिमि पतिवरता नारि, न कछु मन मैं अमिलापै॥  
तैसेइ भक्त अनन्य टेक चातक ज्यौं राखै॥  
राम रूप रस त्यागि विषय रस स्वाद न चालै॥  
'जोगानंद' सुजान आन को नाम न भावै॥  
नेकहि मैं ब्रत नासई, आन की ओर निहारि॥  
प्रीत कीजिये राम सौं जिमि पतिवरता नारि॥  
  
चल चल ऊरध धंथ लखि, दिव्यधाम साकेत॥  
दिव्यधाम साकेत जहाँ सिथरमन विराजत॥  
जहाँ मारुतसुत आदि पाखद सेवक भ्राजत॥  
प्रलय काल नहिं नास सदा आनंद अखंडित॥  
'जोगानंद' बिचारि चलौ ऊरध पथ पंडित॥  
मूढ ! न भटकै नरक मैं, कर अपने चित चेत॥  
चल चल ऊरध धंथ लखि, दिव्यधाम साकेत॥  
  
रघुनंदन की झल्क लखि, भूलि जात सब जोग॥  
भूलि जात सब जोग लगैं जब राम-नयन-सर॥  
पुन्थ-पाप सब जरैं वहै उर विरह निरंतर॥  
कोटि वरस तप करै विरह लिन की वहि तासौं॥  
'जोगानंद' विन मीत हृदय की कहिये कासौं॥  
प्रेम-रंग जेहि बँग लगै, ताहि मुहात न भोग॥  
रघुनंदन की झल्क लखि, भूलि जात सब जोग॥

## धन्ना भक्त

(जन्म-संक्षेप-अनुमानतः वि. सं० १४७२, जन्मशान—टैक इलाकेके खुबन गाँव (राजस्थान), जाति—कृषक जाट )

रे चित चेतमि की न दयाल  
दगोदर विवहित जानसि कोई।  
जे धावहि पेट बहिमंड कड,  
करता करै सु दोई॥



जननी केरे उदर उदक महि, पिंडु किआ दस दारा।  
देइ अहार अगनि माहि राषै, औसा पसमु हमरा॥  
कुम्भी जल माहि तन तिसु चाहरि, पंथ धीर तिन्ह नाही॥  
पूर्ण परमानंद मनोहर, समझि देखु मन माही॥  
पापणि कोइ शपतु देइ रहता, ताचो मारग जाए॥

## आर्त पक्षीकी प्रार्थना

अब कैं राखि लेहु भगवान् ।  
 हौं अनाथ वैष्णवी दुम डरिया, पारधि साध्यौ बान् ॥  
 नाकैं डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर दुक्यौ सचान् ।  
 उहँ भाँति दुख भयौ दयामय, कौन उवारै प्रान् ॥  
 सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान् ।  
 'सूरदास' सर लग्यौ सचानहिं, जय जय कृपानिधान ॥

—सूरदास

### धूल-पर-धूल (राँका-बाँका)

भक्तग्रेषु नामदेवजीने एक दिन श्रीविष्णुलभगवान्-  
से प्रार्थना की—‘आप तो सर्वसंसर्व हैं। लक्ष्मीनाथ हैं।  
आपका भक्त राँका कितना दुःख पाता है, यह आप  
क्यों नहीं देखते?’

श्रीपण्डरीनाथ मुसकराये—‘नामदेवजी ! मेरा इसमें  
क्या दोष है ? राँकाको तो अपनी अकिञ्चन स्थिति ही  
प्रिय है। वह तो प्रसं वैराग्य प्राप्त कर चुका है। जो  
कुछ लेना न चाहे, उसे दिया कैसे जाय ?’

नामदेवजी ठहरे प्रभुके लाडले भक्त। उन्होंने हठ  
किया—‘आप दें भी तो !’

उस उदार दाताको देनेमें आपत्ति कहाँ है।  
नामदेवजीको आदेश मिला—‘कल वनमें छिपकर देखिये !’

X            X            X

पण्डरपुरके परम धन तो पण्डरीनाथके भक्त ही हैं।  
अपढ़ राँका अत्यन्त रङ्ग थे। उनका राँका नाम  
सार्थक था। वे गृहस्थ थे और प्रभुकी कृपासे उन्हें  
जो पत्नी मिली थीं, वे वैराग्यमें उनसे भी बढ़कर  
ही थीं।

वनसे सूखी लकड़ियाँ चुन लाना और उन्हें बाजार-  
में बेच देना—यही इस दम्पत्तिके जीवन-निर्वाहिका

साधन था। अतः पत्नीके साथ प्रह्लिदिनकी भाँति राँकाजी  
प्रातः पूजनादिसे छुटकारा पाकर वनमें चले लकड़ियाँ  
एकत्र करते। लीलामयको लीला करते कितनी देर—  
मार्गमें स्वर्ण-मोहरोंसे भरी एक थैली धर दी प्रसुने।

पत्नी कुछ पीछे रह गयी थी। राँकाजीकी दृष्टि थैली-  
पर पड़ी। वे रुक गये और उसपर धूल डालने लगे।  
इतनेमें पत्नी पास आ गयी। उसने पूछा—‘आप यह  
क्या कर रहे हैं ?’

राँकाजीने पहले बात ठाल देनी चाही। लेकिन  
पत्नीके आग्रह करनेपर बोले—‘यहाँ सोनेकी मोहरोंसे  
भरी थैली पड़ी है। सोना देखकर कहीं तुम्हारे मनमें  
धनका लोभ आया तो हमलोगोंके भजनमें बहुत वादा  
पड़ेगी। धन तो सब अनर्थीकी जड़ है। इसीलिये  
मैं थैलीको धूल डालकर ढक रहा था।’

राँकाजीकी पत्नी मुसकरा उठी। उस देवीने कहा—  
‘नाथ ! यह धूल-पर-धूल डालनेका व्यर्थ थम आप क्यों  
कर रहे हैं ? सोने और मिठामें भला अन्तर ही क्या है ?’

राँकाजी प्रसन्न हो गये। वे बोले—‘तुम्हारा वैराग्य  
बाँका है।’ उसी समयसे उस देवीका नाम ही ‘बाँका’  
पड़ गया।

## मालिकका दान

(लेखक—कवीन्द्र श्रीरावीन्द्रनाथ ठाकुर)

फैल गयी यह ख्याति देश में, सिद्ध पुरुष हैं भक्त कवीर ।  
नर-नारी लाखों ने आकर वेरी उनकी बन्य कुटीर ॥  
कोई कहता, मन्त्र फँककर मेरा रोग दूर कर दो ॥  
बाँझ पुरुष के लिये विलखती, कहती 'संत ! रोद भर दो' ॥  
कोई कहता 'इन आँखों से दैव-शक्ति कुछ दिखलायो' ॥  
'जगमें जगनिर्याता की सत्ता प्रसाण कर समझायो' ॥  
कातर हो कवीर कर जोडे रोकर कहने लगे, 'अभो !  
बही दया की थी पैदा कर नीच यवन घर मुझे विमो ॥  
सोचा था तब अतुल कुपासे पास न आयेगा कोई ।  
सबकी आँख औट चस, बास करेंगे तुम हम मिल दोई ॥  
पर मायारी ! माया रखकर, समझा, मुझको उतारे हो ।  
दुनिया के लोगोंको यहाँ बुलाकर तुम क्या भगते हो ?

X X X

कहने लगे, क्रोध भारी से भर नरारी के ब्राह्मण सब ।  
भूरे चारों चरण हुए कलियुग के, पाप छा गया अब ॥  
चरण-धूलिके लिये जुलाहे की सारी दुनिया मरती ।  
अब प्रतिकार नहीं होगा तो इयं जायगी सब धरती !  
कर सबने षड्यन्त्र एक कुल्या स्त्री को तैयार किया ।  
सूर्यों से राजीकर उसको गुपचुप सब सिखलाय दिया ॥  
कपड़े बुन कवीर लाये हैं उन्हें बेचने बीच बजार ।  
पहाड़ा पकड़ अचानक कुल्या रोने लगी पुकार-पुकार ॥  
बोली, 'पाजी निदुर छली ! अवतक भैने रखा गोपन ।  
सरला अवला को छलना क्या यही तुम्हरा साधूपन ? ॥  
साधू बन के बैठ गये बन बिना दोप तुम मुझको ल्याग-  
भूली नंगी फिरी, बदन सब काला पड़ा पेट की आंग ॥  
बोले कपड़-कोप कर, ब्राह्मण, पास खड़े थे, 'दुष्ट कवीर !  
भण्ड तरसी ! धर्म नाम से, धर्म हुयोवा, बना फकीर ।  
मुख से बैठ मरल लोगों की आँखों झोक रहा तू धूल !  
अवला दीना दानों सातिर दर-दर फिरती, उठती हूल !!  
कवीर बोले, 'दोषी हूँ मैं, मेरे साथ चलो घरपर ।  
क्यों धर में अनाज रहते भूखें मरती, फिरती दर दर ?

दुष्ट को धर लाकर उसका विनयण सलाह किया ।  
बोले संत, दीन की कुटिया हरि ने तुझको भेज दिया ॥  
रोकर बोल उठी वह, मरमें उपजा भय लजा परिताप !  
भैन पाप किया लालचबजा, होगा मरण साधु के शाप ।  
कहने लगे कवीर, 'जननि ! मत डर, कुछ दोप नहीं तेप ।  
तू निन्दा-अपमानलय मस्तक-भूषण लाइ भेर ॥  
दूर किया मनका विकार सब, देकर उसे जान का दान ।  
मधुर कण्ठमें भरा मनोहर उसके राम-नाम-गुण-गान ॥  
कवीर कपटी होंगी साधू, फैली यह, चच्चा लवमें ।  
मस्तक अवनत कर वे बोले, 'हूँ सचमुच्च नीचा अवमें ॥  
पाँऊ अगर किनारा, रक्ष्यूँ कुछ भी तरणी-गर्व नहीं ।  
मेरे ऊपर अगर रहे तुम, सबके नीचे रहूँ तरी ॥

X X X

राजा ने मन-ही-मन संत-वचन सुनने का चलव लिया ।  
दूत बुलाने आया, पर कवीर ने अस्वीकार किया ॥  
बोले, 'अपनी हीन देश में । सबसे धूर पड़ा रहता ।  
राजसभा शोभित हो सुझ से, ऐसे मला कौन कहता ?  
कहा दूतने, 'नहीं चलोगे तो रजा होंगे जारीज-  
हमपर, उनकी इच्छा है दर्शन की, यश सुनकर महाराज !  
सभावीच राजा थे बैठे, यथायोर्य सब मन्त्रिगण ।  
पहुँचे साथ लिये रमणी को मक्क-सभा में उस ही क्षण ॥  
कुछ हँसे, भिसीकी भैंह तरी, कहियोने मस्तक छुको लिये ।  
रजा ने सोचा, मिलज है फिरतो वैश्यों साथ लिये ।  
नरपतिका इंगित पाकर प्रहरी ने उनको दिया निकाल ।  
रमणी साथ लिये विनम्र ही, चले कुटी कवीर कलकाल !  
ब्राह्मण खड़े हुए थे पथमें कौतुकसे हँसते थे तभ ।  
तीखे ताने सुना-सुनाकर चिढ़ा रहे थे उसके सन ॥  
रमणी यह सब देख री पड़ी ! चिरणोंमें सिर टैक दिया ।  
बोली, 'पाप-पेक्षे मेरा क्यों तुमने उद्धार किया ?  
क्यों इस अधमा की धर रखकर तुम सहते इतना अपमान ?  
कवीर बोले, 'जननि ! तू तो है मेरे मालिकका दान ,

(मैंगलाये ...)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी

(भागवतो महान् भगवं गौरं गृष्णिकं प्रथमं श्रीरामचरितमालन्) के प्रतीता, अन्यस्थान—प्रथमके पास मुख्याके दक्षिण राज्यान्पुर नाम प्राप्त; गोदावरी-दक्षयात्रा वर्णीयी मानते हैं। अन्य-संघर्ष वि० ६५५४ श्रावण सुखा सप्तमी, विवाह नारा श्रीगांगारामजी द्वे, तत्त्व पर्वतेश भाद्रश, गात्रका नाम दुर्लभ, और परावर, देहस्थाय वि० सं० १६८० श्रावणकृष्ण ३)

नान्या सूरा रघुपते हृषीयसदृशे  
मार्यं वृश्चिमि च भवानिसिलाम्तरात्मा ।  
भर्ति प्रश्नत रघुपुद्व निर्वर्णो मे  
कामादिदेवरहितं कुरु मालसं च ॥

दे रुनाथ ! मेरे हृदयमें बूसरा  
अभिलापा नहीं है, मैं आपसे लत्य कह  
शा हूँ; क्योंकि आप सबके अन्तरामा हैं।  
दे रघुथेष ! सुसे पूर्ण भक्ति दें और मेरे नितन्त्रे काम व्यादि  
दोपर्यन्ते रहित कर दें।

सत्सङ्गकी महिमा

साधु चरित सुभ चरित कपाय । निरस विसद गुनमय फल जाय ॥  
 जो सहि दुख परछिद्र दुराया । बंदनीय जेहि जग जस पावा ॥  
 जलचर थलचर नगचर नाना । जे जहू चेतन लीव जहाना ॥  
 मति भीरसि गति भृति भलाई । जब जेहि जटन जहाँ जेहि पाई ॥  
 सो जानव सतसंग प्रधाऊ । लोकहूँ ब्रेद न आन उपाऊ ॥  
 द्वितु सतसंग बिधेक न होई । राम कृष्ण यितु सुखम न सोई ॥  
 १४. सुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन कूला ॥  
 सठ सुधरहि सतसंगति पाई । पारस परस कुधात सुहाई ॥  
 बिधि वसु जन कुसंगत परही । कनि मनि सम निज शुन अतुसरही ॥

नाम-सहिता

राम नाम मनिदीप धर जीह देहरी द्वार ।  
 तुलसी भीतर बाहेहुँ जाँ चाहसि उद्घास ॥  
 नाम जीह जपि जागहि जोरी । किरति विरंगि प्रपंच नियोगी ॥  
 प्रश्नसुहावि अनुभवहि अनूपा । अकथ अनामय नाम न रूपा ॥  
 जाना चहाहि गृह गति जेक । नाम लौहि जपि जाहाहि देक ॥  
 साधक नाम जपाहि लय लाएँ । होहि सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥  
 जपहि नामु जन आरत मारी । मिटाहि कुरुकट होहि सुखारी ॥  
 राम भगत जग चारि प्रकारा । सुकृती चारित अनव उदारा ॥  
 चहुं चतुर कहु नाम अधारा । शानी प्रमुहि विसेपि पियारा ॥  
 चहुं जुग चहुं क्षुति नाम प्रगाका कलि विसेपि नहिं आज उपाक ॥  
 दकल कामना हीन जे राम भगति रत लीन ।  
 नाम श्रीमि श्रीषु इद तिलहुँ किए मन मीन ॥

नामु राम को कल्पतव कलि कल्यान निवासु ।  
जो समिरत भयो भौंग तें तुलभी तलसीदासु ॥

चहुँ जुग तीवि काल तिहुँ लोका । भए नाम जपि जीव विरोका  
 वेद पुरान संत मत पहु । सकल सुकृत फल राम समेहु ।  
 ध्यानु प्रथम जुग मस्त विधि दूजे । द्वारा भर्तिष्ठापत्र प्रभु पूजे ।  
 कलि केवल मल मूल मलीना । पाप पर्योगिति जन भन मीना ।  
 नाम कामतर काल कराला । सुमिरत समान सकल लग जाला ।  
 राम नाम कलि अयिमत दाता । हित परलोक लोक परि भाता ॥  
 नहि कलि करम न यमाति विनेक । राम नाम अवलंबन एक ॥  
 कालनेमि कलि कपट निधारु । नाम भुमति तरमरथ हुमारु ॥  
 राम राम कहि जे जयुहाही । तिन्हि दि न पाप पुंज समुहाही ॥  
 करमनाल जलु तुसरि परई । तेहि को कहहु धीस नहि परई ॥  
 उल्लानाम जपत बगु जाना । गाल्मीक भए व्रत समाना ॥  
 सावृं खारभ्य अनख आलभहु । नाम जपत मंगल दिसि दरह ॥

ग्रन्थालयी सहित

हुय विशास सकल जन रंजनि । रामकथा कलि कलुष धिरोजनि ।  
रामकथा कलि पंगम भरनी । पुनि विवेक पावक कहु अरनी ।  
रामकथा कलि कामद गाई । मुजन सौंजीवनि मरि तुहाई  
जग मंगल गुनग्राम राम के । दानि मुकुति धन धरम धाम के ।  
सदगुर ग्यान चिराग जोग के । ब्रिंधु वैद भव भीम रोग के ।  
जननि जनक दिव्य राम घ्रेम के । चीज सकल ब्रत धरम नेम के ।  
समर पाप संताप सोक के । प्रिय पालक पश्चलोक लोक के ।  
सचिव सुभट भूपति विचारके । दुंभज लोम उद्धव आमर के ।  
काम कोह कलिमल करिगन के । केहरि साधक जन मन वन के ।  
अतिथि पूर्ण धियतम पुरारिके । कामद धन दरिद्र द्वारिके ।  
भंत्र महामनि कियप व्याध के । भेटत कटिन कुर्झक भाट के ।  
हरन मोह तप दिनकर कर से । सेवक साठि पाल जलधर से ।  
अधिमत दानि देवतह वर से । सेवत सुलभ चुखद हरिहर से ।  
सुकवि सरद नम मन उडगम से । रामगंगत जन जीवन धन से ।  
सकल सुकृत फल भूरि भोग से । जग हित निर्मलय साधु लीग से ।  
सेवक मन मानस मराल से । पवन गंग तरंग माल से ।

कुपथ कुतरक कुन्नालि कलि कपट दंभ पापंड ।  
दहन रम गुन आम जिमि हैथन अनल प्रवंड ॥

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु ।  
सजन कुमुद चकोर चित हित विसेषि बड़ लाहु ॥

### सत्ता सुमित्राकी लक्षणको सीख

गुर पितु मातु दंधु सुर साई । सेइअहिं सकल प्रान की नाई ॥  
एमु प्रानप्रिय जीवन जी के । स्वारथ रहित सरवा सबही के ॥  
गूजनीय प्रिय परम जहाँ ते । सब मानिअहिं राम के नते ॥  
अस जियै जानि संग यन जाहू । लेहु तात जग जीवन लाहू ॥  
पुत्रवती जुवती जग सोई । खुपति भरातु जासु सुतु होई ॥  
नतर वाँ भलि वादि विजानी । राम विमुख सुत तै हित जानी ॥  
तकल युकृत कर दइ फल एहू । राम सीय पद लहज सनेहू ॥  
एगु रोपु दृषिया मदु भोहू । जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ॥  
मकल प्रकार विकार विहाई । मन क्रम वचन करेहु सेवकाई ॥

### लक्षणजीका निषादशाजको उपदेश

गाहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता  
जोग वियोग भोग भल मंदा । हित अनहित मध्यम ध्रम कंदा ॥  
जनमु मरतु जहै लगि जग जाहू । संपति विपति करमु अरु कालू ॥  
वरनि धामु धनु पुर परिवारू । सरगु नरकु जहै लगि व्यवहारू ॥  
देविअ सुनिअ गुनिअ मन माही । मोह मूल परमारथु नाही ॥

मपनै होइ भिलारि नपु रकु नाकपति होइ ।

जागै लासु न हानि कहु तिमि प्रपञ्च जियै जोइ ॥

पोह निराँ यवु सोवनिहारा । देविअ सपन अनेक प्रकारा ॥  
एहिं जग जामिन जागहिं जोगी । परमारथी प्रपञ्च वियोगी ॥  
जानिअ सवहिं जीव जग जागा । जब सब विषय विलास निरागा ॥  
होइ विवेगु मोह ध्रम भागा । तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥  
सखा परम परमारथु एहू । मन क्रम वचन राम पद नेहू ॥

### कौन सोचने योग्य है ?

मोनिअ विप्र जो वेद विहीना । तजि निज धरमु विषय लयलीना  
मोनिअ वृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥  
मोनिअ वयसु कृपन धनवान् । जो न अतिथि सिव भगति मुजान् ॥  
मोनिअ गहू विप्र अवमानी । मुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी ॥  
मोनिअ पुनि प्रति वंचक नारी । कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ॥  
मोनिअ वहु निजग्रतु परिहरई । जो नहि गुरआथसु अनुसरई ॥

मोनिअ गही जो मोह वस करद करमाथ त्याग ।

मोनिअ जती प्रपञ्च रत विगत विवेक शिराग ॥

दैलानव नोइ भोजै जोगू । तपु विहाइ जेहि भावह भोगू ॥  
मोनिअ निमुग उकरन कोधी । जननि जनक गुरवंधु विरोधी ॥

सब विधि सोचिअ पर अपकारी । निज ततु पोषक निरदय भारी ॥  
सोचनीय सबही विधि सोई । जो न छाडि छछु हरि जन होई ॥

### नारी-धर्म

मातु पिता भ्राता हितकारी । मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥  
अभित दानि भर्ता बयदेही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥  
धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहिं चारी ॥  
बृद्ध रोगवस जड धनहीना । अंध वधिर कोधी अति दीना ॥  
ऐसेहु पति करकिएँ अपमाना नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥  
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा । कायै बचन मन पति पद प्रेमा ॥  
जग पतित्रता चारि विधे अहर्ही । वेद उरान संत सब कहर्ही ॥  
उत्तम के अस बस मन माही । सपनेहुँ आन पुरुष जग नाही ॥  
मध्यम परपति देखइ कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥  
धर्म विचारि समुक्षि कुल रहई । सो निकिट विय श्रुति अस कहई ॥  
विनु अवसर भय तै रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ॥  
पति बंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प सत परई ॥  
छन सुख लागि जनम सत कोटी । दुख न समुक्ष तेहि सम को खोटी  
विनु श्रम नारि परम गति लहई । पतित्रत धर्म छाडि छल गहई ॥  
पति प्रतिकूल जनम जहै जाई । विधवा होइ पाइ तरनाई ॥

### भगवानका निवासस्थल

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग धरिनाना ॥  
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे । तिन्ह के हियतुम्ह कहुँ एहर्से ॥  
लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥  
निन्हर्हि सरित षिघु सर भारी । रूप विदु जल होहिं सुखारी ॥  
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक । वसहु बंधु सिध यहु रक्षनायक ॥

जसु तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु ।

मुक्ताहल गुन गन चुनइ राम वसहु हियै तासु ॥

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुवासा । सादर जासु लहद नित नासा ॥  
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं । प्रभु प्रसाद पट भूत्रन धरहीं ॥  
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी । प्रीति सहित करि विनय विसेव  
कर नित करहिं राम पद पूजा । राम भरोस हृदयै नहिं दूजा ॥  
चरन राम तीरथ चलि जाहीं । राम वसहु तिन्ह के मस माही ॥  
मंत्रराजु नित जरहिं तुम्हारा । पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ॥  
तपन होम करहिं विधि नाना । विप्र जेवाई देहि वहु दाना ॥  
तुम्ह तै अधिक गुराहि वियै जानी । सकल भायै सेवहि सनमानी ॥

सबु करि भागहि एक फल राम चरन रति होउ ।

तिन्ह के मन मंदिर वसहु सिध रक्षन दोउ ॥

दाम कोह मद मान न गोहा । लोग न थोभ न गय न होहा ॥  
किंवदं पै न यद दंभ नहि माया । तिन्ह कं हृदय बग्हु रुखाया ॥  
सप्त पै प्रथ मध्ये रहत कारी । दुख सुख मरिस प्रसंसा यारी ॥  
पैदहि माय प्रिय वचन शिचारी । जागत सोकत तरन तुम्हारी ॥  
तुम्हारी गति दूखरि नहारी । राम बलहु तिन्ह के मन मारी ॥  
जागती मग जानि पर नारी । धनु पराव विप तै विष मारी ॥  
जे दरपारि पर मंवति देवी । दुखित होहिं पर विपति शिसेपी ॥  
जिन्हारि राम तुम्ह प्रान विआरे । तिन्ह के मन सुख बदन तुम्हारे ॥

रामि नवा पितु मातु गुरजिन्ह के सब तुम्ह तात ।  
मन मंदिर तिन्ह के बलहु सीय सहित दोउ भ्रात ॥

आवगुन तजि सब के गुन गहीं । यिप धेनु हित संकट सहीं ॥  
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका । शर तुम्हार तिन्ह कर मनु जीका  
गुन तुम्हार तमुद्दाइ निज देवा । जेहि सब भौति तुम्हार भरोसा ॥  
राम भगत प्रिय लाग्हाहि जेही । तोहि उर बलहु सहित वैदेही ॥  
जाति पाँति धनु धरमु धडाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥  
सब तजिन्हाहि रहह उर लाई । तोहि के हृदयें रहहु रसुराई ॥  
सरगु नरकु अपकरण समाना । जहैं तहैं देख धरे धनु जाना ॥  
करम बचन मन राउर जेवा । राम करहु तेहि के उर डेरा ॥  
जाहि न चाहिं कबहु कछु तुम्ह सब सहज सनेहु ।  
बलहु निरंतर तासु मन सो राउर जेज गेहु ॥

### नवधा भक्ति

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति भम कथा प्रसंगा ॥  
गुर पद पंकज सेवा सीसरि भगति अमान ।  
चौथि भगति मम दुम गन करह कपट तजि गन ॥

मंत्र जाप मम दद विस्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा ॥  
छठ दम सील विरति वहु करमा । निरत निरंतर सजन धरमा ॥  
सातवें सम मीहि मथ जग देला । मोर्ते संत अधिक करि लेला ॥  
आठवें जथा लाभ संतोषा । सपनेहु नहि देखह परदोषा ॥  
नवम सरल संद सन छल्हीना । मम भरोसा हिंहे हरप न दीना ॥

### मित्रके लक्षण

जे न मित्र दुख होहि दुखारी । तिन्हहि विलोकत पालक भरी ॥  
तिज दुख विर सम रज करिजाना । मित्र के दुख रज मेह समाना ॥  
जिन्ह के असि मति सहज न आई । ते सठ कत हाठि करस मिताई ॥  
कुप्रभ विवारि सुप्रथ चलवा । गुन ग्राहै अवगुनन्हि दुरावा ॥  
देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ॥  
विपति काल कर सत्तगुन नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुन धहा ॥

आरों कह मूरु वचन बनाई । पाछे अनहित मन कुटि  
जा कर चित आहि गति सम भाई । अस दुमित्र परिहोहि ॥  
सेवक सठ दृष्ट कुपन कुनारी । कपटी मित्र दूळ सम ॥

### विजयग्रद रथ

सौरज धीरज दोहि रथ चाका । सत्य सील दद धजा प  
दूल विवेक दम परहित धोरे । छमा कृषा लमता रु  
ईस भजनु सारथी कुजाना । विरति चर्य संतोष कृ  
दान परसु दुष्टि सक्ति प्रचंडा । वर विषयान कठिन वो  
अमल अचल मन बोन समाना । सम जम नियम सिक्षीमुख  
कवच अभेद विगुर पूजा । एहि सम विजय उपास मंड<sup>१</sup>  
सद्या धर्ममय अस रथ जाके । जीतन धहैं न कतहु रिपु त  
महा अबय संसार रिपु जीति सकइ सो चौर ।  
जाके अस रथ होइ दद बनहु सखा मति धीर ॥

### राम-गीता

बड़े भग मानुष तनु पावा । दुर दुर्लभ सब ग्रंथदिग ग  
साधन धाम मोञ्च कर द्वारा । पाद न जोहि परलोक मैं  
सो परज दुख धावद तिर धुनि धुनि पछिकाद ।  
कालहि कर्महि इंसरहि मिथ्या दोष लगाई ॥  
एहि तन कर फल विषय न भाई । खर्गउ स्वल अंत दुल  
नर तनु पाह विषयें मन देही । पलटि सुधा ते सद विष  
ताहि कबहु भल कहइ न कोई । गुंजा गहै परम मनि ॥  
आकर चारि लच्छ चौरसी । जेनि अमत यह जिव अ  
किरत, सदा माया कर प्रेषा । काल कर्म सुमाव गुन  
कबहु धरि करना नर देही । देत ईश विनु हेतु स  
नर तनु भव आविधि कहु वेरो । सन्मुख मरुत अनुग्रह  
करनघार सदारु दद नावा । दुर्लभ याज सुलभ करि ॥  
जो न तरै भव सावर नर समाज अस पद  
सो कृत निष्क मंदसति आभान भवि जाह ॥

जी परलोक इहैं सुख चहहू । सुनि सम बचन हृष्टैं दद  
दुर्लभ सुलद मारग वह भाई । भगति मोरि पुराव श्रुति  
रथान अगम प्रत्यह अनेका । सावर कठिन न मन कहै  
करत कष वहु पावद कोऊ । भक्तिदीन मोहि प्रिय नहि  
भक्ति सुनंज सकल सुख जानी । यिनु सत्तर्वा न पावहि  
पुन्य चुंज विलहि न संता । सतसंगति नंसुति कर  
पुन्य एक जग महु नहि दूजा । मन कम धनन प्रिय ए  
सानुकूल तेहि पर सुनि देवा । जो तजि कपट परहि विज

औरउ एक गुपुत मत सबहिं कहउँ कर जोरि ।  
संकर भजन विना नर भगति न पावइ मोरि ॥  
कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न मख जश तप उपवासा ॥  
सरल सुभाव न मन कुटिलाई । जथा लाभ संतोष सदाई ॥  
मोर दास कहाइ नर आसा । करइ तौ कहहु कहा विस्वासा ॥  
बहुत कहउँ का कथा बढाई । एहि आचरन वस्य मैं भाई ॥  
वैर न विग्रह आस न त्राया । सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥  
अनारंभ अनिकेत अमनी । अनघ अरोग दच्छ विष्णवी ॥  
प्रीति सदा सजन संसर्गी । तून सम विषय सर्वग अपवर्गी ॥  
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई । दुष्ट तर्क सब दूर बहाई ॥  
मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह ।  
ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह ॥

### राम-प्रेमकी महिमा

आगम निगम पुरान अनेका । पढे सुने कर फल प्रभु एका ॥  
तव पद र्पकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर यह फल सुंदर ॥  
छूटइ मल कि मलहि के धोउँ । धूत कि पाव कोइ बारि विलोइ ॥  
प्रेम भगति जल विनु रघुराई । अभि अंतर मल कवहु न जाई ॥  
सोइ सर्वग्य तथ्य सोइ पंडित । सोइ गुन यह विष्णव अखंडित  
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई । जाकें पद सरोज रति होई ॥

### राम-स्वभाव

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ । जन अभिमान न राखहिं काऊ ॥  
संसृत मूल सूलग्रद नाना । सकल सोक दायक अभिमाना ॥  
ताते करहिं कृपानिधि दूरी । सेवक पर ममता अति भूरी ॥  
जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाई । मातु चिराव कठिन की नाई ॥

जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ वाल अधीर ।  
व्याधि नास हित जगनी गनति न सो सिसु पीर ॥  
तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि ।  
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम ल्यागि ॥

### काकभुशुण्डजीके अनुभव

जाने विनु न होइ परतीती । विनु परतीति होइ नहि प्रीती ॥  
प्रीति विना नहि भगति ददाई । जिमि स्वगपति जल कै निकनाई ॥  
विनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ विराग विनु ।  
गावहि थेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति विनु ॥  
कोउ विथाम कि पाव तात सहज संतोष विनु ।  
चलै कि जल विनु नाव कोटि जतन पञ्चिपञ्चि मरिय ॥

सं० चा० अ० ४१—

विनु संतोष न काम नसाई । काम अछत सुख सपनेहुँ नाई ॥  
राम भजन विनु मिठहिं कि कामा । थल विहीन तरु कवहुँ कि जामा ॥  
विनु विष्णव कि समता आवह । कोउ अवकास कि नभ विनु पावह  
श्रद्धा विना धर्म नहिं होई । विनु महि गंध कि पावइ कोई ॥  
विनु तप तेज कि कर विस्तारा । जल विनु रस कि होइ संसारा ॥  
सील कि मिल विनु दुध सेवकाई । जिमि विनु तेज न रूप गोसौई ॥  
निज सुख विनु मन होइ कि थीरा । परस कि होइ विहीन समीरा ॥  
कथनित सिद्धि कि विनु विस्वासा । विनु हरि भजन न भव भय नासा ॥  
विनु विस्वास भगति नहिं तेहि विनु द्रवहिं न रामु ।  
राम कृपा विनु सपनेहुँ जीव न लह विश्रामु ॥  
क्रोध कि द्वैतबुद्धि विनु द्वैत कि विनु अग्यान ।  
मायावस परिष्ठिन जड जीव कि ईस समान ॥  
कवहुँ कि दुख सब करहित ताकें । तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें ॥  
परदोही की होहि निरंका । कामी पुनि कि रहहिं अकलंका ॥  
वंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें । कर्म कि होहिं ख्वरूपहि चीन्हें ॥  
काहू सुमति कि खल सँग जामी । सुभ गति शाव कि परनिय गामी ॥  
भव कि परहिं परमात्मा विंदक । सुखी कि होहिं कवहुँ हरिनिंदक ॥  
राजु कि रहइ नीति विनु जानें । अध कि रहहिं हरि चरित वसानें ॥  
पावन जस कि पुन्य विनु होई । विनु अध अजस कि पावइ कोई ॥  
लामु कि किछु हरि भगति समाना । जेहिं गावहिं श्रुति संत पुराना ॥  
हानि कि जग एहि सम किछु भाई । भजिअ न रामहि नरतनु पाई ॥  
अध कि पिसुनता सम कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना ॥

सोइ सर्वाय सुनी सोइ ग्याता । सोइ महि मंडित पंडितदा  
र्य परायन सोइ कुल ग्राता । राम अरन जा कर मन रत  
गति निपुन सोइ परम उवाना । अजि दिवांग नीक तेहिजात  
है कवि कोविद सोइ सन्धीरा । जो छलछाडि मजह रघुवीर  
य देस सो जहौं सुरसरी । धन्य नारि पतिग्रत अनुकरी  
य सो भूषु नीति जो करहै । धन्य नो द्विज निज धर्मनदरहै  
धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुन्यरत मति सोइ पाली  
धरी सोइ जन सतसंगा । धन्य जन्म द्विज भगति अ  
सो कुल धन्य उमा । सुनु जगत पूज्य सुपुनीत ।  
श्रीरघुवीर परायन जेहिं नर उपज विनीत ।

### प्रार्थना

अरथ न धरम न काम शुचि गति न चहूँ निरवान ।  
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न जान ॥  
मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान खुनीर ।  
अस विचारि खुब समति हरहु विषम भव भीर ॥  
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि गिय जिमि दाम ।  
तिमि खुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥

कहुँक क्षंब्र, अकसर पाइ ।  
मेहिजौ मुखि आही, कहु करन कथा चलाइ ॥  
दीन, सब अँग हीन, छीन, मलीन, अधी अधाइ ।  
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-शती-दास कहाइ ॥  
बूझिहै 'सो है कौस', कहिवी नाम दला जाइ ।  
सुनत राम कृपालु के नेरी विगरिजौ ननि जाइ ॥  
जानकी जगजननि जन की किएं बचन सहाइ ।  
तरै तुलसीदास भव तब नाथ गन गाइ ॥

राम जाणु, राम जापु, राम जापु घारे ।  
धोर भव-नीरनिधि नाम निज नाव रे ॥  
एक ही सावन सब रिद्धि-तिद्धि सावि रे ॥  
ग्रसे कलिरीग जोग-संज्ञ-समाधि रे ॥  
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, वाम रे ।  
राम-नाम ही सो अंत सब ही को काम रे ॥  
जग नम-आटिका रही है फलि पूलि रे ॥  
धुबाँ के से धौरहर देलि त् न भूलि रे ॥  
राम-नाम छाडि जो भरोसो भरै और रे ॥  
तुलसी धरोसो ल्यागि माँगि कूर कैर रे ॥  
राम राम राम जीह जौलो त् न जरिहे ।  
तौरीं, त् कहूँ जाय, तिहूँ ताप तरिहे ॥

### रामभक्तिमें सारे गुण हैं

सुनहु तात अब मानस रोगा । जिन्ह ते तुख धरहिं सब लोगा ॥  
मोइ सकल व्याधिहै कर मूला । तिन्ह ते पुनि उफजहि बहु सूला ॥  
काम वात कफ लोग अपारा । क्रोध विज नित छाती जारा ॥  
प्रीति करहि जौं तीरित भाई । उपजहि उन्यपात तुखदाई ॥  
विषय भनोरथ दुर्गम ताना । ते सब सूल नाम की जाना ॥  
ममता दाढु कहु इरपाई । हरष विपाद गरह बहुताई ॥  
पर सुख देखि जरनि सोइ छाई । कुष दुष्टा मन कुटिलाई ॥  
अहंकार अति दुखद डमहआ । दंभ कपठ मद मान नेहजामा ॥  
तूला उदरखुदि अति भारी । त्रिविधि ईमना तरुन तिजारी ॥  
जुग विधि ऊर मत्सर अविवेका । कहूँ लगि कहौं कुरोग अनेका ॥

एक व्याधि वस नर मरहिं ए असाधि बहु व्याधि ।  
पीडिहि धन्तत जीव कहूँ सो किमि लहै संसाधि ॥  
नैम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान ।  
भेषज पुनि कोटिहै नहिं रोग जाहिं हरिजान ॥

एहि विधि सकल जीव जग रोगी । सोक हरष भय प्रीति वियोगी ॥  
मानस रोग कलुक मैं भाए । हाहें सब के लखि विस्तेह पाए ॥  
जाने ते छीजहि कछु पावी । नास न पावहि जन परितापी ॥  
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे । सुनहु हृदय का नर बापुरे ॥  
गमकूपाँ नारहिं सब रोगा । जौं एहि भौति वनै संयोगा ॥  
सदगुर वेद बचन विसाया । मंजम यह न विषय कै आसा ॥  
खुफति भगति सजीवन मूरी । अनूपान अद्वा मति पूरी ॥  
एहि विधि भलेहि सो रोग नसाही । नाहिं तजतन केटि नहिं जाही ॥  
जानिअ तब मन विसुज गोराई । जब उर बलविराग अधिकाई ॥  
मुमति कुधा बाहू नित नई । विषय आस दुर्वलता गई ॥

सुरसरि-तीर विनु नीर दुख पाइहै ।  
सुरतरु तेरे तोहि दारिद्र सताइहै ॥  
जागत, वागत, सपने न सुख सोइहै ।  
जनम जनम, जुग जुग जग रोइहै ॥  
द्युषित्रे के जतन विरेष बाँधो जायगो ।  
हैहै विष भोजन जो सुधा सानि खायगो ॥  
तुलसी तिलोक, तिहूँ काल लोसे दीन को ।  
रामनाम ही की गति जैसे जल मीन को ॥  
सुमिरु सनेह सों तू नाम रामराय को ।  
संबल निसंबल को, सखा असहाय को ॥  
भाग है अभगेहूँ को, गुन सुनहीन को ।  
गाहक गरीब को, दयालु दानि दीन को ॥  
कुल अकुलीन को, सुन्धो है वेद सखि है ।  
पाँगुरे को हाथ-पाँय, आँधरे को आँखि है ॥  
माय-वाप भूते को, अधार निराधार को ।  
सेतु भवसागर को, हेतु सुखसार को ॥  
पतिपावन राम-नाम सो न दूसरो ।  
सुमिरि सुमूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥  
मलो भली भाँति है जो मेरे कदे लागिहै ।  
मन राम-नाम सों सुभाय अनुरागिहै ॥  
राम-नाम को प्रभाउ जानि जड़ी आगिहै ।  
सहित सहाय कलिकाल भीरु भागिहै ॥  
राम-नाम सों विराग, जोग, जप जागिहै ।  
धाम विधि भाल हूँ न करम दाना दागिहै ॥  
राम-नाम मोटक सनेह सुधा पागिहै ।  
पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै ॥  
राम-नाम काम-तरु जोह जोह माँगिहै ।  
तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै ॥

देव—

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ ।  
जाहि दीनता कहौं हैं देखौं दीन सोऊ ॥  
सुर, नर, मुगि, असुर, नाग साहिव तै घनेरे ।  
(पै) तैलौं जौलौं रखरे न नेकु नयन केरे ॥  
निभुगन तिहूँ काल निदित, वेद वदति चारी ।  
आदि-अंतमध्य राम ! साहवी तिहारी ॥  
तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो ।  
चुनि सुभाव-सील-तुज्जु जाचन जन आयो ॥  
पाहन-पत्तु, विष्य-विहँग धपने करि लीन्हे ।

महाराज दसरथ के ! रंक रथ कीन्हे ॥  
तू गरीब को निवाज, हैं गरीब तेरो ।  
बारक कहिये कृपालु ! तुलसिदास मेरो ॥

देव—

तू दयालु, दीन हैं, तू दानि, हैं भिखारी ।  
हैं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-युंज-हारी ॥  
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन भोसो ?  
मो समान आरत नहि, आरति-हर तोसो ॥  
ब्रह्म तू, हैं जीव, तू है ठाकुर, हैं चेरो ।  
तात-भात, सुर-सर्वा तू सब विधि हितु मेरो ॥  
तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै ।  
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ॥

देव—

और काहि माँगिये, को माँगियो निवारै ।  
अभिमतदातार कौन, दुख-दरिद्र दारै ॥  
धरमधाम राम काम-कोटि-खल्य ल्लरो ।  
साहब सब विधि सुजान, दान-खडग-सूरो ॥  
सुखभय दिन द्वै निसान सब के द्वार बाजै ।  
कुसभय दसरथ के ! दानि तै गरीब निवाजै ॥  
सेवा विनु गुनविहीन दीनता सुनाये ।  
जे जे तै निहाल किये फूले फिरत पाये ॥  
तुलसिदास जाचक-रुचि जानि दान दीजै ।  
रामचंद्र ! चंद्र तू चकोर मोहि कीजै ॥

मोहजनित मल लाग विविध विधि कोटिहु जतन न जाई ।  
जनम जनम अभ्यास-निरत चित, अधिक अधिक लपराई ॥  
नयन मलिन परनारि निरसि, मन मलिन विषय सँग लाने ।  
हृदय मलिन वासना-मान-सद, जीव सहज सुख त्यागे ॥  
परनिंदा सुनि श्रवण मलिन भे, बचन दोष पर गाये ।  
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ-चरन विसराये ॥  
तुलसिदास ब्रत-दान, ग्यान-तप, सुछिहेतु श्रुति भावै ।  
राम-चरन-अनुराग-नीर विनु मल अति नास न पावै ॥

मन ! माधव को नेकु निहारहि ।

सुनु सठ, सदा रंक के धन ज्यों, छिन-छिन प्रभुहि सेंभारहि ॥  
सोभा-सील-ग्यान-सुन-मंदिर, सुंदर परम उदारहि ।  
रंजन संत, अधिल अघ-रंजन, भंजन विषय-विक्षारहि ।  
जो विनु जोग-जग्य-ब्रत-संवम गयो चहै भव-परहि ।  
तौ जनि तुलसिदास निसि बासर हरि-पद-कमल विसारहि ॥

भूमि गुदगा गा मन की ।

भूमि भग्न-भग्नानि सुर-गणिता, आम करत ओमकन की ॥  
भग्न-भग्न विश्वि जातक ल्यों, तुमित जानि मति परन की ।  
नहिं तर्ह गीतदता न बारी, युनि शगि हृति लोचन की ॥  
ल्यों गन-गान खिलोकि भेन जड़ छाँह आपने तन की ।  
दृष्टा असि आतुर आतुर वन, अति विसारि आनन की ॥  
गाँव लौं बहुं तुनाल छुपानिथि । जानत ही गति जन की ।  
तुलसिदास प्रभु दरहु दुसह दुस, करहु लाज निज पन की ॥

नानत ही निमि-दिवस मरशो ।

तव ही ते न भयो हरि थिर जन्मते जिल नाम धरथो ॥  
वहु यातना विचिध कंचुकि भूषण लोभादि भरथो ।  
नर अरु अचर गगन जल-यल में, कौन न स्वाँग करथो ॥  
देव, दकुज, मुनि, नाम, मनुज नहिं जाँचत कोउ उबरथो ।  
मेरो दुसह दरिद्र, दोष, दुख काहू लै न हरथो ॥  
थके नयम, पद, पानि, सुमति, बल, संग सकल विदुरथो ।  
अब रम्भाय सरन आयो जन, भव-भव विकल डरथो ॥  
जेहि गुनते वस होहु रीक्षि करि, सो मोहि सब विसरथो ।  
तुलसिदास निज भवनदार प्रभु दीजै रहन परथो ॥

ऐसी हरि करत दास पर प्रीति ।

निज प्रभुता विसारि, जन के ब्रह्म, हीत सदा यह रीति ॥  
जिन वाँधे सुर-असुर, नाम-नर, प्रबल करम की ढोरी ।  
सोइ अनिहिन ब्रह्म जमुमति हृषि वाँधी सकत न छोरी ॥  
आकी भासावधि विरंधि सिव, नानत पार न पायो ।  
करतल साल कजाय ग्वाल-जुवतिन्ह सोइ नान नचायो ॥  
विस्वंगर, श्रीपति, त्रिसुवनपति, वेद-विदित यह लीख ।  
बहि सोंकचु न चली प्रभुता वस है दिज भाँगी भीत ॥  
जाको नाम लिये छूट भव-जनम-मरन दुख-भर ।  
अंकरीष-हित लागि छुपानिथि सोइ जनमे दस बार ॥  
जोग-विराग, ध्यान-जन-नथ करि, जेहि खोजत मुनि ग्यानी ।  
ब्रामर-भालु चपल पसु यामर, नाथ लहौं रहि मानी ॥  
लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, सरि सब आरथाकारी ।  
तुलसिदास प्रभु उपर्यन के द्वार बैत कर आरी ॥

हरि ! तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।

साक्षन-धाम विशुध-दुर्लभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों ॥  
कोटिहुँ सुख कहि जात न प्रभु के, एक एक उपकार ।  
तदपि नाथ कछु और माँगिहैं, दीजै परम उदार ॥  
विष्णु-वारि मन-भीन मिन नहिं हीत कबहुँ पल एक ।

ताते लहीं विष्वति आते दारुत, जनमत लोनि :  
कृष्ण-होरि वनसी पद अंकुस, परम प्रेम सूदु  
यहि विधि वेधि हरहु मेरो हुख, कौतुक राम ति  
है श्रुति-विदित उपाय तकल सुर, केहि केहि दीन नि  
तुलसिदास यह जीव मोह-रुजु जेहि वाँध्यो सोइ ॥

यह विनंती रहुवारि गुसाहै ।

और आस-विस्वास-भरोसो, हरौ जीव-जड़ा  
चहौंन मुश्वति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि विपुल  
है अनुराग राम-पद बहै अनुदिन व्याधिक  
कुटिल करम है जाहि मोहि जहैं जहैं अपनी बरिआ,  
तहैं तहैं जनि छिन लोह छाँड़ियो, कसठ-अंड की नाई  
या जग मैं जहैं लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाइ  
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक दाहै

जामकी-जीवन की बलि जैहैं ।

चित कहै राम-सीध-पद परिहरि अब न कहैं चलि ।  
उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख, प्रभु-पद-विमुख न  
मन समेत या तन के ब्रासिन्ह, इहै सिसावन  
श्रवनमि और कथा नहिं सुनिहैं, रसना और न  
रोकिहैं नयन विलोकत औरहि, सीस ईस ही ।  
नालोनेह नाथ-सों करि सब नातोनेह ।

यह उरभार ताहि तुलसी जग जाको दास का

अबलौं नसानी, अब न नसैहैं ।

राम-कृष्ण भव-निसा विरानी, जगे किरि न हलैहैं  
पायेहुं नाम चारु चितामनि, उर कर तें न खासैहैं  
स्यामरूप सुनि द्विवर कसौटी, चित कंचनहि कसैहैं  
परबस जानि हँस्यो इन ईदिन, निज वस है न हँसैहैं  
मन मधुकर पन के तुलसी खुपति-पद-कमल वरैहैं

माधव ! मो समान जर माही ।

सब विधि हीन; मलीन, दीन अवि, लीन विषय कोउ नाई  
तुम सभ हैतुराहित कृपालु अरत हित ईस न लागी  
मैं दुख-सोइ-विकल कृपालु । केहि कारम दया न लागी  
जाहिन कछु औगुन दुखार, अपाथ मोर मैं भाना  
ग्यान-भवन तमु दियेहु नाय । सोउ पथ न मैं प्रभु जान  
बेसु करील श्रीरंड शमंतहि दूजन सूरा लगावे  
साम-रहित हत्यामय सुरभि पल्लव सो कहु किसि पाँवे  
सब प्रकार मैं कठिन, मूदुल हरि, इहै विनार जिय गोरी  
तुलसिदास प्रभु मोह-संसला, कुदिहि तुमहो धोरे ।

माधव ! मोह-फाँस क्यों दूरै ।  
गहिर कोटि उपाय करिय, अम्ब्यंतर ग्रन्थि न छूटै ॥  
[तपूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिविव दिखावै ।  
घन अनल लगाय कल्प सत, औटत नास न पावै ॥  
रुक्षोटर महँ वस विहंग तद काटे मरै न जैसे ।  
गधन करिय विचार-हीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥  
भंतर मलिन विषय मन आति, तन पावन करिय पखारे ।  
गरह न उरग अनेक जतन बलमीक विविध विधि मरे ॥  
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना विनु विमल विवेक न होई ।  
तेनु विवेक संसार घोर निधि पार न पावै कोई ॥  
च्वहुँ सो कर-सरोज रुद्धनाथक ! धरिहौ नाथ सीत मेरे ।  
गहि कर अभय विषये जन अरत, वारक विवस नाम टेरे ॥  
गहि कर-कमल कठोर संभुद्धनु भंजि जनक-संसय मेव्यो ।  
गहि कर-कमल उठाइ वंधु ज्यों, परम प्रीति केवट मैव्यो ॥  
गहि कर-कमल कृपालु गीध कहै, पिंड देह निजधाम दियो ।  
गहि कर-कालि विदारि दासहित, कपिकुल-पति सुग्रीव कियो ॥  
शयो सरन सभीत विभीषण जेहि कर-कमल तिलक कीन्हों ।  
गहि कर गहि सर चाप असुर हति, अभयदान देवन्ह दीन्हों ॥  
तीतल सुखद छाँह जेहि कर की, मेटति पाप, ताप, माया ।  
नेसि-नासर तेहि कर-सरोज की, चाहत तुलसिदास छाया ॥

ते नर नरकरूप जीवत जग  
भव-भंजन-पद-विमुख अभारी ।  
निसिदासर रुचि पाप असुचिमन,  
खलमति-भलिन, निगमपथ-त्यागी ॥  
. नहि सतरंग भजन नहिं हरि को;  
खबन न राम-कथा-अनुरागी ।  
सुत-वित-दार-भवन-भमता-निसि  
सोवत अति, न कवहुँ मति जागी ॥  
तुलसिदास हरि-नाम सुधा तजि,  
सठ हृषि पियत विषय-विप माँगी ।  
सूकर-स्वान-सुगाल-सरिस जन,  
जनमत जगत जननि-दुख लागी ॥

कलि नाम कामतरु राम को ।  
द्वलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोप धोर घन शाम को ॥  
राम लेत दाहिनो होत मन वाम विधाता वाम को ।  
रुहत मुनीस महेस महातम, उलटे लूपे नाम को ॥  
नली लोक-परलोक लासु जाके बल वलित-लज्जाम को ।  
तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न दृच्छ सुकाम को ॥

मैं हरि पतित-पावन सुने ।  
मैं पतित तुम पतित-पावन दोउ बानक बने ॥  
व्याघ गणिका गज अजामिल साखि निगमनि भने ।  
और अधम अनेक तरे जात कापै गने ॥  
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक सुरपुर मने ।  
दास तुलसी सरन आयो, राखिये अपने ॥

ऐसो को उदार जग मार्ही ।  
विनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाही ॥  
जो गति जोग विराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी ।  
सो गति देत गीध सवरी कहै प्रभु न बहुत जिय जानी ॥  
जो संपति दस सीस अरप करि रावन सिव पहँ लीन्हीं ।  
सो संपदा विभीषण कहै अति सकुच सहित हरि दीन्हीं ॥  
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।  
तौ भजु राम, काम सब पूरन करै कृपानिधि तेरो ॥

जानत प्रीति-रीति रुद्धराई ।  
नाते सब हाते करि राखत, राम सनेह-नगाई ॥  
नेह निवाहि देह तजि दमरथ, कीरति अचल चलाई ।  
ऐसेहु पितु तें अधिक गीध पर ममता गुन गरुआई ॥  
तिय-विरही सुग्रीव सखा लक्षि प्रानप्रिया विमराई ।  
रन परथो वंधु विभीषण ही को, सोच्च हृदय अधिकाई ॥  
घर गुरुगृह प्रिय सदन सासुरे, मह जव जहै पहुनाई ।  
तव तहै कहि सधरी के फलनि की हञ्चि माधुरी न पाई ।  
सहज सरूप कथा मुनि वरनत रहत मकुचि सिर नाई ।  
केवट मीत कहे सुख मानत वानर वंधु यडाई ॥  
प्रेम-कनोडो रामसो प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई ।  
तेरो रिनी हीं कहो कपि सों ऐसी गानिहि को मेवकाई ॥  
तुलसी राम-सनेह-सील लखि, जो न भगति उर आई ।  
तौ तोहि जनमि जाय जननी जड़ तनु-तक्षनता गवाई ॥

ऐसे राम दीन-हितकारी ।  
अति कीमल कहनानिधान विनु कारन पर-उपकारी ॥  
माधव-हीन दीन निज अव-वस, किल्य भई मुनि नारी ।  
गृहते गदनि परसि पद पावन घोर मानते तारी ॥  
हिंसारत नियाद तामम वपु, रम्तु-समान वनचारी ।  
मैव्यो हृदय लगाइ प्रेमवस, नहिं कुल जाति विचारी ॥  
जयनि द्रोह कियो मुरणति-मुत, कहि न जाय अलि भारी ।  
सकल लोक अवलोकि सोकहत, मगन गदे भर यारी ॥  
विहंग जोनि आमिन अद्वारयर, गीध कीन ब्रत-यारी ।  
जनक-गमान किया ताकी निज कर गद भाँति मैवारी ॥

प्रभु जाहि गवरी जोगित जड़, लोक-वेद तैं न्यारी ।  
जानि प्रानि, हे रस रुद्धानिहि, सोउ रुद्धानय उधारी ॥  
परि पुर्णिम रंभु-भय-न्याकुल, आयो सरन एकारी ।  
थटि न महे धाकन दुष्ट जन के, हस्यो धालि सहि गारी ॥  
रिपु गो अनुभविभीगम निश्चर, कौन भजन अधिकारी ।  
सरन गये आगे दै लीन्हों भेंट्यो भुजा पसारी ॥  
असुभ दोष जिना के सुगिरे ते वानर रीछ विकारी ।  
वेद-विदित पावन किये ते सब, महिमा नाथ ! तुम्हारी ॥  
फहें लगि कहों दीन अगनित जिन्द की तुम विष्फति निवारी ।  
कलि-मल-ग्रसित दास तुलसी पर, काहे कृपा विचारी ? ॥

जो मोहि राम लागते मीठे ।

तौ नवरस पटरस-रस अनरस है जाते सब सीठे ॥  
बंचक विषय विदिध तनु भरि अनुभवे सुने अब ढीठे ।  
वह जानत हीं हिरदै अपने सपने न अधाइ उथीठे ॥  
तुलसिदास प्रभु सों, एकहि बृक्ष वचन कहत अति दीठे ।  
नाम की लाज राम करनाकर कहि न दिये कर चीठे ॥

यो मन कबहूं तुमहि न लाग्यो ।

ज्यों छल छाँडि सुभाव निरंतर रहत विषय अनुराघ्यो ॥  
ज्यों चितहै फरनारि, सुने पातक-पर्शंच धर-धर के ।  
लों न साधु, सुरसरि-तरंग-निरमल गुनगान रुद्धवर के ॥  
ज्यों नासा सुगंध-रस-वस, रसना षटरस-रति भानी ।  
रस-प्रसाद-माल जूठन लगि ल्यों न ललकि ललचानी ॥  
चंदन-चंद्रदति-सूप्रस-पट ल्यों वह पाँकर परस्यो ।  
ल्यों रुद्धपति-पद-पद्म-परस को तनु पातकी न तरस्यो ॥  
ज्यों सब भाँति कुरेव कुठाकुर सेथे बए वचन हिये हूँ ।  
ल्यों न राम सुकृतग्य जे सकुचत सकृत प्रनाम किये हूँ ॥  
नंबल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार-द्वार जग वागे ।  
राम-सीय-आसामनि चलत ल्यों भये न स्वमित अभागे ॥  
सकल अंग पद-विष्वस नाथ सुख नाम की ओटलहै है ।  
है तुलसिहि परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामहै है ॥

कहहुँक हैं यहि रहनि रहैगो ।

श्रीरुद्धानय कृपाङ्क वृक्षाते संत-सुभाव गहैगो ॥  
जश्वलाम संतोष सदा, काहु सों कहु न चहैगो ।  
पर-हितनिरत निरंतर, दन कम वचन नेम निवहैगो ॥  
पर-वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहैगो ॥  
विगत मान, सम सीतल मन, पर-सुन नहि दोष कहैगो ॥  
परिहरि देह-जनित निता, तुलसुख सम बुद्धि सहैगो ।  
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भगति लहैगो ॥

ताहिन आक्षत आन भरोसो ।

यहि कलिकाल सकल साधन तथ है स्वर्म-फल्लि  
लप, तीरथ, उपवास, दान, सख जेहि जो रुचै  
पायेहि पै जामियो करम-फल भरि-भरि वेद  
आगम-विधि जप-जग करत नर सरत न काज  
सुख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन, रोग वियोग  
काम, कोष, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान विराम  
विवरत मन संन्यास लेत जल नावत आम ॥  
बहु मत सुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ-तहाँ श्व  
गुरु कहो राम-भजन नीको मोहि लगत राज-झग  
तुलसी विनु परतीति प्राप्ति फिरिपिरि पचि मरै मार  
रामनाम-वोहित भव-सामर चाहै तरन तरो

जाके प्रिय न राम-वैदेही ।

तजिये ताहि कोटि बैरी सम, ज्ञायि परम सने  
सो छाँड़िये तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण बंधु, भरत महत्त  
बलि गुरु तथ्यो, कंत ब्रज-बनिताहि, भये मुद-मंगलक  
नाते नेह राम के भनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ  
अंजन कहा बौंखि जेहि फूटै, बहुतक कहाँ कहाँ  
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्राप्ति प्य  
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमा

जो पै रहनि रामसों नाहीं ।

तौ नर खर कूकर सूकर सम  
वृथा लियत जग भाही ॥  
काम, कोष, मद, लोभ, नीद, भय,  
भूत, प्यास सवही के ।  
मनुज देह सुर-साधु सराहत,  
सो सनेह मिय-पी के ॥  
सूर, सुजान सुपूत सुलझने  
शनियत गुन गवआई ।  
विनु हरिमजन इंद्राकन के फल  
तजत नहीं करआई ॥  
कीरति, कुल, करत्ति, भूति भलि,  
सीढि सहय मलोते ।  
तुलसी प्रभु-अनुराम-रहित जग  
सालन सार अलोने ॥

लज न लागत दास कहावत ।  
सो आचरन ब्रिसारि सोच तजि,  
जो हरि तुम कहूँ भावत ॥

सकल संग तजि भजत जाहि मुनि,  
जप तप जाग बनावत ।

मो-सम मंद महाखल पाँवर,  
कौन जतन तेहि पावत ॥

हरि निरमल, मलश्रसित हृदय,  
असमंजस मोहि जनावत ।

जेहि सर काक कंक वक सूकर,  
क्यों मराल तहूँ आवत ॥

जाकी सरन जाइ कोशिद  
दारुन त्रयताप दुक्षावत ।

तहूँ गये मद मोह लोभ अति,  
सरगहुँ मिटत न सावत ॥

भव-सरिता कहूँ नाउ संत, यह  
कहि औरनि समुझावत ।

हैं तिनसों हरि ! परम वैर करि,  
तुम सौं भलो मनावत ॥

नाहिन और ठौर मो कहूँ,  
ताते हठि नातो लावत ।

राहु सरन उदारचूड़ामनि !  
तुलसिदास गुन गावत ॥

मैं तोहिं अब जान्यो संसार ।  
वाँधि न सकहिं मोहि हरि के बल,

प्रगट कपटआगार ॥

देखत ही कमनीय, कद्धु  
नाहिन पुनि किये विचार ।

ज्यों कदलीतरु-मध्य निहारत,  
कवहुँ न निकसत सार ॥

तेरे लिये जनम अनेक मैं  
फिरत न पायों पार ।

महामोह-मृगजल-सरिता महूँ  
दोरथो हैं वारहि वार ॥

सुगु खल ! छल-खल कोटि किये वस  
होहि न भगत उदार ।

सहित भहाय तहूँ वसि अब, जेहि  
हृदय न नंदकुमार ॥

तासों करहु चाहुरी जो नहिं  
जानै मरम तुम्हार ।

सो परि डरै मरै रुजु-अहि तै,  
बूझै नहिं व्यवहार ॥

निज हित सुनु सठ ! हठ न करहि, जो  
चहहि कुसल परिवार ।

तुलसिदास प्रभु के दासनि तजि  
भजहि जहाँ मद मर ॥

मन पछितैहै अवसर बीते ।

दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अह ही ते ॥

सहस्राहु, दसबदन आदि दृष्ट वचे न काल बली ते ।

हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥

सुत-बनितादि जानि खारथरत, न करै नेह सवही ते ।

अंतहु तोहिं तजैगे पामर ! तू न तजै अवही ते ॥

अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़, ल्यागु दुरासा जी ते ।

बुझै न काम अग्नि तुलसी कहुँ, विषय-भोग वहु धी ते ॥

लाभ कहा मानुष-तनु पाये । ५

काय-बचन-मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये ॥

जो सुख सुरपुर-नरक, गेह-वन आवत विनहिं बुलाये ।

तोहिं सुख कहूँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाये ॥

पर-दारा, पर-द्रोह, मोहवस किये मूढ़ मन भाये ।

गरमवास दुखरासि जातना तीव्र विपति विसराये ॥

भय-निद्रा, मैथुन-अहार, सब के समान जग जाये ।

सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गवाये ॥

गई न निज-पर-बुद्धि, मुझ है रहे न राम-लय लाये ।

तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछिताये ॥

जो मन लागै रामचरन अस ।

देह-मेह-सुत-वित-कलन्त्र महै  
मगन होत विनु जतन किये जस ॥

द्वंद्वरहित, गतमान, ग्यानरत,  
विषय-विस्त खटाइ नाना कस ।

सुखनिधान सुन्धान कोसलपति  
है प्रसन्न, कहु, क्यों न होहि वस ॥

सर्वभूत-हित, निर्वलीक चित्त,  
भगतिप्रेम दृढ़ नेम एकरस ।

तुलसिदास यह होइ तवहिं जब  
द्रवै ईस, जेहि हतो सीस दस ॥

एर्गी यतन प्रगु वी शीति ।

दिन देहु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति ॥  
दहं मायम पृथना तुच्छ कालकूट लगाह ।  
गाह वी गति दहं ताहि कृपातु जादवराह ॥  
दामगति गोपिति पर कृपा अतुलित कीन्ह ।  
जगत-पिता विरचि जिन्ह के चरन की रज लीन्ह ॥  
देखते भिमुगाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि ।  
कियो लीग सु आप में हरि राज-सभा मँझाहि ॥  
व्याप नित दे चरन मारथो मूढ़मति मृग जानि ।  
सो लदेह स्वलोक पठयो प्रगट करि निज बानि ॥  
कोन तिन्ह की कहे जिन्ह के सुकृत अरु अब दोउ ।  
प्रगट पातकरूप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।

मोको तो राम को नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो ॥  
करम उपासन, ध्यान, वेदसत, सो सब भाँति खरो ।  
मोहि तो सावन के अंधाहि ज्यों सूक्ष्म रंग हरो ।  
चाटत रखो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो ।  
सो हौं सुमिरत नाम-सुधारस पेवत परहिं धरो ॥  
स्वारथ औ परमारथ हु को नहि कुंजरो-नरो ।  
सुनियत सेतु पर्योधि पषाननि करि कपि-कटक तरो ॥  
प्रीति-प्रतीति जहाँ जाकी, तहाँ ताको काज सरो ।  
मेरे तो मथ-बाप दोउ आखर, हौं सिसु-अरनि अरो ॥  
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो ।  
अपनो भलो राम-नामहि ते तुलसिहि धमुक्षि परो ॥

मरैगी जीह जो कहौं और को हौं ।

जानकी-जीवन ! जन्म-जन्म जग  
ज्यायो तिहरेहि कौर को हौं ॥  
तीनि लोक, तिहुँ काल न देवत  
सुहृद रावरे जोर को हौं ।  
तुमसों कपट करि कल्प-कल्प  
कृभि हैहौं नरक धोर को हौं ॥  
कहा भयो जो मन भिलि कलिकालहि  
कियो भौतुवा भौर को हौं ।  
तुलसिदास सीतल नित यहि बल,  
बड़े ठेकाने ठौर को हौं ॥

ऐसेहि जन्म-समूह सिराने ।

प्राननाथ रुद्धनाथ-से प्रभु तजि सेवत चरन विराने ॥

जे जङ्ग जीव कुटिल, कायर, खल, केवल कलि-मल-सां  
सुखत वदन प्रसंसत तिन्ह कहूँ, हरिते अधिक करि मान  
सुख हित कोटि उपाय निरंतर करत न पायें पिराने  
सदा मलीन पंथ के जल ज्यों, कबहुँ न हृदय थिराने  
यह दीनता दूर करिवे को अभित जतन उर आने  
तुलसी चित-चिता न मिटै बिनु चितामनि पहिचाने

काहे न रक्षना, रामहि गावहि !

निसिदिन पर-अपवाद बृथा कत रटि-रटि राग बढ़ावहि  
नरसुख सुंदर मंदिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि  
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत रवि-कर-जल कहूँ धावहि  
काम-कथा कलि-कैरव-चंदिनि, सुनत श्रदन दै भावहि ।  
तिनहि हटकि कहि हरि कल कीरति, करन कलंक न सावहि ।  
जातरूप मति जुगुति रुचिर मनि रचि-रचि हार बनावहि ।  
सरन-सुखद रविकुल-सरोज-रवि राम-नृपहि पहिरवहि ॥  
बाद-बिवाद स्वाद तजि भजि हरि, सरस चरित चित लावहि ।  
तुलसिदास भव तरहि, तिहुँ पुर तू पुनीत जस पावहि ॥

भज मन रामचरन सुखदाई ॥

जिन चरनन ते निकसी सुरसरि संकर जटा समाई ।  
जटालंकरी नाम परचो है, त्रिभुवन तारन आई ॥  
जिन चरनन की चरन-पाहुका भरत रहे लव लाई ।  
सोइ चरन केवट धोइ लीन्हें तब हरि नाव चलाई ॥  
सोइ चरन संतन जन सेवत सदा रहत सुखदाई ।  
सोइ चरन गौतम ऋषि नारी परसि परमपद पाई ॥  
दंडक बन प्रभु पावन कीन्हो अृपियन त्रास मिटाई ।  
सोइ प्रभु त्रिलोक के स्वामी कनकमृगा सँग धाई ॥  
कपि सुग्रीव बंधु-भय-ब्याकुल तिन जय छत्र फिराई ।  
रिपु को अनुज विभीषण निसिचर परसत लंका पाई ॥  
सिव-सनकादिक अरु ब्रह्मादिक सेव सहस मुख गाई ।  
तुलसिदास मास्तसुत की प्रभु निज मुख करत बडाई ॥

भगवान्का खरूप तथा लीला

आँगन फिरत बुद्धरुवनि धाए ।

नील जलद तनु स्याम राम-मिसु जननि निरालि मुख गिरट योः  
बंधुक सुमन अरुन पद-पंकज अंकुर प्रभुव चिन्ह वनि आए  
नूपुर जनु मुनिवर-कलहंसनि रच नीड दै शाँद वगाए  
कटि मेवल वर द्वार ग्रीव दर, रचनि याँद भूपन पदिगय  
उर श्रीवस्स मनोहर हरि नव हैम मध्य मनिगन बहु याए

सुभग चिकुक, द्विज, अन्तर, नासिका, स्ववन, कपोल मोहि अति भाए  
 भ्रू सुंदर करुना-रस-पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जलजाए ॥  
 भाल विसाल ललित लटकन वर, बालदसा के चिकुर सोहाए ।  
 मनु दोउ गुर सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए  
 उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत ओढाए ।  
 नील जलदपर उडुगन निरखत तजि सुमाव मनो तडित छापाे ॥  
 अंग अंग पर मार-निकर मिलि छवि-समूह लै लै जनु छाए ।  
 तुलसिदास रघुनाथ-रूप-गुन तौ कहौं जो विधि होहिं बनाए ॥

आँगन खेलत आनंदकंद। रघुकुल-कुमुद-सुखद चारु चंद ॥  
 सानुज भरत लघन सँग सोहै । सिसु-भूषण भूषित मन मोहै ॥  
 तन-दुति मोर-चंद जिमि झलकै । मनहु उमगि आँग छयि छलकै  
 कटि किकिनि, पग पैंजनि बाजै । पंकज पानि पहुँचियाँ राजै ॥  
 कहुला कंठ बधनहा नीके । नयन-सरोज मयन-सरसी के ॥  
 लटकन लसत ललाट लद्दरी । दमकति दै दै दै दृश्याँ रुरी ॥  
 मुनि-मन हरत मंजु मसि-बुंदा । ललित बदन बलि बालमुकुंदा ॥  
 कुलही चित्र दिवचित्र झँगूली । निरखत मातु मुदित मन फूली ॥  
 महि भनिखंभ डिभ डगि डोलत । कलबल बचन तोतेरे बोलत ॥  
 किलकंत, छुकि झाँकत प्रतिक्रियनि । देत परम सुख पितु अरु अंबनि  
 सुमिरत सुप्रमा हिय हुलसी है । गावत प्रेम पुलकि तुलसी है ॥

सोहत सहज सुहाये मैन ।

खंजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कवि दैन ॥  
 सुंदर सब अंगनि सिसु-भूषण राजत जनु सोपा आये लैन ।  
 बड़ो लाभ, लालची लोभवस रहि गये लखि सुप्रमा बहु मैन ॥  
 भोर भूप लिये गोद मोद भेर, निरखत बदन, सुनत कल वैन ।  
 बालक-रूप अनूप राम-छयि निवसति तुलसिदास-उर-ऐन ॥

जागिये कृपानिधान जानराय रामचंद्र  
 .. जननी कहै बारबार भेर भयो प्यारे ।  
 राजियलोचन विसाल, प्रीति-वापिका-मराल,  
 ललित कमल-यदन उपर मदन कोटि वरे ॥  
 अरन उदित, विगत सरवरी, ससांक किरनहीन,  
 .. दीन दीपजोति, मलिन-दुति समूह तोरे ।  
 गनहुँ ध्यानपत्र-प्रकाश, धीति सब भव-विलास  
 .. आम-जाम-तिभिर तोप-तरनि-तेज जारे ॥  
 बोलत यगनिकर मुखर मधुर करि प्रतीत सुनहु  
 .. रावन प्राणजीवन धन, मेरे तुम वारे ।  
 गनहुँ चैद-चंदी मुनिवृंद-सुत-भागधारि  
 विशद बदत 'जय जय जय जयति कैटभरे' ॥

गं० वा० लं० ४२—४३—

विकसित कमलावली, चउ प्रपुंज चंचरीक,  
 गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे ।  
 जनु विराग पाइ सकल सोक कूप-गृह विहाइ  
 भूत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिझरे ॥  
 सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,  
 भागे जंजाल विपुल, दुख-कंदंब दोरे ।  
 तुलसिदास अति अनंद देखिकै मुखारनिद,  
 छूटै भ्रमफंद परम मंद दंद भरे ॥

विहरत अवध-बीथिन राम ।

संग अनुज अनेक सिसु, नव-नील-नीरद-स्याम ॥  
 तरुन अरुन-सरोज-पद बनी कनकमय पदत्रान ।  
 पीत पट कटि तूनवर, कर ललित लघु धनु बान ॥  
 लोचननि को लहत फल छवि निरखि पुर-नर-नारि ।  
 बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि ॥

मुनि के सँग विराजत चीर ।

काकपच्छ धर, कर कोदृंड सर, सुभग पीतरट कटि तूनीर ॥  
 वदन इंदु, अंमोहू लोचन, स्याम गौर सोभा-सदन सरीर ।  
 पुलकत ऋषि अवलोकि अमित छवि, उरन समाति प्रेम की भीर  
 खेलत, चलत, करत मग कौतुक, विल्लवत सरित-सरोकर-तीर ।  
 तोरत लता, सुमन, सरसीरु, पियत सुधासम सीतल नीर ॥  
 चैठत विमल सिलनि विटपनि तर, पुनि पुनि वरनत छाँह, समीर ।  
 देखत नदत केकि, कल गावत मधुप, मराल, कोकिला, कीर ॥  
 नयननि को फल लेत निरखि खग, मूगा, सुरभी, ब्रजबधू, अहीर ।  
 तुलसी प्रभुहि देत सब आसन निज निज मन मृदु कमल कुटीर ॥

रामपद-पदुम-पराग परी ।

ऋषितिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छविमय देह धरी ॥  
 प्रवल पाप पति-साप दुसह दब दारुन जरनि जरी ।  
 कृपासुधा रिंच विवुध-वेल ज्याँ फिरि सुख-फरनि फरी ॥  
 निगम-आम भूरति महेस-मति-जुवति बराप बरी ।  
 सोइ भूरति भइ जानि नयनपथ इकट्क तें न टरी ॥  
 अरनति हृदय सरूप, सील, गुन प्रेम-प्रमोद-भरी ।  
 तुलसिदास अस केहि आरत की आरति प्रभु न हरी ॥

नेकु, सुमुखि, चित्र लाइ चितौ, री ।

राजकुँवर-भूरति रचित्रे की रच्चि सुविरँचि अम कियोहै कितौरी ॥  
 नव-सिल सुंरता अवलोकत कद्यो न परत मुत्र होत जितौ, री ।  
 साँवर रूप-सुधा भरिये कहै नयन-कमल कल कलस रितौ, री ॥

मेरे जान इन्हें थोड़िये पारन चतुर जनक ठयो ठाट इतौ, री ।  
गुलगी प्रभु भजिए मंगु-धनु, भूरि भाग सिय-मातु-पितौ, री ॥

कुट्ट राम, गीय तुलही री ।

पन-शमिन वर वरन, धरन-मन, मुंदरता नखमिल निवही, री ॥  
व्यादि-विभूगुन-वगन-विभूगित, सखि अबली ललि ठागि सीरही, री ॥  
लीवन-जगन-लातु, लोचन-फल है इतनोइ, लहो आजु सही, री ॥  
गुणगा सुरभि भिंगार-चीर दुहि मयन अभियमय कियो है दही, री ॥  
गायि गायन मिय-राम सँवारे, सकल भुवन छवि मनहुँ मही, री ॥  
तुलसिदास जोरी देखत सुल-सोभा अतुल, न जाति कही, री ।  
स्तर-राति विरच्चि विरच्चि मनो, सिला लवनि रति-काम लही री ॥

मनोहरता के मानो ऐन ।

स्थागल-गौर किसोर पथिक दोउ, सुमुखि ! निरखु भरि नैन ॥  
वीच वधू विषुवदनि विराजति, उपमा कहुँ कोउ है न ।  
मनहु रति-ऋतुनाथ सहित मुनि-वेष बनाए है मैन ॥  
किधीं विंगार-सुपमा-सुप्रेम मिलि चले जग-चिति-वित लैन ।  
अद्युत त्रयी किधीं पठई है विधि मग-लोगन्हि सुख दैन ॥  
सुनि सुचि सरल सनेह सुहावने ग्रामबधुह के वैन ।  
तुलसी प्रभु तरु तर विलंबे, किए ग्रेम-कनौडे कै न ?

मंजुल मूरति मंगलमई ।

भयो विसोक विलोकि विभीषन, नेह देह-सुविधि-सींच गई ॥  
उठि दाहिनी ओर तें सनमुख सुखद माँगि बैठक लई ।  
नख-नसिख निरवि-निरवि सुख पावत, भावत कछु, कछु औरभई  
वार कोटि सिर काटि, साटि लटि राबन संकर पै लई ।  
सोइ लंका लखि अतिथि अनवसर राम तृनासन-ज्यों दई ॥  
श्रीति-प्रतीति-रीति-सोभा-सरि, शाहूत जहैं-जहैं तहैं घई ।  
बाहु-बली, बानैत बोल्को, बीर विद्यविजई-जई ॥  
को दयाल दूसरो दुनी, जेहि जरनि दीन हिय की हई ? ।  
तुलसी काको नाम जपत जग जगती जामति विनु वई ॥

आजु रघुबीर-छवि जात नहि कछु कही ।

सुभग सिंहासनासीन सीता-रवन,

भुवन-अभिराम, वहु काम सोभा सही ॥

चारु चामर-व्यजन, छत्र-मनिगन विपुल,

दाम-मुकुतावली-जोति जगमगि रही ।

सनहुँ राकेस सँग हंस-उडुगन-वराहि

मिलन आए हृदय जानि निज नाथही ॥

झुकुट सुंदर सिरसि, भालवर तिलक, झूँ

कुटिल कच, कुंडलनि परम आभा लही ।

मनहुँ हर डर जुगल मारब्ज के मक  
लागि खबननि करत मेरु की बर

अरुन राजीव-दल-नवनि करुना-अवन,

बदन सुपमा सदन, हास व्रयत  
विविध कंकन, हार, उरसि गजमनि-माल,

मनहुँ वग-पाँति जुग मिलि चली जलद  
पीत निरमल चैल, मनहुँ भरकत सैल,

पृथुल दामिनि रही छाइ तजि सहजह  
ललित साथक-चाप, पीन सुज बल अतुल

मनुज-कनु दर्जु-धन-दहन, मंडन मही  
जामु सुन-रूप नहि कलित, निरपुन समुन,

संभु-सनकादि, सुक भगति दढ़ करि गही  
दास तुलसी राम-चरन-पंकज सदा

वचन मन करम चहै प्रीति नित निरवही ।

तसि ! रघुनाथ-रूप निहार ।

सरद-विधु रवि-सुवत सरनसेज मान भंजनिहार ॥

स्थाम सुभग सरीर जन-मन-काम-पूरनिहार ॥

चारु चंदन मनहु भरकत-सिद्धर लसत निहार ॥

सुचिर उर उपत्रीलं राजत, पदिक गजमनि-हार ॥

मनहु सुरपतु नखतगन विच तिमिर-भंजनिहार ॥

विमल पीत दुक्कल दामिनि-दुसि विनिदनिहार ॥

बदन सुषमा-सदन सोभित मदन-मोहनिहार ॥

सकल अंग अनू, नहि कोउ सुकवि वरननिहार ॥

दास तुलसी निरखतहि सुख लहत निरखनिहार ॥

आज रघुपति-मुख देखत लागत सुख,

सेवक सुरुष, सोभा सरद-ससि रिहाई ।

दसन-वसन लाल, विसद हास रसाल

मानो हिमकर-कर राखे राजिव भनाई ॥

अरुन नैन विसाल, ललित भुकुटी, भाल,

तिलक, चारु कपोल, चिकुक-नासा सुहाई ।

विशुरे कुटिल कच, मानहु मधु लालच अलि

नलिन-जुगल ऊपर रहे लोपाई ॥

खबन सुंदर सम कुंडल कल जुगम,

तुलसिदास अनूप, उपमा कहि न जार ।

मानो मरकत सीप सुंदर ससि उमीप

कनक-मकर-जुत विधि विरच्चि बनाई ॥

देखत अवध को आनंद ।

हरयि वरयत सुमन दिन-दिन देखतनि धो दृंद ॥

नगर-रचना सिखन को विधि तकत बहु विधिवृद्ध ।  
नियट लागत अगम, ज्यों जलचराहि गमन सुर्जन ॥  
मुदित पुरलोगनि सराहत निरखि सुषमाकंद ।  
जिन्ह के सुअलि-चल पिभत राम-मुखारविंद-मरंद ॥  
मध्य व्योम विलंबि चलत दिनेस-उडुगन-चंद ।  
रामपुरी विलोकि तुलसी मिठत सब दुख-द्रंद ॥

### उद्घोषण

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं,  
जियैं जाचिअ जानकिजानहि रे ।  
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ,  
जो जारति जोर जहानहि रे ॥  
गति देखु त्रिचारि विभीषण की,  
अरु आनु हिएँ हनुमानहि रे ।  
तुलसी ! भजु दारिद-दोष-दवानल,  
संकट कोटि कृपानहि रे ॥  
  
सुत, दारु अगाह, सखा, परिवार  
विलोकु महा कुसमाजहि रे ।  
सब की समता तजि कै, समता सजि,  
संतसमाँ न विराजहि रे ॥  
नरदेह कहा, करि देखु विचार,  
त्रिगाह गँवार न काजहि रे ।  
जनि दोलहि लोलुप कूकर ज्यों,  
तुलसी भजु कोसल्याजहि रे ॥  
  
सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ,  
सो भामिनि, सो सुतु, सो हितु भेरो ।  
सोइ सगो, सो सखा, सोइ सेवकु,  
सो गुरु सो सुरु, साहेबु, चेरो ॥  
सो 'तुलसी' पिय प्रान समान,  
कहाँ लौ बनाइ कहाँ बहुतेरो ।  
जो तजि देह को गेह को नेहु,  
सनेह सो राम को होइ सबेरो ॥  
  
राम हैं मातु, पिता, गुरु, वंधु,  
औ संगी, सखा, सुतु, स्वामि, सनेही ।  
राम की सौह, भरोनो है राम को,  
राम रैंगयो, रचि राचयो न केही ॥  
जीआत रामु, सुऐं पुनि रामु,  
सदा रघुनाथहि की गति जेही ।  
गोरु लिएं जग में 'तुलसी',  
न तु दोलत और मुए धरि देही ॥

सियराम-सर्पु अगाध अनूप  
विलोचन-मीनन को जलु है ।  
श्रुति रामकथा, सुख राम को नामु;  
हिएँ पुनि रामहि को थलु है ॥  
मति रामहि सों, गति रामहि सों,  
रति राम सों, रामहि को बछु है ।  
सब की न कहै तुलसी के मते  
इतनो जग जीवन को फलु है ॥  
  
तिन्ह तें खर, स्कर, स्वान भले,  
जड़ता बस ते न कहैं कछुवै ।  
'तुलसी' जेहि राम सों नेहु नहीं,  
सो सही पमु पूछ, विषान न द्वै ॥  
जननी कत भर मुई दस मास,  
भई किन बाँझ, गई किन च्वै ।  
जरि जाउ सो जीवनु जानकिनाथ !  
जियै जग में तुम्हरो विनु है ॥  
  
गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा,  
धनिता, सुत भौह तकैं सब वै ।  
धरनी, धनु, धाम सरीर भले,  
सुरलोकहु चाहि इहै सुखु स्वै ॥  
सब फोकट साटक है तुलसी,  
अपनों न कछू सपनो दिन द्वै !  
जरि जाउ सो जीवन जानकिनाथ !  
जियै जग में तुम्हरो विनु है ॥  
  
सुरराज-सो राज-समाजु, समुद्दि  
विरंचि, धनाधिप-सो धनु भो ।  
पवमानु-सो, पावकु-सो, जमु, सोमु-  
सो, पूष्पनु-सो, भवभूष्णु भो ॥  
करि जोग, समीरन साधि, समाधि  
कै धीर वङ्गो, वसहू मनु भो ।  
सब जाय, सुभयै कहै तुलसी,  
जो न जानकिजीवन को जतु भो ॥  
  
कामु-से रूप, प्रताप दिनेसु-से,  
सोमु-से सील, गनेसु-से माने ।  
हरिवंदु से साँचे, बड़े विधि-से,  
मध्यना-से महीप विष्वे-सुख-साने ॥  
सुक-से मुनि, सारद-से वकता,  
विरजीवन लोमस तें अधिकाने ।

० संत वचन सीतल सुधा करत तापव्रय नास्त ॥

जाँ जगजातना, ओर नदी,  
भट कोटि जलचर दंत-टेवैया ।  
जाँ भार भयंकर, बार न पार,  
न चोहितु नाथ, न नीक खेवैया ॥  
'तुलसी' जहँ मालु-पिता न सखा,  
नहि कोउ कहूँ अबलंब देवैया ।  
तहाँ विनु कारन रामु कृपाल  
विसाल भुजा गंहि काढि लेवैया ॥  
जहाँ हित स्वामि, न संग सखा,  
वनिता, सुत, बंधु, न बापु, न मैया ।  
काय-गिरा-मन के जन के  
अपराध सबै छलु छाडि छमैया ॥  
तुलसी ! तेहि काल कृपाल विना  
दूजो कौन है दारन दुख दमैया ।  
जहाँ सब संकट, दुर्घट सोनु,  
तहाँ मेरो सहेबु राखै रमैया ॥  
  
रामु विहाइ 'मरा' जपते  
विगरी सुधरी कविकोकिलहू की ।  
नामहि तैं गज की, गणिका की,  
अजामिल की चलि गै चलचूकी ॥  
नामप्रताप बडे कुरुमाज  
बजाइ रही पति पांडुवधू की ।  
ताको भलो अजहूँ 'तुलसी'  
जेहि प्रीति-प्रतीति है आखर दू की ॥  
  
नामु अजामिल-से खल तारन  
तारन बारन-बारवधू को ।  
नाम हरे प्रहलाद-विष्णव  
प्रिता-भय-सौभति-सागर मुको ॥

नामसों प्रीति-प्रतीति-विहीन  
गिल्यो कलिकाल कराल, न चूको ।  
रासि हैं रामु सो जामु हिएँ  
तुलसी हुलसै बल आखर दू को ॥  
जाँ जोगी-जगम, जती-जमाती ध्यान धरै  
डरै उर भारी लोम, मोह, कोह, काम के ।  
जाँ राजा राजकाज, सेवक-समाज, साज,  
सोचै सुनि समाचार बड़े बैरी वाम के ॥  
जाँ बुध विद्या हित पंडित चकित चित  
जाँ लोभी लालच धरनि, धन, धाम के ।  
जाँ भोगी भोगहीं, वियोगी, रोगी सोगवस,  
सोचै सुख तुलसी भरोसे एक राम के ॥  
  
रामु मातु, पितु, बंधु, सुजनु, गुरु, पूज्य, परमहित ।  
साहेबु, सखा, सहाय, नेह-नाते पुनीत चित ॥  
देसु, कोसु, कुलु, कर्म, धर्म, धनु, धामु, धरनि, गति ।  
जातिपाँति सब भौति लागि रामहि हसारि पति ॥  
परमारथु, स्वारथु, सुजनु, सुलभ राम तैं सकल फल ।  
कह तुलसिदासु, अब, जब-कवहूँ एक राम तैं मोर गल ॥  
को न कोध निरदहो, काम वप केहि नहि कीन्हो ?  
को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि आसन कर दीन्हो ?  
कौन हृदयै नहि लग कठिन अति नारिन्यन-सर ?  
लोचनजुत नहि अंध भयो श्री पाइ कौन नर ?  
सुर-नाश-लोक महिमंडलहुँ को जु मोह बीन्हो जय न ?  
कह तुलसिदासु सी ऊबरै, जेहि राम रामु राजिनयन ॥  
  
राम-नाम-जपकी महिमा  
हियैं निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम मुनाम ।  
मनहुँ पुरुष संपुट लसत तुलसी ललित ललाम ॥  
नाम राम को अंक है सब साधन हैं राम ।  
अंक गरै कछु हाथ नहि अंक रहै दत यत ॥  
भीठो अरु कठवति भरो रौताई अरु द्येम ।  
स्वारथ परमारथ सुलभ राम नाम के प्रेम ॥  
राम नाम अवलंब विनु पेरमारथ की आम ।  
दरमत शारद दूँद गहि चाहत चढ़न अकाम ॥  
विगरी जनम् अनेक की सुधरै अवहीं आगु ।  
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि गुणगातु ॥  
राम नाम रति राम गति राम नाम निवाम ।  
सुमिल सुभ मंगल कुमल दुहुँ दियि गुलामी दाम ॥

राम नाम नरकेपरी कनककसिपु कलिकाल ।  
जापक जन प्रहलाद जिभि पालिह दलि सुरसाल ॥  
स्वपच सबर खस जमन जड़ पाँवर कोल किरात ।  
रामु कहत पावन परम होत मुवन विख्यात ॥

### राम-प्रेमके विना सब व्यर्थ है

रसना सौंपिनि बदन विल जे न जपहिं हरिनाम ।  
तुलसी प्रेम न राम सों ताहि विधाता बाम ॥  
हिय फ़ाटड फूटहुँ नयन जरउ सो तन कैहि काम ।  
द्रवहि स्ववहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम ॥  
हृदय सों कुछिस समान जो न द्रवहि हरिगुन सुनत ।  
कर न राम गुन गान जीह सों दादुर जीह सम ॥  
खंवै न सलिल सनेहु तुलसी सुनि रघुवीर जय ।  
ते नेयना जनि देहु राम ! करहु वह आँधरो ॥  
है न जल भरि पूरि राम ! सुजस सुनि राघरो ।  
तिन आँखिन में धूरि भरि-भरि मूठी मेलिये ॥

### राम-प्रेमकी महत्ता

राम सनेही राम गति राम चरन रति जाहि ।  
तुलसी फल जग जनम को दियो विवाता ताहि ॥  
धाएु आपने ते अधिक जेहि प्रिय सीताराम ।  
तेहि के पग की पानहीं तुलसी तनु को चाम ॥  
जे जन रुखे विषय रस चिकने राम सनेह ।  
तुलसी ते प्रिय राम को कानन वसहि कि गेह ॥  
जथा लाम संतोष सुन रघुवर चरन सनेह ।  
तुलसी जो मन द्वृद सम कानन वसहुँ कि गेह ॥

### रामप्रेमके लिये वैराज्यकी आवश्यकता

राम प्रेम पथ पेलिए दिएं विषय तन पीठि ।  
तुलसी केनुरि परिहरें होत साँपहू दीठि ॥  
तुलसी जौ लौं विषय की मुधा माधुरी मीठि ।  
तौ लौं मुधा सहस तम राम भगति मुठि मीठि ॥

### भक्तिका स्वरूप एवं महिमा

प्रीति राम सों नीतिग्रथ चलिय राग रित जीति ।  
तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति ॥  
हित सों हित, रति राम सों, रिपु सों वैर निहाड ।  
उदामीन सच सों सरल तुलसी सहज मुभाउ ॥

तुलसी ममता राम सों समता सब संसार ।  
राग न रोष न दोष दुख दास भए भव पार ॥  
वारि मर्थे व्रत होइ वहु सिकता ते वहु तेल ।  
विनु हरिभजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ॥  
हरि माया कृत दोष गुन विनु हरि भजन न जाहिं ।  
भजिअ राम सब काम तजिअप विचारि मन माहिं ॥

### उपदेश

धर कीन्हें धर जात है धर छाँडे धर जाह ।  
तुलसी धर बन वीचहीं राम प्रेम पुर छाइ ॥  
दिएं पीठि पाछे लौं सनमुख होत पराइ ।  
तुलसी संपति छाँह ज्यों लखि दिन वैठि गँवाइ ॥  
तुलसी अद्भुत देवता आसा देवी नाम ।  
सेर्ये सोक समर्पई विमुख भएं अभिराम ॥  
कै निदरहुँ कै आदरहुँ सिंधिहि स्वान विज्ञार ।  
हरष विषाद न केशिहि कुंजर गंजनिहर ॥  
तनु गुन धन महिमा धरम तेहि विनु जेहि अभिमान ।  
तुलसी जिअत विदंबना परिनामहु गत जान ॥  
जो परि पायै मनाइए तासों रुठि विचारि ।  
तुलसी तहाँ न जीतिए जहैं जीतेहुँ हारि ॥  
जूझे ते भल बूझियो भली जीति तैं हार ।  
डहके तैं डहकाइयो भलो जो करिअ विचार ॥  
वैर मूल द्वर हित वक्जन प्रेम मूल उपकार ॥  
दोहा सुभ संदोह सो तुलसी किएं विचार ॥  
रोष न रसना खोलिए वहु खोलिय तरवारि ।  
जुनत मधुर परिनाम हित खोलिअ वचन विचारि ॥  
मधुर वचन कटु खोलियो विनु थ्रम भाग अभाग ।  
कुहु कुहु कलकंठ रव का का कररत काग ॥  
पेट न फूलत विनु कहैं कहत न लागइ ढेर ।  
सुमति विचारैं खोलिये समुक्षि कुफेर सुफेर ॥  
लखइ अशानो सूख ज्यों लखइ जीति मैं हारि ।  
तुलसी सुमति सराहिए मग पग धरद विचारि ॥  
तुलसी असमय के सदा धीरज धरम विचेक ।  
जाहित साहस मत्यवत राम भरोसो एक ॥  
तुलसी स्वारथ सामुहो परमारथ तन पीठि ।  
अंध कहैं दुख पाहै डिटिआरो केहि छीठि ॥  
निज दूपन गुन राम के समझें तुलसीदास ।  
होइ भलो कलिकालहुँ उभय लोक अनयास ॥

एवं परोगो एक वद, एक आग विद्यास ।  
 एवं गम धनरायम हित आतक तुलसीदास ॥  
 तुलसी आंके बदन ते धोवेहु निकलत राम ।  
 तांके पग की पगती, मेरे तन को नाम ॥  
 जीं जगदीम तो अति भट्टो, जीं महीन तौ भाग ।  
 तुलसी जाइत जगग भरि राम चरन अनुराग ॥  
 यितु गतांग न हरि कथा तेहि यितु मोह न भाग ।  
 मोह गर्दे यितु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ॥  
 बरउ भो मंपति उदन सुखु सुहृद मातु पितु भाद ।  
 सन्मुख दृष्ट जो राम पद करइ न सहस रहाइ ॥  
 जो मंगति सिव राघनहि दीनिह दिएँ दस माथ ।  
 सोइ संपदा यिभीपनहि सकुचि दीनिह रुनाथ ॥  
 नीच निचाई नहि तजह सजनहू के संग ।  
 तुलसी चंदन विश्व वसि यितु यिप भए न मुअंग ॥

भलो भलाहिह पै लहड़, लहइ निचाइह नीतु ।  
 सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीतु ॥  
 फूलह फरइ न चेत, जदपि सुधा वरसहि जलद ।  
 मूरख हृदयै न चेत, जीं गुरु मिलहि विरचि सम ॥  
 जहाँ राम तहै काम नहिं जहाँ काम नहिं राम ।  
 तुलसी कबहु होत नहिं रवि रजनी इक ठाम ॥  
 तुलसी भीठे बचन ते सुख उपजत चहु और  
 वसीकरन यह मंत्र है परिहर बचन कठोर  
 तात स्वर्ग अपर्ग मुख धरिज तुला एक अंग  
 तूल न ताहि सकल मिल जो सुख लब सततंग ।  
 सोइ ध्यानी सोइ गुनी जन सोई दाता ध्यानि  
 तुलसी जाके चित भई राग देष की हानि ॥  
 विनिक्षितं वदामि ते न अन्यथा वचांगि मे ।  
 हरि नरा भजांति येऽति दुसरं तरंति ते ॥

## रसिक संत विद्यापति

(जन—विकासी १५ वीं सदी) जन्म-सान विसी ग्राम, भक्त च०८३८दासके समसामयिक, पिताका नाम—गणपति डा.  
 जाति—सैशिल ब्राह्मण, देहावसान वि० १५ वीं सदीके अन्तमें)

ओचन धाए केधायेल हरि नहि आयल रे ।  
 शिव शिव जिवओ न जाए आस अस्त्वाएल रे ॥  
 मन करि तहै उड़ि जाइय जहाँ हरि पाइय रे ।  
 देम परसमनि जानि आनि उर लाइय रे ॥  
 सपनहु संगम पाओल रंग बढ़ाओल रे ।  
 से मोरा धिहि विश्वदाओल निन्दजो हेशयल रे ॥  
 भनहि विद्यापति गाओल धनि धवरज कर रे ।  
 अचिरि मिलं तोहि बालम पुरत मनोरथ रे ॥  
 एव बृद्धावन नव नव तस्मग नव नव विकसित फुल ।  
 फुल वसन्त नवल मल्यानिल मातल नव अलिकुल ॥

विहरइ नवल किदोर ।

गालिन्दि पुलिं कुञ्जबन शोभन नव नव भ्रेम विपौर ॥  
 नवल रसाल मुकुल मधु मातल नव कोकिलकुल गाथ ।  
 एव युवतीगण चित उमतायइ नव रसे कानने धाय ॥  
 एव युवराज नवल नव नागरि भिलये नव नव भाँति ।  
 नेत्र ऐसन नव नव लेलन विद्यापति भति साति ॥

सखि कि पुछसि अनुभव मोय ।

झो पिरिति अनुराग बसानइत तिले तिले नूतुन होय ॥  
 कन्म अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपति भेल ।  
 झो मधुर ओल श्रवणहि सुमल श्रुतिष्ये परजा न गेल ॥

कत मधु जामिनिय रमसे रमाओल न बुझल कैसन केल  
 लाख लाख जुग हिय हिय राखल तड़ओ हिया जुइन न गेल  
 कत विद्गाथ जन रस अनुसगन अनुभव काहु न ऐस  
 विद्यापति कह प्राण जुड़ाइत लाखवे न मिलल एक

## बन्दना

नन्द क नन्दन कदम्य क तरु तर धिरे-धिरे मुरलि वजाय ।  
 समय सँकेत निकेतन बद्धसल बेरि-बेरि बोलि पठाय ॥  
 सामरि, तोरा लाभि असुखन चिकल मुरारि ।  
 जमुना क सिर उम्बन उद्देगल फिरि-फिरि ततहि पिहारि ॥  
 गोरस बेचए अबहृत जाइत जनि जनि पुछ बनमारि ।  
 तोहि मतिमान, सुमति, मधुसूदन बचन सुनहु किलु मोरा ॥  
 भनहि विद्यापति सुन बरजैवति बन्दह नन्द किलोरा ॥

## कृष्ण-कीर्तन

मावब, कत तोर करब वडाई ।  
 उपमा तोहर कहव ककरा हम कहितहु अधिक लजाई ॥  
 जीं श्रीखंड सौरभ अति दुरलम तीं पुनि काठ कदोर ।  
 जीं जमदीस निसाकर तीं पुनि एकहि पञ्च उजोर ॥  
 मनि समान औरो नहि दोपर तनिकर पापर नांग ।  
 कनक कदलि छोट लजित मण् रख की कहु धामहि दाम ॥  
 तोहर सरिस एक तोहै मावब मन होइय अमुगन ।  
 सजन जन सों नेह कठिन थिक कवि विद्यापति भान ॥

माधव, वहुत मिनति करि तोय ।  
दए तुलसी तिल देह समर्पितु दय जनि छाइबि मोय ॥  
गनहित दोसर गुन लेस न पाओबि जब तुहुँ करवि विचार ।  
तुहुँ जगत जगनाथ कहाओसि जग बाहिर नहि छार ॥  
किए मानुस पशु परिभ भए जनमिए अथवा कीट पतंग ।  
करम विपाक गतागत पुनु पुनु मति रह तुअ परसंग ॥  
भनइ विद्यापति अदित्य कातर तरइत इह भव-सिंधु ।  
तुअ यद-पहच करि अवलम्बन तिल एक देह दिनक्षंधु ॥

### प्रार्थना

तातल सैकत वारि-बिन्दु सम सुत-मित-रमनि-समाज ।  
तोहे विसारि मन ताहे समरपितु अब मझु हव कोन काज ॥

माधव, हम परिनाम निरासा ।

तुहुँ जगतारन दीन दयामय अतय तोर विसदासा ॥  
आध जनम हम नींद गमायनु जरा सिसु कत दिन गेला ।  
निखुवन रमनि-रभस रँग मात्सु तोहे भजब कोन बेला ॥  
कत चतुरानन मरि मरि जाओत न तुअ आदि अवसना ।  
तोहे जनमि पुन तोहे समाओत सागर लहरि समाना ॥

### रसिक संतकवि चंडीदास

(जन्म—वीरभूमि जनपदके छटना धाममें वि० सं० १४७४ । गाथकसंत विद्यापतिके समकालीन, नकुल ठाकुरके छोटे भाई,  
जाति—माझण । देहान्त—वि० सं० १५३४ किर्णद्वार नामक धाममें । वय—६० वर्ष । )

‘मेरे प्रियतम ! और मैं तुम्हें क्या कहूँ । वस, इतना ही चाहती हूँ—जीवनमें, मृत्युमें, जन्म-जन्ममें तुम्ही मेरे प्राणनाथ रहना । तुम्हारे चरण एवं मेरे प्राणोंमें प्रेमकी गाँठ लग गयी है; मैं सब कुछ तुम्हें समर्पितकर एकान्त मनसे तुम्हारी दासी हो चुकी हूँ । मेरे प्राणेधर ! मैं सोन्चकर देखती हूँ—इस निखुवनमें तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कौन ऐ । ‘प्राधा’ कहकर मुझे पुकारनेवाला तुम्हारे सिवा और कोई भी तो नहीं है । मैं किसके समीप जाकर खड़ी होऊँ ! इस गोकुलों कौन है, जिसे मैं अपना कहूँ । सर्वत्र ज्वाला है, एकमात्र तुम्हारे युगल चरण-कमल ही शीतल हैं; उन्हें शीतल देखकर ही मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ । तुम्हारे लिये भी अब यही उचित है कि मुझ अवलाको चरणोंमें स्थान दे यो; मुझे अपने शीतल चरणोंसे दूर मत फेंक देना । नाथ ! सोचकर देखती हूँ, मेरे प्राणनाथ ! तुम्हारे यिना अब मेरी अग्नि गति ही कहाँ है । तुम यदि दूर फेंक दोगे तो मैं अनल कहाँ जाऊँगी । मेरे प्रियतम ! एक निमेपके लिये

भनइ विद्यापति सेष समन भय तुअ विनु गति नहि आरा ।  
आदि अनादि नाथ कहाओसि अब तारम भार तोहारा ॥  
जतने जतेक धन पापे बटोरल मिलि मिलि परिजन स्थाय ।  
भरनक वेरि हरि कोई न पूछए करम संग चलि जाय ॥

ए हरि, बन्दौं तुअ पद नाय ।

तुअ पद परिहरि पाप-पर्योनिधि पारक कओन उपाय ॥  
जावत जनम नहि तुअ पद सेविनु जुबती मति मर्यँ मेलि ।  
अमृत तजि हलाहल किए थीअल सम्बद अपदहि भेलि ॥  
भनइ विद्यापति नेह मने गनि कहल कि बादव काजे ।  
सौङ्कक वेरि सेवकाई मँगहत हेरइत तुअ पद लाजे ॥  
हरि सम आनन हरि सम लोचन हरि तहाँ हरि बर आमी ।  
हरिहि चाहि हरि हरि न सोहावए हरि हरि कए उठि जामी ॥

माधव हरि रहु जलधर छाई ।

हरि नयनी धनि हरि-धरिनी जनि हरि हेरइत दिन जाई ॥  
हरि भेल भार हार भेल हरि सम हरिक बचन न सोहावे ।  
हरिहि पहसि जे हरि जे नुकाएल हरि चढ़ि मोर बुझावे ॥  
हरिहि बचन पुनु हरि सर्यँ दरसन सुकवि विद्यापति भाने ।  
राजा सिवसिंह रूपनरायन लखिमा देवि रमाने ॥

मी जब तुम्हें नहीं देख पाती, तब मेरे प्राण निकलने लगते हैं । मेरे सर्पर्शमणि ! तुम्हें ही तो मैं अपने अङ्गोंका भूषण बनाकर गलेमें धारण करती हूँ ।

X                    X                    X

‘सखि ! यह श्याम-नाम किसने सुनाया, यह कानके द्वारा सर्मस्थानमें प्रवेश कर गया और इसने मेरे प्राणोंको व्याकुल कर दिया । पता नहीं, श्याम-नाममें किसना माधुर्य है, इसे मुँह कमी छोड़ नहीं सकता । नाम जपते-जपते मैं अवश हो गयी हूँ, सखि ! मैं अब उसे कैसे पाऊँगी ? जिसके नामने मेरी यह दशा कर दी, उसके अङ्ग-स्थानसे तो पता नहीं क्या होता है । वह जहाँ रहता है, वहाँ उसे आँखोंसे देखनेपर युक्तीका धर्म कैसे रह सकता है । मैं भूल जाना चाहती हूँ, पर मनमें भुलाया नहीं जा सकता । मैं अब क्या कहूँ; मेरे लिये क्या उपाय होगा ? चण्डीदास द्विज कहता है—इससे कुलशतीका कुल नाश होता है, क्योंकि वह हमारा यौवन माँगता है ।

## महान् त्यागी

### रघु और कौत्स

महान् त्यागी महर्षि वरतन्तु—वर्णोत्तक कौत्स उनके आश्रममें रहा। महर्षिने उसे अपने पुत्रके सम्मान पाला और पढ़ाया। कौत्सके निवास-भोजन आदिकी व्यवस्था, उसके स्वास्थ्यकी चिन्ता—लेकिन गुरुके लिये अन्तेश्वरी तो अपनी ती संतुति है। गुरुने अपना समस्त ज्ञान उसे दान किया और जब सुयोग्य होकर वही अन्तेश्वरी स्वातक होने लगा, घर जाने लगा, गुरुके शेषका प्रश्न आनेपर उस परम त्यागीने कहा—‘कृत्स ! मैं तुम्हारी सेवासे ही संतुष्ट हूँ। हारी विद्या लोक और परलोकमें भी फल-यनी हो।’

कौत्सका आग्रह था—‘मुझे कुछ अवश्य आज्ञा दिये बिना मुझे संतोष होगा।’

कौत्स अवश्यकीन युवा था। उसका हठ—वैने जो निष्काम स्वेह दिया था उसे—उसका प्रतिदान हो सकता था ? कौत्सका आग्रह—का तिरस्कार था वह और आग्रहके दुराग्रह जानेपर महर्षिको कुछ कोप-सा आ गया। नि कहा—‘तुमने मृशसे चौदह चिद्राएँ सीखीं। प्रत्येकके लिये एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ करो।’

‘जो आज्ञा !’ कौत्स ब्राह्मण था और भारतकी सम्प्राट् अपनेको त्यागी ब्राह्मणोंका से घोषित करनेमें गौरवान्वित ही मानते थे। कौत्स भोजन आदिकी व्यवस्था, उसके स्वास्थ्यकी के लिये सचिन्त होनेका कारण ही नहीं था। विनाशकी—लेकिन गुरुके लिये अन्तेश्वरी तो अपनी सीधे अयोध्या चल पड़ा।

चक्रवर्ती सम्राट् महाराज रघुने भूमिमें पृथ्वी प्रणिपात किया, आसनपर विराजमान करके चरण धोये और अतिथि ब्राह्मणकुमारका पूजन किया। अतिथिने पूजा ली और उपचाप उठ चला।

‘आप कैसे पधारे थे ? सेवाकी कोई आज्ञा दिये बिना कैसे चले जा रहे हैं ? इस सेवकका अपराध ?’ महाराज रघु हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये।

‘शजन् ! आप महान् हैं।’ कौत्सने बिना किसी खेदके कहा—‘मैं आपके पास याचना करने आया था; किन्तु देव रहा हूँ कि विश्वजित् पृथ्वीमें आपने सर्वस्य दान कर दिया है। अपने पास अतिथि-पूजनके पात्र भी मिहीके ही रह गये हैं। इस शिरिमें आपको संकोचमें डालना मैं कोंचाहूँगा। आप चिन्ता न करें।’

‘रघुके यहाँ एक ब्राह्मण स्वातक गुरु-दर्शिणी-की आशासे आकर निराश लौट गया, इस कल्प से आप मेरी रक्षा करें।’ महाराजका यह गद्दार

हो रहा था—‘केवल तीन रात्रियाँ आप मेरी शेष द्रव्य ब्राह्मणोंको दान कर दिया गया । अग्निशालामें निवास करें ।’

X X X

कौत्सने प्रार्थना स्वीकार कर ली । वे यज्ञशाला-के अतिथि हुए । लेकिन महाराज रघु राजसदनमें नहीं गये । वे अपने शत्रुसज्ज युद्धरथमें रात्रिको सोये । उनका संकल्प महान् था । पृथ्वीके समस्त नरेश उनके यज्ञमें कर दे चुके थे । किसीसे दुवारा द्रव्य लेनेकी वात ही अन्याय थी । महाराजने धनाधीश कुवेरपर चढ़ाई करनेका निश्चय किया था ।

प्रातः युद्धयात्राका शह्नाद हो, इससे पूर्व अयोध्याके कोपाध्यक्षने सूचना दी—‘कोपमें स्वर्ण-वर्पा हो रही है ।’ लोकपाल कुवेरने चुपचाप अयोध्याधीशको ‘कर’ दे देनेमें कुशल मान ली थी ।

दो महान् त्यागी दीखे उस दिन विश्वको—स्वर्णकी राशि सामने पड़ी थी । महाराज रघुका कहना था—‘यह सब आपके निमित्त आया धन है । मैं ब्राह्मणका धन कैसे ले सकता हूँ ।’

कौत्स कह रहे थे—‘मुझे धनका क्या करना है । गुरुको दक्षिणा निवेदित करनेके लिये केवल चौदह सहस्र मुद्राएँ—मैं एक भी अधिक नहीं लूँगा ।’

त्याग सदा विजयी होता है । दोनों त्यागी विजयी हुए । कौत्सको चौदह सहस्र मुद्रा देकर

### निमाईका गृह-त्याग

एक और महत्तम त्याग—घरमें कोई अभाव नहीं था । स्नेहमयी माता, परम पतिव्रता पत्नी—समस्त नवद्वीप श्रीचरणोंकी पूजा करनेको उत्सुक । सुख, स्नेह, सम्मान, सम्पत्ति—लेकिन सब निमाईको आवद्ध करनेमें असमर्थ हो गये ।

अपने लिये ? जिनकी कृपादृष्टि पड़ते ही जगाई-प्रधाईसे पापी पावन हो गये, उन्हें—उन महत्तमको त्याग, तप, भजन अपने लिये—लेकिन सारा लोक जिनका अपना है, उन्हें अपने लिये ही तो बहुत कुछ करना पड़ता है । अपनोंके लिये तो वे नाना नाय्य करते हैं ।

लोकादर्शकी स्थापना—लोकमें त्यागपूर्ण उपासना—परमप्रेमके आदर्शकी स्थापनाके लिये—लोकमङ्गलके लिये चैतन्यने त्याग किया ।

समस्त जीवोंके परम कल्याणके लिये नवतरुण निमाई पण्डित ( आगे चलकर ) गौराङ्ग महाप्रभु रात्रिमें स्नेहमयी जननी शनी माता और परम पतिव्रता पत्नी विष्णुप्रियाको त्यागकर तैरकर गङ्गा पर हुए संन्यासी होनेके लिये । त्यागियोंके वे परम पूज्य……… ।

## शाक संत श्रीरामप्रसाद सेन

( बंगाली, भानु गंगतापि, जन्म—१८० सन् १७१८, कुमार-हड्डा ग्राममें। पिताका नाम—श्रीरामजी सेन, जाति—बैश्य। )

“ मन दिन कि हवे तारा ।

तरे तारा तारा तारा करे ॥

तारा चर्य पढ़वे धारा ॥

रुद्र पत्त उठवे फुटे, मनेर आँधार जावे छुटे,  
तब्बन धरातले पढ़व लुटे, तारा बले हव सारा ॥  
गाजिव सब भेदभेद, धुचे जावे मनेर खेद,  
ओर शत शत गत्य वेद, तारा आमार निराकार ॥  
श्रीरामप्रसाद रटे, मा विराजे सर्व धटे,  
ओर आखि अन्ध, देख माके तिमिरे तिमिर-हरा ॥

‘मा तारा, मा काली ! क्या ऐसा दिन भी आयेगा  
जब तारा-तारा पुकारते मेरी आँखसे आँसूकी धारा उमड़  
पड़ेगी ? हृदय-कमल खिल उठेगा, मनका अन्धकार दूर हो  
जायगा और मैं धरतीपर लोट-लोटकर तुम्हारे नामको जपते-  
जपते आकुल हो जाऊँगा । भेद-भाव छोड़ दूँगा, मनकी खिन्नता  
मिट जायगी । और, सौ-सौ वेदकी अच्छाओ ! मेरी  
माँ तारा निराकार है—वह घट-घटमें विराजमान है । ऐ  
अन्धे ! देखो न, माँ अन्धकारको हटाती हुई अँधेरमें ही विराज  
रही है ।’

माँ आमाय धुरावे कत ।

कलुर चल-ढाका बलदेर मत ॥

भवेर गाछे जुडे दिये माँ पाक दिते हे अविरत ।  
तुमि कि दोषे करीले आमाय छटा कलुर अनुगत ।  
माँ शब्द ममता-युक्त काँदिले कोले करे सुत ।  
देखि ब्रह्माण्ड रइ एह रीति माँ आमि कि छाडा जगत ॥  
दुर्गा दुर्गा दुर्गा बले तरे गेल पापी कत ।  
एक बार खूले दे माँ खलेर दुलि देखि श्रीपद मनेर मत ॥

‘माँ ! कोल्हूके बैलकी तरह अब मुझे और कितना  
धुमाओगी ? संसारल्पी वृक्षमें बाँधकर ब्रावर ऐठन दे-  
रही हो, जैसे लोग रसीमें देते हैं…। भला, मैंने क्या दोप  
किया है कि तुमने मुझे ऐसे बन्धनका दास कर दिया है ।  
‘माँ’ शब्द तो ममतापूर्ण है । जब बालक रोता है तो माँ उसे  
गोदमें बैठा लेती है । संसारकी तो यही रीति देखता हूँ,—सभी  
माताएँ ऐसा ही करती हैं । तो क्या मैं संसारभरसे पृथक्  
हूँ कि तू माँ होकर भी मुझे प्यार नहीं करती ! असंख्य  
पापी ‘दुर्गा-दुर्गा’ बोलकर तर गये । माँ ! एक बार मेरी आँखों-  
परसे पट्टी हटा लो, जिससे मैं तुम्हारे श्रीचरणोंका यथेष्ट दर्शन  
करूँ ।’

## संत रहीम

( पूरा नाम—नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना । जन्म—वि० सं० १६१० ( दूसरे मतसे १६१३ ), जन्मस्थान—लाहौर । पिताका  
नाम—सरदार बैरमखाँ खानखाना । देहान्त—वि० सं० १६८३ ( दूसरे मतसे १६८६ ) । आयु—७२ वर्ष । )

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा

किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय ।

आभीरवामनन्यनाहृतमानसाय

दत्तं मनो यदुपते कृपथा गुहाण ॥

रत्नाकर ( श्रीरसमुद्र ) तो आपका घर है, साक्षात्  
लक्ष्मीजी आपकी पत्नी हैं, आप स्वयं जगदीश्वर हैं, भला  
आपको क्या दिया जाय । किंतु, हे यदुनाथ ! गोपसुन्दरियोंने  
अपने नेत्रकटाक्षसे आपका मन हर लिया है, इसलिये अपना  
मन आपको अर्पण करता हूँ; कृपथा इसे ग्रहण कीजिये ।

आनीता नदवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण या भूमिका  
व्योमकाशाखास्त्राम्बराद्विवरस्वत्वयीतयेऽद्यावधि ।

प्रीतो यद्यसि ताः समोक्ष्यं भगवन् तद् वाञ्छृतं देहि गे  
नो चेद्द्वूहि कदापि मानवं पुनर्मामीदशी भूमिकाय ॥

हे भगवन् श्रीकृष्ण ! आपकी प्रसन्नताके लिये आजतक नहीं  
भाँति जो चौरासी लाख स्वाँग मैंने आपके मामने धारण किये  
हैं, यदि उनको देखकर आप प्रसन्न हैं तो मेरी मनःमामना  
पूर्ण कीजिये; और यदि आप प्रसन्न नहीं हैं तो गाए रह  
दीजिये कि अब किर ऐसा कोई स्वाँग मेरे मामने  
मत लाना ।

कलित ललित माला वा जवाहर जड़ा था,  
चपल चखनबाला चॉदनी में खड़ा था ।  
कटि तट विच मेला पीत सेला नवेला,  
अलि बन अल्बेला यार फेरा अकेला ॥

पट चाहै तन पेट चाहत छदन, मन  
चाहत है धन जेती संपदा सराहिवी ।  
तेरोई कहाय कै, रहीम कहै दीनबंधु,  
आपनी विपति जाय काके द्वार काहिवी ।  
बेट भरि खायौ चाहै, उद्घम बनायौ चाहै,  
कुट्ठंच जियायौ चाहै, काढि गुन लाहिवी ।  
जीविका हमारी जो पै औरन के कर डारौ,  
ब्रज के विहारी ! तौ तिहारी कहा साहिवी ॥

भज रे मन नैदनंदन, विपति विदार ।  
गोपीजन-मन-रंजन, परम उदार ॥  
भजि मन राम सियापति, रघु-कुल-ईस ।  
दीनबंधु दुख-टारन, कौसलधीस ॥  
छवि आवन मोहन लाल की ।  
काँचे काछनि कलित मुरलि कर,  
पीत पिछौरी साल की ॥  
बंक तिलक केसर को कीने,  
दुति मानो विधु बाल की ।  
विसरत नाहि सखी ! मो मन ते,  
चितवनि नयन विसाल की ॥  
नीकी हँसनि अधर सधरनि की,  
छवि छीनी सुमन गुलाल की ।  
जल सौं डारि दियौ पुरहन पर,  
डोलनि मुकता माल की ॥  
आप मोल विन मोलनि डोलनि,  
बोलनि भदनगुपाल की ।  
यह सरूप निरखै सौइ जानै,  
इस रहीम के हाल की ॥  
कमल दल नैननि की उनमानि ।

विसरत नाहि सखी ! मो मन ते मंद मंद मुसकानि ॥  
यह दसननि-दुति चबलाहूँ ते महा चपल चमकानि ।  
यसुथा की बक्षकरी मधुरता सुधा-पगी वतरानि ॥  
चढ़ी रहै चित उर विसाल की मुकुतमाल-यहरानि ।

नत्य समय पीतांवर हू की फहरि फहरि फहरानि ॥  
अनुदिन श्रीबृंदाबन ब्रज ते आवन आवन जानि ।  
वे रहीम चितते न दरति हैं सकल स्याम की बानि ॥

### दोहा

जिन नैनन प्रीतम बसौ, तहँ किमि और समाय ।  
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आपु फिरि जाय ॥  
दिव्य दीनता के रसहिं का जानै जग अंधु ।  
भली वेचारी दीनता, दीनबंधु से वंधु ॥  
सदा नगारा कूच का, बाजत आठों जाम ।  
रहिमन या जग आय कै, को करि रहा मुकाम ॥  
अब रहीम दर दर फिरैं, माँगि मधुकरी लाहिं ।  
यारो यारी ढोइ दो, वे रहीम अब नाहिं ॥  
रहिमन कौ कोउ का करै, ज्वारी, चोर, लबार ।  
जो पत राखनहार है, माखन चाखनहार ॥  
अमरबेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि ।  
रहिमन ऐसे प्रसुहि तजि, खोजत फिरिए काहि ॥  
गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव ।  
रहिमन जगत-उधार कर, और न कछू उपाव ॥  
सुमिरहु मन इड़ करि कै, नंदकुमार ।  
जो बृषभानकुँवरि कै, प्रान-अधार ॥  
अनुचित बचन न मानिए, जरदपि गुरायसु गाहि ।  
है रहीम रखनाथ ते, सुजस भरत को बाहि ॥  
अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाहे दोऊ काम ।  
साँचे से तो जग नहीं, झटे मिलै न राम ॥  
आवत काज रहीम कह, गाहे वंधु-सनेह ।  
जीरन हो त न पेड़ ज्यौं, थामै वरै वरेह ॥  
उरग, तुरँग, नारी, दृपति, नीच जाति हथियार ।  
रहिमन इन्हैं सँभारिए, पलटत लगै न बार ॥  
अंजन देहुँ तो किरकिरी, सुरमा दियौ न जाय ।  
जिन आँखिन सौं हरि लखयौ, रहिमन बलि बलि जाय ॥  
कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय ।  
पुरुष पुरातन की बधू, क्यौं न चंचला होय ॥  
कह रहीम या जगत से, प्रीति गई दै टेरि ।  
अब रहीम नर नीच में, सारथ स्वारथ हेरि ॥  
जलहि मिलाय रहीम ज्यौं, कियौं आप सम छीर ।  
अँगवइ आपुहि आप त्यौं, सकल आँच की भीर ॥

मेरे युवतों ने बुझ गए, बुझ ते सुलगे नाहिं।  
रहिमन यांत्रे प्रेम के, बुझि बुझि कै मुलगाहिं ॥  
जो धूमधार से लड़े, गंति मिलत रहीम।  
हर आदि वेगट पर, तात रखोई भीम ॥  
जो गहिं गाति दीप नी, बुल कपूत गति सोय।  
भावि उजिआरी लगे, वहै अँधेरो होय ॥  
तेर रहीम गन आपनी, कीन्हों चाह चकोर।  
निमि वामर लग्नो रहै, कुण्ठचंद्र की ओर ॥  
गोरी छिंग वडेन की, वडी बडाई होय ॥  
ज्यों रहीम हनुमंत कों, गिरधर कहत न कोय ॥  
गन दारा अग सुतन सों, लगौ रहै नित चित ॥  
नहि रहीम कोऊ लख्यौ, गाड़े दिन कौ मित ॥  
नैन गलैने अधर मधु, कहु रहीम थाटि कौन।  
मीठी भावि लोन पर, अरु माटे पर लैन ॥  
बड़े घेट के भरन कौ, है रहीम दुख नाहिं।  
याते हाथिहि हहरि कै, दिये दाँत दै काहिं ॥  
भजों तो काको मैं भजौं, तजौं तो काको अन।  
भजन तजन ते विल्या है, तेहि रहीम तू जान ॥

भार ज्ञोकि कै भार में रहिमन उतो फर।  
ऐ बड़े मैँझधार में, जिन के सिरपर भार ॥  
रहिमन ऋवृं बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस।  
भार धरैं संलार को, तऊ कहावत सेस ॥  
रहिमन तीन प्रकार ते, हित-अनहित पहिचानि ।  
परदस परैं, परोस बस, परैं सामिला जानि ॥  
रहिमन पर उपकार के, करत न यारी बीच ।  
माँस दियो शिवि भूप ने, दीन्हों हाइ दधीच ॥  
रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन ।  
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँके तीन ॥  
रहिमन सैन-तुरंग चढ़ि, चलियो पावक माँहि ।  
प्रेम-पंथ ऐसौ कठिन, सब कोउ निवहत नाहिं ॥  
राम-नाम जान्यौ नहीं, भइ पूजा में हानि ।  
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि ॥  
राम-नाम जान्यौ नहीं, जान्यौ सदा उपाधि ।  
कहि रहीम तिहि आपुनी, जनम गँधायौ आदि ॥  
संतत संपति जान कै, सब को सब कुछ देत ।  
दीनबंधु विनु दीन की, को रहीम सुधि लेत ॥

## श्रीरसखानजी

(वैष्णवप्रबर पठान भक्तकवि, जन्म वि० सं० १६११ के लगभग, गोखामी विठ्ठलनाथजीके द्वापानव शिष्य, श्रीराम-भास्त्र  
कोई निश्चित नहीं, कोई-कोई वि० सं० १६८० बताते हैं।)



मानुष हैं तौ वही रसखानि,  
बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।  
जो पसु हैं तौ कहा वसु मेरौ,  
चरैं नित नंद की धेनु मैँझारन ॥  
पाहन हैं तौ वही मिरि को,  
जो घर्यौ कर छत्र पुरुदर धारन ।  
जो खग हैं, तौ बसेरै करैं,  
मिलि कालिंदी कूल कर्दब की डारन ॥

या लकुटी अरु कामरिया पर,  
रज तिहूं पुर कौ तजि डारैं ।  
आठहूं सिद्धि नवौ निधि कौ सुख,  
नंद की गाह चराइ बिसारै ॥

ज्ञालिन सौ 'रसखानि' कदौं,  
व्रज के बन बाग तडाग निदारौं ।  
कोटिक हू कलधैत के धाम,  
करील की कुंजन ऊपर वारौं ॥

सेस महेस गनेस दिनेस, सुरेसहु जाहिं निरंतर गर्वैं ।  
जाहि अनादि अनंत अखंड, अचेद अमेद सु बेद वतारैं ॥  
नारद-से सुकन्द्यास रटैं, पनि हारे तऊ पुर्सि पार न पारैं ।  
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछैं नान ननारैं ॥

गावै गुनी गनिका रंधर्व औ सारद सेस गर्वै गुन गायत ॥  
नाम अनंत गनेस ज्यों बहा चिलोनन पार न पानत ॥  
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरंतर जाहि समाधि ल्यायत ॥  
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछैं नान ननारत ॥

धूरि भेरे अति सोभित स्वाम जू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी ।  
खेलत खात फिरे अँगवा पग दैजनी बाजती पीरी कछोटी ॥  
वाहनि कौं रसखान विलोकत वारत काम कला निज कोटी ।  
काग के भाग वडे सजनी हरि हाथ सौं लै गयो मालन रोटी ॥

ब्रह्म मैं हूँ द्वृष्टि पुरानन गानन वेद रिचा सुनि चौगुने चायन ।  
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न किनूँ वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ॥  
देरेत हेरेत हारि पञ्चो रसखानि रंतायौ न लोग-लुगायन ।  
देलौ दुरौ वह कुंज कुटीर मैं बैठो पलोट राधिका पायन ॥

जा दिन तें निरख्यौ नैनदंदन,  
कानि तजी घर बंधन दूख्यौ ।  
चारु विलोकनि की निसि मार,  
सेंधर गढ़ी भन मार ने दूख्यौ ॥  
मागर कौं सरिता जिमि धावति,  
सेकि रहे कुल कौं पुल दूख्यौ ।  
मत्त भयौ मन संग फिरै,  
रसखानि सुरूप सुधा रस धूख्यौ ॥

नैन लख्यौ जय कुंजन तें बन तें निकस्तौ अँटक्यौ भटक्यौ री ।  
सोहत कैसौ हरा टटकौ अरु जैसौ किरीट लग्यौ लटक्यौ री ॥  
रसखानि रहे अँटक्यौ हटक्यौ वज लोप्य फिरै सटक्यौ भटक्यौ री ।  
रूप सवै हरि वा नट कौ दियेर फटक्यौ झटक्यौ अँटक्यौ री ॥

गो रज विराजै भाल लहलही बनमाल  
आगों गैया पाछे खाल गावै मृदु तान री ।  
तैसी धुनि वाँसुरी की मधुर मधुर तैसी  
बंक चितवनि मंद मंद मुक्कानि री ॥  
कदम विटप के निकट तटनी के आय  
अटा च्छिं चाहि पीत पट फहरानि री ।  
रस वरसावै तन तपन बुझावै नैन  
प्राननि रिक्षावै वह आवै रसखानि री ॥

दीउ कानन कुंडल मोरपदा सिर सोहै दुकूल नयौ चटकौ ।  
गंगिशर गेरे मुकुमार धेरे नट भेस अरे पिय कौ टटकौ ॥  
सुंभ काठनी दैजनी पैजनी पामन आमन मैं न लगै झटकौ ।  
वह सुंदर को रसखानि अली ! जु गलीन मैं आह अवै अँटकौ ॥  
कानन दै अँगुरी रहितो जवहीं मुरली धुनि मंद वजैहै ।  
सोहनी तानन मैं रसखानि अटा च्छिं गोवन गैहै तो गैहै ॥  
ऐरि कहीं भिरे बजलेगनि कालिं कोऊ कितनो समुझैहै ।  
साद री वा मुख की मुक्कानि सम्हारी न जैहै न जैहै ॥

कहा रसखानि मुख संपति सुमार महँ  
कहा महाजोगी है लगाये अंग छार को ।  
कहा सावैं पंचानल, कहा सोये बीचि जल,  
कहा जीति लये राज सिंधु वारपार को ॥  
जप वार-बार तप संजम बवार ब्रत,  
तीरथ हजार अरे बुझत लवार को ।  
सोई है गँवार जिहि कीन्हैं नहिं प्यार,  
नहीं सेवौ दरबार यार नंद के कुमार को ॥

देस-विदेस के देले नरेसन रीझि की कोउ न बूझि करैगो ।  
ताते तिन्हैं तजि जान गिरथौ गुन सौगुन औगुन गाँठि परैगो ॥  
बाँसुरीवारो बड़ी रिक्षावार है स्याम जो नैकु सुंदार ढरैगो ।  
लाडलो छैल वही तौ अहीर कौ पीर हमारे हिए की हरैगो ॥  
लोग कहैं ब्रज के रसखानि अनंदित नंद जसोमति जू पर ।  
छोहरा आजु नयौ जनम्यौ तुम सौकोउ भाग भरथौ नहिं भू पर ॥  
वारि कै दाम सवाँर करौ अपने अपचाल कुचाल लंदूपर ।  
नाचत राकरो लाल गुपाल सो काल सो व्याल कपाल के ऊपर ॥

द्रौपदि औं गनिका, गज, गीध,  
अजामिल सौं कियो सो न निहारौ ।  
गौतम गेहिनी कैसैं तरी,  
प्रहलाद कौ कैतैं हरयो दुख भारौ ॥  
काहे कौ सोच करै रसखानि,  
कहा करिहै रविमंद विचारौ ।  
कौन की संक परी है जु मालन  
चाखनहारौ है राखनहारौ ॥

बैन वही उन कौ गुन गाइ, औ कान वही उन बैन सौं सोनी ।  
हाथ वही उन गात सरैं, अरु पाइ वही जु वही अनुजानी ॥  
जान वही उन प्रान के संग, औ मान वही जु करै मनमानी ।  
त्यौं रसखानि वही रसखानि, जु है रसखानि, सो है रसखानि ॥

कंचन के मंदिरनि दीठि ठहराति नाहि,  
सदा दीपमाल लाल मानिक उजारे सौं ।  
और प्रभुताई अव कहाँलौं वशानौं प्रति-  
हारिन की भीर भूप टरत न द्वारि सौं ॥  
गंगा मैं नहाइ मुक्कहल हूँ लुटाइ, वेद,  
वीस वार गाइ, ध्यान कीजत सकारे सौं ।  
ऐसे ही भये तौ कहा कीन रसखानि जोपै,  
चित्त दै न कीनी प्रीत पीत पटवारे सौं ॥

## प्रेम

प्रेम ग्रंग मव कोउ याहत, प्रेम न जानत कोय।  
जो जग जानै प्रेम ती, मरै जगत क्यों रोय॥  
प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर-यरिस बखान।  
जो आवत एदि डिग बहुरि, जात नाहिं रसखान॥  
प्रेम-यामनी छानि कै, बहन भए जलधीर।  
प्रेमहि ते विप्रगान करि, पूजे जात गिरीस॥  
प्रेमस्थ दर्पन अहो, रखै अज्ग्रों सेल।  
यामें अपनी रूप कछु, लखि परहै अनमेल॥  
यमलतंतु याँ छीन अरु, कठिन खड़ग की धार।  
अति यधीं ऐदो बहुरि, प्रेमदंथ अनिवार॥  
ल्योक-येद-नमरजाद सब, लज, कज, संदेह।  
देत वहाएं प्रेम करि, विधि-निषेध को नेह॥  
कवहुँ न जा पथ भ्रम-तिमिर, रहै सदा सुखन्दं।  
दिन-दिन बाढ़त ही रहै, होत कवहुँ नहि मंद॥  
भहैं वृथा करि पनि मरै, यान-गरुर बढ़ाय।  
विना प्रेम फीकौ सबै, कोटिन क्रै उपाथ॥  
श्रुति, पुरान, अगम, स्मृतिहि, प्रेम सबहिं को सार।  
प्रेम विना नहि उपज हिय, प्रेम-बीज अँकुचार॥  
आनंद अनुभव होत नहिं, प्रेम विना जग जान।  
कै वह विषयानंद कै, ब्रह्मानंद ब्रह्मान॥  
काम, क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ, द्रोह, मात्सर्य।  
इन सबहीं ते प्रेम है, परे, कहत मुनिवर्य॥  
यिनु गुन जोवन रूप धन, विनु स्वारथ हित जानि।  
सुद्ध कामना ते रहित, प्रेम सकल रसखानि॥  
अति सूच्छम कोमल अतिहि, अति पतरौ अति दूर।  
प्रेम कठिन सब तें सदा, नित हकरस भरपूर॥  
जग मैं सब जान्यौ परै, अरु सब कहै कहाय।  
पै जगदीस रु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाय॥  
जेहि विनु जानै कछुहि नहिं, जान्यौ जात विसेस।  
सोइ प्रेम जेहि जानि कै, रहि न जात कछु सेस॥  
सिन्ध, कलत्र, सुबंधु, सुत, इन मैं सहज सनेह।  
सुद्ध प्रेम इन मैं नहीं, अकथ कथा सविसेह॥  
इक-अंगी विनु कारनहिं, इकरस सदा समान।  
जनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥  
दौरै सदा, औ चहै न कछु, सहै सबै जो होय।  
रहै एकरस चाहि कै, प्रेम बखानी सोय॥  
प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिनं प्रेम की फाँस।

प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस॥  
प्रेम हरी कौ रूप है, त्यै हरि प्रेम सहम।  
एक होइ द्वै यौं लरै, ज्यौं सूरज अह धूप॥  
ग्यान, ध्यान, विद्या, मती, मल, विस्वास, विदेक।  
विना प्रेम सब धूर हैं, अग जग एक अनेक॥  
प्रेम फाँस मैं फैसि मरे, सोई जिए सदाहि॥  
प्रेम सरम जाने विना, मरि कोउ जीवत नाहिं॥  
जग मैं सब तें अधिक अति, मगता तनहिं लक्षण्य।  
पै या तनहूँ तैं अधिक, प्यारौ प्रेम कहाय॥  
जेहि पाएं बैकुण्ठ अरु, हरिहूँ की नहिं चाहि।  
सोइ अलौकिक, सुद्ध सुभ, सरस सुधेम कहाहि॥  
याही तैं सब सुकि तैं, लही बड़ाई प्रेम।  
प्रेम भरै न स जाहिं सब, बैधे जगत के नेम॥  
हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम-आधीन।  
याही तैं हरि बापुहीं, याहि बड़ापन दीन॥  
जदपि जसोदा नंद अरु, ग्याल थाल सब धन्य।  
पै या जग मैं प्रेम को, गोरी भई अमन्य॥  
रसमय स्वाभाविक विना, स्वारथ अचल महान।  
सदा एकरस सुद्ध सोइ, प्रेम अहै रसखान॥  
जाते उपजत प्रेम सोइ, बीज कहावत प्रेम।  
जामें उपजत प्रेम सोइ, छेत्र कहावत प्रेम॥  
वही बीज, अंकुर वहीं सेक वही आधार।  
डाल पात फल पूल सब, वही प्रेम सुखसार॥

## अष्टवाम

प्रातः उठ गोपाल जूँ करि शरिता अलान।  
केस सँवारत छवि लालौ, सदा वहीं रसखान॥  
करि पूजा अरचन तहौँ, बैठत श्रीनैदलाल।  
बंसी बाजत मधुर धुनि, सुनि सब होत निहाल॥  
सील सुकुट सुचि क्रीट कौ, सुंदर ती श्री भाल।  
पेलत हीं छवि बनत है, धन्य धन्य गोपाल॥  
पुनि तहौँ पहुँचत भक्तगन, लै लै निज निज शार॥  
भोजन तहौँ प्रभु करत हैं, तनक न लायत शार॥  
इहि विधि वीतत दौ पहर, तब तहौँ श्री ललार॥  
लै गैयाँ बन को चलत, कर वंसी को गार॥  
तब सब भक्त हु चलत हैं, सब पाई याँ धार॥  
कीड़ा करत चलत तहौँ, वंसीधर दरपाल॥  
जब बन मैं पहुँचत जहौँ, उदा मदन की शार॥  
तब नटनागर रचत तहौँ, भाँति भाँति के गा॥

एक पहर बन में अट्ठ, हैं श्रीमदनगुपाल ।  
गौन करत निज धाम कौं, लै सब जूथ विषाल ॥  
तब नटनागर लौटि कैं, करत कलेवा जोह ।  
लै प्रसाद सब भक्ति सौं, बैठत पुनि कर धोह ॥  
तब गुपाल की बाँसुरी, बजत तहाँ रसखान ।  
सुनि कै सुधि भूलै सबै, मुदित होत मन प्रान ॥  
पुनि भक्ती उपदेस प्रभु, देत सबन हरणाय ।  
मन प्रसन्न है सुनत सब, कोमल सरस उपाय ॥  
तीन घरी उपदेस प्रभु, भक्तन देत सदैव ।  
काम, क्रोध, मद, लोभ कछु, उपजत नहिं फिर नैव ॥  
पुनि गोदोहन की घरी, देखि सुधर धनस्याम ।  
टेरत सबै सखान कौं, लै लै सुंदर नाम ॥  
तब बाँकी ज्ञाकी तहाँ, निरखत बनै सदैव ।  
गोरस सब रस श्रेष्ठ तब, दुहत स्याम धनि दैव ॥  
तब लै गोरस सब सखों, चलत जात नित नेह ।  
नटनागर सौं सैन सौं, करत मुदित मन नेह ॥  
पुनि ज्यौं ही दीपक जरैं, सबै भक्त हरणाय ।  
लै लै निज आरत तहाँ, धावत नेह लगाय ॥  
बैठत राधा कृष्ण तहाँ, अन्य अष्ट पठरानि ।

उठत आरती धूम सौं, गावत गीत सुजान ॥  
इहि विधि दुइ रस रंग तहाँ, ब्रीत जात हैं जाम ।  
तब लै आग्या भक्तजन, जात आपने धाम ॥  
तब सब भक्त बहीं खुगल, छवि निस हिये लगाय ।  
जात आपने धाम कौं, सुंदर सयन कराय ॥  
द्वैक पहर सोवत सदा, पुनि उठि बैठत स्याम ।  
मुरली धुनि गूँजत तबै, उठत भक्त लै नाम ॥  
मोहन छवि रसखानि लखि, अब दृग अपने नाहिं ।  
ऐच्चे आवत धनुष से, छूटे सर से जाहिं ॥  
मो मन मानिक लै गयौ, चितै चैर नैदंद ।  
अब बैमन मैं का कलौं, परी केर के फंद ॥  
मन लैनौ प्यारे चितै, पै छटाँक नहि देत ।  
यहै कहा पाटी पढ़ी, कर को पीछो लेत ॥  
ए सजनी लैनौ लला, लहौ नंद के गेह ।  
चितैयौ मृदु मुक्काइ कै, हरी सबै सुधि गेह ॥  
देख्यौ रूप अपार, मोहन सुंदर स्याम कौ ।  
वह ब्रजराज कुमार, हिय जिय नैननि मैं बस्यौ ॥  
एरी चतुर सुजान, भयो अजनाहि जान कै ।  
तजि दीनी पहिचान, जान आपनी जान कौं ॥

## मियाँ नज़ीर अकबराबादी

( जन्म-स्थान—आगरा, जन्म—सं० १७९७ लगभग, देहान्त—सं० १८८७ लगभग । सूझीमतके संत, श्रीकृष्णभक्त )

### कन्हैयाका बालपन

आरो, सुनो ये दधि के लुट्रैया का बालपन,  
औ मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन ।  
मोहनसरूप नृथ्य-करैया का बालपन,  
बन-बन के खाल गौवैं चरैया का बालपन ।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥  
ज्ञाहिर मैं सुत वो नंद जसोदा के आप थे,  
बरना वो आपी माई थे और आपी शाप थे ।  
परदे मैं बालपन के थे उन के मिलाय थे,  
जोती-सरूप कहिए जिन्हें सो वो आप थे ।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥  
उनके तो बालपन से न या काम कुछ जरा,  
संसार की जो रीत थी उस को रखा बजा ।

मालिक थे वह तो आपी, उन्हें बालपन से क्या,  
वॉ बालपन, जवानी, बुद्धापा सब एक था ।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

बाले थे बिंजराज, जो दुनिया मैं आ गये,  
लीला के लाख रंग तमाशे दिखा गये ।  
इस बालपन के रूप में कितनों को भा गये,  
एक यह भी लहर थी जो जहाँ को जता गये ।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

परदा न बालपन का वो करते अगर जाय,  
क्या ताव थी जो कोई नजर भर के देखता ।  
झाड़ औं पहाड़ देते सभी अपना सर ढुका,  
पर कौन जानता था जो कुछ उनका भेद था ॥

ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

अब मुद्दनियों का उनके मैं चलना बयाँ करूँ ?  
या मीठी शातं मुँह से निकलना बयाँ करूँ ?  
या बाल्कों में इस तरह पलना बयाँ करूँ ?  
या गोदियों में उनका मचलना बयाँ करूँ ?

ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

पाठी पकड़ के चलने ल्गो जब मदनगुणाल,  
भरती तमाम हो गई एक आन मैं निहाल।  
बासुकि चरन छुआन को चले छोड़ के पताल,  
आकास पर भी धूम मच्छी देख उनकी चाल।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

करने लगे ये धूम जो गिरधारी नदलाल,  
इक आप और दूसरे साथ उन के ग्वाल-बाल।  
मालन दही चुराने ल्गो, सब के देख-भाल,  
दी अफनी दूध-चोरी की घर घर मैं धूम-डाल।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

कोठे मैं होवे किर तो उसी को ढँढोरना,  
मटका हो तो उसी मैं भी जा सुख को बोरना।  
ऊँचा हो तो भी कंधे पै चढ़ के न छोड़ना,  
पहुँचा न हाथ तो उसे सुरली से फोड़ना।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

गर चोरी करते आ गई ग्वालिन कोई बहाँ,  
औ उसने आ पकड़ लिया तो उसे नोले वाँ।  
मैं तो तेरे दही की उड़ाता था मकिलयाँ,  
खाता नहीं मैं उस को, निकाले था चीटियाँ।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

मुस्से मैं कोई हाथ पकड़ती जो आनकर,  
तो उस को वह स्वरूप दिखाते थे मुलींधर।  
ओ, आपी लके, घरती बो मालन कठोरी भर,  
मुस्सा लो, उस का आन मैं जाता वहाँ उत्तर।

ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

उनको तो देख ग्वालिने जो जान पाती थीं,  
घर मैं इसी बहाने से उन को बुलाती थीं।  
जाहिर मैं उन के हाथ से बे गुल मचाती थीं,  
परदे सवी बो कृष्ण की बलिहारी जाती थीं।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

कहती थीं दिल मैं, दूध जो आप हम छिपायेंगे,  
श्रीकृष्ण इसी बहाने हमें मुँह दिखायेंगे।  
और जो हमारे घर मैं ये मालन न पायेंगे,  
तो उन को बना गरज है बो काहे को आयेंगे।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

सब मिल जसोदा पास यह कहती थीं आके वीर,  
अब तो तुम्हारा कान्हा हुआ है बड़ा स्त्रीर।  
देता है हम को गालियाँ, औ फाइता है चीर,  
छोड़े दही न दूध; न मोलन मही न खीर।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

माता जसोदा उन की बहुत करतीं मिटियाँ,  
औ कान्ह को डरातीं उठा भन की साँसियाँ।  
तब कान्हजी जसोदा से करते थही बयाँ,  
तुम सच न मानो मैया ये सरी हैं शूटियाँ।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

माता, कभी ये मुझ को पकड़ कर ले जाती हैं,  
औ गाने अपने साथ मुझे भी भवाती हैं।  
एब नचाती हैं आप मुझे भी नचाती हैं,  
आपी तुम्हारे पास ये फरिशादी आती हैं।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन ॥

मैया, कभी ये मेरी छगुलिया छिपती हैं,  
जाता हूँ राह मैं तो मुझे लेके जाती हैं।  
आपी मुझे कठाती हैं आपी मनाती हैं,  
मारो इन्हें ये मुझ को वहुत-ना भताती हैं।

ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बाल्पन ,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बाल्पन ॥

इक रोज मुँह में कान्ह ने माखन छिपा लिया ,  
पूछा जसोदा ने तो वहाँ मुँह बना दिया ।  
मुँह खोल तीन लोक का आलम दिला दिया ,  
इक आन में दिखा दिया, औं फिर भुला दिया ।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बाल्पन ,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बाल्पन ॥

थे कान्हजी तो नंद-जसोदा के घर के साह ,  
मोहन नवलकिसोर की थी सब के दिल में चाह ।  
उन को जो देखता था, सो करता था बाह बाह ,  
ऐसा तो बाल्पन न किसी का हुआ है आह ।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बाल्पन ,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बाल्पन ॥

राधारमन के यारो अजन्म जाये गौर थे ,  
लड़कों में वो कहाँ हैं जो कुछ उन में तौर थे ।  
आपी वो प्रभू नाथ थे, आपी वो दौर थे ,  
उनके तो बाल्पन ही में तेवर कुछ और थे ।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बाल्पन ,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बाल्पन ॥

होता है यों तो बाल्पन हर तिफ़िल का भला ,  
पर उनके बाल्पन में तो कुछ औरी भेद था ।  
इस भेद की भला जी किसी को खबर है क्या ?  
क्या जाने अपनी खेलने आये थे क्या कला ।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बाल्पन ,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बाल्पन ॥

सब मिल के यारो, कृष्ण मुरारी की थोलो जै ,  
गोविद-कुंज-ठैल-विहारी की थोलो जै ।  
दधिच्छार गोपीनाथ, विहारी की थोलो जै ,  
तुम भी नज़ीर, कृष्णमुरारी की थोलो जै ।  
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बाल्पन ,  
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बाल्पन ॥

( २ )

अब मुख्लीधर ने मुख्ली को अपने अधर धरी ,  
क्या-क्या परेम-प्रीत-भरी उसमें धुन भरी ।  
सै उसाँ 'परेम-भरे' की हरदम भरी धरी ,  
लहराइ धुन जो उसकी इधर औं उधर झरी !

गं० ला० अं० ४४—

सब सुननेवाले कह उठे जै जै हरी हरी ,  
ऐसी बजाई कृष्ण-कन्हैया ने बाँसुरी ॥

ग्वालों में नंदलाल बजाते वो जिस घड़ी ,  
गौएँ धुन उसकी सुनने को रह जाती सब खड़ी ।  
गलियों में जब बजाते तो वह उसकी धुन बड़ी ,  
लेले के अपनी लहर जहाँ कान में पड़ी ।  
सब सुननेवाले कह उठे जै जै हरी हरी ,  
ऐसी बजाई कृष्ण-कन्हैया ने बाँसुरी ॥

मोहन की बाँसुरी के मैं क्या-क्या कहूँ जतन ,  
लै उसकी मन की मोहिनी धुन उसकी चित्तहरन ।  
उस बाँसुरी का आन के जिस जा हुआ बजन ,  
क्या जल, पवन, 'नज़ीर' पखेल व क्या हरन—  
सब सुननेवाले कह उठे जै जै हरी हरी ,  
ऐसी बजाई कृष्ण-कन्हैया ने बाँसुरी ॥

( ३ )

है आशिक और माशूक जहाँ  
बाँ शाह बज़ीरी है बाबा !  
नै रोना है, नै धोना है,  
नै दर्द असीरी है बाबा !  
दिन-रात बहार-बुहारे हैं  
औ ऐश सफ़ीरी है बाबा !  
जो आशिक हुए सो जाने हैं,  
यह भेद फ़क़री है बाबा !  
हर आन हँसी, हर आन खुशी,  
हर बज्जत अमीरी है बाबा !  
जब आशिक मस्त फ़क़ीर हुए,  
फिर क्या दिल्मीरी है बाबा !  
  
कुछ ज़ुल्म नहीं, कुछ ज़ोर नहीं,  
कुछ दाद नहीं फ़रियाद नहीं ।  
कुछ कैद नहीं, कुछ बंद नहीं,  
कुछ जब नहीं, आजाद नहीं ।  
शार्गिर्द नहीं, उस्ताद नहीं,  
बीरान नहीं, आवाद नहीं ।  
है जितनी बातें दुनियाँ की,  
सब भूल गये, कुछ याद नहीं ।  
हर आन हँसी, हर आन खुशी,  
हर बज्जत अमीरी है बाबा !  
जब आशिक मस्त फ़क़ीर हुए,  
फिर क्या दिल्मीरी है बाबा !

जिय सिगत नज़र कर देखे हैं,  
उस दिलवर की फुलबारी है।  
कहीं सज्जी की दरियाली है,  
कहीं फूलों की गुलकारी है।  
दिन-रात मग्न खुश बैठे हैं,  
और आम उसी की भारी है।  
वस, अप ही वो दातारी है,  
और अप ही वो भेंडारी है।  
हर आन हँसी, हर आन खुशी,  
हर वक्त अमीरी है बाबा।  
जब आशिक मस्त फ़कीर हुए,  
फिर क्या दिलगीरी है बाबा।  
  
हम चाकर जिस के हुस्न के हैं,  
वह दिलवर सब से आला है।  
उसने ही हम को जी बख्शा,  
उसने ही हम को पाला है।  
दिल अपना भोला-भाला है,  
और इक्क बड़ा मतवाला है।  
क्या कहिए और 'नज़ीर' आगे,  
अब कौन समझनेवाला है।  
हर आन हँसी, हर आन खुशी,  
हर वक्त अमीरी है बाबा।  
जब आशिक मस्त फ़कीर हुए,  
फिर क्या दिलगीरी है बाबा।

( ४ )

क्या इस्म उन्होंने सीख लिये,  
जो बिन लेखे को बाँचे हैं।  
और बात नहीं मुँह से निकले,  
बिन हँठ हिलाये जाँचे हैं॥  
दिल उनके तार सिलारों के,  
तन उनके तबल तमाचे हैं।  
मुँह चंग ज़बाँ दिल सारंगी,  
पा बुँधल हाथ कमाँचे हैं॥  
हैं राग उन्हीं के रंग-भरे,  
औ भाव उन्हीं के साँचे हैं।  
जो बैगत बै-सुरताल हुए,  
बिन ताल पखावज नाचे हैं॥  
जब हाथ को धोया हाथों से,  
जब हाथ लगे घिरकाने को।

और पाँव को खींचा पाँवों से,  
और पाँव लगे गत पाने को॥  
जब आँख उठाई हस्ती से,  
जब नैन लगे मटकाने को।  
सब कछ कछे, सब नाच नचे,  
उस रसिया छैल रिखाने को॥  
हैं राग उन्हीं के रंग-भरे,  
औ भाव उन्हीं के साँचे हैं।  
जो बै-गत बै-सुरताल हुए,  
बिन ताल पखावज नाचे हैं॥  
  
शा जिसकी खातिर नाच किया,  
जब मूरत उसकी आय गयी।  
कहीं आप कहा, कहीं नाच कहा,  
और तान कहीं लहराय गयी॥  
जब छैल-छत्रीले सुंदर की,  
छवि नैनों भीतर छाय गयी।  
एक मुरछा-गति-सी आय गयी,  
और जोत में जोत समाय गयी॥  
हैं राग उन्हीं के रंग-भरे,  
औ भाव उन्हीं के साँचे हैं।  
जो बै-गत बै-सुरताल हुए,  
बिन ताल पखावज नाचे हैं॥  
  
सब होश बदन का दूर हुआ,  
जब गत पर आ मिरदंग लजी।  
तन भंग हुआ, दिल दंग हुआ,  
सब आन गई बैआन सजी॥  
यह नाचा कौन नज़ीर अब याँ,  
और किसने देखा नाच अजी।  
जब छूँद मिली जा दरिया में,  
इस तान का आधिर निकला जी॥  
हैं राग उन्हीं के रंग-भरे,  
औ भाव उन्हीं के साँचे हैं।  
जो बै-गत बै-सुरताल हुए,  
बिन ताल पखावज नाचे हैं॥

( ५ )

गर यार की मज्जी हुई गर जोड़ के बैठे।  
घर-बार छुड़ाया तो वही छोड़ के बैठे॥  
मोड़ा उन्हें जिधर वही मुँह मोड़ के बैठे।  
मुद्दी जो सिलाई तो वही ओढ़ के बैठे॥

और शाल उदाहृत तो उसी शाल में खुश हैं ।  
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं ॥  
गर खाट बिछाने को मिली खाट में सोये ।-  
दूकाँ में सुलाया तो वो जा हाट में सोये ।  
रस्ते में कहा सो तो वह जा बाट में सोये ।  
गर टाट बिछाने को दिया टाट में सोये ॥  
औ खाल बिछा दी तो उसी खाल में खुश हैं ।  
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं ॥  
उनके तो जहाँ में अजब आलम हैं नज़ीर आह !  
अब ऐसे तो हुनिया में वली कम हैं नज़ीर आह !  
क्या जानें, फ़रियते हैं कि आदम हैं नज़ीर आह !  
हर बक्त में हर आन में खुर्रम हैं नज़ीर आह !  
जिस ढाल में रक्षा वो उसी ढाल में खुश हैं ।  
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं ॥

( ६ )  
है बद्धरे बाग दुनिया चंद रोज़,  
देख लो इसका तमाशा चंद रोज़ ।  
ऐ सुसाफिर ! कूच का सामान कर,  
इस जहाँ में है बद्दरा चंद रोज़ ।  
पूछा लुकमाँ से जिया तू कितने रोज़ ?  
दस्ते हसरत मल के बोला, चंद रोज़ ।  
बाद मदफ़्रत कब्र में बोली क़ज़ा—  
अब यहाँ पै सोते रहना चंद रोज़ ।  
फिर तुम कहाँ, और मैं कहाँ, ऐ दोस्तो !  
साथ है मेरा तुम्हारा चंद रोज़ ।  
क्या सताते हो दिले बेजुर्म को,  
ज़ालिमो, है ये ज़माना चंद रोज़ ।  
याद कर तू ऐ नज़ीर ! क़वरों के रोज़,  
ज़िद्दी का है भरोसा चंद रोज़ ॥

## श्रीगदाधर भट्टजी

( श्रीराधाकृष्णके अनन्य भक्त और चैतन्य भहाप्रभुके अनुयायी । आप दक्षिणके किसी आमके निवासी ने । आपके जन्म-संवत्का भी कोई निश्चित पता नहीं मिलता । )

सखी, हौं स्वाम रँग रँगी ।  
देखि बिकाइ गई वह मूरति, सूरति माहि परी ॥  
संग हुतौ अपनौ सपनौ सौ, सोइ रही रस खोई ।  
जागेहुँ आगें दृष्टि परै सखि, नैकु न न्यारै होई ॥  
एक जु मेरी अँखियनि में निसि द्यौस रह्यौ करि भौन ।  
गाइ चरावन जात सुन्यौ सखि, सो धौं कन्हैया कौन ॥  
कासीं कहौं कौन पतियादै, कौन करै बकवाद ।  
कैसैं कै कहि जात गदाधर, गौंगे कौ गुड़ स्वाद ॥

अघ संहारिनी, अधम उधारिनी,  
कलि काल तारिनी मधुमथन गुन कथा ।  
मंगल विधायिनी, प्रेम रस दायिनी,  
भक्ति अनपायिनी होइ जिय सर्वथा ॥  
मथि वेद मथि ग्रंथ कथि व्यासादि,  
अजहुँ आधुनिक जन कहत हैं मति जथा ।  
परमपद सोपान करि 'गदाधर' पान,  
आन आलाप तैं जात जीवन बृथा ॥

ऐ हरि तैं हरिनाम बड़ौ, ताकों मूढ़ करत कत केरौ ?  
प्रभट दरम धुन्दुन्दरहि दीन्हों, ताहू आयसु मो तप केरौ ॥

सुत हित नाम अजामिल लीनौं, या भव मैं न कियो किरिकेरौ ॥  
पर अपवाद स्वार जिय राज्यौ, बृथा करत बकवाद घनेरौ ।  
कौन दसा हैहै जु गदाधर, हरि हरि कहत जात कहा तेरौ ॥  
हरि हरि हरि हरि रट रसना सम ।  
पीवति खाति रहति निधरक भइ, होत कहा तोकौ सम ॥  
तैं तौ सुनी कथा नहिं मो से, उधरे अमित महाघम ।  
रथान ध्यान जप तप तीरथ ब्रत, जोग जाग चिनु संज्ञम ॥  
हेम हरन द्विज द्रोह मान मद, अरु पर गुरु दारागम ।  
नाम प्रताप प्रवल पावक मैं होत भसम अघ अस्ति सलभ सम ॥  
इहि कलिकाल कराल ब्याल विष ज्वाल विषम भेये हम ।  
चिनु इहि मंत्र 'गदाधर' कौ क्यों, मिठिहै मोह महातम ॥

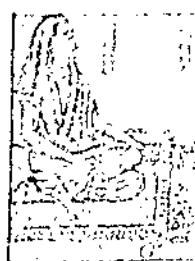
कहा हम कीनौ नर लन पाय ।  
हरि परितोष न एकौ कवहूँ, बनि आयौ न उपाय ॥  
हरि हरिजन आराधि न जानै, कृष्ण वित्त चित लाय ।  
बृथा विषाद उदर की चिन्ता, जनम हि गयौ वित्ताय ॥  
सिंह त्वचा को मल्हौ महा पसु, खेत सवन के खाय ।  
ऐसे ही धरि भेष मक्त कौ धग मण किल्डौ पुजाय ॥  
जैसे चोर भोर को आये इतः तत्वत विलसाय ।  
ऐसे ही गति भई श्री 'गदाधर' जन करौ सहाय ॥

## श्रीनागरीदासजी

( महाराजा साँवतसिंहजी )

( भग्नभत्तकवि, जन्म—वि० सं० १७५६ पौष कृ० १२, पिताका नाम—महाराजा राजसिंह । स्थान—कृष्णार्घो एन्नायन, शरीरान—वि० सं० १८२१ भाद्रशुक्ल ३, उम्र—६४ वर्ष ८ महीना । )

### ब्रज-महिमा-गान

 ब्रज वृदावन स्याम-  
वियारी भूमि है ।  
तह फल-फूलनि-भार  
रहे दुम झुमि हैं ॥  
भुवि दंपति-पद-अंकनि  
लोट लुटाइए ।

ब्रजनागर नँदलाल सु निसि-दिन गाइए ॥

ब्रज-रस-लीला सुनत न कबहुँ अधावनौ ।

ब्रज-भक्तनि सत-संगति प्रान पगावनौ ॥

‘नागरिया’ ब्रज-वास कृपा-फल पाइए ।

ब्रजनागर नँदलाल सु निसि-दिन गाइए ॥

संग फिरत है काल, भ्रमत नित सीस पर ।

यह तन अति छिनभंग, धुँडँवौं कौ धौपहर ॥

यातें दुरलभ साँस न बृथा गमाइए ।

ब्रजनागर नँदलाल सु निसि-दिन गाइए ॥

चली जाति है आयु जगत जाल में ।

कहत टेरि कै घरी घरी घरियाल में ॥

समै चूकि कै काम न फिरि पछताइए ।

ब्रजनागर नँदलाल सु निसि-दिन गाइए ॥

सुत पितु पति तिय मोह महा दुख मूल है ।

जग मृग तृक्षा देखि रहौं क्यों भूल है ।

स्वप्न राजसुख पाय न मन ललचाइए ।

ब्रजनागर नँदलाल सु निसि-दिन गाइए ॥

कलह कलपना, काम कलेस निधारनौ ।

परनिदा परदोह न कबहुँ विचारनौ ॥

जग प्रपञ्च चटसार न चित्त पढाइए ।

ब्रजनागर नँदलाल सु निसि-दिन गाइए ॥

अंतर कुटिल कठोर भरे अभिमान सौं ।

तिन के गृह नहिं रहैं संत सनमान सौं ॥

उन की संगति भूलि न कबहुँ जाइए ।

ब्रजनागर नँदलाल सु निसि-दिन गाइए ॥

कहुँ न कबहुँ चैन जगत दुख कूप है ।

हरिमक्तन कौ संग सदा सुखरूप है ॥

इन के द्विग आनंदित समै विताइए ।

ब्रजनागर नँदलाल सु निसि-दिन गाइए ॥

कहाँ वे सुत नाती हय हाथी ।

चले निसान बजाइ अकेले, तह कोउ संग न साथी ।

रहे दास दासी मुख जोवत, कर मीडै सब लोग

काल गहौरै तब सब हीं छाइयौ, धरे रहे सब भोग ।

जहाँ तहाँ निसि-दिन विक्रम कौ, भट्ठ कहत विरदत्त ।

सो सब विसरि गये एकै रट, राम नाम कहै सत्त ॥

बैठन देत हुते नहि माखी, चहुँ दिसि चौंवर सैन्चाल

लिये हाथ में लट्ठा ताकौ, कूटत मिच कपाल ।

सौंधें भीगौ गात जारि कै, करि आये बन देरी

घर आये तैं भूलि गये सब, धनि माया हरि तेरी ।

‘नागरिदास’ विसरिए नाहीं, यह गति अति असुहाती

काल व्याल कौ कष्ट निवारन, भजि हरि जनम सँगती ।

दरणत देखत देखत नाहीं ।

बालापन फिरि प्रगट स्याम कच, बहुरि स्वेत है जाहीं ।

तीन रूप या मुख के पलटे, नहि अग्नता दूरी

नियरे आवत मृत्यु न यहात, आँखें हिय की पूरी ।

कृष्ण भक्ति मुख लेत न अजहुँ, दृढ़ देह हुन रामी

‘नागरिया’ सोई नर निहचै, जीवत नरक नितायी ।

हमारौं मुरलीबारौं स्याम ।

त्रिमु मुरली बनमाल चंद्रिका, नहि पदिच्छानत नाम ।

गोपरूप वृदावन चारी, ब्रज जन पूर्ण दाम

याहीं सौं हित चित्त वड़ी नित, दिन दिन पल छिन नाम ।

मंदिरुर गोवरधन गोकुल वरणां दिव्यम्

नागरिदास द्वारका मधुरा, इन सौं कौसी दाम ।

किते दिन बिन वृद्धावन खोये ।

यौं ही वृथा गये ते अब लौं, राजस रंग समोये ॥  
छाँड़ि पुलिन फूलनि की सज्या, सूल सरनि सिर सोये ।  
भीजे रसिक अनन्य न दरसे, विमुखनि के मुख जोये ॥  
हरि विहार की ठौरि रहे नहि, अति अभाग्य बल बोये ।  
कलह सराय बसाय भद्यारी, माया राँड़ विगोये ॥  
इकरस हाँ के सुख तजि कै हाँ, कवौं हँसे कवौं रोये ।  
कियौं न अपनौ काज, पराये भार सीस पर होये ॥  
पायौं नहि आनंद लेस मैं, सबै देस टकटोये ।  
नागरिदास बसै कुंजन मैं, जब सब विधि सुख भोये ॥

भजन न होई खेल खिलौना ।

को ढोरा सौं वाँधि खिलावत, प्रवल सिंघ कौं छैना ॥  
अति ही अगम अगाध लग्नौ फल, कहि कैसें कर पहुँचै वौना ।  
'नागरीदास' हरिवंस चरन भजु, मिथुन सुरत अंचौ ना ॥

बड़ौ ही कठिन है भजन दिग ढरिवौ ।

तमकि सिंदूर मेलि माथे पै, साहस सिद्ध सती कौं सौ जरिवौ ॥  
रहन के चाप धायल ज्यौं धुमत, मुरै न गरूर सूर कौं सौ लरिवौ ।  
'नागरिदास' सुगम जिन जानौ, श्रीहरिवंस दंथ पग धरिवौ ॥

जो मेरे तन होते दोय ।

मैं काहूं तैं कछु नहि कहतौ, मोते कछु कहतौ नहि कोय ॥  
एक जु तन हरि विमुखनि के सँग, रहतौ देस विदेस ।  
विविध भाँति के जग दुख सुख जहौं, नहीं भक्ति लवलेस ॥  
एक जु तन सतसंग रंग रँगि, रहतौ अति सुख पूरि ।  
जनम सफल कर लेतौ व्रज बसि, जहौं व्रज जीवनभूरि ॥  
झै तन बिन द्वै काज न है हैं, आयु सु छिन छिन छीजै ।  
'नागरिदास' एक तन तैं अब, कहौं कहा करि लीजै ॥

हम व्रज सुखी व्रज के जीव ।

प्रान तन मन नैन सरबसु राधिका कौं पीव ॥  
कहौं आनंद मुक्ति मैं वह कहौं मृदु मुलकान ।  
कहौं ललित निकुंञ्ज लीला मुरलिका कल गान ॥  
कहौं पूरन सरद रजनी जैन्ह जगमग जोत ।  
कहौं नूपुर वीन धुनि मिलि रात मंडल होत ॥  
कहौं पाँति कदंद्र की छुकि रही जमुना वीच ।  
कहौं रंग विहार फशुन मच्चल केसर कीच ॥  
कहौं गहवर विपिन मैं तिथ रोकिवौ मिल दान ।  
कहौं गोधन मध्य भोहन चिकुर रज लमटान ॥

कहौं लंगर सखा सोहन कहौं उन कौं हासि ।  
कहौं गोरस छाँछि टैटी छाक रोटी रासि ॥  
कहौं लवननि कीरतन जगमगानि दसधा रंग ।  
कंठ गदगद रोम हर्षन प्रेम पुलकित अंग ॥  
जहौं एती बस्तु पह्यत बीच वृद्धाधमा ।  
हौंडब ऐसे व्रज सुखद सौं बाहिरै वेकाम ॥  
दास नागर चहत नहि सुख मुक्ति आदि अपार ।  
सुनहु व्रज बसि स्वन मैं व्रजवासिनन की गार ॥

बिनु हरि सरन सुख नहि कहूँ ।

छाड़ि छाया कलपद्रुम जग धूप दुख क्यौं सहूँ ॥  
कलिकाल कलह कलेस सरिता वृथा ता मधि वहूँ ।  
दास नागर ठौर निर्मय कृष्ण चरननि रहूँ ॥

सब सुख स्याम सरनैं गए ।

और ठौर न कहूँ आनंद इंद्रहू कैं भयें ॥  
दुख मूल एक प्रवति मारग कहि न भानत कोय ।  
सुख पग्यौ जोइ निवृत्ति कैं मन जानि है दुख सोय ॥  
सतसंग अंबुज व्रज सरोवर कीरतन सुखवास ।  
कीजिये हरि ! देवि तिन कौं भँवर नागरिदास ॥

अब हैं सरन कैवल स्याम ।

धोर कलि के तेज कौं तन सहौं जात न धाम ॥  
लीजिये तरु चरन छाया मूल सुख विसराम ।  
अजित भन तैं काम सुभ कछु बैनहै छिन जाम ॥  
सतवनि लीनौं जीतिहूँ भयौं भीत सरत न काम ।  
अब रहै नागरिदास कैं रट लगी रहना नाम ॥

क्यौं नहि करै प्रेम अभिलाप ।

या विन मिलै न नंददुलारौ परम भासवत साख ॥  
प्रेम स्वाद अस थान स्वाद यौं ज्यौं अकडोडी दाख ।  
नागरिदास हिये मैं ऐसैं मन बच क्रम करि राख ॥

तिन्हैं कोटि कोटिक विकार ।

राग द्वेष मत्सरिता तजि कै मूलु जानि मानी नहि हार ॥  
सुन्दौ भाग्यत भक्त कहावत कछु इक रीति करीवी ।  
यैं सुखसार र सतसंगति फल आई नाहि गरीवी ॥  
हिये अभिमान गोपि धन गाइयौ ताकी सबै विकार ।  
जो सजु पायो चहै तौ उर सौं दुरधन देह निकार ॥  
साधु बचन सुनि दीन भाँड़ बिन क्यौंहूँ न जरनि मिट्ठैगी ।  
नागरिदास वहूत पछितैहौं दुख मैं देह पिट्ठैगी ॥

अब तौ बहौत विष्ट मैं भोगी ।  
 अति [पटवायी] भाया है मैं कृपा दृष्टि कब होगी ॥  
 पित्रिध कुरुति मैं नाच्यौ कूद्यौ बेतौ दुख सिर क्षेत्र्यौ ।  
 बाहू विधि मैं सजु नहि पायौ काफ़ड़ फ़ोदा खेल्यौ ॥  
 अंचार्यची जनम विगारयो जन जन कौ भन राखत ।  
 नागरिया हरि सरन तिहारी वृद्धावन अभिलापत ॥

सुनियो कहत सबनि हाँ टेरे ।  
 यह विधना धी प्रगट चूक है द्वै मन किये न मेरे ॥  
 एके मन कों सोंपि राखतौ साधन यह व्यौहार ।  
 मन इक सौं हरि भक्तिहि करतौ जग दुख सब निर्वार ॥  
 नागरिया एक मन तैं कहि कर्यौ बनिहै द्वै जोग ।  
 विधि विष्ट को रोग इतैं उत हरि रस लीला भोग ॥

भक्त विन नर छकड़ा के वैल ।

लोग बड़ाई है दै हौंकत चलत दुखित है गैल ॥  
 कारज द्रव्य विना बल श्रीसैं मन सौं सकैं न हार ।  
 लीनौ स्वारथ साध सुबनि मिल इनकौं सिर दै भार ॥  
 भटकत ही मर जाय वृषभ मत नये जगत की लाज ।  
 नागरिया वैठि वृद्धावन करैं न अपनौ काज ॥

हम को किये कुसंगति छवार ।

वृद्धावन नियरे है निकसे झाँकन दयौ न द्वार ॥  
 हरि चरचा कोउ कहत सुनत नहिं और बात विस्तार ।  
 प्रभु समंध सुख साधन की चित भूल गये उनिहार ॥  
 दिन सुत से नर कलह कलपतरु देत हैं दुख अनपार ।  
 इन तैं लेहु छुझय मोहि अब नागर नंदकुमार ॥

अब ये यौं लागे दिन जान ।

भानौं कबहूँ हुती नाहिं वा सुख सौं पहिचान ॥  
 हरि अरचा चरचा कबहूँ नहिं नहीं कथा वंधान ।  
 जनम करम हरि उत्सव नाहीं रास रंग कल गान ॥  
 विमुख अनन्य निकट रहैं निस दिन महादुष्ट दुख खान ।  
 ये दुख टैं कृपा करिहैं जब नागर स्वाम सुजान ॥

तजि उपाधि जे हरि पद भजते ।

वे नूप कहा हुते बावरे मनिमय कंचन के यह तजते ॥  
 अब छाड़त नहि कलह मूल धर भक्ति विमुख लोगनि सौं लजते ।  
 नागरिया नर मूरु खिलौना रहत नहीं दुख सेना सजते ॥

हरि जू! अंगुत जुगत करैगे ।

परब्रह्म ऊपर बहल कान्च की नीकै लै निकरैगे ॥

महिरैं जल वासन नाव विच आळी भाँति तरैं  
 मैन तुरंग चढे पावक विच नाहीं पवरि परैं  
 याहू तैं असमंजस है किन प्रभु दृढ कर पकड़ैं  
 नागर सब आधीन कृपा कैं हम इन ढर न हरैंगे

अमल पद कमल चार सुचार ।

अहन नील सुवरन मिलि मन हरन भये लवि जार ॥  
 सुखर मनि संजीर मनमथ करत प्रगट चरित्र ।  
 गउर जावक चित्र चित्र चतुर मोहन मित्र ।  
 नख चंद्रिका ग्रातिविव प्रसरत कंज कौतुक भूमि ।  
 दास नागर मन मधुप तहाँ रहै छुकि छुकि शृणि ॥

अब तौ कृपा करो गोपाल ।

दीनबंधु करुनानिधि स्वामी अंतर परम कृपाल ॥  
 जग आसा विषफल मत खावौ प्यावौ भक्ति रसाल ।  
 नागरिया पर दया करै किन जन दुख हरन दयाल ॥

अब तौ कृपा करौ गिरधारी ।

अपनी बाँह लाँह तर राखौ देखौ दसा हमारी ॥  
 जुरे घोर कलह तिमिर धन भीति लगत है भारी ।  
 नागर दुख सँग उन कौ दीजै जिन कैं ग्रीति तिहारी ॥

अब तौ कृपा करौ श्रीराधा ।

वृद्धाविपिन वसौं श्रीस्वामिनि छाड़ि जगत की वाथ ॥  
 तीन लोक गावत वा बन की लीला ललित अगाधा ।  
 नागरिया ऐ तनक द्वै ते होय सहज सुख साधा ॥

अब तौ कृपा करै सब संत ।

या तन भन सौं ध्रमत ध्रमत ही है गये दिवस अनंत ॥  
 धर्म बुद्धि बल देह दिनहिं दिन तृस्ना कौ नहि अंत ।  
 नागरिया अब उहाँ वसइये जिहि ठाँ नित्य वरंत ॥

हम सत्संगति बहुत लजाई ।

वृथा गई सब ब्रात आजु लौं जो कछु सुनी सुनाई ॥  
 भक्ति रीति अनुसरत नहीं मन करत जगत मग भाई ।  
 अजहुँ न तजत उपाधि अवस्था चतुर्थाक्षम आई ।  
 श्रीवृद्धावन वास करन की जात है समै विलाई ।  
 अब तौ कृपा करौ नागर दुख सागर कुँवर कराई ॥

हमारी तुम सौं हरि! सुधरैगी ।

बहुत जनम हम जनम विगारयो अबहू निगरि पंगी ॥  
 ग्रीति रीति पूरन नहि कैरैं माया व्याधि टरैगी ।  
 नागरिया की सुधरैगी जो अँविया इतहि दरैगी ॥

हे हरि सरन तिहारी देहु ।  
 विरद है असरन सरन तिहारौ सो सब साँच करि लेहु ॥  
 मारत मोहि कलिकाल, दवाएँ भरधौ तस्वनता छोह ।  
 चार सनु हैं बाके संगी काम क्रोध मद मोह ॥  
 पाँचौं हंडी मो बस नाहीं मनहूं परछिं गयौ ।  
 लेहु बचाय नागरीदासहिं तो पद कमल नयौ ॥

साँचौं संत हमारे संगी ।  
 और सबै खारथ के लोभी चंचल मति बहुरंगी ॥  
 मन काथ माया सरिता मैं बहते आनि उछंगी ।  
 नागरिया राख्यौ बृंदावन जिहि ठाँ ललित विभंगी ॥

आयौ महा कलिजुग धोर ।  
 धरम धीरज उडि गये ज्यौं पात पवन झकोर ॥  
 मिटे मंगल लोक लागी होन आयुं सुमंद ।  
 बढ़ी जित तित कलह कर्कस नहि न कहुँ आनंद ॥  
 मिटी लझमी भाग्य सुभ सुख मिल्हौ सब कौ भद्र ।  
 मिटी भोभा सहज संफत बढ़ि परयौ दारिद ॥  
 मिटी सजननि सुद्धदताई रहौ खारथ एक ।  
 सुखी कोऊ देखिये नहि दुखी लोग अनेक ॥  
 लेत कलि कलमप दशाएँ जाइये कहाँ भागि ।  
 त्रिविधि ताप मैं तन तप्त ल्यां दसौं दिस मैं आगि ॥  
 दास नागर नहीं सीतल धाम निर्भय और ।  
 जहाँ बृंदाविन जमुना बचैं वाही ठैर ॥

बृंदाविनि रसिक रजधानी ।  
 राजा रसिक विहारी सुंदर सुंदर रसिक विहारिनि रानी ॥  
 ललितादिक द्विग रसिक सहचरी जुगल रूप मद पानी ।  
 रसिक दहलनी बृंदा देली रचना रचिर निकुंज सुहानी ॥  
 जमुना रसिक रसिक द्रुप बेली रसिक भूमि सुखदानी ।  
 इहाँ रसिक चर घिरनागरिया रसिकहिं रसिक सबै गुनगानी ॥

कृष्ण कृपा गुन जात न गायौ ।  
 मनहूं न परस करि सकै सो मुख इनहीं दृगनि दिक्षायौ ॥  
 एह व्यौहार भुट्ठ को भारा सिर पर सौ उतरायौ ।  
 नागरिया दौ श्रीबृंदावन भक्त तइत बैठायौ ॥

### विष्यासक्तकी दशा

आठ पहर दुल ही मैं बीतैं काँय कूँय परजा की ।  
 विषे भोग आओ हूँ नाहीं जिता मैं मति छाकी ॥

जित तित अपजस दुर दुर धर धर तन मन की अति ख्याती ।  
 ऐसो दुखी न त्यागि सकै धर माया की गति भारी ॥  
 नित्य चाकरी सौं नित डरै कहु चूक्यौ अफ मारयौ ।  
 कारज द्रव्य विनाँ वल धीसै मन सौं जात न हारयौ ॥  
 दिन कुडंब के भरन पोष मैं निस विचार करि मोयौ ।  
 ऐसौ दुखी न त्यागि सकै धर माया राँड निगोयौ ॥

बहुत ठीकरा ठाठ खड़भड़ै एकहु नाहिन लेटी ।  
 साँप गोहिरा करत कलोलै लैवै कौं नहि रेटी ॥  
 काली कुटिलं कुब्यौती कामिनि युही मूँज सौं चोटी ।  
 ऐसौ हू यह त्यागि सकै नहि माया की गति मोटी ॥

जनौं औदसा बार विराजत पेसी दूरी धान ।  
 शालक बहुत मनौं भूत लेटे तिन्हैं मिलत नहि धान ॥  
 नित उठि होति कलह अति कर्कस जित तित सैंचातान ।  
 ऐसौ हू यह त्यागि सकै नहि माया की गति जान ॥  
 धरै भेष जोई जा दिन तैं बंदन कौ अधिकाती ।  
 है निर्मय निश्चित सहज मैं विपति मिटे तब सारी ॥  
 सिखरन भात खीर के न्यौता नित उठि मंगल बड़है ।  
 याहि लैन सुख कौ न तजैं यह माया के मुह चड़है ॥  
 पराधीनता मिटै पायिनी है सुतन्त्र अह विचरै ।  
 जहाँ न जावन पावन हो तहाँ जाय निडू मुख उच्चरै ॥  
 तीनहु ताप मंद है जावैं बहुरि डरै जमदूत ।  
 यही आत नहि समझ तजैं यह हरि की माया धूत ॥

### संत-माधुरी

लोचन सजल लाल बूमत विसाल छके  
 चलनि भराल की सी ठाढ़े रोम तन मैं ।  
 उजल रस मीने ताकै दीने गरवाँही रहै  
 स्यामा ख्याम दोऊ हिये सुंदर सदन मैं ॥  
 पुलकित गात गिरा गद्गद शेमांच नित  
 धारै छाप कंठी औ तिलक निज पन मैं ।  
 कहा भयो नागर किये तैं तप जप धान  
 जो पै सत माधुरी बसी न ऐसी मन मैं ॥

### प्रेमी भक्तका स्वरूप

#### कवित्त

लीला रस आसव श्रवन पान कीने हरि  
 ग्यानहि रजक आन नाहि चहियतु है ।  
 दिघनाँ कुवेर इंद्र आदि तद रंक दीसै  
 ऐसे मद छाये पै नमनि गहियतु है ॥

भानगाहि भोग में गगन दिन रैन रहे  
ताके नैक तावी नित छके रहियतु है ।  
और भत्तारे भत्तारे नाहि नागर वे  
प्रेम भत्तारे भत्तारे कहियतु है ॥

## कुण्डलिया

चितवत नहि बहुउठ दिम, इन कोर तैं मूर ।  
मन भरवस सिर धूर दै, सरवस की ब्रज धूर ॥  
सरवन की ब्रज धूर पूरि नित रहे एकरस ।  
मन अग्नियाँ तन बात निरवि पुनि धृत रीझ वस ॥  
जदौं जदौं सुनि पिय बात नैन भरि छिन छिन चितवत ।  
नीरस रसमइ दोत तनक दग कोरहि चितवत ॥

लोकन में कैसे मिलैं, परम प्रेमनिधि चोर ।  
देखत ही लखि जाइयै औँखिन ही की ओर ॥  
ओँखिन ही की ओर चोर पकरत वहि निध कौ ।  
पिय प्रकास क्षलगलत मनौं बादर तर विध कौ ॥  
जिहि विध यों उर आहि महा तीछनि दग नोकनि ।  
मधि अबीध क्यौं रलैं जाहि हिय सूत विलोकनि ॥

सूधे अति बाँके महा, फँसे नेह के पंक ।  
दीन लगत चितवत निपट कहै कुबेर सौं रंक ॥  
कहैं कुबेर सौं रंक संक हिय मैं कछु नाहीं ।  
फिरत विवस आवेस बलित बन घन की छाहीं ॥  
ब्रज समाज छवि भीर रहत नित प्रति हिय रुधे ।  
बोलत अटपटे वैन लगत सूधन कौं सूधे ॥

बृंदावन रस मैं पगे, जीत्यो अजित सुभाव ।  
सात गँठि कोपीन कैं गनैं न राना राव ॥  
गनैं न राना राव, भाव चित रहे महा भरि ।  
लखैं दीन तैं दीन लीन है परत पगनि द्वारि ॥  
अद्वा अनोखी रीत कहा कहैं रहत रहित तन ।  
है चकोर ससि बदन जुगल निरखत बृंदावन ॥

नैननि जल चित है रहे चूर चूर तन छीन ।  
चूर चूर दिग गूदरी कहैं हंद सौं दीन ॥  
कहैं हंद सौं दीन भीन दग लीन स्थाम जल ।  
जकरि जुलफ जंजीर कियौ बस मन मतंग खल ॥  
रूप रसासव मत्त मुदित गदगद सुर वैननि ।  
तन धूमत लगि धाय स्थामसुंदर सर नैननि ॥

## प्रेम-पीड़ा

तामनि की लाननि महीं, परथौ जु मन धुकि धाहि ।  
पैछौ रव गावत स्वनि, मुख तैं निसरत आहि ॥  
मुख तैं निसरत आहि साहि नहि सकत चोट चित ।  
आन हरद तैं दरद मिटत नहि विवस छुट्ट छित ॥  
रीझ रोग रगमयौ परथौ नहि छुट्ट ग्राननि ।  
चित चरनि क्यौं छुट्ट प्रेम वरेन की ताननि ॥

## प्रेम-सत्तता

बोलनि ही औरैं कछू, रसिक सभा की मानि ।  
मतवारे समझैं नहीं, मतिवारे लैं जानि ॥  
मतिवारे लैं जानि आन कौं बस्तु न सज्जै ।  
ज्यौं गूँगे की सैन कोऊ गूँगौ ही बूहौ ॥  
भीजि रहे गुरु कृष्ण वचन रस गागरि ढोलनि ।  
तनक सुनत गरि जात सयानप अलबल शोलनि ॥

## दैन्य

बूरा विवर्ज्यौ रैन मैं, मगज न गज कौ पाय ।  
तजि ऊँचे अभिमान कौं चैंटी है तौ खाय ॥  
चैंटी है तौ खाय चाय चित रज निवारि कैं ।  
कनिका रसिकहि लहैं अपनयौ तनक धारि कैं ॥  
मानी मलिन मतंग ताहि वह कही न मूरा ।  
दीजै तिनहि बताय जाहि भावै जन बूरा ॥

## श्रीबृंदावनका प्रकट रूप

जमुना नदीसी तौ न दीसी कोऊ और तहौं,  
भक्ति-रस रूप मई जाकौ जल सोत है ।  
कूल कूल फूल फूल छुल कुंज लता रहीं,  
बोलत चकोर मोर कोकिला कापोत हैं ॥  
रसिक सुजान संत हरिगुन-गान करैं,  
हरैं ताप विविध सु अनेंद उदोत है ।  
जग-दुख-दर्द तामैं दुखी कहा 'नागर' तू,  
वसि ऐसे बृंदावन सुखी क्यौं न हीत है ॥

सहजै श्रीकृष्ण-कथा ठौर ठौर होत तहौं  
कीरतन-धुनि मीठी हिय के उलास तैं ।  
स्थाम-स्थाम रूप-गुन लीला-रंग रँगे लोग,  
तिन के न ध्वात उर प्रेम के प्रकाश तैं ॥  
परे मन ! मेरे चेत उन ही सौं करि हेत,  
'नागर' छुड़ाइ देत जग-दुख-गान तैं ।  
काम क्रोध लोभ मोह भञ्जरता रग द्वेष,  
चाह दाह जैंहे सब बृंदावन-वाय तैं ॥

### श्रीबृंदावनका शुभ रूप

कुंजनि कल्पतरु रतन-जटित भूमि,  
छवि जगमगत जकी-सी लगै काम को ।  
सीतल सुगंध मंद मासूत वहत नित,  
उड़त पराग रैन चैन सब जाम को ॥  
दब बधू दुमनि मैं कोकिला-खरूप गावै,  
दंपति-बिहार चीच बृंदावन नाम को ।  
नाशरिया नागर सु दीन्हे गरबाहीं तहाँ,  
मन ! रूप रवनी है देखि ऐसे धाम को ॥

### उद्घोषण

पर कारज करि दुख सहै, लेत न हरि रस थैंट ।  
भार धसीट और कौ, आप झैंट के झैंट ॥  
अपनौ भलौ न करत नर, सब मैं बड़ौ कहाय ।  
विन परसैं हरि नाम के, ज्यौं सुमेर रहि जाय ॥  
अप-अपने सब सुधि करत, भवन भरे उत्पात ।  
कबहूँ कोऊ नहीं करै, बृंदावन की बात ॥  
निति निति दुख यह कौ सहै, जहाँ अमित उत्पात ।  
रोग दुखित तम त्यागियै, घर की किंतक बात ॥  
करी न जिहि हरि भक्ति नहिं, लये विषे के स्वाद ।  
सो नहिं जिमी अकास कौ, भयो झैंट को पाद ॥  
मरियो चाहत और कौ, अपने सुख हित जोय ।  
तिन कौं ऐसी नीत परि, सुख काहे कौं होय ॥  
ताकौं कहिये मूढ़ जग, दुख दौ लागी हर ।  
जमुना बृंदा निपिन तजि, धावत बीकानेर ॥  
निविध भाँति के दुखनि जिय, निकसत नहीं निदान ।  
बृंदावन की आस परि, उरक्ष रहे ये प्रान ॥  
आपस मैं जु लराय कै, किये सुसाफर भाँड ।  
माया जगत सराय मैं, बुरी भछ्यारी राँड ॥  
नहीं अवस्था धन नहीं, और न कहूँ निवास ।  
तझ न चाहत मूढ़ मन, बृंदावन को बास ॥  
जिहि विधि धीति बहुत गह, रही तनक सी आय ।  
मत कबहूँ सत्संग विन, अब यह आयु विहाय ॥  
जहाँ कलह तहाँ सुख नहीं, कलह सुखनि कौ सूल ।  
सवै कलह इक राज मैं, राज कलह कौ मूल ॥  
मेरे या मन मूढ़ तें, डरत रहत हाँ हाय ।  
बृंदावन की ओर तें, मत कबहूँ किरि जाय ॥  
अधिक सयानप है जहाँ, सोइं दुधि दुख खानि ।  
सर्वोपरि आनन्दमय, प्रेम बाय बौरानि ॥

बृंदावन के बास कौ, तिन कैं नाहिं हुलास ।  
फूस-फास जिन की भगत बृङ्ग भोग सुख आस ॥  
बहुत भूमि इत उत फिरयौ, माया बस शकहोर ।  
अब कब हैं सफल पग, बृंदावन की ओर ॥  
दिन धीतत दुख दुँद मैं, च्यार पहर उत्पात ।  
विपती मरि जाते सबै, जो होती नहिं रात ॥  
लेत न सुख हरि भक्ति कौ, सकल सुखनि कौ सार ।  
कहा भयो रुपहू भए, दोहत जग बेगार ॥  
रळि चौपर बाजी रची, च्यार नरनि इक साथ ।  
पासा पर कछु बस नहीं, हार जीत हरि हाथ ॥  
हो हरि ! परम प्रवीन है, कहा करत ये खेल ।  
पहिलैं अमृत प्याय कै, अब क्यौं पावत तेल ॥  
बगुला से मोहिं पतित पर, कृपा करौ हरिराय ।  
हंहंसिनु बृंदाविष्णि मैं, पावत बैठौ जाय ॥  
मेरी मेरी करत क्यौं, है यह जिमी सराय ।  
कह्यक डेय करि गये, किये कईकरि आय ॥  
और भवन देखूँ न अब, देखूँ बृंदा भौन ।  
हरि सौं सुधरी चाहिये, सब ही विगरौ क्यौं न ॥  
द्रुम दौं लगैं जात खग, आवैं जब फल होय ।  
संपत के साथी सबै, विपता के नहि कोय ॥  
अधिक भये तौ कहा भयौ, बुद्धिनि दुख रास ।  
साहिब ढिग नर बहुत ज्यौं, कीरे दीपक पास ॥  
बृज मैं हैं कहत दिन, किते दये लै खोय ।  
अब कैं अब कैं कहत ही, वह अब कैं कव होय ॥  
तुम ऐसी क्यौं करत हौ, हरि बरि चतुर कहाय ।  
भलैं जिमावत हौ हमैं, सुस अरु स्त्रीर मिलाय ॥  
सदा एकरस भक्ति सुख, ज्यौं अमर बन देल ।  
यह के लाभ अलाभ सब, जूदा के से खेल ॥  
हिलत दंत हग दृष्टि घटि, सिथिल भयौ तन चाम ।  
तऊ बैठ सुमरत नहीं, काम गये हूँ राम ॥  
तमन समय हरि नहिं भजे, रहौ मगन रस बाम ।  
अब तौ रे नर वैठि भजि, काम गए तौ राम ॥  
पञ्च रतन रथ वैठि कै, करि देखौ किन गैन ।  
राह छाँडि ऊट चलै, सुख पावै सो कैन ॥  
अगली समै र इहि समय, इतनौ अंतर जान ।  
ज्यौं लसकर कैं उठ गए, पीछैं रहे सहेदोन ॥  
मिटे मोद मंगल मही, जे पहिलैं सुख खान ।  
अब जग की विछिली समै, जैसौं च्याद विद्वन ॥

नीकी ह लगत बुरी, विन औसर जो होय ।  
 प्रात भएँ फीकी लगी, लगी दीपक की लोय ॥  
 अमृत गर देख्यौ नहीं, पास वौ न पहर ।  
 प्रेम रके एरि भक्ति मैं, देखे नहीं हजार ॥  
 मन । तू ऊँची टीर लगि, जहाँ न पहुँचे और ।  
 तहाँ वैँ मीनी लगी, रव ऊँची ऊँची ठौर ॥  
 यो याकी लुच देत है, कौन देत सुख दान ।  
 सब जीवन वी शुद्धि के, प्रेरक श्रीभगवान ॥  
 लाज छाँडि दूरि की भजौ, दीजै मन कौं कूट ।  
 कामाँकै की मुहम मैं, जैसै लट्टालट ॥  
 लाज करी जिहि भजन मैं, ते कोरे रहे सोय ।  
 इहि जग दृष्टिनी संग मैं, लट्ट किएं सुख होय ॥  
 माया प्रवल प्रवाह मैं, मन कौं कछु न बसय ।  
 नदी कौसिकी मॉहि ज्यों, तल सिर ऊर पाय ॥  
 जगत कमाँकै कटक ल्यौ, राम नाम भरि नाज ।  
 लाज किएँ लाज न रहै, लाज तजै रहै लाज ॥  
 सत्रु कहत सीतल वचन, मत जानौ अनुकूल ।  
 ज्यैङ्ग भास वैसाख मैं, सीत रोग को मूल ॥  
 जग की खातर राखि सुख, भक्ति लहै नहि रिद्धि ।  
 संग निकासै जगत सौं, तब भक्ति संग है सिद्धि ॥  
 सुनि कै लेहु पुरान सब, बूझ लेहु सब ठौर ।  
 जगत रीत कछु और है, भक्ति रीत कछु और ॥  
 जगत तोष तोरै कोऊ, तबै ताहि सुख होय ।  
 खाला का डर आसिकी, संग न निवै दोय ॥  
 अपनौ भलौ न करि सकौ, कहा भोर कहा सोकौ ।  
 जग कौ भलौ मनावैं, देसा रहि गइ बाँझ ॥  
 बहुत संत भये आजु लौ, ऐसी सुनी न साकि ।  
 दयौ भक्ति सुख लोय कै, जग की खातर राखि ॥  
 राजु बड़े बड़े देत हरि, दिन मैं लाख करोर ।  
 पै काहू कौं नाहि बे, वैनैत अपनी ओर ॥  
 कृपा लहर नर कूर की, सोइ जानियै हैफ ।  
 जैसे खावत पान मैं, तम्भालू की कैफ ॥  
 जानि कै जानि अजान है, तब लीजिये छानि ।  
 सिध्य होन मैं लाम है, गुरु होन मैं हानि ॥  
 बृंदावन तब भजत है, बास करन कै जाय ।  
 बृंदावन तैं भजत अद्व, चतुर्थ आश्रम आय ॥  
 दाम चाम की लगत तैं, सुधि आयेनहि स्याम ।  
 काम कल्पतरु नगर बस, भूले बृंदावाम ॥

पति कौं दुख मैं संग लजै, जाकौं वहु पति होर  
 जगत मुहमनि को हँसै, बौरहि हँसै न कीय  
 कुल पोखन मैं करत क्यौं, अपनौ जन्म वेकाम  
 विस्वंभर भगवान कौं बृथा कहत जय नाम  
 को करिहै तब कुटम के, पोखन कौं उपचार  
 कुस सैनी जब सोइहौ, लंबे पाँच पशात ।  
 जाकौं घर सब तैं बड़ौ, सब घर जिहिआरीन ।  
 सो घर परिदरि फिरत क्यौं, घरन्यर है कै दीन ।  
 बृंदावन सेवत नहीं, करै न हरि वी गात ।  
 सब दिन गोलत है बृथा, गोलत लोग हँसात ॥  
 नीकी हू फीकौ लगौ, जो जाकै नहिं काज ।  
 फल आहारी जीव कै, कौन काम कौं नाज ॥  
 फिरत रहै तीरथ रहै, रहै कोउ घर माहि ।  
 नाना रँग के संग मैं, चहत एक रँग नाहि ॥  
 आवत लोट्या भूमि पर, गया लोटि कै भूमि ।  
 शूद्रे फहकट बीच कै, सेज जिछौना लर्मि ॥  
 आप कुण्ड गोलक पिता, पिरु पिता कानीन ।  
 अद्वै चुनागर भक्ति जस, पांडव नित्य नवीन ॥  
 आय परे इह ठौर मैं, बुरे कर्म फल देत ।  
 धाहिर बृंदा विनि सौं, जब लगि जीकत प्रेत ॥  
 भक्ति भोग दोउ तजि फिरत, सरल है दूधी गैल ।  
 ते आये भर जगत मैं, जैसै धविया वैल ॥  
 जापै जैसी वस्तु है, तैसौ ही मन होय ।  
 माला और शिलोल को, कर लै देलौ कोय ॥  
 मिलै सजाती दूसरौ, जय है वस्तु प्रकाग ।  
 कहत नाहिं विन पवन ज्यों, दुस पूलन वी वाय ॥  
 पौढ़े छीरसमुद्र मैं, एकाकी भगवान ।  
 गौर स्याम है मिलत वज, वही कथा मुन्मधाम ॥  
 जा मैं रस सोई हौरै, यह जागत सध यांद ।  
 गौर स्याम है रंग विन, हरौ रंग नहि संय ॥  
 काठ काठ सब एक से, सब काहू दर्शात ।  
 अनिल मिलै जब आगर कौं, तब गुन जालौ जात ॥  
 है विन एक न काम कौं, यह मन लेहु पिना ।  
 तन माटी विन प्रान कै, विन तन प्रान वय ॥  
 प्रेम जहाँ ही अधिक है, तहाँ सु हेत गगा ।  
 ज्यैङ्ग विरद सुनि समर विच, वीरति यदत उदाह ॥

निंदक चौकस चतुर नर, नखसिख भरे सयान ।  
तिन आँगें कैसैं रहे, प्रेम वाय बौरान ॥  
छिद्र निहारत फिरत अरु, बातन गढ़त विधान ।  
तिन आँगें कैसे रहे, प्रेम वाय बौरान ॥

गुनी बैद्य ज्यौं फिरत लैं, काँख कोशरी गान ।  
तिन आँगें कैसैं रहे, प्रेम वाय बौरान ॥  
सतरङ्ग चौपर पोथी खोई, भगवत चर्चा गाप्यो ने ।  
खोया रास भक्ति यों भक्तनि, हरि जस खोये टप्पों ने ॥

## संत धनानन्द

( स्थान दिल्ली, मट्टनागर कायस्थ, जन्म-संवत् १७१५ के लगभग, देहान्त लगभग संवत् १७९६ । वन्दावन-निवासी संत )

जा हित मात कौ नाम जसोदा सुन्नंस कौ चंद्रकला कुलधारी ।  
सोभा समूहमयी 'धनआनन्द' मूरति रंग अनंग जिवारी ॥  
जान महा, सहजै रिजवार, उदार विलास, सु रासविहारी ।  
मेरौ मनोरथ हूँ पुरवौ तुम ही मो मनोरथ पूरनकारी ॥  
मेरौई जीव जो मारतु मोहिं तौ, प्योरे ! कहा तुम सौं कहनौ हैं ।  
आँखिन हूँ यहिवानि तजी, कद्मु ऐसोई भोगानि कौ लहनौ है ॥  
आस तिहारियै ही 'धनआनन्द', कैसैं उदास भएं रहनौ है ।  
जानि कैं होत इते पै अजानजो, तौ बिन पावक ही दहनौ है ॥

सदा कृपानिधान है, कहा कहौं सुजान हैं,  
अमानि मान दानि है, समान कहि दीजिए ।  
रसाल सिंधु प्रीति के, भरे खेरे प्रतीति के,  
निकेत नीति रीति के सुदृष्टि देखि जीजिए ॥  
उगी लगी तिहारियै, सु आप त्यौं निहारिए,  
समीप है विहारिए, उमंग रंग भीजिए ।  
पयोद मोद छाइए, बिनोद को बढ़ाइए,  
विलंब छाँड़ि आइए, किधौं बुलाइ लीजिए ॥

सुख सुदेस कौ राज लहि, भये अमर अवनीस ।  
कृपा कृपानिधि की सदा छत्र हमारे सीस ॥  
मो से अनपहिचान कौं, पहिचानै हरि ! कौन ?  
कृपा कान मधि नैन ज्यौं, त्यौं पुकारि मधि मौन ॥  
हरि तुम सौं पहिचानि कौं, मोहि लगाव न लेस ।  
हाहि उमंग फूलयौ रहौं, वसौं कृपा के देस ॥

सलोने स्थाम प्योरे क्यौं न आवौ ?  
दरस प्यासी मरै तिन कौं जिवावौ ?  
कहौं है जू, कहौं है जू, कहौं है ?  
लमे थे हैं प्रान तुम सौं जहौं है ॥  
रहौं कि ! न प्रानप्योरे, नैन आगे,  
तिहारे कारने दिन रात जागै ।  
नजन हित मानि कै ऐसी न कजै,  
भई हैं बावरी सुधि आय लीजै ॥

कहीं तब प्यार सौं सुखदैन बातैं,  
करौ अब दूर ये दुखदैन बातैं ।  
बुरे है जू, बुरे है जू, बुरे है,  
अकेली कै हमैं ऐसे दुरे है ॥

तरसि तरसि प्रान जान मन दरस कौं  
उमहि उमहि आनि आँखिनि बसत हैं ।  
विषम विरह के विसिधि हिएँ घावल है  
गहवर धूमि धूमि सोचनि सहत हैं ॥  
सुमिरि सुमिरि धनआनन्द मिलन सुख  
करन सौं आसा पट कर लै कसत हैं ।  
निसि दिन लालसा ल्पेटैं ही रहत लोभी  
मुरझि अनोखी उरझनि में गसत हैं ॥

मेरी मति बावरी है जाइ जानराय प्योरे !  
रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय ।  
देखन के चाय प्रान आँखन में झाँकै आय  
राखौं परस्चाय पै निगोड़े चलैं धाय धाय ॥  
विरह विशाद छाय आँसुन की झारी लाय  
मैरे मुरझाय मैन द्यौस रैन ताय ताय ।  
ऐसे धनआनन्द विहाय न बसाय हाय,  
धीरज विलाय विललाय कहौं हाय हाय ॥

ललित तमालनि सौं बलित नवेली बेलि  
कैलि रस झेलि हँसि लहौ सुखसार है ।  
मधुर बिनोद श्रम जलकन मकर-  
मलय समीर सोई मोदनु दुगार है ॥  
वन की बनक देखि कठिन बनी है आनि  
यनमाली दूर आली ! सुनै को पुकार है ।  
विन धनआनन्द सुजान अंग पीरे परि  
फूलत दसंत हमैं होत पतझार है ॥

हरि के दिय मैं जियर्हे सु वर्षे महिमा फिर और कहा कहियै।  
दरमै नित नैननि वेननि हैं सुखक्यानि सौं रंग महा लहियै॥  
पनआनेंद्र प्राण परीक्षिनि कौं रस प्यावनि ज्यावनि है वहियै।  
फिरि नोऽन अनेक उपाय मरी हमें जीवनि एक कृपा चहियै॥

स्वाग सुजान इर्हे वभिये रहे नैननि त्यौं लसियै भरि भाइनि।  
वेननि धीन विलाय करे सुखक्यान सखी सौं रची चित चाइनि॥  
हे भय जाने गदा धनआनेंद्र ऐसी रसाल महा सुखदाइनि।  
जेरी भई भति भंगी निहारि कैं सील सरूप कृपा ठकुराइनि॥

वेन कृपा फिरि मौन कृपा हग दृष्टि कृपा रुख माधि कृपाई।  
ज्यान कृपा गुन गान कृपा मन ध्यान कृपा हरे आधि कृपाई॥  
लोक कृपा परलोक कृपा लहिए सुख संपति साधि कृपाई।  
यौं सब टाँ दरसै वरसै धनआनेंद्र भीजि अराधि कृपाई॥

हरिहू कौं जेतिक सुभाव हम हेरि लहे  
दानी बड़े पै न ढरै माँगे बिन दातुरी।  
दीनता न आवै तौलैं बंधु करि कौन पावै  
सँच सौं निकट दूरि भाजैं देखि चातुरी॥  
गुननि बैथे हैं निरगुन हू आनंदघन  
भति यहै बीर गति चाहैं धीर जातु री।  
आतुर न है री अति चातुर विचार यकी  
और सब ढीले कृपा ही कै एक आतुरी॥

हैं गुनरासि ढरै गुनहीं गुन हीनन तै सब दोस प्रमानै।  
हाहा बुरै जिन मानियै जू बिन जाचै कहै किन दानि बखाने॥  
लीजै बलाइ तिहारी कहा करैं हैं हमहूँ कहूँ रीक्षि विकानै।  
बूझौं कहैं कहा एक कृपा कर रावरे जो मन के मन मानै॥

## राजा आशकरणजी

मोहन चरनारविंद विविध ताप हारी।  
कहि न जात कौन पुन्य, कर जू सिर धारी॥  
निगम जाकी साख बोलैं, सेवक अधिकारी।

र्धीवर-कुल अमय कीन्है, अहल्या उद्धरी॥  
ब्रह्मा नहिं पार पावै, लीला-बपुधारी॥  
(‘आसकरन’ पद-पराग, परम मङ्गल कारी॥

## महाराज ब्रजनिधि

(असली नाम—जयपुरनरेश सवाई प्रतापसिंहजी। जन्म—संवत् १८२१। दीक्षागुरु—श्रीजगदाधर्जी भट्ट। देहावशान—संवत् १८६०।)

प्यारौ ब्रज ही कौं सिंगार।  
मोर पक्वा सिर लकुट बाँसुरी गरु गुंजन कौं हार॥  
बन-बन गोधन संग डोलियौ गोपन सौं कर यारी।  
सुनि सुनि कै सुख मानत मोहन ब्रजबासिन की गारी॥  
विधि सिव सेस सनक नारद से जाकौं पार न पावै।  
ताकौं धर-वाहर ब्रज सुंदरि नाना नाच नचावै॥  
ऐसौं परम छवीलौ ठाढ़ुकर कहौं काहि नहिं भावै॥  
(‘ब्रजनिधि’ सोइ जानिहै यह रस जाहि स्याम अपनावै॥

जित कै श्रीगोविंद सहाइ।  
सकल भय भजि जात छिन मैं सुख हिएं सरसाइ॥  
सेस सिव विधि सनक नारद सुक सुजस रहे गाइ।

द्रौपदी गज गीध गनिका काज कीये धाइ॥  
दीनत्रंधु दयाल हरि सौं नाहिं कोउ अधिकाइ॥  
यहै जिय मैं जानि ‘ब्रजनिधि’ गहे दृढ़ करि पाइ॥  
पायौ बड़े भागनि सौं आसरो किसोरी जू कौ  
ओर निरबाहि नीकैं ताहि गही गहि रे।  
नैननि तैं निरखि लड़ैती को बदन चंद  
ताहि कौं चकोर हूँ कै रूप सुधा यहि रे॥  
स्वामिनी की कृपा तैं अधीन हूँ हैं ‘ब्रजनिधि’  
ताते रसना सौं नित स्यामा नाम कहिरे।  
मन मेरे मीत जो कही गानै मेरी तौ त्  
राधा पद कंज कौं भ्रमर हैं के गदि रे॥

## भक्त श्रीगदाधर मिश्रजी

( वलभ-सम्प्रदायके भक्त-कवि । स्थितिकाल—अनिश्चित )

जयति श्रीराधिके सकल सुख साधिके  
तरुनि मनि नित्य नव तन किसोरी ।  
कृष्ण तन नील घन रूप की चातकी  
कृष्ण सुख हिमकिरन की चकोरी ॥  
कृष्ण दग्ध भूंग विहाम हित पश्चिनी  
कृष्ण दग्ध मृगाज बंधन सुडोरी ।  
कृष्ण अनुराग मकरंद की मधुकरी  
कृष्ण गुन गान रस सिंधु चोरी ॥  
विमुख परचित्त तैं चित्त याकौ सदा  
करत निज नाह की चित्त चोरी ।  
प्रकृत यह गदाधर कहत कैसैं बनै,  
अमित महिमा इतै बुद्धि थोरी ॥

जय महाराज ब्रजराज कुल तिळक  
गोविंद गोपीजनानंद राधारमण ।  
नंद नृप गेहिनी गर्भ आकर रतन  
सिष्ट कष्ट धृष्ट दुष्ट दानव दमन ॥  
बल दलन गर्व पर्वत विदारन  
ब्रज भक्त रच्छा दच्छ गिरिराजधर धीर ।  
विविध लीला कुसल मुसलधर संग लै  
चारु चरनांक चित तरनि तनया तीर ॥  
कोटि कंदर्पे दर्पणहर लावन्य  
धन्य वृद्धारन्य भूष्ण मधुर तरु ।  
मुरलिका नाद पीयूषनि महानंदन  
विदित सकल ब्रह्म रुद्रादि सुरवरु ॥  
गदाधर विष्वे वृष्टि करना दृष्टि करु  
दीन को विविध संताप ताप तचन ।  
है सुनी तुव कृपा कृपन जन गामिनी  
ब्रहुरि पैहै कहा मो वरावर कवन ॥

आजु ब्रजराज कौ कुँवर बन तैं बन्धौ,  
देलि आवत मधुर अधर रंजित बेनु ।  
मधुर कल गान निज नाम सुनि सबन पुट,  
परम प्रमुदित बदन फेरि हूँकति धेनु ॥  
मद विवूर्णित नैन मंद विहँसनि वैन,  
कुटिल अलकावली ललित गो पद रेनु ।  
भवाल बालनि जाल करत कोलाहलनि,  
सुंग दल ताल धुनि रचत संचत चैनु ॥  
मुकुट की लटक अरु चटक पट पीत की  
प्रगट अंकुरित गोपी के मनहिं मैनु ।  
कहि गदाधर जु इहि न्याय ब्रजसुंदरी  
विमल बनमाल के बीच चाहतु ऐनु ॥

सुमिरौ नट नागर वर सुंदर गोपाल लाल ।  
सब दुख मिटि जैहैं वे चित्त लेचन निमाल ॥  
अलकन की ज्ञालकन लखि पलकन गति भूल जात ।  
भ्रू बिलास मंद हास रदन छदन अति रसाल ॥  
निंदत रवि कुंडल छवि गंड मुकुर श्लमलात ।  
पिञ्छ गुच्छ कृत चतंस इंदु विमल विहु भाल ॥  
अंग अंग जित अनंग माधुरी तरंग रंग ।  
विमद मद गयंद होत देखत लटकीलि चाल ॥  
हसन लसन पीत बसन चारु हार वर सिंगार ।  
तुलसि रचित कुसुम स्वचित पीन उर नवीन माल ॥  
ब्रज नरेस वंष दीप वृद्धावन वर महीप ।  
बृशमान मानमान सहज दीन जन दयाल ॥  
रसिक भूप रूप राति गुन निधान जान राय ।  
गदाधर प्रसु जुबती जन मुनि मन मानस मराल ॥

## श्रीभगवतरसिकजी

( जन्म संवत् २७९५ दिं० के लगभग माना जाता है । आप श्रीललितमोहिनीदातजीके कृपापात्र शिष्य थे । )

लोभ है सर्व पाप कौ मूल ।  
जैसैं फल पीछे कौं लागै पहिलैं लागै फूल ॥  
अपने सुत के काज केकई दियौ राम बनवास ।  
भर्ता मरौ भरत दुख पायौ सस्तै लगत उपहास ॥

नासुदेव तजि अर्क उपासे सत्राजित मनि लीनी ।  
वंधु सहित भयौ निधन आपुनौ निदा सबही कीनी ॥  
‘भगवतरसिक’ संग जो चाहै प्रथमैं लोभै त्यागै ।  
देह, गेह, सृत, संपति, दारा उब हरि सौं अनुरागै ॥

इतने गुन जामें सो यंत ।

श्रीभगवत मत्य लय गावत श्रीमुख कमलाकंत ॥  
हरि की भजन, साधु की सेवा, सर्व भूत पर दाया ।  
दिग्ग, लोभ, दंग, छल त्यागी, विष सम देखै माया ॥  
सद्गुरीन, आमय उदार अति, धीरज सहित विवेकी ।  
मत्य वचन मव कीं मुखदायक, गहि अनन्य ब्रत एकी ॥  
दंगीनित, अभिमान न जाकै करै जगत कीं पावन ।  
'भगवतरसिक' तासु की संगति तीनहुँ ताप नसावन ॥

साँचे श्रीपाठरमन छटौ लब संसार ।  
वाजीगर कौं पेलनौ मिठत न लगै बार ॥  
मिठत न लगै बार भूत की संपति जैसै ।  
मिहिरी, नाती, पूल धुवाँ कौं धौर तैसै ॥  
'भगवत' ते नर अधम लोभवस धरन्धर नाचे ।  
छडे गडे उनार मैन के गेरै सॉचे ॥

चलनी में गैया दुहै दोष दई को देहि ।  
हरि गुरु कही न मानही कियौ आपनौ लेहि ॥  
कियौ आपनौ लेहि नहीं यह इस्कर इच्छा ।  
देस, काल, प्रारब्ध, देव कोउ करहि न रच्छा ॥  
मूरख मरकड मूठ कीर हठि तजै न नलनी ।  
कह 'भगवत' कहा करै भाग भौंडे कौं चलनी ॥

गेही संग्रह परिहरै संग्रह करै विरक्त ।  
हरि गुरु द्रोही जानिये आग्या तैं वितिरिक्त ॥  
आग्या तैं वितिरिक्त होय जमदूत हथाले ।  
अष्टविंसति निय अधोमुख करि तहै घाले ॥  
'भगवतरसिक' अनन्य भजौ तुम स्याम सनेही ।  
संग दुहुन कौं तजौ वृत्ति विनु विरक्त गेही ॥

कुंजन तैं उठि प्रात गात जसुना मैं धोवै ।  
विधिवन करि दंडवत, विहारी कौं मुख जोवै ॥  
करै भावना बैठि सच्छ थल रहित उपाधां ।

धर-धर लेय प्रसाद, ल्लै जब भोजन साधा  
संग करै 'भगवतरसिक', कर करवा, गूढरि :  
बृंदावन विहरत फिरै, झुगल्लूप नैनन ।

पैसा पाणी साधु कौं परसि ल्लावै पाप  
विमुख करै गुरु इष्ट तैं, उपजावै संताप ।  
उपजावै संताप ग्यान, वैराग्य निगारै ।  
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर संगारै ।  
सब द्रोहिन मैं सिरै, भगत द्रोही नहि ऐस  
'भगवतरसिक' अनन्य, भूलि जिन परसौ पैस

जाकौं जैसी लखि परी तैसी गवै सोय ।  
धीरी भगवत मिलन की, निहच्य एक न होय ॥  
निहच्य एक न होय, कहैं सब पृथक हमारी ।  
सुती सुमृति भग्नौत, सार्वि गीतादिक भारी ॥  
भूपति सवनि समान, लखै निज परजा ताकौं ।  
जाको जैसौ भाव, सु भासै तैसी ताकौं ॥

वेषधारी हरि के उर सालै ।

परमारथ स्वपनै नहि जानै, पैसन ही कौं लालै ॥  
कवहुँक बकता है बनि बैठै, कथा भगवत गावै ।  
अर्थ अनर्थ कछू नहि भासै, पैसन ही कौं धावै ॥  
कवहुँक हरि मंदिर कौं सेवै, करै निरंतर वासा ।  
भाव भगति कौं लेस न जानै, पैसन ही की आसा ॥  
नाचै गावै, चित्र बनावै, करै काव्य चटकाली ।  
सॉच विना हरि हाथ न आवै, सब रहनी है ढीली ॥  
विना विवेक, विराग, भगति विनु, सत्य न एकी मानै ।  
'भगवत' विमुख कपड चतुराई, सो पालांडे जानै ॥

लझी जिन लाल की मुसक्यान ।

तिनहिं विसरी वेदविधि, जप, जोग, संज्ञम, ध्यान ॥  
नेम, ब्रत, आचार, पूजा, पाठ, गीता, गात ।  
रसिक भगवत दग दई अति, ऐचि कै मुख ग्यान ॥

### श्रीअनन्यअलीजी

जुगल भजन की हाट करि, ऐसी विधि व्यौहार ।  
रसिकन सौं सौदा बैसै, वरचा नित्यविहार ॥  
चित डाँड़ी पल्ला नयन, धेम छोरि सौं बानि ।

हियौ तराजू लेहु कर, तोल सूप मन गानि ॥  
टोटा कवहुँ न आय है, पूँजी बहै आगर ।  
लैहु दैहु सतसंग मिलि, गुन मुक्तनि निगार ॥

## श्रीविंशीअलीजी

संतन की संगति पुनीत जहाँ निस दिन,  
जमुना-जल न्हैहैं जस गैहैं दधि-दानी को ।  
बुगल विहारी को सुजस चय तापहारी,  
स्वदननि पान करौं रसिकन बानी को ॥  
'वंसीअली' संग रस रंग अब लहाँ कोऊ,  
मंगल को करन सरन राधा रानी को ।  
कुँवरि किसोरी ! मेरे आस एक रावरी ही,  
कृपा करि दीजै बास निज रजधानी को ॥  
इसौ उत्तम नर तन लहौ । भूल्यौ मंद विषय रस गहौ ॥  
गेह रजनि सोवत तैं जागि । श्रीहर्स-चरन-कसल अनुरागि ॥  
भु-प्रापतिको चहै उपाय । तो सतसंग करौं मन लाय ॥  
अव निधि तरन नाव सतसंगा । ताही सौं हिय राचहु रंगा ॥  
तातैं संत समागम कीजै । निश्चय मानि लाभ यह लीजै ॥

## श्रीकिशोरीअलीजी

मेरौ मन स्यामा-स्याम हरयौ री ।  
भूदु सुसकाय गाय मुरली मैं चेटक चतुर करयौ री ॥  
वा छवि तैं मन नैंक न निक्षत निसि दिन रहत अरथौ री ।  
'अलीकिशोरी' रूप निहरत परवस प्रान परयौ री ॥

## श्रीबैजू बावरा

जहाँ लग लगन लालन सौ  
तहाँ लग चित्त ललचाऊ ।  
कौन मंत्र मोहन पढ़ डारौं,  
अपने हरि बस कर पाऊ ॥  
हा हा करौं हरि को कैसे देखौं,  
साँखरी सूरत हृदय ल्याऊ ।  
'बैजू बावरे' शब्दरी कृपा तैं,  
तब मन भन बार बलि बलि जाऊ ॥

## श्रीतानसेनजी

सुमिरन हरि को करौं रे,  
जासौं होवै भव पार ।  
यही सीख जान मान कहौं है,  
पुराण में भगवान आप करतार ॥  
दीनबंधु दयासिंधु पतितपावन  
आनंदकंद तोसे कहत हौं पुकार ।  
'तानसेन' कहै निरमल सदा  
लहिये नर देही नहीं बार बार ॥



## संत जंभनाथ ( जाम्भोजी )

( 'विश्वोर्म' सम्प्रदायके प्रवर्तक, राजस्थानके संत, आविर्भाव—वि० सं० १५०८ मार्दी दर्दी ८, जन्म-स्थान—पीपासर गाँव ( नागोर, जोधपुर ), जाति—पवाँ राज्यूत, शरीरान्त—वि० सं० १५९३ मार्गशीर्ष कू० ९, उत्तर-८५ वर्ष, पिताका नाम—लोहटजी, माताका नाम—हाँसादेवी )

यही अपार सरूप तु लहरी ईर्द धनेस ।  
मित्र बहन और अरजमा, अदिती पुत्र दिनेस ॥  
तु सरबग्य अनादि अज, रवि सम करत प्रकास ।

एक पाद में सकल जरा, निसदिन करत निवास ॥  
इस अपार संसार में, किस विष उत्तरूँ पार ।  
अनन्य भगत मैं आप का, निश्चल लेहु उचर ॥

## श्रीपीपाजी

( ये पंद्रहवीं शतीमें गागरौनगढ़के रोजा थे, स्वामी श्रीरामानन्दजीके शिष्य, परम गामवत्त थे )

पौदो स्वामी द्वारका रनछोर ॥  
द्वारका मैं शालर बाजै, संतन की धनघोर ।  
रुक्मिनी के रंगमहल मैं, दीपक लाल करोर ॥

ध पौद्याँ थारा सेवक पौद्यै, पौद्यै पुरी का सारा लोग  
दान पीपी सरन यारी, गावै दौनैं कर जोर ॥

## भगवन्नामका प्रभाव

### अजामिल

कभी पर्मात्रमा था अजामिल । माता-पिताका भक्ति, सदाचारी धोक्षिण ब्राह्मणयुवक—किंतु सज्जनका प्रभाव बहु प्रबल होता है । एक दिन अक्षसात् एक कदाचारिणी खींचो एक शूष्टके साथ देखा उसने निर्लंज चेष्टा करते और सुम वासनाएँ जग्रत् हो गयी । वह गया अजामिल पापके प्रयाहमें ।

माता-पिता छुटे, साथी पढ़ी कृटी, घर छुटा । वर्ष और सदाचारकी वास व्यर्थ है । वही कदाचारिणी खींचामिलकी प्रेयरी थीं । उसे संतुष्ट करनेके लिये न्याय-अन्याय सब भूल गया अजामिल । वासना जब उद्दीप्त होती है—उसके प्रबलमें परित पामर प्राणी कीन-से पाप नहीं करता ।

समय बीतता गया । बुद्धपा आया । उस बुद्ध कदाचारिणीसे कई संतानें हुईं अजामिलकी । बुद्धीमें काम प्रबल रह नहीं सकता । उस समय मोह प्रबल रहता है । अपने छोटे बच्चे नारायणमें अजामिलका अन्यथिक मोह था ।

भूत्युका समय आया । यमराजके भयङ्कर दूत हाथोंमें पाप लिये आ पहुँचे । अजामिलने उन्हें देखा । यमराज याही प्राणी यमदूतोंके देखकर काँप उठा । पास खेलते अपने छोटे पुत्रोंके उसने कात्तर खरमें पुकारा—‘नारायण ! नारायण !’

‘नारायण !’ भगवान् नारायणके सर्वत्र धूमनेवाले दूतोंने वह पुकार सुनी । सर्वज्ञके समर्थ पर्षदोंसे प्रमाद नहीं होता । वे जान चुके थे कि कोइ भी उनके खायीको नहीं पुकार रहा है, लेकिन किसी प्रकार एक मरणासन्ध जीव उनके स्वामीका नाम तो ले रहा है । दौड़े वे दिव्य पार्षद ।

शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा सज्ज आदि आयुधोंसे सुसज्जित कमलोचन भगवान् नारायणके वे परम भनोहर दूत—यमदूतोंके भाष्य उन्होंने ब्रह्मात् तोड़ फेंके । भगव यमदूत उनके द्वाया ताहित होकर ।

व्यर्थ भी यमदूतोंकी यमराजके यहाँ पुकार । उन महाभागवत् धर्मराजने उत्तोंको यही कहा—जो किसी प्रकार भी भगवन्नाम ले, उसकी ओर सूखकर भी मत ज्ञाकरा । वह तो सर्वेष्व श्रीहरिके द्वाया सदा रक्षित है ।

X X X

### गणिका

वह एक गणिका थी । नाम या जीवन्ती । गणिका और

वर्ष—इनमें कहीं कोई सेव नहीं है यह आप जानते उसने केवल अपने विनोदके लिये एक तोता पाल लिय पिण्डियों बंद सोलेको वह पदाया बरती थी—मिठु । : सीताराम ? सीताराम ?

किसको काल कब आवेगा, कौन जानता है । रो तोतोंको पदा रही थी—सीताराम ! सीताराम ! लेकिन क्या पता था कि उसका ही ‘सीताराम सत्य’ होनेवाला है जीवनके क्षण पूरे हो गये थे । गणिकाको लेने यमदूत आते हैं । बैचारे यमदूतोंको यहाँ भी मुँहकी खानी एवं किसी भी बहाने वह गणिका ‘सीताराम’ कह रही थी न भगवान्नके पार्वत नाम-जापकरी रक्षामें कहीं प्रमाद कर सहै । यमदूतोंको लियेर पैर रखकर भागना पड़ा ।

X X X

### व्याध वालभीक

या तो वह ब्राह्मण-पुत्र; किंतु ब्राह्मणत्व कहाँ था उसमें डाकुओंके सज्जते भयङ्कर डाकू हो गया था वह । उसे नित मनुष्य भरो—कुछ ठिकाना नहीं ।

देवर्षि नारदको उसका उदार करना था । वे उ मार्त्तिर्ण निकले । किसी प्रकार वह दस्यु इसपर प्रस्तुत गया कि देवर्षिको बैधकर बरयालीसे पूछ जावे—कि उसके पापमें भी भगव देवा या नहीं ।

माता-पिता, खींचुत्र—सबने टका-सा जवाब दे दिय सब धनमें भासीदार थे, पापमें नहीं । दस्युके नेत्र खुल गए संतोष व्यर्थोंमें आ गिरा । देवर्षिको यह ऐसा शिष्य मि जो ‘पाप’ वह नाम भी नहीं बोल सकता था । ये नी नारदजीने कहीं हार मारी है जो यही मान जाते । उन्हें कहा—‘तुम भरो, यस जगे ।’

शीतासे भरो, भरा कहनेर ध्वनि ‘राम राम’ की जाती है । दस्यु जर्से लग गया—पूण्यतः लग गया । यि वर्ष—कुछ पता नहीं । उसके ऊपर दीमकोने थाँथी प ली । भगवन्नामके उल्टे लगने उसे परम पापम कर दिया सुषिकता द्रव्या स्वयं वहाँ आये । दीमकोनी बरमिक (शर्म दे लिकाली) उसे और आदिकवि होनेवा गोरे दिया । कभी दस्यु या—वह आदिकवि महर्षि वालभीक नहेगा! उल्टा नासु जपत जगु जाना । वालभीक भए बहु प्राप्त

अपार है भगवन्नामका प्रभाव ।

## मन्द करत जो करइ भलाई

### जगाई-मधाई-उदार

श्रीचैतन्यमहाप्रभुने नवद्वीपमें भगवन्नामके प्रसारका कार्य पिया था श्रीनित्यानन्दजी और हरिदासजीको। भर-भर जाकर ऐक व्यक्तिसे हरिनामकी विज्ञा माँगनी थी उन्हें।

उन दिनों नवद्वीपमें दो उद्धत पुष्प थे। उनका नाम जगान्नाथ और माधव था। किंतु जगाई-मधाई नामसे ही प्रसिद्ध थे। उनके आतङ्कसे भगवन् कौपता रहता था। शराब-नदियोंमें चूर वे कभी एक सुहलेमें अड़ा जाते, कभी दूसरे सुहलेमें। जुआ, अनाचार, हत्या—अकारण किसीको नेदयतापूर्वक पीटना, किसीको लट केना—उनके जीवनमें अत्याचार और पापको छोड़कर और कुछ था ही नहीं।

‘जो सबसे अधिक सिर है, वही सबसे अधिक दयाका पत्र है। वही सबसे पहले उठानेयोग्य है। भगवन्नाम-दानका वही प्रथम पत्र है।’ नित्यानन्दजीके विचारोंको अस्तीकार कोई कैसे करेगा। वे दयागम हरिदासजीके साथ उन मध्यम कूरोंको भगवन्नाम दान करने पदारे।

‘हरि बोलो। एक थार हरि बोलो।’ यही उनका संदेश था। मध्यके नदियोंमें चूर मधाई कुद्द हो उठा। उसने नित्यानन्दजीपर आघात किया। मस्तक फट राया, रक्तकी धारा चल पड़ी। वह फिर मारता किंतु उसके भाई जगाईने उसे रोक लिया।

आप मुझे एक मिश्ना दीजिये। इन्हें क्षमा कर दीजिये। इन्हें अपनाइये। इनको अपनी शरणमें लीजिये।

श्रीनित्यानन्दजीकी कृपाका फल था कि महाप्रभुने गङ्गाजलमें खड़े होकर जगाई-मधाईसे उनके पासेका दान व्रहण किया। वे महापातकी परम पवित्र भक्त बन गये।

X X X

### हरिदासजीकी कृपा

श्रीहरिदासजी जन्मसे यज्ञन थे। महाप्रभुके प्रकट होनेसे पूर्व वे अद्वैतचार्यके साक्षियके लाभकी दृष्टिरे शान्तिपुरुके समर्प ही कुलियामसें रहते थे। बंगालमें उन दिनों सुसलमान शासकोंका प्रसुत्व था। आये दिन उनके अत्याचार होते ही रहते थे।

एक सुसलमान काफिर हो जाय—हिंदुओंके भगवन्नका नाम जाय, वह कद्दर काजियोंको सहन नहीं हो सकता था। गोरई नामक एक काजीने स्थानीय शासकके यहाँ हरिदासजी-की शिकायत की। हरिदासजी दरबारमें बुलाये गये। काजी-की सम्पत्तिसे शासकने निर्णय किया—‘हरिदास या तो कुक्फ़ छोड़ दें या बाईस बाजारोंमें बैत मारते हुए उन्हें छुमाया जाय। बैत मारते-मारते उनके प्राण लिये, जायें।’

हरिदासजी बाँध दिये गये। उनकी पीठसे संदासङ्ग बैत पड़ने लगे। बल्लाद बैत मारते हुए उन्हें बाजारोंमें चुमाये दें। हरिदासजीकी पीठकी चमड़ी स्थान-स्थानसे कट गयी। गर्भर रक्त बहने लगा। जल्लाद बैत मारता और कहता—‘हरिनाम छोड़ दे।’

हरिदासजी कहते—‘एक बैत और मारे, पर एक बार और हरिनाम तो लो।’

बैतोंकी मारसे जब वे मूँहित हो गये, उन्हें मृत समझकर लङ्घाजीमें फिकडा दिया बहाँके शासकने। एक काफिर जैसे सुसलमानको कब्रमें गढ़नेका सम्मान वह नहीं देना चाहता था।

हरिदासजी भरे तो थे नहीं। वे भरवती, भाषीरथीजी द्यासे किनारे लगे। चेताना आनेपर भगवन्नसे उन्होंने पदिली गार्थना की—‘काजी, शासक और बैत सारनेवालोंको छरना नाथ। बैतोंरे अजानी प्राणी हैं वे।’

## संत श्रीज्ञामदासजी

( २०० रथ पूर्व अबोदी ( मिठापुर जिला ) के निवासी )  
 कलि भल इन भरी अति, नहि लल अपर उपाह ।  
 एह रम्यति गुन लिखु भग, भजत उजलताह ॥  
 अभग उवासन राम के गुन गावत श्रुति लाधु ।  
 'शामदास' तजि जात तेहि, उर अंतर अवराधु ॥  
 नहि कलि परायार महै, परौ न पावत पर ।  
 'क्षम्य' राम गुन गान हैं, विनु प्रयास निस्तर ॥  
 कलि कानन अघ ओष अति, विकट कुमृतह समानु ।  
 हर जउ अनल लहै हतै, आन विराग कुपानु ॥  
 'ज्ञाम' राम मुमिरन विना, देह न आवै काम ।  
 इतै उतै सुख कतहूँ नहि, जया कृपिन कर दाम ॥  
 राम भजन तै काम सब, उभय लोक आनंद ।  
 ततै भजु मन ! मूढ़ अव, छोड़ि सकल जग फंद ॥

## अवधवासी संत श्रीरामदासजी

दुर्लभ जन्म पुन्यफल पायौ वृथा जस्त अविवेकै ।  
 राज इदं सम सुर यह आसन, विन हरि भगति कहै किहि लेखै ॥  
 राजा सम कौ रस न विचारयै, जिहि रस अनरय ब्रीसर जाहै ।  
 जान अजान यथे हम बाहर, सोच असोच दिवस सन जाहै ॥  
 कहियत थान भचरियत थान कछु, समझ न परै अपर भाया ।  
 कह 'रामदास' उदास दास माहि, परिहर कोप करो जिय दाया ॥

## श्रीरसरङ्गमणिजी

अयोध्याधामके एक प्राचीन संत  
 ( प्रेषक—श्रीभञ्चू धर्मनाथदहायजी )

विष्णु सुरंतर राम के, विष्णु के अंतर राम ।  
 बहिरंतर रस राम के, व्यापक राम सुनाम ॥  
 रोमहि रोम स्मै सिवराम निर्वी रस राम स्वदेह में देखै ।  
 नाम सप्रेम जपौ मुखस्तैं, मुखसों मन तासु स्वरूप विसेषौ ॥  
 कानन से बहिरो होइ बाहर, अंतर नाम सुनाद परेषौ ॥  
 मनहूँ के परे परा बानी के पुरुष प्रभु,  
 पावन पतित हित वैखरी बसेरे हैं ।  
 लागुन अरूप गुन भूष डुरुगुन हर ॥  
 हर के जीवन जीव ज्याय घट घेरे हैं ॥

रे मन ! क्यौं न भजौ रघुवीर ।

जाहि भजत ब्रह्मादिक सुर नर, ध्यान धरत मुनि धरै ॥  
 साम वरन मृदु गात भनोहु भंजत जन की गी ।  
 लङ्घमन उहित सला सेंग लीहै, विचरत सर्जु तीर ॥  
 दुमक दुमक पग धरत धरनि पर, चंचल चित हो वीर ।  
 मंद मंद मुसकात सखन सौ, बोलत बचन गौमीर ।  
 पीत वरन दामिनि दुति निरत कर कमलन धनु तीर ।  
 'रामदास' रघुनाथ भजत बिन, धृग-धृग जन्म सरै ।

## श्रीसाकेतनिवासाचार्यजी ( श्रीटीलाजी )

'टीला' रघुवर चरण रजा,  
 सकल सुखन कौ हेतु ।  
 धूमकेतु अघ पुंज कौ,  
 भवसगर कौ सेतु ॥  
 बाघ बृहदन आदि दब,  
 व्याधि प्राणहर व्याध ।  
 'टीला' जीवन बन गहना  
 राम चरण आराध ॥  
 शरणगत चातक सदश, निशि दिन देरेत नाम ।  
 जिमि कपोत तिमि सर्व तजि, 'टीला' रक्षत राम ॥  
 राम नाम सुखधाम मतु करि श्रद्धा विश्वास ।  
 'टीला' का विश्वास पुनि, आवै निकरी ज्याय ॥

रवद में, सुरति में, स्वास में, सु लोचन में,

श्रवण समाने स्याम रस राम मेरे हैं ।

सीताराम बधु अबपु अनाम धाम,

अजपु भुजपु सीताराम मंत्र मेरे हैं ॥

हृषि मेरे नाम, संत सिद्धि मेरे राम,

ओ अनिश्वर राम, दानी मिष्टनिज काम हैं ॥

नैन मेरे राम, सुख चैन मेरे राम,

लैन दैन मेरे राम, योग चैन चैन धाम हैं ॥

मर्म मेरे राम शुभ कर्म मेरे राम,  
पर धर्म मेरे राम रसरंगमणि दाम है ।  
वेद मेरे राम तत्व भेद मेरे राम,  
औ अभेद सीताराम सरवस राम नाम है ॥

जप तथ तीरथ सुलभ हैं, सुलभ जोग बैराग ।  
दुर्लभ भक्ति अनन्यता, राम नाम अनुराग ॥  
राम रूप रत धाम रहि, लीला राम अनन्य ।  
राम नाम सुख मंत्र जप, कर रसरंग सो धन्य ॥  
चाहत नहि रसरंगमणि, चन्द्रमुखी सुत वित्त ।  
चाह यही प्रभु दीजिये, चाह न उपजै चित्त ॥  
भजन विगारी कामिनी, सभा विगारी कूर ।  
भक्ति विगारी लालची, केसर मिल गई धूर ॥

राम सुनाम विना, रसरंगमनी मुख जानी लज्जा मैं लज्जौं रे ।  
चातक छ्यौं धन रंक भजै धन, त्यौं प्रभु राम भज्जौं मैं भज्जौं रे ॥  
काक कुसंगति छोड़ि सुसंगति हंस सुवेष सज्जौं मैं सज्जौं रे ।  
जानकि जीवन राम को नाम कभू न तज्जौं न तज्जौं न तज्जौं रे ॥

नाम नाद भजि वाद तज्जि, चखि सपेम रसस्वाद ।  
धन्य धन्य रसरंगमणि, राम भक्त प्रह्लाद ॥

जय प्रेमा अनुरक्तिप्रदा प्रद परा सुमत्ती ।  
जय परमात्मा ब्रह्म जयति परतमा सुशक्ती ॥

जय नित्या, जय सत्य, जयति आनन्द प्रमोदा ।  
जय चिद्रूपा चित्स्वरूप दम्पती विनोदा ॥

जय जय श्रीरामप्रिया, श्रीसीताप्रिय जय ।  
जय श्रीजानकिकान्त, रामकान्ता करणामय ॥

नमो नमो श्रीराम, नौमि सिय पद अरविन्दा ।  
मुनि जन मन रसरंग भृग सेवित सामन्दा ॥

मिलनी के फल खाय भल, माने मातु समान ।  
त्रिभुवन मैं 'रसरंगमणि', अस को कृपानिधान ॥

हाय हाँयगे कब हिये, नयन नेह रससिधु ।  
देखेंगे 'रसरंगमणि', दस दिशि रघुवर बंधु ॥

राम आश तजि आन की, आश करै 'रसरंग' ।  
मन कुरंग रथि किरण जल, पियन चहत तजि गंग ॥

भवसागर मैं दुइ मँचर, कनक कामिनी संग ।  
वेरत मन वोहित गहै, राम चरण 'रसरंग' ॥

### श्रीरामप्रियाजी

तू न तजत, सय तोहि तजैगे ।  
जा हित जग जंजाल उठावत तो कहै छाँड़ि भजैगे ॥  
जा कहै करत मियार प्रान सम जो तोहि प्रान कहैगे ।  
सोऊ तो कहै मरयौ जानि कै देखत देह छैगे ॥

देह गेह अह नेह नाह तै नातो नहि निवहैगे ।  
जा बस है निज जनम गँधावत कोउ न संग रहैगे ।  
कोऊ सुख जम दुख विहीन नहिं, नहिं कोउ संग करैगे ।  
'रामप्रिया' विनु रामलला के भव भय कोउ न हरैगे ॥

### श्रीकाष्ठजिह्वा स्वामीजी

( काशनिवासी । संस्कृतके प्रकाण्ड विद्वान् । )

चीखि चीखि चसकन से राम-सुधा पीजिये ।  
रामचरित-मासर मैं रोम-रोम भीजिये ॥  
राम देस जय बढ़ाइ काहे को हीजिये ।  
पर दुयस्थन देखत ही आप सों पसीजिये ॥  
तोरि तारि खैचि खौचि लुति को नहिं गीजिये ।  
आमें रम बनो रहे वही अर्थ कीजिये ॥  
चहुत काल संतन के दोऊ चरन मीजिये ।  
देव दृष्टि पाय विमल जुग-जुग लौं लीजिये ॥

समझ बूझ जिय मैं बंदे, क्या करना है क्या करता है ।  
गुनका मालिक आपै बनता, अरु दोष राम पर धरता है ॥  
अपना धरम छोड़ि औरों के, ओछे धरम पकरता है ।  
अजय नसे की गफलत आई, साहिव को नहिं डरता है ॥  
जिनके सातिर जान भाल से, वहि-नहि के तू मरता है ।  
वे क्या तेरे काम पड़ैगे, उनका लहना भरता है ॥  
देव धरम चाहे सो कर ले, आवागमन न डरता है ।  
प्यारे केवल राम नाम के, तेरा मत्तलब सरता है ॥

## श्रीअजबदासजी

( श्लोक )

मेरि को गँवाइ कै जायगा यार ! तु,  
राम के भजन विनु मानु साँची ।  
मेर ही मेर अरु तोर ही तोर कर,  
भरम के फंद में मरत जाची ॥  
काल के गाल विचु जानु संसार को,  
मृढ ! जग जनम के कौन जाँची ।  
'अजबदास' जानकीनाथ के नेह विनु,  
जान अरु बुद्धि सब जानु काची ॥

हारि तू आपनी मानता है नहीं,  
और के बात की काह चाल ।  
नाम सौं चित्त तो लागता है नहीं,  
लोग देखावता फेरि माल ॥  
मान गुम्मान अज्ञान भूलान का,  
जगत मैं दीन रहु छोड़ि गाल ।  
'अजबदास' अंत मैं नाम ही ढाल है,  
काल जो मारिया आनि भाल ॥

## स्वामी श्रीरामचरणदासजी

जो मन राम सुधा रस पावै ।  
तौ कत सकल विषय मृगजल लखि, तृष्णित वृथा उठि धावै ॥  
अभय करौं सब विधि, श्रीमुख कहि, सकृत शरण कोइ आवै ।  
तौ कत विषय विवस सुर नर मुनि, तिन कहैं वादि भनावै ॥  
श्रीखुबीर-भक्ति चिन्तामणि, संसुति बैगि मिटावै ।  
तेहि तजि ज्ञान योग तप साधै, श्रम फल सब श्रुति गावै ॥  
अमित मदन छनि रामरूप रुचि, हृदय नयन लखि आवै ।  
तौ कत त्रिमुखन रूप जहाँ लौं, लखि शठ जन्म नसावै ॥  
जो श्रीराम-कृपा-प्रताप-गुण, श्रीगुरु शरण लखावै ।  
तौ कत डैर लेक यम कालहि, सकल राम दरसावै ॥

यह सियबर नवरत्न मनोहर, द्वादश रसहि जनावै ।  
'श्रीरामचरण' नित सुनत-पद्धत जो, सो रुद्धवरभन भावै ॥  
कबहुँक यह गुन मन धरहै ॥  
काम धाम धन देह सनेही, तहँ न नेह करहै ।  
जहँ लगि विषय-विलास राम विनु, विष सम लखि डरहै ॥  
मान-प्रमान मित्र-अरि सुख-दुख, सम करि आचरहै ।  
कूर वचन सुनि विषम अग्नि सम, जल है नहि जरहै ॥  
सर्वभूत हरिरूप कहत श्रुति, कबहुँ देखि परहै ।  
सम संतोष ज्ञान भाजन करि, राम चरित भरहै ॥  
परहित दया भक्ति रुद्धवर की, सकल काम ठरहै ।  
'रामचरण' श्रीराम कृपा ते, भवसागर तरहै ॥

## आचार्य श्रीगुरुदत्तदासजी

सत्यनामी महंत

( जन्म सं० १८७७, साकेतवास सं० १९३८ : स्थान—युखा देवीदास, जिला बाराबंकी । )

यहि जग राम रूप सब जानहु ॥  
एकै राम रमेव सबहि माँ अवर न दूसर मानहु ।  
दीन अधीन रहै सबही तें हरिजस सदा बखानहु ॥  
सुमिरत रहै नाम दुह अच्छर अनत डोरि नहिं तानहु ।  
जन 'गुरुदत्त' जगै अनुभौ उर जो प्रतीत मन आनहु ॥  
काम क्रोध उपजै नहीं, लोभ मोह अभिमान ।  
यहि प्राचन तें बचि गये, ते ठहरैं चौगान ॥

दस अपराध बचाय कै, भजै राम का नाम ।  
'गुरुदत्त' साँची कहै, पावै सुख विश्राम ।  
राम-नाम गुरु रहै, प्रगट न देय जनाय ।  
'गुरुदत्त' तेहि भक्त की, यार यार वलि जाय ॥  
भजै न सीताराम को, करै न पर उपकार ।  
'गुरुदत्त' तेहि भनुस तें, सदा रहै हुमियार ॥

## रामभक्त संत शाह जलालुद्दीन वसाली

( एक झाँकीके वर्णनका पथानुवाद )

गयुँ कात्तह मैं सरजू तीर । देखेउँ सुखद एक मतिधीर ॥  
चतुर मनोहर बीर निशंक । शशिमुख कोमल सारंग अंक ॥  
सुधरउठानि सुवासित गाता । वय किशोर गति-गज सुखदाता ॥  
चितवन चोख भ्रकुटि बरवाँके । नयन भरित मद मधुरस छाके ॥  
कबहुँ छवियुत भाव जनावै । कबहुँ कटाच्छ कला दरसावै ॥  
प्रेमिन कहूँ अस परै लखाई । मुख छवि वैदिक धर्म सुहाई ॥

मेचक कच्च कुंचित हुँधुरारे । जनु इसलाम धर्म वृति धरे ॥  
मम दिसि लखि भ्रू-यंक सँभारेड । छवि प्रसाद जनु देनहँकारेड ॥  
चकित थकित चित भयउ अचेता । सुध-बुध विसरी धर्मक स्त्रेता ॥  
नहिं जानौं तिहि छिन मोहि जोही । को संदेश जनायउ मोही ॥  
प्रियतम प्रभु तजि आन जनि देखिय हिय की चलनी । जो देखिय भतिमान ! तासु प्रकाशहि जानिये ॥

## शिवभक्ता लल्लेश्वरीजी

( जन्म सन् १३४३ या १३४७, स्थान काशीन )

‘लोग मुझे गाली दें या दुःखदायी बचन कहें; जो जिसको अच्छा ल्यो सो कहे, करे; कोई फूलोंसे मेरी पूजा करे तो किया करे, मैं विमल न दुःख मानूँ, न सुख । कोई मुझे हजार गाली दे—यदि मैं शंकरजीकी भक्ता हूँ तो मेरे मनमें खेद न होगा । दर्पणपर श्वासका मल लगानेसे भला, उसका क्या किंगड़ेगा ।’

‘मन गदहा है, उसको सदा बद्धमें रखना चाहिये;

नहीं तो, वह पड़ोसीकी केसरकी क्यारी ही चौपट कर देगा ।’

‘सर्वव्यापीकी खोज हो ही किस तरह सकती है । वह सर्वत्र है । शिवने कुङ्ग-कुञ्जमें जाल फैलाकर जीवोंको उलझा रखता है, वह तो आत्मामें ही है । उसकी खोज बाहर नहीं—भीतर हो सकती है । शिव ही मातारूपमें दूध पिलाता है, भावारूप धारणकर विलासकी अनुभूति कराता है, मायारूपसे जीवको मोहित करता है । इस महामायावी शिवका ज्ञान सद्गुर ही करा सकते हैं ।’

## भक्त नरसी मेहता

( गुजरातके महान् कृष्णभक्त, जन्म वि० सं० १७४० के लगभग काठियावाड़ प्रान्तके जूनागढ़ शहरमें, जाति—बड़शाहरा, कुल—नागरनाथाण, पिताका नाम कृष्णदामोदर, भाताका नाम लक्ष्मीगौरी । आपके शरीरान्त-समयकी निश्चित तिथिका पता नहीं चलता । )

बैण्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाएं रे ।  
परदुखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आएं रे ॥  
सकल लोक माँ सहुने बंदे, निंदा न करे केनी रे ।  
बाच काढ मन निश्चल राखे, धन-धन जननी तेनी रे ॥  
समदृष्टि ने तृणा-त्यागी, परस्ती जेने मात रे ।  
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नब ज्ञाले हाथ रे ॥  
मोह माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्यजेना भनमाँरे ।  
रामनाम सुं ताळी लागी, सकल तीरथ तेना तनमाँरे ॥  
यणलोभी ने कपट रहत छे, काम कोध निवार्या रे ।  
भगे नरसीयो तेनुं दरसन करताँ, कुङ्ग एकोतेर तार्था रे ॥

भूतल भक्ति पदारथ मोड़, ब्रह्मलोकमाँ नाहीं रे ।  
पुण्य करी अमरपुरि पाम्या, अन्ते चौरासी माहीं रे ॥  
हरिना जन तो मुक्ति न माँगे, माँगे जनमोजनम अवतार रे ।  
नित सेवा नित कीर्तन ओच्छव, निरद्वा नंदकुमार रे ॥  
भरतखंड भूतलमाँ जनमी, जेणे गोविंदना सुण गाया रे ।  
धन-धन रे एनाँ मातपिता ने, सफल करी एणे काया रे ॥  
धन बृंदावन धन ए लीला, धन ए ब्रजनाँ वासी रे ।  
अष्ट महासिद्धि अँगणिये ऊमी, मुक्ति छे एसनी दासी रे ॥  
ए रसनो स्वाद शंकर जाए, के जाणे शुक जोसी रे ।  
कैइ एक जाणे बजनी रे गोदी, भगे नरसीयो भोगी रे ॥

नागायणनुं नामज लेताँ वारे तेने तजिये रे ।  
 मगमा वाचा कर्मणा करीने, लक्ष्मीवरने भजिये रे ॥  
 कुलने तजिये कुटुंबने तजिये, तजिये मा ने वाप रे ।  
 भगिनी मुत दाराने तजिये, जेम तजे कंचुकी सौप रे ॥  
 प्रथम पिता प्रहारे तजियो, नव तजियुं हरिनुं नाम रे ।  
 भरत शत्रुघ्ने तजी अरेता, नव तजिया श्रीराम रे ॥  
 श्रूपिणी ये श्रीहरि काजे, तजिया निज भरथार रे ।  
 तेमाँ तेनुं कंश्ये न गयुं, पामी पदारथ चार रे ॥  
 मज धनिता विष्णुने काजे, सर्व तजीने चाली रे ।  
 भणे नरसेंयो वृद्धावनमाँ, मोहन साथे माली रे ॥

अखिल ब्रह्मांडमाँ एक दुः श्रीहरि, जूजवे रूपे अनंत भासे ।  
 देहमाँ देव तुं तेजमाँ तत्त्व तुं, शूद्धमाँ शब्द थह वेद वासे ॥  
 पक्ष तुं, पाणी तुं, भूमि तुं भूषण, वृक्ष थह पूली रहो आकाशे ।  
 विविध रचना करी अनेक रस लावीने,

शिव थकी जीव थयो एज आओ ॥

वेद तो एम वदे श्रुति-स्मृति साख दे,

कनक कुण्डल विषे भेद न्होये ।

धाट घडआपछी नामरूप जूजवाँ, अंते तो हेमतुं हेम होये ॥  
 वृक्षमाँ बीज तुं बीजमाँ वृक्ष तुं, जोँ पटंतरो ए ज पासे ।  
 भणे नरसेंयो ए मन लणी शोधना,

प्रीत कहं प्रेमथी प्रगट थाओ ॥

ध्यान धर हरितर्णु अल्पमति आलसु,  
 जे थकी जन्मनाँ दुःख जाये ।

अबर धंधो कर्ये अरथ काहै नव सरे,

माया देखाउडने मूल्यु व्हाये ॥

सकल कल्याण श्रीकृष्णना चरणमाँ,

शरण आये सुख पार न्होये ।

अबर वेपार तुं मेल मिथ्या करी,

कृष्णतुं नाम तुं राख म्होये ॥

पटक माया परी अटक चरणे हरी,

बटकमाँ वात सुणताँ ज साची ।

आशतुं भचन आकाश सूधी रन्युं,

मूढ ! ये मूढथी भीत काची ॥

सरस गुण हरितणा जे जनो अनुसर्या,

ते तणा सुजश तो जगत वोळे ।

नरसेंया रंकने प्रीत प्रभु शुं धणी,

अबर वेपार नहि भजन तोळे ॥

संसारनो भय निकट न आवे,  
 श्रीकृष्ण गोदिंद गोपाळ भाताँ ।  
 उगायों परीक्षित श्रवणे सुणताँ,  
 ताल वेणा विष्णुना गुण गाताँ ॥  
 बालक ध्रुव दृढ भक्त जाणी,  
 अविचल पदवी आपी ।  
 असुर प्रहादने उगारी लीधो,  
 जनम जनमनी जडता कापी ॥  
 देवना देव तुं कृष्ण आदिं देवा,  
 ताहैं नाम लेताँ अमेपद दाता ।  
 ते तारा नामने नरसेंयो नित्य जोऎ,  
 सारकर सारकर विश्वरूपाता ॥

समर ने श्रीहरि, मेल ममता परी,  
 जोने विचारी ने मूळ तालै ।  
 तुं अल्या कोण ने कोने बलगी रहो,  
 बगर समझे कहे मारूँ माहै ॥ देक  
 देह तारी नथी, जो तुं जुगते करी,  
 राखताँ नव रहे निश्चे जाये ।  
 देह सर्वध तत्त्वे, नवतवा वहु थयो,  
 पुत्र कलज परिवर व्हाये ॥  
 धन तणुं ध्यान तुं, अहोनिश आदरे,  
 ए ज तारे अंतराय मोटी ।  
 पासे छे पितु अल्या, तेने नव परिक्षियो,  
 हाथ थी वाजी गई थयो रे खोटी ॥  
 भरनिद्रा भर्यो रुधी धेर्यो धणो,  
 संतना शब्द सुणी काँ न जागे ?  
 न जागताँ नरसेंया लाज क्षे अति धणी,  
 जनमो जनम तारी खाँत भागे ॥

वारी जाऊँ रे सुंदर स्याम, तारा लटकाने ॥ देक ॥  
 लटके रखुवर रूप धरीने चचन पितानाँ पाढ्या रे ।  
 लटके जइ रणे रावण रोल्यो, लटके सीता बाल्या रे ॥ तागा ॥  
 लटके गिरि गोवर्धन तोल्यो, लटके वायो वंदा रे ।  
 लटके जइ दावानल पीधो, लटके मायो कंस रे ॥ तागा ॥  
 लटके गौओ गोकुलमाँ चारी, लटके पलवर वाली रे ।  
 लटके जइ जमुनामाँ पेठा, लटके नायो काली रे ॥ तागा ॥  
 लटके वामन रूप धरीने, जान्या बलीन दार रे ।  
 ब्रह्म झगलाँ पूर्वीने काजे, वलि चाँप्यो पाताल रे ॥ तागा ॥

एवाँ लटका छे घण्ठे, लटकाँ लाख करोड़े ।  
तैयांना स्वामी संगे रमताँ, हीडुं मोडामोड रे ॥ तारा ॥

गवजनने विरोध न कोइसुं,  
जेना कृष्णचरणे चित्त रहा रे ।  
वा दावा सर्वे काढ्या,  
शत्रु हता ते मित्र शया रे ॥ टेक ॥

ण उपसी ने जगथी उदासी,  
फौंसी ते जमनी कापी रे ।  
पावर जंगम ठाम न ठालो,  
सधले देखे कृष्ण व्यापी रे ॥ वैष्णव ॥

ताम के क्रोध व्यापे नहि क्यारे,  
त्रिविध ताप जेना टलिया रे ।  
ते वैष्णवना दर्शन करिये,  
जेना जाने ते वासनिक गलिया रे ॥ वैष्णव ॥

निस्पृही ने निर्मल मति बढ़ी,  
कनक कमिनिना त्थागी रे ।  
श्रीमुखबचनो श्रवणे सुणताँ,  
ते वैष्णव बड़भागी रे ॥ वैष्णव ॥

एवा मले तो भवदुःख टले,  
जेनाँ सुधा समान बचन रे ।  
नरसेयना स्वामीने निशदिन बहाल,  
एवा ते वैष्णवजन रे ॥ वैष्णव ॥

संतो हमे रे वेवारिया श्रीरामनामना ।  
वेपारी आवे छे वधा गाम गामना ॥ टेक ॥

हमारं वसाणुं साधु सऊको ने भावे ।  
अदरे वरण जेने हो रवाने आवे ॥ संतो ॥

हमारं वसाणुं काल दुकाले न खँटे ।  
जेने रजा न दंडे, जेने चोर ना खँटे ॥ संतो ॥

लाल विनाना लेल्या नहिं ने पार विनानी पूँजी ।  
होखुं होय तो होरी लेजो, कस्तुरी छे मौही ॥ संतो ॥

राम-नाम धन हमारे, वाजे ने गाजे ।  
छापन ऊपर भेर भेरि, भूँगल वाजे ॥ संतो ॥

आवरो नै खातावहीमां, लश्मीवरनुं नाम ।  
चीठीमाँ चतुरभुज लविया, नरसेयानुं काम ॥ संतो ॥

वैष्णवजनने विषयी उल्लुं,  
हल्दुं मौहीयी मन रे ।  
इत्रिय कोई अपवाद करे नहीं,  
ते कहिये वैष्णवजन रे ॥ टेक ॥

कृष्ण-कृष्ण कहेताँ कण्ठज सूके,  
तो ऐ न मूके निजनाम रे ।  
श्रासोश्वासे समरे श्रीहरि,  
मन न व्यापे काम रे ॥ वैष्णव ॥

अंतर-वृत्ति अखंड रखे हरिसुं,  
धरे कृष्णनुं स्थान रे ।  
ब्रजवासीनी लीला उपासे,  
बीजुं सुणे नहि काम रे ॥ वैष्णव ॥

जगमुं तोडे ने जोडे प्रभुसुं,  
जगमुं जोडे प्रभुसुं त्रुटी रे ।  
ते ने कोई वैष्णव नव कहेशो,  
जसङ्ग लई जाशे कुटी रे ॥ वैष्णव ॥

कृष्ण विना कोई अन्य न देखे,  
जेनी वृत्ति छे कृष्णाकार रे ।  
वैष्णव काहावे ने विषय न जावे, ते ने  
बार बार धिक्कार रे ॥ वैष्णव ॥

वैष्णवने तो बहुभ लागशे,  
कुडियाने लागशे काचुं रे ।  
नरसेयना स्वामीने लम्फट नहि  
गमे, शोभशे साचुं रे ॥ वैष्णव ॥

कृष्ण कहो कृष्ण कहो, आ अवसर छे केवानुं ।  
पाणीतो सर्वे वरसी जादो, राम-नाम छे रेवानुं ॥ टेक ॥

रावण सरखा झट चाल्या, अंतकालनी ओँटीमाँ ।  
पलकबारसाँ पकड़ी लीधा, जाणो जमनी धाँटीमाँ ॥ कृष्ण ॥

ल्येसरी लाखो ज लुटावा, काले ते नाख्या कृटीने ।  
कोडपतीनुं जोर न चाल्युं, ते नर गया उठाने ॥ कृष्ण ॥

ए कहेवानुं सैने कहिये, निशदिन ताली लागी रे ।  
कहे नरसेयो भजताँ प्रभुने, भवनी भावट भागी रे ॥ कृष्ण ॥

हरि हरि रटण कर, कठण कलिकालमाँ,  
दाम वेसे नहीं काम सरसे ।  
भक्त आधीन छे द्यामसुन्दर सदा,  
ते तारां कारज सिद्ध करजे ॥ टेक ॥

अल्प सुख लारे शुं, मूढ़ फूल्यो फरे,  
शीशपर काल रहो दंत करडे ।  
पामर पलकनी, खवर तुजने नहीं,  
मूढ़ शुं जोइ ने मैछ मरडे ॥ इरि ॥

प्रीट पायं करी, दुष्टि पाढ़ी करी,  
परदरी थड़ शुं ढाले वलम्यो ।

इयने ईर्षा के नहीं जीवपर,  
आपणे अवगुणे रखो रे अद्गो ॥ हरिं ॥

परपंच पदहरो, सार हृदिये धरो,  
उच्चरो हरि मुखे अचल वाणी ।  
नरसैया हरितणी भक्ति भूलीश माँ,  
भक्ति विना बीजुं धूलधाणी ॥ हरिं ॥

## संत प्रीतमजी

हरिनो मारण छे शूरानो, नहिं कायरनुं काम जोने ।  
परथग पहेलुं मस्तक मूकी, बलती लेखुं नाम जोने ॥ श्रु०  
सुत वित दररा शीश समरपे, ते पासे रस पीवा जोने ।  
सिंधु गध्ये मोती छेवा मॉहीं पड़था मरजीवा जोने ॥  
मरण धाँगमे ते भेरे मूठी, दिलनी दुर्घा बामे जोने ।  
तीरे उभा ज्ञेए तमाशो, ते कोडी नव पामे जोने ॥

प्रेमपंथ पावकनी ज्वाळा, भाली पाछा भागे जोने ।  
मांही पड़या ते महासुख माणे, देखनारा दाझे जोने ।  
माथा साटे मौंधी वस्तु, सॉँडवी नहि स्हेल जोने ।  
महापद पाम्था ते मरजीवा, मूकी मननो मेल जोने ॥  
राम अमलमाँ राता माता पूरा प्रेमी परखे जोने ।  
प्रीतमना स्वामीनी लीला ते रजनीदंन नरखे जोने ॥

## प्रेमदिवानी मीराँ

(जन्म—वि० सं० १५५८-५९ के लगभग। जन्मस्थान मारवाड़का कुड़की नामक गाँव। पिताका नाम—श्रीरत्नसिंहजी। रामैर्।  
देहावसान—मनुमानतः वि० सं० १६३०।)

### प्रार्थना

अब तो निभायाँ सैरेगी,  
बाँह गहे की लाज ।  
समरथ सरण तुम्हारी सहयाँ,  
सरब सुधारण काज ॥  
भवसागर संसार अपरबल,  
जा में तुम हौं इयाज ।

निरधाराँ आधार जगत गुरु, तुम बिन होय अकाज ॥  
जुग जुग भीर हरी भगतन की, दीनी मोक्ष समाज ।  
मीरा सरण गही चरणन की, लाज रखो महाराज ॥

मने चाकर राखो जी लाल मने, चाकर राखो जी ॥  
चाकर रहस्य बाग ल्यास्य, नित उठ दरसण पास्य ॥  
बिंद्रावन की कुंजगलिन में तेरी लीला गास्य ॥  
चाकरी में दरसण पाऊँ, सुमिरण पाऊँ खरची ।  
भाव भगति जागरी पाऊँ, तीनूँ बाताँ सरसी ॥  
मोर मुगट पीतांबर सौहै, गळ बैजंती माला ।  
बिंद्रावन में धेनु चरावै, मोहन मुरलीवाला ॥  
हरे हरे नित बज बनाऊँ, बिच बिच राखूँ क्यारी ।  
सॉँवरिया के दरसण पाऊँ, पहर कस्तूरी सारी ॥  
जोगी आया जोग करण कूँ, तप करणे संन्यासी ।



हरी भजन कूँ साधु आया, बिंद्रावन के बासी ॥  
मीराँ के प्रभु गहिर गँभीरा, सदा रहो जी धीरा ।  
आधी रात प्रभु दरसन दैहैं, प्रेम नदी के तीरा ॥

हरि ! तुम हरौ जन की भीर ।

द्रोपदी की लाज रखी तुम बद्धयो चीर ॥  
भगत कारण रूप नरहरि धन्यो आप रारी ।  
हिरण्यकुश मारि लीन्हो धरयो नाँहिन धीर ॥  
बूढतो गजराज राख्यो कियो बाहर नीर ।  
दासि मीराँ लाल गिरधर चरण कँबल पर चीर ॥

तुम सुजौ दयाल म्हारी अरजी ॥

भवसागर में वही जात हूँ काढो तो धाँरी गरजी ।  
इय संसार सगो नहिं कोई सॉचा सगा रुवरजी ॥  
मात पिता और कुदुम कवीलो सब मतल्य के गरजी ।  
मीराँ की प्रभु अरजी सुण ले चरण लगाओ धाँरी मरजी ॥

### सिखावन

राम नाम रस पीजै मनुओ, राम नाम रस पीजै ।  
तज कुसंग सदसंग वैठ नित, हरि चरना मुगि दीजै ।  
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ, वहा चित से दीजै ।  
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रँग मै भीजै ॥

रमहया गिन थो जिबड़ो दुख पावै ।

कहो कृष्ण धीर वैधावै ॥

जौ संसारं कुलुधि को भाँडे साध सँगति नहि भावै ।  
राम नाम की निंदा डौं करम ही करम कुमावै ॥  
सभ नाम बिन मुकुति न पावै किर चौरसी जावै ।  
साध सँगत मैं कवहूँ न जावै मूरख जनम सुमावै ।  
जन मीराँ नतगुर के सरणैं जीव परम पद पावै ॥  
नहि ऐसो जनम नारंवार ।

का जानै कबु पुन्य प्रगटे मानुसा अवतार ॥  
बढ़त छिन छिन घटत पल पल जात न लागे वार ।  
किरछ के ज्यों पात दूटे बहुरि न लगे धार ॥  
भौसागर अति जोर कहिये अर्णत ऊँही धार ।  
राम नाम का वाँध बैड़ा उत्तर परले पार ॥  
ख्यान नौसर मँडा चोहटे सुरत पासा सार ।  
या दुनिया मैं रक्षी बाजी जीत आवे हार ॥  
माधु भंत महंत ख्यानी चलत करत पुकार ।  
शासि मीराँ लाल गिरधर जीवणा दिन व्यार ॥

या विधि भक्ति कैसे होय ।

मन की मैल हिये से न लूटी; दियो तिलक सिर धोय ॥  
काम कूकर लोभ डोरी, बौधि मोहि चंडाल ।  
क्रोध कसाई रहत धट मैं कैसे मिलै गोपाल ॥  
विश्वार विष्पा लालची रे, ताहि भोजन देत ।  
दीन हीन है धुधा तरसं, राम नाम न लेत ॥  
आपहि आप पुजाय कैरे, फूल अँग न समात ।  
अपिमान टीला किये यहु, कहु जल कहाँ ठहरात ॥  
जो तेरे हिय अंतर की जायें; तासों कपट न बनै ।  
हिरदे हरि को नौव न आयें, मुख ते मणियाँ गणै ॥  
हरि हित मैं हेत कर, संसार आसा त्याग ।  
शासि मीराँ लाल गिरधर; सहज कर वैराग ॥

### प्रेमालाप

रसों मेरे नैनम मैं नैदलाल ।

मोहन भरत साँवर मरति नैना क्षे निकाल ।  
भर सुवारण मुख्यो राजत उर वैजंती माल ॥  
शद्रशयिता कंद तट मोभित नैपुर शब्द रसाल ।  
मीरा प्रभु भंतम सुखदारं भगत बठल गोपाल ॥

मेरि गिरधर रोग राती, नैयों मैं ॥

जनाँग नौला पहर मध्यो मैं शिरमिट खेलन जाती ।

ओहि द्विरमिट माँ मिल्यो साँवरो सोल मिली लत गाती ॥

जिनका पिया परदेस बसत है लिल लिल भेजै पाती ।  
मेरा पिया मेरे हीय ब्रसत है ना कहुँ आति न जाती ॥  
चंदा जायगा सूरज जायगा जायगी वरण अकासी ।  
पत्न पाणि दोतुँ ही जायेंगे अटल रहै अविमासी ॥  
सुरत निरत का दिवला सँजोले मनसा की कर दे वारी ।  
प्रेम हटी का तेल मँगा ले जग रहा दिन ते राती ॥  
सतगुर मिलिया साँसा भाग्या सैन बताई साँची ।  
ना घर तेज ना कर मेरा गावै मीरा दासी ॥

ऐसा पिया जाण न दीजै हो ॥

लंब सखियाँ मिलि राखियो, नैनाँ सुख लीजै हो ।  
स्वाम सखेनो साँवरो, मुख देखत जीजै हो ॥  
जिण जिण विधियाँ हरि मिलै, सोइ विधि कीजै हो ।  
चंदन कालो नाग ज्यूँ, लपटाइ रहीजै हो ॥  
चले सखी बहाँ जाइयै, वाको दरसण कीजै हो ।  
बाहु कौँधै भेल कै, तन लभि रहीजै हो ॥  
प्यालो आये जहर को चरणोदक लीजै हो ।  
मीराँ दासी बारणै, अपणी कर लीजै हो ॥

सखी म्हारो कानूँडो कल्जै की कोर ।

मोर मुगट पीतांवर सोहै कुदल की झकझोर ॥  
विद्रावन की कुंजगलिन मैं नाचत नंदकिसोर ।  
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कैबल नितचोर ॥

आली ! म्हाँने लागे विद्रावन नीको ।

घर घर तुलसी ठाकुर प्रूजा दरसण गोविंद जी को ॥  
निरमल नीर बहत जमना मैं भोजन दूध दही को ।  
रतन सिंधासण आप विराजै मुगट धरयो तुलसी को ।  
कुंजन कुंजन फिरत राधिका सबद सुणत मुख्ली को ।  
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर भजन विना नर फीको ॥

जागे बंसीधारे लखना जागो मेरे व्यारे ॥

जलनी बीती धोए भयो है घर घर खुले किशोरे ।  
गोधी दही मथत सुनियत है कैगना कै इनकरे ॥  
उठो लालजी ! भोर भयो है सुर नर ढाँहे इरे ।  
ग्वाल थाल सब करत मुलाहल जय जय सबद उचारे ॥  
माल्यन रोटी हाथ मैं लीनी गउबन के रखवारे ।  
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर मरण आयो कै तारे ॥

मर्याँ री ! लाज वैरण भई ।  
भी लाल गुपाल के तँग काहे नाहीं गई ॥  
उठिन मूर अमूर आयो नाजि रथ कहै नई ।  
रथ नदाय गुपाल ले गयो हाथ माँजत रही ॥  
उठिन शाती स्याम चिन्हुइत विरह तें तन तई ।  
मारि मीराँ लाल गिरधर विरह क्यों ना गई ॥

पायाण के धिन चार, होरी खेल मनारे ।  
जिन करताल प्यावज बाजै अणहट वी क्षणकार रे ॥  
निन मुर राग छत्तीसौ गावै रोम रोम रणकार रे ।  
मीर मैतोख वी केसर वोली प्रेम ग्रीत विकार रे ॥  
उडत गुलाल लाल भयो अंवर वरसत रंग अपार रे ।  
भट के सय पट खोल दिये हैं लोक लाज सब डार रे ॥  
होरी खेल पीव धर आये सोइ प्यारी पिय प्यार रे ।  
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कँवल वलिहार रे ॥

### दर्शनानन्द

ऐसा प्रभु जाण न दीजै हो ।  
तन मन धन करि बारणै हिरदै धर लीजै हो ॥  
आव सखी मुख देखिये नैपाँ रस पीजै हो ।  
जिण जिण विध रीझै हरी सोई विध कीजै हो ॥  
सुंदर स्याम सुहावणा मुख देख्याँ जीजै हो ।  
मीराँ के प्रभु रामजी वडमाणा रीझै हो ॥  
मेरै तो गिरधर गोपाल दूसरे न कोई ।  
जाके सिर मोर मुगट भेये पति सोई ॥  
छाँडि दई कुल की कानि कहा करिह कोई ।  
मन्तन ढिग वैट वैट लोक लाज सोई ॥  
अँसुवन जल सीच सीच प्रेम बेल बोई ।  
अब तो वेल कैल गई आणेंद कल होई ॥  
भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई ।  
दासि मीराँ लाल गिरधर, तारे अब मोही ॥

राणाजी, मैं तो साँवरे के रंग राची ।  
साजि सिंगार वाँधिंपग हुँधर लोक लाज तजि नाची ॥  
राहु कुमति लहु साधु की संगति म्मात रूप भई साँची ।  
गाय गाय हरि के सुण निस दिन काल ब्याल सो वाँची ॥  
उण ब्रिन सब जग खारो लगात और बत सब काँची ।  
मीराँ श्रीगिरधरन लाल सूँ भगति स्त्रीली जाँची ॥

पा हुँधर वाँध मीरा नाची रे ।  
मैं तो मेरे नारायण की आपह हो गई दासी रे ।

लोग कहै मीरा भई बावरी न्यात कहै कुञ्जनारीरे ॥  
विध का प्याला राणाजी भेज्या पीवस मीराँ हाँसी रे ।  
मीरा के प्रभु गिरधर नागर सहज मिले अविनासीरे ॥

मन रे परसि हरि के चरण ॥

सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविध ड्वाला हरण ।  
जिण चरण प्रहलद परसे, इंद्र पदवी धरण ॥  
जिण चरण ध्रुव अटल कनि, राखि अपनी शरण ।  
जिण चरण ब्रह्मांड मेंचो, नस्य सिखाँशी धरण ॥  
जिण चरण प्रसु परसि लीनि, तरी गोतम धरण ।  
जिण चरण गोवरधन धारयो, इंद्र को अव हरण ।  
दासि मीराँ लाल गिरधर, अगम तारण तरण ॥

या मोहन के मैं रूप लुभानी ।

सुंदरं बदन कमल दल लोचन बाँकी चितवन मैंद मुसकानी ॥  
जमना के नीरे तीरे धेन चरावै वंसी मैं गावै मीठी बानी ।  
तन मन धन गिरधर पर वारु चरण कँवल मीराँ लप्तानी ॥

माई री मैं तो लियो गोविंदो मोल ।

कोइ कहै छाने कोई कहै छुपकै लियो री वंजतो ढोल ।  
कोइ कहै मुँहधो कोई कहै सुँहधो लियो री तराजू तोल ।  
कोइ कहै कारो कोई कहै मोरो लियो री अमोहिक मोल ।  
कोइ कहै धर में कोइ कहै बन में राधा के संग किलोल ।  
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर आवत प्रेम के मोल ॥

नदनेंदन विलमाई बदरा ने प्रेरी माई ॥

इत बन लरजे उत धन गरजे, चमकत विज्ञु सवाई ।  
उमड़ दुमड़ चहुँदिस से आया, पवन चलै पुरवाई ॥  
दादुर मोर पीढ़ी बोले, कोयल सबद सुणाई ।  
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल चित लाई ॥

बड़े धर ताली लागी रे, म्हारे मनरी उणारथ भारीरे ॥  
छीलरिये म्हरो चित नहीं रे, डावरिये कुण जाय ।  
रंगा जमना सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाय मिलै दरियाय ॥  
हाल्याँ मोल्याँ सूँ काम नहीं रे, मील नहीं गिरदाय ।  
कामदारों सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाव करै दग्धाय ॥  
कान्च कथीर सूँ काम नहीं रे, लोहा चढ़े गिर भाय ॥  
सोना रूपा काम नहीं रे, महँर हीरों रो जीरा ॥  
भाग हमारे जागियो रे, मयो ममेंद सूँ गाय ॥  
अमृत प्याल लाँडि के, कुण पीवं कड़ी नीरे ॥

पीपा कुँ प्रभु परस्तो दीनहौ, दिया रे खजाना पूर ।  
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, धणी मिल्या छै हजूर ॥

होरी खेलत हैं गिरधारी ।

मुरली चंग बजत डफ न्यारो सँग जुवती ब्रजनारी ॥  
चंदन केसर छिरकत मोहन अपने हाथ विहारी ।  
भरि भरि मूढ़ गुलाल लाल चहुँ देत सबन पै ढारी ॥  
ठैल छवीले नवल कान्ह सँग स्यामा प्राण पिथारी ।  
गावत चारु धमार राग तहुँ दै दै कल करतारी ॥  
फाग जु खेलत रसिक साँवरो बाढ़ौ रस ब्रज भारी ।  
मीराँ कुँ प्रभु गिरधर मिल्या मोहन लाल विहारी ॥

### नाम-महिमा

मेरो मन रामहि राम रटै रे ॥

राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटै रे ।  
जनम जनम के खत जु पुराने, नामहि लेत फटै रे ॥  
कनक कटोरे इम्रत भरियो, पीवत कौन नटै रे ।  
मीराँ कहे प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि फटै रे ॥

माई म्हारे निरधन रो धन रा ।

खाय न खहै चोर न लै, बिपति पड़ौँ आवै काम ॥  
दिन दिन प्रीत सराई दूणी, सुरण आहूँ याम ।  
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल विसराम ॥

### निश्चय

राणा जी ए है तो गोविंद का गुण गास्याँ ।  
चरणमृत को नेम हमारे, नित उठ दरसण जास्याँ ॥  
हरि भंदिर में निरत करास्याँ, धूघरिया धमकास्याँ ।  
राम नाम का ज्ञान चलास्याँ, भवसागर तिर जास्याँ ॥  
यह संसार बाइ का कोँदा, ज्याँ संगत नहिं जास्याँ ।  
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, निरख निरख गुण गास्याँ ॥

मैं गिरधर के घर जाऊँ ।

गिरधर ग्हारो साँचो प्रीतम देखत रूप छुभाऊँ ॥  
ऐ पड़ै तवरी उठ जाऊँ भोर भएँ उठि आऊँ ।  
ऐ दिनों बाके सँग लेवै, ज्यूँ ल्यूँ ताहि रिक्षाऊँ ॥  
जो पहरावै सोई पहरै, जो दे सोई खाऊँ ।  
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उण यिन पछ न रहाऊँ ॥  
जहो देटावै तितडी वैरै, वैरै तो विक जाऊँ ।  
मीरो के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ ॥

नहिं भावै थाँरो देसइलो रँगरँडो ॥  
थाँरा देसाँ मैं राणा साध नहिं छै लोग बरै सब कुडो ।  
गहणा गाँठी राणा हम सब त्याग्या त्याग्यो कर रो चूँडो ॥  
काजल टीकी हम सब त्याग्या त्याग्यो छै बाँधन जूँडो ।  
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर वर पायो छै रुडो ॥  
सीसोयो रुड्यो तो म्हाँरो काँह कर लेसी ।  
म्हे तो गुण गोविंद का गास्याँ हो माई ॥  
राणो जी रुड्यो वाँरो देस रखासी ।  
हरि रुड्याँ कित जास्याँ हो माई ॥  
लोक लाज की काण न मानाँ ।  
निरभै निसाण धुरास्याँ हो माई ॥  
राम नाम की ज्ञान चलास्याँ ।  
भव सागर तिर जास्याँ हो माई ॥  
मीराँ सरण सबल गिरधर की ।  
चरण कँवल लपटास्याँ हो माई ॥

मैं गोविंद गुण गाणा ॥

राजा रुठै नगरी राखै हरि रुड्याँ कहै जाणा ।  
राणै भेज्या जहर पियाला इमरित कर पी जाणा ॥  
ढविया में भेज्या काळ भुजंगम साल्लिगराम कर जाणा ।  
मीराँ तो अब प्रेम दिवाँनी साँवलिया वर पाणा ॥

बरजी मैं काहु की नहिं रहूँ ।

झुनौरी सावी तुम सौं या मन की साँची बात कहूँ ॥  
साध सँगति करि हरि सुख लेझँ जग सूँ दूर रहूँ ।  
तन धन मेरो सब ही जावो भले मेरो सीस लहूँ ॥  
गन मेरो लागो सुमरण सेती सब का मैं बोल सहूँ ।  
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी सतगुर सरण गहूँ ॥

श्रीगिरधर आगे नाचूँगी ॥

नाच नाच पिब रसिक रिङ्गाऊँ प्रेमीजन कुँ जाचूँगी ।  
प्रेम प्रीत का बाँध धूंधरु सुरत की कछनी काढँगी ॥  
लोक लाज कुल की मरजादा या मैं एक न राखूँगी ।  
पिब के पलँगा जा पौहँगी मीराँ हरि रँग राचूँगी ॥

### गुरु-महिमा

पाथो जी मैं तो राम रतन धन पायौ ।

यस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुर किरण करि अधणायौ ॥  
जनम जनम की पूँजी पाई, जग मैं सबै खोबायौ ।  
खरचै नहिं कोइ ज्होर न लेवै, दिन दिन वधत मधायौ ॥

यत की नाम लेखिया सतगुर, भवसगर तरि आयौ।  
मीरों के प्रभ गिरधर नागर, हरग्य-हरग्य जम गायौ॥

आगी मांहि यम खुमारी हो॥

गमगम यमसे गंडा भीजि तन सारी हो।  
भर्हिदिग्न चमके दासणी गरजै धन भारी हो॥  
गतगुर भेद वताड्या खोली भरम किंवारी हो॥  
गव नट दीर्घ आतमा सब ही सूँ न्यारी हो॥  
दीपक जोकै ग्यान का नहूँ अगम अटारी हो॥  
मीरों धारी गम की इमरत विलहारी हो॥

### विरह

आली री मेरे नैनग वाण पड़ी॥  
निज चड़ी मेरे माधुरि मूरत, उर विच आन अड़ी॥  
गव की ठाढ़ी पंथ निहालूँ, अपने भवन खड़ी॥  
कैसे प्राण विथा विन राख्यूँ, जीवन मुर जड़ी॥  
मीराँ गिरधर हाथ विकानी, लोग कहैं त्रिगड़ी॥

लागी सोई जाणै कठण ल्याण दी पीर।

विष्पत पड़ीयाँ कोइ निकट न आवै सुख में सब को सीर॥  
चहर बाव कछु नहि दीतै रोम रोम दी पीर।  
जन मीराँ गिरधर के ऊपर सदकै करूँ सरीर॥

कोइ कहियो रे प्रभु आवन की।

आवन की मनभावन की॥ कोइ०॥  
आप न आवै लिख नहि मैजै बाँग पड़ी लल्जावन की।  
ए दोइ नैण कह्यौ नहि भानै, नदियाँ वहैं जैसे सावन की॥  
कहा करूँ कछु नहि बस मेरो पाँल नहीं उड़ जावन की।  
मीराँ कहैं प्रभु कव रे मिलोगे चेरि भद्र हूँ तेर दाँबन की॥

नातो नाम को जी म्हाँस्यूँ तनक न तोड़तो जाय॥  
पानौ ज्यूँ पीछी पड़ी रे, लोग कहैं पिंड रोग।  
छाने लाँघण मैं किया रे, रास मिलण के जोग॥  
बाबल बैद छुलाइआ रे, पकड़ दिखाई म्हारी बाँह॥  
मूरख बैद मरम नहि जाणे, कस्तक कछेजे माँह॥  
जा बैद्यू धर आपणे रे, म्हारो नाँव न लेय।  
मैं तो दाक्षी विरह की रे, तू काहे कूँ दास देय॥  
माँस गल छीजिया रे, करक रह्या गल आथि॥  
जाँगलियाँ री मूँदडी, म्हारे आवण लागी बाँयि॥  
रह रह पापी पपीहडा रे, पिंव को नाम न लेय।  
जे कोइ विरहण साम्हळे तो, पिंव कारण जिव देय॥

खिण मंदिर खिण आँगणे रे, खिण खिण ठाढ़ी होय।  
धायल ज्यूँ धूमूँ खड़ी, म्हारी विथा न बूझै कोय॥  
काह कलेजो मैं धरूँ रे, कागा तूँ ले जाय।  
ज्याँ देसाँ म्हारो पिव बसै रे, वे देलै तू लाय॥  
म्हारे नातो नाँव को रे, और न नातो कोय।  
मीराँ व्याकुल विरहणी रे, हरि दरसण दीजो पोय॥

सुणी हो मैं हरि आवन की अवाज।  
महल चढ़ चढ़ जोकै मेरी सजनी।  
कब आवे महाराज॥  
दाहुर मोर पमहया बोलै,  
कोयल मधुरे महज।  
उमँग्यो इंद्र चहूँ दिस बरसै,  
दामणि छोड़ी लाज॥  
धरती रूप नवा नवा धरिया,  
इंद्र मिलण के काज।  
मीराँ के प्रभु हरि अविनामी,  
ब्रेग मिलो सिरसाज॥

भज मन चरण कँवळ अविनासी॥

तेवाह दीसे धरण गगन विच, तेवाह सब उठ जासी॥  
कहा भयो तीरथ ब्रत कीन्हें, कहा लिये करवत कासी॥  
इस देही का गरब न करना, माटी मैं मिल जासी॥  
यो संसार चहर की बाजी, सौँझ पड़ीयौ उठ जासी॥  
कहा भयो है भगवाँ पहरयाँ, धर तज भये मन्यासी॥  
जोगी होय जुगत नहिं जाणी, उलटि जनम फिर आगी॥  
अरज करूँ अबला कर जोरें, स्नाम तुम्हारी दासी॥  
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी॥

माई म्हारी हरी न बूझी बात।

पिंड मैं से प्राण पापी, निकप क्यूँ नहि जात॥  
रैण अँधेरी, विरह धेरी, तारा गिणत निमि जात॥  
है कटारी कंठ चीलूँ, कलर्नी अपवात॥  
पाट न खोल्या, मुखाँ न बोल्या, सौँझ लगि परभात॥  
अबोलण मैं अवधि बीती, काहे की कुगलात॥  
सुपन मैं हरि दरस दीद्दो, मैं न जाप्यो रहि जात॥  
नैण म्हार उघड़ आया, रही मन पहरात॥  
आवण आवण होय रही री, नहि आवण की बाय॥  
मीराँ व्याकुल विरहणी रे, वाल उगे विलाय॥

वड़ी एक नहिं थाबड़े, तुम दरसण विन मोय ।  
तुम हो मेरे प्राण जी, का सूँ जीवण होय ॥  
धान न भावै नींद न आवै, विरह नतावै मोय ।  
धायल सी वूमत फिल्है रे, मेरो दरद न जाणै कोय ॥  
दिवस तो खाय गमाइयो रे, रैण गमाई सोय ।  
प्राण गमायो झूसताँ रे, नैण गमाया रोय ॥  
जो मैं ऐसी जाणती रे, प्रीत कियाँ दुख होय ।  
नगर ढैंदोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय ॥  
पंथ निहाँ डगर बुहाँ, ऊमी मरग जोय ।  
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख द्वैय ॥

दरस विन दूखण लागे नैण ।

जय के तुम त्रिकुरे प्रभु मेरे कबहुँ न पायो चेन ॥  
मरद सुणत मेरी छतियाँ कौपे मठि मठि बैन ।  
विरह कथा काँसू कहुँ लजनी वह गइ करवत ऐन ॥  
कल न परत पल हरि मग जावत भई छमानी रैन ।  
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे दुख मेटण सुख दैण ॥

प्रभु विन ना भरे माई ।

मेरा प्राण निकसा जात हरी विन ना भरे माई ॥  
मीन दादुर वनत जल में जल से उपजाई ।  
मीन जल से वाहर कीना तुरत मर जाई ॥  
काठ लकड़ी वन परी काठ बुन खाई ।  
ल अगन प्रभु डार आये भग्नम हो जाई ॥  
वन वन इँडत मैं किरी आली सुख नहिं पाई ।  
एक बेर दरसण दीजै सब कपर मिटि जाई ॥  
पात ज्यों पीरी परी अक विपत तन छाई ।  
दासि मीराँ लल गिरधर मिलियाँ सुख छाई ॥

हे री मैं तो दरद दिवाणी मेरा दरद न जाणै कोय ।  
पायल की गति धायल जाणै की जिण लाई होय ।

जौहरि की गति जौहरि जाणै की जिन जौहर होय ॥  
यल्ली ऊपरि सेज हमारी सीवण किस विध होय ।  
गगन मैंदल पै सेज पिया की किस विध मिलणा होय ॥  
दरद की मारी बन बन ढोँदूँ बैद मिलिया नहिं कोय ।  
मीराँ की प्रभु पीर मिटेगी जद बैद साँवळिया होय ॥

राम मिलण रो वणो उमावो नित उठ जोऊँ ब्राटडियाँ ।  
दरस विना मोहि कल्पु न सुहावै जक न पड़त है औँखडियाँ ॥  
तलकत तलकत वहु दिन वीता पड़ी विरह की पाशडियाँ ।  
अब तो बेसि दया करि सारिह मैं तो तुन्हारी दासडियाँ ॥  
नैण दुखी दरसण कूँ तरसै नाभि न बैठे सासडियाँ ।  
गति दिवस यह आरति मेरे कब हरि राखै पासडियाँ ॥  
लगी लगानि छूटण की नाहीं अब कर्णू कीजै अँटडियाँ ।  
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे पूरी मन की आसडियाँ ॥

गल्ली तो चारों बंद हुई, मैं हरि रूँमिलूँ कैसे जाय ॥  
ऊँची नीची राह रपडीली, पॉव नहीं ठहराय ।  
मोच सोच पग धरूँ जतन से, बार बार डिग जाय ॥  
ऊँचा नीचा महल पिया का, हमसे चढ़ा न जाय ।  
पिया दूर पैथ स्हौरा झीणा, सुरत झाकोला लाय ॥  
सीरा के प्रभु गिरधर नागर सतगुरु दई वताय ।  
जुगन जुगन से विछड़ी मीराँ घर मैं लीनी लाय ॥

राम मिलण के काज सखीमेरे आश्ति उर मैं जागी री ॥  
तलकत तलकत कल न परत है विरह वाण उर लागी री ।  
निस दिन पंथ निहाँ पिव को पलक न तल भर लागी री ॥  
जीव पीव मैं रँझूँ रात दिन दूजी सुध बुध भागी री ।  
विरह भवंग मेरो डसो है कलंजो लहरि हलाहल जागी री ॥  
मेरी आरति मेटि गुसाई आय मिलौ मोहि सागी री ।  
मीराँ व्याकुल अति उकलाणी पिशा की उमेंग अति लागी री ॥

## संत श्रीसिंगाजी

( जन्मकाल—संवत् १६२३ । शरीरान्त—संवत् १७१६ शावणशुक्ला पूर्णिमा । नीमाड—अनूपप्रदेश )

[ प्रेषक—श्रीमहेन्द्रकुमारजी जैन ]

आँतर तरणा निज नाम सुमरण करणा ।  
अनेक रंग की कणी सुंदरी माया देख सस्त मुलणा ।  
ने पदेमी फिर नहिं आवै,  
अरे वो लाव चौरासी फिरणा ॥ एक॥  
नहरे जनम का भन है तेरा माया मैं फंदणा ।

हरि को नाम सुष्णो नहीं सखण,  
अरे वो भगे धरी धरी भरणा ॥ एक॥  
माल धन का भर्या लाजाना पछ मैं होत विरणा ।  
उलटी पवन चले वर भीतर,  
अरे तो चनना नगे विरणा ॥

माझे भंत से अधिका रहेणा, हरे को सोने नहीं करणा ।  
कठे भींगा मुझे भाई साधू,  
अरे भाई रखो राम का सरणा ॥

संती खेड़ी हरिनाम की जा में सुकतो लाभ ॥  
पाप का पालवा कटावजो, काटी बाहर राल ।

र्थ की कासी रचावजो, सेती चोली धाय ॥  
वाम भास दो बैल है, सूरति रात लगाव ।

प्रेम पिरणो कर धरो, यान आर लगाव ॥  
बोहे रखवर जूष जो, सोहं सरतो लगाव ।

मूल मंत्र विज वोवजो, खेती लड्छुम धाय ॥  
भतको माँडो रेपजो, धर्म पैड़ी लगाव ।

ग्यान का गोला चलावजो, मुआउडि उड़ि जाय ॥  
दया की दावण राक्षो, बहुरि फेरा नहीं होय ।

कह सिंगा पहचान जो ले आवगमन नहिं होय ॥  
लेती खेड़ो रे हरिनाम की ॥

यन ! निर्भय कैसा सोवै, जर में तेज को है ?  
काम क्रोध ये अति वल जोधा,  
अरे नर ! विष का बीज क्यों बोवै ।

पाँच रिपू तेरे संग चलत हैं,  
अरे बो जड़मूल से खोवै ॥

राम नाम की ज्ञाज बणा ले, काठ भयो वहु साय ।  
कहै जन पंसिंगा सुण भाई साधू ! मन रंग उत्तरै पारा ॥

संग हमारा चंचला, कैसे हथों जो आवै ।  
काम क्रोध विष भरि रहा, तात दुख पावै ॥

मैं जाणूँ साई दूर है, तुशे पाथ नेजा ।  
रहणी रहि सामरय भई, मुझे धखवा तेग ॥

तुम सोना हम गहणा, मुझे लगा टाँका ।  
तुम बोलो हम देह धरि, बोले कै रंग भाला ॥

तुम चंदा हम चाँदणी, रहणी उजिला ।  
तुम लूज हम घामडा, सोइ चौंजा पुरिए ॥

तुम तो दर्याव हम मील हैं, विशासका रहणा ।  
देह गली मिडी भई, तेरा तूहि में समापा ॥

तुम तस्वर हम पंछीडा, बैठे एकहि ढाला ।  
चौंच भार फल भाँजिया, फल अमृत सारा ॥

तुम तो वृक्ष हम बेलडी, मूल से लगाना ।  
कह सिंगा पहचान ले, पहचान ठिकाणा ॥

निर्मुण ब्रह्म है न्यासा कोई रामजो समझणहारा ॥  
सोजत ब्रह्मा जनम सिरणा, मुनिजन पार न पाया ।  
सोजत सोजत शिवजी याके, वो ऐसा अपरंपरा ॥  
शेष सहस्र मूल रटे निरंतर, रैन दिवस एक सारा ।  
ऋषि, मुनि और सिद्ध चौरासी, वो तैतिस कोटि पञ्चिहारा ॥  
त्रिकुटि महल में अनहृद बाजे, होत शब्द झगड़ारा ।  
सुखमण सेज शूल में झूले, वो सोहं पुष्प हमारा ॥  
वेद कथे अरु कहे निर्वाणी, श्रोता कहो विजारा ।  
काम क्रोध मद-मत्तर ल्यागो, ये शूल सकल पाया ॥  
एक बूँद की रक्षा सारी, जाका सकल वसारा ।  
सिंगा जो भर नजरा देखा, बोही गुरु हमारा ॥

## स्वामी हंसराजजी

( जन्म—शाके १७२०, निर्वाण—शाके १७७७, पूर्वीश्रमनाम—नारायण, संन्यासी, समाधिस्थान आम फरंडा, हंसराजजी शंख )  
[ प्रेषक—श्रीनिवृलराव देशपांडे ]

### संत-स्तवन

संत वैराग्यके आगार हैं और ज्ञानके भंडार भी वे ही हैं । संत ही उपरामताके आश्रय-स्थान हैं और विश्रान्ति स्थंये वहाँ आकर विश्रान्ति पाती है । उदयात् हुए विना भगवान् सहखरदिमके समान, संत अस्त्विष्ट और असीम ज्ञानका प्रकाश करते हैं । संत ही अपने माता-पिता, भाई-बहन, आस-मित्र और खजन हैं; उनके विना वह, तप, ध्याना आदि सब उपफल हैं । संत हृदयका प्यार और ध्याना आदि सब उपफल हैं ।

आनन्दका समारोह हैं । वे अमृतसे बढ़कर गधुर रसी भी हैं । शान्ति और क्षमा मारे-मारे फिरते थे; उनको दीर दी मिलता था । किंतु जब वे संतोकी शरणमें आये तो गले कित्ती कन्याने सुरुरालसे आकर अपने पीहरों शान्ति दी कर ली । जान-बूझकर यदि कोई वापका आचरण दी तो तीर्थमें जाकर ज्ञान करनेसे वह शुद्ध नहीं होता । गत ही तपसे भी मुक्ति नहीं मिलती, प्रायश्चित्त भी व्यवहै । इन प्रलयकालकी अस्ति किस प्रकार एक भगवा भी विना उठे

हीं छोड़ती, उसी प्रकार पलमरमें, जन्मभरके ही नहीं, जन्म-  
न्मान्तरके पापोंको नष्ट करनेकी क्षमता संतोंमें होती है।  
जन, वैराग्य और बोधरूपी जल्से संतोंने ऐसे जीवोंको पावन  
पौर मुक्त किया, जिनका शिवत्व मायारूपी मलसे अशुद्ध और

अमङ्गलवन गया था। अधिक कथा कहा जाय, संतोंकी शरणमें  
पहुँचनेपर, उनके लिये वेद जिस वस्तुको प्रकाशमान करनेमें  
समर्थ नहीं होते, वह सब अनायास ही बोधगम्य हो जाता है।  
( स्वामीजीरनित 'आगमसार' अन्धे अनूदित )

## श्रीअग्रदासजी

( पथदारी श्रीकृष्णदासजी महात्माके शिष्य, स्थान गलता, जयपुर राज्य; स्थितिकाल—अनिश्चित )

[ ग्रेपक—पं० श्रीवशरंगदासजी वैष्णव 'विशारद' ]



गाढ़र आनी ऊन को  
बाँधी चरै कपास ॥  
बाँधी चरै कपास विमुख  
हरि लोनहरामी ॥  
प्रभु प्रापति की देह  
तुच्छ मुख कोई कामी ॥  
जटर जातना अधिक भजन वदि वाहर आयो ।  
लग्यो पवन संसर कृतम्भी नाथ भुलयो ॥  
नाकरी चोर हाजिर कवल 'अग्रदृष्टे पर आस ।  
गाढ़र आनी ऊन को बाँधी चरै कपास ॥  
  
मदा न फूले तोरई सदा न साँचम होय ॥  
मदा न साँचम होय, संतजन मदा न आवे ।  
मदा न रहे सुबुदि सदा गोविंद गुन गावे ॥  
मदा न पक्षी केलि करें इह तरुवर ऊपर ।  
मदा न स्याही रहै, सफेदी आवे भू पर ॥  
'अग्र' कहे हरि मिलन को तन मन डारो खोय ।  
गदा न फूले तोरई सदा न साँचम होय ॥

स्वर्ण वेदिका मध्य तहाँ एक रत्न सिंहासन ।  
सिंहासन के मध्य परम अति पदुम शुभासन ॥  
ताके मध्य सुदेश कर्णिका सुंदर राजै ।  
अति अद्भुत तहाँ तेज वहि सम उपमा ध्राजै ॥  
तामधि शोभित राम नील इन्दीवर ओभा ।  
अस्तिल रूप अंभोधि सजल घन तन की शोभा ॥  
ब्रोडश वर्ष किशोर राम नित सुंदर राजै ।  
राम रूप को निरस्ति विभाकर कोटिक लाजै ॥  
अस राजत रघुवीर धीर आसन सुखकारी ।  
रूप सच्चिदानंद वाम दिव्य जनककुमारी ॥  
जगत ईशा को रूप वरणि कह कवन अधिक मति ।  
कहाँ अल्प सद्योत भानु के निकट करै युति ॥  
कहाँ चातक की शक्ति अस्तिल जल चौंच समावै ।  
कछुक बुंद मुख परै ताहि ले आनंद पावै ॥

निवहो नेह जानकीवर से ।  
जानो नाहि और काहू से, नेह लौ दसरथ के कुँवर से ॥  
अष्ट सिद्धि नव निद्धि महाफल, नहीं काम ये चारों वर से ।  
'अग्रदास' की याही बानी, राम नाम नहिं छूटे यहि धर से ॥

## श्रीनाभादासजी ( नारायणदासजी )

मत्तमालके रचयिता

१. महान् भक्त-वादि और साधुसेवी, वाप्सी अस्तित्वकाल वि० सं० १६५७ के लगभग हैं। आपके गुरुका नाम अग्रदासजी है, जोपरी इसीने ही गाया था। जन्म-स्थान—सैलंगदेश, रामभ्रात्वलके आसपास ।)

भक्त भक्ति भगवंत् गुरु, चतुर नाम वपु एक ।  
इन के पद वंशन करौं, नासैं विधन अनेक ॥  
मो निततृति नित तहै रहौ, जहै नारायण पारपद ॥  
रिष्टदासीन, जय, विजय, प्रवल वल, मंगलकारी ।  
तंद, सुनंद, सुभद्र, भद्र, जग आश्रयहारी ॥

चंड, प्रचंड, विनीत, कुमुद, कुमुदाक्ष, करुणालय ।  
सील, सुसील, सुषेतु, भाव भक्तन प्रतिपालय ॥  
लंभीषति ग्रीगन प्रवीन, भजनानंद भक्तन सुहृद ।  
भो चितवृति नित तहै रहौ, जहै नारायण पारपद ॥

न ही मैला मन ही निरमल  
 मन खारा, तीखा मन मीठा,  
 ये मन सबन को देखे,  
 मन को किनहु न दीठा ॥  
 व मन में न कदू मन में,  
 साली मन मन ही में ब्रह्म  
 'महामति' मन को सोई देखे  
 जिन द्रष्टे खुद स्वसम ॥

( २ )

खन एक लेहु लटक मँजाय,  
 जनमत ही तेरो अँग शूठो;  
 देखत ही गिठ जाय ॥ ऐ  
 ग्रीव निसिप्र के नाटक में,  
 तूँ रहो क्यों बिलमाय ?  
 देखत ही चली जात बाजी,  
 भूलत क्यों प्रभु पाय ॥

न ही मैला मन ही निरमल  
 मन खारा, तीखा मन मीठा,  
 ये मन सबन को देखे,  
 मन को किनहु न दीठा ॥  
 व मन में न कछू मन में,  
 साली मन मन ही में ब्रह्म  
 'महामति' मन को सोई देखे  
 जिन द्वधे खुद खसम ॥

( २ )

खन एक लेहु लटक मँजाय,  
 जनमत ही तेरो अँग झड़ो;  
 देखत ही मिट जाय ॥ टेक ॥  
 जीव निमिप के नाटक में,  
 तू रहो क्यों विलमाय ?  
 देखत ही चली जात वाजी,  
 भूलत क्यों प्रभु पाय ॥

## संत बुल्लेशाह

( पिता का नाम—गद्दार जिलेका पंडित गांव। जन्म—संवत् १७३७, देहान्त कश्मीर में संवत् १८१० में हुआ। अंकों मादानी। )

अब तो जाग मुमाफ़र प्यारे । ऐन घटी लट्टके तब तरे ॥  
आयामीन गराई होरे, साथ तेयार मुसाफर तरे ।

अजे न सुणदा कृचनगारे ॥  
भर दे आज करण दी बेल, बहुरि न होसी आवण तेरा ।

साथ तेरा चल चल पुकारे ॥  
आयो अपने लाए दीझी, क्या सरथन क्या निर्धन बौरी ।

लाहा नाम तू लेहु संभरे ॥  
बुल्ले सहुदी पेरी परिये, गफलत छोड़ हिला कुछ करिये ।

मिरग जतन विन खेत उजारे ॥

इक बूझ कबन छप आया है ॥

इक नुकते में जो फेर पड़ा तब ऐन गैन का नाम धरा ।  
जब मुरसिद उकता दूर किया, तब ऐनो ऐन कहाया है ॥  
तुसी इलम किताँ पढ़दे हो कहे उलटे माने करदे हो ।  
बैमूजत्र ऐवे लड़दे हो, केहा उलटा बेद पढ़ाया है ॥

दुइ दूर करो कोइ सोर नहीं, हिंदु तुरक कोइ होर नहीं।  
सब साधु लखो कोइ चोर नहीं, घट-घट में आप समाया है।  
ना मैं मुह्ला ना मैं काजी, ना मैं सुन्नी ना मैं हाजी।  
'बुल्लेशाह' नाल लाई बाजी, अनहद सबद बजाया है।

माटी खुदी करे दी यार ।

माटी जोड़ा, माटी घोड़ा, माटी दा अत्तवार ॥

माटी माटीनूँ मारण लागी, माटी दे हथियार ॥

जिस माटी पर बहुती माटी, तिस माटी हंकार ॥

माटी बाग, बगीचा माटी, माटी दी गुलजार ॥

माटी माटीनूँ देखण आई, है माटी दी बहार ॥

हंस खेल फिर माटी होई, पौड़ी पौँछ पसार ॥

'बुल्लेशाह' बुझारत बूझी, लाइ सिरों माँ मार ॥

## शेख फरीद

( पिता का नाम—ख्याजा शेख मुहम्मद, निवासस्थान—अजेधन (पाकपट्टन), मृत्युकाल—संवत् १५५२ )

फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ एतु न लाए लिन्तु ।  
मिठी पई अतोल्वी कोइ न होसी मिन्तु ॥

फरीद ! इन मकानों, इवेलियों और ऊँचे-ऊँचे महलोंमें  
मत लगा अपने मनको; जब तेरे ऊपर बिनतोल मिठी  
पड़ेगी, तब वहाँ तेरा कोई भी भीत नहीं होगा ।

फरीदा ईट सिराणे भुइ सबणु कीड़ा लड़ियो मासि ।

केतड़िआ छुग वापरे इक तु पइआ पासि ॥

फरीद ! इंटे तो होंगी तेरा तकिया और तू सोयेगा  
जमीनके नीचे, कीड़े तेरे मांसको खायेंगे ।

जो सिरु साई ना निवै सो सिरु कीजै काँइ ।

कुने हेठि जलाइए बालण संदै थाइ ॥

उस सिरको लेकर करेगा कथा, जो रखके आये नहीं  
झुकता । ईचनकी जगह जला दे उसे घड़ीके नीचे ।

फरीदा किरये तैडे मा पिआ जिन्ही तू जगियोहि ।

तै पारहु ओइ लदि गए तू अजे न पतियोहि ॥

फरीद ! कहाँ हैं तेरे माँ-बाप, जिन्हें तुझे जन्म

दिया था ? तेरे पाससे वे चले गये; आज भी तुझे विश्वास

नहीं होता कि दुनिया यह नापायदार है ।

फरीदा मैं जागिआ दुखु मुज्जाकू दुखु सबाहाए जागि ।  
ऊँचे चढ़िकै देखिआ ताँ घरि घरि एहा अगि ॥

फरीद ! मैं समझता था कि दुख मुझे ही है, मगर  
दुख तो सारी दुनियाको है । जब ऊँचे चढ़कर मैं  
देखा, तब मैंने पाया कि यह आग तो दूर धरे  
लग रही है ।

फरीदा तिना मुक्ख ढरावणे जिना विसारिओ नु नाउ ।  
ऐथे दुख घणेरिआ आगै ठउर न ठउ ॥

फरीद ! भयावने हैं उनके चेहरे, जिन्हेंनि उस मालि  
का नाम भुल दिया । यहाँ तो उन्हें भारी दुख है एं  
आगे भी उनके लिये कोई टौर-ठिकाना नहीं है ।

कुवणु सु अकवर कवणु गुणु कवणु मु मणीआ मंगु ।  
कवणु सु बेसो हउ करी जितु वसि आवै कंगु ॥

वह कौन-सा शब्द है, वह कौन-सा गुण है एं  
कौन-सा अनमोल मन्त्र है ? मैं कौन-सा भेष धारूँ जिसे  
मैं अपने स्वामीको बशमें कर लूँ ?

निवणु सु अकलर खेवणु गुणु जिहवा मणीआ मंगु ।

एत्रै भैजे वैस करि तो वसि आवै कंगु ॥

दीनता वह क्षम्ब है, धीरज वह गुण है, शील वह  
नमोल मन्त्र है। तू इसी भेषको धारण कर, लहिन, तेरा  
तामी तेरे वशमें हो जायगा।

इक फीका ना गालाइ सभना मैं सक्षा बणी।  
हिआउ न कैही डाहि भाणिक सम्प्र अमोलवै॥

एक भी अप्रिय चात मुँहसे न निकाल, क्योंकि सच्चा  
लिक हर प्राणिके अंदर है। किसीके दिलको  
मत दुखा; हर दिल एक अनमोल रतन है।  
सभना मन भाणिक ठाहणु भूलि न चाँगवा।  
जे तउ पिरी आसिक हिआउ न छाहे कहीदा॥

हर दिल एक रतन है, उसे दुखाना किसी भी तरह  
मच्छा नहीं; अगर तू प्रीतमका आशिक है तो किसीके  
देलको न सता।

जिन्हु बहूटी मरणु वर, लै जाओ परणाइ।  
आपण हथी जोलि कै, कै गलि लगो धाइ॥

फरीदा जो तै मारनि मुक्कीओँ, तिना न मारै धुमि।  
आपन छै घरि जाइऐ, बैरा तिन्हाँ दे चुमि॥  
फरीदा जिन लोइण जगु मोहिआ, सो लोइण मैं डिछु।  
कजल रेख न सह दिआ, से पंषी सूझ बहिछु॥  
फरीदा खाकु न निदैऐ, खाकु जेहु न कोइ।  
जीब दिआ पैरा तले, महआ ऊपरि होइ॥  
खखी सूखी खाइ कै, ठँडा पाणी पीउ।  
फरीदा देखि पराई चोपड़ी, ना तरसाए जीउ॥  
फरीदा बारि पराइए वैसणा, साईं सुझै न देवहि।  
जे तू ए वै रखख सी, जीउ सरीरहु लेहि॥  
फरीदा काले मैंडे कपड़े, काला मैंडावेसु॥  
गुनही भरिआ मैं फिरा, लोकु कहै दरवेसु॥  
फरीदा खालक खलक महि, खलक बसै खव माहिं।  
मंदा किसनो आधीऐ, जाँ तिसु चिणु कोई नाहिं॥\*

## मौलाना 'रुमी'

( जन्म—हिजरी सन् ६०४, पुरा नाम—मौलाना मुहम्मद जलालुद्दीन रुमी। )

आईना अत दानी चिरा गमाज नेस्त।  
जौं कि ज़ब्बार अज रुखश मुस्ताज नेस्त॥

भावार्थ—हे सनुप्य! तू जानता है कि तेरा दर्पणरुमी  
मन क्यों साफ नहीं है। देख, इसलिये साफ नहीं कि  
उसके मुखपर जंग-सा मैल लगा हुआ है। मनको झुइ करो  
और आत्माका साक्षात्कार करो।

दामने ओ गीर जूदतर बेगुमां।  
ता रिही अज आसते आसिरी जमां॥

भावार्थ—हे मनुप्य! तू बहुत शीघ्र उस प्रसुका पत्ता  
पकड़ ले, ताकि तू अन्त समयकी विपक्षियोंसे बच सके।

सब तलख आमद व लेकिन आवकात।

मेवारा शीर्सी दहद पुर मनक्फ़अत॥

भावार्थ—संतोष यथापि कड़वा बृक्ष है, तथापि इसका  
फल बड़ा ही मीठा और लाभदायक है।

वाँ कि इं हर दो जयक अस्लखा।

वर गुजर जौं हर दो रौं ता अस्ले आ॥

भावार्थ—पाप और पुण्य ये दोनों एक ही कारणसे हैं।  
हुए हैं। इसलिये इन दोनोंको त्याग उस एककी तरफ  
चलना चाहिये, जिसने इनको पैदा किया है।

## सूक्ष्मी संत गुलाम अली शाह

( स्थान—कच्छ )

[ प्रेषक—वैद्य श्रीबदरुद्दीन राणपुरी ]

एजी आ रे संसार तकल है शुक्रा।  
मत जापो है मेरा॥  
ठोइ भरम तमे गुणज विचारो।  
तो सोज अंतर घट तेरा॥

एजी ज्योति प्रकाश लीजे बट अंदर।

गुरु चिना थोर अँधेरा॥

कहै पीरगुलाम अलीशाह सुमरन कर ले।

समझ समझ मन मेरा॥

\* गिरु—परगाइ=जीवन-व गुरु सरण-वर ब्याइ कर ले जायगा। जो ... दुमि=जो तुझपर आवात करे, तू उसपर भी न कर बैठ।  
मे...दरू=इनमे परिसरकी नोये चुभादी जा रही है। महआ ... होइ=मरणोपरान्त क्रमका अङ्ग बनकर हमारे कपर आ जाती है।  
देहि...जीउ=दूरस्तों परीमे तुझइ। गथी रोटी अर्पाइ देखर्यको देखकर उसके लिये तरसना छोड़ दे। वारि=द्वारपर। पर्व=इस प्रकारसे।

## यह भी न रहेगा

मेरे एक गित्र हैं। उन्होंने अपनी मेजपर कुछ दिनोंसे एक आदर्श-वाक्य रख लिया था। वाक्य इतना ही था—‘यह भी न रहेगा।’

बात कितनी सची, कितनी कल्याणकारी है—यदि हृदयमें बैठ जाय। संसारका प्रत्येक अणु गतिशील है। परिवर्तन—निरन्तर परिवर्तन हो रहा है यहाँ।

हमारा यह शरीर—इस शरीरको हम अपना कहते हैं; किंतु कहाँ है हमारा शरीर? हमारा शरीर कौन-सा?

एक शरीर था माताके गर्भमें—बहुत छोटा, बहुत सुकुमार, मांसका एक पिण्डमात्र। जन्मके पश्चात् शिशुका शरीर क्या उस गर्भस्थ शरीरके समान रह गया? क्या वह गर्भस्थ शरीर बदल नहीं गया?

बालकका शरीर—आप कहते हैं कि बालक युवा हो गया। क्या युवा हो गया जो बालकमें था और युवकमें है। शरीर युवा हुआ? बालकके शरीरकी आकृतिके अतिरिक्त युवकके शरीरमें और क्या है बालकके शरीरका? आकृति—तब क्या मोम, मिठ्ठी, पथर आदिसे वैसी ही कोई आकृति बना देनेसे उसे आप बालकका शरीर कह देंगे?

युवक वृद्ध हो गया। युवककी देहसे वृद्धकी देहमें क्या गया या क्या घट गया? वह युवक-देह ही वृद्ध हुई—यह एक धारणा नहीं है तो है क्या?

विज्ञान कहता है—शरीरका प्रत्येक अणु साड़े तीन वर्षमें बदल जाता है। आज जो शरीर है,

साड़े तीन वर्ष बाद उसका एक कण भी नहीं रहे लेकिन देह तो रहेगी और जैसे हम आज देहको अपनी देह कहते हैं, उस देहको भी अपनी देह कहेंगे।

शरीरमें व्याप्त जो चेतन तत्त्व है—उसकी चर्चा ही व्यर्थ है। वह तो अविनाशी है। लेकिन देह—देह तो परिवर्तनशील है। वह प्रत्येक क्षण बदल रही है। जी हाँ—प्रत्येक क्षण। भल, मूत्र, कफ, स्वेद, नख, रोम आदिके मार्गसे, श्वाससे और यों भी आप प्रत्यक्ष देखते हैं कि चर्म बदलता रहता है। अस्थितक प्रतिक्षण बदल रही है। नवीन कण रुधिर, मांस, मज्जा, स्नायु एवं अस्थि आदिसे स्थान ग्रहण करते हैं—पुराने कण हट जाते हैं। वे किसी मार्गसे शरीरसे निकल जाते हैं।

जैसे नदीकी धारा प्रवाहित हो रही है—जल चला जा रहा है। क्षण-क्षण नवीन जल आ रहा है। वही नदी, वही धारा—अम ही तो है। समस्त संसार क्षण-क्षण बदल रहा है। कुछ ‘वही’ नहीं है।

गर्भमें जो देह थी, बालकमें नहीं है। बालक-की देह—युवककी वही देह नहीं है। युवककी देह ही बृद्ध देह हुई—केवल अम है। सब अवस्थाएँ बदल रही हैं। बृद्ध गर गया—हो क्या गया? शरीर तो बदलता ही रहा था, फिर बदल गया। आकृतिका कुछ अर्थ नहीं है और जीव—वह तो अविनाशी है।

व्यर्थ है शरीरका मोह। व्यर्थ है सृत्युका भय। जो नहीं रहता—नहीं रहेगा वह। उस बदलनेवाले, नष्ट होनेवाले अस्थिर, विनाशीका मोह व्यर्थ है।

## ऐश्वर्य और दारिद्र्य

धनका मद—कितना बड़ा है वह मद । प्रपियोंने लक्ष्मीको उल्लङ्घनाहिनी कहा है । गवान् नारायणके साथ तो वे ऐरावतवाहिनी । गरुडवाहिनी रहती हैं; किंतु अकेली होनेपर नको पसंद है रात्रिचर पक्षी उल्लङ्घ ।

तत्पर्य बड़ा स्पष्ट है—यदि भगवान् नारायण-ने सेवा ही धनका उद्देश्य न रहा, धनमद बुद्धिग नाश कर देता है। जहाँ भी धनको उपभोग-म लिये एकत्र किया जाता है—विचार कुण्ठित हो जाता है। लक्ष्मी अपना धाहन बना लेती हैं नुष्ठको, यदि मनुष्य उनकी कृपा प्राप्त करके नके आराध्य श्रीनारायणकी चरणशरण ग्रहण हीं करता ।

अन्धं वधिरं तनुते लक्ष्मीर्जनस्य को दोषः ।  
हालाहलस्य भगिनी यन्त मारयति तच्चित्रम् ॥

लक्ष्मी अपने कृपापात्रोंको अंधा-बहिरा बना देती हैं, इसमें उन लोगोंका कोई दोष नहीं है। वे हैं ही हालाहल विषकी छोटी वहिन—शीरसागर-से समुद्रमन्थनके समय हालाहल विषके उत्पन्न होनेके बाद वे उत्पन्न हुईं। महाविषकी वहिन होनेपर भी प्राण नहीं ले लेतीं, यही आश्वर्यकी वात है।

यह तो कविकी उक्ति है; किंतु मदान्ध मनुष्य ऐश्वर्यके मदमें अंधा और बहिरा बन जाता है, यह स्पष्ट सत्य है। उसके सामने उसके सेवक कितना कष्ट पाते हैं, कितना अम करते हैं, दीनजन कितने कष्टमें हैं—यह उसे दिखायी नहीं पड़ता। उसके स्वार्थकी पृतिके लिये कितना पाप, कितना अन्याय हो रहा है, यह उसे नहीं सज्जता। दुखियोंकी प्रार्थना, दीनोंकी माँग, पीड़ितोंकी पुकार

उसके कान सुन नहीं पाते। दूसरोंकी वात तो दूर—वह अपने पतनको नहीं देख पाता। अपने पापोंको देखनेके लिये उसकी दृष्टि बंद रहती है। अपने अन्तःकरणकी सात्त्विक पुकार उसके बहिरे कानोंमें नहीं पहुँचती ।

छल-कपट, अन्याय-अत्याचार आदि नाना प्रकारके पापोंसे प्राप्त यह ऐश्वर्य—लेकिन लक्ष्मी तो चश्चला हैं। उनका आगमन ही बड़े श्रम एवं चिन्तासे होता है; किंतु उनको जाते विलम्ब नहीं होता। उनको जानेके लिये मार्य नहीं ढूँढ़ना पड़ता। ऐश्वर्यका अन्त महीनोंमें नहीं, क्षणोंमें हो जाता है। प्रतिदिन हमारे सामने हो रहा है।

अकाल, भूकम्प, बाढ़, दंगे—ये आकस्मिक कारण भी आज नित्यकी वातें हो गयी हैं। चोरी, डूकती, ठगी—इनकी बुद्धि होती ही जा रही है। लेकिन ऐश्वर्यका नाश होनेके लिये तो सैकड़ों कारण हैं—वहुत साधारण कारण। ऐसे कारण जिनका कोई भी प्रतीकार करना शक्य नहीं होता।

दरिद्रता—ऐश्वर्यका कब नाश होगा और कौन कब कंगाल हो जायगा, कोई नहीं कह सकता। क्या बुरी है दरिद्रता? ऐश्वर्यमें मदान्ध होनेसे तो यह दारिद्र्य श्रेष्ठ ही है। मनुष्यमें सहायता, सहानुभूति, परेपकार, आस्तिकता आदि अनेक सद्गुणोंका विकास दरिद्रताके ही उपहार हैं।

किसी क्षण दरिद्रता आ सकती है—ऐश्वर्यमें यह भूलना नहीं चाहिये। यह भी भूलना नहीं चाहिये कि भगवान् दीनवन्यु हैं। दीनोंको वन्यु बनाकर, उनसे सौहार्दका व्यवहार करके ही दीनवन्युकी कृपा प्राप्त होती है।

## गुरु नानकदेव

( अम—पि० सं० १५२६, वेश्याव शुक्ल ३, जन्म-स्थान—तलबंडी गाँव, जाति—वट्री, पिताका नाम—काल  
भाराना नाम—नुमा, खेत—गुरुपर्सी, निर्वाण—संवत् १५७५ वि०, आखिर शु. १०, निर्वाण-स्थान—करतारपुर )

हिरण्य नाम गरव धनु भारणु  
गुरु परमादी पाईए।  
अमर पदारथ मे निरतारथ  
गद्व भित्तानि दिव लाईए॥  
मने, राम भरति चितु लाईए।  
गुरुभुणि राम नामु जपि हिरदै  
सदज मेती घरि जाईए॥



भरमु भेदु भड कबहु न छूटसि आवत जात न जानी।  
विनु इरनाम कोड मुकति न पावसि छूवि सुए विनु पानी॥  
घंघा करत सगलि पति खोवसि भरमु न मिटसि गवारा।  
विनु गुरसबद मुकति नहीं कबही अँधुले घंघु पसारा॥  
अकल निरंजन सिउ मनु मानिआ मनही ते मनु मूजा।  
अंतरि वाहरि एको जानिआ नानक अवर न दूआ॥\*

साचा साहिबु सातु नाइ भालिआ भाउ अपार॥  
आवहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातार॥  
फेरि कि अगै रखाइ जितु दिसै दरखार॥  
मुहौ कि बोलणु बोलीए जितु मुणि धेरे पिभार॥  
अमृत वेल सतु नाड वडिआई वीचार॥  
करमी आवै कपडा नदरी मोसु दुआर॥  
नानक एवै जाणिए समु आपे सचिआर॥

वह स्वामी 'सत्य' है, उसका नाम भी सत्य है। और उसका बखान करनेके भाव या ढंग अनगिनती हैं।

लोग निवेदन करते हैं और माँगते हैं कि 'स्वामी, तू हमें दे दे!' और उन्हें वह दाता देता है।

\*गुरु परसादी—गुरुकृपासे। अमर पदारथ वै—नामरूपी अनिचाशी  
वस्तु पाकर। किरतारथ—हलाह, सफल-जीवन। सहज . . . . .  
आई—सहज साधनासे ब्रह्मधाम प्राप्त कर केना चाहिये। भरमु  
भेदु भड—द्वैतभावका भय। घंघा—प्रर्पन। सगलि पति—सारी  
प्रतिष्ठा। गवारा—गवार, मूर्ख। मुकति—मुक्ति, मोक्ष। अँधुले—अंवा।  
मनही ते मनु मूजा—मनु भक्तिमें लगे हुए मनने विषयरत मनको  
नष्ट कर दिया। दूआ—दूसरा, अन्य।

फिर क्या उसके आगे रहें कि जिससे उसका (का) दरबार दीख पड़े? और इस मुखसे हम क्या बोलें कि जिन्हें सुनकर वह स्वामी हमसे प्रेम करे?

अमृत-वेलमें, मङ्गलमय प्रभात-कालमें, उसके नामका और उसकी महिमाका विचार करो, सरण व कमोंके अनुसार चोल तो बदल लिया जात किंतु मोक्षका द्वार उसकी दशसे ही खुलता है।

नानक कहते हैं—यौं जानो तुम कि वह सत्यरूप आप ही सब कुछ है।

जे शुग जारे आरजा होर दस्ती होइ।  
नदा खंडा विचि जाणाए नालि चलै सुख कोइ॥  
जे तिसु नदरि न आवई त वात न पुँछै केइ।  
चंगा नाड रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ॥  
कीटा अंदरि कीढ़ करि लोसी दोसु छरे।  
नानक निरुणि गुण करे गुणवंतिआ गुण दे॥  
तेहा कोइ न सुजाई जि तिसु गुण कोइ करे।

मनुष्य यदि जारे सुग लीये, या इससे भी दस्तु उसकी आयु हो जाय और नयों खंडोंमें वह विष्यात। जाय, सब लोग उसके साथ चलने लों,

दुनियामरके लोग उसे अच्छा कहें, और उसके यशव वर्खान करें, पर यदि परमात्माने उसपर अपनी (कृपा) ई नहीं की तो कोई उसकी वात भी पूछनेवाला नहीं, उसक कुछ भी कीमत नहीं।

तब वह कीटसे भी तुच्छ कीट गाना जायगा। दोष भी उसपर दोषारोप करेंगे।

नानक कहते हैं—वह निरुणिको भी गुणी कर देता है और जो गुणी है, उसे और भी अधिक गुण वस्तु देता है।

पर ऐसा कोई भी दृष्टिये नहीं आता, जो परमात्माको गुण दे सके।

भरीऐ हथ्यु पैर लनु देह । पाणी धोतै उतरसु खेह ॥  
मूत पलीती कपड़ै दोह । दे साखुणु लड्है ओहु धोह ॥  
भरीऐ मति पापा कै संगि । ओहु धोपै नावै कै रंगि ॥  
पुंनी पापी आखणु नाहि । करि करि करणा लिखि जाहु ॥  
आपे श्रीजि आपे ही लाहु । नानक हुकमी आवहु जाहु ॥

जब हाथ, पैर और शरीरके दूसरे अङ्ग धूलसे सन जाते हैं, तब वे पानीसे धोनेसे काफ हो जाते हैं।

मूतसे जब कपड़े मंदे हो जाते हैं, तब साखुन ल्याकर उन्हें धो लेते हैं। ऐसे ही यदि हमारा मन पापोंसे मळिन हो जाय तो वह नामके प्रभावसे खच्छ हो सकता है।

केवल कह देनेसे मनुष्य न पुण्यात्मा बन जाते हैं न पापी। किंतु वे तुम्हारे कर्म हैं, जिन्हें तुम अपने साथ लिखते जाते हो, तुम्हारे कर्म तुम्हारे साथ-साथ जाते हैं।

आप ही तुम जैवा बोते हो, वैवा खाते हो। नानक कहते हैं—यह तुम्हारा आवागमन उसकी आज्ञासे ही हो रहा है।

आखा जीवा विसरै मरि जाउ ।  
आखिण अउसा साचा नाउ ॥  
साचे नाम की लागै भूख ।  
उहु भूखै खाइ चली अहि दूख ॥  
सो किउ विसरै मेरी माइ ।  
साचा साहिबु साचै नाइ ॥  
साचे नाम की तिलु वडिआई ।  
आखि यके कीमति नहीं पाई ॥  
जे सभि मिलिकै असलण पाहि ।  
बडा न होवै वाटि न जाइ ॥  
ना ओहु मरै न होवै सोगु ।  
देदा रहै न चूकै भोगु ॥  
गुण एहो होइ नाही कोह ।  
ना को होआ ना को होइ ॥  
जेवहु आपि तेवहु तेरी दाति ।  
जिनि दिनु करिकै कीती राति ॥  
खसमु विसरहि ते कमजाति ।  
नानक नावै चाषु सनाति ॥  
यदि मैं नामका जर करौं, तो जीऊँ; यदि भूख जाऊँ,  
तो मर जाऊँ; उस मन्त्रके नामका जर यहा कठिन है।

यदि गन्ने नामही भूख लग उटे, तो खाकर तृप हो जानेवर भूमध्यकी ल्यातुल्या चर्ची जाती है।

तब है मेरी माता ! उसे भूमि भुला हूँ।

स्वामी वह सच्चा है, उसका नाम सच्चा है।

उस सच्चे नामकी तिलसात्र भी महिमा वखान-बखान-कर मनुष्य यक गये, फिर भी उसका मोल नहीं आँक सके।

यदि सारे ही मनुष्य एक साथ मिलकर उसके वर्णन करनेका यत्न करें, तो भी उसकी बड़ई न तो उससे बढ़ेगी और न घटेगी।

वह न मरता है और न उसके लिये शोक होता है।

वह देता ही रहता है नित्य सद्बको आहार, कभी चूकता नहीं देनेसे।

उसकी यही महिमा है कि उसके समान न कोई है, न या और न होगा।

तू जितना बड़ा है, उतना ही बड़ा तेरा दान है।

तूने दिन बनाया है, और रात भी।

वे मनुष्य अधम हैं, जो तुझ स्वामीको भुला बैठे हैं।

नानक, बिना तेरे नामके वे विल्कुल नगण्य हैं।

हरि विनु किउ रहिए दुखु व्यापै।

जिहवा सादु न फीकी रस विनु, विनु प्रभ कालु सत्तापै ॥  
जबलु दरसु न परसै श्रीतम तबलु भूखि पिआली ।  
दरसनु देखत ही मनु भानिआ, जल रसि कमल विगासी ॥  
ऊनवि घनहरू गरजै बरसै, कोकिल मोर बैरागै ।  
तरतर विरख विहंग मुश्यगम धरि पिर धन सोहागै ॥  
कुचिल कुलप कुनारि कुलबनी पिर कउ सहजु न जानिआ ।  
हरिरस रंगि रसन नहां तृपती, दुरमति दूख भमानिआ ॥  
आइ न जावै ना दुखु पावै ना दुख दरखु सरीर ।  
नानक प्रभ ते सहज सुहेली प्रभ देखत ही मनु धरि\* ॥  
जगन होम पुन तप पूजा देह दुखी नित दूख सहै ।  
रामनाम विनु मुकति न पावसि मुकति नामि गुरुभूति लहै॥

\* किउ=क्योंकर, कैसे। सादु=सादु। रस=हरि-भक्तिसे आशय है। मानिआ=उस हो गया। रसि=आनन्द-रस लेकर। विगासी=विल गया। ऊनवि=घुमड शाय्य। घनहरू=बादल। ऊनवि... बैरागै=विना भियतमके पावसके घुमडे बादलोंका गरजना, बरसना और कोयल व मोरका बोलना—ये सब बैराग्य या ऊनभानाम पैदा करते हैं। पिर=प्रियतम। धरि\*\*\*सोहागै=जिस योके धरपर उसका प्रियतम है, वही असुलमे सुहागिन है। कुचिल=तुरे मैले कपड़े पहननेवाली। सुहेली=सुन्दर, सुहागिन मनु धरि=मन तृप या शात हो गया है।

+ जगन=यह। जगन \*\*\* सदै=शश, इचन, दान, पुण्य तप, देव-पूजन आदि भनेक साधनोंको करके मनुष्य करे। और दुःख देहों देते हैं। मुकति\*\*\* लहै=गुरु-उपदेशदा ही प्रमुका नाम केनेसे ही मुकि मिलती है।

गम नाम विनु चिरथे जगि जनगा ॥  
 विनु यार्द विनु बोंद विनु नवी निहफलु मरि भ्रमना ।  
 पुण्यार्द याठ विआकरण यज्ञार्ण संधिआ करम तिकाल करै ॥  
 विनु गुरुवद मुकानि वहा प्राणी गम नाम विनु उरसि भरै ।  
 हंड कांडल मिन्दा यूत थोती तीरथि गवनु अति भ्रमनु करै ॥  
 गम नाम विनु नांति न आर्द जपि हरि हरि नामु सु पारि परै ।  
 याठा सुकदु तनि भपग लगाई वउत्र छोडि तनि नगान भइआ ॥  
 जेते जीध जेते जाल थलि महीअलि जब कब तू सरब जीआ ।  
 गुरपरमादि रामिल जन कउ हरिरसु नानक झोलि पीआ ॥

धनु सु कागमु कलम धनु धनु भांडा धनु मस्सु ।  
 धनु लेखारी नानका जिनि नामु लिखाइआ सच्चु ॥  
 रे मन डीगि न डोलिए सधि भारगि धाउ ।  
 पाढ़े बाधु डरावणो आगै अगनि तलाउ ॥  
 सहस्र जीअरा परि रहिओ मोकउ अबह न ढंगु ।  
 नानक गुरमुखि छूटिए हरि प्रीतर्म सिड संगु ॥  
 बाधु सरै मनु मारिए जिसु सतिगुर दीखिआ होइ ।  
 आपु पछाणै हरि मिलै बहुडि न मरणा होइ ॥  
 सरबर हंस न जाणिआ काग कुपंखी संगि ।  
 साकत सिउ ऐसी प्रीति है बूकहु गिआनी रंगि ॥

\* विनु=विष, इद्रिय-विषयसे तापर्य है । निहफलु=निष्फल, व्यर्थ । संधिआ=संध्या-वन्दन । तिकाल=तीनों समय-प्रातः, मध्याह और सायंकाल । धूत=धूत्र, यजोपवीत । वसत्र=वस्त्र । तनि=शरीरसे । भइआ=हुआ । महीअलि=महीतल । जब कब=जहाँ-तहाँ, सर्वत्र । सरब जीआ=सब जीवोंमें । शोलि=छानकर, मस्त होकर, अधाकर ।

१. धन्य वह कागज, धन्य वह कलम, धन्य वह दावात और धन्य वह स्याही और धन्य वह लिखनदार नानक, जिसने कि उस सत्य-नामको लिखा है ।

२. डीगि न डोलिए=हिलना-डोलना नहीं, तनिक भी विचलित न होना । तलाउ=तालाब । बाधु=कामसे आशय है । अगनि=सम्मवतः तृष्णासे आशय है ।

३. सहसै… रहिओ=संशयमें अर्थात् दुविधामें मन पड़ गया है । ढंगु=उपाय । सिउ=से ।

४. आपु पछाणै=निजस्वरूपको पहचान ले । बहुडि=फिर ।

५. साकत=शक्त; आशय है हरि-विमुखसे ।

जनमें का फलु किआ गणी जाँ हरि—भगति न भाउ ।  
 पैथा खाधा बादि है जाँ मनि दूजा भाउ ॥  
 सभनि घटी सहु वसै सहिविनु घडु न कोइ ।  
 नानक ते सोहागणी जिन्हा गुरमुखि पराडु होई ॥

आपे रसीआ आपि रसु, आपे रावणहार ।  
 आपे हेवे चोलडा, आपे सेज भतार ॥  
 रंगिसता मेरा साहिलु, रवि रहिआ भरपूरि ।  
 आपे माछी मछुली, आपे पाणी जालु ।  
 आपे जाल मणकडा, आपे अंदरि लालु ॥  
 आपे बहु विधि रंगुला, सखी ए मेरा लालु ।  
 नित रवै सोहागणी, देखु हमारा हालु ॥  
 प्रणवै नानकु बेनती, तू सरबह तू हंसु ।  
 कउल तू है कवीआ तू है, आपे बेलि विगमु ॥\*

आपे गुण आपे कथै, आपे सुणि धीचार ।  
 आपे रतनु परखि तू, आपे मोलु अपार ॥  
 साचड मानु महतु तू, आपे देवणहार ।  
 हरि जीउ तू करता करता ॥  
 जिउ भावै तिउ राख तू हरि नामु मिलै आचार ।  
 आपे हीरा निस्मला, आपे रंगु मजीठ ॥  
 आपे मोती ऊजलो, आपे भगत वसीदु ।  
 गुर कै सबदि सलहणा, धटि धटि डीदु अडीदु ॥  
 आपे सागुरु बोहिथा, आपे पार अपार ।  
 साची बाडु सुजाणु तू, सबदि लक्षावणहार ।  
 निडरिआ डर जाणीए, बाल्लु गुरु गुवार ॥  
 असथिर करता देखीए, होर केती आवै जाइ ॥†

६. पैथा खाधा बादि है=पीना-खाना व्यर्थ है । जाँ…भाउ=जहाँ मनमें ईश्वर-भक्तिको छोड़कर सांसारिक विषय-गोंगा व्याप है ।

७. सभनि … … बसै=सभी धटो अर्थात् शरीरोंमें प्रगु बसा हुआ है । सह=स्थामी, ईश्वर । जिन्हा … … होइ=जिनके द्वयमें वह स्थामी सद्गुरुके उपदेशसे प्रकट हो गया ।

\* रावणहार=भोगनेवाला । चोलडा=चोलीबाली सी । मणकडा=चमकीला । लालु=चारा । रंगुला=रंगीला, लेलवादी । कउलु=कमल । कवीआ=कुमुदनी, केवडा ।

+ सागुरु=सागर, समुद्र । बोहिथा=बोहित, जदाज । धाई=अतिरिक्त । गुवार=धूल । होर=और, अन्य ।

आपे निरमल एकु तूँ, होर वँधी धंधै पाइ ।  
 गुरि राखे सो ऊवरे, सचि सित्त लिब लाइ ॥  
 हरि जीउ सबदि पछाणिए, सचि-रते गुर वाकि ।  
 तितु तनि मैलू न लगाइ, सच धरि जिसु ताकु ।  
 नदरि करै सचु पाईए, विना नावै किया साकु ॥  
 जिनी सचु पछाणिआ, सो सुखीग जुग चारि ।  
 हउ मैं चिसना भारिकै, सचुरविआ उर धारि ।  
 जगु महि लाहा एकु नामु, पाइए गुर वीचारि ॥  
 साचउ बखरु लादीए, लायु सदा सचु रसि ।  
 साच्ची दरगह वैसई, भगति सची अरदासि ।  
 पति सित लेखा निवडै, राम नामु परगासि ॥  
 ऊचा ऊचउ आयिए, कहउ न देखिआ जाइ ।  
 जँहै देखा तहै एक तूँ सति गुरि दीआ दिखाइ ।  
 जोति निरंतरि जायीए, नानक सहजि सुभाइ ॥

एको सखरु कमल अनूप । सदा विगासै परमल रूप ॥  
 ऊजल मोती चूगहि हंस । सखव कला जग दीमै अंस ॥  
 जो दीमै सो उपजै विनसै । यिनु जल सखरि कमलु न दीसै ॥  
 विरला बूझै पावै भेदु । सखा तीनि कहै नित वेडु ॥  
 नाद विंद की सुरति समाइ । सति गुरु सेवि परम पदु पाइ ॥  
 मुक्तो रतउ रंग रवातउ । राजन राजि सदा विगासौतउ ॥  
 जिसु तूँ राखहि किरपा धारि । बूझत पाहन तारहि तारि ॥

त्रिभवण महि जोति त्रिभवण महि जाणिआ ।

उलट भई घरु घरमहि आणिआ ॥

अहि निसि भगति करै लिब लाइ । नानकु तिनकै लागै पाइ ॥

रैणि गवाईं सोइ कै, दिवसु गवाँइआ खाइ ।  
 हीर जैसा जनमु है, कउड़ी बदले जाइ ॥  
 नामु न जानिआ राम का, मूढ़े फिरि पाढे पछुताहिरे ।  
 अनता धुन धरणी धरै अनत न चाहिआ जाइ ।  
 अमत कउ चाहन जोगए से आए अनत गवाइ ॥  
 आपण लीआ जे मिल ता समु को भागनु होइ ।  
 करमा ऊरि निवडै जो लोचै समु कोइ ॥

\* वाकि=यजनमें । तापु=स्त्रि दृष्टि । नदरि=कुपाद्धिए ।  
 नावै=नाम जपाय भक्ति, आत्मसमर्पणका भाव । साकु=महान् कार्य ।  
 अरशासि=विनय, प्राप्तना ।

† रखीउ=रखा दुआ । यिगसोतउ=विकास पाता हुआ ।  
 ‡ लोचै=अभिलापा करते हैं ।

मं० ला० भा० ४२—

नानक करणा जिनि किया, सोई सार करेइ ।

हुकमु न जापी खसम का किसे बढाई देइ ॥

परदारा परधनु पर लोभा, हउ मै विखै विकार ।  
 दुस्ट भाउ तजि निंद पराई, कामु, क्रोधु चंडार ॥

महल महि वैठे अगम अपार ।

भीतरि अंग्रितु सोइ जनु पावै, जिसु गुर का सबदु रतनु आचार ॥  
 दुख तुख दोऊ सम करि जाणै, बुरा भला संसार ।  
 सुधि बुधि-सुरति नामि हरि पाईजै, सतलंगति गुर पिआर ॥  
 अहिनिसि लाहा हरि नामु परापति, गुर दाता देवणहार ।  
 गुर मुखि मिख सोई जनु पाए, जिसनो नदरि करे करतार ॥  
 काइजा महलु मंदरु घरु हरिका, तिसु महि राखी जोति अपार ।  
 नानक गुर मुखि महलि बुलाईजै, हरि मेले मेलणहार ॥

राम नामि मनु वेधिआ अवरु कि करी बीचार ।  
 सबद सुरति सुख ऊजै प्रभ रातउ सुखसार ।  
 जिउ भावै तिउ राखु तूँ मै हरि नामु अधार ॥

मन रे साची खण्डम रजाइ ।

जिनि तनु मनु साजि सीरारआ, तिसु सेती लिब लाइ ॥  
 तनु वैसंतरि होमीए इक रती तोलि कंशाइ ।  
 तनु मनु सम धाजे करी अनदिनु अगनि जलाइ ।  
 हरि नामै तुलि न पूजई, जे लख कोटि करम कमाइ ॥  
 अरथ सरीर कर्दाईजै मिरि करवतु धराइ ।  
 तनु हैमंचलि गालीजै भी मन तेरो गुन जाइ ।  
 हरि नामै तुलि न पूजई सभ फिठी ठोकि बजाइ ॥  
 कंचन के कोट दतु करी वहु हैवर गैवर दानु ।  
 भूमि दानु गऊआ धणी भी अंतरि गरखु गुमानु ।  
 राम नामि मनु वेधिआ गुरि दीआ सचु दानु ॥  
 मन हठ तुधी केतीआ केते वेद बीचार ।  
 केते वंधन जीअ के गुर मुखि मोख दुआर ।  
 सच्छु उरै सभु कोऊ परि सचु आचार ॥  
 समु कोउ चा आखीजै नीचु न दीसै कोइ ।  
 इकने भांडे साजिजै इकु चनणु तिहु लोइ ।  
 करमि मिलै सचु पाईजै धुरि परब्रह्म मेटै कोइ ॥  
 साधु मिलै साधु जै संतोखु वैसै गुरमाइ ॥

\*सर=पूरा । जापी=पूरा किया ।

† वैसंतरि=मधिमें । हैमंचलि=हिमालयमें । फिठी=जाँच लिया ।  
 दतु=दतव्य । भी=फिर भी । उरै=उवरता है ।

अनग कथा विजारीं जे मति गुर माहि समाइ ।  
पी अस्ति गंतोविजा दर राहिं पै धाजाह ॥  
पाठ थिं वाजी रिंगुपी अनदिनु सबदि सुभाइ ।  
विन्दे कड गोदी पहू, गुमसुखि मनु समझाइ ।  
नानक नामु न वीरे छूटे सबदु कमाइ ॥  
कानी गायरि देह दुहली, उपजै विनसै दुखु पाई ।  
हटु जगु भागर दुतर किउ तरीऐ, चिनु दरि गुर पारन पाई ॥  
तुश विनु अवर न कोइं भेरे पिथारे, तुश विनु अवर न कोइ हेरे ।

सर्वी रंगी रूपी तूँ है तिसु ब्रवसे जिसु नदरि के  
सालु बुरी घरि वासु न देवै; परि तिउ मिलण न देह बुरी  
सर्वी साजनी के हउ चरन सरेवउ हरि गुर किरपा ते नदरि घर  
आयु वीचारि मारि मनु देविआ, तुमसा मीतु न अवर कोई  
जिउ तूँ राखहि तिवही रहणा, दुखु सुखु देवहि करहि सोई  
आसा मनता दोऊ विनासत, चिहु गुण आस निरास भई  
तुरीया वसथा गुर सुखि पाईए, संत समा की उट लही  
गिआन धिआन लगले सभि जप तप, जिसु हरि हिरदै अल्लत ओं  
नानक राम नामि मनु राता, गुरसति पाए सहज सेवा ॥

### श्रीगुरु अंगदजी

( जन्म-संवत् १५६८ वि० वैशाखी ११ । जन्म-स्थान—हरिके गाँव । जाति—खत्री । पिताका नाम—श्रीफेरजी । शुरुका नाम—  
नानकजी । माताका नाम—श्रीदयाकर । भेष—गृहस्थ । देहावसान-काल—वि० सं० १६०९ चैत्र शुक्ल १० )

जिसु पिथारे मिउ नेहु तिसु आगै मरि चलिए ।  
भिगु जीधा संसार ताकै पछै जीधणा ॥  
जौ भिन्ह साई ना निवै, सो मिरु दीजै डारि ।  
( नानक ) जिसु पिंजरमहि विरह नहि, सो पिंजरलै जारि ॥

नानक चिता मति करहु चिता तिसही है ॥  
जल महि जंत उपाइअनु तिना भी रोजी देह ।  
ओथै हड़ न चलई ना को किरस करेह ॥  
सउदा मूलि न होवह ना को लए न देह ।  
जीआ का आधार जीअ खाणा एहु करेह ॥  
विचित्र उपाए साइरा तिना भि सार करेह ।  
नानक चिता मति करहु चिता तिसही है ॥ १ ॥

सहिव अंधा जो कीआ करे मुजाखा होइ ।  
जेहा जाणे तेही वरतै जे सउ आलै कोइ ॥  
जियै सु वसतु न जापहै आपै वरतउ जाणि ।  
नानक गाहकु किउ लए सकै न वसतु पछाणि ॥  
सो किउ अंधा आखिए जि हुकमहु अंधा होइ ।  
नानक हुकमु न बुक्षई अंधा कहीए सोइ ॥ २ ॥  
अंधे कै राहि दसिए अंधा होइ सु जाइ ।  
होइ मुजाखा नानका सो किउ ऊङडि पाइ ॥  
अंधे पहि न आखीजनि जिन मुखि लोइण नाहि ।  
अंधे सेर्ह नानका खसमहु बुत्थे जाहि ॥ ३ ॥  
रतना केरी गुथली रतनी खोली आइ ।  
वखर तै वणजारिआ दूहा रही समाइ ॥

\* दुतर=दुस्तर । पिर सिउ=पियसे । सैवउ=पड़ती हूँ । उठ=ओट, आश्रय ।

१. तिसही हैइ=उसे ( परमात्माको ) ही है । उपाइअनु=पैदा किये । तिना=उनको । ओथै=वहाँ । हड़=हाद; दूकलन । ना को  
किरस करेह=न कोई खेती ( या व्यापार ) करता है । आधार=आहार । एहु=वही ( परमात्मा ) । करेह=जुरत है । विचित्र उपाए  
साइरा=सागरके दीर्घमें जिनको पैदा किया है । तिना भि सार=उनकी भी सँभाल करता है ।

२. सहिव \*\*\* ...कोइ=जिस परमात्मारे अंधा बना दिया उसे वह स्पष्ट दृष्टि दे सकता है । मनुष्यको जैसा वह जानता है ।  
वैसा उसके साथ वर्तव करता है, भले ही उसके विषयमें मनुष्य सौ बातें कहे, अथवा कुछ भी कहे । वसतु=परमात्मारे आरप  
है । न जापहै=नहीं दिखायी देता । आपै वरतउ जाणि=जान लो कि वहाँ अहंकार प्रवृत्त है । किउ लण=नयों खारीदे । आखिए=नहि ।  
हुकमहु=( परमात्माकी ) मरजीसे । न बुक्षई=नहीं समझता ।

३. अंधे कै \*\*\* ...आह=अंधेके दिखाये रास्तेपर जो चलता है, वह स्वयं ही अंधा है । मुजाखा=अल्टी दृष्टिला, जिसे अल्टी  
तरह सूझता या दीखता है । किउ ऊङडि पाइ=नयों उजाइमें भटकने जाय । एहु=उनको । आखीजनि=कहा जाय । मुखि लोपण नहि=  
चेहरेपर आँखें नहीं हैं । खसमहु उसे जाहि=स्वामीसे भटक रथे, उनका रास्ता भूल गये ।

जन गुण पैले नानका मानक बणाहि सेह ।  
तना सार न जाणई अंधे वतहि लोइ ॥४॥  
नानक अंधा होइ कै रतन परम्परण जाइ ।  
रतना सार न जाणई आवै आपु ल्लाइ ॥५॥  
जपु जपु सभु किंचु मनिए अवरि कारा सभि बादि ।  
नानक मनिआ मनीए बुझीए गुरपरसादि ॥६॥

नानक दुनीआ कीआँ बडिआईआँ अरगी सेती जालि ।  
एन्ही जलीई नामु विचारिआ इक न चलीआ नालि ॥७॥  
जिन बडिआई तेरे नाम की ले रखे मन माहि ।  
नानक अंमतु एकु है दुजा अंमतु नाहि ॥  
नानक अंमतु मनै माहि पाईऐ गुरपरसादि ।  
तिनी पीता रंग यित जिन कउ लिखिआ आदि ॥८॥  
जे सउ चंदा उगवाहि सुरज चडहि हजार ।  
एते चान्दण होदिआँ गुरु विन धोर अँधार ॥९॥

## गुरु अमरदासजी

(जन्म-संवत् १५३६, वैशाख शुक्र १४। जन्म-स्थान—वसरका गाँव (अमृतसरके पास)। पिताका नाम—तेजसान, माता-का नाम—वरतकांर, देहान्त-वित्त ० सं १६३१ भादोपूर्णिमा ।)

ए मन ! पियारिआ तू सदा सचु समाले ।  
एहु कुट्टबू तू जि देवदद, चलै नाही तेरै नाले ॥  
साथि तेरै चलै नाही तिसु नालि किउ चिंचु लाईऐ ।  
ऐडा कंसु मूळे न कीचै जितु अंति पछोताईऐ ॥  
सतिगुरुका उपदेशु सुणि तू होवै तेरै नाले ।  
कहै नानकु मन ! पियारे तू सदा सचु समाले ।

राम राम सभु को कहै, कहिए राम न होइ ।  
गुर परमादी रामु मनि बसै, ता फल पावै कोइ ॥

अंतरि गोचिंद जिसु लगै प्रीति ।  
हरि तिसु कदै न वीसरै, हरि हरि करहि सदा मनि चाति ॥

हिरदै जिन्ह कै कपडु बसै, बाहरहु संत कहाहि ।  
त्रिसना मूलि न चूकई, अंति माई पछुताहि ॥  
अनेक तीरथ जे जतन करै ता अंतर कीहउमै कदे न जाइ ।  
जिसु नर की दुविधा न जाइ धरमराह तिसु देह सजाइ ॥  
करमु होवै सोई जनु पाए गुरमुखि बूझै कोई ।  
नानक विचरहु इउमै भारे ताँ हरि भेई सोई ॥\*

ए मन चंचल चतुराई किनै न पाईआ ।  
चतुराई न पाईआ किनै तु सुणि मन मेरिआ ॥  
एह माझआ मोहणी जिनि एहु भरमि भुलाहिआ ।  
माझआ त मोहणी तिनै कीती जिनि ठगडली पाईआ ॥  
कुरवाणु कीता तिसै विटहु जिनि भोह मीठा लाहिआ ।  
कहै नानकु मन चंचल चतुराई किनै न पाईआ ॥†

४. यदि जौहरी आकर रखोकी थेली खोल दे तो वह रखोको और गहकको मिला देता है ।  
(अर्थात् वह गुर या संतपुरुष गहक या साधकसे हरिनामग्रन्थी रखोको खोलद्वा देता है ।)
- नानक ! गुणवान् (पारती) ही ऐसे रखोको विसाहेगे; किंतु जो लोग रखोका मोल नहीं जानते, वे दुनियामें अंधोकी तरह भड़कते हैं ।
५. सार=कीमत : आवै आपु ल्लाइ=अपना प्रदर्शन करके (अपना मजाक कराकर) लौट जायेगा ।
६. जप, तप, सब कुछ उसकी आशापर चलनेसे प्राप्त हो जाता है; और सब काम वर्ष्य है ।
७. उसी (मालिक) की आशा दू मान, जिसकी आशा भाननेयोग्य है । (अथवा उस संतपुरुषकी आशा मान, जिसने स्वयं उसकी आशाकी माना है); उसकी दृष्टि से ही उसे हम जान सकते हैं ।
८. नानक ! दुनियाकी बडायोदें लगा दे आग; इर्दी आग लगो बडायोने तो उसका नाम विकार दिया है । इनमेंसे एक भी भी (उनमें) तेरे साथ नहोनी नहीं ।
९. किन... ... नन जहि=जिन्हेने तेरो महिनाको जन किया, उन्हें ही हारिंक अनन्द मिला । गुरपरसादिक्षुरुकी कृपासे ।  
जिनी... ... अदिक्षिनके भवेयर अदिते ही लिपि दिया गया है, वे ही आनन्दसे उस अनृतको पान करते हैं ।
१०. यहि भी न्यू उत्तर हो और दजार उत्तर भी आकाशपर नड़ जायें तो भी इन्हें (प्रचण्ड) प्रकाश (पुल) में भी विना पुलों पोर अभयपर भी द्याय रहेगा ।
- \* हरि... नीरि=निन्हर हरयके नाम भरण होना रहता है । कल्प=कृपा, अद्युमद ।  
\*\* न्युतारं किनै त संहिता=रसमस्तको लिखिने चतुराई करके नहीं पाया । मासमा=माया । तिनै कीती=उसने वर्धांश् परमात्मा-

भगवा नी चाल निराली ॥

चाल निराली भगवाह केंद्री विश्वग मारगि चालणा ।  
मनु गंगु आंत्रोग तर्जि तुमना वहुतु नाही बोलणा ॥  
भर्विभागु नियी वाळहु नियी एनु मारगि जाणा ।  
गुरुगमारी तिनी आपु तजिआ दरि वामना समाणा ॥  
कहै नानकु चाल भगवा छगहु उगु निराली ॥\*

जीअहु गेंदे वाहरहु निरगल ॥

वाहरहु निरगल जीअहु त मैले तिनी जनमु जौऐ हारिआ ।  
एहु तियना चदा गेंदे त्वा मरणु मनहु विसरिआ ॥  
नेहा महि नामु उतमु गोसुणादि नाही फिरहि जिउ वेतालिआ ।  
कहै नानकु जिन सचु तजिआ कूडे लागे तिनी जनमु जौऐ हारिआ ।

जीअहु निरमल वाहरहु निरमल ॥

वाहरहु त निरमल जीअहु निरमल सतिगुर ते करणी कमाजी ।  
कूड़ वी खोइ पहुचै नाही मनसा सचि समाणी ॥  
जनमु रत्नु जिनी खटिआ भले से वणजारे ।  
कहै नानकु जिन मनु निरमलु सदा रहहि गुर नाले ॥†

ने स्त्री । जिनि छगडली पाइंगा—जिसने यह इच्छाल फैलाया ।  
कुरबाणु … … लाईआ—यैने उस परनामापर अपनेको निष्ठावर कर  
दिया है, जिसने कि मरणशील प्राणियोंके लिये सांसारिक मोहको  
इतना आकर्षक बना रखा है ।

\* विलम्ब=विषम, कठिन, टेढा, । खनिअहु … … जाणा=वे  
धेरे भारपर चलते हैं, जो खाँडे (तलचार) से अधिक पैना और  
बालसे भी अधिक वारीक होता है । आपु तजिआ=अपने अहंकारका  
त्वाग कर दिया है । हरि वासना समाणा=जिनकी इच्छाएँ परमामना  
में केन्द्रित हो गयी हैं ।

+ जीअहु=हृदयमें, अंदर । निरमल=सच्छ । मरणु मनहु  
विसरिआ=मृत्यु (भय) मुला बैठे । उतमु=उत्तम । फिरहि जिउ  
वेतालिआ=प्रेतकी तरह वृमता फिरता है । कूडे लागे=असत्यको  
पकड़ बैठे ।

† सतिगुर ते करणी कमाणी=सद्गुरुके बताये मार्गपर  
चलकर वे सत्कर्म करते हैं । कूड़ की … … समाणी=झूठकी गँध भी

हरि रासि मेरी मनु बणजारा ॥

हरि रासि मेरी मनु बणजारा सतिगुर ते रासि जाणी ।  
हरि हरि नित जिहु जीअहु लाहा खटिहु दिहाई ॥  
एहु धनु तिना मिलिआ जिन हरि आपे भाणा ।  
कहै नानकु हरि रासि मेरी मनु होआ बणजारा ॥\*

पंखी विरखि सुहावडा सचु उगै गुर भाइ ।  
हरिसु पीवै सहजि रहै उडै न आवै जाइ ।  
निजधरि वासा पाइआ हरि हरि नामि समाइ ।  
मन मेरे तू गुर की कार कमाइ ।  
गुर के भाणै जे चलहि ता अनादिनु राचहि हरिनाह ।  
पंखी विरखि सुहावडे ऊङहि चहु दिसि जाहि ।  
जेता ऊङहि दुख घो नित दक्षहि तै बिललाहि ।  
विनु गुर महलु न जापई ना अमृत फल पाहि ।  
गुरमुखि ब्रह्म हरी आबला साचै सहजि सुभाइ ।  
साला तीनि निवारीआ एक सबदि लिव लाइ ।  
अमृत फलु हरि एकु है आपे देह खवाह ।  
मनमुख ऊमे सुकि गए ना फलु तिन ना छाड ।  
तिना पासि न बैसीऐ ओना घर न गिराउ ।  
कटीअहि तै नित जालीअहि ओन्हा सबदु न नाउ ।  
हुकमे करम कमावणे पाइए किरति किराउ ।  
हुकमे दरसनु देखणा जह भेजहि तह जाउ ।  
हुकमे हरि हरि मनि वसै हुकमे सचि समाउ ।  
हुकमु न जाणाहि बरुडे भूले फिरहि गवाह ।  
मन हठि करम कमावदे नित नित होहि खुआव ।  
अंतरि संस्ति न आवर्दै ना सचि लगै पिआव ।  
गुरमुखीआ मुह सोहणे गुर कै हेति पिआरि ।  
सच्ची भगती सचि रते दरि सच्चै सनिआरि ।

उनके पास नहीं पहुँचती; उनकी इच्छाओंका लक्ष सत्य ही जाना  
है । खटिआ=कमा लिया । भले वणजारे=समृद्ध ज्ञापारी ।

\* रासि=पूँजी । मनु बणजारा=मन है व्यापारी । जीअहु=  
मेरे जीब । लाहा खटिहु दिहाई=तुम्हे इर रोज कमाईमें लाग दोण

आए से परवाणु है सभ मुल का करहि उधार।  
सभ नदी करम कमावदे नदी बाहरि न कोइ।

जैसी नदरि करि देखै सच्चा तैसा ही को होइ।  
नानक नामि बडाईया करमि परापति होइ॥

## गुरु रामदासजी

( जन्म-सं० १५७१ वि० कार्तिक कृष्ण २ । जन्म-स्थान-लाहौर । पूर्वनाम-जेठा । पिताका नाम-हरिदास । माताका नाम-दयाकौर ( पूर्वनाम अनूप देवी ) । जाति-नेथी खत्री । देहावसान-भादो शुद्ध ३, वि० सं० १६३८ । सत्य-स्थान-गोडान्दवाल )

आवहो संतजनहु गुण गावहु गोविद केरे राम ।

अनदिनु<sup>५</sup> सहजि रहै रँगिरात्वा<sup>६</sup> रम नाम रिंपूजा ।

गुरुमुखि मिलि रहीऐ घरि बाजहि सबद घनेरै<sup>७</sup> राम ॥

‘नानक’ गुरुमुखि एकु पछाणै अवरु न जाणै दूजा ॥

सबद घनेरै हरि ग्रम तेरे तू करता सभ थाहै ।

कामि करोवि नगरु बहु भरिआ मिलि साधु खंडल खंडा है ॥

अहि निति जपी सदा सालाहौ<sup>८</sup> साच सबदि लिवै लाई ॥

पूरवि लिखत लिखे गुरु पाइआ मनिहरि लिव मंडल मंडा है ॥

\* सुन्दर है वृक्षपरका वह पक्षी, जो गुरुकी कृपासे सत्यको सदा चुगता रहता है ।

( पक्षी यहाँ संत पुरुष और वृक्ष है उस सापुका शरीर । ) हरिनामका रस वह सतत पान करता है । सहज सुखके बीच बसेरा है उसका और वह इधर-उधर नहीं उड़ता ।

निज नीड़में उस पक्षीने चास पा लिया है और हरिनाममें वह लौलीन हो जाय है ।  
रे मन ! तब तू गुरुकी सेवामें रह दो जा ।

यदि गुरुके बताये मार्गपर तू चले, तो फिर हरिनाममें तू दिन-रात लौलीन रहेगा ।

कथा वृक्षपरके ऐसे पक्षी आदरयोग्य कहे जा सकते हैं, जो चारों दिशाओंमें इधर-उधर उड़ते रहते हैं ?

जितना ही वे उड़ते हैं, उतना ही दुःख पाते हैं । वे जित्य ही जलते और चीखते रहते हैं ।

दिना गुरुके न तो वे परमात्माके दरवारको देख सकते हैं और न उन्हें अमृतफल ही मिल सकता है ।

स्वभावनः सत्यनिष्ठ गुरुमुखों अर्थात् पवित्रात्माओंके लिये बहा सदा ही एक हरा लहलहा वृक्ष है ।

तीनों शाखाओं ( किञ्चुण ) को उन्होंने त्यग दिया है और एक शब्दमें ही उनकी लौ लगी हुई है ।

एक हरिका नाम ही अमृतफल है; और वह उसे स्वयं ही खिलाता है । मनमुखी दुष्टजन दूँठ-से सुखे खड़े रहते हैं; न उनमें फल होते हैं न छाँह ।

उनके निकट तू मत बैठ; न उनका घर है न खाँब । सूखे काठकी तरह वे काटकर जला दिये जाते हैं; उनके पास न शब्द ( गुरु-उपदेश ) है, न ( हरिका ) नाम ।

मनुष्य परमात्माकी आशाके अनुसार कर्म करते हैं और अपने पूर्व कर्मोंके अनुसार अनेक योग्यियोंमें चक्र लगाते रहते हैं ।  
वे उसका दृश्यन पाते हैं तो उसकी आशासे ही और जहाँ वह मेजता है वहाँ वे चले जाते हैं ।

अपनी इच्छासे ही परमात्मा उनके हृदयमें निवास करता है और उसीकी आशासे वे सत्यमें तछीन हो जाते हैं ।

वेनारे गूर्ज, जो उसकी आशाको नहीं पहचानते, भ्रातिके कारण इधर-उधर भटकते रहते हैं । उनके सब कर्मोंमें हठ रहता है, वे दिन-दिन गिरते ही जाते हैं ।

उनके अन्तरमें शान्ति नहीं आती, न सत्यके प्रति उनमें प्रेम होता है ।

चून्दर हैं उन पवित्रात्माओंके मुख, जिनकी गुरुके प्रति प्रेम-भक्ति है । भक्ति उन्हींकी सच्ची है, वे ही सत्यमें अनुरक्ष हैं

सप्तरमें उन्हींका बाना सौभाग्यमय है; अपने सारे ही कुलका उन्होंने उद्धार कर लिया ।

तबके कर्म उसकी नजरमें हैं; कोई भी उसकी नजरसे बचा नहीं है । वह जैसी नजरसे देखता है, मनुष्य बैसा ही हो जाता है ।  
नानक ! नामकी महिमातक दुकर्मोंसे ही पहुँचा जा सकता है ।

१. घटके बंदर अनेक प्रकारके शब्द और अनदृढ़ नाड हो रहे हैं । २. जगह । ३. प्रशंसा करके, गुण गाकर । ४. लौ, प्रीति । ५. सित्य । ६. अनुरागमें रंगा हुआ । ७. हृदय ।

परि गायू त्रिशुली पुनु बद्धा हे ॥ करि डंडउत पुनु बद्धा हे ॥  
गायन वारगय गायू न जाणिआ तिन अंतरि हउ में कंडा हे ।  
जिउ जिउ चद्यहि नुमै दुमु पावहि जमकालु सहहि सिरि डंडा हे ।  
हरि गण एरि हरि नामि नभाणे दुमु जनम भरण भव खंडा हे ।  
अविनाशी पुरम्य पाइया परमेष्ठ वहु सोभा खंडा व्रहम्यहा हे ॥  
एम गरीब गमनीन प्रग तेरे हरि राखु राखु बड बद्धा हे ।  
जन नानक नामु अधार टेक हे हरि नामे ही सुखु मंडा हे ॥

गिरसुनु कथा कथा हे हरि की ।  
भगु मिलि गायू मंगति जन की ॥  
तहु भउजलु अकथ कथा सुनि हरि की ॥  
गोविद नत संगति मेलाह ।  
हरि रसु रसना राम गुन गाह ॥  
जो जन ध्यावहि हरि हरिनामा ।  
तिन दासनिदास करहु हम राम ॥  
जन की सेवा अतम कामा ॥.  
लो हरि की हरि कथा सुगावै ।  
सो जनु हमरै मनि चिति भावै ॥  
जन पर रेमु बढ़भागी पावै ॥

१. यह नगर अर्थात् यह शरीर काम और क्रोधसे बहुत भरा  
मुआ है; पर संतजनोंसे मिलनेसे दोनों स्वण्ड-स्वण्ड हो जाते हैं ।

प्रात्यर्थमें लिखा था जो गुरसे मेंट हो गयी और भक्तिभावमें  
यह जीव लौलीन हो गया ।

तथा जोड़कर तू संतोकी वन्दना कर—यह भारी पुण्यकर्म है ।  
उन्हें सादाङ्ग दण्डवत् कर—यह भारी पुण्यकर्म है ।

हरिन-संकें सादकों नास्तिक या अभक्त नहीं जानता; वर्योंकि  
वह अपने अन्तरमें अहंकारके कौटिकों स्थान दिये हुए हैं ।

जितना ही वह चलता है, उतना ही वह उसे चुभता है और  
उतना ही वह छेष पाता है; और यमका ढंडा अर्थात् कालका  
भय उसके सिरपर मंडराते रहता है ।

हरि-भक्त हरिके नाम-स्वरणमें लीन रहते हैं; और उन्होंने  
जन्म-मरणका भय नष्ट कर दिया है ।

अद्विनाशी पुरम्यसे उनकी मेंट हो गयी है और लोकों एवं सरे  
प्रह्लादमें उनकी शोभा-प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी है। प्रभो! हम  
गरीब अधम जन तेरे ही हैं। हे महान्-से-महान्! हमारी रक्षा कर,  
हमारी रक्षा कर ।

दास नानकका आधार और अवलंब एक तेरा जन्म ही है,  
तेरे जन्ममें हृदयकर परमामन्दको मैने पाया है ।

संत जना सिर प्रीति बनि आई ।

जिन कउ लिलतु लिलिअ धुरि पाई ॥  
ते जन नानक नामि समाई ॥

ते साधू हरि मेलहु सुआमी, जिन जपिआ गति होइ हमारी।  
तिनका दरसु देखि मन बिगसै, जिनु जिनु तिनकउ हउ यहिलाहै।  
हरि हिरदै जपि नामु मुरारी ॥

कृष्ण कृष्ण करि जगत पति सुआमी हम दासनिदास कीजै पनिहारी।  
तिन मति अतम तिन पति ऊतम जिन हिरदै बिसिया अनवारी।  
तिन की सेवा लाइ हरि सुआमी तिन सिमरत गति होइ हमरी।  
जिन ऐसा सतिगुर साधू न पाइआ ते हरि दरगह काहे मारी।  
ते नर निंदक योग न पावहि तिन नककाटे सिरजनहारी।  
हरि आपि बुलावै आपे बोलै हरि आपि निरंजनु निरंकारु निराहारी।  
हरि जिसु त मेलहि सो तुधु मिलसी जन नानक किला  
एहि जंत बिचारी ॥

हरि प्रभु मेरे बाबुला  
हरि देवहु दानु मै दाजो ।

हरि कपड़ो हरि सोभा  
देवहु जितु उचरै भेरा काजो ॥

हरि हरि भगती काँजु सुहेला  
गुरि सतिगुरि दानु दिवाइजा ।

खंडि वरमेडि हरि सोभा होइ  
इहु दानु न रलै रलाइजा ॥

होरि मनमुख दालु जि रखि  
दिलालहिसू कुड़ अहंकार कर्तु पाजो ।

हरि प्रभु मेरे बाबुला  
हरि देवहु दानु मै दाजो ॥

१. भद्रजलु—संतार-संगर। ऊतम—ऊतम। जन पा ये=  
हरिभक्तोंके चरणोंकी धूल। सिर=सरसे अपर, शीरसान।

२. जिन जपिआ=जिनका नाम-स्वरण और ध्यान करके।  
गति=सद्गति, सुक्ल। विगसै=अनन्दसे प्रभुहित हो। जिन  
जिनु=शश-क्षण, निरन्तर। हउ=हौं मै। दासनिदास पनिहारी=

दासके भी दासकी पानी भरनेवाली भजूरिन। पति=प्रीति।  
दरगह काहे मारी=ईश्वरके न्यायालयसे मारकर निकाल दिये गये।

दरगह काहे मारी=ईश्वरके न्यायालयसे मारकर निकाल दिये गये।  
हरि जिसु.....मिलसी=हे हरि! जिसे हम  
सोभ=शोभा, प्रतिष्ठा। हरि जिसु.....मिलसी=हे हरि! जिसे हम  
अपने आपसे मिलाना चाहो वही तुमसे मिलेगा। जंत=जंत, जीव;  
यनसे भी आशय है, जो जड़ होता है ।

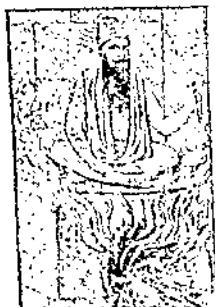
३. मेरे बाबुल ! हुम तो मेरे प्रीतम हरिको ही सुखे दान भी  
दहेजके रूपमें दो। हरिकी ही सुखे पेशाक दो और दरिया।  
शोभा, जिससे कि मेरा काज बन जाय। हरिकी भजिये जो

हरि राम राम मेरे बाबूला  
पिर मिलि धन वेल वधंदी ।  
हरि जुगह जुगो जुगा जुगह  
जुगो सद पीड़ी गुरु चलंदी ॥  
जुगि जुगि पीड़ी चलै सतिगुर की  
जिनी गुरमुखि नाम धिआइआ ।  
हरि पुरखु न कवही विनसै  
जावै नित देवै चडै सवाइआ ॥  
नानक संत संत हरि एको  
जपि हरि हरि नामु सोहंदी ।

हरि राम राम मेरे बाबूला  
पिर मिलि धन वेल वधंदी ॥  
हरि दासन सिउ प्रीति है हरि दासन को मिंतु ।  
हरि दासन कै बसि है जिउ जंती कै वसि जंतु ॥  
हरि के दास हरि धिआइए करि प्रीतम सिउ नेहु ।  
किरपा करि कै सुनहु प्रभु सम जग महि बरसै मेहु ॥  
जो हरि दासन की उसतति है सा हरि की वडिआई ।  
हरि आपणी वडिआई भावदी जन का जैकारु कराई ॥  
सो हरिजनु नामु धिआइदा हरि हरि जनु इक समानि ।  
जनु नानक हरि का दासु है हरि पैज रखहु भगवानै ॥

## गुरु अर्जुनदेव

(जन्म-संवत्—१६२० विं०, वैशाख कृ० ७। जन्म-स्थान—गोदान्दवाल। पिताका नाम—गुरु रामदास। माताका नाम—बीबी भानी। मृत्यु—संवत् १६४३ ज्येष्ठ कृ० ४। मृत्यु-स्थान—लाहौर (रावी नदीमें)



अव सोरे ठाकुर सिउ  
मनु माना ।  
साध कृपा दहआल भवेहैं  
इहु छेदिओ दुसदु विगाना ॥  
तुमही सुन्दर तुमहि सियाने,  
तुमही सुधर सुजाना ।

सगल जोग अह गिआन धिआन इक निमख न कीमति जाना  
तुमही नायक तुमही छत्रपति, तुम पूरि रहे भगवाना ।  
पावउ दानु संत-सेवा हरि, नानक सद कुरवाना<sup>३</sup> ॥

जाकी रामनाम लिव लागी ।

सजनु सुहृद सुहेला सहजे, सो कहिए वडभागी ॥  
रहित-बिकार अलिप माइआ ते अहंबुद्धि-विखु तिआगी ।  
दरस पिआस आस एकहि की, टेक हिये प्रिय पागी ॥

सएल हो जाता है; सदगुर दाताने मुझे अपने नामका दान दे दिया है। प्रभु! तेरी शोभासे सरे खण्ड और ब्रह्मण्ड शोभायमान हो जायेगे; सेरे नामका यह दहेज दूसरे और दहेजोंमें नहीं मिलाया जा सकता।

दुनियादार तो अपने दहेजके रूपमें शूटे अहंकार और निकन्मे मुलमेका ही प्रदर्शन करेगा।  
मेरे बाबुल ! तुम तो मेरे प्रीतमें ही मुझे दान और दहेजके रूपमें दो।

१. मेरे बाबुल ! प्रीतम प्रभुसे मिलकर वधू (पवित्र) वेलको बढ़ाती है। हरिने युग-युगसे, सदा ही, गुरुका वंश बढ़ाया है, जिसने उसके उपदेशसे इस्के नामका ध्यान सदा किया है।

उस परमपुरुषका कमी विनाश नहीं होता; जो वह देता है, वह सवासा हो जाता है।

नामका संत और भगवतमें भेद नहीं; दोनों एक ही हैं; इस्का नाम लेकर ही वधू शोभाको पाती है।

मेरे बाबुल ! प्रीतम प्रभुसे मिलकर वधू वेलको बढ़ाती है।

२. धिर-से, के साथ। मिठु=मित्र। जंती=यंती, वाजा वजानेवाला। जंतु=यंत्र, वाजा। हरि धिआइ-हरिका ध्यान करते हैं।  
मेहु=परमार्थपी जल, यह भी अर्थ हो सकता है। उसतहि=स्तुति, प्रशंसा। वडिआई=महिमा। हरि ... ... कराई=जब उसके सेवकोंका जगतार हो गो परमार्थ उसे अपनी ही महिमा मानता है। धिआइदा=ध्यान करते हैं। इक समानि=एक ही है दोनों।  
पैसन्द्याग।

३. निर-से। इह ... ... विगाना=इस दृष्ट शब्द (मन)ने मेरा नाश कर दिया था; अथवा दयालु संतोंने इस दृष्टका दैदन कर दिया। रघुरु ... ... जना=प्रभुके सामिध्यमें एक श्रण भी जो आनन्द मिला, उसकी तुलनामें सारा योग और शान-ध्यान तुच्छ है। निर-रु=विगिय, यह। मर=सदा। दुरराना=विदिआती।

अर्चिन गोद जागतु उठि वैसनु अचित हमत वैगारी ।  
नानक नानक चिनि जागतु दगाना, सु माइआ हरिजन ठारी ॥

मार्द गी गनु गेंगे गतवारो ।

पैन धृत्राल अंद गुल पूरन हरिन्मि पित्रो खुमारो ॥  
नियमल भइउ उजल ग्रनु गावत वहरि न होवत कारो ।  
नगनामन यित्र ठारी रानी भेटिओ पुरखु अपारो ॥  
कह गिर लीने गग्नमु दीने, दीपक भइउ उजारो ।  
नानक नामि-गिक वैगारी कुलह समूहा तारो ॥

राम राम राम राम जाप ।

कलि-कर्णेय ल्योग-मोह नियसि आह अहं-ताप ॥  
आपु तिआगी, गंत चरन लागि, मनु पवित्रु, जाहि पाप ।  
गागकु चारिकु कदू न जाँने, रखन कउ प्रभु माई-बाप ॥

चरनकमल-सरनि टेक ॥

जन मृत्व वेअंतु द्राकुरु, सरव ऊपरि तुही एक ।  
प्रानअधार दुख विदार, देनहार बुधि-विवेक ॥  
नमस्कार रखनहार मनि अराधि प्रभू मेक ।  
संतरेन करउ मंजनु नानकु पावे सुख अनेक ॥

जपि गोविंदु गोपाल लालु ।

रामनाम सिमरि तू जीवहि किरि न खाई महाकाळ ॥  
कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भ्रमि आईओ ।  
बड़ै भागि साधु-संसु पाइओ ।  
विनु गुर पूरे नाही उधार ।  
वावा नानकु आखै एहु वीचारै ॥

गावहु राम के गुण गीत ।

नाम जपत परम सुख पाइऐ, आवागडणु मिटै मेरे मीत ॥

१. लिव=प्रीति, ध्यान । सजनु=संबंधी, प्यारा । सुहेला=सुन्दर । अलिप=निलेप । अहंबुद्धि-विख्यु=अहंकारलपी विष । अचित=निश्चित । वैसनु=वैठना । ठारी=हरिभत्तोदारा ठगी गयी ।  
२. खुमारो=तशा । कारो=काल, मठिन । डोरी राची=प्रीति लगी । कुलह समूहा=अनेक कुलोंको ।  
३. अहं-ताप=अहंकारकी आग, जो निरक्षर जलाती रहती है । आपु=अहंकार । पवित्रु=पवित्र । वारिखु=बालक । कउ=को ।

४. जन मृत्व=ऊँचे-से-जँचा । वेअंतु=अनन्त । मनि अराधि=मनमें आराधना करने योग्य । संत... ... ... मंजनु=संतोंकी चरण-रजसे मनको माँजकर निर्मल करूँ ।

५. उधार=उद्धार, मुक्ति । आखै=कहला है । वीचार=सार-

तत्त्वकी भाव ।

गुण गावत होवत परगासु, चरन कमल महिं होय निव  
संतसंगति महिं होय उधार, 'नानक' भटजलु उत्तरीपे

मेरे मन जपु जपु हरि नाराइण ।

कवहू न विसरहु मन मेरे ते आठ पहर गुन गाइ  
साथू धूरि करउ नित मज्जनु सभ किलविल पाप गवाइ  
पूरन पूरि रहे किरपानिधि वष्टि वष्टि दिसिटि समाइ  
जाप ताप कोटि लख पूजा हरि सिमरण तुलि न लड  
डुइ कर जोड़ि नानक दान माँगै तेरे दामनि दास दासाइ

धनवंता होइ करि गरवावै ।

तृण-समानि कछु संगि न जावै ॥

बहु लसकर मानुख ऊपरि करै आस ।

पल भीतरि ताका होइ विनास ॥

सभ ते आप जानै बलवंतु ।

खिन महि होइ जाइ भसमंतु ॥

किसै न बदै आपि अहैकारी ।

धरमराइ तिसु करे खुआरी ॥

गुरप्रसादि जाका भिटै अभिमानु ।

सो जनु नानक दरगाह परवानु ॥

मानुख की टेक वृथी सभ जानु ।

देवन कउ एकै भगवानु ॥

जिस कै दिए रहै अघाइ ।

बहुरि न तृसना लगै आइ ॥

मारै शखै एको आपि ।

मानुख कै किछु नाहीं हाथि ॥

तिसका हुकमु बूझि सुखु होइ ।

तिसका नामु रखु कठि फोइ ॥

सिमरि तिसरि सिमरि प्रभु सोइ ।

नानक विघ्नु न लगै कोइ ॥

१. परगासु=आत्मज्ञानका प्रकाश । उधार=उद्धार, मोश ।  
भटजलु=संसार-साधार ।

२. साथू धूरि=संतोंकी चरण-धूल । किलविल=मैल, कर्म ।  
गवाइण=बो दिये, नष्ट कर दिये । दिसिटि समाइ=इटिये व्याप  
हो गया । अन्तरमें सगा गया । ताप=ताप, तपथ । तुलि=तुल्य, बराबर ।  
दासनि दास दासाइ=दासोंके दासका भी दास होना चाहता है ।

३. लसकर=फौज । मानुख=आशापालक सेवकोंसे आशय है ।  
खिन=क्षण । न वै=कुछ भी नहीं समझता । धरमराइ=धरमराइ ।  
खुआरी=वैज्ञान, दरगाह परवानु=ईश्वरके दरबारमें जानेका और  
परवाना भिल जाता है ।

४. टेक=आधार, अवलम्ब । वृथी=वृथा, दूसी । देवन कउ=  
देवोंके लिये । परोह=पिरोकर पहन ले, धारण कर ले ।

॥ शुरु अजुनदेव ॥

इमारी ते जन जग माहि ।  
सदा सदा हरि के गुन गाहि ॥

म नाम जो करहि वीचार ।  
से धनवंत गनी संसार ॥

नि तनि मुखि दोलहि हरि मुखी ।  
सदा सदा जानहु ते सुखी ॥

एको एकु एकु पैछानै ।  
इत उत की ओहु सोझी जानै ॥

नाम संगि जिस का मनु मानिआ ।  
नानक तिनहि निरंजनु जानिआ ॥

संत-संगि अंतरि प्रभु ढीठा ।  
नामु प्रभू का लगा मीठा ॥

सगल समिग्नी एकसु घट भाहि ।  
अनिक रंग नाना हस्याहि ॥

नउ निधि अमृतु प्रभ का नाम ।  
देही महि इस का विद्याम ॥

सुख समाधि अनहत तह नाद ।  
कहनु न जाइ अचरज विस्माद ॥

तिनि देखिआ जिसु आपि दिखाए ।  
नानक तिसु जन सोझी पाए ॥

तू मेरा सखा तुही मेरा मीतु ।  
तू मेरा प्रीतम तुम संगि हीतु ॥

तू मेरी पति तू है मेरा गहणा ।  
तुझ विनु निमखु न जाई रहणा ॥

तू मेरे लालन तू मेरे प्राण ।  
तू मेरे साहिव तू मेरे ज्वान ॥

जित तुम राखहु तित ही रहना ।  
जो तुम कहहु सोई मोहि करना ॥

जह पेखऊ तहा तुम बसना ।  
निरभय नाम जपउ तेरा रसना ॥

तू मेरी नवनिधि तू भंडार ।  
रंग रसा तू मनहि अधार ॥

तू मेरी सोभा तुम संगि रचिआ ।  
तू मेरी ओट तू है मेरा तकिआ ॥

मन तन अन्तरि तुही विथाइआ ।  
मरम तुमारा गुर ते पाइआ ॥

सतगुर ते दृष्टिआ इकु एकै ।  
नानक दास हरि हरि हरि थेकै ॥

स्लोक

हरि हरि नामु जो जनु जपै सो आइआ परवाणु ।  
तिसु जनकै बलिहारणै जिनि भजिआ प्रभु निरवाणु ॥

सतिगुर पूरे सेविए दूखा का होइ नास ।  
नानक नाम अराधिए कारजु आवै रासु ॥

जिसु सिमरत संकट छुटहि अनँद मँगल विद्याम ।  
नानक जपीए सदा हरि निमख न विसरउ नामै ॥

विद्यै कउइत्तणि सगल महि जगत रही ल्पटाइ ।  
नानक जनि वीचारिआ मीठा हरि का नाउ ॥

गुरु कै सबदि अराधिए नामि रंगि वैराणु ।  
जीतै पंच वैराइआ नानक सफल भारु राहु ॥

पतित उधारण पारवहमु संघरथ पुरखु अपारु ।  
जिसहि उधारे नानका सो सिमरे सिरजणहाहै ॥

पंथा प्रेम न जाणई भूली किरै गवारि ।  
नानक हरि विसराइकै पड़दे नरक झंधिआर ॥

१. हीतु=हित, प्रेम । पति=लाज । गहणा=अपलम्बन, आधार । निमखु=निमिष, पल । खाना=सबसे बड़ा सरदार । जह पेखउ=जहाँ भी देखता हूँ । रसा=रस, परमानन्द । रचिआ=रंगा हुआ या अनुरक्त हूँ । तकिआ=सहारा । दृष्टिआ इकु एकै=इसे दृष्टासे पकड़ लिया कि एक और केवल एक तू ही है ।

२. सो आइआ परवाणु=उसीका संसारमें आना सच्चा है ।  
निरवाणु=मोक्षदायक ।

३. कारजु आवै रासु=हरिनामकी पूँजी ( अन्त समय ) काम आये ।

४. विद्याम=शान्ति । निमख=निमिष, पल ।

५. विरवै कउइत्तणि=विषयरूपी कड़वी बेल ।

६. गुरु कै ..... वैराणु=गुरुके उपदेशकी आराधना करनी चाहिये, जिससे हरि-नामके प्रति प्रेम और विषयोंके प्रति वैराय उत्पन्न हो । पंच वैराइआ=विषयरूपी पाँच शतुओंको । माह रागु=बह राग जो युद्धमें उत्साह बढ़ानेके लिये गाया जाता है ।

७. संघरथ=समर्थ, सर्वशक्तिनाम् ।

प्रदो अंदा गरण का मनहि भइओ परगामु ।  
काटी थेरी पगह ते गुरि कीनी थंदि खलासु ॥  
गृ जड गजण गेडिआ देहै सीमु उतारि ।  
मिन महिंवे तरसदे कदि पसी दीदारै ॥  
गीमु गरिंजा तऊ नालि विआ नेह कङ्गावै डेखु ।  
उगह भोग उगवणे जिनक गिरी न डेखु ॥  
उठी शाहू कंतडे हउ पसी तउ दीदारै ।  
जाजल एक तमोल रसु विनु पसे हमि रस छारै ॥  
पाइल्या गरण कवूलि करि जीवण की छडि आस ।  
धोहु भग्ना की रेणुका तउ आउ हमारै पासै ॥  
जिमु मनि वसे पारवक्षमु निकटि न आवै पीर ।  
भुख तिथ तिसु न विथापर्ह जमु नहिं आवै नीरै ॥

धणी विहूणा पाट पटंबर भाही सेती जाले ।  
धूही विचि लुडंडी साहां नानक तै सह नालै ॥  
सोरठि सो रसु पीजिए कबहु न फीका होइ ।  
नानक राम नाम गुन गाइअहि दरगह निरमल सोई ॥  
जाको प्रेम सुआउ है चरन चितव मन माहि ।  
नानक विरही ब्रह्म के आम न कितहु जाहि ॥  
मगानु भइओ प्रिय प्रेम सिउ सूध न सिमरत अंग ।  
प्रगाठि भइओ सभ लोअ महि नानक अधम पतंगै ॥  
संत-सरन जो जनु परै, सो जनु उधरनहार ।  
संत की निंदा 'नानक', बहुरि-बहुरि अवतार ॥  
साथ न चालै विनु भजन, विलिआ सगली छार ।  
हरि-हरि नामु कमावना, 'नानक' इहु धनु सार ॥

## गुरु तेगबहादुर

( जन्म-संवत् १६७५ वि०, वैशाख कृ० ५ । जन्म-स्थान—अमृतसर, पिताका नाम—गुरु हरगोविन्द, माताका नाम—नानकी, मृत्यु—संवत् १७३२ वि० अगहन सु० ५ )

मन की मन ही माहि रही ।

ना हरि भजे न तीरथ सेए चोटी कालि गही ।  
दारा मीत पूत रथ संपति धन पूरन ससु मही ।  
अउर सगल मिथिआ ए जानउ भजनु राम को सही ।  
फिरत फिरत वहुते जुग हारिओ मानसदेह लही ।  
नानक कहत मिलन की वरिआ सिमरत कहा नही ॥

रे मन, राम सिउ करि प्रीति ।  
स्वन गोविंद गुनु सुनउ अरु गाऊ रसना गीति ।  
करि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीति ।  
काल-विआलु जिउ परिओ डोलै मुखु पसरे मीति ।  
आजु कालि फुनि तोहि ग्रसिहै समझि राखउ चीति ।  
कहै नानकु राम भजि लै जातु अउसर बीति ॥

१. मनहि भइओ परगामु=मनके बंदर दिव्य प्रकाश भर गया । वेरी=वेडी । पगह ते=पैरेमेसे । बंदि खलासु=वर्धन-मुक्त ।

२. अय मेरे साजन ! अगर तू कहे, तो मैं अपना सिर उतार कर तुझे दे हूँ । मेरी आँखें तरसती हैं कि कब तुझे देखूँ ।

३. मेरी प्रीति तेरे ही साथ है; मैंने देख लिया कि और सब प्रीति झूठी है । तुझे देखे बिना ये वक्त और ये भोग मुझे

धरावने लगते हैं ।

४. मेरे प्यारे ! तेरे दर्शनके लिये मैं वडी भोर उठ जाती हूँ । काजल, हार और पान और सारे मधुर रस, बिना तेरे दर्शनके, धूलकी तरह लगते हैं ।

५. कवूलि करि=स्वीकार कर के । छडि=छोड़कर । रेणुका=ऐरोकी धूल, अत्यन्त तुच्छ ।

६. पीर=दुख । तिख=तृष्णा, प्यास । जमु=काल । नीर=निकट ।

७. मेरा प्रीतम मेरे पास नहीं, तो इन रेतामी वज्रोंको लेकर क्या कहूँगी, मैं तो इनमें आग लगा दूँगी; प्यारे ! तेरे साथ पूर्णे

लोटी हुई भी मैं सुन्दर दीखूँगी ।

८. सोरठि=एक रागका नाम । सो रस=ब्रह्म-रससे आशय है । दरगह=परमात्माका दरवार । निरमल=निष्पाप ।

९. सुआउ=स्वभाव । चरन चितव मन माहि=परमात्माके चरणोंका ध्यान हृदयमें करते हैं । विरही=अत्यन्त प्रेमात्म । वाह=

अन्य स्थान, सांसारिक भोगोंसे आशय है ।

१०. सूध=सुख, ध्यान । लोअ=लोक ।

जो नहु दुख मैं दुखु नहिं मानै ।

सुख सनेहु अरु भय नहिं जाकै कंचन मार्टी जानै ॥  
नहिं निदिया नहिं उसतति जाकै लोमु भोहु अभिमाना ।  
हरख सोग ते रहे निआरउ नाहि मान अपमाना ॥  
आसा मनला सगल तिथागै जगते रहे निरासा ।  
कामु क्रोधु जिह परसै नाहिन तिह घट ब्रह्मु निवासा ॥  
गुर किरण जिह नर कउ कीनी तिह इह शुगति पछानी ।  
नानक लीन भइओ गोविंद किउ जिउ पानी संगि पानी ॥

इह जगि भीतु न देखियो कोई ।

सगल जगतु अपनै सुख लागियो दुख मैं संगि न होई ॥  
दारा सीत पूत सनवंधी सगरे धन सिव लागे ।  
जब ही निरधन देखियो नरकउ संगु छाड़ि सभ भागे ॥  
कहउँ कहा इआ मन वउरे कउ इन किउ नेहु लगाइओ ।  
दीनानाथ सगल मैं भंजन जसु ताको विसराइओ ॥  
सुआन पूछ जिउ भइओ न सधो बहुतु जतनु मैं कीनउ ।  
नानक लाज विरद की राखहु नासु तुहारउ लीनउ ॥

जामें भजनु राम को नाही ।

तिह नर जनम अकारथ लोइउ इह राखहु मन माही ॥  
तीरथ करै विरत पुनि राखै, नहिं मनुवा वसि जाको ।  
निहफल धरम ताहि तुम मानो साँचु कहत मैं याको ॥  
जैसे पाहन जल महि राखिउ भेदै नहिं तिहि पानी ।  
तैसे ही तुम ताहि पछानो भगतिहीन जो प्रानी ॥  
कलि मैं सुकति नाम ते पावत गुर इह भेद वतावै ।  
कहु नानक सोई नहु गरथा जो प्रभ के गुन गावै ॥

साथो, मन का मान तिआगो ।

काम क्रोध संगति दुरजन की, ताते अहनिषि भागो ॥  
सुख दुखु दोनों सम करि जानै, और मानु अपमाना ।  
हरख-सोग ते रहे अतीता तिनि जगि तसु पछाना ॥  
उमतुति निदा दोऊ त्यागे, खोजै पढु निरासा ।  
जन नानक इहु खेलु कठिन है, किनहू गुरमुखि जाना ॥

काहे रे, चन खोजन जाई ।

गरम-निवासी सदा अलेपा तोही संगि सभाई ॥  
पुष्प मध्य जिउ चासु वसतु है, मुकुर माहि जैसे छाई ।  
तैसे ही हरि वसे निरंतर, घट ही खोजहु भाई ॥  
शहरि भीतरि एकै जानहु, इह गुर गिअनु वतहई ।  
जन नानक चिनु आज चीन्हें, भिटै न भ्रम की काई ॥

सभ कछु जीवत को विडहार ।

मात पिता भाई सुत बंधु अरु पुनि यह की नार ॥  
तन ते प्रान होत जब निथारे देखत प्रेत पुकार ।  
आध धरी कोऊ नहिं राखै धरि ते देत निकारि ॥  
मृगतृसना जिउ जग रचना यह देखहु रिदे विचारि ।  
कहु नानक भजु राम नाम नित जाते होत उधार ॥

राम सिमर सम सिमर इहै तेरो काज है ।  
माइआ को संगु तिआगि, प्रभु जू की सरनि लागि,  
जगत-सुख मानु मियिआ, झटो सब साजु है ॥  
सुपने जिउ धनु पिलानु, काहे पर करत मानु,  
बाल की भीत जैसे वसुधा को राजु है ।  
नानक जन कहत बाल विनासि जैहै तेरो गात,  
छिनुछिनु करि गड्ढो काल तैसे जातु आजु है ॥

अब मैं कउनु उपाउ करउँ ।

जिह विधि मन को संसा चूकै, भउ निधि पार परउँ ॥  
जनमु पाइ कछु भलो न कीनो, ताते अधिक डरउँ ।  
मन बच क्रम हरि गुन नहिं गाए, यह जिअ सोच धरउँ ॥  
गुरमति सुनि कछु गिआनु न उपजिउ, प्रभु जिउँ सोच भरउँ ।  
कहु नानक प्रभु विरदु पछानउँ, तथ हउँ पतित तरउँ ॥

माई, मनु मेरो ब्रह्मि नाहि ।

निस्त्रासुर विद्विनि कउ धावत किहि विधि रोकउ ताहि ॥  
ब्रेद पुरान सिमृति के मति सुनि निमख न हिए बसावै ।  
परधन परदारा सिउ रचियो विरथा जनमु किरावै ॥  
मदि माइआ कै भइओ वावरो सूझत नह कछु गिआना ।  
घट ही भीतरि वसत निरंजनु ताको मरमु न जाना ॥  
जब ही सरनि साध की आइओ दुरमति सगल विनासी ।  
तब नानक चेतिओ चित्तामनि काटी जम की काँसी ॥

मन रे प्रभ की सरनि विचारो ।

जिह सिमरत गनका-सी उधरी ताको जसु उर धारो ॥  
अटल भइऔ धुअ जाकै सिमरत अरु निरभै पढु पाइआ ।  
दुख हरता इह विधि को सुआमी तै काहे विसराइथा ॥  
जब ही सरनि गही किरणानिधि गज गराह ते छूटा ।  
महिमा नाम कहा लड वरमउ राम कहत वंधन तिह तूय ॥

१. विश्विनि कउ=विषयोंको, इन्द्रियोंके भोगोंकी ओर। मति=मत, सिद्धान्त। सिउ=से। निरंजनु=निरकार परमात्मा। गरसु=भैरव, रहस्य। चेतिओ=चिन्तन वा ध्यान किया। चित्तामनि=समस्त चिन्ताओंको दूर करनेवाला, परमात्मा।

अजामेलु पापी जगु जाने निमल माहि निसतारा ।  
नानक कहत चेत चितामनि तै भी उतरहि पारा॑ ॥

प्रीतम जानि लेहु भन माही ।

अपने सुख सित व्ही जगु फाँधिओ को काहू को नाही ॥  
सुख मै आनि बहुतु मिलि वैठत रहत चहू दिसि घेरै ।  
विपति परी सभ ही सँगु छाइत कोउ न आवत नै ॥  
घर की नारि बहुतु हितु जा सित सदा रहत सँग लागी ।  
जब ही हंस तजी इह काइआ प्रेत प्रेत करि भागी ॥  
इह विधि को विउहारु वनिओ है जा सित नेहु लगाइओ ।  
अंति बार नानक विनु हरि जी कोऊ काम न आइओ॑ ॥

हरि के नाम बिना दुख पावै ।

भगति बिना सहसा नहि चूकै गुर इह भेद बतावै ॥  
कहा भइउ तीरथ व्रत कीए, राम सरनि नहि आवै ।  
जोग जग्य निहफल तिह मानो जो प्रभु-जुहु विसरावै ॥  
मान मोह दोनो को परहरि, गोविंद के गुन गावै ।  
कहु नानक इह विधि को प्रानी जीवनमुक्त कहावै॑ ॥

मन ऐ, साचा गहो विचारा ।

राम नाम विनु मिथिआ मानो सगरे इह संसारा ॥  
जाको जोगी खोजत हारे, पाइओ नहिं तिह पाए ।  
सो स्वामी तुम निकटि पछानो, रूप-रेख ते निआरा ॥  
पावन नाम जगत मैं हरि को, कबहू नाहि सभारा ।  
नानक सरनि परिओ जगवंदन, राखहु विरद तुम्हारा॑ ॥

साधो रचना राम बनाई ।

इकि विनसै इक असथिर मानै, अचरज लखिओ न जाई ॥  
हाम क्रोध मोह वसि प्रानी हरि भूरति विसराई ।  
इटा तन साचा करि मानिओ जित सुपना रैनाई ॥

१. गनका=एक वेश्या, जिसका नाम पिङ्गला था । धुब=धुब  
विधि को=ऐसा ( परितपावन ) । कहा लज=कहाँतक । दूटा=  
गया । निसतारा=सुक्त कर दिया ।

२. फाँधिओ=फंदेमें पड़ा है । को काहू को=कोई भी किसीका ।  
तजदीक । जा सित=जिसके साथ । हंस=जीव । काशआ=  
ह, देह ।

३. सहसा नहि चूकै=संशय ( दैत्याव ) का अन्त नहीं ।

४. को=कोई विरला ।

५. गहो=गहण करो । विचारा=सहित, आत्मशासन ।  
तो=पहचानो । सभारा=सरण या ध्यान किया । विरद=वाना,  
नाम ।

जो दीपै सो सगल बिनासै, जित बादर की छाई ।  
जग नानक जग जानिओ मिथिआ, रहिओ राम सराई॑ ॥

प्रानी कउ हरिजसु मनि नहि आवै ।

अहनिसि मगनु रहै माइआ मैं कहु कैसे उन गावै ॥  
पूर भीत माइआ भमता जित इह विधि आपु वैधावै ।  
मृगतृसना जित इटो इह जगु देखि ताहि उठि धावै ॥  
भुगति मुकति को कारनु स्वामी, मूढ़ ताहि विसरावै ।  
जन नानक कौटिन मैं कोऊ भजनु राम को पावै॑ ॥

जगत मैं झटी देखी प्रीत ।

अपने ही सुख सित सब लागे, किआ दारा किआ भीत ॥  
मेरै मेरै सभै कहत हैं हित सित वैधिओ चीत ।  
अन्तकाल संगी नहि कोऊ, इह अचरज है रीत ॥  
भन मूख अजहूं नहि समझत, सिख दै हारिओ नीत ।  
नानक भड़जल-पारि परै, जो भावै प्रभु के गीत॑ ॥

साधो, कठन जुगति अव कीजै ।

जाते दुरसति सकल बिनासै, रामभगति भनु भीजै ॥  
मनु माइआ मैं उरझि रहिओ है, बूझै नहिं कछु गिआना ।  
कउन नामु जग जाके सिमरै पावै पहु निरवाना ॥  
भए दइआल कृपाल संतजन तथ इह वात वताई ।  
सरब धरम मानो तिह कीथे जिह प्रभ-कीरति गाई ॥  
रामनाम नर निसिवासुर मैं निमल एक उर धारै ।  
जम को त्रासु मिटै नानक तिह, अपुनो जनम सवारै॑ ॥

हरि विनु तेरे को न सहाई ।

काकी मात-पिता सुत बनिता, को काहू को भाई ॥  
धनु धरनी अरु संपति सगरी जो मानिओ आपनाई ।  
तन छूटै कछु संग न चालै, कहा ताहि लगाई ॥

१. असथिर=क्षित, नित्य । रैनाई=रातका । दीपै=दीपण  
है । सगल=सकल । छाई=चाँपे ।

२. मनि नहि आवै=हरयमें भमता नहीं । भुगति=भीम,  
सांसारिक सुख ।

३. किआ=वया । दारा-व्यासी । हित ... नीत=मनों भेदमें  
फँसा लिया । नीत=नीतिकी, हितवारी; नित्य । गीत=गुणगान ।

४. भीजै=भीम, विमोर दो जाये । निरदाना=गोपा । गोप ...  
गाई=मानो उसने सब पर्मनन दर लिये, निरन्ते व्रेमन लगाना ।  
गुण-गान विया । निमद=निमिष, पल । सपाई=सुधार लेता है ।

न दह्याल सदा दुख-भंजन ता सिउ रचि न बढाई ।  
नानक कहत जगत सभ मिथिआ ज्यों सुपना रैमाई ॥

साधो, इह तनु मिथिआ जानो ।  
इआ भीतर जो राम वसतु है, साचो ताहि पछानो ॥  
इहु जग है संपति सुनने की, देखि कहा ऐङ्गानो ।  
संगि तिहारै कछू न चालै, ताहि कहा लपटानो ॥  
असतुति निशा दोऊ परिहर हरिकीरति उर आनो ।  
जन नानक सभ ही मैं पूरन एक पुरख भगवानो ॥

हरि को नामु सदा सुखदाई ।

जाको सिमरि अजामिल उधरिओ गनका हू गति पाई ॥  
पंचाली को राजसभा मैं रामगाम सुधि आई ।  
ताको दुखु हरिओ करनामय अपनी पैज बढाई ॥  
जिह नर जसु गाइओ किरपानिधि ताको भइओ सदाई ।  
कहु नानक मैं इही भरोखै गही आन सरनाई ॥

माई मैं धनु पाइओ हरि नामु ।

मनु मेरो धावनते छूटिओ, करि वैठो विसरामु ॥  
माइआ ममता तनते भागी, उपजिउ निरमल गिआनु ।  
लोभ मोह एह परसि न साकै, गही भगति भगवान ॥  
जनम जनम का संसा चूका, रतनु नामु जब पाइआ ।  
विसना सकल चिनासी मन ते, निजसुप माहि समाइआ ॥  
जाकउ होत दइआलु किरपानिधि, सो गोविंद गुन गावै ।  
कहु नानक इह विधि की संपै, कोऊ गुरुमुषि पावै ॥

हरि जू यावि लेहु पति मेरी ।

जग को न्रास भइउ उ८ अंतरि, सरन गही किरिपानिधि तेरी ॥  
महा पतित मुगध लोभी कुनि, करत पाप अब हारा ।  
मैं मरते को विसरत नाहिन, तिह चिंता तनु जार ॥  
किये उपाव मुकति के कारनि, दहदिसि कउ उठि धाइआ ।  
घट ही भीतरि वसै निरंजनु, ताको मरमु न पाइआ ॥  
नाहिन सुन नाहिन ककु जपु, तपु, कउनु करमु अब कीजे ।  
नानक हारि परिउ सरनागति, अमै दानु प्रभ दीजै ॥

१. दो=दोई भी । जो मानिओ अपनाई=जिसे अपनी मान  
मैठा था । रुधि=जीति । रैनाई=रातका ।

२. इआ=सा, इस । पठानो=पहचानो । लेणानो=गर्व किया ।  
एक पुरल=पेतल अकाल पुरल ।

३. उपरिओ=उडार या गया, मुक्त हो गया । गति=मोक्ष ।  
पंचाली=पौरी । पैज=प्रण, टेक । जान=आकर ।

( प्रेषिका—श्रीपी० के० जगदीशकुमारी )

### दोहा

गुन गोविंद गाइओ नहीं, जनमु अकारथ कीन ।  
कहु नानक हरि भजु मना, जिह निधि जल कौ मीन ॥  
निलिअन सिउ काहे रचिओ, निमिल न होहि उदास ।  
कहु नानक भजु हरि मना, पैरे न जम की फास ॥  
तरनापे इउँही गाइओ लिलो जरा तनु जीति ।  
कहु नानक भजु हरि मना अउधि जाति है बीति ॥  
विरध भइओ यहौं नहीं काल पहुँचिओ आन ।  
कहु नानक नर बावरे किउ न भजै भगवान ॥  
धन दारा संपति सकल जिनि अपनी करि मानि ।  
इन मैं कुछ संगी नहीं नानक साची जानि ॥  
पतित उधारन मैं हरन हरि अनाथ के नाथ ।  
कहु नानक तिह जानिहो सदा वसतु तुम साथ ॥  
तनु धनु जिह तोकउ दिओ तासिउ नेहु न कीन ।  
कहु नानक नर बावरे अब किउ डोलत दीन ॥  
तनु धनु सपै सुख दिओ बरु जिह नकि धाम ।  
कहु नानक सुनु रे मना सिमरत काहे न राम ॥  
सभ सुख दाता रामु है दूसर नाहिन कोइ ।  
कहु नानक सुनु रे मना तिह सिमरत गत होइ ॥  
जिह सिमरत गत पाइये तिहि भज रे तैं भीत ।  
कहु नानक सुनु रे मना अउधि घटति है नीत ॥  
पाँच तत्त्व कौ तनु रचिउ जानहु चतुर सुजान ।  
जिह ते उपजिउ नानका लीन ताहि मैं मान ॥  
घटि घटि मैं हरि जू वसै संतन कहो पुकारि ।  
कहु नानक तिह भजु मना भउ निधि उत्तराहि पारि ॥  
सुख दुख जिह परसै नहीं लोभ मोह अभिमान ।  
कहु नानक सुनु रे मना सो मूरत भगवान ॥  
उत्सतति निदिआ नाहिं जिह कंचन लोह समान ।  
कहु नानक सुनु रे मना सुकर ताहि तैं जानि ॥  
हरख (कोव) शोक जा के नहीं चैरी भीत समान ।  
कहु नानक सुनु रे मना । मुक्ति ताहि तैं जान ॥  
भय काहू कउ देत नहिं नहिं भय मानत आनि ।  
कहु नानक सुनु रे मना । गिजानी ताहि चखानि ॥  
जिहि विधिया सगरी तजी लिओ भेल वैराग ।  
कहु नानक सुनु रे मना ! तिह नर माथै भाग ॥  
जिहि माया ममता तजी सब ते भयो उदास ।  
कहु नानक सुनु रे मना । तिह घटि ब्रह्म-मिवास ।

जिहि प्रानी हउ मैं तजी करता राम पछान।  
कहु नानक वह मुक्त नर यह मन साची मान॥  
भय नासन दुर्मति हरण कलि मैं हरि को नाम।  
निस दिनि जो नानक भजे सफल होइ तिह काम॥  
जिहवा हुन गोविंद भजहु करन सुनहु हरि नाम।  
कहु नानक सुन रे मना! परहि न जम के धाम॥  
जो प्रानी ममता तजै लोभ मोह अहँकार।  
कह नानक आपन तरै औरन लेत उधार॥  
जिउ स्वमा और पेखना ऐसे जग को जानि।  
इन मैं कछु साचो नहीं नानक बिन भगवान॥  
निश दिन माथा कारणे प्रानी डोलत नीत।  
कोटन मैं नानक कोऊ नारायण जिह चीत॥  
जैसे जल तै बुदबुदा उपजै बिनसै नीत।  
जग रचना तैसे रची कहु नानक सुन मीत॥  
जो सुख को चाहे सदा सरनि राम की लेह।  
कहु नानक सुनु रे मना! हुर्लभ मानुख देह॥  
माथा कारनि ध्यावहीं मूरख लोग अजान।  
कहु नानक बिनु हरि भजन विर्था जन्म सिरान॥  
जो प्रानी निसि दिनि भजै रूप राम तिह जानु।  
हरि जन हरि अंतरु नहीं नानक साची मानु॥  
मनु माइआ मैं फँधि रहिओ विसरिओ गोविंद नाम।  
कहु नानक बिन हरि भजन जीवन कउने काम॥  
प्रानी राम न चेतई मद माथा के अंध।  
कहु नानक हरि भजन बिनु परत ताहि जम फंद॥  
सुख मैं बहु संगी भए दुख मैं संगि न कोइ।  
कहु नानक हरि भज मना! अंत सहाई होइ॥  
जन्म जन्म भरमत फिरिओ मिठि न जम को त्रासु।  
कहु नानक हरि भजु मना! निर्भय पावहि बासु॥  
जतन बहुत मैं करि रहिओ, मिठिओ न मन को मान।  
दुर्मति सिउ नानक फँधिओ राखि लेहु भगवान॥  
बाल ज्वानि और बृद्धन तीनि अवस्था जानि।  
कहु नानक हरि भजन बिनु विरथा सब ही मान॥  
करणो हुतो सु ना किओ परिओ लोभ के फंद।  
नानक समये रमि गहओ अब क्यों रोवत अंध॥  
मन महआ मैं रमि रहो निकसत नाहिन मीत॥  
नानक मूरत चित्र जिउ छाइत नाहिन भीत॥  
नर चाहत कहु और औरै की औरै भई॥  
नितवत रहिओ ठउर नानक फाँसी गल परी॥

जतन बहुत सुख के किये दुख को कियो न के  
कहु नानक सुन रे मना! हरि भवे सो हे  
जगत भिखारी फिरत है सब को दाता र  
कहु नानक मन सिमरु तिह पूरन होवहिं क  
झूठे मानु कहा करै जगु सप्ते जिउ ज  
इन मैं कछु तेरो नहीं नानक कहिओ बख  
गरव करत है देह को बिनसै छिन मैं मी  
जिहि प्रानी हरि जस कहिओ नानक तिहि जग जी  
जिह घटि सिमरन राम को सो नर मुक्ता ज  
तिहि नर हरि अंतर नहीं नानक साची म  
एक भक्ति भगवान जिह प्रानी कै नाहि ४  
जैसे सुकर सुआन नानक मानो ताहि ५  
सुवामी को यह जिउ सदा सुआन तजत नहि नित्त।  
नानक इह विधि हरि भजड इक मन होइ इक चित्त॥  
तीरथ ब्रत और दान करि मन मैं धरे गुमान।  
नानक निषफल जात हैं जिउ कूँचर असनान॥  
सिरु कॅपिओ पगु डगमगै नैन ज्योति ते हीन।  
कहु नानक यह विध भई तऊ न हरि रस लीन॥  
निज करि देखिओ जगत मैं कोइ काहु को नाहि।  
नानक थिर हरि भक्ति है तिह राखो मन माहि॥  
जग रचना सब झूठ है जानि लेहु रे भीत॥  
कहु नानक थिर ना रहे जिउ बाल की भीत॥  
राम गहओ रावन गहओ जा कउ त्रह परिवार।  
कह नानक थिर कछु नहीं सुपने जिउ संसार॥  
चिंता ताकी कीजिए जो अनहोनी होइ।  
यह मारगु संसार को नानक थिर नहि कोइ॥  
जो उपजिओ सो बिनसि है परो आजु के काल।  
नानक हरि गुन गाइ ले छाडि सबल जंजाल॥  
बल छुट क्यों बंधन परे कछू न होत उपाय॥  
कह नानक अब ओट हरि गज जिउ होहु उपाय॥  
बल होया बंधन छुटे सब बिछु होत उपाय॥  
(नानक) सब कुछ तुमरे हाथ मैं तुम ही होत उपाय॥  
संग सखा सब तजि गये कोउ न निवदिओ गाय॥  
कह नानक इह विषत मैं ट्रेक एक रघुगाय॥  
नाम रहिओ साधु रदिओ, रहिओ गुरु गोविंद॥  
कहु नानक इह जगत मैं किन जपिओ गुरु गंद॥  
राम नाम उर मैं गहिओ जाके सग नहि दोय॥  
जिह सिमरत संकट मिटै दरग तिदारं दोय॥

## गुरु गोविन्दसिंह

(पूर्वनाम—गोविन्दराय, जन्म—वि० सं० १७२३ पौष शुक्रा ७, जन्मस्थान—पटना। पिताका नाम—गुरु देवदहुड़, आका नाम—गजूरी। श्रीराम—कार्तिक शुक्रा ५, वि० सं० १७६५)

अब जियों तिहँ को जग में सुख तें  
हरि चित्त में खुद विचारै।  
देह अनित्त न नित्त रहै जसु  
नाव चढ़े भवसागर तारै॥  
धीरज धाम बनाइ इहै तन बुद्धि  
मु दीपक ज्यों उजियारै।  
जानहि की बहनी मनो हथ  
लै कायरता कतवार बुहारै॥



का भयो जो सबही जग जीत सु लोगन को बहु आस दिखायो।  
और कहा जु पै देस विदेसन माहिं भले गज गाहि वैधायो॥  
जो मन जीतत है सब देस वहै तुमरे नृप हाथ न आयो।  
लाज गई कछु काज सन्यो नहिं लोक गयो परलोक गमायो॥  
भाते मतंग जरे जर संग अनूप उतंग सुरंग संवारे।  
कोटि तुरंग कुरंगहु सोहत पैन के गैन को जात निवारे॥  
भारी भुजान के भूप भली विधि नवत सीस न जात विचारे।  
एते भए तो कहा भए भूपति अंत को नाँगेहि पाँय तिधारे॥

प्रानी ! परमपुरुष पग लागो।

सोहत कहा भोह-निदा मैं, कवहुँ सुचित है जागो॥  
औरैन कहा उपदेसत है पशु, तोहि प्रबोधन लागो।  
संचत कहा परे विसियन कहै, कवहुँ विषय रस त्यागो॥  
कैवल करम भरम से चीनहु, धरम करम अनुरागो।  
संग्रह करो सदा सिमरन को, परम पाप तजि भागो॥  
जाते दुःख पाप नहि भेटै, काल जाल ते त्यागो।  
जो सुख चाहो सदा सवन को, तो हरि के रस पागो॥

रे मग ! ऐसो करि संन्यास।

बन से सदन सबै करि समशहु, मन ही माहि उदास॥  
जत की जटा जोग को मंजनु, नेम के नवन बढ़ायो।  
ग्यान-गुरु, आतम उपदेसहु, नाम-विभूति लगायो॥  
अल्प अहर सुख सी निद्रा, दया छिमा तन प्रीत।  
सील संतोख सदा निरवाहियो, हैवो विगुन अतीत॥  
काम क्रोध हंकार लोभ हठ, मोह न मन सौं ल्यावै।  
तथ ही आत्मतत्त कों दरसै, परम पुरुष कहैं पावै॥

रासलीलाके पद

जय आई है कातक की रुत सीतल,  
कान्ह तबै अतिही रसिया।  
संग गोविन खेल विचार करयो,  
जो हुतो भगवान महा जिया॥

आपवित्रन लोगन के जिह के पग  
लागत पाप सबै नसिया।  
तिह को सुनि तिरियन के सँग खेल,  
निवारहु कोम इहै वसिया॥  
सुख जाहि निसापति की सम है,  
बन मैं तिन गीत रिक्षयो अरु गायो।  
ता सुर को धुनि स्वतन्त्र मैं  
ब्रजहु की विया सब ही सुनि पायो॥  
धाइ चलीं हरि के मिलिवे कहुँ  
तउ सब के मन मैं जब भायो।  
कान्ह मनो मृगनी जुबती  
छलिवे कहु घंटक हेर बनायो॥  
गह आइ दसो दिसि ते गुपिया  
सबही रस कान्ह के साथ परी।  
पिल कै सुख कान्ह को चंदकला  
सु चकोर-सी मन मैं उमरी॥  
हरि को युनि सुख सुआनन पेखि  
किधौं तिन की ठग डीठ लरी।  
भगवान प्रसन्न भयो फिल कै  
कवि 'स्याम' मनो मृग देख मृगी॥  
ख्खन ते रस चूबन लग  
झरैं झरना गिरि ते सुखदाई।  
वास चुगैं न मृगा बन के  
खग रीक रहे धुनि, जो सुनि पाई॥  
देवगंधार विलावल सारेंग  
की रिक्ष कै जिह ताम चसाई।  
देव सबै मिलि देखत कौतुक  
जौ सुरली नैदलाल बजाई॥  
ठाह रही जमुना सुनि कै  
धुनि रग भले सुनिवे को चहे है।  
मोह रहे बन के गज औ  
इकठे मिलि आवत सिह सहे है॥  
आवत हैं सुर-मण्डल के सुर  
त्याग सबै सुर ध्यान कहे है।  
सो सुनि कै बन के खगबा  
तरु ऊपर पंख पसार रहे है॥

## मोहका महल ढहेगा ही

महल-खंडहर

एक सच्ची घटना है—नाम और स्थान नहीं गतलाना है, उसकी आवश्यकता भी नहीं है। एक विद्वान् संन्यासी मण्डलेश्वर थे। उनकी बड़ी अभिलाषा थी गङ्गाकिनारे आश्रम बनवानेकी। वे परिश्रमसे, कई वर्षकी चिन्ता और वेष्टके परिणामस्वरूप द्रव्य एकत्र हुआ। भूमि ली गयी, भवन बनने लगा। विशाल भव्य भवन बना प्राश्रमका और उसके गृह-प्रवेशका भंडारा भी वे उत्साहसे हुआ, सैकड़ों सालुओंने भोजन केया। भंडारेकी जूठी पत्तलें फेंकी नहीं जा सकी थीं, जिस चूलहेपर उस दिन भोजन बना पा, उसकी अग्नि-बुझी नहीं थी, गृह-प्रवेशके दूसरे दिन प्रभातका सर्व सामीजीने नहीं देखा। उसी रात्रि उनका परलोकवस्तु हो गया।

यह कोई एक घटना हो, ऐसी तो कोई बात नहीं है। ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं। हम इसे देखकर भी न देखें……।

कौड़ी कौड़ी महल बनाया, लोग कहे घर मेरा।  
ना घर मेरा, ना घर तेरा, चिड़िया रैन बसेरा ॥

यह संतवाणी कितनी सत्य है, यह कहना नहीं होगा। जिसे हम अपना भवन कहते हैं, क्या वह हमारा ही भवन है? जितनी आसक्ति, जितनी बहुतासे हम उसे अपना भवन मानते हैं, उतनी ही आसक्ति, उतनी ही ममता उसमें कितनोंकी है, हम जानते हैं? लाखों चींटियाँ, गणन से बाहर मविक्याँ, मच्छर और दूसरे छोटे कीड़े, सहस्रों चूहे, सैकड़ों मकड़ियाँ, दर्जनों छिपकलियाँ,

कुछ पक्षी और पतंग, ऐसे भी दूसरे प्राणी जिन्हें हम ज्ञानतेक नहीं—लेकिन मकान उनका नहीं है, यही कैसे? उनका ममत्व भी तो उसी कोटि-का है, जिस कोटिका हमारा।

मकान—महल—दोनोंकी गति एक ही है। बड़ी लालसासे, वे परिश्रमसे उसका निर्माण हुआ। उसकी साज-सज्जा, उसका वैभव—लेकिन एक-भूकम्पका हलका धक्का……। आज तो किसी देशमें कभी भी मनुष्यकी पैशाचिकता ही भूकम्पसे भी अधिक प्रलय कर सकती है। महानाशके जो मेघ विश्वके भाग्याकाशपर धिरते जा रहे हैं—कहाँ कब वायुयानोंसे दारूण अग्नि-वर्षा प्रारम्भ होगी, कोई नहीं जनता। परमाणु या उससे भी ध्वंसक किसी अद्धका एक आघात—क्या रूप होगा इन भवनों और महलोंका?

कुछ न हो—काल अपना कार्य बंद नहीं कर देगा। जो बना है, नष्ट होकर रहेगा। महलका परिणाम है खंडहर—वह खंडहर, जिसे देखकर मनुष्य ही डर जाता है। रात्रि तो दूर, जहाँ दिन-में जाते समय भी सावधानीकी आवश्यकता पड़ती है। मनुष्यका मोह उससे महल बनवाता है और महल खंडहर बनेगा, यह निश्चित है।

केवल महल ही खंडहर नहीं होता। जीवनमें हम जो मोहका विस्तार करते हैं—धन, जन, मान, अधिकार, भूमि—मोहका महल ही है यह सब और मोहका महल ढहेगा ही। उसका वास्तविक रूप ही है—खंडहर।

# उदासीनाचार्य श्रीश्रीवन्द्रजी

## उदासीन-सम्प्रदायके प्रवर्तक

[ जन्म—वि० सं० १५५६ भाद्रपद शु० ९ । जन्म-स्थान—तलबंडी ( लाहौरसे ६० मील पश्चिम ) । पिताका नाम—श्रीनानकदेव । माताका नाम—श्रीसुलक्षणादेवी । गुरुका नाम—अविनाशीरमंडी । अन्तर्धान—चन्द्रकी पार्वत्य गुफाओंमें । ]

( प्रेषक-प० श्रीसोतारामजी चतुर्बंदी एस० ८०, एल-प्ल० १० )

प्रश्न—हे जीव ! तुम किसकी आज्ञासे, किसके समझानेपर इस संसारमें आये ?

उत्तर—सद्गुरु अविनाशी मुनिद्वारा दीक्षित होकर पूर्वजन्मके लेखके अनुसार श्रौतप्रवर्ज्या लेकर लौक-कल्याणके लिये मैं आया हूँ; अतः अब तुमलोग सावधान अर्थात् आत्मज्ञ होकर अलव युक्ष प्रतिदानन्द परमेश्वरका समरण करो और अपने ग्राम और नगरी अर्थात् समाजका उद्धार कर दालो । ज्ञान ही गुददी है, ज्ञान ही टोपी है, यत या संयम ही आइवंद अर्थात् कमरवंद है । शील ही कैपीन है, अपनेको कर्मके कन्धनसे मुक्त समझना ही कन्धा है, इच्छारहित होनेकी भावना ही झोली है, सुक्त ही टोपी है, गुरुके मुखसे सुना हुआ उपदेश ही बोली है, धर्म ही चोला है, सत्य ही सेली ( उपवीत ) है, मर्यादापालन ही गलेमें पड़ी हुई कफनी है, ध्यान ही घटुवा है, निरत ही सीना है, ब्रह्म ही अञ्चल है जिसे सुजान या चतुरलोग पहनते हैं । निर्लेप-नृत्ति ही भोरछल है, द्वैप-ऐन निर्भयता ही जंगडोरा है, जाप ही जाँचिया है, गुण ही उद्धयिनी ( उडनेकी विद्या ) है, अनहद नाद या अनाहत वाणी ही सिंगीका शब्द है, लजा ही कानकी मुद्रा 'कुँडल' है, शिव ही विभूति है, हरिभक्ति ही वह मृगलाला है, जिसे गुरुपूज पहनते हैं । यतोप ही सूत है, विवेक ही धर्म हैं, जिनसे ते यहुत-री यंकलियाँ उस कन्धमें सिली हुई हैं, जिन्हें सुरत या यात्राल्प-प्रीतिकी रुद्ध लेकर सद्गुरु सीता है । इसे जो आगे पाय रखता है, वह निर्भय होता है । इस श्याम, शंखर, पीत और रक्तर्णीके बख्लाण्डोंसे बनी हुई कन्धाको जो पहनता है, वही एमारा गुरभाई है । तीन गुण अर्थात् गति, रज, तमसी चाक्षकहे अग्न-मन्थन करके दुःख-मुक्ति कुर्दमें हमने अपनी देह जलायी है, शोभाएं युक्त गंधमारी भूमियजीहे चरणकर्मलोंमें हमारी अत्यन्त प्रीति रखी हुई है । हमने भारत भोजन ही अमृत बनाकर प्राप्त किया है, इसकी दमर मनमें भैंस-नुरेकी भावना ही

नहीं रह गयी है । पात्र-अपात्रका विचार ही हमारा बहुगुण-संयुक्त फरहा, कमण्डल, तुम्ही और किश्ती है । जो सान्ति उस परम अमृतके पेयको मन ल्याकर पीता है, वही शान्ति पाता है । वह परम शक्ति इडा और पिङ्गलमें दौड़ती रहती है और फिर सुषुप्तामें स्वाभाविक रूपसे निवास करने लगती है । हमारा काम है कि हम सम्पूर्ण इच्छाएँ छोड़कर उस निराश ( इच्छाहीन ) मठमें निरन्तर ध्यान लगाये रहें और उस निर्भय नारीमें गुरुज्ञानका दीपक जलायें, जहाँ स्थिरता ही हमारी छूट्ठि हो, अमरत्व ही हमारा दण्ड हो, धैर्य ही हमारी कुदाली हो, तप ही खड़ग हो, बशीकार या इन्द्रियोंको बशमें करना ही आसा अर्थात् ऐका हो । समदृष्टि ही चौमान हो, जिससे कि किसी प्रकार मनमें हर्ष या शोक न आये । सहज वैयागीको इसी प्रकार सायांकी सम्पूर्ण मोहिनी त्यागकर वैराग्य साधना चाहिये । ऐसा करनेवालेके लिये भगवान्का नाम ही पक्ष्वर या कवल है । पक्षन या प्राणायाम ही उसका वह धोड़ा है, जिसके लिये कमांसे विरक्ति ही जीन है, तत्त्व ही उसका जोड़ा या वेश है, निरुण ही ढाल है, गुरुका शब्द ही धनुष है, चुदि ही कवच है, प्रीति ही बाण है, ज्ञान ही कश्य है, गुण ही कटरी है । इस प्रकार संयमके शब्दोंसे मुसजित साधक अपने मनको मारकर जब सधारी करने लगता है, तब वह मायके विषम गढ़को तोड़कर निर्भयतापूर्वक अपने धर अर्थात् ब्रह्ममें लौट आता है । यहाँ पहुँचनेपर अनेक प्रकारके बाद्यों और शह्वासे उसका ख्यात बनाया जाता है ।

स्तुः अखण्ड आनन्दरूप ब्रह्म ही साधकका यशोपवीत है, मानसिक निर्मलता ही उसकी धोती है, 'सोऽहम्' जप ही सची भाला है, गुरुमन्त्र ही शिला है, हस्ताम ही गायबी है, जिसे वह स्त्रि आउनपर धैठकर शान्तिके साथ जपता है । पूर्ण ब्रह्मका ध्यान ही उसका तिलक है, यश ही तर्पण है, प्रेम ही तूजा है । ब्रह्मानन्द ही भोग है, निर्वरता ही संघर्ष है और ब्रह्मका साक्षात्कार ही छापा है । इतना होनेपर वह

अपने मनके सम्पूर्ण संकल्प-विकल्प स्वयं नष्ट कर डालता है। इस व्रहणकी प्रीति ही पीताम्बर है, मन ही मृगछाला है, चित्तमें उस चिदम्बर परमेश्वरका सारण ही रुद्धुन माला है। ऐसे व्यक्तिकी जो बुद्धि पहले रोएँबाले बाध्वर, बुल्ह या ऊँची टोपी, खौस अर्थात् जूते और खड़ाउँओंमें न रहती थी, वह सब प्रकारके चुड़े और शृङ्खला

आदि बन्धन तोड़कर उदासीन साधुका बाना भ्रहण लेता है और केवल जटाजूटका मुकुट बाँधकर ऐसा हो जाता है कि फिर उसे कोई बन्धन नहीं होता। नान पुत्र श्रीचन्द्रने यही मार्ग बताया है, जिसका रहस्य लेनेपर ही तत्त्व मिल सकता है। इस मात्राको जो धारण लेता है, वह आधागमनके सब बन्धनोंसे मुक्त हो जाता

## स्वामी श्रीसंतदासजी

[ जन्म—वि० सं० १६९९ फाल्गुन कृष्ण ९ उख्तार, देहत्याग—वि० सं० १८०६ फाल्गुन कृष्ण ७ शनिवार ]  
( प्रेषक—भण्डारी श्रीवंशीदासजी साधु वैष्णव )

इनाम में ध्यान धर, जो सौंसा मिल जाय ।  
चौरासी विच संतदास, देह न धारे काय ॥  
न शब्द विच परम सुख, जो मनवा मिलि जाय ।  
एसी आवै नहीं, दुख का धका न खाय ॥  
हाँ पाथा संतदास, राम-भजन का सुख ।  
हाँ सबे ही मिट गया, चौरासी का दुख ॥  
। को दीसे नहीं, गंदा सब संसार ।  
। से बंदा होत है, कोइ गहे नाँव तत्सार ॥

राम भजन की औषधी, जो अठ पहरी खाय ।  
संतदास रच पच रहे, तो चौरासी मिट जाय ॥  
राम रत्न धन संतदास, चौड़े धरथा निराट ।  
छाने धोलै मेलिये, कुछ शूल-कपट की साट ॥  
राम रत्न धन संतदास, ध्यान जतन कर राय ।  
इस धन की महिमा करत, सब संतन की साय ॥  
तीन लोक कँ पूँठ दे, सोहि कहेगा राम ।  
वही लहेगा संतदास, परम धाम विसराम ॥

## रामस्नेही-सम्प्रदायके स्वामी श्रीरामचरणजी महाराज

नाम—सं० १७७६, हूँडाड़ प्रान्तके सोडा नामक ग्राममें। पिताका नाम—श्रीवक्तरामजी, जन्मनाम—श्रीरामकृष्ण। देहत्याग—१५ ]

( प्रेषक—संत रामकिशोरजी )

नमो राम रमतीत सकल  
व्यापक धणनामी ।  
सब पौपै प्रतिपाल सबन  
का सेवक स्वामी ॥  
करणामय करतार कर्म  
सब दूर निवारै ।  
विछलता विडाइ भक्त तत्काल उधारै ॥  
चरण बंदन करै सब ईशन के ईश ।  
पालक तुम जगत गुरु जग जीवन जगदीश ॥  
दंदधन सुख राशि चिदानंद कहिये स्वामी ।  
रुलंब निर्लेप अकल हरि अन्तर्यामी ॥  
पार मध्य नाहिं कौन विधि करिये सेवा ।  
निराकार आकार अजन्मा अविगत देवा ॥

रामचरण बंदन करै अल्ह अखंडित गर ।  
सुखम थूल खाली नहीं रखा सकल भरपूर ॥  
नमो नमो परम्पर नमो नदकेवल राया ।  
नमो अभंग असंग नहीं कहुँ गया न आया ॥  
नमो अलेप अछेप नहीं कोइ कर्म न काया ।  
नमो अमाप अथाप नहीं कोइ पार न पाया ॥  
शिव सनकादिक शीष लो रटत न पावे भ्रंत ।  
रामचरण बंदन करै नमो निरंजन कंत ॥

कुण्डलिया

शोक निवारण दुःख दूरण निराति यिएँगमार ।  
अनादि अकल अलिपत अगम निगम न पावे पार ॥  
निगम न पावे पार पूर मर्दग रागमारी ।  
मुद्राकिल गें आगमन करै करणानिधि नामी ॥

रामचरण भज राम कूँ सो समर्थ बड़े दातार ।  
गोकु निवारण दुख हरण विपति विहंडनहार ॥

समर्थ राम कृपालु हो दाता बड़े दयाल ।  
किरपा लघु दीरक करो निर्धन करण निहाल ॥  
निर्धन करण निहाल हरो विपदा दे समता ।  
निवल सबल कर ल्योह मूक मूढ़ करिहो वकता ॥

रामचरण कह रामजी ! येह तुमारी चाल ।  
समर्थ राम कृपालु हो दाता बड़े दयाल ॥

### साक्षी

कहवो सुणओ देखवो चित की चितवन जाण ।  
राम चरण इनके परै अकह ब्रह्म पीछाण ॥  
राम राम रसना रठो, पालो शील संतोष ।  
दया भाव क्षमा गहो, रहो सकल निर्दोष ॥

### कुण्डलिया

समर्थ राम दयाल हरण दुख सुख को दाता ।  
कर्म ओग दुख आय मेट हरि करिहें शाता ॥  
वासूँ सब आसान करै ऊ आपण चाहो ।  
हाय किसी के नाहिं वेद वायक यूँ गायो ॥  
तातें रखिये समर्थ रामचरण विश्वास ।  
राम सबल छिन एक में देवै सुख विलास ॥

### पद

निश्चिवासर हरि आगै नाचूँ ।  
चरण कमल की सेवा जाचूँ ॥ टेक ॥

स्वर्गलोक का सुख नहिं चाझूँ ।  
जन्म पाय हरिदास कहाँ ॥  
नार पदारथ मनाँ विसालूँ ।  
भक्ति विनाँ दूजो नहिं धारूँ ॥  
ऋद्धिसिद्धि लक्ष्मी काम न मेरे ।  
उँझूँ चरण शरण रहुँ तेरे ॥  
शिव सनकादिक नारद गावै ।  
सो साहिव मेरे मन भावै ॥

### सर्वैया

बीतति राम निरंजन नाथ सें हाय गहो हम तोर झृणी है ।  
और नहीं तिहुँ लोक में दीरक ज्याम सदा सुखदान धणी है ॥  
तेरे तो प्रभुजी ! बड़े-बड़े दास हैं मो-से गरीब की कौन गिणी है ।  
रामजी विहंड विचार हो राखरो मो-से कछूँ नहीं भक्ति बणी है ॥

### पद

रुठा राम रिक्षाय मनाँ, निशि वासर गुण गाँ ॥  
नटवा ज्यूँ नाटक कर मोहुँ, सिधू राय सुणाँ ॥

॥ टेक ॥

शील संतोष दया आभूषण, क्षमा भाव बढ़ाऊँ हो ।  
सुरति निरति साँई में राखूँ, आन दिशा नहिं जाऊँ हो ॥  
गर्वनुमान पॉव सें पेलूँ, आपो मन उड़ाऊँ हो ।  
साहिव की सत्यिन सूँ कबहूँ, राग द्वेष नहिं लजूँ हो ॥  
पॉचूँ पकड़ पनीसूँ चूरूँ, त्रिगुण कूँ विसराऊँ हो ।  
चौथो दाव चेत कर खेलूँ, मौज मुक्ति की पाऊँ हो ॥  
इस विधि करके राम रिक्षाऊँ, प्रेम प्रीति उपजाऊँ हो ।  
अनंत जन्म को अन्तर भागो, रामचरण हरि भाऊँ हो ।

## संत श्रीरामजनजी वीतराग

[ जन्म—वि० सं० १८०८ के आसपास चिह्नौड़िके समीपवासी किसी आम में, वैश्यकुलमें, संत श्रीरामचरणजी महाराज रामन्नैह सम्प्रदायपालोंके शिष्य ]

( प्रेमक—रामनेही-सम्प्रदायका मुख्य गुरुद्वारा, शाहपुरा )

संत सदासदि राम रटारटि काम घटापटि दाम निवारे ।  
लोभ कटाकटि पाप फटापटि मोह नटानटि मानहूँ डारे ॥  
चाल नटापटि संग लटापटि देग उटापटि कारिज सरे ।  
खोहि खटापटि में हटाहटि तीन मिटामिटि आप उधारे ॥  
संतन के सान जन्मन ल्य हैं शीतल यैन सुगंव है चाणी ।  
गांति करै उन्द के दिग्मि आवत पावत नाम सुधा रस जाणी ॥

पारस प्रेम को परस लगाइ कै ताहि करै निज आपत्ति न्यानी  
राम ही जन वै संत सदा धनि मो भन बात ऐसि करि मानी

संतो देखि दिवाना आया ।

निस दिन रामहि राम उच्चारै जाकै नहीं मोह नहिं माया ॥ टेक  
आठौं पहर राम रस पीवै, विसर गये गुण काया ।  
अमल एकरति उतरै नाही, दूँगा दूण चढ़ाया ॥

छके दिवाना पद गलताना, दुविध्या दूँद मिटाया ।  
 आपा रहत एकता वरतै, ऐसा परचा पाया ॥  
 विसरै नेम प्रेम कै छाजै, वाजै अनहद तूरा ।  
 अम्भर भरै झरै मुख सागर, झूलै वहाँ जन पूरा ॥  
 अणमै छोल अगम की बाताँ, राम चरण जी भालै ।  
 दास रामजन सरण जिनूँ की सदा राम रस चालै ॥

संतो संत भला है सूता ।  
 जागि न जोवै जगत दिस कबहूँ, वै सतगुर का पूता ॥ दे ॥  
 निज मंदिर मैं निर्भय सोवै, जीतै रिपु अवधूता ।  
 जड़े कपाट दोऊ सम इस के, ग्यान दीप दिल जूता ॥  
 दीनी सीख गरौ जग संगी, काम हराम दुख दूता ।  
 ध्यान समाधि अखंड ल्याई, पाई जुकि अकृता ॥  
 अब तो संत साँह सूँ राता, मिठ्या काल का नूता ।  
 रामजन जन राम समाना, भाजि गया भ्रम भूता ॥

## संत श्रीदेवादासजी

[ जन्म—वि० सं० १८११ के लगभग—जयपुर राज्यमें । स्वामी रामचरणजी महाराजके शिष्य ]  
 ( ब्रेपक—श्रीरामस्नेही-सम्प्रदावका मुख्य गुरुद्वारा, शाहपुरा )

रसना सुमिरे राम कूँ तो कर्म होइ सब नास ।  
 देवादास ऐसी करै, तो पावै सुख्ख बिलास ॥  
 रस ममा को ध्यान धरि यही उचरै ग्यान ।  
 दुविध्या तिमिर सहजै मिटै उदय भक्ति को भान ॥  
 जल तिरबे को तूँ बढा भौ तिरबे कूँ राम ।  
 देवादास सब संत कह सुमरो आँहूँ जाम ॥  
 तिरि, तिरावै, फिर तिरे, तिरताँ लगै न बार ।  
 देवादास रटि राम कूँ बहुत ऊतन्या पार ॥  
 देवादास कह सुरत सों वै मूख बड़ा अग्यान ।  
 पगध्या पाङ्घ्या हथ सूँ करै महल को ध्यान ॥  
 देवा रसना गहलै न्यालि कै छद्य सूरति नाम ।  
 राह बतावै और कूँ आगे किया मुकाम ॥  
 देवा उलटी बात की संत जाणत हैं रीत ।  
 जागत सुमिरै राम कूँ सूता अधिकी प्रीत ॥  
 करणी सूँ कृपा करै कृपा करणी माँय ।  
 देवादास कृपा बिना करणी होती नाय ॥  
 देवादास कृपाल की कृपा सब पर जोहि ।  
 करणी कर करणा करै ता पर गजी होहि ॥

नर देही की आस देवता करत है ।  
 मूख मूढ़ अग्यान भूल में फिरत है ॥  
 समझे नाहीं सार बूँदिया धर रहै ।  
 देवा सुमिरो राम और तज बार रहै ॥  
 खासा मलमल जोय पहरते मीरजी !  
 छप्पन भोजन आदि पावते खीर जी ॥

अमराव अनेक साथ कूँ होत है भीर जी ।  
 देवादास बिन राम सहै दुख भीर जी ॥  
 बाँके बाँके कोट जुणाते भीर जी ।  
 महल कवाण्याँ माहि बैठते भीर जी ॥  
 हुक्मा सेती केलि करत नहि याकते ।  
 देवादास बिन राम भये ते खालते ॥  
 चार खूँट के माय॑ चक्रवति एकही ।  
 वा सम दूजो नाहिं पृथ्वी में देखही ॥  
 वे भी गये बिलाय कहूँ मैं तोय जू ।  
 देवादास वा सम नहीं अब कोय ज ॥  
 पहलै धन कूँ बिलस पीछै गयो चीत रहै ।  
 दुख को बार न पार रखी चहरीत रहै ॥  
 धनबंता धन मार चढै तन भीत रहै ॥  
 देवा भक्ति बिना वह धारै नहीं प्रतीत रहै ॥  
 मनखा देही पाय कियो नहि चेत रहै ।  
 राम भजन कूँ भूल माया कूँ लेत रहै ॥  
 खौरासी मैं जाय पड़े मुख रेत रहै ।  
 देवा दुनि माने नाहिं दुःख सूँ रेत रहै ॥

हथ पाँव मुख नैन श्रवण सब रीय रहै ।  
 मनखा देही पाय तज्यो जगदीग रहै ॥  
 दोले विस का बैन धर्म पर रीय रहै ॥  
 देवा वै नर खासी मारक विद्या वीय रहै ॥  
 जग सूँ होय निकाम तजों जग नेह जी ॥  
 आस वास सुँग आदि मिथ्या पुण्य नेह जी ॥

यथान भक्ति वैराग साज सुख लीजिये ।  
देवादास दिल सोध राम रस पीजिये ॥  
भोग बाट अरु बास कटायाँ काटिये ।

मोह क्रोध मद लोभ हटाया हाटिये ॥  
समता सील संतोष सुखदि कूँ खाटिये ।  
देवादास अठ पहर राम कूँ राटिये ॥

## संत श्रीभगवानदासजी

[ आविभाव—पीपाड ग्राम ( मारवाड ), वैश्य कुल, वि० सं० १८२३, श्रीरामचरणजी महाराजके शिष्य—रामसनेही-सम्प्रदाय ]  
( प्रेषक—श्रीरामसनेही-सम्प्रदायका मुख्य गुरुदारा, शाहुरा )

तरु बिना सैल अरु दीपक विहूणो महल  
तेल बिना दीपक जो झेंधेरो बखानिये ।  
अंकुर विहूणो राज, द्विज विद्या हीण होइ  
अथ जो लगाम कढ़ जड़ता जो भानिये ॥  
अक्लर जो मात्र हीण, दीनता विचारै सिंघ  
रण में मुइत राव पाणी छीण जानिये ।  
ऐसे ही मनख तन भगवान ध्यान बिना  
चातुर स्वरूप तन असोभत ठानिये ॥  
  
तेज बिना दूरी अरु सूरी दुध बिना होये  
लज्जा बिना नारी, नग जोती ही न ठानिये ।  
सुधा बिना चंद्र अरु चंद्र बिना रेण ऐसे  
फूल जो सुवास बिना निर्फल बखानिये ॥  
धन जो धर्म हीन दीन बाच नृप बोलै  
मानूँ तो कवान चलै तीर बिना तानिये ।  
ऐसे ही मनख तन भगवान ध्यान बिना  
चातुर स्वरूप तन असोभत ठानिये ॥  
  
जो नर राम नाम लिव लावै ।  
तानूँ कोई भय नहि ध्यावै बिघ्न बिलै होय जावै ॥

अगल बगल का छाड़ि पसारा मन विश्वास उपावै ।  
सर्वग साँहै एकहि जाणे जो निर्भय गुण गावै ॥  
राहु केतु अरु प्रेत सनैश्वर मंगल नहीं दुखावै ।  
सुरज सोम अरु गुरु बुद्ध ही शुक्र निकट नहिं आवै ॥  
मैहूँ बीर विजासन ढाकण नाहर सिंह दूर रहावै ।  
दिसासूल अरु भद्रा जाणूँ सूँण कुसूँण बिलावै ॥  
मठ दोठ अरु मौत अकाली जम भी सीस निवावै ।  
सब ले सरणे निर्भय बासा भगवानदास जिन गावै ॥

छाड़ि के राम नाम लिव लाई ॥ टेर ॥  
स्वाद किया भव जल में बूढ़े ऊँडे जाइ बसाई ।  
पाँचाँका फँद माहीं उलझायो, सो तो सुलझै नहीं ॥  
देखो मीन मरे रस सेती, गंध से भैंवर विलाही ।  
कुंजर तुच्छ, पतंग नैन सूँ, सारंग शब्द दिलाही ॥  
एक एक इन्द्री के लासे पाँचा मृत्यु जु आई ।  
तो सो मुख कैसी विधि पावै एकै पाँच सधाई ॥  
स्वारथ स्वाद भोह तजि भाजो लागो जन-सरणाई ।  
भगवानदास भवसागर भारी तब सहजै तिर जाई ॥

## श्रीदरिया ( दरियाव ) महाराज ( रामसनेही धर्मचार्य )

( आविभाव—वि० सं० १७२३, गादपद कृष्णा ८ । पिताका नाम—मनसारामजी । मरताका नाम—रीगवाई । गुरुका नाम—श्रीप्रेमदासजी महाराज । स्थान—‘जयतारण’ नामक ग्राम, मारवाड । देहावसान—अगहन शुडा १५ वि० सं० १८१५ )

### सद्गुरु

अंतर गो यहु जन्म को, सत्त्वुर भाँग्यो आय ।  
दरिया पति से रुठणो, अब करि प्रीति बनाय ॥  
जग दरिया हरि भक्ति की, युर वताई चाट ।  
भूल ऊजद जाय था, नर्क पहन के घाट ॥

द्वूष रहा भव सिंधु में, लोध मोह की धार ।  
दरिया गुरु तैरु मिला, कर दिया परले पार ॥  
नहि या राम रहीम का, मैं मतहीन अजान ।  
दरिया मुख बुध शान दे, सत्त्वुर किया मुजान ॥  
दरिया सद्गुरु कृपा करि, सब्द लगाया एक ।

### भगवानकी महत्त्वा

या साँचा राम है, और सकल ही झुठ ।  
मुख रहिये राम से, दे सबही को पूठ ॥  
प विलारै राम को, भ्रष्ट होत है सोय ।  
वे दीपक दोनों विना, अंधकार ही होय ॥  
य विलारै राम को, वैठ सब ही खोय ।  
रिया पड़ै अकास चढ़, राखनहार न कोय ॥  
रिया राम अगाध है, आत्म को आघार ।  
मिरत ही सुख ऊपजै, सहजहि मिटै विकार ॥

### उद्घोषणा

दरिया सो सूरा नहीं, जिन देह करी चकचूर ।  
म को जीत खड़ा रहै, मैं बलिहारी सूर ॥  
बाट खुली जब जिनिये, अंतर भया उजाओ ।  
जो कुछ थी सो ही बनी, पूरी मन की आस ॥  
बातों में ही वह गया, निकस भया दिन रात ।  
मुहल्लत जब पूरी भई, आन पड़ी जम धात ॥  
दरिया काया कारबी, मोसर है दिन चार ।  
जब लग स्वास सरीर में, अपना राम सँभार ॥

### संत-असंत-विवेचन

दरिया बगुल ऊजला, उज्ज्वल ही होय हंस ।  
वे सरबर मोती चुूँ, बा के मुख में मंस ॥  
बाहर से उज्जल दसा, भीतर मैला अंग ।  
ता सेती बौवा भला, तन मन एकहि रंग ॥  
मानसरवर मोती चुगै, दूजा नाहीं खान ।  
दरिया सुमिरै राम को, सो निज हंसा जान ॥  
राष्ट्र सरेवर राम जल, राग द्वेष बुछ नाय ।  
दरिया पीवै प्रीत कर, सो तिरपत हो जाय ॥  
दरिया लच्छन साध का, क्या गिरही क्या भेष ।  
निःकाशी निर्जन्य रह, बाहर भीतर एक ॥  
रहनी करनी साध की, एक राम का ध्यान ।  
बाहर मिलता सो मिलै, भीतर आत्म ग्यान ॥  
दरिया भंगत याध की, सहजै पलटै चंस ।  
कीट छाँड़ मुक्ता चुगै, होय काग से हंस ॥  
गोनी गंगत याध की, जो कर जानै कोय ।  
दरिया ऐसी गो करै, (जिह) कारज करना होय ॥

### प्रकीर्णि

दरिया गोता गद्दल जग, जगत नाहीं कोय ।  
जागे मे किर जगना, जगा कहिये सोय ॥

माया मुख जागै सबै, सो सूता कर जान ।  
दरिया जागै ब्रह्म दिस, सो जागा परमान ॥  
दरिया तो साँची कहै, झुठ न मानै कोय ।  
सब जग सुपना नीद में, जान्या जागन होय ॥  
जन दरिया उपदेस दे, जाके भीतर चाय ।  
नातर गैला जगत से, बक बक मरै बलाय ॥  
जन दरिया उपदेस दे, भीतर प्रेम सधीर ।  
गाहक होय कोइ हींग का, कहा दिलावै हीर ॥  
दरिया साँच न संचरै, जब घर घालै झुठ ।  
साँच आन परगट हुवै, जब झुठ दिलावै पूठ ॥

आदि अंत मेरा है राम ।

उन बिन और सकल बेकाम ॥  
कहा कहूँ तेरी अनुमै बानी ।  
जिन तें मेरी बुद्धि भुलानी ॥  
कहा कहूँ ये मान बहाई ।  
राम बिना सबही दुखदाई ॥  
कहा कहूँ तेरा सांख और जोश ।  
राम बिना सब बंधन रोग ॥  
कहा कहूँ इन्द्रिन का सुख ।  
राम बिन देवा सब दुख ॥  
दरिया कहै राम गुरसुखिया ।  
हरि बिन दुखी राम सँग सुखिया ॥

नाम बिन भाव करम नहीं छूटै ।  
साध संग और राम भजन बिन, काल निरंतर छूटै ॥  
मल सेती जो मल को धोवै, सो मल कैसे छूटै ।  
प्रेम का साखुन नाम का पानी, दोय मिल ताँता छूटै ॥  
भेद अभेद भरम का भाँडा, चौड़े पड़ पड़ फूटै ।  
गुरसुख सबद गहै उर अंतर, सकल भरम से छूटै ॥  
राम का ध्यान तू धरे ग्रानी, अमृत का मेह बूटै ।  
जन दरियाव अरप दे आपा, जरा मरन तब छूटै ॥

मैं तोहि कैसे विसलै देवा ।

ब्रह्म विस्तु महेसुर ईसा, ते भी बछै सेवा ॥  
सेस सहस्र मुख नित दिनध्यावै, आत्म ब्रह्म न पवै ।  
चाँद सूर तेरी आरति गावै, हिंदूय भक्ति न आवै ॥  
अनेत जीव जाकी करत भावना, भरमत विकल अथाना ।  
गुरु परताप अखड़ लै लानी, सो तोहि माहिं समाना ॥  
जन दरिया यह अकथ कथा है, अकथ कहा क्या जाइ ।  
पंछी कासोज भीन का मारा, घट घट रहा समाई ॥

जीव ब्रटाऊ रे बहता भाई भारग माई ।  
 आठ पहर का चालना, घड़ी इक ठहरै नाई ॥  
 गरम जम्म दालक भयो रे, तस्वाये गमीन ।  
 बृद्ध मृतक फिर गर्भ बरेता, तेरा यह भारग परमान ॥  
 पाप पुन भुख दुख की करनी, बेड़ी थारे लारी पाँच ।  
 पंच ठरन के बस पढ़ियो रे, कब धर पहुँचै जाय ॥  
 चौरासी बासो बस्यो रे, अपना कर कर जान ।  
 निस्त्रय निस्त्रल होयगो रे, पद पहुँचै निर्बान ॥  
 राम त्रिनातो को ठैर नहीं रे, जहं जावै दहं काल ।  
 जन दरिया मन उल्ट जगत सूँ, अपना राम सम्हाल ॥

साथी अल्ल निरंजन सोई ।

गुरु परताप राम रस निर्मल, और न दूजा कोई ॥  
 सुकल जान पर जान दशानिधि, सकल जोत पर जोती ।  
 जाके ध्यान सहज अध नासै, सहज मिटै जम छोती ॥  
 जा की कथा के सरबन ते ही, सरबन जागत होई ।  
 ब्रह्मा विस्तु महेस अब दुर्गा, पार न पावै कोई ॥  
 सुमिर सुमिर जन होहैरै राना, अति ज्ञाना से ज्ञाना ।  
 अजर अमर अच्छय अदिनासी, महाबीन परवीना ॥  
 अनंत संत जाके आस पियासा, अगम मग्न चिरलीवै ।  
 जन दरिया दासन के दासा, महा कृषा रस पीवै ॥  
 राम नाम नहिं हिरदे धरा । जैसा पसुबा तैसा नरा ॥  
 पसुबा-भर उद्यम कर लावै । पसुबा तौ जगल चर आवै ॥  
 पसुबा आवै, पसुबा जाय । पसुबा चरै औ पसुबा खाय ॥  
 राम नाम ध्याया नहिं माई । जनम गया पसुबा की नाई ॥

राम नाम से नाहीं प्रीत । वह ही सब पशुवे  
 जीवत सुख-दुख में दिन भरै । मुदा पछे चौर  
 जन दरिया जिस राम न ध्याया । पसुबा ही ज्यों जन

संतो, कहा गहस्य कहा त्यागी ।

जेहि देवै तेहि बाहर भीतर, घट घट माय  
 भाटी की भीत, पवन का थंभा, गुन औरुन रे  
 पाँच तत्त्व आकार मिलाकर, सहजै गिरह  
 मन भेयो पिता, मनसा भह माई, सुख दुख दों  
 आसा तुझा बहने मिलाकर, एह की सोंज  
 मोह भयो पुरुष, कुबुधि भई धरनी, पाँचो लङ्क  
 प्रकृति अनंत कुदम्बी मिलकर, कलहल बहुत ;  
 लङ्कों के सँग लङ्की जाई, ताका नाम  
 बन में बैठी वर धर ढोलै, स्वारम संग खा  
 पाप पुन्य दोउ पार पहोरी, अनंत बायना  
 राग द्वेष का वंधन लाया, गिरह बना उर  
 चल दूआ, तेरे आद राज । पिंजरामें बैठा कौन  
 बिछड़ी का दुख दहै जोर । मारै पिंजरा तोर  
 मरने पहले मरो धीर । जो पाछे मुक्ता सहज  
 सद्गुरु सच्च द्वै में धार । सहजै सहजै करो उ  
 प्रेम प्रवाह धरै जब आम । नाद प्रकासे परम ।  
 फिर गिरह बसाओ गगन जाया जहं विल्ली मृत्युन पहुँचै  
 आम फलै जहं रस अनंत । जहं मुख में पांजो परम  
 हिरमिर क्षिरमिर बरसै नूर । जिन कर शाजे ताल  
 जन दरिया आनन्द पूर । जहं विला पहुँचे गाय

—३०६—

### श्रीकिशनदासजी महाराज

उत्तम शील सन्तोष, उत्तम सत सुमिरण साचा ।  
 उत्तम कह हक नाम, उत्तम अमृत मुख-बाचा ॥  
 उत्तम राम आराध, काम दल मञ्जन शूण ।  
 उत्तम तत्त्व विचार, जन उदय रत पूरा ॥  
 उत्तम दे नित दान, उत्तम मर्जाद न मेटे ।  
 उत्तम जहं आणंद, उत्तम अवगत पद मेटे ॥  
 उत्तम गुर गम पाय, उत्तम विग्रह सुमिरण लगा ।  
 उत्तम उलझे मिर, उत्तम पूरन धर पाया ॥

इन्द्रिय जीत, उत्तम सो निराल का  
 उत्तम जैसा अदीत, उत्तम घट आया था  
 उत्तम चंद सम भाव, उत्तम है मर गे ऊँ  
 उत्तम न ल्यै छोत, उत्तम गवाँ से मु  
 उत्तम एक निज नाम, उत्तम गवाँ को ।  
 उत्तम सँग दे अज्ञ, आप की दाया उसे  
 'किशनदास' यव उत्तम है, गमी ब्रह्म के ने  
 जिन में जन जो उत्तम है, अपराध आगे नी

## श्रीहस्कारामजी महाराज

म नाम तत् सार, सर्वं प्रत्यन में गयो । ध्रुव, प्रह्लाद, कबीर नामदे आदि प्रमाणी ।  
त अनंतं पिण्डाणं राम ही राम सरायो ॥ सनकादिकं नारदं शेषं जोगेश्वरं सारा जागी ॥  
द पुरणं उपर्निषद्, कहो गीता में ओही । सो सद्गुरुं प्रतापं तें, कियो ग्रन्थं वित्तार ।  
हा विष्णुं महेश, राम नित ध्यावै सोही ॥ जन हरका तिहुँ लोक में, राम नाम तत् सार ॥

## स्वामी श्रीजैमलदासजी महाराज

[ स्थान दूलचासर, बीकानेर ]

( प्रेषक—श्रीभगवद्गीता शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य )

अजहुँ चेतै नाहीं आव घटंती जाय । त्रिगुण ताप मिटावनहारा, मेटन मर्म वसेरा ।  
ज्यों तुह छाया तेरी काया देखत ही घटि जाय ॥ जैमलदास कहै सुन साईं, मैं हूँ चाकर तेरा ॥  
ऐसो दाव वहुरि नहिं लगै पीछे ही पछिताय । राम-नामकी अपूर्वता  
जैमलदास कान्च करि कानै ततही लेणा ताय ॥

### स्तवन

व्यापक है घट माहिं सो जन मेरा ॥ टेक ॥  
जन्म मरण दूर्द नहिं थाके, आवागवन न केरा ।  
राग दोष भर्म का भाँडा, नाहिं भोह अँधेरा ॥

त्रिगुण ताप मिटावनहारा, मेटन मर्म वसेरा ।  
जैमलदास कहै सुन साईं, मैं हूँ चाकर तेरा ॥

### राम-नामकी अपूर्वता

राम खजानो खूटै नाहीं। आदि अंत केते पञ्च जाहीं ॥  
राम खजाने जे रँग लागा। जैमलदास कहै सुन साईं, मैं हूँ चाकर तेरा ॥  
सायर राम खजाना जैसे। अंजलि नीर घटै वह कैसे ॥  
काया मौँझि खजाना पावै। रोम रोम मैं सम समावै ॥  
जैमलदास भक्तिरत भावै। खानाजाद गुलाम कहावै ॥

## स्वामी श्रीहरिरामदासजी महाराज

[ बीकानेर-गोजयानार्थत निःखल नामक आगमे श्रीभगवद्गीता लोकीके पुत्र । स्वामीजी श्रीजैमलदासजीके शिष्य, संवत् १९०० में  
आगाम १२ फूटों ऊंचा । ]

( प्रेषक—महंत श्रीभगवद्गीता शास्त्री )

राम नाम जपता रहे,  
तजं न आसा आन ।  
जन हरिया उन जीव की,  
मिटै न साँचा-तान ॥  
राम नाम निज मूल है,  
और नकल विस्तार ।  
जन हरिया फल भुक्ति कूँ,  
लंजै भर संभर ॥  
  
परितार्पणे ग्राणिया, हरि मैं पड़िसे दूर ।  
जन हरिया गत चेत लै, है तन सास हजर ॥  
हरिया दर्दि में आय कै, कहा करत है कूर ।  
दामी परिया अंत यी, मूर्चा परंगी धूर ॥  
हरिया दरि यी भक्ति दिन, कहा कियो नर आय ॥



साँचा मुख यानव तणा, जा मुख निकसै राम ।  
जन हरिया मुख राम दिन, सोई मुख बैकाम ॥  
हरिया तन जोकन थकै, किया दिया जो जाय ।  
कीजै सुमरण राम को, दीजै हाय उठाय ॥  
हरिया दीवा हाथ का, आडा आसी तोय ।  
राम नाम कूँ सुमरताँ, पर उतारै तोय ॥  
हरिया राम सँभारियै, ढील करै मति कोय ।  
साँझाँ जीच सवेर मैं, क्या जानू क्या होय ॥  
हरिया राम सँभारियै, जब लग पिंजर सास ।  
सास सदा नहिं पाहुणा, ल्यूं सघण का घास ॥

खबर करि खबर गफील तुम से कहूँ ,  
बहुरि नहिं पाय नरदेह थारी ।

एक इकतर पिर धारि दूजा नहीं,  
मानि मेरा कहा पुरुष नारी ॥  
लोभ लालच मद सोइ लगा रहै,  
आपदा पापि पड़येच ठाणी ।  
आन उपथाश्रि वहु ताप हिरदै उठै,  
रन अह देप मनमान साणी ॥  
काम अर कोष भय जोव जोरावरी,  
बहर अर कहर जग साहिं जाढा ।  
काल कल्याण करी सिर ऊपरै,  
मरसी जोय नहिं कोय आढा ॥  
मात अक तात सुत प्रात भूत भासीनी,  
कुड़ै परिवर की प्रीति झड़ी ।  
दास हरियाम कहै खेल थीर्ता पछै,  
मेल सौ अंडियो लाडि मूर्छी ॥

मनवा राममजन करि घडैरे ।  
तज संकल्प विकल्प को तव ही आया हुव निर्वलरे ॥  
देलि कुरुणग पाँच नहिं दीजै जहाँ न हरि की गल रे ॥  
जो नर मोश मुक्ति कूँ छाहै संताँ बैसी मिसल रे ॥  
संशय शोक पैर करि सब ही दंद दूर करि दिल रे ।  
काम कोष भाव करि कानै रस सुमर हक हल रे ॥  
मनवा उलटि मिल्या निज मन दूँ पाया प्रेम अटल रे ।  
पाँच पचास एकरत कीना शहज भई लव सल रे ॥  
भव लिल रोम रोम रा रा मैं ताली एक अटल रे ।  
जन हरियम भये परमानंद सुरुति शब्द मूँ मिल रे ॥

प्राणी कर ले राम उन्देही ।  
विनस जायी एक पलक मैं या गंदी नउदेही ॥  
रातो मातो विषय स्वाद मैं परफ्लित सन माही ।  
जीव तणा आया जमकिकर पकड़ि ले गया वाही ॥  
मूरल मगल भयो माया मैं बेरी करि करि माने ।  
अंतकाल मैं भई विडायी बहाँ आय मानाने ॥  
राग रंग रूप नर नारी सब हुय जाहिये लाका ।  
जन हरियाम रहिया अग्मर एक नाम अल्ला का ॥

रे नर ! या धर मैं क्या तेरा ।  
जीव जहु न्वय धर माही सोइ कहै धर देपा ॥  
बीटी चिड़ी कमेही उंदर धर माही धर केता ।  
आया च्यों जबही उठि जाती चासो दिन दस लेता ॥  
देही पादिर महल बिणावै मारै झूँडी चैदो ।  
देन पूरे नर छौंडि चलैगो ज्यूँ हाली हल सीदो ॥

नव रंग रूप चोलह चिणगार माया नि  
जन हरियाम राम विन दुनिया होसी रु

### दोहा

परब्रह्म सत्त्वाः प्रणम्य, पुनि सब र  
हरियाम तुर मनत मैं, या पद समा  
पहिले दाता हरि मया, तिन ते प  
फोडे दाता तुर भया, जिन दावै  
ब्रह्म अदि तन वीच मैं, मय करि क  
उलटि काल कूँ लात है, हरिया गुरु  
सब सुखदाई राम है, लव भरोसा  
जन हरिया हरि तुमिरतों तार न तोइ,  
जन हरिया है तुकि कूँ, नीलनी निज  
चाहि चौपर सौ सुमिरेहे जौ चाहै  
हिमत मति छौंडो नर्दो, सुल ते कहतों  
हरिया हिमत से किया, ध्रुव आ अहल  
जो अश्वर पर्वत लिल्या, सोइ हमारे  
अब हृषणतो ना डलै, हरिया हैय ।  
एम नाम विन मुक्ति की, जुक्ति न ऐसी  
जन हरिया निशिदिन भजो, तजौ दूसरी  
जन हरिया निशिदिन भजो, रक्षा सेती  
नाम विना जीतव दिसो, आयु जय वे  
विरहिन यैसे भी उठै, जोवै हरि का  
कहु जोती कर आवती, देख तुम्हारा ।  
मैं भतवाला राम का, मद भतवाला न  
हरिया हरि रस पीव करि भयन भयन मन भा

### चेतावनी

पान टँबोली चालते सिरी कलाडे दी  
जन हरिया दिन एक मैं, सुख धूँडी दूसरे  
जन हरिया कर कविया, दोकल लाया दीप  
तीहि न अंधा चेतही, आपनरो आपनीय  
पठेंगा परसने खेटते, हे ते गोरु गोई  
सोवे सीही साव रे, दीहि गरे तो शीर्प  
प्याल भरि पदमिणी, यिये रिलाये धरि  
जन हरिया जय भय कोरे जम ने जागी शीर्प  
कनक महल ता वीच मैं, दोपे ध्रगन धान  
हरिया एक नाम विन, नाम याय रहु नान ।

रहे तेंदे चालते, खांधी पग छुकाय ।  
हरिया छाया निरखते, से भी गये बिलय ॥  
मुंदरि विना न सारते, निसिद्धि करते नेह ।  
ते जंगल में पोहिया, हरिया एकल देह ॥  
हाथ पाँव सिर कंपिया, आँख्याँ भयो अँधार ।  
काल्याँती पाण्डुर भया, हरिया चेत गँवार ॥  
धर धर लागो लायां, धर धर धाह पुकार ।  
जन हरिया धर आपणो, राखै सो हुँसियार ॥  
तन तश्वर के बीच में, बसैं पँखेरु पंच ।  
जन हरिया उठि जावसी, नहीं भरोसो रंच ॥  
मैड़ी महल चुणावते, ऊपर कली ल्येट ।  
चुणत चुणावत ऊठिगे, लागी काल की फेट ॥  
पग पग बैठे पाहरु, आडा सजड किंवार ।  
काल धके सों ले चल्यो, कोइ न मानी कार ॥  
हैवर ऊमे पायगाँ, द्वारे हस्ती बंध ।  
हरिया एक पलक में, सब सों पड़ गई संघ ॥  
चोवा चंदन चरचरी, कामिनि करत सनेह ।  
सूती जाय मसान विच, भस्म भई सब देह ॥  
राम नाम की जिक, करै कोइ संत रे ।  
मैं तैं मन की मेठि, रहै एकत रे ॥  
आशा तृणा छाँडि, निराशा हुए रहै ।  
(हरि हैं) दास कहै हरिराम, स्वामि सुख जब लहै ॥  
आपा मेटो हरि भजो, तजो विरानी आस ।  
हरिया ऐसा हुए रहो, जये कहावो दास ॥  
लख चौरासी जोनि में, है नायक नरदेह ।  
हरिया अभूत छाँडि के, विषय न करिये नेह ॥  
हरिया देखि हरामडो, रोष न कीजै राम ।  
अब तो तेरो हुए रहो, और न मेरे काम ॥  
राम नाम को कीजिये, आठों पहर उच्चार ।  
हरिया बंदीचान ज्यों, करिये कूक पुकार ॥  
हरिया रत्ता तत्व का, मत का रत्ता नाहि ।  
मत का रत्ता ऐ फिरै, तहैं तत्व पायो नाहि ॥  
धनवन्ता सो जानिये, छूटे राम का नाम ।  
भक्ति भैंडरे ना कमी, रिधि सिधि कैहे काम ॥  
जो कोह नहै मुक्ति को, तो सुमिरीजै राम ।  
हरिया गैले चालिये, ऐसे आवै गाम ॥  
दाराम में पावक थवै, यों आत्म घट माहि ।  
हरिया पव मैं पृथ है, यिन मधियाँ कुछ नाहि ॥

### चृप्य

राम बखानै वेद, राम को दाख पुरानै ।  
रामहि शाखा स्मृति, राम शास्त्र सो जानै ॥  
राम गीता भागवत, राम रामायण गावै ।  
राम विष्णु शिव शेष, राम ब्रह्मा मन भावै ॥  
राम नाम तिहुँ लोक में, ऐसा और न कोय ।  
जन हरिया गुरु राम विना, कहा सुन्या क्या होय ॥

### कुंडलिया

हरिया सोई नर फकर, किया दोषती राम ।  
मन माया विषया तजै, भजै निराशा नाम ॥  
भजै निराशा नाम, और की आश निवारै ।  
भर्म करै सब दूर, ध्यान निश्चय करि धारै ॥  
काह न करै अनीति, नीति राखै मन माही ।  
सुरति शब्द के पास, आन दिसि जावै नाही ॥  
एको तन मन बचन का, मेटे सकल विराम ।  
हरिया सोई नर फकर, किया दोषती राम ॥

तैं कहा चित करै नर तेरिहि,  
          तो करता सोइ चित करेगो ।  
जो मुख जानि दियो तुझि भानव,  
          सो सचहन को पेट भरेगो ॥  
कूकर एकहि दूक के कारण,  
          नित्य धरोधर बार फिरेगो ।  
दास कहै हरिराम विना हरि,  
          कोइ न तेरो काज सरेगो ॥

### पद

रे नर राम नाम सुमिरीजै ।  
या सों आगे संत उधरिये, वेदाँ साख भरीजै ॥टेका  
या सों ध्रुव प्रह्लाद उधरिये, करणी सत्त्व करीजै ।  
या सों दत्त मछंदर उधरे, गोरख ज्ञान गहीजै ॥  
या सों गोपीचंद भरतरी, पैले पार लैंहीजै ।  
या सों रंका दंका उधरे, आपा अजर जरीजै ॥  
या सों रामानंद उधरिये, पीपा जुग जुग जीजै ।  
या सों दास कवीर नामदे, जम का जाल कटीजै ॥  
या सों जन रैदास उधरिये, मीराँ वात बनीजै ।  
या सों काढ़ कीता उधरे, वास अमरपुर कीजै ॥  
या सों जन हरिराम उधरिये, दाढ़ दीन भनीजै ।  
जन हरिराम वै ~~~~~ ने ~~~~~ ने ~~~~~ ..

## विनय

प्रभुजी ! प्रेम भक्ति मोहि आपो ।  
माँगि माँगि दाता हरि आपो, जपूँ तुम्हारा जापो ॥टेक॥  
आठ नवे निधि रिधि भंडारा, क्या माँगूँ थिर नाहीं ।  
दे मोक्षो हरि नाम खजाना, खूटि कबू नहिं जाहीं ॥

इंद्र अप्सरा सुखल बिलासा, क्या माँगूँ छिनभंगा ।  
दीजै मोहि परम सुख दाता, सेवत ही रहूँ संगा ॥  
तीन लोक राज तप तेजू, क्या माँगूँ जस प्रापा ।  
दीजै राज अभय गुरुदेवा, अटल अमरपुरवासा ॥  
आठ पहर औलग अणवड़की, ता सेती विसारू ।  
जन हरिराम स्वामि अरु सेवक, एकमेक दीशारू ॥

## संत श्रीरामदासजी महाराज

[ खेड़ापा पीठके प्रधान आचार्य । जन्म-स्थान बीकोकोर ( मारवाड ) , सं० १७८३ फाल्गुन कृष्ण १३, सिंहवलके श्रीहरिराम दासजीके शिष्य । ]

( प्रेषक—रामनेही-सम्प्रदायाचार्य श्रीहरिरामदासजी शास्त्री, दर्शनखुर्वेदाचार्य )

राम दास सत शब्द की  
एक धारणा धार ।  
भव-सागर में जीव है  
समझ रु उतरो पर ॥  
रामदास गुरुदेव सूँ  
ता दिन मिलिया जाय ।  
आदि अंत लग जोहिये  
क्रोडीधज्ज कहाय ॥



सब में व्यापक ब्रह्म है देख निरख सुध हाल ।  
जैसी तुम कमज्या करो तेसी में फिर भाल ॥  
कमज्या कीजे राम की सतगुरु के उपदेश ।  
रामदास कमज्या कियाँ पावे नाम नरेस ॥  
करम कूप में जग पड़ा झूँच्या सब संसर ।  
राम दास सो नीसरथा सतगुरु शब्द विचार ॥  
रामा काया खेत में करसा एको मन ।  
पाप पुन्ह्य में वैध रथा भरथा करम सूँ तन ॥  
करम जाल में रामदास वंच्या सबही जोव ।  
आस-न्यास में पच मुवा विसर गया निज पीव ॥  
बीज हाथ आयो नहीं जोड़े हर जस साल ।  
रामदास लाली रहथा राम न जान्यो आल ॥  
मुख सेती मीठी कहे अंतर माँहि कपट ।  
रामा ताहि न धीजिये पीछे करे हापट ॥  
आया क्रूँ आदर नहीं दीठाँ मोड़े मुख ।  
रामा तहाँ न जाइये जे कोइ उपने सुख ॥  
संतो गृह त्याग ते न्यारा ।  
सोई राम हमारा ॥ देर ॥

गृही वैध्या गृह आपदा त्यागी त्याग दिलावे ।  
गृही त्याग दोनूँ पख भूल आतमराम न पावे ॥  
गृही साधु संगत नहिं कीन्हीं, त्यागी राम न गावे ।  
गृही त्याग दोनूँ पख झटा निरपख है सो पावे ॥  
ना मैं गृही ना मैं त्यागी ना घट दरसण मेला ।  
राम दास त्रिगुण ते न्यारा, घट में अवघट देला ॥  
अँच नौच विच राम, राम सेव के मन भावे ।  
अँच साच सब ठौड़, राम की आण कढ़ावे ॥  
आदि अंत में राम राम सबही कह तीका ।  
सकल देव सिर राम राम सब के तिर टीका ॥  
चार चक्र चबदे भवन राम नाम साँझे गिरे ।  
रामदास या राम को साधून सिंवरण करे ॥  
राम सरीसा और न कोई । जिन सुमरयाँ सुख पावै सोई ॥  
राम नाम सूँ अनेक उधरिया । अनेत कोटि का कारज मरिया ॥  
जो हरि सेती लावै प्रीता । राम नाम ताही का गीता ॥  
राम नाम जिण ही जिण लीया । तिण तिण वास व्रत में कीया ॥  
रामदास इक रामहि ध्याया । परम ज्योति के मार्हि गमया ॥  
सरक सनेही बालमा करूँ न देवो दीदार ।  
रामा विजर जात है इण मोहर इण यार ॥  
आवौ मेंडा साँइयाँ विरहण सामो जोय ।  
नैन ट्याट्याँ हुय रही पल नहिं लारी नीय ॥  
परदेसी विलमो मती एह मोहर तत्तार ।  
रामा जिव जीवत मिलो साँई दीन दरार ॥  
मूँबौं पछे पवारयो देमी कुण गावाम ।  
उपलैं सार व्रमदायाँ पारम पानो निगम ॥

मो कृत सामो देखियों नाहीं कदे उधार ।  
अपनो विरद विचार हो पावन पतित अपार ॥  
महरवान महाराज है रामा दीन दयाल ।  
दया बड़ी है कोप ते कारण कृपा विसाल ॥  
द्युठा रुठा राम तुँ तूठा नारी अंग ।  
बूठा विवानंद मन तूठा हरि सूँ रंग ॥  
अदल किया तो मारिया जनमाँ जनम दुखार ।  
फदल किया तो छूटिया तारन विरद मुरार ॥

### माया

माया विष की बेलड़ी तीन लोक विस्तार ।  
रामदास फल कारणे इरै सब संसार ॥  
बेली को फल आपदा आशा तुष्णा दोय ।  
रामदास तिहुँ लोक में, कहाँ न छूटण होय ॥  
आशा तुष्णा आपदा घर घर लागी लाय ।  
रामदास सब बालिया, कोई न सके जाय ॥  
माया की अग्नी जगे, दाक्षत है सब जीव ।  
रामदास सो ऊबरे सिमरे समरथ पीव ॥  
रामा माया डाकणी छकणायो संसार ।  
काढ़ कलेजो खायगी जाकी सुध ना सार ॥

### कविता

राम ढाल तरवार राम बंदूक हमारे ।  
राम शूर सामंत राम अरि फौज सँहरे ॥  
राम अनढ़ गढ़ कोट राम निर्भय मेवासो ।  
राम साथ सामान राम राजा रेवासो ॥  
राम धर्णी प्रभुता प्रबल श्वास श्वास रक्षा करे ।  
रामदास समरथ धर्णीरे जिव! अब तुँ क्यूँ डरे ॥

कहा देस परदेस कहा घर माँही थेरे ।

रक्षक राम दयाल सदा है संग हमारे ॥  
पर्वत अवघट घाट घाट बन माहिं सँगाती ।

ताके बेली राम ताप लागे नहिं ताती ॥  
धाइ चैर खोसा कहा उवरा माहिं उबार है ।

मोहि भरोसो राम को रामा प्राण अधार है ॥

नमो निरंजन देव सेव क्रिणि पार न पायो ।

अमित अथाह अतोल नमो अणमाप अजायो ॥

एक अखंड अमंड नमो अणमंग अनादं ।

जग में जोत उदोत नमो निरमेव सुखादं ।

नमो निरंजन आप हो, कारण करण अपार गत ।

रामदास बंदन करे नमो नूर भरपूर तत ।

मस्तक पर गुरुदेवजी हृदय विराजे राम

रामदास दोन्हूँ पखा सब विध पूरण काम ॥

चिता दीनदयाल कुँ मो मन सदा अनंद ।

जायो सो प्रति पालसी रामदास गोविंद ॥

### सोरठा

घर जाये की खोड़ धर्णी एक नाँहिन गिने ।  
विरद आपनी ओड़ जान निभाज्यो बापजी ॥

### पद

दीन छूँ जी दीनबंधु ! दीन को नवेरो ।

महरवान विरद जान प्रान मेट वेरो ॥ टेर ॥

ये हु पुकार निराधार दरद मेट मेरो ।

जनम जनम हार मार तार अबे तेरो ।

विषम घाट भव बैराट बेग ही नवेरो ।

बह्यो जात मैं अनाथ नाथ हाय प्रेरो ॥

बार बार क्यूँ न सार चाल बाल चेरो ।

रामदास गुरु निवास मेट जनम फेरो ॥

## संत श्रीदयालजी महाराज (खेड़ापा )

[ जन्मकाल—मातृशीर्ष शुक्ला ११, विंश सं० १८१६ । निर्वाणकाल—माघ कू० १०, सं० १८८५ । ]  
( प्रेषक—श्रीहरिदासजी शास्त्री, दर्शनाशुभेदाचार्य )

रसो ममो रसणा रट ए,  
साँची प्रीति लगाय ।  
रामा अमृत रसण चव,  
विष्व विल्य हुय जाय ॥  
खाली स्वास गमाय भत,  
रामा सिवरो राम ।  
वय खूटे छूटे सदन,  
जीव कहाँ आराम ॥

रामा काया सदन विच, रे ममे की जोत ।  
रसना दीपक सींचिये, परमानन्द उदोत ॥  
लगान पतंगा होय के, राम-रूप के मॉय ।  
मनकृत जल एके भया, सारकायत दरसाय ॥

X X X

वंदे या भव-सिन्धु मैं, तेरा नाहीं कोय ।  
फूटे वैदे वैस मत, कदे न तिरणा होय ॥



आपा गरव गुमान तज, तरुणापो दिन दोय ।  
रामा छाया बादली, सवन करो मत कोय ॥

X X X

### नाम-माहात्म्य

राम-भंत्र से रामदास, जीव होत है ब्रह्म ।  
काल उरग को गरल मिट, जनम-मरण नहीं अम ॥  
महा पतित पापी अधम, नाम लेत तिर जाय ।  
उपल तिरे लिखताँ ररो, रघुपति साख सहाय ॥  
रामल्प हरिजन प्रगट, भाव भक्ति आराध ।  
जुग जुग माहीं देख लो, रामा तारण साध ॥  
मन वच कम सरधा लियाँ, बणै सजन के हेत ।  
रामा साची भावना, जन्म सफल कर लेत ॥  
मान मान उपदेश गुरु, ध्याय ध्याय इक राम ।  
जाय जाय दिन जाय है, उदै करो विश्राम ॥  
रामा केवल नाम जप, कह हितकारी संत ।  
इन मग परमानन्द मिले, निरमै जीव सिधंत ॥  
  
मौसर मिनखा देह मिल्यो है, मत कोइ गाफिल रहज्यो रे ।  
खूटा स्वात बहुरि नहीं आवै, राम राम भजि लीज्यो रे ॥  
जानत है सिर मोत खड़ी है, चलणो साँझ सवेरो रे ।  
पाँच पचीसों बडे जोशबर, लृटत है जिव डेरो रे ॥  
नर नारायण सहर मिल्यो है, जा मैं सूँज अगारा रे ।

राम कुपा कर तोहि ब्रह्माओ, या मैं काज तुम्हारे ॥  
जनम-जनम का खाता चूकै, हुय मन राम सनेहीरे ॥  
रामदास सत्गुरु के सरणै, जनम सफल कर लेहीरे ॥

तरु तें तूटा फूल डार धुर लगै न कोई ।  
कागद अंक सकेल पुनि सकेला नहि होई ॥  
सती साझ सिणगार तेल तिरिया इक वारा ।  
ओला जल गल मिल्या केर होनै नहिं सारा ॥  
मोह वासना नीर मँझि नर देह कदे नहि गालिये ।  
जन रामा हरिप्रेम विच गलथात भव दुख टालिये ॥

मजो भजो रे राम तजो जग की चतुराई ।  
सजो सजो रे सज काच तन जात बिलाई ॥  
गया मिलै नहिं बहुरि मुकर मंजन नहिं संदंत ।  
क्रोड जतन मिल प्रशा कहै सौई मति मंदंत ॥  
जाता निश्चै जाय सब रहता हरि संगी सदा ।  
चेत चिंतामणि उर मही ताँ पाया आतम मुदा ॥  
  
जाय जाय दिन जाय ताहि लेखै अब लावो ।  
गाय गाय इक राम बहुरि भौसर नहिं पावो ॥  
साय साय गुरु ज्ञान लाय एकण मन धारण ।  
ध्याय ध्याय अब ध्याय जाय लगा जोधा रण ॥  
कटक काल दुष्कर कही हरिजन पुर मन्य छूट है ।  
जन रामा पासे गयाँ सहीत जमरो लट है ॥

### श्रीपूरणदासजी महाराज

[ दीक्षाकाल—काल्युन पूर्णिमा, वि० सं० १८३८ । लिंगांकाल—कात्तिक शु० ५, वि० सं० १८९२ । जन्म-साल  
—मेलकी आम ( मालवा प्रान्त ), श्रीदयालजी महाराजके शिष्य । ]  
( प्रेषक—आचार्य श्रीहरिदासजी शास्त्री )

जा दिन तें या देह धरी दिन ही दिन पाप कमावनहारो ।  
नीच किया त्रुथ हीन मलीन कुचील अचार विचार बुहारो ॥  
औरण को नहीं छोर कहाँ लग, एक भरोसो है आस तुम्हारो ।  
हो हरिया ! बिनती इतनी, तुम मुख सूँ कहो पूरणदास हमारो ॥

अब हरि कहाँ गये करुणा केत ।  
अधम उधारण पतिताँ पावन कहत पुकारयाँ नेत ॥  
मोय भरोसो लाखाँ बाताँ खाली रहे न खेत ।  
पूरणदास पर अजहुँ न सुरता अब क्यूँ गार न देत ॥

### संत श्रीनारायणदासजी महाराज

( प्रेषक—साधु श्रीभगवदासजी )

सत्गुरु अह संत जन, राम निरंजन देव ।  
जन नारायण की विनति, दीजै प्रभुजी सेव ॥

नरिया राम सुमिरिये, द्यालै जम की धात ।  
आलस ऊँच न कीजिये अवगर चीर्णा जात ॥

राम नाम सत्तगुरु दिया, नरिया प्रीति ल्याय ।  
चौरासी योनि टलै, पेले पार लँघाय ॥  
राम नाम जाण्यो नहीं, माया कूँ चित धार ।  
जाकूँ जमझो मारसी, नरिया करे खुबार ॥

राम नाम जाण्यो नहीं, कीया बहुत करम्म ।  
तै नर कामी कूकरा, मुँहडे नहीं सरम्म ॥  
दास नरयण बीनवे, संतन को अरदास ।  
राम नाम सुमिराइये, राखो चरणों पास ॥

## संत श्रीहरदेवदासजी महाराज

( प्रेषक—साधु श्रीभगवदासजी )

बंदन हरि गुरु जन प्रथम, कर मन कायक बेन ।  
अखिल भवन जो सोधिये, समा न या कोइ सेन ॥

### छप्पय

चेते क्यूँ न अचेत, संत सबही दे हेला ।  
माने वहु परिवार, अंत तूँ जाश अकेला ॥  
बित्त वा खर व्यवहार, आप का किया उचारे ।  
तन चाले जब छाँड़ि, कद्दू हाले नहीं लारे ॥  
आपो विचार आगम निरख, थापो निज गम आपना ।  
हरिदेव राम अहनिश कहै, मूँपद लहो सु आपना ॥  
है अरबाँ नर साथ, आप अरबाँ सम एको ।  
खरवाँ थपे कोठार, अपे धन खरव अनेको ॥  
जस वहु जपे जहान, दिपे वहु न्याय दरीखाँ ।  
निज तन रहे निशंक, शंक वहु लहै सरीखाँ ॥  
ऐसा भूयाल अंतिम क्षमे, जाताँ कुछ विरियाँ नथी ।  
हरिदेव चेतरे मन मस्त, अद्य आयु दहड़ी कथी ॥  
बड़ योधा कहाँ वीर, कहाँ वे मीर करारा ।  
कहाँ वे दिल का धीर, कहाँ वजीर धरारा ॥  
कर्ता च्योतिप कहाँ, कहाँ महा वैद्य सु कहिये ।  
निपुलाँ धन व्यवहार, कहाँ जग सेठ सु लहिये ॥

कहाँ न्याय करावण करण, मरण मार्ग सबही गया ।  
हरिदेव चेत रे मन चपल, तू किस गिणती में थया ॥

कोइ नर ऊपर पाँव, अधः सिर करके हाले ।  
मन में करे मरोड़, महँत हुए जग में माले ॥  
चल फौरे कर आप, चहे दर्पण मुख देख्यो ।  
पुनि महा सोइ जुहार, माहिं परखन मन पेख्यो ॥  
छाँड़ि सु राम कहै मैं भगत, हरियाँ नाकज हर्षियो ।  
हरिदेव कहै वूँ नर अधम प्रगट असाधि परखियो ॥

सुमिरन है गम सेस, सहस मुँह करे सु जापा ।  
विसरे कबहु नाहिं, जीह मुँह दूती जापा ॥  
अँखियो तिके अपार, पार नहिं कोय घिलानो ।  
सुमिरन पद सूँ सोय, सेस रहियो सब जानो ॥  
भू भार सहै धीरज भली, जाप सहित आनेंद लहै ।  
हरिदेव राम सुमिरन अगम, शैष ग्रंथ याही कहै ॥

### दोहा

बंदन को गम युगल है, हरि है, का गुरुदेव ।  
ब्रह्म देह-दाता बने, सत्तगुरु दीया भेव ॥  
आदि ब्रह्म जन अनेत के सारे कारज सोय ।  
जेहि जेहि उर निश्चै धरे, तेहि ढिग परगट होय ॥

## संत श्रीपरसरामजी महाराज

[ जन्म सं० १८२४, स्थान वीडोकर कोलायत—बीकानेर, निर्वाज—सं० १८९६, पौषकृष्णा ३—श्रीखामी रामदासजीके शिष्य ]

( प्रेषक—श्रीरामजी साधु )

नित प्रति गुरु चंदन कर्ले,  
पुराण व्रता प्रणत ।  
परमाराम कर चंदना,  
आदि अंत मध मंत ॥

### उपदेश

परमाराम गतगुरु कहे,  
सुन मिन भाग तिनार ।



कारज चाहे जीव को, कहूँ सो हिरदै धर ॥  
प्रथम शब्द सुन साध का, वेद पुराण विचार ।  
सत संगति नित कीजिये, कुल की काण निवार ॥  
पूरा सत्तगुरु परख कर, ताकी शरण सैंभाय ।  
राम नाम उर इष्ट धर, आन इष्ट छिटकाय ॥  
गम राम मुख जाप जप, कर सूँ कर कछु धर्म ।  
उत्तम करतव आदरो, छोडो नीचा कर्म ॥

मांस मह हो को अमल, माँग सहित छिटकाय।  
 चोरी जारी परिहरो, अधरम पंथ उठाय॥  
 जूँया खेल न खेलिये, भूल न चढ़ो शिकार।  
 वेश्या का सेंग परिहरो, निहन्चै नीति विचार॥  
 शुठ कपट निंदा तजो, काम कोध अहँकार।  
 दुर्मति दुविद्या परिहरो, तृष्णा तामस ठार॥  
 राग दोप तज मछरता, कलह कल्पना त्याग।  
 सँकल्प विकल्प मेटि कर, साचे मारग लाग॥  
 मान बडाई ईर्षा, तजो दंभ पाखंड।  
 सिमरो सिरजनहार कुँ, जाके मँडी मंड॥  
 दुनिया धड़िया देवता, पर हरता की गूज।  
 अनघड़ देव अराधिये, मेटो मन की दूज॥  
 प्रतिपालन पोषण भरन, सब में करे ग्रकास।  
 निसे दिन ताकूँ ध्यायिये, ज्यूँ छूटे जम पास॥  
 राम नाम नौका करो, सतगुरु खेवणहार।  
 वृद्ध भानकर भाव को, धूँ भव-जल हुए पार॥  
 राम नाम अभ्मर जड़ी, सतगुरु वैद्य सुजान।  
 जन्म मरण वेदन कटे, पावै पद निरवाण॥  
 जग कुँ चित उल्टाय कर, हरि चरणों लपटाय।  
 लख चौरासी जोन में, जन्म न धारो आय॥  
 मनछा बाचा कर्मणा, रटो रैन दिन राम।  
 नरक कुँड में ना पड़ो, पावै मुक्ति मुकाम॥  
 पाँचूँ इन्द्री पालकर, पंच विषय रस मेटि।  
 या विध मन कुँ जीतकर, विध परमानँद मेटि॥  
 पूरब पून्य प्रताप सूँ, पाई मनसा देह।  
 सो अष्ट लेखे लाइये, छोड जगत का नेह॥  
 चरणों सूँ चल जाइये, हरि हरिजन गुरु पास।  
 पैड़ दैड़ असमेघ जग्य, फल पावत निज दास॥  
 हरि हरिजन गुरु दरस ते, नेज निर्मला होत।  
 परसराम समझिए खुल, घट मध ज्योति उओत॥  
 हाथों सूँ बंदन करो, ज्यूँ कर होय सुनाय।  
 फेर न जावो जमपुरी, भिड़ो न थंभा बाथ॥  
 सीस निवायों परसराम, कर्म पोट गिर जाय।  
 इस विध सीस सुनाथ हुय, सतगुरु चरण लगाय॥  
 श्रवणों सुनिये परसराम, सतगुरु शब्द रसाल।  
 छान उदय अज्ञान मिट, तूटे भ्रम जंजाल॥  
 ऐसे श्रवण सुनाथ हुइ, सुनो र्यान विग्यान।  
 पीछे धारो परसराम, आतम अंतर ध्यान॥

करो दंडवत देह सूँ, ज्यूँ छूटे जमदंड।  
 परसराम निर्मय रमो, सप द्रीप नव सण॥  
 करो परिक्रमा प्रेम सूँ, सनमुख बैठो आव।  
 फेरा जामण-मरन का, सहजों सूँ ठल जाय॥  
 मुख सूँ महा प्रसाद ले, पावे उत्तम दास।  
 ऐसे मुक्ति सुनाथ हुइ, वायक विमल प्रकाश॥  
 मख चख सब नर देह का, या विध उत्तम होय।  
 भाव भक्ति गुरु धर्म बिन, पसु समान नर लोय॥  
 प्रेम नेम परतीत गह, भाव भक्ति विच्वास।  
 जाका नर तन सफल है, जग सूँ रहै उदास॥  
 सौच गहो समता गहो, गहो सील संतोष।  
 र्यान भक्ति वैराग गहि, याही जीवत मोच॥  
 धरिज धरो छिमा गहो, रहो सत्य वत धर।  
 गहो टेक इक नाम की, देवो जगत जँजार॥  
 दया दृष्टि नित राखिये, करिये पर उपकार।  
 माया खरचो हरि निमित, राखो चित्त उदार॥  
 जाति पाँति का भरम तज, उत्तम कमज्या देख।  
 सुपात्र को पूजिये, कहा यहस्य कहा भेल॥  
 सोइ सुपात्र जानिये, कहे कहावै राम।  
 पाँच पचीसूँ जीत के, करे भक्ति निहकाग॥  
 ऐसा हरिजन पूजिये, के सतगुरु की सेव।  
 एक दृष्टि कर देखिये, घट घट आतम देव॥  
 जल कुँ पीजै छानकर, छान वचन मुख थोल।  
 दृष्टि छानकर पाँच धर, छान मनोरथ तोल॥  
 ऊठत बैठत चालताँ, जागत सीकत नित॥  
 राम संत गुरुदेव के, चरणों राखो चित्त॥  
 यह साधन हरिमक्ति के, सान्ध्यों ते सिध होय।  
 रामदास सतगुरु मिल्या, भेद वताया मोय॥  
 सिध पूछ्या सतगुरु कहा, भले होन का भेव।  
 बाच विचारै परसराम, पावै निरंजन देव॥  
 सतगुरु पर उपकार कर, दिया उत्तम उपदेश।  
 सुन सीखे धारन करै, मिट जाय कर्म कलंश॥  
 सतगुरु दाख्या परसराम, परापरी का ध्यान।  
 पूरबला आँकूर सूँ, समझै लिप्य सुजान॥

### संजीवनी जड़ी ( संजीवन ओध )

राम नाम सत औपधी, सतगुरु नत हरीग।  
 जग वासी जीव रोगिया, मर्यान नरक कम गीग॥

कर्म रोग कटियो बिना, नहीं मुक्ति सुख जीव ।  
 चौरासी में परसराम, दुखिया रहे सदीव ॥  
 नाम जड़ी पच शहद में, देहें युक्ति बताय ।  
 परसराम सच पच रहे, कर्म रोग मिट जाय ॥  
 सुख हमाम दस्तो कर रसना । रये ममो बैठी रस घसना ॥  
 घसघस कंठ तासक भर पीजे । यूँ अठ पहरी साधन कीजे ॥  
 अब सतगुरु पच देत बताई । गुरु आग्या सिष चले सदाई ॥  
 प्रथम कुसंग फवन बैध कीजे । साध सँगत धर माहिं बसीजे ॥  
 समता सहज शयन कर भाई । अहं अग्नि मत तापो जाई ॥  
 मोजन भाव भक्ति सचि कीजे । लीन अलीन विचार करीजे ॥  
 तामस चरखो दूर उठाओ । विष रस चिंगट निकट नहिं लाओ  
 कपट खटाई भूल न लेना । मीठे लोमे चित नहिं देना ॥  
 कुटकुटिलता दूर करीजे । दुविधा द्वंद दूध नहिं पीजे ॥  
 लालच लूण लगान मत रखो । सुख तें कबहुँ छूठ मत भालो ॥  
 आपा बोझ शीशा नहिं धरना । हुय निर्मल सुख राम उचरना ॥  
 जगत जाल उद्यम परित्यागो । राम भजन हितनिसदिन जागो ॥  
 निर्गुण इष्ट स्थिरता गहिये । आन उपास लाग नहिं वहिये ॥  
 प्रेम सहित परमात्म पूजा । भरम कर्म छिटकावै दूजा ॥  
 चेतन देव साधु को पूजे । राम नाम बिन सत्त न सूजे ॥  
 माला जाप तजे कर सेती । रये ममो रट रसना सेती ॥  
 अब सुन कुविष्ण कुवच बताऊँ । राम-जनों की चाल जताऊँ ॥  
 भाँग धतुरा अमल न खाजे । तुरत तमाखू विष न उठाजे ॥  
 मांस मद्य वारांगन संगा । पर नारी को तजो प्रसंगा ॥  
 चढ़ शिकार तिणचर मत मारो । चोरी चुगली चित्त न धारो ॥  
 जूवा खेल न खेलो भाई । जन्म जुवा ज्यूँ जात बिलाई ॥  
 दूत कर्म से दूरे रहिये । कुगती कपटी संग न वहिये ॥  
 अनछान्यो जल पीजे नाही । सूक्ष्म जीव नीर के माँही ॥  
 गाढा पट दुपट करीजे । निर्मल नीर छानकर पीजे ॥  
 चार वर्ण का उत्तम धर्मा । राम नाम निश्चे निहकर्मा ॥  
 लालच लोम वेश तज देवै । अनन्त भाँति संतन कूँ सेवै ॥  
 चार वरण में भक्ति करओ । सो सतगुरु के शरणे आओ ॥  
 सतगुरु बिना भक्ति नहीं सूझे । भरम कर्म में जीव अलझै ॥  
 यह सच बुपच विरीकर टाले । पलपल अभृत जड़ी सँभाले ॥  
 सतगुरु वैश करे ज्यूँ कीजे । अग्या मेटि पौव नहीं दीजे ॥  
 पच राज रासे परसराम, चाले प्रेम प्रकाश ।  
 यूँ अठ पहरी साधतों, सकल कर्म का नाश ॥  
 भरम करम कहु रहन न पावे । नाम जड़ी का निशा आवे ॥  
 राम नाम औरंग तत सार । पीचत पीचत मिटे विकारा ॥

कंठ कमल तें छूदै प्रवेशा । तीन ताप मिट काम कलेशा ॥  
 उर आनँद हुय गुण दरसावै । नाभि कमल मन पवन मिलावै ॥  
 नाभी रा रा रोम रकारा । नख सिख बिच औषध विस्तारा  
 बंक पछिम हुय मेहु लखावै । दसवें द्वार परम सुख पावै ॥  
 तिरबेनी तट अखेंड आनंदा । सून्य धर सहज मिटै दुख द्वंद्वा ॥  
 सून्य समाधि आदि सुख पावै । सद औषध गुरु मैद बतावै ॥

सब घट में सुख ऊपजे, दुःख न दरसे कोय ।  
 परसराम आरोग्यता, जीव ब्रह्म सम होय ॥  
 महा रोग जामण मरण, फिर नहिं भुगते आय ।  
 अमर जड़ी का परसराम, निरणा दिया बताय ॥

### उपदेश ( छप्पय )

सूरा तन को काम, राम भज लाहा लीजे ।  
 मनुष्य देह क्षण भंग, बहुर पीछे क्या कीजे ॥  
 आयो ज्यूँ उठ जाय, हाथ कछु नाहिन परिहै ।  
 सूखा सम्बल सेव, बहुर धोखा मन धरिहै ॥  
 ताते र्यान विचार कर, सतगुरु सिर धर भजन कर ।  
 परसराम साची कहे, इस विध तेरा काज सर ॥  
 अष्ट जाम रट राम, दाम तेरा कहा लगै ।  
 सहज तिरै भव-सिंधु, राम रुचि अंतर जागै ॥  
 दूर होय दुख द्वंद, धंध धोखा मिट जावै ।  
 उपजे सुख संतोष, मोच्छ मारण सुधि पावै ॥  
 मनुष्य देह अवसर दुर्लभ, बार बार नाहिन मिलै ।  
 साधु नदी सँग परसराम, ब्रह्म समुद्र निश्चै मिलै ॥  
 वसे बटाऊ आय, एक स्थानक में वासा ।  
 अपने कृत परिमाण, करत सब धचन बिलासा ॥  
 भई भोर की बैर, ऊठ सब चले बटाऊ ।  
 यूँ संसार सराय, जगत सब जान चलाऊ ॥  
 सुत नार भ्रात माता पिता, को काहू सँग ना चले ।  
 राम भजन सुकृत कियो, परसराम रहसी पले ॥  
 अवलम्बन छूठा रच्या, माया तना विकार ।  
 सब साधु जन कहत हैं, राम नाम तत सार ॥  
 राम नाम तत सार, वार भजतों मत लावो ।  
 त्यागो आन प्रपञ्च, पीव परमात्म ध्यावो ॥  
 परसराम सतगुरु शबद, सो निश्चय कर धार ।  
 अवलम्बन छूठा रच्या, माया तना विकार ॥

यह अवसर आयो भलो, नर तन को अवतार।  
 सुकृत सौदा कीजिये, कुल की कान निवार॥  
 कुल की कान निवार, धार विस्वास प्रभू को।  
 संत कहै चेताथ, कौल गर्भ का मत छूको॥  
 परसराम रट लीजिये, राम नाम तत सार।  
 यह अवसर आयो भलो, नर तन को अवतार॥  
 अंत सकल को मरना, कछु सुकृत करना॥ टेर॥  
 मुख रट राम बाँट कछु कर से, साथु सँगति चित धरना।

पंच विषय तज शील सैंभावो, जिव हिंसा से ढर  
 वेहद रत गुरु पारख करके, गहो उसी का शर  
 ज्ञान भगति वैराग्य गहीजे, धूं भव सागर तर  
 कुल अमिमान कदे नहीं कीजे, धर धीरज कर जल  
 त्यग असार सार गह लीजे, ले वैराग्य विचम  
 रामदास गुरु आयसु सिर धर, मिटे जामण मरन  
 परसराम जन परहित भावत, सुनजो वर्ण अवरम

## संत श्रीसेवगरामजी महाराज

[ दीक्षाकाल भाषाद शु १५ वि० सं० १८६१, निर्वाणकाल पौष शुद्धा < सं० १९०४, स्वामी श्रीपरसरामजीके शिष्य ]

( प्रेषक—श्रीरामजी साधु )

### सारण

राम राम रसना रथा,  
 मुख का खुल्या कपाट।  
 रोम रोम रुचि सूँ पिया,  
 र र र र उच्चरत पाठ॥  
 र र र र उच्चरत पाठ,  
 आदि अनघड़ को ध्याया।  
 परस्या आत्म देव, ध्यान अंतर में लाया॥  
 सेवग सतगुरु परसकर, लही मोक्ष की बाट।  
 राम राम रसना रथा, मुख का खुल्या कपाट॥



### आर्त विरह

गल में कन्ता पहर कर, निस दिन रहूँ उदास।  
 (संगत) संपत एक शरीर है, रखूँ न तिन की आस॥  
 रखूँ न तिन की आस, बास सूते धर करहूँ।  
 कहा पर्वत बन बाग, निढर हुय निसँक विचरहूँ॥  
 राम नाम से प्रीति कर, सिमरूँ श्वास-उस्वास।  
 गल में मैं कन्ता पहर, निस दिन रहूँ उदास॥

जिस बेधों साई मिलै, सोई बेघ करेस।  
 राम भजन के कारने, फिरहूँ देस विदेस॥  
 फिरहूँ देस विदेस, पेस तन मन हरि करहूँ।  
 जाकर हुय हरि अंतर, तिकन से काने टरहूँ॥  
 कसणी देवो अनेक मिल, सब तन माहि सहेस।  
 जिस भेदों साई मिलै, सोई भेघ करेस॥

### चेतावनी

सेवग सिंवरो राम कूँ, विलँव न करिये वीर।  
 आयु घटे तन छीजहै, ज्यों अंजलि को नीर॥

ज्यों अंजलि को नीर, तीर छूटा ज्यूँ, जबै  
 स्वास बदीता जाय, बहुर पूठा नहि आवै।  
 जैसो छिलता नीर ज्यूँ, बहता धरे न धीर  
 सेवग सिंवरो राम कूँ, विलँव न करिये वीर।  
 सेवग सिंवरो राम कूँ, सतगुरु सरणे आय  
 नर तन रतन अमोल है, बार बार नहि पाय  
 बार बार नहि पाय, ताहि लेखे कर लीजे।  
 आज जिसो नहि काल, काहि अब जेज करीजे।  
 सतगुरु शिक्षा देत है, मत रीता उठ जाय।  
 सेवग सिंवरो राम को, सतगुरु सरणे आय।

### प्रेम

प्रेम बिना पढ़िवो कहा, प्रेम बिना कहा गाय।  
 प्रेम बिहूणो बोलिवो, मन किन के नहि भाय॥

मन किन के नहि भाय, गाय क्यूँ स्वासा तोई॥

सोई संत सुजान, सुरत सुमरण से जोई॥

सेवगराम होय प्रेम ज्ञुत, सुन सब गन दरपाय॥

प्रेम बिना पढ़िवो कहा, प्रेम बिना कहा गाय॥

सेवग रीझै रामजी, प्रेम प्रीति जव होय॥

प्रेम बिना रीझै नहीं, चतुराई कर जोय॥

चतुराई कर जोय, होय नहि प्रेम प्रकाश॥

प्रगटे नहीं धट राम, वृथा लोवै गव स्नाय॥

ताते प्रेम उपाय, सुन संतन की गोद॥

सेवग रीझै रामजी, प्रेम प्रीति जव होय॥

### रामप्रताप-विश्वास

आधी करै सो रामजी, के यतगुरु के नहि।  
 मूँडी बनै सो भाग की, ऐसी जर भावत॥

ऐसी उर धारंत, तवे कछु बिगड़े नाई ।  
उन दासन की लाज, प्रतिशा रखै साई ॥  
सेवगराम मैं क्या कहूँ, कहिये संत अनंत ।  
आछी करै सो रामजी, के सतगुर के संत ॥

### अथ झूलना गुरुदेवको अंग

परसा गुरुदेव भो सिर तपे, निज नाम निशान स्पावता है ।  
सब भौंज भरम्म करम दूरा, जिव जम की पास छुड़ावता है ॥  
दरियाव दुखन सूँ काढ लैवे, सुख सागर भाँय छुलावता है ।  
कर सेवग रामहि सेव सदा, उर ज्ञान वैराग उपावता है ॥  
बंदे चेतन होय चितार साई, सतगुर दे ज्ञान चेतावता है ।  
नित निरभे अति आनंद करे, काल कीरतै जीव बैँचावता है ॥  
सच्चा सैण सों साइ भिलाय देवे, जग झूठ कूँ झूठ वतावता है ।  
कहै सेवगराम समझ नीके, सब सुख दे दुःख छुडावता है ॥

### उपदेश

नर जाग जगावत हैं सतगुर, अब सोय रह्याँ केसे सज्जियेरे ।  
सठ ! आग गिरे माँहि काँहि जरे, चल साध सँगत मैं रँजियेरे ॥  
नित लाग रहै निज नाम सेती, इक सँग विषयन का तजियेरे ।  
तेरा भाग वडा भगवंत भजो, कहै सेवगराम समज्जियेरे ॥  
सब दानव देव पुनंग कहा, यह धर्म है चालूँ वरण का रे ।  
पुंन नर रु नार अंतज येहि, फिर मुसलमान हिंदुन का रे ॥  
तुम पैंडा पिंजर मैं पैदा करो, नर यहि है राह रसूल का रे ।  
कहै सेवग रामहि राम रटो, निज जानिये मंत्र मूल का रे ॥

### चेतावनी

इन देख दया मोहि आवत है,  
नर मार मुगदर खायेगा रे ।  
याँ तो किये करम निश्चक मानी,  
वहाँ तो चवाव कछु नहि आयेगा रे ॥  
इक पूछ हिसाव हजूर भाहि,  
जब लेवा दिया नहि जायगा रे ।  
कहै सेवग स्थाम सूँ चोर भया,  
नर जम के द्वाय विकायगा रे ॥  
देसो देसो दुनीन की दोस्ती रे,  
मोहि देस अचंभाहि आत हैरे ।  
कहु सार असार विचार नहीं,  
शठ छाइ अमी, निष खात हैरे ॥  
नित भोगत भोग अधाय नहीं,  
फिर चेहि दिनाँ वे ही रात हैरे ।  
सुन मेदगराम हैरान भया,  
कहु यात कही नहि जात हैरे ॥

कोउ जात न पाँत कुँड़व तेरा,  
धर धाम धरया रहै जायेगा रे ।  
अह मात न तात न भ्रात सँगी,  
सब सुत द्यारा न्यारा थायेगा रे ॥  
जब जम जोरावर आय धेरे,  
तब आडा कोउ नहि आयेगा रे ।  
कहै सेवगराम सँभार साँई,  
ए तो जीव अकेला ही जायेगा रे ॥

### पद

अब कहा सौय राम कह भाई । रैन गई वासर भयो आई ॥  
पूर्व पुन्य ते नर देह पाई । हरिये मुख मत भूल गमाई ॥  
ताते एह उर करो विचारा । नर तन मिलै न बारंवारा ॥  
जात कपूर उड़ै कर सेती । तो बहुरै आवै नहि जेती ॥  
तिरिया तेल चढ़ै इक बारा । बहुरि न चढ़हि दूसरी बारा ॥  
केल फूल फल एक हि होई । बहुरै फल लागै नहि कोई ॥  
काच फूट किरची हुय जावे । सो बहुरै सावत नहि यावै ॥  
सत्तिया छिटक परीसिंध माँहीं । सो कवहूँ कर आवै नाहीं ॥  
एक बार कागज लिख सोई । जो दूसर लिखिहै नहिं कोई ॥  
जो मोती वींधत जो फूटा । तो कवहूँ मीले नहि पूठा ॥  
फाट पषण तेड़ जो आई । सो कवहूँ मीलै न मिलाई ॥  
सती सिंगार किया सज सोई । या तन ओर करै नहि कोई ॥  
ऐसे ही यह नर तन कहिये । सो बिनसै बहुरै नहिं पहये ॥  
नर तन अखै होय तब भाई । सेवगराम राम लिव लाई ॥

या मैं कोई नहीं नर तेरो रे ।

राम संत गुरुदेव निना है, सब ही जगत अँधेरो रे ॥  
हृदय देख चिचार खोज कर, दे मन माही फेरो रे ॥  
आयो कौन चले कौन संगी, सहर सराय बसेरो रे ॥  
मात पिता सुत कुँड़व कबीले, सब कह मेरो मेरो रे ॥  
जब जम किंकर पास गहे गल, तहाँ नहीं कोह तेरो रे ॥  
धरिया रहे धाम धन सब ही, छिन मैं करो निवेरो रे ॥  
आयो जँयू ही चले उठ रीतो, ले न सके कछु डेरो रे ॥  
मग्न होय सब कर्म कमावे, संक नहीं हरिकरो रे ॥  
होय हिसाव, ज्वाव जब बूझै, वहाँ न होय उवेरो रे ॥  
निरपख न्याय सदा समता से, रब रंक सब केरो रे ॥  
जैसा करे तैसा भुगतावै, भुगत्यो होय निवेरो रे ॥  
अबही चेत हेत कर हरि से, अजहूँ हरि पद नेरो रे ॥  
सतगुर साध सँगत जग साँही, भव तिरने को बेरो रे ॥  
होय हुँतियार सिंवर ले साँई, मान कल्यो अब मेरो रे ॥  
सेवगराम कह कह समझावै, परसराम को चेरो रे ॥

## सुखमें विस्मृति और दुःखमें पूजा

दुख में सुमिरन सब करै सुख में करै न कोय ।

जो सुख में सुमिरन करै दुख काहेको होय ॥

खास्थ्य, सम्पत्ति और स्वजन—सभी सुख प्राप्त हैं तो भगवान्‌को पूछे कौन ? भगवान्‌का कोई चित्र, कोई मूर्ति घरमें रहे—यह तो घरकी सजावटका एक अङ्ग है । नास्तिकता नहीं आयी, ईश्वर और धर्मके नामसे शत्रुता नहीं हो गयी, यही बहुत मानना चाहिये । जैसे घरमें सजावटके दूसरे उपकरण हैं, भगवान्‌की भी एक संगमरमरकी मूर्ति धरी है ।

प्रारब्ध अनुकूल है । सम्पत्तिका अभाव नहीं है । शरीर स्थैर है । पत्नी अनुकूल है और संतान भी हैं । अब आमोद-प्रमोद तथा अधिकाधिक उपार्जनकी चिन्तासे अवकाश कहाँ है कि भगवान्‌की बात सोची जाय । प्रातःकाल होते ही चाय और अखबार आ जाता है । पत्नी आरामसे बैठी मोजे बुनती है । बच्चे खाते-खेलते हैं ।

‘भगवान्‌का भजन—हाँ करना तो चाहिये; किंतु यह बुद्धायेका काम है । जिनके पास समय है, वे उसका सदुपयोग कर सकते हैं । यहाँ तो समय ही नहीं मिलता । अवकाश प्राप्त होनेपर भजन करनेका विचार तो है ।’ आजका सुसभ्य सम्पन्न व्यक्ति ऐसे विचार प्रकट करे तो उसे आस्तिक एवं भद्रपुरुष ही मानना होगा । भजन करना समयका दुरुपयोग है—कम-से-कम यह तो वह नहीं कहता ।

X

X

X

भगवती लक्ष्मी कहीं स्थिर नहीं रहतीं । प्रारब्ध

सदा सानुकूल नहीं रहा करता । दिवालि निकल गया—सम्पत्ति चली गयी । कल जो समाजमें सत्कृत था, सम्पन्न था, वही भद्रपुरुष कंगाल हो गया । आज उसे कहीं मुख दिखानेमें भी लज्जा आती है ।

विपत्तियाँ साथ आती हैं । मुकदमा चल रहा है और घरमें बच्चा बीमार पड़ा है । अब विपत्तिमें मनुष्य दयामय अशरणशरण भगवान्‌की शरण न ले तो जाय कहाँ ?

भगवान्‌की श्रीमूर्ति—जी, अब वह श्रीमूर्ति है । आराध्य प्रतिमा है । साक्षात् भगवान् हैं । घरका स्वामी बड़ी विधिसे पूजा और आर्तभावसे प्रार्थना करता है । घरके सभी सदस्य बारी-बारी-से पूजा करते हैं, आरती करते हैं और करबद्ध प्रार्थना करते हैं ।

कंगाली, चिन्ता और बीमारीसे ग्रस्त यह परिवार—भगवान्‌के भजन-पूजनके लिये अवकाश-का प्रश्न कहाँ है । भगवान् ही तो एकमात्र आधार हैं इस विपत्तिमें । उनका पूजन, उनकी प्रार्थना—जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण अङ्ग—सबसे आवश्यक कार्य यही तो है ।

देवी कुन्तीने इसीसे श्रीकृष्णचन्द्रसे विपत्ति-का वरदान माँगा—

विषदः सन्तु नः शश्वत्त्वं तत्र जगद्गुरुम् ।

भवतो दर्शनं यत्मादपुनर्भवदर्दीनम् ॥

(श्रीमद्भा० १।८।१५)

## सुखमें विस्मृति और दुःखमें पूजा

दुख में सुमिरन सब करें सुख में करै न कोय ।

जो सुख में सुमिरन करै दुख काहेको होय ॥

खास्थ्य, सम्पत्ति और सज्जन—सभी सुख प्राप्त हैं तो भगवान्‌को पूछे कौन ? भगवान्‌का कोई चित्र, कोई मूर्ति घरमें रहे—यह तो घरकी सजावटका एक अङ्ग है । नास्तिकता नहीं आयी, ईश्वर और धर्मके नामसे शत्रुता नहीं हो गयी, यही बहुत मानना चाहिये । जैसे घरमें सजावटके दूसरे उपकरण हैं, भगवान्‌की भी एक संगमरमरकी मूर्ति धरी है ।

ग्राह्य अनुकूल है । सम्पत्तिका अभाव नहीं है । शरीर स्वस्थ है । पत्नी अनुकूल है और संतान भी हैं । अब आमोद-प्रमोद तथा अधिकाधिक उपार्जनकी चिन्तासे अवकाश कहाँ है कि भगवान्‌की बात सोची जाय । प्रातःकाल होते ही चाय और अखबार आ जाता है । पत्नी आरामसे बैठी मोजे बुनती है । बच्चे खाते-खेलते हैं ।

‘भगवान्‌का भजन—हाँ करना तो चाहिये; किंतु यह बुद्धापेका काम है । जिनके पास समय है, वे उसका सदुपयोग कर सकते हैं । यहाँ तो समय ही नहीं मिलता । अवकाश प्राप्त होनेपर भजन करनेका विचार तो है ।’ आजका सुसम्प्रभु सम्पन्न व्यक्ति ऐसे विचार प्रकट करे तो उसे आस्तिक एवं भद्रपुरुष ही मानना होगा । भजन करना समयका दुरुपयोग है—कम-से-कम यह तो वह नहीं कहता ।

X X X

भगवती लक्ष्मी कहीं स्थिर नहीं रहतीं । ग्राह्य सदा सानुकूल नहीं रहा करता । दिवाला निकल गया—सम्पत्ति चली गयी । कल जो समाजमें संत्कुत था, सम्पन्न था, वही भद्रपुरुष कंगाल हो गया । आज उसे कहीं मुख दिखानेमें भी लजा आती है ।

विपत्तियाँ साथ आती हैं । मुकदमा चल रह है और घरमें बच्चा बीमार पड़ा है । अब विपत्तिमें मनुष्य दयामय अशरणशरण भगवान्‌की शरण ले तो जाय कहाँ ?

भगवान्‌की श्रीमूर्ति—जी, अब वह श्रीमूर्ति है । आराध्य प्रतिमा है । साथात् भगवान् हैं । घरका खामी बड़ी विधिसे पूजा और आर्तमावसे प्रार्थना करता है । घरके सभी सदस्य बारी-बारी-से पूजा करते हैं, आरती करते हैं और करवद्व प्रार्थना करते हैं ।

कंगाली, चिन्ता और बीमारीसे ग्रस्त यह परिवार—भगवान्‌के भजन-पूजनके लिये अवकाश-का प्रश्न कहाँ है । भगवान् ही तो एकमात्र आधार हैं इस विपत्तिमें । उनका पूजन, उनकी प्रार्थना—जीवनका सबसे महत्वपूर्ण अङ्ग—सबसे आवश्यक कार्य यही तो है ।

देवी कृन्तीने इसीसे श्रीकृष्णचन्द्रसे विपत्ति-का वरदान माँगा—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरुं ।  
भवतो दर्शनं यत्प्रादपुनर्भवदर्शनम् ॥  
(श्रीमद्भा० १।८।५)

## संसारके सम्मानका स्वरूप

संसारके लोग सम्मान करें, घरके लोग सत्कार करें—कौन नहीं चाहेगा ? सम्मान किसे मीठा नहीं लगता ?

लोग हमारा सम्मान करते हैं, लोग हमारा सत्कार करते हैं—कितना मोह है। इससे बड़ा अभ कोई दूसरा भी होगा—कठिन ही है।

संसारके बल सफलताका सम्मान करता है। घरके लोग केवल अपने स्वार्थकी सिद्धिका सत्कार करते हैं। व्यक्तिका कोई सम्मान या सत्कार नहीं करता।

एक व्यक्ति युवक है, स्वयं है, सबल है। भाग्य अनुकूल है। उपार्जन करके घर लौटा है। घरके लोग बड़ी उमंगसे उसका स्वागत करते हैं। पत्नीका तो वह पूज्य ही है, वह चरणोंपर पुष्प चढ़ाती है, माता आरती उतारती है, पिता आलिङ्गन करनेको आगे बढ़ते हैं। घरके भाई-बन्धु, सगे-सम्बन्धी, सभी स्त्री-पुरुष उसके सत्कारमें जुट पड़ते हैं। घरके लोग तो घरके हैं—पास-पड़ोसके लोग, ग्रामण तथा जाति-भाई, छोटे-बड़े सभी परिचित उससे मिलने दौड़े आते हैं। उसे आशीर्वाद मिलता है, सम्मान प्राप्त होता है। अपरिचित भी उससे परिचय करनेको उत्सुक हो उठते हैं।

उसमें शुण-ही-शुण दीखते हैं सबको। उसकी भूलें भी शुण जान पड़ती हैं। उसे स्वयं लगता है—संसार बड़ा सुखप्रद है। लोग बड़े ही सज्जन, सुशील और स्नेही हैं।

यह उस व्यक्तिका स्वागत-सम्मान है ? यह उसके गुणोंकी पूजा है ? वह भले भूल जाय, लोग मुखसे भले घर-नार उसकी और उसके गुणोंकी प्रशंसा करते न थके—है यह केवल उसकी सफलताकी पूजा। उसने सफलता प्राप्त की, उससे परिवारका स्वार्थ सिद्ध हुआ—वह, उसके सम्मानका यही कारण है।

×      ×      ×

व्यक्ति वही है। उसके वे शुण कहीं नहीं चले गये। हुआ इतना कि वह निर्धन हो गया।

भाग्य उसके अनुकूल नहीं रहा। उसे उद्योगोंमें सफलता नहीं मिली।

किसीके बशकी बात है कि वह रोगी न हो ? कालकी गतिको कोई कैसे अटका सकता है और चश्चला लक्ष्मी जब जाना चाहती है—उन्हें कोई रोक सका है ? इसमें मनुष्यका क्या दोष ?

उसकी उम्र बड़ी हो गयी, वह शक्तिहीन हो गया, उद्योगोंमें असफल होकर कंगाल हो गया—इसमें उसका कुछ दोष है ?

दूसरे और घरके सभीका व्यवहार उसके प्रति ऐसा हो गया है जैसे यह सब उसीका दोष है। उसके शुण भी सबको दोष जान पड़ते हैं। वह कोई शुभ समस्ति भी देना चाहता है तो दुत्कार दिया जाता है।

पास-पड़ोसके परिचित—उसके मित्रतक द्वारा-के सामनेसे चले जाते हैं और पुकारनेपर भी उसकी ओर देखतेतक नहीं। बड़ी शिष्टता कोई दिखलाता है तो कह देता है—‘बहुत आवश्यक कामसे जा रहा हूँ। फिर कभी आऊँगा !’ ‘वह फिर कभी’—जानता है कि उसे कभी नहीं आना है।

अपने घरके लोग, अपने सभे पुत्रतक उसे बार-बार हिड़क देते हैं। वह कुछ पूछता है तो उसे कहा जाता है—‘तुमसे चुपचाप पड़े भी नहीं रहा जाता !’

उसकी अपनी एली—वही पहाड़ी जो कभी उसके पैरोंकी पूजा करती थी—दो श्वणको उसके पास नहीं बैठती। कोई कास न रहनेपर भी वह उससे दूर—उससे मुख फिराकर बैठे रहना चाहती है। माता गालियाँ बकती हैं; पिता इज्जत वर्वाद कर देनेवाले बैठेको मारने दौड़ते हैं।

उसका वह पुराना स्वागत, वह सत्कार, वह स्नेह और आजका यह तिरस्कार, यह उपेक्षा—लेकिन संसारने उसका स्वागत किया कब था। संसार तो सफलताका स्वागत करता है। मनुष्य संसारके इस सम्मानके धोखेमें पड़ा रहे—पड़ा करे—उसीका तो अज्ञान है।

## संत श्रीविरमदासजी महाराज

( रामस्तेही-सम्प्रदायके संत )

मौसर पाय मती कोइ हारो, जन्महीण मत होवो ।  
राम राम की सायद ओले, वेद-पुराणाँ में जोबो ॥  
सीका कोट ओस का पाणी, ऐसी नर देह होई ।

होय जाय छिन भाय॑ बीरसे, विनसत बर न कोई ॥  
भज रे राम प्रीत कर हर सैँ, तज रे विषय विकारा ।  
साची कहूँ मान मन मूरख, साँवल सतगुर म्हारा ॥

## श्रीलालनाथजी परमहंस

( प्रेषक—श्रीशंकरलालजी पारीक )

साधा में अधवेसरा, ज्यूँ वासाँ में लाय ।  
जल विन जोड़े क्यूँ बड़ो, पगाँ विलूमैं काँथ ॥  
साध बड़ा संसार, ज्ञान देय गाँफल तरे ।  
दीसतड़ा दुख माय॑ रहत कर जुग सैँ वारे ॥  
क्यों पकड़ो है डालियाँ, नहचै पकड़ौ पेड़ ।  
गडवाँ सेती निसतिराई, के तारैली भेड़ ॥

‘लाल’ क्यैं सूत्याँ सरै, वायर ऊओ काल ।  
जोलों है इण जीब नै, ऊबड़ो धालै जाल ॥  
करमैं सैं काल भया, दीसो दूँ दाध्या ।  
इक सुमरण सामूँ करौ, जद पड़सी लधा ॥  
प्रेम-कटारी तन बहै, ग्यान-सेल का धाव ।  
सनमुख जूँझैं सूरबाँ, से लैं पै दरियाव ॥

## संत श्रीजसनाथजी

[ आविर्भाव—वि० सं० १५३९ । जन्मस्थान—करतियासर ( बीकानेर ); तिरोभाव—वि० सं० १५६३ ]

( प्रेषक—श्रीशंकरलालजी पारीक )

जम रे हाथ छुरो है पैनो, तीखो है समसरे ।  
ऊँधा टेरै मार दिरावै, छाँटे लूण कुँवरे ॥  
बैठे जिवड़ो, थर थर काँधो, उबरैं किसी उधरे ।  
का उबरे कोई सुकृत कीयाँ, का करणी इदकरे ॥  
आहूँ पैर विरलावत रहियो, ना जपियो निरकरे ।  
एकाँहरे नाँव विना ( कुण ) आवट कजियो सरे ॥  
लाड हुवे सायथ री दरगाँ, सरत्ती वस्त पियरे ।  
गुरु परसादे गोरख वचने, ‘सिध जसनाथ’ उचारे ॥  
  
इण जिबड़े रे कारणै हर हर नाँव चितारे ।  
ओ धन तो है ढलती छाया, ज्यूँ धूँवै री धारे ॥  
करणी किरत कमाओ भाई, करणी करी फरारे ।

शील सिनान सुरत संजोयो, करो जीव इकतारे ॥  
अठै ऊँचा पोळ चिणाया, आगे पोळ उगरे ।  
ऊँचा अजव झरोखा राख्या वै पूणा ने वरे ॥  
आगल पक्षा आँगणा, वै देलग ने सरे ।  
टेढी पाग छुकावैता, हालंता हैकारे ॥  
कोटा होता राजवी, कैता धर म्हारे ।  
डोढ़ी पोरायत राखता, कर नंर हुस्यारे ॥  
जिण धर नोबत बाजती, चटता पाँच हजारे ।  
साथ कोई नहीं चालियो, इण जिव री अव शारे ॥  
पछो धिर ने जोहयो, सब जुग रहियो आगे ।  
गुरु परसादे गोरख वचने, ‘सिध जसनाथ’ विनारे ॥

## भक्त ओपाजी आढा चारण

[ गाँव—भावी, राजस्थान ]

( प्रेषक—चौधरी श्रीशिवसिंह महारामजी )

क्यूँ परपंच करै नर कूड़ा, विलकुल दिल में धार विवेक ।  
दाता जो वाधी लिख दीनी, आधी लिखणहार नहिं एक ॥

पर आशा तज रे तू प्राणी, परसेवर भज रे भरउ ।  
सुख लिखियौ नौह माँगजै, दुन लिखियौ गुप ठोगीदू ॥

काला जीव, लोभ रै कारण स्थाली मती जमारो खोय ।  
करता जो लिखिया कँकँरा, काजल तणा करै नहिं कोय ॥

भज रे तरण तारण तु प्राणिया ! दूजाँ री काँनी मत देव ।  
किरोइ प्रकार ठलै नहिं किण सूँ, लिखिया जिके विधाता लेव ॥

## भक्त कवियित्री समानबाई चारण

[ गाँव—आवी, राजस्थान ]

( प्रेषक—चौधरी श्रीशिवसिंह महाराजी )

भव सागर नीर भरवो त्रिसना तिहिं,  
मध्य में मोह है ग्राह भयंकर ।  
जीव-नयंद रु आसा-त्रिपा,  
स्वकुद्धम्ब मनोरथ संग भयौ भर ॥

मोह के कंद परयो वस कर्म ते,  
हाल सकै नहिं चाल गयौ गर ।  
मो धनश्याम ! 'समान' कहे,  
करिये अब ब्रेग सहाय लगे डर ॥

## संत बाबा लाल

( पंजाबके प्रसिद्ध भहात्मा, जन्म-स्थान—कुम्हर ( लाहौरके पास ), जन्म—वि० सं० १६४७, स्त्रीकुलमें; शरीरान्त—वि० सं० १७१२ । )

### चौपाई

जाके अंतर ब्रह्म प्रतीत । धरे मौन भावे गावे गीत ॥  
निसदिन उन्मन रहित खुमार । शब्द सुरत छुड़ एको तार ॥  
मा गह गहे न बन को जाय । लाल दयालु सुख आतम पाय ॥

### सास्त्री

आदा विषय विकार की, बँध्या जग संसार ।  
लद चौरासी केर में, भरमत बारंबार ॥

जिह की आशा कछु नहीं, आतम राखे सुन्ध ।

तिह की नहिं कछु भर्मणा, लगै पप न पुन्ध ॥  
देहा भीतर श्वास है, श्वासा भीतर जीव ।  
जीवे भीतर वासना, किस विध पाइये पीव ॥  
जाके अंतर वासना, बाहर धरे ध्यान ।  
तिह को गोविद ना मिले, अत होत है हान ॥

## भक्त श्रीनारायण स्वामीजी

( सारस्वत नारायण, जन्म—वि० सं० १८८५ या ८६ के लगभग, रावलपिंडी ( पंजाब ) जिला । शरीरान्त—फाल्गुन कृष्ण ११, वि० सं० १९५७, श्रीगोविंशनके सभीष कुमुमसरोवरपर श्रीजडवमन्दिर । )



### श्रीकृष्णका प्रेम

स्वाम द्वग्न की चोट दुरी री ।  
ज्यों ज्यों नाम लेति तू वाको,  
मो धायल दै नौन पुरी री ॥  
ना जानौ अब सुघ-बुध मेरी,  
कौन विधिन में जाय दुरी री ।  
'नारायन' नहि छूटत सजनी, जाकी जासों प्रीति दुरी री ॥  
नाहै तू जोग करि भ्रकुटी मध्य ध्यान धरि,  
नाहै नाम रूप मिथ्या जानि कै निहारि लै ।  
निर्गत, निर्भय, निराकार ज्योति व्याप रही,  
ऐगों तलायान निज मन में तू धारि लै ॥

'नारायन' अपने को आपुर्णी बलान करि,  
मोते वह भिन्न नहीं या विधि पुकारि लै ।  
जौलौं तोहि नंद कौं कुमार नाहिं दृष्टि परयौ,  
तौ लौं तू भलै वैठि ब्रह्म कों विचारि लै ॥

प्रीतम, तूं मोहि प्रान तें प्यारो ।  
जो तोहि देखि हियो सुख पावत, सो वड भागनिकारो ॥  
तूं जीवन-धन, सरबस तूं ही, तुहीं द्वग्न को तारो ।  
जो तोकों पल भर न लिहालैं, दीखत जग अँधियारो ॥  
मोद वदावन के कारन हम, मानिनि रूपहि धारो ।  
'नारायन' हम दोउ एक हैं, फूल सुगंध न न्यारो ॥

जाहि ल्यान लगी धनश्याम की ।  
धरत कहूँ पग परत कितैही, भूलि जाय सुधि धाम की ॥

जिनि निहार नहि रहत सार कद्मु, परि पल निसि दिन जाम की।  
जित मुँह उठे तितेहीं धावै, सुरति न छाया धाम की ॥  
भसुति निंदा करौ भलै हीं, मेह तजी कुल ग्राम की।  
'नारायन' बौरी भह डोलै, रही न काढ़ काम की ॥

मूरख छाड़ि बृया अभिमान ।  
और थीत चल्यौ है तेरो दो दिन कौ महमान ॥  
भूप अनेक भये पृथिवी पर, लप तेज बलवान ।  
कौन बचौ या काल-ब्याल तै मिटि गये नाम निसान ॥  
धवल धाम, धन, गज, रथ, सेना, नरी चंद्र समान ।  
अंत समय सबहीं कौं तजि कैं, जाय वसे समसान ॥  
तजि सत्तरंग भ्रमत निपयन मैं, जा विधि भरकट, स्वान ।  
छिन भरि बैठि न सुमरिन कीनहों, जासों होय कल्यान ॥  
रे मन मूढ़, अनत जनि भटकै, मेरो कह्यौ अब मान ।  
'नारायन' ब्रजराज कुँवर सौं, बेगाहि करि पहिचान ॥

मोहन बसि गयो मेरे मन मैं ।

लोक-लाज कुल-कानि छूटि गई, याकी नेह-लगान मैं ॥  
जित देखूँ तितहीं वह दीखै, घर-बाहर आँगन मैं ।  
अंग-अंग प्रति रोम-रोम मैं, छाय रहो तन-मन मैं ॥  
कुंडल-श्लक कपोलन सौहै, वाज-बंद सुजन मैं ।  
कंकन कलित ललित बनमाला, नूपुर धुनि चरनन मैं ॥  
चपल नैन, अकुटी बर बाँकी, ठाढ़ी सघन लतन मैं ।  
'नारायन' बिन मोल बिकी हीं, याकी नैक हसन मैं ॥

नयनों रे, चित चोर बतावौ ।

तुमहीं रहत भवन रखवारे, बाँके बीर कहावौ ॥  
तुम्हरे बीच गयो मन मेरौ, चाहै सौहै खावौ ।  
अब क्यों रोवत हौं दइमारे, कहुँ तौ याह लगावौ ॥  
घर के भेदी बैठि द्वार पै, दिन मैं घर लुटवावौ ।  
'नारायन' मोहि वस्तु न चहिये, लेवनहार दिसावौ ॥

### लाघनी

रूपरसिक, मोहन, मनोज-मन-हरन, सकल-गुन-गरवीले ।  
छैल-छवीले चपललोचन चकोर चित चटकीले ॥टेक॥  
रतनजटित सिर मुकुट लटक रहि सिमट स्थाम लट धुंधुरारी ।  
बाल विहारी कन्हैयालाल, चतुर, तेरी बलिहारी ॥  
लोलक मोती कान कपोलन झलक बनी निरमल प्यारी ।  
ज्योति उज्यारी, हमैं हर बार दरस दै गिरिधारी ॥  
बिजुछटा-सी दंतछटा मुख देखि सरद-ससि सरसीले ।  
छैल-छवीले, चपललोचन चकोर चित चटकीले ॥

मंद हँसन, मृदु बचन तोतलै बय किसोर भोली-भाली ।  
करत चोचले, अमोलक अधर पीक रच रहि लली ॥  
फूल गुलब चिकुक सुंदरता, इचिर कंठछवि बनमाली ।  
कर सरोज मैं, बुद मेहँदी अति अमंद है प्रतिपाली ॥  
फूलछरी-सी नरम कमर करधनी-सब्द हैं तुरतीले ।  
छैल-छवीले, चपललोचन चकोर चित चटकीले ॥

झँगुली झीन जरीपट कछनी, स्थामल गात सुहात भले ।  
चाल निराली, चरन कोमल पंकज के पात भले ॥  
पग नूपुर ज्ञनकार परम उत्तम जसुमति के तात भले ॥  
संग सखन के, जमुनतट गौचछरान चरात भले ॥  
ब्रज-जुधातिन कौं प्रेम निरखि कर घर-घर भाखन गटकीले ।  
छैल-छवीले, चपललोचन चकोर चित चटकीले ॥

गावैं बाग-बिलाल चरित हरि सरद-रैन रस-रास करैं ।  
सुनिजन मोहैं, कृष्ण कंसादिक खल-दल नास करैं ॥  
गिरिधारी महाराज सदा श्रीब्रज बुन्दावन बास करैं ।  
इरिचित्रि कौं सखन सुन-सुन करि अति अभिलाप करैं ॥  
हाथ जोरि करै बीनती 'नारायन' दिल दरदीले ।  
छैल-छवीले, चपललोचन चकोर चित चटकीले ॥

### चैतावनी और चैराग्य

बहुत गई थोरी रही, नारायन अब चेत ।  
काल चिरैथा चुग रही, निस दिन आयू खेत ॥  
नारायन सुख भोग मैं, तू लंपट दिन रैन ।  
अंतसमय आयो निकट, देख खोल के नैन ॥  
धन जीवन यों जायगो, जा विधि उडत कपूर ।  
नारायन गोपाल भजि, क्यों चाहै जग धूर ॥  
जंभक सुंभ निसुंभ अद, श्रिपुर आदि लै धर ।  
नारायन या काल नै, किये सकल भट चूर ॥  
हिरन्याच्छ जग मैं विदित, हिरनकभिपु वल्वान ।  
नारायन छन मैं भये, यह सब राव मगान ॥  
सगर नहूप जजाति पट, और अनेक मरीप ।  
नारायन अब वह कहाँ, भुज वल जीते दीर ॥  
कुंभकरन दसकट से, नारायन रनरीप ।  
भए सकल भट कालवस, जिन के कुणिग मरीर ॥  
दुजोंनन जग मैं प्रगट, जगउंभ मिसुराल ।  
नारायन सो अब कहाँ, अभिमानी भूमाल ॥

नारायन संसार में, भूपति भए अनेक ।  
मैं मेरी करते रहे, लै न गये तून एक ॥  
भुज बल जीते लोक सब, निरभय सुख धन धाम ।  
नारायन तिन नृथन को, लिख्यो रह गयो नाम ॥  
हाथ जोरि ठाहो रह्यो, जिन के सन्मुख काल ।  
नारायन सौज बली, परे काल के गाल ॥  
नारायन नव खंड में, निरभय जिन को राज ।  
ऐसे विदित महीप जग, ग्रसे काल महाराज ॥  
गज तुरंग रथ सेन अति, निस दिन जिन के द्वार ।  
नारायन सो अव कहाँ, देखौ आँख पसार ॥  
नारायन निज हाथ पै, जे नर करत सुमेर ।  
सोउ वीर या भूमि पै, भये राख के ढेर ॥  
जिन के सहजहि पा धरत, रज सम हीत पशान ।  
नारायन तिन को कहूँ, रह्यो न नाम निशान ॥  
नारायन जिन के भवन, विधि सम भोग विलास ।  
अंत समय सब छाँड़ि के, भए काल के ग्रास ॥  
जिन को रूप निहार के, रवि ससि रथ ठहरात ।  
नारायन ते खम्म सम, भए मनोहर गात ॥  
चटक मटक नित छैल बन, तकत चलत चहूँ और ।  
नारायन यह सुधि नहीं, आज मरैं कै भोर ॥  
नारायन जब अंत में, यम पकरेंगे बाँह ।  
तिन सों भी कहियो हमें, अभी सोफतो नाँह ॥  
कोउ नहीं अपनो सगो, बिन राधा गोपाल ।  
नारायन त् वृथा मति, परे जगत के जाल ॥  
मन लाल्यो सुख भोग में, तरन चहै संसार ।  
नारायन कैसे बने, दिवस रैन को प्यार ॥  
विद्यावंत स्वरूप गुन, सुत दाया सुख भोग ।  
नारायन एरि भक्ति बिन, यह सबही हैं रोग ॥  
नारायन निज हिये में, अपने दोष विचार ।  
ता पीछे त् और के, अवगुन भले निहार ॥

### संत-लक्षण

तजि पर औगुन नीर कौ, ढीर गुनम सौं प्रीति ।  
इस संत श्री सर्वदा, नारायन यह रीति ॥  
तनक मान मन मैं नहीं, सब सों राखत प्यार ।  
नारायन ता संत पै, चार यार वलिदार ॥  
अति कुरालु संतोर दृष्टि, जुगल चरन मैं प्रीति ।  
नारायन ते संत यर, कोमळ चरन विनीत ॥

सं० ला० अ० ५४ —

उदासीन जग सौं रहै, जथा मान अपमान ।  
नारायन ते संत जन, निपुन भावना ध्यान ॥  
मगन रहैं नित भजन मैं, चलत न चाल कुचाल ।  
नारायन ते जानिये, यह लालन के लाल ॥  
परहित प्रीति उदार चित, विगत दंभ मद रोप ।  
नारायन दुख मैं लखैं, निज कर्मन को दोष ॥  
भक्ति कल्पतरु पात गुन, कथा फूल बहु रंग ।  
नारायन हरि प्रेम फल, चाहत संत विहंग ॥  
संत जगत मैं सौं सुखी, मैं भेरी को त्याग ।  
नारायन गोविंद पद, दृढ़ राखत अतुराग ॥  
जिन के पूरन भक्ति है, ते सब सौं आधीन ।  
नारायन तजि मान मद, ध्यान सलिल के मीन ॥  
नारायन हरि भक्त की, प्रथम यही पहचान ।  
आप अमानी है रहै, देत और को मान ॥  
कपट गाँठि मन मैं नहीं, सब सौं सरल सुभाव ।  
नारायन ता भक्त की, लघी किनारे नाव ॥  
जिन को मन हरि पद कमल, निषि दिन भ्रमर सभान ।  
नारायन तिन सौं मिलें, कबूँ न होवै हान ॥

### श्रीकृष्णका स्वरूप-सौन्दर्य

रतिपति छवि निदत बदन, नील जलज सम स्याम ।  
नव जौवन मृदु हास वर, रूप रासि सुख धाम ॥  
ऋतु अनुसार सुहावने, अद्भुत पहरे चीर ।  
जो निज छवि सौं हरत हैं, धीरजहूँ को धीर ॥  
सोर मुकुट की निरखि छवि, लाजत मदन किरोर ।  
चंद बदन सुख सदन पै, माहुक नैन चकोर ॥  
जिन मोरन के पंख हरि, राखत अपने सीस ।  
तिन के भागन की सखी, कौन कर सके रीस ॥  
बुधरारी अलकावली, मुख पै देत बहार ।  
रसिक मीन मन के लिये, काँटे अति अनियार ॥  
मकराकुल कुण्डल श्रवण, झाईं परत कपोल ।  
रूप सरोवर माहिं दै, मछरी करत कलोल ॥  
सुक लजात लखि नासिका, अद्भुत छवि की सार ।  
ता मैं इक मोती परशो, अजव सुराहीदार ॥  
दसन पाँति मुतिथन लरी, अधर ललाई पान ।  
ताहूँ पै हँसि हेरदो, को लखि बचै सुजान ॥  
मृदु सुतिक्यान निहारिके, धीर धरत है कौन ।  
नारायन कै तन तजै, कै थोरा, कै मौन ॥

अधरामृत सम अधर रस, जानत वंसी सार ।  
 सप्त सुरन सो सप्त कर, कहत पुकार पुकार ॥  
 रत्नन की कंटी गरे, मुक्तमाल बनमाल ।  
 विविध ताप तीनो हरे, जो निरखत नैदलाल ॥  
 उदर माहि त्रिवली सुभग, नाभि रुचिर गंभीर ।  
 छवि-समुद्र के निकट आति, भई धिवेनी भीर ॥  
 गजमुक्ता की लरी है, अति अमोल छवि कंद ।  
 सो अद्भुत कठि कोषनी, पहिर रहो ब्रजवंद ॥  
 गोल गुलफ पै सजि रहे, नृपुर सोभा ऐत ।

जिन की धुनि सुनि जगत सों, मिटै लैन अरु दैन ॥  
 जुगल चरन दस अँगुरियाँ, दसधा भक्ति सुहाय ॥  
 नखन ज्योति लखि चंद्रमा, गयो अकास उडाय ॥  
 तेरे भावें जो करौ, भलो बुरो संसर ।  
 नारायन तूँ बैठकें, अपनो भवन बुहार ॥  
 दो बातन को भूल मत, जो चाहै कल्यान ।  
 नारायन एक मौत को, दूजे श्रीभगवान ॥  
 नारायन हरि भजन में, दू जिन देर लगाय ।  
 का जाने या देर में, स्वास रहे या नाय ॥

## स्वामी श्रीकुंञनदासजी

उत्तम नर जग जानहि सपना । अहंकार उर राख न अपना ॥  
 लोभामर्ष दुरावहि मन तें । जपहि संयु संगति हरि जन तें ॥  
 काम क्रोध भोह सब त्यागी । करहि जोग संकर अनुरागी ॥  
 ध्यान धरहि उर काम विहाई । ग्यान पाइ अभिमान नसाई ॥  
 उर संतोष तजी सब माया । सोच विचार जीव पर दाया ॥

सध्यम नर अस अहर्हि जग, सकल विवर्जित बात ।  
 एक समान नहि रह सदा, यहि विधि दिवस सियात ॥  
 अधमहु पाइ सुसंगति तरहो । उत्तम लोक उर आनेंद भरहो ॥  
 विस्वामित्र आदि पुनि रावन । कुभकरन आदिक भये पावन ॥  
 जग महै विदित सुसंग कुसंग । फलै निटप जिमि समय प्रसंगा ॥  
 संग तें भक्ति करहि जो लोगा । अहै सोइ जग मुक्ति के जोगा ॥

## श्रीपीताम्बरदेवजी

अब हरि भोसों छल न करो ।  
 सूधी बात विचारि कृपानिधि स्वजन दुखी लखि लाज मरो ॥  
 बहुत गई अब भई कीजिये दुम को कहा छरो ।  
 कन अपनो पीताम्बर लीजे, दई दोष ते आप डरो ॥

मो मन ऐसी अटक परी ।  
 विधिन विहार निहारत सहनरि मूरति हिये अरी ॥  
 जग के काज अकाज न सङ्गत प्रलय समान परी ।  
 'पीताम्बर' देखे निन तलफत ज्यों जल निन मरी ॥

## श्रीरामानन्द स्वामी

( श्रीस्वामिनारायण-सम्प्रदायके आचार्य श्रीनारायण सुनि था सहजनन्दजीके गुरु । जन्म—सं० १७९५, श्रावण शुक्ला ६,  
 कश्यपग्रीष्मी ब्राह्मणकुलमें । पिताका नाम—पण्डित अजय शर्मा । माताका नाम—सुमति देवी । देहस्थल कण्णी नामक घासी ।  
 सं० १८५८ मर्गशीर्ष शुक्ला १३ को समाधि । )

परब्रह्म साकार है, दिव्य सचिदानन्द ।  
 साकार होत साकार से, भज के रामानन्द ॥  
 उन के सब अवतार हैं, भोग लोक सुखधार ।

विशिष्ट ज्ञान कमाय के, होवत पूर्ण वाम ॥  
 निराकार का अर्थ है, मायाकार विदीन ।  
 रामानेंद यह जान के, तू हो मुक्त प्रवीन ॥

## संत श्रीस्वामिनारायणजी

( श्रीस्वामिनारायण-सम्प्रदायके भवतक स्वामी सहजनन्दजी या नारायण सुनि । श्रीरामानन्द स्वामीके द्वाग सं० १८५७ शुक्ला ११  
 शुक्ला ११ को दीक्षा ग्रहण की । )  
 किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये । अहिंसा  
 महान् धर्म है । सभीको अपने-अपने वर्णश्रमधर्मपर आरुङ्

रहना चाहिये । जिन ग्रन्थोंमें ईश्वरके व्यरुपाओं दर्शन हैं ।  
 उनको प्रमाण नहीं मानना चाहिये । शृंगि रम्भा है ।

सदाचारद्वारा ही धर्मके स्वरूपका बोध होता है। परमात्माके प्रीतिका अभाव होता है, उसीका नाम वैराग्य है। तथा माहात्म्यज्ञानके द्वारा उनमें जो आत्मनितक स्नेह होता है, जीव, ईश्वर और भाषा—इन तीनोंके स्वरूपको जान लेना वही भक्ति है। भगवान्‌से रहित अन्यान्य पदार्थोंमें जो ही ज्ञान कहलाता है।

## श्रीभुक्तानन्द स्वामी

( पूर्वाश्रम-नाम—मुकुन्द । जन्म—सं० १८१४ पौष कृ० ६ काठियावाड प्रान्तके अमरापुर नामक ग्राममें । पिताका नाम—मार्गीवाच । देहावसान—सं० १८८७ आषाढ़ कृष्ण एकादशी । )

नारद मेरे संत-से अधिक न कोई । भू को भार हस्त संतन हित, करुँ छाया कर दोई ।  
मम उर संत रुमैं संतन उर, बास करुँ थिर होई ॥ ना० ॥ जो मेरे संत को रति इक दूषत, तेहि जड़ ढारुँमैं लोई ॥ ना० ॥  
कमला मेरी करत उपासन, मातृ चपलता खोई । जिन नर तनु धरि संतन सेये, तिन निज जननि विगोई ।  
यद्यपि वास दियो मैं उर पर, संतन सम नहिं होई ॥ ना० ॥ 'मुक्तानन्द' कहत यूँ मोहन, प्रिय मोहे जन निरमोही ॥ ना० ॥

## श्रीत्रित्यानन्द स्वामी

( जन्म—सं० १८२९ । गुरुका नाम—स्वामिनारायणजी )

ऐसे संत सच्चे जग माँहि फिरैं, नहिं चाहत लोभ हराम कूँ जी । अरु जीभहूँ से कवौँ झट न भासवत, गाँठ न रखत दाम कूँ जी ।  
मदा सील संतोष रहेघट भीतर, कैद किये क्रोध काम कूँ जी ॥ 'ब्रह्मानन्द' कहे सत्य बारताकूँ ऐसे संत मिलावत राम कूँ जी ॥

## श्रीनिष्ठुलानन्द स्वामी

( जन्म—सं० १८२२ शैखपाट नामक गाँवमें । जन्म-नाम—आलजी । पिताका नाम—राम भाई । माताका नाम—अमृतजा । जाति—विश्वकर्मा(वद्दई) । तिरोभाव—धोलेरा नगरमें सं० १९०४ । )

संतकृपा सुख ऊपजै, संतकृपा सरे काम । संग प्रसंगे पाँगरे, जोग भोगनो याय जी ॥  
संतकृपा से पाहये, पूरण पुरुषोत्तम धाम ॥ उष्ण रते अवनी विषे, दीज नव दीसे बहार जी ।  
संतकृपा से सद्गति जागे, संतकृपा से सद्गुन । घन वरसे बन पांगरे, इंद्रिय विषय आकार जी ॥  
संतकृपा विन साधुता, कहिये पाया कौन ॥ चमक देखीने लोहे चले, इंद्रिय विषय संजोग जी ।  
कामदुषा अरु कल्पतरु, पारस चितामणि चार । अण्मेटे रे अभाव छे, भेटे भोगको भोग जी ॥  
रंत समान कोई नहीं, मैने मन किये बिचार ॥ उपर तजे ने अंतर भजे, एम न सरे अरथ जी ॥

त्याग न टके रे वैराग विना, करिये कोटि उपाय जी । वणश्यो रे वर्णाश्रम थकी, अंते कस्तो अनरथ जी ॥  
अन्तर ऊँटी इच्छा रहे, ते केम करीने तजाय जी ॥ अष्ट थयो जोग भोग थी, जेम वेगडयुं दूध जी ।  
वैर लीधो वैरागनो, देश रही गयो दूर जी । गमुं पृत मही कालण थकी, आपे ययुं रे अशुद्ध जी ॥  
उपर वैर आओ बन्यो, माँही मोह भरपूर जी ॥ पल्लमॉ जोगी ने भोगी पल्लमॉ, पल्लमॉ गृही ने त्यासी जी ।  
वाम कोण लोभ मोहनुं, ज्यां लभी मूळ न जाय जी ॥ 'निष्ठुलानन्द' ए नरनो, वणसमज्यो वैराग जी ॥

## श्रीगुणातीतानन्द स्वामी

( जन्म-सं०—१८४१ अभिन शुगा पूर्णिमा । जाति—बशिष्ठ-गोत्रीय ब्राह्मण । पिताका नाम—श्रीगोलानाथजी । माताका नाम—प्रादेवतसामी । देहावसान—१९२३ अभिन शुगा १२ । )

रिंग-सुरामी अत्यन्त अत्यधिक ऊँचा है और भगवान्नामिर्ता सुन तो निन्तामणिके नमान है। भगवान्‌की प्राप्ति नंत-भगवान्मणी वी रीति है, क्योंकि संतजन ही

भगवान्में तलीन रहते हैं। पुरुषोत्तम भगवान्की ऐकान्तिक भक्तिमें निरन्तर लगे रहो। भगवत्प्राप्ति ही मनुष्यका एकमात्र कर्तव्य है।

## संत शिवनारायणजी

( इनके सम्प्रदायानुसार जन्म—वि० सं० १७७३, कार्तिक शुक्र ३ वृहस्पतिवार; पिताका नाम—श्रीबाघरायजी, मातृजी—नाम—श्रीसुन्दरीदेवी, गुरुका नाम—दुखहरण ( बलिया जिलेवाले ); देहत्याग वि० सं० १८४८। जन्मस्थान—चैदगार प्रदेश ( जहारावाह परगना, जिला गाजीपुर। ) )

अंजन आँजिए निज सोइ ॥

जेहि बँजनसे तिमिर नारे, दृष्टि निरमल होइ ।  
वैद सोइ जो पीर भिटावे, बहुरि पीर न होइ ॥  
धेनु सोइ जो आप स्वै, दूहिए विनु नोइ ।  
अंबु सोइ जो प्यास मेटे, बहुरि प्यास न होइ ॥  
सरस साबुन सुरति धोविन, मैल डारे धोइ ।  
गुरु सोइ जो भरम दारै, द्वैत डारे धोइ ॥  
आवागमन के सोच मेटे, सब्द सरूपी होइ ।  
'शिवनारायण' एक दरसे, एकतार जो होइ ॥

सिपाही मन दूर खेलन मत जैये ॥

घटही में गंगा घटही में जमुना, तेहि विच्च पैठि नहैये ।  
अछेहो ब्रिरिछ की शीतल छहिया तेहि तरे बैठि नहैये ।  
माता पिता तेरे घटही में, नित उठि दरसन पैये ।  
'शिवनारायण' कहि समुझावे, गुरु के सबद हिये कैये ॥

बृन्दावन कान्हा मुरलि बजाई ॥

जो जैसहि तैसहि उठि धाई, कुल की लज गँवाई ।  
जो न गई सो तो भई है बावरी, समुझि समुझि पछिताई ।  
गौवन के सुख ब्रेन बसत है, बछवा पिथत न गाई ।  
'शिवनारायण' श्रवण सबद सुनि, पवन रहत अलसाई ॥

## संत तुलसी साहब

( जन्मसंवत्—१८१७ वि० ( मतान्तरसे वि० सं० १८५ ), स्थान—हाथरस, शरीरान्त—वि० सं० १८९९ ( मतान्तरसे वि० १९०० ज्येष्ठ शुक्र २। ) )

अरे बेहोस गाफिल गुरु ना लवा,  
बँधा बेपीर जंबीर भाई ।  
खुदी खुद खोइ बदलोइ रह ना रखो,  
रहम दिल यार बिन प्यार साई ॥  
बँधै जम जकड़ करि खंभ दोउ दस्त है,  
फरक सन मूळ किरि समझ भाई ।  
इसम से खलक जिन ख्याल पैदा किया,  
तुलसी मन समझ तन फना जाई ॥

अरे मन मस्त बेहोस बस हो रहा,  
जगत असार बस सार जावै ।  
माया मद मोह जग सरम के भरम से,  
करम के फंद फरफंद भाै ॥  
पेख दिन चार परिवार सुख देखि ले,  
शूठ संसार नहिं काम आवै ।  
दास तुलसी नर चेत चल बावरे,  
बूझ बिन या नहीं पार पावै ॥

तेरा है यार तेरे तन के मार्ही ।  
कहते सद संत साध सात्तर भाई ॥

पूजन आतमा आदि सदने गाई ।

भूखे को देख दीन देना जाई ॥

तुलसी यह तत्त मत्त चीन्हे नाई ।

चीन्हे जिन मेद पाइ बूझे साई ॥

इंद्री रस सुख स्वाद वाद ले जन्म यिगरा ।

जिभ्या रस बन काज पेट भया विषा गारा ॥

दुक जीवन के काज लाज मन में नहि आवै ।

अरे हाँरे (तुलसी) काल ब्रह्म सिरऊभर पढ़ियालयावै ॥

हाय हाय जहान में मौत तुरी,  
काल जाल से रहन नहि पायता है ॥

दिन चार संसार मैं यार कर ले,

फिर जाल के खाक मिलायता है ॥

तुलसी कर ख्याव का याव दूरी,

लख ल्यम जो यार यो पायता है ॥

भूल चेत अचेत में सोवता है,  
दिन रात मँजिल कुल जात हैरे ॥  
उस साह से बोल करार किया,  
सोइ बोल का तोल विचार ले रे ।  
(तुलसी) साह हिसाब कूँ जोवता है,  
विन साह के सूत सुन मार पडे ॥  
  
दिना चार का खेल है, छूँठा जगत पसार ।  
जिन विचार पति ना लखा, बूझै भौंजल धारा ॥  
ये दिन चार कुट्टव सो लाख  
सो छूँठ पसार के संग बँधानो ।  
मात पिता सुत दार निहारि,  
सो सार विसारि कै फंद फँदानो ॥  
पानी से घिड सँवारि कियौ,  
नर ताहि विसारि अनंद सो मानो ।  
तुलसी तब की सुधि याद करौ,  
उलटे सुख गर्म रखौ लटकानो ॥  
नर को तन साज न काज कियौ,  
सो भये खर कूकर सूकर स्वाना ।  
जानी न बात किया सँग साथ,  
सो हाथ से लात जो खात निदाना ॥  
बूझी नहि शान की गैल गली,  
सो अली अब पाप से होत अशाना ।  
तुलसी लख लार से चीन्ह पड़ी,  
सोइ साल को खेत पयाल से जाना ॥

नर का जनम भिलता नहीं। गान्धिल गरुरी ना रखो ॥  
दिन दो बसेरा बास है। अखिर फना मरना सही ॥  
नेहोम मौत सिर पै लड़ी। मारै निसाना ताक के ॥  
हर दम भिकारै खेलता। जम से रहे सब हार के ॥  
थेरा पड़ा है काल का। कोई बचन पावै नहीं ॥  
जग मैं जुला तोता पड़ी। इन से यमह देवै दई ॥  
चलने के शिन थोड़े रहे। हर दम नगारा कूच का ॥  
नहिं नू तेरा संगी भया। तुलसी तबक्का ना किया ॥

दिन चार है बसेरा। जग मैं न कोइ तेरा ॥  
सयाही बटाऊ लोग हैं। उठ जाइँगे सवेरा ॥  
अपनी करो फिकर। चलने की जो जिकर ॥  
नहै रहन का नहि काम है। फिर जा करो नहिं केरा ॥  
तन मैं पदन यतेह। जावे द्वा नम देही ॥

दुक जीवने के कारने। दुख सहत क्यों जम केरा ॥  
सुख देख क्यों भुलाना। कुछ दिन रहे पर जाना ॥  
जैसे सुसाफिर रात रह। उठ जात है कर डेरा ॥  
क्या सोवता पड़ा। जम द्वार पै खड़ा ॥  
तुलसी तयारी भोर कर। फिर रात को झैंधेरा ॥  
  
क्या फिरत है भुलाना। दिन चार मैं चलाना ॥  
काया कुटम सब लोग यह। जग देख क्यों कुलाना ॥  
धन माल मुलक धनेरे। कहि कर यथे वहुतेरे ॥  
कितने जतन कर कर बढ़े। घट तंत ना तुलाना ॥  
हुसियार हो दिवाने। चलना मँजिल विहाने ॥  
बाकी रहे पर आवता। जमराय का बुलाना ॥  
लिखते घड़ी घड़ी। कागज कलम चढ़ी ॥  
तुलसी हुकम सरकार का। कहै देत हूँ उलाना ॥  
  
क्या गाफिल होउ हुसियार, द्वार पर मौत खड़ी ॥  
जम के चढ़ि चपराती आये, हुकमी जुलम करार ॥  
तन पर तलब तगादा लाये, है घोड़े असवार ॥  
पढ़ि परवान पकरि कर बाँधे, दे धक्के अगवार ॥  
लेकर झपट चपट कर चोटी, धरि धरि जूतिन मार ॥  
धरमराय जब लेखा माँगो, भागत गैल विचार ॥  
कर हिसाब कौड़ी कौड़ी का, लेत कठिन दरवार ॥  
तुलसीदास काल की फासी, फेरि नरक मैं डार ॥  
भटकत मान खान चौरसी, होत न छुग निर्वार ॥

नर तन सुख पर मूँछ, नहीं कछु लाज लगे रे ॥  
जम जुलमी के प्यादे आये, पकरि करावै कूच ॥  
मात पिता कुट्टव तन तिरिया, चलत न काहू पूछ ॥  
धन माथा सम्पति सुख सारे, माल मुलक कुल झँच ॥  
काल कराल जाल विच बाँधे, जो जुलम लख छूँछ ॥  
तन सिराय पानी जस बुला, फूटि फहम करि चौच ॥  
करि करि कर्म दंध विच बाँधे, पाप पुन्य धरि दूच ॥  
तुलसी तलक पलक विच परलै, जनम जीव तन तूच ॥  
सतगुर तेग तरक जम काढा, नरक कान कर बूच ॥

जात रे तन बाद विताना ।  
छिन छिन उमर धट्ट दिन राती,  
सोवत क्या उठि जाग विहाना ॥  
यह देही बाल सम भीती,  
विनसत यल वेहोस हैवाना ॥

ज्यौं गुलाल कुमकुम भरि मारे,  
फैक फूटि जिमि जात निदाना ॥  
यह तन की अन आस अनाही,  
तैं विष बंधन काँस फँदाना ॥  
यह माया काया छिन भंगी,  
रँग रस करि करि हारत खाना ॥  
सुख सम्पति आसिक इंद्री में,  
विष वस चौज मौज मन माना ॥  
तुलसी ताव दाव यहि औसर,  
बासर निसि गइ भजन न जाना ॥

मान रे मन मस्त मसानी ॥  
पोखि पोखि तन बदन बढ़ाया ।  
सो तन बन जरै अग्नि निदानी ॥  
कुड़ूच बंधु मैथा सुत नारी ।  
मरत कोऊ सँग जात न जानी ॥  
यह संसार समझ दुखदाई ।  
पर बंधन नहि परत पिछानी ॥  
जोइ जोइ पाप पुन्न जिन कीन्हे ।  
आप आप भव सुगतत खानी ॥  
फूल बृच्छ फूल गिरि जावे ।  
तैं फूले पर कौन ठिकानी ॥  
तुलसी जगत जान दिन चारी ।  
भारी भव विच काँस कँसानी ॥

रूप दे रस रहदा गदे ।

यह अँग अगिन जरे मन मूरख, बारू बदन बनाया वे ।  
घाया कीट करम रंजक तन, भट्ठी बुरज उड़ाया वे ॥  
ज्यौं काया महताव हवाई, जल बल खाक मिलाई ।  
जस की जाल जबर नहि छूटे, छूटे अंग इलाही ॥  
खाविद का कर खोज खुदी कुल, खिलकत खोज न पाया वे ।  
पैदा किया खाक से पुतले, थारी धार भुलाया वे ॥  
सब जहान दोजख दुनियाई, साहिव सुधि विसराई ।  
जब लेदा लैं ज्वाव फिरस्ते, हाजिर होस दिराई ॥  
गाफिल गुनह गजब की बातें, कछु फहमीद न लाया वे ।  
आतस हवा जिमी जिन कीन्हा, आव और ताब बनाया वे ॥  
मालिक मूल मेहर विसराई, आलिम इलम सोहाई ।  
आदम बदन बनाया जिम ने, उनका कुफर कहाई ॥  
खिलकत फना फिरे दोजख में, यों कुफरान कहाया वे ।  
भिस्त राह बुजुरग बतलावें, सो कुछ ख्याल न लाया वे ॥

हकताला कर पैच पसारा, तुलसी पकड़ मँगाई  
तोबा तोब गले नहि कुरसत, मुरसिद यों समझाई  
सुपना जग जागि चलो री, अपना कोइ चाहो भले री  
गुर बिन ज्ञान ध्यान बिन धीरज, बीरज बदन बन्हो री  
बौरी काल हाल धरि खावे, बेबस बदन बलो री  
जगत जम जाल जलो री  
यह जम जोर जबर बहुतेरा, हेरा न हाय परो री  
सुनि मन भूत पकरि धरि खावै, चावे केहि भाँति छलो री  
नजर से न नेक टरौ री  
सब जिब जंत अंत धरि मारे, परेन मरम मिलो री  
मिया बिन ध्यान धुवाँ को तिम्हिर, सेमर सुनना फले री  
सोचि फल फोड़ि खलो री  
येहि विधि जीव जतन जगाही में, पुनि पुनि जनम धरो री  
आसा अंत संत बिन सोवे, तुलसी नहि अंत हिलो री  
पकाड़ि पछात पिलो री ।

विरेसन कहो कित भूली री ।  
या चमन में फूल भाँति भाँति के रँग,  
तैं पिया के पौ पै करत अदूली री ।  
दू तो विसारी धूग तोहि ताहि को,  
सुरति सुहाग भाग सो नसाय को ॥  
औसर वीति गई लखत न वाको,  
तेरे मुख धूली री ।  
धर की छार छूटी तन धीतो जात है,  
याही नगर मैं समझ दू ले री ॥  
पिया के पदर को पकर पद औसर,  
जनम सुफल सौह चलत पंथ पर ।  
हरख हजर भइ परख न वाको,  
तुलसी अजनूली री ॥

धर नहि कीन्हा पेरा ।  
या बावरिया मन बंधन दीन्हा फेरपार यहुतेग ॥  
जुगन जुगन जम बंधन चीन्हा, भरम भूल भटकत रहिये ।  
ताकी तो सुरत तत मत न दरा ॥  
अब हिये न चैन दित नित लिन तिन तुन ।  
तत्र नहि पकरे सुपने खोज वो, मदत जबर जग पंग ॥  
काम कोध जद मदन बिचारे, जलन जाल गीरी परिये ।  
पीको री पकरि कर धर न परम ॥

जब जियन जोर धक धक हूँडत सुख।  
ख्वाब खलक बस ललकि लोभ को, तुलसी न नीक निवेरा॥

चल मैंजिल मुसाफिर थाके हो।  
जहाँ से आये जाहु जहीं जब, उतनी ठौर कहावोगे॥  
अपना बूझो कवन गाँव धर, अजर अमर जोइ जाके हो॥  
भरम परे जब रोके हो जम, जबर जँजीरन ठोके हो॥  
भज उसी नाम को याद करो, तज कुफर वाद बरबाद नरो॥

मिल फजल वहीं जद बाके हो।  
अबर अली बी खवर तको, जब सबर सुभा दिल दूर रखो॥  
तुम रुह रकाने गगन चढ़ी, असमान अरस पर जाय अड़ो॥

तब गजल गाम से पाके हो॥  
सक सुभा बदन चक चाले हो, जब जबर फिरिस्ते नाके हो॥  
अब फहम पना तजि ब्राट बसो, धरधाट मुकरवे चमक चसो॥

रवि सिजल लक्ष्मो जब लाके हो॥  
तुलसी कहे तलब विना के हो, कर मुरसिद को नहिं फाके हो॥  
परक फकीरी बूझेगा, जब गुनह समझ कूँ सूझेगा॥  
इक अदल मुरीदी काके हो॥

रे हंसा गवन किये तजि काया॥

मात पिता परिवार कुर्टेंव सब, छोड़ि चले धन माया।  
रंगमहल सुख सेज विछौना, रचि रचि भवन बनाया॥  
प्यारे प्रीत मीत हितकारी, कोई काम न आया।  
इंसा आप अकेले चाले, जंगल बास बसाया॥  
पुन धन चब जाति जुड़ी है, भूमी काठ विछाया।  
चिता बनाय रक्षी धरि काया, जल बल खाक मिलाया॥  
प्रानपती जहं डेरा कीन्हा, जो जस करम कमाया।  
इंसा इस मिले सरबर में, कामा कुमति समाया॥  
तुलसी मानसरोवर मुकता, जुग जुग हंसन पाया।  
कामा कुमति जीव करमन से, फिर भवजनम धराया॥

रे हंसा प्रान पवन इक संगा।

पाँच तत्त रान साज बनो है, पिरथी जल पवन उतंगा।  
अगिनि नन्दास भास भयो भीतर, रचि कीन्हा अस अंगा॥  
जब लग पवन यहे काया में, तभ लग चेतन चंगा।  
निकसी पवन भवन भयो सूना, उड़त भैवर तन भंगा॥

तन करि नास भास चलि जैहै, जब कोइ साथ न संगा।  
जम के दूत पूत ले जावै, नहिं कोइ आस असेंगा॥  
यह माया त्रिभुवन पटरानी, भच्छत जीव पतंगा।  
तुलसी पवर पार को रोके, मन मत मौज तरंगा॥

रे हंसा इक दिन चल जैहो।

यह काया विच केल करत है, सो तन खाक मिलाया।  
खीर खाँड़ि सुख भोग विलासा, यह सुख सोक समैहो॥  
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, जोड़ा लाल करोड़ी।  
चलत बार कछु संग न लीन्हा, हाथ झाड़ि पछतैहो॥  
जो कुछ पाप पुन करनी के, फल फीके करवैहो॥  
धरमराय की रीत कठिन है, लेखा देत मुलैहो॥  
तुलसी तुच्छ तजो रँग काँचो, आवागवन बैसहो॥  
जम जुल्मी जती फटकारे, जनम जनम दुख पैहो॥  
नाम लो री नाम लो री, ऐसी काहे सुरत सुधि भूली री।  
बाद विवाद तजो बहु वायक, नाहक दुख सहो सूली री॥  
काल कराल भुलावत करमन, भ्रम तजि भज पद भूली री।  
बीतत जनम नाम बिन लनत, चालत मेट अदूली री॥  
स्वास स्वास जावे तन तुलसी, क्यों भव सिंध फूली री॥

(अरे) कोई अमर नहीं है या तन में।

काया करम अधार॥  
उपजे भरे बने फिर बिनसै।  
जुग जुग बंधन दुख सुख बारम्बर॥  
आसा दुख बंधन भटकावत।  
आप अपनपौ नहिं चीन्हा करतार॥  
केहर सुत भैइन सँग भूल।  
मन गुन हंद्रिन सँग करत विहार॥  
जब बना सिंध मिले उपदेसी।  
सतगुर को मिलि भव के भरम निकर॥

तुलसी जब तब मूल परखिया।  
निरमल होय लखि आवे समझ विचार॥  
सबसे हिलमिल वैर विसन तज, परम प्रतीत प्रवेस।  
दम पर दम हरदम प्रीतम सँग, तुलसी मिटा कलेस॥

## संत शिवदयालसिंहजी (स्वामीजी महाराज)

(राधास्वामी सतसंगके भूल-प्रवर्तक। जन्म—आगरानगरके पञ्चीगली मुहल्लेमें वि० सं० १८७५ भाद्रो बढ़ी ८। खंडी-ग्रन्थ।

[प्रेषक—श्रीजानकीप्रसादजी राधाजादा 'विशारद' ]

जोड़ी री कोइ सुरत नाम से ॥  
यह तन धन कुछ काम न आवे ।  
पड़े लड़ाई जाम से ॥  
अब तो समय मिला अति सुंदर ।  
सीतल हो बच धाम से ॥  
सुमिरन कर सेवा कर सतगुरु ।  
मनहि हटाओ काम से ॥  
मन इंद्री कुल बस कर राखो ।  
पियो धूँट गुरु जाम से ॥  
लगे ठिकाना मिले मुकामा ।  
छूटो मन के दाम से ॥  
भजन करो छोड़ो सब आलस ।  
निकर चलो कलिग्राम से ॥  
दम दम करो बेनती गुरु से ।  
वही निकारें तने चाम से ॥  
और उपाव न ऐसा कोई ।  
रठन करो सुबह शाम से ॥  
प्रीति लाय नित करो साध सँग ।  
हट रहो जग के खासो आम से ॥  
राधा स्वामी कहे सुनाई ।  
लगे जाय सत नाम से ॥  
चूनर मेरी मैली भई ।  
अब कापै जाऊँ धुलान ॥  
घाट घाट मैं खोजत हारी ।  
धुविया मिला न सुजान ॥

नहरह रहुँ कस पिया घर जाऊँ ।  
बहुत मेरे मेरे मान ॥  
नित नित तरसू पल पल तड़पूँ ।  
कोइ धौवे मेरी चूनर आन ॥  
काम दुष्ट और मन अपराधी ।  
और लगावें कीचड़ सान ॥  
का से कहुँ सुने नहि कोई ।  
सब मिल करते मेरी हान ॥  
सखी सहेली सब जुड़ आई ।  
लगीं मेद वतलान ॥  
राधा स्वामी धुविया भारी ।  
प्रगटे आय जहान ॥

मुरलिया बाज रही । कोइ सुने संत धर ध्यान ॥  
सो मुरली गुरु भोहिं सुनाई । लगे प्रेम के बान ॥  
पिंडा छोड़ अंड तज भागी । सुनी अधर में अपूर्व तान ॥  
पाया शब्द मिली हंसन से । खैंच चढ़ाई सुरत कमान ॥  
यह बंसी सत नाम बंस की । किया अजर घर अमृत पान ॥  
भैंवर गुफा ढिग सोहं बंसी । रीझ रही मैं सुन सुन तान ॥  
इस मुरली का मर्म पिछानो । मिली शब्द की खान ॥  
गई सुरत खोला वह द्वारा । पहुँची निज अखान ॥  
सत्त पुरुप धुन बीन सुनाई । अद्भुत जिन की शान ॥  
जिन जिन सुनी आन यह बंसी । दूर किया सब मन का गान ॥  
सुरत सम्भारत निरत निहारत । पाप गई अब नाम निशान ॥  
अलख अगम और राधास्वामी । खेल रही अब उम भैंशन ॥

## संत पलटू साहब

(अयोध्याके संत, जन्म-स्थान—नगरपुर जलालपुर, जिला—फैजाबाद; इनका स्थितिज्ञाल विक्रमी १९ वी शनीक पूर्णिमा  
अनुमान किया जाता है। जाति—वनिया, गोविन्द साहबके शिष्य; शरीरान्त अयोध्यामें हुआ । )

नाव मिली केवट नहीं कैसे उतरै पार ॥  
कैसे उतरै पार पथिक विस्वास न आवै ।  
लगै नहीं बैराग यार कैसे कै पावै ॥  
मन मैं धरै न ज्ञान नहीं सतसंगति रहनी ।

बात करै नहि कान प्रीति विन ज़ेरे कहनी ॥  
छूटि डगमणी नाहि यंत को बचन न गानी ।  
मूरख तजै विवेक चतुर्द अपनी आनी ॥  
पलटू सतगुरु खब्द का तनिक न कै यिन ॥  
नाव मिली केवट नहीं कैसे उतरै पार ॥

धुमिया फिर भर जायगा चादर लीजै धोय ॥  
 चादर लीजै धोय मैल है बहुत समानी ।  
 चल सत्युर के घट भरा जहँ निर्मल पानी ॥  
 चादर भई पुरानि दिनों दिन बार न कीजै ।  
 मतसंगत में सौंद ज्ञान का साकुन दीजै ।  
 छूटै कलमल दाग नाम का कल्प लगावै ।  
 चलिये चादर ओढ़ि बहुर नहिं भव जल आवै ॥  
 पलदू ऐसा कीजिये मन नहिं मैला होय ।  
 धुमिया फिर भर जायगा चादर लीजै धोय ॥

दीपक वारा नाम का महल भया उजियार ॥  
 महल भया उजियार नाम का तेज विराजा ।  
 सबद किया प्रकाश मानसर अपर छाजा ॥  
 दसों दिसा भइ सुख बुद्ध भइ निर्मल सची ।  
 छुटी कुमति की गाँठि सुमति परगठ होय नाची ॥  
 होत छतीसी राग दाप तिरुन का छटा ।  
 पूरन प्रगटे भाग करम का कलसा फूटा ॥  
 पलदू औंधियारी मिटी बाती दीन्ही टार ।  
 दीपक वारा नाम का महल भया उजियार ॥

देखी नाम प्रताप से सिला तिरै जल बीच ॥  
 सिला तिरै जल बीच सेत में कटक उतारी ।  
 नामहि के परताप बानरन लंका जारी ॥  
 नामहि के परताप जहर मीरा ने खाई ।  
 नामहि के परताप थालक पहलाद बचाई ॥  
 पलदू हरि जग ना सुनै ताको कहिये नीच ।  
 देखी नाम प्रताप से सिला तिरै जल बीच ॥

हाथी घोड़ा खाक है कहै सुनै सो खाक ॥  
 नहै सुनै यो खाक खाक है मुछक खजाना ।  
 जौल लेट खाक खाक जो साचै भाना ॥  
 महल अटरी खाक खाक है बाग-त्रैचा ।  
 रेत-पेटी खाक खाक है हुक्का नैचा ॥  
 गाल-पुमाल खाक खाक मोतिन के मला ।  
 गौवतलाना खाक खाक है समुरा-माला ॥  
 पलदू नाम खूशय का यही मदा है पाक ।  
 रापी घोड़ा खाक है कहै सुनै सो खाक ॥

देत लेत है आपुही पलदू पलदू सोर ॥  
 कलदू पलदू गोर राम की ऐसी इच्छा ।

कौड़ी घर में नहिं आपु मैं माँगौ मिच्छा ॥  
 राई परवत करै करै परवत को राई ।  
 अदना के सिर छवि पैज की करै बड़ाई ॥  
 लीला अगम अपार सकल घट अंतरजामी ।  
 खाहिं खिलाकहिं राम देहिं हम को बदनामी ॥  
 हम सौं भया न होयगा साहिब करता मोर ।  
 देत लेत हैं आपुही पलदू पलदू सोर ॥

हरि अपनो अपमान सह जन की सही न जाय ॥  
 जन की सही न जाय दुर्वासा की कथा गत कीन्हा ।  
 भुवन चतुर्दस फिरे समै दुरियाय जो दीन्हा ॥  
 पाहि पाहि करि परे जनै हरि चरभन जाई ।  
 तब हरि दीन्ह जवाब मेर बस नहिं गुसाई ॥  
 मोर द्रोह करि बचै करै जन द्रोहक नाया ।  
 माफ करै अँबरीष बचैगे तब दुर्वासा ॥  
 पलदू द्रोही संत कर तिन्हैं सुदृशैन खाय ।  
 हरि अपनो अपमान सह जन की सही न जाय ॥

ना काहू से दुष्टा ना काहू से रोच ॥  
 ना काहू से रोच दोऊ को इकरस जाना ।  
 वैर भाव सब तजा रूप अपना पहिचाना ॥  
 जो कंचन सो कौच दोऊ की आसा खागी ।  
 हारि जीत कछु नहिं प्रीति इक हरि से लागी ॥  
 दुख सुख संपति विपति भाव ना यहु से दूजा ।  
 जो बाहन सो सुनच दृष्टि सम सत्र की पूजा ॥  
 ना जियने की खुसी है पलदू मुए न सोच ।  
 ना काहू से दुष्टा ना काहू से रोच ॥

तू क्यों गफलत में फिरै सिर पर बैठा काल ॥  
 सिर पर बैठा काल दिनों दिन बादा धूजै ।  
 आज-काल में कूच सुख नहिं तो कहै रुझै ॥  
 कौड़ी-कौड़ी जोरि व्याज दे करते बड़ा ।  
 सुखी रहे परिवार मुक्ति में होवत ठड़ा ॥  
 तू जानै मैं उग्यो आप को सुही उगवै ।  
 नाम सजीवन मूरि छोरि के माहुर खावै ॥  
 पलदू तेली ना रही चेत करो अब लल ।  
 तू क्यों गफलत में फिरै सिर पर बैठा काल ॥

भजग आहुरी कीजिये और बात में देर ॥  
 और बात में देर जगत में जीवन थोरा ।  
 मानुष तन धन जात गोइ धरि करै निषेध ॥

कॉचे महल के दीन पवन इक पंछी रहता ।  
दस दरवाजा खुल उड़न को नित उठि चहता ॥  
भजि लौजै भगवान यही में भल है अपना ।  
आवागैन छुटि जाय जन्म की मिटै कल्पना ॥  
फलू अटक न कीजिये जौरासी धर केर ।  
भजन आतुरी कीजिये और बात में देर ॥

जहाँ तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देतु है प्रान ॥  
छोड़ि देतु है प्रान जहाँ जल से विलगावै ।  
देह दूध में डारि रहै ना प्रान गँवावै ॥  
जाको बही अहर ताहि को का लै दीजै ।  
रहै ना कोटि उपाय और सुख नाना कीजै ॥  
यह लौजै हृष्णन्त सकै सो लेइ विचारी ।  
ऐसो करै सनेह ताहि की मैं बलिहारी ॥  
फलू ऐसी प्रीति कर जल और भीन समान ।  
जहाँ तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देतु है प्रान ॥

जो मैं हारौं राम की जो जीतौं तौं राम ॥  
जो जीतौं तौं राम राम से तन-मन लावौं ।  
लेलौं ऐसो खेल लोक की लाज बहावौं ॥  
पासों फैकौं ज्ञान नरद विस्वास चलावौं ।  
चौरासी धर किरै अड़ी पौबारह नावौं ॥  
पौबारह सिरवाय एक धर भीतर राखौं ।  
कच्ची मारौं पाँच रैनि दिन सत्रह भाखौं ॥  
फलू बाजी लाइहौं दोऊ विधि से राम ।  
जो मैं हारौं राम की जो जीतौं तौं राम ॥

दिल में आवै है नजर उस मालिक का नूर ॥  
उस मालिक का नूर कहाँ को छूँठन जावै ।  
सब में पूर समान दरस धर बैठे पावै ॥  
धरती नभ जल पवन तेही का सबन परारा ।  
छुटै भरम की गँठि सकल घट ठाकुरद्वारा ॥  
तिल भरि नाहि कहीं जहाँ नहिं सिरजनहारा ।  
बोही आवै नजर झुग विस्वास हमरा ॥  
फलू नैरे साच के झडे से है दूर ।  
दिल में आवै है नजर उस मालिक का नूर ॥

का जानी केहि औसर साहिव ताकै मोर ॥  
साहिव ताकै मोर मिहर की नजरि निहारै ।  
तुरत पंद्रम-पद दैह औगुन को नाहि विचारै ॥

राम गरीबनिवाज गरीबन सदा निवाज ।  
भक्त-बछल भगवान करत भक्तन के काजा ॥  
गाफिल नाहि परै साच है लै जव लावै ।  
परा रहै वहि द्वार धनी कै धक्का खावै ॥  
आठ पहर चौसठ धरी पलटू परै न भोर  
का जानी केहि औसर साहिव ताकै मोर

पतिवरता को लच्छन सब से रहै अधीन ॥  
सब से रहै अधीन टहल बह सब की करती ।  
साल ससुर और भसुर ननद देवर से डरती ॥  
सब का पोषन करै सभन की सेज विलावै ।  
सब को लेय सुताय, पास तब पिय के जावै ॥  
सूतै पिय के पास सभन को राखै राजी ।  
ऐसा भक्त जो होय ताहि की जीती बाजी ॥  
(फलू) बोलै भीठे बचन भजन में है लौ लीन  
पतिवरता को लच्छन सब से रहै अधीन  
हरि को दास कहाय के गुनह करै ना कोय ॥  
गुनह करै ना कोय जेही विधि राहै रहिये ।  
दुख-सुख कैसउ पड़ै केहु से तनिक न कहिये ॥  
तेरे मन में और करनवाला है औरै ।  
तू ना करै खराब नाहक को निस दिन दोरै ॥  
बाको कीजै याद जाहि की मारी दूरै ।  
आधी को तू जाय धरहि में रुग्म पूरै ॥  
फलू गुनह किये से भजन माहि भैंग होय ।  
हरि को दास कहाय के गुनह करै ना कोय ।

जौं लगि लागै हाथ ना करम न कीवि त्याग ॥  
करम न कीजै त्याग जक्क की बूझ बड़ाई ।  
ओहु और डारै तोरि पहर कुछ एक न पाई ॥  
उत्त कुल से वे गये नाहिं इत मिला डियाना ।  
केहु और मैं नाहिं बीच के यीन भुजाना ॥  
जेहुँ जेहुँ पावै बरसु तेहुँ तेहुँ करम को द्याई ।  
खातिर जमा को लेइ जगत मे सुलझा गोई ॥  
फलू पग धर निश्चय करि तातें ली न दाय ।  
जौं लगि लागै हाथ ना करम न कीजै त्याग ॥

फलू ऐसे दास को भरम करै संभार ॥  
भरम करै संभार दोइ धागन से राय ।  
भली तुरी कोड करै रहै महि मय का भय ॥

धीरज धै संतोष रहै दृढ़ है टहराई ।  
 जो कछु आवै खाइ बचै सो देइ लुटाई ॥  
 लगै न माया मोइ जगत की छोड़ै आसा ।  
 वल तजि निरवल होय सबुर से करै दिलासा ॥  
 काम क्रोध को मारि कै मारै नींद अहार ।  
 पलटू ऐसे दास को भरम करै संसार ॥

लिये कुल्हाड़ी हाथ में मारत अपने पाँय ॥  
 मारत अपने पाँय पूजत है देइ-देवा ।  
 सतगुर संत विसारि करै भूतन की सेवा ॥  
 चाहै कुसल गँवार असीं दै माहुर खावै ।  
 मने किये से लड़ै नरक मैं दौड़ा जावै ॥  
 पैड़ै जल के बीच हाथ में चाँथे रसरी ।  
 परै भरम मैं जाइ ताहि कौसे पकरी ॥  
 पलटू नर तन पाइ कै भजन मैँहै अलसाय ।  
 लिये कुल्हाड़ी हाथ में मारत अपने पाँय ॥  
 हरि को भजै सो बड़ा है जाति न पूछै कोय ॥  
 जाति न पूछै कोय हरी को भक्ति पियारी ।  
 जो कोइ करै सो बड़ा जाति हरि नाहिं निहारी ॥  
 पतित अजामिल रहे रहे फिर सदन कसाई ।  
 गणिका विस्या रहि विमान पै तुरत चढ़ाई ॥  
 नीच जाति रैदान आपु मैं लिया मिलाई ।  
 लिया गिर्द को गोदि दिया वैकुंठ पठाई ॥  
 पलटू पारा के छुए लोहा कंचन होय ।  
 दरि को भजै सो बड़ा है जाति न पूछै कोय ॥

निदक जीवै झुगन जुग काम हमार होय ॥  
 काम हमारा होय विना कौड़ी को चाकर ।  
 कमर चाँथि कै फिरै करै तिहुँ लोक उजागर ॥  
 उसे हमारी भोज पलक भर नाहिं विसारी ।  
 लगी रहै दिन रात प्रेम से देता गारी ॥  
 मंत कहै दृढ़ करै जगत का भरम छुड़वै ।  
 निरुक्त गुरु हमार नाम से वही मिलावै ॥  
 भुनि के निरुक्त मरि यथा पलटू दिया है रोय ।  
 निरुक्त जीवै झुगन जुग काम हमार होय ॥

गुरुनिये दाय कहाय सारो, जगत की धार न गान्धिये जी ।  
 मधरथ नगमी दो जय पाया, जगत मे शीन न भान्धिये जी ॥  
 गान्धिर के भर मे नीम कमी, गिर वात यो अहै अनिये जी ।  
 लकड़ लो दुर्घ सुख लाय धरै, यहि नाम नुभा रख नानिये जी ॥

सील सनेह सीतल वचन, यहि संतन की रीति है जी ।  
 सुनत वात के जुड़ाय जावै, सब से करते ये प्रीति है जी ॥  
 चितवनि चलनि मुसकानि नवनि, नहिं राग द्वैप हार जीत है जी ।  
 पलटू छिमा संतोष सरल, तिन को गावै सुति नीत है जी ॥

बिना सतसंग ना कथा हरिनाम की,  
 बिना हरिनाम ना भोह भागै ।  
 मोह भागे विना मुक्ति ना मिलैगी,  
 मुक्ति विनु नाहिं अनुराग लागै ॥

बिना अनुराग के भक्ति न होकरी,  
 भक्ति विनु प्रेम उर नाहिं जागै ।  
 प्रेम विनु राम ना राम विनु संत ना,  
 पलटू सतसंग वरदान माँगै ॥

पलटू नर तन पाइ कै, मूरख भजै न राम ।  
 कोऊ ना सँग जायगा, सुत दारा धन धाम ॥  
 वैद धनंतर मरि गया, पलटू अमर न कोय ।  
 सुर नर सुनि जोगी जती, सबै काल बस होय ॥  
 पलटू नर तन पाइ कै, भजै नहीं करतार ।  
 जमपुर बाँधे जाहुगे, कहैं पुकार पुकार ॥  
 पलटू नर तन जातु है, सुंदर सुभग सरीर ।  
 सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रुधीर ॥  
 दिना चार का जीवना, का तुम करौ गुमान ।  
 पलटू मिलिहैं खाक मैं, घोड़ा बाज निसान ॥  
 पलटू हरि जस गाइ ले, यही तुम्हरे साथ ।  
 बहता पानी जातु है, धोउ सितावी हाथ ॥  
 राम नाम जेहि सुखन तैं, पलटू होय प्रकास ।  
 तिन के पद वंदन करौं, वो साहिब मैं दास ॥  
 तन मन धन जिन राम पर, कै दीनहीं वकीस ।  
 पलटू तिन के चरन पर, मैं अरपत हौं सीस ॥  
 राम नाम जेहि उच्चरै, तेहि मुख देहुँ कपूर ।  
 पलटू तिन के नफर की, पनहीं का मैं धूर ॥  
 मनभा बाचा कर्मना, जिन के है विस्वास ।  
 पलटू हरि पर रहत है, तिन्ह के पलटू दास ॥  
 पलटू तंसथ छूटिगे, मिलिया पूरा यार ।  
 भगत आपने रुद्धाल मैं, भाइ पड़ै संसार ॥  
 अन्नुति निदा कोउ करै, लगै न तेहि के साथ ।  
 पलटू ऐसे दास के, सब कोइ नावै माथ ॥  
 अट पदर लागी रहै, भजन-तेल की धार ।  
 पलटू ऐसे दास को, कोउ न पावै पार ॥

सखरि कबहुँ न कीजिये, सब से रहिये हार ।  
 पलटू ऐसे दास को, डरिये बारंबार ॥  
 संगति ऐसी कीजिये, जहवाँ उपजै शान ।  
 पलटू तहाँ न बैठिये, घर की होय जियान ॥  
 सतमंगति में जाइ कै, मन को कीजै सुद्ध ।  
 पलटू उहाँ न जाइये, जहवाँ उपज कुबुद्ध ॥  
 गारी आई एक से, पलटै भई अनेक ।  
 जो पलटू पलटै नहीं, रहै एक की एक ॥  
 पलटू नेरे साँच के, शूठे से है दूर ।  
 दिल में आवै साँच जो, साहिव हाल हजूर ॥  
 पलटू यह साँची कहै, अपने मन को फेर ।  
 तुझे पराई क्या परी, अपनी ओर निवेर ॥  
 पलटू मैं रोवन लगा, हेरि जगत की रीति ।  
 जहं देखो तहं कपट है, कासों कीजै प्रीति ॥

मुँह मीठो भीतर कपट, तहाँ न मेरो बास ।  
 काहू से दिल ना मिलै, तौ पलटू फिरै उदास ॥  
 सुन लो पलटू भेद यह, हँसि बोले भगवान ।  
 दुख के भीतर सुक्ति है, सुख में नरक निदान ॥  
 मन मिहीन कर लीजिये, जब पितृ लागै हाथ ॥  
 जब पितृ लागै हाथ नीच है सब से रहना ।  
 पञ्चपञ्ची त्यागि ऊँच बानी नहिं कहना ॥  
 मान बड़ाई खोय खाक में जीते मिलना ।  
 गारी कोउ देइ जाय छिमा करि चुप के रहना ॥  
 सब की करै तारीफ आप को छोटा जानै ।  
 पहिले हाथ उठाय सीस पर सब को आनै ॥  
 पलटू सोइ सुहारिनी हीरा झल्कै माथ ।  
 मन मिहीन कर लीजिये जब पितृ लागै हाथ ॥

## स्वामी निर्भयानन्दजी

( स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी सरस्वतीके शिष्य । )

मान मान रे मान मूढ़ मन ! मान लै ।  
 सुपना है संसार वात यह जान लै ॥  
 गुरु-चरनन की धूरि सीस पर धारि लै ।  
 सुद्ध नीर सौं मलि मलि पाँय पखार लै ॥  
 विसय-भोग मैं सुख नहिं खो विचारि लै ।  
 दैवी संपति धारि सुद्ध अधिकार लै ॥

तेर-मेर कों गेर देर क्यौं करत है ।  
 हानि-लाभ कों देख बृथा क्यौं जरत है ॥  
 आतम-तत्त्व विचारि क्यौं दुख नहिं हरत है ।  
 दुर्लभ नरतन पाय नहीं क्यौं तरत है ॥  
 आतम ब्रह्म अनादि अनंत अपार है ।  
 सब देवों का देव यही सरदार है ॥  
 चेतन सुद्ध अखंड सार का सार है ।  
 बड़भागी कोइ करत खुला दीदार है ॥  
 दरसन कर तत्कालहि पद निरदान लै ।  
 सुपना है संसार वात यह जान लै ॥  
 तन का ढाँचा हाङ माँस मल खाल है ।  
 क्या करता सिंगार खायगा काल है ॥

अमल चढ़ाये बनधोर वजावत गाल है ।  
 निज आतम बुब्रह्म न जानत हाल है ॥  
 'निरस्य' आतम ब्रह्म एक पहिचान लै ।  
 सुपना है संसार वात यह जान लै ॥  
 गोला मारै जान का, संत भिगाही कांय ।  
 उत्कट जिग्यायू बनै, अजव उजाला होय ॥  
 अजव उजाला होय अँधेरा सबही नायै ।  
 अंतरसुख हो लखै आतमा अपनो भायै ॥  
 कहै 'निर्भयानन्द' होय जिग्यायू भोला ।  
 संत किपाही कोय ग्यान का मारै गोला ॥  
 पाता है निज आतमा, विसयन मौं मन रोक ।  
 काम क्रोध के वेग की, जो मदि जावै शोक ॥  
 जो सहि जावै शोक यार विक्षेप हायरै ।  
 निदा अह आहार उक्ति मौं कम्भ पद्यारै ॥  
 कहै 'निर्भयानन्द' शुठे जानै गता है ।  
 विसयन मौं मन रोक आतमा निज याता है ॥

## अखा भगत

ब्रह्म कला खेलत नर जानी ।  
जैसे हि नाव हिरे फिरे दसो दिस, मूँव तारे पर रहत निशानी ॥  
चलन बलन अवनी पर बाकी, मन की सुरत ठहरानी ।  
तत्त्व समाप्त भयो है स्वतंत्र, जैसे हिम होत है पानी ॥

दुनी आदि अंत नहिं पायो, आइ न सकत जहाँ मन बानी ।  
ता धर स्थिती भई है जिन की, कहि न जात ऐसी अकथ कहानी ॥  
अजव खेल अद्भुत अनुपम है, जावूँ है पहिचान पुरानी ।  
गणनहि गेव भया नर बोले, एहि अखा जानत कोइ जानी ॥

## भक्त श्रीललितकिशोरीजी

(असली नाम श्रीकुन्दनलालजी, जन्म-काल—अज्ञात, लखनऊ के साह गोविन्दलालजी अग्रवाल के पुत्र और श्रीराधारमणीय गोख्यामी श्रीराधारगोविन्दजी के शिष्य, स्थान—दृष्टावन। शरीरान—वि० सं० १९३० कार्तिक शुक्ल २ )

मन, पछितैहै भजन विन कीने ।  
धन दौलत कछु काम न आवै,  
कमलनयन गुन चित विनु दीने ॥  
देवत कौ यह जगत सँगाती,  
तात मात अपने सुख भीने ।  
'ललितकिसोरी' दुंद मिटै ना,  
आनंदकंद विना हरि चीने ॥

मुसाफिर, रैन रही थोरी ।  
जागु जागु, सुख नींद त्यागि दै,  
होति वस्तु की चोरी ॥

मंजिल दूरि, भूरि भवसागर,  
मान कूरमति मोरी ।  
'ललितकिसोरी' हाकिम सो डर  
करै जोर वरजोरी ॥

लाभ कहा कंचन तन पाये ।  
भजे न मृदुल कमलश्लोचन,  
हुय मोचन हरि हरिनि न ध्याये ॥  
तन मन धन अरपन ना कीहे,  
प्रान प्रानपति गुननि न गाये ।  
जोयन, भन, कलधौत धाम सव  
मिथ्या आयु गँवाय गँवाय ॥

सुरजन मर्नि, मिमुख रँग राते,  
दोलत सुख संपति विमगाये ।  
'ललितकिसोरी' मिटै ताप ना,  
विन दृढ चितामनि उर लाये ॥

गाये, ऐसे आयु मिरानी ।  
लगत न लज्ज लजायत संतन,  
वरतः दंभ छदंव विहानी ॥

माला हाथ ललित तुलसी गर,  
अँग अँग भगवत छाप सुहानी ।  
वाहिर परम विराग भजन रत,  
अंतस मति पर-जुब्रति नसानी ॥  
मुख सों र्यान-ध्यान वरनत वहु,  
कानन रति नित विषय-कहानी ।  
'ललितकिसोरी' कृपा करै हरि,  
हरि संताप सुहृद सुखदानी ॥

दुनियाँ के परपंचों में हम, मजा कछू नहिं पाया जी ।  
भाई-बंधु पिता-माता, पति, सब सों चित अकुलाया जी ॥  
छोड़-छाड़ धर, गँव-नींद, कुल, वही पंथ मन भाया जी ।  
ललितकिसोरी आनंदघन सों अब हठि नेह लगाया जी ॥  
क्या करना है संतति-संपति, मिथ्या सब जग माया है ।  
शाल-दुश्शाले, हीरा-मोती में मन क्यों भरमाया है ॥  
माता-पिता, पती-बंधू, सब गोखलधंध बनाया है ।  
ललितकिसोरी आनंदघन हरि हिरदै कमल वसाया है ॥  
बन-बन फिरना विहतर हम को रतन भवन नहिं भावै है ।  
लता तेरे पड़ रहने में सुख नाहिन सेज सुहावै है ॥  
सोना कर धरि सीत भला अति तकिया ख्याल न आवै है ।  
ललितकिसोरी नाम हरी का जपि-जपि मन सचु पावै है ॥  
तजि दीनों जब दुनियाँ दौलत फिर कोइ के धर जाना क्या ।  
कंद-मूल-फल पाय रहैं अब खड़ा-मीटा खाना क्या ॥  
ठिन में साही वकसैं हम को मोती-माल-खजाना क्या ।  
ललितकिसोरी रूप हमारा जानै ना तहूँ आना क्या ॥  
अष्टसिद्धि नवनिदि हमारी मुट्ठी में हरदम रहती ।  
नहीं जवाहिर, सोना-चाँदी, त्रिमुखन की संपति चहती ॥  
भावै ना दुनिया की बातें दिल्वर की चरचा यहती ।  
ललितकिसोरी पार लगावै माया जी

गैर-स्याम बदनारविंद पर जितको वीर मचलते देखा ।  
नेन-बान, सुपक्षयान संग फँग फिर नहिं नैक सँभलते देखा ॥  
ललितकिसोरी जुगल इश्क में वहुतों का घर घलते देखा ।  
झूका प्रेमसिधु का कोई हमने नहीं उछलते देखा ॥

देखौ री, यह नंद का छोरा अरछी मरे जाता है  
बरछी-सी तिरछी चितवन की पैनी छुरी चलता है  
इम को घायल देख वेदरदी मंद-मंद सुसकता है  
ललितकिसोरी जखम जिगर पर नौनपुरी तुरकाता है

## भक्त श्रीललितमाधुरीजी

( लखनऊमें जीहरी श्रीगोविन्दलालजीके पुत्र, गृहस्थका नाम साह कुन्दनलालजी । सं० १९१३ में अपने भाई कुन्दनलाल

लेतकिशोरीजी) के साथ सब कुछ छोड़कर वृद्धावन आ गये । )

देखौ बलि वृद्धावन आनंद ।  
नवल सरद निसि नव वसंत रितु, नवल सु राका चंद ॥  
नवल भोर पिक कीर कोकिला कूजत नवल मलिंद ।

रटत श्रीराधे राधे माधव मारुत सीतल मंद ॥  
नवल किसोर उर्मगन खेलत, नवल रास रसकंद ।  
ललितमाधुरी रसिक दोउ वर, निरतत दिये कर फंद ॥

## भक्त श्रीगुणमंजरीदासजी

( असली नाम—गोस्यामी गलूजी, जन्म वि० सं० १८८४ ज्येष्ठ, पिताका नाम—श्रीरमणदयालुजी, माताका नाम—श्रीमती स्थान—फर्स्यावाद । )

श्रीराधारमन हमारे भीत ।  
ललित चिरंगी स्याम सलोने कष्टि पहिरे पठपीत ॥  
तुरलीधर मन हरन छवीले छके प्रिया की प्रीत ।  
गुनमंजरी विदित नागर वर जानत रस की रीत ॥

हमारे धन स्यामा जू कौ नाम ।  
जाकौं रटत निरंतर भोहन, नंदनैन्दन धनस्याम ॥  
प्रतिदिन नवनव महा माधुरी, वरसति आठों जाम ।  
गुनमंजरी नवकुंज मिलवै, श्रीवृद्धावन धाम ॥

## भक्त रसिकप्रीतमजी

तरैटी श्रीरोवर्धन की रहिये ।  
प्रति मदनगोपाल लाल के चरन कमल चित लैये ॥

तन पुलकित ब्रजरज में लोट गोविंद कुंड में नैये ।  
रसिक प्रीतम हित चित की धारें श्रीगिरिधारीजी गोंकाये ॥

## श्रीहितदामोदर स्वामीजी

नमो-नमो भागवत पुरान ।  
महातिमिर अग्यान बढ़चौ जब,  
प्रगट भये जग अद्भुत भान ॥  
उद्दित सुभग श्रीसुक उदयाचल,  
छिपे ग्रंथ उड़गनन समान ।  
जागे जीव निसि सोये अविद्या,  
कियो प्रकास विमल विद्यान ॥  
मूले अंबुज वक्ता ल्लोता,  
हिमकर मंद मदन अभिमान ।

छूटि गये कर्मन के वंधन,  
मिट्टी भोह यसे सुन्धान ॥  
दरस्यौ भक्ति-पंथ अनुरागी,  
सुझे भवद भवह प निधान ।  
देखत नहीं उद्धक सकामी,  
जयपि दिनकर है विद्यान ॥  
राजत एक महा भरवार,  
बढ़चौ प्रताप और न गगान ।  
दामोदर हित सुर मुनि वंदित,  
जय जय जय श्रीकृष्णनिधान ॥

## भगवान हित रामदासजी

और कोऊ समझै सो समझो हम कूँ इतनी समझ भली ।  
ठाकुर नंद कियोर हमारे ठकुराहन वृषभानु छली ॥  
श्रीदामादिक साला श्याम के श्यामा सँग लिलितादि अली ।

ब्रजपुर वास शैल वन विहरन कुंजन कुंजन रंग रनी ॥  
इन के लाड चहूँ सुख अपनो भाव बेल रस फलन फली ।  
कहै भगवान हित रामदास प्रभु सब तें इन की कृषा बली ॥

## श्रीकृष्णजनजी

सत्य सनेही सँवरो और न दूजो कोय ।  
रे मन ! तासौं प्रीति कर, और सकल भ्रम खोय ॥  
पानी मैं ज्यों बुद्धुदा, ऐसी यह है देह ।  
विनसि जाय पल एक मैं, या मैं नहिं संदेह ॥  
स्वासा चलत कुठार है, काटत तखबर आय ।  
हो सचेत जै कृष्णजन, पिरिधर लाड लडाय ॥  
समय-समय पर करत मोइ, असन-वसन निरधार ।  
रे मन ! तू अब सुख चहत, ऐसे प्रभुहि विसार ॥

दैन कहो तहैं नहिं दियौ, दियौ विषय के हेत ।  
जनम गमयौ वादही, पथौ नरक निकेत ॥  
लाय गये सरग खेत सब, रह्यौ दोई अब राख ।  
भज हरि चरन सरोज सो, सब संतन की साल ॥  
तिनका तोरै वज्र को, मसक विदरै भेर ।  
ऐसी लीला कृष्ण की, तनक न लागै वेर ॥  
काया सहर सुहावनो, जहाँ जौहरी नैन ।  
हरि हीरा लै हेत सौं मोल, बोल मुदु वैन ॥

## महात्मा बनादासजी

( प्रेषक — गिरिसपल श्रीभगवतीमतादसिंहजी एम. ५० प० )

( १ )

राम भने यथे राम वही तन, गे मन बुद्धि औ चित्त अहं सब ।  
विधि थीर निरिध न जानत वेद, यथे सब खेद अनेद यथे अब ॥  
मिथि प्रकै थिति भूलि गई नहिं जानत देस औ काल यहै कन ।  
‘द्याम वना’ हम ब्रह्म, हमी स्वर, आवत है उटाई स्वास जैव जव ॥

( २ )

ऋग्य रंग अनुपौ वरसै लाग ।  
नाम लोक मद अपन वासना अर्क जग्नामहि झरसै लाग ॥  
लोभ मोइ परछोइ दोष दुष्क कलि कुचाल सब तरसै लाग ।  
उद्धी धगन धगन नव भाँतिहि थरचि होत अब छरसै लाग ।  
क्षामील भंतोप सुराई लांति रुद्ध सुख सरसै लाग ।  
‘द्याम वना’ जपि नाम सो उपजा सुक्त करत नहिं अरसै लाग ॥

( ३ )

• नाम वना नदुने सुकाम जै, औरैं कहत हवाल ।  
नाम लालू, भीति एकती, पलक न लागत हाल ॥  
‘द्याम वनो’ रक्त धंगा गरित्रम सुनि हग नीरा ।  
उद्धीर जग्ना, अरदी भरि आवत पुलकावली सरीय ॥  
मधुप, यार, जित भोति, यक्ष मन, तनहु यक्ष दरकाई ।

न्यान विराग भक्ति से पूरे जगत न सकत समाई ॥  
वैर प्रीति लखि परत न कतहूँ समता माँहि सुकामा ।  
‘दास वना’ जहै ये लक्ष्मन तौ कबन भेद तेहि रामा ॥

( ४ )

सेवत सेवत सेव्य के सेवकता मिटि जाय ।  
‘बनादास’ तब रीढ़ि कै स्वामी उर लघाय ॥  
नाचत बैति बहुत दिन रीढ़ियौ नहिं रिक्षायर ।  
‘बनादास’ तेहि नाच को, बार बार धिरकार ॥  
कला कुमल सो सुंदरी घट को नहिं दीन ।  
‘बनादास’ जाकी अदा एक ताल बस कीन ॥

X X X X  
रहना एकांत दब शतना को अंत किये,  
सांतरस-नाने औ न खेद उतसाह है ।  
धीर कुटीद्यायें, जाल जदा को मुँडायें, मोइ-  
कोह को नसायें, सदा त्रिना परवाह है ॥  
उद्दिम को डारै, मन भारै, औ निसारै वेद,  
हारै हक शरे औ विचारै गुनगाह है ।  
तरक, तकरीरी औ जगीरी तीनिहूँ लेक,  
‘वना’ आस फरक सो फकीरी बाह-बाह है ॥

## बन्दन-कुल्हाड़ी

काटइ परसु मलय सुनु भाई । निज गुन देह सुगंध वसाई ॥

तते सुर सीसन्ह चहत जग बल्म श्रीखंड ।  
अनल दाहि पीटत धनहिं परसु बदन यह दंड ॥

—( गोसामी श्रीतुलरीदासजी,  
रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड )

## संत और विच्छृं

विश्वपात्रनी बाराणसि में संत एक थे करते बास ।  
रामचरण-लचलीत-नित थे, नाम-निरत, नय-निपुण, निरास ॥  
नित सुरसरि में अवशाहन कर विश्वेश्वर-अर्चने करते ।  
क्षमशील पर-दुख-कातर थे, नहीं किसी से थे डरते ॥  
एक दिवस श्रीभागीरथि में ब्राह्मण विद्य नहाते थे ।  
दयासिंहु देवकिनन्दन के गोप्य गुणों को गाते थे ॥  
देखा एक बहा जाता है वृश्चिक जलधारा के साथ ।  
दीन समझकर उसे उठाया संत विप्र ने हाथों हाथ ॥  
रखकर उसे हथेली पर निज, संत जोड़ने लगे निशंक ।  
खल, कृतज्ञ, पापी वृश्चिक ने मारा उनके भीषण ढंक ॥  
काँप उठा तकाल हाथ, गिर पड़ा अधम वह जल के बीच ।  
लगा हूँवने अथाह जल में निज करनी बस निष्ठुर नीच ॥  
देखा उसे सुमूर्ख, संत का चित करणा से भर आया ।  
प्रबल वेदना भूल, उसे फिर उठा हाथ पर अपनाया ॥  
ज्यों ही संभला, चेत हुआ, फिर उसने वही ढंक मारा ।  
हिला हाथ, गिर पड़ा, वहाने लगी उसे जल की धारा ॥  
देखा पुनः संत ने उसको जल में बहते दीन मलीन ।  
लगे उठाने फिर भी उसको क्षमामृति प्रतिहसा-हीन ॥  
नहा रहे थे लोग निकट सब बोले क्या करते हैं अप ?  
“हिंसक जीत बचाना कोई धर्म नहीं है पूरा पाप ॥  
चक्करी हाथों हाथ विषम कल तब भी करते हैं फिर भूल ।  
धर्म देश को हुआ चुका भारत इस कायरता के कूल” ॥  
“भाई ! क्षमा नहीं कायरता, यह तो वरीं का बाना ।  
स्वत्य महापुरुषों ने इसका है सज्जा स्वरूप जाना ॥

कमी न हूँशा क्षमा-धर्म से, भारत का वह सज्जा ।  
हूँवा, जब भ्रम से था इसने पहना कायरता का व  
मक्तराज प्रह्लाद क्षमा के परम मनोहर थे आद  
जिन से धर्म बचा था जो खुद जीत चुके थे ह्यार्गार  
बोले जब हँसकर यों ब्राह्मण, कहने लगे दूसरे लो  
“आप जानते हैं तो करिये हमें बुरा लगता यह गोप”  
कहा संत ने “भाई ! मैंने बड़ा काम कुछ किया नहीं  
स्वभाव अपना बरता इसने, मैंने भी तो किया की  
मेरी प्रकृति बचाने की है इसकी ढंक मानने की  
मेरी इसे हराने की है इसकी सदा राने की  
इवा इस हिंसक के बदले में मैं भी हिंसक बन जाऊँ  
क्या अपना कर्तव्य भूलकर प्रतिहिंसा में गन जाऊँ  
जितनी बार ढंक मारेगा उतनी बार यत्प्राप्ति  
आखिर अपने क्षमा-धर्म से निश्चय इसे हराऊँगा”  
संतों के दर्शन, स्पर्शन, भावण अमोद जगतीताद में  
वृश्चिक छूट गया पापों से संत-मिलन से उस पल में ।  
खुले ज्ञान के द्वार, जन्म-जन्मान्तर की स्मृति से आई ।  
छूटा हुए स्वभव, सरलता, शुचिता सब उस में आई ।  
संत-वरण में लिपट गया वह करने को निज पान तभी ।  
छूट गया भव-व्याधि विषम से हुआ गचिर वह भी पीछा ।  
जब हिंसक जह जन्मु धमा से हो गकते हैं गायु मुरद ।  
हो सकते क्यों नहीं भनुज जो गाने जाते हैं गान ।  
पढ़कर वृश्चिक और संत का यह गचिर मुराद गंवा ।  
अच्छा लो मानिये, तज प्रतिहिंसा, दिला, शै, निगा ।

## भक्तोंकी क्षमा

### प्रह्लादकी गुरु-पुत्रवद

जिसके भयसे शिशुवन कौपता था, वह स्वयं कौप उठा था पैंच वर्षके बालकके भयसे। सुरगण और लोकपाल जिस हिरण्यकशिष्युके भयसे दिन-रात भयभीत रहते थे, वह अपने ही युत्र प्रह्लादसे डर गया था। उसे आशङ्का हो गयी—‘कहीं मेरी गृह्णी इतके विरोधमें न हो।’

‘आप चिन्ता न करें! दैत्यराजके पुरोहित आगे आये। यदि इसने हमारी बात न मानी तो इस इसे ठिकाने लगा देंगे।’

पुरोहितोंके अपनी अभिचार-विद्याका गर्व था। प्रह्लाद भगवानका भजन छोड़ दें, यदि तो होना या नहीं। पुरोहितोंने मन्त्र-बलसे कृत्या यशस्वी उत्पन्न की। प्रह्लादने तो डरना सीखा नहीं था। राश्री दौड़ी उन्हें निगलने—यह कहना ठीक नहीं है। उसने केवल दौड़नेकी इच्छा की।

जो निखिल-ब्रह्माण्डनायकके चिन्तनमें जागता रहता है, उसके योग-क्षेत्रके रक्षणमें वह सर्वसमर्थ से कैसे सकता है। कृत्याने उत्पन्न होते ही देखा कि वह प्रह्लादकी ओर तो पीछे जापटेगी, उसकी ओर महाचक्र झपटा आ रहा है—कोटि-कोटि सूर्य जिसकी किरणोंमें लुत ही जायें, वह महाचक्र दुश्मन। वेचारी कृत्या थी किस गणनमें। लेकिन कृत्या अमोघ होती है। उसे कुछ करना था—याने उत्पन्न करनेवाले पुरोहितोंके प्राण लेकर वह अदृश्य हो गयी।

शण्ड और अमर्क—बालक प्रह्लादको मारनेको उच्चत दोनों पुरोहितोंकी लाश पड़ी थी। लेकिन प्रह्लाद भगवानके भक्त थे न, वे इतसे दुखी हुए, कि मेरे कारण मेरे गुरुपुत्र मरे। वे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे—‘यदि मेरे मनमें अपनेको मारनेवाले, अपनेकी विष देनेवाले, अपनेको पर्वतसे पोकलेवालोंके प्रति भी कभी देप न आया हो तो ये गुरुपुत्र जीवित हो जायें। यदि मैंने अपनेको कष्ट देनेवाले देखी, गायें, हाथियों और मिठोंमें विना किसी भिन्नके आकार दर्शन किया हो तो मेरे दक्षमय प्रभु! ये गुरुपुत्र जीवित हो जायें।’

गुरुपुत्र जीवित हो गये—‘मन्त्रमुन जीवित हो गये।’ जो गणनामें निरुप्त है, वह तो जीवित हो तो भी मृत है। प्रह्लादकी प्रार्थनामें गुरुपुत्रोंमें प्राण ही नहीं आये, उनमें भगवर्तकी भी आयी। उनके सब जीवन मिला।

X            X            X            X

### अमरीपकी दुर्वासापर

भगवान् नारायणके परम प्रिय भक्त महागज अमरीप—

अमरीप भगवद्गुरुकीमें इतने तन्मय रहनेवाले कि १ श्रीहसिंहों उनकी तथा उनके राज्यकी रक्षाके लिये ये चक्रको नियुक्त कर देना पड़ा था। अमरीप-जैसे भगवद नियमित एकादशी व्रत करें तो क्या आश्र्य ! एकादश व्रतका पारण द्वादशीमें होता है। एक पारणके समय दुर्वा जी पहुँच गये। भहाराजने भोजन करनेकी प्रार्थना कर्त्त्विय उसे स्वीकार करके स्नान-संचया करने चले गये।

द्वादशीमें पारण करना आवश्यक था। द्वादशी थी थं और दुर्वासाजी संचया करते हुए ध्यानस्थ होंगे तो लैटेरो, वह कहा नहीं जा सकता था। व्रतकी रक्षा हो त अतिथिको भोजन कराये विना भोजन करनेका अपराध न हो—ब्रह्मणोंकी आजासे इस धर्म-संकटमें राजाने ग जल्से आचमन कर लिया।

दुर्वासाजी लैटे। राजाने जल पी लिया, यह उन जान लिया। उनका तो नाम ही दुर्वासा ठहरा—कोव मूर्ति। एक जटा उत्ताहकर कृत्या उत्पन्न कर दी गया नष्ट करनेके लिये।

राजा विना हिले-डुले ज्यो-केत्यों निर्भय लहड़े रहे भगवानके चक्रके कृत्याको उत्पन्न होते ही भस्म कर दिया उ दौड़ा दुर्वासाके पीछे। अब तो लेनेके देने पड़ गये। प्र वचनेके लिये भागे दुर्वासा श्रृंगि, चक्र पीछे पड़ा उनवे

महर्षि दुर्वासा बहस्त्रोक गये तो व्रहाजीने दूरसे १ दिया—‘यहाँ स्थान नहीं है।’ कैलात गये तो शंकरज लक्ष्मा-सा जबाब दे दिया—‘मैं असर्वथ हूँ।’ देवर्षि नारद कहनेवर वैकुण्ठ गये; किंतु भगवान् नारायणने भी व दिया—‘मैं विवश हूँ।’ मैं भी भक्तोंके पराधीन हूँ अमरीपके ही पास जाइये।

चक्रकी ज्वाला शरीरको जलाये दे रही थी। दुर्वासा दौड़े आये और सीधे अमरीपके दैरोपर दिर पहुँ। व लंकोच हुआ राजा अमरीपको। वे हाथ जोड़कर प्रार्थ करने लगे चक्रते—‘यदि मेरा कुल ब्राह्मणोंका भक्त र हो तो ये महर्षि तासरहित हो जायें। यदि भगवान् नाराय मुख्यसे तनिक भी प्रसन्न हों तो महर्षि तासरहित हो जायें।’

चक्र शान्त हो गया। राजाने दुर्वासाजीको मोज कराया पूरे एक वर्ष बाद और तब स्वर्य भोजन किया केवल जल पीकर वे एक वर्षतक महर्षिके लौजनेस न-॥

## रसिक संत सरसमाधुरी

(जन्म—वि० गं० १९१२। जन्मस्थान—मन्दसौर (ग्वालियर राज्य)। पिताका नाम—श्रीधासीरामजी। मनका सं० श्रीपार्वतीदेवी। जाति—ब्राह्मण।)

( १ )

जय जय श्री युगल विहारी ।  
 कुंज नृपति नव नगर नागर,  
     रस सागर रसिकन रिक्षिवारी ॥  
 अधम उधारन जन निखारन,  
     तरन तरन भक्त भयहारी ।  
 द्यागल गोर किशोर किशोरी,  
     जोरी भोरी अति सुकुमारी ॥  
 विधि हरि हर विनवत निशि वासर,  
     अवतारन हूँ के अवतारी ।  
 कीजिये कृपा कमल पद सेवा,  
     सरसमाधुरी शरण तिहारी ॥

( २ )

भजो श्री राधे गोविन्द हरी ॥  
 युगल नाम जीवन-धन जानो, या सम और धर्म नहि मानो ।  
 वेद पुराण प्रगट वसानो, जैये जोइ है धन्य धरी ॥  
 कलियुग केवल नाम जधारा, नवधा भक्ति सकल थ्रुति-सारा ।  
 प्रेम परा पद लहै सुखारा, रसना नाम लगावो झरी ॥  
 नृत्य करैं प्रगु के गुन गावें, गदगद स्वर तन मन पुलकावें ।  
 घहल महल कर हिय हुलसावें, सरसमाधुरी रंग भरी ॥

( ३ )

भज मन श्री राधे गोपाल ।  
 कहणा निधि कोमल चित तिन को, दीनन को प्रतिपाल ॥  
 जिन को ध्यान कियें सुख उपजै, दूर होत दुख जाल ।  
 माया रहत चरन की चेरी, डरपत जिन सों काल ॥  
 विहरत श्रीवृन्दावन माँहों, दोउ गल बैयाँ डाल ।  
 विलसत रस विलास रँगिलि गावत गीत रसाल ॥  
 हँस हँस छौन लेत मन छल कर चक्षल नैन विशाल ।  
 सरसमाधुरी शरनागत कों छिन में करें निहाल ॥

( ४ )

राधिकावल्लभ ध्यान धरो उर, राधिकावल्लभ इष्ट हमरे ।  
 राधिकावल्लभ नाम जयो नित, राधिकावल्लभ ही हिय धरे ॥  
 राधिकावल्लभ जीवन है मम, राधिकावल्लभ प्राण तें प्यारे ।  
 राधिकावल्लभ नैन वसे सरसमाधुरी होत नहीं छिन न्यारे ॥

( ५ )

गावें श्यामा श्याम को, ध्यावें श्यामा श्याम ।  
 निरखें श्यामा श्याम को, यही हमारो काम ॥  
 यही हमारो काम, नाम दंपति लौ लगी ।  
 निज सेवा सुख रंग, महल लीला अनुरामी ॥  
 सरसमाधुरी रंग रँगे, मदमाते डोले ।  
 मिलें सजाती संग खोल अंतस मृदु बोले ॥

( ६ )

जगत में भक्ति वडी सुख दानी ॥

जो जन भक्ति करे कैशब की सर्वोत्तम सोह प्रानी  
 आपा अर्पन करे कृष्ण को, प्रेम प्रीति मन मानी  
 सुमेरे सुरुचि सनेह इवाम को, सहित कर्म मन वानी  
 श्रीहरि छिथि में छोको रहत नित, सोह सज्जा हरि श्यामी  
 सब में देखे इष्ट आपनो, दिज अनन्य पत जानी  
 नैन नेह जल द्रवत रहत नित, सर्व अंग पुलकामी  
 हरि मिलने हित नित उमरो चित, सुख बुध सब यिसरामी  
 विरह व्यथा में व्याकुल निशि दिन, ज्यों मठलीविन पाली  
 ऐसे भक्तन के बश भगवत, घेदन प्रगट वस्त्रामी  
 सरसमाधुरी हरि हँस भेटें, मेंटे आवन जानी

( ७ )

भजन विन नर मरवट को भृत ।  
 श्यामा श्याम रहे रसना से तिन को जान याए  
 विन हरि भजन करम सब अदरम, आठों गाँठ कपूल  
 एक अनन्य भक्ति विन कीये धूम करनी करनी  
 निश दिन करत कपट छलवाजी, गमने नहीं अंतर  
 सरसमाधुरी अंतकाल में गाएंग गमना

( ८ )

भजन विन नर सब पशु भगान ।  
 खान पान में उमर वितावत, और नहीं कुल के  
 मिलये धाय भागन सो नर तन, अब यों गमन भरी  
 सतसंगत में बैठ लेंठ तज, कर गंगादिग गुण ग  
 छिन पल वडी घटत है त्वाँगा, काल गालों में याँ  
 आव अचानक तक मोरगां, गीत गलां। याँ  
 केर कछू नहीं बैन आयि, निकम आय तज भर  
 सरसमाधुरी सब तज हरि भज करी द्यारी याँ

( ९ )

ज्ञात में रहना है दिन चार ।  
त हैत कर हरि सौं प्यरे, हरि तुमरन की वार ॥  
पलक का नाहि भरोसा, मौत विछाया जार ।  
द्री भोग विषय वस हूँये, फँसे सकल नर नार ॥  
र ले भजन संत गुरु सेवा, सब करनी को तार ।  
कुत सौदा सत्य यही है, जीत जनम मत हार ॥  
तला चली लग रही रैन दिन, मन में सोच विचार ।  
गला गया कोइ चला जात, कोइ चलने को तैयार ॥  
वॉस स्वाँस में तुमिर इथाम को, दया धर्म उर धार ।  
सरसमाधुरी नाम नाव चढ़, उतरो भव जल पार ॥

( १० )

जगत में सकल बद्याऊ लोग ।  
कोइ आवत कोइ जात यहाँ ते, झूँठे सुख संजोग ॥  
भुगते करम भरम चौरासी, जनम मरन दुख रोग ।  
जो उपर्जे सो निश्चै विनरे, काको कंजे सोग ॥  
करे भजन निष्काम इथाम कं, फिर नहिं होत वियोग ।  
सरसमाधुरी सत्य कहत है, करे आमर पुर योग ॥

( ११ )

थोड़ा जीवन जगत में, सुन मेरे मन थार ।  
सरसमाधुरी नवन सों, करो परसर प्यार ॥  
राजी राखो सबन को, राजी रहिये आप ।  
सरसमाधुरी सुहृदता, भेटत वयविधि ताप ॥  
जग दम्पति भव अँडके, जांब थाली हाथ ।  
मुमिन मेवा भावना, चले जीव के लाथ ॥  
गुपना यह अंगर है, मोह नींद से जाग ।  
नेती वरो प्रभु से डरो, हरि तुमरन को लाग ॥  
जो जन गुर्मि नाम हरि, जागे ताके भाग ।  
सरसमाधुरी हार नुसी, लै तुगल अनुराग ॥  
की जान अरु ध्यान है, यही योग तप त्वाग ।  
सरसमाधुरी गमध मन, विषयन में मत पग ॥

( १२ )

जगत पद जान रंग का गपना ।

भारा भिता परिवार नारि नर, हरि विन कोइ न अपना ॥  
भिति स्नारथ के भये सनेही, विविधि ताप में तपना ।  
रितुरन भरन भिलन जीवन में, करिये नहीं कल्पना ॥  
भाया जाल जीव उरझायो, उपज उपज पिर दूपना ।  
सरसमाधुरी गमध मूढ मन, सौचा हरि हरि जपना ॥

दोहा

जो सेवा श्रीयुगल की, तन सौं बनै न मित्त ।  
तो मन सौं कर भावना, समय-समय दी नित ॥  
यह बन मैं जित नित रहो, गहो सानडी सेव ।  
‘सरसमाधुरी’ भाव सौं, सहचरि बन सुख लेव ।  
सुख की दंपति रासि हैं, तिन सौं प्रेम वदाव ।  
‘सरसमाधुरी’ ठहल को, गित-प्रति रख चित जाय ॥  
जुगल लगत मैं मन भगन, राखहु आयीं जाम ।  
‘सरसमाधुरी’ सुरति सौं, सुमिरहु स्यामा-स्याम ॥

श्रीमद्भगवत्-सेवाके वत्तीस अपराध

बाहनादि असवार हो, पहर खड़ाऊ पाँय ।  
पदनाण को पहर के, हरि मंदिर नहि जाय ॥  
जन्म अष्टमी आदि ले, हरि उत्सव दिन जान ।  
सेव करे नहि श्रीहरी, यह अपराध यिद्धान ॥  
हरि मंदिर मैं जाय के, करे नहीं परणाम ।  
नमन करे नहि ग्रेम सौं, श्रीमत इयामाँ इथाम ॥  
अशुचि अंग जूँठे बदन, लघुशंकादिक जान ।  
विन धोये कर दंडवत, यह अपराध प्रमान ॥  
एक दाथ सों ही करे, श्रीहरि लगण प्रणाम ।  
युगल हल जोड़े नहीं, यह अपराध निकाम ॥  
श्रीहरि मूरति सामने, करे प्रदणिण कोय ।  
मन में निश्चय कंजिये, यह अपराधहि होय ॥  
हरि मूरति के अगाड़ी, बैठे पाँव पकार ।  
करे अवज्ञा समझ विनः पातक लेहु मिहर ॥  
कमर प्रष्ट बुटनोन को, बल घाँथ कर जोय ।  
सन्मुख बैठे श्रीहरी, यह अपराधहि होय ॥  
श्री मूरति के सामने, सोवे पाँव पकार ।  
यह भी शातक प्रगट है, किंयो शाळ निधार ॥  
श्रीहरि सन्मुख बैठ के, भोजन करे जो जान ।  
यह भी पाप प्रत्यक्ष है, समझें संत मुजान ॥  
हरि मंदिर मैं बैठ के, मिथ्या बोले जोय ।  
शूँठ बदानें बाती, यह भी पातक होय ॥  
हरि मूरति सन्मुख कोई, करे पुकार बकवाद ।  
यह भी है अपराध ही, करनो बाद विवाद ॥  
हरि मंदिर मैं बैठ के, जग चच्चा अनुवाद ।  
मनुप्य मंडली जोइ के, करे सहित उन्माद ॥

सूतक भये प्राणीन को; और जगत संताप।  
 रेवे मंदिर बैठ के, सो भी कहिये पाप॥  
 मंदिर माँहीं बैठ के करे हँर्षि जोय।  
 हँप करे प्राणीन लो; यह भी पातक होय॥  
 हरि मूरति के सामने देहि किसी को दंड।  
 कोश करे मारे हो; यह भी पाप प्रचंड॥  
 श्रीठाकुर के सामने, जग लोगन को जान।  
 देवे आशिशाद ही, सोहू परप पिछान॥  
 हरि मंदिर में बैठ के, बोले वचन कठोर।  
 चित्त दुखावे और को, यह पातक मिरमोर॥  
 उन उमरणा ओढ के, हरि सेवा में जाव।  
 बाल मिरे मंदिर विमे; यह अपराध लक्षाय॥  
 ठाकुर सन्तुष्ट बैठ के, निदा करे वक्षन।  
 यह भी पाप मिदानिये, होय पुन्य की हानि॥  
 श्रीहरि मूरति सामने, अस्तुति भावे और।  
 करे बडाई लोक हित, यै पाप अति धोर॥  
 हास्य करे जिय और की, बोले वचन अयोग।  
 मंदिर माँहीं बैठ के, जीव दुखावे लोग॥  
 मंदिर माँहीं बैठ के, छोड़े वायु अपान।  
 शुचि पवित्रता नष्ट हो; यह भी पातक जान॥  
 निज उमर्थ तजि लोभ वश, करे कृपणता जान।  
 सेवे नहि श्रीहरी को, यथाशक्ति दित मान॥

बिना समर्पे प्रभु के भोग लो शिन  
 भले वस्तु जो जीव यह, सो पतक अ॒  
 अ॒स्तुप्ल भोग धरे नहीं, श्रीमति रथे  
 लाड लड़ा सेवे नहीं, सो भी पाप ॥  
 भूत वितर अह देवता, तिन के भोग;  
 सोइ समर्पे प्रभु को, यह भी पाप ॥  
 पीठ फेर के बैठनो, श्रीठाकुर की  
 यही अवश्य विमुखता, अतिशय पार;  
 ठाकुर सेवा करत मैं, अम जिय करे;  
 नमन करे डर लोभ वश, यहै पाप को  
 गुरु महिमा कोङ करे, सुनत रहे तु  
 निज मुख अस्तुति नाह करे, सो भी कहियत  
 और देवता की करे, निदा आप व  
 यह भी कहियत पाप है, मन मैं समझ गु  
 अने मुख ही सो करे, आप बडाई  
 लघुता गुण धरे नहीं, यही पाप है  
 यहै बच्चीस जो पाप है, त्याग करे हरि  
 अपनावें तजो प्रपो, है प्रसन्न धरि  
 श्रीबाराह पुराण मैं, यह सेवा अप  
 इन को तजि के प्रीति मौं, भगवत् पद अ  
 मकि भाव कर सेहये; श्रीअसरना अन  
 वरसमाधुरी कर कुमा, मिटे युगल मू

### संत लक्ष्मणदासजी

[ जन्म—१९वीं शताब्दीका पूर्वोर्ध्व, जन्मस्थान—गोडा जिल्हेका नगवा श्रीम, जाति ब्राह्मण । ]

( प्रेषक—प्रिन्सिपल श्रीमगवर्तीप्रसादसिंहजी एम.०.५० )

लादौ नाम खजनवा हो सुनौ मन बनजरवा।  
 धीर गढ़ीर कै आमन मापै, प्रेम कै दिन्हौ वथनवा हो॥  
 साँच कै गोनिया माँ जिनिस भरेव है, करिलेव जान ससरवा हो।  
 अन्तरके कोठरी माँ धान लायो, निसिदिग भजन विचरवा हो॥  
 राति दिवस वाके देस न व्यापित स्याम हीरा के उजेरवा हो।  
 कहै लछन जन चलौ सतगुर घर अहुरि बहुरि न गवनवा हो॥

साँचरो धन धाम तुमारा॥

जागेव अलख पलक अविनासी खोलेव गमन केवरा।

तपार दरम दियौ प्रभु है है त्रिभुवन लंब भः  
 नाद वेद जस वाजन लागे अनश्व यन भ  
 मुनि जन राम रुद लागे ग्रन रेत न  
 सार गिव गावै मारद लादी नार्च, रोग कान धू  
 देवन दृत करत सुरपुर चहि परदत सीमा  
 अतर गुदाव कुमकुमा केवरि अविर लदा तु।  
 लार धोरि धोरि रँग मानत चहुं दिग धूर मै  
 लग वेगट सकल दृशि जाको अकित भर्या मन  
 लच्छन दाम दशा गतगुर के गुपति जान भि

## संत श्रीसगरामदासजी

कहे दास सगराम रामरस का ले गटका ।  
मत्त चूके अब दाव चार दिन का है चटका ॥  
ये चटका चूक्याँ पछे मिले न दूजी बार ।  
लख चौरामी जोनि में दुख को आर न पार ॥  
दुख को आर न पार धणा मारेगा भटका ।  
कहे दास सगराम राम रस का ले गटका ॥  
कहे दास सगराम सुणो हो सज्जन मिता ।  
सारी बात सूँ जाण थने क्यों व्यापै चिंता ॥  
क्यों व्यापै चिंता थने सुख-सागर सूँ सीर ।

राम भजन दिन दिन गया वो सालत है वीर ॥  
वो सालत है वीर आप जावे जब चिंता ।  
कहे दास सगराम सुणो हो सज्जन मिता ॥  
कहे दास सगराम सुणो धन की धणियाणी ।  
कर सुहृत भज राम जाण धन ओल की पाणी ॥  
बहते पाणी धोय ले कृपा करी महाराज ।  
कारज कर ले जीव को करथो जाय तो आज ॥  
करथो जाय तो आज काल की जाय न जाणी ।  
कहे दास सगराम सुणो धन की धणियाणी ॥

## श्रीस्वामी रामकवीरजी

( प्रेपक—श्रीअच्छू धर्मनाथसहायजी वी० ए०, वी० ष्ट० )

बुरे ख्यालोंमे पीछा छुड़ानेके लिये ये ग्यारह युक्तियाँ  
बहुत उपकारी हैं :—

( १ ) मालिकसे प्रार्थना करना, ( २ ) आलमसे वचना,  
( ३ ) कुरुझसे दूर रहना, ( ४ ) बुरी कितावें, किसास-  
कहानी न पढ़ना, ( ५ ) नाच-तभाजा, चेटक-नाटकमें  
न जाना, ( ६ ) अपनी निरख-परख करते रहना, ( ७ )  
इन्द्रियोंको बुरे विधियोंकी ओर छुकने न देना, ( ८ ) जब

बुरे चिन्तवन उठें तो चित्तसे नोचकर फेक देना, ( ९ )  
एकान्तमें भन-इन्द्रियोंकी विशेष रखवारी करना, ( १० )  
परमार्थी शिक्षाओंको सदा याद रखना, ( ११ ) मौत और  
नरकोंके कष्टको याद दिलाकर मनको डरवाते रहना ।

काम काम सब कोइ कहे, काम न चीन्है कोय ।  
जेती मन की कल्पना, काम कहावत सोय ॥

## संत दीनदरवेश

[ जन्म १८६३ वि०; स्थान डमोड़ा, गुजरात ]

( प्रेपक—श्रीवैद्य बद्रदीन राणपुरी )

जिलमा दीमे थिर नहीं, थिर है निरंजन नाम ।  
ठाठ बाठ नर थिर नहीं, नाहीं थिर धन-धाम ॥  
नाहीं थिर धन-धाम, गाम-घर-हस्ती धोड़ा ।  
नजर आत थिर नाहिं, नाहिं थिर माथ संजोड़ा ॥  
नहीं दीनदरवेश, कहा इतने पर इतना ।  
थिर नित्र मन मत शब्द, नाहिं थिर दीसे जितना ॥  
  
बंदा नर ले बंदगी पाया नरन्तन सार ।  
जो अय गार्फिल रह गया, आयु वहै लाय भार ॥  
आयु वहै लाय मार, कूल्य नहै नेक बनायो ।  
पांडी देमान, कोन थिय जग में आयो ॥  
नहीं दीनदरवेश, फैस्ये माया के फंदा ।  
पाया नर नन भार बंदगी कर ले दंदा ॥

जिक विना करतार के, जीव न पावत चैन ।  
चहुँ दिसि दुख में छूते, झर रहे दो नैन ॥  
झर रहे दो नैन, रैन दिन रोकत वीते ।  
हाय अभासी जीव पीव त्रिनु को नहिं मीते ॥  
कहत दीनदरवेश फिक अब दूर करीजे ।  
तब ही आवै चैन, जीव जब त्रिक करीजे ॥  
  
अमल चढावा हो गया, लगी नद्या चकचूर ।  
आली क्यों बूझत नहीं, मिल गये यांदव नूर ॥  
मिल गये साहेब नूर, दूर दुइ दृक्षिया मरी ।  
विकट मोह की फौस, दूर गढ़ मंगान तेरी ॥  
कहत दीनदरवेश, अब यहाँ झाँड़ ढाया ।  
लगी नद्या चकचूर हो गया अमल चढावा ॥

आली अमल क्षूटै नहीं, लग रहे आठों यास ।  
मैं उन में ही रम रहूँ, कहा और से काम ॥  
कहा और से काम, नाम का जाम पिया है ।  
जित को मिल गये आप उसी ने देख लिया है ॥  
कहत दीनदरवेश, किरूँ प्रेमे मतवाली ।  
जा रहे आठों यास अमल नहिं क्षूटै आली ॥

आली पिया के दरस की, मिटै न मन की आस ।  
जैन दिनाँ रोवत फिरूँ, लगी प्रेम की फाँस ॥  
लगी प्रेम की फाँस श्वास-उद्धास सँभारे ।  
मैं उन की हुइ रोश, पीछे नहिं हुए हमारे ॥  
कहत दीनदरवेश, आस नहिं मोहि जिया की ।  
मिटै न मन की प्यास, आस मोहि दरस पिया की ॥

माँह प्रट-धट मैं बसे, दूजा न बोलनहार ।  
देसी जलवा आप का, खाचिंद खेकनहार ॥  
खाचिंद खेकनहार, नाथ का वही नजाय ।  
तू कहा जान अबूझ, बागी हविश का प्यारा ॥  
कहत दीनदरवेश, फक्कीरी इत्तम बखाने ।  
दूजा न बोलनहार सोई सैवाँ पहचाने ॥

माया माया करत है, साया खरन्द्या नौहि ।  
आया जैसा जायगा, ज्यूँ बादल की छाँहि ॥  
ज्यूँ बादल की छाँहि, जायगा आया जैसा ।  
आन्या नहिं जगदीस, प्रीत कर जोड़ा पैसा ॥  
कहत दीनदरवेश, मही है अमर काया ।  
साया खरन्द्या नौहि करत है भाया-माया ॥

बंदा बहुत न कूलिए, खुदा खमंदा नौहि ।  
जौर जुलम मत कीजिये मरत लोक के भाँहि ॥  
मरत लोक के भाँहि, तजुर्वा तुरत दिलावे ।  
जो नर करै गुमान, वही नर खत्ता खावे ॥  
कहत दीनदरवेश भूल मत गफिल गंदा ।  
खुदा खमंदा नौहि बहुत मत फूले बंदा ॥

बंदा कहता मैं कहूँ करणहार करतार ।  
तेश कहा सो होय नहिं, होसी होवणहार ॥  
होसी होवणहार, बोझ नर बृथा उठावे ।  
जो विधि लिख्या लिलार, तुरत वैसा फल पावे ॥  
कहत दीनदरवेश हुकुम से पान हलंदा ।  
करणहार करतार, तुही क्या करसी बंदा ॥

धुरै नगारा कूच का, छिन भर छाना नौहि ।  
कोई अज कोई काल ही, पाव पलक के भाँहि ॥  
पाव पलक के भाँहि, समझ ले मनवा मेरा ।  
धरथा रहे धन भाल, होय ज़ंगल में डेरा ॥  
कहत दीनदरवेश जतन कर जीत जमारा ।  
छिन भर छाना भाँहि कूच का धुरै नगारा ॥

हिंदू कहै सो हम बड़े, मुसलिमान कहै हम ।  
एक मूँग दो फाइ है, कुण ज्यादा कुण कम ॥  
कुण ज्यादा कुण कम, कभी करना नहिं कजिया ।  
एक भजत है राम, कुजा रहिमान से रेजिया ॥  
कहत दीनदरवेश, दोय खरिता मिल तियू ।  
सब का साहब एक एक ही मुसलिम हिंदू ॥

बंदा शाजी छठ है, मत साची कर मान ।  
कहाँ बीरबल गंग है, कहाँ अकब्बर खान ॥  
कहाँ अकब्बर खान, भर्ज की रहे भलाई ।  
फतेह सिंह महाराज, देख उठ चल गये भार ॥  
कहत दीनदरवेश, सकल माया का पंथा ।  
मत साची कर मान, छठ है बाजी बेश ॥

मर जावेगा मूरखा, क्यूँ न भजे भगवान ।  
झुठी माया जगत की, मत करना अभिमान ॥  
मत करना अभिमान, वेद शास्त्र तूँ कहवे ।  
तज ममता, मज राम, नाम सो अमर रखवे ॥  
कहत दीनदरवेश, फेर अवसर कय आये ।  
भज्या नहीं भगवान, और मूरख गर जाये ॥

काल ल्लपटा देत है, दिन मैं वर हजार ।  
मूरख नर चेते नहीं, कैमें उतो पाम ॥  
कैमें उतरे पार, मोह मैं हारयो शाची ।  
भज्या नहीं भगवत रखो गाया मैं गाची ॥  
कहत दीनदरवेश, छोड दे कृष्णपदा ।  
दिन मैं वर हजार, देत है आल अपदा ॥

राम हयेश रेकइ, खरन्द्या घटन नौहि ।  
साइब खरिया सेठिया, वैसे नगर के गाँव ॥  
वैसे नगर के गाँव, हुंडियाँ गिरे न गाँव ।  
क्या ऐसे की प्रीत, प्रीत श्रीराम की गाँव ॥  
कहत दीनदरवेश त्याग वैगग गैव ।  
खरन्द्या घटे नौहि, गग दे गेज गैव ॥

ताकूँ मनवा धिक्क है, साहेब समरथा नहिं ।  
अलख पुरुष नहिं ओलख्यो, पड़यो मोह के माँहि ॥  
पड़यो मोह के माँहि समझ ले मनवा मेरा ।  
पड़या पूतला जान, होयगा सूना डेरा ॥  
कहत दीनदरवेश जान की लारी न धाकूँ ।  
साहेब समरथा नाँहि, धिक्क है मनवा ताकूँ ॥

बंदा हरि के भजन विन, तेरा कोइ न मिच ।  
तैँ क्यूँ भटके बावरे, कर ले नाम से प्रीत ॥  
कर ले नाम से प्रीत, वही भवतारक सैयाँ ।  
परमानंद को पेख यार ! क्यूँ राह-मुलैयाँ ॥  
कहत दीनदरवेश, कटे फिर काल का फंदा ।  
जनम-मरण मिट जाए, हरी को भज ले बंदा ॥

मायिक विषय संसार का, देखत मन लोभाय ।  
मनहि खीच हरि चरण में, रखो सदा लब लाय ॥  
रखो सदा लब लाय, लगा हरि से निरवाना ।

उन का नाम है योग, भासवत सौँद बखाना ॥  
कहत दीनदरवेश, मिले उवरन का आरा ।  
कवहुँ न मन लोभाय, देख मायिक संसारा ॥

सुंदर काया छीन की मानो क्षणभंगूर ।  
देखत ही उड़ जायगा, ज्यूँ उड़ि जात कपूर ॥  
ज्यूँ उड़ि जात कपूर, यही तन दुर्लभ जाना ।  
सुक्कि पदारथ काज, देव नरतनहि बखाना ॥  
कहत दीनदरवेश, संत दर्जन जन पाँया ।  
क्षणभंगूर संसार, सुफल भइ सुंदर काया ॥

देवाविदेव दया करो, आयो तुम्हारे पास ।  
भदोभयमें राचा रहूँ, तुम चरणन की आस ॥  
तुम चरणन की आस, भक्ति-अनुराग वधैया ।  
पल छिन विसरत नाह तुम्हीं हो मेरे सैया ॥  
कहत दीनदरवेश मिटे संसार उपाधी ॥  
आयो तुम्हारे पास, दया करो देवदेवाधी ॥

## संत पीरहीन

[ संत दीनदरवेशके शिष्य । ]  
( प्रेपक—श्रीमाणिकलाल शंकरलाल राणा )

खालिक विन दूजा कहूँ, सौई तेरा अबूझ ।  
नूरे नजर देने विना किस विध पावत सूझ ॥  
किस विध पावत सूझ फिरे हम अंध अभागी ।

मैरम नाम लिलाय तभी हम देखा जागी ॥  
कहत पीर दरवेश वही है मेरा मालिक ।  
सौई पेख अबूझ, दूजा नहिं देखिय खालिक ॥

## बाबा नवी

[ संत दीनदरवेशके शिष्य । ]  
( प्रेपक—श्रीमाणिकलाल शंकरलाल राणा )

मैं जानूँ दूर अधम उधारन पतित उवारन खामी रे ।  
भज वसल भूवरजी रे, है एक नाम वहुनामी रे ॥  
प्रथम भज प्रह्लाद उचारे, धृत को अमर पद दीनहारे ।  
मुदामा के सब संकट काटे, हँस हँस तंदुरु लीन्हा रे ॥  
पांचाली को नीर बढ़ायो, पांडव लिये उवारी रे ।  
पौरन गुल को आप विदारे, अर्जुन को रथ धारी रे ॥

गिरधारी तेरो नाम बड़ो है, जहर मीरा का पीया रे ।  
नामदेव की गाय जिवाई, दामा के जीवण जीया रे ॥  
सेन काज नाई बनि आये, माधव का भल धोया रे ।  
ब्रह्मन के घर वास ल्यागकर, सदन कसाइ भन भोहया रे ॥  
वहुर्गी तोहै कौन वसाने, गोविन्दजी गर्वहारी रे ।  
दास नवी को सरणै राखो, द्वयत नैया तारी रे ॥

## बाबा फाजल

[ संत दीनदरवेशके शिष्य । ]  
( प्रेपक—श्रीमाणिकलाल शंकरलाल राणा )

गदुर्भगि रुजा मुगर, मोही विदारिये ।  
लंपट मन की चाल, निदानैद वारिये ॥

नैया चहे मँझायार, खेवैया तारिये ।  
फाजल अपनो जान, हरी उवारिये ॥

## संत नूरुदीन

[ संत दीनदरवेशके रामभक्त शिष्य, अन्तिम जीवन सरयू-तटपर । ]

( प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शंकरलाल राणा )

शबरी भिलनी जानि कै झूँठे खाये वैर ।  
नाविक जन मरणे रख्यो कहा यवन सौं वैर ॥  
कहा यवन सौं वैर जटायू खग थे प्राणी ।  
चानर और किरात उबरे जाण अजाणी ॥  
नूर फकीर जानै नहीं जात वरन एक रास ।  
तुव चरनन में आय के अव तो कियो विश्राम ॥

## संत झूलन फकीर

[ स्थान—अहमदाबाद, दरिया खानके शिष्य । ]

( प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शंकरलाल राणा )

खाव को देखके भूल मत रँचिये,  
यह बाजीगर का खेल है जी ।  
रूप जोवन दिन चार का देखना,  
जब लग दीप में तेल है जी ॥  
हम तुम दोनों हिलमिल रहें, यह  
सराय पल-छिन का मेल है जी ।  
झूलन फकीर पुकारकर कहे  
क्यों दे अब भी वदफेल है जी ॥

## संत हुसैन खाँ

[ संत दीनदरवेशके शिष्य । ]

( प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शंकरलाल राणा )

बालमुकुन्दा माधवा केशव कृष्ण सुरार ।  
यवन उधारन आइये निर्लज नंदकुमार ॥  
निर्लज नंदकुमार नाथ छाँड़ो निषुराई ।  
दूध दही धृत खाय यादव तेरी चतुराई ॥  
हुसैन तेरा हो गया गिरधर गोविन्दा ।  
केशव कृष्ण सुरार माधवा बालमुकुन्दा ॥

## संत दरिया खान

[ संत कमालके शिष्य । ]

( प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शंकरलाल राणा )

तेरा जल्दा कौन दिलावै ॥

तेल न बाति बुशत ना ज्योती जाग्रत कौन लखावै ।  
विज चमकै झिरमिर मेह वरसे नवरंग चीर भिजावै ॥  
पल एक पिव दीदार न दीखे जियरा बहु तड़पावै ।  
दरिया खान को खोज लगाकर आपहि आप मिलावै ॥

## संत शम्मद शेख

[ समय सतरहवीं सदी, संत माधवदासजीके शिष्य । ]

( प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शंकरलाल राणा )

सुहागिन पिय से नाची हो ।  
पल इक पीव को विसरत नाहीं (तेरी) प्रीती नाची हो ॥  
रसना तेरी पीव रटन मैं, नैन पियानी हो ।  
जियरा तेरा पिव सेंग विरमें, (तेरी) काया काची हो ॥  
तन मन झूल डोर बाँधकर पिव रँग राची हो ।  
शम्मद शेख पिव माधव मिलते (हुई) काल की हाँगी हो ॥

## बाबा मलिक

[ स्थिति—मुगल बादशाह जहांगीरके समय, स्थान—गुजरात  
मरोंच जिलेमें आनन्दनगर । श्रीसंत हरिदासजीके शिष्य । ]

( प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शंकरलाल राणा )

बाबा मोहे एक तिहारी आग ॥ टेक ॥  
धन दौलत मेरे मन नहिं भावे, मैं हूँ तिहारे दाग ।  
तेरा है मैं टाढ़ रहा हूँ, मोय रथो चरन के गत ॥  
रोजे कयामत कोइ न मंरा मात्र लागो ॥॥॥  
दास मलिक की लेहु मुवरिया, एक दिन त्रिगत नाग ॥

## बाबा गुलशन

[ गुरु—ब्रजदास नामक संत, ब्रजवासी मुस्लिम संत । ]

( प्रेषक—श्रीमणिकलाल शंकरलाल राणा )

गोहनि सूरत मोहन की, देखत जग लागि रहा सपना ।  
नैन न साँचरि सूरत विनु, मोहे कोइ यहाँ न लो अपना ॥  
चंचल हरि के चरन लगयो, रसना लगि प्रिय नामहि जपना ।  
शन तहकीक कर देख लिया, जग झूट जँजाल मन की कल्पना ॥

गुलशन काया कारमी कल मिडी का ढेर ।  
पाक खुदा के जिक विन बंदे न पावत लहर ॥

ठाढ़ी रह बज खालिनी गुलशन पूछत तोर ।  
ब्रजवासी वो कहाँ गये मुरलीधर चित चोर ॥  
पाजी नैन मानै नहीं, गुलशन कहवो समझाय ।  
इत उत नित भटकत फिरै स्याम छवी भन भाय ॥  
स्याम छवी जिन जिन लखी गुलशन चहै न आन ।  
मुरलीधर सौं मन लगा, उन्है वही भगवान ॥

## संत दाना साहेब

[ समय वि० सं० १७५० से १८००, स्थान चौपानेर, काजी गुलशनके शिष्य । ]

( प्रेषक—श्रीमणिकलाल शंकरलाल राणा )

मुरलीधर स्याम की साँचरी सूरत निरखत नैना छाकि रहे ।  
ब्रजवासी हुई बज ठाढ़ि रहूँ, बंसीधर माधुर वेणु वहे ॥  
वरसाना कुंज वृंदावनमें, हरि दीसत नाहीं कौन कहे ।  
दाना ब्रजसे नहिं दूर रहे, यह जन्मत का सुख कौन लहे ॥  
दाना के दिल मैं ल्याए, पीय दरस की आस ।

विरहिन ब्रज में आइ कै, ठाढ़ी ठौर उदास ॥  
मनमोहन ! तुम हो कहाँ, ब्रजवासी सुख दैन ।  
सैयँ तुम्हारे दरस विनु, दाना बहावत नैन ॥  
विलखत आयू बीत गइ, बीते जोन वेश ।  
अब तो दरस दिखाइये, दर पै खड़ा दरवेश ॥

## संत केशव हरि

[ स्थान—तीराष्ट्र, जन्म-संवत् १५०७ ]

( प्रेषक—श्रीमली गोमतीदासजी )

जो शंत दाना सुसमाहित वीतराग ।  
जेने नथी जगत माँ रतिमात्र राग ॥  
जेने सदा परम गोध पवित्र धाम ।  
एने अमे प्रणय थी करिए प्रणाम ॥  
जेनो गयो सफल जन्म वृजाति रूप ।  
जेने सदा सुखद एक निज स्वरूप ॥  
जेनो सुखाक्षम विरो समने विराम ।  
एने अमे प्रणय थी करिए प्रणाम ॥

देखाय लोय पण अन्तर माँहि गूढ़ ।  
जेने विचेक विनयादि विचार रुढ़ ॥  
जे आत्मलाभ थकि केवल पूर्णकाम ।  
एने अमे प्रणय थी करिए प्रणाम ॥  
जे त्यागबान पण छेवट एक रागी ।  
रागी जणाय पण अंतर माँ विरागी ॥  
जेनुं सदा रटण केशव राम नाम ।  
एने अमे प्रणय थी करिए प्रणाम ॥

## संत यकरंगजी

मिंगिन जो हरि का तुन गाय रे ।  
पिंगरी चाता नाथी मद दन जाय रे ॥

लाव कहूँ मानै नहि एकहु ।  
अब कहो, कवलगा हम समझायें रे ॥

गोच विचार करो कुछ 'यकरँग' ।  
 आखिर बनत बनत बन जाय रे ॥  
 सौंवलिया मन भाया रे ॥  
 सोहिनी सूरत मोहिनी मूरत,  
     हिरदै चीच समाया रे ।  
 देस में हँडा, विदेस में हँडा,  
     अंत को अंत न पाया रे ॥  
 काहू में अहमद, काहू में ईसा,  
     काहू में राम कहाया रे ।  
 सोन्न-विचार कहे 'यकरँग' पिया,  
     जिन हँडा तिन पाया रे ॥

हरदम हरि-नाम भजो री ॥  
 जो हरदम हरि-नाम को भजिहै, मुक्ति है जैहै तेरी ।  
 पाप छोड के पुन्य जो करिहै, तब बैकुण्ठ मिले री ।  
     करम से धरम ननो री ॥  
 'यकरँग' पियसौं जाइ कहै कोइ, हर घर रँग भजो री ।  
 सुर नर मुनि सब फाग खेलत हैं, अपनी-अपनी जोरी ।  
     खबर कोई लेत न मोरी ॥  
 मितवा रे ! नेकी से बेड़ा पार ।  
 जो मितवा तुम नेकी न करिहै, बुड़ि जैहै मँझधार ॥  
 नेक करम से धरम सुधरिहै, जीवन के दिन चार ।  
     'यकरँग' जागो खैर हशर की, जासौं हो निस्तार ॥

## संत पूरण साहेब

(कवीरपंथी साधु)

नरलन काहे को धरे हो चेतन !  
 पशुवत कर्म करत हो जग मैं, विषयन संग जरे ।  
 सत्तसंभाति चीन्ही नहि कवहूँ, बहु भ्रम फंद परे ॥  
 सुत दारा परिवार कुटुम्ब सब, मोह-धार मैं परे ।  
 'पूरन' परख पाय विन हंसा, जनम-मरत न टरे ॥  
 या तन की केती असनाई ! ओरे दिनन मैं माटी मिलाई ॥  
 जल पृथ्वी मिलि बनो है सरीरा, अग्नि पवन ता मध्य समाई ।  
 सून्य स्वभाव अकास भरो है, तू नहि जानत चेतन साई ॥

धन-संपति छिनमंग सकल जग, छिनमंगी सब मान बढाएं  
 धृक तिन कों जो इन कों मानत, 'पूरन' पारख विन दुरादार ॥  
 समुद्दिश बूँशि कछु लीजिये मनुआ ! जग मैं नित न दीजिए ।  
 जो आपुहि बौराय गयो है, ताको संग न भीजिए ।  
 विषयन के मदमाते जियरा, तिनके शन नहि भीजिए ।  
 चौसो तीर पखान मैं मारो, नालि हेतु नहि रीहिए ।  
 कहै 'पूरन' सुखरूप परख पद, तादि अगल रा भीजिए ॥

## मीर मुराद

[कविराज नारण काशनदासके शिष्य, स्नान—बड़ोदा राज्यमें विल्वाई थाम ।]

(प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शंकरलाल राणा )

मुखीधर ! मुख मोड़के अब भत रहियो दूर ।  
 मुराद आयो शरण मैं, रखियो हरी हजर ॥  
 ल्याम छबी हिरदै लखी, अब कहा निरखूँ आन ।

मुराद दूसरा कोउ नहो, नाम किया निरापद ।  
 विलखत मन हरि के विना, दरम विना नहि रीज ।  
 मुराद हरि के मिलन विन, वरना जूँ वरे नैन ।

## संत भाण साहेब

[जन्म—संवत् १७५४ भाषी पूर्णिमा, जन्म-स्थान—सौराष्ट्रमें आम कन्सीलोड, पितामा नाम—प्रसाद भाण, मराठा ।  
 अम्बावाई, प्रसिद्ध संत ।]

(प्रेषक—साधु दयालदास मंगलदास )

सातु नाम साहेबनु, जुँ नहि जराय ।  
 भाण कहे प्रेमे भजे, तो भरे कामज थाय ॥

भाण कहे भटकीय भा, भगी जोने भाई ।  
 समझीने जो सुद गए, तो करने नहीं दाई ।

बोले ए दीजो नहीं, परमेश्वर पोते ।  
अजानी तो आँधछो, अलगो जहने गोते ॥  
एक निरंजन नामज साथे मन लाग्यो छे मारो ।  
गुरु प्रताप साधु नी संगत, आव्यो भवनो आरो ॥  
कूडे कपटे कोइ न राचो, सतमारगाने चाहो ।  
गुरुने बचने ग्यान प्रहीने, नित्य गंगा मां नाहो ॥

घट प्रकासा गुरुगम लाची, चौरासीनो छेड़ो ।  
जेरे देव ने दूर देखता, नजेरे माल्यो नेड़ो ॥  
अनेंत करोड़ पृथ्वी माँ आतम, नजेरे करीने निहालो ॥  
भ्रांति भ्रमणा भवनी भाँगी, शिवे जीव समाणो ॥  
जल ज्ञाँश्वे कोई ना रानो, जूठो जग संसारो ॥  
भाणदास भगवंतने भजिये, जेहि नब मुबन पमारो ॥

## संत रवि साहेब

[ जन्म—संवत् १७९३, स्थान—गुजरात आमादे तालुकमें नण्डा नामक ग्राम । भाणसाहेबके शिष्य । ]

( प्रेषक—साधु दयालदास मंगलदास )

गम निरंजन देव भेद जाँगे शिव शंकर ।  
रात दिवस लब लाय रट्ट रामहि निज अक्षर ॥  
उनहि दिया उपदेश रखा कवहू नहिं शूला ।  
राम नाम इक सार तत्त्व सवही का मूला ॥  
रामा खुवंसी सकल अखिल रूप आनंद है ।  
रविदास एक श्रीनाम विन सकल जगत यह फंद है ॥

जग जीवन जै शब्द श्रिए सब सुषि उपाया ।  
ररा रमता राम ममा निज ब्रह्म की माया ॥  
जीव कहै जै राम नाम से अध तब भागै ।  
भासो शासा रटन स्वपन से सूता जागै ॥  
जै श्रीराम मुख उच्चरै हिय माहीं हेते करी ।  
रविदास नाम कहि चीनहताँ योनि जन्मन आवै करी ॥

## दोहा

नैनहि निरखे राम कुँ, छए नैन के माहि ।  
राम रमत नित दृग्न में, रवि कोउ जानत नाहि ॥  
राम-राम राम रमी रहो, निर्गुन अगुन के रूप ।  
राम-राम रवि एक ही, सुंदर सगुन सरूप ॥

## संत मौजूदीन

[ जाति पठान, कल्ठों भाग सहेदरो गिर्य, मूल पाठी । ]

( प्रेषक—श्रीमद्विलाल दीक्षितराम )

गेया तोहि भावत ना गरांगा, यहि नाम अमीरस गंगा ॥  
हरि गिरुप तेहि और न हेंडू कर्हूं कर्हूं ना संगा ।  
गंगा तिरारे तुडुली उपजत, परत भजन में भंगा ॥  
राजा हुँ तिलाया निरादिन, रिय महि तरै मुरंगा ।  
नाया तोहि क्षेत्र न नोहि यहि भान नहाये गंगा ॥

मर्कट कहा भूत वरियादे, अग्रक तेर तर अंगा ।  
तुरमरिता कहा गज अन्दाये भूति नदाना अंगा ॥  
काढी कमरिया मौर्द ओर चटन न दूढ़ि रंगा ।  
भाणसाहेब गुरु भेद वनाया, मौत मिंद तम्भाया ॥

## संत मोरार साहेब

[ मालाद थगद नामक गायके राजकुमार, रविसाहेबके शिष्य, जन्म—संवत् १९०२, समाधि-स्थान—हंभालिया, सौतू।  
(प्रेषक—साधु दयालदास मंगलदास) ]

मुजरो आय करत मोरार ।

मरनागत सुख सुख अवन

धर आये गरीबनेशाज ॥

अजामील, गज, गनिका तारी

आरत सुनि कं अवाज ।

शृणि की नारि अहल्या तारी

चरन-ररन सुख साज ॥

धना, सेना, मजन कसाई किये सबन के काज ।

ध्याध, गीध, पशु, परधि तारे पतितन के सिरताज ॥

पतीतशबन नेह-निभावन राजत हो रघुराज ।

दास मोरार मौज यह माँगै दीजे अभयपद आज ॥



( प्रेषक—वैद्य श्रीवद्रहीनजी राणपुरी )

गोविद गुण गाथा नहीं, आळस थावी रे अभावी।  
अंतर न टळी अपदा, जुगते न जोयुं जागी॥  
जन्म गयो जंजल माँ, शब्दे लक्ष्य न लागी।  
भजन तैँ भूख्यो रामनुं, मोह ममता नव त्यागी॥  
धन रे जोबन नाँ जोर साँ बोले आँख चढ़ावी।  
संत चरणने सेव्या नहीं, कर्मे उक्खुदि आवी॥  
अखंड ब्रह्मने ओळखो सुंदर सदा रे सोहणी।  
मोरार कहे महापद तो मले, मनबो होय रे बेरागी॥

## संत कादरशाह

[ रवि साहेबके शिष्य । ]

( प्रेषक—श्रीमणिकलाल शंकरलाल राण )

रवि साहेब गुरु सूरमा, काटी भव-जंजीर ।

कादर अपनो जानि के, ले गये भव-जल तीर ॥

यह संसार सूता लो, माथा लगे विषधार ।

कादर कफनी पहिन के, खोजे खेवनहार ॥

तन पै भस्म रमाय के, लिया फकीरी वेश ।

कावा कादर क्या हुआ, कैसे भया दरवेश ॥

हरि-सुमिरण में रँच के, छाँडे जग-जंजाल ।

कादर अब कैसे रहे, भज मन श्रीगोपल ॥

कादर नैना खोलिये, आये खेवनहार ।

पामर ब्रहुपछिताओगे, नैया ढूबे ( गङ्ग ) धार ॥

## संत गंग साहेब

[ खीम साहेबके द्वप्ति, रवि साहेबके शिष्य । ]

( प्रेषक—साधु दयालदास मंगलदास )

आये मेरे औंगन मुकुट मणी ।

जन्म जन्म के पातक छूटे सतगुर शान मुनी ॥

कोटि काम रवि किरणे लाजे ऐसी शोभा वनी ।

कलीकाल के याणे उठाए शून्य शब्द जब धुनी ॥

फलनयन कुपा मुझ पर कीर्ती नैनल लिलि लीनी ।

चित्त चरण से विद्वुत नाहीं देगी आय वनी ॥

गंगदास गुरु किरण कीर्ती मन रथ भाण भरी ।

खीमदास यह शान चताई मिले मोहि पुन धनी ॥

## साईं करीमशा

[ मोरार साहेबके शिष्य । स्थान—कच्छ । ]

( प्रेषक—श्रीमाणिकलाल शंकरलाल राणा )

तेरे अवसरबीत्यो जाय वावरे, दो दिन को मेहमान ॥ टेक ॥  
बड़े बड़े वादशाह देखे, नूरे नज़र बलवान ।  
काल कराल से कौन बचे हैं, मिट गये नाम निशान ॥  
गज धोड़े अरु सेना भारी, नारी रूप की खान ।  
मभी एक दिन न्यारे होकर, जा सोये समसान ॥  
संत शमासाम समझ न जाने, रहे विषय गलतान ।

पचे रहे दिन रात मंद मति, जैसे सूकर स्वान ॥  
इक पल साहेब नाम न लीन्हा, हाथ अभागे जान ।  
पतीतपावन देख पियारे, हो जावे कल्यान ॥  
हरिहर छाँड़ आन कहूँ भटके रे मन मेरे ! मान ।  
साँइ करीमशा साहेबजी से अब तो कर पहचान ॥

## संत बहादुर शा

( प्रेषक—बैद्य श्रीबद्रशील राणपुरी )

अब चौथा पद पाया संतो ॥  
नामि कमल से सुरता चाली सुल्टा इम उलटाया ।  
त्रिकुटि महल की खबर पड़ी जब आमन अधर जमाया ॥  
जाग्रत स्वप्न सुपुसी जाणी तुरिया तार मिलाया ।  
अन्तर अनुभव ताली लागी शून्य मँडल मैं समाया ॥

चाली सुरता चढ़ी गगन पर अनहृद नाद वजाया ।  
रुनझुन रुनझुन हो रणकारा बामै सुरत समाया ।  
देवी देव बहौं कछु नाहीं नहीं धूप नहि छाया ।  
रामदास चरणे भणे बहादुर शा निरख्या अमर अजाया ॥

## संत त्रीकम साहेब

( खीम साहेबके शिष्य । )

[ प्रेषक—साधु दयालदास मंगलदास ]

सनमुख हेरा साहब मंरा ।  
वाहिर देख्या भीतर देख्या देख्या अगम अपारा ॥  
ई तंश माहीं सूफ़ल नाहीं गुरु बिन घोर अँधेरा ।

यह संसार स्वप्न की बाजी तामै चेत सद्वेरा ॥  
आवागमन का केरा ठलिया पल मैं हुआ निरवेरा ।  
त्रीकम संत खीमने चरणे तोड़या जम का जँजीरा ॥

## संत लाल साहब

( प्रेषक—साधु दयालदास मंगलदास )

हरिजन हरि दरवार के, प्रगट करे पोकार ।  
शब्द पारखू लालदास, समझनहार ॥  
नेत ये नेत अचेत कँयूँ औंधरा ! आज अरु काल मैं उठ जार ।

मोह का सोह मैं सार नहीं सुदूर की अंध के धंध मैं जन्म जाइं  
काल कूँ मारकर कुबुधि कूँ रोधकर भरम का कोट कूँ भोग भाइं  
खबर कर खबर कर खोज के नाम कूँ याद कर ध्वन्द तंभाल भाइं

## संत शाह फकीर

ध्यान लगावहु जिपुटी द्वार, गहि सुपरमा विहँगम सह ।  
ऐटि पताल मैं पक्षिम धार, चहि सुमेन भव उत्तरहु पार ॥  
दृष्टि नमल नीहे इम चूसा, अठये चिना एको नहि खूब्हा ।  
शाह फकीर यह तर खंद, सुरति लगाउ जहाँ वह चंद ॥

बलहृद सानहि मनहि लावै, सो भूला प्रभु-लोक सिधावै ।  
झनतादि अनहृद लागै रंग, वरि उटै दीपक बरै पर्तग ॥  
'शाह फकीर' यहाँ समावै, चिक्कवा धानी नदी मिलावै ।  
मनकर्कर्क अति जोर है, मानह नाहीं थीर ।  
कड़ा लगाय दै के पकड़, मचे 'शाह फकीर' ॥

१. सात । २. चिन्द्रधर । ३. कच्छ देशका थोडा ।

## गोस्वामी श्रीहरिरायजी महाराज

**भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र शरण हैं**

सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वतः ।  
पापपीनस्य दैनस्य श्रीकृष्णः शरणं सम ॥ १ ॥

यथा तथा भाग इत्यादि परमात्माकी प्राप्ति करनेवाले  
साधनोंमें रहते, सभी प्रकारसे परतन्व, विविध प्रकारके  
पापोंमें पुष्ट मुक्ष दीनके लिये साधनहीन जीवोंके उद्धारक  
श्रीकृष्ण ही शरण हैं ॥ १ ॥

संसारसुधसम्प्राप्तिसमुद्धस्य विशेषतः ।

द्विर्मुखस्य सततं श्रीकृष्णः शरणं सम ॥ २ ॥

अभिक्तर सांसारिक अनित्य मुखोंकी प्राप्तिके लिये  
ही उच्चोगमें तत्पर, मिथ्या सांसारिक प्रपञ्चोंमें ओतप्रोत  
ही जनेसे बद्य व्याहिर्मुखी प्रवृत्तिवाले मुक्ष दीनके लिये  
निःसाधन जीवोंके समुदर्ता भगवान् श्रीकृष्ण ही शरण हैं ॥ २ ॥

सदा विषयकमस्य देहारमस्य सर्वथा ।

दुष्टस्यभावयामस्य श्रीकृष्णः शरणं सम ॥ ३ ॥

सर्वदा विषयोंकी इच्छा रखनेवाले, नितरां दैहिक मुखमें  
ही आनन्द माननेवाले और कामुकता तथा लुभता  
इत्यादि दुष्ट स्वभावोंसे अत्यन्त कुटिल मुक्ष साधनहीनके  
लिये निःसाधन जीवोंके उद्धार करनेवाले श्रीकृष्ण ही  
शरण हैं ॥ ३ ॥

संसारसर्पदस्य धर्मशृष्टस्य दुर्भाग्यः ।

लौकिकप्राप्तिकर्त्तव्यस्य श्रीकृष्णः शरणं सम ॥ ४ ॥

संसाररूपी सौंपसे डसे हुए, स्वधर्मको नहीं भाननेवाले,  
दुष्टबुद्धि और अनेकों प्रकारके लौकिक पदार्थोंकी प्राप्तिके  
लिये कष्ट उठानेवाले सर्वसाधनहीन मुक्ष दीनके समुदारक  
श्रीकृष्ण ही हैं ॥ ४ ॥

विस्मृतस्तीयधर्मस्य कर्मसोहितचेतसः ।

स्वरूपज्ञनशून्यस्य श्रीकृष्णः शरणं सम ॥ ५ ॥

अपने धर्मको भूल जानेवाले, कर्म-जालसे किंकरत्व-  
विमूढ चित्तवाले, स्वरूपज्ञनसे रहित मुक्ष साधनहीन दीनके  
शरण निःसाधन जीवोंके उद्धारक श्रीकृष्ण ही हैं, अन्य  
नहीं ॥ ५ ॥

संसारसिन्दुमरनस्य भगवावस्य दुष्कृतेः ।

दुर्भावलग्नमनसः श्रीकृष्णः शरणं सम ॥ ६ ॥

संसाररूपी अगाध समुद्रमें झूंके हुए, नष्ट सद्भावन  
वाले (प्रभुप्रेम-विहीन), दुष्कर्मकारी, बुरी भावनाओं  
संसक्त अन्तःकरणवाले सर्वसाधनहीन मुक्ष दीनके निःसाधन  
जीवोंके समुदर्ता श्रीकृष्ण ही शरण हैं ॥ ६ ॥

विवेकधैर्यमक्त्यादिरहितस्य निरन्तरम् ।

विरुद्धकरणासक्तेः श्रीकृष्णः शरणं सम ॥ ७ ॥

विवेक, धैर्य और भक्ति इत्यादि परमात्माकी प्राप्ति  
करनेवाले कार्योंसे सर्वथा रहित तथा निरन्तर परमात्माकी  
प्राप्तिके बाधक अनुचित कार्योंमें तत्पर सर्वसाधनहीन मुक्ष  
दीनके शरण श्रीकृष्ण ही हैं, जो साधनहीन अनेकों जीवोंका  
उद्धार किया करते हैं ॥ ७ ॥

विषयाकान्तदेहस्य वैमुख्यहतसम्मतेः ।

द्विन्द्रियाश्वरुहीतस्य श्रीकृष्णः शरणं सम ॥ ८ ॥

कामादि विषयोंसे अभिमूल वारीरवाले, परमात्माकी ओर  
से विमुख होनेके कारण शुभ बुद्धिको गँवा देनेवाले, द्विन्द्रिय-  
स्पी दुष्ट श्रीडाम्बोंके अधीन हो जानेवाले, सर्वसाधनहीन मुक्ष  
दीनके शरण निःसाधन जीवोंके समुदारक भगवान् श्री-  
कृष्ण ही हैं ॥ ८ ॥

एतदृष्टकर्षणे द्वेषदुक्तार्थभावनात् ।

निजाचार्यपदाम्भोजसेवको दैन्यमान्युयात् ॥ ९ ॥

इस श्रीकृष्ण-शरणाष्टकके पाठ करनेसे तथा इस अष्टक-  
में कहे हुए अयोक्ता ध्यानपूर्वक मनन करनेसे अपने आनंद  
श्रीमहाप्रभुजीके चरणकर्मलोंका उपासक दीनताको प्राप्त  
करता है, जिस दीनताके प्राप्त हो जानेपर वह भगवान् श्री  
शरणमें जाना है और वे प्रसन्न होकर उस भक्तकी आत्मा  
लेते हैं। इसलिये दीनतापूर्वक प्रभुकी शरणमें जाना ही इस  
अष्टकका प्रधान उद्देश्य है ॥ ९ ॥

**भगवान् श्रीनवनीतप्रियजीका स्ववन**

अलकावृतजसदलिङ्के विरचितकस्तुरिकातिलिङ्के ।

चपलघयोदावाले शोभितभाले मतिमेऽस्तु ॥ १ ॥

द्वृष्टवाले बालोंसे आच्छादित, अस्यन्त सुन्दर रीतिये  
किये हुए कस्तूरीके तिलकसे विभूषित रमणीय लकडागांवे  
श्रीयशोदाजीके चलक चलक श्रीकृष्णमें मेरी वुदि ॥ १ ॥  
स्थिर रहे ॥ १ ॥

मुखरितन्दुपुरचरणे कटिबद्धकुदधणिकाभरणे ।  
दीपिकरजकृतभूषणभूषितहृष्टे मतिर्मेऽस्तु ॥ २ ॥

मधुर शब्द करनेवाले न् पुरोंसे सुशोभितचरण, कमरमें  
वैँधी हुई क्षुद्रधणिकाओं ( छोटे-छोटे हुँघरुओंसे युक्त मेलला )  
में विभृषित वस्त्रवाले, वाघ-नक्षरे बनाये हुए आभरणोंको  
हृदयपर धारण करनेवाले श्रीकृष्णमें मेरी बुद्धि स्थिर हो ॥ २ ॥

करकृतनवनवनीते हितकृतजननीविभीषिकाभीते ।

रतिसुद्वहताच्छेतो गोपीभिर्दृथतां नीते ॥ ३ ॥

ताजे मालुनको करकमलोंमें धारण करनेवाले, सदा  
हित-बुद्धिसे दी हुई माता श्रीयशोदाजीकी ढाँटसे डरे हुए और  
गोपिकाओंद्वारा वक्षमें किये हुए श्रीकृष्णमें मेरा चित्त प्रेम  
धारण करे ॥ ३ ॥

यालदशाभिमुखे वोरितदुग्धे वजाङ्गनाभवनात् ।

तदुपालम्भवचोभविभ्रमनयने मतिर्मेऽस्तु ॥ ४ ॥

वाल्यावस्थाकी बुद्धि तथा चञ्चलता इत्यादिसे अत्यन्त  
मनोहर लगनेवाले, भज-गोपियोंके घरसे दूध चुरा लेनेवाले,  
गोपियोंके उलाहनोंके भयसे व्याकुल ( भयभीत )-नयन श्री-  
कृष्णमें मेरी बुद्धि स्थिर हो ॥ ४ ॥

प्रजकर्दमलिसाङ्गे स्वरूपसुषमा जितानङ्गे ।

कृतनन्दाङ्गरिक्षणविविधविहृषे मतिर्मेऽस्तु ॥ ५ ॥

प्रजके वीचड़से लथपथ शरीरवाले, अपने शरीरकी  
मनोहरताते कामदेवको जीत लेनेवाले अर्थात् अद्वितीय  
योन्दर्यशाली, श्रीनन्दजी महाराजके आँगनमें अनेकों प्रकार-  
नी गतिसे बाललीला करनेवाले श्रीनन्दननन्दनमें मेरी बुद्धि  
स्थिर हो ॥ ५ ॥

फरवरधृतलघुलकुटे विचित्रमायूरचन्द्रिकामुकुटे ।

गासागतमुक्तामणिजटितविभूषे मतिर्मेऽस्तु ॥ ६ ॥

मनोहर दाखमे सुन्दर तथा छोटी लकुटियाको  
पारण परनेवाले, मोरपिञ्जकी निव-विचित्र चन्द्रिकाओंसे  
वराये हुए सुकुटको पारण करनेवाले, मोती और मणियोंसे  
जो हुए नक्केसरको नासिकामें धारण करनेवाले  
श्रीनन्दनितोर्में मेरी बुद्धि स्थिर हो ॥ ६ ॥

नभिनन्दगृहतमृषे विरचितनिगगोपिकामुख्ये ।

श्रीनन्दतमितभृत्ये प्राप्तसन्मुदिते मतिर्मेऽस्तु ॥ ७ ॥

श्रीनन्दन तिये जानेपर सुख करनेवालेपर, अपनी  
प्रसादी गोपितामें गोटे-मोटे गँभी प्रकारके काम कर-

देनेवाले, अपने सेवकोंको अनेक प्रकारकी लीलाओंका  
आस्वादन कराकर आनन्दमय कर देनेवाले तथा अधिक  
हास्यसे आनन्दित होनेवाले श्रीकृष्णमें मेरी मति  
स्थिर रहे ॥ ७ ॥

कामादपि कमनीये नमनीये ब्रह्मरुद्राद्यैः ।

निःसाधनभजनीये भावतनौ मे मतिर्भूयात् ॥ ८ ॥

कामदेवसे भी परम सुन्दर ब्रह्मा और सद् इत्यादिसे  
भी नमस्कार करने योग्य, साधनहीन मनुष्योंद्वारा भी भजने  
योग्य, भावनालूपी श्रीअङ्गवाले श्रीनन्दननन्दनमें मेरी बुद्धि  
हुई हो ॥ ८ ॥

### चौरासी अमृत-चचन

१-भगवदीय वैष्णव सदैव मनमें प्रसन्न रहे ।  
अमङ्गलरूप, उदास न रहे ।

२-श्रीभगवान्के मन्दिरमें नित्य नृत्न उस्तव मनाये ।

३-अपने ठाकुरजीकी सेवा दूसरोंके भरोसे न रखते ।  
अपने मस्तकपर जो सेव्य स्वरूप विराजमान हो, उसकी सेवा  
हाथसे करनी चाहिये ।

४-किसीसे विरोध नहीं रखना । सबके साथ मधुर  
चचन बोलना ।

५-विषय और तृष्णाका परित्याग करना ।

६-प्रभुकी सेवा भयसहित एवं स्नेह रखकर करनी  
चाहिये ।

७-अपने देहको अनित्य समझना ।

८-वैष्णवके सत्सङ्गमें रहना ।

९-भगवत्स्वरूपमें और भगवदीय वैष्णवोंमें सख्यभाव  
रखना ।

१०-अपनी बुद्धिको स्थिर रखना । बुद्धिको विचलित  
न करना ।

११-श्रीभगवान्के दर्शनमें आलस्य नहीं करना ।

१२-भगवान्के दर्शनमें आलस्य रखते तो आमुरी-  
भाव उत्पन्न हो ।

१३-जहाँतक सम्भव हो, प्रसाद कम लेना ।

१४-वैष्णवको चाहिये कि अधिक निद्रा न ले ।

१५-भगवदीयके पास स्थं चलकर जाना चाहिये ।

१६-कितीके ऊपर कोध नहीं करना । कोध करनेपर  
हृदयमेंसे भगवदादेश चला जाता है ।

- १७—जहोपर म्यधगंके विरुद्ध नन्ही देती हो, वहाँ  
मैन रहना ।
- १८—अवैष्णवका गङ्गा न करना ।
- १९—श्रीप्रभुकी सेवामें अवैष्णवको शामिल न करना ।  
भगवदीयकी सेवाका भी ध्यान रखना ।
- २०—सब समयमें धैर्य रखना ।
- २१—मन क्षिप्रग्रुहे जगणारन्तिमे रावकर सांसारिक  
कार्य फरते रहना ।
- २२—भगवदीयके साथ नूसन स्नेहभाव रखना ।
- २३—सेवाके अवसरमें प्रलाप न करना ।
- २४—सेवा अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक करनी चाहिये ।
- २५—श्रीप्रभुकी सेवा करके उनसे किसी भी वस्तुकी  
याचना नहीं करना ।
- २६—श्रीठाकुरजीके नामसे जो वस्तु लायी जाय, उसको  
प्रथम श्रीठाकुरजीको अङ्गीकार करना, तदनन्तर ग्रसादरूपमें  
उसका उपयोग करना ।
- २७—मनमें भगवदीयोंके ग्रन्ति दास-भाव रखना ।
- २८—किसी भी प्रकार भगवदीयसे ह्रेष्मभाव नहीं  
रखना ।
- २९—श्रीठाकुरजीके किसी उत्सवको न छोड़ना ।
- ३०—भगवदीयका सत्सङ्ग-सरण करना ।
- ३१—मार्गकी रीतिके अनुसार प्रभुकी सेवा करना ।
- ३२—भगवदीयमें छुल-छिद्र न देखना ।
- ३३—नवीन वस्तु जो प्राप्त हो, उसको श्रीठाकुरजीकी  
माध्यमें अवश्य धरना ।
- ३४—लौकिक प्रिय वस्तु प्राप्त हो जानेपर हर्षित  
न होना ।
- ३५—लौकिक कुछ हानि हो जाय तो अन्तःकरणमें  
उसका शोक नहीं करना ।
- ३६—सुख-दुःखको समान समझना ।
- ३७—भगवद्वार्ता नित्य नियमपूर्वक करना ।
- ३८—श्रीसर्वोत्तमजीका पाठ नित्य करना । पुष्टिमार्गीय  
वैष्णवोंके लिये यह पाठ गायत्रीके समान है ।
- ३९—श्रीयमुनाष्टक प्रभृति ग्रन्थोंका पाठ नित्य नियम-  
पूर्वक करना ।
- ४०—मुख्य चार जयन्तीका व्रत और एकादशीका व्रत  
अवश्य करना ।
- ४१—श्रीठाकुरजीके लिये सामग्री पवित्रतासे किन्द्र करना ।
- ४२—असमर्पित कोई भी वस्तु नहीं लेनी ।
- ४३—मनको उदार रखना ।
- ४४—सबके साथ मित्रता रखना ।
- ४५—स्वधर्म-सम्बन्धी कायेंमें तन, मन और धर्म  
सहायता करना ।
- ४६—अहंता-ममताका त्याग करना ।
- ४७—सदैव क्षमापरायण रहना ।
- ४८—जो कुछ प्राप्त हो जाय, उसीमें संतोष रखना ।
- ४९—वाहर और भीतरकी शुद्धता रखना ।
- ५०—आलस्यरहित रहना ।
- ५१—किसीका पक्षपात नहीं करना अर्थात् न्याय  
परायण रहना ।
- ५२—सब प्रकारके लौकिक भोगोंका त्याग करना ।
- ५३—मनमें किसी बातकी इच्छा न करनी ।
- ५४—सहजमें जो कुछ प्राप्त हो जाय, उससे अपना  
काम चलाना ।
- ५५—किसी वस्तुमें आसक्त न रहना ।
- ५६—शत्रु और मित्रमें समान बुद्धि रखनी ।
- ५७—असत्य-भाषण न करना ।
- ५८—किसीका अपमान न करना ।
- ५९—निन्दा और स्तुतिको समान समझना ।
- ६०—स्थिरता रखना । अपने चित्तको वशमें रखना ।
- ६१—इन्द्रियोंके विषयमें प्रीति न रखना ।
- ६२—स्त्री, पुत्र, गृहादिमें आसक्ति नहीं रखनी ।
- ६३—स्त्री, पुत्रादिके सुख-दुःखको अपना न मानना ।
- ६४—मनमें किसी बातका गर्व न करना ।
- ६५—आर्जव रखना अर्थात् कुटिलतारहित रहना ।
- ६६—मिथ्याभाषण न करना ।
- ६७—सदैव सत्य-सम्भाषण करना ।
- ६८—शान्त चित्त रखना ।
- ६९—प्राणीमात्रके ऊपर दया रखनी ।
- ७०—एकाग्रचित्तते प्रभुकी सेवा करनी ।
- ७१—अन्तःकरण कोमल रखना ।
- ७२—निन्दित वर्य कदापि न करना ।
- ७३—कोई अपना अपराध करे तो उसके द्वारा  
क्षमा करना ।
- ७४—महापुरुषोंके चरित्र पढ़ना ।
- ७५—अपने मनमें किसी बातका अभिमान नहीं रखना ।

७६—जिस व्रातसे दूसरे के मनको दुःख हो, ऐसा व्रतने विधा नहीं बोलना।

७७—जो सत्य हो और सुननेवालोंको प्रिय लगे, ऐसा ही चन बोलना।

७८—पुष्टोत्तमसहतनाम तथा श्रीमहाप्रसुजीरचित् न्योंका पाठ अवश्य करना।

७९—जो कर्म करना, उसके फलकी इच्छा मनमें हीं रखनी।

८०—श्रीटाकुरजीकी सेवा और कीर्तनको फलरूप मानना।

८१—दैषवमण्डलीमें नित्य नियमपूर्वक जाना। निश्चक होकर कथा-नार्ता कहना और सुनना।

८२—अन्याशय कदापि न करना। अन्याशय बाधक है। उससे सदैव डरते रहना।

८३—श्रीप्रसुके शरणागत होकर रहना। अन्य देवतासे किसी प्रकारके फलकी इच्छा न रखना।

८४—श्रीआचार्य महाप्रभुजी, श्रीगुरुसाईजी और आपके वंशजोंके समान अन्यको न समझना। उनके समान अन्यको समझना अपराध है और अपने उद्धरमें अन्तराय होता है।

## श्रीरामकृष्ण परमहंस

(जन्म—२० फरवरी सन् २८३३ ई० श्वान—जिला हुगली। ग्राम—कामारपुर, बंगाल। पिताका नाम—श्रीखुदीराम चट्टोपाध्याय। माताका नाम—श्रीचन्द्रमणि देवी। शुरुका नाम—श्रीतोत्तमपुरीजी महाराज। देहावसान—१६ अगस्त सन् १८८६ ई०)

वाद-विवाद न करो। जिस प्रकार तुम अपने धर्म और विश्वासपर दृढ़ रखते हो, उसी प्रकार दूसरोंको भी अपने धर्म और विश्वासपर दृढ़ रहनेका पूरा अवसर हो। केवल वाद-विवादसे तुम दूसरोंको उनकी गलती न समझ सकोगे। परमात्माकी कृपा होनेपर ही प्रत्येक मनुष्य अपनी गलती समझेगा।

X X X X

एक बार एक महात्मा नगरमें से होकर कहीं जा रहे थे। संयोगसे उनके पैरसे एक दुष्ट आदमीका अँगूठा कुचल गया। उनने कोधित होकर महात्माजीको इतना मारा कि वे बैचारे मर्मूर्ति होकर जमीनपर मिर पड़े। बहुत दबादबा करके उनके बेले बड़ी कठिनतासे उन्हें होशमें लाये। तब तो एक बेलेने महात्मा से पूछा, 'यह कौन आपकी सेवा कर रहा है?' महात्मा उत्तर दिया, 'जिसने मुझे पीटा था।' एक सच्चे साधुको मित्र और शत्रुमें भेद नहीं मालूम होता।

X X X X

यह सन है कि परमात्माका वास व्याघ्रमें भी है, परंतु उग्रों पास जाना उचित नहीं। उसी प्रकार यह भी टीक है कि परमात्मा दुष्टोंमें विद्यमान है, परंतु उसका सज्ज करना उचित नहीं।

X X X X

एक गुरुजीने अपने बेलेको उपदेश दिया कि संसारमें जो दुष्ट भी है, वह सब परमेश्वर ही है। भीतरी

मतल्बको न समझकर चेलेने उसका अर्थ अक्षरशः लगाया। एक समय जब वह मरु

होकर सहकर जा रहा था कि सामनेसे एक हाथी आता दिखलायी पड़ा। महावतने चिल्ला-

कर कहा, 'हट जाओ, हट जाओ।' परंतु उस लड़केने एक न सुनी। उसने

सोचा कि मैं ईश्वर हूँ और हाथी भी ईश्वर

है। ईश्वरको ईश्वरसे किस बातका डर। इतनेमें हाथीने सूँडसे एक ऐसी चंपेट मारी कि वह एक कोतेमें जा गिरा। थोड़ी देर आद किसी प्रकार संभलकर उठा और गुरुके पास जाकर उसने सब हाल सुनाया। गुरुजीने इँसकर कहा 'ठीक है, तुम ईश्वर हो और हाथी भी ईश्वर है, परंतु जो परमात्मा महावतके रूपमें हाथीपर बैठा तुम्हें सावधान कर रहा था, तुमने उसके कहनेको क्यों नहीं माना?'

X X X X

एक किसान ऊसके खेतमें दिनभर पानी भरता था, किन्तु साथेकाल जब देखता, तब उसमें पानीका एक सूँड भी दिखलायी नहीं पड़ता था। सब पानी अनेकों छिप्पेद्वारा बर जाता था। उसी प्रकार जो भक्त अपने सनसे कीर्ति, मुख, समर्पण, पद्मी आदि विषयोंकी चिन्ता करता हुआ ईश्वरकी पूजा करता है, वह परमात्मके मार्गमें कुछ भी उन्मत्ति नहीं कर सकता। उसकी सारी पूजा वासनास्त्री विलोद्वारा वह जाती है और जन्मभर पूजा करनेके अनन्त

यह देखता है कि जैसी शाल मेरी पढ़ते थे, वैसी ही अवभी है, उससे कुछ नहीं हुई है।

X X X X

हरि जब सिंहका नेहरा अपने मुँहमें लगा लेता है, तब वह भयंकर दिल्लायी पड़ता है। उसको लगाये हुए वह अपनी छोटी बहिनके पास जाता है और दहाड़ भारकर उसे दराता है। वह धनराकर एकदम जोरसे चिल्लने लगती है और सोचती है कि 'अरे! अब तो मैं भाग नहीं सकती, यह दुष्ट तो मुझे ला ही जायगा।' किंतु हरि जब सिंहका नेहरा उतार दलता है, तब बहिन अपने भाईको पहचान लेती है और उसके पास जाकर प्रेमसे कहती है, 'अरे, यह तो मेरा प्यारा भाई है।' यही दशा संलग्नके मनुष्योंकी भी है। वे मायाके शूटे जालमें पढ़कर धनराते और डरते हैं; किंतु मायाके जालको काटकर जब वे ब्रह्मके दर्शन कर लेते हैं, तब उनकी धनराहट और उनका डर छूट जाता है। उनका चिन शान्त हो जाता है। और तब परमात्माको वे हीवा न समस्कर अपनी प्यारी आत्मा समझने लगते हैं।

X X X X

यारी और उसका बुलबुला एक ही चीज़ है। बुलबुला पानीसे बनता है और पानीमें तैरता है तथा अन्तमें पूटकर पानीमें ही मिल जाता है; उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा एक ही चीज़ है। ऐद केवल इतना ही है कि एक छोटा होनेसे परिमित है और दूसरा अनन्त है; एक परतन्त्र है और दूसरा स्वतन्त्र है।

X X X X

रेलगाड़ीका इंजन बेगके साथ चलकर ठिकनेपर अकेला ही नहीं पहुँचता, बल्कि अपने साथ-साथ बहुत-से डिव्होंको भी भी सौंच-खींचकर पहुँचा देता है। यही हाल अवतारोंका भी है। पापके बोझसे दूरे हुए अनन्त मनुष्योंको वे ईश्वरके पास पहुँचा देते हैं।

X X X X

राजहंस दूध पी लेता है और पानी छोड़ देता है। दूसरे पक्षी ऐसा नहीं कर सकते। उसी प्रकार साधारण पुरुष मायाके जालमें फँसकर परमात्माको नहीं देख सकते। केवल परमहंस ही मायाको छोड़कर परमात्माके दर्शन पाकर दैवी-सुखका अनुभव करते हैं।

X X X X

दूसरोंकी हत्या करनेके लिये तत्त्वावार और दूसरे शर्षोंकी

आवश्यकता होती है, किंतु अपनी हत्या का आल्यान ही काफी है; उसी प्रकार दूसरोंको लिये बहुत-से धर्म-ग्रन्थों और शालोंको पढ़ने हैं, किंतु आत्मज्ञानके लिये एक ही महावाङ्मय करना काफी है।

X X X

जब हाथी खुल जाता है, तब वह बृक्षों और उखाड़कर फँक देता है; लेकिन महाबत जब उ अंकुरा मार देता है, तब वह तुरंत ही शान्त हो गयी हाल अनियन्त्रित मनका है। जब आप उ छोड़ देते हैं, तब वह आगोद-प्रमोदके निस्सा दौड़ने लगता है; लेकिन विवेकरूपी अंकुराकी मार उसे रोकते हैं, तब वह शान्त हो जाता है।

X X X X

जितको एकाग्र करनेके लिये तालियाँ जब का नाम जोर-जोरसे लो। जित प्रकार वृक्षके नीचे बजानेसे उसपर बैठे हुए पक्षी इधर-उधर उड़ जाते प्रकार तालियाँ बजा-बजाकर हरि (ईश्वर) का नाम कुसित बिनारे मनसे भाग जाते हैं।

X X X X

जबतक हरि (ईश्वर) का नाम लेते ही आन वहने लो, तबतक उपासनाकी आवश्यकता है। इन नाम लेते ही जिसकी अँखोंसे अशुद्धारा वहने लगती है उपासनाकी आवश्यकता नहीं है।

X X X X

एक लकड़हारा जंगलमी लकड़ी बेचनेवालर ये कष्टपूर्वक अपना जीवनशापन कर रहा था। अफसाना मार्पिसे एक संन्यासी जा रहे थे। उन्होंने लकड़हारके उँगली देखकर उससे कहा—'वेदा। जंगलमें और आगे व तुमको लायम होनेवाला है।' लकड़हारा आगे बढ़ा। उसे एक चन्दनका वृक्ष मिला। उसने बहुत-सी लड्डि काट लीं और उसे ले जाकर बाजारमें केला। इसी उन्होंने काट लीं और उसे ले जाकर बाजारमें केला। इसी उन्होंने बहुत लाभ हुआ। उसने सोचा—मैंन्यासीने चन्दनके वृक्ष बहुत लाभ हुआ। इतना ही कहा कहा कि 'और आगे वायामें नहीं किया? इतना ही कहा कहा कि 'और आगे वाया'। दूसरे दिन जंगलमें और आगे बढ़ा तब उन्हें तर्सने एक लात मिली। उसने मन-मान ताँचा निपाला और बाजारमें बेचकर बप्पा प्राप्त किया। तीसरे दिन पक्ष और बाजारमें बेचकर बप्पा प्राप्त किया।

आगे बढ़ा और उसे एक चाँदीकी खान मिली। उसने उसमें मनमानी चाँदी निकाली और बाजारमें बेचकर और अधिक रुपया प्राप्त किया। वह और आगे बढ़ा, उसे सोने और हीरेकी खाने मिलीं। अन्तमें वह बड़ा धनवान् हो गया। ऐसा ही हाल उन लोगोंका है, जिन्हें ज्ञान प्राप्त करनेकी अभिलाप्ति होती है। थोड़ी-सी सिद्धि प्राप्त करनेपर वे रुकते नहीं, बराबर बढ़ते जाते हैं। अन्तमें लकड़िहारेकी तरह ज्ञानका कोप पाकर आध्यात्मिक धेत्रमें वे धनवान् हो जाते हैं।

X X X X

एक छोटे पौधेकी रक्षा उसके चारों ओर तार बाँधकर करनी पड़ती है। नहीं तो बकरे, गाय और छोटे बच्चे उसे नष्ट कर डालते हैं; किंतु जब वह एक बड़ा वृक्ष बन जाता है, तब अनेकों बकरियाँ और गायें स्वच्छन्दताके साथ उसीके नीचे विभ्राम करती हैं और उसकी पत्तियाँ खाती हैं। उसी प्रकार जवतक तुममें थोड़ी भक्ति है तबतक बुरी संगति और संसारके प्राप्तचरोंसे उसकी रक्षा करनी चाहिये। लेकिन जब उसमें दृढ़ता आ गयी, तब फिर तुम्हारे सामने कुछासनाऊओंको आनेकी हिम्मत न होगी और अनेकों दुर्जन तुम्हारे पवित्र सहवाससे सज्जन बन जायेंगे।

X X X X

चकमक पथर चाहे सैकड़ों वर्ष पानीमें पड़ा रहे, पर उसकी अभि-उत्सादक शक्ति नष्ट नहीं होती। जब आपका जी चाहे तारी उसे लोहेसे रगड़िये, वह आग उगलने लगेगा। ऐसा ही हाल दृढ़ भक्ति रखनेवाले भक्तोंका भी है। वे संसारके दुर्देश-दुर्देराणियोंके दीचमें भले ही रहें, लेकिन उनकी भक्ति कभी नष्ट नहीं हो सकती। ज्यों ही वे ईश्वरका नाम सुनते हैं, त्यों ही उनका हृदय प्रकुल्लित होने लगता है।

X X X X

एक मनुष्यने कुओं सोदना शुरू किया। वीस हाथ सोदनेपर जब उसे सोता नहीं मिला, तब उसने उसे छोड़ दिया और दूसरी जगह कुओं सोदने लगा। वहाँ उसने कुछ अधिक गहरातक सोदा किंतु वहाँ भी पानी न मिला। उसमें फिर तीमरी जगह कुओं सोदना शुरू किया। इसको उगने और अधिक गहरातक सोदा, किंतु यहाँ भी पानी न मिला। तीनों कुओंकी खुदाई १०० हाथसे कुछ ही कम दूर होगी। यदि पहले ही कुएँको वह केवल ५० हाथ धीरता-

के साथ लोदता तो उसे पानी अवश्य मिल जाता। यही हाल उन लोगोंका है, जो बराबर अपनी श्रद्धा बदलते रहते हैं। सफलता प्राप्त करनेके लिये सब औरसे चित्त हटाकर केवल एक ही और अपनी श्रद्धा लगानी चाहिये और उसकी सफलतापर विश्वास करना चाहिये।

X X X X

पानीमें पथर सैकड़ों वर्ष पड़ा रहे, लेकिन पानी उसके भीतर नहीं बुस सकता; इसके विपरीत चिकनी मिडी पानीके स्पर्शसे ही छुल्ने लगती है। इसी प्रकार भक्तोंका दृढ़ हृदय कठिन-से-कठिन दुश्य पड़नेपर भी कभी निराश नहीं होता, लेकिन दुर्बल श्रद्धा रखनेवाले पुरुषोंका हृदय छोटी-छोटी बातोंसे हताश होकर बराने लगता है।

X X X X

ईश्वरपर पूर्ण निर्भर रहनेका स्वरूप क्या है? यह आनन्दकी वह दशा है, जिसका अनुभव एक पुरुष द्विन्भर परिश्रमके पश्चात् साथकालको तकियेके सहारे लेटकर आराम करते समय करता है। चिन्ताओं और दुश्योंका रुक्ष जाना ही ईश्वरपर पूर्ण निर्भर रहनेका सच्चा स्वरूप है।

X X X X

जिस प्रकार हवा सूखी पत्तियोंको ईधर-उधर उड़ा ले जाती है, उनको ईधर-उधर उड़नेके लिये न तो अपनी त्रुदि खर्च करनेकी आवश्यकता पड़ती है और न परिश्रम ही करना पड़ता है, उसी प्रकार ईश्वरके भक्त ईश्वरकी ईच्छासे सब काम करते रहते हैं, वे अपनी अक्ल खर्च नहीं करते और न स्वयं श्रम ही करते हैं।

X X X X

बहुतोंने वर्फका केवल नाम सुना है लेकिन उसे देखा नहीं है। उसी प्रकार बहुत-से धर्मोपदेशकोंने ईश्वरके गुणोंको धर्म-ग्रन्थोंमें पढ़ा है, लेकिन अपने जीवनमें उनका अनुभव नहीं किया। बहुतोंने वर्फको देखा है लेकिन उसका स्वाद नहीं लिया, उसी प्रकार बहुत-से धर्मोपदेशकोंको ईश्वरके तेज़-की एक बृद्ध मिल गयी है लेकिन उन्होंने उसके तत्त्वको नहीं समझा। जिन्होंने वर्फको जाया है, वे ही उसका स्वाद वतला सकते हैं। उसी प्रकार जिन्होंने ईश्वरकी संगतिका लाभ मित्र-भित्र अवस्थाओंमें उठाया है, कभी ईश्वरका सेवक बनकर, कभी मित्र बनकर, कभी भक्त बनकर और कभी एकदम उसीमें लीन होकर, वे ही वतला सकते हैं कि

परमोप्यके रुण क्या है और उनकी संगतिके प्रेमरसको आश्वादन करनेमें कौमा आनन्द मिलता है।

X X X X

शारीक दो तरहके दाँत होते हैं, एक दिखलानेके और दूसरे भागेके। उसी प्रकार श्रीकृष्ण आदि अवतारी पुरुष और दूसरे महात्मा याधवाण पुरुषोंकी तरह काम करते हुए दूररोमें दिव्यवायी पड़ते हैं, परंतु उनकी आत्माएँ वास्तवमें यमोंसे नुक्त रहकर निजस्वरूपमें विश्राम करती रहती हैं।

X X X X

एक ब्राह्मण और एक संन्यासी सांसारिक और धार्मिक विचारोंपर चातचीत करनेलगे। संन्यासीने ब्राह्मणसे कहा, 'वृद्धा ! इस संगारमें कोई किसीका नहीं है।' ब्राह्मण इसको कही भान सकता था। वह तो यही समझता था कि 'अरे मैं तो दिन-रात अपने कुदुम्बके लोगोंके लिये मर रहा हूँ। क्या ये मेरी सहायता समयपर न करेंगे ? ऐसा कभी नहीं हो सकता।' उसने संन्यासीसे कहा, 'महाराज ! जब मेरे सिरमें योड़ी-सी पीड़ा होती है तो मेरी माँको बड़ा दुःख होता है और दिन-रात वह चिन्ता करती है; क्योंकि वह मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यार करती है। प्रायः वह कहा करती है कि भैयाके सिरकी पीड़ा अच्छी करनेके लिये मैं अपने प्राणतक देनेको तैयार हूँ। ऐसी माँ समय पड़नेपर मेरी सहायता न करे, वह कभी नहीं हो सकता।' संन्यासीने जबाब दिया, 'यदि ऐसी बात है तो तुम्हें वास्तवमें अपनी माँपर भरोसा करना चाहिये, लेकिन मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि तुम बड़ी भूल कर रहे हो। इस बातका कभी भी विश्वास न करो कि तुम्हारी माँ, तुम्हारी छोटी या तुम्हारे लड़के तुम्हारे लिये प्राणोंका बलिदान कर देंगे। तुम चाहो तो परीक्षा कर सकते हो। घर जाकर पेटकी पीड़ाका बहाना करो और जोर-जोरसे चिन्हाओं। मैं आकर तुमको एक तमाशा दिखाकँगा।' ब्राह्मणके मनमें परीक्षा करनेकी लालसा हुई, उसने घेठ-दर्दका बहाना किया। डाक्टर, वैद्य, हकीम तथा वृद्धोंसे गये, लेकिन दर्द नहीं मिटा। बीमारकी माँ, खी सब बुलाये गये, लेकिन दर्द नहीं मिटा। बीमारकी माँ, और लड़के सभी बहुत ही दुखी थे। इतनेमें संन्यासी महाराज भी पहुँच गये। उन्होंने कहा, 'बीमारी तो बड़ी गहरी है, जबतक बीमारके लिये कोई अपनी जान न दे तबतक वह अच्छा नहीं होनेका।'

इसपर सब भौचक्के हो गये। संन्यासीने माँसे कहा,

'बृद्धी माता ! तुम्हारे लिये जीवित रहता और मरता हों एक समान है, इसलिये यदि तुम अपने कमाऊ पूतके लिये अपने प्राण दे दो तो मैं इसे अच्छा कर सकता हूँ। अर तुम माँ होकर भी अपने प्राण नहीं दे सकती तो मैं अपने प्राण दूसरा कौन देगा ?'

बुद्धिया ल्ली रोकर कहने लगी—'ब्राह्मणी ! आपका कहना तो सत्य है। मैं अपने प्यारे पुत्रके लिये प्राण देनेसे तैयार हूँ, लेकिन ख्याल यही है कि ये छोटे-छोटे बच्चे मुझे बहुत लगे हैं, मेरे मरनेपर इनको बड़ा दुःख होगा। अरे मैं बड़ी अभागिनी हूँ कि अपने बच्चेके लिये अपने प्राणतक नहीं दे सकती।' इतनेमें ल्ली भी अपने सास-सुसुखी और देखकर बोल उठी, 'माँ ! तुमलोगोंकी बुद्धिया देखकर मैं भी अपने प्राण नहीं दे सकती।' संन्यासीने घूमकर रुसीसे कहा, 'पुत्री ! तुम्हारी माँ तो पीछे हट गयी लेकिन तुम तो अपने प्यारे पतिके लिये अपनी जान दे सकती हो।' उसने उत्तर दिया, 'महाराज ! मैं बड़ी अभागिनी हूँ, मेरे मरनेसे मेरे ये मा-बाप मर जायेंगे, इसलिये मैं यह हत्या नहीं ले सकती।' इस प्रकार सब लोग प्राण देनेके लिये बहाना करने लगे। तब संन्यासीने रोगीसे कहा—'क्यों जी, देखते हो न, कोई तुम्हारे लिये प्राण देनेसे तैयार नहीं है।' मेरे इस बहनेका मतलब अब तुम समझे कि नहीं। ब्राह्मणने जब यह हल देखा तो वह भी कुदुम्बको छोड़कर संन्यासीके साथ कानों चल दिया।

X X X X

लोहा जबतक तपाथा जाता है, तबतक लाल रहता है; लेकिन जब बाहर निकाल लिया जाता है, तब काल पड़ जाता है। यही दशा सांसारिक मनुष्योंकी भी है। जबतक वे मन्दिरोंमें अथवा अच्छी संगतिमें बैठते हैं, तबतक उनमें धार्मिक विचार भी रहते हैं; किंतु जब वे उनसे अलग हो जाते हैं, तब वे किर धार्मिक विचारोंको भूल जाते हैं।

X X X X

बालकके हृदयका प्रेम पूर्ण और अलप्प होता है। जब उसका विवाह हो जाता है, तब आधा प्रेम उसका दूसरा भाग हो जाता है तो की ओर लग जाता है। किर जब उसके बच्चे हो जाते हैं तो चौथाई प्रेम उन बच्चोंकी ओर लग जाता है। बच्चा पृथ्वी-चौथाई प्रेम पिता, माता, मान, कीर्ति, यथा और अभिमान-

बँटा रहता है। ईश्वरकी ओर ल्यानेके लिये उसके पास म बचता ही नहीं। अतएव बालकपनसे ही मनुष्यका स्वप्न प्रेम ईश्वरकी ओर लगाया जाय तो वह उसपर प्रेम लगा सकता है और उसे ( ईश्वरको ) प्राप्त भी कर सकता। बड़े होनेपर ईश्वरकी ओर प्रेम लगाना कठिन हो जाता है।

X X X X

यहके दाने जब बँधी हुई पोटलीसे नीचे छितरा जाते हैं, तब उसका इकट्ठा करना कठिन होता है, उसी प्रकार जब मनुष्यका मन संसारकी अनेक प्रकारकी वातावरणोंमें दौड़ता फिरता है, तब उसको रोककर एक ओर लगाना सरल बात नहीं है।

X X X X

क्या सब मनुष्य ईश्वरके दर्शन कर सकेंगे? जिस प्रकार किसी मनुष्यको सबैरे नौ बजे भोजन मिलता है, किसीको दोपहरको, किसीको दो बजे और किसीको सूर्य ढूँयनेपर, पर कोई भूखा नहीं रह जाता। इसी प्रकार किसी-न-किसी समय चाहे इस जीवनमें ही अथवा अन्य कई जन्मोंके बाद, ईश्वरका दर्शन सब मनुष्य अवश्य कर सकेंगे।

X X X X

जिस धरके लोग जागते रहते हैं उस धरमें चोर नहीं धुस सकते, उसी प्रकार यदि तुम ( ईश्वरपर भरोसा रखते हुए ) हमेशा चौकब्रें रहो तो दुरे विचार तुम्हारे हृदयमें नहीं धुस सकेंगे।

X X X X

जिस प्रकार विना तेलके दीपक नहीं जल सकता, उसी प्रकार विना ईश्वरके मनुष्य अच्छी तरह नहीं जी सकता।

X X X X

साँप बड़ा जहरीला होता है। कोई जब उसे पकड़ता है तो वह उसे काट लेता है। परंतु जो मनुष्य साँपके विषको मन्वसे शाड़ना जानता है, वह साँपको केवल पकड़ ही नहीं लेता, वहिं वहुतसे साँपोंको गहनोंकी तरह भरदग और हाथोंमें लिपटाये रहता है। इसी प्रकार जिसने आधारित शाम प्राप्त कर लिया है, उसपर काम और लोभदा विद नहीं चढ़ता।

X X X X

संसारमें रहो, लेकिन सांकारिक मत ननो। किसी कविने मन कहा है, भेदभक्तों साँपके साथ ननाओ, लेकिन ख्याल रक्षों कि साँप भेदभक्तों निगलने न पाये।

X X X X

एक बार एक पहुँचे हुए साधु रानी रासमणिके कालीजीके मन्दिरमें आये, जहाँ परमहंस रामकृष्ण रहा करते थे। एक दिन उनको कहाँसे भोजन न मिला, यद्यपि उनको जोरोंसे भूख लग रही थी। फिर उन्होंने किसीसे भी भोजनके लिये नहीं कहा। थोड़ी दूरपर एक कुत्ता जूटी रोटीके ढुकड़े खा रहा था। वे चट दौड़कर उसके पास गये और उसको छातीसे लगाकर बोले, भैया! तुम मुझे विना खिलाये क्यों खा रहे हो? और फिर उसीके साथ खाने लगे। भोजनके अनन्तर वे फिर कालीजीके मन्दिरमें चले आये और इतनी भक्तिके साथ वे माताकी स्तुति करने लगे कि सारे मन्दिरमें सज्जाटा छा गया। प्रार्थना समाप्त करके जब वे जाने लगे तो श्रीरामकृष्ण परमहंसने अपने भर्तीजे हृदय मुकर्जाकी बुलाकर कहा—‘बच्चा! इस साधुके पीछे-पीछे जाओ और जो वह कहे, उसे मुझसे कहो।’ हृदय उसके पीछे-पीछे जाने लगा। साधुने धूमकर उससे पूछा कि भेरे पीछे-पीछे क्यों आ रहा है? हृदयने कहा, भमात्माजी! मुझे कुछ शिक्षा दीजिये। साधुने उत्तर दिया, ‘जब तू इस गंडे घड़ीके पानीको और गङ्गाजलको समान समझेगा और जब इस बाँसुरीकी आवाज और इस जन-समूहकी कर्कश आवाज तेरे कानोंको एक समान मधुर लोगी, तब तू सच्चा जानी बन सकेगा।’ हृदयने लौटकर श्रीरामकृष्णसे कहा। श्रीरामकृष्णजी बोले—‘उस साधुको वास्तवमें ज्ञान और भक्तिकी कुंजी मिल चुकी है। पहुँचे हुए साधु बालक, पिशाच, पागल और इसी तरहके और-और वेषोंमें धूम करते हैं।’

X X X X

पराभक्ति ( अस्युत्कट प्रेम ) क्या है? पराभक्ति ( अस्युत्कट प्रेम ) में उपासक ईश्वरको सबसे अधिक नजदीकी सम्बन्धी समझता है। ऐसी भक्ति गोपियोंकी श्रीकृष्णके प्रति थी। वे उन्हें जगन्नाथ नहीं कहती थीं बल्कि गोपीनाथ कहकर पुकारती थीं।

X X X X

सम्पत्ति और विषय-भोगमें लगा हुआ मन खपड़ीमें चिपटी हुई सुपारीकी तरह है। जबतक सुपारी नहीं पकती तबतक अपने ही रससे वह खपड़ीमें चिपटी रहती है। लेकिन जब रस सूख जाता है तब सुपारी खपड़ीसे अलग हो जाती है और खड़खड़ानेसे उसकी आवाज सुनायी धड़ती है। उसी प्रकार सम्पत्ति और सुखोपभोगका रस जब सूख जाता है तब मनुष्य मुक्त हो जाता है।

X X X X

दादको जितना सुजलाते जाओ, उतनी खुजली और यहती जाती है और उससे उतना ही आनन्द भी मिलता है, ईश्वरका गुणानुवाद करनेवाले भक्तोंको भी अधिकाधिक आनन्द मिलता है।

X X X X

दादके सुजलानेमें पहले जितना सुख होता है, उतना ही सुजलानेके बाद अपाप्य दुःख होता है। इसी प्रकार संसारके सुख पहले वहे सुखदायक प्रतीत होते हैं, लेकिन पीछेसे उनसे असता और अकथनीय दुःख मिलता है।

X X X X

एक चोर आधी रातको किसी राजाके महलमें छुसा और राजाको रानीसे यह कहते सुना कि 'मैं अपनी कन्याका विवाह उस साधुसे करूँगा जो गङ्गाके किनारे रहता है।' चोरने सोचा कि 'यह अच्छा अवसर है। कल मैं भगवा वस्त्र पहनकर साधुओंके बीच जा चैढ़ूँगा। सम्भव है राजकन्याका विवाह मेरे ही साथ हो जाय।' दूसरे दिन उसने ऐसा ही किया। राजाके कर्मचारी सब साधुओंसे राजकन्याके साथ विवाह कर लेनेकी प्रार्थना करने लगे, लेकिन किसीने स्वीकार नहीं किया, तब वे उस चोर संन्यासीके पास गये और वही प्रार्थना उन्होंने उससे भी की, तब उसने कोई उत्तर नहीं दिया। कर्मचारी लौटकर राजाके पास गये और कहा कि 'महाराज ! और तो कोई साधु राजकन्याके साथ विवाह करना स्वीकार नहीं करता। एक युथ संन्यासी अवश्य है, समझव है वह विवाह करनेपर तैयार हो जाय।' राजा उसके पास स्वयं गया और राजकन्याके साथ विवाह करनेके लिये अनुरोध करने लगा। राजाके स्वयं आनेसे चोरका हृदय एकदम बदल गया। उसने सोचा, 'अभी तो केवल संन्यासियोंके कपड़े पहननेका यह परिणाम हुआ है कि इतना बड़ा राजा मुश्शे मिलनेके लिये स्वयं आया है। यदि मैं वास्तवमें सच्चा संन्यासी बन जाऊँ तो न मालूम आगे अभी और कैसे अच्छे-अच्छे परिणाम देखनेमें आयें।' इन विचारोंका उसपर ऐसा अच्छा परिणाम देखनेमें आये। इन विचारोंका उसपर ऐसा अच्छा प्रभाव पड़ा कि उसने विवाह करना एकदम अस्वीकार कर दिया और उस दिनसे वह एक अच्छा साधु बननेके प्रश्नमें से एक पहुँचा हुआ संन्यासी हुआ। अच्छी बातकी नकलसे भी कभी कभी अनुपेक्षित और अपूर्व फलकी प्राप्ति होती है।

X X X X

एक अहीरिन नदीके उस पार रहनेवाले एक द्वारु पुजारीको दूध दिया करती थी। लेकिन नावकी व्यवहारीक न होनेके कारण वह प्रतिदिन ठीक समयपर दूध न पहुँचा पाती थी। व्राहणके बुरामला कहनेपर वहें अहीरिनने कहा, 'महाराज ! मैं क्या करूँ, मैं तो अपने श्वे वडे तड़के रखाना होती हूँ, लेकिन मल्लाहों और यात्रियों लिये मुझे बड़ी देरतक ठहरना पड़ता है।' पुजारीने कहा 'अरे, ईश्वरका नाम लेकर तो लोग जीवनके समुद्रको प्ल कर लेते हैं और तू जरा-सी नदी भी पार नहीं कर सकती।' वह भोली छी पार जानेके सुलभ उपायको सुनकर वह प्रसन्न हुई। दूसरे दिनसे अहीरिन ठीक समयपर दूध पहुँचते लगी। एक दिन पुजारीने उससे पूछा, 'क्या बात है कि अब तुझे देर नहीं होती ?' छीने उत्तर दिया, 'आज्ञे बतलाये हुए तरीकेसे ईश्वरका नाम लेती हुई मैं नदीसे पार कर लेती हूँ, मल्लाहके लिये अब मुझे ठहरना नहीं पड़ता।' पुजारीको इसपर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने पूछा, 'क्या तुम मुझे दिखला सकती हो कि तुम किस प्रकार नदीको पार करती हो ?' छी उनको अपने साथ ले गयी और पानीके ऊपर चलने लगी। पीछे घूमकर उन्होंने देखा तो पुजारीजी बड़ी आफतमें पड़े थे। उसने कहा 'महाराज ! क्या बात है आप मुँहसे ईश्वरका नाम ले रहे हैं परंतु अपने हाथोंसे कपड़े समेट रहे हैं ताकि वे भी नहीं नहीं। आप उसपर पूरा विश्वास नहीं रखते ?' परमेश्वरपर पूरा भरोसा रखना और उसीपर अपनेको छोड़ देना प्रत्येक लोपुषद्वारा किये हुए अद्भुत चमत्कारकी कुंजी है।

X X X X

जानकर अथवा अनजानसे, चेतन अवस्थामें व्यग्रा अचेतन अवस्थामें, चाहे जिस हालतमें मनुष्य ईश्वरया नाम ले, उसे नाम लेनेका फल अवश्य मिलता है। जो मनुष्य स्वयं जाकर नदीमें स्नान करता है, उसे भी नहानेका फल मिलता है और जो जवरदस्ती नदीमें ढकेल दिया जाता है। उसे भी नहानेका फल मिलता है अथवा गहरी नदीमें गंदर उसके ऊपर कोई पानी डॅकेल दे तो उसे भी नहानेका फल मिलता है।

X X X X

द्वार्लभ मनुष्य-जन्म पाकर भी जो इसी जन्ममें

ईश्वरको प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करता, उसका जीना यर्थ है।

X X X X

सांसारिक मनुष्योंकी बुद्धि और ज्ञान, ज्ञानियोंकी बुद्धि और ज्ञानके सदृश हो सकते हैं। सांसारिक मनुष्य ज्ञानियोंके सदृश कष्ट भी उठा सकते हैं, सांसारिक मनुष्य लग्नस्त्रियोंकी तरह त्याग भी कर सकते हैं। लेकिन उनके प्रयत्न व्यर्थ होते हैं। कारण इसका यह है कि उनकी शक्तियाँ ठीक भारपूर नहीं लगतीं। उनके सब प्रयत्न विषय, भोग, मान और सम्पत्ति मिलनेके लिये किये जाते हैं, ईश्वर मिलनेके लिये नहीं।

X X X X

शहरमें नवीन आये हुए मनुष्यको रात्रिमें विश्राम करनेके लिये पहले सुख देनेवाले एक स्थानकी खोज कर लेनी चाहिये, और किर वहाँ अपना सामान रखकर शहरमें घूमने जाना चाहिये, नहीं तो, अँधेरेमें उसे बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा। उसी प्रकार इस संसारमें आये हुएको पहले अपने विश्राम-स्थानकी खोज कर लेनी चाहिये और इसके पश्चात्, फिर दिनका अपना काम करना चाहिये। नहीं तो, जब मृत्युलूपी रात्रि आयेगी तो उसे बहुत-सी अद्विनोंका सामना करना पड़ेगा और मानसिक व्यथा सहनी पड़ेगी।

बड़ो तो तुम वहाँतक पहुँच जाओगे; लेकिन तुम वह कहो कि मेरा धर्म दूसरोंके धर्मसे अच्छा है।

X X X X

अगर तुम संसारसे अनासक्त रहना चाहते हो तो तुम को पहले कुछ समयतक—एक वर्ष, छः महीने, एक महीना कम से-कम वाराह दिनतक किसी एकान्त स्थानमें रहव भृति-का साधन अवश्य करना चाहिये। एकान्तासमें तुम सर्वदा ईश्वरमें ध्यान लगाना चाहिये। उस समय तुम्ह भनमें यह विचार आना चाहिये कि ‘संसारकी ओर्ड बस्तु में नहीं है। जिनको मैं अपनी बस्तु समझता हूँ, वे अति शी नष्ट हो जायेंगी।’ वास्तवमें तुम्हारा मित्र ईश्वर है। का तुम्हारा सर्वस्व है। उसको प्राप्त करना ही तुम्हारा ज्येष्ठोना चाहिये।

X X X X

मैले शशीमें सूर्यकी किरणोंका प्रतिविम्ब नहीं पड़ता। उसी प्रकार जिनका अन्तःकरण मलिन और अपवित्र है तभ जो मायाके बशमें है, उनके हृदयमें ईश्वरके प्रकाशका प्रतिविम्ब नहीं पड़ सकता। जिस प्रकार साफ शशीमें सूर्यका प्रतिविम्ब पड़ता है, उसी प्रकार स्वच्छ हृदयमें ईश्वरका प्रतिविम्ब पड़त है। इसलिये पवित्र बनो।

को प्रकाश दग है रहे हैं; यिन्तु जब तरे निकल आते हैं तो उनसा अभिमान नूर ही जाता है और फिर तरे समझते हैं कि दग मंगारको प्रकाश देते हैं पर शोड़ी देरमें जब आकाशमें घोंट नगरको लगता है तो तारोंको नीचा देखना पड़ता है और ने दान्तिधीन ही जाते हैं। अब चन्द्रमा अभिमानमें आकर गमस्ता है कि तंसारको प्रकाश में दे रहा हूँ और मारे नुश्चिक नाचता फिरता है। पर जब प्रातःकाल सूर्यका उदय होता है तो चन्द्रमाकी भी कान्ति फीकी पड़ जाती है। अपनी लोग यदि सुधिकी इन वातोंपर विचार करें तो वे धन का अभिमान कभी न करें।

X      X      X      X

ईश्वरकी कृपाकी हवा वरावर वहा करती है। इस समुद्ररुसी जीवनके मछाह उससे कभी नहीं लाभ उठाते, यितु तेज और स्वल मनुष्य सुन्दर हवासे लाभ उठानेके लिये अपने मनका परदा हमेशा खोले रखते हैं और वही करण है कि वे अति शीघ्र निश्चित स्थानपर पहुँच जाते हैं।

X      X      X      X

और धनके पीछे थोड़े ही पढ़ा रहेगा।' ऐसा विचारकर वाह्याणसे कहा कि, 'महाराज! आपने स्वर्ण गीताका ह अध्ययन नहीं किया है। मैं आपको शिक्षक बनानेका न देता हूँ, लेकिन आप अभी जाकर गीताका अध्ययन है अच्छी तरह कीजिये।' ब्राह्मण चला गया, लेकिन वह यही सोचता गया कि व्येको तो राजा कितना बड़ा मूर्ति है वह कहता है कि तुमने गीताका पूर्ण अध्ययन नहीं किया और मैं कई व्योंसे उसीका बराबर अध्ययन कर रहा हूँ।' उसने जाकर एक बार गीताको फिर पढ़ा और राजाके सामे उपस्थित हुआ। राजाने पुनः वही बात दोहरायी और उसे दिया कर दिया। ब्राह्मणको इससे दुःख तो बहुत हुआ, लेकिन उसने मनमें विचारा कि 'राजाके इस प्रकार कहनेका कुछ न कुछ मतलब अवश्य है।' वह त्रुपके-से घर चल गया और अपनेको कोठरीमें बंद करके गीताका ध्यानपूर्वक अध्ययन करने लगा। धीरे-धीरे गीताके गूढ़ अर्थका प्रकाश उसी बुद्धिपर पड़ने लगा और उसको स्पष्ट भावम होने लगा इसमप्ति, मान, द्रव्य, कीर्तिके लिये दरबारमें या किसी दूसरी जगह दौड़ना व्यर्थ है। उस दिनसे- वह दिन-रात एक

चमत्कार दिखलानेवालों और सिद्धि दिखलानेवालों के गप न जाओ। वे लोग सत्यमार्ग से अलग रहते हैं। उनके मन ऋद्धि और सिद्धिके जालमें पड़े रहते हैं। ऋद्धि-सिद्धि ईश्वरतक पहुँचनेके मार्गके रोड़े हैं। इन सिद्धियोंसे सावधान रहो और इनकी इच्छा न करो।

X X X X

धनका क्या उपयोग है? उसकी सहायतासे अब, वस्त्र और निवासस्थान प्राप्त किये जा सकते हैं। बस, उनके उपयोगकी भर्यादा इतनी ही है, आगे नहीं है। निस्तुंदेह, धनके बलपर ईश्वर तुझे नहीं दिलायी दे सकता। अथवा धनसे कुछ जीवनकी सार्थकता नहीं है। यही विवेककी दिशा है, क्या तू इसे समझ गया?

X X X X

विष्णुका वच्चा सिर्फ इतना ही जानता है कि 'म्यावैं, म्यावैं' करके अपनी माताको किस प्रकार पुकारना चाहिये। फिर आगे क्या करना है, सो सब विष्णुको मालूम रहता है। वह अपने वच्चोंको, जहाँ उसे अच्छा लगता है, ले जाकर रखती है। घड़ीभरमें रसोईघरमें, घड़ी ही भरमें मालिकके गुदगुदे विडौनेपर! हाँ, पर विष्णुके वच्चोंको सिर्फ इतना शान अवश्य होता है कि अपनी माँको कैसे पुणारूँ। इसी न्यायसे, मनुष्य जब अनन्य भावसे अपनी परम दयालु माता परमात्माकी पुकार करता है, तब वह तुरंत ही दौड़ीता हुआ आकर उसका योगक्षेम सेंभालता है। सिर्फ पुकार करना ही उसका काम है! हाँ,

X X X X

दान और दया आदि गुणोंका आचरण यदि निष्क्राम दुष्टिये होता है तो फिर उसकी उत्तमताके लिये कहना ही क्या है। एस आनन्दमें यदि कहीं भक्तिकी पुष्टि मिल गयी, तब तो फिर ईश्वर-प्राप्तिके लिये और क्या चाहिये? जहाँ दया, धर्म, शान्ति आदि सदृप्त हैं, वहीं ईश्वरका धारा है।

X X X X

जब हम कट्टारेमें मस्तक ढालकर उसे आँचर रखते हैं, तब उसमें फूटकर आवाज होती है। जबतक उसमें

सं० या० अ० ५९—

इतनी उष्णता नहीं आ जाती कि उसका जलांश जल जाय या उसमें पानीका कुछ भी अंश न रहे। मक्खन जबतक अच्छी तरह पूर्णतया नहीं पक जाता, तभीतक वह ऊपरको उबलता है और कल्क-कल्क—कल्क-आवाज करता है।

X X X X

जो मक्खनकी तरह अच्छी तरह पककर निःशब्द हो गया है, वही बन गया है, वही ब्रह्मसाक्षात्कार किया हुआ सच्चा ज्ञानी पुरुष है। मक्खनको जिज्ञासु कह सकते हैं। उसमें जो पानीका अंश है, उसे अग्निके संस्कारसे निकाल डालना चाहिये। यह पानीका अंश अहंकार है। जबतक यह अहंकार निकलता नहीं, तबतक कैसा नृत्य करता है। पर जहाँ एक बार वह जलांश—अहंकार विल्कुल नष्ट हो गया कि बस पक्षा वही बन गया। फिर उसमें गङ्गवड़-सङ्घवड़ कुछ नहीं।

X X X X

बुद्धि पहुँच है। श्रद्धा सर्वसमर्थ है। बुद्धि बहुत नहीं चलती, वह थककर कहीं-न-कहीं ठहर जाती है। श्रद्धा अवृट्टित कार्य सिद्ध कराती है। हाँ, श्रद्धाके बलपर मनुष्य अपार महोदधि भी लीलासे पार कर सकता है।

X X X X

पहले हृदय-मन्दिरमें उसकी प्रतिष्ठा करो, पहले ईश्वरका अनुभवपूर्वक शान कर लो, तब वकृत्व और भाषण भी चाहे करो, इससे पहले नहीं। लोग एक ओर तो संसार-कर्दममें लोट्टे रहते हैं और दूसरी ओर शाविदिक व्रहकी लिचड़ी पकाया करते हैं। जब विवेक-वैराग्यकी गन्ध भी नहीं है, तब फिर सिर्फ 'ब्रह्म-ब्रह्म' बकने से क्या मतलब? उससे क्या लाभ होगा? मन्दिरमें देवताकी स्थापना तो की नहीं, फिर सिर्फ शङ्खध्वनि करनेसे क्या लाभ?

X X X X

पहले हृदयमन्दिरमें माधवकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। पहले भगवत्प्राप्ति कर लेनी चाहिये। यह न करके सिर्फ 'भौं-भौं' करके शङ्ख बजानेसे क्या होगा? भगवत्प्राप्ति होनेके पहले उस मन्दिरकी सब गंदगी निकाल डालनी

चाहिये । पापकी मल भो डालना चाहिये । इन्द्रियोंकी उत्तम की तुरं विषयामक्तिको दूर कर देना चाहिये । अर्थात् परंतु चित्तको शुद्ध करना चाहिये । जहाँ मनकी शुद्धि हुई कि फिर उस पवित्र आकृत्यर भगवान् अवश्य ही आ चैठेगा । परंतु यदि उसमें गंदगी वनी रही तो माधव वर्ण कदापि न आयेगा । हृदय-मन्दिरकी पूर्ण स्वच्छता होनेपर माधव उस जगह प्रकट होगा । फिर चाहे तो शङ्ख भी न बजाओ ! सामाजिक सुधारके विषयमें तुम्हें बोलना है । अर्थात्, बोलो । परंतु पहले ईश्वरकी प्राप्ति कर लो और फिर वैसा करो । ध्यान रखो, प्राचीन कालके ऐष्टियोंने ईश्वर-प्राप्ति के लिये ही अपनी गृहस्थीपर तुलसीपत्र रख दिया था । वह, वही चाहिये । अन्य जितनी वार्ता तुम्हें चाहिये, वे सब फिर तुम्हारे पैरोंमें आकर पड़ेगी ।

X X X X

समुद्रतलके रस्तोंकी यदि तुम्हें आवश्यकता हो तो पहले हुबकी लगाकर समुद्रतलमें चले जाओ । पहले हुबकी लगाकर रख हाथमें कर लो । फिर दूसरी बात । पहले अपने हृदय-मन्दिरमें माधवकी प्रतिष्ठा करो; फिर शङ्खस्थनिकी बात करो । पहले परमेश्वरको पहचानो, फिर चाहे व्यालयान झाड़ी और चाहे सामाजिक सुधार करो ।

X X X X

सरण रहे कि मूळ वस्तु एक ही है, केवल नामोंकी भिन्नता है । जो ब्रह्म है, वही परमात्मा है और वही भगवान् । ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म कहता है, योगी परमात्मा कहता है और भक्त भगवान् कहता है । वस्तु एक है, नाम भिन्न-भिन्न हैं ।

X X - X X

मेरी माता जगत्का आधार और अधियं भी है । वही जगत्का निमित्त कारण है और उपादान कारण भी है ।

X X X X

आकाश भी दूरसे नील देख पड़ता है; परंतु यदि अपने समीक्षा आकाश देखा जाय तो उसका कोई रंग नहीं है । समुद्रका जल भी दूरसे नील देख पड़ता है; परंतु जब उसके पास जाओ और शोङ्ग-सा जल हाथमें लेकर

देखो तो मालूम होगा कि उस जलमें कोई रंग नहीं है । इसी तरह कालीके समीप—मेरी माताके निकट वह उसको देखो, उसका अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करो । उसका साक्षात्कार लभ करो; तब वह देख पड़ेगा कि वह किंतु और निरक्षार नहीं ही है ।

X X X X

सब ब्राह्म केवल मनपर ही अवलम्बित होती है । यदि तुम्हारा मन वद्ध है तो तुम भी वद्ध हो जाते हो और यदि तुम्हारा मन मुक्त है तो तुम भी मुक्त हो जाओगे । मनका रंग पानीके समान है जो रंग उसमें दिया जायगा, वही उसका स्वप्न हो जायगा । उसमें लाल रंग डालो; वह लाल दीख पड़ेगा; पील रंग डालो, पीला हो जायगा । मन स्वयं निर्णय है । केवल स्थितिके कारण ही उसमें गुण या अवगुण दीख पड़ते हैं ।

X X X X

यदि मनको कुसंगति लग जाय तो उसका परिणाम हमारे आचार-विचार और वाणीपर भी प्रकट होने लगता है । इसके बदले यदि मनको अच्छी संगतिमें—पातंजलीके समाधानमें लगा दिया जाय तो वह ईश्वर-विद्यतर्मण करने लगता है और फिर ईश्वरकी वशाभिनी अतिरिक्त उसको कुछ नहीं सुहाता ।

X X X X

यदि कोई मनुष्य श्रद्धामुक्त अन्तःकरणसे ईश्वर नाम लेगा तो उसके सब पाप नष्ट हो जायेंगे, तिन्हें वह मुक्त हो जायगा । हरिनामके विषयमें ऐसी छढ़ भाना होनी चाहिये कि व्यैं ईश्वरका नाम-सरण करता हूँ, अब मेरे पास पाप कैसे रह सकते हैं । पापके लिये अब मेरे लाल कोई स्थान ही नहीं है । अब मैं वद्धदशामें नहीं रह सकता ।

सबसे पहले ईश्वरकी प्राप्ति कर लेनी चाहिये । दूसरी साढ़ी वस्तु है, यही कर्तव्य है और यही मुख्य उद्देश्य है । इसके बाद और दूसरे काम करने चाहिये ।

X X X X

ऐसा कुछ नियम नहीं है कि भगवान् भवति

ज्ञानारिक कार्योंमें सुस्थिति ही प्राप्त होती रहे। भगवान्‌का मक्ष कदाचित् दरिद्र भी हो सकता है परंतु वह मनमें बड़ा श्रीमान् होता है। शंख, चक्र, गदा और पद्मके धारण करने-वाले भगवान्‌का दर्जन यद्यपि देवकी-वसुदेवको कारागृहमें हुआ, तथापि उस समय वे कारागृहसे मुक्त नहीं हुए।

X X X X

देह सुधी हो या दुखी; परंतु जो असली भक्ति है, वह तो ज्ञान और भक्तिके ऐश्वर्यमें ही दिन-रात मरत रहता है। पाण्डवोंका उदाहरण ही देखो न—कितनी विपर्ति उनको भोगनी पड़ी, कैसे संकट उनके ऊपर आये; परंतु ऐसी कठिन विपर्तिमें भी उन्होंने भगवान्‌के ऊपरसे तिलमात्र भी श्रद्धा, भक्ति और निष्ठा नहीं हटायी। उनके समान ज्ञानी और उनके समान भक्त क्या कहीं हैं?

X X X X

कर्मका त्याग तुमसे कभी करते न बनेगा। प्रकृतिका धर्म है कि वह तुमसे कर्म करा ही लेगी, चाहे तुम्हारी इच्छा हो या न हो। जब ऐसा ही है, तब कर्म पूरी तरहसे क्योंन किया जाय? कर्म अवश्य करो, परंतु उसमें आसक्त न रहो। अनामक भावमें किया गया कर्म ईश्वरप्राप्तिका साधन है। अनामक कर्मको साधन और ईश्वर-प्राप्तिको साध्य वस्तु समझो।

X X X X

भक्तिरहित कर्मसे कुछ लाभ नहीं। वह पक्ष है। कर्मके लिये भक्तिला आधार देना आवश्यक है। भक्तिके ही आधारराग युक्त करना चाहिये। धर्मके लिये ही कर्मकी आवश्यकता है। धर्म न दोगा तो कर्मसे क्या लाभ।

X X X X

संगारमें रहने और संगारके गव काम करतेमें कुछ दोष नहीं है, ऐसलदायीके समान अपने मनका भाव होना चाहिये। जद दानी अपने मालिहोंके घर आरिके विषयमें 'इमार घर' 'इमार बाबू' आदि कहती है, गव तर अपने मनमें भलीभाँति जानती है कि यह कुछ भेद घर या चाचू नहीं है। इच्छा

तरह संसारमें प्रत्येक गृहस्थको अलित भावसे रहना चाहिये और सब काम अलितभावसे ही करते रहना चाहिये। यदि संसारमें रहकर और संसारी काम करनेपर परमेश्वरका विसरण न हो, तो इससे अच्छा और कौन साधन हो सकता है?

X X X X

जबतक विवेक या सदसद्विचार और वैराग्य-सम्पत्ति तथा सम्मान और इन्द्रिय-सुखके प्रति तिरस्कारका प्रादुर्भाव नहीं हुआ, तबतक ईश्वरप्राप्तिकी चर्चा ही व्यर्थ है। वैराग्यके अनेक प्रकार हैं। एक मर्कट-वैराग्य होता है। जब संसारी दुःखोंसे शरीर अत्यन्त सताया जाता है, तब यह वैराग्य होता है; परंतु यह वैराग्य बहुत दिन नहीं टिकता। जब सारा संसारी सुख अनुकूल है और जब इस बातका बोध होता है कि संसारी सुख अनित्य है, केवल दोपहर-की छाया है, अतएव यह सुख मिथ्या है, इससे सच्चे और नित्य सुखकी प्राप्ति नहीं होगी, तब समझो कि तुम्हें वैराग्य हुआ।

X X X X

ईश्वर-प्राप्ति हो—ऐसी जिसकी इच्छा है, उसको निरन्तर सत्तज्ञ करना चाहिये। संयारी मनुष्य सदासे व्याधिग्रस्त हैं। इस व्याधिको दूर करनेके लिये साधुओंके ही विचार ग्रहण करने चाहिये। साधु जो कहते हैं, उनसे सुनकर ही कार्यसिद्धि नहीं हो सकती; अपितु जैसा वे कहें, वैसा करना चाहिये। औपच ऐटमें जानी चाहिये और कठिन पथका पालन करना चाहिये।

आकाशमें रात्रिके समय वहुत-से तारे दिखलायी पड़ते हैं, परंतु सुर्योदय होनेपर वे अटश्य हो जाते हैं; इससे यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि दिनके समय तारे नहीं हैं। उसी प्रकार मनुष्यो! माया-जालमें फँसनेके कारण यदि परमात्मा न दिखलायी पड़े तो मत कहो कि परमेश्वर नहीं है।

X X X X

जल एक ही वस्तु है; परंतु लोगोंने उसको अनेक नाम दे रखे हैं। कोई पानी कहता है, कोई बार कहता है

और कोई आव कहता है। उसी प्रकार सच्चिदानन्द है एक, परंतु उसके नाम अनेक हैं। कोई उसे अल्लाहके नाम से पुकारता है, कोई इरिका नाम लेकर याद करता है और कोई बड़ा बाद करता है।

X X X X

आँख-मिच्छीनीके खेलमें जब एक खिलाड़ी पालेको छू लेता है, तब वह राजा हो जाता है, दूसरे खिलाड़ी उसे चोर नहीं बना सकते। उसी प्रकार एक बार ईश्वरके दर्शन हो जानेसे संसारके बन्धन फिर हमको बाँध नहीं सकते। जिस प्रकार पालेको छू लेनेपर खिलाड़ी जहाँ चाहे, वहाँ निढ़र घूम सकता है, उसे कोई चोर नहीं बना सकता; उसी प्रकार जिसको ईश्वरके चरण-स्पर्शका आनन्द एक बार मिल जाता है, उसे किर संसारमें किसीका भय नहीं रह जाता। वह सांसारिक चिन्ताओंसे मुक्त हो जाता है और किसी भी मायामोहमें किर नहीं फँसता।

X X X X

पारस-पत्थरके स्पर्शसे लोहा एक बार जब सोना बन जाता है, तब उसे चाहे जमीनमें गाड़ दो अथवा कत्तवारमें केक दो, वह सोना ही बना रहता है, फिर लोहा नहीं होता; उसी प्रकार सर्वशक्तिमान् परमात्माके चरण-स्पर्शसे जिसका हृदय एक बार पवित्र हो जाता है, उसका फिर कुछ नहीं दिग्ढ सकता, चाहे वह संसारके कोलाहलमें रहे अथवा जंगलमें एकान्त-वाय करे।

X X X X

पारस-पत्थरके स्पर्शसे लोहेकी तलवार सोनेकी हो जाती है और यद्यपि उसकी सूरत वैसी ही रहती है तथापि लोहेकी तलवारकी तरह उससे लोगोंको हानि नहीं पहुँच सकती। इसी प्रकार ईश्वरके चरण-स्पर्शसे जिसका हृदय पवित्र हो जाता है, उसकी सूरत-बाकल तो वैसी ही रहती है, किंतु उससे दूसरोंको हानि नहीं पहुँच सकती।

X X X X

समुद्र-तलमें स्थित चुम्ककी चड्ठान समुद्रके ऊपर चलनेवाले जहाजको अपनी ओर खींच लेती है, उसकी

कीलें निकाल डालती है, सब पटरोंको अलग-अलग छ देती है और जहाजको समुद्रमें ढूबो देती है। इसी प्रकार जब मनुष्यको आत्मज्ञान हो जाता है, जब वह अपनेको ही समानरूपसे विश्वभरमें देखने लाता है तब उसका व्यक्तित्व और स्वार्थ एक क्षणमें नष्ट हो जाते हैं और उसका जीवात्मा परमेश्वरके अग्राह प्रेम-सागरमें हूँ जाता है।

X X X X

दूध पानीमें जब मिलाया जाता है, तब वह तुरंत मिल जाता है; किंतु दूधका मक्कलन निकालकर डालनेसे वह पानीमें नहीं मिलता बल्कि उसके ऊपर तैरने लगता है। उसी प्रकार जब जीवात्माको ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है, तब वह अनेक बद्ध प्राणियोंके बीचमें निरन्तर रहता हुआ भी बुरे संस्कारोंप्रभावित नहीं हो सकता।

X X X X

नयी उम्रकी तरुणीको जबतक बच्चा नहीं होता, तबतक वह गृहकार्यमें निमम रहती है; किंतु बच्चा हो जानेसे वह धीरे-धीरे वैपरदाह होती जाती है और यद्येही और वह अधिक ध्यान देती है। दिनभर उसे वह प्रेमकी साथ चूमती, चाटती और प्यार करती है। इसी प्रकार मनुष्य अज्ञानकी दशामें संसारके सब कार्योंमें लगा रहता है; किंतु ईश्वरके भजनमें आनन्द पाते ही वे उसे नीरस प्रतीत होने लगते हैं और वह उनसे अपना हाथ खींच लेता है। ईश्वरी देवा करने और उसके इच्छानुसार चलनेमें ही उसे अन्यत आनन्द मिलता है। दूसरे किसी भी काममें उसको युग्म नहीं मिलता। ईश्वरदर्शनके सुखसे फिर अपनेको योग नहीं सकता।

X X X X

बरकी छतपर मनुष्य सीढ़ी, बाँस, रसी आदि पर्याप्त साधनोंके योगसे चढ़ सकता है। इसी प्रकार ईश्वर पहुँचनेके लिये भी अनेक मार्ग और साधन हैं। संगता प्रत्येक धर्म इन मार्गोंमें एक मार्गको प्रदर्शित करता है।

X X X X

संसारमें पाँच प्रकारके शिद पाये जाते हैं—

(१) स्वम-सिद्ध—जिसको स्वप्नके ही साधात्कारसे पूर्णता प्राप्त होती है। (२) मन्त्र-सिद्ध—जिन्हें दिव्य मन्त्रोंसे पूर्णता प्राप्त होती है। (३) हठात् सिद्ध वे कहलाते हैं, जिन्हें एकाएक सिद्धि मिल जाती है और जो एकाएक पापोंसे मुक्त हो जाते हैं—जिस प्रकार एक दरिद्रको अकस्मात् द्रव्य मिल जाय या अकस्मात् उसका विवाह एक धनवान् खीसे हो जाय और वह धनी बन जाय। (४) कृपा-सिद्ध वे कहलाते हैं, जिन्हें ईश्वरकी कृपासे पूर्णता प्राप्त होती है। जिस प्रकार बनको साक करते हुए किसी मनुष्यको पुराना तालाब या घर मिल जाय और उसके बनवानेमें उसे फिर कष्ट न उठाना पड़े, उसी प्रकार कुछ लोग भग्यवद्य किञ्चित् परिश्रम करनेसे ही सिद्ध हो जाते हैं। (५) नित्य-सिद्ध वे कहलाते हैं जो तदैव सिद्ध रहते हैं। लौकीकी वेळोंमें फल लग जानेपर फूल आते हैं। इसी प्रकार नित्य-सिद्ध गर्भसे ही सिद्ध होते हैं, उनकी वाही तपत्या तो मनुष्य-जातिको सन्मार्गपर लानेके लिये एक नाममात्रका साधन है।

X X X X

एक माँके कई लड़के होते हैं। एकको वह जेवर देती है, दूसरेको खिलौना देती है और तीसरेको मिठाई देती है। सब अपनी-अपनी चीजोंमें लग जाते हैं और माँको भूल जाते हैं। माँ भी अपने घरका काम करने लगती है। किंतु इन चीजोंमें जो लड़का सब वस्तुओंको फेंक देता है और माँके लिये चिल्डाने लगता है, माँ दौड़कर उसको चुप कराती है। इसी प्रकार, मनुष्यो ! तुमल्ये संसारके कारोबार और अभिमानमें भस्त होकर अपनी जगन्माताको भूल गये हो। जब तुम इन सबको छोड़कर उसको पुकारोगे, तब यह शीघ्र ही आयेगी और तुमको अपनी गोदमें उठा लेगी।

X X X X

परमात्माके अनेक नाम और अनेक रूप हैं। जिन नाम और जिन रूपसे हमारा जी नाहे, उसी नाम और उसी रूपसे हम उसे देना चाहते हैं।

X X X X

जब भूमे ग्रन्थिन अनन्त देवती नित्या कर्मी रहती

है, तब मैं उपासना किस प्रकार कर सकता हूँ ? जिसकी तृउपासना करता है, वह तेरी आवश्यकताओंको अवश्य पूर्ण करेगा। तुझे पैदा करनेसे पहले ही ईश्वरने तेरे पेटका प्रवन्धन कर दिया है।

X X X X

भक्त ! यदि ईश्वरकी गुह्य चातोंको जाननेकी तेरी लालसा है तो वह स्वयं सद्गुरु भेजेगा। गुरुको हँड़नेमें तुझे कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं है।

X X X X

मनुष्य तकियेकी खोलीके भमान है। किसी खोलीका रंग लाल, किसीका नीला और किसीका काला होता है, पर लई सबमें है। यही हाल मनुष्योंका भी है। उनमेंसे कोई सुन्दर है तो कोई काला है, कोई सजन है तो कोई दुर्जन है; किंतु परमात्मा सभीमें सौजन है।

X X X X

आराधनाके समय उन लोगोंसे दूर रहो, जो भक्त और धर्मनिष्ठ लोगोंका उपहास करते हों।

X X X X

इसमें संदेह नहीं कि यदि गांगारिक जीवन उस मनुष्य-के लिये बहुत भयानक है, तिनके अन्तःकरणमें ईश्वरके लिये प्रेम और भक्ति न हो। वीनैतन्यदेवते एक बार नित्यनन्दजीसे कहा था कि ‘जो मनुष्य गांगारिक तियोंका गुलाम हो गया, उसको मुक्ति नहीं भिल गक्ती; परंतु जो मनुष्य परमेश्वरमें शदा रहता है, उसको कुछ भग नहीं।’ ईश्वरी प्राप्ति हो जानेके बाद यदि मनुष्य इस मंत्रामध्ये भय विभयोंका उपभोग करता रहे तो उसकी कोई शानि न होगी। नैतन्यदेवते कियोंमें वह द्वारे मन्त्रामध्ये, परंतु नाममात्रके लिये ही शान्ती है।

X X X X

काली मेरी माता है। क्या उपासना निः काला है ? नहीं। कर सूख दूर है—उपासना न्यायमीय भवनमें हिंसा अपमय है, इसलिये वह कालीन्दू रातोंमें जोर दूरी नहीं, परंतु यदि उपासना न्यायमें हिंसा जाए—अपमयी

जाय—उग्रता जान हो जाय तो जान पड़ेगा कि उसका रंग काला नहीं है, किंतु अत्यन्त मनोहर है।

X X X X

भगवान् राधाकृष्ण अवतारी थे। इसमें किसीकी श्रद्धा रहे या न रहे, इस बातका कोई विशेष महत्व नहीं है। ईश्वरीय अवतारपर किसीका ( चाहे वह हिंदू हो या हिंदू नहीं ) विश्वास होगा, किसीका न होगा; परंतु भगवान् के प्रति गोपियोंके समान अत्यन्त प्रगाढ़ प्रेमलक्षणा भक्ति हृदयमें उत्पन्न होनेकी तीव्र आतुरता प्रत्येक मनुष्यमें होनी चाहिये। मनुष्य चाहे पागल भी हो जाय, परंतु उसे विद्यासक्तिसे पागल नहीं होना चाहिये—भगवद्गतिसे होना चाहिये।

X X X X

.....इसीलिये मैं कहता हूँ कि इस युगमें अन्य मार्गोंसे भक्तियोग ही सुलभ है। उससे कर्मकी व्यापकता सहज ही संकुचित हो जाता है। ईश्वरका अखण्ड चिन्तन होता है। इस युगमें ईश्वरप्राप्तिका यही सुलभ मार्ग है।

ज्ञानमार्गसे ( सदिच्चारसे अर्थात् ज्ञानविचारसे ) अथवा कर्ममार्गसे ( अर्थात् निष्काम कर्मचरणसे ) ईश्वरप्राप्ति होगी, परंतु इस कलियुगमें भक्तिमार्गसे वे मार्ग अधिक कठिन हैं। यह नहीं कि भक्त अन्य स्थानपर पहुँचे और ज्ञानी या निष्कामकर्मी अन्य स्थानपर। तीनोंके पहुँचनेका अन्तिम मोक्षप्रद स्थान एक ही है। केवल मार्ग भिन्न भिन्न हैं।

X X X X

प्रेमके मुख्य दो लक्षण हैं—( १ ) जगत् मिथ्या है इस बातका वोध होना; ( २ ) जो शरीर साधारण लोगोंके लिये अत्यन्त प्रिय वस्तु है, उसकी कुछ परवा न होना। भाव कच्चे आमके समान है, और प्रेम पके आमके तुल्य है। प्रेम भक्तके हाथमें एक रस्ती है। उसीसे वह ईश्वरको बाँधकर अपने वशमें करता है—किंवद्दुना, अपना दास ही बना लेता है। भक्तकी प्रेममय पुकार जहाँ भगवान् को सुनायी दी कि भगवान् दौड़े आते हैं। फारसी

पुस्तकोंमें लिखा है कि इस शरीरमें चमड़ेके भीतर माला मालाके भीतर हड्डी, हड्डीके भीतर मज्जा, इसी प्रकार एक्से भीतर एक पुट बतलाकर सबके अंदर प्रेम बतलाया है।

X X X X

### ईश्वर-प्राप्तिकी सीढ़ियाँ

‘साधुसमागम’ यही पहली सीढ़ी है। सत्सङ्गसे ईश्वरे प्रति मनमें श्रद्धा उत्पन्न होती है। ‘श्रद्धा’ दूसरी सीढ़ी है। श्रद्धासे ‘निष्ठा’ होती है। निष्ठा जहाँ जमी कि ईश्वर-कथाके सिवा और कुछ सुननेकी इच्छा नहीं होती—जीव चाहता है कि निरन्तर उसी परमात्माकी कुछ सेवा करें। यह तीसरी सीढ़ी है। निष्ठाके लिये यह आवश्यक नहीं कि अमुक ही उपास्य देवता हो। उपास्य देवता चाहे तुम्हारा गुरु हो, सगुण ईश्वर हो, निर्गुण ईश्वर हो, कोई अवतारी पुरुष हो अथवा कोई कुलदेवता हो, सब एक ही हैं। वैष्णवोंकी निष्ठा विष्णु या भगवान् श्रीकृष्णगर होती है। शाकोंकी शक्तिपर—इसे ही काली, दुर्गा दत्यादि नाम दिये गये हैं।

‘भक्ति’ निष्ठाकी परिपक्तताका परिणाम है। यह चौथी सीढ़ी है। भक्ति अपनी परिपक्ततासे ‘भाव’में परिणत हो जाती है। भावकी अवस्थामें ईश्वर-नाम-स्मरण होते ही मनुष्य निःशब्द या स्तब्ध हो जाता है। यही पाँचवीं सीढ़ी है। सामान्य संसारीजनोंकी गति इसी अवस्थातक पहुँचती है, इसके आगे नहीं जाती।

‘महाभाव’ छठी सीढ़ी है। ईश्वर-दर्शनके बाद महाभाव प्राप्त होता है। ‘महाभाव’ भगवद्गतिका आत्मनितक स्वरूप है। इस अवस्थामें भक्त पागल-गा रहता है। कभी हँसता है और कभी रोता है। उसे अपने शरीरी कुछ भी सुध नहीं रहती। साधारण संमारी जीवोंमें शैद-बुद्धि होनेसे इस अवस्थाका अनुभव उन्हें कभी नहीं होता।

प्रेम—यह सातवीं और आखिरी सीढ़ी है। माला और प्रेम बहुधा साथ-ही-साथ रहते हैं। प्रेम ईश्वर-भक्तिरा शिखर है। जीवात्मा साक्षात्कारके बाद गाढ़ प्रेममें निर्म होता है। इस अवस्थाके मुख्य दो लक्षण हैं—( १ ) याद-

पत्रकी कोई सुध न होना, (२) अपने शरीरकी कुछ तुध न होना। श्रीचैतन्यदेव इस अवस्थाको पहुँचे थे। वे प्रमाणशर्म में इस प्रकार निमग्न रहते थे कि उन्हें अपने शरीरकी भी परवा नहीं रहती थी और देखे हुए स्वानकी भी उन्हें स्मृति न रहती थी। कोई भी बन देखकर उसे कृनदावन ही समझते थे। एक समय वे जगन्नाथपुरी भये थे, वहाँ 'समुद्र' देखकर वे उसे यमुना ही कहने लगे और उसी आवेशमें आकर वे समुद्रमें कूद गये। इस तरह उनकी विदेहायस्था देख उनके शिष्योंने उनकी आशा ही छोड़ दी थी। ऐसी अवस्था प्राप्त होनेपर भक्तको इष्ट-प्राप्ति होती है, उसे साक्षात्कार होता है और इस संसारमें जन्म लेनेकी सार्थकता होती है।

X X X X

प्रश्न—इन्द्रिय-निग्रह बहुत कठिन है। इन्द्रियाँ मतघाले घोड़ोंकी तरह हैं। उनके नेत्रोंके सामने सो अँधेरा ही रहना चाहिये ?

उत्तर—ईश्वरकी एक बार कृपा हुई—उसका एक बार दर्शन हुआ कि फिर कुछ भय नहीं रहता। फिर पड़ेरिपुओंकी कुछ नहीं चल सकती—उनकी शक्ति भारी जाती है।

नारद और प्रह्लाद इत्यादि नित्यसिद्ध पुरुषोंके नेत्रोंके लिये ऐसे अन्धकारकी कुछ आवश्यकता नहीं पड़ती। जो लड़के अपने पिताका हाथ पकड़कर खेतकी मेड़-पर चलते हैं, उन्हींको, हाथ छूट जानेसे, कीचड़में गिर जानेका भय रहता है; किंतु जिन लड़कोंका हाथ पिताने पकड़ लिया है, उनकी स्थिति बिल्कुल निराली ही रहती है। वे कभी गड्ढमें नहीं गिर सकते।

X X X X

बालकके समान जिसका मन सरल रहता है, सचमुच उसीको ईश्वरपर श्रद्धा होती है।

X X X X

ईश्वरके चरणकमलोंमें लबलीन हो जानेवाला ही इस संसारमें धन्य है। वह साहे शूकरयोनिमें ही क्यों न उत्पन्न हुआ हो, उसका अवश्य ही उद्धार होता है।

X X X X

यथपि व्यभिन्नारिणी झी अपने गृहकार्यमें मग्न रहती दिखायी देती है, तथापि उसका मन उसके जातकी और ही लगा रहता है। इसी प्रकार मनुष्यको अपने सांसारिक कार्योंको करना चाहिये। प्रभु-चरणोंमें रत होकर

ही अन्य जगड़ोंमें हाथ डालना चाहिये। व्यभिन्नारिणी झीके यह-कार्योंमें लगी रहनेपर भी उसका मन उसके चाहनेवालेकी ओर ही लगा रहता है।

X X X X

अकबर बादशाहके जमानेमें दिल्लीके पास किसी बनमें एक फकीर रहता था। उसके दर्शनके लिये कई लोग उसके कुटियापर जाया करते थे। वह चाहता था कि मैं हन लोगों का कुछ आदर-सत्कार कर सकूँ। परंतु वह अत्यन्त दण्डिया, इसलिये वह कुछ नहीं कर सकता था। तब एक दिन उसने अपने मनमें सोचा कि 'अकबर बादशाह साधु औ फकीरोंको बहुत चाहता है; यदि मैं उससे निवेदन करूँगा तो वह मुझे कुछ द्रव्य अवश्य ही देगा, जिससे मैं अतिथियोंका उचित सत्कार कर सकूँगा।' इस प्रकार मनमें सोचकर वह बादशाहके पास गया। उस समय बादशा नमाज पढ़ रहा था। फकीर भी वहीं जाकर बैठ गया। नमाज पढ़नेके समय अकबर बादशाहने यह प्रार्थना की वि-'ईश्वर ! मुझे धन दे, सच्चा दे और दौलत दे !' यह सुनकर फकीर वहाँसे उठकर बाहर जाने लगा। तब बादशाहने उसे संकेतसे बैठनेको कहा।

नमाज पढ़कर बादशाहने फकीरसे पूछा, 'आप मुझसे मिलने आये थे, परंतु मिना कुछ बातचीत किये ही लैटकर चले जा रहे हैं; यह क्या बात है ?' फकीरने जवाब दिया, 'मैं हजूरके दरबारमें इसलिये आया था कि.....; परंतु आपको निवेदन करनेसे कोई फायदा नहीं है।' जब बादशाहने बार-बार आग्रह किया, तब फकीरने कहा, 'प्येरी कुटियापर बहुतेरे लोग आया करते हैं। मैं दण्डि हूँ, इसलिये मैं उनका स्वागत नहीं कर सकता। अतएव कुछ द्रव्य माँगनेके लिये आपके यहाँ आया था।' तब बादशाहने कहा 'तो फिर मिना कुछ माँगे ही लैटकर क्यों चले जा रहे हैं ?' यह सुनकर फकीरने कहा, 'खुदावंद ! आप तो स्वयं भिजारी हैं ! आप खुदासे धन और दौलत माँग रहे हैं। जब आपकी यह दशा मैंने देखी, तब मैंने सोचा कि जो स्वयं दण्डिया है, वह मुझे इसे दे सकेगा ! यदि कुछ माँगना ही है तो अब मैं भी खुदासे ही माँगूँगा।'

X X X X

## शरीर-सौन्दर्यकी वास्तविकता

बड़ा सुन्दर शरीर है। सूषिकर्तने जैसे पूरे संयमसे उसे सौंचेंगे ढाला हो। स्वास्थ्य और सौन्दर्य तो सहन्चर हैं। स्वास्थ्य नहीं रहेगा तो सौन्दर्य टिकेगा कैसे।

दूसरे ही उसके सौन्दर्यकी प्रशंसा करते हैं, ऐसा नहीं है। वह स्वर्य सजग है अपने सौन्दर्यके प्रति। उसका बहुत-सा समय शरीरको सजानेमें ही जाता है।

क्या है वह सौन्दर्य? यदि शरीरपरसे चमड़ा उतार दिया जाय—आप इस लोथड़ेको छूना तो दूर, देखना भी नहीं चाहेंगे। मांस, रक्त, मजा, मेद, स्नायु, केशका एक बड़ा-सा धिनौना लोथड़ा, जिससे छू जानेपर स्नान करना पड़े—जिसकी अँतड़ियोंमें भरा कफ, पिच्छ, मूत्र और विषा यदि फट पड़े—बमन आ जाय आपको।

वही सुन्दर शरीर—आप कङ्काल किसे कहते हैं? आपका यह कङ्काल ही तो है जिसपर आपका सौन्दर्य-रंग है। यह कङ्काल—यह साक्षात् प्रेतके समान कङ्काल, जो रात्रिको आपके कमरेमें खड़ा कर दिया जाय तो आप चौखकर भागें। किंतु यही हमारी-आपकी देह है। हमारी-आपकी देहका पूरा आधार यही है और यही है जो कुछ तो टिक सकता है। देहका बाकी सब धिनौना तत्त्व तो सँझ टिक सकता है। देहका बाकी सब धिनौना तत्त्व तो सँझ जाता है कुछ घंटेमें। इस कङ्कालको आप सुन्दर कहते हैं। इसे छोड़ देनेपर तो देहमें वही मांस, मेद, मजा, स्नायु, मल आदिका लोथड़ा रहता है। क्या हुआ जो लोथड़ा चमड़ेसे ढाका है।

कङ्कालपर मांस, मेद, मजाका लेप चढ़ा है, स्नायु-जाल बैधे हैं और ऊपरसे चमड़ा मँड़ दिया गया है। यही जाल बैधे हैं और ऊपरसे चमड़ा मँड़ दिया गया है। यही है शरीर और इस शरीरपर सुन्दरताका आरोप—सुन्दरताका गर्व! यह शरीर तो चिताकी आहुति है। चिताकी धू-धू करती लप्टें इसकी प्रतीक्षा कर रही हैं।

X

X

X

नारी तो सौन्दर्यकी प्रतिमा है। सुकुमारता और उसकी बह पुत्रिलिका यदि सुखजित हो—उसके सौभाग्यकाता कितनोंको प्रभाव करती ही है!

भगवान् न करें, किसीको रोग हो। लेकिन को किसीसे अनुमति लेकर नहीं आता, किसीकी इच्छा सम्मतिकी अपेक्षा नहीं करता। किसे कब कौन-से अपना ग्रास बना लेगा—कौन कह सकता है।

अनुपम सौन्दर्य, परम सुकुमार रूप—किसी भी तो चेचक हो सकती है। कुसुमकोमल, पाटलनिन्दक जब चेचकके द्वारा मधुमक्खीके बरके छतेका भावना दिया जाता है—अपनेको रसिक माननेवाले उसकी ओर देखनातक नहीं चाहते। घरके लोग हैं बिच्काते हैं।

चेचकसे ही कुछ अन्त तो नहीं है। रोगोंकी कोई संख्या नहीं। किसीके सौन्दर्यको हड्डप जानेके लिए मुहाँसे-जैसे सामान्य रोग ही पर्याप्त हैं; फिर कहीं राजगण कुष्ठ आ टपके? गलित कुष्ठके घाव—छूना तो दूर लोग देखनातक नहीं चाहते। आकर्षण, मोह और सम्मानका भाजन सौन्दर्य धृणा एवं तिरस्कारणे यत्व नहीं पाता।

क्या अर्थ है सौन्दर्यका? सौन्दर्यके मोहका? सौन्दर्यके आकर्षणका? चेचक या कोढ़ कहीं चले नहीं गये हैं। कितना तुच्छ, कितना नश्वर है सौन्दर्य उनकी समृद्धि।

बृद्धावस्था सौन्दर्यकी चिरशत्रु है। कोई रोग आये, न आये; वह तो आयेगी ही। लेकिन मृत्यु बृद्धावस्थाकी नीं प्रतीक्षा नहीं करती। वह तो चाहे जब आ यकती है। अन्ततः शरीरपर स्वत्व तो चिताका ही है। चिताकी लप्टें उसे भस्स होना ही पड़ेगा।

## स्वामी विवेकानन्द

( जन्म—ता० १२ जनवरी सन् १८६३ ई०, जन्मस्थान—चेन्नैनाथदत्त, पिताका नाम—विश्वनाथदत्त, देहत्याग—ता० ४ जुलाई सन् १९०२, परमहंस रामकृष्णके प्रधान शिष्य । )

हेरेक मनुष्यमें अस्तित्व-बुद्धि होती ही है, परंतु कोई उसे समझते हैं और कोई उसके ज्ञानसे विमुख रहते हैं । जो चेतन एक शरीरमें है, वही सब संसारमें है । उस चेतन-की उत्पत्ति या नाश नहीं होता । एक शरीरमें जो चेतन है वह जीवात्मा, और जो सर्वज्ञात्मक है वह परमात्मा है; दोनों अच्युत हैं ।



हिंदू-धर्मकी उत्पत्ति वेदोंसे हुई है और वेद अनादि, अनन्त तथा अपौरुषेय हैं । किसी पुस्तकका आस्रम्भ और अन्त नहीं, वह सुनकर आपलेगोंको आश्रय होगा; पर इसमें आश्रय करनेकी कोई वात नहीं है । वेद कोई पुस्तक नहीं, किंतु उन सिद्धान्तोंका संग्रह है, जो अटूट या अकाढ़ है । जिन लोगोंने ऐसे सिद्धान्त हँड़ निकाले, उन्हें ऋषि कहते हैं । ऋषियोंको हम पूर्ण—ईश्वरस्वरूप समझते हैं । यहाँपर इस वातका उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि उन तत्त्वविदेचकोंमें कुछ लिखाँ भी थीं । मिन्नभिन्न व्यक्तियों-के परस्पर सम्बन्ध-या व्यष्टि (एक पुरुष) का समष्टि (विश्व) से सम्बन्ध जिन सिद्धान्तोंसे निश्चित हुआ, वे ही प्रियान्त त्रिकालात्माधित हैं । उनका पता लगानेके पहले भी वे वर्तमान थे; आगे चलकर हम उन्हें भूल जायेंगे तो भी उनका अस्तित्व नष्ट न होगा । न्यूटनके आविष्कारके पहले भी गुरुत्वाकर्षणका नियम रुका हुआ नहीं था ।

वेदोंने काल-शारूलके पंजसे छूटनेका उपाय बताया है । भगवान् श्रीकृष्णने, जिन्हें हम हिंदू परमात्माका पूर्णवितार मानते हैं, भववागरसे तरनेकी रीति बतायी है । सूषिके साथ नियम जिसके अनुरोधसे चलते हैं, जो जड़ और चेतनमें भरा हुआ है, जिसकी आजासे वायु बहता है, आग जलाती है, भैर जल वरमाते हैं और मृत्यु हरण करती है, उस परमात्माकी पूजा करो । उसीकी ऋग्विलोग प्रार्थना करते हैं—  
ऐ गर्वत्वारी दयामय ! तृष्णारा पिताओं तृ ही हमारी माता, तृ ही दग्धु, मित्र और संमारकी मद शक्तियोंका अधिष्ठाता है । तृ सद विश्वसा भार सदता है, हम तेरे पास इस जीवन-

का भार सहनेकी शक्तिके लिये याचना करते हैं । इस जन्म तथा अन्य जन्ममें उससे बढ़कर और किसीपर प्रेम न हो, यह भावना मनमें दृढ़ कर लेना ही उसकी पूजा करना है । मनुष्यको संसारमें कमल-पत्रके समान अलिस्त रहना चाहिये । कमल-पत्र जलमें रहकर भी नहीं भींगता; इसी तरह कर्म करते हुए भी उससे उत्पन्न होनेवाले मुख-दुःखसे यदि मनुष्य अलग रहे तो उसे निराशासे सामना नहीं करना होगा । सब काम निष्काम होकर करो, तुम्हें कभी दुःख न होगा ।

\* \* \* \* \*

आत्मा पूर्ण ईश्वरस्वरूप है । जड शरीरसे उसके बद्ध होनेका आभास होता है सही, पर उस आभासको मिटा देने-से वह मुक्त-अवश्यामें देख पड़ेगा । वेद कहते हैं कि जीवन-मरण, मुख-दुःख, अपूर्णता आदिके बन्धनोंसे छूटना ही मुक्ति है । उत्क बन्धन विना ईश्वरकी कृपाके नहीं छूटते और ईश्वरकी कृपा अत्यन्त पवित्र-हृदय विना हुए नहीं होती । जब अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध और निर्मल अर्थात् पवित्र हो जाता है; तब जिस मृत्युण्ड देहको जड या त्याज्य समझते हो, उसीमें परमात्माका प्रत्यक्षरूपसे उदय होता है और तभी मनुष्य जन्म-मरणके चक्रसे छूट जाता है । केवल कल्पना-चित्र देखकर या शब्दाङ्गुष्ठरपर मुख होकर हिंदू समाधानका अनुभव नहीं करते । दस ईन्द्रियोंद्वारा जो न जानी जाती हो, ऐसी किसी वस्तुपर हिंदुओंका विश्वास विना अनुभव किये न होगा । जड-सृष्टिसे अतीत जो चेतन तत्त्व है, हिंदू उससे विना किसी विचरणके (प्रत्यक्ष) मिलेंगे । किसी हिंदू सृष्टिसे पूछिये ज्ञावाजी, क्या परमेश्वर सत्य है? वह आपको उत्तर देगा मनःसदेह सत्य है; क्योंकि उसे मैंने देखा है । आत्मविश्वास ही पूर्णताका बोधक है । हिंदू-धर्म किसी मतको सत्य या किसी सिद्धान्तको मिथ्या कहकर अंधश्रद्ध बननेको नहीं कहता । हमारे ऋषियोंका कथन है कि जो कुछ हम कहते हैं, उसका अनुभव करो—उसका साक्षात्कार करो । मनुष्यको परिश्रम करके पूर्ण पवित्र तथा ईश्वरस्वरूप बनना चाहिये । ईसाई-धर्म आसमानी पिताकी कल्पना की गयी है । हिंदू धर्म कहता है—उसे अपनेमें प्राप्त करो, ईश्वर बहुत दूर नहीं है ।

\* \* \* \* \*

इमें मर्द नहीं कि पर्याप्त गणाध्यन उभतिमें वादा लालता है; पर अंधश्रद्धा उसमें भी भवनक है। इसाइयोंको प्रार्थनामें लिये मनिदृक्षकी क्या आवश्यकता है? क्रोके चिह्नमें परिव्रता कीमें आ गयी? प्रार्थना करते यमय और्जिं क्यों मूरू लेनी चाहिये? परमेश्वरके गुणोंका वर्णन करते हुए प्रोटर्स्टेट्ट इसाई मतियोंकी कलना क्यों करते हैं? क्षेत्रिक पन्थनालोंको मूर्तियोंकी क्यों आवश्यकता हुई? भाइयों। श्रान्निःशास्त्रके विना दीमें जीना सम्भव नहीं, वैसे ही गुणोंकी किमी प्रकारकी भनोमय मूर्ति बनाये विना उनका चिन्तन होना असम्भव है। हमें यह अनुभव कभी नहीं हो सकता कि हमारा चित्त निराकारमें लीन हो गया है; क्योंकि जड़ विषय और गुणोंकी मिश्र-अवस्थाके देखनेका हमें अपापत हो गया है। गुणोंके विना जड़ विषय और जड़ विषयोंके विना गुणोंका चिन्तन नहीं किया जा सकता, इसी तरवके अनुसार हिंदुओंने गुणोंका मूरूल्प—हृदयस्वरूप बनाया है। मूर्तियों हृशरके गुणोंका स्वरण करनेवाले चिह्नमात्र हैं। चित्त चञ्चल न होकर सद्गुणोंकी मूर्ति—ईश्वर—में तल्लीन हो जाय—इसी हेतुसे मूर्तियाँ बनायी गयी हैं। हरेक हिंदू जानता है कि पत्थरकी मूर्ति ईश्वर नहीं है। इसीसे वे ऐह, पद्मी, अग्नि, जल, पत्थर आदि सभी दृश्य वस्तुओंकी पूजा करते हैं। इससे वे पाण्डाण-पूजक नहीं हैं। (वह मूर्तिमें भगवान् को पूजता है) आप मुखसे कहते हैं 'एसात्मन्! तुम सर्वव्यापी हो!' परंतु कभी इस वाका आपने अनुभव भी किया है? प्रार्थना करते हुए आपके हृदयमें आकाशका अनन्त विस्तार या समुद्रकी विशालता क्या नहीं हालकती! वही 'सर्वव्यापी' शब्दका हृदयस्वरूप है।

X X X

आप हिंदुस्थानकी सतियोंका इतिहास पढ़ हिंदू-धर्मको भग्यानक समझते होंगे; परंतु सतियोंके पवित्र हृदयोंतक अभी आपकी इष्टि नहीं पहुँची है। सती होना पति-प्रेमका अतिरेक है। उसमें विकृति आनेका दोष धर्मपर क्योंकर लादा जा सकता है? पूरोपके इतिहासमें देखिये, कुछ शताविद्योंके पहले धर्मकी आड़ लेकर अप्रेजनें असंख्य छोटी-पुरुषोंकी जीतें-जी जला दिया था। कई इसाइयोंने असंख्य स्त्रियोंको छोटी-जी जला दिया था। ऐसी इसाइयोंने असंख्य विद्युतोंको छोटी-जी बातें हिंदुस्थानमें नहीं होतीं। समझ है कि हिंदू-धर्मवालोंके विचार अभीतक सफल न हुए हैं, उनसे भूले हुई हैं; पर सर्वजीवितकारी यदि कोई धर्म है तो मैं

जोर देकर कहता हूँ कि वह हिंदू-धर्म ही है। हिंदू स्त्रियों पतिके सूत देहके साथ अपने शरीरकी आहुति हैं, पर कोई हिंदू कभी किसीका अपकार करेगी। मनमें नहीं लाता।

X X X

एक ग्रीकप्रबासीने बुद्धदेवके समयके भारतकी देवी वर्णन किया है, उसमें साध लिला है कि भारतकी छी पर-पुष्प-संसर्ग नहीं करती और कोई पुलुः नहीं बोलता! इस वर्णनसे हिंदुओंके उच्च चत्तिका प्राप्तको होगा। कोई बुद्ध-धर्मसे पृथक् सही है, पर उनकी यह भूल है। हिंदू-धर्म बुद्धधर्मसे मिल किंतु दोनोंके संबोगते संसारका बहुत कुछ कार्य हुआ जिस प्रकार बहुदी-धर्मसे इसाई-धर्मकी उत्पत्ति हुई। प्रकार हिंदू-धर्मका उच्चवल्लभल्प स्पष्ट करनेके लिये बुद्ध का आविर्भाव हुआ। यहौदियोंने इसके साथ छल किया, फाँसीपर लटकाया। परंतु हिंदू-धर्मवालोंने बुद्धकी अवतार कर उसकी पूजा ही की। बुद्धदेवका अवतार हिंदू-धर्मियोंके लिये नहीं, किंतु उसके तत्त्व और विचार दृश्यमें लानेके लिये—समझा, एकता और सुत तत्त्वमें प्रकाश करनेके लिये हुआ था। वर्ण या जातिका विचार कर सारी मनुष्यजातिका कल्याण करना उनका उद्देश्य था। मरीच, अमीर, छी, शूद—सभीको जानी बनानेके उद्देश्यसे प्रेरित हो कई ब्राह्मण-दिव्योंके आग्रह करनेपर उन्होंने अपने सब गन्ध संखुत-भाषामें न रचकर भाषामें सचे जो उस समय बोली जाती थी।

X X X

एक आत्माका जो मूलरूप है, वही सम्पूर्ण विद्याका भी यही नहीं; किंतु सब दृश्य-अदृश्य पदार्थ एक ही मूलसंकेत अभास हैं। सूर्यकी किरणें लाल, पीले, सोने आदि रंगोंमेंसे बुद्ध-जूदे रंगोंकी भले ही दील पड़ती हीं, यथा उनका रंग भिन्न नहीं है। विद्यन्त वह यह है 'तत्त्वमयि'। अर्थात् वही न है, जगत्से न अपनेको अलग समझ। दूसरमें द्वैत रखता है, इसीसे दुःख भोगता है। पुज्जे अस्वाध सुख भोगना ही तो अवश्य एकताका अनुभव कर। 'सर्वज्ञविद्व व्रस्त' इस विद्यान्तों विद्यान्तने भिन्न दिया कि लगाते के सब पदार्थोंमें व्रह भरा है। अपर्याप्त समस्त दृश्यतुष्टि ब्रह्मका ही व्यग्र स्पष्ट है। पुराणमें यो व्रह वही जीमिं है। आती निकालकर चलनेवाले तरण और पर्याप्त

समान जिनकी कमर छुकी हुई है, उन लड़ीके सहारे पैर खतेवाले बृद्धोंके ब्रह्म में अन्तर नहीं है। हम जो कुछ देखते हैं, दूसरे हैं या अनुभव करते हैं, वह सब ब्रह्मय है। हम रहमें रहते हैं, उसीमें सब अवहार करते हैं और उसीके आशयसे जीते हैं।

X X X

ब्रह्मकी उपासना करनेसे आपको किसीका भय न रहेगा। सिरपर आकाश फट पड़े या विजली गिर पड़े, तो भी आपके आनन्दमें कमी न होगी। साँप और देशोंसे दूसरे लोग मले ही डरें, आप निर्भय रहेंगे; क्योंकि उन कूर जन्तुओंमें भी आपका शान्तिमय स्वरूप आपको दीख पड़ेगा। जो ब्रह्मसे एकरूप हुआ, वही चीर—नहीं सच्चा निर्भय है। महात्मा ईसामधीहका विश्वास्यातसे जिन लोगोंने बध किया, उन्हें भी ईसाने आशीर्वाद ही दिया। सब्से निर्भय अन्तःकरणके गिना यह बात नहीं हो सकती। मैं और मेरा पिता एक हैं—ऐसी जहाँ भावना हो, वहाँ भयकी क्या शक्ति है कि वह पास भी आनेका साहस करे। समस्त विष्वको जो अपनेमें देखता है—उसमें ताहीन होता है, वही सच्चा उपासक है; उसीने जीवनका सच्चा कर्तव्य पालन किया है। हमारे विचार, शरीर और मन जितने निकट हैं, उससे भी अधिक निकट परमात्मा है। उनके अस्तित्वपर ही मन, विचार और शरीरका अस्तित्व निर्भर है। हरेक वस्तुका पर्याय ज्ञान होनेके लिये हमें ब्रह्मज्ञान होना चाहिये। हमारे हृदयके अत्यन्त गूढ़ भागमें उसका वास है। सुख-दुःख, शरीर और सुर्गोंके बाद युग आते और चले जाते हैं; परंतु वह ब्रह्म अगर है। उसीकी सत्ताएं संसारकी सत्ता हैं। उसीके सहारे हम देखते, सुनते और विचार करते हैं। वह तत्त्व जैसा हमारे अन्तःकरणमें, वैसा ही कुद्र वीटमें भी है। यह बात नहीं कि सत्पुरुषोंके हृदयमें उसका वास है और जोरांपें नहीं। जिस दिन हमें इस बातज्ञान अनुभव होगा, उसी दिन सब अंदेह मिट जायेंगे। जगत्का विकट प्रभ हमारे गमगें उपस्थित है, इन्हाँ उत्तर भव्य अविवृद्ध ब्रह्म। इस भावनाके अद्वितिय क्या है? भौतिक शास्त्रोंने जो भाग सम्पादन किया है, वह बच्चा जाग नहीं; सत्य ज्ञान उनसे दूर है। उनका भाग नियुक्त शान्तमन्दिरका भोपालमर है। यह युद्ध विद्यमय है—यह अनुभव होना ही सच्चा शान है। यही धर्मात् रहता है विदेशक उदिके आगे इसी धर्म-शानी विजय होगी।

X X X

परमात्मा सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी तथा नित्य मुक्त है। वही मुक्त-दशा और उससे उत्पन्न होनेवाली चिर-शान्ति प्राप्त करना सब धर्मोंका अन्तिम लक्ष्य है। जिस आवश्यकमें कभी अन्तर नहीं पड़ता, उस पूर्ण अवस्था और किसी समय भी छीनी न जानेवाली स्वाधीनता प्राप्त करनेकी सब धर्मोंकी प्रबल इच्छा है; क्योंकि सब्से मुक्ति वह स्वाधीनता ही है। हम स्वाधीनता प्राप्त करनेके राज-पथपर चलते हुए रास्ता भूल-कर भटक रहे हैं।

X X X

संसारकी प्रत्येक वस्तुमें—सूर्य, चन्द्र, अग्नि, तारागणमें तथा हमारे हृदयोंमें प्रकाशित होनेवाला तेज परमात्माका ही है। सारा संसार परमात्माके प्रकाशसे प्रकाशात्मान है। संसारमें अच्छा या बुरा—जो कुछ हम देखते हैं, उसी विश्वात्माका रूप है। वह हमारा मार्गदर्शक और हम उसके अनुचर हैं। अच्छे कर्म करनेवालेकी तरह पारीके मनमें भी वही—आवश्यकताओंको पार करनेकी—मुक्तिकी इच्छा होती है। दोनोंके मार्ग भिन्न भले ही हों, एकका मार्ग सुविधाका और दूसरेका असुविधाका हो सकता है; परंतु इससे हम यह नहीं कह सकते कि एक परमात्माके पूजनमें निर्भय और दूसरा उससे वियुक्त है। भिन्न मार्ग तो केवल उपाधि-मेदमात्र है। जिन भेदोंसे संसारमें भिन्नता दीख पड़ती है, उन्हें हटा दीजिये; सबका मूल एक ही दृष्टिभौत्तर होगा। उपनिषदोंने यही बात सिद्ध की है। गुलाबकी मधुर सुगन्ध, पक्षियोंके चित्र-विचित्र पक्ष और हमारा चेतन एक ही परमात्माके विविध स्वरूप हैं। सब संसार उसीपर अबलग्नित है। वही अमर चेतनरूप है और समस्त संसारका संहारकर्ता भी। व्याधको देख लगोश जैसे चारों ओर भासने लगते हैं, हम भी वैसे ही इश्वरके उग्र रूपको देखकर भाग रहे हैं। लगोश बिलोंमें बुसकर व्याधसे जान भले ही बचा ले, पर सर्वव्यापी परमात्मासे पृथक् होकर हम कहाँ रह सकेंगे?

X X X

मैं एक बार काशी गया था। वहाँके एक मन्दिरमें वहुत से हृष्टपुष्ट और उपद्रवी वंदन थे। मैं दर्शन कर मन्दिरसे बाहर निकल और ऐसे तंग रास्तेसे चला कि जहाँ एक जो बड़ा भारी तालाब और दूसरी ओर वहुत ऊँची दीवार थी वंदरोंने वीच रास्तेमें मुझे घेर लिया। अब मैं वहाँसे भागा मुझे भागते देख वंदर और मीं मेरे पीछे पड़ गये औं

काटने भी लगे। यह तमामा देख दूर लड़े हुए एक आश्वर्णि कहा—“आप डरकर भागते क्यों हैं? उनसे निर्भय हो सामना कीजिये, वे आपसे खुद डरकर भाग जायेंगे!” मैंने ऐसा ही किया और सब बंदर धीरे-धीरे भाग गये। यही बात संसारकी है। अनेक विद्वान्वादाओंसे—ईश्वरके भयानक रूपसे हम डरकर भाग जायेंगे तो मुक्तिसे हाथ धो जैलोंगे। हम विपत्तियोंसे जितना डरेंगे, उतना ही वे हमें चक्रमें डाल देंगे। भय, दुःख और अशानका डटकर सामना कीजिये। किसी कथिने कहा है—

‘मर्ही जो खासे डरते वही उस मुरको पाते हैं।’

X X X

परमात्मा सुख और शान्तिमें निवास करता है, यह बात सत्य है; तो फिर दुःख तथा विपत्तियोंमें उसका अस्तित्व क्यों न माना जाय। दुखोंसे डरना रसीदोंको सौंप समझकर डरनेके बराबर है। आनन्ददायक और दुःखकारक, नयनसनोहर और भयानक—सभी तरहकी वस्तुओंमें ईश्वरका बास है। जब सबमें आपको परमात्मा दीख पड़ेगा, तब किस दुःख या संकटकी भजाल है जो आपके सामने भी खड़ा रहे। घेदजुदि नष्ट होकर जब नरक और स्वर्ग एक-से ही सुखदायक हो जायेंगे, तब सब विद्वान्वादाएँ अपने-आप मुक्तिके दरवाजे से हटकर आपका रास्ता साफ बना देंगी और तभी आपकी सत्य स्वरूपसे मेंट होगी। भिन्नता दूरकर समता बढ़ाइये। भयके अन्धकारसे निर्भयताके प्रकाशमें चले आइये।

X X X

हम मुँहसे लंबी-नौँडी बातें करते और तत्त्वज्ञानकी सत्तिं बहा देते हैं। परंतु सामान्य काणोंसे क्रोधसे लाल ही अहंकारके अधीन हो जाते हैं। उस समय कुद्र देहका अहंकार ही सुषिका चेतन बन जाता है। चेतनको इतना कुद्र बना लेना मानवजातिकी उत्तमिमें बड़ी भारी आवा है। ऐसी अवस्थामें हमें सोचना चाहिये कि मैं निस्सीम चेतन हूँ, मुक्त हूँ। क्रोध और क्रीड़का कारण मीं ही हूँ, फिर द्व्यर्थ अहंकारके बर्षीभूत होना क्या मेरे लिये उचित है?

X X X

परमेश्वरकी प्रार्थना करते समय हम अपना सारा भार उनको सौंपते हैं और दूसरे ही क्षण क्रोध और अभिमानके बर्षीभूत होकर उसे छोड़ लेते हैं। इस प्रकार कहीं उनकी उपासना होती है। सच्ची पूजा तत्त्वज्ञानी धारपर चलने अथवा खड़े होती है। सच्ची पूजा तत्त्वज्ञानी की उपासना नहीं हो सकता। इस दीवारने जग्म पालर नगी दूरता नहीं हो सकता है। इस दीवारने जग्म पालर नगी दूरता अनुभव न किया होगा और न इसका किमीर प्रमाण होता है।

बुल्ल जान जो अपना रास्ता तय करता है, वही सात्तद-साम्राज्यतक पहुँचता है। विद्वान्वादाओंसे डरना त्रैलोक्यविद्वान् सच्चे बीरका काम नहीं, वह तो ऐसी आपत्तिको हाँसा है करता है। सच्चे दृश्यसे यह कीजिये, आपको असूके दरने विषकी धूँट पीनी नहीं पड़ेगी। हम देव और दैत्य दोहें स्वामी होनेके योग्य हैं। हमें परमात्मासे यही प्रार्थना करने चाहिये—“सर्वव्यापिन्! हम तुम्हें सर्वस्व अर्पण कर दुके हैं। हमारे अच्छे-बुरे कर्म पाप-पुण्य, सुख-दुःख—सभी तुम समर्पित हैं।”

X X X

हमारे बहु हजारों चित्तोंपर प्रभुत्व प्राप्त करनेके लिये हो रहे हैं; परंतु दुःखकी बात है कि हजारों चित्त लापर ही प्रभुत्व दिला रहे हैं। सुखदायी वस्तुओंका रसाखाद लेनेही हमारी इच्छा है, परंतु वे ही बखुएँ हमारा कलेजा खा रहे हैं। सुषिकी सारी सम्भति हजम कर जानेके हमारे विचार हैं परंतु सुषिकी ही हमारा सर्वस्व छीन रही है। ऐसी विपरीत बातें क्यों होती हैं? हम किमीं आसकि रखते हैं—सुषिके जालमें अपने-आप जा फँसते हैं—यही इस विपत्तिका कारण है।

X X X

कुद्रमी-निष्ठ, धर्म-कर्म, बुद्धि और बाहरी विषयोंके प्रति लोगोंकी जो आसक्ति देखी जाती है, वह केवल दुःख-प्राप्तिके लिये है। परंतु जित आसक्तिको लोग सुखमात्रा समझ देते हैं, उससे सुखके बदले दुःख ही मिलता है। मिला अनासक्त हुए हमें आनन्द नहीं मिलेगा। इच्छाओंमें भूल हृदयमें उत्साह होते ही उसे उत्साहकर फेंक देनेकी जिमीं शक्ति है उनके समीप दुखोंकी छायातक नहीं पहुँच गवती। असक्त आसक्त भनुष्य उत्साहके साथ जित प्रकार कर्म करता है, उसी प्रकार कर्म करते हुए भी उससे एकदम नाम तोड़ देनेकी जिमीं सामर्थ्य है। वही प्रहृतिशास्त्र अनन्द सुखोंका उपसोग कर सकता है। परंतु यह दिवा तम प्राप्त ही सकती है, जब कि उत्साहने कार्य करनेकी आपकि श्री उससे पृथक् होनेकी अनासक्तिका बल नमान हो। कुद्र लोग विल्कुल अग्रासक देख पड़ते हैं। म उनका किनीर प्रमाण होता है, और न वे संसारमें ही लीन रहते हैं। मातो उनका दृश्य कथावा बना होता है। वे कर्मी दुखी नहीं दीख पड़ते। परंतु मातोंमें उत्सकी योग्यता कुछ भी नहीं है; क्योंकि उनका मनुष्यन नहीं हो सकता है। इस दीवारने जग्म पालर नगी दूरता अनुभव न किया होगा और न इसका किमीर प्रमाण ही हो।

गा। यह आरम्भ से अनासक्त है। परंतु ऐसी अनाधिति से औ आसक्त होकर दुश्ख भोगना ही अच्छा। पत्थर बनकर ठेनेसे दुःखोंसे सामना नहीं करता पड़ता—यह बात सत्य है। परंतु फिर सुखोंसे भी तो वज्जित रहना पड़ता है। यह केवल चित्तकी दुर्व्वलतामात्र है। यह एक प्रकारका मरण है। जब बनना हमारा साथ नहीं है। आसक्त होनेपर उसका स्वाग करनेमें पुरुषार्थ है। मनकी दुर्व्वलता सब प्रकारके बन्धनोंकी जड़ है। दुर्व्वल मनुष्य संसारमें तुच्छ शिना जाता है। उसे यशः-प्राप्तिकी आशा ही न रखनी चाहिये। शारीरिक और मानसिक दुश्ख दुर्व्वलतासे ही उत्पन्न होते हैं। हमारे आस-पास लालों रोगोंके कीटाणु हैं; परंतु जबतक हमारा शरीर सुधृद है, तबतक उसमें प्रवेश करनेका उन्हें साहस नहीं होता। जबतक हमारा मन अद्वितीय नहीं हुआ है, तबतक दुर्व्वलोंकी कथा मजाल है जो के हमारी ओर अँख उठाकर भी देखें। शक्ति ही हमारा जीवन और दुर्व्वलता ही मरण है। मनोबल ही सुखसंबंध, चिरन्तन जीवन और अमरत्य तथा दुर्व्वलता ही रोगसमूह, दुश्ख और मृत्यु है।

X X X

किसी वस्तुपर प्रेम करना—अपना सारा ध्यान उसीमें लगा देना—दूसरोंके हित-साधनमें अनन्द-आपको भूल जाना—... यहाँतक कि कोई तलबार लेकर मारने आये, तो भी उस औरसे मन न्यलायमान न हो—इतनी शक्ति ही जाना भी एक प्रकारका दैवी गुण है। यह एक प्रबल शक्ति है, परंतु उसीके साथ मनको एकदम अनासक्त बनानेका गुण भी मनुष्यके लिये आवश्यक है; क्योंकि केवल एक ही गुणके बलपर कोई पूर्ण नहीं हो सकता। यिलारी कभी सुखी नहीं रहते; क्योंकि उन्हें अपने निर्वाहकी समझी लुटानेमें लोगोंकी दया और तिरस्कारका अनुभव करना पड़ता है। यदि हम अपने कर्मका प्रतिफल नहीं तो हमारी गिनती भी पियारियोंमें होकर इसे सुख नहीं मिलेग। देन-लेनकी विधिकृति अदलमन्मन बननेसे हमारी दाय-दृश्य कैसे कूट सकती है। धार्मिक लोग भी कीर्तिकी अवैद्या रखते हैं; प्रेमी प्रेमका बदला चाहते हैं। इस प्रकारकी अवैद्या या सुखा ही तब दुःखोंकी जड़ है। कभी-कभी व्यापरमें हानि उठानी पड़ती है प्रेमके बदले दुश्ख भोगने पड़ते हैं; इसका कारण क्या है? हमारे वार्ष अनामक होकर किसे हुए नहीं होते—ज्ञाना हमें जीकाती है और खेतर हमारा तमाशा देखता है। प्रतिफल-र्षी आशा न रखनेवालोंसे ही सज्जो यशः-प्राप्ति होती है।

साधारण लौरसे विचार करनेपर यह बात व्यवहारसे विक दीख पड़ेगी; परंतु बास्तवमें इसमें कोई विरोध नहीं, विविरोधाभासमात्र है। जिन्हें किसी प्रकारके प्रतिफलकी इच्छा नहीं, ऐसे लोगोंको अनेक कष्ट भोगते हुए हम देखते हैं परंतु उनके बे कष्ट उन्हें प्राप्त होनेवाले सुखोंसे सामने पासगे बराबर भी नहीं होते। महात्मा इसने जीवनभर नियमाभावसे परोपकार किया और अस्तमें उन्हें फाँसीकी सजा मिली यह बात असत्य नहीं है। परंतु सोचना चाहिये कि अनासक्ति के बलपर उन्होंने साधारण विजय-सम्पादन नहीं किया था करोड़ों लोगोंको मुक्तिका रस्ता बतानेका पवित्र यश उन प्राप्त हुआ। अनासक्त होकर कर्म करनेसे आत्माय प्राप्त हुए अनन्त सुखके आगे उनका शरीर-कष्ट सर्वथ नगण्य था। कर्मके प्रतिफलकी इच्छा करना ही दुर्घटोंविमलन्यां देना है। यदि आपको मुखी होना हो तो कर्मके प्रतिफलकी इच्छा न करिये।

X X X

इस बातको आप कभी न भूलें कि आपका जन देनेके लिये है; लेनेके लिये नहीं। इसलिये आपको जो कुछ देना हो, वह बिना आपक्षि किये बदलेकी इच्छा न रखकर दीजिये। नहीं तो दुश्ख भोगने पड़ेगे। प्रकृतिके नियम इसके कठोर हैं कि आप प्राप्ततासे न दैर्घ्ये तो वह आपसे जवारदस्ती छीन लेगी। आप अपने सर्वस्वको छाड़ जितने दिनोंतक छातीसे लगाये रहें, एक दिन प्रकृति उसे आपकी जातीप सबार द्वी लिये बिना न छोड़ेगी। प्रकृति वैदेशान नहीं है आपके दानका बदला वह अवश्य त्यक्त देगी; परंतु बदला पानेके इच्छा करने तो दुश्खके सिद्धा और कुछ हाथ न लगेगा। इससे तो राजी-खुशी दे देना ही अच्छा है। सूर्य सुदूरका जल सोखता है तो उसी जलसे पुनः प्रृथ्वीको तर भी कर देते हैं। इसके लेकर दूसरोंको और दूसरेसे लेकर फहलेको दैन सुषिका काम ही है। उसके नियमोंमें वाशा डालनेकी हसार शक्ति नहीं है। इस कोडिरीकी हवा जितनी दहर निकलकर रहेगी, वाहसे उतनी ही ताजी हवा पुनः इसमें आई जायगी और इसके दरसावे आप बंद कर देंगे तो याहरते हवा आना तो दूर रहा, इसमेंकी हवा विषाक होकर आपको मृत्युके अधीन कर देगी। आप जितना अधिक देंगे, उससे हजारगुना प्रकृतिये आप पायेंगे। परंतु उसे पानेके लिये धीरज रखनी होगी। अनासक्त बनना अस्तम्भ कठिन है। ऐसी दृष्टि बननेके लिये महान् शक्ति प्राप्त

होगी चाहिये । हमारे जीवनस्ती बनमें अनेक जाल बिछे हुए हैं; बहुतसे लाँप, विच्छू, सिंह, सियार स्वेच्छासे घूम रहे हैं; उनसे बचकर अपना रास्ता सुधारनेमें हमारे शरीरको चाह जितने कष्ट क्यों न सहने पड़ें, हाथ-पैर ढटकर हमारा सारा शरीर खूनसे लथपथ क्यों न हो जाय, हमें अपनी मानसिक ढदता ज्यों-की-त्यों बनाये रखनी चाहिये—अपने कर्तव्यपथसे जरा भी न डिगना चाहिये ।

X            X            X

अपनी पूर्वदशापर विचारकर क्या हम यह नहीं समझ लेते कि जिनपर हम प्रेम करते हैं, वे ही हमें गुलाम बना रहे हैं—ईश्वरकी ओरसे विमुल कर रहे हैं—कठपुतलियोंकी तरह नचा रहे हैं; परंतु मोहवश हम पुनः उन्हेंके चंगुलमें जा फँसते हैं । संतारमें सजा प्रेम, सजा निःस्वार्थभाव दुर्लभ है—यह जानकर भी हम संसारसे अलिङ्ग रहनेका उद्योग नहीं करते । आसकि हमारी जान मार रही है । अम्यासये कौन-सी चात सिद्ध नहीं होती ? आसकिकी भी अन्याससे हम हृदय सकते हैं । दुःख भोगनेकी जबतक हम तैयारी न कर लेंगे, तबतक वे हमारे पास भी नहीं आयेंगे । हम खुद दुःखोंके लिये मनमें घर बना रखते हैं; फिर यदि वे उसमें आकर बसें तो हसमें उनका क्या अपराध है ! जहाँ मरा हुआ जानकर पड़ा रहेगा, वही कौए और गीध उसे खाते हुए दीख पड़ेंगे । रोग जब किसी शरीरको अपने बसनेयोग्य समझ लेता है, तभी उसमें प्रवेश करता है । भूखता और अभिमानको किनारे रखकर हमें पहले यह सीखना चाहिये कि हम दुःखोंके शिकार न बनें । जब-जब व्यष्टिहासमें आपने टोकरें खायी होंगी, तब-तब उसकी तैयारी आपने पहलेसे ही कर रखली होगी । दुःखके भारदर्शक हम ही हैं । बाह्यसृष्टि भी उन्हें हमारे सामने ढकेलती है; पर हम चाहें तो उनका सहजमें प्रतीकार कर सकते हैं । बाह्य जगत्-पर हमारा अधिकार नहीं, परंतु अन्तर्जगत्-पर पूर्ण अधिकार है । यदि हम इसी भावनाको ढढकर पहलेसे ही सचेत रहें तो हमें दुःखोंसे समना नहीं करना पड़ेगा ।

जब हमें कोई दुःख प्राप्त होता है, तब हम उसका दोष किसी दूसरेपर लादना चाहते हैं, अपनी भूलको नहीं देखते । 'कुनिया अन्धी है,' 'इसमें रहनेवाले सब लोग गढ़हैं !' यह कहकर हम अपने मनको संतोष कर लेते हैं । परंतु सोचना चाहिये कि कुनिया मतलबी है—दुरी है, तो सबमें हम क्यों रहते हैं ! सबपर यदि गढ़हेका अरोप किया

जा सकता है, तो हम उस विशेषणसे कब छूटते हैं । हम सब कुछ नहीं, संसारका निरीक्षण करनेके पहले हमें अन्त सूक्ष्म निरीक्षण करना चाहिये । संसारको वृथा दौध देन शुद्ध बोलना सच्चे बीरका लक्षण नहीं है । धीर बृत्तिये हैं सच बोलिये । आपमें शक्ति होगी तो दुख आपसे होला क्योंकि वह किसीके भेजनेसे आपके पास नहीं आता अपने स्वयं उसे बुलाते हैं ।

X            X            X

आप अपने पुरुषार्थकी प्रशंसा करते समय लोगोंने यही दिखानेका बदल करते हैं कि मैं सब कुछ जानता हूँ । यह सो कर सकता हूँ; मैं द्वादश—निदोष हूँ—ईश्वर हूँ निष्कलंक हूँ; संसारमें यदि कोई स्वार्थत्यागी हो तो वह ही ही हूँ । परंतु उसी समय आपके शरीरपर कोई छोटी-नी कंकड़ी फेंके लो तो पापका गोला लगनेके समान आपको दुःख होता है; छोटेसे बच्चेकी एक यथाइसे आप आगवकूल हो जाते हैं । आपका मनोवल इतना क्षीण है,—आपकी गद्द-शक्ति इतनी अल्प है—तब फिर आप सर्वमर्मर्थ करते हैं । जब मन ही इतना दुर्बल है कि एक अकिञ्चन भूखके उत्तेजे आपकी शान्ति भंग हो जाती है, तब दुःख बेचारे आपका दीन क्यों न करेंगे ? परमात्माकी शान्तिको भंग करनेकी भत्ताकिसी सामर्थ्य है ? यदि आप सचमुच परमेश्वर हैं तो तुम तेजर भी उलटा होकर टैंग जाय—आपकी शान्ति कभी भंग नहीं हो सकती । आप नस्कके ओरसे छोरतक चले जायें—कर्म आपको कष्ट न होंगे । बास्तवमें आप जो कुछ मुँहसे करते हैं, उसका अनुभव नहीं करते; इसीसे संसारको दोरी ठहरते हैं । आप अपने दोपांको पहले हठा दीजिये तब संगोंगे दोषी कहिये । 'अमुक भुजे दुख देता है,' 'अमुक मेरे कान उमेठता है' यह कहना आपको शोभा नहीं देता । कोई किसीको दुःख नहीं देता, आप स्वयं दुःख भोगते हैं । इसमें लोगोंका क्या दोष है ? दूसरोंके दोष देखनेमें आप जितना समय लगाते हैं, उतना आपने दोष सुनारेनामें लगाने । आप अपना चरित्र सुधारेंगे, अपना आचरण परिवर्तनाएं तो संसार आप ही सुधर जायगा । संसारको मुग्धामें साधन हम मनुष्य ही हैं । जिस दिन आप एर्षं हो जाएंगे, उस दिन संसार अपूर्ण न रहेगा । आप स्वर्ण अरिज योगदीं उद्योगमें लगिये, यही कर्मका रथ यह है ।

X            X            X

मनुष्यमें विशेषता उसमें करनेवाले गिरावंगतामें

द निकाले हैं और वे सब समय, देश तथा पात्रोंके अनुकूल । कोई श्रीमान् हो या दरिद्र, संसारी हो या संन्यासी, जग्मकाजी हो या आरामदल्लव—हरेक मनुष्य अपनी वेशेषताओं—अपने स्वरूपको—दृढ़ कर सकता है । इसमें सदैह नहीं कि जड़ शास्त्रोंके खोजे हुए जड़ नियमोंके सूक्ष्म रूपोंको अब पता लग गया है । ‘सर्वे ब्रह्ममयं जगत्’—इस तिदान्तसे यह सिद्ध हो चुका है कि जड़ विश्व, सूक्ष्म विश्व, अन्तःसृष्टि आदि भेद छठे हैं; वे केवल शब्दभेदमात्र हैं । हम अपने या संसारके स्वरूपको शङ्कुकी उपमा दे सकते हैं । शङ्कुका विश्वतृत निम्न भाग जड़ विश्व या स्थूल अरीर और सूक्ष्म अग्रभाग चेतन या आत्मा है । उसीको हम ईश्वर कहते हैं । बास्तवमें जीव और शिवमें भेद नहीं है ।

X            X            X

हरेक वस्तुकी शक्ति स्थूल रूपमें नहीं किंतु सूक्ष्म रूपमें होती है । उसकी गति अत्यन्त शीघ्र होनेसे वह हमें दीख नहीं पड़ती; परंतु जब वह स्थूल वस्तुके द्वारा प्रकट होती है, तब उसका अनुभव हमें ही चलता है । कोई बल्मीय पुरुष जब किसी बोझको उठाता है, तब उसकी नर्ते पुष्ट दीख पड़ती है; परंतु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि वोक्षा उठानेकी शक्ति उन नर्तोंमें है । उस पुरुषके ज्ञान-तनुओंकी शक्ति उन नर्सोंद्वारा प्रकट हुई है । ज्ञानतनुओंको उनसे भी सूक्ष्म वस्तुद्वारा शक्ति प्राप्त होती है और उस सूक्ष्म वस्तुको हम विचार कहते हैं । जलके नीचेसे जब बुलबुल उठता है, तब वह हमें दिखायी नहीं देता; परंतु ज्यों-ज्यों वह

अपरको आने लगता है, ज्यों-ज्यों उसका रूप अधिक स्पष्ट हो चलता है । विचारोंकी भी यही चात है । जब वे बहुत सूक्ष्म होते हैं, तब हमें उनका अनुभव नहीं होता—हृदयमें वे कब उठते हैं, इसका भी पता नहीं चलता । परंतु मूल-स्थानोंको छोड़कर जब वे स्थूल रूपसे प्रकट होने लगते हैं, तब उन्हें हम अपने चर्मचक्षुओंसे भी देख लेते हैं । लोगोंकी यह शिकायत सदा ही वही रहती है कि अपने विचार और कार्योंपर हमारा अधिकार नहीं चलता । यदि विचारोंके उठते ही हम उनका नियमन कर सकें—स्थूल कार्योंकी सूक्ष्म शक्तिको अपने अधीन बनाये रहें—तो यह सम्भव नहीं कि हमारा मन अपने कावूमें न रहे । और जब हम अपने मनपर पूरा अधिकार जमा लेंगे, तब दूसरोंके मनपर अधिकार जमाना हमारे लिये कठिन नहीं रह जायगा; क्योंकि सब मन एक ही विश्वव्यापी समष्टि मनके अंशस्प हैं । मिट्टीके एक ढेलेसे देस्की कल्पना की जा सकती है । अपने मनपर अधिकार जमानेकी कला जान लेनेपर दूसरोंके मनपर हम सहज ही अधिकार जमा लेंगे । मनोनिग्रह सबसे बड़ी विद्या है । संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं, जो इसके द्वारा सिद्ध न हो । मनोनिग्रहसे शरीरसम्बन्धी बड़े-बड़े हुँख तिनकेसे प्रतीत होंगे । मानसिक हुँखोंको मनोनिग्रही पुरुषके पास आनेका साहस न होगा और अपश्य तो उसका नाम सुनकर भागता फिरेगा । सब धर्मोंने नीति और अन्तर्वाद पवित्रताका संसारको किस लिये उपदेश किया है? पवित्रता और नैतिकतासे मनुष्य अपने मनका निग्रह कर सकता है और मनोनिग्रह ही सब सुखोंका मूल है ।

## श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी

(जन्म—दैग्या सन् १२४८, १९श्रावण; देहत्याग—सन् १३०६, २० अग्स्ट; जन्म-स्थान—ग्राम दहकुल, बिला नदिया, बंगाल।)

जो प्रभुको प्राप्त कर लेते हैं, वे कहते हैं—‘प्रभु तुम्हारी जय हो । मैं भर जाऊँ।’ जो व्यक्ति प्रभुको प्राप्त कर लेता है, तब तिर अपना अस्तित्व नहीं स्वरूप नाचाहता, उसका कुछ भी नहीं रहता । मैं यत्ता हूँ, मैं जगनी हूँ—यह सब चल जाता है । रह जाता है किन्तु इतना ही कि मैं प्रभुका दास हूँ । मैं नित गत्य है । जगन्नाथ नहीं है, कहुनी नहीं है, उनमें जागरों भास तथाष्ट चल रहा है । दूर्यों, चन्द्रमा, दानुष, गरी, गदा, गृह, दत्ता, सम्भान प्राणी अपना-अस्ता कार्य रह रहे हैं । मैं प्रभु भासारण चीज़ नहीं है जो

बाणीसे बताये जा सकें । उनको देखा जा सकता है । वे ही धर्म हैं । उनसे प्राण परिवृत्स होते हैं । मैं नितान्त ही अनुप्रुक हूँ; आपलोग आशीर्वाद करें कि मैं जैसे अपनी माँकी पास लड़ा होता हूँ, वैसे ही उनके पास लड़ा हो सकूँ । वे मेरी माँ हैं, जननी हैं,—इस प्रकार कब उन्हें पुकार सकूँगा । मैं आडम्बर नहीं जाहता । हे सत्यरेवता! सब सत्य है । मैं और कुछ भी नहीं चाहता; तुम्हीं धन्य हो, तुम्हीं धन्य हो ।

X            X            X

\* संत वचन सीतल सुंदरा करते तापन्नय नांदन \*

दीननाथ, दीनबन्धु ! मैं और कुछ नहीं चाहता । मैं नराघम हूँ, मैं अबोध हूँ, मैं मूर्ख हूँ । दयामय, तुम्हीं एक-मात्र दयाल हो । हे प्रभु ! हे बंगालके धन ! वडे दयाल हो तुम । हस प्रकार परिचय दिये निना क्या मेरी रक्षा होती ? मेरे हृदयके धन ! प्रभु ! मैं कुछ नहीं जानता । मैं कुछ नहीं जानता । मैं क्या कहूँ ? मेरी इच्छा होती है यह कहने की कि इस शरीरका एक-एक ढुकड़ा मांस भी तुम हो; परंतु तुमको अपना अस्थि-मांस बताकर भी मुझे तृप्ति नहीं । मेरे प्राणकी वस्तु तुम हो । तुम्हारे शरणावन्न हूँ मैं ।

X X X

मा ! मेरा सब कुछ भुला दो; जान-बूझकर जो अभिमान करता हूँ, वह सब भुला दो, जिससे मैं शयनमें, स्वप्नमें भी तुम्हें 'माँ' कह सकूँ । जैसा लड़कपनमें मुझे कर रक्खा था, वैसा ही फिर कर दो । तुच्छ हूँ मैं, तुच्छ हूँ मैं, तुच्छ हूँ मैं; केवल तुम्हारी ओर ही दृष्टि रखूँगा, मुझे भय नहीं है । मेरी माँ ! तुम्हीं धन्य हो, तुम्हीं धन्य हो ।

X X X

माँके सामने प्रार्थना कैसी । हठ करता हूँ, कितना क्या कहता हूँ, क्या-क्या चाहता हूँ । तुमलोग कहते हो—माँ मुझे रुपये नहीं देती, दवा नहीं देती । नहीं, माँ मुझको सब देती है । धन देती है, दवा देती है, शरीरपर हाथ करती है, सुलाती है, राज-रजवाड़े कोई मुझे कुछ भी नहीं देते ।

X X X

मेरे प्रभु ! मैं और कुछ नहीं चाहता, तुमको चाहता हूँ । प्रभु ! तुम अपमानमें, शोकमें, दुःखमें फेंककर मुझे जलाते हो—इससे क्या ! मुझे अपना बनालिनेके लिये तुम्हारी जो इच्छा हो, वही करो । यथार्थमें ही यदि उनकी चाह होती है तो वे मिलते हैं । खोजते-खोजते, हाथाकार करते-करते, देखता हूँ—पीछे-पीछे कौन फिर रहा है ? कौन हो तुम ! तुम कौन हो मेरे पीछे ? एक बार, दो बार देखता हूँ, पहचान लेता हूँ । 'परिषूरामानन्दस्' से सारा ब्रह्माण्ड भर गया । उनके लिये भाषा नहीं है, शब्द नहीं हैं । विचार आया—कितना क्या कह जाऊँ, उनकी कितनी बातें प्रकट कर दूँ । परंतु उसी समय निर्वाणकी तरह—अज्ञानीकी तरह हो जाता हूँ । (क्या कहूँ ?) न उनकी कहीं उपमा है, न तुलना है । गुणके स्वप्न-दर्शनकी भाँति ।

X X X

जो धर्मके लिये लालायित हैं और धर्मका आचरण

करते हैं, उनके ऊपर मानो पत्थर झलता रहता है कि निःप्रकार जरा-ता अहंकार-अभिमान आते ही तिरसरि पड़ेगा । जिन लोगोंकी धर्मकी ओर दृष्टि नहीं है उन्हें बात दूसरी है । जैसे धानको हवामें उड़ानेपर एक हस्त धान गिरता है और दूसरी ओर भूसा, उसी प्रकार भास्त अच्छे-बुरेको पृथक्-पृथक् कर देते हैं ।

X X X

धर्मके साथ धन, मान या सांसारिक वस्तुकी भार करनेपर वह भाग जायगा । समय-समयपर अच्छा आहर में आवश्यक है, किंतु शरीर-रक्षाके लिये अनन्तका तिथि प्रयोग है; इसी प्रकार उपासनाके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये ।

X X X

यथार्थ भक्तिरस सुधाकी तरह है । जितना पीया जायगा उतनी ही और पीनेकी इच्छा होगी ।

X X X

अविश्वासी आदमी ईश्वरके पास मन-प्राणको बदला रखता है और कुछ दिनोंके बाद लौटा लेता है; ऐसा पूर्ण विश्वासी अपनेको सम्पूर्णरूपसे उनके हाथों के डालता है ।

X X X

पापका विष भीतर रहता है और प्रकाश यहर । बाहरी प्रकाशको रोककर निश्चिन्त मत हो जागा । भीतरे जहरको विद्युत बाहर निकाल फेंकना ।

X X X

चास्तिक धर्मका लक्षण है—ईश्वर अनन्त ब्रह्माण्डकी रुजन करके उसे चला रहे हैं । उनकी विधि, व्यवहा नियम, प्रणाली—सब अव्यर्थ हैं । प्रत्येक पदार्थकी योग दृष्टिपात करनेपर सबमें असीमताका बोध होता है । जिन्होंने सुष्ठि होती है, उसके लिये व्यवस्था है, नियम है । यह हमलोग जो जरा-सी अधिक हवा, क्षड़, वृषाण, गांड़ वर्ग होनेपर सुष्ठिकर्ताका अतिक्रम करके अमं दियाँ असंतोष प्रकट करते हैं, यह इसलिये कि मूलमें हमाँ अविश्वास है । इस अविश्वासकी जड़ क्या है ? परनिन्दा, द्वेष और स्वार्थका निन्तन करते रहनेसे इस दुर्योगितार्थी इर्देह होती है; इसलिये धार्मिकोंको एक लज्जा है जिने प्राजनेपर भी परनिन्दा नहीं करते, आत्म-प्रशंसाको [गिर] समान समझते हैं, हिसाको दृढ़रूप स्थान नहीं देते । जीवके प्रति दया, भगवान्में विश्वास रखकर गंतांगी नहीं

बेताते हैं। असंतोषका जन्म अविद्यासे होता है; परंतु वास्तविक धार्मिक पुरुषकी स्थिति है सुखमें रख्यो या दुःखमें तुम्हारी दी हुई सम्पत्ति-विपत्ति दोनों ही मेरे लिये समान है। इस अवस्थाकी प्राप्तिके लिये आत्मदृष्टि होनी चाहिये।

X            X            X

विश्वासी भक्त हरिसंकीर्तनके समय भाव-विभोर होकर तन्मयताको प्राप्त हो जाते हैं। वे अपनी सुधि भूल जाते हैं, परंतु जो लोग भावके घरमें चोरी करते हैं, भावकी नकल दिखाते हैं, उनके लिये इस राज्यका द्वार बंद रहता है।

X            X            X

हरिनाम लेते-लेते नशा आ जाता है। माँग-गाँजा आदिका नशा कुछ भी नहीं है। नामका नशा कभी छूटता नहीं। सर्वथा खायी रहता है। हरिनाममें ग्रेम-प्राप्तिका यह कम है—

( १ ) पापका बोध, ( २ ) पाप-कर्ममें अनुताप, ( ३ ) पापमें अप्रवृत्ति, ( ४ ) कुसङ्गसे धूपा, ( ५ ) सत्सङ्गमें अनुराग, ( ६ ) नाममें फूचि और जगत्की चर्चामें अरुचि, ( ७ ) भावका उदय और ( ८ ) ध्रेम।

### विधि

( १ ) सच वोलो, दल्खंदी छोड़कर सत्यनिष्ठ बनो।

( २ ) परनिन्दाका परित्याग करो। दूसरेके दोषकी कोई वात कहना ही निन्दा नहीं है, दूसरेको छोटा बतानेकी न्यौटा ही परनिन्दा है।

( ३ ) सब जीवोंके प्रति दया, अर्यात् दूसरेके सुखसे उत्ती और दुःखसे दुखी होना।

( ४ ) पिता-माताकी सेवा करो।

( ५ ) साधुपुण्यमें भक्ति करो। जो सत्यवादी जितेन्द्रिय दैं, वही साधु है। अपना विश्वास रिखर रखकर राधु-राज्ञ करो।

### निषेध

( १ ) दूसरेका जूटा मत खाओ।

( २ ) मारक वस्तुका रेखन मत करो।

( ३ ) मांग मत लाओ।

### वाग्द्वारकी रक्षा

जो व्यक्ति गलतगती, मधुरभासी और अप्रमत्त होकर क्रोध, भिष्या वापर, कुटिलता और लोक-निन्दाका सर्वया त्याग

कर देता है उसकी वाणीका द्वार सर्वथा सुरक्षित रहता है।

सत्यवादी बनो, सच्ची वाणी बोलो, सत्यका चिन्तन करो, सत्कार्य करो। असार वृथा कल्पना न करो; वृथा वाणी मत बोलो।

### परनिन्दा

परनिन्दा न करो। परनिन्दा मत सुनो। जहाँ परनिन्दा होती हो, वहाँ मत बैठो। दूसरेका दोष कभी मत देखो। अपने दोषोंको सदा ही देखो। अपने अंदर छिपे हुए दोषोंको जो खोज-खोजकर देखता है, उसमें परनिन्दा करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती, दूसरेका दोष देखनेकी इच्छा नहीं होती।

परनिन्दा सर्वथा त्याग करने योग्य है। प्रत्येकमें कुछ-न-कुछ गुण है। दोषके अंशको छोड़कर गुणका अंश ग्रहण करो। इससे हृदय परिशुद्ध होगा। निन्दनीय विषय (दोष) का ग्रहण करने और उसकी आलोचना करनेसे आत्मा अव्यन्त मलिन हो जाती है। जिस दोषके लिये निन्दा की जाती है, वही दोष क्रमशः निन्दकमें आ जाता है। दूसरेको किसीके सामने नीचा गिरानेके लिये कुछ भी कहने वा भाव प्रकट करनेका नाम ही निन्दा है। वात सत्य होनेपर भी वह निन्दा है। दूसरेके उपकारके लिये जो कुछ किया जाता है, वह निन्दा नहीं है। जैसे पिता पुत्रके उपकारके लिये उसकी बुरी बातोंको बताता है। स्वयं कोधित होकर जब कोई वात कही जाती है, तब उससे दूसरेका उपकार नहीं होता। कुछ कहना हो तो केवल उपकारकी ओर ही दृष्टि रखकर कहना चाहिये।

मनुष्यमें हजारों दोषोंका रहना कुछ भी असम्भव नहीं है, परंतु उसमें जितनासा गुण है, उसीको छोड़कर उसकी प्रशंसा करनी चाहिये। सरल हृदयसे किसीकी प्रशंसा करनेपर ईश्वरोपासनाका काम होता है। दूसरेके गुण-कीर्तनसे पाप-ताप भाग जाते हैं, शान्ति-आनन्दका आगमन होता है। निन्दा करनेपर अपने सद्गुण नष्ट होकर नरककी प्राप्ति होती है।

### हिंसा

अहिंसा परम धर्म है। हिंसाका अर्थ है दननकी इच्छा। दननका अर्थ है आधात। किसी भी व्यक्तिके प्राणोंपर आधात न लो, इस तरह चलना चाहिये। काम और क्रोध भी हिंसाके समान अपकार नहीं करते।

## क्रोध

त्रोद आनेपर गौन रहो । जिसके प्रति क्रोध आया है, उसके सामग्र्यमें हट जाओ । किसीके कुछ कहनेपर अथवा अन्य किसी कारणसे क्रोधके लक्षण दीक्षणेपर अलग जा बैठो और नाम-कीर्तन करो ।

## अभिमान

अभिमानका नाश कैसे हो ? अपनेको सबकी अपेक्षा हीन समझनेपर । जबतक अपनेको दीन नहीं बना सकोगे तबतक कुछ नहीं हुआ । कुली-मजदूर, अच्छा-बुरा—सभीके प्रति भक्ति करनी पड़ेगी । सभीसे अपनेको छोटा समझना पड़ेगा । मनमें अभिमानका अणुमात्र भी प्रवेश हो जाता है तो बड़े-बड़े योगियोंका भी पतन हो जाता है । अभिमान भयानक शत्रु है । मैं कामका त्याग करूँगा, क्रोधका त्याग करूँगा और लोग भुजे साधु कहेंगे, यह अभिमान सबकी अपेक्षा बड़ा शत्रु है ।

जबतक इन्द्रियोंपर विजय नहीं होती, तबतक अभिमान-से कितना अनिष्ट हो सकता है यह समझमें नहीं आ सकता । इन्द्रिय-दमन होनेपर ही समझमें आता है कि अभिमानसे कितनी हानि होती है ।

## भगवदिच्छा

बहुत बार यह अनुभव होता है कि अपनी शक्ति कुछ ही नहीं । जब जो कुछ होता है, भगवान्की इच्छासे ही होता है । यदि व्यार्थरूपसे शिशुकी भाँति हम रह सकें तो भगवान् माताकी तरह सर्वदा हमारी देख-रेख रखते हैं ।

अपनी ओरसे कुछ भी स्थिर नहीं करना है । भगवान्-की इच्छापर निर्भर होकर रहना है । अपने ऊपर भार लेते ही कष्ट आ जाता है । भगवान्की इच्छासे जो घटना होती है, उस घटनामें कोई विशेष प्रयोजन है । भगवान् जब जिस भावमें रखें, उसीमें आनन्द मानना चाहिये । अपनी पसंदीदीकी कोई बात नहीं । प्रभो ! जैसे बाजीगर काठकी पुतलीकी नचाता है, वैसे ही मुझे नचाओ । तुम्हीं मेरे जीवनके आधार हो । ( तुम्हारी इच्छाके अतिरिक्त मेरे मनमें कभी कुछ आये ही नहीं कि मैं यह करूँ, यह न करूँ । )

## चतुरङ्ग साधन

( १ ) स्वाध्यय-अर्थात् सद्ग्रन्थोंका अध्ययन और नाम-जप ।

## ( २ ) सत्सङ्ग ।

( ३ ) विचार-अर्थात् सर्वदा आत्मपरीक्षा । जब बड़ाई मीठी लगती है या विषके समान, परनिन्दा श्रीकृष्ण लगती है या अप्रीतिकर । धर्मभावना ( दैवी सम्पत्ति और भगवान्की ओर लचि ) प्रतिदिन धट रही है या नहीं है ? यह आत्मपरीक्षा है और इस प्रकार करना मेरा आवश्यक है ।

( ४ ) दान-शास्त्रकार कहते हैं कि 'दान' शब्द अर्थ है ददा । किसीके प्राणोंको किसी भी प्रकार क्षेत्र देना । शरीर, वाणी अथवा अन्य किसी प्रकारसे किसीदि प्राणोंको क्लेश पहुँचानेसे ददा नहीं होती । वृक्ष, लता कीट, पतंग, पशु-पक्षी और मनुष्य आदि सभी जीवोंके प्रति ददा कर्तव्य है ।

## भीतर प्रवेश

शरीरमें प्रधान घन्त्र है जीभ । जीभके बश ही जानेम सब कुछ बश ही जाता है । जबतक आँख, कान आदि इन्द्रियाँ बाहरी विषयोंकी ओर स्विच्हती हैं, तबतक शरीरले लांघकर भीतरकी ओर प्रवेश नहीं किया जा सकता और भीतर प्रवेश किये बिना शरीरको किसी तरह भूल दर्जा जा सकता । किसी तरह एक बार भगवान्का दर्शन ही जाय, तब लो शरीरकी ओर इष्टि नहीं रहती । तब ली शरीरको भूला जा सकता है, परंतु यह स्थिति सबकी नी होती । इसलिये किसीके प्रति प्रेम करना होगा । वह प्रेम होना चाहिये अकृतिम और स्वार्थरहित । ऐसे प्रेमकी प्राप्ति के लिये अहिंसाका अभ्यास करना पड़ेगा । किसीको भी कष्ट न पहुँचाना । मारने, गाली देने, यहाँतक कि अर्थात् कर देनेपर भी किसीका अमङ्गल न चाहना । तन, मन, वनस्पति से इसका अभ्यास करना पड़ेगा । इस प्रकार मनमें प्रेम और हिंसाके नष्ट होनेपर प्राणोंमें प्रेम आता है । यह प्रेम किसी स्थानमें अर्पण करके उसका चित्तन करते रहने सब कुछ भूला जाता है । इस अवश्यमें सहज ही भगवान्में प्राप्त किया जा सकता है । एक भी मनुष्यको विंयाप्त्यमें प्रेम करना धर्म-साधनका सर्वप्रधान अन्न है ।

## सेवा

जैसे अपनी अवश्यकताको पूर्ण करनेकी इच्छा होती है, वैसे ही दूसरेकी आवश्यकता पूर्ण करनेके लिये व्याप्ति होती है । शिशुकी सेवा माँ इसी भावसे करती है ।

शिशुके अमावकी पूर्तिके लिये माताका अस्थिर होना ही सेवा है। अंदर अनुराग नहीं है, दूररोंकी देखा-देखी सहायता करते हैं। इसका नाम सेवा नहीं है।

बृक्ष-सेवा, पशु-पक्षी-सेवा, पिता-माताकी सेवा, पति-सेवा, संतान-सेवा, प्रभु-सेवा, राज-सेवा, भूत्य-सेवा, पल्ली-सेवा—इस भावसे करनेपर ही सेवा होती है। नहीं तो, उसे सेवा कहना उचित नहीं है। अहङ्कार नष्ट करनेका उपाय है—जीवकी सेवा। पशु-पक्षीकी भी चरणोंमें नमस्कार करना होगा। यहाँतक कि विद्याके कीड़ीसे भी छूणा नहीं करना। जैसे तार ढूटकर गिर जाता है, वैसे ही अहङ्कारसे योगियोंका भी हठात् पतन हो जाता है।

जाति-धर्मका विचार न करके सभी भक्तोंकी सेवा करो। माता-पिताको साक्षात् देवता जानकर उनकी पूजा करो। जीवको भगवान्नकी भक्ति जानकर श्रद्धा करो; उसका भरण-पोषण करो, देख-रेख करो। जो पुरुष पल्लीको साक्षात् देवीके रूपमें नहीं देखता, उसके घरमें शान्ति और मङ्गल नहीं होता। जीवको विलास-सामग्री अथवा दासी मत समझो।

सब जीवोंर दया करो। बृक्ष-लता, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मानव-सभीपर दया करो। किसीको भी क्लेश मत पहुँचाओ।

अतिथिका सत्कार करो। अतिथिका नाम-धाम मत पूछो। अतिथिको गुरु और देवता जानकर उसकी वयासाथ पूजा करो।

### भक्ति

भक्तिको कृपणके धनकी तरह गुप्त रखना होगा। शास्त्रकार युवतीके स्तनोंके साथ उसकी हुलना किया करते हैं। शालिका खुले शरीर बूमती-पिरती है। पर युवती होनेपर कप्रके द्वारा स्तनोंको ढक लेती है। सामीके अतिरिक्त-पिता-माता-गुरुजन कोई भी उन्हें नहीं देख पाता। भक्तिका भी यही रूप है। भक्तिको भी भगवान्नके अतिरिक्त सभीके भाग्ये नाशभासीके साथ गुप्त रखना चाहिये। पहले, जब भाग्य उच्छ्वास आरम्भ हुआ, आँखोंसे कुछ जल उपर पढ़ता, तब मग्नमें आता कि लोग इसे देखें। पर पीछि यह नित्या हुई कि कैसे इसको छिपाऊँ। तब हृदयों एकान्त स्थानमें इसे छिपा रखनेकी इच्छा हुई, (कर्मणि) भक्ति गंगनीय है।

### साधुका लक्षण

मातुरा लक्षण और कर्तव्य मरी है कि उसके सभी

जो भी विषय आयें, उन सबको वह भगवान्नके निकट रख दे, किर उनमेंसे जिसपर भगवान्नकी मुस्कुराहोति पहती दिखायी दे, उसीको स्वीकार करे। जो इसी नियमके अनुसार सारे कार्य करते हैं, वे ही यथार्थ साधु हैं। साधु सभी विषयोंमें, ईश्वरकी इच्छा क्या है—यह समझकर चलते हैं।

जिनके सभीप जानेपर हृदयके श्रेष्ठ भाव प्रस्फुटित हो जाते हैं, भगवान्नका नाम अपने-आप ही जीपसे उच्चारित होने लगता है और पापबुद्धि लब्जित होकर भाग जाती है, वही साधु है।

निरन्तर भगवान्नका नाम-जप करते रहनेसे शरीरमें एक नवीन सौन्दर्यका उदय होता है। जिनके प्रत्येक द्वासमें भगवान्नके नामका जप होता है, वे जीरे-धीरे भागवती तनु प्राप्त करते हैं। उनके रक्त-मांसमें—प्रत्येक रोमकूपसे, अस्थिसे अपने-आप ही भगवन्नामका जप होता रहता है।

### शिष्योंके प्रति

(१) सब बोलो। (२) परनिन्दाका त्याग करो।  
 (३) पिता-माताको प्रत्यक्ष देवता जानकर उनकी सेवा करो। (४) पति और पल्लीमें भगवत्सम्बन्ध स्थापित करो, किसी कोई किसीका भी अनादर, अवहेलना और अपमान मत करो। (५) प्रतिदिन पञ्चायत्र—देवयज्ञ, पितृयज्ञ, चूर्णियज्ञ, मनुष्ययज्ञ और भूतयज्ञ करो। (६) हिंदू, मुसलमान, हिंसा, बौद्ध, जैन, शाक, शैव, वैष्णव, संन्यासी, यहस्य—सभी साधु भक्तोंकी भक्ति करो। साधुओंके सम्बन्धमें किसी सम्प्रदाय या बण्ठाश्रमका विचार मत न करो। (७) अपनेको किसी सम्प्रदाय या इल्ले अंदर मत समझो। जो जिस धर्म या सम्प्रदायमें हो वे उसीमें रहकर साधन करें। (८) सभी प्रकारके मादक पदार्थोंका त्याग करो। वे साथनमें धोर विनास्त हैं। (९) मछली भी न खाओ, उससे (हिंसा) तथा तमोगुणकी हृद्दि होती है। और (१०) उच्छिष्ट मत खाओ।

### प्रार्थना

प्रभो! मैं गलेमें पत्थर बाँधकर सागरमें छूट चुका हूँ। अब सुझमें अपनी शक्ति नहीं रह गयी है। तुम्हीं मेरा उद्धार करो।

तुम्हीं मेरे सब कुछ हो। समस्त ब्रह्माण्ड तुम्हारी रक्षना है, तुम्हारी दयाका परिचय है। तुम्हीं माता हो, तुम्हीं पिता हो, तुम्हीं भाई-बहन हो। प्रभो! तुम्हीं दाता, तुम्हीं राजा-प्रजा हो, साज्वी जी-सभी कुछ तुम हो। चोर-डाकू, साधु,

लम्पट—सभी तुम हो । सारी प्रशंसा, सुति, प्रेम—सभी तुम्हारा है । तुम बाजीगर हो, केवल जादूके खेल खेलते हो । सर तुम हो, वस्तु तुम हो, प्रयोजन तुम हो । इहलोक, स्वर्गलोक, यमलोक, सत्यलोक, जनलोक, तपोलोक, ब्रह्मलोक,

पितॄलोक, मातृलोक, वैकुण्ठ, गोलोक—सभी तुम हो । मैं कुछ नहीं हूँ, कुछ नहीं हूँ, खाक-धूल—कुछ भी नहीं हूँ । तुम मेरे घर-द्वार हो, तुम मेरे दर्पण हो । तुम मूर हो, मधुर हो, मधुर हो । मधुर मधुर मधुर मधुरम् ।

## स्वामी श्रीशिवरामकिंकर योगनन्दजी महाराज

( जन्म—हवड़ा जिले के वराहनगर के गज्जतपर । गृहस्थाश्रमका नाम—श्रीशिवभूपण सान्याल । अगाध पण्डित, सिद्ध योगी, मातृशानी और परम भक्त । )

( १ ) शिवकी—परमेश्वरकी उपासना और चित्तवृत्ति-निरोधरूप योग—ये दोनों एक ही चीज हैं । जीवात्माका परमात्माके साथ संयोग ही 'योग' है । जीवात्मा यद्यपि सदा ही सर्वव्यापक परमात्माके साथ युक्त होकर रहता है, तब भी 'आवरण' और 'विक्षेप' इन दो शक्तियोंके कारण जीवको यह बात मालूम नहीं होती । जिस उपायद्वारा इन दो शक्तियोंका नाश होता है, उस उपायका नाम योग है । अतः योगद्वारा जीवके अज्ञानका नाश होता है, अज्ञानका नाश होनेसे ही उसे मालूम हो जाता है कि जीव परमात्मासे मिल नहीं है ।



( २ ) नास्तिक होकर, ईश्वरको दूर करनेकी चेष्टा करके, 'सभी जडशक्तिके परिणाम हैं'—ऐसे विश्वासको हृदयमें सुदृढ़ आसन देनेकी चेष्टा करके कोई पुरुष न तो कृतार्थ हो सके हैं और न हो सकेंगे ही ।

( ३ ) यथाविधि प्रार्थना करनेसे, श्रद्धापूर्ण, विमल हृदयसे प्रार्थना करनेसे फलप्राप्ति हुई है, हो रही है, होगी—यही सत्योक्ति है ।

( ४ ) सत्योक्तिसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दिन-रातका प्रसार हुआ है, सत्योक्तिसे प्राणिमात्रको विश्राम मिलता है, सत्योक्तिसे ही प्राणिमात्रका विचलन—स्पन्दन हुआ करता है, जलका स्पन्दन होता है, सूर्यका नियमित उदय होता है ।…… अगर प्रतिभा प्रतिकूल न हो, तो यह बात समझमें आ जायगी कि सत्योक्ति ही सर्वजनोंकी अन्तर्यामिणी है; सत्योक्ति ही अखिल ज्ञान-विज्ञानकी प्रसुति है, प्रवृत्ति-निवृत्तिकी नियामिका है ।

( ५ ) जो विश्वके प्राण है, जो विश्वके बल है, जो विश्वके आत्मद और बलद हैं, जिनका शासन सभी कोई मानते हैं, देवतालोग भी जिनका शासन माना करते हैं, जिनकी छाया—आश्रय—शरणागति अमृत है ( सर्वसुखनिधान मुक्तिका एकमात्र साधन है ), जिनका विसरण ही मृत्यु है । उन मङ्गलमय प्रसुके अतिरिक्त हमलोग फिर किनकी प्रीतिको लिये कर्म करेंगे ।

## श्रीनन्दकिशोर मुखोपाध्याय

( पिताका नाम—श्रीकालीपद मुखोपाध्याय । हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजीके प्रकाश पण्डित । )

उपदेश देना आधारण बात है । पर विकट परिस्थितिमें भगवद्गुणका अनुभव करते हुए प्रसुदित रहना—तानिक भी विचलित नहीं होना—भगवद्गुणके ही वशकी बात होती है ।

जीवनमें उत्तरे विना, स्वयं

पालन किये विना—उपदेश व्यर्थ होता है ।

शास्त्र-वाक्य भगवद्वाक्य-तुल्य हैं । प्रत्येक दिनेष्व उन्हें आदर देना आवश्यक है । शास्त्र-विपरीत आचरण अकल्याणकर होता है ।

एक पशु मर जाता है और उसकी बगलमें ही दूसरा पागुर करता रहता है । यही दशा आज मनुष्यकी ही मरी है । वह प्रतिदिन लोगोंको मृत्युमुखमें जाते देता है ।



श्रेष्ठ है। भगवान्को पानेके लिये तमिक भी प्रयास नहीं ता। मानवजीवन फिर कदम मिले, पता नहीं। यह स्थन दुर्लभ है। अति शीघ्र इसका उपयोग कर गा चाहिए।

सत्य परम धर्म है। सत्योक्ति ही व्राता है।

दुर्गा, राम और कृष्ण—सभी एक हैं। इन सभी नामोंमें अचिन्त्य शक्ति है। किसी एक नामको अपना बना लो। यह-दिन जपते जाओ। कल्याण निश्चित है।

विश्वासपूर्वक भगवान्‌पर निर्भर रहो। लोक-परलोकका निर्वाह वे करेंगे।

## स्वामी रामतीर्थ

(जन्म—वि० सं० १९३०, जन्म-स्थान—पंजाबप्रान्तके गुरुरानवाला ज़िलेके जन्तर्गत मुरारोवाला गाँव, गोमांड-बंसके गाझाण, देहावसान—वि० सं० १९६३ कारिंकी अमावस्याके दिन जल-समाप्ति द्वारा। दिश्वरीके निकट।)

इश्क का मनसव लिखा  
जिस दिन मेरी तकदीर में।  
आह की नकदी मिली  
स्वहरा मिला जामीर में॥

### कोई तमना नहीं

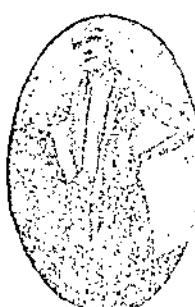
नहै कुछ तमना न कुछ जुस्तजू है।  
कि वहदत में साकी न सामर न बूहै॥  
मिरी दिल को आँखे जमी मारफत की।  
जिधर देखता हूँ, सनम रु बरु है॥  
मुकिलाँ में जाकर हर इक गुरु को देखा।  
तो मेरी ही रंगत व मेरी ही बू है॥  
मिन तेरा छटा हुए एक ही दहा।  
रही कुछ न हसरत न कुछ आरजू है॥

×            ×            ×

### लावनी

### शुद्ध सचिदानन्द वस्तु हूँ

शुद्ध गिरिजानन्द ब्रह्म हूँ अजर अगर अज अविनाशी।  
जाम जान से मोक्ष हो जावे कट जावे जम की फैंटी॥  
अनाहि ब्रह्म अहंत रहत का जा में नामोनिश्चान नहीं।  
अमंड गुरा मुरा जा जा कोई अदि सभ्य अजसरन नहीं॥  
मरी भ्रह्म हूँ, भनन निमन्तर करे मोक्षजित गंगावती।  
शुद्ध महिमानन्द भ्रह्म हूँ अजर अगर अज अविनाशी॥  
महिमी हूँ, ब्रह्म दम्भग एक जहर आस्थान नहीं।  
ज्ञा हूँ जो मेरा मेरा कोई भित्त वस्तु इमरान नहीं॥  
ऐ विलासि विरा प्रज्ञ के हुए करी कुछ अम नहीं।  
दम्भी न हो, संशय-नुस्त दे लिसे तद का ज्ञान नहीं॥



व्रह्मज्ञान हो जिसे उसे नहिं पढ़े भौगती चौरामी।  
शुद्ध सचिदानन्द ब्रह्म हूँ अजर अगर अज अविनाशी॥

### प्यारेकी गलीमें

ऐ दिल ! यहाँ प्यारेकी गली है। यहाँ अपनी जानका दम भी मत मार, अर्थात् जानका घमंड मत कर या जानकी परवा मत कर और अपने प्यारेके आगे जान एवं जहान और दिलका दम मत मार, अर्थात् आपने प्यारेके सामने इन प्राण इत्यादिका घमंड मत कर, या इन्हें प्यारा मत समझ।

जान (अपने प्यारेकी अपेक्षा) अधिक मूल्य नहीं रखती है, इसलिये जानका शोक मत कर। यदि तू अपने प्यारेके रास्तेमें जानपर खेलता है, तो तुम रह (तू इस कामपर भी शेषी मत कर)।

यदि तुझको (अपने प्यारेकी प्रीतिमें) कुछ कष्ट है तो उसकी निकिताके विषयमें कुछ चर्चा न कर। उसके कष्टको अर्थात् उसकी प्रीतिकी राहमें तो कष्ट हो, उसे चिकित्सामें भी उत्तम समझ और चिकित्साके विषयमें चर्चा न कर, अर्थात् नुप रह।

जब तुझे विश्वास हो गया, तो मंशय-संदेशी करनी चाही दे। जब उस प्यारेने अपना मुनदा दिल्ला दिया, तो फिर ही और हुजत न कर।

जिनका कोई भर्म नहीं है, ऐसे लोगोंका म्याल होइ और मृत्युनालों तत्त्वज्ञ मत रह, एवं दूनामवालोंके निजारों और उनकी आत्मानोंका दम मत मार।

महिमा-जीवे ओऽगुन्दर मृत्यु, मनसण मृत्यु, महिमा और प्रियान तथा यमा और मायतमारहे विषयमें भी चर्चा न कर।

गुफ और ईमानको उसके मुखड़े और जुल्फ़के आगे द्योद दे और उस प्यारेके खुलक और सुखड़ेके सामने कुक और ईगांवकी चर्चा न कर ।

याद रख, तू उम ( प्यारे ) से आगे नहीं बढ़ सकेगा, इसलिये तू इसके मिलाप ( दर्दन ) की चर्चा मत कर और इस देतु कि तू उम ( प्यारे ) के बिना भी नहीं रह सकेगा, इसलिये वियोगकी भी चर्चा न कर ।

याद रख, प्रकाशमान सर्व उस ( प्यारे ) के मुखड़ेकी ज्योतिवी एक चमक है, इसलिये ऐ मगरवी ! उसके सामने प्रकाशमान सर्वकी भी चर्चा न कर ।

### मिलनकी सौज

ऐ बाक्-इन्दिय ! क्या तुझमें है शक्ति उस आनन्दके वर्णन करनेवी ? धन्य हूँ मैं ! छृतकृत्य हूँ मैं !!

जिस प्यारेके धूपटमेंसे कभी हाथ, कभी पैर, कभी आँख, कभी कान कठिनताके साथ दिखायी देता था, दिल खोलकर उस दुलरेका आलिङ्गन प्राप्त हुआ । हम नये, वह नंगा, छाती छातीपर है । ऐ हाइ-चामके जिगर और कलेजे ! तुम वीचमेंसे उठ जाओ । भेद-भाव ! हठ ! फासले भाग ! दूरी दूर हो । हम यार, यार हम । यह शादी ( आनन्द ) है कि शादी-मर्ग ( आनन्दमयी मृत्यु अथवा आनन्दनिमम मौत ) । आँसू, क्यों छमाछम वरस रहे हैं । क्या यह विवाह-कालकी झड़ी है, अथवा मनके मर जानेका मातम ( शोक ) ? संस्कारोंका अन्तिम संस्कार हो गया । इच्छाओंपर मरी पड़ी । दुःख-दरिद्र उजाला आते ही अँधेरेकी तरह उड़ गये । भले-बुरे कर्मोंका बेड़ा छूब गया ।

X X X

आँसुओंकी झड़ी है कि अभेदताका आनन्द दिलानेवाली वर्षा-ऋतु । ऐ सिर ! तेरा होना भी आज सुफल है । आँखों ! तुम भी धन्य हो गयीं । कानों ! तुम्हारा पुरुषार्थ भी पूरा हुआ । यह आनन्दमय मिलाप सुवारक हो, सुवारक हो, सुवारक हो ! सुवारकका शब्द भी आज कृतार्थ हो गया ।

ऐ मेरे पगलेपनके आहाद ! ऐ मेरे समस्त रोगोंकी ओषधि ! ऐ मेरे अभिमान और मानकी ओषधि ! ऐ मेरे लिये जालीन्स और अफलातून ! तू आनन्दवान् हो ।

अथवा ऐ मेरे प्रेमोन्मादके आहाद ! तू आनन्दवान् हो । तू ही तो मेरे समस्त रोगोंकी ओषधि है । तू ही मेरे

अभिमान और मानकी ओषधि है, तू ही मेरे लिये लूँगे, और जालीन्स है ।

अहंकारका गुह्या और बुद्धिकी गुह्यिया जल गये । हे नेत्रो ! तुम्हारा पह काला बादल बरसाना धन्य हो । ये मस्तीभरे नयनोंका साबन धन्य ( सुवारक ) है ।

### कुब्जाकी कमर सीधी करो

एक हाथमें स्वादिष्ट मिठाई और दूसरेमें असं बच्चेको दिलाकर कहा जाय कि इन दोनोंमेंसे कौनसी ए वस्तु तुम्हें स्वीकार है, तो नासमझ वज्ञा मिठाईको खाल करेगा, जो उसी क्षण स्वाद दे जाती है । यह नहीं जल कि अशार्फासे कितनी मिठाई मिल सकती है । यही दस उन संसारी लोगोंकी है जो श्रेष्ठ बनानेवाली सच्ची स्वतन्त्रता अशार्फासे छोड़कर जुगनूकी चमकवाली क्षणभूर लादेनेवाली मिठाई अङ्गीकार कर रहे हैं । खालपन छोड़कर जन्मजात स्वत्व ( राजगदी ) को सँभालनेके लिये कृष्ण भगवान्का कंसको मारना अत्यावश्यक करत्व्य था, जिस कंस लत्र मरेगा जब कुब्जा सीधी होगी । पान, सुपारी चन्दन, इत्र, अवीर आदि लिये कंसकी सेवाको कुब्जा जा रही है, इतनेमें महाराजसे भेंट हो गयी । याँको साप कुब्जाकी बोल-चाल भी अत्यन्त टेढ़ी थी । एक मुक्ता मारनेसे कुवरीकी पीठ सीधी हो गयी । नाम तो कुब्जा ही रहा, किंतु सीधी होकर अपने उपकारीके चरणोंपर गिरी । अब कंससे सम्बन्ध कैसा ? पान, सुपारी, चन्दन, इत्र, अवीरसे भगवान्का पूजन किया और उन्होंकी हो रही । सीधी कुब्जाको सहृदय सखी बनाते ही कृष्ण भगवान्की कंपार विजय है और स्वराज्य ( पैतृक अधिकार ) प्राप्त है । विजयोंके बनको त्यागकर सच्चे साम्राज्यको सँगालने लिये अहंकार ( अहंता ) रूपी कंसको मारना परम अवश्यक है, नहीं तो, अहंकार-रूपी कंसकी ओरसे होनेवाली भाँति भाँतिकी पीड़ाएँ और चित्र-विचित्र अत्याचार कर्ता नैनों दम न लेने देंगे । अहंकार ( कंस ) तत्र मरेगा, जब कुब्जा सीधी होकर कृष्ण ( आत्मा ) की भेदी ( आत्माके रूपों ) जाननेवाली हो जायगी ।

कुब्जा क्या है ? श्रद्धा, विश्वास । मर्दसाधारणके दो उल्टी ( कुवरी ) श्रद्धा अहंकारकी सेवामें दिन-रात लगे रहती है । 'धर मेरा है' इस लप्तमें अथवा 'मर्दसाधा मेरी है' इस रूपमें, 'खी-पुच भेरे हैं' इन मर्दसों, 'धरीय औ'

दिं मेरे हैं इस रंगमें । इस प्रकारके वेशोंमें अनर्थ करने-ली श्रद्धा कुब्जा ( उल्या विश्वास ) प्रतिसमय अहंकार ( व्याप्त या अहंता ) को पुष्टि और बल देती रहती जबतक यह संसारासक्त दृष्टिवाली श्रद्धा सीधी होकर । ( कृष्ण ) की सहगामिनी और तटूपा न होगी, फ़न तो अहंकार ( कंभ ) मरेगा और न स्वराज्य गा । मारो जोरकी लात इस कुब्जाको, जमाओ विवेक-मुक्ता इस उल्टे विश्वासको, अलिफ ( । ) की भाँति कर दो इस कुबरी श्रद्धाकी कमर ।

कद्दे-अलिफ नैदा कुनम् चूं सत्त पुश्तेन्नुं कुनम् ।

अर्थात् जब नून अक्षरकी पीठको सीधा करता हूँ तो अँके कदकां में उत्पन्न कर देता हूँ ।

अपने असली स्वरूप ( परमात्मा ) में पूर्ण विश्वास लग करो, देह और देहाव्याप्त कैसे, तुम तो सुख्य र हो ।

### सब ओर तू ही तू

जिस ओर हम दौड़े, वे सब दिशाएँ तेरी ही देखों, मात् सब ओर तू ही था और जिस स्थानपर हम पहुँचे, सब तेरी ही गलीका सिरा देखा, अर्थात् सर्वत्र तुझे पाया ।

जिस उपासनाके स्थानको हृदयने प्रार्थनाके लिये इण किया, उस हृदयके पवित्र धामको तेरी भ्रूका छुकाव था, अर्थात् उस स्थानपर तू ही झाँकता दृष्टिगोचर हुआ ।

हर सर्वेन्वाँ ( प्रिय वृक्ष अर्थात् प्रेमपात्र ) को, जो कि इस संग्राव-वाटिकामें है, उसे तेरी नदी-तटकी मिट्टिनां डगा हुआ देखा, अर्थात् जो भी इस जगत्में पाया दृष्टिगोचर हुआ, वह सब तुक्षसे ही प्रकट हुआ शरणार्थी दिखा ।

कुल शत हमने पूर्वी वायुसे तेरी सुगन्ध लैंधी और उन प्राणी पदनांक साथ तेरी सुगन्धका समूह देखा, अर्थात् उसमें तेरी ही सुगन्ध वर्गी हुई थी ।

गंवारके समस्त मुन्द्र तुल्योंके मुखमण्डलोंको कोऽप्तेन लिये हमने देखा, किंतु तेरे मुखदेहके दर्पणसे उनमें भी अर्थात् इन समस्त सुन्दरोंमें तेरा ही स्वयं पाया ।

ममस्त गंवारकी प्यारोंकी मस्त आँखेंमें हमने जय

देखा, तो तेरी जादूभरी नरगिस ( आँख ) देखी ।

जबतक तेरे मुखमण्डलका सूर्य समस्त परमाणुओंपर न चमके, तबतक संसारके परमाणुओंपर तेरी ही ओर दौड़ते हुए देखा, अर्थात् जबतक तेरी किरण न पढ़े, तबतक सत्यका जिज्ञासु तेरा ही इच्छुक रहेगा ।

### नानात्व खेल है

सोनेको क्या परवा है, जेवर ( आभूषण ) रहे चाहे न रहे । सोनेकी दृष्टिसे तो जेवर कभी हुआ ही नहीं । सोनेके जेवरके ऊपर भी सोना, नीचे भी सोना, चारों ओर भी सोना और बीचमें भी सोना, हर ओर सोना-ही-सोना है । आभूषण तो केवल नाममात्र है । सोना सब दिशाओंमें और सब दिशाओंमें एकरस है । मुझमें नाम और रूप ही कभी स्थित नहीं हुए, तो नाम-रूपके परिवर्तन और रूपान्तर, रोग और नीरोगका कहाँ प्रवेश है । यह मेरी एक विचित्र आश्र्य महिमाका चमत्कार है कि मैं सबमें मिज्ज-मिज्ज 'अहं' कल्पित कर देता हूँ, जिससे यह सब लीला व्यक्ति-व्यक्तिमें विभक्त होकर मेरातेराका शिकार ( आखेट ) हो जाती है । एक-दूसरेको अफसर-मोतहत, गुरु-शिष्य, शासक-शासित, दुर्ली-सुखी स्त्रीकार करके मदारीकी पुतलियोंकी तरह खेल दिखाने लगते हैं ।

यह मेरी काल्पनिक बनावट मेरे प्रतिबिंब या आभासके कारण अपने-आपको मान दैठी है । इसके कारण मुझमें कदापि भिन्नता नहीं आती; क्योंकि समस्त अस्तित्व और सृष्टि, जो इन्द्रियगोचर है, मुझसे है । पिंजरेमें चिंडिया उछलती है, कूदती है, प्रसन्न होती है, शोक भी मानती है; किंतु व्याध जानता है कि इसमें क्या शक्ति है, चुप तमाचा देखा करता है । आनन्दस्वरूप मैं सदा एकान्त हूँ । आप-ही-आप मेरेमें नानात्वका बाधक होना क्या अर्थ रखता है ?

अंदर बाहर, ऊपर नीचे, आगे पीछे हम ही हम । ऊर में, सिर में, नर में, सुर में, पुर में, मिर में हम ही हम ॥

### प्राणका दर्पण

तुझको हँसते हुए देखकर मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ, मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ; पर प्यारे ! तेरे अधर और दाँतोंपर बलिदार ।

सोसन ( पुष्प ) ने चमेलीका रविर बहानेको

सलवार वर्षीनी, सोगनको तलवार किसमें दी ? तेरी सूखबार नर्थगम ( पुपरुषी भेत्र ) नें; क्योंकि नेत्रोंकी आकृतिकी तुल्या नर्थगमके पुपरसे वी जाती है ।

तेरा नर्थगता हुआ मुखड़ा भेरे प्राणका दर्पण हुआ । इम प्रभार भेरे प्राण और तेरे दोनों एक ही हुए; क्योंकि तेरे मुखड़ेमें भेरे प्राण और भेरे मुखड़ेमें तेरे प्राण दिलायी देते हैं ।

### निजानन्दकी सती

प्रातःगलकी वायुका दुमक-दुमक चलना ही अपने प्यारे पार ( स्वरूप ) का संदेश व्य रहा है और जरा-सी औंख भी लगने नहीं देता; क्योंकि औंख जब जरा लग जाती है, तो दृष्ट उस प्यारे ( स्वरूप ) की दृष्टि ( प्रकाश ) का तीर लगना आरम्भ हो जाता है, जिससे मैं सोने न पाऊँ, अर्थात् उसे भूल न जाऊँ ।

अगर अक्सरात् अङ्ग और होशमें आने लगता हूँ, तो मन-चुदिका सङ्ख करने लगता हूँ तो उसी समय प्यारा छोड़खानी करने लग जाता है, ताकि फिर बेहोश और आत्मानन्दसे पापल हो जाऊँ, अर्थात् मैं पुनः संसारका न रहूँ, सिर्फ प्यारे ( स्वरूप ) का ही हो जाऊँ ।

( इस छोड़खानीसे ) ऐसा यादूम होता है कि प्यारेका हमसे एक भटलव ( स्वार्थ ) के कारण प्यार है और वह महलव हमारा दिल लेना है । भला सख्तीसे वह क्यों दिल छीनता है, क्या वैसे हमको इन्कार है । अर्थात् जब पहलेसे ही इस प्यारेके हवाले दिल करनेको तैयार बैठे हैं, तो फिर वह सख्तीसे क्यों छीनना चाहता है ।

दिलको प्यारेके अपेण करनेसे न लिखनेकी कुरतत रही और न किसी काम-काजकी । आप तो वह बेकार ( अकर्ता ) था ही, अब हमसको भी वैसा ही बेकार कर दिया है ।

जब प्रेमका समय ध्वना है, तब वह ( प्यार ) क्षट हमवराल ( सङ्ग या मूर्तिमाल ) हो जाता है । ऐसी दृश्यमें हम किसपर दुस्ता निकालें; क्योंकि सामने तो वह स्वयं खड़ा है ।

सभी समय वह हाजिर है, जाग्रत्में पृथ्वी-जलके रूपमें साथ है, हँसते समय वह साथ मिलकर हँसता है और

रोते समय वह ( अमेद हुआ ) साथ रोता है अर्थात् दश्याओंमें वह ही स्वयं मौजूद है ।

कभी समकली हुई विजलीके रूपमें हँसता है कभी वरतते हुए घने बादलोंके रूपमें रोता है इन प्रत्येक रूप और रंगमें वही प्यारा प्रकट हुआ है देता है ।

ऐ प्यारे जितासु ! इश्क ( प्रेम ) के घनोः जानो, इसको मत सोजो, बल्कि इस प्रेमकी आगाम वर-वार और बन-दौलतको बार दो ।

इस प्रेमके दर्शका इलाज करना तो अशानी पुरी मंजूर होता है; क्योंकि जब प्रेम ही माझूर ( इस ) हो, तो क्या ऐसी भीरोगतामें भी बीमार है ?

इंतजार मुझीवत, बला और जंगलका काँटा— उस उरी समय जलकर गुल्मार ( आगका पुष्प ) हो जिस समय ज्ञानाग्नि मीतर प्रज्वलित हुरू ।

दैलक, बल, विद्या और इजत तो नहीं जा उस ( अनन्य भक्त या ब्रह्मवित् ) वेपराह बादशाही केवल आत्मज्ञान ( ब्रह्म-विद्या ) की ही आवश्यकता है ।

कई क्षेत्रोंकी आशाएँ, जो स्वरूपके असुखमें परे ओटका काम कर रही हैं, इन सब छोटी-बड़ी आशाओं ( आत्मज्ञानसे ) जला दो और जब इस लहरे इच्छाओं द्वारा उड़ जाए, तब फिर प्यारे ( स्वरूप ) के दर्शन आनन्द लो ।

मंसूर एक भक्त ब्रह्मवेत्ताका नाम है जब वे सूलीपर चढ़ाया रखा, तब उस समय एक गुरुने उम प्यारेकी गली अर्थात् स्वरूपके अनुभव करनेका गह मूँछा । मंसूर तो चुप रहा; क्योंकि वह उस समय गली या परंतु सूलीकी नोकने अर्थात् खिलेने, जिसको उपर दार कहते हैं, मंसूरके दिलमें साफ खुलकर ब्रह्म दिया जि यह रासा है, अर्थात् प्यारेके अनुभवका केवल दिलके भीतर जाना ही सस्ता है ।

इस शरीरसे शारीरिक प्राण कूदकर तो अहंकारी गङ्गामें पड़ गये हैं । अब इस मृतक शरीर ( मुर्द ) में ( प्रारब्ध-नोग-लड़ी ) पढ़ी आयें और महीरत्व कर लीं क्योंकि साधुके यरनेके पश्चात् भिड़ाय अर्थात् भोजन दिया जाता है और मस्तुक पुष्प अपने शरीरको ही ग्रहन करता

जा भंडारा समझता है, इसलिये राम जब मरता हुए तो उनको सृतक देखकर भंडारके लिये पक्षियोंको बुलते हैं।

जब इस निजानन्दके कारण नेत्र, सस्तिष्क और दयमें बेसुध उमड़ने लगे, तो उस समय अपने पास द्वैत श्रान्निवाली सांसारिक बुद्धि तू मत रख; क्योंकि यह बुद्धि यमिचारिणी रौंड है।

जब राम अति गत्त हुए तो बोल उठे कि इस उरीरसे अद सम्बन्ध छूट गया है, इसलिये इसकी जिम्मेदारीकी सिरसे बला टल गयी। अब तो राम खून पीनेवाली तलवार (मुसीवत) का भी स्वागत करता है; क्योंकि रामको यह मौत बड़ा स्वाद देती है।

यह देह-प्राण तो अपने नौकर (ईश्वर)के इवाले करके उससे निलका टेका ले लिया है। अब ऐ प्यारे (स्वरूप)। तू जान, तेरा काम; इसको इस (शरीर) से स्वयं सतत्कर दै।

नौकर बड़ा खुश होकर काम कर रहा है, राम अब बादशाह हो बैठा है; क्योंकि खिदमतगार (सेवक) बड़ा चतुर मिला हुआ है।

नौकर ऐसा अच्छा है कि दिन-रात जरु भी सोता नहीं, मानो उसकी आँखोंमें नींद ही नहीं और दम-भर भी उसको सुखी नहीं। वह हर घड़ी जगता ही रहता है।

ऐ राम ! मेरा नौकर कौन है और मालिक उसका कौन है ? मैं क्या मालिक हूँ या नौकर हूँ ? यह क्या आश्वर्यजनक रस्ता है (कुछ नहीं कहा जा सकता)।

मैं तो अकेला, अद्वैत, निष्ठ, असङ्ग और निर्विकार हूँ, मालिक और नौकरका भाव कहाँ ? यह क्या गळत मोलचाल है।

मैं अकेला हूँ, मैं अकेला हूँ, जल-पलपर मैं अकेला हूँ। वाणी और वाक्-इन्द्रियका मुक्ततक पहुँचना लिटन है, अर्थात् वाणी हस्तादि मुखे वर्णन महीं कर सकती।

ऐ दुनियांक बादशाहो ! और ऐ सातों आसमानोंके तारो ! मैं तुम रामपर रात्य करता हूँ। मेरा राज्य सबसे बड़ा है।

मैं अपने प्यारे (स्वरूप) की जादूभरी देख हूँ, निजानन्दगरी मसीही धराचरा नदा हूँ, अमृत-स्वरूप मैं हूँ, मैं (माया) मेरी तलवार हूँ।

यह मेरी मायाकी जुहके (अविद्याके पदार्थ) पेचदार (आकर्षक) तो हैं मगर जो मुझे (मेरे अपनी स्वरूपकी ओर) सीधा आकर देखता है, उसको तो बासविक रामके दर्शन हो जाते हैं और जो उल्टा (पीछेको) होकर (मेरी मायारूपी काली जुहपोंको) देखता है, उसको (राम) शब्दका उल्टा शब्द (भार) अविद्याका सॉप काट डालता है।

अमावस्यकी रातको एक बजे गुफाके सामने गङ्गाने नरम-नरम विछौना (रेणुकाका) बिछा दिया है। राम बादशाह लेट रहा है, गङ्गी नरणोंको छूटी हुई वह रही है।

X X X

### गला रुका जाता है

जब लड़की पतिके साथ विवाही जाकर अपने माता-पिताके घरसे अलग होने लगती है, तो लड़की और माता-पिताके रोमाञ्च हो जाते हैं और आश्वर्य-दशा व्याप्त होनेसे गला रुक जाता है।

लड़कीको फिर घर लापस आजेकी अथवा माता-पिताके घरका ही बने रहनेकी कोई आशा मालूम नहीं देती, इस बास्ते सर्वदाकी जुदाई होते देखकर माता-पिता और लड़कीके रोगटे खड़े हो जाते हैं और गला रुक आता है।

(लड़की फिर मनमें यह कहने लगती है कि) हे माता-पिता ! यह घर-बार तथा संसार तो आपको और मेरा पति मुश्को मुदारक हो, पर यह (जुदा होते तमसकी) आखिरी छवि (अवस्था) आप जल्द यह रस्ते कि रोगटे खड़े हो रहे हैं और गला रुक रहा है।

ऐसे ही जब मनुष्यकी वृच्छरूपी लड़की (अपने) पति (स्वरूप) के साथ विवाही जाती, अर्थात् आसारे लदाकार होती है, तब उसके माता-पिता (अहंकार और बुद्धि) के रोगटे खड़े हो जाते हैं और गला मारे बेवरीके रुकता जाता है तथा उस वृत्तिको अब बापत आते न देखकर इन्द्रियोंमें रोमाञ्च हो जाता है। उस तमय दृति भी अपने सम्बन्धियोंसे यह कहती मालूम देती है ऐ अहंकार-रूपी पिता ! और द्वाद्धरूपी माता ! यह घर-बार एवं दुनिया अब तुम्हें मुवारक हो और हमें हमारा दुल्हा (स्वरूप) सलामत हो। (अहंकारकी) यह सौत दुनियामें अति उच्चम है और इस मौतके दामपर आनन्दको खरीदो, इसमें चूँचरा

(नयों, कीसे) न बताए ही धर्म है। यथापि इस (मौत) की अवधीनत अमय रोगटे खड़े ही जाते हैं और गला रुक जाता है।

एं प्र्यारे ! जिसे लाए जाग्रत् समझ रहे हो, वह तो थोर न्यथा अर्थात् गुपुति है; क्योंकि यह सब किमयके पद्धर्य तो ललोरंपार्य दवाईकी तरह है जिसको सूँचने अर्थात् गोगनेमें सब रोग सड़े हो जाते हैं और गला रुक जाता है।

जो रुद्धामावको दिलमें रखते हैं, वे पगल कुत्तेको छुम्हा (वंसा) देते हैं, ऐसी भूटी प्रारुद्धको देखकर रोगाच्छ हो जाते हैं और गला रुक जाता है।

पहोंचे ऐसा कचा पारा बैठ गया है (मस्तीका इतना जोग चढ़ गया है) कि इलेकी भी ताकत नहीं रही और न अब विच्छूका ढंक ही कुछ असर करता है; बल्कि ऐसी दालत हो रही है कि रोगटे खड़े हो रहे हैं और गला रुक जाता है।

प्यारेकी दृष्टि (दर्शन) सभी अनुभवके प्याले ऐसे रिश्कर पिये हैं कि अपने लिए और तनकी भी सुध-बुध नहीं रही। अब न तो दिन लगता और न रात ही नजर आती है, बल्कि रोगाच्छ हो रहे हैं और गला रुक जाता है।

पाँचों शान-हन्दियोंके द्वार तो बंद थे, मगर मालूम नहीं कि किस तरफसे वह (मस्तीका जोश) अंदर आकर काबिज हो गया है, जो बलाका नशा है और सितम ढा रहा है, जिससे रोगाच्छ खड़े हो रहे हैं और गला रुक जा रहा है।

यह शासकी मस्तीकी कैसी आँधी आ रही है और मिजानन्दका जोश कैसे बढ़ रहा है कि पृथ्वी, चाँद, सूर्य, तारेकी भी सुध-बुध नहीं रही, अर्थात् द्वैत बिल्कुल यासमान नहीं हो रहा, बल्कि रोगटे खड़े हो रहे हैं और गला रुक रहा है।

मन-रूपी मन्दिरों जो भाना प्रकारकी इच्छाएँ नालं रही थीं, वे घरके दीपकसे (आत्मानुभवसे) सब जल गयीं, अर्थात् अपने अंदर शान-अग्नि ऐसे प्रज्वलित हुईं कि सब प्रकारके संकल्प जल गये तथा रोगटे खड़े हो गये और गला रुक गया।

यह दुनिया शतरंजके खेलकी तरह है। इस (शतरंज-रूपी खेल) को लेपटकर अब गजामें फेंक दिया। वह फीला

मरा और वह बोड़ा मरा, वह देखकर रोम खड़े हो और गला रुक रहा है।

अब अपना प्यारा छाती-पर-छाती रखकर पड़ा है। तो कहाँका दैत और कहाँकी एकता है। किसको दत्ता अब ताकत है, केवल रोगटे खड़े हैं और गला रुक है।

(यह जो आनन्द आ रहा है, यह क्या है ?) संकल्पमयी (भासमान) शरीरकी मौतका आनन्द है समेटनेसे भी नहीं सिमटा है। अब तो (इस आनन्द भड़कनेसे) इस पाञ्चमौतिकको उठाना भी कठिन हो गया है, क्योंकि आनन्दके मारे रोम खड़े हो रहे हैं और गला रुक रहा है।

कलेजे (हृदय) में शान्ति है और दिलमें अब चौं है; खुशीसे रामका हृदय भरा हुआ है और मैन (आनन्द के) अमृतसे लबालब भरे हुए हैं; अर्थात् आनन्दके मो औसू टपक रहे हैं और रोम खड़े हो रहे हैं तथा गला रुक रहा है।

\* \* \*

### प्रेय समुद्रकी बाहु

जब उमड़ा दरिया उल्फत का, हर चार तरफ आपदी है। हर रात नई इक शादी है, हर रोज मुबारकबादी है। खुश खंदा है दैनीयुक काल, खुश शादी शाद मुरदी है। बन सूज आप दरस्ती है, खुद जंगल है, खुद वादी है। नित राहत है, नित करहत है, नित रंग नए आजादी है॥२॥

हर रात रोम में, हर मूँस में, अमृत भर-भर भरपूर हुआ। सब कुलफत दूरी दूर हुई, मन शादी मरी से चूर हुआ॥ हर बर्द बधाहीं देता है, हर जर्ह जर्ह दूर हुआ॥ जो है सो है अपना मजहब, स्वाह आवी नारी वादी है॥ क्या ठंडक है, क्या राहत है, क्या शादी है, आजादी है॥

रिम-हिंग, रिम-हिंग आँसू बरसे, यह अब बहारे देता है॥ क्या सूब भजे की आरिश में वह कुत्त बसल का देता है॥ मिरती मौजों में हूबे हैं, बदसत उसे कब खेता है॥ यह गकाबी है जी उठना, मत क्रिसको उफ चरवादी है॥ क्या ठंडक है, क्या राहत है, क्या शादी है, आजादी है॥ मातम, रंजूरी, बीमारी, मरुती, कमज़ोरी, नदी॥ डेकर कँचा-नीचा, मिहनत जाती (है) इन पर दौं वारी॥

न सब की मद्दों के धाइस, भृषा भर्ती का है जरी ।  
युम शीर कि शौरी तूँड़ों में, कोह और तेश फरहादी है ॥  
क्या ठंडक है, क्या राहत है, क्या शादी है, आजादी है ॥  
इस मरने में क्या लज्जत है, जिस झुंझु को चाट लगे इस की ।  
थूके है शाहंशाही पर, सब नैपत शैलत हो फौकी ॥  
मध्य चाहिये दिक तिर दे फूँको, और आग जलाओ भड़ी की ।  
क्या सत्ता बादा विकला है ले लो का कोर मुनदी है ॥  
क्या ठंडक है, क्या राहत है, क्या शादी है, आजादी है ॥  
हल्लत मालूल में मत दूरी, सब जारण-कार्य तुम ही हो ।  
तुम ही दफतर से खारिज हो, और लेते चारज तुम ही हो ॥  
तुम ही मसखक बने जैठे, और होते हारिज तुम ही हो ।  
तू दावर है, तू दुकला है, तू पारी, तू फरयादी है ॥  
नित राहत है, नित फरहत है, नित रंग नये आजादी है ॥  
दिन शबका शमड़ा न देखा, गो सूरज का चिन्हटा सिर है ।  
जब खुलती दीदाप-रीशन है, हँगमाप-खताब कहों फिर है ॥  
आनन्द सच्चर समुद्र है जिस का आगज न आखिर है ।  
सब राम पसारा दुनिया का, जाकुगर की उत्तादी है ॥  
नित राहत है, नित फरहत है, नित रंग नये आजादी है ॥

### अर्थ

जब प्रेमका समुद्र बहने लगा पड़ा तो दूर दरफ प्रेमकी  
वरती नजर आने लग पड़ी और रात-दिन शादी तथा  
मुनारकनादीने झुंझु दिलाना शुरू कर दिया । अब दिल बुन्दर  
पुण्यकी तरह हँगता और खिलता रहता है; चित नित्य  
आनन्द-प्रसन्न है । आप ही सूर्य चनकर चमक रहा है, और  
आप ही जंगल-धारी बन रहा है । अहा ! कैसा नित्य आनन्द  
है, नित्य शान्ति है, नित्य सर्व प्रकारकी सुखी और आजादी  
हो रही है ।

दूर रग और नाईमें तथा रोम-नीमसे आनन्द-लघ्नी  
अमृत भरा हुआ है । जुदाइके सब दुःख और कष्ट दूर हो  
गये और मन इस अहंकारके मरने ( मीत ) की खुशीमें  
चूर हो गया है; अन प्रत्येक पत्ता वधाइयाँ दे रहा है; क्योंकि  
परमाणुमात्र गो दूर जानायिसे आयिके पर्वतकी तरह प्रकाश-  
मान हो गया । अब जो है तो अपना ही संदी-ज्ञान या  
जाहिर करनेका स्थान है । नाहे वह गानीज्ञ प्राणी है, नाहे  
अग्निया और नाहे इताजा ( वह समस्त वालदमें फुरसको ही  
जाहिर करनेवाले हैं ) ।

आगन्त्री वर्षगी और सिं-तिग वरण रहे हैं, और यह

आनन्दका बादल क्या-क्या अच्छी बहार दे रहा है । इस  
जोखी व्यापमें वह ( चित ) क्या खूब अभेदता ( द्वज्जत )  
का आनन्द ले रहा है । शरीर-रूपी नौका तो इन्होंको  
लहरोंमें ढूबने लग रही है मगर वह सच्चा ( व्याप्तता )  
उन्सस्त उसे कब खेता है ? ( वह तो शरीरका व्याप्त नहीं  
कहता; ) क्योंकि उसके लिये यह ( देहात्मक ) इन्हों  
वास्तवमें जी उठना है । इसलिये है प्यारी । इस बैतरे यह  
शिक्षको ( क्योंकि शिक्षकनेमें अपनी वरवादी है ) । इस  
मृत्युमें तो क्या ही ठंडक है, क्या ही आराम है, और यह  
ही आनन्द और क्या ही स्वतन्त्रता है; इसका झुड़ वर्जन-नहीं  
हो सकता ।

गुलती है तो न्यग्र फिर शेष नहीं रहता, वरं चारों ओर अनन्त और नित्य आनन्दका नमूद्र उमड़ता दिखायी देता है। यह मंगार टीक रामका पमारा है और जादूगर (राम) की उमादी है। इसलिये यहाँ वास्तवमें नित्य नैन है, शान्ति है और नित्य राम-रंग और नयी आजादी है।

X X X

### प्यारेके पास पहुँचनेके लिये

जबतक तुग कंठके समान आने अहंकारस्ती सिरको शानहसी आरेके नीचे नहीं रखेगे, तबतक उस प्यारेके सिरके बाल्यको नहीं प्राप्त हो सकते।

जबतक सुरमेकी तरह पत्थरके नीचे पिल न जाओगे, तबतक सच्चे प्रियतमकी आँखोंतक नहीं पहुँच सकते।

जबतक मोतीकी तरह तारसे नहीं छिदोगे, प्यारेके कानतक नहीं पहुँच सकते।

शानी कुरुक्षर जबतक तेरी अहंकारस्ती मिट्टीके आबखोरे न बना लेगा, तबतक प्यारेके लाल अधरोंतक तू न पहुँच सकेगा।

जबतक कलमके समान सिर चाकूके नीचे न रख दोगे, कदापि उस प्यारेकी अँगुलियोंतक नहीं पहुँच सकते।

जबतक प्यारेके चरणोंतक कदापि नहीं पहुँच सकते।

जबतक फूलकी तरह ढालीसे अलग नहीं किये जाओगे, प्यारेतक किसी सूरतसे पहुँच नहीं सकते।

बाँसुरीके समान सिरसे पैरतक अहंकारसे खाली हो जाओ; नहीं तो, बाँसुरी बजानेवाले प्यारेके ओठोंका चुम्बन मिलना कदापि सम्भव नहीं।

X X X

### भारत-श्रेम

ऐ द्वृत्रे हुए सर्व ! तू भारत-भूमिगर निकलने जा रहा है। क्या तू कृष्ण करके रामका यह संदेशा उस तेजोमयी प्रतारी भासाकी सेवामें ले जायगा ? क्या ही अच्छा हो, यदि यह मेरे प्रेमपूर्ण आँसू भारतके खेतोंमें पहुँचकर औसकी बूँदें बन जायें। जैसे एक शैव शिवकी पूजा करता है, द्वृदं बन जायें। क्या अपनी वैष्णव विष्णुकी, बौद्ध बुद्धकी, ईसाई ईसाकी और मुसल्मान बैष्णव विष्णुकी, बौद्ध बुद्धकी, ईसाई ईसाकी और मुसल्मान मुहम्मदकी, वैसे ही मैं प्रेमार्थिनमें निमग्नचित्तसे भारतको जायेंगे।

संन्यासी, अद्वृत इत्यादि भारत-संतानके प्रत्येक वन्देश में देखता और पूजता हूँ। ऐ भारत माता ! मैं तेरे प्रिये रूपमें तेरी उपासना करता हूँ। तू ही मेरी गङ्गी है तूरे मेरी कालीदेवी है, तू ही मेरी इष्टदेवी है और तू ही मेरी शालग्राम है। भगवान् वृषभचन्द्र, जिनको भारतकी पिंड खानेकी इच्छा थी, उपासनाकी चर्चा करते हुए कहते हैं। जिनका मन अव्यक्तकी ओर लगा हुआ है, उनके पिंड बहुत-सी कठिनाइयाँ हैं, क्योंकि अव्यक्तका रासा प्रत्येक लिये अत्यन्त कठिन है।

ऐ मेरे प्यारे कृष्ण ! मुझे तो अब उस देवताकी उपासा करने दे जिसकी समस्त पूँजी एक बूढ़ा बैल, एक दूटी हुँ चारपाई, एक पुराना चिमटा, घोड़ी-सी रास्त, नाम और एक खाली जोपड़ी है। क्या यह महिम-स्तोत्रके महादेव हैं ! नहीं, नहीं ! ये तो साक्षात् नारायण-स्त्रलुप्त भूते भासवात हैं। यही मेरा धर्म है और भारतके प्रत्येक मनुष्यका यह धर्म, यही साधारण मार्ग, यही व्यावहारिक वेदान्त और पाठी भगवान्नकी भक्ति होनी चाहिये। केवल कोरी शावाशी देवा या घोड़ी-सी सहिष्णुता दिखानेसे काम नहीं चलेगा। भारत माताके प्रत्येक पुत्रसे मैं ऐसा कियात्मक सहयोग चाहता हूँ जिससे वह चारों ओर दिन-प्रति-दिन बढ़नेवाले शास्त्रिय जीवना संचार कर सके। संसारमें कोई भी वज्ञा शिखनके बिना युवावस्थाको प्राप्त नहीं हो सकता। इसी तरह कोई भी मनुष्य उस समयतक विराट् भगवान्से अपेक्ष होनेके आनन्दका अनुभव नहीं कर सकता, जबतक कि सात राश्ट्रके साथ अमेदभाव उसकी नस-नसमें पूरा जोश न माले लो। भारत माताके प्रत्येक पुत्रको समस्त देशकी देवताके लिये इस दृष्टिसे तैयार रहना चाहिये कि समस्त भारत मेरा ही शरीर है। भारतवर्षका प्रत्येक नगर, नदी, वृक्ष, पशु और प्राणी देवता माना जाता और इसी भावसे पूजा जाता है। क्या असी वह समय नहीं आया जब हम अपनी मातृभूमि को देवी मानें और इसका प्रत्येक परमाणु हमारे मनमें गम्भीर देशके प्रति देश-भक्ति उत्पन्न कर दे ? जब प्राण-प्रतिग्रह करके हिंदूलोग दुर्गाकी प्रतिमाको साक्षात् शक्ति गत लेते हैं, तो क्या यह ठीक नहीं कि हम अपनी मातृभूमि को महिमाको प्रकाशित करें और भारतस्ती सभी दुर्गामें जीव और प्राणकी प्रतिष्ठा करें ? आओ, पहले हम अपने हृदयों को एक करें; किर हमारे गिर और हाथ अपने धार में लाएंगे।

X X X

हंश्रानुभवके लिये संन्यासीका तो मात्र रखले। भास्त्राकी महान् अस्त्रसे अपनी लघु आत्माको अमेद करते हैं अपने स्वार्थका नितान्त त्यग करते। हंश्रानुभव व्याप्ति मानन्दको पानेके लिये सच्चे ब्राह्मण बनो। धर्मात् अपनी दिको देश-हित-चिन्तनमें अर्पण करते। आत्मानन्दके मुमनके लिये सच्चे शक्तिव बनो। अर्थात् अपने देशके लिये गतिशाल अपने जीवनकी आहुति देखो तैयार रहो। भरमासामाजी पानेके लिये सच्चे वैद्य बनो, अर्थात् अपनी भरती तामन्त्रिको केवल राष्ट्रकी धरोहर समझो। इहलौक का परलोकमें राम भगवान् या पूर्णानन्दको प्राप्त करनेके लिये अपने परोक्ष घटनों अपरोक्षरूप (व्यावहारिक) बनाओ, अर्थात् तुमको पूर्ण संन्यास-भाव प्राप्तकर सच्चे भ्राह्मण, दक्षिण और वैद्यकी शूद्रवीरता धारण करनी होगी। और जो देवा एवं पश्चे पवित्र शृङ्गोंका कर्तव्य था, उसे अपने हाथ-पैरोंसे स्वीकार करना होगा। अद्यूत जातियोंके कर्तव्य-पालनमें संन्यासी-धारका संयोग होना चाहिये। आजकल काल्याणका केवल एक वही द्वार है।

## X X X

अदि सूर्य मेरी दाहिनी और और धन्द मेरी दायी और सबै हो जायें और सुने पढ़े हृष्णको कहें, तो मैं मैं उनको आशा करोगी। दाहिनी भावना नहीं भावना है।

इम सुने डुकड़े जायेंगे, भारत पर थोर जायेंगे।  
इम सुने अपे चारोंगे, भारत की आत जानयेंगे।  
इम भी उमर बितायेंगे, भारत पर जान भिटायेंगे।  
इने पर दीड़े जायेंगे, काँटों की राख देनायेंगे।  
इम दर्द-दर धन्दके जायेंगे, अनाँद की शालक दिलायेंगे।  
भय दिते-नाते तोड़ेंगे, दिल इक आत्म-संसा जोड़ेंगे।  
सब विषयों से मुँह भोड़ेंगे, सिर सब तायें का फोड़ेंगे।

## सत्य

सत्य किसी व्यक्तियोगकी सम्पत्ति नहीं है; सत्य हीसाकी जास्ति नहीं है। हमें इसके नामाने सत्यका प्रचार नहीं करना चाहिये। सब कुण अथवा किसी दूसरे व्यक्तिकी सम्पत्ति नहीं है। यह तो प्रत्येक व्यक्तिवनी सम्पत्ति है।

सत्य तो वह है जो तीनों कालोंमें एक समान रहता है, जैसा कल यह, विद्या ही आज है और वैद्या ही यदा आगे रहता। किसी घटना-विशेषसे उसका सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता।

आप सद्यको प्राप्त कर सकें, वाप व्रातात्मका अनुमति कर सकें, इसके लिये वह जलसीदै कि आपकी प्यारी-से-प्यार अग्निलिंगायें और आवश्यकताएँ पूर्णतः छिन-भिन कर दीजायें, आपकी जलसीदै और प्यारी-से-प्यारी ममताएँ आसानीयाँ आपते पृथक् कर दी जायें और आपके निरपरिचित अन्वेषितास भट्टियोगट कर दिये जायें। इनमें आपका, आपके वृश्चिकका कोई समन्वय न रहे।

तुम एकमात्र सत्यपर आस्त हो, इस बातसे भयभीत नहीं कि अधिकांश लोग तुम्हारे विकल्प हैं।

समर्पण सत्यको ग्रहण करनेके लिये तुम्हें सोसारिद इच्छाओंका त्याग करना होगा। तुम्हें सांसारिक राम-देवसे अपर उठना होगा। अपने उन सरों रित्यों-नित्योंके नमस्कार करना पड़ेगा, जो तुम्हें बाँधकर तुल्यम बरतते और नीड़ धरीती हैं। वही साक्षात्कारका मूल्य है। जयतक मूल्य अद्य न करोगे, सत्यको नहीं जा सकते।

## त्याग

त्याग तो आपको सर्वोत्तम स्थितिमें रखता है; आपके उक्तरक्षी शितिमें पहुँचा देता है।

त्याग निश्चय ही आपके बलको बढ़ा देता है; आपके शक्तियोंको कई गुणा कर देता है; आपके प्रक्रियाको दृढ़ कर देता है; नहीं—आपको हंश्र बना देता है। वह आपका नित्यांश और भय हर लेता है। आप निर्भय तथा आनन्दसंग ही जाते हैं।

खार्यपूर्ण और व्यक्तिगत सम्बन्धोंको त्याग दो; प्रत्येक मैं और सभीं इंद्ररथवों देंगो; प्रत्येकमें और सभीं इंद्रवे दर्शन करो।

त्याग क्या है? अहंकारयुक जीवनको त्याग देना निःरंगत्य और निःसद्देह अमर जीवन व्यक्तिगत और परिच्छिन्न जीवनको जो ढालनेसे भिलता है।

वेदान्तिक त्याग कैसे है? अपाको लदा त्यागक चढ़ानामर ही जड़ा होना पड़ेगा; अपने-आपको इस उत्तर दशामें दृढ़तारूपक जगा कर, जो काम आनन्द आये, उसके प्रति अपने-आपको पूर्णतः अर्पण करना होगा। तब आपकर्मी नहीं; फिर कोइ भी कर्तव्य हो, आप उसे पूरा करकरो।

त्यागका आरम्भ सबसे निकट और सबसे प्रिय घरजुड़ों

यत्ना चाहिये। जिमका त्याग यत्ना परमावश्यक है, वह है भिन्ना असंगत अपांत् वीं यज फर हड़ हूँ, औं कर्ता हूँ, वीं भोगा हूँ। यही गाव ताम्ब गिरा व्यक्तिको उत्तम अपनी है।—इनमें त्याग देना होता।

त्याग आपसे विमालके थने जंगलमें जानेका आदेश नहीं देना; त्याग अपारे शरण उत्तर दालनेका आग्रह नहीं करना; त्याग आपको नीं पाँत थोर नीं गिर जूसनेके लिये नहीं करना।

त्याग न तो अदरव्य, व्याचारी और नैराश्यपूर्ण निर्विलाह है, और न दार्पुर्ण तपश्चर्या है। इसके पवित्र मन्दिर अर्थात् आपने शरीरको विना प्रतिरोध मांसाहारी निर्दिष्ट भेदभ्योंको लाने देना कोई त्याग नहीं है।

त्यागके अतिरिक्त और कहीं वासाविक अनन्द नहीं मिल सकता; त्यागके विना न ईश्वर-प्रेरणा हो सकती है, न प्राप्ती।

इस्तरत्न और त्याग पर्यायाची शब्द हैं। चंद्रकृति और ददाचार उत्तमी वास्त्र अभिव्यक्तियाँ हैं।

अहंकारपूर्ण जीवनका छोड़ देना ही त्याग है और वही सौन्दर्य है।

हृदयकी शुद्धतावा अर्थ है अपने-आपको सांसारिक पदार्थोंसे अमुकिते अन्ना, पुण्ड्र रखना। त्यागका अर्थ इससे रेखमान कम नहीं।

यह शरीर में है—इस अधिकार-भाष्यको छोड़ दो; सरे स्वर्योर्ण तम्बन्योंको, भरों और सोंरों के भावोंको छोड़ दो। इससे ऊर उठो।

त्यागके मायको ग्रहण करो और जो कुछ प्राप्त हो, उसे दूसरोंपर प्रकाशित करो। स्वाध्यपूर्ण दोषण मत करो। ऐसा करनेसे आप अवश्य ही श्वेत, उच्चवल हो जायेंगे।

कामनासे रहित कर्म ही सुकोंचम त्याग अपवा पूजन है।

### इच्छाओंका त्याग

इच्छाओंका त्याग कर दो; उनसे ऊर उठो। आपको दुरुनी शान्ति मिलेगी—ताकालिक विश्वान्ति और अन्तमें दूर्विजुत कल। सारण रसायी कि आपकी कामनाएँ, तभी तिद्द होंगी, जब आप उनसे ऊर उठकर परम सत्यमें पहुँचेंगे। जब आप जानकर या अनजीने अपने-अपने के ब्रह्मलगे दीन

कर देते हैं तभी और केवल तभी आपकी शमन्ते पूर्ण होनेका काल सिद्ध होता है।

आपका कर्म सुकल है, इसके लिये शास्त्रों उपरिणामपर व्यत नहीं देना चाहिये। आपको उसके उपरिणामपर व्यत नहीं देना चाहिये। साक्षम और उद्देश्यों प्रिय एक कर दो; काम ही आपका उद्देश्य या लक्ष्य वह उपरिणाम और कल्पना करना मत करो। तथा अथवा असफलता मेरे लिये कुछ नहीं है, मुझे जाप बनाना होगा। व्याप्ति कुम्हे काम व्याप्त होता है। मुझे उपरिणामके लिये ही करना चाहिये। काम करना उद्देश्य है; करनें प्रहृष्ट रहना ही नेत्र जीवन है। स्वात्म, मेरी असली जात्मा सत्ये शक्ति है। अतः मुझे करना ही होगा।

परिणामपर लिये चिन्ता मत करो, लेगोंसे कुछ आत्मा न रखो; अपने कामपर अनुकूल अथवा प्रति शाङ्केवालोंके विषयमें व्याकुल गत होओ।

जब आप इच्छाओंको छोड़ देते हैं, तभी, केवल वे सफल होती हैं। जबतक आप आपनी अभिलाह वृत्तपुरोहितों तभी रखतेंगे, अर्थात् इच्छा, जात्मा वे अभिलाह करना जारी रखतेंगे; तबतक तभी दूरी प्राप्त वक्षा-सुखलक्षण कैसे पहुँचेगा। ऐसे ही आप उसे छोड़ दें। दूरी-ही वह सम्बन्धित प्रक्रियाको छापको मेद देता है।

### हृदयको पवित्र करो

किञ्चिद्द्वारा और किञ्चिद्वारा किया हुआ दुर्घटा छिद्रान्तेष्य आपको आपने वरचे आपकी प्रति ज्ञेय सकता है, जैसे कि गतके भयानक स्वर्ण आपको यक्षम जगा देते हैं।

आपको इसी काम, हरी भड़ी यामाकार दो रुक्तानी दृग्य, आपनी आपलियोंको हटा दो। वास ही वह ग्रहण धृता और ईर्ष्याको छोड़ दो; आप मुक्त हैं।

ईर्ष्या क्या है, धृता क्या है? आपकिया लियो; विरथय। हम किसीसे धृता करते हैं, क्योंकि हमें यह दूसरेसे मोह होता है।

सदा अद रात्रिये कि जब आप ईर्ष्या और दृग्य शरीर द्वारा देखा जाए, तो आप हीं हीं रिता अपनेसे बाहर किसीके प्रति मेजते हैं, तो आप हीं हीं रिता

जी और बुलाते हैं। जब कभी आप अपने भाईकी आँखमें नका खोजते हैं, तभी आप अपनी आँखमें ताढ़ खड़ा होते हैं।

छिद्रान्येषणकी कैंचीसे जब कभी आपकी भेंट हो, तब आप इष्ट अपने भीतर दृष्टि डाल कर देखें कि वहाँ कैसे-कैसे गव उदय हो रहे हैं।

शरीरसे ऊपर उठो। समझो और अनुभव करो कि मैं अनन्त हूँ, परम आत्मा हूँ और इसलिये मुझपर मनोविकार और लोभ भला कैसे प्रभाव डाल सकते हैं।

अपने चित्तको श्यान्त रखदो, अपने मनको शुद्ध विचारोंसे भर दो। तब कोई भी आपके विरुद्ध खड़ा नहीं हो सकता। ऐसा दंबी विधान है।

हृदयकी पवित्रताका अर्थ है अपने-आपको सांसारिक पदार्थोंकी आसक्तियोंसे मुक्त कर लेना। उन्हें स्थाय देना। हाँ, स्थाय, स्थाय इसके अतिरिक्त कुछ और नहीं—यही हृदयकी पवित्रताका अर्थ है।

धन्य हैं वे, जिनका हृदय पवित्र है; क्योंकि वे ईश्वरके दर्शन करेंगे। आप भी हस पवित्रताको प्राप्त कीजिये और ईश्वरके दर्शन कीजिये।

### दूसरोंके साथ वर्ताव

यदि आप मनुष्यकी पूजा करें; दूसरे शब्दोंमें, यदि आप मनुष्यको मनुष्य नहीं, ईश्वररूप मानें; यदि आप सभीको ईश्वररूप, परमात्मारूप लमझें और इस प्रकार मनुष्यकी उपासना करें, तो यह ईश्वरकी उपासना होगी।

जो कोई आपके पास आवे, ईश्वर समझकर उसका स्वागत करो, परंतु साथ-ही-साथ अपनेको भी अधम मत समझो। यदि आज आप वंदीखानेमें पढ़े हैं तो कल आप प्रतापवान् भी हो सकते हैं।

लोग चाहे आपसे गिन मत रखें; चाहे आपको नाना प्रकारकी कठिनाइयोंमें डालें और चाहे आपको बदनाम करें; पर उनकी गुण और कोर, उनकी धमकियाँ, आवासनों और प्रतिशब्दोंके दैते हुए भी आपके मनहथी सरोबरसे दित्य, परिनिर्माण ताजा जल निरन्तर वहना चाहिये। आपके अंदरसे अमृतका प्रकार वहना चाहिये, जिससे आपके लिये बुरी वातोंका सोचना उसी प्रकार असम्भव हो जाय, जिस प्रतार शुद्ध और ताजा जल-स्रोत पीनेवालोंको विद नहीं दे सकता।

दूसरोंके प्रति आपका क्या कर्तव्य है? जब लोग बीमार पड़ जायें तो उनको अपने पास ले आओ और जिस प्रकार आप अपने शरीरके घावोंकी सेवा-शुश्रृष्टा करते हैं, उसी प्रकार उनके घावोंको अपना घाव समझकर उनकी सेवा-हाल करो।

### प्रेम और मैत्री

प्रेमका अर्थ है व्यवहारमें अपने पड़ोसियोंके साथ, उन लोगोंके साथ जिनसे आप मिलते-जुलते हैं, एकता और अभेदताका अनुभव करना।

सच्चा प्रेम सूर्यके समान आत्माको विकसित कर देता है। मोह मनको पालेके समान ठिठुराकर संकुचित कर डालता है।

प्रेमको मोह मत समझो। प्रेम और है, मोह और है। इन्हें एक समझना भूल है।

विषय-वासनाहीन प्रेम ही आव्यासिक प्रकाश है।

प्रेम ही एकसात्र दैबी विधान है। और सब विधान केवल सुव्यवस्थित लड्डमार हैं। केवल प्रेमको ही नियम भंग करनेका अधिकार है।

‘प्रेम’ इस हृदयक गळत समझा गया है कि प्रेम शब्द-के उच्चारणमात्रसे ही प्यारे लोगोंके हृदयोंमें दिव्य ईश्वरीय ज्योतिकी जगह ‘कामुकता’ और ‘मूर्खता’के भावोंका उद्देश होने लगता है।

जिस मनुष्यने कभी प्रेम नहीं किया, वह कदापि ईश्वरानुभव नहीं कर सकता। यह एक तथ्य है।

दिलावटी प्रेम, झूटी भावनाएँ और कृत्रिम भावुकता—ये सब ईश्वरके प्रति अपमान हैं।

आधिव्याधि क्या है? प्रेमके अभावमें संकोचन या संकीर्ण वृत्ति; केवल परछाईके हिलने-हुलनेसे पर फङ्फङ्गाना और दिनके झुठे स्वप्नोंके भयसे चिल्लाना।

यह सत्य है कि वक्तव्यादियों, वाहरी नाम-रूपोंमें विश्वास करनेवालों और लज्जाजनक ‘प्रतिष्ठा’के निर्लज्ज दायियोंकी संगतिके समान और कोई विषेला पदार्थ नहीं है। परंतु यह भी सत्य है कि जहाँपर प्रेमका डेरा जमता है, वहाँपर कोई भी गुरुलाल आवारा पर नहीं मार सकता।

पहले दिल जीतो, फिर विवेकसे अनुरोध करो। जहाँसे बुद्धि निराश लौटती है, वहाँ फिर भी प्रेमको आशा हो

गमती है। ऐसी कहानी है कि यात्रीके शरीरपरसे आँधी कोट न उत्तरवा गवी थी, परंतु गरमीने उत्तरवा दिया था।

ओ तिरस्कार करने योग्य सल्कारभावना ! किसी देशमें उम यागयतक पश्चता और प्रेम नहीं हो सकता, जबतक लोग एक दूसरेंके दोपांकर जोर देते रहेंगे।

ऐसी गिरताएँ जहाँ हृदयोंका मेल-मिलाप नहीं होता, भीषण भड़का करनेवाले द्रव्यसमुदायसे भी अधिक बुरी सिद्ध होती है; क्योंकि अन्तमें ऐसी मित्रतासे भयक्षर फूट पड़ जाती है।

यदि अपने किसी मित्रके विषयमें कोई अयोग्य बात माझे हो, तो उसे भूल जाओ; यदि उसके सम्बन्धमें कोई अच्छी बात मालूम हो, तो उसे फौरन कह दो।

### सांसारिक वस्तुओंमें विश्वास

संसारकी कोई भी वस्तु विश्वास और भरोसा करनेके योग्य नहीं है। उन लोगोंपर परमेश्वरकी अत्यन्त कृपा है जो अपना आश्रय और विश्वास केवल परमात्मापर रखते हैं और हृदयसे सच्चे साधु हैं।

**वस्तुतः** संसारकी कोई भी वस्तु अविनाशी नहीं। जो मनुष्य इन वस्तुओंपर भरोसा करता है ( और अपनी प्रसन्नताका निर्भर परमात्मापर नहीं रखता ) वह अवश्य हानि उठाता है। संसारके धनी पुरुष बड़ी पोशाकोंवाले तंगोंके समान हैं। अर्थात् ये लोग हैं तो विल्कुल नंगे और कंगाल, परंतु अपने-आपको बड़ी पोशाकोंवाला समझते हैं। ऐसे बड़ी पोशाकोंवाले नंगोंसे हमें क्या सुख मिल सकता है।

ज्यों-ही आप बाह्य पदार्थोंकी ओर प्रेरित होकर उनको पकड़ना और अपनाना चाहते हैं, ज्यों-ही वे आपको छलकर आपके हाथसे निकल भागते हैं। किंतु जिस क्षण आप इनकी ओर पीछे केरोगे और प्रकाशोंके प्रकाशस्वरूप अपने निजात्माकी ओर सुख करोगे, उसी क्षण परम कल्प्याणकारक अवस्थाएँ आपकी खोजमें लग जायेंगी। यही दैवी विधान है।

जब कभी मनुष्य किसी सांसारिक वस्तुसे दिल लगाता है; जब कभी मनुष्य किसी पदार्थके साथ उसीके लिये प्रेम करने लगता है; जब कभी मनुष्य उस पदार्थमें सुख ढूँढ़नेका प्रयत्न करता है; तभी उसको धोखा होता है। इन्द्रियों उसे

उल्लङ्घना देती हैं। आप सांसारिक पदार्थोंमें आसक्ति, सुख नहीं पा सकते। यही दैवी विधान है।

### धर्म

संसारके सभी धर्मग्रन्थोंको हमें उसी भावसे ग्रहण कर चाहिये, जिस प्रकार हम रसायन-शास्त्रका अध्ययन करते हैं। हम अपनी प्रत्यक्ष अनुभूतिको ही अन्तिम मानते हैं।

किसी धर्मपर हस्त कारण शद्वा मत करो कि यह किं वड़े भारी प्रसिद्ध मनुष्यका चलाया हुआ है। सर आइंड न्यूटन एक बहुत प्रसिद्ध मनुष्य हुआ है तो भी उसे प्रकाश-सम्बन्धी निर्गम कल्पना असत्य है।

सरण रहे कि धर्म हृदयकी वस्तु है, पुण्य भी हृदयकी वस्तु है; और पाप भी हृदयसे सम्बन्ध रखता है। वहुः पाप और पुण्य पूर्णरूपसे आपके चित्तकी स्थिति और दशा निर्भर करते हैं।

### सच्ची विद्या

सच्ची विद्या उस समय आरम्भ होती है, जब मनुष्य दमस्त बाहरी सद्यारोंको छोड़कर अपनी अन्तरङ्ग अनतिताकी ओर ध्यान देता है। उस समय मानो वह मौलिक शनका एक स्वामाविक स्रोत बन जाता है। अथवा महान् नवीन-नवीन विचारोंका चरमा बन जाता है।

सच्ची विद्याका पूर्ण उद्देश्य लोगोंसे ठीक काम करना ही नहीं, बरं ठीक कामोंमें आनन्द लेना सिखलाना है। केवल परिश्रमी बनाना ही नहीं, बरं परिश्रमसे प्रेम करना सिखलाना है।

### सत्सङ्ग—सद्गुरुन्थ

आप अपने असली स्वरूपकी ओर ध्यान करनेका प्रयत्न करें, सम्बन्धियोंकी तनिक भी परवा न करें। सद्गुरु अच्छे ग्रन्थ और एकान्त-सेवनद्वारा अपने स्वरूपमें निष्ठा होती है और अपने स्वरूपमें निष्ठा होनेसे सारा सुरार सेवन नया जाता है।

सत्सङ्ग, उत्तम ग्रन्थ और भजन-वंदणा—ये तीन नींवें तीनों लोकोंका राजा बना देती हैं और द्वाष द्वाष परमेश्वरको हमसे अप्रसन्न करवा देता है, जिसके द्वाष द्वाष तरह तरहके कष्ट आते हैं।

## व्यावहारिक—अमली वेदान्त

व्यावहारिक अथवा अमली वेदान्त क्या है—

१. साहस्रार्थी आगे बढ़नेवाला परिश्रम, न कि जकड़ देने-ला आलस्य ।

२. काममें आएम, न कि यकनिवाली वेगार वृत्ति ।

३. चिन्तकी शान्ति, न कि संशयरूपी भुन ।

४. संघटन, न कि विघटन ।

५. समुचित मुधार, न कि लकीरके फकीर ।

६. गम्भीर और सत्य भावना, न कि लच्छेदार बातें ।

७. तथ्य और सत्यभरी कविता, न कि कपोल-कल्पित कहानियाँ ।

८. घटनाओंके आधारपर तर्क, न कि केवल प्राचीन लेखकोंके प्रमाण ।

९. जीता-जागता अनुभव, न कि जीवनशून्य वचन ।

यद्युपर्याप्त व्यावहारिक वेदान्त बनता है ।

### सुधारकके प्रति

ऐ नवयुवक भावी सुधारको ! भारतवर्षके प्राचीन धर्म और रीति-रिवाजका अपमान न करो । भारतवासियोंमें फूटका नया बीज बोनेसे इनमें एकताका लाना अत्यन्त कठिन हो जायगा । भारतवर्षकी भौतिक अवनति भारतके धर्म एवं परमार्थनिष्ठाका दोष नहीं है; वरं भारतकी विकसित और हरी-भरी फुलवारियाँ इसलिये छुट गयीं कि उनके आस-पास काँटों और शाड़ियोंकी बाड़ नहीं थी । काँटों और शाड़ियोंकी बाड़ अपने खेतोंके चारों ओर लगा दो, किंतु उन्नति और सुधारके बहाने सुन्दर गुलबके पौधों और फलवाले बृक्षोंको न काट डालो । प्यारे काँटों और शाड़ियों ! तुम सुवारक हो, तुम्हीं इन हरे-भरे लहलहते हुए खेतोंके रक्षक हो । तुम्हारी इस समय भारतवर्षमें बहुत जल्दत है ।

ऐ नवयुवक भावी सुधारक ! तू भारतवर्षकी प्राचीन रीतियों और परमार्थनिष्ठाकी निन्दा मत कर । निरन्तर विरोधके नये बीज बोनेसे भारतवर्षके मनुष्य एकता प्राप्त नहीं कर सकते ।

जो मनुष्य लोगोंका नेता बननेके योग्य होता है, वह अपने भाग्ययोंकी मूर्खता, अपने अनुगामियोंकी विश्वास-ग्रातारता, भाग्य-जातिकी इलम्भता और जनताकी गुण-आहक-शीमताकी वामी धिरायत नहीं करता ।

६० धा० अ० ६५—

भूले-भटकोंके उद्धरमें लगनेवाले आप कौन हैं ? क्या स्वयं आपका उद्धर हो चुका है ?

जो शक्ति हम दूसरोंकी जाँच-पड़ताल करनेमें नष्ट करते हैं, उसे हमें अपने आदर्शके अनुसार चलनेमें लगाना चाहिये ।

ज्यों-ही हम संसारके सुधारक बननेके लिये खड़े होते हैं, त्यों-ही हम संसारके विगाड़नेवाले बन जाते हैं !

### विवाह और पति-पत्नीका सम्बन्ध

यह मत कहो कि विवाह और धर्ममें विरोध है, वरं जिस प्रकार आत्मानुभवका जिज्ञासु सच्चे परमानन्द, तत्त्व वस्तु और मूल तत्त्वोंपर विचार करता है, उसी प्रकार ( विवाहवस्थामें ) देखो कि आनन्दकी शुद्ध अवस्था क्या है और असली आत्मा क्या है ।

ऐसे विवाह-सम्बन्ध, जो केवल मुखके रंग-रूप, आकार-प्रकार अथवा शारीरिक सौन्दर्यकी आसक्तिसे उत्पन्न होते हैं, अन्तमें हानिकारक और बहुत ही निरानन्द सिद्ध होते हैं ।

पतिका उद्देश्य होना चाहिये कि वह अपने वैवाहिक सम्बन्धोंको उच्चतर और सात्त्विक बनाये । विलासिता और परिवारिक सम्बन्धोंके दुरुपयोगसे मनुष्य पथ-भ्रष्ट हो जाता है ।

जबतक पति और पत्नियाँ एक-दूसरेके लिये परस्पर मुक्तिदाता बनना अझीकार नहीं करते, तबतक संसारमरकी धर्म-पुस्तकें कुछ लाभ नहीं कर सकतीं ।

जबतक पत्नी पतिका वास्तविक हित-साधन करनेको तत्पर न हो और पति पत्नीकी कुशलताके मध्ये वृद्धिके लिये उत्तम न हो, तबतक धर्मकी उन्नति नहीं हो सकती; तबतक धर्मके लिये कोई आशा नहीं है ।

### अपना पर्दा आप ही

सच है, जबतक अपने-अपको स्वयं लेकर नहीं दोगे, दिलकी तपन क्यों बुझनेकी है ?

तो खुद हिंजविन्खुदी ऐ दिल । अज मियाँ वर लेज ।

‘अपना आवरण तू आप बना हुआ है, अतएव ऐ दिल ! अपने भीतरसे तू आप जाग ।’

हमवधु तुझसे रहता है, हर आज ‘रास’ तो ।

वन परदा अपनी वस्तु में हाथल हुआ है तू ॥

अपने हाथोंसे अपना मुँह कवतक ढाँगेगे ॥

वर चेहरा-ए तो नकाब ता के ।

वर चश्मा ए-खोर-सहवा ताकै ॥

प्तेरे नेहरेपर परदा कवतक रहेगा; सूर्यपर बादल  
नभतक रहेगा ?

### 'एकमेवाद्वितीयम्'

गे-रोकर मपथाओ इकट्ठा करना और उससे जुदा होते  
गमय फिर रोना, यह रुपयेके पीछे पागल बनना अनुचित  
है। अपने स्वत्तके भनको सँभालो। बात-बातमें 'प्रोग  
क्या काँगः', 'क्या ! अमुक व्यक्ति क्या कहेगा'—इस  
भयसे नायते जाना, औरौंकी आँखोंसे हर बातका अंदाजा  
लगाना, केवल जनताकी सम्मतिसे सोचना, अपनी निजी  
आँख और निजी समझको खोकर मूर्ख और पागल बनना  
अनुचित है। भिटाओ दैतका नाम और चिह्न और  
अपने-आपको सँभालो। दीवाली घड़ीके पेंडुलमके अनुसार  
दुःख और सुखमें थरथराते रहना हताश कर देनेवाला  
पागलपन है। इसे जाने दो। अपने अकाल स्वरूपमें स्थित  
हो जाओ।

धनमें, भूमिमें, संततिमें, मानमें और संसारकी सैकड़ों  
वरतुओंमें प्रतिष्ठा हृदैनेवालो ! तुम्हारे सैकड़ों उत्तर सब-के-  
सब अशुद्ध हैं। एक ही ठीक उत्तर तब मिलेगा, जब अहंकारको  
छोड़, देह और देहाध्यासके भावको ध्वनि कर और द्वैत—भिन्न  
द्वितिको त्यागकर सन्देह तेज और प्रतापको सँभालोगे। इस  
प्रकार और केवल इस प्रकार अन्यका नाम नहीं रहने पाता, द्वैत  
और नानात्मका चिह्न वाकी नहीं रहता। परम स्वतन्त्र,  
परम स्वतन्त्र एकमेवाद्वितीयम्, एकमेवाद्वितीयम्।

X X X

क्लेश और दुःख क्या है ? पदार्थोंको परिच्छिन्न  
दृष्टिसे देखना, अहंकारकी दृष्टिसे पदार्थोंका अवलोकन  
करना। केवल इतनी ही विपत्ति संसारमें है और कोई  
नहीं। संसारी लोगो ! विश्वास करो; दुःख और क्लेश  
केवल तुम्हारा ही बनाया हुआ है; अन्यथा संसारमें  
बस्तुतः कोई विपत्ति नहीं है।

संसारके बागीचेमें पुष्पसे इतर कुछ नहीं। अपना ध्रम  
छोड़ो, यही एक काँटा है।

मैं स्वतन्त्र हूँ, मैं स्वतन्त्र हूँ, शोकसे नितान्त दूर हूँ।  
संसार-रूपी बुद्धियाके नखरे और हाव-भावसे मैं नितान्त  
मुक्त और परे हूँ। ऐ संसार-रूपी बुद्धिया ! यह सुन, नखरे-  
टखरे मत कर, तुझमें मेरा चित्त आसक्त नहीं।'

### ईश्वरमें रहकर कर्म कीजिये

सफलता प्राप्त करनेके लिये, समुद्दिशाली बनवेके लिये  
आपको अपने कामसे, अपने जीवनके दैनिक व्यवहारों  
अपने शरीर और पुढ़ोंको कर्मयोगकी प्रयोगानिमें भस्त द  
देना होगा, दहन कर देना होगा। आपको अवश्य है  
उनका प्रयोग करना होगा, आपको अपना शरीर और स  
खर्च करना पड़ेगा। उन्हें जलती हुई अवस्थामें रहना पड़ेगा।  
अपने शरीर और मनको कर्मकी सलीबपर चढ़ाओ; दूँ  
करो, कर्म करो; और तभी आपके भीतरसे प्रगति  
प्रदीप होगा।

शरीर निरन्तर काममें लगा रहे और मन आरम्भ और  
प्रेममें ड्रवा रहे, तो आप यहीं इस जीवनमें पाप और तासे  
मुक्ति पा सकते हैं।

ईश्वर आपके द्वारा काम करने लगे। फिर आपके लिये  
कर्तव्य-जैसी कोई चीज न रहेगी। ईश्वर आपके भीतरे  
चमकने लगे; ईश्वर आपके द्वारा प्रकट हो; ईश्वरमें ही गहिरे  
सहिये; ईश्वरको खाइये और ईश्वरको ही पीजिये; ईश्वरों  
श्वास लीजिये और सत्का साक्षात् कीजिये। शेष काम अपने  
आप होते रहेंगे।

राम आपसे कहता है, अपना कर्तव्य करो, पर न कोई  
प्रयोजन हो और न कोई इच्छा। अपना काम भर को;  
काममें ही रख लो; क्योंकि काम स्वयं सुखरूप है; क्योंकि  
ऐसा काम ही साक्षात्कारका दूसरा नाम है।

अपने काममें छुट जाओ; क्योंकि काम तो तुम्हें करना  
ही होगा। काम ही तुम्हें साक्षात्कारपर पहुँचा देगा।  
इसके सिवा कामका और कोई हेतु न होना चाहिये।

### परमानन्द—सुख

अनन्त ही परमानन्द है। किसी अन्तवात्में परमानन्द  
नहीं होता। जबतक आप अन्तवात् हैं, तबतक आपनी  
परमानन्द, परम सुख नहीं मिल सकता। अनन्त ही  
परमानन्द है, केवल अनन्त ही परमानन्द है।

आपके ही भीतर सच्चा आनन्द है। आपके ही भीतर  
दिव्यामृतका महासागर है। इसे अपने भीतर ढाँड़िये, अतुरा  
कीजिये। भान कीजिये कि वह और भीतर है। आत्मा न यह  
है, न मन है, न बुद्धि है, न मरित्पक है, न हन्दाएँ हैं, न  
इच्छा-प्रवृत्ति हैं और न इच्छित पदार्थ; आप इन सबसे ऊपर  
हैं। ये सब प्रादुर्भावमात्र, नाम-रूप हैं। आप ही पुण्यगते  
हुए फूलों और चमचमाते हुए तारोंके स्तरमें प्रकट होते हैं। इ

एसे ऐसी कौन जीव है जो आपमें किसी अभियानको  
मत कर सके।

लोना और लोहा खरीदलेके लिये ही ठोक है। वह,  
जो आश्चिक उनका उपयोग नहीं। आनन्द इन भौतिक  
शब्दोंकी श्रेणीमें नहीं है, अतः वह सोने और चाँदीसे कदाचि,  
नहीं प्रकार मोल नहीं लिया जा सकता।

जो ऐसा सामने है कि उनका आनन्द कुछ विशेष  
संरीक्षितप्रभाव अवलम्बित है, वे देखेंगे कि मुख्यकारिन सदा  
उनसे दूर-दूर दूर इतना जाता है। अग्रिम बेतालके समान  
निरन्तर उनसे भागता रहता है।

महार सुखी और धन्य है वह, जिसका जीवन निरन्तर  
दर्शित है।

मुहुरी है वह जो निरानन्दका जीवनके लक्षणों की ओर  
मुख्यकी भीड़में दैता ही प्रेक्ष देखता है जैसा वह शुद्धावकी  
आधिकारी और शाहबहलतके शब्दोंमें रासंह लेता है। वही  
संशोधको स्वर्गीय उपरान्में बदल देता है।

### परमानन्दका सामर लहरा उठा

ऐ परमानन्दके महासंग्रह ! उठो खुरू जौने लहरे  
लों और दूलन दरहा करो। वृष्णी और आकाशको एक कर  
दो। विद्युतों और सिन्धारोंको दुगा दो। दुक्षें-दुक्षें कर  
दालो, तिरप-वितर कर दो। मुद्रे नक्ष प्रयोजन।

हटो ! ऐ संकल्पों और इच्छों ! हटो ! तुम संशारकी  
क्षणमंगुरु प्रदीपों और इनसे सम्बन्ध रखती हो। शरीर चाहै  
जित दशामें रहे, तुमे उससे जोहर बाला नहीं। सरे शरीर  
गेरे ही हैं।

अरे, चोर ! अरे, लिन्दन, प्यारे डाकू ! आओ, स्वामी  
शीघ्र आओ; दरले द्यो हो !

मेरा आपना आप तेरा है और तेरा बापा आप मेरा है।

धन्या आने दो, यदि तुम जाने दो, चुरीसे दे जाओ  
उन वरहाँओंको जिनमें तुम भेरी लमझते हो। और यदि  
उन्नित गर्भों लो, एक ही लोटों दूर देहजो मार डालें  
और उन्होंनु दुक्षें-दुक्षें कर डालो।

शरीरहो ले जाओ और जो कुछ कर सको, कर डालो।  
थरु, नाम और यशाही चर्चा मत करो !

ले जाओ शरे ! और कुछल डालो !

पिर भी देतेरों, मैं ही एक धकेला दुरकित और स्वरूप हूँ।  
नमस्कार ! प्यारे ! नमस्कार !

### कुट्टकर वचन

हे सत्यके जिज्ञासुओ ! राम तुमको विश्वास दिलाता  
कि यदि तुम आत्मिक भरिक्षणमें रात-दिन लगे रहोगे, त  
तुम्हारी शारीरिक आवश्यकताएँ आपने-आप निवृत्त फ  
होंगी। तुम्हें कुछ आवश्यकता नहीं कि तुम आपने अपन  
नामको लोडकर घटानी और दाप लेनेके काम-  
अपना धर्म मन दैठो।

संशारमें नियम है कि ज्यो-ज्यों मनुष्यका पद ऊँ  
होता है, शारीरिक शर्म और स्थूल (मोटे) काम  
उपरामता मिलती जाती है। जैसे जल हर अकारका के  
काम नहीं करता, वर्ते जबकी उपरिक्षितसे ही सब का  
पढ़ होते हैं। जबका साक्षी होता ही विश्वासीयों मुकद्द  
माजे और अरजीनवीरों इत्यादिको हलचलमें डाल दे  
है। वैसे ही कर्ता-पोकाकी पूँछोंको उत्तराकर संवार्द्ध  
उन्नादमें मन और महलकी साक्षी-स्वर स्थितिका होना  
काम-धैर्यको पक्ष बलता है। जिसके मध्यसे चक्र  
वर्त प्रकाश कारते हैं, जिसके मध्यसे नदियाँ बहती हैं, जिस  
वायुवासीन साक्षीका भागु बलती है, ऐसे जातीको कामना ढे  
चिलाते क्या शोजन।

X X X

काहदरो काम थे। माया कुछ बहु ही नहीं। जय  
पत्तेही जोरमें पदावको छिड़ा देते ही। जय साहसका सम्  
ज्ञात्वर आता है, तो कौन-सा हिमालय है जिसको कू  
काँटेही तड़ा बड़ाकर आगे नहीं के जा सकता। वह कौन  
सा समुद्र है जिसे तुम नहीं सुखा सकते। वह कौन-सा सूर्य  
जिसे परमानन्द नहीं बना सकते।

वह जैन-सा उड़ाता है जो वह ही नहीं सकता।

द्विष्ट को इन्द्रन, तो वहा ही नहीं सकता।

X X X

जहाँपर चहे, देस और नामवरका गिरावृ है, वहाँ सी  
मोहर, दुरुल, दृष्टि आदिका कथा काम ? कथा राजके लेंग  
सामने काँई लुड़ी-मुर्ची कफक सकती है ? सर्व जित समय उ  
हो जाता है, तो कोई भी लोका नहीं रहता। पशुओंकी  
आँखें खुल जाती हैं। नदियाँ जो तर्की जारी रहों जाहे, भी  
थीं, उन कालरोंको दैक्षकर चाल पढ़ती हैं। इसी प्र  
सूर्योंका सर्व आवादेश जल आपके हृदयमें निवार करता  
तो वहाँ शोक, मोह और दुख कैपे उहर सकते हैं। १

नहीं, कदापि नहीं। दीपक जल पड़नेसे पतंगे आप-ही-आप उम्मने आप-पास आने शुरू हो जाते हैं। चदमा जहाँ बह निवलता है, प्यास वृक्षानेवाले वहाँ स्वयं जाने लग पड़ते हैं। पूल जहाँ खिल पढ़ा, भौंरे आप-ही-आप उधर लिचकर चले आते हैं। इसी प्रकार जिस देशमें धर्म (ईश्वरका नाम) रोशन हो जाता है, तो संसारके सर्वोत्तम पदार्थ, वैभव आप ही विचे हुए उस देशमें चले आते हैं। यही कुदरतका कानून है, यही प्रकृतिका नियम है।

सफलतापूर्वक दीवित रहनेका रहस्य है अपना हृदय मातृवत् बना लेना, क्योंकि माताको तो अपने सभी बच्चे, छोटे या बड़े, प्यारे ल्याते हैं।

अपने हृदयमें विश्वासकी अभिको प्रज्वलित रखके विना, ज्ञानकी मशाल जलाये विना आप कोई भी काम पूरा नहीं कर सकते, एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते।

जिस समय सब लोग तुम्हारी प्रशंसा करेंगे, वह समय होरे रोनेका होगा; क्योंकि इसी प्रकार श्वठे पैशम्बरोंके आँने उनकी प्रशंसा की थी।

धन्य हैं वे लोग जो समाचार-पत्र नहीं पढ़ते, क्योंकि को प्रकृतिके दर्शन होंगे, और फिर प्रकृतिके द्वारा पुरुषके न होंगे।

प्रार्थना करना कुछ शब्दोंका दुहराना नहीं है। प्रार्थना अर्थ है परमात्माका मनन और अनुभव करना।

जितना अधिक आपका हृदय सौन्दर्यके साथ एकस्वर र धड़कता है, उतना ही अधिक आपको यह भान होगा समस्त प्रकृतिभरमें आप ही अकेले साँस ले रहे हैं।

लोग तथा अन्य वस्तुएँ तभीतक हमें प्यारी ल्याती हैं, तक वे हमारा स्वार्थ सिद्ध करती हैं, हमारा काम निकालती हैं। जिस क्षण हमारे स्वार्थके सिद्ध होनेमें गड़बड़ होती है, पि क्षण हम सब कुछ ल्याग देते हैं।

किसी अत्यन्त एकान्त गुफामें कोई पाप करें, आप वेलम्ब वह देखकर चकित होंगे कि आपके पैरों तलेकी स लड़ी होकर आपके विश्वद्व साक्षी देती है। आप अविलम्ब स लड़ी होकर आपके विश्वद्व साक्षी देती है। आप प्रकृतिको, ईश्वरको धोखा नहीं और वे बोलते हैं। आप प्रकृतिको, ईश्वरको धोखा नहीं सकते। यह अटल सत्य है और यही दैवी विधान है।

शक्तिशाली मुद्रामें विश्वास मत करो, ईश्वरपर भरोसा न करो। इस पदार्थपर अथवा उस पदार्थपर भरोसा न करो।

ईश्वरमें विश्वास करो। अपने स्वरूप, अपने जल विश्वास करो।

जहाँ कहीं रहो, दानीकी हैसियतसे कास करो; मिरु की हैसियत कदापि ग्रहण मत करो, जिससे आपका जल विश्वव्यापी कास हो, उसमें व्यक्तित्वकी गन्ध भी न रहे।

अहंकारी मत बनो, धमंडी मत बनो। यह कभी स समझो कि आपकी परिच्छिन्न आत्मा किसी वस्तुकी सामी है। सब कुछ आपकी असली आत्मा, ईश्वरकी वस्तुएँ हैं।

जो व्यक्ति कल्पनाओंमें निवास करता है, वह भ्रम और आधि-व्याधिके संसारमें निवास करता है, और जाहे ज बुद्धिमान् और पण्डित ही क्यों न जान पड़े, परंतु उसके बुद्धिमत्ता और पाण्डित्य उस लकड़ीके लड्डेके समान खोले हैं जिसे दीमकने खा लिया हो।

जैसा आप सोचते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। जगे आपको पापी कहो, तो अवश्य ही पापी बन जाओगे। अपनेको मूर्ख कहो, तो अवश्य ही आप मूर्ख हो जाओगे। अपनेको निर्बल कहो, तो इस संसारमें कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो आपको बलबान् बना सके। अपने सर्वशक्तिको अनुभव करो, तो आप सर्वशक्तिमान् हो जाते हैं।

अपने प्रति सञ्चे बनिये और संसारकी अन्य किसी बातकी ओर ध्यान न दीजिये।

विना कोटे गुलाब नहीं होता, वैसे ही इस संसारमें विशुद्ध भलाई भी अलम्य है। जो पूर्णरूपसे श्रम है, वह तो केवल परमात्मा है।

एक-एक करके हमें अपने सम्बन्धोंको काटना होगा। बन्धनोंको यहाँतक तोड़ना पड़ेगा कि जब अन्तिम अनुग्रहके रूपमें मृत्यु सामने आये तो हम सभी अनिच्छित पदार्थोंकी त्यागकर विजयी हो जायें।

दैवी विधानका चक्र निर्दयतापूर्वक धूमता रहता है। जो इस विधानके अनुकूल चलता है, वह इसपर भवारी करता है; परंतु जो अपनी इच्छाको ईश्वर-इच्छा, दैवी विधानके विरोधमें अड़ाता है, वह अवश्य ही कुचला जायगा और उसे ( यूनानी साहित्यमें वर्णित स्वर्गमें आग चुरानेवाले ) ग्रोमिथियउके समान पीड़ा भोगनी पानी ( जिसका मांस गिर्दोंसे नुचवाया गया था )।

मुरलीसे मधुर राग निकालना यही है कि आने गो-

उनको मुरली बना लो; अपने सारे शरीरको मुरली बना लो। उनको स्वार्थपरतासे खाली करके इसमें ईश्वरीय श्वास भर दो।

सच तो यह है कि परिस्थिति जितनी ही कठिन होती वातावरण जितना ही पीड़िकर होता है, उन परिस्थितियोंसे नेकलेनेवाले उतने ही बलिष्ठ होते हैं। अतः इन समस्त वाहरी कष्टों और चिन्ताओंका स्वागत करो। इन नरिस्थितियोंमें भी वेदान्तको आचरणमें लाओ। और जब आप वेदान्तका जीवन व्यतीत करेंगे, तब आप देखेंगे कि समस्त वातावरण और परिस्थितियाँ आपके बशमें आ रही हैं। वे आपके लिये उपयोगी हो जायेंगी और आप उनके स्वामी बन जायेंगे।

यदि आप विषय-वासनासे पथम्रष्ट हो गये हैं, यदि आप कामकालके दलदलमें फँसे हुए हैं, तो यही समय है कि अपनी सुदृढ़ संकल्प-शक्तिको जाग्रत् करके ब्रह्माभावनाको प्राप्त करो और उसे बनाये रखें।

तुम एक ही साथ इन्द्रियोंके दास और विश्वके स्वामी नहीं बन सकते।

तुम चाहो कि हम संसारका भी मज्जा लेते रहें, दुनियाके छोटे-मोटे और गंदे विषय-भेगों एवं पश्चात्काका मना-ओंकी भी तृप्ति करते रहें और साथ-ही-साथ ईश्वर-साक्षात् भी कर लें, तो यह नहीं हो सकता।

आपकी भीतरी कमज़ोरी क्या है! वह है आपके हृदयमें अज्ञानका ऐसा काल धब्बा जिसके बशीभूत होकर आप अपनेको शरीर और इन्द्रियाँ मान बैठे हैं। इस भ्रमको मिटा दीजिये, दूर कर दीजिये और फिर देखिये—आप स्वयं शक्ति हो जायेंगे।

सभा-समाजों और समुदायोंपर भरोसा मत करो। प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है कि वह स्वयं अपने भीतरसे बलवान् हो।

दूसरोंकी आँखोंसे अपने आपको देखनेका सम्भाव मिल्या अहंकार और आत्मश्लाघा कहलाता है।

बुरे विचार, सांसारिक इच्छाएँ छूटे शरीर और छूटे मनसे सम्बन्ध रखती हैं। ये अन्धकारकी चीजें हैं।

## श्रीशिवयोगी सर्पभूषणजी

( प्रेषक—कौ० श्रीहनुमंतराव हरणे )

( १ ) सत्य और नित्य होकर, लौकिक व्यवहारके भ्रमसे परन्दा वस्तुको भूलकर, त् अपना विनाश न कर।

( २ ) शरीर, पत्नी और पुत्रोंको अपना मानकर, तूने उनमें विश्वास कर रखा है। सो ( मैं पूछता हूँ ) मरणकालमें ये स्वयं तेरे साथ जायेंगे अथवा उस द्रव्यको तेरे साथमें भेजेंगे जिसको तूने बटोर-बटोरकर कमाया है। अथवा जो यातनाएँ तुझे नरकमें भोगनी पड़ेंगी, उन यातनाओंसे तुझे ये सब बचायेंगे क्या?

( ३ ) ( सोच ) तेरा जन्म होनेसे पहले त् कौन या और ये कौन थे? तेरे रहते ये जुदा नहीं होंगे? जब तेरा पुनर्जन्म होगा तब फिरसे आकर ये तेरी सहायता करेंगे या? ये दस्यप्रमाण तो कुतियाके स्वप्नके समान हैं।

( ४ ) यह शरीर तो विजली-जैसे दीलकर और पानी-के ऊपर रहनेवाले शुल्कुलोंके सरीखा क्षणभरमें ही अदृश्य

हो जाता है। तू सत्य, नित्य और आनन्दस्वरूप होकर भी शरीर-सुखके लिये जो प्रयत्न करता है सो तो मानो पानीमें बैंगुली छुबोकर चाटनेके समान ही है।

( ५ ) एकत्र हुए सब लोगोंके चले जानेके बाद जैसे बाजारका अस्तित्व नहीं रहता है, वैसे ही तेरा पुण्य समाप्त होते ही यह जो धन-दौलत आदि ऐश्वर्य है, यह सब चला जायगा। सच्चे मोक्षको छोड़कर लौकिक सुखोंकी आशा करना तो धृतकी आशासे बूँड़ा खानेके समान ही है।

( ६ ) जैसे मधुकी आशासे उस मधुसे लिपटे हुए तीक्ष्ण सज्जको चाटकर दुःखका अनुभव करना पड़ता है, वैसे ही एक क्षणका रति-सुख प्राप्त करने जाकर अपार दुःख भोगना पड़ता है। यह जानकर सद्गुरुकी शरण होने और लौकिक व्यवहारको छोड़कर तत्त्वज्ञानको प्राप्त करके दुःख-रहित होकर, उस परमानन्दमें लीन होनेको छोड़कर तू दुरा मत बन।

### ‘दुःखालयमशाथतम्’

मंगल ही दुःखालय है । दुःख ही यहाँ निवास करते हैं । किंतु भी अवश्यामें यहाँ सुख मिलेगा—एक भ्रम ही है यह । इतना बड़ा भ्रम कि रंगारके साथी लोग इसमें आनंद हो सकते हैं ।

मुहुर्मर शिखु—आनन्दकी मूर्ति । कवियोंकी कथना थालको आनन्दकी वात करते थकती नहीं । बहु पुरुष अपने चाल्याल्यकी चर्चा करते हुए गहद ही उठते हैं । परिष लौट आता नचपन ! कितनी थालक भरी है इसमें ।

कोइ थालक भी मिल है आपको जो थालक ही बना रखना चाहता हो । प्रत्येक थालक बड़ा होने को सुनुक रहता है । क्योंकि वह थालक है—आपनी उत्तुकता छिपाये रखनेकी दम्भपूर्ण कला उसे आती नहीं । बदि शिखुतमें सुख है—थालक क्यों अपनी शिखुतमें संतुष्ट नहीं रहता ?

बालकका अशन—लेकिन बालकमें अशन और अशमर्था न हो तो वह थालक रहेगा ? वह चाहता है गम, वह चाहता है सामर्थ्य । आपकी भी सुख अशन और अशमर्थके लिये नहीं है, यह आप जानते हैं ।

अयोध थालक और उसकी अशक्ति—उसे प्यास लगी—रोता है । भूख लगे—रोता है । शरीरको मच्छर काटे—त्ता है । शरीरमें कोई अन्तर्मीषा हो—रोता है । रोना—दून ही डंकका सहार है । रुदन ही उसका जीवन है । दून सुखका लक्षण तो नहीं है न !

मुहुर्मर कक्षी लचा—मच्छर तो दूर, मक्कियाँ भी इसी हैं और उन्हें उड़ाना नहीं जा सकता । माता पता ही क्या-न्या अचर-मचर ला लेती है—उसका परिणाम शुभ शोगता है । उसके शरीरमें पीड़ा होती है; किंतु वह नहीं कहता । कितनी विवशता आहेगा ।

स्या हुआ जो शिखु कुछ बड़ा हो गया । उसका शन तत्त्व । उसकी सभी आवश्यकताएँ दूसरे पूरी करें तो पूरी । उसका मन लक्ष्यता है, वह मच्छता है और अनेक रुद्धा-प्रौढ़िकी अनामपर दुःखी या अपह गता है ।

अशन और परावीनताका नम सुख तो नहीं है ?

X            X            X

बालक सुखक हुआ । उसका, शादि और शक्तिका

स्थान छूट रखा उसमें । सुखक वहा सुखी है । ज्ञानकी अवस्था है ।

शमानायोंका दावानल दूरदर्शमें प्रज्ञातित । वासनाएँ प्रदान हो उठीं और लहाँ कम है क्षेप है ।

बालक, असंतोष, अंकारु क्षेप—सुखव लक्षणों लिये आती है । चिन्ता, श्रम, शान्ति, निराश युखक इनसे कहाँ छूट पाता है ।

बालक—बालका तो संतुष्ट होना जानती नहीं और ही दुःखका मूल है, यह बुछ साए करनेकी वात

X            X            X

सुखक बहु हो गया । अनुभव परिषक हो गये आकर उसके आनंदण व्यवस्थित हो गये । सोनन बुछ करनेकी वात रामसमें जो गयी । अनुभव समादरणीय बहु—जब्र क्या वार्षिक्यमें सुख है ।

कोई मूर्ति भी दुःखमें सुखकी वात नहीं बरेगा

अनुभव क्या कास आये ? समझ आयी; पर आना रहा किउ कामका । करनेकी शक्ति वो र गयी । शरीर असमर्थ हो गया । रोगोंने घर छ देक्ये । याँख, कान, नाक दौँत शूग, पैर आदि र जाव देने लगी ।

अशक्ति, पीड़ा और विनाशको छोड़कर उसे क्या ? शरीरको रोगोंने पीड़ित कर रखा है और मन ; असमर्थतामें पीड़ित है । लोग तिरकार करते हैं । और हुश-ही-हुश तो है ।

X            X            X

शरीरका अनिम परिणाम है मरु—वह मरु नाम ही आज्ञा है । सृष्टुकी कलाना ही कृपित कर है । जिस शरीरपर इतना समल—मरु उसे छै चितापर बलनेके लिये छोड़ देती है ।

जन्म और मरु—जीवनका प्रस्तु और हुखदे । और उसका पर्यवेक्षन हुखमें हुआ । रोता आया । गया । जिसका आदिअन दुःख है, उसके मर्यादी । कहाँसे आयेगा ? उसके मध्यमें भी हुश-ही-हुश है ।

“दुःखप्रेष रवे विवेकिनाम ।”

## संसार-कूपमें पड़ा प्राणी

**भव-कूप**—यह एक पौराणिक रूपक है और है विद्या परिपूर्ण। इस संसारके कूपमें पड़ा प्राणी कूप-झूकसे भी अधिक अज्ञानके अन्वकारसे प्रस्त हो रहा है। अहंता और ममताके धेरमें धिरा प्राणी—समस्त चराचरमें परिव्याप्त एक ही आत्मतत्त्व है, इस परम सत्यकी बात स्वप्नमें भी नहीं सोच पाता।

कितना भयानक है यह संसार-कूप—यह सूखा कुओं है। इस अन्धकूपमें जलका नाम नहीं है। इस दुःखमय संसारमें जल—रस कहाँ है। जल तो रस है, जीवन है; किंतु संसारमें तो न सुख है, न जीवन है। यहाँका सुख और जीवन—एक मिथ्या ध्रम है। सुखसे सर्वथा रहित है संसार और मृत्युसे प्रस्त है—अनित्य है।

मनुष्य इस रसहीन सूखे कुरँगें गिर रहा है। कालरूपी हाथीके भयसे भागकर वह कुरँगेंके मुखपर उगी लताओंको पकड़कर लटक गया है कुरँगें। लेकिन कबतक लटका रहेगा वह? उसके दुर्बल बाहु कबतक देहका भार सम्भाले रहेंगे। कुरँगेंके ऊपर मदान्ध गज उसकी प्रतीक्षा कर रहा है—आहर निकला और गजने चीरकर कुचल दिया पैरोंसे।

कुरँगें ही गिर जाता—कूद जाता; किंतु वहाँ तो माहाविभास फग उठाये फूल्कार कर रहा है। कुचल सर्प प्रस्तुत ही है कि मनुष्य गिरे और उसके शरीरमें पैने दंत तीश्ण गिर उँडेल दें।

**अभागा मनुष्य**—वह देरतक लटका भी नहीं रह सकता। जिस लताको पकड़कर वह लटक रहा है, दो चूहे—काले और श्वेत रंगके दो चूहे उस लताको कुतरनेमें लगे हैं। वे उस लताको ही काट रहे हैं। लेकिन मूर्ख मानवको मुख फाड़े सिरपर और नीचे खड़ी मृत्यु दीखती कहाँ है। वह तो मान है। लतामें लगे शहदके छत्तेसे जो मधुविन्दु यदा-कदा टपक पड़ते हैं, उन सीकरोंको चाट लेनेमें ही वह अपनेको कृतार्थ मान रहा है।

यह न रूपक है, न कहानी है। यह तो जीवन है—संसारके रसहीन अन्धकूपमें पड़े सभी प्राणी यही जीवन बिता रहे हैं। मृत्युसे चारों ओरसे प्रस्त यह जीवन—कालरूपी कराल हाथी कुचल देनेकी प्रतीक्षामें है इसे। मौतरूपी सर्प अपना कण फैलाये प्रस्तुत है। कहाँ भी मनुष्यका मृत्युसे छुटकारा नहीं। जीवनके दिन—आयुकी लता जो उसका सहारा है, कठती जा रही है। दिन और रात्रिरूपी सफेद तथा काले चूहे उसे कुतर रहे हैं। क्षण-क्षण आयु क्षीण हो रही है। इतनेपर भी मनुष्य मोहान्ध हो रहा है। उसे मृत्यु दीखती नहीं। विषय-सुखरूपी मधुकण जो यदा-कदा उसे प्राप्त हो जाते हैं, उन्हींमें रम रहा है वह—उन्हींको पानेकी ही चिन्तामें व्यग्र है वह!

## महात्मा श्रीमस्तरामजी महाराज

( काठियावाड़ और भावनगर राज्यके आसपासके स्थानोंमें विचरण करनेवाले एक राजस्थानी संत )

खाटा भीठा देख कै, जिमिया भर दे नीर ।  
तब लग जिंदा जानिये, काया निपट कथीर ॥  
चाह नहीं, चिंता नहीं, मनवाँ बेपरवाह ।  
जाको कछू न चाहिये, सो जग साहंसाह ॥

फिकिर सभी को खा गया, फिकिर सभी का पीर ।  
फिकिर की फँकी जो करै, उसका नाम फँकीर ॥  
पेट समाता अब लै, देह समाता चौर ।  
अधिक संग्रही ना बनै, उसका नाम फँकीर ॥

## संत रामदास बौरिया

दीपकपर गिरकर पतिंगा स्वयं ही जल जाता है, वह इस हमने अपने अंदर वह ताकत पैदा कर ली है या-  
प्रतीक्षामें नहीं रहता कि दीपक मेरी तरफ लै बढ़ावे । साध-ही-साय अगर हम कहना ही चाहते हैं तो हम  
हम किसीसे कुछ कहें, इससे पहले यह सोच लें कि शक्ति रखनी चाहिये ।

## श्रीसत्यभोला स्वामीजी

( गोडा जिला, अंजावलपुर ग्राम )

नारी को है धर्म पिया को हुकम बजावै ।  
करि सेवा बहु भाँति पिया को सोबत जगावै ॥  
कहै 'सत्यभोला' पुकारि नारि सोइ सयानी है ।  
पिया को लेइ रिक्षाइ पिया मनमानी है ॥  
अहै मित्र को धर्म मिताई चित मैं राखै ।  
परै मित्र पर भीर तवै गुन आपन भाखै ॥

कहै 'सत्यभोला' पुकारि मित्र सोइ सत्य कहाई ।  
परै मित्र पर भीर मित्र है करै सहाई ॥  
बिन पनही पोसाक, बसन बिन गहना शूठो ।  
बिना सुर गौरई, घृत बिन भोजन रुठो ॥  
कहै 'सत्यभोला' पुकारि लवन बिन ब्यंजन जैसे ।  
भजन बिना नर देह जगत मैं सोहत तैसे ॥

## स्वामी श्रीसन्तदेवजी

( सत्यभोला स्वामीजीके शिष्यके शिष्य । अंजावलपुरके निवासी )

ऐसो को जेहि राम न भावै केहि मुख राम न आवै जी ।  
बिना राम सब काम सकल के कैसे कै बनि आवै जी ॥  
भला बुरा मैं राम सहाई, राम मिलै सुख पावै जी ।  
'संतदेव' गहै संत राम कों, राम संत गुन गावै जी ॥

कोई निदै कोइ बंदै जग मैं मन मैं हरस न मालो जी ।  
आठो जाम मस्त मतवारो राम नाम रस चाखो जी ॥  
विहँसि मगन मन करो अनंदा, सर सब्द मुख भाखो जी ।  
'संतदेव' जाय बसो अमरपुर, आवागवन न राखो जी ॥

## भक्त कारे खाँ

( भक्त मुसलमान )

छलवल कै आँखो अनेक गजराज भारी,  
भयो बलहीन, जब नेक न छुड़ा गयो ।  
कहिंचे को भयो करना की, कवि कारे कहै,  
रही नेक नाक और सब ही छुड़ा गयो ॥

पंकज से पायन प्यादे पलंग छाँदि,  
पॉवरी विसारि प्रभु ऐसी परि गयो ।  
हाथी के हृदय माहि आधो 'हरि' नाम गोय,  
गरे जौ न आयो गचडेस तीर्डा आ गयो ॥

## श्रीखालसजी

तुम नाम-जपन क्यों छोड़ दिया ।  
कोध न छोड़ा झूठ न छोड़ा,  
सत्य बचन क्यों छोड़ दिया ॥  
झूटे जग में दिल ललचाकर,  
असल बतन क्यों छोड़ दिया ।

कौदी को तो खूब सँभाल,  
लाल रतन क्यों छोड़ दिया ॥  
जिन सुमिरन से अति सुख पावै,  
तिन सुमिरन क्यों छोड़ दिया ।  
‘खालस’ इक भगवान-भरोसे,  
तम-मन-वन क्यों छोड़ दिया ॥

## स्थामी श्रीयुगलानन्धशरणजी

[ श्रीभगवान्-भास्यके प्रसिद्ध संत, जन्म—संवत् १८७५ कार्तिक शुक्ल ७ फल्गुनीदीपोत्तवतीं ईसरामपुर (इस्लामपुर) के सारस्वत ब्राह्मणवंशमें । ]

( प्रेपक—श्रीअच्छूर्धमनाथसदाचार्जी वी०४०, वी०एल० )

१—श्रीसीतारामजीके भक्तोंको चाहिये कि ये छः गुण  
उदा धारण करें—१ भनको सदा बशमें रखें। यह  
महानीच टग-चोर है, दैवी-सम्पत्तिको चुराना चाहता  
है। २ मृत्युको सदा रमीप जान भजन करनेमें तनिक  
भी प्रमाद न करे। ३ सदा भगवान्के अनुकूल कार्य ही  
करे। जिससे भगवान् प्रसन्न हों, वही काम करे। ४ सदा  
यह समझता रहे कि भगवान् मेरा यह कर्म देख रहे हैं,  
इससे नीच आचरण नहीं होगा। ५ दृश्य पदार्थसे मोह  
न करे जिससे कि भगवान्की तरफ मन लगे। ६ दुःखको  
मुक्तसे शेष माने और संसारके दुःखसे रहित हो जाय।

२—यह मन महाठग है, अनन्त-अनन्त प्रकारोंसे सदा  
गह भजनरूपी धनको हरता रहता है। इसीलिये संतजन  
साक्षात् होकर अपना घर बचाकर उसका अनादर करते  
रहते हैं। प्रथम धरको लुटाकर बादमें पछताना अच्छा नहीं।

३—जिशासुके दम लक्षण हैं—१ दया, २ नम्रता,  
३ संतास्तेद, ४ दमभृत्यता, ५ असङ्गता, ६ भावनिपक्षम,  
७ तीव्र वैराग्य, ८ शान्ति, ९ एकान्तवास और १० केवल  
भगवान्-को लिये ही कर्म करना। सच्चे संतोंसे ये दसों लक्षण  
पाये जाते हैं। कोरे वैष्णवारीमें इनमेंसे एक भी नहीं होता।  
जयतक जिशासु गंतोंके इन स्वाभाविक गुणोंको धारण नहीं  
करता, तथतक निर धार्जालैसे भगवान्के दर्शन नहीं होते।

४—मृत्यु निश्चय है, धर्मके अतिरिक्त कुछ साथ नहीं  
जाता। उत्तम भगवान्-का भजन करो—जो सबोंपरि धर्म है।

५—मत्तानोंके लक्षण—परायी स्त्री माता, पराया धन

ता० ना० उ० ६४—६५—

विष, पराया दुःख अपने दुःखके समान। ईश्वर कौन है ?  
मैं कौन हूँ ? जगत् क्या है ? इसका सम्यक् ज्ञान।

६—शरणारगतके मुख्य लक्षण—श्रीभगवान्-का अखण्ड  
स्वरण, शान्ति, समता, संत-सेवा, नम्रता, प्ररनिदारहित,  
मानापमानमें सम, प्राणिमात्रमें मैत्रीभाव।

७—महामूर्ख वह है जो यह जानते हुए भी कि, एक  
दिन अवश्य मरना है, परलोककी चिन्ता न करके विषया-  
सक्त हो श्रीभगवान्-को सुला देता है।

८—श्रीराम-भजन और धर्म करनेमें तनिक भी विलम्ब  
मत करो, जो कल करना हो उसे आज ही कर डालो जिससे  
कल प्रसन्नता और उत्साह रहे। मनको सदा काढ़ूमें  
रखें। निश्चय समझो—यह मन महाधूर्त है।

९—चार वातें संत भी वच्चोंसे सीखते हैं—१ भोजनादि  
चिन्ता-त्याग, २ आपसमें लड़कर कोधकी गाँठ नहीं  
रखना, ३ रोगी होनेपर भी भगवान्-की निन्दा नहीं करना,  
४ संगियोंके दुःख-सुखमें आसक्त न होना।

१०—शानके ये दस गुण संत भी लेते हैं—१ भूखा रहता है, यह चिह्न भलोंका है। २ गृह-रहित होता है, यह गुण विरक्तका है। ३ सदा सज्जा निश्चा  
लेता है, यह गुण प्रेमी भक्तका है। ४ मेरे पीछे  
उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं निकलता, यह गुण  
विरक्तका है। ५ कभी स्वामीका द्वार नहीं  
छोड़ता, यह सच्चे सेवकका गुण है। ६ थोड़ेसे ही  
स्थानमें निर्वाह कर लेता है, यह दीनताका—संतोष-शक्तिका।

लग्न है । ७ जहाँसे कोई उटा दें, वहाँसे उट जाय, यह गुण प्रमथ जितवालेका है । ८ बुलाये आता हैं, उटाथे जाता है, यह गुण असानियोंका है । ९ रमार्ह जब जाएं दें, माँगता कुछ नहीं, यह गुण तर्यावियोंका है । १० कोई उत्तरी और देखे तो वह प्रसीदी और देखता है, यह चिह्न भक्तिसन्धुमें लीन एर्ण सतोंका है ।

अद्विदि श्री गुणदेव सरन दृढ़ वारि विश्वास सेंभारे ।  
ग पीड़ि परतीति नाम श्री धाम मनोहर वारे ॥  
स के बाद नवल मूरत निज नैनन नित्य निहारे ।  
श्री युगलानन्दपरम गुंदर पथ चलत न सपनेहु हारे ॥

सीताराम नाम ही में बद संहिता पुगन,  
ज्ञान, ध्यान, भावना समाधि सरखतु हैं ।  
सीताराम नाम ही में तत्त्व भक्ति योग यग्य,  
पर व्यूह, विभव स्वरूप परसतु हैं ॥  
सीताराम नाम ही में पौँचों सुक्ति, सुक्ति,  
वरदायक, विचित्र, एक रस दरसतु हैं ।

युगलअनन्द सीताराम नाम ही में, मोद  
विषद विनोद वार वार वरसतु है ॥

### देहा

गद गद शानी पुलक तन, नैन नीर मन पी ।  
नाम रटत ऐसी इसा, होत मिलत खुशी ॥  
नवधा, दसधा, परा, रस रूपा भक्ति विचित्र ॥  
विविध भाव अनुराग सुख, नामधीन सुमित्र ॥  
जौ लौं रा रग से नहीं, सुधनि नाम निज सा ॥  
निकसत परम प्रकाशमय, मधुर मोहन्यत धार ॥  
रट है मन मति लीन सहित श्री नामहि तैलै ॥  
श्री युगल अनन्द असंख्य मौज मानस नहि जौलै ॥

है दइभागी सोइ सुन्नि संत सियावर के अनुगी अदृष्ट  
जाह नहीं जिन केगन में कुछ दाह की रीति लैवे लत आदि ।  
माँग के खात मधुकरी धाम में नाम में चित्त लाल विसार ।  
युग्म अनन्द के पूज्य सदा प्रिय प्रान हूँ ते जो परे साराण ।  
जूआ, चोरी, मसलरी, ब्याज, धूस, पत्ता ।  
जो चाहै दीदार को, एसी वन्तु निकार ॥

## स्वामी श्रीजानकीवरशशरणजी

(जन्म-स्थान—फैजाबाद जिलानन्दगांव कलाकाशुर शास, पिताजा नाम—मेहरबात मिश्र, सर्यूपारीण ब्राह्मण, दीशपुर  
युगलानन्दशरण स्वामीजी, मृत्यु संवत् १९५८ वि० माघी शामवस्ता ।)

चित लै गयो चुराय बुलफों में लला ।  
हम जानो, वे कुपासिधु हैं, तब उनसे भई प्रीति भला ॥

विरही जनको दुख उपजावत करत नहीं नयी अवश कला ।  
प्रीतिलता पीतम चेदरदी छाँड़ि हर्मे कित गयो चला ॥

## स्वामी श्रीसियालालशशरणजी 'प्रेमलता'

मानुस सरीर मिल्यौ केवल भगति-हित,  
ताहि विसराय धावै भोगन की ओर है ।  
राम में करार कियौ पायौ अति दुख जहाँ,  
बार-बार प्रभु-सनमुख कर जोर है ॥  
रावरी सपथ नाथ ! रटिहाँ सुनाम तच,  
तासिये कृपालु बेगि यहै नक्क धोर है ।  
'प्रेमलता' भूलि कै करार रह्यौ छियि इत,  
रटत न नाम सियाराम सोई चोर है ॥

नाम को खाद लियौ न सुजीभ तैं काहें को साधु भये तजि गेहा ।  
जाति जमाति विहाय भर्ती विधि नाम-सनेही तैं कीन्ह न नेहा ॥

कहे को रवाँग बनायौ फकीर को भावै जो गौज असीर की थे  
'प्रेमलता' सियराम रटे विनु भोग विरक्त को स्वान की सुर  
नाम-नावपर चढ़िहि ले, इहि विधि जन कलियाद  
सोइ विनु श्रम तरि धोर मव, पैहाहि श्रीसियाल  
राम नाम संजीवनी, श्रीतिय नाम गिरी  
'प्रेमलता' हतुमान रट, ज्याही जीव अही  
रटहि नाम जो जीव जग, जीह पुकारिनुसारि  
विचरहि महि मन मोद भरि, आसा-पास दिया ॥  
रटु मूल सीताराम नित, तजि मुक्त नाना नं  
'प्रेमलता' अनुपम अमल, चढ़िहि मुरंग शां

## महात्मा श्रीगोमतीदासजी

[ अयोध्याके प्रसिद्ध संत, जन्म प्रायः २०० वर्ष पूर्व पंचाबमें सारस्वत श्रावण, दीक्षागुरु श्रीसरथूदासजी ]

( प्रेषक—श्रीश्रव्वश्वर्मनाथ सहायजी दी० ए०, बी० एल० )

( १ ) संसारमें जितना काम करो—लौकिक वा पार-इक—सब नियम-बद्ध होकर करो; क्योंकि नियमसे मन ने-आप वैधता है।

नेम जगते प्रेम को, प्रेम जगते जीव।

जीव जगते सुरति को, सुरति भिजते पीव॥

जैसे प्रेमके साथ भजन करनेकी आवश्यकता होती है, ही नियम पालन करनेकी भी भारी आवश्यकता है। अतः रिचार नियमपूर्वक श्रीगुरालनाम और श्रीमन्त्रराज नियम-। जपा करो और श्रीमानष-रामायणजीका पाठ भी नियम-कर लिया करो।

( २ ) संसारका सब काम करते हुए भजन अहर्निश्च तै रहो, गाफिल एक क्षणके लिये भी मत रहो। हुक्म काम-काजमें रहके भजनमें रहे।

( ३ ) भजन करें और भजन करावें, धैर्य रखें और वधान रहें—यही कल्याणका मार्ग है।

( ४ ) आल्स्य अपना शत्रु है, इसे अपने पास कदापि न आने देना चाहिये।

( ५ ) जबतक मनुष्यके ऊपर दुःख नहीं आता तभीतक उसके लिये उपाय कर लेना चाहिये कि दुःख आने न पावे। यदि आ ही जाय तो उसको धैर्यके साथ छाती ठोककर सहन करना चाहिये।

( ६ ) दुःख आनेपर सरकारसे धैर्यके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। यह नहीं कि दुःख छूट जाय बल्कि दुःख सहन करनेकी शक्ति भगवान्से माँगनी चाहिये।

( ७ ) धर्मार्थमें आमदनीका दसवाँ हिस्सा सबको लगाना चाहिये। इससे धन, धर्म और ऐश्वर्यकी वृद्धि होती है।

( ८ ) भजनके लिये—१—कम बोलना, २—कम खाना, ३—रातको ज्यादा जागना, ४—सत्सङ्ग करना, ५—एकान्तवास करना—बहुत जल्दी है; परंतु जबतक मन कावूमें नहीं, सर्वथा एकान्तवास करना उचित नहीं।

( ९ ) जो श्रीहनुमानजीका भरोसा रखता है, उसके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। रामके गुलामनको कामतरु रामदूत 'तुमरो भजन रामको पावे।'

## पं० श्रीरामवल्लभाशारणजी महाराज

[ स्थान—जानकीशाट, अयोध्या ]

( प्रेषक—श्रीहनुमानशरणजी सिंधानिया )

१—भगवद्गीतके लिये इन बातोंको अवश्य करना पड़ता मन्त्र-ज्ञा, गुरुगोवा, संतरेवा, उत्ताह और धैर्य। न्यानधानमें दर्शन ही गकते हैं, जिन्हे गुरुदेवकी पूर्ण कृपा भी चाहिये। भैतिका भूलकर भी अपराध न करें, प्रबल रामार्थ चिना और अनुशान सफल नहीं होता। अबद्वोप भी गहूंतोंसे बचना चाहिये।

२—इन संसारमें यहा रहना नहीं है। इन्हिये किसीसे नहीं करना चाहिए और इन्हिसे ह्रेष भी नहीं करना चाहिए।

३—मग गामी में जीवना भर्वहै। श्रीहनुमानजी इस भी गामीकी भी इसी रातमें निर्विकाश देते हैं। लोगों और देवतों भी यही आदर्श दिन्हता रहे हैं।

४—मानसी सेवा सेवाओंसे उत्तम है। किंतु विना शरीरसे सेवा किये हुए मानसी सेवा सिद्ध नहीं होती।

५—सब साधनोंसे श्रीरामनाम-ज्ञव सर्वश्रेष्ठ साधन है। चलते-फिरते, उठते-चढ़ते श्रीसीतारामनाम-ज्ञव करते रहना चाहिये। चौथीसीं ब्रंदे नामजप होनेपर ज्ञव काल आयेगा तब सदाके अम्यापसे अन्त समयमें भी नाम स्परण हो जायगा।

६—भगवान्में अनन्य भक्ति होनेपर ही साधना आगे बढ़ती है। शरणगतिका मर्म पूर्ण आत्मसमर्पण है। विना प्रभु-प्रेमके सब साधन ऊसर भूमिमें वर्षके समान व्यर्थ हो जाते हैं। निष्कास भावना अत्यन्त दृढ़ होनी चाहिये।

## संत श्रीहंसकलाजी

[ जन्मस्थान—सारन जिले में गङ्गा-सरयू के संगम के समीप गंगाहरा गाँव, जन्म-संवत् १८८८, पूर्वीश्रमका नाम नाना पाठक, दीक्षागुरु महात्मा रामदासजी। पूरा नाम रामचरणदासजी हंसकला, मृत्यु संवत् आधिक्षिण शुक्ला १२ सं १९६८ ]

( प्रेषक—श्रीअच्छूर्धमनाथसहायजी वी० ए०, वी० ए८० )

स्वौसहु भर या जियव की, करै प्रतीति न कोय ।  
ना जाने फिर स्वौस को, आवन होय न होय ॥  
परिजन भाई बापु, देखे देखत नित मरत ।  
अमर मोहब्बत आपु, याते अचरज कवन बड़ ॥

सोई निषिद्ध अरु त्याज्य सो, जाते बिसरे राम ।  
त्यग सून यह राखु मन, विधि जपियो हरिनाम ॥  
जियको फल पिय तबहि जब, आठ पहर तब नाम ।  
पिय तेरो सुमिरन बिना, जियो कवने काम ॥

## संत श्रीरूपकलाजी

[ विहारके प्रसिद्ध संत, मृत्यु संवत् १९८९ पौष शुक्ल द्वादशी । ]

( प्रेषक—श्रीअच्छूर्धमनाथसहायजी वी० ए०, वी० ए८० )

धन्य धन्य जे ध्यावही, चरण-चिन्ह सियराम के ।  
धनि धनि जन जे पूजही, सामु संत श्रीधाम के ॥  
तजि कुसंग सत्संग नित, कीजिय सहित विवेक ।  
उम्मदाय निज की सदा, राखिये सादर टेक ॥  
इह खेह बढ़ कर्म महँ, पर यह मानस नैम ।  
हर जोड़े समुख सदा, सादर खड़ा सप्रेम ॥  
जन मन धन सब बारि, मन चित हिय अति प्रेम ते ।  
उम्मुख आखिन चारि, चितइये राजिवनयन छवि ॥  
प्रापु सहित सब धूर, विषय वासना ततु ममत ।  
र्त्त्व मनन मजदूर, आपन करता भैं नहीं ॥  
रन सुखद निष्ठा अचल, अति अनन्य ब्रत नैम ।  
देय सुभाव स्तुति मग्न, नयन चारि सुख प्रेम ॥  
प्रेयतम तुम्हरे सामने, काहू की न बसाय ।

अनहोती पिय करि सकौ, होनिहार मिट जाय ॥  
प्रियतम तुम्हरे छोह ते, श्वान्त, अचञ्चल, धीर ।  
वचन-अल्प, अति प्रिय, मृदुल, शुद्ध, सप्रेम, गँगीर ॥  
श्रीजानकि-पर-कंज सखि, करहि जासु उर ऐन ।  
विनु प्रयास तेहि पर द्रवहि, खुपति राजिवनै ॥

होठ पर नाम वही, चित्त वही देह कही ।  
हाथ में कंजचरन, जाप वही आप वही ॥  
हाथमें कंज-चरन, जाप वही आप वही ।  
इष पर ध्यान वही, चित्त वही देह कही ॥

खात पियत बीती निसा, अँचबत भा भिनुआर ।  
रूपकला धिक धिक तोहि, गर न लगायो यार ॥  
दोष-कोष मोहि जानि पिय, जो कछु करहु सो थोर ।  
अस विचारि अपनावहु, समझि आपुनी ओर ॥

## संत श्रीरामाजी

( विहारके प्रसिद्ध रामभक्त सारन ( छपरा ) जिले के खेदाव गाँव में, श्रीवास्तव कायथ कुलमें जन्म, पिताका नाम श्रीरामादलालजी ( रामप्रियाशरणजी ), माताका नाम श्रीललितारीदेवी, जन्म सं ० १९२६ भाद्रपद कुण्ड सप्तमी, मृत्यु संवत् १९८५ जेठ बदी द्वाज । )

१—जीव जब भगवान्‌की शरणमें जाता है, तब उसे बातोंकी प्रतिज्ञा करनी पड़ती है—( १ ) मैं आपके कुल रहूँगा । ( २ ) जो आप मना करेंगे वह न करूँगा । ( ३ ) आप ही मेरे रक्षक हैं । ( ४ ) आप मेरी रक्षा अवश्य

करेंगे । ( ५ ) मैं आपका हूँ दूसरेका नहीं, सब सकारका है दूसरेका नहीं । ( ६ ) आप हमारे हैं ।

२—चार बातें सदा स्मरण रखनी चाहिये—( १ ) मृत्यु अवश्य है, मृत्यु अवश्य है, मृत्यु अवश्य है । ( २ ) मेरा कुछ भी

है, मेरा कुछ भी नहीं है, मेरा कुछ भी नहीं है। ( ३ )  
 पेटभरका ठिकाना है, केवल पेटभरका ठिकाना है।  
 ) सरकार ही मेरे अपने हैं, सरकार ही मेरे अपने हैं।  
 ३—संसारका काम करना ममा नहीं है। काम

जोड़ना नहीं चाहिये। परंतु यह तमसमा चाहिये कि सब  
 काम सरकारका ही है। इसे कोई बंद नहीं कर गकता।  
 हमको यह काम सरकारकी ओरसे मिला है। यह गमशंकर  
 सब काम करने चाहिये।

## संत श्रीरामसखेजी

ये दोउ चन्द्र बगो उर मेरे ।  
 रथ सुत अरु जनकनंदिनी, अरुन कमल कर कमलन केरे ॥  
 संग कुंज सरजू तट, आस पास ललना धन घेरे ।

चन्द्रवती लिर चौंवर छुरावै, चन्द्रकला तन हैमि हैमि देरे ॥  
 ललित भुजा लिये अरसपरस झुकि, रहे हैं कैगे करोलन नेरे ।  
 'रामपले' अब कहिन परत छवि, पान पीक मुख झुकि झुकि देरे ॥

## स्वामी श्रीमोहनीदासजी

गहु मन ! चरन-सीताराम ॥  
 जो चरन हर-दृदय-मानस वसत आठौं जाम ।  
 जैहि परमि वनिता मुनी की गई है निज धाम ॥

जा चरनते निकमि सुरसरि भई निव की वाम ।  
 'दास मोहनि' चहत सो पद करहु पूरन काम ॥

## संत बाबा श्रीरघुपतिदासजी महाराज

[ स्थान—मिल्की घाम—भृगुक्षेत्र । मृत्युतिथि—६ अगस्त सन् १९३३ ]  
 ( प्रेषक—श्रीरामप्रसाददासजी वैरिया )

१. तन काममें, मन राममें ।
२. जिसके जन, दास, आश्रित सुखी रहें, उस धर, राष्ट्र एवं समाजका विनाश नहीं होता ।
३. गृहस्थोंके लिये सब नारी जननी नहीं, परनारी जननी-सम है। संत साधुओंके लिये नारीके साथ परका विधान नहीं, संतवेश धारण करनेपर निज-नारी भी जननी-तुत्य होती है ।

४. गृहस्थोंके लिये धनका अर्थ रुपया-पैसा, चाँदी-सोना है। संत-साधुओंके लिये धनका अर्थ योग अर्थात् भगवान्‌में अपनेको जोड़ना है ।

५. जब धरके पालन् जानधर गाय-बैल सुखी रहेंगे, तब धरमें किसी प्रकारका अभाव नहीं रहेगा ।

६. शूद्र भक्त हो तो वह जातिसे ब्राह्मण नहीं होगा, पर ब्राह्मणका पूजनीय एवं आदरका पात्र बन जायगा ।

## श्रीमञ्जुकेशीजी

मानहु ज्यारे ! मौर विद्वावन ।  
 बूँदै बूँद तालाव भरत है का भाद्रौं का सावन ॥  
 तैगहि नाद-विन्दु को धारन अंतःसुख सरकावन ।  
 धनि गूँजै जव झुगल रंध से परसे त्रिकुटी पावन ॥  
 हिथ वीं तीव्र भावना शिर करु पढ़ै दूध मैं जाँवन ।  
 'केसी' सुरति न दृठन पावै दिव्य छद्य दरसावन ॥

रे मन ! देस आपन कौन ?  
 जहै वसै प्रियतम प्रकृति-भति सुमुल सीतारैन ॥

विना समझे बिना बूँदे करै इत उत गैन ।  
 सुख मिलत नहिं तोहि सपने सदा खोजत जैन ॥  
 अजहुँ सूक्ष्म नाहिं तोहि कच्चु करत आशु हि हैन ।  
 कहति 'केसी' तहाँ चलु छट जहाँ अविचल भैन ॥

राम-रहस के ते अधिकारी ।  
 जिनको मन मरि गयड और मिटि गई कल्पना सारी ॥  
 चौदह सुबन एकरत दीखै, एक पुरुष इक तारी ।  
 'केसी' वीज मंत्र सोइ जानै, ध्यावै अवधिविहारी ॥

जो मानै मेरी दिति भिक्षुकन ॥  
 ( तो ) भ्रत वहीं निज मन की बात,  
 सहिये दिम-तप-वर्पा-बात ।  
 कभिये मन को सब विधि तात,  
 जासौं छुट्ट यह आवागमन ॥  
 पहिले पक्षी पृथ्वी पगुरत,  
 फिर पंख जम्ब नभ मैं विचरत ।  
 अवसर आयें जल मैं पैरत,  
 ( पैं ) भूलत नहिं निज मीत पक्वन ॥  
 करुना निधान की बानि हेरि,  
 पुनि महामंत्र रज-ध्वनि सौं टेरि ।  
 ( केसी ) सिय-स्वामिनि केरि चेरि,  
 समुद्घावति ध्यायिय सिया-रखन ॥

संयम साँचो वाको कहिये ॥  
 जामें राम मिलन की मुक्ता गजराजन प्रति लहिये ।  
 मोहनिसा महँ नींद उचाटै चरन सिवा-सिव गहिये ॥  
 भर्भुवः स्वः के झोंकन तैं बार बार बच्चि रहिये ।  
 नवल नेह नित बादै 'केसी' कहहु और का चहिये ॥  
  
 चेतहु चेतन बीर, सबैरे ॥  
 इष्ट स्वरूप विठारहु मन मैं करकमलन धनु तीर ।  
 एकछटा कस्ना-वारिधि की अनुछन धारहु धीर ॥  
 भक्त-विपति-भंजन रघुनाथक मंत्र विसद हर पीर ।  
 'केसी' प्रीतम पाँव पर्वारिय ढारि सुनयनन नीर ॥  
  
 सन्मुख, सांति एक आधार ॥  
 राम सहज स्वरूप झंकल भावयुत श्रृंगार ।

## श्रीरामनायकाजी

(प्रेषक—श्रीअच्चधर्मनाथ सहायजी वी० ए०, बी० एल० )

मन क्रम बचन नाम रुचि जेही ।  
 सोइ नामी को सत्य सनेही ॥  
 मन क्रम बचन नाम को नेमी ।  
 चिन्हिये तब नामी पद-प्रेमी ॥  
 नामी रूप प्रेम फुर ताही ।  
 मन क्रम बचन नाम रुचि जाही ॥

कहत याको सिद्ध योगी तिल की ओट पहर ॥  
छाँडि यह दुर्लभ नहीं कछु, करत संत विचार ।  
सुखसिंधु सुखमाकंद 'केसी' परम पुरुष उदार ॥

विप्रयरस पान पीक सम त्याग ॥  
 वेद कहैं मुनि साधु सिखावै विप्रय-समुद्री आग ।  
 को न पान करि भो मतवाला यह ताड़ी को ज्ञाग ।  
 वीतराग पद मिलन कठिन अति काल कर्म के लाग ।  
 'केसी' एकमात्र तोहिं चाहिय रामचरन-अनुराग ।

धाय धरो हरिचरन सवेरे ॥  
 जानै कै बार फिरे हम चौरसी के केरे ।  
 त-मरत दुसह दुख सहियत करियत पाप धनेरे ॥  
 आपनो भूप-रूप भये काम-कोङ्के चेरे ।  
 नेक लही नहिं थिरता काल-कर्म के प्रेरे ॥

मारे रहो, मन ॥  
 न विनु सुगति नहीं है, गाँठ आठ हड़ पारे रहो ।  
 स करि दूरि सर्वथा, एक भरोसा धारे रहो ॥  
 अन्न-प्रिय सिय-रखुनंदन, जानि दर्प सब ढारे रहो ।  
 राम नाम की ध्वनि प्रिय, एक तार गुंजारे रहो ॥

रामल्यान माते जे रहते ॥  
 तिन की चरन-धूरि ब्रह्मादिक, सिर धारन को चहते  
 याही ते मानव सरीर की, महिमा बुधजन कहते ॥  
 सो वपु पाय भजे नहि रामहि, ते सठ डहडह डहते ॥  
 'केसी' तोहिं उचित मारग सोइ जिहि मुनिनायक गहते ॥

## भक्त भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी

(जन्मस्थान—काशी । जन्म—३ सितम्बर १८५० । देहराना—६ जनवरी १८८५ । रसिक भक्त, हिंदीके महान् कवि  
(लेखक ।) ( १ )

सब दीननि की दीनता, सब पापिन कौं पाप ।  
सिमटि आइ मौं मेर रहौ, यह मन समझु आप ॥

### प्रेम-सरोवर

जिहि लहि फिर कछु लहन की आउन चित्त मैं होय ।  
जयति जगत पावन-करत प्रेम बरन यह दोय ॥  
प्रेम प्रेम सब ही कहत प्रेम न जान्यौ कोय ।  
जो पै जानहि प्रेम तो मरै जगत क्यों रोय ॥  
प्राननाथ के न्हान हित धारि हृदय आनंद ।  
प्रेम-सरोवर यह रचत सचि सौं श्री हरिचंद ॥  
प्रेम-सरोवर वह अगम यहाँ न आवत कोय ।  
आवत सौं फिर जात नहि रहत यहीं को होय ॥  
प्रेम-सरोवर मैं कोऊ जाहु नहाय विचारि ।  
कछु के कछु है जाहुरे अपने हि आप विसारि ॥  
प्रेम-सरोवर नीर को यह मत जानेहु कोय ।  
यह मदिरा को कुण्ड है न्हातहि औरौ होय ॥  
प्रेम-सरोवर नीर है यह मत कीजौ ख्याल ।  
पेरे रहै ज्यासे मरै उलटी हाँ की चाल ॥  
प्रेम-सरोवर पंथ मैं जलिहै कौन प्रधीन ।  
कमल-रंतु की नाल सौं जाको मारग छीन ॥  
प्रेम-सरोवर के लग्यौ चम्पावत चहुँ ओर ।  
भैंवर विलच्छन चाहिए जो आवै या ढौर ॥  
लोक-लाज की गाँठरी पहिले देह छुवाय ।  
प्रेम-सरोवर पंथ मैं पालै रखै पाय ॥  
प्रेम-सरोवर की लखी उलटी गति जग माँहि ।  
जे छूवे तैर्ह भले तिरे तरे ते नाँहि ॥  
प्रेम-सरोवर की यहै तीरथ विधि परमान ।  
लोक वेद को प्रथम ही देहु तिलंजलिदान ॥  
जिन पाँवन सौं चलत तुम लोक वेद की गैल ।  
सो न पाँव या सर धरै जल है जैहै मैल ॥  
प्रेम-सरोवर पंथ मैं कोचड़ छालिए एक ।  
तहाँ इनाल के लगे तट पैं बृक्ष अनेक ॥  
लोक नाम है पंक को बृक्ष वेद को नाम ।  
ताहि दर्जि भत भूलियो प्रेमी सुजन सुजान ॥

गढवर बन कुल वेद को जहै छायो चहुँ ओर ।  
तहैं पहुँचै कोहि भाँति कोउ जा को मारग धोर ॥  
तीछन विरह दवागि सौं भगम करत तरुंद ।  
प्रेमजीन इत आवहीं न्हान हेत सानंद ॥  
या सरवर की हाँ कहा सोभा करौं व्रदान ।  
मत्त मुदित मन भैंर जहैं करत रहत नित गान ॥  
कहहुँ होत नहि भ्रम-निसा इक रस सदा प्रकास ।  
चकवाक विच्छुरत न जहैं रमत एक रस रास ॥  
नारद सिव सुक सनक से रहत जहैं बहु मीन ।  
सदा अमृत दी के मगन रहत होत नहि दीन ॥  
नंददास, आनंदधन, सूर, नगरीदास ।  
कृष्णदास, हरिवंस, चैतन्य, गदाधर, व्यास ॥  
इन आदिक जग के जिते प्रेमी परम प्रसंस ।  
तैर्ह या सर के सदा सेभित सुंदर हंस ॥  
तिन विनु को इत आवईं प्रेम-सरोवर न्हान ।  
फैस्तौ जगत मरजाद मैं बृथा करत जबै ध्यान ॥  
अरे बृथा क्यों पवि मरै शान-भालर बदाय ।  
विना प्रेम फीको सबै लालन करहु उपाय ॥  
प्रेम सकल श्रुतिसार है प्रेम सकल स्मृति-मूल ।  
प्रेम पुरान-प्रमान है कोउ न प्रेम के तूल ॥  
बृथा नेम, तीरथ, धरम, दान, तपस्या आदि ।  
कोऊ काम न आवईं करत जगत सब बादि ॥  
करत देवावन हेत सब जप तप पूजा पाठ ।  
काम कछु इन सौं नहीं, यह सब तुख्ये काठ ॥  
विना प्रेम जिय अपजे आनेंद अनुभव नाँहि ।  
ता विनु सब फीको लगै समुद्दिः लखहु जिय माँहि ॥  
ज्ञान करम सौं औरहू उपजत जिय अभिमान ।  
दृढ़ गिहचै उपजे नहीं विना प्रेम पहिचान ॥  
परम चतुर पुनि रसिकवर कैसोहू नर होय ।  
विना प्रेम लखी लगै बाजि चतुरई सोय ॥  
जान्यो वेद पुरान मे सकल गुनन की खानि ।  
जु ऐ प्रेम जान्यौ नहीं कहा कियो सब जानि ॥  
काम क्रोध भय लोभ मर्द सबन करत लय जौन ।  
महा मोहहू सौं पेरे प्रेम भासियत तौन ॥

विनु गुन जोवन रूप धन विनु स्वारथ हित जानि ।  
 सुद्ध कामना तें रहित प्रेम सकल रस-खानि ॥  
 अति सूँझम कोमल अतिहि अति पतरो अति दूर ।  
 प्रेम कठिन सब तें सदा नित इक रस भरपूर ॥  
 जग मैं सब कथनीय है सब कछु जान्यौ जात ।  
 पै श्री हरि अरु प्रेम यह उभय अकथ अलखात ॥  
 बँध्यौ सकल जग प्रेम मैं भयो सकल करि प्रेम ।  
 चलत सकल लहि प्रेम कों विना प्रेम नहिं छेम ॥  
 पै पर प्रेम न जानहीं जग के ओछे नीच ।  
 प्रेम जानि कछु जानिबो बचत न या जग बीच ॥  
 दंपति-सुख अरु विषय-रस पूजा निष्ठा ध्यान ।  
 इन सों परे बखानिए शुद्ध प्रेम रस-खान ॥  
 जदपि मित्र सुत बंधु तिय इन मैं सहज सनेह ।  
 पै इन मैं पर प्रेम नहिं गरे परे को एह ॥  
 एकांगी विनु कारने इक रस सदा समान ।  
 पियहि गनै सर्वस्य जो सोई प्रेम प्रमान ॥  
 डरै सदा चाहै न कछु सहै सबै जो होय ।  
 रहै एक रस चाहि कै प्रेम बखानौ सोय ॥

### दशावतार

जयति वेणुधर चक्रधर शंखधर,  
 पद्मधर गदाधर शृंगधर वेत्रधारी ।  
 मुकुटधर क्रीष्णधर पीतपट-कठिन धर,  
 कंठन्कैस्तुभ-धरन दुःखहारी ॥  
 मत्स को रूप धरि वेद प्रगटित करन,  
 कच्छ को रूप जल मथनकारी ।  
 दलन हिरनाच्छ वाराह को रूप धरि,  
 दंत के अग्र धर पृथ्वि भारी ॥  
 रूप नरसिंह धर भक्त रच्छाकरन,  
 हिरनकस्यम-उदर नख विदारी ।  
 रूप बावन धरन छलन वलिराज को,  
 परसुधर रूप छत्री सँहारी ॥  
 राम को रूप धर नास रावन करन,  
 धनुषधर तीरधर जित सुरारी ।  
 मुसलधर हलधरन नीलपट सुभगधर,  
 उलटि करणन करन जमुन-बारी ॥  
 बुद्ध को रूप धर वेद निदा करन,  
 रूप धर कल्कि कलजुग-सँधारी ।  
 जयति दस रूपधर कृष्ण कमलानाथ,  
 अतिहि अज्ञात लीला विहारी ॥

गोपधर गोपिधर जयति गिरराजधर,  
 राधिका बाहु पर बाहु धारी ।  
 भक्तधर संतधर सोइ 'हरिचंद' धर  
 बहुभाधीस द्विज वेषकारी ॥

### विरह

( १ )

सुन्दर स्याम कमलदल लोचन  
 कोठिन जुग बीते विनु देखे ।  
 तलफत प्रान विकल निसि बासर  
 नैनन हूँ नहिं लगत निमेखे ॥  
 कोउ मोहिं हँसत करत कोउ निंदा  
 नहिं समुझत कोउ प्रेम फेरेखे ।  
 मेरे लेखे जगत बावरो  
 मैं बावरी जगत के लेखे ॥  
 ता पै ऊधब ज्ञान सुनावत  
 कहत करहु जोगिन के भेखे ।  
 बलिहारी यह रीझ रावरी  
 प्रेमिन लिखत जोग के लेखे ॥  
 बहुत सुने कपटी या जग मैं  
 पै तुम से तो तुमही भेखे ।  
 'हरीचंद' कहा दोष तुम्हारो  
 भेटै कौन करम की रेखे ॥

( २ )

मोहन दरस दिखा जा ।  
 ब्याकुल अति प्रान-प्यारे दरस दिखा जा ॥  
 बिछुरी मैं जनम जनम की फिरी सब जग छान ।  
 अवकी न छोड़ों प्यारे यही राखो है थान ।  
 'हरीचन्द' विलम न कीजै दीजै दरसन दान ॥

( ३ )

हमैं दरसन दिखा जाओ हमारे प्रान के प्यार ॥  
 तेरे दरसन को ऐ प्यारे तरस रही आँख बरसों मे,  
 इन्हे आकर के समझाओ हमारे आँखों के तारे ॥  
 सियिल भई हाय यह काया है जीवन ऊट पर आया,  
 भला अब तो करो माया मेरे प्रानों के रखवार ॥  
 अरज 'हरीचंद' की भानो लड़कपन अब भी मत दानों  
 बचा लो प्रान दरसन दो अजी ब्रजराज के बारे ॥

( ४ )

पिय ग्राननाथ मतमोहन सुन्दर प्यारे ।  
छिनहूँ मत मेरे होहु दग्न सों न्यारे ॥  
घनस्याम गोप-गोपी-पति गोकुल-राई ।  
निज प्रेमीजन-हित नित नित नव सुखदाई ॥  
बृन्दावन-रच्छक ब्रज-परवस बल-भाई ।  
प्रानहूँ ते प्यारे प्रियतम भीत कन्हाई ॥  
श्री राधानाथक जसुदानंद दुलारे ।  
छिनहूँ मत मेरे होहु दग्न सों न्यारे ॥ १ ॥

तुव दरसन विन तन रोम रोम दुख पागे ।  
तुव सुमिरन विनु यह जीवन विष सम लागे ॥  
तुमरे सँयोग विनु तन वियोग दुख दागे ।  
अकुलात प्रान जब कठिन मद्दन मन जागे ॥  
मम दुख जीवन के तुम ही इक रखवारे ।  
छिनहूँ मत मेरे होहु दग्न सों न्यारे ॥ २ ॥

तुमहीं मम जीवन के अबलम्ब कन्हाई ।  
तुम विनु सब सुख के राज परम दुखदाई ॥  
तुव देखे ही दुख होत न और उपाई ।  
तुमरे विनु सब जग सूतों परत लखाई ॥  
हे जीवनधन मेरे नैनों के तारे ।  
छिनहूँ मत मेरे होहु दग्न सों न्यारे ॥ ३ ॥

तुमरे विनु इक छन कोटि कल्प सम भारी ।  
तुमरे विनु स्वरग्नु महा नरक दुखकारी ॥  
तुमरे सँग बनहू घर सों वहि बनवारी ।  
हमरे तौ सब दुष्ट तुमही हौ गिरधारी ॥  
'हरिचंद' हमारे राखौ भान दुलारे ।  
छिनहूँ मंत मेरे होहु दग्न सों न्यारे ॥ ४ ॥

( ५ )

इन दुखिया अँखियान कौ सुख सिरजौई नहिं ।  
देखें बनै न देखतै विन देखे अकुलाहि ॥  
विनु देखे अकुलाहि विकल अँसुवन झार लावै ।  
सनमुख गुरुजन-लाज भरी ये लक्षन न पावै ॥  
चित्रहु लखि 'हरिचंद' नैन भरि आवत छिन छिन ।  
सुधन नोंद तजि जात चैन कबहुँ न पायो इन ॥ १ ॥  
विनु देखे अकुलाहि विरह-दुख भरि भरि रोवै ।  
खुली रहैं दिन रैन कबहुँ सपनेहुँ नहिं सोवै ॥

'हरीचंद' संजोग विरह सम दुखित सदाई ।  
हाय निगोरी अँखिन सुख सिरजौई नाही ॥ २ ॥  
विनु देखे अकुलाहि बाकरी है है रोवै ।  
उधरी उधरी फिरैं लाज तजि सब सुख खोवै ॥  
देखै 'श्रीहरिचंद' नैन भरि लखै न सकियै ।  
कठिन प्रेम-भगति रहत सदा दुखिया ये अँखियै ॥ ३ ॥

विनय—प्रार्थना

( ६ )

तुम क्यों नाथ सुनत नहिं मेरी ।  
हम से पतिल अनेकन तरे पावन की विरुद्धावलि तेरी ॥  
दीनानाथ दयाल जगत पति सुनिये विनती दीनहु केरी ।  
'हरीचंद' को सरनहिं राखौ अव तौ नाथ करहु मत देरी ॥

( ७ )

अहो हरि वेहू दिन कब ऐहै ।  
जा दिन मैं तजि और संग सब हम ब्रज-नास वसेहैं ॥  
संग करत नित हरिभक्त को हम नेकहु न अव्रहैं ।  
सुनत श्रवन हरि-कथा सुधारत महामत है जैहैं ।  
कब इन दोउ नैन सों निसि दिन नीर निरंतर वहिहैं ।  
'हरीचंद' श्री राधे राधे कृष्ण कृष्ण कब कहिहैं ॥

( ८ )

अहो हरि वह दिन बेगि रिखाओ ।  
दै अनुराग चरन-पंकज को सुत-पिनु-मोह मियाओ ॥  
और ओडाइ सबै जग-वैभव नित ब्रज-नास वसाओ ।  
जुगल-रूप-रत-अमृत-माडुरी निस दिन नैन भियाओ ॥  
प्रेम-भत्त है डोलत चहुँ रिसि तन की सुधि विसराओ ।  
निस दिन मेरे जुगल नैन सों प्रेम-प्रवाह बहाओ ।  
श्री बलभ-पद-कमल अमल मैं मेरी भक्ति हटाओ ।  
'हरीचंद' को राधा-माधव अपनो करि अपनाओ ॥

( ९ )

उधारौ दीनर्दु भहराज ।  
जैसे हैं तैसे तुमरे ही नहिं और सों काज ॥  
जौ बालक कपूत घर जनमत करत अनेक विगार ।  
तौ माता कहा वाहि न पूछत मोजन समय पुकार ॥  
कपटहु मेष किए जो जाँचत राजा के दरवार ।  
तौ दाता कहा वाहि देत नहिं निज प्रन जानि उदार ॥  
जौ सेवक सब भाँति कुचाली करत न एकौ काज ।  
तज न स्वामि सयन तजत तेहि वाँह गडै की लाज ॥

विश्वनिरेष कछु दग नहि जानत एक आस विस्वाल ।  
अब तौ तोर ही बनिहै नहि हैडि जग उपहास ॥  
इमरो तुन कोउ नहि जानत तुमरो प्रन विश्वात ।  
हरीचंद्र नहि लीजै मुज मरि नाहीं तो प्रन जात ॥

( १० )

भरोसो रीढाल ही चैति भारी ।  
इमहूँ को विसास होत है, मोहन व्यतित उधारी ॥  
जो ऐसो सुमाल नहि हो सो क्यों अदीर कुल भावो ।  
लजिकै कौसुम सो मदि गल क्यों गुजा हार धारौ ॥  
क्षीट मुकुट विर छाँडि बलौआ मोरन को क्यों धारौ ।  
फोट कासी टैटिन पै, मेवन कौ क्यों स्याद विलारौ ॥  
ऐसी उल्ली रीक्षि हैविकै, उपजाति है जिय आस ।  
जग जनदित हरीचंद्र हुँ वों अपनवाहिं करि दास ॥

( ११ )

इमहूँ कबहूँ सुख सों रहते ।  
छाँडि जाल सब, निरिदिन सुख सों, चैवल क्षणहि कहते ॥  
सदा मगन लीला अनुभव मैं, दग दोष अविचल बहते ।  
हरीचंद्र वनस्पति विरह इक, जग तुल तुन सम दहते ॥

( १२ )

हमें तुम देहै का उत्तराई ।  
पार उतार देहि जो तुम को करि कै बहुत खेहाई ॥  
जोक्म थन बहु है तुमरे दिग सो इस लेहि छोड़ाई ।  
हम तुमरे बस हैं मन-मोहन चाहो यो करौ कन्हाई ॥  
निरजन वत मैं नाव लाहाई करी केलि मनभाई ।  
हरीचंद्र प्रथु गोपी-नायक झग-जीवन ब्रजराई ॥

( १३ )

ब्रज के लता-पता मोहि कोजै ।  
गोपी-दृद-पंकज यावन कौ रज जा मैं शिर भीजै ॥  
आवत जात कुंज की गलियन रुप-सुधा नित भीजै ।  
श्री रघु रघु मुख यह वर हरीचंद्र को दीजै ॥

( १४ )

तुहूँ तो पतिवन ही लों ग्रीति ।  
लेकर देव-विठ्ठल चलाइं क्यों यह उल्ली ग्रीति ॥  
सब विवि जानत ही निश्चय करि तुम लों छियाई न मेक ।  
देव-पुरान-धर्मान तजन को मेरो यह अविवेक ॥  
महा पतित सब धर्म-विवर्जित श्रुतिनदक धष-जान ।  
भरजादा तें रहित मनसो मानत कछु न प्रमात ॥

जानत यए अजान कहो क्यों है  
तुहूँ छोड़ि जग को नहि जो मोहि लिगरचे  
बल्लारी यह रीक्षि रखती कहाँ  
हरीचंद्र सो नेह निवाहत हरि कछु

( १५ )

नाश तुम ग्रीति निवाहत साँची ।  
करत इकंगी नेह जनन सो यह उल्ली  
जेहि अमनायो तोहि न तज्यौ फिर शहो क  
जेहि क्षमरयौ छोड़त नहि तो कों पस ।  
सो भूते पै तुम नहि भूत तदा रे  
हरीचंद्र कों राहत ही चैति थाँह :

( १६ )

ध्यारे अब तो तरेहि बनिहै ।

नाहीं तो तुम कों का कहिए जो सेरी  
लोक बेर मैं कावत सबै हरि अस्यन  
तेहि करिहै साँचों कै जुठों सो मोहि  
भले धुरे जैसे हैं तैसे तुहरे ही  
हरीचंद्र कों तारेहि बनिहै को अब :

( १७ )

दीनदशल कहाह कै धाइ कै दीनन सों क्यों  
लौं हरीचंद्र कै बेदन मैं अरुनानिवि नाम यह  
एती क्षलाई न चाहिये तापैं कृष्ण अरिकै जेहि  
ऐसो ही जो पै सुभाव रह्यो तो गरीब-नेवाज क्यों

( १८ )

आजु लीं जो न भिले तो कहा हम तो तुमरे सं  
मेरो उराहो है कछु नाहिं सबै फल आपुने ॥  
जा हरीचंद्र भई सो मई अब प्राम चारे चर्दै  
प्यारे जू है जग की यह रीति विदा की गमे रमे

( १९ )

नाश तुम अपनी ओर निहारो ।  
हमरी ओर न देखहु प्यारे निज गुन-गुन  
जौ लखते अब लीं जन-ओगुन अमेरु  
तौ तरते किसि अजामेल से पारी दैं  
अब लों लों क्षवहू नहि देखे बात के और  
तौ अब नाश यहं क्यों दानत भालहु न  
तुव तुन छमा दग सों भरे अब गर्ति यं  
तावों तारे लेनु तेंदन-दन हरीचंद्र ॥

( २० )

मेरी देखहु नाथ कुचाली ।

लोक बेद दोउन सों न्यारी हम निज रीति निकाली ॥  
जैसो करम करै जग मैं जो सो तैयो फल पावै ।  
यह मरजाद मिटावन की नित मेरे मन मैं आवै ॥  
न्याय सहज गुन तुमरो जग के सब मतवारे मानै ।  
नाथ दिठाई लखहु ताहि हम निहच्य छूठो जानै ॥  
पुन्याहि हेम हथकड़ी समझत तासों नहिं विस्वासा ।  
दयानिधान नाम की केवल या 'हरिचंद' हि' आसा ॥

( २१ )

अहो हरि अपुने विरुद्धहि देखौ ।

जीवन की करनी करनानिधि सपनेहुँ जनि अवरेखौ ॥  
कहुँ न निवाह हमारो जौ तुम मम दोसन कहैं पेखौ ।  
अवगुन अमित अपार तुम्हारे गाइ सकत नहिं सेखौ ॥  
करि करना करनामय माधव हरहु दुखहि लखि भेखौ ।  
'हरीचंद' मम अवगुन तुव गुन दोउन को नहिं लेखौ ॥

( २२ )

तुम सम कौन गरीबनेवाज ।

तुम साँचे साहेब करनानिधि पूरन जन-मन-काज ॥  
साहि न सकत लखि दुखी दीन जन उठि धावत ब्रजराज ।  
विह्वल होइ सँवारत निज कर निज भक्तन के काज ॥  
स्वामी ठाकुर देव साँच तुम वृन्दावन-महराज ।  
'हरीचंद' तजि तुमहि और जे जाँचत ते बिनु लाज ॥

( २३ )

तुमरी भक्त-वछलता साँची ।

कहत पुकारि कृपानिधि तुम विनु,  
और प्रभुन की प्रभुता काँची ॥  
सुनत भक्त-दुख रहि न सकत तुम,  
विनु धाए एकहु छिन बाँची ।  
द्रथत दयानिधि आरत लखतहि,  
साँच छठ कछु लेत न जाँची ॥  
दुखी देखि प्रहलाद भक्त निज,  
प्रणटे जग जै जै धुनि माँची ।  
'हरीचंद' गहि बाँह उवारयौ,  
कीरति नटी दसहुँ दिसि नाँची ॥

( २४ )

मेरे माई प्रान-जीवन-धन माधो ।

नैम धरम वत जप तप सवही जा के मिलन अराधो ॥

जो कछु करैं सबै इन के हित इन तजि और न गायो ।

'हरीचंद' मेरे यह रागवत भजों कोटि ताज शामो ॥

( २५ )

तुम विन प्यारे कहूँ सुख नाही ।

भटक्यौ यहुत स्वाद-रस-लंगट ठौर-ठौर जग भाई ॥  
प्रथम चाव करि बहुत पियरे जाइ जहाँ लक्जाने ।  
तहैं ते फिर ऐसो जिय उच्चटत आवत उल्लिंग रिकनि ॥  
जित देखो तित स्वारथ ही की निरस पुरानी चाति ।  
अतिहि मलिन व्यवहार देखि कै विन आश्रत दे लाति ॥  
हीरा जेहि समझत सो निकरत काँचि काँच रियारे ।  
या व्यवहार नफा पाठें पठतानो कहूँ पुकारे ॥  
सुंदर चतुर रसिक अरु नेही जानि प्रीति जित कीनो ।  
तित स्वारथ अरु कारो चिति हम भले सवहि लख लीनो ॥  
सब गुन होइ जुपै तुम नाहीं तौ विनु लोन रसोइ ।  
नाहीं सों जहाज-पन्छी-सम गयो अहो मन होइ ॥

( २६ )

भूलि भव-भोगन झूमत फिरयौ ।

खर क्रुकर रुकर लौं इत उत डोलत रमत फिरयौ ॥  
जहैं जहैं छुट लह्यो इन्द्री-सुख तहैं तहैं भ्रमत फिरयौ ।  
छन भर सुख नित दुखमय जे रस तिन मैं जमत फिरयौ ॥  
कबहुँ न दुष्ट मनहि करि निज वस कामहि दमत फिरयौ ।  
'हरीचंद' हरि-पद-पंकज गाहि कबहुँ न नमत फिरयौ ॥

( २७ )

तोसों और न कछु प्रभु जाँचौं ।

इतनो ही जाँचत करना-निधि तुम ही मैं इक राचौं ॥  
खर क्रुकुर लौं द्वार द्वार पै अरथ-लोभ नहिं नाचौं ।  
या पालान-सरिस हियरे पै नाम तुम्हारोइ साचौं ॥  
विस्फुलिंग से जग-दुख तजि तत्र विरह-उगिन तन ताचौं ।  
'हरीचंद' इक-रस तुमरों मिलि अति अनंद मन भाचौं ॥

( २८ )

कहाँ लौं निज नीचता बखानौं ।

जब सों तुम सों विछुरे तव सों अघ ही जनम सिरानौं ॥  
दुष्ट सुभाव वियोग खिल्याने संग्रह कियो सहाई ।  
सूखी लकरी बायु पाह कै चलौ अगिन उल्हाई ।  
जनम जनम को बोझ जगा करि भारी गाँठ बँधाई ।  
उठि न सकत गर पीठ दूटि गई अब इतनी गरआई ।  
बूझत तेहि लैके भव-धारा अब नहिं कछुक उपाई ।  
'हरीचंद' तुम ही नाहीं तौ तारो मोहि कन्हाई ॥

( २९ )

प्रभु मैं सेवक निमक-हराम ।

खाइ खाइ के महा मुद्दैहौं करिहौं कदू न काम ॥  
बात बनैहौं लंबी-चौड़ी बैठै बैठै धाम ।  
त्रिनहु नाहि इत उत सरकैहौं रहिहौं बन्यौ गुलाम ॥  
नाम बैचिहौं तुमरो करि करि उलटो अघ के काम ।  
'हरीचंद' ऐसन के पालक तुमहि एक घनस्थाम ॥

( ३० )

उमरि सब दुख ही माँहि सिरानी ।

अपने इनके उनके कारन रोअत रैन विहानी ॥  
जहँ जहँ सुख की आसा करि कै मन बुधि सह ल्पटानी ।  
तहँ तहँ धन संवंध जनित दुख पायो उलटि महानी ॥  
सादर वियो उदर भरि विष कहँ धोखे अमृत जानी ।  
'हरीचंद' माया-मंदिर सौं मति सब विधि वौरानी ॥

( ३१ )

वैस किरानी रोवत रोवत ।

सपनेहुँ चौकि तनिक नहिं जागौं दीती सबही सोवत ॥  
गई कमाई दूर सबै छन रहे गाँठ को खोवत ।  
औरहु कजरी तन ल्पटानी मन जानी हम धोवत ॥

( ३२ )

प्रभु हो अपनो विश्वद सम्हारो ।

जथा-जोग फल देन जनन की या थल बानि विसारो ॥  
न्यायी नाम छाँड़ि कहनानिधि दया-निधान कहाओ ।  
मेटि परम मरजाद श्रुतिन की कृपा-समुद्र बहाओ ॥  
अपुनी ओर निहारि साँवरे विशदहु राखहु थापी ।  
जामैं निवहि जाँहि कोऊ विधि 'हरीचंदहु' से पापी ॥

( ३३ )

**लावनी**

बही तुम्हें जाने प्यारे जिस को तुम आप ही बतलाओ ।  
देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिललाओ ॥  
क्या मजाल है तेरे नूर की तरफ आँख कोई खोले ।  
क्या समझे कोई, जो इस झगड़े के बीच आ कर बोले ॥  
खयाल के बाहर की बातें भला कोई क्योंकर तोले ।  
ताकत क्या है, मुअम्मा तेरा कोई हल कर जो ले ॥  
कहाँ खाक यह कहाँ पाक तुम भला ध्यान में क्यों आओ ।  
देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिललाओ ॥ १ ॥

गरने आज तक तेरी जुस्तजू खासो आम सब किया किये ।  
लिखी किताबें, हजारों लोगों ने तेरे ही लिये ॥  
बड़े बड़े झगड़े में पड़े हर शख्स जान रहते थे दिये ॥  
उम्र गुजारी, रहे गलताँ पेंचों जब तक कि जिये ॥  
पर तुम है वह शौ कि किसी के हाथ कभी क्योंकर आओ ।  
देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिललाओ ॥ २ ॥

पहिले तो लाखों में कोई विश्वला ही छुकता है इधर ।  
अपने ध्यान में, रहा वह चूर छुका भी कोई अगर ॥  
पास छोड़कर मज्जहब का खोजा न किसी ने तुम्हें मगर ।  
तुमको हाजिर, न पावा कभी किसी ने हर जाँ पर ॥  
दूर भागते फिरो तो कोई कहाँ से पाये बतलाओ ।  
देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिललाओ ॥ ३ ॥

कोई छाँट कर ज्ञान फूल के जानी जो कहलते हैं ।  
कोई आप ही, ब्रह्म बन करके भूले जाते हैं ।  
मिला अलग निरसुन व सगुन कोई तेरा भेद बताते हैं ।  
गरज कि तुझ को, छूँटते हैं सब पर नहिं पते हैं ॥  
'हरीचंद' अपनों के सिवा तुम नजर किसी के इयों आओ ।  
देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिललाओ ॥ ४ ॥

( ३४ )

**लावनी**

चाहे कुछ हो जाय उम्र भर तुझी को प्यारे चाहैं ।  
सहेंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निवहैं ॥  
तेरी नजर की तरह किरंगी कभी न मेरी यार नजर ।  
अब तो यों ही, निमैर्गी यों ही जिंदगी होगी बधर ॥  
लाख उठाओ कौन उठे हैं अब न छुटैगा तेरा दर ।  
जो गुजरैगी, सहेंगे करेंगे यों ही यार गुजर ।  
करोगे जो जो जुल्म न उनको दिलग्र कभी उलाहे ।  
सहेंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निवहैं ॥ ५ ॥

आह करेंगे तरसेंगे गम खायेंगे चिह्नायेंगे ।  
दीन व ईमाँ, विगाड़ेंगे वर-वार छुवायेंगे ।  
फिरेंगे दर दर बै-इजत हो आवारे कहलायेंगे ।  
रोड़ेंगे हम, हाल कह ओरों को भी फलायेंगे ।  
हाय हाय कर यिर पीटेंगे तड़पेंगे कि करायेंगे ।  
सहेंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निवहैं ॥ ६ ॥

खल फेरो मत मिले देखने को भी दूर से तमाज़ी ।  
इधर न देखो, रकीवों के घर में प्यारे जानी ।

गाली दो कोसो झिड़की दो खफा हो घर से निकलवाओ ।  
कत्ल करो या, नमि-विसिल कर प्यारे तड़पाओ ॥  
जितना करोगे जुल्म हम उतना उल्टा तुम्हैं सराहैंगे ।  
सहैंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निवाहैंगे ॥३॥

होके तुम्हारे कहाँ जाँय अब इसी शर्म से मरते हैं ।  
अब तो यों ही, जिंदगी के बाकी दिन भरते हैं ॥  
मिलो न तुम या कत्ल करो मरने से नहीं हम डरते हैं ।  
मिलेंगे तुम को, बाद मरने के कौल यह करते हैं ॥  
'हरीचंद' दो दिन के लिये बवरा के न दिल को ढाईंगे ।  
सहैंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निवाहैंगे ॥४॥

( ३५ )

### लावती

जबतक फँसे थे इस में तबतक दुख पाया औ बहुत रोए ।  
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए ॥  
विना बात इस में फँस कर रंज सहा हैरान रहे ।  
मजा विशाहा, अपना नाहक ही को परेशान रहे ॥  
इधर उधर झगड़े मैं पड़े फिरते बस सर-गरदान रहे ।  
अपना खोकर, कहाते बैकूफो नादान रहे ॥  
बौद्ध पिक्र का नाहक को फिले थे गरदन पर ढौए ।  
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए ॥१॥

मतलब की दुनिया है कोई काम नहीं कुछ आता है ।  
अपने हित को, मुहब्बत सब से सभी बढ़ाता है ॥  
कोई आज औ कल कोई सब छोड़ के आसिर जाता है ।  
गरज कि अपनी गरज को सभी मोह कैलाता है ॥  
जब तक इसे जमा समझे थे तब तक थे सब कुछ खोए ।  
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए ॥२॥

जिसको अमृत समझे थे हम वह तो जहर हल्लहल था ।  
मीठा जिसको, जानते थे वह इनाल का फल था ॥  
जिसको सुख का धर समझे थे वह तो दुख का जंगल था ।  
जिन को सच्चा, समझते थे वह शूठों का दल था ॥  
जीवन फल की आसा मैं उलटे हमने थे विष बोए ।  
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए ॥३॥

जहाँ देखो वहीं दगा और फोड़ औ भक्तारी है ।  
दुख ही दुख से, बनाई यह सब दुनिया सारी है ॥  
आदि मध्य औ अंत एक रस दुख ही इसमें जारी है ।  
कृष्ण-भजन विनु, और जो कुछ है वह खारी है ॥

'हरीचंद' भव पंक छुट्टै नहिं विना भजन-रत के भोए ।  
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से नोए ॥४॥

### उद्ग्रोधन—चेतावनी

( ३६ )

रसने ! रुदु सुंदर हरि-नाम ।

मंगल-करन हरन सब असरुन करन कल्पतरु याम ॥  
तू तौ मधुर संलोनो चहत प्राकृत स्वाद मुदाम ।  
'हरीचंद' नहिं पान करत क्यों कृष्ण-अमृत अभिराम ॥

( ३७ )

आय कै जगत बीच काहू सों न करै बैर  
कोऊ कछू काम करै इच्छा जौ न जोई की ।  
ब्राह्मण की छविन की बैसनि की दूदन की  
अन्यज मलेछ की न ग्याल की न भोई की ॥  
मले की बुरे की 'हरीचंद' से प्रतिहू की  
थोरे की बहुत की न एक की न दोई की ।  
चाहे जो चुनिंदा भयो जग बीच मेरे मन  
तौ न तू कवहुँ कहूँ निंदा कर कोई की ॥

( ३८ )

तुश पर काल अचानक दूटैगा ।  
गाफिल मत हो लवा वाज ज्यों हँसी-खेल मैं दूटैगा ॥  
कब आवैगा कौन राह से ग्रान कौन विधि दूटैगा ।  
यह नहिं जानि परैगी बीचहि यह तन-द्ररपन फूटैगा ॥  
तब न बचावैगा कोई जब काल-दंड सिर कूटैगा ।  
'हरीचंद' एक वही बचैगा जो हरिपद-रुद बूटैगा ॥

( ३९ )

डंका कूच का बज रहा भुसाफिर जागो रे भाई ।  
देखो लाद चले सब पंथी तुम क्यों रहे भुलाई ॥  
अब चलना ही निहचै है तो ले किन माल लदाई ।  
'हरीचंद' हरि-पद विनु नहिं तो रहि जैहो मुँह बाई ॥

( ४० )

यारो इक दिन मौत जरूर ।  
फिर क्यों इतने गाफिल होकर बने नशे मैं चूर ॥  
यही चुडैले तुम्हें खायेगी जिन्हें समझते हूर ।  
माथा मोह जाल की फाँसी इससे भागे हूर ॥  
जान बूझकर घोसा खाना है यह कौन शजर ।  
आम कहाँ से खाओगे जब बोते गये बबूर ॥

गवा रंग कमी दुमिया के ओटे वडे मचूर।  
जो माँगो धीधित को मारे वही वृक्ष भस्पूर॥  
इठा आगाहा इठा दंदा इठा गमी गरत।  
हरीचंद्र हरिप्रेम विना स्वर अंदे भूर का धूर॥

( ४१ )

वेठ चेत रे सैकलबड़े लिए पर चोर खड़ा है।  
लारी दैव धीत गई व्यर मीठ मट में चूर पढ़ा है॥  
सहि अपनास जान-नाम निरलन जग के द्वार अड़ा है।  
जग याइ उत्त उभय की भी कर रथ से जौत कड़ा है॥  
देखु न पाप नस्क में देखा जीवन जनम सड़ा है।  
हरीचंद्र उथ तौ हरिप्रद नसु रक्षा अवकाँव महा है॥

( ४२ )

क्षणों थे क्षण वरणे जग में तूताया या क्षण करता है।  
गरम-नाम की नृद गया छुट मरनाहर पर फरता है॥  
जागा पीना दोना दोना धीर विप्र में दूक्ष है।  
यह तो सशर में भी है तू भान्हु बन रखा छुट्ट है॥  
एक बात पहुँचों में चड़कर हुड़े दे पाई जाती है।  
तू हानी हो दोषी है वहीं गरम-नाव नहीं आती है॥  
जो निशेध था तुह में पशु ते उते सूख दू वैदा है॥  
तो अर्थे नाक हम मनुष्य हैं इस गल में एंडा है॥  
जन बुझ अनजान बहा है देजो नहीं परियाता है।  
हरीचंद्र अब भी हरिप्रद शश कीं अवलंबी हैंगत है॥

( ४३ )

अनने को दू समझ जगा क्षा धीतर है क्षण कुल है।  
तेरा अपल रुप क्षा है तू जिनके ऊपर छूट है॥  
छूटी चली कहूं मातृ चरवी ते देह दराहे है॥  
भीत देलों तो थिन आई झरर के निकाई है॥  
लार धीर मल मूर वित कक नक्की छूट औ गेया है॥  
मीली दीली नद छोड़ों दे भरा घेट का लेटा है॥  
तरिक कहीं जुल जाव तू धू धू कर सब नक्कि चित्तोंहै॥  
जह गड़ी वा पढ़ी भै तो देव सभी ढुँग गोड़ै॥  
भरी देह में यह को भरी जरर न्याय सुरस्ता है॥  
हितको छूं कर बायु नहै तो नाक दंद नर करता है॥  
गह ऐ उपजा मल में लिगा मातृ मलों दू धूए है॥  
हर धीर रर इतना कुल रे अये माल्या है॥  
जिनके दुनों ही तू गंदा मिलने ही से दफता है॥  
हरीचंद्र उत्त प्रमात्रस को गद्दे क्यों दर्दे भजता है॥

( ४४ )

मजा कहीं नहै पास जग में नहक त्या भुलाई।  
छिन के हुल वील लालन तिन तित लान लार दक्षाई।  
थह जग में विकलो अज्ञा कर शुदा मरस बदाय।  
तिन स्वर्य दौरे कूकर रुकर यह दुर्दास लक्षण।  
अभ्या अपवा अज्ञा करके बहुत छाई मल।  
अंत सनै ताजि दीनों मल तने दिनको लति अपनाय॥  
ताँचे भीत खायांहुर तो छिनहुं न नेह वहाय।  
हरीचंद्र भल दूत जोट बनि नरसीदत्ति बैनय॥

गोविधय-प्रेम

( ४५ )

लोगों जौ अदेक भन होते।  
ती एक लाम-चूंदर ज्यों देके इक हे लोग देखो॥  
एक सों सप नहक-कलज करते एक जीं रहते रहन।  
एक सों स्वप्न रंग रैंगे तजि लोक-ब्रज तुल्यान है।  
को जग करै जीग दो शार्धे को पुरि दूरै रहै।  
हिये एक रु लाम मनोवर दोहन कोइद रहा।  
हाँ तो हुतो थक ही मर सो हरि के गर उपरै।  
हरीचंद्र कोड और खोपेन कै ज्योग दिलायह वर्द॥

( ४६ )

सखी ए नैन बहुत चुरे।  
तब सों गद धरण दरि सों जर सो जाह औरों॥  
मोहन के रुचव है डोजत तलहर नौवें हों॥  
मेरी कील प्रीत सत छोड़ो रहे वे लियों॥  
जग स्त्रीयो छरणी नै ए नहै हठ हो तानिक हों॥  
हरीचंद्र देखते कमल से निधि के डुडे छुं॥

( ४७ )

लसी नन-गोहन गेरे सीति।  
लेक देव कुल कानि लौंडि दम कर्द उनहि में प्रव।  
निमरी जर के जारे रुरे उद्दी दृष्टि नैति।  
अब ही हम कदहुं नहीं ताजहुं यिद वी देम ध्रावि।  
महे चाहु-बल आउ देरे एक धंड इगरी रहि।  
हरीचंद्र निमक दिल्लीसे निधि रव देउ अ खीन।

( ४८ )

हमरे नैन वही चोद्याँ।  
बीती जानि औरि स्व निधि जो न हम गों संदों।

अवगाहौ इन सकल अंग ब्रज अंजन को धोयो ।  
लोक वेद कुल-कानि बहाई सुख न रहौ खोयो ॥  
द्वृवत हैं अकुलाइ अथाहन यहै रीति कैसी ।  
'हरीचंद' पिय महाबाहु तुम आछत गति ऐसी ॥

( ४९ )

पहिले ही जाय मिले गुन में श्रवन फेरि  
रूप-सुधा मधि कीतो नैनहू पवान है ।  
हँसनि नटनि चितवनि मुसुकानि  
सुश्राई रसिकाई मिलि मति पथ पान है ॥  
मोहि मोहि मोहन-भई री मन मेरो भयो  
'हरीचंद' भेद ना परत कछु जान है ।  
कान्ह भये प्रानमय प्रान भये कान्हमय  
हिय में न जानि परै कान्ह है कि प्रान है ॥

( ५० )

बोल्यौ करै नूपुर श्रवन के निकट सदा,  
पद-तल लाल मन मेरे विहरयो करै ।  
बाजी करै बंसी धुनि पूरि रोम-रोम सुख,  
मन मुसुकानि मंद मनहि हँस्यो करै ॥  
'हरीचंद' चलनि मुरनि बतरानि चित,  
छाई रहै छवि जुग दगन भरयो करै ।  
प्रानहू ते प्यारौ रहै प्यारो तू सदाई तेरे  
पीरो पट सदा जिय बीच फहरयौ करै ॥

( ५१ )

मारण प्रेम को को समुझे 'हरीचंद' यथारथ होत यथा है ।  
लाभकद्यु न पुकारन मैं बदनाम ही होन की सारी कथा है ॥  
जानत है जिव मेरो भली विधि और उपाय सबै विरथा है ।  
बावरे हैं बृज के सगरे मोहि नाहक पूछत कौन विथा है ॥

( ५२ )

जिय पै जु होइ अधिकार तो विचार कीजै  
लोक-लाज भलो धुरो भलै निरधारिए ।  
नैन श्रौन कर पग सबै पर-न्वस भए  
उतै चालि जात इन्हैं कैसे कै सम्हारिये ॥  
'हरीचंद' भई सब भौति सों पराई हम  
इन्हैं जान कहि कहै कैसे कै निवारिए ।  
मन मैं रहै जो ताहि दीजिये विसारि मन  
आपै बसै जा मैं ताहि कैसे कै विसारिए ॥

( ५३ )

ब्यापक ब्रहा सबै थल पूरन हैं दगड़ै परिजानती हैं ।  
पै विना नंदलाल विहाल सदा 'हरीचंद' न जानहि टानती हैं ॥  
तुम ऊधौ यहै कहियो उन सों हम और कद्यु नहिं जानती हैं ।  
पिय प्यारे तिहारे निहारे विना अँखियाँ दुखियाँ नहीं मानती हैं ॥

( ५४ )

पहिले वहु भौति भरोसो दियो अव ही हम लाइ मिलावती हैं ।  
'हरीचंद' भरोसे रही उनके सखियाँ जे हमारी कहावती हैं ॥  
अव वेई जुदा है रही हम सों उल्टो मिलि कै समुझावती हैं ।  
पहिले तो लगाइ कै आग अरी जल को अव आपुदि थावती हैं ॥

( ५५ )

हम तो सब भौति तिहारी भई तुम्हैं छाँड़ि न और सों नेह करौं ।  
'हरीचंद' जूँड़ौँड़ियौ सबै कछु एक तिहारोई ध्यान सदा ही धरौं ॥  
अपने को परायो बनाइ कै लजहु छाँड़ि खरी विरहगि जरौं ।  
सब ही सहै नाहिं कहौं कछु पै तुव लेखे नहीं या परेखे मरौं ॥

( ५६ )

पूरन पियूष प्रेम आसव छक्की हैं रोम  
रोम रस भीन्यौ सुधि भूली गेह मात की ।  
लोक परलोक छाँड़ि लाज सों बदन मोड़ि  
उघरि नची हैं तजि संक तात मात की ॥  
'हरीचंद' एतेहूं पैं दरस दिलावै क्यों न  
तरसत रैन दिना प्यासे प्रान पातकी ।  
ऐरे बृजचंद तेरे मुख की चकोरी हूँ मैं  
ऐरे घनस्याम तेरे रूप की हैं चातकी ॥

( ५७ )

छाँड़ि कुल वेद तेरी चेरी भई चाह भरी  
गुरुजन परिजन लोक-लाज नासी हैं ।  
चातकी त्रृप्ति तुव रूप-सुधा हैत नित  
पल पल दुसह वियोग दुख गाँसी हैं ॥  
'हरीचंद' एक ब्रत नैम प्रेम ही को लीनौ  
रूप की तिहारे ब्रज-भूप हैं उपासी हैं ।  
ज्याय लै रे प्रानन बचाय लै लगाय कंठ  
ऐरे नंदलाल तेरी मोल लई दासी हैं ॥

( ५८ )

थाकी गति अंगन की मति पर गई मंद  
सुख झाँझरी सी है कै देह लाभी पियरान ।  
बाबरी सी बुद्धि भई हँसी काहू छीन लई  
सुख के समाज जित तित लागे दूर जान ॥

'हरीचंद' रावरे विरह जग दुखमय  
भयो कछू और होनहार लागे दिखरान ।  
नैन कुम्हलान लागे बैनहु अथान लागे  
आओ प्राननाथ अब प्रान लागे सुरक्षान ॥

( २ )

### भगवान् श्रीराधा-कृष्ण और श्रीसीता-रामके चरण-चिह्नोंका वर्णन

जयति जयति श्रीराधिका चरन जुगल करि नैम ।  
जाकी छटा प्रकास तें पावत यामर प्रेम ॥  
कहैं हरि-चरन अगाध अति कहैं मोरी मति थोर ।  
तदपि कृपा-वल लहि कहत छमिय ढिटाई मोर ॥

#### छपण्य

स्वस्तिक स्थंदन संख सक्ति सिंहासन सुंदर ।  
अंकुस ऊरध रेख अब्ज अठकोन अमलतर ॥  
बाजी बारन बेनु वारिचर बज्र विमल वर ।  
कुंत कुमुद कलवौत कुंभ कोदंड कलाधर ॥  
असि गश छत्र नवकोन जव तिल तिकोन तरु तीर गह ।  
हरिचरन चिह्न वत्तिस लखे अग्निकुंड अहि सैल सह ॥

#### स्वस्तिक-चिह्नका भाव

जे निज उर मैं पद धरत असुभ तिन्हैं कहुँ नाहि ।  
या हित स्वस्तिक चिह्न प्रभु धारत निज पद माहि ॥

#### रथका चिह्न

निज भक्तन के हेतु जिन सारथियन हूँ कीन ।  
प्रगटित दीन-दयालुता रथ को चिह्न नवीन ॥  
माया को रन जय करन बैठहु या दैं आइ ।  
यह दरसावन हेतु रथ चिह्न चरन दरसाइ ॥

#### शङ्खका चिह्न

भक्तन की जय सर्वदा यह दरसावन हेतु ।  
संख निह निज चरन मैं धारत भव-जल-मेतु ॥  
परम अभय पद पाइहौ याकी सरनन आइ ।  
मनहुँ चरन यह कहत हैं शंख बजाइ सुनाइ ॥  
जग-पावनि गंगा प्रगट याही सौं इहि हेतु ।  
चिह्न सुजल के तच्च को धारत रमा-निकेत ॥

#### शक्ति-चिह्नका भाव

निना मोल की दासिका सक्ति स्वतन्त्रा नाहि ।  
सक्तिमान हरि याहि तें सक्ति चिह्न पद माहि ॥

भक्तन के दुख दलन को विधि की लीक मिटाइ ।  
परम सक्ति यामैं अहै सोई चिह्न लक्षाइ ॥

#### सिंहासन-चिह्नका भाव

श्री मोरीजन के सुमन यापैं करैं निवार ।  
या हित सिंहासन धरत हरि निज चरनन पास ॥  
जो आवै याकी सरन सो जग राजा होइ ।  
या हित सिंहासन सुभग चिह्न रह्ये दुख खोइ ॥

#### अंकुश-चिह्नका भाव

मन-मतंग निज जनन के नेकु न इत उत जाहि ।  
एहि हित अंकुस धरत हरि निज पद कमलन माहिं ॥  
याको सेवक अतुरतर गननायक सम होइ ।  
या हित अंकुस चिह्न हरि चरनन सोहत सोइ ॥

#### ऊर्ध्व रेखा-चिह्नका भाव

कवहुँ न तिनकी अधोगति जे सेवत पद-पत्र ।  
ऊरध रेखा चिह्न पद येहि हित कीनो सद्ग ॥  
ऊरधरेता जे याये ते या पद कों सेह ।  
ऊरध रेखा चिह्न यों प्रगट दिखाई देर ॥  
यातें ऊरध और कछु ब्रह्म अंड मैं नाहि ।  
ऊरध रेखा चिह्न है या हित हरिन-पद माहिं ॥

#### कमल-चिह्नका भाव

सजल नयन अरु हृदय मैं यह पद रहिवे जोग ।  
या हित रेखा कमल की करत कुण-पद भोग ॥  
श्रीलक्ष्मी को वास है याही चरनन-तीर ।  
या हित रेखा कमल की धारत पद बलवीर ॥  
विधि सौं जग, विधि कमल सौं, सो हरि सौं प्रगताइ ।  
राधागर-पद-कमल मैं या हित कमल लवाइ ॥  
फूलत सारिवक दिन लखे मकुचत लवित तम रत ।  
या हित श्रीगोपाल-पद जलज चिन्द दरयात ॥

श्रीराम-मन-भ्रमर के ठहरन की डौर।  
या हित जल-सुत-चिन्ह श्रीहरिपद जन सिरमौर॥  
बहुत ग्रेम-जल के बढ़े घटे नहि अटि जात।  
यह दयालुता प्रगट करि पंकज चिन्ह लखात॥  
काठ ज्ञान वैराग्य मैं बँधो बेधि उड़ि जात।  
आहि न बेधत मन-भ्रमर या हित कमल लखात॥

#### अष्टकोण-चिह्नका भाव

आठो दिसि शूलेक कौ राज न ढुर्लभ ताहि।  
अष्टकोन को चिन्ह यह कहत छु सेवै याहि॥  
अनायास ही देत है अष्ट सिद्धि सुख-स्थाम।  
अष्टकोन को चिन्ह पद धारत येहि हित स्थाम॥

#### अश्व-चिह्नका भाव

हयमेधादिक जग्य के हम ही हैं इक देव।  
अस्व-चिन्ह पद धारत हरि प्रगट करन यह मेव॥  
याहि सों अवतार सब हयग्रीवादिक देख।  
अवतारी हरि के चरन याहि तें हथ-रेख॥  
बैरहु जे हरि सों करहि पावहि पद निर्वान।  
या हित केसी-दमन-पद हय को चिन्ह महान॥

#### हाथीके चिह्नका भाव

जाहि उधारत आपु हरि राखत तेहि पद पास।  
या हित गज को चिन्ह पद धारत स्मा-निवास॥  
सज्ज को पद मज-चरन मैं \*सो गज हरिपद माहिं।  
यह महाव सुखन करत गज के चिन्ह देखाहिं॥  
सब कवि कविता मैं कहत गजगति राधानाथ।  
ताहि प्रगट जग मैं करन धरयो चिन्ह गज साथ॥

#### वेणु-चिह्नका भाव

सुर नर सुनि नर नाह के बंस यही सों होत।  
या हित बंसी चिन्ह हरि पद मैं प्रगट उदोत॥  
गाँठ नहीं जिनके हृदय ते या पद के जोग।  
या हित बंसी चिन्ह पद जानहु सेवक लोग॥  
जे जन हरिनुन गावहीं राखत तिन को पास।  
या हित बंसी चिन्ह हरि पद मैं करत निवास॥  
ग्रेम भाव सों जे बिधे छेद करेजे माहिं।  
तेहि या पद मैं वर्ते आह सकै कोउ नाहिं॥  
मनहुं धोर तप करति है वंसी हरिपद पास।  
गोपी यह बैलोक के जीतन की धरि आस॥

\* सबे पदा इतिपदे निमग्नः।

श्रीगोपिन की सौति लयि पद-तर दीनी दारि।  
यातैं बंसी चिन्ह निज पद मैं धरत मुरारि॥  
आई कैवल वज-वधु क्यों नहि यह मुरारि।  
या हित कोपित होइ हरि दीनी पद तर दारि॥  
मन चोरयो वहु श्रियन को इन शब्दन मग पैट।  
तो प्राणित को तप करत यनु हरिद-सर वेट॥  
वेन सरिस हू पातकी सरन गये रखि लेत।  
वेनु-धरन के कमल-पद वेनु चिन्ह र्थह देत॥

#### मीन-चिह्नका भाव

अति चंचल वहु ध्यान सों आवत हृदय मँशार।  
या हित चिन्ह सु-मीन को हरिपद मैं निरार॥  
जब लौं हिय मैं सजलता तब लौं याको व्यास।  
सुष्क भए पुनि नहि रहत झाप यह करत प्रकाष॥  
जाके देखत ही बहै ऋज-तिय-मन मैं काम।  
रति-पति-ध्वज को चिन्ह पद यातैं धारत स्थाम॥  
हरि मनस्थ कौं जीति कै ध्वज राख्यो पद लाह।  
यातैं रेखा मीन की हरिपद मैं दरसाइ॥  
महा प्रलय मैं मीन वनि जिमि मनु रच्या कीन।  
तिमि भवसामर कों चरन या हित रेखा मीन॥

#### बज्र-चिह्नका भाव

चरन परसं नित जे करत इन्द्र-तुल्य ते द्वेष।  
बज्र-चिन्ह हरि-पद-कमल येहि हित करत उदोत॥  
पर्वत से निज जनन के पापहि काठन काज।  
बज्र-चिन्ह पद मैं धरत कुण्ठन्द महराज॥  
बज्रनाम यासों प्रगट जादव सेस लखाहिं।  
थापन-हित निज बंस सुषि बज्र चिन्ह पद माहिं॥

#### बरछी-चिह्नका भाव

मनु हरिहू अब सों डरत मति कहुं आवै पास।  
या हित बरछी धारि पग करत द्वूर सों नास॥

#### कुमुद-फूलके चिह्नका भाव

श्रीराधा-मुखनंद लखि अति अनंद श्रीगात।  
कुमुद-चिन्ह श्रीकृष्ण-पद या हित प्रगट लखात॥  
सीतल निसि लखि फूलहै तेज दिवस लखि बंद।  
यह सुभाव प्रगटित करत कुमुद चरन मैंदरंद॥

#### स्वर्णके पूर्ण कुम्भके चिह्नका भाव

नीरस यामैं नहि बर्तैं बर्सैं जे रस मरपूर।  
पूर्ण कुम्भ को चिन्ह मनु या हित धारत दूर॥

गोपीजन-विरहागि पुनि निज जन के त्रयताप ।  
मैटन के हित चरन मैं कुंभ धरत हरि आप ॥  
सुरसरि श्रीहरि-नरन सौं प्रगटी परम पवित्र ।  
या हित पूरन कुंभ को धारत चिन्ह विचित्र ॥  
कवहुँ अमंगल होत नहिं नित मंगल सुख-साज ।  
निज भक्तन के हेत पद कुंभ धरत ब्रजराज ॥  
श्रीगोपीजन-चाक्य के पूरन करिवे हेत ।  
सुकुच कुंभ को चिन्ह पग धारत रमानिकेत ॥

### धनुषके चिह्नका भाव

इहाँ सतव्ध नहिं आवहीं आवहि जे नइ जाहिं ।  
धनुष चिन्ह एहि हेतु है कृष्ण-चरन के माँहि ॥  
जुरत प्रेम के धन जहाँ दूर बरसा बरसात ।  
मन संध्या फूलत जहाँ तहँ यह धनुष लखात ॥

### चन्द्रमाके चिह्नका भाव

श्रीसिव सौं निज चरन सौं प्रकट करन हित हेत ।  
चंद्र-चिन्ह हरि-पद बसत निज जन को सुख देत ॥  
जे या चरनहिं सिर धरें ते नर रुद्र समान ।  
चंद्र-चिन्ह यहि हेतु निज पद राखत भगवान ॥  
निज जन पै बरखत सुधा हरत सकल त्रयताप ।  
चंद्र-चिन्ह येहि हेतु हरि धारत निज पद आप ॥  
भक्त जनन के मन सदा यामैं करत निवास ।  
यातें मन को देवता चंद्र-चिन्ह हरि पास ॥  
बहु तारन को एक पति जिमि ससि तिमि ब्रजनाथ ।  
दण्डिनता प्रगटित करन चंद्र-चिन्ह पद साथ ॥  
जाकी छटा प्रकाश तैं हरत हृदय-तम घोर ।  
या हित ससि को चिन्ह पद धारत नंदकिसोर ॥  
निज भगिनी श्री देवि कै चंद्र वस्त्रौ मनु आइ ।  
चंद्र-चिन्ह ब्रजचंद्र-पद यातें प्रगट लखाइ ॥

### तलवारके चिह्नका भाव

निज जन के अघ-पसुन कों बधत सदा करि रोस ।  
एहि हित असि पग मैं धरत दूर दरत जन-दोस ॥

### गदा-चिह्नका भाव

काम-कल्प-कुंजर-कदन समरथ जो सब भाँति ।  
गदा-चिन्ह येहि हेतु हरि धरत चरन जुत क्रांति ॥  
भक्त-नाद मोहि प्रिय अतिहि मन महँ प्रगट करंत ।  
गदा-चिन्ह निज कमल पद धारत राधाकंत ॥

### छत्रके चिह्नका भाव

भय दुख आतप सौं तपे तिनको अति प्रिय एह ।  
छत्र-चिन्ह येहि हेत पग धारत साँवल देह ॥  
ब्रज राख्यो सुर-कोप तैं भव-जल तैं निज दास ।  
छत्र-चिन्ह पद मैं धरत या हित रमानिवास ॥  
याकी छाया मैं बसत महाराज सम होय ।  
छत्र-चिन्ह श्रीकृष्ण पद यातें सोहत सोय ॥

### नवकोण-चिह्नका भाव

नवो खंड पति हेत हैं सेवत जे पद-कंजु ।  
चिन्ह धरत नवकोन को या हित हरि-पद मंजु ॥  
नवधा भक्ति प्रकार करि तब पावत येहि लोग ।  
या हित है नवकोन को चिन्ह चरन गत-सोग ॥  
नव जोगेश्वर जगत तजि यामैं करत निवास ।  
या हित चिन्ह सुकोन नव हरि-पद करत प्रकास ॥  
नव यह नहिं वाधा करत जो एहि सेवत नेक ।  
याही तैं नवकोन को चिन्ह धरत सविवेक ॥  
अष्ट सखिन के संग श्रीराधा करत निवास ।  
याही हित नवकोन को चिन्ह कृष्ण-पद पाप ॥  
यामैं नव रस रहत हैं यह अनंद की खानि ।  
याही तैं नवकोन को चिन्ह कृष्ण-पद जानि ॥  
नव को नव-गुन लगि गिनौ नवै अंक सब होत ।  
तातें रेखा कहत जग यामैं ओत न प्रोत ॥

### यव-चिह्नका भाव

जीवन जीवन के यहै अन्न एक तिमि येह ।  
या हित जब को चिन्ह पद धारत साँवल देह ॥

### तिल-चिह्नका भाव

याके सरन गए बिना पितरन कौं गति नाहिं ।  
या हित तिल को चिन्ह हरि राखत निज पद माँहि ॥

### त्रिकोण-चिह्नका भाव

स्त्रीय परकीया बहुरि गनिका तीनहु नारि ।  
सब के पति प्रगटित करत मनमथ-मयन मुरारि ॥  
तीनहु गुन के भक्त कौं यह उद्धरन समर्थ ।  
सम त्रिकोन को चिन्ह पद धारत याके अर्थ ।  
ब्रह्मा-हरि-हर तीनि सुर याही तैं प्रगटत ।  
या हित चिन्ह त्रिकोन को धारत राधाकंत ।  
श्री-भू-लीला तीनहु दासी याकी जान ।  
यातें चिन्ह त्रिकोन को पद धारत भगवान ।

सर्वभूमि-पाताल में विक्रम है गए धार ।  
याहि जनावन हेतु त्रय कोन चिन्ह दरसाइ ॥  
जो याकै सरमहि गए भिटे तीनहूँ ताप ।  
या हित चिन्ह त्रिकोन को धरत हरत जो पाप ॥  
भक्ति-ज्ञान-वैराग हैं याके साधन तीन ।  
यातें चिन्ह त्रिकोन को कृष्ण-चरन लखि लीन ॥  
ऋगी सांख्य आराधि कै पावत जोगी जैन ।  
सो पद है येहि हेतु यह चिन्ह चिशुति को भौन ॥  
बृन्दावन द्वारावती भधुपुर तजि नहि जाहि ।  
यातें चिन्ह त्रिकोन है कृष्ण-चरन के माहि ॥  
का सुर का नर, असुर का सब वैं हषि समान ।  
एक भक्ति तैं होत बस या हित रेखा जान ॥  
नित सिव जू बंदन करत तिन नैननि की रेख ।  
या हित चिन्ह त्रिकोन को कृष्ण-चरन मैं देख ॥

### बृक्षके चिह्नका भाव

बृक्ष-रूप सब जग अहै बीज-रूप हरि आप ।  
यातें तरु को चिन्ह पग प्रगटत परम प्रताप ॥  
जे भव आतप सौं तपे तिनहीं के सुख हेतु ।  
बृक्ष-चिन्ह निज चरन मैं धारत खगपति-केतु ॥  
जहौं पग धरैं निकुंजमय भूमि तहौं की होय ।  
या हित तरु को चिन्ह पद पुरवत रस को सोय ॥  
यहौं कल्पतरु सौं अधिक भक्त मनोरथ दान ।  
बृक्ष चिन्ह निज पद धरत यातें श्रीभगवान ॥  
श्रीगोपीजन-मन-विहंग इहौं करैं विथाम ।  
या हित तरु को चिन्ह पद धारत हैं घनस्याम ॥  
केवल पर-उपकार-हित बृक्ष-सरिस जग कौन ।  
तातें ताको चिन्ह पद धारत राधा-रौन ॥  
प्रेम-नयन-जल सौं सिंचे सुद चित्त के खेत ।  
घनगाली के चरन मैं बृक्ष चिन्ह येहि हेत ॥  
पाहन मारेहु देत फल सोइ गुन यामैं जान ।  
बृक्ष-चिन्ह श्रीकृष्ण-पद पर-उपकार-प्रमान ॥

### वाण-चिह्नका भाव

सब कटान्छ ब्रज-जुवति के वरस एक ही ठौर ।  
सोइ यान को चिन्ह है कारन नहि कछु और ॥

### गृह-चिह्नका भाव

केवल जोगी पावहीं नहि यामैं कछु नेम ।  
या हित गृह को चिन्ह जिहि गृह लहैं करि प्रेम ॥

मति छूटौ भव-सिंधु मैं यामैं करौ निवार ।  
मानहु यह को चिन्ह पद जनन दोलावत पास ॥  
सिव जू के मन को मनहुँ महल बनाये स्याम ।  
चिन्ह होय दरसत सोइ हरिपद-कंज ललाम ॥  
गृही जानि भन बुद्धि को दंपति निवसन हेत ।  
अपने पद कमलन दियो दयानिकेत निकेत ॥

### अग्निकुण्डके चिह्नका भाव

श्री बल्लभ हैं अनल-वपु तहौं सरन जे जात ।  
तै मम पद पावत सदा येहि हित कुण्ड लदात ॥  
श्री गोपीजन को विरह रहौं जैन श्री गात ।  
एक देस मैं सिमिटि सोइ अग्निकुण्ड दरसात ॥  
मन तपि कै मम चरन मैं कथित धान सम होइ ।  
तब न और कछु जन चहै अग्निकुण्ड है सोइ ॥  
जग्म-पुरुष तजि और को को सेवै मतिमंद ।  
अग्निकुण्ड को चिन्ह येहि हित राख्यौ ब्रजचंद ॥

### सर्प-चिह्नका भाव

निज पद चिन्हित तेहि कियो ताको निज पद राखि ।  
काली-मर्दन-चरन यह भक्त-अनुग्रह-सालि ॥  
नाग-चिन्ह भत जानियो यह प्रभु-पद कै पास ।  
भक्तन के मन बाँधिवे हित राखी अहि पास ॥  
श्री राधा के विरह मैं मति वि-अनिल दुख देइ ।  
सर्प-चिन्ह प्रभु सर्वदा राखत हैं पद सेइ ॥  
याकी सरनन दीन जन सर्पहि ॥ आवहु धाय ।  
सर्प-चिन्ह एहि हेतु पद राखत श्री ब्रजराय ॥

### सैल-चिह्नका भाव

सत्य-करन हरिदास वर श्री गिरिवर को नाम ।  
सैल-चिन्ह निज चरन मैं राख्यौ श्री घनस्याम ॥  
श्री राधा के विरह मैं पग पग लगत पहार ।  
सैल-चिन्ह निज चरन मैं राख्यौ यहै विचार ॥

### श्रीगोपालतापिनी श्रुतिके मतसे चरण-चिह्न-वर्णन

परम ब्रह्म के चरन मैं मुख्य चिन्ह ध्वज-छत्र ।  
ऊरध अध अज लोक सौं सोइ द्वै पद अत्र ॥  
ध्वजा दंड सो मेह है वन्यो सर्वमय सोय ।  
सूर्य-चन्द्र की कान्ति जो ध्वज पताक सौ होय ॥

आतपत्र को चिन्ह जोइ ब्रह्मलोक सो जान ।  
येहि विधि श्रुति निरनै करत चरन-चिन्ह परमान ॥  
रथ विनु अस्व लखात है मीन चिन्ह द्वै जान ।  
धनुष विना परतंच को यह कोउ करत प्रमान ॥

### चिह्नोंके मिलित भाव

दो चिह्नोंके मेल

### हाथी और अङ्गुशके चिह्नका भाव

काम करत सब आपु ही पुनि प्रेरकहू आप ।  
या हित अंकुस-हस्ति दोउ चिन्ह जरन गतपाप ॥

### तिल और यवके चिह्नका भाव

देव-काज अरु पितर दोउ याही सों सिधि होइ ।  
याके बिन कोउ गति नहाँ येहि हित तिल-जव दोइ ॥  
देव-पितर दोउ रिनन सों मुक्त होत सो जीव ।  
जो या पद को सेवहै सकल सुखन को सीव ॥

### कुमुद और कमलके चिह्नका भाव

राति दिवस दोउ सम अहै यह तौ स्वयं प्रकास ।  
या हित निसि दिन के दोऊ चिन्ह कृष्ण-पद पास ॥

तीन चिह्नोंके मेल

### पर्वत, कमल और वृक्षके चिह्नोंके भाव

श्री कालिंदी कमल सों गिरि सों श्री गिरिराज ।  
श्री वृन्दावन वृक्ष सों प्रगटत सह सुख साज ॥  
जहाँ जहाँ प्रभु पद धरत तहाँ तीन प्रगटंत ।  
या हित तीनहु चिन्ह ए धारत राधाकंत ॥

### त्रिकोन, नवकोन और अष्टकोनके भाव

तीन आठ नव मिलि सर्व बीर अंक पद जान ।  
जीत्यौ विस्वे बीस सोइ जो सेवत करि ध्यान ॥

चार चिह्नोंके मेल

अमृत-कुम्भ, धनुष, वंशी और गृहके चिह्नोंके भाव  
वैद्यक अमृत-कुम्भ सों धनु सों धनु को वेद ।  
गान वेद वंसी प्रगट सिल्प वेद गृह भेद ॥  
सिंग यजु साम अश्वर्व के ये चारहु उपवेद ।  
सो या पद सों प्रगट एहि हेतु चिन्ह गतवेद ॥

सर्प, कमल, अश्मिकुण्ड और गदा के चिह्नोंके भाव  
रामानुज मत सर्प सों सेष अचारज मानि ।  
निवारक मत कमल सों रविहि पद्म प्रिय जानि ॥  
विष्णुस्वामि मत कुंड सों श्रीवृल्लभ वपु जान ।  
गदा चिन्ह सों माघ मत आचारज हनुमान ॥  
इन चारहु मत मैं रहै तिनहिं मिलै भगवंत ।  
कुंड गदा अहि कमल येहि हित जानहु सब संत ॥

शक्ति, सर्प, वरछी और अङ्गुशके भाव  
सर्प चिन्ह श्री संसु को सक्ति सु गिरिजा भेस ।  
कुंत कारतिक आपु है अंकुस अहै गनेस ॥  
प्रिया-पुत्र सँग नित्य सिव चरन बसत हैं आप ।  
तिन के आयुध चिन्ह सब प्रगटित प्रवल प्रताप ॥

पाँच चिह्नोंके मेल

### गदा, सर्प, कमल, अङ्गुश और शक्तिके चिह्नोंके भाव

गदा विष्णु को जानिये अहि सिव जू के साथ ।  
दिवसनाथ को कमल है अंकुस है गननाथ ॥  
सक्ति रूप तहँ सक्ति है एहि पाँचौ देव ।  
चिन्ह रूप श्रीकृष्ण-पद करत सदा सुम सेव ॥  
जिमि सब जल मिल नदिन मैं अंत समुद्र समात ।  
तिमि चाहौ जाकौ भजौ कृष्ण चरन सब जात ॥

छः चिह्नोंके मेल

### छत्र, सिंहासन, रथ, अश्व, हाथी और धनुषके चिह्नोंके भाव

छत्र सिंहासन बाजि गज रथ धनु ए पट जान ।  
राज-चिन्ह मैं मुख्य हैं करत राज-पद दान ॥  
जो या पद को नित भजै सेवै करि करि ध्यान ।  
महाराज तिन को करत सह स्वामा भगवान ॥

सात चिह्नोंके मेल

### वैष्ण, मत्स्य, चन्द्र, वृक्ष,

### कमल, कुमुद और गिरिके चिह्नोंके भाव

आवाहन हित वेनु शप काम वदायन हेत ।  
चंद्र विरह-वरधन वरन तद सुगंधि रस देत ॥  
कमल दृश्य प्रफुल्लित-करन कुमुद प्रेम-दृष्टान्त ।  
गिरिवर सेवा करन हित धारत राधाकांत ॥

रास-बिलास-सिंगार के ये उद्दीपन सात।  
आलंबन हरि संग ही राखत पद-जलजात॥

आठ चिह्नोंके मेल

बज्र, अग्निकुण्ड, तिल, तलवार,  
मच्छ, गदा, अष्टकोण और सर्पके भाव

बज्र इन्द्र बपु, अनल है अग्निकुण्ड बपु आप।  
जम तिल बपु, तलवार बपु नैरित प्रगट प्रताप॥  
बसन मच्छ बपु, गदा बपु बायु जानि पुनि लेहु।  
अष्टकोण बपु धनद है, अहि इसान कहि देहु॥  
आयुध बाहन सिद्धि क्षण आदिक को संबंध।  
इन चिन्हन सों देव सों जानहु करि मन संघ॥  
सोइ आठों दिग्गपाल मनु सेवत हरिपद आइ।  
अयवा दिग्गपति होइ जो रहै चरन सिरु नाइ॥

पुनः

अंकुश, वर्णी, शक्ति, पवि, गदा, धनुष, असि, तीर।  
आठ शक्ति को चिन्ह यह धारत पद बलबीर॥  
आठहु दिसि सों जनन की मनु-इच्छा के हेत।  
निज पद में ये शक्ति सब धारत रमा-निकेत॥

नौ चिह्नोंके मेल

बेणु, चन्द्र, पर्वत, रथ, अग्नि, बज्र,  
मीन, गज और स्वस्तिक चिह्नोंके भाव

बेनु-चन्द्र-गिरि-रथ-अनल-बज्र-मीन-गज-रेख।  
आठों रस प्रगटत सदा नवम स्वस्तिकहु देख॥  
बेनु प्रगट शृंगार रस जो बिहार को मूल।  
चरन कमल में चन्द्रमा यह अक्षुत गत सूल॥  
कोमल पद कहै गिरि प्रगट यहै हास्य की बात।  
रन उद्धम आगे रहै रथ रस बीर लखात॥  
निमिच्चर-तूलहि दहन हित अग्निकुण्ड भय-रूप।  
रौद्र रूप को चिन्ह है दुष्टन काल-सरूप॥  
गज करुना रस रूप है जिन अति करी पुकार।  
मीन चिन्ह वीभत्स है बंगाली-द्यवहार॥  
नाटक के ये आठ रस आठ चिन्ह सों होत।  
स्वस्तिक सों पुनि सांत को रस नित करत उदोत॥  
वर-पद-मुख आनंदमय प्रभु सब रस की खान।  
ताते नव रस चिन्ह यह धारत पद भगवान॥

दस चिह्नोंके मेल

बेणु, शंख, गज, कमल, यव, रथ, गिरि, गदा,  
बृक्ष और मीनके भाव

बेनु बढ़ावत श्रवन को, संख सुकीर्तन जान।  
गज सुमिरन को कमल पद, पूजन कमल बखान॥  
भोग रूप जब अरचनहि, वंदन गिरि गिरिराज।  
गदा दास्य हनुमान को, सख्य सारथी-साज॥  
तस तन मन अरपन सबै, प्रेम लच्छना मीन।  
दस विधि उद्दीपन करहि भक्ति चिन्ह सत तीन॥

मत्स्य, अमृत-कुम्भ, पर्वत, बज्र, छत्र,  
धनुष, वाण, बेणु, अग्निकुण्ड और  
तलवारके चिह्नोंके भाव

प्रगट मत्स्य के चिन्ह सों विष्णु मत्स्य अवतार।  
अमृत-कुम्भ सों कच्छ है भयो जो मथती वार॥  
पर्वत सों बाराह मे धरनि-उधारन-रूप।  
बज्र चिन्ह नरसिंह के जे नख बज्र-सरूप॥  
बामन जू हैं छत्र सों जो है बटु को अंग।  
परसुराम धनु चिन्ह हैं गए जो धनु के संग॥  
बान चिन्ह सों प्रगट श्री रामचन्द्र महराज।  
बेनु-चिन्ह हलधर प्रगट व्यूह रूप सह साज॥  
अग्निकुण्ड सों बुध भए जिन मख निंदा कीन।  
कलको असि सों जानियै म्लेच्छ-हरन-परवीन॥  
भीर परत जब भक्त पर तब अवतारहि लेत।  
अवतारी श्रीकृष्ण पद दसों चिन्ह एहि हेत॥

ग्यारह चिह्नोंके मेल

शक्ति, अग्निकुण्ड, हाथी, कुम्भ,  
धनुष, चन्द्र, यव, बृक्ष, विक्रोण,  
पर्वत और सर्पके चिह्नोंके भाव

श्री सिव जू हरि-चरन में करत सर्वदा बास।  
आयुध भूषण आदि सह ग्यारह रूप प्रकाश॥  
सक्ति जानि गिरि-नंदिनी परम सक्ति जो आप।  
अग्निकुण्ड तीजो नयन अथवा धूनी श्याप॥  
गज जानौ गज को चरम धरत जाहि भगवान।  
कुम्भ गंग-जल को कहै रहत सीस अस्थान॥  
धनुष पिनाकहि मानियै सब आयुध को ईस।  
चंद्र जानि चूङ्गरतन जेहि धारत सिव सीस॥

श्रीसनु नवधा भक्तिमय सोह नवकोन लबाइ ।  
बृक्ष महापट वृक्ष है रहत जहाँ सुरयाइ ॥  
नेव रुद्र वा सूर दो रूप दिक्षिति जान ।  
पर्यंत सोइ कैलाल है जहाँ विहरत भगवान ॥  
सर्व अभूतन अंग के कंकन मैं वा सेव ।  
एहि विधि श्री सिंह वसाह नित चन्द्रन माँहि तुम देव ॥  
इनकी सभ करि सौं भज्ञन के दिसाओ ।  
तुमोंप जो रीशि कै दीर्घि भक्ति रह मान ॥  
न निज प्रभु की जा दिवण अस्त्व-समर्पण कीन ।  
दन-मूरत-वसन-भष्म-सेव आदि तजि दीन ॥  
मृ-सर्प-गङ्ग-द्युल विधि परवत भाँहि निशान ।  
हाँ अंगुकृत कियो लत्यै भवै सुखरत ॥

## अन्य भावोंके अल्पासार चिह्नोंके वर्णन

देवक पीठि वर्ण को पाटल है शठ-कोन ।  
त रंग को छवि है हरित कल्पतरु जैन ॥  
गं वर्ण को अक्षक है पाटल जव श्वे मल ।  
अ रेता अदन है लोहित अच्छा विसाल ॥  
ब विशुरी रंग को अंकुर है उनि व्याम ।  
क जव चित्रित वरन वच अदन अठ-थाम ॥  
इ निन रंग को वस्त्रौ मुकुट स्वर्ण के रंग ।  
एन चिंद्रत वसन सोभित सुगम सुदाम ॥  
म चैवर को चिह्न है दील वर्ण वर्ण शोल स्वच्छ ।  
अँगुष्ठ के मूल मैं पाटल र्वं प्रतच्छ ॥  
पुष्पाकार है पाटल रंग प्रसन ।  
आदर्म चिह्न श्री हरि दहने पद जान ॥

हरि के दण्डिन चरन ते राधा-पद गाम ।  
ग चम्प पद चिह्न अव सुनहु चिह्नित ललम ॥  
इ रंग को मस्त्य है कलन चिह्न है लाल ।  
उंद्र उनि खेव है अदन चिकोन विसाल ॥  
म चरन पुनि जंडु कलं काही धरु कोरेल ।  
डु पाटल रंग को संख स्तेत ईंग देल ॥  
स्याम ईंग जगिये थिनु चिह्न है पीत ।  
अ अदन पट्टोनि जम दंड स्याम की रीत ॥  
लो चाटल रंग की दूरी चंड शृते रंग ।  
रंग चौकोन है दृश्यी चिह्न उदंग ॥  
वा पाटल रंग के दोउ चरन के जान ।  
ग जान पद चिह्न सो यादा दण्डिन मान ॥

या विधि चौतीरा चिह्न है तुगल चरन जल  
शैँडि बफल भवजाल को मज्जी आहि है ॥

श्रीसामिनीजीके चरण-चिह्नोंके भाव  
छप्य

छत्र लक्ष्म लता पुष्प कंकन अंचुव ए  
अंकुर ऊरध रेत अर्ध लति जव शार्दूल  
पत गदा रथ बन्देवि असु कुंडल ज  
बहुरि मस्त्य निरिज संख दहने पद मा  
श्रीकृष्ण प्रानधिय रथिका चरन चिह्न उल्लील  
द्वृतिचिह्न तीस राजत सदा कलिमलहर कल्याण

## वाम पद-चिह्न

## छबके चिह्नका भाव

सब गोपिनि की स्वामीनी प्रगट करन वह उ  
गोप-स्वाप्ति-ज्ञामिनी भरथो कमल-पद ॥  
प्रीतम-विरहातप-स्तम्भ हेतु लक्ष्म मुखधा  
द्वत्र चिह्न निज कंज पद धरत रथिया वा  
जहुपात्र व्रजपति नोपरति चिमुकसपति भगव  
तिनहूँ की पद स्वामीनी छत्र चिह्न वह जो

## चक्रके चिह्नका भाव

एक-चक्र वज्रधूमि ऐं श्रीराधा को एक  
चक्र चिह्न ध्यानित करन वह तुन जनन चिह्न  
मान सूचे हरि आप ही चरन पलोदत्र आ  
कृष्ण कमल कर चिह्न तो राधा-चरन ललम  
इहन गाम निज जनन के इहन द्वरम-नम प्रोप  
सेव तत्व को चिह्न पद मोहन चिह्न की ओर

## छबजके चिह्नका भाव

परम विद्य तत्त्व विश्व सो श्रीराधा पद जान  
वह दरसवन हेतु पद छबज की चिह्न मध्यम

## लता-चिह्नका भाव

पिथा मनोरथ की लता चरन वज्जी मनु अर्ध  
लता चिह्न है प्रगट सोह राधा-चरन रियाप  
करि आश्रय श्रीकृष्ण की रहन मग निराम  
लता-चिह्न यहि हेत सो रहन न चिनु अगाम  
देवी वृद्धि विधिन की प्रगट करन यह जान  
लता चिह्न श्रीसामिनी धारत द्वृतिचिह्न

सकल महौषधि गनन की परम देवता आप ।  
सोइ भवरोग महौषधी चरन लता की छाप ॥  
लता चिन्ह पद आपु के वृक्ष चिन्ह पद स्याम ।  
मनहुँ रेख प्रगटित करत यह संबंध ललाम ॥  
चरन धरत जा भूमि पर तहाँ कुंजमय होत ।  
लता चिन्ह श्री कमल पद या हित करत उदोत ॥  
पाग चिन्ह मानहुँ रह्यौ लपटि लता आकार ।  
मानिनि के पद-पद्म में बुधजन लेहु विचार ॥

### पुण्यके चिह्नका भाव

कीरतिमय सौरभ सदा या सो प्रगटित होय ।  
या हित चिन्ह सुपुण्य को रह्यो चरन-तल सोय ॥  
पाय पलोटत मान में चरन न होय कठोर ।  
कुसुम चिन्ह श्रीराधिका धारत यह मति मोर ॥  
सब फल याही सों प्रगट सेवहु येहि चित लाय ।  
पुण्य चिन्ह श्री राधिका पद येहि हेत लखाय ॥  
कोमल पद लखि कै पिया कुसुम पाँवडे कीन ।  
सोइ श्रीराधा कमल पद कुसुमित चिन्ह नवीन ॥

### कंकणके चिह्नका भाव

पिय-विहार मैं मुखर लखि पद तर दीनो डारि ।  
कंकन को पद चिन्ह सोइ धारत पद सुकुमारि ॥  
पिय कर को निज चरन को प्रगट करन अति हेत ।  
मानिनि-पद मैं वल्य को चिन्ह दिखाई देत ॥

### कमलके चिह्नका भाव

कमलादिक देवी सदा सेवत पद दै चित ।  
कमल चिन्ह श्रीकमल पद धारत एहि हित नित ॥  
अति कोमल सुकुमार श्री चरन कमल हैं आप ।  
नेत्र कमल के दृष्टि की सोई मानौ छाप ॥  
कमल रूप वृंदा विधिन वसत चरन मैं सोइ ।  
अधिपतित्व सूचित करत कमल कमल पद होइ ॥  
नित्य चरन सेवन करत विष्णु जागि सुख-सद्ग ।  
पदादिक आयुधन के चिन्ह सोई पद-पद्म ॥  
पदादिक सब निधन को करत पद-पद दान ।  
याते पद्मा-चरन मैं पद्म चिन्ह पहिचान ॥

### ऊर्ध्व रेखाके चिह्नका भाव

अति रूपो श्री चरन को यह मारग निरुपाधि ।  
उरथ रेखा चरन मैं ताहि लेहु आराधि ॥

सरन गए ते तरहिंगे यहै लीक कहि दीन ।  
ऊरथ रेखा चिन्ह है सोई चरन नवीन ॥

### अङ्गुशके चिह्नका भाव

बहु-नायक पिय-मन-सुगाज मति औरन पै जाय ।  
या हित अंकुर चिन्ह श्री राधा-पद दरसाय ॥

### अर्ध-चन्द्रके चिह्नका भाव

पूरन दस सप्तसन्ध्यन सों मनहुँ अनादर पाय ।  
सूखि चंद्र आधो भयो सोई चिन्ह लखाय ॥  
जे अ-भक्त कु-रसिक कुटिल ते न सकहिं इत आय ।  
अर्ध-चन्द्र को चिन्ह येहि हेत चरन दरसाय ॥  
निष्कलंक जग-बंधु पुनि दिन दिन याकी वृदि ।  
अर्ध-चन्द्र को चिन्ह है या हित करत समृद्धि ॥  
राहु ग्रसै पूरन ससिहि ग्रसै न येहि लखि वक्त ।  
अर्ध-चन्द्र को चिन्ह पद देखत जेहि शिव-सक्त ॥

### यचके चिह्नका भाव

परम प्रथित निज यश-करन नर को जीवन प्रान ।  
राजस जव को चिन्ह पद राधा धरत सुजान ॥  
भोजन को मत सोच कर भजु पद तजु जंजाल ।  
जव को चिन्ह लखात पद हरन पाप को जाल ॥

### दश्युपद-चिन्ह

#### पादा-चिह्नका भाव

भव-बंधन तिन के कर्तृं जे आवैं करि आस ।  
यह असत्य प्रगटित करत पास प्रिया-पद पास ॥  
जे आवैं याकी सरन कबहुँ न ते छुटि जाहिं ।  
पास-चिन्ह श्री राधिका येहि कारन पद माहिं ॥  
पिय मन बंधन हेत मनु पास-चिन्ह पद सोभ ।  
सेवत जाको संसु अज भक्ति दान के ल्लेभ ॥

#### गदाके चिह्नका भाव

जे आयत याकी सरन पितर सबै तरि जात ।  
यथा गदाधर चिन्ह-पद या हित गदा लखात ॥

#### रथ-चिह्नका भाव

जामैं श्रम कलु होय नहि चलत समय बन-बुंज ।  
या हित रथ को चिन्ह पग सोभित सब सुख-पुंज ॥  
यह जग सब रथ रूप है सरथि प्रेरक आप ।  
या हित रथ को चिन्ह है पग मैं प्रगट प्रताप ॥

### वेदीके चिह्नका भाव

अभि रूप है जगत को कियो पुष्टि रस दान।  
या हित वेदी चिन्ह है प्यारी-चरन महान॥  
जग्य स्वप्न श्रीकृष्ण हैं स्वधा रूप हैं आप।  
याते वेदी चिन्ह है चरन हरन सब पाप॥

### कुण्डलके चिह्नका भाव

प्यारी पग नूपुर मधुर धुनि सुनिये के हेत।  
मनहुँ करन पिय के वसे चरन सरन सुख देत॥  
सांख्य योग प्रतिपाद्य हैं ये दोउ पद जलजात।  
या हित कुण्डल चिन्ह श्री राधा-चरन ल्खात॥

### मत्स्यके चिह्नका भाव

जल विनु मीन रहै नहीं तिमि पिय विनु हम नाहिं।  
यह प्रगटावन हेत हैं मीन चिन्ह पद माँहिं॥

### पर्वतके चिह्नका भाव

सब ब्रज पूजत गिरिवरहि सो सेवत है पाय।  
यह महात्म्य प्रगटित करन गिरिवर चिन्ह ल्खाय॥

### शंखके चिह्नका भाव

कबहुँ पिय को होइ नहिं विरह ज्वाल की ताप।  
नीर तत्व को चिन्ह पद यासों धारत आप॥

### भक्त-भंजूषा आदि ग्रन्थोंके अनुसार वर्णन

जब बेंडो अंगुष्ठ मध ऊपर सुख को छत्र।  
दच्छिन दिसि को फरहरै ध्वज ऊपर सुख तत्र॥  
पुनि पताक ताके तले कल्पलता की रेख।  
जो ऊपर दिसि को बढ़ी देत सकल फल लेख॥  
ऊरध रेखा कमल पुनि चक्र आदि अति स्वच्छ।  
दच्छिन श्री हरि के चरन इतने चिन्ह प्रतच्छ॥  
श्री राधा के बाम पद अष्ट पत्रको पद।  
पुनि कनिष्ठिका के तले चक्र चिन्ह को सद्ग॥  
अग्र श्रुंग अंकुस करौ ताही के ढिग ध्यान।  
नीचे सुख को अर्ध ससि एड़ी मध्य प्रसान॥  
ताके ढिग है बलय को चिन्ह परम सुख-मूल।  
दच्छिन पद के चिन्ह अब सुनहु हरन भव-सूल॥  
संख रह्यौ अंगुष्ठ मैं ताको सुख अति हीन।  
चार अङ्गुरियन के तले गिरिवर चिन्ह नवीन॥  
ऊपर सिर सब अंग-जुत रथ है ताके पास।  
दच्छिन दिसि ताके गदा बाँप सक्ति विलास॥

एड़ी पैं ताके तले ऊपर सुख को मीन  
चरन-चिन्ह तेहि भाँति श्री राधा-पद लखि लीन॥

### दूसरे मतसे श्रीस्वामिनीजीके चरण-चिन्ह

बाम चरन अंगुष्ठ तल जब को चिन्ह ल्खाह।  
अर्ध चरन लौं धूमि कै ऊरध रेखा जाह॥  
चरन-मध्य ध्वज अब्ज है पुष्प-लता पुनि सोह।  
पुनि कनिष्ठिका के तले अंकुस नासन मोह॥  
चक्र मूल में चिन्ह द्वै कंकन है अरु छत्र।  
एड़ी में पुनि अर्ध ससि सुनो अदै अन्यत्र॥  
एड़ी में सुभ सैल अरु स्यंदन ऊपर राज।  
सक्ति गदा दोउ ओर दर अङ्गुठा मूल विराज॥  
कनिष्ठिका अङ्गुरी तले वेदी सुंदर जाम।  
कुण्डल है ताके तले दच्छिन पद पहिचान॥  
तुलसी-शब्दार्थ-प्रकाशके मतानुसार युगलस्वरूपके चरण-चिन्ह

### छप्पय

ऊरध रेखा छत्र चक्र जब कमल ध्वजावर।  
अंकुस कुलिस सुचारि सथीये चारि जंबुधर॥  
अष्टकोन दस एक लछन दहिने पग जानौ।  
बाम पाद आकास शंखवर धनुष पिछानौ॥  
गोपद त्रिकोन घट चारि ससि मीन आठ ए चिन्हवर।  
श्रीराधा-रमन उदार पद ध्यान सकल कल्यानकर॥  
पुष्प लता जब बलय ध्वजा ऊरध रेखा वर।  
छत्र चक्र विधु कलस चारु अंकुस दहिने धर॥  
कुण्डल वेदी संख गदा वरछी रथ मीना।  
बाम चरन के चिह्न ससि ए कहत प्रवीन॥  
ऐसे सत्रह चिह्न-जुत राधा-पद बंदत अमर।  
सुगिरत अघहर अंनघवर नंद-सुजन आनंदकर॥

### गर्भसंहिताके मतानुसार चरण-चिन्ह

चक्रांकुस जब छत्र ध्वज स्वस्तिक विदु नवीन।  
अष्टकोन पवि कमल तिल संख कुंभ पुनि मीन॥  
उरध रेखा त्रिकोन धनु गोखुर आधो चंद।  
ए उनीसु भुम चिन्ह निज चरन धरत नैदनंद॥

### अन्य मतानुसार श्रीमतीजीके चरण-चिन्ह

केतु छत्र स्यंदन कमल ऊरध रेखा चक्र।  
अर्ध-चंद्र कुस विन्दु गिरि-संख सक्ति अति वक॥  
लोनी लता लवंग की गदा विन्दु द्वै जान।  
सिंहासन पाठीन पुनि सोभित चरन विमान॥

ए अष्टादस चिह्न श्री राधा-पद में जान ।  
जा कहूँ गावत रैन दिन अष्टादसौ पुरान ॥  
जग्य श्रुता को चिह्न है काहू के मत सोइ ।  
पुनि लक्ष्मी को चिह्नहू मानत हरिपद कोइ ॥  
श्रीराधा-पद मोर को चिह्न कहत कोउ संत ।  
द्वै फल की बरछी कोऊ मानत पद कुस अंत ॥

श्रीमद्भागवतके अनेक टीकाकारोंके मतानुसार श्रीचरण-चिह्न  
लाँबो प्रसु को श्री चरन चौदह अंगुल जान ।  
घट अंगुल विस्तार मैं याको अहै प्रमान ॥  
दच्छिन पद के मध्य मैं ध्यजा-चिह्न सुभ जान ।  
अंगुरी नीचे पद्म है, पवि दच्छिन दिसि जान ॥  
अंकुस वाके अग्र है, जव अँगुष्ठ के मूल ।  
स्वस्तिक काहू ठौर है हरन भक्त-जन-खूल ॥  
तल सौं जहू लैं मध्यमा सोभित ऊरध रेख ।  
ऊरध गति तेहि देत है जो वाको लखि लेख ॥  
आठ अंगुल तजि अग्र सौं तर्जनि अँगुठा बीच ।  
अष्टकोन को चिह्न लखि सुभ गति पावत नीच ॥  
बाम चरन मैं अग्र सौं तजि कै अंगुल चार ।  
विना प्रतंचा को धनुष सोभित अतिहि उदार ॥  
मध्य चरन त्रैकोन है अमृत कलस कहुँ देख ।  
द्वै मंडल को विंदु नम चिह्न अग्र पै लेख ॥  
अर्ध चंद्र त्रैकोन के नीचे परत लखाय ।  
गो-पद नीके धनुष के तीरथ को समुदाय ॥  
एङ्गी पै पाटीन है दोउ पद जंबू-रेख ।  
दच्छिन पद अंगुष्ठ मधि चक्र चिह्न कौं लेख ॥  
छत्र चिह्न ताके तले सोभित अतिहि पुनीत ।  
बाम अँगुठा संख है यह चिह्नन की रीत ॥  
जहूं पूरन प्रागव्य तहूं उत्क्रिस परत लखाइ ।  
अंस कला मैं एक द्वै तीन कहुँ दरसाइ ॥  
बाल-बोधिनी तोपिनी चक्रवर्तिनी जान ।  
वैष्णव-जन-आनंदिनी तिनको यहै प्रमान ॥  
चरन-चिह्न निज ग्रंथ मैं यही लिख्यौ हरिसाय ।  
विष्णु पुरान प्रमान पुनि पद्म-वचन कौं पाय ॥  
स्कंद-भस्त्र के वाक्य सौं याको अहै प्रमान ।  
एयगीव की संहिता वाहू मैं यह जान ॥

श्रीराधिकासहस्रनामके मतानुसार चरण-चिह्न

कमल गुलब अटा सु-रथ कुंडल कुंजर छव ।  
कूल माल अरु वीजुरी दंड मुकुट पुनि तव ॥  
पूरन संसि को चिन्ह है बहुरि ओढ़नी जान ।  
नारदीय के बचन को जानहु लिखित प्रमान ॥

### भगवान् श्रीसीतारामचन्द्रजीके चरण-चिह्न

स्वस्तिक ऊरध रेख कोन अठ श्रीहल-मूसल ।  
अहि वाणांवर बज्र सुरथ जव कंज अष्टदल ॥  
कल्पवृक्ष ध्वज चक्र मुकुट अंकुस सिंहासन ।  
छत्र चैवर जम-दंड माल जव की नर को तन ॥  
चौबीस चिन्ह ये राम-पद प्रथम सुलच्छन जानिए ।  
‘हरिचंद’ सोइ सिय बाम पद जानि ध्यान उर आनिए ॥  
सरजू गोपद महि जम्बू घट जव पताक दर ।  
गदा अर्ध ससि तिल त्रिकोन पटकोन जीव वर ॥  
शक्ति सुधा सर चिवलि मीन पूरन ससि वीना ।  
बंसी धनु पुनि हंस तून चन्द्रिका नवीना ॥  
श्री राम-बाम पदचिन्ह सुभ ए चौविस सिव उक्त सब ।  
सोइ जनकनंदिनी दच्छ पद भजु सब तजु ‘हरिचंद’ अव ॥

रसिकनके हित ये कहै चरनचिन्ह सब गाय ।  
मति देखै यहि और कोउ करियो वही उपाय ॥  
चरन-चिन्ह ब्रजराय के जो गावहि मन लाय ।  
सो निहचै भव-सिंधुकों गोपद सम करि जाय ॥  
लोकबेद-कुल-धर्म बल सब प्रकार अति हीन ।  
पै पद-बल ब्रजराज के परम दिर्गाई कीन ॥  
यह माला पद-चिन्ह की गुही अमोलक रत्न ।  
निज सुकंठ मैं धारियो अहो रसिक करि जल ॥  
भटक्यौ बहु विधि जग विपिन मिल्यौ न कहुँ विश्राम ।  
अब आनंदित है रखौ पाइ चरन धनस्याम ॥  
दोऊ हाथ उठाइ कै कहत पुकारि पुकारि ।  
जो अपनो चाहौ भलै तौ भजि लेहु मुरारि ।  
सुत तिय गृह धन राज्य हू या नै सुख कछु नाहिं ।  
परमानंद प्रकास इक बृष्ण-चरन के माहि ॥  
मोरै मुख घर और सौं तोरै भव के जाल ।  
छोरै सब साधन सुनौ भजौ एक नँदलाल ॥  
अहो नाथ ब्रजनाथ जू कित त्यागौ मिज दास ।  
येगाहि दरसन दीजिये वर्य जात सब सौस ॥

## भक्त सत्यनारायण

( जन्म-सं० १९४१ वि० माघ शुक्ल ३, ब्रजमापाके सफल कवि )

( १ )

माधव, अब न अधिक तरसैए ।

जैसी करत सदा सों आये, वही दया दरसैए ॥  
मानि केंडु हम कूर कुढ़गी, कपटी कुटिल गँवार ।  
कैसे असरन सरन कहौ तुम, जन के तारनहार ॥  
तुम्हरे अश्वत तीनतेरह यह, देस-दसा दरसावै ।  
पै तुम को यहि जनम धेर की, तनकहुँ लाज न आवै ॥  
आरत तुम हि पुकारत हम सब, सुनत न त्रिभुवनराई ।  
अङ्गुरी डारि कान में वैठे, धरि ऐसी निदुराई ॥  
अजहुँ प्रार्थना यही आप सों, अपनों विरुद सँवारै ।  
'सत्य' दीन दुखियन की विपदा, आतुर आइ निवारै ॥

( २ )

अब न सतावै ।

करुनाधन इन नयनन सों, द्वै बुँदियाँ तौ टपकावै ॥  
सारे जग सों अधिक कियौ का, हमने ऐसो पाप ।  
नित नव दई निर्दई बनि जो, देत हमैं संताप ॥  
साँची तुमीं सुनावत जो हम, चौंकत सकल समाज ।  
अपनी जाँध उधारैं उघरति, बस, अपनी ही लाज ॥  
तुम आछे, हम बुरे सही, बस, हमरो ही अपराध ।  
करनो हो सो अजहुँ कीजै, लीजै पुन्य अगाध ॥  
होरी-सी जातीय प्रेम यह फँकि न धूरि उड़ावै ।  
झुग कर जोरि यही 'सत' माँगत, अलग न और लगावै ॥

( ३ )

बस, अब नहिं जाति सही ।

विपुल वेदना विविध भाँति, जो तन-मन व्यापि रही ॥  
कबलौं सहैं अवधि सहिवे की, कछु तौ निश्चित कीजै ।  
दीनबंधु यह दीन दसा लखि, क्यों नहिं हृदय पसीजै ॥  
बारन दुखटारन, तारन मैं प्रभु, तुम बार न लाये ।  
फिर क्यों करुना करत स्वजन पै करुनानिधि अलसाये ॥  
यदि जो कर्म जातना भोगत, तुम्हरे हूँ अनुगामी ।  
तौ करि कृपा बतायो चहियतु; तुम काहै को स्वामी ॥  
अथवा विरुद बानि अपनी कछु, कै तुमने तजि दीर्नै ।  
या कारन हम सम अनाथ की, नाथ न जो सुधि लीर्नै ॥  
वेद बदत गावत पुरान सब, तुम भय-ताप न सावत ।  
सरनागत की पीर तनकहुँ, तुम्हैं तीर सम लगत ॥  
हम से सरनापञ्च दुखी की, जाने क्यों विसरायै ।  
सरनागत बत्सल 'सत' यों ही, कोरो नाम धरायै ॥

( ४ )

हे धनस्याम, कहौं धनस्याम !

रज मँडराति चरन रज कित सों, सीस धरैं अठजाम ॥  
स्वेत पटल लै धन कहैं त्यागी सुरभी सुखद ललाम ।  
मोरनि धोर सोर चहुँ सुनियत, मोर मुकुट किहि ठाम ॥  
गरेजत पुनि-पुनि, कहौं बतावौ सुरली मृदु सुरधाम ।  
तड़पावत है तड़ितहि, छिन-छिन, पीताम्बर नहिं नाम ॥

## महंत श्रीराधिकादासजी

( निम्बार्क सम्प्रदायके महात्मा )

स्वधर्मनिष्ठाका स्थान जीवनके सभी उद्देश्यों तथा  
कार्योंमें प्रधान होना चाहिये ।

श्रीहरि तथा गुरुकी आज्ञा और उपदेशोंपर दृढ़ विश्वासे ही  
हमारे कल्याणका सुगम मार्ग है ।

प्रत्येक मनुष्यको ब्राह्मसुर्तमें अपने इष्टेवका ध्यान,  
भजन, जप स्वधर्मनिष्ठाके साथ करना चाहिये ।

प्रत्येक गृहस्थ एवं विरक्तको अपनी दैनिक दिनचर्यामें से  
कुछ सभय भगवत्-चिन्तनमें अवश्य लगाना चाहिये । ऐसा  
करनेसे आत्मविकास होता है ।

भगवत्-आश्रमके साथ सत्-शास्त्रोंका अध्ययन बहुत

आवश्यक है । ज्ञान-प्राप्तिके इच्छुकोंको स्वाध्याय करना  
चाहिये ।

परोपकार, सेवा, नम्र व्यवहारवाले मनुष्य भगवान्के  
प्रियजन हैं, ऐसा समझकर उपर्युक्त वातोंको अपने जीवनमें  
सभीको नित्य अपनाना चाहिये ।

प्राणिमात्र भगवान्के हैं, ऐसा जानकर सभीसे प्रेम  
करना चाहिये । रागदेपकी भावना कभी मनमें नहीं लानी  
चाहिये ।

देश-काल-मर्यादानुसार स्वधर्मचरण करते हुए सभीको  
सबका हित साधन करनेमें तत्पर रहना चाहिये ।

## ( वृन्दावनवासी ) सुप्रसिद्ध महात्मा श्रीरामकृष्णदासजी

[ जन्म-स्थान जयपुर, वि० सं० १९१४ के भाद्रपदमें जन्म, वृन्दावनवासी सिद्ध महाराम, देहावतान आधिन कृष्ण ४ संवत् १९९७ वि० । ]

( प्रेषक-भक्त श्रीरामशरणदासजी पिल्लुबा )

१-भगवान्का भजन ही सार है, शेष तो सब यों ही मरते रहते हैं। यह मनुष्यदेह बड़ी मुश्किलें मिलती हैं फिर भी यदि हमने भजन नहीं किया तो क्या किया ? भजन करते कोई मर भी जायगा तो भी अच्छा है। एक बार श्रीच्यासजी महाराजने श्रीनारदजीसे पूछा था कि 'महाराज ! यदि कोई भजन करता हुआ मर जाय तो उसका क्या होगा ?' श्रीनारदजी महाराजने कहा कि 'जिस प्रकार कोई चटनी खाता हो तो वह चटनी खानेवाला जहाँपर भी जायगा, वहाँपर वह चटनी खानेकी इच्छा करेगा। इसी प्रकार भजन करते-करते जो मर जायगा, वह अगले जन्ममें भी भजन करेगा। क्या तुम यह नहीं देखते कि बड़े-बड़े घरानेके छोटे-छोटे लड़के घरको छोड़कर भजन करनेके लिये साधु होने आते हैं ? यदि इन्हें भजन करनेका चस्का पहलेसे न लगा हुआ होता तो भला इतनी छोटी आयुमें घर छोड़कर कैसे चले आते ?

२-अब अनुष्टान तो होते ही नहीं हैं। पहले हमारे सामने बहुत अनुष्टान हुआ करते थे। अब तो नामका ही सहारा है। देख लो, श्रीवृन्दावनमें अभीतक कहीं कीर्तन होता है तो कहीं रास होता है, कहीं मन्दिरोंमें दर्शन होते हैं। कुछ-न-कुछ होता ही रहता है। फिर भी पहले-जैसा नहीं होता। सब नामकी महिमा है, वह कहीं जाती थोड़े ही है। श्रीअयोध्याजीमें भी श्रीरामजीका कीर्तन-दर्शन ल्यू होता है। और जगह तो बहुत नासिकता आ गयी है।

३-प्रश्न-महाराजजी ! कुछ उपदेश कीजिये !

उत्तर-वरको छोड़कर भजन करो या फिर घरवालोंको भी भजनमें लगाओ। यही उपदेश है और क्या उपदेश है ? भजन करो यह मनुष्यदेह बच्चे पैदा करनेको या लाने-सोनेको नहीं मिली है। वह तो वस, भजन करनेके लिये मिली है, इसलिये भजन करो।

## भक्त श्रीराधिकादासजी ( पं० रामप्रसादजी ) ( चिङ्गावानिवासी )

( जन्म-स्थान चिङ्गावा, जयपुर, जन्म माघ कृष्ण १९३३ वि०, पिताका नाम श्रीलक्ष्मीरामजी मिश्र, देहावतान श्रावण शुक्ल श्रोदशी सं० १९८९, वृन्दावनके भेमी वृन्दावनवासी संत )

त्वमेव द्वौहि प्राक् स्वजनपरिवारादि निस्तिलं  
त्वथा दृष्टं क्वादी जनकजननीत्वादिकपदम् ।  
विहायातः सर्वं भज हरिमदी वाब्द्वसि पदं  
यदि त्वं वा याम्यैः सभयमसि दण्डैरयि मनः ॥

तू ही कह, पहले जो स्वजनपरिवारादि तूने देखे थे उनमें कितने रहे हैं ? जिनमें तू पिता-माता आदिका भाव करता था वे सब कहाँ हैं ? इसलिये ( वे सब नहीं रहे तो वे भी नहीं रहेंगे ) ऐसा विचार कर। यदि उस भगवद्वाम-प्राप्तिकी इच्छा करता है अथवा यमराजके दण्डसे डरता है तो शीहरिको भज।

नरदेहमिदं बहुसाधनकं यद्याप्य सन्दिग्धदम्बककः ।  
पशुदेहमगेहवनस्थितिकं प्रतिपथं करिष्यासि किं भजनम् ॥

रे मन ! नाना प्रकारके साधनोंसे सम्बन्ध इस नर-शरीरको प्राप्त करके भी जो तेरे हृदयके नेत्रोंमें निद्रा छायी हुई है तो क्या पशु-शरीरको पाकर भजन करेगा ?

जो मन-मंदिर-अंदर मैं न कहूँ हरिरूपवद्याद्युषि लाई ।  
जो न कहूँ ब्रज-वीथिन की श्रुतिमृग्य अहो ! रज सीस चढ़ाई ॥  
जो हरिदासन के न उपासक है मन सौं तजि मान बड़ाई ।  
दास 'प्रसाद' वृथा तिन की जननी जनि कै निज कोख लजाई ॥

## ठां श्रीअभयरामजी ब्रजवासी

धन-धन बृंदावन के सोर ।

कुंजन ऊपर नृथ करत हैं, जिन को देलैं नंदकिसोर ॥

जिन की बोली लगौ सुहाई, कूँकै निसन्दिन हरि की ओर ।

'अभयराम' येहू बड़मारी, इन के दरसन कीजै भोर ॥

धन-धन बृंदावन की चैंटी ।

महाप्रसाद को कनिका लैकै, जाय विलै मैं बैठी ॥

है गयो ध्यान ध्यान हिरदै मैं, व्याधि जनम की मेटी ।

'अभयराम' येहू बड़मार्गि न रज मैं रहैं लोटी ॥

## महात्मा श्रीईश्वरदासजी

जाल टलै मन कर्म गलै, निरमल धावै देह ।

भाग हुवै तो भागवत, साँभलजे श्रवणे ह ॥

जो जागै तो राम जप, सुवै तो राम सँभार ।

ऊठत वैटत आतमाँ, चलताँ ही राम चितार ॥

हर हर करतो हरख कर, आलस मकरै अयाण ।

जिण पाँणी सूँ पिंड रच पवन विलगो प्रार्ण ॥

नारायण न विसार जै, लीजै नित प्रत नाम ।

लोभी जै मिनखा-जनम, कीजै उत्तम काम ॥

राम सँजीवन-मंत्र रठ, वयणाँ राम विचार ।

श्रवणाँ हर गुण संभलै, नैणाँ राम निहार ॥

नारायण रै नाम सूँ, प्राणी कर लै प्रीत ।

ओष्ठ वणियाँ आतमा, चत्रभुज आसी चीत ॥

सरब रसायन मैं रसी, हर रस समी न काय ।

दुक अंतर मैं भेलियाँ, सब तन कंचन थाय ॥

## स्वामी श्रीयोगेश्वरानन्दजी सरस्वती

(प्रेषक—श्रीसूरजमलजी ईसरका )

जाग्रत्, स्वम, सुधुसि इत्यादि समस्त अवस्थाओंमें  
शारीरत्रयसे अत्यन्त विलक्षण, केवल शुद्ध ज्ञान ज्योतिर्मय,  
सर्वानुभूः ( सबका अनुभव करनेवाला ) और अज्ञानादि  
समस्त अवस्थाओंका अन्तर्यामी साक्षी, कूटस्थ, सुख्य,  
ब्रह्मस्वरूप आत्मा है । शून्यवादियोंसे अत्यन्त विलक्षण और  
विपरीत अनुभव ब्रह्म और आत्माके विषयमें ब्रह्मात्मानुभवी

जीवन्मुक्तका है । आत्मा और परमात्माके विषयका उपर्युक्त  
सिद्धान्त जीवन्मुक्तोंका स्वानुभविक है । इस गम्भीर और  
सूक्ष्म रहस्यको जाननेमें असमर्थ अज्ञानियोंने पुत्रात्मवादसे  
लेकर शून्यवादपर्यन्त नाना प्रकारके वाद-विवाद और तर्क-  
वितकोंमें ग्रस्त होकर आत्माके नाना स्वरूपोंका प्रतिगादन  
किया है ।

## स्वामीजी श्रीपरिव्राटजी ( जोधपुर-प्रान्तवासी )

(प्रेषक—व्यास श्रीउद्देशरामजी इयामलाल )

क्या मन चकरायो पाई नर देह तजी नहीं नीचता ॥टेर॥

गरीब होवे तो ललचावे, पैसेवाले भी पछतावे,

कोई तरह से जक नहीं पावे ।

नावा दौड़ मचावै, मन मंगत सब ही का दीखे,

लाव लाव सब गावे ॥

मोघासाएँ मन में राखे, भूख मिटे नहिं सब कुछ चाखे,

सेवी करे ऊचपण भाखे ।

योथी करे बडाई; लोभ मोह में ढुँख पावे,

पिण तो भी मूँछ चढाई ॥

१—मनके संकल्प-विकल्प । २—हे जीवात्मा । ३—मत कर । ४—जिसने पानीसे इस पिंडको रच पवनके साथ प्राणोंका सम्बन्ध

तोड़ रखा है ।

कोई की शिक्षा नाहि भाने, उलटी तान आपरी ताने,  
मैं हूँ समझदार इम जाने ।

हरदम सब की निन्दा करता, धड़ा पाप का हरदम भरता,  
जम से भी नहिं डरता ॥

करी कमाई नरतन पाया, पूँजी खो पीछे पछताया,  
आछी करणी कर नहिं पायो ।

अन्त समय में रोवे, कहे परिव्राट भजो भगवतने,  
बृथा उम्र मत सोयो ॥

### भजन

किया क्या तुम ने आकर के अगर सोचो तो साची है ।  
किया सिणगार काया का मगर काया तो काची है ॥ टेक ॥  
मिले हैं जो लिखा तेरे, छोड़ छठी करे हरदम ।  
करम के केर में पढ़कर छोड़ दी बात आछी है ॥  
फँसा है कर्म के फल में, कर्म भी नहि वने तुक्ष से ।  
विषय के झोंक में फँसकर अकर्मी बात जाची है ॥  
है थोड़े काल का जीना, श्वास आये या नहि आये ।  
आज अह काल करने में, रचेगी क्या यह राची है ॥  
शरण ले जाय श्रीहरि की, छोड़ अहंकार निज मन का ।  
रहेगा केर पछितावा, कहै शिव भौत नाची है ॥

थारो भरोसो भारी, भारा समरथ थारो भरोसो भारी ।  
मैं हूँ शरण तुम्हारी ॥ टेक  
मैं हूँ अनाश, नाथ मारो दू है, भूले मत त्रिपुरारी ।  
दीन दयाल दया विन करियो, फुरकेला आँख तुमारी ॥  
कोई सबल तपस्या कीनी, बरपाये बहु भारी ।  
बासूँ रीक्ष मुझे मत विसरे, छोटा भक्त उधारी ॥  
पाप पुण्य को लेलो नाहीं, मैं हूँ भिजाजी भारी ।  
ऐसी गलती देख हमारी, होना मत प्रभु आरी ॥  
तारण आप, हूँता मैं हूँ, पकड़ो बाँह हमारी ।  
कहै शिव-शंकर धणी उत्तरो, त्राहि त्राहि भयहारी ॥  
थारो भरोसो भारी ॥

### अवधूत श्रीकेशवानन्दजी

[ शान—युमडुटी ( रत्नमंड ) ]

( प्रेषक—श्रीगोपीवल्लभजी उपाध्याय )

काहे को सोच रहा रे भूख भर,  
काहे को सोच रहा रे ॥ टेक ॥  
कीरी कुंजर सब को देत है  
जिन के नहि व्यापार रे ।  
पशु अनेक को घास दिये हैं,  
कीट-पतंग को सर रे ॥

अजगर के तो खेत नहीं है, मीन के नहीं गौरा रे ।  
हंसन के तो बनिज नहीं है, चुगते मोती न्यारा रे ॥  
जिन के नाम है विष्णु, विश्वभर, उनको क्यों न सँभारा रे ।  
छोड़ दे काम-क्रोध, मद-ममता, मान ले कहा हमारा रे ॥  
भाग लिखा है उतना पइहै, यही केशवानंद विचारा रे ॥  
सत्संग वदरिया बरसे, होन लगी प्रेम कमाई हो राम ॥ टेक ॥  
सम दम बैल विक्रेक हराई, तनुमध खेत चलाई हो राम ।  
जोत जोत के कियो है निरमल, धर्म के दीज बोवाई हो राम ॥  
ऊग गयी बैल निशी-दिन बाढ़े, सत के टेका दिवाई हो राम ।  
श्रद्धा बसंत फुलेला बहुरंग, शान के फल लगवाई हो राम ॥  
पकि गये फल तपित हो गये दिल, मन से बासना उठाई हो राम ॥  
जरि गये कर्म खुटि गये बीजा-तीनों लोक की चाह मिटाई हो राम ॥  
कहत केशवानंद, पायो है आनंद, ऐसी सत्संग महिमा हो राम ।  
भाग विना नहीं सिल्लती सत्संग, जिन की पूरब कमाई हो राम ॥



### आत्मज्योति ( गजल )

घटहि मैं ढूँढ ले प्यारे ये  
बाहर क्या भटकता है  
अखंड है ज्योति जिस मणि की,  
हमेशा वो दमकता है  
जले विन तेल बाती के,  
पवन से नहि वह बुझता है

पाई जिन के सहरे से, वो सूरज भी चमकता है  
हुए तमनाश जब घट का, जहाँ पर दीप जरता है  
विरोधी ज्ञान बाहर के, न अंतर वृत्ति भरता है  
मिटे अज्ञान से मूल, कार्य तूल मैं होता है  
जरे 'संचित' तथा 'क्रियमाण', एक ग्राव्य रहता है  
खुटे प्रारब्ध फूटे घट, तबहि महाकाश मिलता है  
कहे 'केशव' लखे जब ही, गुरु की शरण बसता है

### गुरु-शरणगति ( होली )

विना शान सुकि नहिं होई, लाख उपाय करो नर कोई ॥ टेक  
तन सुखाय के मिजरा कियो है, नख सिख जटा बँधाई ।  
थब को त्याग फलहार कियो है, तो भी न चाह उठाई ।  
बृथा सब उमर है खोई ॥

जपर से बहु ल्याग कियो है, भीतर आश लगाई ।  
आँखें मौद ध्यान धर बैठे, भार के आग कमाई ॥

देखो ऐसे मूरख लोई ॥

घर के माँहि अँधार रहत है, कोटि न करे उपाई ।  
विन प्रकाश के तम नहि नसि है, चाहे दंड से भारि भगाई ।

देखो ऐसे भ्रम के खोई ॥

मल, विशेष दूर सब करके, गुरु शरण जो आई ।  
‘अहं ब्रह्म’ केशव ने लख्यो है, ताही से तम है नसाई ।

कहे केशवानंद जगोई ॥

### अस्तर संसार ( दादरा )

समझ मन सपने को संसार ॥ टेक ॥  
उपने माँहि बहुत सुख पायो, राजापाट परिवार ।  
जाग पड़ा तब लाव न लङ्कर, ज्यों का ल्यों निरुआर ॥  
मात, तात, भ्राता, सुत, बनिता, मिथ्या सर्व विकार ।  
कर सलंग जान जब जायो, नहि कोई म्हारो न थार ॥  
चमक चाम को देखि न भूलो, यह सब माया असार ।  
छुटते ही स्वास सब विलर जायेंगे, ज्यों मनके का तार ॥  
कर निष्काम प्रेम भक्ति को, जो चाहो भवपार ।  
सत्य धर्म को कबहुँ न त्यागो, केशवानंद निरधार ॥

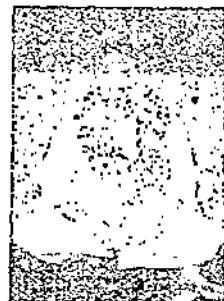
## संत जयनारायणजी बहाराज

[ जन्म-स्थान—आगर ( मालवा प्रान्त ) । समाधिस्थान—धौसवास ]

( श्रेष्ठ—श्रीगोपीवल्लभजी उपाध्याय )

जिस प्रकार मध्याह्नकालकी तपी हुई  
रेतीमें पढ़े हुए घृतको पीछा उठा लेनेके लिये  
कोई बुद्धिमान् पुरुष समर्थ नहीं होता, उसी  
प्रकार मनुष्य-शरीरका नाश ही जनेपर फिर  
उसकी प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है । मनुष्य-  
शरीरके सिवा अन्य सर्व ऊँच-नीच शरीरों  
की प्राप्ति दुर्लभ नहीं है । जिन स्त्री-  
पुत्रादिके लिये अधिकारी मनुष्य-शरीरको बृथा न ए  
करता है, उन स्त्री-पुत्रादिकी प्राप्ति भी कुछ दुर्लभ नहीं  
है । वह तो स्वर्ग-नरक तथा चौरासी लक्ष योनियोंमें जहाँ-  
तहाँ शरीरके समान ही सब विना प्रयत्नके आज्ञानुसार हो  
जाती है ।

यह अधिकारी शरीर एक बार प्राप्त होकर फिर प्राप्त  
होना महाकठिन है । इस भरतवर्षांडमें जो जीव मनुष्य-शरीर  
पाकर पुण्यकर्म करता है, वह स्वर्गादि उत्तम लोकोंको प्राप्त  
होता है और जो पाप करता है, वह नरकको प्राप्त होता है ।  
और जो दोनों ओरसे लक्ष्य हटाकर ब्रह्मविद्या प्राप्त करते



हुए आत्मसाक्षात्कार कर लेता है, वह  
सदाके लिये मुक्त हो जाता है । इसलिये  
मनुष्यका सर्वोत्तम कर्तव्य है कि वह मनुष्य-  
जन्म पाकर आत्मसाक्षात्कार करके जीवन  
सफल करे ।

X X X

जो अधिकारी पुरुष मनुष्य-शरीर पाकर आत्मसाक्षात्कार  
नहीं कर पाता, उसकी महान् हानि होती है । श्रुतिमें कहा है—  
इह चेद्वेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहवेदीन्महत्ती विनष्टिः ।

अर्थात् जो अधिकारी पुरुष शरीरको पाकर आनन्द-  
स्वरूप आत्माको नहीं पहचानता, वह अशानी पुरुष  
जन्म-मरणादि अनेक दुःख पाता है तथा जो आनन्द-  
स्वरूप आत्माको जानता है, वह मोक्षरूप अमृत-  
को पाता है । यह मोक्ष आत्मज्ञान विना नहीं होता ।  
श्रुतिमें कहा है—‘ऋते ज्ञानान् मुक्तिः प्राप्य  
विद्यतेऽयनाय’ अर्थात् आत्मज्ञानके विना कभी मुक्ति नहीं  
होती । इसके सिवा मुक्तिके लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं  
है । एक आत्मज्ञान ही मोक्ष-प्राप्तिका परम मार्ग है ।

## परमहंस अवधूत श्रीगुप्तानन्दजी महाराज

[ स्थान—विष्णुपुरी [ मालवा प्रान्त ]

( प्रेषक—श्रीगोपीवल्लभजी उपाध्याय )

मत पढ़ रे भरम के कूप रूप लब अपनाः  
अजी एजी, मनुष-तन तूँने पाथा है ।  
कर देखो तत्त्व-विचार कौन तूँ कहोंसे आया है ॥ टेक ॥  
यह तन धन संचा जानि खेल में लागा,  
अजी एजी, विसरि गया अपनी सुधि तारी ।  
खान-पान में लग्या, विषयों की बढ़ गई बीमारी ॥  
इस चमक चाम के देखि फिरत है फूल्या,  
अजी एजी, कुफर के पलड़े में झुल्या ।  
बकने लग्या तुफान, जमा सब अपनी को भूल्या ॥

**रामनाम ( कव्वाली )**

शुभकर्म करो निष्कास, राम भजि उतरो भवपारा ॥ टेक ॥  
जिनों ने सुमिरा हरि का नाम, उन्हों के सब सिध हो गये काम ।  
लगी नहिं कौड़ी एक छदम, छूटि गया सभी कर्म का गारा ॥  
जगत में पारी तिरे अनेक, लेकर रामनाम की टेक ।  
जिनों ने नहिं धारा कोई भेद, नाम नौका चढ़ि उतरे धारा ॥  
राम सब के माँही रमता, समा कर सब माँही समता ।  
जब भाव उदय हो समता, अपने स्थित में करो विचारा ॥  
गुप्त प्रकट में एकहि जान, सीख ले गुप्तगुरु से ज्ञान ।  
अब तो मत रख तूँ अज्ञान, सानमद तजि दो सभी विकास ॥

**( २ ) तत्त्वज्ञान ( लावनी-रंगत ख्याल )**

काया मंदिर माँहि पियारे, आतम ज्योतिर्लिंग रहै ।  
मनीराम है तिरका पुजारी, तरह तरह के भोग धरे ॥ टेक ॥  
गौण पुजारी और आठ हैं, अर्थने अपने काज चले ।  
शब्द अरु स्पर्श रूप रस गंध को ले के हाजिर लड़े ।  
नौ तो पूजा करें ज्ञान से, मन, बुधि, वित, इहंकार मिले ।  
दस पुजारी हैं कर्मकाण्ड के, करते अपने कर्म भले ।  
सब मिलि पूजा करे हैं देव की, जन्म जन्म के पाप दहै ॥  
धूप-दीप हैं साधन सरे, अरु जितने पतरा पोथी ।  
निज आतम वित्तिरेक जो किरिया, और सभी जाने थोथी ।  
सत्-चित् आनंद तीन पुण्य भर्ति, निधय में बुद्धी सोती ।  
मन वाणी की गम्य नहीं जहँ, मंद होय सब ही जोती ।  
आप ख्ययं परकाश विराजे, नेति-नेति कर वेद कहै ॥

जोती सरूप है आप तुम्ही निर, किय जोती की आम करे ।  
अंतर वाहर तीन काल में, नवदी का गम्भान करे ।  
बुद्धी और अज्ञान में आके तुम्ही नव आभान करे ।  
'अहं त्रहा' यह विरती करके, तुम्ही आवश्य नाश करे ।  
सब तेरी चमक की दग्धक पड़ी, पवनक पानी गमी यहै ॥

गुप्त वरवट आप विराजे, तेरे तो भरयाद नहीं ।  
सादि-अनादि शब्द कहे दो, तेरे तो कोई आदि नहीं ।  
वेद शास्त्र में नाना संगड़, तुम में तो कोई वार नहीं ।  
माया, अविद्या, जीव ईश में, तुम्ह में कोई उपाधि नहीं ।  
काल का भय नहिं जरा भी तुम्ह में, काहे को विरया दुःख सहै ॥

**( ३ ) चेतावनी ( कव्वाली )**

सुनि ले मुसाफिर प्यारे, दो दिन का है यह डेरा ।  
करनी करो कोई ऐसी, पावे स्वरूप तेरा ॥ टेक ॥  
बोनी छुटे चौरासी, यम की छटे सब पाँसी ।  
पावे तुझे अविनाशी, होवे नहीं फिर फेरा ॥  
निष्कास कर्म को कीजे, भक्ती के रस को पीजे ।  
फिर ज्ञान-तिलक को लीजे, कहना करो अन्य मेरा ॥  
पाकर के अपना रूपा, हो जा भूपन का भूपा ।  
सो सब से अजव अनूपा, कछु दूर नहिं नेरा ॥  
यह ज्ञान लखो सुपाई, सुन लीजो बाबू भाई ।  
हम कहते हैं समझाई, छुटि जाय पाप का घेरा ॥

**( ४ ) रामनाम रस प्याला ( भजन )**

पीछे राम नाम, रस प्याला, तेरा मनुवा होय मतवाल ॥  
जो कोई पीवि युग युग जीवे, बृद्ध होय नहिं बाल ।  
चौरासी के बचे फेर ते, कटि जाय यम का जाल ॥  
इस प्याले के मोल न लागे, पकड़ हरी की माल ।  
जन्म जन्म के दाग छुटें सब, नेक रहे नहिं काल ॥  
सत्संगति में सौदा कर ले, वहाँ मिले सब हाल ।  
गुरु-वेद का शस्तर पकड़ो, तोड़ भरम का लाल ॥  
गुप्त ज्ञान का दीपक बालो, जब होवे उजियाल ।  
सब ही यत्त्रू भार गिराओ, कर पकड़ि ज्ञान का भाल ॥

# अवधूत, महाप्रभु बापजी श्रीनित्यानन्दजी महाराज

( प्रेषक—श्रीगोपीवड्डमजों उपाध्याय )

## शानीकी दृष्टि ( राग-महार )

मो राम कौन वडो घरवारी ।  
जा पर में सपनेहु दुख नाहीं,  
केवल सुख अति भारी ॥ [टेका]  
पिता हमारा धीरज कहिये,  
धमा भोर महतारी ।



शान्ति अर्ध-अंग सखि मोरी, विसरे नाहिं विसारी ॥  
सत्य हमारा परम मित्र है, वहिन दया सम वारी ।  
साधन सम्पन्न अनुज मोर भन, मया करी त्रिपुरारी ॥  
शत्र्या सकल भूमि लेटन को, वसन दिशा ददा धारी ।  
ज्ञानामृत भोजन रुचि रुचि कर्हैं, श्रीगुरु की बलिहारी ॥  
मम सम कुदुम्ब होय खिल जाके, वो जोगी अरु नारी ।  
वो योगी निर्मय नित्यानंद, भयमुत दुनियांदारी ॥

## अलौकिक व्यवहार

रमता जोगी आया नगर में, रमता जोगी आया ॥ [टेका]  
बेरंगी सो रंग में आया, क्या क्या नाच दिखाया ।  
तीनों गुण औं पंचभूत में, साहब हमें बताया ॥  
पॉच-पचीस को लेकर आया, चौदा भुवन समाया ।  
चौदा भुवन से खेले न्यारा, यह अचरज की माया ॥  
ब्रह्म निरंजन रूप गुरु को, यह हरिहर की माया ।  
हर घट में काया विच खेले, बनकर आतम राया ॥  
भाँत-भाँत के वेष धेरे वो, कहीं धूप कहीं छाया ।  
समझ सेन गुरु कहे नित्यानंद, खोज ले अपनी काया ॥

## प्रभुस्तरण

जा को नाम लिये दुख छीजे, जैसे पृथ्वी जल बरसन से ।  
रोम रोम सब भीजे, जा को नाम लिये दुख छीजे ॥ [टेका]  
नाम जिन का रथ्या ध्रुवजी, मात वचन सिर धर के ।  
पलभरउर से नहीं विसरयो, मर्द तिती को कहिजे ॥  
पॉच वरष की अल्प अवस्था, राजपाट सब तज के ।  
जाय बसे बन माँहि अकेले, यह राज अटल मोहि दीजे ॥  
ऐसी टेर जब सुनी श्रीहरि ने, आव दरस प्रभु दीने ।  
कहीं श्रीमुख से सुनहु ध्रुवजी, ये राज अटल तुम लीजे ॥

ऐसी हड़ भक्ति जो करते,  
तै जन जग को जीते ।  
कहत नित्यानंद यार चित्त सुन !  
अब ऐसा अमित रस पीजे ॥

## मङ्गल द्वादशी

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ कार रूपा चिति है सदा ॐ ।  
न भू उसे है सब का निदा न ॥  
मो दग्धि में प्राण अपान हो मो ।  
भ कि प्रिया के प्रिय हो चिदा भ ॥  
म ति प्रभावा वह है चिरा ग ।  
व शी बनो, शुद्ध करो स्वभा व ॥  
ते जो मयी में कुछ भी न हो ते ।  
वा ता भवार्ता, मय वासवा वा ॥  
सु धा चिति प्राण परा चिदा सु ।  
दे ती सभी वा कुछ भी नहीं दे ॥  
वा णी परा ॐ चिति भावना वा ।  
य श्रेष्ठ देवो सब को सदा य ॥

[ प्रत्येक पंक्तिका पहला और अन्तिम अक्षर लेनेसे (ॐ  
नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्र बन जाता है । ]

## अभिमान

किस पर करत गुमान रे मन, मान हमारी ॥ [टेका]  
हाड़ चाम का बना यह पींजरा, सकल पुरुष भज नारी ।  
तिस को तुम अपने कर मानों, यही भूल बड़ भारी ॥

बहे तू क्यों बिन वारी ॥

दो दिन की है चमक चाम की, सो तू लेहु विचारी ।  
बिन विचार कछु सार मिले ना, छाँड़ सकल चित यारी ॥

आप तू खुद गिरधारी ॥

दो दिन का है जीना जगत में, सो तू जाने अनारी ।  
भवसागर से तिरना होय तो, हो अतिशय हुशियारी ॥

तब ही होवे भव पारी ॥

इस में संशय मत मन राखो, यह सत्य भज ले वारी ।  
कहे अलमस्त नित्यानंद स्वामी, सो सुख है अति भारी ॥

कहीं तोसे में सारी ॥

## संत सुधाकर

(प्रेषक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा )

कान्हा तेरी बेणु बजे रस की,  
बेणु बजे रस की, मोहन तेरी बेणु बजे रस की ॥  
तेरी बेणु को नाद श्रवण कर,  
जागी प्यास दरस की ॥ कान्हा० ॥  
रैनदिना चित चैन गहत नहि,  
लागी लगान परस की ॥ कान्हा० ॥  
तू मेरो मैं तेरी 'सुधाकर'  
बतियाँ अरस-परस की ॥ कान्हा० ॥  
  
एक बार प्रिय आओ, जग को फेर दिपाओ ॥  
कान्हा मोहन इयाम मनोहर,  
गो-नवालन सुध लाओ ॥ एक० ॥  
भारत के उन्नत होने हित,  
गीता-र्मम सुनाओ ॥ एक० ॥  
ज्योति दिखा ब्रजभूमि-सुधाकर,  
सब का तमस हटाओ ॥  
एक बार प्रिय आओ, जग को फेर दिपाओ ॥  
  
लीलामय कान्ह को है अद्भुत स्वरूप विश्व  
कान्ह की चिचित्र छवि सारी जनताई है ।  
चन्द्र कान्ह, सूर्य कान्ह, ग्रह कान्ह, तारा कान्ह,  
कान्हमय लता-पता भूमि लहराई है ॥

सुधाकर करके विचार नीके देवि लेहु  
कान्ह तैं न न्यारी कोई वस्तु दृष्टि आई है ।  
कान्ह को भयो है जन्म कान्ह ही प्रमोद छायो  
कान्ह को ही देत कान्ह आनंद-वधाई है ॥

बने दुष्ट कानून रहे ना उच धर्म जहँ ।  
हो सुनीति का खून सुजन जन दंडित हों जहँ ॥  
जहँ न होय सन्मान सत्य का र्यादा का ।  
दुर्जन करैं बखान अमित उच्छृंखलता का ॥  
दिन-रात प्रजा की पीर जहँ न कुछ शान्ति-सुख छान दे ।  
राज-धर्मका लेश भी तहँ न सुधाकर जान ले ॥  
  
पूजा-पाठ यज्ञ-याग जप-होम भूलि बैठे,  
भूलि बैठे देश-धर्म-कर्म की कहानी को ।  
भूलि बैठे जाति-धर्म कुल-धर्म देश-धर्म,  
भूलि बैठे राज-धर्म वेद-शास्त्र वानी को ॥  
भला होगा कलि माँहि कैसे जग मानवोंका,  
भूलि बैठे प्रेमियों की प्रीति रस-सानी को ।  
सुधाकर एक आज अब तो उपर्य है यह,  
भाव धारै स्थामा-स्थाम जग-सुखदानी को ॥

## योगी गम्भीरनाथजी

(जन्म-स्थान—जन्म० (काश्मीर), गुरुका नाम—वाबा गोपालनाथजी गोरखपुरवाले, देहावसान—सन् १९१७ ई० २३ मार्च ।)

वास्तवमें अनेक रूपोंमें एक ही परमात्माका निवास है,  
उनमें भेद-हृषि नहीं रखनी चाहिये । यद्यपि रूप अनेक  
हैं तथापि उनमें सत्य एक ही है ।

भगवान्के नामपर भरोसा करना चाहिये । भगवन्नाम-  
से आपकी समस्त इच्छाओंकी पूर्ति हो जायगी ।

सदा सत्य बोलना चाहिये । छल-प्रपञ्चसे दूर रहना  
चाहिये । 'अहम्' में नहीं चिपकना चाहिये । दूसरोंको कभी  
धुरा-भला नहीं कहना चाहिये । समस्त धर्मों और मत-  
मतान्तरका आदर करना चाहिये । भिखारियों, दीन-दुक्षियों  
और असहायोंको वडे प्रेमसे भिक्षा देनी चाहिये और विचार  
करना चाहिये कि इस प्रकार हम ईश्वरकी ही पूजा कर  
रहे हैं ।

बीती बातोंको कभी नहीं सोचना चाहिये । जो कुछ  
हो गया वह बदला नहीं जा सकता । पीछे न देखकर  
आगे बढ़ते रहना चाहिये ।

यदि परमेश्वरसे कभी कुछ माँगनेकी आवश्यकता पड़े  
जाय तो सदा उनसे प्रेम-भक्तिकी ही याचना करनी चाहिये ।

अपने धर्म-ग्रन्थोंका अवलोकन करते रहना चाहिये ।  
इस दिशामें श्रीमद्भगवद्गीता पर्याप्ति है । समस्त देश और  
कालके लिये श्रीमद्भगवद्गीता एक अचूक पथ-ग्रदर्शक है ।

ईश्वरसे शून्य कुछ भी नहीं है, कण-कणमें वे परिव्याप्त  
हैं । सारे पदार्थ और रूप उन्हींके हैं ।

आध्यात्मिक क्षेत्रमें यह विचार करनेकी आवश्यकता  
होती है कि क्या सत् है और क्या असत् है; क्या नित्य है

और स्था अभिय है शामाल कश मूलम है और अनामा-  
का कश लक्षण है; मुस्ति कश है और कृत्तम स्था है, वृष्णनके  
लेने लौन हैं और उपरी नाशके लक्षण क्या हैं ? यथोत्तम  
जीव और जगत्के बीच वया सम्बन्ध है ? इत्यादि-दृत्यादि ।

दुलिकी हड्डा रखनेवालोंको विचारपूर्वक यह हृदयङ्गम  
कर लेनेकी आवश्यकता है कि विषय-चारानामोंको जितानी ही अवसर  
दिया जायगा। उत्तम ही वस्त्रन और उद्योगकी छुट्टि होती  
जायगी। भोगालामाला संकोच और तत्त्वान-चारानामाला  
विकास ही दुर्लिखिति और कृत्तर्यात्मानितिका प्रवास लोपन  
है। वासनालीन होकर विषय-भोग करनेवर लम्फी प्रकारसे

मनुष्यत्वकी होनी होती है और परमानन्द-प्राप्तिका पदः  
हो जाता है। इस बातका विचार करते-करते ही वैष्णव इ  
उठता है। हड्डीके साथ लागामर लिचकरके हाथा—परमाला  
हार पदार्थ है। उसके आर्तिरिक अस्त्र रसीं कुछ नहीं हैं।  
इस तत्त्वकी समझकेर परमोत्तमकी साथ सजीद लम्फन सा  
करना होगा। उसके बाद अस्ते लिचकरका विचार क  
कर्म, उत्तमता, नाम, ज्ञान इत्यादि विषय-वाप्तमानों  
से कौन-ला भागी अपने लिये सहज ही परमामाले के साथलग  
विशेष अनुकूल होगा; इसका निर्णय करके ऐकानेत्रक पुरुष  
के साथ उसी पदवर अग्रवर होनेकी आवश्यकता है।

### श्रीकृष्णनन्दजी महाराज (संकल्पाथजी)

[जन्म—वि० सं० १८४८ नवदुरुश गाँव (लोकांगावड)। जाति—नार्तीय श्रावण, विहारा, नाम—श्रीकृष्णनन्दजी  
देशावसान—वि० सं० १९१२ शादी सुनी ११। वय ८४ वर्ष ।]

(प्रेषक—श्रीरामेश्वरजी शास्त्री)

रामकृष्ण रामकृष्ण नामकृष्ण कहो रे मन ॥ टेक ॥

काळ चक्र महाव्रत पै उदय अस्त मन रे ॥

संत शाल कहे वानि ताहि को समझ रे ॥

हरि रस विन वित्तने रस सब रस बाजान रे ॥

जग विकार मंद मर्ति सर ही को तज रे ॥

श्रीखलजीकृं अक्षिग्रिय सनक्ष भज रे ॥

लात पाँत नार्ही देखि तार लियो गव रे ॥

रंक सदा छाठ देवि संतन की रथ रे ॥

ब्रह्मण ततु पाया सब ततु द्वै तूं धज रे ॥

जाको प्राप्त करते द अनुराग, और मन ताको निकट न जैये। टेक ॥

आँूं तजिये अत करन से जानिये कारी जाग ॥

स्वर्ण न होप अन्त गमुकारे दूध नदियो काग ॥

मुत्तक समान लीडत है जाम मैं जीवन जी अकाज ॥

रंक कहत उर जान न उनके ना छूते उर दाप ॥

सत दीने बड़पन रे प्रसु ॥ टेक ॥

पूँजी भेरी दृश्या जायगी ओङ रखो कन करन रे ।

दृढ़ि पावै रख दुण बढ़न भी भी नहीं होत वहन रे ।

गर्व आदे घामै नहुरी एसे चंचल बो भन रे ।

रंक भाँगू याहि प्रसु दुम से लागे रहु चरन रे ॥

जिनकी ल्यान न भाय से लागी ॥ टेक ॥

मुत्तक समान जीनत है जाको पूर्व जन्म के दर्शी ।

प्रसु जस सुनि कछु प्रेम न थायो कहा दियो निज ल्यागी ॥

रहत प्रंच नाथ पद भूत ताहि जाने बढ़ मागी ॥

प्रसु जस सुनि मन इचत न कवहूं तो मन जान शमारी ॥

रंक कहत प्रसु जस अवनारक ज्यों मंजिन हूं शरी ॥

हरे भन जब लौ न भल नंदनेदनको ॥ टेक ॥

तव लौ दात मिटै नहीं तेरी मिटे न जाप भक्तिन है ॥

ज्यों लौं गुणा अके नहीं तेरी ल्यों न नुटदाम भव वेष्यकी ॥

तव लौ नाहि धडे सर्तंगति धडेगो संग मर्ति नंदन को ॥

रंक भजन चिनु जापु भेंगे दुपा रुख जग चद्यन की ॥

जिनको धन्य अस्त मैं जीवन जिनको कव जग करे चलानोडियो ॥

पुख ते भजन करत वै निवादिन करते दाम देत चोलु रथ ॥

पर ते गमन करत मंदिर मे कथा मे लाधव काम ॥

दे वैरी ता काहू के जग मैं कोऊ करे वैर अनाम ॥

उनके जिनको तुरे मले नहीं मन मैं कोऊ करे दे धमात ॥

ततु लगत मे आनंद जिनको करे नित प्रसु को धान ॥

नाम औरी ल्यागी चोडे रखे सब की जान ॥

दुख मुख निज लेवे वरवर और लाप निव हाव ॥

रंक उनको प्रणाम इपारो वै जन इमरे नन ॥

भलन करो जग जानु प्रसु के भलन करो जग जानु ॥ टेक ॥

जाग लम्ब तप दाम नैम बत लीर्ध गमन परिजानु ॥

इस मे विशेष अनेक प्रकार के उत्त बचन परिचयु ॥

हुल अप्रियान से भलन कनत महि तते नित यित यित ॥

सरम छाल रही भरम सकन पर लामूं जग बदामूं ॥

जोगी जगी दानि ब्रति नेमी ये सुत प्रभु को स्वेणुं रे ।  
भजन समान भक्त कछु जामे ना भक्त बाल है तानुं ॥  
ये साधत जिन वृच्छ की धेनु जे कहे से कहेत दुश्शानुरे ।  
भक्ति वृच्छ हरि धेनु चरवावे बछोड़ेगी पान्हु ॥  
भासत जुग सत त्रेता जप कीन्हु द्वापर पूजा ठानुं ।  
रंक भक्ति कैवल कलि काल मुं श्रीपति को पत जानुं ॥  
काया गढ़का वासी मन रे तुखे कहें ल्या देउँ शिखापण रे ।  
नीच माँग छंवि लूटि रहा तूने जोइयों कण कण रे ॥  
मान वडाई अहंकार में यो वृथा जाय निज तन रे ।

भक्ति ज्ञान वैराग्य मिलै ना तू जीत शत्रु को रण रे ॥  
रंक कहे कुमती आफत से तू हुइ जाइस निरधन रे ।  
कामना नाहिं भली मन जान करेगी जमपुर में हैरान ।  
जिनने कामना जीती यारो उनक लहजा भारी ।  
ज्ञान राज की मारफत से हुई आलक्षत यारी ।  
कामना के बश में मन वासव जग मूल भुलाना ।  
केर जनम फिर मरना यारो फिर फिर आना जाना ॥  
जिनके कामना अंत वसी है उनके अंत औंधेरा ।  
अन्तकाल जम दूत संग है जाता जमपुर घेरा ॥

## श्रीदीनदासजी महाराज

[ नाम—श्रीसदाशिवजी शुक्ल । आविर्भाव—१८९२ विं स० । जन्म-स्थान—रहडगाँव ( होशंगाबाद जिला ) । जाति—नामंदीय माध्यण । पिताका नाम—नरोत्तमजी शुक्ल । गुरुका नाम—श्रीकृष्णनन्दजी रंकनाथ । ]

( प्रेषक—श्रीरावेश्वामजी पाराशर )

गुन गाई लीजो रामजी को माम अति मीठो ॥ टेक ॥  
रामरस मीठो सो तो मीठो नहीं कोई रे  
जाने जिनने पियो दूजो स्वाद लागे सीठो ।  
जो नर राम रसायन त्यागे तेखे जमका  
दूत कूटी कूटी कर पीठो ॥  
राम नाम बाल्मीकि भजन करियारे  
लगी समाधि उपर हुई गयो मीठो ।  
महामुनि की पदबी पाई भील  
करम तन मन से छूट्यो ॥  
निश्चय कर आये तेखे प्रभु पद पावे रे  
जैसो गुड में लिप्तत चींदो ।  
मुंड की दूटे वाकी चुंगल नहीं घूटे रे  
ऐसो भजन में मन कर ढीठो ॥  
प्रेम को संजोगी भाव भक्ति को भोगी रे  
नहीं सुहात तप पंथ आगी को ।  
दीनदास भजन करत है झोँझ  
मृदंग करताल है फूटो ॥

मिल राम से प्रीत करो अपनी ॥

कहा सोबत नर भोहनी सुगु काल अचानक डारे ज्ञपनी ।  
प्रेम कुटी मुँ नैठ के मनुवा गल विच डारलो बोनाम कफनी ॥  
मूल मंत्र जो श्वास उसास में थहि माला निस दिन जपनी ।  
दीनदास थरो राम भरोगो शीतल करे तन की तपनी ॥  
राम नाम चित धरतो रे मन भव सागर से तरतो ॥  
राम-नाम गारी दिय में धरतो तीन ताप नहीं जरतो ।

राम-रसायन प्रेम कटोरन पी पी आनंद भरतो ॥  
राम-रसिक की संगत करतो नहीं भवकूप में परतो ।  
दीनदास देखे सब मत मुं नाम चिना नहीं सरतो ॥

- तृष्णा बुरी रे बलाय जात में ॥ टेक ॥

इस तृष्णा ने कई घर धाले ऋषी सुनी समुदाय ।  
बड़े बड़े रजधानी लूटे रैयत कर रही त्राहि ॥  
ध्यान, वचन दे वाचन सुमिरन प्रभु दरशन को जाय ।  
खान-पान बनितादिक देखे ताहि में ललचाय ॥  
या तृष्णा है ऐसी जैसे कर्तिक स्वान फिराय ।  
भटकत भटकत फिरे रैन दिन तोहू न शान्ति ल्खाय ॥  
पहिले दुख लागत है मीठो फिर सिर धुनि पछाताय ।  
है कोई ऐसो संत शरमा याहि को देय छुड़ाय ॥  
सदा ध्यान रख रामचरण को याही में सुख-सार ।  
जिन के चरण कमल की रजपर दीनदास बलि जाय ॥  
जिन के साधन संग नहीं हेत, सो नर मरयो पड़यो भव-न्येत ॥ [टेक] ॥  
भजन करत इरणा जो करे तिनको जानियो जीवत-प्रेत ।  
नामामृत का त्याग करत है सो खल विवर सचेत ॥  
उपर नम्र अश्व कठिनाई जैसे बगुला स्वेत ।  
दीनदास भजो नाम कल्पतरु भवसागर पर सेत ॥

जाग सवेरा चलना बाट ॥ टेक ॥

जाग सवेरा नहीं तो होयगा अवेरा, कब उत्तरोगे भव चौड़ो पाट ॥  
मोह कीच भ्रम वस मन फँस गयो मान मनीकी सिर वृण्धी गाँठ ।  
यो मन चंचल हाथ न आवत मन छे गढ़ीलो भैया आढ़ो गाँठ ॥

भजन करार करनि तू आयो भूल गयो धन देखित ठाठ ।  
दीनदास रघुवीर भजन थिन छुटे नहीं तेरे मन की गाँठ ॥

पड़े बाँकी बखत कोई आवे नहीं काम ॥ टेक ॥  
तन मन से धन धाम सँवारो कियो संग्रह धन कर चाम ॥  
बात पित कफ कंठ कुं रोकत ठकमक देखत सुत आरु धाम ।  
जय काया में आग लगाई भगे लोग देखे जरतो चाम ॥  
बाँकी बखत को राम बसीले सीतापति शुभ सुंदर श्याम ।  
दीनदास प्रभु कृपा करे जब अंत समय मुख आवत राम ॥

रसना राम नाम क्यों नहीं बोलत ॥ टेक ॥  
निशि दिन पर-अपवाद बखानत क्यों पर-अध को तोलत ॥  
संत समागम प्रेम कटोरा राम रसायन धोलत ।

तहाँ जाय कुशब्द उच्चार के क्यों शुभ रस तू टोलत ॥  
जो कोई दीन आवे तब सन्मुख मर्म बचन कहि बोलत ।  
मर्म बचन में सार न निकसत ज्यों काँदे खु छोलत ॥  
नर मुख मंदर सुंदर पाय के सुधा बचन क्यों न बोलत ।  
दीनदास हरि चरित बखानत आनंद मुख क्यों न डोलत ॥

भजन कर आयु चली दिन रात ॥ टेक ॥  
या नर देही सुंदर पाई उठो बड़ी परमात ।  
राम भजन कर तन मन धन से मान ले इतनी बात ॥  
कुटंब कबीला मुख के साथी अंत कूँ मारत लात ।  
दीनदास सुत राम-धाम तजि क्यों जम्पुर को जात ॥

—→३@६←—

## संत श्रीनागा निरङ्गारीजी

( जन्म—अठीलपुरनरेशके घर, पंजाब-प्रान्तीय । स्थान—कानपुर जनपदका पाली राज्य । )

पड़ी मेरी नइया विकट मँझधार ।  
यह भारी अथाह भवसागर, तुम प्रभु करो सहार ॥  
आँधी चलत उड़त झराझर मेघ नीर बौछार ।  
झाँक्षर नइया भरी भार से, केवट है मतवार ॥  
किहि प्रकार प्रभु लगू किनारे, हेरो दया दीदार ।  
तुम समान को पर उपकारी, हो आला सरकार ॥

खुले कपाट-यन्त्रिका हिय के, जहँ देखूँ निरविकार ।  
'नागा' कहै सुनो भाई संतो, सत्य नाम करतार ॥

अब तो चेत मुसाफिर भाई ॥  
बार-बार पाहरू जगावत, छोड़त नहिं अलसाई ।  
अब तो मिलना कठिन पिया का, उलटी भसम रमाई ॥  
धर है दूर मेरे साई को, जीव जंत सब उड़ जाई ।  
'नागा' कहै सुनो भाई संतो सत्य नाम की करो दुहाई ॥

## सिन्धी संत श्रीरामानन्द साहब लुकिमान

( प्रेषक—श्रीश्वामसुन्दरजी )

तुम शान्ति करो कोई शोर नहीं ।  
दुई दूरि करो कोई होर नहीं ॥  
तुम साधु बनो कोई चोर नहीं ।  
तुम आपु लखो तब तुं ही तूं ही ॥  
ना मानो तो कोई जोर नहीं ।



मेरे प्यारे ! इस दुनियामें ऐसे रहे,  
जैसे जेलमें जेलर रहता है । जेलमें जेलर तथा  
कैदी दोनों रहते हैं । जेलर आजाद रहता है पर  
कैदी बन्धनमें रहता है । तुम जेलरकी भाँति  
आजाद होकर अपने आत्माका विलास जानकर  
सब काम करते रहो ।

## संत अचलरामजी

( प्रेषक—दैद्य श्रीवदवदीनबी राणपुरी )

मुझ को क्या हँडे बन-बन में, मैं तो खेल रहा हर फन में ॥  
अकास वायु तेज जल पृथ्वी इन पाँचों भूतन में ।

पिंड ब्रह्मांड में व्याप रहा हूँ चौदह लोक भुवन में ॥  
सूर्य चन्द्र में विजली तारे मेरा प्रकाश है इन में ।

## महाराज चतुरसिंहजी

( उदयपुरके महाराणा कन्हैसिंहजीके जेठे भाई श्रीसुरतसिंहजीके बौधि पुत्र । जन्म-वि० सं० १९३६ माघ कृष्ण १४ । परधामगत-सं० १९८६ आषाढ़ कृष्ण ९ । महान् भक्त, विद्वान्, कवि, वैराग्यवान् । )

यो संगार विमार चित, जो अवार करतार ।  
यो करतार मैंभार नित, उयो अवार संसार ॥  
नाम गदरे नाम में दही अनोखी बात ।

दो सूबे आखर तऊ आखर याद न आत ॥  
जो ऐरो तैं राम की तो देरो मव-पार ।  
नाहिं फेरो जगत को, परि है वारंवार ॥

## संत टेझ़रामजी

( सिन्धके प्रेमप्रकाशसम्प्रदायके मण्डलानार्थी । देह-त्याग सन् १९४२ )

उमी देव को पूजत हूँ मैं, जिसका दरजा आला है ।  
सब के अंदर व्याप रहा जो, सब से रहत निराला है ॥  
देह विना जो परम देव है, जाका नाम अकाल है ।  
टेझ़ तिसका ध्यान धरे मैं पाया धाम विशाला है ॥  
जो कुछ दीसै सोई है प्रभु, उस विन और न कोई है ।  
नाम-रूप यह जगत बना जो, वासुदेव भी बोही है ॥  
अस्ति भाति प्रिय रूप जो, सत् चित् आनंद सोई है ।  
कह टेझ़ गुरु भ्रम मिटाया, जहं देखूँ तहं ओई है ॥  
टेझ़ गफलत नौद में, ब्रिते जन्म अनेक ।  
मनुष्य जन्म को पाह के, तजी न सोबन टेक ॥  
मात-गर्भ में सोये पुनि, सोये मा की गोद ।  
बौवन में तिय संग तुम, सोये किया विनोद ॥

बूढ़ेपन मैं खाट पर, सोये रहे दिन रैन ।  
अरथी पर चढ़ अन्त मैं, कीन निता पर सैन ॥  
ऐसे सोबत खोय दी, टेझ़ मानुष देह ।  
हाथ भले विन हाथ कछु, आवत ना फिर एह ॥  
मानुष जन्म लेके, काम नीके नाहि कीने;  
आम के उखाड तर कीकर ल्याये हैं ।  
पशुबत येट भरे, हरि का न ध्यान कीना;  
भव-कूप माँहि पड़ि, बहु दुःख पाये हैं ॥  
काम, कोध, लोभ माँहि, आयु सब खोय दीनी;  
साधु-संग बैठके न हरि गुन गाये हैं ।  
कहे टेझ़ तीन लाज, तोड़ के न काज कीना;  
आप जाने विन तन रत्न गँवाये हैं ॥

## स्वामी श्रीस्वयंजोतिजी उदासीन

( ऋषिकेशनिवासी उदासीन सम्प्रदायके प्रसिद्ध संत )

सर्वेषामपि शास्त्राणां रहस्यं परसं जगुः ।  
भगवद्भक्तिनिष्ठो हि गीता तत्र समाप्तते ॥  
सैव साधनस्या च फलस्या च निष्ठ्योः ।  
ज्ञानकर्मात्म्योस्तस्माद्वितान्तं उपसंहता ॥  
सर्वेभ्यो व्रजमध्येभ्यो द्वाश्रमधर्मेभ्यस्तथा ।  
भगवद्भक्तिरेकैव सामान्येभ्यो गरीयसी ॥  
भगवतो भक्तो यस्पादन्यापेक्षाविरहिणः ।  
तस्यैवानुग्रहाज्ञानाकृतार्थो भवति किल ॥  
विद्येया भगवद्भक्तिरेकैवातो सुमुक्षिभिः ।  
धर्मः सन्तु न वा सन्तु सापेक्षैः खलु किन्च तैः ॥

( राजवेगप्रदीपिका, पञ्चम प्रकाश शोक ३७०-३७४ )

भगवद्भक्तिकी निष्ठाको ही आचार्योंने समस्त शास्त्रोंका

परम रहस्य बतलाया है, श्रीमद्भगवद्गीताका भी भगवद्भक्तिमें ही उपसंहार हुआ है । भगवद्भक्ति ज्ञाननिधि एवं कर्मनिष्ठा दोनोंका साधन भी है और फल भी । इसलिये गीताके अन्तमें उसका उपसंहार किया गया है । निस्तंदेह भगवद्भक्ति अकेली ही समूर्ज सामान्य वर्णयों एवं आश्रमधर्मोंसे बड़ी है; क्योंकि निश्चय ही भगवान्का भक्त अन्य किसी साधनकी अपेक्षा न रखकर केवल उनकी कृपासे ही ज्ञान प्राप्तकर कृतार्थ हो जाता है । इसलिये मोक्ष चाहनेवालोंको एकमात्र भगवद्भक्तिका ही अनुग्रहन करना चाहिये—उपर्युक्त धर्मोंका आचरण चाहे हो या न दो: क्योंकि उन धर्मोंसे वया होना-जाना है, जो मुक्तिके स्वतन्त्र साधन नहीं हैं अग्रिम ज्ञानादिकी अपेक्षा रखते हैं ।

## स्वामीजी श्रीभोलेश्वराजी

( वेदान्तके प्रसिद्ध लेखक, आगरा आद्याले वावाके शिष्य )

### हरिगीत छन्द

मानव ! तुझे नहिं याद क्या ? तू ब्रह्म का ही अंश है ।  
कुल गोत्र तेरा ब्रह्म है, सद्ब्रह्म तेरा वंश है ॥  
चैतत्य है तू अज अमल है, सहज ही सुख राशि है ।  
जन्मा नहीं, मरता नहीं, कृतस्थ है अविनाशि है ॥

निर्दोष है निसंग है, वेरूप है विनु ठंग है ।  
तीनों शरीरों से रहित, साक्षी सदा विनु अंग है ॥  
सुख शान्ति का भण्डार है, आत्मा परम आनन्द है ।  
क्यों भूलता है आप को ? तुझ में न कोई द्वन्द्व है ॥

क्यों दीन है तू हो रहा ? क्यों हो रहा मन खिन्न है ?  
क्यों हो रहा भयभीत, तू तो एक तत्त्व अभिन्न है ॥  
कारण नहीं है शोक का, तू शुद्ध बुद्ध अजन्य है ।  
क्या काम है रे भोह का, तू एक आत्म अनन्य है ॥

तू रो रहा है किस लिये ? आँख बहाना छोड़ दे ।  
चिन्ता चिता में मत जले, मन का जलाना छोड़ दे ॥  
आलस्य में पड़ना तुझे प्यारे ! नहीं है सोहता ।  
अज्ञान है अच्छा नहीं, क्यों व्यर्थ है तू मोहता ? ॥

तू आप अपनी याद कर, फिर आत्म को तू प्राप्त हो ।  
ना जन्म ले मर भी नहीं, मत ताप से संतुष्ट हो ॥  
जो आत्म सो परमात्म है, तू आत्म में संतुष्ट हो ।  
यह सुख्य तेरा काम है, मत देह में आसक्त हो ॥

तू अज अजर है अमर है, परिणाम तुझ में है नहीं ।  
नचित् तथा आनन्दधन, आता न जाता है कहीं ॥  
प्रज्ञान शाश्वत मुक्त तुझ में रूप है नहिं नाम है ।  
कृतस्थ भूमा नित्य पूरण काम है निष्काम है ॥

माया रनी तू जाप ही है आप ही तू कैस गया ।  
कैसा महा आश्रय है तू भूल अपने को गया ॥  
संसार-संगर इव कर, गोते पढ़ा है खा रहा ।  
अज्ञान से भव मिन्हु में बहता चला है जा रहा ॥

हे सर्वव्यापक आत्म तू मव विश्व में है भर रहा ।  
छोटा अविद्या से बना है, जन्म ले ले मर रहा ॥

माने ख्यं को देह त, मगता अंगा कर रहा ।  
चिन्ता करे है दूसरों की व्यर्थ ही है जर रहा ॥  
कर्ता वना भोक्ता वना, आता प्रमाता वन रहा ।  
दलदल शुभाशुभ कर्म में निसंग भी तू भन रहा ॥  
करता किसी से राग है, माने किसी से द्रेष है ।  
इच्छा करे सारा फिरे तू देश और विदेश है ॥  
हैं डाल लीन्ही पैर में जंजीर लाघ्वी कामना ।  
रोये तथा चिल्लाय है, जब कष्ट का द्यो यामना ॥  
धन चाहता, सुत, दार, नाना भोग है तू नाहता ।  
अंधे कुँवे में कर्म के गिर कष्ट नाना पायता ॥

माया नटी के जाल में कैस हो गया कंगाल तू ।  
दर-दर फिरे है भटकता, जग सेठ मालामाल तू ॥  
तू कर्म बेड़ी में बँधा, जन्मे पुनः मर जाय है ।  
जँचा चढ़े है सर्व में फिर नरक में गिर जाय है ॥

मजबूत अपने जाल में माया तुझे है वाँधती ।  
दे जन्म तुझ को मारती, गर्भांशि में फिर राँधती ॥  
चिन्ता शुधा भय शोकमय राते तुझे दिखलायती ।  
भव के भयानक मार्ग में बहु भाँति है भटकायती ॥

संसार दलदल माँहि है माया तुझे धसकावती ।  
तू जानता जँचा चहूँ, नीचे लिये है जावती ॥  
जानामि होली बाल के, माया जली को दे जला ।  
जानामि से जाले बिना, टलनी नहीं है यह बला ॥

यह जान ही केवल तुझे सुख मुक्ति का दातार है ।  
ना जान बिन सौ कल्प मै भी छूटता संसार है ॥  
सब वृत्तियों को रोक कर तू चित्त को एकाग्र कर ।  
कर शांत सारी वृत्तियाँ, निज आत्म का नित ध्यान कर ॥

जब चित्त पूर्ण निरुद्ध हो, तब तू समाधी पायगा ।  
जबतक न होगा चित्त धिर, नहिं मोह तबलक जायगा ॥  
जब मोह होगा दूर तब तू आत्म को लख पायगा ।  
जब होय दर्शन आत्म का, कृतकृत्य तू हो जायगा ॥

मन कर्म वाणी से तथा जो शुद्ध पावन होय है ।  
अधिकारि सो ही योग का है जान पाता सोय है ॥

हो तू गदाचारी सदा मन इन्द्रियों को जीत रे ।  
ना स्वप्न गें भी दूरसे की तू बुराई चीत रे ॥  
कथा कथा कर्है कैसे कर्है, यह जानना यदि इष्ट है ।  
तो शास्त्र संत वतार्थगे, जो इष्ट या कि अनिष्ट है ॥  
श्रद्धागदित जा शरण उन की त्याग निज अभिमान दे ।  
गिरदंग दो निष्कर्षट ही, श्रुति संत को सन्मान दे ॥

‘मैं’ और ‘मेरा’ त्याग दे, मत लेश भी अभिमान कर ।  
सब का नियंता मान कर विशेश का ही ध्यान धर ॥  
मत मन कर्ता आप को, कर्तार भगवत् जान रे ।  
तो स्वर्ग द्वारा जाय खुल तेरे लिये सच मान रे ॥

निश्च दिन निरंतर व्रश्लती सुख मेघ की शीतल शङ्खी ।  
भीतर न तेरे जा सके हैं आइ ममता की पड़ी ॥  
ममता अदंता त्याग दे, वर्षा सुधा की आयगी ।  
ईर्प-जलन बुझ जायगी, चिन्ता-तपन मिट जायगी ॥

ममता अदंता वायु का होंका न जबतक जायगा ।  
विशानदीपक चित्त में तेरे नहीं छुड़ पायगा ॥  
श्रुति संत का उपदेश तवतक बुद्धि में नहिं आयगा ।  
नहिं शांति होरी लेश भी नहिं तत्त्व समझा जायगा ॥

सिद्धान्त सच्चा है यही जगदीश ही कर्तार है ।  
सब का नियंता है वही ब्रह्मण्ड का आधार है ॥  
विशेश की मर्जी विना नहिं कार्य कोई चल सके ।  
ना सूर्य ही है तप सके, नहिं चन्द्र ही है हल सके ॥

‘कुछ भी नहीं मैं कर सकूँ, करता सभी विशेश है’  
ऐसी समझ उत्तम महा, सच्चा यही आदेश है ॥  
‘पूरा कर्हौगा कार्य यह, वह कार्य मैंने है करा’  
पूरा यही अज्ञान है, अभिमान यह ही है खरा ॥

‘मैं’ क्षुब्ध है, ‘मेरा’ बुरा, ‘मुक्ष’ भी मृषा है त्याग रे ।  
अपना पराया कुछ नहीं, अभिमान से हट भाग रे ॥  
यह मार्ग है कल्याण का हो जाय तू निष्पाप रे ।  
देहादि ‘मैं’ मत मान रे, ‘लोह’ किया कर जाप रे ॥

यदि शांति अविचल चाहता, यदि इष्ट निज कल्याण है ।  
संशय रहित सच जान तेरा शत्रु यह अभिमान है ॥  
मत देह में अभिमान कर, कुल आदि का तज मान दे ।  
नहिं देह मैं, नहिं देह मेरा’ नित्य इसपर ध्यान दे ॥

है दर्प काला सर्प, सिर उसका कुचल दे, मार दे ।  
ले जीत रिषु अभिमान को, निज देह मैं से टार दे ॥  
जो श्रेष्ठ माने आप को, सो मूढ़ चोटें साय है ।  
तू श्रेष्ठ सब से है नहीं, क्यों श्रेष्ठता दिखलाय है ॥  
मत तू प्रतिष्ठा चाह रे, मत तू प्रशंसा चाह रे ।  
सब को प्रतिष्ठा दे, प्रतिष्ठित आप तू हो जाय रे ॥  
बाणी तथा आचार में साधुर्यता दिखला सदा ।  
विद्या विनय से युक्त होकर सौम्यता सिखला सदा ॥  
कर प्रीति शिष्टाचार में बाणी मधुर उच्चार रे ।  
मन बुद्धि को पावन बना, संसार से हो पार रे ॥  
प्यारा सभी को हो सदा, कर तू सभी को प्यार रे ।  
निःस्वार्थ हो निष्काम हो, जग जान तू निःतार रे ॥  
छोटे बड़े निर्धन धनी, कर प्यार सब को एक सम ।  
बड़े सभी सिल एक के, कोई नहीं है बेश कम ॥  
मत तू किसी से कर बृणा, सब की भलाई चाह रे ।  
तब मार्ग में कौटे धरे, बो पूल उस की राह रे ॥  
हिंसा किसी की कर नहीं, जो बन सके उपकार कर ।  
विशेश को यदि चाहता है, विश्वभर को प्यार कर ॥  
जो मृत्यु भी आ जाय तो उस की न तू परताह कर ।  
मत दूसरे को भय दिखा, रह आप भी सब से निःडर ॥  
निःस्वार्थ सेवी हो सदा, मन मलिन होता स्वार्थ से ।  
जब तक रहेगा मन मलिन, नहिं भेट ही परमार्थ से ॥  
जे शुद्ध मन नर होय है, वे ईश दर्शन पायें हैं ।  
मन के मलिन नहिं स्वप्न में भी, ईश सम्मुख जायें हैं ॥  
पीड़ा न दे तू हाथ से, कड़वा बचन मत छोल रे ।  
संकल्प मत कर अशुभ तू, सच बोल पूरा तोल रे ॥  
ऐसी क्रिया कर भावना, नहिं दूर तुश से लेश है ।  
रहता सदा तेरे निकट, पावन परम विशेश है ॥  
तू शुद्ध से भी शुद्ध अति जगदीश का नित ध्यान धर ।  
हो आप भी जा शुद्ध तू, मैला न अपना नित कर ॥  
हो चित्त तेरा लिन ऐसा शब्द तू मत सुन कभी ।  
मत देख ऐसा दृश्य ही, मत सोन ऐसी बात भी ॥  
जो नारि नर भगवद्विमुख संसार में आसक है ।  
विफरीत करते आचरण, निज स्वार्थ में अनुरक्त है ॥  
कंजूस कामी कूर जे, पर-दार-रत पर-धन है ।  
मत प्राप्त उन के जा कभी, जो अन्य की गिन्दा करें ॥

रह दूर हरदम पाप से, निष्पाप हो निष्काम हो ।  
निर्दोष पातक से रहित, निःसंग आत्माराम हो ॥  
भगवत् परम निष्पाप हैं, तू पाप अपने धोय रे ।  
भगवत् तुरत ही दर्श दें, अघृण यदि तू होय रे ॥

जे लोक की परलोक की, नहिं कामनाएँ त्यागते ।  
संसार के हैं श्वान जे, संसार में अनुरागते ॥  
कंचन जिन्हें प्यास लगे, जे मूढ़ किंकर काम के ।  
नहिं शान्ति वे पाते कभी, नहिं भक्त होते राम के ॥

रह लोभ से अति दूर ही, जा दर्प के तू पास ना ।  
बच्च काम से अह क्रोध से, कर गर्व से सहवास ना ॥  
आलस्य मत कर भूल भी, ईर्षा न कर मत्सर न कर ।  
हैं आठ ये बैरी प्रबल, इन बैरियों से भाग ढर ॥

विश्वास से कर मित्रता, श्रद्धा सहेली ले बना ।  
प्रशा तितिक्षा को बढ़ा, प्रियन्याय का करत्याग ना ॥  
गम्भीरता शुभ भावना, अरु धैर्य का सम्मान कर ।  
हैं आठ सच्चे मित्र ये, कल्याणकर भवभीरहर ॥

शिष्टाचरण की ले शरण, आचार दुर्जन त्याग दे ।  
मन इन्द्रियों स्वाधीन करु तज द्वेष दे, तज राग दे ॥  
सुख शान्ति का यह मार्ग है, श्रुति संत कहते हैं सभी ।  
दुर्जन दुराचारी नहीं पाते अमर पद हैं कभी ॥

अभ्यास ऐसा कर सदा, पावन परम हो जाय रे ।  
कर सत्य पालन नित्य ही, नहिं शूठ मन में आय रे ॥  
शूठे सदा रहते फँसे, मायानटी के जाल में ।  
तू सत्य भूमा प्राप्त कर, मत काल के जा गाल में ॥

है सत्य भूमा एक ही, मिथ्या सभी संसार रे ।  
तह्यीन भूमा माँहि हो, कर तात ! निज उद्घारे ॥  
कर मुख्य निज कर्तव्य तू, स्वाराज्य भूमा प्राप्त कर ।  
मत यक्ष राक्षस पूजने में, दिव्य देह समाप्त कर ॥

सच जान जो हैं आलसी, निज हानि करते हैं सदा ।  
करते उन्हों का संग जो, वे भी दुखी हैं सर्वदा ॥  
आलस्य को दे त्याग तू, मन कर्म शिष्टाचार कर ।  
अभ्यास कर, बैराग्य कर, निज आत्म का उद्घार कर ॥

मधुमक्षिका करती रहे हैं, रात दिन ही काम ज्यों ।  
मत दीर्घसूत्री बन कभी, करतू निरन्तर काम त्यों ॥

तन्द्रा तथा आलस्य में, मत खो समय को तू वृथा ।  
कर कार्य सारे नियम से, रवि चन्द्र करते हैं यथा ॥

हो उद्धमी सन्तुष्ट तू, गम्भीर धीर उदार हो ।  
धारण क्षमा उत्साह करु शुभ गुणन का भेंडार हो ॥  
कर कार्य सर्व विचार से, समझे विना मत कार्य कर ।  
शम दम यमादिक पाल तू, तप कर तथा स्वाध्याय कर ॥

जो धैर्य नहिं हैं धारते, भय देख धवरा जायें हैं ।  
सब कार्य उन के व्यर्थ हैं, नहिं सिद्धि वे नर पायें हैं ॥  
चिन्ता कभी मिटती नहीं, नहिं दुःख उन का जाय है ।  
पाते नहीं सुख लेश भी, नहिं शान्ति सुख दिखलाय है ॥

गरमी न योद्धी सह सकें, सदीं सही नहिं जाय है ।  
नहिं सह सके हैं शब्द थक, चढ़ क्रोध उन पर आय है ॥  
जिस में नहीं होती क्षमा, नहिं शान्ति सो नर पाय है ।  
शुचि शान्त मन संतुष्ट हो, सो नर सुखी हो जाय है ॥

मर्जी करेगा दूसरों की, सुख नहीं तू पायगा ।  
नहिं चित्त होगा थिर कभी, विक्षिप्त तू हो जायगा ॥  
संसार तेरा धर नहीं, दो चार दिन रहना वहाँ ।  
कर याद अपने राज्य की, स्वाराज्य निष्कंटक जहाँ ॥

सम्बन्ध लाखों व्यक्तियों से यदि करेगा तू सदा ।  
तो कार्य लाखों भाँति के करता रहेगा सर्वदा ॥  
कैसे भला फिर चित्त तेरा शान्त निर्मल होयगा ।  
लाखों जिसे विच्छू डसें, कैसे बता सौ सोयगा ॥

तू न्यायकारी हो सदा, सम्बुद्धि निश्चल चित्त हो ।  
चिन्ता किसी की मत करे, निर्दन्द हो मन शान्त हो ॥  
प्रारब्ध पर दे छोड़ सब जग, ईश में अनुरक्त हो ।  
चिन्तन उंसी का कर सदा, मत जगत् में आसक्त हो ॥

कर्ता वही धर्ता वही, सब में वही सब है वही ।  
सर्वत्र उस को देख तू, उपदेश सच्चा है यही ॥  
अपना भला ज्यों चाहता, ल्यो चाह तू सब का भला ।  
संतुष्ट पूरा शान्त हो, चिन्ता बुरी काली बला ॥  
हे पुत्र ! थोड़ा वेग भी यदि दुःख का न उठा सके ।  
तो शान्ति अविचल तत्त्व की, कैसे भला तू पा सके ॥  
हो मृत्यु का जव सामना, तब दुःख होवेगा धना ।  
कैसे सहेगा दुःख जो, यदि धैर्य तुझ में होय ना ॥

कर ते तितिक्षा रात दिन, जो दुःख आवे छेल ले ।  
बह ही अमर पद पाय है, जो कष्ट से नहि है इले ॥  
है दुःख ही सन्मित्र सब कुछ दुःख ही सिखलाय है ।  
बल बुद्धि देता दुःख पंडित धीर बीर बनाय है ॥

बल बुद्धि तेरी की परीक्षा दुःख आकर लेय है ।  
जो पाप पहिले जन्म के हैं दूर सब कर देय है ॥  
निर्दोष तुक्ष को देय कर, पावन बनाता है तुक्ष ।  
क्या सत्य और असत्य क्या, यह भी सिखाता है तुक्ष ॥

ते कष्ट से घबरा न जा रे, कष्ट ही सुख मान रे ।  
जो कार्य नहि हो सिद्ध तो भी लाभ उसमें जान रे ॥  
बहु बार पटकें साय है, तब मल्ल मल्लन पीटता ।  
लहृता रहे जो धैर्य से, मायान्किला सो जीतता ॥

यदि कष्ट से घबराय के, तु युद्ध से हट जायगा ।  
तो तु यहाँ पर जायगा; बहु मौति कष्ट उठायगा ॥  
जन्मे कहीं भी जायके, नहि मृत्त होगा युद्ध से ।  
रह युद्ध करता धैर्य से, जवतक मिले नहि शुद्ध से ॥

इस में नहीं संदेह जीवन क्षणदौ से युक्त है ।  
वह ही यहाँ जय पाय है, जो धैर्य से संयुक्त है ॥  
समता क्षमा से युक्त ही मन शान्त रहता है यहाँ ।  
जो कष्ट सह सकता नहीं, सुख शान्ति उस को है कहाँ ? ॥

जो जो करे तु कार्य, कर सब शान्त होकर धैर्य से ।  
उत्साह से अनुराग से, मन शुद्ध से बलवीर्य से ॥  
जो कार्य हो जिस काल का, कर तु समय पर ही उसे ।  
दे मत विगङ्गने कार्य कोई मूर्खता आलस से ॥

दे ध्यान पूरा कार्य में, मत दूसरे में ध्यान दे ।  
कर तु नियम से कार्य सब, खाली समय मत जान दे ॥  
सब धर्म अपने पूर्ण कर छोटे बड़े से या बड़े ।  
मत सत्य से तु छिग कर्मी, आपत्ति कैती ही पढ़े ॥

निःस्वार्थ होकर कार्य कर, बदला कभी मत चाहरे ।  
अभिमान मत कर लेय भी, मत कष्ट की परवाह रे ॥  
क्या खान हो क्या पान हो, क्या पुण्य हो क्या दान हो ।  
सब कार्य भगवत् हेतु हों, क्या होय जय क्या ध्यान हो ॥  
कुछ भी न कर अपने लिये, कर कार्य सब शिव के लिये ।  
पूजा करे वा पाठ, कर सब प्रेम भगवत् के लिये ॥

उव कुछ उसी को सौंप दे, निशि दिन उसी को प्यारक  
सेवा उत्ती की कर सदा दूजा न कुछ व्यापार का

सेवक उसी का बन सदा, सब में उसी का दर्श कर  
मैं और 'मेरा' मेट दे, सब में उसी का स्पर्श कर  
निर्दन्द निर्मल चित्त हो; मत शोक कर मत हर्ष कर  
सब में उसी को देख तु मत राग, मत आमर्ष कर

मानुष्य जीवन में यदवि आते हजारे विष्व हैं  
जो युक्त योगी हैं हैं, होते नहीं भन-विन्न हैं  
हो क्षणदौ से युक्त जीवन कुछ न तू परवाह कर  
भगवत् भरोसे से सदा, सुख शान्ति से निर्वाह कर

विद्या सभी ही भाँति की ले सीख तू आचार्य से  
उत्साह से अति प्रेम से, मन बुद्धि से अरु धैर्य से ।  
एकाग्र होके पढ़ सदा, सब ओर से मन 'मोइ' के ।  
सब से हटाकर वृत्तियाँ, स्वाध्याय में मन जोड़ के ॥

वेदाङ्ग पढ़, साहित्य पढ़, फिर काव्य पढ़ तू चाव से ।  
पढ़ गणित ग्रन्थन, तर्क शास्त्रन, धर्मशास्त्रन भाव रे ॥  
इतिहास, अष्टादश पुराणन, नीतिशास्त्रन देख रे ।  
वैद्यक तथा पढ़ वेद चारों, योग विद्या पेत रे ॥

सद्ग्रन्थ पढ़ तू भक्ति शिक्षक, शानवर्धक शास्त्र पढ़ ।  
विद्या सभी पढ़ श्रेयकरिणि, भोक्षदायक शास्त्र पढ़ ॥  
आदर सहित अनुराग से, सद्ग्रन्थका ही पाठ कर ।  
दे चित्त शिष्टाचार में, दुष्टाचरण पर लात धर ॥

क्या ग्रन्थ पढ़ने चाहिये, आचार्य यह बतलायें ।  
पढ़ने नहीं हैं योग्य क्या क्या ग्रन्थ वे जतलायें ॥  
आचार्यशी बतलायें जो, वे ग्रन्थ पढ़ने चाहिये ।  
जो ग्रन्थ धर्म विशद हैं, नहि देखने वे चाहिये ॥

पढ़ ग्रन्थ नित्य विवेक के, मन स्वच्छ तेरा होयगा ।  
बैराग्य के पढ़ ग्रन्थ तू बहुजन्म के अव धीयगा ॥  
पढ़ ग्रन्थ सादर भक्ति के, आहाद मन भर जायगा ।  
श्रद्धाराहित स्वाध्याय कर, संवार से तर जायगा ॥

जो जो पढ़े सब याद रख, दिन रात नित्य विचार कर ।  
श्रुतियाँ भले स्मृतियाँ पुराणादिक उभी निर्धार कर ॥  
अभ्यास से सत् शास्त्र के जब बुद्धि तीव्र बनायगा ।  
तो तीव्र प्रश्ना की मदद से तरब तू व्यव वायगा ॥

जो नर दुराचारी तथा निज स्वार्थ में रह होय हैं ।  
गिर कृप में ये मोह के सुख-शानि से नहिं सोय हैं ॥  
भटका करें ब्रह्मण्ड में, वहुभाँति कष्ट उठावते ।  
मतिमन्द श्रुति के अर्थ को सम्यक् समझ नहिं पावते ॥  
मत मोह में त् फँस कमी, निर्मुक्त हो संमोह से ।  
कर बुद्धि निर्मल स्वच्छ, रह तू दूर दुखकर द्रोह से ॥  
जब चित्त होगा स्वच्छ, तब ही शानि अक्षय पायगा ।  
जो जो पढ़ेगा शास्त्र त्, सम्यक् समझ में आयगा ॥  
आचार्य द्वारा शास्त्र पढ़, हो शान्त मन एकाग्र से ।  
विक्षिप्तता को दूर करके, बुद्धि और विचार से ॥  
कर गर्व विद्या का नहीं अभिमान से निर्मुक्त हो ।  
शानी अमानी सरल गुरु से, पढ़ विनय संयुक्त हो ॥  
एकाग्रता, मन शुद्धता, उत्साह पूरा, धैर्यता ।  
अद्वानुराग, प्रस्तरता, अभ्यास की परिपूर्णता ॥  
मन बुद्धि की चारुर्थता, होवें सहायक सर्व ही ।  
फिर देर कुछ भी नहिं छोगे, हो प्राप्त विद्या शीघ्र ही ॥  
हो बुद्धि निर्मल सत्त्विकी, हो चित्त उत्तम धारणा ।  
हो कठिन से भी कठिन तो भी सहज हो विर्धारणा ॥  
हों स्थूल अथवा स्थूल आते सब समझ में आयेंगी ।  
इक बार भी सुन ले जित्वे, मस्तिष्ठ दे नहिं जायेंगी ॥  
विद्या सभी कर प्राप्त मत पाण्डित्य का अभिमान कर ।  
अभिमान विद्या का बुरा, इस पर सदा ही श्यान धर ॥  
मत वाद कर न विवाद ही, कल्याणहित स्वाध्याय कर ।  
कवा सत्य और असत्य रक्षा, वह जानकर निज ओये कर ॥  
विद्या जाताती है तुझे, क्या धर्म और अधर्म है ।  
विद्या जाताती है तुझे, क्या कर्म और अकर्म है ॥  
विद्या सिलाती है तुझे, कैसे हुटे संसार से ।  
विद्या पढ़ाती है तुझे, कैसे मिले भण्डार से ॥  
गुरु-वाक्य का कर अनुसरण, विश्वास श्रद्धायुक्त हो ।  
यत्याय है जो शास्त्र कर आचार संशयमुक्त हो ॥  
जो जो जाते शास्त्र गुरु, उपदेश सर्व यथार्थ है ।  
संशय न उनमें कर कमी, यदि चाहता परमार्थ है ॥  
संस्कार जितने कर्म हैं, सब ही नियम से पाल रे ।  
उत्साह ऐ, अनुराग से, मन दोष तोर याल रे ॥

जे कर्म पातकस्य हैं, मत चित्त से भी कर कमी ।  
जो जो करे त् कर्म निश्चिदिन, शुद्ध मन से कर तभी ॥  
हो प्रेम पूरा कर्म में, परिपूर्ण मन उत्साह हो ।  
तन मन लगाकर कर्म कर, फल की कमी नहिं चाह हो ॥  
चारुर्थता से कर्म कर, मत लेश भी अभिमान कर ।  
सब कार्य भगवत् हेतु कर, विशेष पूजन मान कर ॥  
चौथे पहर में रात के, जब पुण्य ब्रह्म सुहृत्त हो ।  
दे त्याग निद्रा प्रथम ही, मत नींद में अनुरक्त हो ॥  
विशेष का मन श्यान कर, कल्याण अपने के लिये ।  
विशेष से कर प्रार्थना, निज भक्ति देने के लिये ॥  
जप नाम भगवत् भावपिय का, भाव में तज्जीन हो ।  
हो प्रेम केवल ईश में, भगवद्वरण मन मीन हो ॥  
अपना पराया भूल जा, हरिप्रेम में अनुरक्त हो ।  
आत्मक सब की छोड़ केवल विष्णु में आकृक हो ॥  
जप नाम हरि का जोर से, धरि भले ही व्यान में ।  
हरि नाम का हर रोम में से, शब्द आवे कान में ॥  
विशेष को कर प्यार, प्यारे ! आत्म का कल्याण कर ।  
सब को मिया दे, सर्व ही जा, ईश का नित गान कर ॥  
सुख शान्ति का भंडार तेरे चित्तमें हीं गुप्त है ।  
पर्दी हटा, हो जा सुखी, वयों हो रहा संकल है ॥  
सुख-गिर्भुमें त् भय हो, मन-मैल सारा दे बहा ।  
हो शुद्ध निर्मल चित्त, त् ही विश में है भर रहा ॥  
पावन परम शुचि शास्त्र में से, मन्त्र पावन सार चुन ।  
उनका निरंतर कर मनन, विशेष के गा नित्य गुण ॥  
जो संत, जीवनमुक्त, ईश्वरभक्त पहिले हो गये ।  
उनकी कथाएँ गा सदा, मन शुद्ध करने के लिये ॥  
कल्याण गुण-गुण-युक्त का, उठ प्रात ही भर ज्यान रे ।  
निज देह से अब प्राण से, प्यार अधिकतर मान रे ॥  
तिर को छुकाकर दण्डवत कर नमन आठों अंग से ।  
कल्याण सब का चाह मन से, दूर रह जन संप से ॥  
एकान्त में फिर जाथ के, त् वेश का परित्याप कर ।  
दाँतोन करके दाँत मल, मुख धोय जिहा साफ कर ॥  
रवि के उदय से पूर्व ही, हो शुद्ध जा त् ज्ञान से ।  
शुचि बन तन पर धार के, कर प्रातसंस्था मान से ॥

उभार पावन मन्त्र कर, मन मन्त्र में ही छोड़कर।  
कर अर्थ की भी भावना, भव-वासनाएँ छोड़कर॥  
कर ब्रह्म से मन पूर्ण, सब में ब्रह्म व्यापक देख रे।  
कर क्षीण पापन रेख पर भी मार दे तू मेल रे॥

जो कर्म होये आज का, ले पूर्व से ही सोच सब।  
यह कार्य कैसे होयगा, किस रीति से हो और कब॥  
जो कार्य जिस जिस काल का हो, पूर्ण मन में धार ले।  
जिस जिस नियम से कार्य करना हो भले निर्धार ले॥

समुख सदा रद ईश के, तेरा सहायक है वही।  
करुणा-जलधि हरि की शरण ले श्रेयकारक है वही॥  
जो लेय करुणानिधि शरण, संसार सो ही तर सके।  
जिस पर कृपा हो ईश की साधन वही है कर सके॥

श्वेश की ही ले शरण, संसिद्धि तब ही प्राप्त हो।  
मूल उसी का कर भरोसा, मात्र उस का भक्त हो॥  
कुछ तुझे हो इष सो केवल उसी से माँग रे।  
कर भरोसा अन्य का आशा सभी की त्याग रे॥

त्वे हृदय से प्रार्थना, जब भक्त सज्जा गाय है।  
भक्तवत्सल कान में, वह पहुँच झट ही जाय है॥  
देवा करुणाकर तुरत ही भक्त पर करुणा करे।  
द्वे करोड़ों जन्म के अध, एक क्षण में ही हरे॥

त्वे हृदय की प्रार्थना, निश्चय सुने जग-वास है।  
भक्त से है दूर वह, रहता सदा ही पास है॥  
ज्यों करेगा प्रार्थना, भय दूर होता जायगा।  
प्रार्थना, कर प्रार्थना, कर प्रार्थना सुख पायगा॥

तर मिथ्या वस्तुओं में, यदि तुझे नहिं राग हो।  
य नहीं, हरि-चरण में, जलदी तुझे अनुराग हो॥  
प्रार्थना विशेश से, प्रभु ! भक्ति अपनी दीजिये।  
प्रेम केवल आप में, ऐसी कृपा प्रभु कीजिये॥

प्रार्थना फिर प्रेम से, प्रभु ! मम विनय सुन लीजिये।  
आथ ! मैं भूला हुआ हूँ, मार्ग दिखला दीजिये॥  
अंध को प्रभु आँख दीजे, दर्द अपना दीजिये।  
न चरण की रज-सेव में, मुझ को लगा प्रभु ! लीजिये॥

उसागर पर मैं नहिं जा सकूँ हूँ हे प्रभो !।।।  
ग्रह मेरी नव के नहिं आप जवतक हीं विमो !।।।  
ता यहाँ है ज्वारभाटा, रोक उस को लीजिये।  
उसागर पर मुझ को शीघ्र ही कर दीजिये॥

सर्वज्ञ हैं प्रभु सर्वविद्, करुणा दया से युक्त हैं।  
स्वामायिकी बल किया से, प्रभु सहज ही संयुक्त हैं॥  
नहिं मैं हिताहित जानता, प्रभु ! ज्ञान मुझ को दीजिये।  
भूले हुए मुक्ष पर्याक को, भव पार स्वामी ! कीजिये॥

प्रभु ! आप की मैं हूँ शरण, निज चरण-सेवक कीजिये।  
मैं कुछ नहीं हूँ माँगता, जो आप चाहें दीजिये॥  
सिर अँख से मंजूर है, सुख दीजिये दुख दीजिये।  
जो होय इच्छा कीजिये, मत दूर दर से कीजिये॥

हैं आप ही तो सर्व, फिर कैसे कहूँ मैं प्रार्थना।  
सब कुछ करें हैं आप ही, क्या बोलना क्या चालना॥  
फिर बोलना किस भाँति हो, है मौन ही सब से भल।  
रक्षक तुहीं भक्षक तुहीं तलवार दूर तेरा गल॥

विशेश प्रभु के सामने कर प्रार्थना इस रीति से।  
या अन्य कोई भाँति से, सच्चे हृदय से प्रीति से॥  
जो होय सच्ची प्रार्थना, विशेश सुनता है सभी।  
विशेश की आज्ञा बिना पत्ता नहीं हिलता कभी॥

फिर कार्य कर अपना सभी, दिन का नियम से ध्यान रे।  
एकाग्र होकर धैर्य से, आनन्द भन, सुख चैन से॥  
घबरा न जा, मन शान्त रख, मत कोध भन मैं ला कभी।  
प्रभु देवदेव प्रसन्नता हित, कार्य जो हो, कर सभी॥

जब शयन का आवे समय, एकान्त में तब बैठ कर।  
जो कार्य दिन में हो किया, ले सोच सब मन स्वास्थ कर॥  
जो जो हुई हों भूल दिन में, सर्व लिख ले चित्त पर।  
आगे कभी नहिं भूल होने पाय ऐसा यत्र कर॥

जो कार्य करना हो तुझे, अच्छी तरह से सोच ले।  
मत कार्य कोई कर बिना सोचे बजा ले ठोक ले॥  
सोचे बिना जो कार्य करते, अन्त में गिर जायें हैं।  
जो कार्य करते सोचकर, वे ही सफलता पायें हैं॥

राजा नहुप जैसे गिरा था, स्वर्ग से शृणि-शाप से॥  
आसक्त हों जो भोग में, हों तप वे संताप से॥  
सब कार्य कर तू न्याय से, अन्याय से रह दूर तू।  
आश्रय सदा ले धर्म का, मत कुद्द हो, मत कूद तू॥

हो उच्च तेरी भावना, मत तुच्छ कर तू कामना।।।  
कर्तव्य से मत चूक चाहे मृत्यु का हो सामना।।।  
जो पाप भी हो मृत्यु तो भी मृत्यु से कुछ भय न कर।।।  
इरपोक काथर मृत्यु से भयभीत रहते, तू न डर॥

आचार अपना शुद्ध रख, मत हो दुराचारी कभी ।  
मत कार्य कोई रख अधूरा, कार्य पूरे कर सभी ॥  
मत तुच्छ भोगों की कभी भी भूल के कर कामना ।  
है ब्रह्म अक्षय नित्य सुख, कर तू उसी की भावना ॥  
पुरुषार्थ अनित्य सिद्ध कर, आशा जगत् की छोड़ रे ।  
भय शोकप्रद हैं भोग सब, मुख भोग से तू मोड़ रे ॥  
विश्वेश सुख के सिन्हु में ही चित्त अपना जोड़ दे ।  
रित्ता उसी से जोड़ दे, नाता सभी से तोड़ दे ॥  
जैसे झाड़ी ब्रह्मात् की सब चर अचर की जान है ।  
त्यों ही दया विश्वेश की, सब विश्व जीवनदान है ॥  
सब पर दया है एक-सी, क्या अज्ञ है क्या प्राज्ञ है ।  
सब के मिटाती दुःख, सब को ही बनाती तज्ज्ञ है ॥  
सचमुच मिटाती कष्ट सारे शान्ति अक्षय देय है ।  
कुण्डी उसी की खट्टकटा, यदि चाहता निज श्रेय है ॥  
अध्यात्म का अभ्यास कर, संसार से बैराग्य कर ।  
कर्तव्य यह ही मुख्य है, विश्वेश में अनुराग कर ॥  
संसार जीवन से बना, अध्यात्म जीवन आपना ।  
सुख शान्ति जिस में पूर्ण, जिस में दुःख ना, संताप ना ॥

जीवन विता इस भाँति से, नहिं प्राप्त फिर संसार हो ।  
सद् ब्रह्म में तल्लीन होकर सार का भी सार हो ॥  
शिष्टाचरण में प्रीति कर, हो धर्म पर आरूढ़ तू ।  
हो शुभ गुणों से युक्त तू, रह अवगुणों से दूर तू ॥  
जो धर्म पर आरूढ़ हैं, वे शुर होते धीर भी ।  
हैं सत्य निश्चिदिन पालते, नहिं सत्य से हटते कभी ॥  
यदि पुण्य में रत होयगा, तो धीर तू बन जायगा ।  
जो पुण्य थोड़ा होय तो भी कीर्ति जग फैलायगा ॥  
मत स्वप्न में भी पाप का आचार कर तू भूल कर ।  
निष्पाप रह, निष्काम रह, पापाचरण पर धूल धर ॥  
हो पुण्य में तू रत सदा, दे दान तू सन्मान से ।  
उत्साह से सुख मान कर, दे दान मत अभिमान से ॥  
हैं वस्तु सब विश्वेश की, अभिमान तेरा है बृथा ।  
निज स्वार्थ तज करकार्य कर, बादल करें वर्षा यथा ॥  
अभिमान मत कर द्रव्य का, अभिमान तज दे देह का ।  
अभिमान कुल का त्याग दे, अभिमान मत कर देह का ॥  
कर्मन्दियाँ, शनिन्दियाँ, सब ईश को ही मान रे ।  
मन दुष्टि शिव को अर्प दे, शिव का सदा कर व्यान रे ॥

## स्वामी श्रीनिर्गुणनन्दजी

समझ मन ! इक दिन तन तजना ॥  
बाँकी छवि छकि छकित रहत चिल, नित्यप्रति हरि भजना ।  
जगत्-जाल-ज्वाला-मालाकुल, निसिवासर दजना ॥  
कर कुकर्म सुभ चहत चित्त नर, आठ पहर लजना ।  
'निरुन' बेग सम्हार अपनपौ, हरि सम को सजना ॥

जग में काज किये मन भाये ॥  
गुन-गोविंद सुने न सुनाये, व्यर्थहि दिवस गँवाये ।  
हरि-भक्तन को संग न कीन्हों, दुस्संगत चित लाये ॥  
काम-क्रोध-मद-लोभ-गोह-त्रस, परधन चित्त लुभाये ।  
सत्कर्मादिक काज न कीन्हें, दोऊ लोक हँसाये ॥  
बीती ताहि विसार चित्तर्हाँ, 'निर्गुन' तज पछताये ।  
निसिवासर भज नंदनैदन कों, करनी के फल पाये ॥

## स्वामी श्रीदीनदयालगिरिजी

प्रीति मति अतिसै तू काहू सन करै मीत !  
भले कै प्रतीति मानि प्रीति दुःख-मूल है ।  
जा मैं सुख रंच है विसाल जाल दुःख ही को,  
लूटि ज्यौं बतौरन की बरछी की हूल है ॥  
सुन लै सकंद माहिं कान दै कपोत-कथा,  
जातें मिटि जाइ महा मोहमर्द सूल है ।  
तातें करि 'दीनदयाल' प्रीति नंदलाल संग,  
जग को संबन्ध सबै सेमल को फूल है ॥

कहू की न प्रीति दृढ़ तेरे संग है रे मन,  
कासों हठि प्रेम करि पचि-पचि मरै है ।  
ये तो जग के हैं सब लोग ठग रूप मीत !  
मीठे वैन-मोदक पै क्यौं प्रतीति करै है ॥  
मारिहैं प्रपञ्च बन बीच दगा फाँस ढारि,  
काहे मतिमंद मोही दुःख-फंद परै है ।  
प्रेम तू लगाउ सुखधाम धनस्याम तों जो,  
नाम के लिये तैं ताप पाप कोदि हरै है ॥

## भजनका अधिकार

### क्रोधका नाश

एक बृद्ध अनुभवी संतके समीप एक युवक विरक्त होकर पहुँचा। वैराग्य सज्जा था। कहीं कोई कामना, कोई विषयासक्ति रही नहीं थी। भगवद्भजनकी प्रवल इच्छा थी। बृद्ध संतने एक ही दृष्टिमें यह सब समझ लिया। युवक उनके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना कर रहा था—‘मुझे आपने श्रीनरणोंमें स्थान दें।’

बृद्ध संतने कहा—‘तुम स्नान करके पवित्र होकर आओ।’

युवक स्नान करने गया और बृद्ध संतने आश्रमके पास श्वाङ्कों भंगिनको पास बुलाया। वे बोले—‘जो नया साधु अभी स्नान करने गया है, वह लौटने लगे तब तुम इस प्रकार भार्गपर श्वाङ्क लगाना, जिसे उसके ऊपर उड़कर धूलि पड़ जाय। लेकिन तनिक सावधान रहना। वह मारने दौड़ सकता है।’

भंगिन जानती थी कि बृद्ध संत सच्चे महात्मा हैं। वह देखती थी कि अच्छे विद्वान् और दूसरे साधु उनके पास उपदेश पानेकी इच्छासे आते हैं। उसने आज्ञा स्वीकार की।

युवक स्नान करके लौटा। भंगिन जान-बूझकर तेजीसे श्वाङ्क लगाने लगी। धूल उड़कर युवकपर पड़ी और क्रोधके मारे वह पास पड़ा पर्याप्त उटाकर मारने लगा। भंगिन असावधान नहीं थी। वह श्वाङ्क फेंककर दूर भाग गयी।

जो मुखमें आया, युवक बकता रहा। दुबारा स्नान करके वह महात्माके पास लौटा। संतने उससे कहा—‘अभी तो तुम पशुके समान मारने दौड़ते हो। भगवान्का भजन तुमसे अभी कैसे होगा। अच्छा, एक वर्ष बाद आना। एक वर्षतक नाम-जप करते रहो।’

X X X

युवकको वैराग्य सज्जा था, भजनकी इच्छा सज्जी थी, संतमें श्रद्धा भी सज्जी थी। भजन करके वर्ष पूरा होते ही वह फिर संतके समीप उपस्थित हुआ। उसे फिर स्नान करके आनेकी आज्ञा मिली। वह स्नान करने गया तो संतने किर भंगिनको बुलाकर आदेश दिया—‘वह साधु फिर आया किर भंगिनको बुलाकर आदेश दिया—‘वह साधु फिर आया

है। इस बार मार्गमें इस प्रकार श्वाङ्क लगाना कि जब वह पास आये, श्वाङ्ककी एकाघ सींक उसके पैरेसे छू जाय। डरना मत, वह मारेगा नहीं। कुछ कहे तो तुमचाप मुनक्केहा।’

भंगिनको आज्ञापालन करना था। स्नान करके लौटे युवकके पैरेसे भंगिनकी श्वाङ्क छू गयी। एक वर्षकी प्रतीक्षाए पश्चात् वह दीक्षा लेने जा रही था और यह दुष्ट भंगिन—फिर बाधा दी इसने। युवकको क्रोध बहुत आया; किंतु मारनेकी बात उसके मनमें नहीं आयी। वह केवल भंगिनको कुछ कठोर बचन कहकर फिर स्नान करने लौट गया।

जब वह संतके पास स्नान करके पहुँचा, संतने कहा—‘अभी भी तुम भूँकते हो। एक वर्ष और नाम-जप और तब यहाँ आओ।’

X X X

एक वर्ष और बौता। युवक संतके पास आया। उसे पूर्वके समान स्नान करके आनेकी आज्ञा मिली। संतने भंगिनको बुलाकर कहा—‘इस बार जब वह स्नान करके लौटे, अपनी कूड़ेकी टोकरी डैंडेल देना उत्तम। पर देवता टोकरीमें केवल कूड़ा-कचरा ही हो, कोई गंदी चीज न हो।’

भंगिन डरी; किंतु संतने उसे आश्रम दिया—‘ए दुष्ट नहीं कहेगा।’

आप समझ सकते हैं—युवकके ऊपर जब भंगिनने कूड़ेकी टोकरी डैंडेली, युवकने क्या किया? न वह मारे दौड़ा, न रुष्ट हुआ। वह भंगिनके सामने भूमिपर महाक टेककर प्रणत हो गया और फिर हाथ जोड़कर बोला—‘माता! तुम्हीं मेरी गुरु हो। तुमने मुक्षपर वही कृपा की। तुम्हारी ही कृपासे मैं अपने बड़पनके अहङ्कार और क्रोधस्त शब्दको जीत सका।’

दुबारा स्नान करके युवक जब संतके पास पहुँचा। संतने उसे हृदयसे लगा लिया। वे बोले—‘अब तुम भंगिन के सच्चे अधिकारी हुए।’

क्रोध आप को मूँह है, क्रोध आपही पाप।  
क्रोध मिटे विनु ना मिटे कबड्डी जीव-संताप॥

## भजनका अधिकार

### क्रोधका नाश

एक वृद्ध अनुभवी संतके समीप एक युवक बिरक्त देंकर पहुँचा। वैराग्य सच्चा था। कहीं कोई कोमना, कोई विषयास्ति रही नहीं थी। भगवद्जनकी प्रबल इच्छा थी। वृद्ध संतने एक ही उद्घिमें यह सब समझ लिया। युवक उनके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना कर रहा था—“मुझे अपने श्रीचरणोंमें स्नान दें।”

वृद्ध संतने कहा—“तुम स्नान करके पवित्र होकर आओ।”

युवक स्नान करने गया और वृद्ध संतने आश्रमके पास शाडू देती भंगिनको पास बुलाया। वे बोले—“जो नया साधु अभी स्नान करने गया है, वह लौटने लगे तब तुम इस प्रकार मार्गपर शाडू लगाना, जिससे उसके ऊपर उड़कर धूलि पड़ जाय। लेकिन तनिक सावधान रहना! वह मारने दौड़ सकता है।”

भंगिन जानती थी कि वृद्ध संत संन्ये महात्मा हैं। वह देखती थी कि अच्छे विद्वान् और दूसरे साधु उनके पास उपदेश पानेकी इच्छासे आते हैं। उसने आशा स्वीकार की।

युवक स्नान करके लौटा। भंगिन जान-बूझकर तेजीसे शाडू लगाने लगी। धूल उड़कर युवकपर पड़ी और क्रोधके मारे वह पास पड़ा पत्थर उठाकर मारने शपथा। भंगिन असावधान नहीं थी। वह शाडू फेंककर दूर भाग गयी।

जो सुखमें आया, युवक वकला रहा। दुश्याय स्नान करके वह महात्माके पास लौटा। संतने उससे कहा—“अभी तो तुम पश्चके समान मारने दौड़ते हो। भगवान्का भजन तुमसे अभी कैसे होगा। अच्छा, एक वर्ष बाद आना। एक वर्षतक नाम-ज्ञप्त करते रहो।”

X X X

युवकका वैराग्य सच्चा था, भजनकी इच्छा सच्ची थी, संतमें श्रद्धा भी सच्ची थी। भजन करके वर्ष पूरा होते ही वह फिर संतके समीप उपस्थित हुआ। उसे फिर स्नान करके आनेकी आज्ञा मिली। वह स्नान करने गया तो संतने फिर भंगिनको बुलाकर आदेश दिया—“वह साधु किर आया

है। इस बार मार्गमें इस प्रकार शाडू लगाना कि उस पास आये, शाडूकी एकाघ सींक उसके पैरोंसे छू उड़ना मत, वह भरेगा नहीं। कुछ कहे तो चुपचाप सुन है

भंगिनको आशापालन करना था। स्नान करके युवकके पैरोंसे भंगिनकी शाडू छू गयी। एक वर्षकी प्रति पश्चात् वह दीक्षा लेने जा रहा था और यह दुष्ट भंगिन किर बाधा दी इसने। युवकको क्रोध बहुत आया; मारनेकी बात उसके मनमें नहीं आयी। वह केवल भंगिन कठोर बचन कहकर फिर स्नान करने लैट गया

जब वह संतके पास स्नान करके पहुँचा, संतने व “अभी भी तुम भूँकते हो। एक वर्ष और नाम-ज्ञप्त और तब यहाँ आओ।”

X X X

एक वर्ष और बीता। युवक संतके पास आया। उस पूर्वके समान स्नान करके आनेकी आज्ञा मिली। उसने भंगिनको बुलाकर कहा—“इस बार जब वह स्नान करके लौटे, अपनी कूड़ीकी टोकरी उँड़ेल देना उसपर। पर देखना, टोकरीमें केवल कूड़ा-कचरा ही हो, कोई गंदी चीज़ न हो।”

भंगिन डरी; किन्तु संतने उसे आशापन दिया—“वह कुछ नहीं कहेगा।”

आप समझ सकते हैं—युवकके ऊपर जब भंगिनने कूड़ीकी टोकरी उँड़ेली, युवकने क्या किया? न वह माने दौड़ा, न रुष्ट हुआ। वह भंगिनके सामने भूमिपर मरक टेककर प्रणत हो गया और किर हाथ जोड़कर शोला—“माता! तुम्हीं मेरी गुरु हो। तुमने मुझपर वड़ी कृपा की। तुम्हारी ही कृपासे मैं अपने बड़पनके अहङ्कार और ग्रोपरम शत्रुको जीत लका।”

दुश्यारा स्नान करके युवक जब संतके पास पहुँचा, संतने उसे हृदयते लगा लिया। वे बोले—“अब तुम भजनने सच्चे अधिकारी हुए।”

क्रोध पाप को मूल है, क्रोध आपही पाप।  
क्रोध मिटे बिनु ना मिटे कबुँ जीव-संताप॥

अब प्रथम यह उठता है कि फिर आत्माएँ भगवत्-उपासनाके लिये भूल-प्यास रखों नहीं लगती !—इसका उत्तर बहुत सहज है । अनेक जन्मोंके संचित अविद्यालप खोजमार्के गाढ़े और घने अवश्यमें हमारी आत्माकी भगवद्-उपासनाकी बटोरामि (God-hunger) एक प्रकारसे बुझती गयी है । उस अग्नि को एक वारपुनः संदीप करना पड़ेगा, प्रज्ञालित करना पड़ेगा । इसके बिना आत्माका वह मन्दाप्ति (Desepsia) रोग दूर न दोगा । और उसका विषयक फल होगा आत्महत्या । वह आत्महत्या इस जगत्की आत्महत्याके समान नहीं है । साधरण असमहत्यमें जो अपराध होता है, सुदीर्घकालके शब्द उस महायात्रेसे अत्माका लुटकारा होकर उसको लहराति मिल सकती है । परंतु निरत्तर भगवत्सेवाविद्युत द्वेषके कारण आत्माके अपेक्षासे दोनोंलाली आत्महत्या एक महाय धीपण अपराध है । इस विषयमें समस्त नर-नरियोंको सावधान होनेकी आवश्यकता है । चिकित्सा कठिन नहीं है, औपचार्य भी विकट नहीं है । यदि उपयुक्त औपच चलेभाँति विचारपूर्वक तुम्हीं जाप तो धृ होमियोपथिक ओपिके उमान निर्विप्र निर्विवाद तुरंत फल प्रदान करती है । प्रतिदिन कुछ समय ग्रन्थालयका नाम-जप करना, नाम-कीर्तन करना और परत व्याकुल हस्तसे तकाम या निष्काम नामसे उनके चरणोंमें प्रार्थना करना ही वह अमोघ महीयष है ।

X            X            X

#### सकाम प्रार्थना

एकाम प्रार्थनाओंके लिये इस्तम लोग जो उपासना आदि किया करते हैं उपरोक्त हम असङ्गत नहीं कह सकते । अपहाय अवश्यमें अपने अवश्यक पदार्थोंके लिये लड़के लड़कियों जिस प्रकार माता-पिताओंके सामने ऊंचम मचाते हैं अपरिता उगदीदरके सामने निःशाय लीडका उसी प्रकार प्रार्थना करना असामाधिक नहीं है । भगवद्गीति इन्द्रादि देवगण वैदिक यज्ञ-यज्ञरूप उपासनके वृषभृत दोकर जो पाठ प्रदान करते हैं वह भी प्राकृतिक नियमके बाहर नहीं ।

एवं विशाल असिल लक्ष्माणके कार्यकलापकी पर्यालोचना दर्शने जान यद्यता है कि यह विचित्र विद्यापूर्व अस्यन्त श्रृङ्खलामें रचित है । यह इस प्रकार गीठत है कि एक-दूरिया (विद्याका हो) सके एक पदार्थ दूर्ये पदार्थोंसे साप गढ़ा रहे मरीज़ है । इसमें परेक ली इसके अधिकरूप है । अतएव अवश्यकता होनेपर हम अपने अहरय वजातीय शास्त्रमें द्वारा सहायता प्राप्त कर सकते हैं । अगर

प्रत्यक्ष परीचित बन्दुओंसे धार्ताल्प करके उनके द्वारा जैसे इस अपना कार्यसाधन कर सकते हैं, उसी प्रकार अद्यत उच्चतर जीव अर्धात् देवताओंसे प्रार्थना करके विशेष फल प्राप्त करना हमारे लिये लम्बव हो सकता है ।

परंतु जिनका चित्त वाचिक उच्चत है वे स्वार्थपूर्तिर्थे लिये प्रार्थना करनेके लिये तैयार नहीं होते । ‘धनं देवि जन देहि’ हस्तादि प्रार्थनाएँ अनुच्छत साधकके लिये प्रयोजनीय होनेपर भी हुद्ध भक्तोंग ऐसी प्रार्थना नहीं करते । यहाँतक कि जिस मुक्तिके द्वारा समस्त दुर्लभोंकी अवन्त निवृत्ति होते हैं तथा सर्वानन्दकी प्राप्ति होती है, वे इस प्रकारकी मुक्तिकं भी निरतिशय तुच्छ मानते हैं । भगवत् परमहस्योंमें जे विशुद्ध भ्रक्त हैं, वे मुक्तिकी भी कामना नहीं करते ।

श्रीमद्भगवत्में इसके अगेको प्रमाण पाये जाते हैं इहु भक्तजन केवल भगवत्सेवके सिवा अपने स्वार्थ सम्बन्धकी कोई दूसरी प्रार्थना नहीं करते । श्रीकृष्णवैद्यन्महाप्रभु कहते हैं—

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीशं कामवे ।  
मम जन्मनि जन्मान्तरे भवताद् भक्तिरहुतुकी त्वयि ॥

अथर्व द्वे गोविन्द । मैं धन, जन, दिव्य स्त्री अथव यशस्कारी विद्या—कुछ भी नहीं चाहता । मेरी वही प्रार्थन है कि जन्म-जन्मान्तर तुम्हारे चरणोंमें मेरी अहेतुकी भक्ति हो । यह भी कामना तो है, परंतु इस कामनामें अपन भोग-सुख, इन्द्रिय-विलास—थहाँतक कि सर्वदुर्लक्षण अस्यन्त निःश्वसित्यरूप मोक्षकी प्रार्थनातक भी निरस हो गयी है । यदि भगवत्सेवमें या उनके सुष्टु जीवोंकी केवां अवन्त दुर्ल भोग करना पड़ता है, तो शुद्ध भक्त मस्तू निक्षितें, अस्त्वान वदनसे उसको भी स्वीकार करता है और्गोपायङ्ग-लीलामें देखा जाता है कि भगवान् श्रीगैत्रेय जब महाप्रकाशलील प्रकट करके भक्तोंको वर माँगनेक आदेश देते हैं, तब अन्यान्य भक्त अपनी अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगते हैं । शासुरेव नामक एक प्रतिष्ठ भक्त योऽपि दूरपर तुपचाप उड़ा इस व्यापारको देख रहा है गोपायङ्गसुन्दर वोले—‘वासु ! तुम चुप करो ही तुम क्य चाहते हो ? बाहुदेवने हाथ बोड़कर कहा—“दयामय ! यदि आप इस अथवाको कोई वरदान देना चाहते हैं, तो वही क्यूं कि उसका जगत्की दुर्लभ-नामना मुक्तो ही मोगनी पड़े मैं सबके धाप-तार्पेंको ग्रहण करके अनन्त काल्पक दुःख

भक्ति करते हैं, पक्षी और सखा आदिके साथ प्रणयसूत्रमें आवद्ध होते हैं; कनिष्ठ भाई-बहिन और पुत्र-पुत्री आदिसे स्नेह करते हैं। ये सभी प्रेमके विभिन्न रूप हैं। मनुष्यका हृदय जब सदुमके सदुपदेशसे सांसारिक आत्मीय लोगोंके कहीं ऊपर आपात-आदृश्य किसी अतीन्द्रिय नित्य सुदृढ़का संघान पाता है और कुसुम-कोमला भक्ति जब उसको खोजनेका प्रयास करती है, तब मानव-हृदय उस चिरमधुर-चिरसुहृद्-का संघान याकर उसके समुख मनकी बात और प्राणोंकी पीड़ा प्राण खोलकर रख देता है; इसीका नाम 'प्रार्थना' है। अतएव यह प्रार्थना-व्यापार मानव-हृदयकी अति समुच्छत, समुज्ज्वल स्वाभाविक क्रियाविशेष है। अर्द्धरात्रिमें नीरव—निर्जनमें, संसारके विविध विच्चित्र व्यापारोंसे मुक्त होकर हृदय जब हृदयेश्वरके चरणोंमें जी खोलकर सारी बातें कहने लगता है, तब वह व्यापार स्वभावतः ही अति सुन्दर अति मधुर होता है। उसमें हृदयका भाव अति लघुतर हो जाता है, सांसारिक दुश्चिन्तासे कल्पित और दृग्ध हृदय पवित्र और प्रशान्त हो जाता है। वासना-प्रवीड़ित दुर्बल हृदयमें तड़ित-शक्तिके सदृश नवीन बल संचारित होता है। साधकका विषादसुक्त मुख-मण्डल आनन्दमयकी आनन्दकिरणोंसे समुज्ज्वल और सुप्रसन्न हो उठता है। सत्यस्वरूप श्रीभगवान्-की सच्चिदानन्द-ज्योतिसे उसका मुख-मण्डल समुद्भासित हो उठता है। हृदयका घनीभूत आनन्द, हिमालयके तुषारके सदृश विगलित होकर यमुना-जाह्वीकी धाराके समान नयन-पथसे प्रवाहित होकर संसारके त्रितापतस वक्षःस्थलको सुशीतल कर देता है। दैन्य-दारिद्र्यकी तीव्र पीड़ा, गर्वित समाजकी इस गर्जना, दुर्जनकी दुष्ट लाङना, रोग-योककी दुःसद यातना तथा स्वार्थ-लम्फटोंकी कायरतायूर्ण लञ्छना—ये सब इस रसरल व्याकुल आन्तरिक प्रार्थनामें तिरोहित हो जाती हैं। नित्य-मधुर नित्य-सखाकी सुधा-मधुर-मुखज्ञवि चित्तमुकुरमें प्रतिविम्बित हो जाती है। उनकी मधुमयी वाणी कानोंमें मधु-धारका संचार करती है। उसके एक-एक झंकारसे संसार-की विविध यन्त्रणा चित्तसे दूर हो जाती है। नयी-नयी आशाओंमें सौन्दर्य-मधुर्यमयी मोहिनी मूर्ति हृदयमें आकर दर्शन देती है, तब भय और निराशाको हृदयमें स्थान नहीं मिलता। हृदयमें पापमयी कुवासनाओंके प्रवेशका द्वार अव-रुद्ध हो जाता है। प्रेमाभक्तिकी मन्दाकिनीके प्रवाहमें संसार-तापका भीषण मरुस्थल, सहस्रा आनन्दके सहासागरमें परिणत हो जाता है। प्रार्थनाके इस प्रकारके महाप्रभावके

सहस्र उद्गमके समय उसकी अमोघ क्रियाएँ इन्द्रजालके समान जान पड़ती हैं; परंतु कार्यतः ये क्रियाएँ नित्य साधी-रूपमें तथा शाश्वतरूपमें साधक-हृदयमें प्रतिष्ठित होकर साधकको इस नश्वर मर्त्य-जगत्‌में अमर कर देती हैं। दुःख-दावानलके भीतर भी उसको खिाध शीतल जाह्वी-सलिलके सुखमय निकेतनमें संरक्षित करती है।

हम सांसारिक जीव हैं, निरन्तर संसारके दुःखानलमें संतप्त हैं। विष्णुकुण्डका झुमि जिस प्रकार निरन्तर विष्णुमें रहता हुआ उसकी दुर्गम्यका अनुभव नहीं कर पाता; हमारी दशा भी ठीक वैसी ही है। रोगके बाद रोग, शोकके बाद शोक, दैन्य—दुर्भिक्ष, लाञ्छन-गङ्गान और दुर्वासानी तरड़ें सापर-तरड़ोंकी भाँति क्षण-क्षण हमें अभिभूत किये जाती हैं। तथापि हम मुकिके उपायका अनुसंधान नहीं करते। भगवत्-प्रार्थनासे जो नित्य सुख-शान्तिकी प्राप्तिका एक अमोघ उपाय प्राप्त होता है, उसके लिये एक क्षण भी अवकाशका समय हम नहीं निकाल पाते। इससे बढ़कर दुर्भाग्यकी बात और क्या हो सकती है! एक दिन-नातमें चौबीस घंटे होते हैं, तेहस घंटा छोड़कर केवल एक घंटाका समय भी हम भगवत्प्रार्थनामें नहीं लगा सकते! यथार्थ बात यह है कि इस विषयके प्रति हमारी मति-गतिका अत्यन्त अभाव है। हमको अवकाश नहीं मिलता, यह कहना सर्वप्रिय है।

आत्मोन्नतिके लिये जो अपने हृदयमें सदिन्द्या रखते हैं, वे अनेकों कायोंमें सतत नियुक्त रहकर भी अपने भगव-साधनके लिये समय निकाल लेते हैं। देहके अभावकी शूरींके लिये जैसे दैहिक भूख-प्यास स्वभावतः ही उदित होती है, उसी प्रकार भगवत्-चरणामृतके प्यासे आत्माको भी भूत-प्यास लगती है। आत्मा स्वाभाविक अवस्थामें भगवत्प्रार्थनाकी प्राप्तिके लिये सहज ही व्याकुल होता है। निर्जन और शान्त स्थानमें बैठकर उनके चरणोंमें मनकी बात, प्राणोंकी व्यय कहनेके लिये अधीर और व्याकुल हो उठता है और ज्यतन उनके साक्षात्कारका सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, तबके माध्यमें हृदयको और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। हाथरे पेरिक शशीरके सम्बन्धमें भी यही नियम है। स्वस्य सबल दंसनी समयानुसार भूखमें अब और प्यासमें जल न गिल तो वह अत्यन्त व्याकुल और व्यस्त हो उठता है, परंतु अगमा आवेग देहके आवेगकी अपेक्षा कहीं अधिकतर प्रदर्श होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि फिर आत्मा में भगवत्-उपासना के लिये खूब-प्यास क्यों नहीं लगती ? — इसका उत्तर बहुत सहज है । अनेक जन्मों के संचित अविद्यारूप श्लेष्माके गाढ़े और वने आवरणमें हमारी आत्माकी भगवत्-उपासना की जठराग्नि (God-hunger) एक प्रकार से बुझ-सी गयी है । उस अग्नि को एक बार पुनः संदीप्त करना पड़ेगा; प्रज्वलित करना पड़ेगा । इसके बिना आत्माका यह मन्दाग्नि (Despepsia) रोग दूर न होगा । और उसका विषमय फल होगा आत्महत्या । वह आत्महत्या इस जगत्की आत्महत्याके समान नहीं है । साधारण आत्महत्यामें जो अपराध होता है, सुदैर्घकालके बाद उस महापापसे आत्माका छुटकारा होकर उसको सद्गति मिल सकती है । परंतु निरन्तर भगवत्सेवाविमुख होनेके कारण आत्माके अपोषणसे होनेवाली आत्महत्या एक महान् भीषण अपराध है । इस विषयमें समस्त नर-नारियोंको सावधान होनेकी आवश्यकता है । चिकित्सा कठिन नहीं है, और वह भी विकट नहीं है । यदि उपयुक्त औषध भलीभाँति विचारपूर्वक नुनी जाय तो वह होमियोपैथिक औषधिके समान निर्विविद तुरंत फल प्रदान करती है । प्रतिदिन कुछ समय भगवान् का नाम-जप करना, नाम-कीर्तन करना और सरल व्याकुल हृदयसे सकाम या निष्काम भावसे उनके चरणोंमें प्रार्थना करना ही वह असोध महौषध है ।

X X X

### सकाम प्रार्थना

सकाम प्रार्थनाओंके लिये गृहस्थ लोग जो उपासना आदि किया करते हैं; उसको हम असङ्गत नहीं कह सकते । अस्त्राय अवस्थामें अपने आवश्यक पदार्थोंके लिये लड़के-लड़कियाँ जिस प्रकार माता-पिताके सामने ऊधम मचाते हैं, जगदिष्टा जगदीश्वरके सामने निःसदाय जीवका उसी प्रकार प्रार्थना करना अस्वाभाविक नहीं है । भगवदिभूति इन्द्रादि देवगण वैदिक याग-यज्ञरूप उपासनाके बशीभूत होकर जो फल प्रदान करते हैं, वह भी प्राकृतिक नियमके बाहर नहीं ।

इन विशाल अस्त्रिल नशाण्डके कार्यकलापकी पर्यालोचना करनेसे जान पड़ता है कि यह विचित्र व्रश्चाण्ड अत्यन्त शृङ्खलाने रनित है । यह इस प्रकार मरित है कि एक-दूसरेका सशाक्त हो सके, एक पदार्थ दूसरे पदार्थके साथ समद्वयमें संक्षिप्त है । इसमें प्रत्येक ही इसके अंशस्त्ररूप है । लात-एन अनन्दकता होनेपर हम अपने अदृश्य सजातीय शान्तमय जीवोंके द्वारा उदायता प्राप्त कर सकते हैं । अपने

प्रत्यक्ष परिचित बन्धुओंसे वार्तालाप करके उनके द्वारा जैसे हम अपना कार्यसाधन कर सकते हैं, उनी प्रकार अदृश्य उच्चतर जीव अर्थात् देवताओंसे प्रार्थना करके विशेष फल प्राप्त करना हमारे लिये सम्भव हो सकता है ।

परंतु जिनका चित्त अधिक उत्त्रत है, वे स्वार्थपूर्तिके लिये प्रार्थना करनेके लिये तैयार नहीं होते । ‘धनं देहि जनं देहि’ इत्यादि प्रार्थनाएँ अनुश्रुत ताधकके लिये प्रयोजनीय होनेपर भी शुद्ध भक्तलोग ऐसी प्रार्थना नहीं करते । यहाँतक कि जिस मुक्तिके द्वारा समस्त दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति होती है तथा सर्वानन्दकी प्राप्ति होती है, वे इस प्रकारकी मुक्तिको भी निरतिशय तुच्छ मानते हैं । भगवत् परमहंस लोगोंमें जो विशुद्ध भक्त हैं, वे मुक्तिकी भी कामना नहीं करते ।

श्रीमद्भागवतमें इसके अनेकों प्रमाण पाये जाते हैं । शुद्ध भक्तजन केवल भगवत्सेवाके सिवा अपने स्वार्थ-सम्बन्धकी कोई दूसरी प्रार्थना नहीं करते । श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु कहते हैं—

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीशं कामये ।  
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥

अर्थात् है गोविन्द ! मैं धन, जन, दिव्य रुदी अथवा यशस्करी विद्या—कुछ भी नहीं चाहता । मेरी यही प्रार्थना है कि जन्म-जन्मान्तर तुम्हारे चरणोंमें मेरी अहैतुकी भक्ति हो । यह भी कामना तो है, परंतु इस कामनामें अपना भोग-सुख, इन्द्रिय-विलास—यहाँतक कि सर्वदुःखोंकी अत्यन्त निवृत्तिस्तर्वलप मोक्षकी प्रार्थनातक भी निरस्त हो गयी है । यदि भगवत्सेवामें या उनके सृष्ट जीवोंकी सेवामें अनन्त दुःख भोग करना पड़ता है, तो शुद्ध भक्त ग्रसन्न चित्तसे, अम्लाम बदनसे उसको भी स्वीकार करता है । श्रीगौराङ्ग-लीलामें देखा जाता है कि भगवान् श्रीगौराङ्ग जब महाप्रकाश-लीला प्रकट करके भक्तोंको वर माँगनेका आदेश देते हैं, तब अन्यान्य भक्त अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगते हैं । वासुदेव नामक एक प्रसिद्ध भक्त योङ्गी दूरपर चुपचाप खड़ा इस व्यागरको देख रहा है । गौराङ्गसुन्दर बोले—‘वासु ! तुम चुप क्यों हो, तुम क्या चाहते हो ?’ वासुदेवने हाथ जोड़कर कहा—‘द्यामय ! यदि आप इस अधमको कोई वरदान देना चाहते हैं तो यही वर दें कि समस्त जगत्की दुःख-नातना मुक्तिको दी भोगनी पड़े । मैं उनके पाप-तांत्रोंको प्रदण करके अनन्त काल्पक दुःख-

नरकमें पड़ा रहूँ, जगत्के जीव आनन्द प्राप्त करें।' इस प्रार्थनामें देखा जाता है कि जो लोग आत्म-सुखकी इच्छा छोड़कर परदुःखसे कातर होते हैं, समस्त क्लेशोंकी यातना सहन करके भी वे जगत्के जीवोंके सुख-शान्ति प्रदान करनेके लिये विष्णुपट और युक्तिसे भगवान्से प्रार्थना

करते हैं। वह प्रार्थना पूर्ण हो या न हो, किंतु प्रार्थितों हृदयकी विश्वाल उदासता तथा परदुःख-विमोचनके लिये उसका प्रभुसे अलौकिक अद्भुत प्रार्थना करना विश्वप्रेमका एक विपुल उच्चतम कीर्तिसम्पन्न है।

यही विशुद्ध भक्तकी प्रार्थनाका विशुद्ध आदर्श है।

## भक्त कोकिल साइ

( जन्म-स्थान सिंध प्रान्तके जैकभावाद जिलेका मीरपुर याम, जन्म सं० १९४२, पिताका नाम श्रीरोचनज्ञानी और माता का नाम श्रीसुखदेवीजी। परलोकवास वृन्दावनमें सं० २००४। )

'ईश्वरके टेलीफोनका नम्बर निरहंकारता है। वह ईश्वर-की ओरसे सदा जुड़ा रहता है। कभी इंगेज नहीं होता। ईश्वरसे ही जोइनेकी जरूरत है। अहंकार छोड़कर अटल मनसे ऊँचे स्तरसे भगवान्के नाम-गुण-लीलाका कीर्तन करे। जैसे वासुके सम्बन्धसे पृथग्की सुरान्ध नासिकातक पहुँचती है, वैसे ही सत्यरुषके सम्बन्धसे निर्मलचित्त अनायास ही ईश्वरतक पहुँच जाता है।'

व्याकरणके अनुसार भक्तिका अर्थ है विश्वासपूर्वक निष्कपट सेवा। हृषीकेश और उनके प्यारे संतोंकी सर्व शुभ इन्द्रियोंसे सेवा करना ही भक्ति है।'

'साधनाको छोटी वस्तु मत समझो। यह सद्गुरुकी दी हुई सिद्ध अवस्था है। यह रास्ता नहीं, मंजिल है। आनन्द-की पराकाष्ठा है। रास्ता समझोगे तो मंजिल दूर जानकर मन आलींहोगा। है मीं यही बात। साधना ही मंजिल है। जो लोग बिना किसी लालचके रास्तेपर नहीं चल सकते, उनके लिये ही मंजिल अल्पा बतानी पड़ती है; नहीं तो मैया, मंजिलपर पहुँचकर करोगे क्या? करना तो यही पड़ेगा।'

'जितना सत्संग करे। उससे दुरुना मनन करे। योङ्ग स्थाकर अधिक चबानेसे स्वाद बढ़ता है। जैसे नींवके बिना महलका ठिकना असम्भव है, वैसे ही मननके बिना सत्संगका।' जैसे भोजनके एक-एक ग्राससे भूख मिटती है, तृप्ति होती है और शरीरका बल बढ़ता है, वैसे ही सत्संगकी उगाली करनेसे विषयकी भूख मिटती है, रसकी बृद्धि होती है, प्रेमका एक-एक अङ्ग परिषुष होता है।'

भक्तिके मार्गमें पहले-पहल ईश्वरताकी बड़ी आवश्यकता है। ईश्वरकी नित्यता, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञता, इसालुता आदि सोचकर ही तो जीव उनसे डरकर सदाचारका पालन

करते हैं। उनके समीप पहुँचनेकी इच्छा करते हैं और उनको जानते हैं। जब प्रभुका प्यार रग-रगमें भर जाता है तब सहज ही ईश्वरता भूल जाती है। जब उनसे कुछ लेना ही नहीं, तब महापात्र और म्बारियामें बधा भेद रहा। वे हासी प्यारे हैं, इसलिये हम उनकी कुशल चाहते हैं। एकने कहा—वे बड़े दयालु हैं। दूसरे ने कहा—वे तो अपने ही हैं।

'जबतक जीव व्याकुल होकर ईश्वरके चरित्रमें दुर्का न स्थायेगा, तबतक ईश्वरके घरकी झाँकी नहीं देख सकेगा। जैसे तांगोंको कोसल करके सुर्दमें पिरोते हैं, वैसे ही विरभावानासे मनको कोसल करके ईश्वरमें लगाना चाहिये। ईश्वरके लिये व्याकुलता अनायास ही संसारको बुझा देती है और मन प्रियतमके पास रहने लगता है।'

'जबतक यह संसार, इसका जीवन, इसकी जानकरी, इसको सुख व्यारेसे अलग, प्यारेके सम्बन्धसे रहित मालूम रहता है। तभीतक इसको असत्य कहनेकी जरूरत रहती है। जब इसके कण-कणमें, जर्न-जर्नमें श्रीप्रियतमकी ज्योति जगायी रही है, उन्हींकी चमकसे सब चमक रहा है, वे यथ ही अपना सुख, अपना आनन्द सबके अंदर उँड़ेल रहे हैं। उन्हें ही सब सरावोंर हैं, वे ही अपने प्रेमोद्यानमें रसमयी, मधुमयी लास्यमयी कीड़ा कर रहे हैं, तब इसकी अगल्य कीटे कहे।'

'हमने यह अच्छी तरह सोन्ममद्धकर देखा है कि यह असमर्थ जीव कादरचित्त और कमजोर-द्रिल है। दुन्हामें इसे कोई-न-कोई पुकारनेकी जगह जरूर चाहिये। अगर इसके सभी रास्ते बंद होंगे तो यह निष्ठाम भनिमार्गी नहीं चल सकेगा। जब चलते-चलते इसका प्यार प्रियतमी गाढ़ा हो जायगा, तब इसे कोई दूसरी इक्का नहीं रहेगी। यि-

अपने आप पूर्ण निष्काय हो जायगा । तब कुछ मियतमके  
लिये चाहेगा ।

X            X            X

‘नाम-जपके समय धाय, रूप, लीला और सेवाका  
चिन्तन होनेसे ही सच्चे भगवद्गुरुका उदय होता है । इसके  
विना जो नाम-जप होगा, उससे वृत्तियोंकी शिथिलतामात्र  
होगी, द्रवता नहीं । वह भिन्नाके उस ढेलेके समान होगी जो  
गीला तो है, पर पिघलकर किसीकी ओर बहता नहीं है । तदा-  
कारता तब होती है, जब चित्तवृत्ति पिघलकर इष्टेदेवके  
साँचेमें ढलती है । केवल नामजपके समय जो आनन्द होता  
है, वह संसारकी चिन्ता और दुःखका भार उत्तर जानेका  
आनन्द है । इस भासुक वृत्तिपर जब विरह-तापकी  
व्याकुलताकी आँच लगती है, तब पिघलकर वह इष्टेदेवके  
आकारके साँचेमें ढलती है और लीलारसका अनुभव होने  
लगता है । इसलिये नाम-जपसे यदि चरित्र-समाजका

अनुभव न होता हो तो दीन-नीचमें लीलाके पद गा-गाफर  
लीलाका भाव जाग्रत् करना चाहिये । नाम-जपसे विशेषर्वा-  
सिवृत्ति और पदसे लीलाका आविर्भाव होता है, किर विशेष  
आवे तो नाम-जप करो । जपसे मन एकाय हो तो फिर  
लीला-चिन्तन करो ।’

‘यह भगवान्का चिन्तन बटे-दो-संटोकी छ्यूटी अथवा  
धर्मपालन नहीं है । इसके लिये जीवनका सारा समय ही  
अर्पित करना पड़ता है । चलते-फिरते, काम-धंधा करते भी  
हृदयमें महापुरुषोंकी वाणीकी अर्थका विचार करता रहे ।  
उनमें अनेक भाव सूझें । उन भावोंसे मिलती-जुलती रसिक-  
जनोंकी वाणियोंको हूँड़कर मिलान करे । उनमें  
लीलाके जो सुन्दर-सुन्दर भाव हैं, उनका अनुभव करे ।  
इससे संसारके संकल्प मिटेंगे और भगवान्के प्रति मन-  
बुद्धिका अर्पण होगा । यह मनीराम वडे रसिक हैं । चस्का  
लग जानेपर नये-नये रस धोलते रहते हैं ।’

### श्रीजीवाभक्त

धीरज तात रुमा तुम मात, इ सांति सुलोचनि बाम प्रभानौ ।  
मत्र रुपुन, दशा भगिनी अरु आत भले मन-संयम मानौ ॥

शानको भोजन, वस्त्र दर्तौं दिसि, भूमि पलंग, सदा सुखदानौ ।  
‘जीवन’ ऐसे सगे जग मैं सब कष्ट कहा अब योगी कौं जानौ ॥

### श्रीब्रह्मभरसिकजी

जोरी धन सौ गाँठिले, होरी तन मन गाँठि ।  
योरी होरी कहत है, बोरी आनेंद गाँठि ॥  
क्षूटि-क्षूटि अंचल गवे, दूटि-दूटि गवे हार ।  
क्षूटि-दूटि छवि पिय छके, धूंटि-धूंटि रस सार ॥

मन पदुका मन कर गहौं फसुवा कह तब नैन ।  
मन दैये, मन ही लिये, भये दुहुँन मन चैन ॥  
होरी खेल कहै न क्यों, दुहुनि मैं न सुख दैन ।  
ब्रह्मभरसिक’ सखीन के, रोम रोम मैं धैन ॥

### संत श्रीरामरूप स्वामीजी

[ श्रीचरणदासजीके शिष्य ]

( प्रेपक—श्रीरामलक्ष्मदासजी )

वृथा बन बन भटकना, कबहुँ न मिलिदें राम ।  
रामरूप सतसँग विना, सब किरिय देकाम ॥  
बन संतोषी साधु दे, साँचे देपरवाह ।  
रामरूप हरि चुमरिके, मेटी जगकी चाह ॥  
उत्तम हरिके संत हैं उत्तम हरिके नाम ।

मध्यम सुख संसारका रामरूप किस काम ॥  
पाप गवे तो गेहसे जहँ आये हरिदास ।  
रामरूप मंगल भये हरि मिलनेकी आस ॥  
श्रीसुक मुनि समकादि ज्यौं और जो श्रुत प्रहाद ।  
रामरूप इक रस रहे, मध्य अंत अरु आदि ॥

## संतका महत्व

प्रभो ! इन लोगोंको क्षमा कीजिये, ये बेचारे नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं । यह प्रार्थना है महात्मा ईसामसीहकी ।

किनके लिये यह प्रार्थना ईसामसीहने की थी, यह आप जानते हैं । जिन यहूदियोंने ईसाको सूलीपर चढ़वाया था, जिनके दुराग्रहसे उस सत्पुरुषके हाथ-पैरोंमें कीलें ठोंकी गयी थीं, उन अपने प्राणहर्ता लोगोंको क्षमा कर देनेके लिये ईसाने भगवानसे प्रार्थना की ।

सूलीपर ईसाको चढ़ा दिया गया था । उनके हाथ-पैरोंमें कीलें ठोंक दी गयी थीं । उनके शरीरकी क्या दशा होगी—कोई कल्पना तो कर देखे । उस दारुण कष्टमें, प्राणान्तके उस अन्तिम क्षणमें भी उस महामुरुषको भगवानसे प्रार्थना करना या—यह प्रार्थना करना या कि वे भक्तवत्सल पिता उसको पीड़ित करनेवालोंको क्षमा कर दें ।

शरीर नश्वर है । कोई भी किसको कष्ट देगा । शरीरको ही तो । शरीरके सुख-दुःखको लेकर मित्रता-शत्रुता तो पशु भी करते हैं । मनुष्यका पशुत्व ही तो है कि शरीरके कारण शत्रुताका विस्तार करता है ।

उत्पीड़िको उसके अन्यायका दण्ड देना—यह सामान्य मनुष्यकी बात है । उत्पीड़िके अपराध चुप-चाप सहन कर लेना—सत्पुरुषका कार्य है यह; किंतु सत्—संतका महत्व तो उसकी महान् एकात्मतामें है ।

उत्पीड़िक—शब्द कोई समझदार हो तो क्या स्वयं अपनी हानि करेगा ? उत्पीड़िक—दूसरे किसीको द्वेषवश कष्ट देनेवाला समझदार कहाँ है ? कर्मका फल बीज-बृक्ष-न्यायसे मिलता है । आजका बोया बीज फल तो आगे देगा, समय आनेपर देगा; किंतु एक बीजके दानेसे कितने फल मिलेंगे ? आजका कर्म भी फल आगे देता है, समयपर देता है; किंतु आजका कर्म भी फल आगे देता है, समयपर देता है; किंतु फल तो शतगुणित—सहस्रगुणित होकर मिलता है । दूसरेको पीड़ा देनेवाला अपने लिये उससे हजारों गुनी पीड़ा की प्रस्तावना प्रस्तुत करता है ।

बालक भूल करता है, जब अग्नि पकड़ने लगता है— बालक भूल करता है, जब अग्नि पकड़ने लगता है । कोई जब भूल करता है । समझदार व्यक्ति उसे रोकता है । कोई जब

अत्याचार करता है—किसीपर करे, भूल करता है । भूल हुआ है वह । वह नहीं जानता कि वह कर क्या रहा है दयाका पात्र है वह । संतका महत्व इसीमें तो है कि वह अभूले हुएकी भूलको नहीं लौलता । वह तो उस भूले हुएका दिया करता है—उसका हृदय सच्ची सहानुभूतिसे कहत है—ये भूले हुए हैं । ये नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं । दयामय प्रभो ! क्षमा करो इन्हें ।

## संतकी महिमा

‘भोगोंसे मुँह मोड़कर, दलबंदियों और मूढ़ आग्नीसे निकलकर भगवान्के मार्गपर चलनेवाले मानवरत्नोंपर भोग-बादी और दलबादी लोगोंका रोष हुआ ही करता है और उनके द्वारा दी हुई बन्त्रणाओंको उन्हें भगवान्की भेजी हुई उपहार-सामग्री मानकर सिर चढ़ाना ही पड़ता है । भक्तराज प्रह्लाद, महात्मा ईसा, भक्त हरिदास आदि इसके ज्वरसंत उदाहरण हैं । मंसूर भी इसी श्रेणीके संत थे । मंसूरकी दृष्टिये एक ब्रह्मसत्तके अतिरिक्त और कुछ रहा ही नहीं था, इसे वे सदा ‘अनलहक’ में ही ब्रह्म हूँ, ऐसा कहा करते थे । दलबादी खलीफाको यह सहन नहीं हुआ । खलीफाने हुक्म दिया कि जबतक यह ‘अनलहक’ बोलता रहे, इसे लकड़ियोंपर पीटा जाय और किर हसे भार ढाला जाय । लकड़ीकी प्रत्येक भारके साथ मंसूरके मुखसे वही अनलहक शब्द निकलता था । उन्हें जल्लाद दूलीके पास ले गया ।

पहले हाथ काट ढाले गये, फिर पैर काटे गये । अगले ही खूनसे अपने हाथोंको रंगकर मंसूर बोले—यह एक प्रभु-प्रेमीकी व्यजूँ है । जल्लाद जब इनकी जीभ काटनेको हैरान हुआ, तब ये बोले—

“जरा ठहर जाओ, मुझे कुछ कह देने दो—मैं परमेश्वर ! जिन्होंने मुझको इतनी पीड़ा पहुँचायी है, उनर दू नाराज मत होना, उन्हें सुखसे विच्छित मत करना, उद्देश तो मेरी मंजिलको कम कर दिया । अभी ये मेरा सिर काट ढालेंगे तो मैं रुलीपरसे तेरे दर्शन कर गकँगा ।”

यही तो संतकी महिमा है ।

## महाप्रभुका कुष्ठरोगीसे प्यार

त नैमि चैतन्यं वासुदेवं दयाद्विदीः।

स्वपुण्डं भक्तिकुष्टं लक्ष्मार यः॥

। दयाद्वि होकर वासुदेव नामक पुरुषके गलित कुष्टको से सुन्दर रूप प्रदान किया और भगवद्विकि देकर से धन्यजीवन श्रीचैतन्यको इम नमस्कार करते हैं।

न्य आश्रि देशके एक गाँवमें पश्चर हैं वासुदेव रहता है। सारे अज्ञोंमें गलित कुष्ट है, घाव हो र उनमें कीड़े पड़ गये हैं। वासुदेव भगवान्का नैर मानता है कि यह कुष्ट रोग भी भगवान्का है। इससे उसके मनमें कोई दुःख नहीं है। एक स्पलावण्ययुक्त लक्ष विरक्त संन्यासी पश्चरे मंदिव ब्राह्मणके घर ठहरे हैं। उनके दर्शनमात्रसे देव भावोंका संचार हो जाता है और जीम अपने-हरि पुकार उठती है। वासुदेवसे रहा नहीं गया, वके घर दौड़ा गया। उसे पता लगा कि श्रीचैतन्य ये चल दिये हैं। वह जोर-जोरसे रोने लगा और कातर प्रार्थना करने लगा।

गन्दी प्रेरणा हुई, श्रीचैतन्यदेव योद्धी ही दूरसे लौट कृगदेवके घर आकर वासुदेवको जबरदस्ती बड़े होने हृदयसे लगा लिया। वासुदेव पीछेकी ओर ला—‘भगवन्! क्या कर रहे हैं? अरे! मेरा शरीर मरा है, मवाद वह रहा है, कीड़े किलबिला रहे हैं। स्वर्ण मत कीजिये। आपका सोनेसा शरीर मवादसे हो जायगा। मैं बड़ा पापी हूँ। मुझे आप छूटये रखतु प्रभु क्यों सुनने लो, वे उसके शरीरसे वडे चम्प गये और गद्दद कण्ठसे बोले—‘त्राप्तण देवता! भक्तोंका दर्शन करके मैं स्वर्व अपनेको पवित्र गृहता हूँ।’

तुँके अज्ञोंका आलिङ्गन पाते ही, वासुदेवके तन-मन-। कुष्ट सर्वहं लिये चला गया। उसका शरीर नीरोग इतर लक्षणके समान चम्प उठा। धन्य दयामव प्रसु !

गान्धीजीद्वारा कुष्ठरोगीकी सेवा

त्य और अदैत्याने पुजारी महात्मा गान्धी—भारतके

राष्ट्रपिता। उनको ठीक ही तो राष्ट्र ‘चापू’ कहता है। भार के अर्धनश दीनोंका वह प्रतिनिधि—वह लंगोटीधारी तपस्त्र महात्माजीका जीवन ही त्याग और सेवाका जीवन है अपना सम्पूर्ण जीवन उन्होंने दरिद्रनारायणकी सेवामें समर्पि कर दिया था। शीघ्रोंकी, दुखियोंकी अभावप्रस्त दिली की, रोगीयोंकी—प्रत्येक कष्टमें पड़े प्राणीकी सेवाको स समुद्रत और सावधान वह महापुंरुष। सेवामें उन्हें आन आता था। सेवा उनकी आराधना थी।

सन् १९३९ की बात है। सेवामामके आश्रम अध्यापक श्रीपरम्पुरे शाळी सूण हो गये थे। बड़ा भय या उनका रोग। उन्हें गलित कुष्ट हो गया था।

गलित कुष्ट—छूटका महारोग कुष्ट—राजरोग कु कुष्टके रोगीकी भला परिचर्या कौन करेगा? रोगीकी बाह ल्पो—वहाँतक तो लोग बचाव रखते हैं।

परम्पुरे शाळी किसी चिकित्सा-भवनमें नहीं भेजे ग स्वयं महात्माजीने उनकी परिचर्या अपने उपर ली। महाजीने स्वयं परिचर्याका भार लिया तो आश्रमके लोगोंको उसे लेना पड़ा। महात्माजीने किसीको नहीं कहा, किर दबाव नहीं ढाला।

पूरे अक्टूबर और नवम्बर—जबतक कि रोगी नहीं हो गया, नियमपूर्वक प्रतिदिन महात्माजी स्वयं सेव अपना माग उत्ताहसे पूर्ण करते थे।

गलित कुष्टके घाव—लेकिन महात्माजीमें भय या आ कैसे रक्तती थी। वे स्वयं रोगके घाव खोते थे, औ लगते थे, घावमें पड़ी बाँधते थे। घाव धोकर अणुव यन्त्रसे घावकी स्थिति एवं कुष्टके कीटाणुओंका सावध निरीक्षण करते थे। रोगीके अज्ञ प्रत्यक्षको हाथसे छून सावधानीसे देखते थे कि किस अज्ञकी स्वर्च-शक्ति किया-शक्ति कैसी है।

श्रीपरम्पुरे शाळी नहीं चाहते थे कि स्वयं चापू इ सर्व करें; किंतु चापू थे कि वे रोगीके पास देरतक रहते और आश्राम दिया करते।

## संत श्रीखोजीजी महाराज

( जोधपुरके 'खोड़' ग्राम-निवासी )

'खोजी' खोयो खाकमें अनुपम जीवन रल ।  
कीन्हों मूरख क्यों नहीं राम मिलनको यल ॥  
'खोजी' खोजत जग मुआ लगा न कुछ भी हाथ ।  
तजिके जग जंजालको भजु सीता-खुनाथ ॥  
'खोजी' खटपट छोड़िके प्रभुपदमें भन जोड़ ।  
काज न देगी अंतमें पूँजी लाख करोड़ ॥  
'खोजी' मेरो मत यही नीक लगे तो मान ।

हो शरणागत रामके कर अपनो कल्यान ॥  
'खोजी' कहैं पुकारिके ऊँचो वैष्णव धर्म ।  
पट्टर योके होये किमि यागादिक सर्कम ॥  
बानो श्रीरघुनाथको 'खोजी' धारयो अंग ।  
तब कैसे नीको लगे हरिनिमुखनको संग ॥  
'खोजी' ताल बजायके सुमिरौ श्रीरघुवीर ।  
जिन्हकी कृपा कटाक्षसे छूटि जाय भव-भीर ॥

## श्रीब्रह्मदासजी महाराज ( काठिया )

( डाकोरके प्रसिद्ध संत )

रे मन ! मूरख मान ले 'ब्रह्मदास' की बात ।  
भज ले सीतारामको काल करेगो धात ॥  
'ब्रह्मदास' तूँ जान ले पहले अपनो रूप ।  
चिदचिद-युत पुनि जान तूँ प्रभुको सत्यस्वरूप ॥  
अन्तर्यामी राम हैं जड़ चेतनके ईश ।  
'ब्रह्मदास' सब जीव हैं सेवक विश्वामीश ॥

'ब्रह्मदास' ये जीव किमि स्वयं ब्रह्म बन जाय ।  
बकवादिनकी जालसों, रहियो सदा बचाय ॥  
स्वामी रामानंदको मन विशिष्ट अद्वैत ।  
'ब्रह्मदास' मान्यो तरयो परथो न माया खेते ॥  
'ब्रह्मदास' हैं ब्रह्म पर श्रीसीतापति राम ।  
अपर देव उनके सभी मानहुँ चरण गुलाम ॥

## श्रीबजरंगदासजी महाराज ( श्रीखाकीजी )

( जन्म अयोध्याजीके पूर्व-उत्तर अठारह कोसपर सरयू-किनारे, श्रीकमलदासजी महाराजके शिष्य )

'खाली' होगा खाक तूँ कहते संत पुकार ।  
भज श्रीसीतारामको तज झूँठे व्यवहार ॥  
खलक खेल श्रीरामका 'खाली' देख विचार ।  
कब पूरा हो जायगा रहना तूँ तैयार ॥  
'खाली' जनमत ही लगी तेरे तनमें आग ।  
कर श्रीसीतारामके चरणनमें अनुराग ॥  
स्वामी रामानंदजी जगको गये सिखाय ।  
परब्रह्म प्रभु रामको भजिये नेह ल्याय ॥

खावत पीवत खो गई 'खाली' जीवन रैन ।  
बिना भजन भगवानके क्यों पावहुरे चैन ॥  
'खाली' मेरा मत यही सबसे मीठो दूध ।  
तप तीरथ सर्कम्बको फल हरि भजन विशुद्ध ॥  
'खाली' बात प्रसिद्ध है सबसे मीठी भूख ।  
राम भजनकी भूख जो लगौ भगौ जग-दुःख ॥  
इक दिन तेरा देह यह 'खाली' होगा खाल ।  
जगकी लालच छोड़िके प्रेम सुधारस चाल ॥

## संत श्रीहरिहरप्रसादजी महाराज

( श्रीकाष्ठजिह्व-देवस्वामीजीके अन्तर्ज भक्त )

इत कलंगी, उत चंद्रिका कुंडल तरिवन कान ।  
सिय सियवल्लभ मो सदा बसो हिये विच आन ॥  
सोभा हूँ सोभा लहत जिनके अंग-प्रसंग ।  
विधि-हरिहर बानी-रमा-उमा होहिं लखि दंग ॥  
तिन सिय सिय-बल्लभ चरन बार बार सिर नाय ।

चरनधूरि परिकर जुगल नयनन्हि माँझ लगाय ॥  
सांख्य-योग-वेदान्तको छोड़-छाड़ि मय संग ।  
चरन सरन सिय है रह हु करि मन माँह उपंग ॥  
अवमा-मलिना राशती नित दुखदारी जीन  
तिन हूँ की रक्षा करी को अत करना भीन ॥

संत वाणी अंक, पहला खण्ड समाप्त

श्रीहरि:

## संत-वाणी-अङ्क

### दूसरा स्तंड

[ ‘संत-वाणी-अङ्क’ के इस दूसरे स्तंडमें पुराणोंमें वर्णित भगवानके विविध ध्यान, सिद्ध स्तोत्र, गच्छायाँ, संतों और भक्तोंके सिद्धान्तपरक छोटे-छोटे ग्रन्थ तथा सार्थ-परमार्थ-साधक विविध स्तोत्र आदिके उल्लंघन तीन हजार श्लोक देनेका विचार किया गया था, परंतु संतोंकी चुनी हुई वाणियोंमें स्थान अधिक ऊपर गया। इसलिये अनुवाद किये हुए बहुतसे छोटे-बड़े ग्रन्थ नहीं दिये जा सके। इसमें यहाँ महाभागा गोपियोंके चार गीत, भगवान् श्रीविष्णु, श्रीशङ्कर, श्रीराम और श्रीकृष्णके ध्यान, कुछ सिद्ध स्तोत्र, श्रीशङ्कराचार्यके कुछ छोटे ग्रन्थ तथा स्तवन, श्रीरामानुजाचार्यके गद्य, श्रीलिङ्गार्काचार्यके स्तवन, श्रीचैतन्य-सम्प्रदायके मान्य कुछ छोटे ग्रन्थ और स्तवन आदि दिये जा रहे हैं। ]

### प्रेमस्वरूपा गोपियोद्धारा गाया हुआ वेणुगीत

गोप्य अनु:

अथषणवतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननु विवेशयतोदयस्यैः ।  
वक्त्रं वज्रेशमसुतयोरनुवेषु जुषं यैर्दी निर्पीतमसुरक्कदासमोक्षम् ॥ १ ॥  
द्युतप्रवालवर्हस्तवकोपलाल्जामालानुपृक्परिधानविचित्रवेषौ ।  
मध्ये विरेजतुरुलं पशुपालगोष्ठीयां रङ्गे यथा नटवरौ कं च गायमालौ ॥ २ ॥  
गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दीमोदराघरसुधामपि गोपिकानाम् ।  
भुड़के स्वयं यदवशिष्टरसं द्विदिभ्यो हृष्ट्यत्त्वचोऽथ मुमुक्षुस्तरवो यथाऽऽयाः ॥ ३ ॥  
वृन्दावनं सखि भुवो वित्तोति कीर्ति यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।  
गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं प्रेष्यादिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ ४ ॥  
धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या वन्दनम्दनमुपाच्चविचित्रवेषम् ।  
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां द्युर्विरचितां प्रणायावलोकैः ॥ ५ ॥  
कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं श्रुत्वा च तत्कणितवेणुविचित्रगीतम् ।  
देवयो विमानगतयः सरनुलसारा भ्रम्यतप्रसूनकवरा मुमुक्षुर्विनीव्यः ॥ ६ ॥  
गावच्य कृष्णमुखनिर्गतवेणुर्नातपीयूपमुक्तमितकर्णपुष्टैः पिवत्त्वः ।  
शाचाः स्तुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्युग्माविन्द्मातमनि दशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥ ७ ॥  
प्रायो धतास्य विहगा मुनयो चनेऽसिन् कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।  
वारहाये द्रुमभुजान् दधिप्रवालान् शृण्वन्त्यमीलितदशो विगतान्यवाचः ॥ ८ ॥

तद्यस्तदा तदुपथार्थ सुकुन्दरीतमावर्तेलक्षितमनोभवमग्रवेगाः ।  
 आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृहन्ति पादयुगल कमलोपहाराः ॥ ९ ॥  
 द्वृप्राऽतपे वजपश्चन सह रामगोपैः संचारयन्तमनु वेणुमुदीरयतम् ।  
 प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात् स्ववापुषम्बुद वातपत्रम् ॥ १० ॥  
 पूर्णाः पुलित्व्य उरुगायप्रदाव्यरामश्रीकुडुमेन दियतास्तनमण्डतेन ।  
 तद्दर्शनस्यरुजस्तृप्तितेन लिप्तत्व्य आनन्दकुञ्जेषु जहस्तदाधिम् ॥ ११ ॥  
 हन्तायमद्विरवला हरिदासवर्यो यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ।  
 मानं तनोति सहोगणयोस्तयोर्यत् पत्नीयस्यवस्तकन्दरकन्दभूलौ ॥ १२ ॥  
 गा गोपकैरनुवनं संयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्यु सख्याः ।  
 अस्पन्दनं भतिमतां पुलकस्तरणां नियोगपाशकृतलक्षणयोविचित्रम् ॥ १३ ॥

( श्रीमद्भागवत १०।२१।७-१३ )

( अमुवादक—स्वामीजी श्रीअस्त्रणानन्दजी सरस्ती )

गोपियोँ कहने लगीं—अरी सखी ! हमने तो आँखबालों-  
 के जीवनकी और उनकी आँखोंकी बस, यही—इतनी ही  
 सफलता समझी है; और तो हमें कुछ मालूम ही नहीं है ।  
 वह कौन-सा लाभ है ? वह यही है कि जब इयामसुन्दर  
 श्रीकृष्ण और गौमेषुन्दर बल्लाम खालबालोंके साथ गायोंको  
 हाँककर बनमें ले जा रहे हों या लौटाकर बजमें ला रहे हों;  
 उन्होंने अपने अधरोंपर मुरली धर रखी हो और प्रेमभरी  
 तिरछी चितवनसे हमारी ओर देख रहे हों, उस समय हम  
 उनकी छुल-माझुरीका पान करती रहें ॥ १ ॥ अरी सखी !  
 जब वे आमकी नसी कोपलें, मोरोंके पंख, फूलोंके गुच्छें,  
 रंग-विसर्गे कमल और कुमुदकी मालाएँ धारण कर लेते हैं,  
 श्रीकृष्णके साथैर शशीरपर पीलाम्बर और दल्लामके गोरे  
 शशीरपर नीलाम्बर फहराने लगता है, तब उनका वेष बड़ा  
 विचित्र बन जाता है । खालबालोंकी गोष्ठीमें वे दोनों  
 बीचोंबीच बैठ जाते हैं और मधुर संगीतकी तान छेड़ देते  
 हैं । मेरी प्यारी सखी ! उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो  
 दो चहर नट रंगमध्यपर अभिनय कर रहे हों । मैं क्या  
 बताऊँ कि उस समय उनकी कितनी शोभा होती है ॥ २ ॥  
 अरी मोमियो ! यह वेणु पुरुषजातिका होनेपर भी पूर्वजन्ममें  
 न जाने ऐसा कौन-सा साधन-भजन कर चुका है कि हस  
 मोमियोंकी अपनी सम्पत्ति—दामोदरके अधरोंकी सुधा स्वयं  
 ही इस प्रकार पिये जा रहा है कि हमलोगोंके लिये योङ्ग-सा  
 भी रस शेष नहीं रहेगा । इस वेणुको अपने स्वयं संचनेवाली  
 हृदिनियाँ आज कमलोंके सिस रोमाञ्चित हो रही हैं और अपने  
 बंदोंमें भगवत्प्रेमी संतानोंको देखकर श्रेष्ठ पुरुषोंके समान

बृक्ष भी इसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर आँखें  
 आनन्दाश्रु बहा रहे हैं ॥ ३ ॥

अरी सखी ! यह बृद्धावन वैकुण्ठलोकतक पृथ्वी  
 कीर्तिका विस्तार कर रहा है; क्योंकि यशोदानन्द श्रीकृष्ण  
 चरणकामलोंके निहोंसे यह विहित हो रहा है । सबै । ज  
 श्रीकृष्ण अपनी मुनिजनमोहिनी मुरली बजाते हैं तब मं  
 मतवाले होकर उसकी तालपर नाचने लगते हैं । यह देख  
 पर्वतकी चोटियोंपर विचरणेवाले सभी पक्षु-पक्षी उपस्थि-  
 शानत होकर खड़े रह जाते हैं । अरी सखी ! जब ग्रामपल  
 श्रीकृष्ण विचित्र वेष धारण करके बाँसुरी बजाते हैं ।  
 मूढ़ बुद्धिवाली ये हरिनियाँ भी बंधीकी तान मुनकर आ  
 पति कृष्णसार मूरोंके साथ नन्दनन्दनके पास चली आती  
 और अपनी प्रेमभरी बड़ी-बड़ी आँखोंसे उर्दृ निरखने ला  
 हैं । निरखती रुक्य हैं, अपनी कमलके समान बड़ी-बड़ी आँ  
 श्रीकृष्णके चरणोंपर निशावर कर देती हैं और श्रीकृष्ण  
 प्रेमभरी वितवनके द्वारा किया हुआ अपना ताला खीर  
 करती हैं । बासवामें उनका जीवन धन्य है । ( हम बृद्ध  
 की गोपी होनेपर भी इस प्रकार उनपर आनंदों निशा  
 नहीं कर पाती; इमरे घरबाले कुदने लगते हैं । किं  
 लिड्डमना है । ) ॥ ४-५ ॥ अरी सखी ! हरिनियाँ  
 बात ही क्या है—स्वर्गकी देवियाँ जब युवतियोंको आमदि  
 करनेवाले सौन्दर्य और दीलके सजाने श्रीकृष्णको देखती  
 और बाँसुरीपर उनके द्वारा गाया हुआ मधुर संगीत शुनती ।  
 तब उनके चित्र-विचित्र आलाप मुनकर ने अपने निमान  
 ही सुध-दुध दो बैठती हैं—मुर्छित हो जाती है । यह

मालूम हुआ सखी ! मुनो तो, जब उनके हृदयमें श्रीकृष्णसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा जग जाती है, तब वे अपना धीरज खो दैठती हैं, वेहोश हो जाती हैं; उन्हें इस बातका भी पता नहीं चलता कि उनकी चोटियोंमें मुँथे हुए फूल पृथ्वीपर गिर रहे हैं। यहाँतक कि उन्हें अपनी साड़ीका भी पता नहीं रहता, वह कमरसे खिसककर जमीनपर गिर जाती है ॥ ६ ॥ अरी सखी ! तुम देवियोंकी बात क्या कह रही हो, इन गौओंको नहीं देखती ! जब हमारे कृष्ण-प्यारे अपने मुखसे बाँसुरीमें त्वर भरते हैं और गौँँ उनका मधुर संगीत सुनती हैं, तब वे अपने दोनों कानोंके दोने सम्हाल लेती हैं—खड़े कर लेती हैं और मानो उनसे अमृत पी रही हैं; इस प्रकार उस संगीतका रस लेने लगती हैं ! ऐसा क्यों होता है सखी ! अपने नेत्रोंके द्वारसे श्यामसुन्दरको हृदयमें ले जाकर वे उन्हें वर्ही विराजमान कर देती हैं और मन-ही-मन उनका आलिङ्गन करती हैं। देखती नहीं हो, उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू छलकने लगते हैं ! और उनके बछड़े, बछड़ोंकी तो दशा ही निराली हो जाती है। यद्यपि गायोंके पनोंसे अपने-आप दूध भरता रहता है, वे जब दूध पीते-पीते अचानक ही वंशीध्वनि सुनते हैं, तब मुँहमें लिया हुआ दूध-का धूँट न उगल पाते हैं और न निगल पाते हैं। उनके हृदयमें भी होता है भगवानका संसर्पण और नेत्रोंमें छलकते होते हैं आनन्दके आँसू। वे ज्यों-केन्त्रों ठिठके रह जाते हैं ॥ ७ ॥ अरी सखी ! गौँँ और बछड़े तो हमारे वरकी बस्तु हैं। उनकी बात तो जाने ही दो। वृन्दावनके पक्षियोंको तुम नहीं देखती हो ! उन्हें पक्षी कहना ही भूल है ! सच पूछो तो उनमेंसे अधिकांश बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हैं ! वे दृष्टिवनके सुन्दर-सुन्दर बृक्षोंकी नयी और मनोहर कौपलो-वाली दालियोंपर चुपचाप बैठ जाते हैं और आँखें बंद नहीं करते, निर्निमेष नयनोंसे श्रीकृष्णकी रूप-माधुरी तथा प्यार-भरी चितवन देख-देखकर निहाल होते रहते हैं तथा कानोंसे अन्य सब प्रकारके शब्दोंको ढोड़कर केवल उन्हींकी मोहनी वाणी और शीका असुवनमोहन संगीत सुनते रहते हैं। भरी प्यारी सखी ! उनका जीवन कितना धन्य है ॥ ८ ॥

अरी सखी ! देखता, गौओं और पक्षियोंकी बात क्यों करती हो ! वे तो चेतन हैं। इन जब नदियोंको नहीं देखती। इनमें जो भूंकर दीख रहे हैं, उनसे इनके हृदयमें श्यामसुन्दरसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा पता चलता है। उम्में नेगसे ही तो इनका प्रवाह रुक गया है। हन्दोंमें भी प्रेम-

स्वरूप श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुन ली है। देखो, देखो ! ये अपनी तरङ्गोंके हाथोंसे उनके चरण पगड़कर फामलके फूलोंका उपहार चढ़ रही हैं और उनका आलिङ्गन पर रही हैं, मानो उनके चरणोंपर अपना हृदय ही निलावर कर रही हैं ॥ ९ ॥ अरी सखी ! ये नदियों तो एमारी पुष्टीकी, हमसे वृन्दावनकी बस्तु हैं ही; तनिक इन बादलोंको भी देखो ! जब वे देखते हैं कि व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण और चलामजी चालबालोंके साथ धूपमें गौँँ चरा रहे हैं और साथ-साथ चाँसुरी भी बजाते जा रहे हैं, तब उनके हृदयमें प्रेम उमड़ आता है। वे उनके ऊपर मँझराने लगते हैं और वे श्यामगमन अपने सखा धनशयामके ऊपर अपने शरीरको ही छाता बनाकर तान देते हैं। इतना ही नहीं, सखी ! वे जब उनपर नन्दी-नन्हीं कुहियोंकी वर्षा करने लगते हैं, तब ऐसा जान पड़ता है कि वे उनके ऊपर सुन्दर-सुन्दर श्वेत कुसुम चढ़ा रहे हैं। नहीं सखी, उनके बहाने वे तो अपना जीवन ही निलावर कर देते हैं ॥ १० ॥

अरी भद्र ! हम तो वृन्दावनकी इन भीलनियोंको ही धन्य और कुठकृत्य मानती हैं हैं। ऐसा क्यों सखी ! इसलिये कि इनके हृदयमें बड़ा प्रेम है। जब वे हमारे कृष्ण-प्यारोंको देखती हैं, तब इनके हृदयमें भी उनसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा जाग उठती है। इनके हृदयमें भी प्रेमकी व्याधि लग जाती है। उस समय वे क्या उपाय करती हैं, यद भी सुन लो। हमारे प्रियतमकी प्रेयसी गोपियाँ अपने वक्ष-श्यालोंपर जो केसर लगाती हैं, वह श्यामसुन्दरके चरणोंमें लम्ही होती है और वे जब वृन्दावनके वास-पातपर चलते हैं, तब उनमें भी लग जाती है। वे सौभाग्यवती भीलनियाँ उन्हें उन तिनकोंपरसे छुड़ाकर अपने स्तनों और सुखोंपर मल लेती हैं और इस प्रकार अपने हृदयकी प्रेम-पीड़ा शान्त करती है ॥ ११ ॥ अरी गोपियो ! वह गिरिराज गोवर्द्धन तो भगवानके मक्कोंमें बहुत ही श्रेष्ठ है। धन्य हैं इसके भाग्य ! देखती नहीं हो, हमारे प्राणबलभ श्रीकृष्ण और नयनभिराम बलरामके चरण-कमलोंका स्वर्वा प्राप्त करके वह कितना धाननिंदित रहता है। इसके भाग्यकी सराहना कौन करे ? वह तो उन दोनोंका—चालबालों और गौओंका बड़ा ही सकार करता है। आनंदपानके लिये शरनोंका जल देता है, गौओंके लिये सुन्दर हरी-हरी वास प्रस्तुत करता है। विश्राम करनेके लिये कन्दराएँ और खानेके लिये कन्द-मूल-फल देता है। यास्तवमें वह धन्य है ॥ १२ ॥

अरी सली । इन साँवरे-गोरे किशोरोंकी तो गति ही निराली है । जब वे सिरपर नोवना ( दुहते समय गाथके पैर बाँधने-की रस्ती ) लेटकर और कंधोंपर फंदा ( भागनेवाली गायों-को पफङ्गनेकी रस्ती ) रखकर गायोंको एक बनसे दूसरे बनमें ढाँककर ले जाते हैं, साथमें घालबाल भी होते हैं और

मधुरन्मधुर संगीत गाते हुए बैंसुरीकी तान छेड़ते हैं समय मनुष्योंकी तो बात ही क्या, अन्य शरीरधारिये चलनेवाले चेतन पशु-पक्षी और जड़ नदी आदि ते हो जाते हैं तथा अचल वृक्षोंको भी रोमाञ्च हो आज जादूभरी बंशीका और क्या चमकार सुनाऊँ ॥ १ ॥

## प्रेमस्वरूपा गोपियोद्धारा गाया हुआ प्रणय-गीत

गोप्य उच्चुः

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वचिपयांस्तत्र पादमूलम् ।  
भक्ता भजत्व दुरवश्वह मा त्यजास्ताद् देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते सुमुक्षत् ॥ १ ॥  
यत्पर्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग खीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।  
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशो प्रेषु भवांस्तत्रृष्टां किल वन्धुरात्मा ॥ २ ॥  
कुर्वन्ति हि त्वयि एति कुशलाः ख आत्मद् नित्यपिये पतिसुतादिभिरातिदैः किम् ।  
तत्रः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्देत्र ॥ ३ ॥  
चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु यश्चिविशत्युत करावपि गृह्याद्यत्ये ।  
पादौ पदं न अलतस्तत्र पादमूलाद् यामः कर्थं वजमथो करवाम कि चा ॥ ४ ॥  
सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरमृतपूरकेण हास्तावलोककल्पीतजहच्छयानिम् ।  
नो चेद् वयं विरहजान्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदयोः सखे ते ॥ ५ ॥  
यर्द्दम्बुजाक्ष तत्र पादतलं रमाया दत्तक्षणं कविदरपरजनप्रियस्य ।  
अस्प्राक्षम तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग स्थानुं त्वयाभिरमिता वत् पारयामः ॥ ६ ॥  
श्रीयत्पदास्वुजरजश्वकमे तुलस्या लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ।  
यस्याः खवीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद् चर्यं च तत्र पादरजः प्रपन्नाः ॥ ७ ॥  
तत्रः प्रसीद बृजिनार्दनं तेऽङ्गिमूलं प्रसाद विस्त्रिय वसतीस्त्वदुपासनाशः ।  
त्वत्सुन्दरसितनिरीक्षणतीव्रकामतसात्मनां पुरुषभूपण देहि दास्यम् ॥ ८ ॥  
वीक्ष्यालकावृतमुखं तत्र कुण्डलश्रीगण्डस्तलाघरसुधं हसितावलोकम् ।  
दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥ ९ ॥  
का स्त्रिङ्ग ते कलणदायतस्मृच्छितैन सम्मोहिताऽऽर्थविरितात्र चलेत्विलोक्याम् ।  
श्रीलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद् गोद्विजद्वुमसृगाः पुलकान्यविभ्रन् ॥ १० ॥  
व्यक्तं भवान् व्रजभयातिहरोऽभिजातो देवो यथाऽऽदिपुरुषः सुरलोकगोपा ।  
तत्रो निधेहि करण्डजमातंवन्दो तपस्तनेषु च शिरस्तु च किकरीणाम् ॥ ११ ॥

( श्रीमद्भागवत १०।२९।३१-४१ )

( अहुवादक—स्वामीजी श्रीअक्षण्डानन्दजी तरसती )

गोपियोंने कहा—प्यरे श्रीकृष्ण ! तुम घट-घटन्यापी हो । हमारे दृढ़यकी बात जानते हो । तुम्हें इस प्रकार निष्ठुरतामरे वचन नहीं कहने चाहिये । हम सब कुछ छोड़कर केवल

तुम्हारे चरणोंमें ही प्रेम करती हैं । इसमें यदेव नहीं कि तु स्वतन्त्र और हठीले हो । तुमपर हमारा कोई वक्ष नहीं है फिर भी तुम अपनी ओरसे, जैसे आदिषुमप भगवान् नाराय

प्रकट हुए हो । और यह भी स्पष्ट ही है कि दीन-दुखियोंपर तुम्हारा बड़ा प्रेम, बड़ी कृपा है । प्रियतम ! हम भी बड़ी दुःखिनी हैं । तुम्हारे मिलनकी आकाङ्क्षाकी आगसे हमारा

वक्षःस्थल जल रहा है । तुम अपनी इन दासियोंके वक्षःस्थल और सिरपर अपने को मल करक मल रखकर इन्हें अपना दें  
हमें जीवनदान दो ॥ ११ ॥

## प्रेमस्वरूपा गोपियोंद्वारा गाया हुआ गोपिका-गीत

गोप्य ऊँचुः

जयति तेऽधिकं जन्मना वजः श्रयत इन्दिरा शश्वदन् हि ।  
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतस्वस्त्वां विचिन्त्यते ॥ १ ॥  
शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरथीमुषा दशा ।  
सुरतनाथ तेऽग्नुलकदासिका वरद लिघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥  
विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।  
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयाद्वषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥  
न खलु गोपिकानन्दनो भवानस्तिलदेहिनामन्तरात्मदक् ।  
विलक्षणार्थितो विश्वगुप्तये सख उद्देयिवान् सात्वतां कुले ॥ ४ ॥  
विरचिताभयं बृद्धिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेभयात् ।  
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरव्रह्म ॥ ५ ॥  
व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्यध्वंसनसित ।  
भज सखे भवत्किकरीः स्स नो जलरुहालनं चारु दर्शय ॥ ६ ॥  
प्रणतदेहिनां पापकर्षानं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।  
फणिकणार्पितं ते पदाम्बुजं कृषु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥ ७ ॥  
मधुरया गिरा वलुवाक्यया बुधमनेशया पुष्करेक्षण ।  
विधिकरीरिमा वीर मुहूर्तीरधरसीधुनाऽप्याययस्त नः ॥ ८ ॥  
तव कथामूर्तं तसजीवनं कविभिरीडितं कलमषापहम् ।  
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥  
प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ।  
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षेमयन्ति हि ॥ १० ॥  
चलसि यद् वजाचारयन् पश्चन् ललिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।  
शिलदृणाङ्गुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥ ११ ॥  
दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं विभ्रदावृतम् ।  
घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर्मनसि नः सर्व वीर यच्छसि ॥ १२ ॥  
प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं घ्येयमापदि ।  
चरणपङ्कजं शंतमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ १३ ॥  
सुरतवर्धनं शोकनाशनं खरितवेणुना सुषु चुम्बितम् ।  
इतरागविस्तारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४ ॥

अटति यद् भवानहि काननं तुष्टियुगायते त्वामपश्यताम् ।  
 तुष्टिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्षमकृद् दशाम् ॥ १५ ॥  
 पतिसुतान्वयभ्रातृवान्धवानतिविलक्ष्य  
 गतिविदस्त्वोद्दीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ १६ ॥  
 रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसितालनं प्रेमवीक्षणम् ।  
 वृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते सुहुरतिस्पृहा मुहूरते मतः ॥ १७ ॥  
 व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्गं ते वृजिनहृक्ष्यलं विश्वमङ्गलम् ।  
 त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां सजनहृदुजां यज्ञिष्वदनम् ॥ १८ ॥  
 यत्ते सुजातवरणाम्बुरुं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।  
 तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किसित् कूर्पादिभिर्धमति धीर्मवदायुषां नः ॥ १९ ॥

( श्रीमद्भागवत १०।३१।१-१९ )

( अनुवादक—स्वामीजी श्रीब्रह्मदानन्दजी सरस्वती )

गोपियाँ विरहावेशमें गाने लगीं—प्यारे ! तुम्हारे जन्मके कारण वैकुण्ठ आदि लोकोंसे भी व्रजकी महिमा बढ़ गयी है । तभी तो सौन्दर्य और मृदुलताकी देवी लक्ष्मीजी अपना निवासस्थान वैकुण्ठ छोड़कर वहाँ नित्य-निरन्तर निवास करने लगी हैं, इसकी सेवा करने लगी हैं । परंतु प्रियतम ! देखो तुम्हारी गोपियाँ, जिन्होंने तुम्हारे चरणोंमें ही अपने प्राण समर्पित कर रखवे हैं, वन-वनमें भटककर तुम्हें ढूँढ़ रही हैं ॥ १ ॥ हमारे प्रेमपूर्ण हृदयके स्वामी ! हम तुम्हारी विना मोल्की दासी हैं । तुम शारत्कालीन जलाशयमें सुन्दर-से-सुन्दर सरसिजकी कर्णिकाके सौन्दर्यको चुरानेवाले नेत्रोंसे हमें धायल कर चुके हो । हमारे मनोरथ पूर्ण करनेवाले प्राणेश्वर ! क्या नेत्रोंसे मारना वध नहीं है । अस्त्रोंसे हत्या करना ही वध है ॥ २ ॥ पुष्पगिरोमणे ! यसुनाजीके विषेले जलसे होमेवाली मृत्यु, अजगरके रूपमें खानेवाले अधासुर, इन्द्रकी वर्षा, आँधी, विजली, दावानल, वृषभासुर और व्योमासुर आदिसे एवं भिन्न-भिन्न अवसरोंपर सब प्रकारके भयोंसे तुमने वारन्वार हमलोगोंकी रक्षा की है ॥ ३ ॥ तुम केवल यशोदानन्दन ही नहीं हो; समस्त शरीरधारियोंके हृदयमें रहनेवाले उनके साक्षी हो, अन्तर्यामी हो । सखे ! व्रजाजीकी प्रार्थनासे विश्वकी रक्षा करनेके लिये हुम यदुवंशमें अवतीर्ण हुए हो ॥ ४ ॥

अपने प्रेमियोंकी अभिलापा पूर्ण करनेवालोंमें अग्रगच्छ यदुवंशशिरोमणे ! जो लोग जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करसे टरकर तुम्हारे चरणोंकी शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें तुम्हारे करकमल अपनी छत्रछायामें लेकर अभय कर देते हैं ।

हमारे प्रियतम ! सबकी लालसा-अभिलापाओंको पूर्ण करनेवाला वही करकमल, जिससे तुमने लक्ष्मीजीका हाथ पकड़ा है, हमारे सिरपर रख दो ॥ ५ ॥ प्रजवासियोंके दुख दूर करनेवाले वीरशिरोमणि श्यामसुन्दर ! तुम्हारी मन्द-मन्द मुसकानकी एक उज्ज्वल रेता ही तुम्हारे प्रेमीजीमोंके सारे मानमदको चूर-चूर कर देनेके लिये पर्याप्त है । हमारे प्यारे सखा ! हमसे रुठो मत, प्रेम करो । हम तो तुम्हारी दासी हैं, तुम्हारे चरणोंपर निछावर हैं । हम अबलाओंको अपना वह परम सुन्दर साँबला-साँबला मुखकमल दिखलाओ ॥ ६ ॥ तुम्हारे चरणकमल शरणागत प्राणियोंके सारे पापोंको नष्ट कर देते हैं । वे समस्त सौन्दर्य-माधुर्यकी खान हैं और स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती रहती हैं । तुम उन्हीं चरणोंसे हमारे बछड़ोंके पीछे-पीछे चलते हो और हमारे लिये उन्हें साँपके फणोंतकपर रखनेमें भी तुमने संकोच नहीं किया । हमारा हृदय तुम्हारी विरह-व्यथाकी आगसे जल रहा है, तुम्हारे मिलनकी आकाश्चाहा हमें सता रही है । तुम अपने वे ही चरण हमारे वक्ष-स्थलपर रखकर हमारे हृदयकी ज्वालाको शान्त कर दो ॥ ७ ॥ कमलनयन ! तुम्हारी वाणी कितनी मधुर है ! उनका एक-एक पद, एक-एक शब्द, एक-एक अधर मधुरातिमधुर है । वैदेय-इडे विद्वान् उसमें रम जाते हैं । उसर अनना सर्वस्व निछावर कर देते हैं । तुम्हारी उसी वाणीका रसायनादन करके तुम्हारी आशावारिणी दासी गोपियाँ मोहित हो रही हैं । दानवीर ! अब तुम अपना दिव्य अमृतसे भी मधुर मिलाकर हमें जीवन-दान दो, उका दो ॥ ८ ॥

प्रिलकर हमें  
चन्द्रकथा

प्रकट हुए हो । और यह भी सष्टि ही है कि दीन-दुखियोंपर वक्षःस्थल जल रहा है । तुम अपनी इन दासियोंके वक्षःस्थल तुम्हारा बड़ा प्रेम, बड़ी कृपा है । प्रियतम ! हम भी बड़ी और सिरपर धपने कोमल करकमल रखकर इन्हें अपना ले; दुःखियी हैं । तुम्हारे मिलनकी आकाङ्क्षाकी आगसे हमारा हमें जीवनदान दो ॥ ११ ॥

## प्रेमस्वरूपा गोपियोंद्वारा गाया हुआ गोपिका-गीत

गोप्य उच्चुः

जयति तेऽधिकं जन्मना वजः श्रयत इन्दिरा शशवद्वं हि ।  
 दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्तवयि धृतास्वस्तवां विचिन्वते ॥ १ ॥  
 शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दशा ।  
 सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद लिघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥  
 विषजलाप्यव्याद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।  
 वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयाद्वद्वभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥  
 न खलु गोपिकानन्दनो भवान्निलदेहिनामन्तरात्मदक् ।  
 विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥ ४ ॥  
 विरचिताभयं वृष्णिभुर्य ते चरणमयुषां संसृतेभयात् ।  
 करसरोहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥  
 व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनसयध्वंसनसित ।  
 भज सखे भवत्किकरीः स्म नो जलरुहाननं चाह दर्शय ॥ ६ ॥  
 प्रणतदेहिनां पापकर्दनं तृणकरानुगं श्रीनिकेतनम् ।  
 फणिफणार्पितं ते पदास्तुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥ ७ ॥  
 मधुरया गिरा वल्मुवाक्यया बुधमनोहया पुष्करेक्षण ।  
 विधिकरीरिमा वीर मुहूर्तीरधरसीमुनाऽप्याययस्व नः ॥ ८ ॥  
 तब कथासृतं तसजीवनं कविभिरीडितं कलमषापहम् ।  
 श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥  
 प्रहसितं श्रिय प्रेमचीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ।  
 रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥ १० ॥  
 चलसि यद् व्रजाचारयन् पश्चून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।  
 शिलसृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥ ११ ॥  
 दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं विभ्रदावृतम् ।  
 घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर्मनसि नः सर्वं वीर यच्छसि ॥ १२ ॥  
 प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।  
 चरणपङ्कजं शंतमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ १३ ॥  
 सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेषुना सुषु चुमितम् ।  
 इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽघरामृतम् ॥ १४ ॥

अटति यद् भवानहि काननं त्रुटियुगायते त्वाभपश्यताम् ।  
 कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्षमकृद् वशाम् ॥ १५ ॥  
 पतिसुतान्वयच्छ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्य  
 गतिविदस्त्वोद्दीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेचिशि ॥ १६ ॥  
 रहस्य संविदं हृच्छयोदर्य प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।  
 वृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुहाते मतः ॥ १७ ॥  
 व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्गं ते वृजिलहस्त्यलं विश्वमङ्गलम् ।  
 त्वज मनाक् च नस्त्वत्सप्तहृत्मनां स्वजनहृदुजां यश्शृदनम् ॥ १८ ॥  
 यत्ते सुजातचरणास्त्रुखहं स्तनेषु भीताः शनैः श्रिय दधीमहि कर्कदेषु ।  
 तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किञ्चित् कूर्पादिभिर्भूमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥

( श्रीमद्भागवत १० । ३१ । १-१९ )

( अनुवादक—स्वामीजी श्रीअवण्डानन्दजी सरस्ती )

गोपियाँ विरहावेशमें गाने लगीं—प्यारे ! तुम्हारे जन्मके कारण वैकुण्ठ आदि लोकोंसे भी व्रजकी महिमा बढ़ गयी है । तभी तो सौन्दर्य और मृदुलताकी देवी लक्ष्मीजी अपना निवासस्थान वैकुण्ठ छोड़कर यहाँ नित्य-निरन्तर निवास करने लगी हैं, इसकी सेवा करने लगी हैं । परंतु प्रियतम ! देखो तुम्हारी गोपियाँ, जिन्होंने तुम्हारे चरणोंमें ही अपने प्राण समर्पित कर रखें हैं, बन-बनमें भटककर तुम्हें हँड़ रही हैं ॥ १ ॥ हमारे प्रेमपूर्ण हृदयके स्वामी ! हम तुम्हारी विना मोलकी दासी हैं । तुम शरत्कालीन जलाशयमें सुन्दर-से-सुन्दर सरसिजकी कर्णिकाके सौन्दर्यको ऊरानेवाले नेत्रोंसे हमें धायल कर चुके हो । हमारे मनोरथ पूर्ण करनेवाले प्राणेश्वर ! क्या नेत्रोंसे मारना वध नहीं है ? अङ्गोंसे हत्या करना ही वध है ! ॥ २ ॥ पुरुषशिरोमणे ! यमुनाजीके विष्वेले जलसे होनेवाली मृत्यु, अजगरके स्तुपमें खानेवाले अघासुर, इन्द्रकी वर्षा, आँधी, विजली, दावानल, वृषभासुर और च्योमासुर आदिसे एवं भिन्न-भिन्न अवसरोंपर सब प्रकारके भयोंसे तुमने चार-चार हमलोगोंकी रक्षा की है ॥ ३ ॥ तुम केवल यशोदानन्दन ही नहीं हो; समस्त शरीरधारियोंके हृदयमें रहनेवाले उनके साक्षी हो, अन्तर्यामी हो । सखे ! ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे विश्वकी रक्षा करनेके लिये तुम यदुवंशमें अवतीर्ण हुए हो ॥ ४ ॥

अपने प्रेमियोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवालोंमें अग्रगण्य थदुवंशशिरोमणे ! जो लोग जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रसे दरकर तुम्हारे चरणोंकी शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें तुम्हारे करकमल अपनी छन्दछायामें लेकर अभय कर देते हैं ।

हमारे प्रियतम ! सबकी लालसा-अभिलाषाओंको पूर्ण करने-वाला वही करकमल, जिससे तुमने लक्ष्मीजीका हाथ पकड़ा है, हमारे सिरपर रख दो ॥ ५ ॥ व्रजवासियोंके दुःख दूर करनेवाले वीरशिरोमणि श्यामसुन्दर ! तुम्हारी मन्द-मन्द मुसकानकी एक उज्ज्वल रेखा ही तुम्हारे प्रेमीजनोंके सारे मानमदको चूर-चूर कर देनेके लिये पर्याप्त है । हमारे प्यारे सखा ! हमसे रुठो मत, प्रेम करो । हम तो तुम्हारी दासी हैं, तुम्हारे चरणोंपर निछावर हैं । हम अबलाओंको अपना वह परम सुन्दर साँबला-साँबला मुखकमल दिखलाओ ॥ ६ ॥ तुम्हारे चरणकमल शरणागत प्राणियोंके सारे पापोंको नष्ट कर देते हैं । वे समस्त सौन्दर्य-माधुर्यकी खान हैं और स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती रहती हैं । तुम उन्हों चरणोंसे हमारे बछड़ोंके पीछे-पीछे चलते हो और हमारे लिये उन्हें साँपके फणोंतकपर रखनेमें भी तुमने संकोच नहीं किया । हमारा हृदय तुम्हारी विरह-व्यथाकी आगसे जल रहा है, तुम्हारे मिलनकी आकाङ्क्षा हमें सता रही है । तुम अपने वे ही चरण हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हमारे हृदयकी ज्वालाको शान्त कर दो ॥ ७ ॥ कमलनयन ! तुम्हारी बाणी कितनी मधुर है ! उसका एक-एक पद, एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर मधुरातिमधुर है । बड़े-बड़े विद्वान् उसमें रम जाते हैं । उसपर अपना सर्वस्व निछावर कर देते हैं । तुम्हारी उसी बाणीका रसास्वादन करके तुम्हारी आज्ञा-करिणी दासी गोपियाँ मोहित हो रही हैं । दानवीर ! अब तुम अपना दिव्य अमृतसे भी मधुर अधर-रस पिलाकर हमें जीवन-दान दो, छका दो ॥ ८ ॥ प्रभो ! तुम्हारी लीलान्कथा

भी अमृतस्वरूपा है। विरहसे सताये हुए लोगोंके लिये तो वह जीवन-सर्वस्व ही है। बड़े-बड़े जानी महात्माओं—भक्त कवियोंने उसका गान किया है; वह सारे पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवणमात्रसे परम मङ्गल—परम फल्याणका दान भी करती है। वह परम सुन्दर, परम भद्रुर और यहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला-कथाका गान करते हैं, वास्तवमें भूलोकमें वे ही सबसे बड़े दाता हैं॥ ९॥ प्यारे ! एक दिन वह यह जब तुम्हारी प्रेमभरी हँसी और चितवन तथा तुम्हारी तरह-तरहकी क्रीडाओंका ध्यान करके हम आनन्दमें मग्न हो जाया करती थीं। उनका ध्यान भी परम मङ्गलदायक है; उसके बाद तुम मिले। तुमने एकान्तमें हृदयस्पर्शी ठिठोलियाँ कीं, प्रेमकी बातें कहीं। हमारे कपटी मित्र ! अब वे सब बातें याद आकर हमारे मनको क्षुब्ध किये देती हैं॥ १०॥

हमारे प्यारे स्वामी ! तुम्हारे चरण कमळसे भी सुकोमल और सुन्दर हैं। जब तुम गौओंको चरानेके लिये व्रजसे निकलते हो, तब यह सोचकर कि तुम्हारे वे युगल चरण कंकड़, तिनके और कुश-कॉटे गड़ जानेसे कष पाते होंगे, हमारा मन बेचैन हो जाता है। हमें बड़ा दुःख होता है॥ ११॥ दिन ढलनेपर जब तुम बनसे घर लौटते हो, तो हम देखती हैं कि तुम्हारे मुखकमलपर नीली-नीली अलकें लटक रही हैं और गौओंके खुरसे उड़-उड़कर धनी धूल पढ़ी हुई है। हमारे वीर प्रियतम ! तुम अपना वह सौन्दर्य हमें दिखा-दिखाकर हमारे हृदयमें मिलनकी आकाङ्क्षा—प्रेम उत्पन्न करते हो॥ १२॥ प्रियतम ! एकमात्र तुम्हीं हमारे सारे दुःखोंको मिटानेवाले हो। तुम्हारे चरणकमल शरणागत भक्तोंकी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती हैं और पृथ्वीके तो वे भूषण ही हैं। आपत्तिके समय एकमात्र उन्हींका चिन्तन करना उचित है, जिससे सारी आपत्तियाँ कट जाती हैं। कुञ्जविहारी ! तुम अपने वे परम कल्याणस्वरूप चरणकमल हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हृदयकी व्यथा शान्त कर दो॥ १३॥ वीरशिरोमणे ! तुम्हारा अधरामृत मिलनके सुखको, आकाङ्क्षाको बढ़ानेवाला है। वह विरहजन्य समस्त शोक-संतापको नष्ट कर देता है। वह गानेवाली बाँसुरी भलीभाँति उसे चूमती रहती है। जिन्होंने एक बार उसे पी किया, उन लोगोंको फिर दूसरों

और दूसरोंकी आसक्तियोंका स्मरण भी नहीं होता। हमे वीर ! अपना वही अधरामृत हमें वितरण करो, पिलाओ॥ १४॥ प्यारे ! दिनके समय जब तुम बनमें विहार करनेके लिये जाते हो, तब तुम्हें देखे बिना हमारे लिये एक क्षण युगके समान हो जाता है और जब तुम संह समय लौटते हो तथा बृंघराली अलकोंसे युक्त तुम्हारा ! सुन्दर मुखारविन्द हम देखती हैं, उस समय पलक गिरना हमारे लिये भार हो जाता है और ऐसा जान प है कि इन नेत्रोंकी पलकोंको बनानेवाला विधाता ! है॥ १५॥ प्यारे श्यामसुन्दर ! हम अपने पतिष्ठु, भवन्धु और कुल-परिवारका त्याग कर, उनकी इच्छा र आशाओंका उलझन करके तुम्हारे पास आयी हैं। हम तुम एक-एक चाल जानती हैं, संकेत समझती हैं और तुम भद्रुर गानकी गति समझकर, उसीसे मोहित होकर आयी हैं। कपटी ! इस प्रकार रात्रिके समय आयी युवतियोंको तुम्हारे सिवा और कौन त्याग सकता है॥ १६॥ प्यारे ! एकान्तमें तुम मिलनकी आकाङ्क्षा, प्रेम-भावको जग वाली बातें करते थे। ठिठोली करके हमें छेड़ते थे॥ १७॥ प्रेमभरी चितवनसे हमारी ओर देखकर मुसकरा देते थे॥ हम देखती थीं तुम्हारा वह विशाल वक्षःस्थल, जिस लक्ष्मीजी नित्य-निरन्तर निवास करती हैं। तबसे अब निरन्तर हमारी लालसा बढ़ती ही जा रही है और हमारा अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है॥ १७॥ प्यारे ! तुम्हारे यह अभिव्यक्ति व्रज-बनवासियोंके सभूर्ण दुःख-नापको ; करनेवाली और विश्वका पूर्ण मङ्गल करनेके लिये है। हम हृदय तुम्हारे प्रति लालसासे भर रहा है। कुछ थोड़ी-ऐसी ओषधि दो, जो तुम्हारे निजजनोंके हृदयरोगसे सर्व निर्मूल कर दे॥ १८॥ तुम्हारे चरण कमलसे भी सुकृम हैं। उन्हें हम अपने कठोर स्तानोंपर भी ढरते-ढरते थुंधीरेसे रखती हैं कि कहाँ उन्हें चोट न लग जाय। उन चरणोंसे तुम रात्रिके समय धोर जंगलमें छिपे-छिपे भट रहे हो ! क्या कंकड़, पत्थर आदिकी चोट लगानेये उन पीड़ा नहीं होती ! हमें तो हसकी सम्भावनामात्रसे ही नष्ट आ रहा है। हम अचेत होती जा रही हैं। श्रीकृष्ण श्यामसुन्दर ! प्राणनाथ ! हमारा जीवन तुम्हारे लिये है। हम तुम्हारे लिये जी रही हैं, हम तुम्हारी हैं॥ १९॥

## प्रेमस्वरूपा गोपियोद्धारा गाया हुआ युगलगीत

श्रीद्युक्त उचाच

गोप्यः कृष्णे बनं याते तमनुद्धृतचेतसः । कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥  
गोप्य ऊरुः

वामवाहुहृतवामकपोलो दलितभ्रुरधरापितवेणुम् ।  
कोमलाङ्गुलिभिरञ्जितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ २ ॥  
व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विसितास्तदुपधार्य सलजाः ।  
काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतमीव्यः ॥ ३ ॥  
हन्त चित्रमवलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ।  
नन्दसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो यहिं कृजितवेणुः ॥ ४ ॥  
बृन्दशो बजबृषा मृगमादो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ।  
दन्तदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ ५ ॥  
वर्हिणस्तत्कथातुपलाशैर्वज्मल्लपरिवर्हिविडम्बः ।  
कर्हिंचित् सबल आलि स गोपैर्गाः समाहृतिं यत्र मुकुन्दः ॥ ६ ॥  
तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतिम् ।  
स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः प्रेमवेपितमुजाः स्तिमितापः ॥ ७ ॥  
अनुचरैः समनुवर्णितवीर्यं आदिपूरुष इधाचलभूतिः ।  
वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्णेणुनाऽऽद्यति गाः स यदा हि ॥ ८ ॥  
वनलतास्तरब आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।  
श्रणतभारविडपा मधुधाराः प्रेमहृष्टनवः सस्तुजुः स्म ॥ ९ ॥  
दर्शनीयतिलंको वनमालादिव्यगन्धतुलसीमधुमत्त्वः ।  
अलिङ्गुलैरलघुगीतमभीष्मादियन् यहिं संधितवेणुः ॥ १० ॥  
सरसि सारसहंसविहङ्गाश्चाशगीतहृतचेतस एत्य ।  
हरिमुपासत ते यतचित्ता हन्त मीलितहृशो धृतमौनाः ॥ ११ ॥  
सहवलः स्वगचतंसविलासः सानुषु क्षितिभूतो बजदेव्यः ।  
हर्षयन् यहिं वेणुरवेण जातहर्ष उपरस्मति विश्वम् ॥ १२ ॥  
महदतिक्रमणशाङ्कतचेता मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः ।  
सुहृदमभ्यवर्षत् सुमनोभिद्वायया च विदधत् प्रतपत्रम् ॥ १३ ॥  
विविधगोपचरणेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ।  
तव सुतः सति यदाधरविम्बे दत्तवेणुरनयत् स्वरजातीः ॥ १४ ॥  
सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेषिपुरोगाः ।  
कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५ ॥

निजपदान्जदलैध्यजवज्ञनीरजाङ्गुश्वविचित्रललमैः ।

ब्रजभुवः शमयन् खुरतोदं वष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ १६ ॥

ब्रजति तेन वर्य सविलासवीक्षणापिंतमनोभववेगः ।

कुजगर्ति गमिता न विदामः कक्षमलेन कवरं वसनं वा ॥ १७ ॥

मणिधरः कचिदागणयन् गा मालया दयितगन्धतुलस्याः ।

प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥ १८ ॥

क्षणितवेणुरवचञ्चितचित्ताः कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ।

गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥ १९ ॥

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपमोधनवृतो यसुनायाम् ।

नन्दसुनुरनधे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥ २० ॥

मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं मानयन् मलयजस्पर्शेन ।

वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवदुः ॥ २१ ॥

वत्सलो ब्रजगवां यदगन्धो वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः ।

कृत्स्नगोधनमुपोहा दिनान्ते गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥ २२ ॥

उत्सवं श्रमस्वापि दशीनामुक्षयन् खुररजश्छुरितस्क् ।

दित्सवैति सुहृदाद्विष एष देवकीजटरभूरुदुराजः ॥ २३ ॥

मदविघूर्णितलोचन ईष्टमानदः खसुहृदां वनमाली ।

बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन् कनककुण्डललक्ष्या ॥ २४ ॥

यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते ।

मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं मोचयन् ब्रजगवां दिनतापम् ॥ २५ ॥

### श्रीशुक उवाच

एवं ब्रजस्थियो राजन् कृष्णलीला नु गायतीः । रेमिरेऽहसु तच्चित्तस्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥  
( श्रीमद्भागवत १०।३५।१—२६ )

( अनुवादक—स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती )

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णके गीओंको चरानेके लिये प्रतिदिन बनमें चले जानेपर उनके साथ गोपियोंका चित्त भी चल जाता था । उनका मन श्रीकृष्णका चिन्तन करता रहता और वे बाणीसे उनकी लीलाओंका गान करती रहतीं । इस प्रकार वे बड़ी कठिनाइसे अपना दिन चितातीं ॥ १ ॥

गोपियाँ आपसमें कहतीं—अरी सखी ! अपने प्रेमीजनों को प्रेम वितरण करनेवाले और द्वेष करनेवाले तकको मोक्ष दे देनेवाले श्यामसुन्दर नटनागर जब अपने वायं कपोलको

बायं बाँहकी ओर लटका देते हैं और अपनी भैंहं नचाते दुप बाँसुरीको अधरोंसे लगाते हैं तथा अपनी सुकुमार अंगुलियोंपे उसके छेदोंपर फिराते हुए मधुर तान छेड़ते हैं, उस गम सिद्धपत्रियाँ आकाशमें अपने पति सिद्धगण्योंके साथ त्रिमानोंपर चढ़कर आ जाती हैं और उस तानको सुनकर अनन्त री चकित तथा चिसित हो जाती हैं । पहले तो उन्हें अनेक चित्त तथा विस्मित हो जाती हैं । पहले तो उन्हें अनेक पतियोंके साथ रहनेपर भी चित्तकी यह दशा देखकर क्या मालम होती है; परंतु क्षणमरमें ही उनका नित्य प्रेमदाये बिंध जाता है, वे विश्वा और अचेत हो जाती हैं । उन्हें इन-

बातकी भी सुविध नहीं रहती कि उनकी नीची खुल गयी है और उनके बन्ध स्थिरक गये हैं ॥ २-३ ॥

अरी गोपियो ! तुम यह आश्र्यकी बात सुनो ! वे नन्दनन्दन कितने सुन्दर हैं । जब वे हँसते हैं तब हास्यरेखाएँ हारका रूप धारण कर लेती हैं, शुभ्र मोती-सी चमकने लगती हैं । अरी वीर ! उनके वक्षःस्थलपर लहराते हुए हारमें हास्यकी किरणें चमकने लगती हैं । उनके वक्षःस्थलपर जो श्रीवत्सकी सुनहरी रेखा है, वह तो ऐसी जान पड़ती है, मानो श्याम मेघपर विजली ही स्थिररूपसे बैठ गयी है । वे जब दुखीजनों-को मुख देनेके लिये, विरहियोंके मृतक शरीरमें प्राणोंका संचार करनेके लिये बाँसुरी बजाते हैं, तब वज्रके हुंड-के-हुंड बैल, गौँ और हरिन उनके पास ही दौड़ आते हैं । केवल आते ही नहीं, सरदी ! दाँतोंसे चबाया हुआ धासका ग्रास उनके मुँहमें ज्यों-का-त्यों पड़ा रह जाता है, वे उसे न निगल पाते और न तो उगल ही पाते हैं । दोनों कान खड़े करके इस प्रकार स्थिरभावसे खड़े हो जाते हैं, मानो सो गये हैं या केवल भीतपर लिखे हुए चित्र हैं । उनकी ऐसी दशा होना खाभाविक ही है, क्योंकि यह बाँसुरीकी तान उनके चित्तको चुरा लेती है ॥ ४-५ ॥

हे सखि ! जब वे नन्दके लाइले लाल अपने सिरपर मोरपंखका मुकुट बाँध लेते हैं, बुँबराली अलकोंमें फूलके गुच्छे खोंस लेते हैं, रंगीन धतुओंसे अपना अङ्ग-अङ्ग रँग लेते हैं और नये-नये पहँचोंसे ऐसा वेष सजा लेते हैं, जैसे कोई बहुत बड़ा पहलवान हो और फिर बलरामजी तथा बालबालों-के साथ बाँसुरीमें गौओंका नाम लें-लेकर उन्हें पुकारते हैं; उस समय प्यारी सखियो ! नदियोंकी गति भी रुक जाती है । वे चाहती हैं कि वायु उड़ाकर हमारे प्रियतमके चरणोंकी धूलि हमारे पास पहुँचा दे और उसे पाकर हम निहाल हो जायें, परंतु सखियो ! वे भी हमारे-जैसी ही मन्दभागिनी हैं । जैसे नन्दनन्दन श्रीकृष्णका आलिङ्गन करते समय हमारी भुजाएँ काँप जाती हैं और जड़तारुप संचारीभावका उदय हो जानेसे हम अपने हाथोंको दिला भी नहीं पाता, वैसे ही वे भी प्रेमके कारण काँपने लगती हैं । दो-चार बार अपनी तरङ्गरूपा भुजाओंको काँपते-काँपते उठाती तो अवश्य हैं, परंतु फिर विवश होकर स्थिर हो जाती हैं, प्रेमावेशसे सम्मित हो जाती है ॥ ६-७ ॥

अरी नीर ! जैसे देवताओंग अनन्त और अचिन्त्य ऐभायेंके स्तामी भगवान् नारदजनकी शक्तियोंका गान करते हैं,

वैसे ही ग्वालबाल अनन्तसुन्दर नटनागर श्रीकृष्णकी लीलाओं-का गान करते रहते हैं । वे अचिन्त्य ऐश्वर्य-सम्पन्न श्रीकृष्ण जब बृन्दावनमें विहार करते रहते हैं और बाँसुरी बजाकर गिरिराज गोवर्धनकी तराईमें चरती हुई गौओंको नाम लें-लेकर पुकारते हैं, उस समय वनके वृक्ष और लताएँ फूल और फलोंसे लद जाती हैं, उनके भासे डालियाँ छुककर धरती छूने लगती हैं, मानो प्रणाम कर रही हों, वे वृक्ष और लताएँ अपने भीतर भगवान् विष्णुकी अभिव्यक्ति सूचित करती हुई-सी प्रेमसे फूल उठती हैं, उनका रोम-रोम खिल जाता है और सब-की-सब मधुधराएँ उँड़ेलने लगती हैं ॥ ८-९ ॥

अरी सखी ! जितनी भी वस्तुएँ संसारमें या उसके बाहर देखनेयेग्य हैं, उनमें सबसे सुन्दर, सबसे मधुर, सबके शिरोमणि हैं—ये हमारे मनमोहन । उनके सौबले ललाटपर केसरकी खौर कितनी फबती है—वैस, देखती ही जाओ ! गलेमें बुधनोंतक लटकती हुई बनमाल, उसमें पिरोटी हुई तुलसीकी दिव्य गन्ध और मधुर-मधुसे मतवाले होकर हुंड-के-हुंड भौंरे बड़े मनोहर एवं उच्च स्वरसे गुंजार करते रहते हैं । हमारे नटनागर श्यामसुन्दर भौंरोंकी उस गुनगुनाहटका आदर करते हैं और उन्हींके स्वर-में-स्वर मिलाकर अपनी बाँसुरी फूँकने लगते हैं । उस समय सखि ! उस भुनिजनमोहन संगीतको सुनकर सरोवरमें रहनेवाले सारस-हंस आदि पक्षियों-का भी चित्त उनके हाथसे निकल जाता है, छिन जाता है । वे विवश होकर प्यारे श्यामसुन्दरके पास आ बैठते हैं तथा आँखें मूँद, चुपचाप, चित्त एकाग्र करके उनकी आराधना करने लगते हैं—मानो कोई विहङ्गमवृत्तिके रसिक परमहंस ही हैं, भला कहो तो यह कितने आश्र्यकी बात है ! ॥ १०-११ ॥

अरी ब्रजदेवियो ! हमारे श्यामसुन्दर जब पुष्पोंके कुण्डल बनाकर अपने कानोंमें धारण कर लेते हैं और बलरामजीके साथ गिरिराजके शिखरोंपर खड़े होकर सारे जगत्‌को दर्शित करते हुए बाँसुरी बजाने लगते हैं—बाँसुरी क्या बजाते हैं, आनन्दमें भरकर उसकी ध्वनिके द्वारा सारे विश्वका आलिङ्गन करने लगते हैं—उस समय श्याम मेघ बाँसुरीकी तानके साथ मन्द-मन्द गरजने लगता है । उसके चित्तमें इस बातकी शङ्का यनी रहती है कि कहीं मैं जोरसे गर्जना कर उड़ूँ और वह कहीं बाँसुरीकी तानके विपरीत पड़ जाय, उसमें वेसुरापन ले आये, तो मुझसे महात्मा श्रीकृष्णका अपराध हो जायगा । सखी ! वह इतना ही नहीं करता; वह जब देखता है कि हमारे सखा घनस्थामको धाम लग रहा है, तब वह उनके

ऊपर आकर छाया कर लेता है, उनका छच बन जाता है। अरी वीर ! वह तो प्रसन्न होकर बड़े प्रेमरे उनके ऊपर अपना जीवन ही निछावर कर देता है—ननही-ननहीं झुहियोंके रूपमें ऐसा वरसने लगता है, मानो दिव्य पुष्पोंकी वर्षा कर रहा हो। कभी-कभी बादलोंकी ओटमें छिपकर देवतालोग भी पुष्पवर्षा कर जाया करते हैं ॥ १२-१३ ॥

सतीशिरोमणि यशोदाजी ! तुम्हारे सुन्दर कुँवर ग्वालबालों-के साथ खेल खेलनेमें बड़े निपुण हैं। रानीजी ! तुम्हारे लाडले लाल सबके प्यारे तो हैं ही, चतुर भी बहुत हैं। देखो, उन्होंने बाँसुरी बजाना किसीसे सीखा नहीं। अपने ही अनेकों प्रकार-की राग-रागिनियाँ उन्होंने निकाल लीं। जब वे अपने बिम्बा-फल-सहशा लाल-लाल अधरोंपर बाँसुरी रखकर ऋषभ, निषाद आदि स्वरोंकी अनेक जातियाँ बजाने लगते हैं, उस समय वंशीकी परम मोहिनी और नयी तान सुनकर ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता भी—जो सर्वश हैं—उसे नहीं पहचान पाते। वे इतने मोहित हो जाते हैं कि उनका चित्त तो उनके रोकनेपर भी उनके हाथसे निकलकर वंशीवनिमें तल्दीन हो ही जाता है, सिर भी छुक जाता है, और वे अपनी सुध-बुध खोकर उसीमें तन्मय हो जाते हैं ॥ १४-१५ ॥

अरी वीर ! उनके चरणकमलोंमें ध्वजा, बञ्ज, कमल, अङ्गुष्ठा आदिके विचित्र और सुन्दर-सुन्दर चिह्न हैं। जब वज्रभूमि गौओंके खुरसे खुद जाती है, तब वे अपने सुकुमार चरणोंसे उसकी पीड़ा मिटाते हुए गजराजके समान मन्दगति-से आते हैं और बाँसुरी भी बजाते रहते हैं। उनकी वह वंशीध्वनि, उनकी वह चाल और उनकी वह विलासभरी चित्तवन हमारे हृदयमें प्रेमका, मिलनकी आकाङ्क्षाका आवेग बढ़ा देती है। हम उस समय इतनी मुग्ध, इतनी मोहित हो जाती हैं कि हिल-डोलतक नहीं सकतीं, मानो हम जड़ बृक्ष हों। हमें तो इस बातका भी पता नहीं चलता कि हमारा ज़ड़ा खुल गया है या बँधा है, हमारे शरीरपरका वस्त्र उत्तर गया है या है ॥ १६-१७ ॥

अरी वीर ! उनके गलेमें मणियोंकी माला बहुत ही भली मालूम होती है। तुलसीकी मधुर गन्ध उन्हें बहुत प्यारी है। इसीसे तुलसीकी मालाको तो वे कभी छोड़ते ही नहीं, सदा धारण किये रहते हैं। जब वे श्यामसुन्दर उस मणियोंकी मालसे गौओंकी गिनती करते-करते किसी प्रेमी सखाके गलेमें बाँह ढाल देते हैं और भाव बता-बताकर बाँसुरी

बजाते हुए गाने लगते हैं, उस समय बजती हुई उन बाँसुरीके मधुर स्वरसे मोहित होकर कृष्णसार मूर्गोंकी लंग इरिनियाँ भी अपना चित्त उनके चरणोंपर निछावर कर देते हैं और जैसे हम गोपियाँ अपने ग्र-गृहस्थीकी आशा-अभिलाषा छोड़कर गुणसागर नागर नन्दननन्दनको धेरे रहती हैं, कैसे ही वे भी उनके पास दौड़ आती हैं और वहीं एकद देखती हुई खड़ी रह जाती हैं, लौटनेका नाम नहीं लेती ॥ १८-१९ ॥

नन्दरानी यशोदाजी ! वास्तवमें तुम बड़ी पुण्यती हो। तभी तो तुम्हें ऐसे पुष्प मिले हैं। तुम्हारे वे लाडले लाल वे प्रेमी हैं, उनका चित्त बड़ा कोमल है। वे प्रेमी सखाओंतो तरह-तरहसे हास-परिहासके द्वारा सुख पहुँचाते हैं। कुन्दकलीका हार पहनकर जब वे अपनेको धिन्धित वेषमें उड़ा लेते हैं और ग्वाल-बाल तथा गौओंके साथ यमुनाजीके तद्यम खेलने लगते हैं, उस समय मल्यज चन्दनके समान शील और सुगन्धित स्वर्णसे मन्द-मन्द अनुकूल बहकर वायु तुम्हारे लालकी सेवा करती है और गन्धर्व आदि उद्येषों वंदीजनोंके समान गा-बजाकर उन्हें संतुष्ट करते हैं तक अनेकों प्रकारकी भेंटें देते हुए सब औरसे धेरकर उनकी सेवा करते हैं ॥ २०-२१ ॥

अरी सखी ! श्यामसुन्दर ब्रजकी गौओंसे बड़ा प्रेम करते हैं। इसीलिये तो उन्होंने गोवर्धन धारण किया था। अब वे सब गौओंको लौटाकर आते ही होंगे; देखो। सायंकाल हो चला है। तब इतनी देर क्यों होती है एसी! रास्तेमें बड़े-बड़े ब्रह्मांआदि वयोवृद्ध और शङ्कर आदि शत्रूय उनके चरणोंकी बन्दना जो करने लगते हैं। अब गौओंमें पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए वे आते ही होंगे। ग्वाल-बाल उनकी कीर्तिका गान कर रहे होंगे। देखो न, यह क्या आरहे हैं। गौओंके खुरोंसे उड़-उड़कर बहुत-सी धूल बनमालातां पड़ गयी है। वे दिनभर जंगलोंमें धूमते-धूमते यक गये हैं। फिर भी अपनी इस शोभासे हमारी आँखोंको कितना तुल, कितना आनन्द दे रहे हैं। देखो, वे यशोदाकी कोसले प्रसर हुए सबको आङ्गादित करनेवाले चन्द्रमा हम प्रेमी जहाँसी भलाईके लिये, हमारी आशा-अभिलापाओंको पूर्ण करनेके लिये ही हमारे पास चले आ रहे हैं ॥ २२-२३ ॥

सखी ! देखो कैसा सौन्दर्य है। मदभरी आँखें कुछ नहीं हुई हैं। कुछ-कुछ ललाई लिये हुए कैसी भली जान फूटी

है। गलेमें बनमाला लहरा रही है। सोनेके कुण्डलोंकी कान्ति-से वे अपने कोमल कपोलोंको अलड़ूत कर रहे हैं। इसीसे मुँहपर अष्टपके बेरके समान कुछ पीलापन जान पड़ता है। और रोम-रोमसे, विशेष करके मुखकमलसे प्रसन्नता फूटी पड़ती है। देखो, अब वे अपने सखा खालबालोंका सम्मान करके उन्हें विदा कर रहे हैं। देखो, देखो सखी! व्रज-विभूषण श्रीकृष्ण गजराजके समान मदभरी चालसे इस संघ्य-बैलोंमें हमारी ओर आ रहे हैं। अब व्रजमें रहनेवाली गौओंका, हमलोगोंका दिनभरका अस्थ विरह-ताप मिथानेके

लिये उदित होनेवाले चन्द्रमाकी भाँति ये हमारे प्यारे श्याम-सुन्दर समीप चले आ रहे हैं ॥ २४-२५ ॥

श्रीकृष्णदेवजी छहते हैं—परीक्षित् । वडभागिनी गोपियोंका मन श्रीकृष्णमें ही लगा रहता था । वे श्रीकृष्णमय हो गयी थीं । जब भगवान् श्रीकृष्ण दिनमें गौओंको चरानेके लिये बनमें चले जाते, तब वे उन्होंका चिन्तन करती रहतीं और अपनी-अपनी सत्तियोंके साथ बालग-बलग उन्होंकी लीलाओंका गान करके उसीमें रम जातीं । इस प्रकार उनके दिन बीत जाते ॥ २६ ॥

## शेषशायी भगवान् विष्णुका ध्यान

|                                                                  |                                  |
|------------------------------------------------------------------|----------------------------------|
| शृणालगौरायतशेषभोगपर्यङ्क                                         | एकं पुरुषं श्यानम् ।             |
| फणातपत्रायुतमूर्धरत्त्वयुभिर्हतध्वान्तयुगान्ततोये ॥ १ ॥          |                                  |
| प्रेक्षां क्षिपन्तं हरितोपलाद्रे:                                | संघ्याक्षर्णीवेद्यकृष्णसमूर्धः । |
| रत्नोदधारौषधिसौमनस्यवनस्त्वजो                                    | वेणुभुजाऽविपालङ्घेः ॥ २ ॥        |
| आयामतो विस्तरतः समानदेष्वेन                                      | लोकश्यसंप्रदेष ।                 |
| विचित्रदिव्याभरणांशुकानां कृतश्चियापाशितवेषदेहम् ॥ ३ ॥           |                                  |
| पुंसां स्वकामाय विचित्रमार्गंरथ्यर्थातां कामदुष्यालूपिष्ठम् ।    |                                  |
| प्रदर्शयन्तं कृपया नखेन्द्रमयूखभिन्नाकुलिचाहपञ्चम् ॥ ४ ॥         |                                  |
| मुखेन लोकार्तिहरसितेन परिस्फुरत्कुण्डलमण्डितेन ।                 |                                  |
| शोणायितेनाधरविम्बभासा प्रत्यर्हयन्तं सुनखेन सुख्या ॥ ५ ॥         |                                  |
| कदम्बकिञ्चलकपिशङ्गवाससा स्वलंकृतं मेखलया नितम्बे ।               |                                  |
| हारेण चानन्तधनेन वत्स श्रीवत्सवदःस्थलवल्लभेन ॥ ६ ॥               |                                  |
| परार्थकेयूरमणिप्रयोकपर्यस्तदोदैण्डसहस्रशाखम् ।                   |                                  |
| अव्यक्तमूलं भुवनालूपिष्ठेन्द्रमहीन्द्रभोगैरधिचीतवल्लम् ॥ ७ ॥     |                                  |
| चराचरौको भगवन्महीन्द्रमहीन्द्रवन्धुं सलिलोपगूढम् ।               |                                  |
| किरीटसाहस्रहिरण्यप्रद्वामविर्भवत्कौस्तुभरत्वगर्भम् ॥ ८ ॥         |                                  |
| निवीतमास्त्रायमधुव्रतश्रिया स्वकीर्तिमस्या वनमालया हरिम् ।       |                                  |
| स्यैन्दुवारवग्न्यगमं त्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधनिकैरुरासदम् ॥ ९ ॥ |                                  |

( श्रीमद्रागवत ३।८।२३—३१ )

( अनुवादक—स्तामीजी श्रीवृषभानन्दजी सरस्वती )

उस प्रलयकालीन जलमें शेषजीके कमलनालसदृश गौर और विशाल विग्रहकी शर्यापर पुरुषोत्तम भगवान् अकेले ही लेटे हुए हैं। शेषजीके दस हजार फण छत्रके समान फैले हुए हैं। उनके मस्तकोंपर किरीट धोभायमान हैं, उनमें जो

मणियाँ जड़ी हुई हैं, उनकी कान्तिसे चारों ओरका अन्धकार दूर हो गया है ॥ १ ॥ वे अपने श्याम शरीरकी आभासे मरकतमणिके पर्वतकी शोभाको लजित कर रहे हैं। उनकी कमराक पीतपट पर्वतके प्रान्त देशमें छाये हुए सायंकार-

पिले-पिले नमकीले नेघोंकी आभाको महिन कर रहा है फिरएर सुखोमित सुवर्णसुकुट सुवर्णमय विश्वरोका मान मर्दन कर रहा है । उनकी वनमाला पर्वतके रक्ष, जलधारा, ओषधि और पुष्पोंकी शोभाको परात कर रही है तथा उनके भुजदण्ड वेणुगदका और चरण वृक्षोंका विश्वराकर करते हैं ॥ २ ॥ उनका नहीं थीविग्रह अपने परिमाणसे लंबाई-चौड़ाईमें विलोकी-का संग्रह किये हुए हैं । वह अपनी शोभामें विनिमय एवं दिव्य वस्त्रागृहोंकी शोभाको सुखोमित करवेगला होनेपर भी पीताम्बर आदि अपनी वेष-भूषाएं सुशुभ्रित हैं ॥ ३ ॥ अपनी-अपनी अभिलासकी पूर्तिके लिये भिन्न-भिन्न भागोंसे पूजा करनेवाले भक्तजनोंको कुण्ठपूर्वक अपने भक्तवत्त्व-कल्पतरु चरणकमलोंका दर्शन दे रहे हैं, जिनके सुन्दर अंगुलिदल नस्तन्द्रकी लक्ष्मीकासे अलग-अलग स्वरूप चमकते रहते हैं ॥ ४ ॥ सुन्दर नासिका, अमुग्धवर्णी भौमें, कानोंमें शिलमिजाते हुए कुण्ठलोंकी शोभा विमाकलके समान लाल-लाल अधरोंकी कनित एवं लोकांतिहारी सुसकानसे कुक्कु सुखारविन्दके द्वारा वे अपने उपासकोंका समान—अभिनन्दन कर रहे हैं ॥ ५ ॥ वस्तु । उनके नितन्वदेशमें कदम्बकुसुम-

की केतरके समान पीतवस्त्र और सुखर्मसी मेवल तुलने हैं तथा वक्षभस्त्रमें अमूल्य हार और सुखहरी रेखाहोंके वल्सिचिह्नकी अपूर्वी शोभा हो रही है ॥ ६ ॥ वे अकल्प चन्दनवृक्षके समान हैं । महामूल्य केदूर और उत्तराञ्ज मियांगसे सुखोमित उनके विश्वल भुजदण्ड ही मानोंकी सहस्रों शालाएँ हैं और चन्दनके इक्षोंमें से यहों साँप छिपटे रहते हैं । उसी प्रकार उनके कंठोंको होकीं फणोंने ल्येट रखा है ॥ ७ ॥ वे नगराज अनन्तके देव श्रीनारायण ऐसे जास पढ़ते हैं मानोंको देव जलसे कुप्रवर्तपर जैसे जनोंको जीव रक्षते हैं उन प्रकार वे सम्पूर्ण चराचरके आश्रम हैं । शेषजीके फाँसों व सहस्रों सुकुटें हैं वे ही मानों उस पर्वतके सुखण्डिण विलाहैं तथा वक्षभस्त्रमें विश्वभान कौतुभमणि उत्तरके प्रकट हुआ रख है ॥ ८ ॥ प्रसुके गलेमें वेदस्त्र मैति गुज्जायमान अपनी कीर्तिमयी वनमाला विराज रही है । चन्द्र वायु और अग्नि आदि देवताओंकी मी आपलके नहीं हैं तथा जिसुनमें बेरोकटोंके विचरण करता सुर्दीनमकादि आयुध भी प्रसुके आपमात्र ही पूर्ण हैं । उनके लिये मी आप अवक्तु दुर्लभ हैं ॥ ९ ॥

## भगवान् विष्णुका ध्यान

प्रसन्नवदनाभ्योजं पद्मगर्भरुणेष्यग्रम् । नीलोत्पलदलश्यामं शहृचकगदाधरम् ॥ १ ।  
लस्तपद्मजकिञ्जलकपीतकौशेयवाससम् । श्वीवस्तवश्वसं भाजत्कौस्तुभासुककन्धरम् ॥ २ ॥  
मत्तद्विरेकलया परीतं वनमालया । परार्द्धहारवलयविरीटाङ्गदनपुरम् ॥ ३ ॥  
काञ्जीणुणोलुपच्छ्रेणिं हृदयस्त्रोजविष्ट्रम् । दर्दनीयतमं शान्तं मनोनयवर्धतम् ॥ ४ ॥  
अपीत्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्तुतम् । सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यनुप्रवकातरम् ॥ ५ ॥  
कीतन्त्रीर्थशस्त्रं पुण्यश्लोकग्रस्तकरम् । व्यायेवेवं समग्राङ्गं यात्राच च्यवते मतः ॥ ६ ॥  
शितं वजन्तमासीनं शायानं वा गुहशश्यम् । प्रेषणांयेहितं च्यायेच्छुद्धपायेन चेतसा ॥ ७ ॥  
तस्मिन्लघ्वपदं चित्तं सर्ववयवसंस्थितम् । चिलक्ष्यैकजं संमुज्ज्यादहौ भगवतो मुति ॥ ८ ॥  
संक्षित्येद्गवत्प्रवरणारविन्दं वज्राङ्गुश्चजस्योसहलाङ्गुताल्यम् ।  
उत्तुद्वरकविलसव्यवचकवालज्योत्स्नामिरादत्महद्वृद्यान्वकारम् ॥ ९ ॥  
वच्छौचनिःस्तुतसरित्यवरोदकेन तीर्थेन मूर्ज्यविष्णुतेन शश्वः शिवोऽभूत् ।  
च्यातुर्मनःशमलशैलनिसुप्रवज्ञं च्यायेविरं भगवत्प्रवरणारविन्दम् ॥ १० ॥  
जातुहर्यं जलजलोचनया जनन्या लक्ष्याविलस्य सुरवन्दितप्रा विधातुः ।  
ऊर्वांगधाय करपहुचरेविश यत् संलालितं हृदि विभोरमन्मय कुर्यात् ॥ ११ ॥

अरु सुपर्णभुजयोरधिक्षोभमानावेजोनिधी अंतसिकाकुसुमाचभासौ ।  
व्यालसिवपीतवरचाससि वर्तमानकाञ्चीकलापपरिरम्भ नितम्बविम्बम् ॥१२॥  
नामिहदं भुवनकोशगुहोदरस्यं यत्रात्मयोनिधिषणाखिललोकपदाम् ।  
व्यूहं हरिन्मणिवृष्टस्तनयोरसुष्य ध्यायेद् द्वयं विशदहारमयूखगौरम् ॥१३॥  
बक्षोऽधिवासस्मृथमस्य महाविभूतेः पुंसां मनोनशननिर्वृतिभादधानम् ।  
कण्ठं च कौस्तुभमणोरधिभूषणार्थं कुर्यान्मनस्याखिललोकतमस्कृतस्य ॥१४॥  
वाहुंश्च मन्दरगिरे: परिवर्तनेन निर्णिकवाहुवलयानधिलोकपालान् ।  
संचिन्तयेदशशतारमसहातेजः शङ्खं च तत्करसरोहरणजहंसम् ॥१५॥  
कौमोदकीं भगवतो दयितां सरेत दिग्धामरातिभटशोणितकर्दमैन ।  
मालां यथुवतवस्थगिरोपघुणां चैत्यस्य तत्त्वममलं मणिमस्य कण्ठे ॥१६॥  
भृत्यानुकम्पितथियेह गृहीतमूर्तेः संचिन्तयेद्भगवतो वदनारविन्दम् ।  
यद्विस्फुरन्मकरकुण्डलयसितेन विद्योतितामलकपोलसुदारनासम् ॥१७॥  
यच्छ्रीनिकेतमलिम्भिः परिसेव्यमानं भूत्या स्या कुटिलकुन्तलवृन्दजुष्म् ।  
मीनदयात्रयमधिक्षिपदज्जनेत्रं ध्यायेनमनोमयमतन्त्रित उल्लसदभ्र ॥१८॥  
तस्यावलोकमधिकं कृपयातिघोरतापत्रयोपशमनाय निसुष्मक्षणोः ।  
स्त्रिऋसितानुगुणितं विपुलप्रसादं ध्यायेच्चिरं विपुलभावनया गुहायाम् ॥१९॥  
हस्तं हरेरवनताखिललोकतीवशोकाश्चसागरविशेषोपणमत्युदारम् ।  
समोहनाय रचितं निजमाययास्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरच्चजस्य ॥२०॥  
ध्यानायलं प्रहसितं बहुलाध्येषुभासारुण्यायितत्तुदिजकुन्दपडक्ति ।  
ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य विष्णोर्भक्त्याऽद्र्ययार्पितमना त पृथग्दिवक्षेत ॥२१॥

( श्रीमद्भागवत ३ । २८ । २३—३३ )

( अनुवादक—स्वामीजी श्रीभक्तपूर्णदातन्दजी सरस्वती )

भगवानका मुखकमल आनन्दसे प्रकृष्ट है, नेत्र कमल-  
कोशके समान रतनरे हैं, शरीर नीलकमलदलके समान श्याम  
है; हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा (पद्म) धारण किये हैं ॥ १ ॥  
कमलकी केसरके समान वीला रेतमी वस्त्र लहरा रहा है,  
वक्षःस्तलमें श्रीवत्सचिह्न है और गलेमें कौस्तुभमणि क्षिणि-  
मिला रही है ॥ २ ॥ बनमाला चरणोत्क लटकी हुई है,  
जिसके जारी ओर भासर सुगन्धसे मतवाले होकर मधुर  
गुंजार कर रहे हैं; अङ्ग-प्रयाङ्गमें भद्रामूल्य हार, कङ्कण,  
किरीट, भुजयन्त्र और नूपुर आदि आध्यात्मिक विराजमान हैं  
॥ ३ ॥ वरमर्मे करधनीकी लड़ियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही  
हैं; भत्तोंके छट्टकमल ही उनके आसन हैं, उनका दर्शनीय  
स्यामसुन्दर स्वरूप अत्यन्त शान्त एवं भग और नदिनोंको  
आनन्दित करनेवाला है ॥ ४ ॥ उनकी अति दुन्दर किशोर

अवस्था है, वे भक्तोंपर कृपा करनेके लिये आतुर हो रहे हैं।  
 बड़ी समोहर जाँकी है । भगवान् सदा सम्पूर्ण लोकोंसे  
 बन्दित हैं ॥ ५ ॥ उनका पवित्र यथा परम कीर्तनीय है और  
 वे राजा बलि आदि परम यशस्वियोंके भी यशको बढ़ानेवाले  
 हैं । इस प्रकार श्रीनारायणदेवका सम्पूर्ण अज्ञोंके सहित  
 तनतक ध्यान करे; जबतक चित्त वहाँसे हटे नहीं ॥ ६ ॥  
 भगवान्की लीलाएँ बड़ी दर्शनीय हैं; अतः अपनी सचिके  
 अनुसार खड़े हुए, चलते हुए, नैठे हुए, पौढ़े हुए जश्चा  
 अन्तर्यामीरूपमें स्थित हुए उनके स्वरूपका विशुद्ध भावयुक्त  
 चित्तसे चिन्तन करे ॥ ७ ॥ इस प्रकार योगी जब यह अच्छी  
 तरह देख ले कि भगवद्गिरिहमें चित्तकी स्थिति हो गई, तब  
 वह उनके समस्त अज्ञोंमें ल्पे हुए चित्तको विदेष रूपसे  
 एक-एक अज्ञमें ल्पावे ॥ ८ ॥

भगवान्‌के चरणकमलोंका ध्यान करना चाहिये । एवं वप्र, अङ्गुश्छ, ध्वजा और कमलके मञ्जुलमय चिह्नोंसे युक्त हैं तथा आपने उभरे हुए लाल-लाल शोभामय नखचन्द्र-मण्डलकी चिन्हिकारी ध्यान करनेवालोंके हृदयके अङ्गामरूप पौर अन्धकारको दूर कर देते हैं ॥ ९ ॥ इन्हींकी शोकनसे नदियोंमें शेष श्रीगङ्गाजी प्रकट हुई थीं, जिनके पवित्र लल्की मस्तकपर धारण करनेके कारण स्वयं मञ्जुलरूप श्रीमहादेवजी और भी अधिक मञ्जुलमय ही रहे । ये अपना ध्यान करनेवालोंके पापरूप पर्वतोंपर होड़े हुए इन्द्रके वज्रके समान हैं । भगवान्‌के इन चरणकमलोंका चिरकालतक चिन्तन करे ॥ १० ॥

भगवन्महारी अजन्मा श्रीहरिकी दोनों पिंडियों एवं नौंका ध्यान करे, जिनको विश्वविधाता ब्रह्माजीकी सुखबन्दिता कमललोचना लक्ष्मीजी अपनी जाँघोंपर तर अपने कानितमान् कर-किसलयोंकी कान्तिसे लाड़ ती रहती हैं ॥ ११ ॥ भगवान्‌की जाँघोंका ध्यान करे, एवं ग्रन्थजीकी पीठपर शोभायमान हैं । भगवान्‌के नितम्ब-विम्बका ध्यान करे, जो एड़ीतक लटके हुए पीताम्बरसे ढका हुआ है और उस पीताम्बरसे ऊपर पहनी हुई सुखर्णभयी करघनीकी लङ्घियोंको आलिङ्गन कर रहा है ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण लोकोंके अश्रवस्थान भगवान्‌के उदरदेशमें स्थित नाभिसरोवरका ध्यान करे; इसीमेंसे ब्रह्माजीका आधाभूत सर्वलोकमय कमल प्रकट हुआ है । फिर प्रसुके शेष मरकत-मणिसदृश दोनों स्तनोंका चिन्तन करे, जो वक्षःस्थलपर पढ़े हुए शुभ हारोंकी किरणोंसे गौरवर्ण जान पड़ते हैं ॥ १३ ॥ इसके पश्चात् पुरुषोत्तम भगवान्‌के वक्षःस्थलका ध्यान करे, जो महालक्ष्मीका निवासस्थान और लोगोंके मन एवं नैऋतोंका धानन्द देनेवाला है । फिर सम्पूर्ण लोकोंके बद्नीय भगवान्‌के गलेका चिन्तन करे, जो मानों कौतुकमणिको भी सुशोभित करनेके लिये ही उसे धारण करता है ॥ १४ ॥

समस्त लोकपालोंकी आश्रयभूता भगवान्‌की चारों भुजाओं-का ध्यान करे, जिनमें धारण किये हुए कङ्गादि आभूषण समुद्रमन्थनके समय मन्दराचलकी राहउठे और भी उज्ज्व

हो गये हैं । इसी प्रकार जिसके तैजसी सहम नहीं हो जा सकता, उस सहस्र धारोंवाले सुदर्शनचक्र त उनके कर-कमलमें राजहंसके समान विराजमान शुद्ध चिन्तन करे ॥ १५ ॥ फिर विष्णु वीरोंके शिरोंसे हुई प्रसुकी प्यारी कौमोदिकी गदाका, भैरोंके हाथे गुंजायमान बनमालाका और उनके कण्ठमें सुशोभित भगवान्‌जीवोंके निर्मलतत्त्वरूप कौतुकमणिका ध्यान करें ॥ १६ ॥

भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही यहाँ साकार ल्प शुल करनेवाले श्रीहरिके मुखकमलका ध्यान करो, जो हुए नासिकासे सुशोभित है और शिलमिलते हुए मकरहृ कुण्डलोंके हिलनेसे अतिशय प्रकाशमान स्वरूप होकरे कारण बड़ा ही मनोहर जान पड़ता है ॥ १७ ॥ कलौ काली हुँघराली अलकावलीसे मणिष भगवान्‌का मुखमध्य अपनी छविके द्वारा भ्रमरोंसे सेवित कमलकोशीसे तिरस्कार कर रहा है और उनके कमलसदृश विशाल एवं चब्बल नेत्र उस कमलकोशीपर उछलते हुए मठालींजोड़की शोभाको मात कर रहे हैं । उच्चत प्रस्तरोंसे सुशोभित भगवान्‌के ऐसे मनोहर मुखारविन्दीका मतसे भासा करके आलस्यरहित हो उसीका ध्यान करे ॥ १८ ॥

द्वदशगुहामें चिरकालतक भक्तिभावसे भगवान्‌के नैऋती चितवनका ध्यान करना चाहिये—जो दृश्यसे और प्रेमासे मुखकानसे क्षण-क्षण अधिकाधिक बढ़ती रहती है तिरु प्रसादकी वर्षा करती रहती है और भक्तजनोंके अवस्थाएँ तीनों तापिंगोंको शान्त करनेके लिये ही प्रकट हुई है ॥ १९ ॥ श्रीहरिका हास्य प्रणातजनोंके तीव्र-से-तीव्र शोकके अशुणातो लुखा देता है और अत्यन्त उदार है । मुनियोंके दिवोंनिम कामदेवको मोहित करनेके लिये ही अपनी मायासे भीतिये अपने भ्रमण्डलको बनाया है—उनका ध्यान फरमा जाए ॥ २० ॥ अत्यन्त प्रेमार्द्धमादरे अपने हृदयमें विराजमान श्रीहरिके खिलखिलाकर हँसनेका ध्यान करे, जो पवृत्ति स्थानके ही योग्य है तथा जिसमें ऊपर और नीचेके दोनों होठोंकी अत्यधिक अरुण कान्तिके कारण उनके उत्तरदारी समान शुभ्र छोटे-छोटे दाँतोंपर लालिमा-सी प्रतीत देने लगे हैं । इस प्रकार ध्यानमें तन्मय होकर उनके दिवा रिये अन्य पदार्थको देखनेकी इच्छा न करे ॥ २१ ॥

## भगवान् श्रीरामका ध्यान

### लोमश उवाच

अयोध्यानगरे रथे चित्रमण्डपशोभिते । ध्यायेत् कल्पतरोमूले सर्वकामसमृद्धिदम् ॥  
 महामरकतस्वर्णनीलरत्नादिशोभितम् । सिंहासनं चित्तहरं कान्त्या तामित्रनाशनम् ॥  
 तबोपरि समासीनं रथुराजं मनोहरम् । दूर्वादलदयामततुं देवं देवेन्द्रपूजितम् ॥  
 राकायां पूर्णशीतांशुकान्तिधिकारिवक्त्रणम् । अष्टमीचन्द्रशकलसमभालविधारितम् ॥  
 नीलकुन्तलशोभालयं किरीटमणिरक्षितम् । मकराकारसौन्दर्यकुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥  
 विद्रुमप्रभसत्कान्तिरदच्छदविराजितम् । तारापतिकराकारद्विजराजिसुशोभितम् ॥  
 जगपुष्पायथया मद्व्या जिह्वया शोभिताननम् । यस्यां वसन्ति निगमा श्रूगाद्याः शाष्ट्रसंयुताः ॥  
 कम्बुकान्तिवरणीवायोभया समलंकृतम् । सिंहवद्वृक्षकौ स्कन्धौ मांसलौ विभ्रतं वरम् ॥  
 वाहू दधानं दीर्घाङ्गौ केयूरकटकाङ्कितौ । मुद्रिकाहारिशोभामिर्मूषितौ जानुलम्बितौ ॥  
 चक्षो दधानं विपुलं लक्ष्मीवासेन शोभितम् । श्रीवत्सदिविचित्राङ्कैरङ्कितं सुमनोहरम् ॥  
 महोदरं महानाभिं शुभकल्पा विराजितम् । काञ्चन्यावै मणिमण्ड्या च विशेषण श्रियान्वितम् ॥  
 ऊरुभ्यां विमलाभ्यां च जानुभ्यां शोभितं श्रिया । चरणाभ्यां वज्रेखायवाङ्मुख्यम् ॥  
 युताभ्यां शेषिद्येयाभ्यां कोमलाभ्यां विराजितम् । ध्यात्वा स्मृत्वा च संसारसागरं त्वं तरिष्यसि ॥  
 तमेव पूजयेन्नित्यं चन्दनादिभिरिच्छया । प्राप्नोति परमामृद्धिमैहिकामुमिकीं पराम् ॥  
 त्वया पृष्ठं महाराज रामस्य ध्यानमुत्तमम् । तत् ते कथितमेतद् वै संसारजलधि तर ॥

( पद्मपुराण पातालस्पष्ट ३५ । ५६-७० )

( अनुवादक—पाठेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजो शास्त्री पाठ )

महर्षि लोमश आरण्यक मुनिसे कहते हैं—रमणीय  
 अयोध्या-नगरी परम चित्र-विचित्र मण्डपोंसे शोभा पा रही  
 है । उसके भीतर एक कल्पवृक्ष है, जिसके मूलभागमें  
 परम मनोहर सिंहासन विराजमान है । वह सिंहासन बहुमूल्य  
 मरकतमणि, सुवर्ण तथा नीलमणि आदिसे सुशोभित है और  
 अपनी कान्तिसे गहन अन्धकारका नाश कर रहा है । वह  
 सब प्रकारकी मनोऽभिलापित समृद्धियोंको देनेवाला है । उसके  
 ऊपर भक्तोंका मन मोहनेवाले श्रीखुनाशजी बैठे हुए हैं ।  
 उनका दिव्य विश्रह दूर्वादिलके समान इयाम है, जो देवराज  
 इन्द्रके हारा पूर्जित होता है । भगवान् का सुन्दर मुख अपनी  
 शोभासे पौर्णमामीके पूर्ण चन्द्रवीक कमनीय कान्तिको भी तिरस्कृत  
 कर रहा है । उनका तेजस्वी लक्ष्मी अष्टमीके अर्धचन्द्रकी  
 सुप्रसा धारण करता है । मस्तकपर काले काले बुँधराले  
 देवता दोभा पा रहे हैं । मुकुटकी मणियोंसे उनका मुखमाङ्गल  
 उद्भासित हो रहा है । कानोंमें पहने हुए मकरकार कुण्डल

अपने सौन्दर्यसे भगवान् की शोभा बढ़ा रहे हैं । मूँगके  
 समान सुन्दर कान्ति धारण करनेवाले लाल-लाल ओढ़ बड़े  
 मनोहर जान पड़ते हैं । चन्द्रमाकी किरणोंसे होड़ लगानेवाली  
 दन्तपट्टियों तथा जवाकुसुमके समान रंगवाली जिह्वाके  
 काणण उनके श्रीनुस्खका सौन्दर्य और भी बढ़ गया है ।  
 शंखके आकारवाला कमनीय कण्ठ, जिसमें ऋक् आदि चारों  
 बैद तथा सम्पूर्ण शाल निवाज करते हैं, उनके श्रीविश्रहको  
 सुशोभित कर रहा है । श्रीखुनाशजी सिंहके समान कँचे  
 और सुपुष्प कंधेवाले हैं । वे कैयूर एवं कड़ीसे विभूषित  
 विशाल मुजाएँ धारण किये हुए हैं । अंगठीमें जड़े हुए  
 हीरेकी शोभासे देवीप्रमाण उनकी बै दोनों बाँहें धुटनोंका  
 लभ्य हैं । विलकृत चक्षःस्थल लक्ष्मीके निवाससे शोभा पा रहा  
 है । श्रीवत्स आदि चिह्नोंसे अङ्कित होनेके कारण भगवान्  
 अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं । महान् उदर, गहरी  
 नाभि तथा सुन्दर कठिभाग उनकी शोभा बढ़ाते हैं । रन्धोंकी

बनी हुई करधनीके कारण श्रीअङ्गोंकी सुषमा बहुत बढ़ गयी है। निर्मल कुरु और सुन्दर द्विटने भी सौन्दर्यवृद्धिमें सहायक हो रहे हैं। भगवान्‌के चरण, जिनका योगीगण ध्यान करते हैं, वडे कोमल हैं। उनके तलवें में वज्र, अङ्गुश और यथ आदिकी उत्तम रेखाएँ हैं। उन युगल-चरणोंसे श्रीखुनायजीके विग्रहकी बड़ी शोभा हो रही है।

इस प्रकार ध्यान और सरण करके तुम संसार से तर जाओगे। जो मनुष्य प्रतिदिन चन्दन आदि सामग्री इच्छानुसार श्रीरामचन्द्रजीका पूजन करता है, उसे ही और परलोककी उत्तम समृद्धि प्राप्त होती है। तुमने श्री के श्रेष्ठ ध्यानका प्रकार पूछा था सो मैंने बता दिया। अनुसार ध्यान करके तुम संसार-सागरसे पार हो जाओगे।

## भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान

नारद उवाच

सुमप्रकरसौरभोद्दलितमधिवकाद्युल्लसत्सुशाखिनवपद्मवप्रकरनम्ब्रशोभायुतम् ।  
 प्रफुल्लनवमञ्चरीललितवल्लरीवेष्टिं स्सरेत् सततं शिवं सितमतिः सुवृन्दावनम् ॥ १  
 विकासिसुमनोरसाखदनमञ्जुलैः संचरच्छिलीमुखमुखोद्भैरुत्तरं शङ्कृतैः ।  
 कपोतशुकसारिकापरमृतादिभिः पञ्चमिर्विरावितमितस्तो भुजगशश्चुवृत्याङ्गुलम् ॥ २  
 कलिन्ददुहितुश्चल्लहरिविष्णुपां वाहिमिर्विनिद्रसरसीरुहोदररजश्चयोद्भूसरैः ।  
 प्रदीपितमनोभवव्रजविलासिनीवाससां विलोलनपरैनिषेवितमनारतं मारुतैः ॥ ३  
 प्रवालनवपल्लवं भरकतच्छद्रं मौकिकप्रभाप्रकरकोरकं कमलरागनानाफलम् ।  
 स्थविष्टमखिलरुभिः सततसेवितं कामदं तदन्तरपि कल्पकाद्विष्टपमुद्धितं चिन्तयेत् ॥ ४  
 सुहेमशिखराचले उद्वितभानुवद्धासुरामयोऽस्य कनकस्थलीममृतशीकरासारिणः ।  
 प्रदीपमणिकुट्टिमां कुसुमरेणुपुङ्गोज्ज्वलां स्सरेत् पुनरतन्द्रितो विगतष्टतरङ्गां वुधः ॥ ५  
 तद्रत्नकुट्टिमणिविष्टमहिष्टयोगर्णीठेऽष्टपत्रमरुणं कमलं विचिन्त्य ।  
 उद्यद्विरोचनसरोचिरमुष्य मध्ये संचिन्तयेत् सुखनिविष्टमयो मुकुन्दम् ॥ ६ ॥  
 सुखामहेतिदलिताङ्गनमेघपुञ्जप्रत्यग्रनीलजलजन्मसमानभासम् ।  
 सुखिग्धनीलघनकुञ्जितकेशजालं राजन्मनोऽविशितिकण्ठशिखण्डचूडम् ॥ ७ ॥  
 रोलस्वलालितसुरद्वमसूनसम्पद्युक्तं समुत्कचनवोत्पलकर्णपूरम् ।  
 लोलालिभिः स्फुरितभालतलप्रदीपसगोरोचनातिलकमुञ्जवलचिलिचापम् ॥ ८ ॥  
 आपूर्णशारदगताङ्गशशाङ्गविश्वकान्ताननं कमलपत्रविशालनेवम् ।  
 रत्नसुरन्मकरकुण्डलरदिमदीपसगण्डस्थलीमुकुरमुन्नतचारुनासम् ॥ ९ ॥  
 सिन्दूरसुन्दरतराधरमिन्दुकुन्दमन्दारमन्दहसितद्युतिर्दीपिताशम् ॥ १० ॥  
 चन्द्रप्रवालकुसुमप्रचयावकलस्त्रैवेयकोज्ज्वलमनोहरकम्बुकण्ठम् ।  
 मन्त्रभ्रमद्वमरघुष्टविलम्बमानसंतानकप्रसवदामपरिष्कृतासम् ॥ ११ ॥  
 हारावलीभगणराजितपीवरोरोव्योमस्थलीलसितकौस्तुभभानुमन्तम् ।  
 श्रीवत्सलक्षणसुलक्षितमुच्चतांसमाजानुपीनपरिवृत्तसुजातवाहम् ॥ १२ ॥  
 आवन्धुरोदरमुदारगभीरनाभिं भृजाङ्गनानिकरमञ्जुलरोमराजिम् ।  
 नानामणिप्रधाटिताङ्गदकङ्गोर्मिश्रैवेयकारसननूपुरतुन्दवन्धम् ॥ १३ ॥  
 दिव्याङ्गरागपरिपिञ्जरिताङ्गयष्टिमार्पीतवस्त्रपरिवीतनितमविम्बम् ।

चारहसज्जनुमनुवृत्तमनोद्दिष्टङ्गं कान्तोऽन्तपद्मनिन्दितकूर्मकान्तिम् ।  
 मणिकथदर्पणलसज्जखरसज्जराजद्रकाङ्गुलिच्छदनसुन्दरयादपश्मम् ॥ १४ ॥

मत्स्याङ्गुशारिदरकेतुथवाज्जवज्जैः संलक्षितारुणकराङ्गितलाभिरामम् ।  
 लावण्यसारसमुदायविनिर्मिताङ्गं सौन्दर्यनिन्दितमनोभवदेहकान्तिम् ॥ १५ ॥

आस्यारविन्दपरिपूरितवेणुरन्ध्रलोलत्कराङ्गुलिसमीरितदिव्यरामैः ।  
 शश्वद्घृवैः कृतनिविष्टसमस्तजन्तुसंतानसंनतिमनन्तसुखाम्बुराशिम् ॥ १६ ॥

गोभिर्मुखाम्बुजविलीनविलोचनाभिरुधोभरसखलितमन्थरमन्दगमिः ।  
 दन्तायदपृपरिशिष्टतुणाङ्गुरामिरालम्बिवालघिलताभिरथाभिर्वीतम् ॥ १७ ॥

सम्प्रस्तुतस्तनविभूषणपूर्णनिश्चलास्याद् दृढक्षरितफेनिलदुर्घमुग्धैः ।  
 वेणुप्रवर्तितमनोहरमन्दगीतदत्तोचकर्णयुगलैरपि तर्णकैश्च ॥ १८ ॥

प्रत्यग्नशुद्धुमस्तकसम्भावनविलोलखुरामपातैः ।  
 आमेदुर्वैवदुलसासनगलैरुदग्रपुच्छैश्च वत्सतरवत्सतरीनिकायैः ॥ १९ ॥

हम्मारवश्चुभितदिव्यलयैर्महाङ्गिरध्युक्षमिः पृथुक्कुञ्जरभारविन्नैः ।  
 उत्तमितश्चुतिपुटीपरिपीतवृद्धिवानामृतोद्विविकासिविशालघोणैः ॥ २० ॥

गोपैः समानगुणशीलवयोविलासवेशैश्च मूर्च्छितकलखनवेणुवीणैः ।  
 मन्दोचतारपद्मगानपरैर्विलोलदोर्वल्लरीललितलास्यविधानदक्षैः ॥ २१ ॥

जड्डान्तपीवरकटीरतटीनिवद्वयालोलकिङ्गिणिघटारणितैरटद्विः ।  
 मुग्धैस्तरक्षुतखकलितकान्तभूषैरव्यक्तमञ्जुघचनैः पृथुकैः एरीतम् ॥ २२ ॥

अथसुललितगोपसुन्दरीणां पृथुकवरीष्णितम्बमन्थराणाम् ।  
 गुरुकुचभरमङ्गुरावलग्रन्तिवलिविजुभितरोमराजिभाजाम् ॥ २३ ॥

तदतिरुचिरचारुवेणुवायामृतरसपलुविताङ्गजाङ्गिवपश्य  
 मुकुलविमलरम्यरुद्वरोमेहमसमलंकृतगाव्रब्लूरीणाम् ॥ २४ ॥

तदतिरुचिरमन्दहासचन्द्रातपपरिज्ञमितरागवासिराशेः ।  
 तरलतरतरङ्गभङ्गविप्रुटप्रकरघनथमविन्दुसंततानाम् ॥ २५ ॥

तदतिरुचिरमन्दचिलिचापच्युतनिहितेक्षणमारचाणवृप्रव्या  
 दलितसकलमर्मविहलाङ्गप्रविसृतदुस्सहवेपयुज्यथानाम् ॥ २६ ॥

तदतिरुचिरवेपलपशोभामृतरसपानविधानलालसानाम् ।  
 प्रणयसलिलपूरवाहिनीनामलसविलोलविलोचनम्बुजानाम् ॥ २७ ॥

विश्रांसत्कवरीकलापविगलत्कुलप्रसूताश्वन्  
 माधवीलपटचश्रीकघटया संसेवितानां मुहुः ।

मरोन्मदमदसखलमसृदुगिरामालोलकाङ्गयुलुरु-  
 चीर्वीविश्वथमानचीनिसेचयान्तार्चिर्नितम्बत्विपाम् ॥ २८ ॥

सखलितललितपादाम्भोजमन्दाभिधातच्छ्रुतिमणितुलाकोद्याकुलाशामुखानाम् ।  
 चलदधरदलानां कुडमलापदमलाशिष्ठयसरसिरहाणामुलसत्कुण्डलानाम् ॥ २९ ॥

द्वाषिष्ठवसनसमीरणामितप्रस्तानीभवद्युष्टपल्लवानाम् ।

ननोपायनविलसत्कराम्बुजानामाठीभिः सततलिषेवितं समन्वात् ॥ ३० ॥

तासामायथतलोलनीलनयनव्याकोशलीनाम्बुजस्तम्भिः संपरिपूजिताखिलतनुं नानाविलासास्पदम् ।

तन्मुग्धाननपङ्कजप्रविगलन्माधीरसाखादिनीं विभाणं प्रणयोन्मदाक्षिमधुहन्मालां मनोहरिणीम् ॥ ३१ ॥

गोपीगोपपश्ननां वहि: सरेदद्यतोऽस्य गीर्वाणघटां विचार्थिनीं विरिज्ञिनयनशतमन्युपूर्वी  
स्तोत्रपराम् ॥ ३२ ॥

तद्वद् दक्षिणतो मुनिनिकरं दृढधर्मवाभ्युया समाश्वायपरम् ।

योगनिद्रानथ पृष्ठे मुमुक्षमाणान् समाधिना तु सनकाद्यान् ॥ ३३ ॥

स्तव्ये सकान्तानथ यस्तस्मिन्दान् गच्छर्वविद्याधरचारणांश्च ।

सकिन्नरानप्तरसञ्च मुख्याः कामार्थिनीर्नैतनगीतवाचैः ॥ ३४ ॥

शह्वेन्दुकुन्दधबलं सकलागमज्ञं सौदामिनीतिपिशङ्कजटाकलापम् ।

तत्पादपङ्कजगतमलां च भक्ति वाऽछन्तमुज्जिततरान्यसमस्तसङ्गम् ॥ ३५ ॥

नानाविधश्रुतिशुणान्वितसप्तरागत्रयीगतमनोहरमूर्छनामिः ।

सम्प्रीणयन्तमुदिताभिरपि प्रभक्त्या संचिन्तयेन्नभसि मां हुहिणशसूतम् ॥ ३६ ॥

इति ध्यात्वाऽऽत्मानं पठुविशदधीर्नन्दतत्यं नरो वौद्वैर्वौर्ध्वप्रभुतिभिरनिन्द्योपहतिभिः ।  
यजेन्द्र्यो भक्त्या स्ववपुषि वहिष्ठैश्च विभवैरिति प्रोक्तं सर्वं यदभिलिपितं भूसुरवराः ॥ ३७ ॥

( पश्च ० पातल० ११ ) २१—५८

( अनुवादक—पाण्डेय प० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम' )

ध्यान करनेवाले मनुष्यको सदा शुद्ध-चित्त होकर पहले उस परम कल्याणमय सुन्दर वृन्दावनका चिन्तन करना चाहिए, जो पृथिव्येके समुदाय, मनोहर सुगन्ध और वहते हुए मकरन्द आदिसे सुशोभित सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंके नृतन पश्चिमोंसे छुका हुआ शोभा पा रहा है तथा प्रकृत्त नवल मञ्चरियों और लक्षित लताओंसे आवृत है ॥ १ ॥

उसका भीतरी भाग चब्बल मधुकरोंके मुखसे निकले हुए मधुर झंकरोंसे मुखरित है । विकसित कुसुमोंके मकरन्दका आस्वादन करनेके कारण उन भ्रमर-झंकरोंकी मनोरमता और दद्द गयी है । कबूतर तोता, मैना और कोयल आदि पक्षियोंके कल्पवेणुसे भी उस बनका अन्तःप्रान्त समधुर ध्वनि-पूर्ण हो रहा है और वहाँ उधर-इधर सब ओर कितने ही स्थानोंमें मधूर नृत्य कर रहे हैं ॥ २ ॥

कलिन्द-नन्दिनी यसुनाकी चब्बल लहरोंके जलकणोंका भार वहन करनेके कारण शीतल और प्रफुल्ल कमलोंके केसरोंके परग-पुड़ा धारण करनेसे धूसर हुई बायु जिनकी प्रेम-वेदना उद्दीप हो रही है, उन ब्रज-सुन्दरियोंके वस्त्रोंको

वार-वार हिलाती या उड़ाती हुई निरन्तर उस वृन्दावनको सेवन करती रहती है ॥ ३ ॥

उस बनके भीतर भी एक कल्पवृक्षका चिन्तन करें जो बहुत ही मोटा और ऊँचा है, जिसके नये-नये पल्लव मैंगे समान लाल हैं, पचे मरकतमणिके सटश नीले हैं, कलिकाँ-मोतीके प्रभा-पुड़ाकी मॉति शोभा पा रही हैं और नाना प्रकारके कल पचरागमणिके समान जान पढ़ते हैं । समस्त ग्रामोंगम ही उस वृक्षकी सेवामें रहती हैं तथा वह सम्पूर्ण कामनाओंमें पूर्ण करनेवाला है ॥ ४ ॥

फिर आलस्यरहित हो विद्वान् पुरुष धारायादिक स्त्री अमृतकी बूँदें वरसानेवाले उस कल्पवृक्षके नीचे मुर्गागारी वेदीकी भावना करें, जो भेदगिरिपर उदित हुए रार्यकी भौति प्रभासे उद्घासित हो रही है, जिसका फर्य जयमगारी हुई मणियोंसे बना है, जो पृथिव्येके पराम-पुड़ाउे कुछ धनव वर्णी हो गयी है तथा जहाँ क्षुधा-पिण्यास, शोक-गोह और ज्वर-मृत्यु—ये छः उर्मियाँ नहीं पढ़ूनमें पार्ती ॥ ५ ॥

उस रक्तमय फर्यपर रसवे हुए एक विश्वाल गोगर्हणः

हमर लाल रंगके अष्टदलकमलका चिन्तन करके उनके पध्यभागमें सुखपूर्वक बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करे, जो अपनी दिव्य प्रभासे उदयकालीन सूर्यदेवकी भाँति देवीप्रमाण हो रहे हैं ॥ ६ ॥

भगवान् के श्रीविग्रहकी आभा इन्द्रके बज्रसे विदीर्ण हुए कबलगिरि, मेवोंकी धया तथा नूतन नील-कमलके समान ध्यान रंगकी है; इयाम मेघके सदृश काले बृंघराले केश-कलाप बड़े ही चिकने हैं तथा उनके मस्तकपर मनोहर मोर-पंचका मुकुट शोभा पा रहा है ॥ ७ ॥

कल्पवृक्षके कुसुमोंसे, जिनपर भ्रमरमँडरा रहे हैं, भगवान् का शङ्खर हुआ है। उन्होंने कानोंमें खिले हुए नवीन कमलके कुण्डल धारण कर रखे हैं, जिनपर चञ्चल चञ्चलरीक उड़ रहे हैं। उनके ललाटमें चमकीले गोरोचनका तिलक चमकरहा है तथा धनुषाकर भाँहें बड़ी सुन्दर प्रतीत हो रही हैं ॥ ८ ॥

भगवान् का मुख शारस्पूर्णिमाके कलंकहीन चन्द्रभण्डलकी भाँति कान्तिमान् है, बड़े-बड़े नेत्र कमल-दलके समान सुन्दर हैं, दर्पणके सदृश स्वच्छ कपोल रत्नोंके कारण चमकते हुए मकराकृत कुण्डलोंकी किरणोंसे देवीप्रमाण हो रहे हैं तथा ऊँची नाभिका बड़ी मनोहर जान पड़ती है ॥ ९ ॥

तिन्दूरके सगान परम सुन्दर लाल-लाल ओट है; चन्द्रमा, कुन्द्र और मन्दर पुष्पकी-सी मन्द मुकुटामीं छड़ासे सामनेकी दिशा प्रकाशित हो रही है तथा वनके कोमल पल्लवों और पुष्पोंके रम्भदराय बनाये हुए हासे शङ्ख-महश मनोहर श्रीवा गड़ी सुन्दर जान पड़ती है ॥ १० ॥

गँडराते हुए मतवाले भ्रमरोंसे निनादित एवं बुटनोंतक लड़की उर्जा परिज्ञात पुण्योंकी मालसे दोनों कंधे शोभा पा रहे हैं। पीन और विद्याल वक्तःस्थलरूपी आकाश हारखड़ी नवधंशोंसे गुशोभित हैं तथा उसमें कौस्तुम्भगिरामी सूर्य भगवान् हो रहा है ॥ ११ ॥

भगवान्के वक्तःस्थलों शीक्षका निह बड़ा सुन्दर प्रभाणी देता है, उनके कंधे ऊँचे हैं गोल-गोल सुन्दर यजारे शुभ्रोंतक लंबी एवं गोरी हैं, उदयका भाग बड़ा मनोहर है, नाभि विस्कृत और गम्भीर है तथा दिव्यलीकी रैम-नकि भगवान् तीव्रिके मद्यम शोभा पा रही है ॥ १२ ॥

नना प्रकारी मणियेंकि वने हुए भुजवंद, कड़े,

अँगूठियाँ, हार, करधनी, नूपुर और पेटी आदि आभूषण भगवान्के श्रीविग्रहपर शोभा पा रहे हैं, उनके समस्त अङ्ग दिव्य अङ्गरागोंसे अनुरक्षित हैं तथा कटिभाग कुछ हल्के रंगके पीताम्बरसे ढका हुआ है ॥ १३ ॥

दोनों जाँड़े और बुदने सुन्दर हैं; पिण्डलियोंका भाग गोलाकार एवं मनोहर है; पादाभाग परम कान्तिमान् तथा ऊँचा है और अपनी शोभासे कछुएके पृष्ठ-भागकी कान्तिको मलिन कर रहा है तथा दोनों चरण-कमल मणिक्य तथा दर्पणके समान स्वच्छ नवपंक्तियोंसे सुशोभित लाल-लाल अङ्गुलिदलोंके कारण बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं ॥ १४ ॥

मत्स्य, अङ्गुष्ठ, चक्र, शङ्ख, पताका, जौ, कमल और बज्र आदि ऊँचोंसे चिह्नित लाल-लाल हथेलियों तथा तलवोंसे भगवान् बड़े मनोहर प्रतीत हो रहे हैं। उनका श्रीअङ्ग लावण्यके सार-संग्रहसे निर्मित जान पड़ता है तथा उनके सौन्दर्यके सामने कामरेवके शरीरकी कान्ति फीकी पड़ जाती है ॥ १५ ॥

भगवान् अपने मुखारविन्दसे मुरली बजा रहे हैं; उस समय मुरलीके छिद्रोंपर उनकी ऊँगुलियोंके फिरनेसे निरस्तर दिव्य रागोंकी सुषिं हो रही है, जिनसे प्रभावित हो समस्त जीव-जन्मु जहाँ-के-तहाँ वैठकर भगवान्की ओर मस्तक टेक रहे हैं। भगवान् गोविन्द अनन्त अनन्दके समुद्र हैं॥ १६ ॥

वर्णोंके भासे लड्याझाती हुई मन्द-मन्द गतिसे चलने-बाली गौण्यें दाँतोंके अग्रभागमें चबानेसे बचे हुए तिनकोंके अङ्गुर लिये, पूँछ लटकाये भगवान्के मुखकमलमें आँखें गड़ाये उन्हें चारों ओरसे घेरकर लाड़ी हैं ॥ १७ ॥

गौण्योंके साथ ही छोटे-छोटे बछड़े भी भगवान्को सब ओरसे बेरे हुए हैं और मुरलीसे मन्दस्वरमें जो मनोहर संगीतकी धारा वह रही है, उसे वे कान लगाकर सुन रहे हैं; जिसके कारण उनके दोनों कान खड़े हो गये हैं। गौण्योंके टपकते हुए यनोंके आभूषणहा दूधसे भेरे हुए उनके मुख स्थिर हैं, जिनसे केनयुक दूध वह रहा है; इससे वे बछड़े बड़े जनोहर प्रतीत हो रहे हैं ॥ १८ ॥

निकले शरीरवाले बछड़े और बछड़ियोंके समूह, जिनके बहुत बड़े हुए गलकम्बल शोभा पा रहे हैं, श्रीकृष्णके चारों ओर पूँछ उठा-उठाकर नयेनये सीरोंसे शोभायमान अपने कोमल मस्तकोंसे परस्पर प्रद्वार करते हुए लड़नेके लिये वार-चार भूमिको खुर्रोंसे लोद जड़े हैं ॥ १९ ॥

गिरो द्वाष्टर (द्वाष्ट) से द्वितीय धुव्व वा जारी  
परि उत्सर्व द्वारी यहुके भरने आवश्यक है ऐसे द्वितीय  
धुव्व द्वीपुष्ट चाहे और दोनों आंतरों उत्तराय हुव उत्तरी  
आप्रत्यापी शक्तिपूर्वक हुव रहे हैं । उत्तरी धुव्व द्वितीय  
नक्ष लाली और उत्तरी धुव्व है ॥ २० ॥

नगरानन्दके नमाम ही शुभ दीया अद्यता, बिलकु तथा  
वैष्णवानन्दे गोपी जी वार्णी नमाम मुख्यांशोंमें सुन्दर  
हरेन्द्र नमामें चढ़ते हैं वर्षी और वीरांगी भट्ट अद्यता  
दिल्ली काले नमाम द्वारा और तारासरावने कुरुक्षेत्रावधि भगव  
करते हुए नमामनको भगव द्वारा केवल लड़ते हैं ॥ ३१ ॥

होटे-योटे यात्रा रह भी नवाजाके नामे और दूसरे  
में जाँचे जाए उनके स्टेट कलियारोंमें करवती पदार्थकी  
परी है, जिसमें लाल परिचद्धरोंमें मधु ब्रह्मकृष्ण गुरुभै  
दृढ़ी है। ये योग-जाति यात्रा के नवाजाके सुनार धारणा  
होते हुए हैं। इनकी पौरी-संरीणी गोड़ले धार्मा भाषा तथा दर्शन  
की अतीती १२।

तदगार इन वर्षों मात्र दोस्ते बैठक सही हुईं  
लेकिन गोपनीय दुर्लभता के लिए युक्तिपूर्ण वाचन  
झौमणा विभाग करे। वे शेषांगादेश अन्दे खुले  
तारीख के भवते एवं उन पर्याप्त गतियों नहीं थीं और  
सभी हुई जटी उनके दित्यांगेवाम सर्व कर ले  
पीन विद्युत्याक्षर नारी अपने कुकुर छुट्टे उनके उत्तर-  
कालीन विकल्पों रोकति विधायकों से बहुत अलग रूपों

उम्मीद देखतिकर रैनासे अमर्त्य है इसे  
प्राप्ति प्राप्ति है मानो श्रीकृष्ण के सुमान श्रीकृष्णही  
द्वारा स्वरूप श्रेष्ठो पदवीं द्वुलोक्य जड़त है  
॥११॥ ११३

इनके सभी लक्ष्योंमें इकट्ठा विनियोगी हैं यानी विद्युत के लिए भवनों व गद्दों व वाहनों व यात्रियोंके साथ-साथ विद्युतीय उपकरणोंके लिए विद्युतीय ऊर्जा का उपयोग होना।

तमिल ही रक्षी है ॥ २५ ॥

श्रीकृष्णां अवस्था समीक्षयत् द्वयामिति योगिनः प्रभु  
एवं अन्तर्भूती कर्त्ता उक्ते अप्य भगवान् विद्वान् इति  
स्वर्वा ज्ञाते हो मौ हैं इसे भगवान् उक्ते कहते हैं युक्त  
स्वर्वा दुर्गाकरणेना रैठ गयो हैं ॥ २६ ॥

सुनाया इह पर्यंत किये लोडुंग वे बजान्नाहैं मूले।  
सलिलामार्गो प्रशंसित कर्त्तव्यी दर्शावाहै औ अंति-  
म उल्लं दिलेक्षण विद्युत्यन्त मात्रो उप उल्लं विद्युत्यन्त कर्त्तव्यी  
मुख्यमें हैं ॥ १७ ॥

करने वाली हो जानेमै उनवे रिं हुए प्रकृति  
मुख्यतः समुदाय-लोक मधुकर शारदा दहा  
उन्होंने सेवा कर रहे हैं । उनके मुदुन्त ब्रह्म  
जीवान्तर दर्शन करना खास अवश्यक हो रहा है जैसे नीति  
प्रबोधन दर्शन करने वाले शास्त्रभास्तु प्रकाशित निषिद्ध

उत्तरे योग्यादृष्ट विषयमुन्न स्विति हैं तेजि  
प्रियं तु तु दृष्टव्य कर्त्ता और विषय हैं।  
तेजि विषय स्वीकृताकार करण अस्त्विल्ल प्रश्नही  
उत्तरे योग्यादृष्ट कुरुत शोमा न रहे हैं तौ दृष्टव्य  
दृष्टव्य इन्द्रिय दुष्कृताकार नीतिमुलोम आश्वस्युक्त लेन्द्र  
व्य स्वीकृत हैं ॥ ४५ ॥

उद्दीप्त शिवायनमोरणे उनके अध्यात्मीयता  
अन हो रहे हैं और उनके करकमल श्रीकृष्णदेव  
विद्वान् नाम प्रधानके लक्ष्य पूज्यमाने सुखोन्मेध  
गोपन्मुद्देश्यों चाहे जोरें श्रीकृष्णदेव बदर देव

प्रेसीडेंस गोप और अनुद्देश्य वैकल्पिक विद्युत वितरण कार्यालयों  
में से एक है। इसका नियन यह है कि जल ऊर्जा विभाग  
के अधीन रखा जाएगा।

वी प्रकार उपर्युक्त केसे चाह लाभार्थी होते हैं।

कुछ धनराज अस्तित्व के देश में आपका नहीं होता।  
उम्रियों ही लड़ प्रजापति भी उस विषय में बहुत  
इत्या सद्विद्या ज्ञान की विद्या वही विद्या है।  
सामाजिक अर्थी विद्यावाद का निष्ठ विद्या है।  
ज्ञान और विद्या होती है। विद्या की गतिशीलता

इच्छा रखनेवाली मुख्य-मुख्य आपसराएँ भी मौजूद हैं। ये सब लोग नाचने, गाने तथा ब्रजानेके द्वारा भगवान्की सेवा कर रहे हैं ॥ ३४ ॥

तत्पश्चात् आकाशमें स्थित मुक्त ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारदका चिन्तन करना चाहिये । नारदजीके शरीरका वर्ण शङ्ख, चन्द्रमा तथा कुन्टके समान गौर है, वे सम्पूर्ण आगमोंके ज्ञाता हैं। उनकी जटाएँ विजलीकी पद्मिक्योंके समान पीली और चमकीली हैं। वे भगवान्के चरण-कमलोंकी निर्मल भक्तिके इच्छुक हैं तथा अन्य सब ओरकी आसक्तियोंका सर्वथा परित्याग कर चुके हैं और संगीतसम्बन्धी नाना

प्रकारकी शुतियोंसे युक्त सात स्वरों और विविध ग्रामोंकी मनोहर मूर्ढ्छनाओंको अभिव्यक्ति करके अत्यन्त भक्तिके साथ भगवान्को प्रसन्न कर रहे हैं ॥ ३५-३६ ॥

इस प्रकार प्रखर एवं निर्मल बुद्धिवाला पुरुष अपने आत्मस्वरूप भगवान् नन्दनन्दनका ध्यान करके मानसिक अर्थ आदि उत्तम उपहारोंसे अपने शरीरके भीतर ही भक्तिपूर्वक उनका पूजन करे तथा बाह्य उपचारोंसे भी उनकी आराधना करे । ब्राह्मणो ! आपलोगोंकी जैसी अभिलाषा थी, उसके अनुसार भगवान्का यह सम्पूर्ण ध्यान मैंने बता दिया ॥ ३७ ॥

## भगवान् शिवका मनोहर ध्यान

चारुचम्पकवर्णीभमेकवक्षं चिलोचनम् । ईषद्वास्यप्रसन्नास्य रत्नस्त्रिदिभूषितम् ॥  
मालतीमालयसंयुक्तं सद्रुतमुकुटोज्जवलम् । सत्कण्ठाभरणं चारुबलयाङ्गदभूषितम् ॥  
वह्निशौचेनातुलेन त्वतिसूक्ष्मेण चारुणा । अमूल्यवस्त्रयुग्मेन विचित्रेणातिराजितम् ॥  
चन्दनागरुकस्तूरीचारुकुञ्जमभूषितम् । रत्नदर्पणहस्तं च कज्जलोज्जवललोचनम् ॥  
सर्वस्वप्रभयाचल्लभमतीव सुमनोहरम् । अतीव तरुणं रस्यं भूषिताङ्गैश्च भूषितम् ॥  
कामिनीकान्तमव्ययं कोटिचन्द्राननाम्बुजम् । कोटिसराधिकतमुच्छविं सर्वाङ्गसुन्दरम् ॥

( शिवमहापुराण—रुद्रसहिता, पार्वतीखण्ड ४५ । ५-१० )

( अनुचादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम' )

भगवान् शिवकी मनोहर छविका इस प्रकार चिन्तन करे—उनकी अङ्गकान्ति मनोहर चम्पाके पुष्पकी भाँति उद्भवित हो रही है। उनके एक मुख है और वे तीन नेत्रोंसे सुशोभित हैं। उनके मुख्यर मन्द मुकुटानके रूपमें प्रसन्नता लेल रही है। वे रत्न और स्वर्ण आदिके आभूपूर्णोंसे विनृपित हैं। मालतीकी माला उनके गलेकी शोभा बढ़ा रही है। वे परम सुन्दर रत्नमय मुकुटकी प्रभासे प्रकाशित हो रहे हैं। उनके कण्ठमें और भी बहुत-से सुन्दर आभूपूर्ण हैं। मनोहर घलघ ( कड़ा ) और अंगद ( मुजवंद ) उनकी भुजाओंनी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे आगमें तथाकर इस किने तुण बहुमुख्य, अनुपम, अत्यन्त गृह्णम्, मनोहर

एवं विचित्र वस्त्र और उपवस्त्रसे अत्यन्त शोभा पा रहे हैं। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और मनोहर कुंकुमसे विभूषित हैं। उनके हाथमें रत्नमय दर्पण है और नेत्र कज्जलरे और उज्ज्वल हैं। उन्होंने अपनी प्रभासे सबको आच्छादित एवं प्रकाशित कर रक्खा है। उनका रस्य अत्यन्त मनोहर है। उनकी नरी तरुण अवस्था है। वे विभूषित अङ्गोंसे सुशोभित एवं परम रस्मणीय हैं। अपनी कामना करोवाली गिरिराजनन्दिनीके वे कमनीय प्रियतम हैं। उनमें व्यग्रताका लेशमात्र भी नहीं है। उनका सुखारविन्द करोड़ों चन्द्रमाओंसे भी कान्तिमान् है। उनके श्रीअङ्गोंकी सुप्तमा करोड़ों कामदेवोंसे भी बढ़कर हैं और वे सर्वाङ्गसुन्दर हैं।

## संत-स्वभाव

अनेक बार ऐसा होता है—तनिक-सी असाधारीसे जीभ दाँतोंके नीचे आ जाती है। अत्यन्त कोमल जीभ और कठोर तीक्ष्ण दाँत—जीभ कट जाती है। बड़ा कष्ट होता है।

आपको कभी क्रोध आया है दाँतोंपर ? कभी आपके मनमें भी यह बात आयी है कि दाँत दुष्ट हैं—विना अपराध उन्होंने जीभको काट लिया, इन्हें दण्ड देना चाहिये ?

आप कहेंगे कि कैसा व्यर्थ प्रश्न है। जीभ अपनी और दाँत भी अपने। जीभ कटी तो कष्ट हुआ। अब क्या दाँतोंको दण्ड देकर और कष्ट भोगना है। दाँतोंको दण्डका कष्ट भी तो अपनेको ही होगा।

X            X            X

एक संत कहीं धूमते हुए जा रहे थे। कहाँ जा रहे थे ? हमें इसका पता नहीं है। संत होते ही रमते रास हैं। एक स्थानपर टिककर उन्हें रहना नहीं आता। यह तो लोकोक्ति है—‘बहता पानी और रमता संत ही निर्षल रहता है।’

एक बनमें एक दुष्ट प्रकृतिका मनुष्य रहता था। साधु-संतोंसे उसे चिढ़ थी। चिढ़ थी सो थी। दुष्टका स्वभाव ही अकारण शत्रुता करना, सीधे लोगोंको अकारण कष्ट देना होता है।

संत धूमते हुए उस बनमें निकले। दुष्टने उन्हें देखा तो पत्थर उठाकर मारने दौड़ा—‘तू इधर क्यों आया ? क्या धरा है तेरे बापका यहाँ ?’

संतने कहा—मैंने तुम्हारी कोई हानि की है। तुम क्यों अप्रसन्न होते हो ? तुम्हें इधर आना बुरा लगता है तो मैं लौट जाता

‘तू आया ही क्यों ?’ दुष्ट अपनी दुष्ट आ गया था। संतको उसने कई पत्थर म सिर और दूसरे अङ्गोंमें चोटें लगाँ। रक्त लगा। लेकिन संत भी संत ही थे। विना बोले लौट आये।

कुछ दिनों बाद फिर संत उसी ओर ग उनका हृदय कहता था—‘विचार पता नहीं। कारण साधुके वेशसे चिढ़ता है। साधुओं कष्ट देकर तो वह नरकगामी होगा। उस सुखुद्धि मिलनी चाहिये। उसका उद्धर ह चाहिये।’

वह दुष्ट आज दीखा नहीं। संत उस झोंपड़ीके पास गये। वह तो स्वाटपर वेसुध पथा। तीव्र ज्वर था उसे। जैसे अपना पुन बीमार पड़ा हो—संत उसके पास जा वै उसकी सेवा-शृश्वपामें लग गये।

उस दुष्टके नेत्र खुले। उसने साधुको देखा। उसके मुखसे कठिनाईसे निकला—‘आप ?’

संतने उसे पुचकारा—‘तुम पड़े रहो। चिन्ताकी कोई बात नहीं है। अरे अपने दाँतसे अपनी जीभ कट जाय तो कोई क्रांकिसपर करे ? तुम अलग हो और मैं अलग हूँ यही तो अम हूँ। एक ही विराट् पुरुषके हम क अङ्ग हैं।’

## मान और धनकी तुच्छता

### विजयका त्याग

वह दिविजयका युग था। राजाओंके लिये तो दिविजय-युग समाप्त हो गया था; किंतु विद्वानोंके लिये दिविजयका था। संस्कृतके प्रतिभाशाली विद्वान् वड़ी-से-वड़ी जो कामना रसकते थे—दिविजयकी कामना थी। वह दिविजय शख्सोंसे हीं, पाण्डित्यसे शास्त्रार्थ करके प्राप्त की जाती थी।

ब्रजमें एक विद्वान् दिविजय करते हुए पहुँचे। ब्रजके विद्वानोंने उनकी शास्त्रार्थकी चुनौतीके उत्तरमें कहा—‘ब्रजमें तो सनातन गोस्वामी और उनके भतीजे जीव गोस्वामी ही ऐष्ट्र विद्वान् हैं। वे आपको विजय-पत्र लिख दें तो हम उभी उसपर हस्ताक्षर कर देंगे।’

दिविजयी पहुँचे सनातन गोस्वामीके यहाँ। ‘शास्त्रार्थ कीजिये या विजय-पत्र लिख दीजिये।’ उनकी सर्वत्र जो माँग थी, वही माँग वहाँ भी थी।

‘हम तो विद्वानोंके सेवक हैं। शास्त्रार्थ करना हम क्या जानें। शास्त्रका मर्म कहाँ समझा है हमने।’ श्रीसनातन गोस्वामीकी नम्रता उनके ही उपयुक्त थी। उन्होंने दिविजयी-को विजयपत्र लिख दिया।

दिविजयी आनन्द और गर्वसे झूमते लैटे। मार्गमें ही जीव गोस्वामी मिल गये। दिविजयीने कहा—‘आपके ताऊ सनातनजीनि तो विजयपत्र लिख दिया है। आप उसीपर हस्ताक्षर करेंगे या शास्त्रार्थ करेंगे।’

जीव गोस्वामी शुश्रव थे और थे प्रकाण्ड पण्डित। नबोन रक्त—आने श्रद्धेय श्रीसनातन गोस्वामीके प्रति दिविजयीका तिरस्कार-भाव उनसे सहा नहीं गया। वे कोले—‘मैं शास्त्रार्थ करनेको प्रस्तुत हूँ।’

वेनारा दिविजयी क्या शास्त्रार्थ करता? वह विद्वान् था; किंतु केवल विद्वान् ही तो था। महामैधारी जीव गोस्वामी—और फिर जिनपर ब्रजके उस नवयुवराजका नरद हसा हो, उसकी पराजय कैसी? दो-चार प्रश्नोंरोमें ही दिविजयी निरुक्तर हो गया। विजयपत्र उसने फाइ फैसा। गर्व चूर हो गया। कितना दुखित दौकर लैटा वह—कोई कल्पना कर सकता है।

जीव गोस्वामी पहुँचे श्रीसनातनजीके पास। दिविजयीकी पराजय मुగा दी उन्होंने। सुनकर सनातनजीके नेत्र कठोर हो गये। उन्होंने जीव गोस्वामीको शिङ्कते हुए कहा—

‘जीव! तुम तुरंत यहाँसे चले जाओ! मैं तुम्हारा मुख नहीं देखना चाहता। एक ब्राह्मणका अपमान किया तुमने। तुमसे भजन क्या होगा, जब कि तुममें इतना अहंकार है। किसीको विजयी स्वीकार कर लेनेमें विगड़ता क्या है।’

X X X

### पारसका त्याग

बहुत दूर बर्द्धवानसे चलकर एक ब्राह्मण आया था ब्रजमें। वह ‘पूछता हुआ सनातन गोस्वामीके पास पहुँचा। उसे पारस पत्थर चाहिये। कई चर्पसे वह तय कर रहा था। भगवान् शङ्करने स्वन्ममें आदेश दिया था कि ब्रजमें सनातन गोस्वामीको पारसका पता है, वहाँ जाओ।

ब्राह्मणकी बात सुनकर सनातनजीने कहा—‘मुझे अकस्मात् एक दिन पारस दीख गया। मैंने उसे रेतमें ढक दिया कि आते-जाते भूलसे छू न जाय। वहाँ उस स्थानपर खोदकर निकाल लो। मैं स्नान कर चुका हूँ। उसे छूनेपर मुझे फिर स्नान करना पड़ेगा।’

निर्दिष्ट स्थानपर रेत हटाते ही पारस मिल गया। उससे स्पर्श होते ही लौहा सोना बन गया। ब्राह्मणका तय सफल हो गया। उसे सचमुच पारस प्राप्त हुआ—अमूल्य पारस। जिससे स्वर्ण उत्पन्न होता है, उस पारसका मूल्य कोई कैसे बता सकता है।

पारस लेकर ब्राह्मण चल पड़ा। कुछ दूर जाकर फिर लैटा और सनातन गोस्वामीके पास आकर खड़ा हो गया। सनातनजीने पूछा—‘आपको पारस मिल गया?’

‘जी, पारस मिल गया।’ ब्राह्मणने दोनों हाथ जोड़े—  
लेकिन एक प्रश्न भी भिला उपके साथ। उस प्रश्नका उत्तर आप ही दे सकते हैं। जिस पारसके लिये मैंने बबौतक कठोर तय किया, वह पारत आपको प्राप्त था। आपने उसे रेतमें ढक दिया था और उसका स्पर्शतक नहीं करना चाहते थे। आपके पास पारतसे भी अधिक मूल्यवान् कोई वस्तु होनी चाहिये। क्या वस्तु है वह?’

‘तुमको वह चाहिये! सनातन गोस्वामीने दृष्टि उठायी—  
‘वह चाहिये तो पारस फैको यमुनाजीमें।’

ब्राह्मणने पारस फैक दिया। उसे वह बहुमूल्य वस्तु मिली। वह वस्तु जिसकी तुलनामें पारस एक कंकड़-जितना भी नहीं था। वह वस्तु—श्रीकृष्ण-नाम।

# जगज्जननी श्रीपर्वतीका ध्यान

सुनीलाञ्जनवर्णभां स्वाङ्गैश्च प्रतिभूषिताम् ।

|                                                                                       |                                                                     |
|---------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------|
| चिनेत्रादतनेत्रान्तमन्यवारितिलोचनाम्                                                  | १ ईषद्वास्यप्रसन्नास्यां सकटाक्षां मनोहराम् ॥                       |
| सुचारुकवरीभारां                                                                       | चारुपत्रकशेभिताम् । कस्तूरीविन्दुभिः सार्धं सिन्दूरविन्दुशेभिताम् ॥ |
| सद्रज्जकुण्डलाभ्यां च चारुगण्डस्थलोज्ज्वलाम् । मणिरत्नप्रभासुष्टिदत्तराजिविराजिताम् ॥ |                                                                     |
| मधुविम्बाधरोष्टां च रत्नयावकसंयुताम् । रत्नदर्पणहस्तां च क्रीडापद्मविभूषिताम् ॥       |                                                                     |
| चन्दनागरुकस्तूरीकुङ्कुमेनातिचार्चिताम्                                                | २ कणन्मञ्जीरपादां च रक्ताङ्गवितलराजिताम् ॥                          |

( शिवमहापुराण—खदसंहिता, पार्वतीखण्ड ४६ । २३-३०

( जगज्जननी श्रीपर्वतीजीका इस प्रकार ध्यान करे—)

गिरिराज-किशोरीकी अङ्ग-कान्ति नील अञ्जनके समान रथम है । वे अपने मनोहर अङ्गोंसे ही विभूषित हैं । उनके नेत्रप्रान्तका निनेत्रधारी भगवान् शङ्करके हृदयमें बढ़ा आदर है । उनकी आँखें भगवान् शिवके सिवा दूसरे किसी पुरुषकी ओर नहीं जातीं । उनका प्रसन्न सुखारविन्द मन्द मुसकानसे मुशोभित है । वे अपने प्रियकी ओर कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखती हैं । उनकी आकृति बड़ी मनोहर है । वैधि हुई लड़े बड़ी सुन्दर दिखायी देती हैं । उनके कपोल आदि अङ्गोंपर मनोहर पत्र-रचना शोभा दे रही है । कस्तूरीकी बैंदीके साथ सिन्दूर-की धैंदी भी उनके भालदेशकी शोभा बढ़ा रही है । मनोरम

कपोलस्थली ,दो सुन्दर रत्नमय कुण्डलोंसे जगमगा रही है मणि एवं रत्नोंकी प्रभाको छीन लेनेवाली दन्तपट्टि उन सुखारविन्दको उद्घासित कर रही है । लाल-लाल अँ मधुर विम्ब-फलकी अरुणिमाको लजित कर रहे हैं । युग्म चरणोंमें रत्नमय आभूषण और तलवेंमें महावरकी अङ्ग शोभा दिखायी देती है । अथवा रत्नमय यावकचूर्णसे उन तलवे अनुरङ्गित हो रहे हैं । वे एक हाथमें रत्नमय दर्प लेकर अपनी प्रतिच्छवि निहार रही हैं और उनके दूसरे हाथ क्रीडाकमल शोभा दे रहा है । उनका श्रीअङ्ग यथासा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसरसे अत्यन्त अलंकृत है दोनों पैरोंमें मंजीरकी मधुर झनकार हो रही है । लाल-लाल तलवे उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं ।

## भगवान् शिवका ध्यान

पर्यङ्गवन्धस्थिरपूर्वकायमृज्यायतं

संनमितोभयांसम् ।

उत्तानपाणिद्वयसंनिवेशात्

प्रकुल्लुराजीवमिवाङ्गमध्ये ॥

सुजङ्गमेष्वद्वज्जटकलापं

कर्णचिसक्तद्विष्णुपाक्षसूत्रम् ।

कण्ठप्रभासङ्गविशेषनीलां कृष्णत्वचं ग्रन्थिमर्तीं दधानम् ॥

विरतप्रसङ्गः ।

किञ्चित्प्रकाशस्तिमितोद्वतरैर्भूविक्रियायां

विरतप्रसङ्गः ।

नेत्रैरविस्पन्दितपद्ममालैर्लक्ष्मीकृतव्रणमधोमयूक्षैः

॥

अवृष्टिसंरस्यमिवाम्बुद्धाहमपामिवाधारमनुचरम् ।

॥

अन्तश्चराणां मरुतां निरोधाविवार्तानिष्कण्ठमिव प्रदीपम् ॥

कपालनेत्रान्तरलब्धमागैर्ज्वोतिश्वाहैरुदितैः शिरसः ।

सृणालसूत्राधिकसौकुमार्यां वालस्य लक्ष्मीं क्षपयन्तमिन्द्रोः ॥

मनो नवद्वारनिष्ठद्वृत्ति हृदि व्यक्षस्थाप्य समाधिवश्यम् ।  
यमध्यं क्षेत्रविदो चिदुत्समात्मानमात्मन्यवलोकयन्तम् ॥

( कुमारसंभव ३ । ४५ — ५० )

( अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम' )

भगवान् शशिशेखर वीरामनसे विराजमान हैं, उनके शरीरका ऊर्च्चमाम निश्चल, सरल और समुन्नत है तथा दोनों स्कन्ध समान लम्पसे अवस्थित हैं, दोनों हाथोंको अपने क्रोडमें रखकर हुए हैं। जान पड़ता है कि वहाँ एक कमल विकसित हो रहा है। उनके जटाजूट सर्पके द्वारा चूड़के समान समुन्नतमावसे बँधे हुए हैं, दिगुणित रुद्राक्षमाला उनके कानोंको सुशोभित कर रही है, संलग्न-अन्तिमयुक्त कृष्णवर्ण मृगचर्मकी द्यामता नीलकण्ठकी प्रभासे और भी धनीभूत हो रही है। उनके तीनों नेत्र नासिकाके अग्रभागको लक्ष्यकर स्थिर हो रहे हैं। उस निस्पन्द और स्थिर नेत्र-रोमराजिसे विभूषित त्रिनेत्रके नासिकाग्रपर स्थिर संनिवेशित होनेके कारण उनसे नीचेकी ओर एक समुज्ज्वल ज्योति निकलकर इतरातः छिटक रही है।

उन्होंने उस समाधि-अवस्थामें देहान्तश्चारी वायुसमूहको निरुद्ध कर रखकर है, जिससे उन्हें देखकर जान पड़ता

है कि मानो वे आडवरशून्य तथा जलपूर्ण वस्त्रनेवाले एक गम्भीर आकृतिके बादल हैं अथवा तरंगहीन प्रशान्त महासागर हैं किंवा निर्वात ग्रदेशमें निष्कर्ष शिखाधारी समुज्ज्वल प्रदीप हैं।

उन समाधिमग्न त्रिलोचनके ल्लाटस्थित नेत्रसे एक प्रकारकी ज्योतिशिखा आलोकधारके समान बाहर निकल रही है, योगमग्न चन्द्रशेखरके शिरोदेशसे निकलकर यह ज्योतिशिखा नेत्रपथके द्वारा बाहर निकल रही है एवं उनके विरस्थित मृणालमूत्रके समान कोमल चन्द्रकलाको मानो छुल्स रही है।

योगनिष्ठ त्रिपुरारिने समाधिके बलसे शरीरके नवद्वारोंमें अन्तःकरणको निरुद्धकर उसे हृदय-कमलरूप अधिष्ठानमें अवस्थित कर रखता है एवं क्षेत्रज्ञ जिसे अविनाशी ब्रह्म कहा करते हैं उसी आत्मस्वरूप परमात्माका वे आत्मामें ही साक्षात्कार कर रहे हैं।

## सिद्ध नारायणवर्ष

( इस स्तोत्रके श्रद्धा-विधिपूर्वक पाठ और अनुष्ठानसे प्राणसंकट, शत्रुसंकट और काम-कोषादिका वेगरूप संकट दूर होते हैं। वह देवराज इन्द्रका अमृतभूत सिद्ध कवच है। )

### श्रीशुक उचाच

वृतः पुरोहितस्त्वाग्रो महेन्द्रायात्रुपृच्छते । नारायणात्वं वर्माह तदिहैकमनाः पृष्ठुः ॥ १ ॥  
विश्वरूप उचाच

धौताङ्ग्निपाणिराचम्य सपवित्र उदड्मुखः । कृतस्वाङ्गकरन्यासो मन्त्राश्यां चास्यतः शुचिः ॥ २ ॥  
नारायणमयं चर्म सन्दर्शेद् यथ आगते । पादयोर्ज्ञानुनोरुद्वांसद्वरे हृदययोरसि ॥ ३ ॥  
मुखे शिरस्याच्चुपूर्व्यादैकारादीनि विन्यसेत् । ॐ नमो नारायणायेति विष्वर्यमथायि चा ॥ ४ ॥  
करन्यासं ततः लुर्याद् द्रादशाशरविद्या । प्रणवादिवकारान्तमहुत्प्रसुपूर्वसु ॥ ५ ॥  
न्यसेद्वृद्धय औकारं विकारमनु मूर्धनि । पकारं तु भुयोर्मध्ये णकारं शिखया विशेत् ॥ ६ ॥  
वेकारं नेत्रयोर्युद्दिष्याद्वकारं सर्वसंघिषु । मकारमखमुद्दिश्य मन्त्रमूर्तिर्मच्चेद् बुधः ॥ ७ ॥  
सवित्तर्भं फडलं तत् सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् । ॐ विष्णवे नम इति ॥ ८ ॥

जात्मातं परम ध्यायेद् ध्येयं पट्शक्तिमिर्गुतम् । विद्यातेजस्तपेमूर्तिमिं मन्त्रमुदाहरेत् ॥ ९ ॥  
ॐ हृतिर्विद्ध्यत्मम् सर्वरक्षां न्यस्ताङ्ग्निपदाः पतगेन्द्रपृष्ठे ।  
दरगरिचर्मासिगदेपुच्चापपाशान् दधत्तोऽप्यगुणोऽप्यवाहुः ॥ १० ॥

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वहणस्य पाशात् ।  
 स्थलेषु मायावदुवामनोऽव्यात् विविकमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥ ११ ॥  
 दुर्माणवटव्याजिमुखादिषु प्रभुः पायान्बुर्सिहोऽसुरयूथपरिः ।  
 विमुञ्चते यस्य महाद्वाहासं दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥ १२ ॥  
 रक्षत्वसौ माधविनि यज्ञकल्पः खदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः ।  
 रामोऽदिकृदेष्वथ विप्रवासे सलक्ष्मणोऽव्याद् भरताग्रजोऽसान् ॥ १३ ॥  
 मामुग्रधर्मदिविलात् प्रमादान्नारायणः पातु नरश्च हासात् ।  
 दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः पायाद् गुणेशः कपिलः कर्मवन्धात् ॥ १४ ॥  
 सनकुमारोऽवतु कामदेवाद्यशीर्षो मां पथि देवहेलनात् ।  
 देवर्पिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात् कूर्मो हरिमां निरयादशेषात् ॥ १५ ॥  
 धन्वन्तरिर्भगवान् पात्वपथ्याद् द्वन्द्वाद् भगवान्प्रभो निर्जितात्मा ।  
 यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद् वलो गणात् क्रोधवशादहीन्दः ॥ १६ ॥  
 द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद् बुद्धस्तु पाखण्डगणात् प्रमादात् ।  
 कल्पिकः कलेः कलमलात् प्रपातु धर्मविनायोरुक्तावतारः ॥ १७ ॥  
 मां केशवो गदया प्रातरव्याद् गोविन्द आसङ्गवमात्त्वेषुः ।  
 नारायणः भालु उदात्तशक्तिर्भ्यनिदेव विष्णुररीन्द्रपणिः ॥ १८ ॥  
 देवोऽपराह्ने मधुहोग्रधन्वा सायं विधामावतु माधवो माम् ।  
 दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे लिशीथ एकोऽवतु पञ्चनामः ॥ १९ ॥  
 श्रीवत्सधामापररात्रे ईशः प्रत्यूष ईशोऽसिध्वरो जनर्दनः ।  
 दामोदरोऽव्यादनुसंध्यं प्रभाते विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्तिः ॥ २० ॥  
 चक्रं युगान्तानलतिगमेषि अमत् समन्ताद् भगवत्प्रयुक्तम् ।  
 दन्दग्निं दन्दग्न्यरिसैन्यमाशु कक्षं यथा वातसबो हुताशः ॥ २१ ॥  
 गदेऽशनिश्चर्णविश्वुलिङ्गे निष्पिणिः निष्पिणिः च ।  
 कूर्मण्डवैनायकवक्षरक्षोभूतप्रहर्शचूर्णय चूर्णयानीन् ॥ २२ ॥  
 त्वं यातुधानप्रमथप्रेतमातृपिशाच्चविप्रग्रहघोरदृष्टीन् ।  
 दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो भीमस्नोऽरेहद्यानि कमयन् ॥ २३ ॥  
 त्वं तिरमधारासिवरारिसैन्यमीशवप्रयुक्तो भम छिन्निव छिन्निव ।  
 चक्षुंषि चर्यज्ज्वतचन्द्र छादय द्विप्रामधेनां हरं पापचक्षुपाम् ॥ २४ ॥  
 एवो भयं श्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो वृभ्य एव च । सरीसुपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योऽहोभ्य एव च ॥ २५ ॥  
 सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपाद्यकीर्तनात् । प्रयातु संक्षयं सद्यो लेनः श्रेयःप्रतीपकाः ॥ २६ ॥  
 गरुडो भगवान् स्तोवस्तोभश्छन्दोमयः प्रभुः । रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्षसेतः स्वनामधिः ॥ २७ ॥  
 सर्वाण्यद्भ्यो हरेनामरूपयानायुधानि नः । बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पान्तु पार्षदमृपाणाः ॥ २८ ॥  
 यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् । सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥ २९ ॥  
 यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् । भूषणागुधलिङ्गाख्या धर्ते शक्तीः स्वमयया ॥ ३० ॥

तेनैव सत्यमातेन सर्वहो भगवान् हरिः। पातु सदैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥ ३१ ॥  
 विदिशु दिक्षुर्वृमधः समस्तादन्तर्वहिर्भगवान् नारायणः।  
 प्रहापयँहोकम्यं स्वनेन स्वेजसा अस्तसमस्तेजाः ॥ ३२ ॥  
 मधवचिदमाख्यातं चर्म नारायणात्मकम्। विजेष्यस्यज्ञसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥ ३३ ॥  
 एतद् धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा। पदा चासंस्पृशेत् सद्यः साध्वसात् स विमुच्यते ॥ ३४ ॥  
 न कुतश्चिद् यत्यं तस्य विद्यां धारयतो भवेत्। राजदस्युग्रहादिभ्यो द्यावादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥ ३५ ॥

( श्रीमद्भागवत् ६ । ८ । ३—३७ )

( अनुवादक—स्वामीजी श्रीआचार्णदानन्दजी सरखती )

श्रीगुरुकर्त्रेवज्ञने कहा—मरीक्षित् ! जब देवताओंने परिश्रूपने कुरोहित बना लिया, तब देवराज इन्द्रके प्रश्न करनेपर विश्वरूपने उन्हें नारायणकवचका उपदेश किया ! तुम इकायचिन्तसे उसका अव श्रवण करो ॥ १ ॥

विश्वरूपने कहा—देवराज इन्द्र ! भयका अवसर उपस्थित होनेपर नारायणकवच धारण करके अपने शरीरकी रक्षा कर लेनी चाहिये । उसकी विधि यह है कि पहले हाथ-पैर धोकर आचमन करे, फिर हाथमें कुशकी पवित्री धारण करके उत्तर मुँह डैठ जाय । इसके बाद कवचधारण-पर्यन्त और बुछ न बोलनेका निश्चय करके पवित्रतासे ॐ नमो नारायणाय् और ॐ नमो भगवते वासुदेवाय्—इन मन्त्रोंके द्वारा इडन्याप तथा करन्याप करे । पहले ॐ नमो नारायणाय् इस अप्राप्त नम्नके ॐ आदि आठ अश्रोकोंका कमशः पैरों, बुटनों, जाँघों, पेट, हृदय, कक्षस्थल, मुख और निरमें न्याय करे । अथवा पूर्वोक्त नम्नके यकारसे लेकर ॐकारपर्यन्त आठ अश्रोकोंपरिगे आरम्भ करके उन्हीं आठ अङ्गोंमें विपरीत क्रमसे न्याय करे ॥ २-४ ॥

तदनन्तर ॐ नमो भगवते वासुदेवाय्—इस द्वादशांश्च मन्त्रके अँसे लेकर य-पर्यन्त नारद अश्रोकोंका दार्यी तर्जनीसे वार्यी तर्जनीतक दोनों हाथोंकी आठ अङ्गुलियों और दोनों अङ्गुलोंकी दो-दो गोँठोंमें न्याय करे ॥ ५ ॥ फिर ॐ विष्णवे नमः इस मन्त्रके पहले अध्यर ॐ का हुदगर्म, एवं का व्रतारन्तरमें, १० वा भौद्रोंके वीचमें, ३० का चोटीमें, एवं का दोनों नेत्रोंमें और ८ वा शरीरकी सब गोँठोंमें न्याय करे । तदनन्तर ॐ मः अन्नाय फट् कहापर दिव्यन्त करे । इस प्रकार न्याय करनेसे इन विधिकी जगन्नानाला पुरात मन्त्रस्थल्य हो जाता है ॥ ६-८ ॥ इसके बाद गमगा ऐश्वर्य, धर्म, वश, लक्ष्मी, शान और वैराग्यसे

परिषूर्ण इष्टदेव भगवान्का ध्यान करे और अपनेको भी तद्रूप ही चिन्तन करे । तत्प्राप्त विद्या, तेज और तपः-स्वरूप इस कवचका पाठ करे—॥ ९ ॥

भगवान् श्रीहरि गणद्वार्जीकी पीठपर अपने चरणकमल रक्खे हुए हैं । अग्निमादि आठों सिद्धियाँ उनकी सेवा कर रही हैं । आठ हाथोंमें शङ्ख, चक्र, दाल, तलवार, गदा, बाण, धनुष और पाश ( फंदा ) धारण किये हुए हैं । वे ही ॐकारस्वरूप प्रभु सब प्रकारसे, सब ओरसे मेरी रक्षा करें ॥ १० ॥ मत्यमूर्ति भगवान् जलके सीतर जलजन्तुओंके रूपमें क्षित वरुणके पाशसे मेरी रक्षा करें । मायासे ब्रह्माचारीका रूप धारण करनेवाले वामन भगवान् स्थल्यर और विश्वरूप श्रीत्रिविक्रम भगवान् आकाशमें मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥ जिनके घोर अङ्गहाससे सब दिशाएँ गूँज उठी थीं और गर्भवती दैत्यगतियोंके गर्भ गिर गये थे, वे दैत्य-यूशपतियोंके शत्रु भगवान् वृत्तिहं जंगल, रणसूमि आदि विकट स्थानोंमें मेरी रक्षा करें ॥ १२ ॥ अपनी दाढोंपर पृथ्वीको धारण करनेवाले यशमूर्ति वराह भगवान् मार्गमें, परसुरामजी पर्वतोंके शिखरोंपर और लक्ष्मणजीके सहित भरतके बड़े भाई भगवान् रामचन्द्र प्रवासके समय हप्तारी रक्षा करें ॥ १३ ॥ भगवान् नारायण ऋषि मारण-मोहन आदि भयंकर अभिकरों और सब प्रकारके प्रमादोंसे मेरी रक्षा करें । ऋषिश्रेष्ठ नर गर्वसे, योगेश्वर भगवान् दत्तात्रेय योगके विज्ञेयोंसे और त्रिगुणाविप्रति भगवान् कपिल कर्मवन्धनोंसे मेरी रक्षा करें ॥ १४ ॥ परमार्थ तमत्कुमार कामदेवसे, हयग्रीष भगवान् मार्गमें चलते समय देवमूर्तियोंको नमस्कार आदि न करनेके अपराधसे, देवर्पि नारद सेवाकर्त्रोंसे और भगवान् कच्छप सब प्रकारके नरकोंसे मेरी रक्षा करें ॥ १५ ॥ भगवान् धन्वन्तरि कुपथसे, जितेन्द्रिय भगवान् ऋषभदेव सुख-दुःख आदि भयदायक दृढ़ोंसे, यश भगवान् लोकापवादसे, वल्लरामजी ग्रलयसे

और श्रीशेषजी कोधवदा नामक सर्वोक्ते गणसे मेरी रक्षा करें ॥ १६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णद्वैरायम् व्याप्ती अप्नागसे तथा बुद्धदेव पावाणिडयोंसे और प्रसादसे मेरी रक्षा करें । धर्मरक्षाके लिये भगवान् अवतार धारण करनेवाले भगवान् कल्पिक कालके मललृप कलिकालसे मेरी रक्षा करें ॥ १७ ॥ प्रातःकाल भगवान् केशव अपनी गदा लेकर, कुछ दिन चढ़ आनेपर भगवान् गोविन्द अपनी बाँसुरी लेकर, दोपहरके पहले भगवान् नारायण अपनी तीक्ष्ण वाकि लेकर और दोपहरको भगवान् विष्णु लक्ष्मण सुदर्शन लेकर मेरी रक्षा करें ॥ १८ ॥ तीसरे पहले भगवान् मधुसूदन अपना प्रचण्ड धनुप लेकर मेरी रक्षा करें । सायंकालमें व्रह्मा आदि त्रिमूर्तियारी भावध, दर्शकास्तके बाद तथा उर्धवरिके पूर्व हाथोकेत्य तथा अर्धशरीके समय अकेले भगवान् पञ्चनाभ मेरी रक्षा करें ॥ १९ ॥ चतुर्थके निछले प्रहरमें श्रीविष्णुवत्त्वज्ञन श्रीहरि, उपःकालमें खड्गवारी भगवान् जनार्दन, सूर्योदयमें पूर्व श्रीदामोदर और समूर्ण संव्यायोंमें काल्पूर्ति भगवान् विश्वेश्वर मेरी रक्षा करें ॥ २० ॥

सुदर्शन ! यापका आकार चक्र ( रक्षके पहिये ) की तरह है । आपके किनारेका भाग प्रल्यकालीन अस्तिके समान अत्यन्त तीव्र है । आप भगवान्तुरी प्रेरणासे सब ओर घूमते रहते हैं । जैसे आग बायुकी शहस्रतासे तखं धाप-झूलनों जला ढालती है, वैसे ही आग हमारी शत्रु-सेनाको शत्रु-से शत्रु जला दूषिये, जल दीजिये ॥ २१ ॥ कौमोदकी गदा ! आपसे छुट्टनेवाली चिनायामियोंका स्वर्ग ब्रह्मके समान असह्य है । आप भगवान् अजितश्री प्रिया हैं और मैं उनका सेवक हूँ । इसलिये आप कूम्भाण्ड, विनायक, यश, राशन, भूत और प्रतादि प्रहोंको पीक डालिये, कुचल डालिये तथा मेरे शत्रुओंको चुरू-चूरू कर दीजिये ॥ २२ ॥ शत्रुष्ठै प्राक्षमन्य ! आप भगवान् श्रीकृष्णके पूँछलेसे भयभक्त इन्द्र करके मेरे शत्रुओंका दिल दहलाते हुए यातुवान, प्रभम, प्रेत, मातृका, विश्वानं तथा त्रिशराक्षस आदि कूरक्षितवाले प्राणियोंको यहाँ पूर भगा दीजिये ॥ २३ ॥ भगवान्मही ओष्ठ तलवार ! आपकी धार बहुत तीक्ष्ण है । आप भगवान्मही प्रेरणासे मेरे शत्रुओंको छिप-गिन कर दीजिये । भगवान्मही

प्यारी ढाल ! आमें सैकहों चन्द्रकार मण्डल हैं । आप

पापहारि पाशमा शत्रुओंकी आँखें बंद कर दीजिये और उन्हें सदाके लिये अंथा बना दीजिये ॥ २४ ॥

सूर्य आदि जिन-जिन ग्रह, धूमकेतु ( पुच्छल तो ) और केतुओं, दुष्मनुष्यों, सर्वादि रेणुनेवाले जन्मत्रौं दाहौंवाले एक पशुओं तथा भूत-प्रेत आदि पारी प्राणियोंसे ही मय हो जै जो-जो हमारे मङ्गलके विरोधी हों—वे सभी भगवान्मही नहीं सायुधोंका कीर्तन करनेसे तत्काल मर हो जाएं ॥ २५-२६ ॥ बृहद्, रथन्तर आदि सामवेदीय सोन्नासे किंतु स्तुति वी जाती है, वे वेदमूर्ति भगवान् शश और पर्वतों विवक्षक्षेनजी अपने नामोंके द्वारा हमें सब प्रकारी विषयित्योंसे बचायें ॥ २७ ॥ श्रीहरिके नाम, रुद्र, वाहन तथा आयुत हमें सब प्रकारकी आपातिकायें बचायें और ऐसा पारं हमारी बुद्धि, इनिद्रा, मन और प्राणोंकी रक्षा करें ॥ २८ ॥

जितना भी कार्य अथवा करणलृप जगत् है, वह वास्तवमें भगवान् ही है—इस सबके प्रमाणसे हमारे भी उपद्रव नष्ट हो जायें ॥ २९ ॥ जो लोग ब्रह्म और आमारी एकताका अनुभव कर सकते हैं, उनकी इष्टिमें भगवान्मही स्वतन्त्र समस्त विकल्पों—भेदोंसे रहित है, किंतु भी क्षे त्यवे जनी माया-शक्तिके द्वारा भूषण, आयुष और स्व नामक शक्तियों को धारण करते हैं—वह वात निश्चितरूपदेवतये हैं । ही प्रमाण के बलसे स्वरूप, सर्वविद्यारक्षक भगवान्, श्रीहरि, सद्याचार्व अं स्वरूपोंसे हमारी रक्षा करें ॥ ३०-३१ ॥ जो अपने भैरों अदृहाससे सब लोगोंके सम्बन्धों माझे देते हैं और अपने तेजसे सबका तेज ग्रस लेते हैं, वे भगवान् गुरीहं रिसा विदिशामें, नीचे-ऊपर वाहर-मीतर—सब और हासी जा करें ॥ ३२ ॥

देवराज इन्द्र ! मैंने तुम्हें यह नारायणकवच दुर्गा दिया । इस कवचसे सुरक्षित होकर तुम अनाकाश ही मत रैल युथपतियोंको जीत लोगे ॥ ३३ ॥ इस नारायणकवचसे धारण करनेवाला उत्तम जिवकी भी जाने केवासे इत्येतना अथवा पैरसे दू देता है, वह तत्काल समस्त मरणोंसे संरक्षण मुक्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ जो इस वैष्णवी विषासे भरत कर लेता है, उसे राजा, डाकू, प्रतादि यानादि गति और द्राव आदि दिव्यक जीवोंसे कमी किसी प्रकारत भग नहीं होता ॥ ३५ ॥

## गजेन्द्रस्तवन

( इस स्तोत्रके शब्दापूर्वक पाठ, अनुष्ठानसे क्रणसंकट, मृत्युसंकट आदि दूर होते हैं। महामना मालवीयजीके द्वारा बार-बार अनुभूत है। )

### श्रीशुक उवाच

एवं व्यवसितो वृद्धया समाधाय मनो हृदि । जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

### गजेन्द्र उवाच

ॐ नमो भगवते तस्मै यत् पतच्छिदात्मकम् । पुरुषायादिवीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥

यस्मिन्द्विदं यतश्चेदं ये नेदं य इदं स्वयम् । योऽस्मात् परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्मुखम् ॥ ३ ॥

यः स्वात्मनीदं निजमायथार्पितं कच्चिद् विभातं क च तत् तिरोहितम् ।

अविद्वद्दक् साक्ष्युभ्यं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥

कालेन एञ्चत्वमितेषु कुरुक्षशो लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ।

तमस्तदाऽसीद् गहनं गमीरं यस्तस्य पारेऽस्मिविशजते विभुः ॥ ५ ॥

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।

यथा नटस्याकृतिमिर्विचेष्टतो दुरस्थयातुकमणः स भावतु ॥ ६ ॥

दिव्यक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं विकुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।

चरन्त्यलोकवत्मवर्णं वने भूतात्ममूर्तिः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७ ॥

न चिद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामस्त्वये गुणदोष एव वा ।

तथापि लोकाप्ययस्तंभवाय यः स्वमायथा तान्यनुकालसृच्छति ॥ ८ ॥

तस्मै नमः परेशाय व्रह्मणेऽसन्तशक्तये । अरुपायोरुपाय नम आश्र्वर्यकर्मणे ॥ ९ ॥

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मते । नमो गिरां विद्वाय मनसद्वेतसामपि ॥ १० ॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता । नमः कैवल्यनाथाय निर्विणसुखसंविदे ॥ ११ ॥

नमः शान्ताय घोराय सूढाय गुणधर्मिणे । निर्विशेषाय साम्याय नमो शान्तघनाय च ॥ १२ ॥

क्षेत्रक्षाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे । पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ १३ ॥

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्टे सर्वप्रत्ययहेतवे । असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥ १४ ॥

नमो नमस्तेऽस्त्रिलकारणाय निष्कारणायाद्गुतकारणाय ।

सर्वागमास्त्रायमहार्णवाय नमोऽपवर्गीय परायणाय ॥ १५ ॥

गुणारणिच्छन्नन्नचिद्गुप्तपाय तत्क्षेमविस्फूर्जितमानसाय ।

तैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागमस्वयंप्रकाशाय नमस्करेमि ॥ १६ ॥

मादकग्रपत्रगृहाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ।

स्वांशेन सर्वतनुभृत्यनसि प्रतीतप्रत्यग्वशे भगवते वृहते तमस्ते ॥ १७ ॥

आत्मात्मजासगृहवित्तजनेषु सक्तेदुप्पापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय ।

मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मते भगवते नम ईश्वरांय ॥ १८ ॥

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टां गतिमानुधन्ति ।

किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मे ऽद्भद्रयो विमोक्षणम् ॥ १९ ॥

एकान्तिनो यस्य न कश्चनार्थं वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।  
अत्यद्गृह्णत् तच्चरितं सुमङ्गलं गायन्त आनन्दसमुद्रमशाः ॥२०॥  
तमक्षरं ब्रह्म परं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ।  
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरमनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥२१॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः । नामरूपविभेदेन फलव्या च कलया कृताः ॥२२॥  
यथार्चिंषोऽग्नेः सवितुर्गमस्तयो निर्यान्ति संयात्यसकृत् स्वरोचिषः ।  
तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥२३॥  
स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ् न स्त्री न पण्डो न पुमान् न जन्तुः ।  
नायं गुणः कर्म न सच्च चासन् निषेधशेषो जयतादशेषः ॥२४॥  
जिजीविषे नाहमिहामुया किमन्तर्वहिश्चावृतयेभयोन्या ।  
इच्छामि कालेन न यस्य विष्टुवस्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥२५॥  
सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् । विश्वात्मानमज्जं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥२६॥  
योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते । योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्यहम् ॥२७॥  
नमो नमस्तुभ्यमसहवेगशक्तिव्यायाखिलधीगुणाय ।  
प्रपञ्चपालाय दुरन्तशक्तये कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्तने ॥२८॥  
नायं वेद स्वमात्मानं यज्ञज्ञयाद्विद्या हतम् । तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्यहम् ॥२९॥

### श्रीशुक उवाच

एवं गजेन्द्रसुपर्णितनिर्विशेषं ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः ।  
नैते यदोपसस्तुपुनिलिलात्मकत्वात् तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥३०॥  
तं तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्धिः ।  
छन्दोमयेन गरुडेन समुद्घामनश्चकायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥३१॥  
सोऽन्तस्सरस्युरुवलेन गृहीत आर्ती दृष्टा गस्तमति हरिं ख उपात्तचक्रम् ।  
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥३२॥  
तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य सग्राहमाशु सरसः कृपयोजहार ।  
आहम् विपाटितसुखादरिणा गजेन्द्रं सम्पद्यतां हरिरमूरुचदुस्त्रियाणाम् ॥३३॥

( श्रीमद्भगवत् ८।३।१—३ )

( अनुवादक—स्वामीजी श्रीअलण्डानन्दजी सरस्वती )

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अपनी बुद्धिसे ऐसा निश्चय करके गजेन्द्रने अपने मनको हृदयमें एकाग्र किया और फिर पूर्वजन्ममें सीखे हुए श्रेष्ठ स्तोत्रके जपद्वारा भगवान् की स्तुति करने लगा ॥ १ ॥

गजेन्द्रने कहा—जो जगत्के मूल कारण हैं और सबके हृदयमें पुरुषके रूपमें विराजमान हैं एवं समस्त जगत्के एक-मात्र स्वामी हैं, जिनके कारण इस संसारमें चेतनाताका विस्तार होता है—उन भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ, प्रेमरे

उनका ध्यान करता हूँ ॥ २ ॥ यह संसार उन्हींमें खित है उन्हींकी सत्तासे प्रतीत हो रहा है, वे ही इसमें व्याप्त हो रहे हैं और स्वयं वे ही इसके रूपमें प्रकट हो रहे हैं । यह यह होनेपर भी वे इस संसार और इसके कारण—प्रह्लिदि सत्ता परे हैं । उन स्वयंप्रकाश, स्वयंसिद्ध सत्तामक भगवान् ही शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥ यह विश्वप्रशंशा उन्हींकी मात्र है उनमें अध्यस्त है । यह कभी प्रतीत होता है, तो कर्ता नहीं परंतु उनकी दृष्टि ज्योंकी-ल्यों—एक-मी रहती है । वे इसे

साक्षी हैं और उन दोनोंको ही देखते रहते हैं। वे सबके मूल हैं और अपने मूल भी बही हैं। कोई दूसरा उनका कारण नहीं है। वे ही समस्त कार्य और कारणोंसे अतीत प्रभु मेरी रक्षा करें। ४॥ प्रलयके समय लोक, लोकपाल और इन भवके कारण सम्पूर्णरूपसे नष्ट हो जाते हैं। उस समय केवल अत्यन्त घना और गहरा अन्धकार-ही-अन्धकार रहता है। परंतु अनन्त परमात्मा उससे सर्वथा परे विराजमान रहते हैं। वे ही प्रभु मेरी रक्षा करें। ५॥ उनकी लीलाओंका रहस्य जानना बहुत ही कठिन है। वे नटकी भाँति अनेकों वेष धारण करते हैं। उनके वास्तविक स्वरूपको न तो देखता जानते हैं और न वृद्धि ही; फिर दूसरा ऐसा कौन प्राणी है, जो वहाँतक जा सके और उसका वर्णन कर सके? वे प्रभु मेरी रक्षा करें। ६॥ जिनके परम मङ्गलमय स्वरूपका दर्शन करनेके लिये महात्मागण संसारकी समस्त आसक्तियोंका परित्याग कर देते हैं और वनमें जाकर अखण्डभावसे ब्रह्माचर्य आदि अलौकिक ब्रतोंका पालन करते हैं तथा अपने आत्माको सबके हृदयमें विराजमान देखकर स्वाभाविक ही सबकी भलाई करते हैं—वे ही मुनियोंके सर्वस्व भगवान् मेरे सहायक हैं; वे ही मेरी गति हैं। ७॥ न उनके जन्म-कर्म हैं और न नाम-रूप; फिर उनके सम्बन्धमें गुण और दोषकी तो कल्पना ही कैसे की जा सकती है? किर भी विक्षकी सुष्ठि और संहार करनेके लिये समय-समयपर वे उन्हें अपनी मायासे स्तीकार करते हैं। ८॥ उन्हीं अनन्त शक्तिमान् सर्वशर्यमय परब्रह्म परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। वे अरूप होनेपर भी बहुरूप हैं। उनके कर्म अत्यन्त आश्र्यमय हैं। मैं उनके नरणोंमें नमस्कार करता हूँ। ९॥ स्वयंप्रकाश, सबके साक्षी परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो मन, बाणी और नित्तसे अत्यन्त दूर हैं—उन परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। १०॥

विवेकी पुरुष कर्म-संन्यास अथवा कर्म-समर्पणके द्वारा अपना अन्तःकरण शुद्ध करके जिन्हें प्राप्त करते हैं तथा जो न्यय तो नित्यमुक्त, परमानन्द एवं ज्ञानस्वरूप हैं ही, दूसरों-से कैवल्य-मुक्ति देनेकी सामर्थ्य भी केवल उन्हींमें है—उन प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ। ११॥ जो सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंका धर्म स्तीकार करके क्रमशः शान्त, धोर और मृद अवस्था भी धारण करते हैं, उन भेदरहित गमभावसे खित एवं शानघन प्रभुको मैं वारन्वार नमस्कार करता हूँ। १२॥ आप सबके स्वामी, समस्त क्षेत्रोंके एक-

मात्र ज्ञाता एवं सर्वसाक्षी हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप स्वयं ही अपने कारण हैं। पुरुष और मूल प्रकृतिमें रूपमें भी आप ही हैं। आपको मेरे वार-वार नमस्कार। १३॥ आप समस्त इन्द्रिय और उनके विषयोंके द्रष्टा हैं, समस्त प्रतीतियोंके आधार हैं। अहङ्कार आदि छायारूप असर् वस्तुओंके द्वारा आपका ही अस्तित्व प्रकट होता है। समस्त वस्तुओंकी सत्ताके रूपमें भी केवल आप ही भास रहे हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। १४॥ आप सबके मूल कारण हैं, आपका कोई कारण नहीं है। तथा कारण होनेपर भी आपमें विकार या परिणाम नहीं होता, इसलिये आप अनोद्देव कारण हैं। आपको मेरा वार-वार नमस्कार! जैसे समस्त नदी-झरने आदिका परम आश्रय समुद्र है, वैसे ही आप समस्त वेद और शास्त्रोंके परम तात्पर्य हैं। आप मोक्षस्वरूप हैं और समस्त संत आपकी ही शरण ग्रहण करते हैं; अतः आपको मैं नमस्कार करता हूँ। १५॥ जैसे यज्ञके काष्ठ अरणियमें अग्नि गुप्त रहती है, वैसे ही आपने अपने ज्ञानको गुणोंकी मायासे ढक रखा है। गुणोंमें क्षोभ होनेपर उनके द्वारा विविध प्रकारकी सुष्टिरचनाका आप संकल्प करते हैं। जो लोग कर्म-संन्यास अथवा कर्म-समर्पणके द्वारा आत्मतत्त्वकी भावना करके वेद-शास्त्रोंसे ऊपर उठ जाते हैं, उनके आत्माके रूपमें आप स्वयं ही प्रकाशित हो जाते हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। १६॥

जैसे कोई दयालु पुरुष फटेमें पड़े हुए पशुका बन्धन काट दे, वैसे ही आप मेरे-जैसे शरणागतोंकी फँसी काट देते हैं। आप नित्यमुक्त हैं, परम करुणामय हैं और भक्तोंका कल्याण करनेमें आप कभी आलस्य नहीं करते। आपके चरणोंमें मेरा नमस्कार है। समस्त प्राणियोंके हृदयमें अपने अंशके द्वारा अन्तरात्माके रूपमें आप उपलब्ध होते रहते हैं। आप सर्वशर्यपूर्ण एवं अनन्त हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। १७॥ जो लोग शरीर, पुत्र, शुरुजन, यह, सम्पत्ति और स्वजनोंमें आसक्त हैं—उन्हें आपकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है; क्योंकि आप स्वयं गुणोंकी आसक्तिसे रहित हैं। जीवन्मुक्त पुरुष अपने हृदयमें आपका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। उन सर्वशर्यपूर्ण ज्ञानस्वरूप भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ। १८॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी कामनासे मनुष्य उन्हींका भजन करके अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लेते हैं। इतना ही नहीं, वे उनको सभी प्रकारका सुख देते हैं और अपनेही-जैसा अविनाशी पार्षद-शरीर भी देते हैं। वे

ही परम दयालु प्रभु भेद उद्धार करें ॥१९॥ जिनके अनन्य प्रेमी भक्तजन उन्हींकी शरणमें रहते हुए उनसे किसी भी नस्तुकी—यहाँतक कि मोक्षकी भी अभिलाश नहीं करते, केवल उनकी परम दिव्य मङ्गलमयी लीलाओंका गान करते हुए आनन्दके समुद्रमें निमश्च रहते हैं ॥ २० ॥ जो अविनाशी, अवशक्तिमान्, अव्यक्त, इन्द्रियातीत और अत्यन्त सूख्य हैं; जो अत्यन्त निकट रहनेपर भी बहुत दूर आन पड़ते हैं, जो अस्थात्मिक योग अथांत् ब्रान्योग या भक्तियोगके द्वारा प्राप्त हैं—उन्हीं आदिपुरुष, अनन्त एवं परिपूर्ण परब्रह्म प्रात्माकी मैं सुन्ति करता हूँ ॥ २१ ॥

जिनकी अत्यन्त छोटी कलासे अनेकों नाम-रूपके भेद-विशेष युक्त ब्रह्मा आदि देवता, वेद और चरानवर लोकोंकी इसी हुई है जैसे धधकती हुई अमासे लघटे और प्रकाशमान यससे उनकी किरणें चार-चार निकलती और लीन होती रहती हैं जैसे ही जिन स्वर्यप्रकाश परमात्मारे बुद्धि, मन, निद्रा और जरीर—जो गुणोंके प्रवाहरूप हैं—चार-चार कट होते तथा लीन हो जाते हैं वे भगवान् न देवता हैं और न असुर । वे मनुष्य और पशु-पक्षी भी नहीं हैं । न वे यी हैं, न पूरुष और न नपुंसक । वे कोई साधारण या प्रसाधारण प्राणी भी नहीं हैं । न वे गुण हैं और न कर्म, न कार्य हैं और न तो कारण ही । सबका निषेध हो जानेपर तो कुछ नव रहता है, वही उनका स्वरूप है तथा वे ही सब कुछ हैं । वे ही परमात्मा मेरे उद्घारके लिये प्रकट हैं ॥ २२-२४ ॥ मैं जीना नहीं चाहता । यह हाथीकी योनि गहर और भीतर—सब ओरसे ब्रह्मानरूप आवरणके द्वारा ढकी हुई है इसको रखकर कमा ही क्या है ॥ मैं तो आस्मद्ब्रह्माको ढकनेवाले उस अशानतरूप आवरणसे छूटना चाहता हूँ, जो कालक्रमसे अपने-आप नहीं छूट सकता, जो केवल भगवत्कृपा अथवा तरवज्ञानके द्वारा ही नष्ट होता है ॥ २५॥ इसलिये मैं उन परब्रह्म परमात्माकी शरणमें हूँ, जो विश्वरहित होनेपर भी विश्वके स्वयंश्चिता और विश्वस्तरूप हैं—ताय ही जो विश्वकी अन्तरात्माको रूपमें विश्वस्तरूप सम्प्राप्ति कीड़ा भी करते रहते हैं, उन अन्यमा परमपद-स्वरूप ब्रह्मको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २६ ॥ योगीलोग योगके द्वारा कर्म,

कर्म-बासला और कर्मफलको भस्सा करके अपने हृदयमें जिस योगेश्वर भगवान्‌का याकात्कार करते प्रसुको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २७ ॥ प्रमो । अ शक्तियोंके—सत्य, रज और तमके, रागादि वेग उ उपर इनियों और मनके विषयोंके रूपमें भी आप हो रहे हैं । इसलिये जिनकी इनियों वशमें नहीं आपकी प्राप्तिका सार्ग भी नहीं जा सकते । आप अनन्त हैं । आप शरणाश्वत्रस्तल हैं । शापको नै नमस्कार करता हूँ ॥ २८ ॥ आपकी माया अपाकाका स्वरूप दक गया है इसीसे वह जीव आप को नहीं जान पाता । आपकी मायेमा आप है । शक्तिमान् एवं मायुरीनिधि भगवान्‌की मैं जाग्रमैं । श्रीशुक्रवैद्यनार्ती कहते हैं—परीक्षित । गजेन्द्रने । भेदभावके निर्विशेषस्तरपरे भगवान्‌की सुन्ति की भी भिन्न-भिन्न नाम और रूपको अपना स्वरूप मानते आदि देवता उसकी रक्षा करनेके लिये नहीं आये । सर्वत्रिमा होनेके कारण सर्वदेवस्वरूप स्वयं भगवन् प्रकट हो मध्ये ॥ २९ ॥ विश्वके एकमात्र आधार देखा कि गजेन्द्र अत्यन्त पीड़ित हो रहा है । अ सुन्ति सुनकर वेदस्थ गहडपर सवार हो जहाँत बड़ी शीत्रतासे चहाँके लिये चल पड़े, जहाँ गजेन्द्र संकटमें पङ्का हुआ या । उनके साथ सुन्ति करते । भी आये ॥ ३१ ॥ सरोवरके भीतर ब्रह्मान् ग्राहने पकड़ रखता या और वह अत्यन्त ब्याकुल ही जब उसने देखा कि आकाशमें गहडपर सवार हो जहाँ लिये भगवान् औहरि आ रहे हैं, तब आप कमलका एक सुन्दर पुष्प लेकर उसने जापको उ बढ़े करासे लोत्य—‘नारायण ! जगद्गुरु ! भगवन् नमस्कार है ॥ ३२ ॥ जब भगवान् देखा कि अत्यन्त पीड़ित हो रहा है, तब वे एकमात्री गहड कर कूट पड़े और कूपा करके गजेन्द्रको साथ ही । बड़ी शीत्रतासे सरोवरते बाहर निकल लाये । देवताओंके समने ही भगवान् शहिरि चढ़ाते गा फाइ डाला और गजेन्द्रको छुड़ा दिया ॥ ३३॥

## भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका स्तवन

( इस स्तोत्रके श्रद्धाभक्तिपूर्वक—रामगढ महेश्वर रथुवीर दृष्टेतम् । भो दशायान्तकासाकं रक्षा देहि श्रियं च दे ॥ १८  
सम्पूर्णके साथ लिख्याठसे रोगनाश, द्वारिद्र्यनाश, अभवपूर्ति और निष्कामभावसे करनेपर भगवत्येम तथा भगवान्की प्राप्ति होती है । )

मुनय ऊँ:

नमस्ते रामचन्द्राय लोकानुग्रहकारिणे । अरावणं जगत्कुमवतीर्णीय भूतले ॥  
ताटकादेहसंहर्त्रे गाधिजाध्वररक्षिणे । नमस्ते जितमारीच सुवाहुप्राणहारिणे ॥  
अहल्यामुकिसंदायिपादपङ्कजरेणवे । नमस्ते हरकोदण्डलीलामञ्जनकारिणे ॥  
नमस्ते मैथिलीपाणिग्रहपोत्सवशालिने । नमस्ते देणुकापुत्रपराजयविधायिने ॥  
सह लक्ष्मणसीताभ्यां कैकेय्यास्तु वरद्वयात् । सत्यं पितृवत्तः कर्तुं नमो वनमुपेयुये ॥  
भरतप्राप्यनादत्तगाढुकायुगलाय ते । नमस्ते शरभङ्गस्य सर्गप्राप्त्यैकहोत्ये ॥  
नमो विरावसंहर्त्रे गृध्रराजसखाय ते । मायासुगमसहारूपमारीचाङ्गविदारिणे ॥  
सीतापहारिलोकेशयुद्धत्यक्तलेवरम् । जदायुषं तु संदृश्य तत्कैवल्यप्रदायिने ॥  
नमः कवचसंहर्त्रे शवरीपूजिताङ्गेये । प्रासुदीषसख्याय कृतवरीलिवधाय ते ॥  
नमः कृतवते सेतुं समुद्रे वरणालये । सर्वराक्षससंहर्त्रे रावणप्राणहारिणे ॥  
संसाराम्बुद्धिसंतरपोतपादम्बुजाय ते । नमो भक्तार्तिसंहर्त्रे सच्चिदानन्दरूपिणे ॥  
नमस्ते रामचन्द्राय जगतासुद्धिद्वेष्टवे । रामादिपुण्यनामानि जपतां पापहारिणे ॥  
नमस्ते सर्वलोकानां सूर्यिस्थित्यन्तकारिणे । नमस्ते करुणामूर्ते भक्तरक्षणदीक्षित ॥  
ससीताय नमस्तुर्यं विभीषणसुखग्रद् । लङ्घेश्वरवधाद्राम परितरं हि जगत्स्वया ॥  
रक्ष रक्ष जगत्ताथ पाहासाज्ञानकीपते । स्तुतवैवं मुनयः सर्वे तूष्णीं तस्युद्धिजोसामाः ॥

श्रीसूत उवाच

य इदं रामचन्द्रस्य स्तोत्रं मुनिभिरीरितम् । त्रिसंघं पठते भक्त्या भुक्ति मुक्ति च विन्दति ॥  
प्रथाणकाले पठतो न भीतिरुपजायते । पतस्तोत्रस्य पठनाद् भूतवेतालकादयः ॥  
नश्यन्ति रोगाः सकला नश्यते पापसंचयः । पुत्रकामो लभेत्पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम् ॥  
मोक्षकामो लभेत्मोक्षं धनकामो धनं लभेत् । सर्वान्कामानवास्रोति पठन्मक्त्या त्विमं स्तवम् ॥

( स्कन्दपुराण-ब्रह्मावण, सेतुमाहात्म्य ४४ । ६३—८१ )

( अनुवादक—पाण्डेय एं० श्रीरामनारायणदत्तनी शास्त्री )

मुनियोंने कहा—सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले अप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है । आपने इस मंत्राक्तो रावणसे शून्य करनेके लिये अवतार लिया है, आपको नमस्कार है । ताइकाका संहार और विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा नमस्कार है । आपको जीतनेवाले, करनेवाले आपको नमस्कार है । मारीचको जीतनेवाले, तुताहुना प्राण दूरण करनेवाले धीराम ! आपको नमस्कार है । आपके वरणारविन्दोंकी धूलि अहल्याको मुक्ति देनेवाली है, आपने भगवान् शंकरके धनुषको लौलापूर्वक भज्ञ किया

है; आपको नमस्कार है । मिथिलेशकुमारी सीताके पाणिप्रहण-सम्बन्धी उत्तवसे सुशोभित होनेवाले आपको नमस्कार है । रेणुकानन्दन परद्वारामजीको पराजित करनेवाले आपको नमस्कार है । कैकेयीके दो वरदानोंसे विवश हुए पिताके वनको सत्य करनेके लिये सीता और लक्ष्मणके साथ बनकी बात्रा करनेवाले आपको नमस्कार है । भरतकी प्रार्थनापर उन्हें आपने चरणोंकी युगल पाढुका समर्पित करनेवाले आपको नमस्कार है । शरभङ्ग मुनिको अपने

परम धामकी प्राप्ति करनेवाले आपको नमस्कार है। विराघ राक्षसका संहार करनेवाले तथा गृहराज जटायुको अपना सखा बनानेवाले आपको नमस्कार है। मायासे भृगका रूप धारण करके आये हुए महाकूर मारीचके शरीरको आगे चाणोंसे विदीर्ण करनेवाले आपको नमस्कार है। रावणसे हरी गयी सीताको छुड़ानेके लिये जिन्होंने युद्धमें अपने शरीरका त्याग कर दिया, उन जटायुको अपने हाथसे दाह-संस्कार करके कैवल्य-मोक्ष प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है। कवनधका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है। शबरीने आपके चरणारविन्दोंका पूजन किया है, आपने सुग्रीवके साथ मैत्री जोड़ी है तथा बाली नामक बनरका वध किया है; आपको नमस्कार है। वरुणालय समुद्रमें सेतुनिर्माण करनेवाले आपको नमस्कार है। समस्त राक्षसोंका संहार तथा रावणका प्राण हरण करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके चरणारविन्द संसार-सागरसे पार उतारनेके लिये जहाज हैं। आपको नमस्कार है। भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाले सञ्चिदानन्दस्वरूप आप श्रीरघुनाथजीको नमस्कार है। जगत्के अभ्युदयके करणभूत आप श्रीरामभद्रको नमस्कार है। राम आदि पवित्र नामोंका जप करनेवाले गनुष्योंके पाप हर लेनेवाले आपको नमस्कार है। आप सब

लोकोंकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। करुणामूर्ति ! आपको नमस्कार है। भक्तोंकी रक्षाके व्रतकी दीक्षा लेनेवाले प्रभो ! आपको नमस्कार है। सीतासहित आपको नमस्कार है। विभीषणको सुखदेनेवाले श्रीराम ! आपने लङ्घापति रावणका वध करके सम्पूर्ण जगत्की रक्षा की है, आपको नमस्कार है। जगन्नाथ ! हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। जानकीपते ! हम सबका पालन कीजिये। इस प्रकार सुखित करके सब सुनि चुप हो गये ॥ १—१५ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—मुनियोंद्वारा किये हुए श्रीरामचन्द्रजीके इस स्तोत्रका जो भक्तिपूर्वक तीनों समय पाठ करता है, वह भोग और मोक्षको प्राप्त करता है। यात्राके समय हम स्तोत्रका पाठ करनेसे भूत-वेतालादि भय नहीं दे सकते। इस स्तोत्रके पाठसे समस्त (शारीरिक-भानसिक) रोगोंका तथा पापोंके संग्रहका नाश हो जाता है। पुत्रकी इच्छावाला पुत्र प्राप्त करता है तथा कन्याको सत्स्वभावके पतिकी प्राप्ति होती है। मोक्षकी कामनावाला मोक्ष पाता है और धनकी इच्छावाला धन। इस स्तोत्रका भक्तिपूर्वक पाठ करनेसे सभी मनोरथोंकी प्राप्ति होती है ॥ १६—१९ ॥

## श्रीहनुमानूजीद्वारा भगवान् श्रीराम और सीताका स्तवन

(इस स्तोत्रके प्रतिदिन—आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् । लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥  
—सम्पुर्सहित श्रद्धा-भक्तियुक्त पाठ और अनुष्ठानसे पापतापनाश और मनोवान्द्वित सर्वार्थसिद्धि होती है।)

नमो रामाय हरये विष्णवे प्रभविष्णवे । अदिदेवाय देवाय पुराणाय गदामृते ॥  
विष्टरे पुष्पके नित्यं निविष्टाय महात्मने । प्रहृष्टवानरातीकजुष्टपादाम्बुजरय ते ॥  
निष्पिष्टराक्षसेन्द्राय जगदिष्टविधायिने । नमः सहस्रशिरसे सहस्रचरणाय च ॥  
सहस्राक्षाय शुद्धाय राघवाय च विष्णवे । भक्तार्तिहारिणे तुभ्यं सीतायाः पतये नमः ॥  
हरये नारसिंहाय दैत्यराजविदारिणे । नमस्तुभ्यं वराहाय दंशोद्भूतवसुन्धर ॥  
त्रिविक्रमाय भवते बलियश्विभेदिने । नमो वामनरूपाय नमो मन्दरघारिणे ॥  
नमस्ते मत्सरूपाय त्रयीपालनकारिणे । नमः परशुरामाय द्वित्रियान्तकराय ते ॥  
नमस्ते राक्षसधनाय नमो राघवरूपिणे । महादेवमहार्मीममहाकोदण्डभेदिने ॥  
क्षत्रियान्तकरकूरभार्गवत्रासकारिणे । नमोऽस्त्वहल्यासंतापहारिणे चापहारिणे ॥  
नागायुतबलोपेतताटकादेहारिणे । शिलाकठिनविस्तारवालिवक्षोविभेदिन ॥  
नमो मायामृगोन्मायकारिणेऽशानहारिणे । दशस्यन्दनदुःखाविष्णवोपणागस्त्यरूपिणे ॥

अनेकोर्मिसमाधूतसामुद्रमद्दहारिणे । मैथिलीमानसाम्बोजभानबे लोकसाक्षिणे ॥  
राजेन्द्राय नमस्तुर्यं जातकीपतये हरे । तारकग्रहणे तुर्यं नमो राजीवलोचन ॥  
रामाय रामचन्द्राय वरेण्याय सुखात्मने । विश्वामित्रप्रियायेदं नमः खरविदारिणे ॥  
प्रसीद देवदेवेश भक्तानामभयप्रद । रक्ष मां करुणासिन्धो रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥  
रक्ष मां वेदवचसामव्यगोचर राघव । पाहि मां कृपया राम शरणं त्वासुष्टैम्यहम् ॥  
रघुवीर महामोहमपाकुरु ममाधुता । स्ताने चाचमने भुक्तौ जाग्रत्समसुषुप्तिषु ॥  
सर्वावस्थासु सर्वत्र पहि मां रघुनन्दन । महिमानं तव स्तोतुं कः समर्थो जगत्वये ॥  
त्वप्रेव त्वन्महत्त्वं वै जातासि रघुनन्दन । इति स्तुत्वा वायुपुत्रो रामचन्द्रं करुणानिधिम् ॥

### श्रीजानकीजीका स्तवन

जानकि त्वां नमस्यामि सर्वपापशणाशिनीम् ॥

दारिद्र्यरणसंहन्त्रीं भक्तानामिंश्चायिनीम् । विदेहराजतनयां राघवानन्दकारिणीम् ॥  
भूमेद्वृहितरं विद्यां नमामि प्रकृतिं शिवाम् । पौलस्त्यैश्वर्यसंहन्त्रीं भक्ताभीष्टां सरस्वतीम् ॥  
पतिव्रताधुरीणां त्वां नमामि जनकात्मजाम् । अनुग्रहपरामृद्धिमतवां हरिवल्लभाम् ॥  
आत्मविद्यां व्रयीरुपामुमारुपां नमाम्यहम् । प्रसादामिमुखीं लक्ष्मीं क्षीरादिततनयां शुभाम् ॥  
नमामि चन्द्रभगिनीं सीतां सर्वाङ्गसुन्दरीम् । नमामि धर्मनिलयां करुणां वेदभातरम् ॥  
पञ्चालयां पद्महस्तां विष्णुवक्षःस्थलालयाम् । नमामि चन्द्रनिलयां सीतां चन्द्रनिभाननाम् ॥  
आहादरूपिणीं सिंद्रिं शिवां शिवकर्तां सीतीम् । नमामि विश्वजननीं रामचन्द्रेष्वल्लभाम् ॥  
सीतां सर्वानवद्याङ्गीं भजामि सततं हृदा ।

### श्रीसूत उवाच

स्तुत्वैवं हनुमान् सीतारामचन्द्रौ सर्वकिकम् ॥  
आनन्दाशुपरिकिलशस्तूष्णीमास्ते द्विजोत्तमाः ।

य इदं वायुपुत्रेण कथितं पापनाशनम् ॥

स्तोत्रं श्रीरामचन्द्रस्य सीतायाः पठतेऽन्वहम् । स नरो महदैश्वर्यमश्नुते वाज्ञितं सदा ॥  
अनेकस्येव्यान्यानि गाढ़ दोषधीः परस्तिनीः । आयुर्विद्याश्च पुत्रांश्च भार्यामपि भनोरमाम् ॥  
एतत् स्तोत्रं सकृदिग्राः पठन्नाप्नोत्यसंशयः । एतत्स्तोत्रस्य पाठेन नरकं नैव यास्यति ॥  
द्रव्यहस्त्यादिपापानि नश्यन्ति सुमहान्यपि । सर्वपापविनिर्मुक्तो देहान्ते सुक्षिमाप्नुयात् ॥

( स्तं न० न० से तु० ४६ । ३१—६३ )

( अनुवादक—पाण्डेय प० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री )

श्रीहनुमानजीने कहा—सबकी उत्तिके आदिकारण  
नर्वव्यापी श्रीहरिम्बलप श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है।  
आदिदेव पुराणपुरुष भगवान् गदाधरको नमस्कार है। पुण्यके  
आसनपर नित्य विराजमान महात्मा श्रीरघुनाथजीको नमस्कार  
है। प्रभो! हर्षीं भेरे हुए बानरोंका समुदाय आपके युगल  
सरणारविन्दोंकी सेवा करता है, आपको नमस्कार है।

राक्षसराज रावणको पीस डालनेवाले तथा संभूर्ज जगत्का  
अभीष्ट सिंह करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है।  
आपके सहस्रों मरतक एवं सहस्रों चरण हैं। आपके सहस्रों  
नेत्र हैं, आप विशुद्ध विष्णुख्वस्त्रप रथवेन्द्रको नमस्कार है।

आप भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाले तथा सीताके प्राण-  
वल्लभ हैं, आपको नमस्कार है। दैत्यराज विष्णुकशिपुके

वक्षःस्थलको विदीर्ण करनेवाले आप नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वीको उठानेवाले भगवान् वराहरूप आपको नमस्कार है। बलिके यज्ञको भंग करनेवाले आप भगवान् त्रिविक्तमको नमस्कार है। वामनरूपधारी भगवान् को नमस्कार है। अपनी पीठपर महान् मन्दराज्ञल धारण करनेवाले भगवान् कच्छपको नमस्कार है। तीनों वेदोंकी रक्षा करनेवाले मत्स्यरूपधारी भगवान् को नमस्कार है। क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले परशुरामरूपी आपको नमस्कार है। राक्षसोंका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है। राघवेन्द्रका रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। महादेवजीके महान् भयङ्कर महावधुषको भंग करनेवाले आपको नमस्कार है। क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले कूर परशुरामको भी त्रास देनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन्! आप अहल्याके संताप और महादेवजीके चापको खण्ड-खण्ड कर देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाली ताङ्काके शारीरका अन्त करनेवाले आपको नमस्कार है। पत्थरके समान कठोर और चौड़ी छातीको छेद डालनेवाले आपको नमस्कार है। आप मायामृगका नाश करनेवाले तथा अज्ञानको हर लेनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। दशरथजीके दुर्खलरूपी समुद्रको सोख लेनेके लिये आप मूर्तिमान् अगस्त्य हैं, आपको नमस्कार है। अनन्त उच्चाल तरङ्गोंसे उद्भेदित समुद्रका भी दर्प-दल्जन करनेवाले आपको नमस्कार है। मिथिलेशनन्दिनी सीताके हृदयकमलको विकसित करनेवाले सूर्यरूप आप लोकसाक्षीको नमस्कार है। हरे! आप राजाओंके भी राजा और जानकीजीके प्राण-बल्लभ हैं, आपको नमस्कार है। कमलनयन! आप ही तारक ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है। आप ही योगियोंके मनको रमानेवाले 'राम' हैं। राम होते हुए चन्द्रमके समान आहाद प्रदान करनेके कारण 'रामचन्द्र' हैं। सबसे श्रेष्ठ और उत्तम उत्तमरूप हैं। आप विश्वामित्रके प्रिय तथा खर नामक राक्षसका हृदय विदीर्ण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। भक्तोंको अभयदान देनेवाले देवदेवेश्वर! प्रसन्न होइये। कृष्णसिन्धु श्रीरामचन्द्र! आपको नमस्कार है, मेरी रक्षा कीजिये। वेदवाणीके भी अगोचर राववेन्द्र! मेरी रक्षा कीजिये। श्रीराम! कृष्ण करके मुझे उत्तरायि! मैं आपकी शरण आया हूँ। रघुवीर! मेरे महान् मोहको इसी समय दूर कीजिये। रघुनन्दन! खान, आचमन, भोजन, जाग्रत्, स्वप्न, सुखसि आदि सभी क्रियाओं और सभी अवस्थाओंमें आप मेरी

रक्षा कीजिये। तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो आपको महिमाका बलान करनेमें समर्थ है। रघुकुलको आनन्द करनेवाले श्रीराम! आप ही अपनी महिमाको जानते हैं।

जनकनन्दिनी! आपको नमस्कार करता हूँ। इस सब पापोंका नाश तथा दारिद्र्यका संहार करनेवाली है। भक्तोंको अभीष्ट वस्तु देनेवाली भी आप ही हैं। राष्ट्रेन श्रीरामको आनन्द प्रदान करनेवाली विदेहराज जनक लाडली श्रीकिशोरीजीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप पृथ्वी कन्या और विद्या (ज्ञान) स्वरूप हैं, कल्याणमयी प्रज्ञा भी आप ही हैं। राष्ट्रके ऐश्वर्यका संहार तथा भक्तों अभीष्टका दान करनेवाली सरस्वतीस्वरूपा भगवती सीतामोहन नमस्कार करता हूँ। पतित्रातोंमें अग्रगण्य आप श्रीजनकुलरीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप सबपर अनुग्रह करनेवाले समृद्धि, पापरहित और विष्णुप्रिया लक्ष्मी हैं। आप ही शास्त्र विद्या, वेदनवी तथा पार्वतीस्वरूपा हैं; मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप ही क्षीरसागरकी कन्या महालक्ष्मी हैं, जो भक्तोंपर कृपाका प्रसाद करनेके लिये सदा उत्सुक रहती है। चन्द्रमाकी भरिनी (लक्ष्मीस्वरूप) सर्वज्ञसुन्दरी सीतामोहन में प्रणाम करता हूँ। धर्मकी आश्रयमूर्ता करुणामयी वेदमाता गायत्रीस्वरूपिणी श्रीजनकीजीको मैं नमस्कार करता हूँ। आपका कमलमें निवास है, आप ही हायमें कमल धारण करनेवाली तथा भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली लक्ष्मी हैं, चन्द्रमण्डलमें भी आपका निवास है, आप चन्द्रमुखी सीतादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ। आप श्रीरघुनन्दनजी आहादमयी शक्ति हैं, कल्याणमयी सिद्धि हैं और भगवान् शिवकी अर्द्धजिङ्गी कल्याणकारिणी सती हैं। श्रीरामचन्द्रजीकी परम प्रियतमा जगदम्बा जानकीजीको मैं प्रणाम करता हूँ। सर्वज्ञसुन्दरी सीताजीका मैं अपने हृदयमें निरन्तर निराग करता हूँ।

श्रीसूक्तजी कहते हैं—द्विजवरो! इस प्रकार हनुमान् भक्तिपूर्वक श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजीकी सुर्ति करने आनन्दके आँख बहाते हुए मौन हो गये।

जो वायुपुत्र हनुमान् जीद्वारा वर्णित श्रीराम और नीतान् इस पापनाशक स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करता है, वह नीत मनोवाङ्मित महान् एवर्यका उपभोग करता है। इस नीतका एक बार भी पाठ करनेवाला मनुष्य अनेक धोके पापों दूर देनेवाली गौण, आयु, विद्याएँ, मनोरमा भार्या तथा भूमि

युत्र—इन सब वस्तुओंको निःसंदेह प्राप्त कर लेता है। इसके बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। वह सब पापोंसे मुक्त हो देहावसान पाठसे मनुष्य नरकमें नहीं पड़ता है। उसके ब्रह्महत्यादि बड़े होनेपर मोक्ष पा लेता है।

## पापप्रश्नमनस्तोत्र

(देवादि नारदरचित् इस स्तोत्रका पापोंके प्रायश्चित्तरूप श्रद्धाभक्षिपूर्वक पाठ करनेसे पापोंका निश्चित नाश होता है।)

अथाकर्णय भूपाल स्तवं दुरितनाशनम्। यमाकर्णय वरो भवत्या सुच्यते पापराशिभिः॥१॥  
यस्य स्मरणमात्रेण पापिनः शुद्धिमागताः। अन्येऽपि वहचो मुक्ताः पापादक्षानसम्भवात्॥२॥  
परदारपरद्व्यजीविंसादिके यदा। प्रवर्तते नृणां चित्तं प्रायश्चित्तं स्तुतिस्तदा॥३॥  
विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे नमः। नमामि विष्णुं चित्तस्थमहंकारगतं हरिम्॥४॥  
चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तमपराजितम्। विष्णुमील्यमशेषाणामनादिनिधनं हरिम्॥५॥  
विष्णुश्चित्तगतो यन्मे विष्णुर्द्विगतश्च यत्। योऽहंकारगतो विष्णुर्यो विष्णुर्मयि संस्थितः॥६॥  
करोति कर्त्तभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च। तत्पापं नशमायाति तस्मिन् विष्णौ विचिन्तिते॥७॥  
ध्यातो हरति यः पापं स्वज्ञे दृश्य पापिनाम्। तसुपेन्द्रमहं विष्णुं नमामि प्रणतप्रियम्॥८॥  
जगत्प्रसिद्धिरालये ह्यजमक्षरमव्ययम्। हस्तावलम्बनं स्तोत्रं विष्णुं वन्दे सनातनम्॥९॥  
सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्दोक्षज। हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तु ते॥१०॥  
नूर्सिहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव। दुरुक्तं दुरुक्तं ध्यातं शमयाशु जनार्दन॥११॥  
यन्मया चिन्तितं दुरुक्तं स्वचित्तवशवर्तिना। आकर्णय महावाहो तच्छ्रमं नय केशव॥१२॥  
ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण। जगद्वाय जगद्वाय तापं शमय मेऽन्युत॥१३॥  
यद्यापराहे सायाहे मध्याहे च तथा निशि। कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता॥१४॥  
जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव। नामव्योम्बारणतः सर्वं यातु मम क्षयम्॥१५॥  
शारीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष मानसम्। पापं प्रशममायातु वाक्कृतं सम माधव॥१६॥  
यद् भुजानः पिवंस्तिष्ठन् स्वपञ्जायद् यदा स्थितः। अकार्ण पापमर्थार्थं कायेन मनसा गिरा॥१७॥  
महदूर्लं च यत्पापं दुर्योगिनरकावहम्। तत्सर्वं विलयं यातु चासुदेवस्य कीर्तनात्॥१८॥  
परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं च यत्। अस्मिन् संकीर्तिते विष्णौ यत् पापं तत् प्रणश्यतु॥१९॥  
यत्प्राप्य न निवर्तन्ते गन्धस्पर्शविवर्जितम्। सूरयस्ततपदं विष्णोस्तत्सर्वं मे भवत्वलम्॥२०॥  
पापप्रश्नमनं स्तोत्रं यः पठेच्छुण्याव्वरः। शारीरैर्मानसैर्वाचा कृतैः पापैः प्रसुच्यते॥२१॥  
मुक्तः पापप्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदम्। तसात्सर्वप्रयत्नेन स्तोत्रं सर्वावनाशनम्॥२२॥  
प्रायश्चित्तमधौद्यानां पठितव्यं नरोत्तमैः। प्रायश्चित्तैः स्तोत्रजपैर्वैतर्नद्यति पतत्कम्॥२३॥  
ततः कार्याणि संसिद्धवै तानि वै भुक्तिमुक्तये। पूर्वजन्मार्जितं पापमैहिकं च नरेश्वर॥२४॥  
स्तोत्रस्य श्रवणादस्य सद्य एव विलीयते। पापद्वुमुक्तारोऽयं पापेन्द्रनदवानलः॥२५॥  
पापराशितमस्तोमभानुरेष स्तवो चृप। मया प्रकाशितस्तुभ्यं तथा लोकानुकम्पया॥२६॥  
स्तवोऽयं यो मया प्राप्तो रहस्यं पितुरादरात्। इति ते यन्मया प्रोक्तं स्तोत्रं पापप्रश्नाशनम्॥२७॥  
अस्यापि पुण्यं माहात्म्यं वक्तुं शक्तः स्वयं हरिः॥२८॥

( अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री )

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! अब तुम पापप्रश्नमन नामक स्तोत्र सुनो । इसका भक्तिपूर्वक श्रवण करके भी मनुष्य पापराशियोंसे मुक्त हो जाता है । इसके चिन्तनमात्रसे नहुतेरे पापी शुद्ध हो शुके हैं । इसके सिवा और भी बहुतसे नुप्य इस स्तोत्रका सहारा लेकर अशानजनित पापसे मुक्त हो गये हैं । जब मनुष्यका चित्त परायी छी, पराये धन तथा विहिंसा आदिकी ओर जाय, उस समय यह स्तोत्र ही प्रायश्चित्तका काम देता है ॥ १—३ ॥ यह सुनि इस प्रकार है—

सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक भगवान् श्रीविष्णुको सर्वदा मस्कार है । विष्णुको बारंबार प्रणाम है । मैं अपने चित्तमें राजमान विष्णुको बारंबार नमस्कार करता हूँ । अपने हंकारमें व्याप्त श्रीहरिको मस्तक क्षुकाता हूँ । श्रीविष्णु त्तमें विराजमान ईश्वर ( मन और इन्द्रियोंके शासक ), व्यक्त, अनन्त, अपराजित, सबके द्वारा स्तवन करने योग्य ग्रा आदि-अन्तसे रहित है; ऐसे श्रीहरिको मैं नित्य-निरन्तर गाम करता हूँ । जो विष्णु मेरे चित्तमें विराजमान हैं, विष्णु मेरी बुद्धिमें स्थित हैं, जो विष्णु मेरे अहंकारमें रास हैं तथा जो विष्णु सदा मेरे स्वरूपमें स्थित हैं, वे ही गी होकर सब कुछ करते हैं । उन विष्णुभगवान्का गाढ़ न्तन करनेपर चराचर प्राणियोंका सारा पाप नष्ट हो जाता । जो ध्यान करने और स्वप्नमें दीख जानेपर भी पापियोंके ग्रको हर लेते हैं तथा चरणोंमें पड़े हुए शरणागत भक्त नहैं अत्यन्त प्रिय हैं, उन वामनरूपधारी भगवान् विष्णु । नमस्कार करता हूँ । जो अजन्मा, अक्षर और अविनाशी तथा इस अवलभूत्य संसारमें हाथका सहारा देनेवाले स्तोत्रोद्घारा जिनकी सुनि की जाती है, उन सनातन विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ । हे सर्वेश्वर ! हे ईश्वर ! हे ग्रामप रमात्मन् ! हे इन्द्रियोंका शासन रनेवाले अन्तर्यामी हृषीकेश ! आपको नमस्कार है । हे सिंह ! हे अनन्त ! हे गोविन्द ! हे भूतभावन ! हे केशव ! जनादेन ! मेरे दुर्बचनः दुर्घर्भ और दुश्चिन्तनको शीघ्र ह कीजिये । महाबाहो ! मेरी प्रार्थना सुनिये—अपने चक्षके वशमें होकर मैंने जो कुछ बुरा चिन्तन किया हो, इसको शान्त कर दीजिये । ब्राह्मणोंका हित साधन करनेवाले द्वता गोविन्द ! परमार्थमें तत्पर रहनेवाले जगद्वाय !

जगत्को धारण करनेवाले अन्युत ! सेरे पापोंका नाश कीजिये। मैंने अपराह्न, सायाह, मध्याह तथा रात्रिके समय शरीर मन और वाणीके द्वारा, जानकर या अनजानमें जो कुछ पा किया हो, वह सब 'हृषीकेश' 'पुण्डरीकाश' और 'माधव'— इन तीन नामोंके उच्चारणसे नष्ट हो जाय । हृषीकेश ! आपके नामोच्चारणसे मेरा शारीरिक पाप नष्ट हो जाय, पुण्डरीकाश ! आपके स्मरणसे मेरा मानस-पाप शान्त हो जाय तथा माधव ! आपके नाम-कीर्तनसे मेरे वाचिक पाप नष्ट हो जाय ।

मैंने खाते, पीते, खड़े होते, सोते, जागते तथा उहरते समय मन, वाणी और शरीरसे, स्वार्थ या धनके लिये जो कुत्सित योनियों और नरकोंकी प्राप्ति करनेवाला महान् ग शोडा पाप किया है, वह सब भगवान् वासुदेवका नामोच्चारण करनेसे नष्ट हो जाय । जो परब्रह्म, परमधार और परम पवित्र है, वह तत्त्व भगवान् विष्णु ही है; इन श्रीविष्णुभगवान् का कीर्तन करनेसे मेरे जो भी पाप हों, वे नष्ट हो जायें । जो गन्ध और स्फरीसे रहित है, जानी पुरुष जिसे पकर पुनः इस संसारमें नहीं लौटते, वह विष्णुका ही परम पद है; वह सब मुझे पूर्णरूपसे प्राप्त हो जाय ॥ ४—२० ॥

यह 'पापप्रश्नमन' नामक स्तोत्र है । जो मनुष्य इसे पढ़ता और सुनता है, वह शरीर, मन और वाणीद्वारा किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है । इतना ही नहीं, वह पापम आदिके भयसे भी मुक्त होकर भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त होता है । यह स्तोत्र सब पापोंका नाशक तथा पापराशिका प्रायश्चित्त है; इसलिये श्रेष्ठ मनुष्योंको पूर्ण प्रयत्न करके इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये । स्तोत्र-पाठ, मन्त्रजप और ब्रतरूपी प्रायश्चित्तसे पापका नाश होता है; इसलिये भोग तथा मोक्ष आदि अभीष्टोंकी सिद्धिके लिये उपर्युक्त कार्य करने चाहिये । राजन् ! इस स्तोत्रके श्रवणमात्रसे पूर्ण जन्म तथा इस जन्मके किये हुए पाप भी तत्काल नहीं हो जाते हैं । यह स्तोत्र पापरूपी वृक्षके लिये कुटार और पापमय ईधनके लिये दावानल है । पापराशिरूपी अन्यका समूहका नाश करनेके लिये यह स्तोत्र गुरुके समान है । मैंने सम्पूर्ण जगत्पर अनुग्रह करनेके लिये इसे तुम्हारे गामन प्रकाशित किया है । इसके पुण्यमय माहात्म्यका वर्णन करनेमें एकमात्र श्रीहरि ही समर्थ है ॥ २१—२८ ॥

## हेशहर नामासृत

( इस नामासृतका श्रद्धापूर्वक पाठ करनेसे दोषों तथा हेशोंका नाश होकर पुण्य तथा भक्ति प्राप्त होती है, निष्काम पाठसे मनुष्य किंवा और अधसर हो सकता है । )

|              |                        |                    |                     |
|--------------|------------------------|--------------------|---------------------|
| श्रीकेशवं    | क्लेशहरं               | वरेण्यमानन्दरूपं   | परमार्थमेव ।        |
| नामासृतं     | दोषहरं                 | तु राजा आनीतमत्रैव | पिबन्तु लोकाः ॥ १ ॥ |
| श्रीपद्मनाभं | कमलेक्षणं              | च आधाररूपं         | जगतां महेशम् ।      |
| नामासृतं     | दोषहरं                 | तु राजा आनीतमत्रैव | पिबन्तु लोकाः ॥ २ ॥ |
| पापापहं      | व्याधिविनाशरूपमानन्ददं |                    | दानवदैत्यनाशनम् ।   |
| नामासृतं     | दोषहरं                 | तु राजा आनीतमत्रैव | पिबन्तु लोकाः ॥ ३ ॥ |
| यज्ञाङ्गरूपं | च रथज्ञपाणि            | पुण्याकरं          | सौख्यमनन्तरूपम् ।   |
| नामासृतं     | दोषहरं                 | तु राजा आनीतमत्रैव | पिबन्तु लोकाः ॥ ४ ॥ |
| विश्वाधिवासं | विमलं विरामं           | रामाभिधानं         | रमणं मुरारिम् ।     |
| नामासृतं     | दोषहरं                 | तु राजा आनीतमत्रैव | पिबन्तु लोकाः ॥ ५ ॥ |
| आदित्यरूपं   | तमसां विनाशं           | चन्द्रप्रकाशं      | मलपङ्कजानाम् ।      |
| नामासृतं     | दोषहरं                 | तु राजा आनीतमत्रैव | पिबन्तु लोकाः ॥ ६ ॥ |
| सख्यज्ञपाणि  | मधुसूदनरूपं            | तं श्रीनिवासं      | सगुणं सुरेशम् ।     |
| नामासृतं     | दोषहरं                 | तु राजा आनीतमत्रैव | पिबन्तु लोकाः ॥ ७ ॥ |
| नामासृतं     | दोषहरं                 | सुपुण्यमधीत्य      | माधवविष्णुभक्तः ।   |
| प्रभातकाले   | नियतो महात्मा          | यो स याति मुर्कि   | न हि कारणं च ॥ ८ ॥  |

( पद० भूमि० ७३ । १०-१७ )

( अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री )

भगवान् केशव सबका हेश हरनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, आनन्द-स्वरूप और परमार्थ-तत्त्व हैं । उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है । महाराज यथातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है । संसारके लोग इच्छानुसार उसका पान करें । भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है । उनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं । वे जगत्के आधारभूत और महेश्वर हैं । उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है । महाराज यथातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है । संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें । ( भगवान् विष्णु ) पापोंका नाश करके आनन्द प्रदान करते हैं । ( वे ) दानवों और दैत्योंका संहार करनेवाले हैं । उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है । महाराज यथातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया

है । संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें । यज्ञ भगवान् के अज्ञस्वरूप हैं, उनके हाथमें सुदर्शनचक्र शोभा पाता है । वे पुण्यकी निधि और सुखरूप हैं । उनके स्वरूपका कहीं अन्त नहीं है । उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है । महाराज यथातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है । संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें । सम्पूर्ण विश्व उनके हृदयमें निवास करता है । वे निर्मल, सबको आराम देनेवाले, 'राम' नामसे विख्यात, सबमें रमण करनेवाले तथा सुर दैत्यके शत्रु हैं । उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है । महाराज यथातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है । संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें । भगवान् केशव आदित्यस्वरूप, अन्धकारके नाशक, मलरूप कमलोंके लिये चाँदनीस्त्रय हैं ।

उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज यथातिने उसे यहीं लाकर सुलभ कर दिया है, सब लोग उसका पान करें। जिनके हाथमें नन्दक नामक खज्ज है, जो मधुरखदन नामसे प्रसिद्ध, लक्ष्मीके निवासस्थान, सरुण और देवेश्वर हैं, उनका नामामृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। राजा यथातिने उसे यहीं लाकर सुलभ

कर दिया है, सब लोग उसका पान करें।

यह नामामृत-स्तोत्र दोषहारी और उत्तम पुण्यका जनक है। लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुमें भक्ति रखनेवाला जो महात्मा पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल नियमपूर्वक इसका पाठ करता है, वह मुक्त हो जाता है, पुनः प्रकृतिके अधीन नहीं होता।

( महाराज यथातिका प्रजाको संदेश )

## श्रीकिनकधारास्तोत्रम्

( इसके श्रद्धा-विश्वासपूर्वक पाठ-अनुष्ठानसे ऋणमुक्ति और लक्ष्मी-प्राप्ति होती है। कहा जाता है कि आचार्य श्रीशङ्करने इसका पाठ करवे, स्वर्णवर्पा करवायी थी। )

अङ्गं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम्।

अङ्गीकृताखिलविभूतिरपाङ्गलीला माङ्गल्यदास्तु मम मङ्गलदेवतायाः॥ १॥  
मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुररेः प्रेमत्रपाप्रणिहितानि गतागतानि।

माला दृश्योर्मधुकरीव महोत्पले या सा मे श्रियं दिशतु सागरसम्भवायाः॥ २॥  
विश्वामरेन्द्रपदविभ्रमदानदक्षमानन्दहेतुरधिकं मुरविद्विषोऽपि।

ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्द्धमिन्दीवृरोदरसहोदरमिन्दिरायाः॥ ३॥  
आमीलिताक्षमधिगम्य सुदा मुकुन्दमानन्दकन्दमनिमेषमनङ्गतन्त्रम्।

आकेकरस्थितकनीनिकपक्षमनेत्रं भूत्यै भवेत्मम मुजङ्गशयाङ्गनायाः॥ ४॥  
बाह्नतरे मधुजितः श्रितकौस्तुभे या हारावलीव हरिनीलमयी विभाति।

कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः॥ ५॥  
कालाम्बुदालिललितोरसि कैटभरेधाराघरे स्फुरति या तडिदङ्गनेव।

मातुः समस्तजगतां महनीयमूर्तिर्मद्राणि मे दिशतु भार्गवनन्दनायाः॥ ६॥  
प्राप्तं पदं प्रथमतः किल यत्प्रभावावान्साङ्गल्यभाजि मधुमाथिनि मन्मथेन।

मय्यापतेच्चदिह मन्थरमीक्षणार्द्धं मन्दालसं च मकरालयकन्यकायाः॥ ७॥  
दद्याद् दयानुपवनो द्रविणमधुधारामस्मिर्बक्तिविहङ्गशिशौ विषणे।

दुष्कर्मघर्ममपभीय चिराय दूरं नारायणप्रणियकीतयनाम्बुद्वाहः॥ ८॥  
दृष्ट्य विशिष्टमतयोऽपि यथा दयार्ददृष्ट्या त्रिविष्टपदं सुलभं लभन्ते।

दृष्टिः प्रहृष्टकमलोदरदीसिरिष्टां पुष्टि कृषीष मम पुष्करविष्टरायाः॥ ९॥  
शर्विवतेति गहृष्टध्वजसुन्दरीति शाकम्भरीति शशिशेखरवह्यभेति।

सृष्टिस्थितिप्रलयकेलिषु संस्थितायै तस्यै नमित्यभुवनैकगुरोस्तर्हण्ये॥ १०॥  
श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्मफलप्रसृत्यै रत्यै नमोऽस्तु रमणीयगुणाणवायै।

शक्त्यै नमोऽस्तु शतपन्निकेतनायै पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुपोत्तमवलभायै॥ ११॥  
नमोऽस्तु नालीकनिभाननायै नमोऽस्तु दुग्धोदधिजन्मभूत्यै।

नमोऽस्तु सोमामृतसोदरायै नमोऽस्तु नारायणवह्यभायै॥ १२॥

सम्पत्करणि सकलेन्द्रियनन्दनानि साम्राज्यदावविभवानि सरोरुहाक्षि ।

त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि मामेव मातरनिशं कलयन्तु मान्ये ॥ १३ ॥

यत्कटाक्षसमुपासनाविधिः सेवकस्य सकलार्थस्तपदः ।

संतनोति बचनाङ्गमानसैस्त्वां मुरारिहृदयेश्वरीं भजे ॥ १४ ॥

सरसिजनिलये सरोजहस्ते ध्वलतमांशुकगन्धसाल्यशोभे ।

भगवति हरिवल्लभे मनोहे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद महाम् ॥ १५ ॥

दिग्घस्तिभिः कनककुम्भमुखावसुपुस्तवीहिनीविमलचारुजलप्लुताङ्गीम् ।

प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेषलोकाधिनाथगृहिणीममृताच्छिपुत्रीम् ॥ १६ ॥

कमले कमलाक्षवल्लभे त्वं करुणापूरतरङ्गितैरपाङ्गैः ।

अवलोक्य मामकिचनानां प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः ॥ १७ ॥

स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरसूभिरन्वहं त्रयीमर्यो त्रिभुवनमातरं रमाम् ।

गुणाधिका गुरुतरभाग्यभागिनो भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशयाः ॥ १८ ॥

( इति श्रीमच्छङ्करानार्यविरचितं कनकधारास्तोत्रं सम्पूर्णम् )

( अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री )

जैसे भ्रमरी अधरिले कुसुमोंसे अलंकृत तमालतरका आश्रय लेती है, उसी प्रकार जो श्रीहरिके रोमाञ्चसे सुशोभित श्रीअङ्गोपर निरन्तर पड़ती रहती है तथा जिसमें सम्पूर्ण ऐश्वर्यका निवास है, वह सम्पूर्ण मङ्गलोंकी अधिष्ठात्री देवी भगवती महालक्ष्मीकी कटाक्षर्लाला मेरे लिये मङ्गलदायिनी हो ॥ १ ॥ जैसे भ्रमरी महान् कमलदलपर आती-जाती या मङ्गरती रहती है, उसी प्रकार जो मूरशधु श्रीहरिके मुखारिवन्दकी ओर बारंबार प्रेमपूर्वक जाती और लज्जाके कारण लैट आती है, वह समुद्रकन्या लक्ष्मीकी मनोहर मृगधृष्टिमाला मुझे धन-सम्पत्ति प्रदान करे ॥ २ ॥ जो सम्पूर्ण देवताओंके अधिपति इन्द्रके पदका वैभव-विलास देनेमें सर्वमर्य है, मुरारि श्रीहरिको भी अधिकाधिक आनन्द प्रदान करनेवाली है, तथा जो नील-कमलके भीतरी भागके समान मनोहर जान पड़ती है, वह लक्ष्मीजीके अधखुले नयनोंकी दृष्टि क्षणभरके लिये मुक्षपर भी थोड़ी-सी अवश्य पड़े ॥ ३ ॥ शेषशायी भगवान् विष्णुकी वर्ष-पत्नी श्रीलक्ष्मीजीका वह नेत्र हमें ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला हो, जिसकी पुतली तथा वरैनियाँ अनङ्गके वशीभूत (प्रेमपरवश) हो अधखुले किंतु साथ ही निनिमेष नयनोंसे देखनेवाले आनन्दकन्द श्रीमुकुन्दको अपने निकट पाकर कुछ तिरछी हो जाती हैं ॥ ४ ॥ जो भगवान् मधुसूदनके कौलुभमणि-मणिदत वक्षःस्तपदमें इन्द्रनीलमयी धरावली-सी सुशोभित होती है तथा उनके भी भनमें काम (प्रेम) का संचार करनेवाली

है, वह कमलकुञ्जवासिनी कमलाकी कटाक्षमाला मेरा कल्याण करे ॥ ५ ॥ जैसे धेयोंकी धटामें बिजली चमकती है, उसी प्रकार जो कैटभशश्चु श्रीविष्णुके काली मेघमालाके समान श्यामसुन्दर वक्षःस्तपदपर प्रकाशित होती है, जिन्होंने अपने आविर्भावसे मृगुवंशको आनन्दित किया है तथा जो समस्त लोकोंकी जननी हैं, उन भगवती लक्ष्मीकी पूजनीया मूर्ति मुझे कल्याण प्रदान करे ॥ ६ ॥ समुद्रकन्या कमलाकी वह मन्द, अल्प, मन्थर और अधोन्मीलित हष्टि, जिसके प्रभावसे कामदेवने मङ्गलमय भगवान् मधुसूदनके हृदयमें प्रथम बार स्थान प्राप्त किया था, यहाँ मुझपर पड़े ॥ ७ ॥ भगवान् नारायणकी प्रेयसी लक्ष्मीका नेत्ररूपी मेघ दयारूपी अनुकूल पवनसे ग्रेरित हो दुष्कर्मरूपी वास्मके चिरकालके लिये दूर दृटाकर विषादमें पड़े हुए मुझ दीनरूपी चातक-पोतपर धनरूपी जलधाराकी वृष्टि करे ॥ ८ ॥ विशिष्ट दुद्विवाले मनुष्य जिनके प्रीतिपात्र होकर उनकी दयाहष्टिके प्रभावसे स्वर्गपदको सहज ही प्राप्त कर लेते हैं, उन्हों पश्चासना पश्चाकी वह विकसित कमल-गम्भके समान कान्तिमती दृष्टि मनोवाञ्छित पुष्टि प्रदान करे ॥ ९ ॥ जो सृष्टि-लीलाके समय धार्देवता (व्रह्ण-शक्ति) के रूपमें स्थित होती हैं, पालन-लीला करते समय भगवान् गद्ध-घ्वजकी सुन्दरी पत्नी लक्ष्मी (था वैष्णवी शक्ति) के रूपमें विराज-भान होती हैं तथा प्रलय-लोकाक कालमें धाकम्भरी (भगवती

हुणा) अथवा चन्द्रयोदयरबलभा पार्वती ( एद्र-याति ) के समर्में अवश्यित होती हैं। उन निष्पुकनके एकमात्र गुप्त भगवान् नारायणकी नित्ययौवना प्रेयसी श्रीलल्मीजीकी नमस्कार है ॥ १० ॥ माता। शुभ कर्मोंका फल देनेवाली श्रुतिके समर्में आपको प्रणाम है। रसणीय गुणोंकी सिन्धुल्प रतिके समर्में आपको नमस्कार है। कमलदनये निवाल करनेवाली शक्तिस्तरुपा लक्ष्मीको नमस्कार है। तथा पुरुषोत्तमपिया पुष्टिको नमस्कार है ॥ ११ ॥ कमलदना कमलाको नमस्कार है। श्रीरसिन्धुसमृता श्रीदेवीकी नमस्कार है। चन्द्रमा और सुधाकी सगी बहिनिको नमस्कार है। भगवान् नारायणकी बल्लभाको नमस्कार है ॥ १२ ॥ कमलसदृश नेत्रोवाली माननीय माँ। आपके चरणोंमें की हुई बदना समर्पित प्रदान करनेवाली, समूर्ण इन्द्रियोंकी आनन्द देनेवाली, साध्वीय देनेमें समर्थ और सारे पार्षोंको हर लेनेके लिये सर्वथा उद्यत है। वह सदा सुख ही अवलम्बन करे ( मुझे ही आपकी चरणवन्दनका शुभ अवलम्बन प्राप्त होता रहे ) ॥ १३ ॥ जिनके कृपा-कटाक्षके लिये की हुई उपासना उपासकके लिये समूर्ण मनोरर्थों और सम्पत्तियोंका विस्तार करती है, श्रीरामिकी हृदयेश्वरी उन्हीं

आप व्यापोदीजीका मैं मन, वाणी और शरीरसे भ्रम हूँ ॥ १४ ॥ भगवति हरिप्रिये। तुम कमलवस्त्रमें करनेवाली हो, तुम्हारे हाथोंमें लीलाकमल सुशोभित तुम अव्यन्त उच्छवल वस्त्र, गन्ध और माला आदिते पा रही हो। तुम्हारी हाँकी बड़ी मनोरम है। निष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली देवि। मुक्तार प्रस्तुत हो ॥ १५ दिग्गजोद्दृश सुवर्ण-कलशके युक्तसे गिरये आकाशगङ्गाके निसेल एवं मनोहर जलसे लिङ्के ग्रीष्म अभिषेक ( स्नान-कार्य ) सम्पादित होता है। समूर्ण ले अधीश्वर भगवान् विष्णुकी धृहिणी और शौरसागरी उन जगत्तमी लक्ष्मीको मैं प्राप्तःकरु प्रणाम करता ॥ १६ ॥ कमलसदृश केशवकी कमलनीय कामिनी का मैं अकिञ्चन ( दीनहीन ) मनुष्योंसे अप्राप्य हूँ तो तुम्हारी कृपाका स्वामाकिक पात्र हूँ। तुम उमडती हुई कहा बाहुकी तरल-तरङ्गोंके समान कटाक्षोद्दृश देरी और देखो। जो लोग इन सुतियोदाया प्रतिदिन वेदवसीखलया लिए जननी भगवती लक्ष्मीकी सुति करते हैं, वे इन गुण महान् गुणवान् और अव्यन्त सौभग्यशाली होते हैं। विद्वान् पुरुष भी उनके मनोभावको जानेके लिये उत्तर होते हैं ॥ १८ ॥ ( कनकब्रातातोष सत्र )

### दशश्लोकी

त भूमिनैं तोर्यं न तेजो न व्यायुर्न चं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः।  
अनैकान्तिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्धस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ १ ॥  
त वर्णा न वर्णाधमाचारधर्मा न भे धारणाध्यानयोगादयोऽपि।  
अनात्माध्याहंगम्याद्यासहानात् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ २ ॥  
त माता पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं हृष्णित।  
सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ३ ॥  
त सांख्यं न शैवं न तत् पाञ्चरात्रं न जैतं न मीमांसकादेस्तं वा।  
विशिष्यतुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ४ ॥  
त चोर्वै न चाधो न चान्दर्श वाहां न मर्थं न तिर्यङ् न पूर्वीपरा दिक्।  
विशुद्धध्यापकत्वाद्यथर्डैकरूपस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ५ ॥  
न शुक्रं न कृष्णं न रक्तं न पीतं न कुञ्जं न धीनं न द्वाष्टं न दीर्घं।  
अर्द्धं तथा ल्पोतिराकारकत्वासदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ६ ॥  
न शास्त्रा न शाश्वं न शिष्यो न शिशा न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः।  
स्वरूपावदोद्यो विकल्पासहिष्यासदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ७ ॥

न जायत्र मे स्वप्नको वा सुषुप्तिर्न विश्वो न वा तैजसः प्राप्तको वा ।  
 अविद्यात्मकत्वात् ब्रयाणां तुरीयस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ८ ॥  
 अपि व्यापकत्वाद्धि तत्त्वप्रयोगात् स्वतः सिद्धभावादनन्याश्रयत्वात् ।  
 जगत् तुच्छमेतत् समस्तं तदन्यत् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ९ ॥  
 न चैकं तदन्यद् द्वितीयं कुतः स्वाव वा केवलत्वं न चाकेवलत्वम् ।  
 न शून्यं न चाशून्यमद्वैतकत्वात् कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रह्मीमि ॥ १० ॥

इति श्रीमत्परमहेसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य श्रीमच्छङ्करभगवतः इत्तौ दशश्लोकी समाप्ता ।

( शत्रुघ्नादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री )

मैं न भूमि हूँ न जल हूँ; न अग्नि, वायु और आकाश हूँ; न कोई एक इन्द्रिय हूँ और न इन्द्रियोंका समुदाय ही हूँ; स्वर्योंकी वे सब अस्तिर हैं । मैं तो सुषुप्तिमें अदितीय सिद्ध एवं एकमात्र अवशिष्ट शिवस्वरूप केवल आत्मा हूँ ॥ १ ॥ वर्ण, वर्णाश्रमोच्चित अन्तरारूप धर्म तथा धारणा, ध्यान और समाधि आदि योगके अङ्ग न मुझमें हैं, न मेरे हैं । अनात्म पदार्थों (शरीर आदि) के आश्रित रहनेवाले अहंता-ममतारूप अध्यात्मका निराकरण होनेपर जो एकमात्र अवशिष्ट रह जाता है, वह शिवस्वरूप केवल आत्मा मैं हूँ ॥ २ ॥ माता, पिता, देवता, चौदहों लोक, चारों वेद, यश और तीर्थ—कोई भी मेरा वर्णन नहीं कर सकते; अप्योंकी सुषुप्तिकालमें इन सबका निराकरण होनेसे ये अत्यन्त शून्यरूप हो जाते हैं । अतः उस समय भी जो एकमात्र अवशिष्ट रह जाता है, वह शिवस्वरूप केवल आत्मा मैं हूँ ॥ ३ ॥ संख्य, शैवागम, पाञ्चरात्र (वैष्णवागम), जैनमत अयवा मीमांसक आदिका मत भी मेरा प्रतिपादन नहीं कर सकते । विशिष्ट (अपरोक्ष) अनुभूतिके द्वारा, विशुद्ध (भायारहित)-रूप जाना हुआ जो एकमात्र अवशिष्ट शिवस्वरूप केवल आत्मा है, वह मैं हूँ ॥ ४ ॥ मैं न अपरकी दिशा हूँ न नीचेकी; न भीतरी भग्न हूँ न बाहरी; न मध्य हूँ न इधर-उधर, न पूर्व दिशा हूँ न पश्चिम दिशा । आकाशमें भी व्यापक होनेके कारण जो अन्य सब वस्तुओंका वाय हो जानेपर अल्पण एक-रसरूपसे अवशिष्ट होता है, वह शिवस्वरूप केवल आत्मा मैं हूँ ॥ ५ ॥ मैं न सफेद हूँ न काला; न लाल हूँ न पीला; कुबड़ा हूँ न मोटा; न छोटा हूँ न बड़ा तथा ज्योतिःस्तु होनेके कारण मेरा कोई विशेष रूप भी नहीं है । सबका निन कर देनेपर जो एकमात्र अवशिष्ट रह जाता है, वह शिवस्वरूप केवल आत्मा मैं हूँ ॥ ६ ॥ मैं न शास्त्रोपदेशक हूँ न शा न शिष्य हूँ न शिक्षा; न तुम, न मैं और न यह प्रपञ्च ही; स्वरूपका बोध ही मेरा रूप है । विकल्प(भेद) को सहन न; सकलेवाला एकमात्र अवशिष्ट शिवस्वरूप केवल जो आत्मा वह मैं हूँ ॥ ७ ॥ मेरे लिये न जाग्रत् है न स्वप्न अथवा सुषुप्त ही है; न उनके अधिष्ठाता विश्व, तैजस या प्राप्त हैं; क्यों ये तीनों अविद्यारूप हैं । जो इन सबसे परे तुरीयस्वरूपसे एकमात्र अवशिष्ट रह जाता है, वह शिवस्वरूप केवल आत्मा मैं हूँ ॥ ८ ॥ यह सारा जगत् तुच्छ है; क्योंकि मैं व्यापक हूँ । मेरे लिये ता शब्दका प्रयोग होता है । मेरी सच्चा स्वतःसिद्ध है उ मेरा दूसरा कोई आश्रय नहीं है—मैं स्वयं ही अपना आः हूँ । अतः जगत्-से भिन्न एकमात्र अवशिष्ट शिवस्वरूप केवल आत्मा मैं हूँ ॥ ९ ॥ उस ब्रह्मसे भिन्न कोई एक भी न है; किंतु दूसरा तो ही ही कैसे सकता है । उसमें केवलता है न अकेवलता । वह न शून्य है न अशून्य—क्योंकि वह अद्वैतरूप है । किंतु मैं उस सर्ववेदान्तस्तु आत्माका किस प्रकार वर्णन करूँ ॥ १० ॥

॥ दशश्लोकी समाप्त ॥

## मनीषापञ्चकम्

जाग्रत्खप्तसुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जम्भते या ब्रह्मादिपिंडिकान्ततनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी।  
सैवाहं न च दृश्यवस्त्विति दृढप्रशापि यस्यास्ति चेचाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥  
ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रविस्तारितं सब चैतदविद्यया त्रिगुणयाशेषं भया कल्पितम् ॥  
इत्थं यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्भले चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥  
शश्वत्तश्वरमेव विश्वमस्तिलं निश्चित्य वाचा गुरोनित्यं ब्रह्म निरन्तरं विमुशता निर्व्याजशान्तात्मता ॥  
भूतं भाति च दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके प्रारब्धाय समर्पितं स्वपुरित्येषा मनीषा मम ॥  
या तिर्यङ्गमरदेवताभिरहमित्यन्तः स्फुटा गृह्यते यद्भासा हृदयाक्षदेहविषया भान्ति खतोऽचेतनाः ॥  
तां भास्यैः पिहितार्कमण्डलनिभां स्फूर्तिं सदा भावयन् योगी निर्वृतमानसो हि गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥  
यत्सौख्याम्बुधिलेशलेशत इमे शकादयो निर्वृता यच्चित्ते नितरां प्रशान्तकलने लब्ध्वा मुनिर्निर्वृतः ॥  
यस्मिन्नित्यसुखाम्बुधौ गलितधीर्ब्रह्मैव न ब्रह्मविद् यः कश्चित् स सुरेन्द्रवन्दितपदो नूनं मनीषा मम ॥

( अनुवादक—पाण्डेय प० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री )

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंमें जो संवित् ( विज्ञान ) स्पष्टरूपसे प्रकट हो रही है, जो ब्रह्मा आदिसे लेकर चीटीतके शरीरोंमें व्याप्त और सम्पूर्ण जगत्की साक्षिणी है, वही मैं हूँ; यह जो दृश्यवर्ग है, वह मैं नहीं हूँ। जिस पुरुषको ऐसी दृढ़बुद्धि प्राप्त है, वह चाण्डाल हो या ब्राह्मण, मेरे लिये गुरुस्वरूप है—ऐसी मेरी धारणा है ॥ १ ॥ मैं ब्रह्म ही हूँ और यह सम्पूर्ण जगत् चिन्मात्रका ही विस्तार है। यही नहीं, यह सब त्रिगुणमयी अविद्यासे मेरे द्वारा कल्पित है। नित्य अतिशय सुखस्वरूप परम निर्भल ( मायालेशशून्य ) परमात्माके विषयमें इस प्रकार जिसकी दृढ़बुद्धि हो गयी है, वह चाण्डाल हो या ब्राह्मण, गुरुस्वरूप है—ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ २ ॥ यह सम्पूर्ण विश्व सदा विनाशशील ही है—गुरुके उपदेशसे ऐसा निश्चय करके निश्चल एवं शान्त चित्तद्वारा नित्य-निरन्तर ब्रह्मका विचार करते हुए और ज्ञानमयी अग्निमें भूत, वर्तमान एवं भविष्य पापराशिको दग्ध करते हुए मैंने

अपना यह शरीर प्रारब्धको सौंप दिया है—यह मेरी निश्चित मति है ॥ ३ ॥ पशु-पक्षी, मनुष्य और देवता अपने अन्तः-करणमें मैं इस रूपमें जिसका स्पष्ट अनुभव करते हैं और जिसके प्रकाशसे मन, इन्द्रिय तथा देहके अचेतन विषय सतः प्रकाशित होने लगते हैं, छिपे हुए सूर्यमण्डलके समान उस स्फूर्ति ( संवित् या विज्ञान ) की प्रकाशनीय वस्तुओंद्वारा सदा भावना करनेवाला संतुष्टचित्त योगी ही गुरुके पदपर प्रतिष्ठित होनेयोग्य है—यह मेरा पक्ष निश्चय है ॥ ४ ॥ जिसके सुख-समृद्धके लेशका लेशमात्र पाकर ये इन्द्र आदि देवता सुखी एवं शान्त रहते हैं, जिसकी चक्रल बृति सर्वपा शान्त हो गयी है—ऐसे चित्तमें जिसका निरन्तर अनुभव करके मुनि आनन्दमग्न हो जाता है तथा जिस नित्य गुरुके समृद्धमें बुद्धिके विगलित हो जानेपर ब्रह्म ही शेष रह जाता है न कि ब्रह्मवेत्ता, ऐसी स्थितिमें जो कोई महात्मा पहुँच गया है, उसके चरणोंकी वन्दना देवराज इन्द्र भी करते हैं—ऐसी मेरी निश्चित धारणा है ॥ ५ ॥

## अद्वैतपञ्चरत्नम्

नाहं देहो नेन्द्रियाण्यन्तरङ्गो नाहंकारः प्राणवर्गो न बुद्धिः ।  
दारापत्यक्षेत्रविच्चादिदूरः साक्षी नित्यः प्रत्यगात्मा शिवोऽहम् ॥ १ ॥  
रज्जवानानाद् भाति रज्जौ यथाहिः स्वात्माशानानादात्मनो जीवभावः ।  
आपोक्त्याहिभ्रान्तिनाशे स रज्जुर्ज्ज्वरो नाहं देशिकोक्त्या शिवोऽहम् ॥ २ ॥  
आभातीदं विश्वमात्मन्यसत्य सत्यकानानन्दरूपे विमोहात् ।  
निद्रामोहात् स्वप्नवत् तत्र सत्यं शुद्धः पूर्णो नित्यं पकः शिवोऽहम् ॥ ३ ॥

नाहं जातो न प्रबुद्धो न नष्टो देहस्योक्ताः प्राकृताः सर्वधर्माः ।  
 कर्तृत्वादिश्चिन्मयस्यास्ति नाहं कारस्यैव ह्यात्मनो मे शिवोऽहम् ॥ ४ ॥  
 मत्तो नान्यत् किञ्चिद्ब्राह्मि विश्वं सत्यं वाहं वस्तु मायोपकल्पस्म् ।  
 आदर्शान्तर्भासमानस्य तुल्यं सम्यद्वैते भाति तस्माच्छिवोऽहम् ॥ ५ ॥

( अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री )

न मैं देह हूँ न इन्द्रिय हूँ; न अन्तःकरण, न इंकार, न प्राणसमृद्धाय और न बुद्धि ही हूँ । स्त्री, संतान, त और धन आदिसे दूर, नित्यसाक्षी, अन्तरात्मा एवं विश्वरूप ब्रह्म हूँ ॥ १ ॥ जैसे रस्तीको न जाननेके कारण मवश उसमें सर्व भासित होने लगता है, उसी प्रकार मैंने स्वरूपको न जाननेसे उसमें जीवभावकी प्रतीति नहीं है । किसी विश्वसनीय व्यक्तिके कहनेसे सर्वके ग्रमका नवारण हो जानेपर जैसे वह रस्ती स्पष्ट हो जाती है, उसी प्रकार ज्ञानी गुरुके उपदेशसे मैं इस निश्चयपर पहुँचा हूँ कि मैं जीव नहीं हूँ, शिवस्वरूप परमात्मा हूँ ॥ २ ॥ आत्मा सत्य, ज्ञान एवं आमन्दस्वरूप है; उसीमें मोहवश इस मिथ्या जगत्-

की प्रतीति हो रही है । निद्राजनित गोहसे दीखनेवाले स्वभक्ती भाँति वह सत्य नहीं है । अतः यही निश्चय करे कि मैं शुद्ध ( मायालेशशून्य ), पूर्ण ( अखण्ड ), नित्य ( अविनाशी ), एक ( अद्वितीय ) शिवस्वरूप परमात्मा हूँ ॥ ३ ॥ न मेरा जन्म हुआ है, न मैं वढ़ा हूँ और न मेरा नाश ही हुआ है । समस्त प्राकृत धर्म शरीरके ही कहे गये हैं । कर्तृत्वादि धर्म अहंकारके ही हैं, चिन्मय आत्माके नहीं । अतः मैं शिवस्वरूप परमात्मा हूँ ॥ ४ ॥ मुझसे भिन्न यहाँ जगत् नामकी कोई सत्य वस्तु नहीं है । वास्तवमें सारी वात्य वस्तुपैः मायासे ही कल्पित हैं । दर्पणके भीतर भासित होनेवाले प्रतिबिम्बके समान यह सब कुछ मुझ अद्वैत परमात्मामें ही प्रतीत हो रहा है । अतः मैं शिव हूँ ॥ ५ ॥

## निर्वाणषट्कम्

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं न कर्णं न जिह्वा न च ग्राणलेघ्वे ।  
 न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायुश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ १ ॥  
 न च प्राणसंज्ञो न वै पञ्चवायुर्न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोशाः ।  
 न वाक्याणिपादौ न चोपस्यायू चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ २ ॥  
 न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्यमावः ।  
 न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्षश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ३ ॥  
 न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः ।  
 अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ४ ॥  
 न सूत्युर्न शङ्खा न मे जातिभेदः पिता नैव मे नैव माता च जन्म ।  
 न वन्धुर्न भित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ५ ॥  
 अहं निविकल्पो निराकाररूपो चिभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् ।  
 न चासंगतं नैव मुकिर्न वन्धश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ६ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिमाजकल्पनार्यस्य श्रीगोविन्दभाष्यप्रपञ्चयपादशिष्यस्य श्रीमच्छद्भूरभगवतः कल्पे निर्वाणषट्कं सम्पूर्णम् ॥

( बनुवादक—पाण्डेव द० श्रीरामनारायणदत्ती शासी )

मैं मन, बुद्धि, अहंकार और लिच नहीं हूँ । कान, जिहा, नारिका और नेत्र भी नहीं हूँ । न आकाश हूँ न भूमि; न अग्नि हूँ न वायु । केवल चिदानन्दस्तररूप शिव हूँ, शिव हूँ ॥ १ ॥ न प्राण हूँ न पञ्चवायु; न सात वायु हूँ न पाँच कोश । न धूक, न हाथ-पैर और न उपस्थ ( अत्तोनिद्रय ) एवं पायु ( मल्लवाय रक्तनेत्रली इन्द्रिय ) ही हूँ; केवल चिदानन्दस्तररूप शिव हूँ, शिव हूँ ॥ २ ॥ मुझमें न राग है न द्रेष, न लोभ है न मोह, न मद है न डाह, न धर्म है न अर्थ और न काम है न ऋष; मैं केवल चिदानन्दस्तररूप शिव हूँ, शिव हूँ ॥ ३ ॥

न पुण्य न पाप, न सुख न दुःख, न मन्त्र न तीर्थ, न यज्ञ, न भोजन न मोज्य और न भोक्ता ही हूँ; चिदानन्दस्तररूप शिव हूँ, शिव हूँ ॥ ४ ॥ उसे न मूर्छी है न शङ्खा, न मेरे जाति-मेद है, न पिता है; है और न मेरा जन्म ही हुआ है। मेरा कोई न वृत्ति, न गुरु है न शिष्य; मैं केवल चिदानन्दस्तररूप हूँ, शिव हूँ ॥ ५ ॥ मैं भेदभूत और नियकारु सर्वव्यापी हैंके कारण सर्वत्र एवं सम्पूर्ण इनियमें हूँ मैं असङ्गता, मुक्ति और बन्धन भी नहीं हैं। मैं चिदानन्दस्तररूप शिव हूँ, शिव हूँ ॥ ६ ॥

### ब्रह्मज्ञानावलीमाला

सफुलद्वयणमात्रेण ब्रह्मज्ञानं थतो भवेत् । ब्रह्मज्ञानावलीमाला सर्वेषां मोक्षसिद्धये ॥ १ ॥  
 असत्तोऽहमसत्तोऽहमसत्तोऽहं पुनः पुनः । सत्त्विवानन्दस्तररूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ २ ॥  
 नित्यशुद्धविमुक्तोऽहं निरकारोऽहमव्ययः । भूमावन्दस्तररूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ३ ॥  
 नित्योऽहं निरवद्योऽहं निराकरोऽहमहमव्ययः । परमावन्दस्तररूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ४ ॥  
 शुद्धचैतन्यरूपोऽहमामात्मोऽहमेव च । असापानन्दस्तररूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ५ ॥  
 प्रत्यक्षैतन्यरूपोऽहं शान्तोऽहं मक्षते: परः । शाच्चतानन्दस्तररूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ६ ॥  
 तत्त्वातीतः परताहं मध्यातीतः परः शिवः । मायातीतः परं ज्योतिरहमेवाहमव्ययः ॥ ७ ॥  
 नानारूपव्यतीतोऽहं चिदाकारोऽहमव्ययः । शुद्धप्रस्तररूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ८ ॥  
 मायातत्कार्यद्वादि सम नास्त्येव लर्वदा । सप्रकाशैकरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ९ ॥  
 शुणत्रयव्यतीतोऽहं ब्रह्मादीनां च साद्यहम् । असत्तानन्तरस्तररूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ १० ॥  
 अन्तर्यामिस्तररूपोऽहं कृडसः सर्वगोऽस्त्रयहम् । परमात्मस्तररूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ११ ॥  
 लिङ्गकलोऽहं लिङ्गिक्योऽहं सर्वात्माऽहादः सनातनः । अपरोऽशस्तररूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ १२ ॥  
 द्रष्ट्वादिसाक्षिरूपोऽहमवलोऽहं सनातनः । सर्वसाक्षिरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ १३ ॥  
 प्रशालघन एताहं विज्ञानघन एव च । अकर्ता हमभोक्ताहमहमेवाहमव्ययः ॥ १४ ॥  
 निराधारस्तररूपोऽहं सर्वथारोऽहमेव च । आसकामवस्तररूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ १५ ॥  
 तापत्रविमुक्तो देहत्रयविलक्षणः । अवज्ञानयस्त्रयसि चाहमेवाहमव्ययः ॥ १६ ॥  
 दृग्दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्परविलक्षणौ । दृग्दृश्यं मायेति सर्ववेदस्तदिणिदमः ॥ १७ ॥  
 अहं साक्षीति यो विद्याद्विच्छैर्व पुनः पुनः । स एव मुक्तोऽस्त्रो विद्यानिति वेदान्तदिणिदमः ॥ १८ ॥  
 घटकुड्यादिकं सर्वं सुलिङ्गामाज्ञेव च । तद्रद्व ब्रह्म जगत्सर्वमिति वेदान्तदिणिदमः ॥ १९ ॥  
 ब्रह्म सत्यं जगत्सिद्ध्या जीवो ब्रह्मेव नापरः । अनेन वेद्यं सच्छाक्षमिति वेदान्तदिणिदमः ॥ २० ॥  
 अन्तर्ज्योतिर्बहिज्योतिः प्रत्यन्त्योतिः परतपः । ज्योतिज्योतिः ख्यंज्योतिरात्मज्योतिः शियोऽस्त्रयम्  
 इति श्रीमत्परमहंसपरिवाज्ञानार्थस्त्र श्रीगुरुभगवत्पूज्यपदशिव्यम् शीमद्भगवत्प्रसादः कृतो गवादानावलीमाला सम्पूर्णः ।

( अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी ज्ञासी )

जिसका एक बार श्रवण करनेमात्रसे ब्रह्मज्ञान हो जाता है, वह ब्रह्मज्ञानावलीमाला मैं सबके मोक्षकी सिद्धिके लिये प्रस्तुत करता हूँ ॥ १ ॥ मैं असङ्ग हूँ, मैं असङ्ग हूँ, बार-बार असङ्ग हूँ । मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ । मैं, मैं ही अविनाशी परमात्मा हूँ ॥ २ ॥ मैं नित्य शुद्ध मुक्तस्वरूप हूँ । मैं निराकार हूँ, मैं अविनाशी परमेश्वर हूँ । मैं ही भूमा (अनन्त)एवं आनन्दस्वरूप हूँ, मैं ही अविकारी हूँ ॥ ३ ॥ मैं नित्य हूँ, मैं निरोध हूँ, मैं निराकार हूँ, मैं अन्युत हूँ; मैं परमानन्दरूप हूँ, मैं ही अव्यय हूँ ॥ ४ ॥ मैं शुद्ध चैतन्यरूप और मैं ही आत्माराम हूँ । मैं अखण्डानन्दस्वरूप हूँ और मैं, मैं ही अविनाशी परमेश्वर हूँ ॥ ५ ॥ मैं अन्तर्वैतन्यरूप आत्मा हूँ, मैं शान्त हूँ; मैं प्रकृतिसे परे हूँ, शाश्वत आनन्दरूप हूँ, मैं ही अविकारी परमेश्वर हूँ ॥ ६ ॥ मैं तत्त्वातीत परमात्मा तथा मध्यातीत परम शिव हूँ, मैं मायातीत परम ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म हूँ तथा मैं ही अव्यय परमात्मा हूँ ॥ ७ ॥ मैं नाना रूपोंसे परे हूँ, मैं चिदाकार हूँ, मैं अन्युत हूँ, मैं सुख-स्वरूप हूँ और मैं ही अव्यय हूँ ॥ ८ ॥ माया और उसके कार्यभूत शरीर आदि कदापि मेरे नहीं हैं । स्वयंप्रकाश ही मेरा एकमात्र स्वरूप है; मैं ही, मैं ही अव्यय हूँ ॥ ९ ॥ मैं तीनों गुणोंसे अतीत हूँ, मैं ब्रह्मा आदिका भी साक्षी हूँ, मैं अनन्तानन्तरूप हूँ । मैं, मैं ही अव्यय हूँ ॥ १० ॥ मैं अन्तर्यामिस्वरूप हूँ, कूटस्थ (निर्विकार) हूँ, सर्वव्यापी हूँ, मैं परमात्मरूप हूँ और मैं ही अव्यय हूँ ॥ ११ ॥ मैं निष्कल हूँ, मैं निष्किय हूँ; मैं सर्वात्मा, आदि पुरुष एवं सनातन (सदा रहनेवाला) हूँ । मैं

अपरोक्षस्वरूप हूँ और मैं ही अविनाशी अत्मा हूँ ॥ १२ ॥ मैं द्वन्द्व आदिका साक्षी हूँ, मैं अनन्त हूँ और मैं ही सनातन हूँ । मैं सर्वसाक्षिस्वरूप हूँ और मैं ही अविनाशी हूँ ॥ १३ ॥ मैं ही प्रज्ञानवन और मैं ही विज्ञानवन हूँ । मैं शक्ति हूँ, मैं अभोक्ता हूँ और मैं ही अव्यय हूँ ॥ १४ ॥ मैं निरानामवल्ल हूँ । मैं ही सबका आधार हूँ । मैं पूर्णकामल हूँ । मैं, मैं ही अव्यय हूँ ॥ १५ ॥ मैं आध्यात्मिक आदि तीनों तांसे रहित, स्थूल आदि तीनों शरीरोंसे विलक्षण तथा जगत् आदि तीनों अवस्थाओंका साक्षी हूँ और मैं ही अव्यय हूँ ॥ १६ ॥ द्रष्टा और दृश्य दो पदार्थ हैं, जो एक दूसरेसे विलक्षण हैं । द्रष्टा ब्रह्म है और दृश्य माया । यह सम्पूर्ण वेदान्त-शास्त्रका डिपिंडम-धोष है ॥ १७ ॥ जो इस प्रकार वारंवार विचार करके मैं साक्षी हूँ—यह जानता है, वही भुक्त है और वही विद्रान् है । वेदान्त-शास्त्र डैकेकी चोट यह कहता है ॥ १८ ॥ वहा और दीवार आदि सभी कार्य मृत्तिकामात्र हैं । इसी प्रकार सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मरूप है—यह वेदान्त-शास्त्र डैकेकी चोट कहता है ॥ १९ ॥ ब्रह्म सत्य है, जगत् भिन्ना है; जीव ब्रह्म ही है, दूसरा नहीं । इसी सिद्धान्तसे सत् शास्त्रको पहचानना चाहिये—यह वेदान्त-शास्त्रका डिपिंडम-धोष है ॥ २० ॥ मैं ही भीतरी (अन्तःकरणरूप) ज्योति हूँ और मैं ही वाहरी प्रकाश हूँ; वही नहीं, आत्माका प्रकाश भी मैं ही हूँ । मैं श्रेष्ठोंसे भी श्रेष्ठ हूँ, सम्पूर्ण ज्योतियोंका प्रकाशक हूँ, स्वयं प्रकाशरूप हूँ और सम्पूर्ण आत्माओंकी परम ज्योतिरूप शिव (परमात्मा) हूँ ॥ २१ ॥

( ब्रह्मज्ञानावलीमाला सम्पूर्ण )

### निर्वाणमञ्जरी

अहं नामरो नैव मत्यो न दैत्यो न गन्धर्वयक्षः पिशाचप्रभेदः ।  
पुमान्नैव च स्त्री तथा नैव पण्डः प्रष्टपुः प्रकाशस्वरूपः शिवोऽहम् ॥ १ ॥  
अहं नैव बालो युवा नैव वृद्धो न वर्णो न च ब्रह्मचारी गृहस्थः ।  
वनस्पोऽपि नाहं न संन्यस्त्वधर्मा जगज्जन्मनाशैकेतुः शिवोऽहम् ॥ २ ॥  
अहं नैव मेयस्तिरोभूतमायस्त्वयैक्षितुं मां पृथङ्गनास्त्वयापायः ।  
समाश्तुप्रकायत्रयोऽप्यद्वितीयः सदातीन्द्रियः सर्वरूपः शिवोऽहम् ॥ ३ ॥  
अहं नैव मन्ता न गन्ता न वक्ता न कर्ता न भोक्ता न सुकाश्रस्त्वयः ।  
यथाहं मनोवृत्तिभेदस्वरूपस्तथा सर्ववृत्तिप्रदीपः शिवोऽहम् ॥ ४ ॥

न मे लोकयात्राप्रवाहप्रवृत्तिर्न मे वन्धवुद्धथा दुरीहानिवृत्तिः ।  
 प्रवृत्तिर्निवृत्यास्य चित्तस्य वृत्तिर्यतस्त्वन्वहं तत्स्वरूपः शिवोऽहम् ॥ ५ ॥  
 निद्रानं यद्विष्णवकार्यस्य कार्यं विना यस्य सत्वं स्वतो नैव भाति ।  
 यदाद्यन्तमध्यान्तरालान्तरालप्रकाशात्मकं स्यात् तदेवाहमस्मि ॥ ६ ॥  
 यतोऽहं न बुद्धिर्न मे कार्यसिद्धिर्यतो नाहमङ्गं न मे लिङ्गभङ्गम् ।  
 हृदाकाशवर्तीं गताङ्गत्रयार्तिः सदा सच्चिदानन्दसूर्तिः शिवोऽहम् ॥ ७ ॥  
 यदासीद् विलासाद् विकारं जगद् यद् विकाराश्रयं नाद्वितीयत्वतः स्यात् ।  
 मनोबुद्धिचित्ताहमाकारवृत्तिप्रवृत्तिर्यतः स्यात् तदेवाहमस्मि ॥ ८ ॥  
 यदन्तर्वहिव्यापकं नित्यशुद्धं यदेकं सदा सच्चिदानन्दकन्दम् ।  
 यतः स्थूलसूक्ष्मप्रपञ्चस्य भानं यतस्त्वसूतिस्तदेवाहमस्मि ॥ ९ ॥  
 यदकेन्दुचित्युत्प्रभाजालमालाविलासास्पदं यत् स्वभेदादिशून्यम् ।  
 समस्तं जगद् यस्य पादात्मकं स्याद् यतः शक्तिमानं तदेवाहमस्मि ॥ १० ॥  
 यतः कालसृत्युर्विभेति प्रकामं यतश्चित्तवुद्धीन्द्रियाणां विलासः ।  
 हरिग्रहस्त्रदेन्द्रचन्द्रादिनामप्रकाशो यतः स्यात् तदेवाहमस्मि ॥ ११ ॥  
 यदाकाशवत्सर्वं शान्तरूपं परं ज्योतिरकारशून्यं वरेण्यम् ।  
 यदाद्यन्तशून्यं परं शंकराख्यं यदन्तर्विभाव्यं तदेवाहमस्मि ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाकार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य श्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ निर्बाणमजरी सम्पूर्णौ ॥

(अनुवादक—पाण्डेय थ० श्रीरामनारायणदत्तनी शास्त्री )

मैं न तो देवता हूँ, न मनुष्य हूँ और न दैत्य ही हूँ । न गन्धर्व, यश्च और पिशाचोंके भेदमें भी कोई नहीं हूँ । न पुरुष हूँ, न स्त्री हूँ और न नपुंसक ही हूँ । मैं उत्कृष्ट प्रकाशस्वरूप शिव हूँ ॥ १ ॥ मैं न बालक हूँ न युवक हूँ, न बुद्ध हूँ न सर्वण हूँ, न ब्रह्मचारी हूँ न यहस्य हूँ, न वानप्रस्थी हूँ और न संन्यासी ही हूँ । सम्पूर्ण जगत्के जन्म एवं नाशका एकमात्र हेतु शिव हूँ ॥ २ ॥ मैं प्रमाणोद्घारा मापा नहीं जा सकता । माया मेरे सामने तिरोहित हो जाती है तथा मुझे देखनेके लिये अपनेसे पृथक् कोई उपाय भी नहीं है । तीनों शरीरोंका आलिङ्गन किये रहनेपर भी मैं सदा अद्वितीय, इन्द्रियातीत एवं सर्वरूप शिव हूँ ॥ ३ ॥ मैं सदा अद्वितीय, इन्द्रियातीत एवं सर्वरूप शिव हूँ ॥ ४ ॥ लोकयात्राके प्रवाहमें मेरी प्रवृत्ति भी नहीं है । वन्धन-बुद्धि रखकर दुर्शेष्याओंसे मेरी निवृत्ति भी नहीं है । प्रवृत्ति और निवृत्तिके साथ-साथ इस चित्तकी नहीं है । प्रवृत्ति भी सदा जिससे प्रकट होती है, मैं उसीका स्वरूपभूत वृत्ति भी सदा जिससे प्रकट होती है,

शिव हूँ ॥ ५ ॥ जो इस अशानके कार्यरूप जगत्का आदि काल है, कार्यके बिना जिसकी सत्ता स्वतः नहीं भासित होती तथा वे आदि, अन्त, मध्य और अन्तरालके अन्तरालका भी प्रकाशरूप है, वही ब्रह्म मैं हूँ ॥ ६ ॥ मैं बुद्ध नहीं हूँ, मेरे काम की सिद्धि नहीं होती, मैं अङ्ग नहीं हूँ और न मेरे लिङ् (सूक्ष्म शरीर) का लिय ही होता है । मैं हृदयाकाशमें रहनेवाला तीनों शरीरोंकी पीड़ाओंसे रहित तथा सदा सच्चिदानन्दस्तर शिव हूँ ॥ ७ ॥ जिससे लीलापूर्वक यह जगत्ल्य विनाप्रकट हुआ है, जो अद्वितीय होनेके कारण किसी भी विनाप्रकट हुआ है, जो अद्वितीय होती है, वही परवर्ता मैं हूँ ॥ ८ ॥ जो भीतर और बाहर व्यापक है, नित्य शुद्ध है, एक है और सदा सच्चिदानन्दकन्द है; जिससे स्थूल-सूक्ष्म प्रपत्नका भाव होता है तथा जिससे उसका प्राकट्य हुआ है, वही परमात्मा मैं हूँ ॥ ९ ॥ जो रूर्ध, चन्द्रमा एवं विशुद्ध स्पृश्य पुज्ञके विलासका आश्रय है, जो स्वगत-भेद आदिते गीत है, सम्पूर्ण जगत् जिसका एक पाद (चतुर्योग) है ॥ १० ॥ तथा जिससे सबको शक्तिका भाव होता है, वही परमात्मा मैं

॥ १० ॥ विसुधे काढ और मूत्र पूर्णरूपे डरते हैं जिससे सर्वव्यापी, शान्तव्यस्थ, परम व्योत्तिमय, आकाशशब्द और स्व बुद्धि और इन्द्रियोंको विकल प्राप्त होता है विष्णु, ऐष्ट है, तथा जो शारिंखतरहित शंकरनामधारी परम सत्य होता, इह, इन्द्र वासा अन्न शादि नामोंका जिससे प्रकाश अन्तर्करणमें जिल्लन करने योग्य है; वह भवता परमात्मा होता है जहाँ परमात्मा मैं हूँ ॥ ११ ॥ जो आकाशकी भाँति वै हूँ ॥ १२ ॥

(निर्वाचनभी समूहं)

### शायपञ्चकम्

निरुपमनिव्यनिरंशकेऽप्यस्थण्डे मयि चिति सर्वविकल्पनादिशूले ।

धृत्यति जगदीशजीवभेदं त्वयटितघटनापटीयसी माया ॥ १ ॥

श्रुतिशतमिगमान्तरोषकाशन्यहृ धनादीशिदशीनम् सदा ।

कलुषयति चतुष्पदाद्यभित्रा त्वयटितघटनापटीयसी माया ॥ २ ॥

सुखविद्यज्ञद्विदीधमद्वितीयं वियदवलादिविनिर्मिते विषेन्द्र ।

भ्रमयति भवसात्मरे तितात्मे त्वयटितघटनापटीयसी माया ॥ ३ ॥

वापमत्युणवण्डातिभेदे सुखचिति विप्रविडाथहर्कृति च ।

सुदृढयति सुनदरणेहमोहं त्वयटितघटनापटीयसी माया ॥ ४ ॥

विविद्विहरेऽप्यमयस्थण्डे वत् विरचय्य तुथालयि प्रकाशम् ।

आपयति हरिहरविभेदभावलयटितघटनापटीयसी माया ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतावाचार्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादकृष्णस्य श्रीमच्छङ्गरामकलङ्कारं इत्यै मायापञ्चकं समूहम् ॥

(समुद्रदङ्ग-पाण्डेय एवं भीरननामादचली शास्त्री )

मैं उपमाहित, नित्य, निरवय, अस्वप्न, चिन्मय तथा तप्त प्रकाशके विकल्प आदि रहत हूँ; तो मैं माया मुश्वरे कल्पके विस्तृत संवारकय चक्रमें बालकर जे निरन्तर भटकती रहती है, वह माया अपटि जो-इक्ष्युरेकी कल्पना कर देती है । अहो ! यह अविद्या घटनाको भी चंचित घटनों अव्यक्त पट्ठ है ॥ १ ॥ २ घटना संचित करनेमें अथवत पट्ठ है ॥ १ ॥ अहो ! शुण, शर्ण और जातिके भेदसे रहित चिदानन्दस्त्रैरहै उस भी माया ग्राहण, वैवय आदिका अनिमान भरकर ही-एगेहशिवक मीढ उत्तर कर देती है । अहो ! वह कै अपमयको भी क्षम्भव-कर दिखानेमें कुशल है ॥ ४ ॥ अहो ! परसात्मामौ मी ब्रह्म तिष्ण और दिव्य—इन भेदोंही सच करके विद्वानोंके हृदयमें भी हरि-हरिष्वक मेदोंही भाव सुदृढकर माया उन संवदों भवगमने लायमें सदाली है । अहै, उसे मैं आकाश और अस्ति आपद्वारा निर्भृत तथा वह अविटिवठनके निर्गम्यमें किलनी पट्ठ है ॥ ५ ॥

(नामपञ्चकं समूहं )

### उपदेशपञ्चकम्

वदो नित्यमर्थायतां तदुदितं कर्म स्वमुद्दीयतां  
त्वेतदस्य विवीरतामपचिति कामे मतिस्त्वज्यताम् ।

पापोदः परिपूर्णां भवमुखे दोषेऽसुखंदीयता-  
मात्मेच्छा व्यवसीयतां विजग्नहत् तृष्ण विनिर्गम्यताम् ॥ १ ॥

लङ्घः लत्सु विधीयतां भमवतो भक्तिर्द्वा धीयतां  
 शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु संत्वज्यताम् ।  
 सद्विदानुपसृष्टयतां प्रतिदिनं तत्पादुका सेव्यतां  
 ब्रह्मकाशरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोदाक्यं समाकर्ष्यताम् ॥ २ ॥  
 पाष्ठ्यर्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरःपक्षः समाश्रीयतां  
 दुस्तर्कात् सुविरस्यतां श्रुतिमतस्तकोऽनुसंधीयताम् ।  
 ब्रह्मासीति विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यतां  
 देहेऽहं मतिरुद्धयतां बुधजनैर्वादः परित्यज्यताम् ॥ ३ ॥  
 शुद्ध्याधिश्च चिकित्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां  
 स्वादवच्चं न तु याच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन संतुष्यताम् ।  
 शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यता-  
 मौदासीन्यमभीप्यतां जनकृपानैष्टुर्यमुत्सृज्यताम् ॥ ४ ॥  
 एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समाधीयतां  
 पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिर्द तद्वाधितं दृश्यताम् ।  
 प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चितिवलान्नाप्युत्तरैः शिलष्यतां  
 प्रारब्धं त्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम् ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिज्ञकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य श्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ उपदेशपञ्चकं सम्पूर्णं ॥

( अनुवादक—पाण्डेय दं० श्रीरामचन्द्रणदत्तजी शास्त्री )

प्रतिदिन वेद पढ़ो । वेदोक्त कर्मोंका भलीभाँति अनुष्ठान  
 करो । उन्हीं कर्मोद्वारा भगवान्की पूजा करो । सकाम कर्ममें  
 मन न लगाओ । पापराशिको धो ढालो । सांसारिक सुखमें  
 दोपका विचार करो । आत्मज्ञानकी इच्छा ठंड करो और  
 अपने घरसे शीत्रनिकल जाओ ॥ १ ॥ सत्पुरुषोंका सङ्ग करो ।  
 अपने हृदयमें भगवान्की सुदृढ़ भक्ति धारण करो । शम, दम  
 आदिका सुदृढ़ परिचय प्राप्त करो । कर्मोंको शीत्र त्याग दो ।  
 श्रेष्ठ विद्वान् गुरुकी शरण लो । प्रतिदिन उनकी चरणपादुकां  
 का सेवन करो । एकमात्र अक्षरब्रह्मके वौधके लिये प्रार्थना  
 करो और वेदान्तशास्त्रका वचन सुनो ॥ २ ॥ वेदान्त-बाक्योंके  
 अर्थपर विचार करो । उपनिषद्के पक्षका आश्रय लो । कुतर्कसे  
 विरत हो जाओ । वेदानुमोदित तर्कका अनुसरण करो । मैं  
 ब्रह्म हूँ ऐसा प्रतिदिन चिन्तन करो । अभिमान छोड़ो । शरीरमें

अहंबुद्धिका त्याग करो और विद्वानोंके साथ विवाद न करो  
 ॥ ३ ॥ शुधारूपी रोगकी चिकित्सा करो । प्रतिदिन भिक्षालूपी  
 औषध खाओ । स्वादिष्ट अक्षरकी याचना न करो । भाष्यवा-  
 जो कुछ मिल जाय, उसीसे भंतुष्ट रहो । शीत और उण  
 आदिको पूर्णरूपसे सहन करो । व्ययकी बातें न बोलो । उदाहीन  
 वृत्तिकी अभिलाषा रक्खो । लोगोंपर कृपा करना या उनके  
 प्रति निष्ठुर व्यवहार करना छोड़ दो ॥ ४ ॥

एकान्तमें सुखसे आक्षन लगाकर बैठो । परतर  
 परमात्मामें चित्त लगाओ । सर्वत्र परिपूर्ण परमात्माका दर्शन  
 करो । इस जगत्को परमात्मावसे वाधित देखो । शानदर्शण  
 पूर्वकर्मोंका लय करो । भावी कर्मोंमें आसक्त न होओ । ये  
 जीवनमें प्रारब्धका उपभोग करो और परब्रह्मरूपसे सदा शिरो  
 रहो ॥ ५ ॥

( उपदेशपञ्चक समाप्त )

## धन्याष्टकम्

तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिद्विद्याणां तज्जेयं यदुपनिषत्सुनिश्चितार्थम् ।  
 ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चितेहाः शेषास्तु अमनिलये परिभ्रमन्तः ॥ १ ॥  
 जादौ विजित्य विषयान् मदमोहरगद्वेषादिशत्रुणगमाहृतयोगराज्याः ।  
 शत्वा मतं समनुभूय परात्मविद्याकान्तासुखं बन्धुहे विचरन्ति धन्याः ॥ २ ॥  
 त्यक्त्वा गृहे रतिमधोगतिहेतुभूतामात्मेच्छयोपनिषदर्थरसं पिवन्तः ।  
 वीतस्पृहा विषयसोगपदे विरक्ता धन्याश्वरन्ति विजनेषु विरक्तसङ्गाः ॥ ३ ॥  
 त्यक्त्वा ममाहमिति बन्धकरे पदे द्वे मानावस्मानसद्वशाः समदर्शिनश्च ।  
 कर्तारमन्यमवगम्य तदर्पितानि कुर्वन्ति कर्मपरिपाकफलानि धन्याः ॥ ४ ॥  
 त्यक्त्वैषणात्रयमवेक्षितमोक्षमार्गा भैक्षामृतेन परिकलिपतदेहयात्राः ।  
 ज्योतिः परात्परतरं परमात्मसंज्ञं धन्या द्विजा रहसि हृदयबलोकयन्ति ॥ ५ ॥  
 नासन्न सञ्च सदसन्न महत्त चाणु न स्त्री पुमान्न च न पुंसकमेकवीजम् ।  
 वैर्घ्या तत् सममुणासितमैकचित्तैर्धन्या विरेजुरिते भवपाशबद्धाः ॥ ६ ॥  
 अज्ञानपङ्कपरिमग्नमपेतसारं दुःखालयं मरणजन्मजरावसक्तम् ।  
 संसारवन्धनमनित्यमवेक्ष्य धन्या ज्ञानासिना तदवशीर्य विनिश्चयन्ति ॥ ७ ॥  
 शान्तैरनन्यमतिभिर्मधुरस्त्रभावैरेकत्वनिश्चितमनोभिरपेतमोहैः ।  
 साकं वनेषु विदितात्मपदस्वरूपं तदवस्तु सम्यगनिशं विमृशन्ति धन्याः ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीमत्परमाईंसपरिवाजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यमादशिष्यस्य श्रीमन्छङ्करमावतः कृतौ धन्याष्टकं सम्पूर्णम् ॥

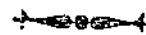
( धनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरमनारायणदत्तजी शास्त्री )

ज्ञान वह है, जो हन्त्रियोंको ध्यान्ता करनेवाला है । शेष  
 वह है, जो उपनिषदोंमें भलीभाँति निश्चित किया गया हो । शेष  
 इस पृथ्वीपर वे मनुष्य धन्य हैं, जिनकी सारी चेष्टाएँ  
 निश्चित ही परमार्थके लिये होती हैं । शेष सभी लोग  
 भ्रमकी दुनियामें भटक रहे हैं ॥ १ ॥ पहले विषयोंको  
 जीतकर तथा मद, मोह, राग, द्वेष आदि शत्रुओंको  
 परास्त करके किर योगसामाज्य प्राप्त करके शास्त्रका भत  
 जानकर परमात्मविद्यारूपी प्रेयसीके संगम-सुखका अनुभव  
 करते हुए धन्य पुरुष बनरूपी गृहमें विचरते हैं ॥ २ ॥  
 घरमें होनेवाली आसक्ति अधोगतिका हेतु है । उसे  
 त्यागकर स्वेच्छानुसार उपनिषदोंके अर्थभूत व्रहरसका पान  
 करते हुए वीतराग हो विषयभोगोंकी इच्छा न रखकर  
 धन्य मानव एकान्त स्थानोंमें विरक्तोंके साथ विचरते  
 हैं ॥ ३ ॥ मेरा और मैं—ये दो बन्धनमें ढालनेवाले भाव हैं ।  
 इन दोनोंको त्यागकर मान और अपमानमें तुल्य और  
 समदर्शी हो अपनेसे भिज दूसरे ( ईश्वर ) को कर्ता

मानकर कर्मफलोंको उन्हींके अर्पण कर देते हैं ॥ ४ ॥  
 तीनों एषणाओंका त्याग करके मोक्षमार्गपर हृषि  
 रखकर भिष्मारूपी अमृतसे शरीरव्यात्राका निर्वाह करते हुए  
 धन्य द्विज एकान्तमें वैठकर अपने हृदयमें परात्पर परमात्म-  
 संज्ञक ज्योतिका दर्शन करते हैं ॥ ५ ॥ जो न अस्त् है न  
 स्त् है, न सदसदूप है, न महान् है न सूक्ष्म है, न छी है  
 न पुरुष है और न नपुंसक ही है, जो अकेला ही सबका  
 आदिकारण है, उस ब्रह्मकी जिन लोगोंने एकचित्त होकर  
 उपासना की है, वे धन्य महानुभाव विराज रहे हैं । दूसरे लोग  
 संसाररूपी वन्धनमें बैठे हुए हैं ॥ ६ ॥ यह संसाररूपी रज्जु  
 अशानरूपी पङ्कमें छूटी हुई, सारहीन, दुःखका घर और जन्म,  
 मृत्यु एवं जरामें आसक्त है । इसे अनित्य देखकर धन्य पुरुष  
 शानरूपी खड़गसे छिन-भिन्न करके परमात्मतत्त्वको निश्चित-  
 रूपसे जान लेते हैं ॥ ७ ॥ जो शान्त हैं, जिनकी बुद्धि  
 परमात्माके सिवा अन्यत्र नहीं जाती, जिनका स्वभाव मधुर है,  
 जिनके मनमें जीवत्मा और परमात्माके एकत्वका निश्चय हो

या है और जो सर्वथा मोहरहित हैं, ऐसे महात्माओंके साथ जानकर निरन्तर उसीका भलीभाँति चिन्तन करते नमें रहकर धन्य पुरुष आत्मस्वरूप परब्रह्म परमात्माको रहते हैं ॥ ८ ॥

( धन्याद्यक समाप्त )



## दशश्लोकी स्तुति

साम्बो नः कुलदैवतं पशुपते साम्ब त्वदीया वयं साम्बं स्तौमि सुरासुरोरेगणाः साम्बेन संतारिताः ।  
साम्बायास्तु नमो मया विरचितं साम्बात्परं तो भजे साम्बस्यानुचरोऽस्यहं मम रतिः साम्बे परब्रह्मणि ॥ १ ॥  
विष्णवाद्याश्च पुरत्रयं सुरगणा जेतुं न शक्ताः स्वयं यं शम्भुं भगवन् । वयं तु पश्चात्साकं त्वमेवेश्वरः ।  
स्वस्वस्थाननियोजिताः सुमनसः स्वस्था बभूत्स्ततस्तस्मिन्मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि ॥ २ ॥  
क्षेणी यस्य रथो रथाङ्गयुगलं चन्द्रार्कविम्बद्वयं कोदण्डः कनकाचलो हरिरभूद्वाणो विधिः सारथिः ।  
तूणीरो जलधिर्हयाः श्रुतिचयो मौर्वी भुजङ्गाधिपस्तस्मिन्मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि ॥ ३ ॥  
येनापादितमङ्गजाङ्गभसितं दिव्याङ्गरागैः समं येन स्वीकृतमब्जसम्भवश्चिरः सौवर्णपात्रैः समम् ।  
येनाङ्गीकृतमल्युतस्य नयनं पूजारविन्दैः समं तस्मिन्मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि ॥ ४ ॥  
गोविन्दादधिकं न दैवतमिति प्रोक्तार्थं हस्ताद्युभाद्युद्धृत्याथ शिवस्य संनिधिगतो व्यासो मुरीनां वरः ।  
यस्य स्तम्भितपाणिरानतिकृता नन्दीश्वरेणाभवत् तस्मिन्मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि ॥ ५ ॥  
आकाशश्चिकुरायते दशदिशाभेगो दुक्खलायते शीतांशुः प्रसवायते श्विरतरानन्दः स्वरूपायते ।  
वेदान्तो निलयायते सुविनयो यस्य स्वभावायते तस्मिन्मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि ॥ ६ ॥  
विष्णुर्यस्य सहस्रनामनियमादस्मोरुहरर्चयन्नेकेनापचितेषु नेत्रकमलं नैं पदाब्जद्वये ।  
सम्पूज्यासुरसंहर्ति विदलयंखैलोक्यपालोऽभवत् तस्मिन्मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि ॥ ७ ॥  
शौरि सत्यगिरं चराहवपुषं पादाम्बुजादर्शने चक्रे यो दयया समस्तजगतां नाथं शिरोदर्शने ।  
मिथ्यावाचमपूज्यमेव सततं हंसस्वरूपं विर्धि तस्मिन्मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि ॥ ८ ॥  
यस्यासन् धरणीजलाद्विपवनव्योमार्कचन्द्रादयो विष्ण्यातास्तनयोऽष्टधा परिणता नान्यस्तो वर्तते ।  
ओंकारार्थविवेचनी श्रुतिरियं चाचष्टु तुर्यं शिवं तस्मिन्मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि ॥ ९ ॥  
विष्णुब्रह्मसुराधिप्रभृतयः सर्वेऽपि देवा यदा सम्भूताजलयेविष्वात्परिभवं प्राप्तस्तदा सत्वरम् ।  
तानार्त्तज्ञशरणागतानिति सुरान् योऽरक्षदर्जक्षणात् तस्मिन्मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि ॥ १० ॥

॥ इति श्रीमन्छङ्गराम्यविरचिता दशश्लोकी सम्पूर्णा ॥

( अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री )

अम्बा पार्वतीसहित भगवान् शिव हमारे कुलदेवता हैं । जीवरूपी पशुओंके स्वामी साम्बसदाशिव ! हमलोग आपके भक्त हैं, हम अम्बिकासहित महेश्वरकी स्तुति करते हैं । अम्बासहित भगवान् शिवने कितने ही देवताओं, असुरों और सागोंका उद्धार किया है । हमने अम्बिकासहित महादेवजीके लिये नमस्कार किया है । अम्बासहित भगवान् शिवके सिवा दूसरे किसी देवताका हम भजन नहीं करते । हम केवल साम्बसदाशिवके ही देवक हैं । अम्बासहित

परब्रह्म परमात्मा शिवमें मेरा सदा अनुग्रह बना रहे ॥ १ ॥  
विष्णु आदि सब देवता जब असुरोंके तीनों पुरोंगे जीतनेमें स्वयं असमर्थ हो गये, तब जिन भगवान् शङ्करके पास आकर यों बोले—‘भगवन् ! हम तो पशु हैं, आप ही हमारे पति या ईश्वर हैं !’ उनकी यह प्रार्थना मुनवर जिन्होंने सब देवताओंको सान्त्वना दे त्रिपुरका नाय दर्के सबको अपने-अपने स्थानमें नियुक्त किया, जिससे वे यमी स्थित हो सके, उन्हीं साम्बसदाशिव परद्युम्न परमात्माओं

मेरा हृदय सुखपूर्वक रमता रहे ॥ २ ॥ त्रिपुर-विनाशके समय पृथ्वी जिनका रथ हुई, चन्द्रमण्डल और सूर्यमण्डल जिनके रथके दो पहिये बने, मेरुपर्वत बनुष बना, स्वयं भगवान् विष्णु वाण बन गये, ब्रह्माजी जिनका रथ हाँकनेके लिये सारथि हुए, समुद्रने तरकसका काम सैंभाल, चारों वेद चार धोड़े बन गये और नागराज अनन्तने जिनके धनुषकी प्रत्यञ्चाका रूप धारण किया, उन्हीं परब्रह्म परमात्मा साम्बसदाशिवमें मेरा हृदय सुखपूर्वक रमण करे ॥ ३ ॥ जिन्होंने कामदेवके शरीरको भस्त्र बनाकर उसे दिव्य अङ्गरागोंके समान खीकार किया है, जिनके द्वारा अङ्गीकार किया हुआ ब्रह्माजीका मस्तक (जो कपालके रूपमें शिवजीके हाथमें है) सुवर्णपात्रके समान महत्व रखता है तथा जिन्होंने पूजापर चढ़नेवाले कमलपुष्पोंके समान भगवान् विष्णुके एक नेत्रको भी अङ्गीकार कर लिया, उन्हीं साम्बसदाशिव परब्रह्ममें मेरा हृदय सुखपूर्वक रमण करे ॥ ४ ॥ एक समय मुनिश्रेष्ठ व्यास दोनों बाँहें ऊपर उठाकर बड़े जोरसे यह धोषणा करते हुए कि 'भगवान् विष्णुसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है' भगवान् शिवके समीप गये। उस समय जिनके सेवक नन्दीश्वरने ही उनकी उन बाँहोंको स्तम्भित कर दिया, उन्हीं परब्रह्मस्वरूप साम्बसदाशिवमें मेरा हृदय सानन्द रमण करता रहे ॥ ५ ॥

आकाश जिनके लिये केश-कलापका काम दे रहा है, दसों दिशाओंका विस्तार जिनके लिये वस्त्र-सा बना हुआ है, शीतरश्मि चन्द्रमा जिनके मस्तकपर पुष्पमय आभूषण-से प्रतीत होते हैं, अक्षय आनन्द जिनका स्वरूप ही है, वेदान्त जिनका विश्राम-स्थान है तथा अत्यन्त विनय जिनका स्वभाव-सा

है, उन्हीं परब्रह्मस्वरूप साम्बसदाशिवमें मेरा मन सुखसे रमता रहे ॥ ६ ॥ भगवान् विष्णु जिनके सहस्र नामोंद्वारा एक-एक नामसे एक-एक कमलपुष्प चढ़ानेका नियम लेकर कमलों-द्वारा पूजा करने लगे और एक कमल घट जानेपर अपने कमलोंमें नेत्रोंही निकालकर उन्होंने जिनके युगल चरणार-विन्दोंपर चढ़ा दिया और संकल्पित पूजन सम्पन्न किया तथा उसी पूजनकी भहिमासे वे असुरसमूहका विनाश करते हुए तीनों लोकोंके रक्षक हो गये, उन्हीं परब्रह्मस्वरूप साम्बसदाशिवमें मेरा हृदय सुखपूर्वक रमता रहे ॥ ७ ॥ जिन्होंने अपने चरणारविन्दोंका पता लगानेके लिये पाताललोकतक गये हुए वाराहस्वरूपधारी श्रीविष्णुको 'मुद्रे आपके श्रीचरणोंका दर्शन न हो सका' इस प्रकार सत्य बोलनेपर दया करके समर्पण जगत्का अधिपति बना दिया और भस्तक-दर्शनके विषयमें छूट बोलनेपर हंसस्वरूपधारी ब्रह्माको सर्वथा अपूर्ज्य ही बना दिया, उन परब्रह्मस्वरूप साम्बसदाशिवमें मेरा मन रमता रहे ॥ ८ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य और चन्द्रमा आदि जिनके आठ प्रतिद्वंश शरीर ब्रतावे गये हैं। इन आठोंके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। उँकारके अर्थका विवेचन करनेवाली माण्डूक्य शूति भी जिन भगवान् शिवको तुरीय बताती है, उन्हीं परब्रह्मस्वरूप साम्बसदाशिवमें मेरा मन रमता रहे ॥ ९ ॥ जब समुद्रसे प्रकट हुए विषसे विष्णु, ब्रह्म और इन्द्र आदि सब देवता पराजित हो तुरंत ही भगवान् शिवकी शरणमें गये, उस समय जिन्होंने विषपान करके आधे ही क्षणमें उन पीड़ित एवं शरणागत देवताओंकी रक्षा कर ली, उन्हीं परब्रह्मस्वरूप साम्बसदाशिवमें मेरा हृदय सानन्द रमण करता रहे ॥ १० ॥

(दशश्लोकी सुति सम्पूर्ण )

### पट्टपदी-स्तोत्रम्

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगत्पृष्णाम् । भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ॥ १ ॥ दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिमोगसचिदानन्दे । श्रीपतिपदारविन्दे भवभयदेवचिद्देव वन्दे ॥ २ ॥ सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीतस्त्वम् । सामुद्रो हि तरङ्गः कच्चन समुद्रो न तारङ्गः ॥ ३ ॥ उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिष्टे । दृष्टेभवतिप्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः ॥ ४ ॥ मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम् । परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम् ॥ ५ ॥

१. आदि शास्त्रसे यहों प्रकृतिको ग्रहण करना चाहिये ।

दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द । भवजलघिमथनमन्दर परम दरमपत्रय त्वं मे ॥  
नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ । इति पट्पदी मर्दीये घदनसरोजे सदा चस्तु ॥  
॥ इति श्रीमत्परगहंसपरिनाजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य श्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ पट्पदीस्तोत्रं सम्पूर्णं ॥

( अनुबादक—प० श्रीगौरीशङ्करजी द्विदेवी )

हे विष्णो ! ( मेरे ) अविनयको दूर करो, मनको दमन करो, विषयरूपी मृगतृष्णा ( के मोह ) को शमन करो । भूतों ( प्राणियों ) के प्रति दयाके भावका विस्तार करो, ( और मेरा ) संसारसागरसे उदार करो ॥ १ ॥ सुरधुनी ( गङ्गा ) रूपी मकरन्द या मधुसे युक्त ( जिन युगल चरणकमलोंके ) परिमलका सम्मोग ही सच्चिदानन्दरूप है, जो संसारभयसे उत्पन्न खेदके नाशक हैं, भीपति भगवान् विष्णुके उन चरणकमलोंकी मैं बन्दना करता हूँ ॥ २ ॥ हे नाथ ! मुझमें और तुममें भेद न होनेपर भी मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरे नहीं हो, क्योंकि ( समुद्र और तरङ्गमें भेद न होनेपर भी ) समुद्रका अंश तरङ्ग होता है, तरङ्गका अंश समुद्र कदापि नहीं होता ॥ ३ ॥ जिन्होंने गोवर्द्धन पर्वत-

को उठा लिया, जो पर्वतोंका छेदन करनेवाले इन्द्रके हैं ( अर्थात् उपेन्द्र ) हैं, जो दुन्जकुलके शत्रु हैं; सूर्य जिनके चक्षु हैं, हे प्रभो ! आपका साक्षात्कार होनेपर मैं ( जन्म-मरण ) का तिरस्कार नहीं होता ? ॥ ४ ॥ हे परमे मत्स्यादि अवतारोंके द्वारा ( तुमने ) सदा ही वसुधारा किया है, भवतापसे भवभीत मैं तुम्हारेद्वारा परिणालन हूँ ॥ ५ ॥ हे दामोदर ! हे गुणोंके मन्दिर, हे सुन्दर कमलविशिष्ट ! गोविन्द ! संसारसमुद्रके मन्यनमें मन्दरा स्वरूप ! तुम मेरे परम भयको दूर करो ॥ ६ ॥ हे नारायण ! मैं तुम्हारे उभय चरणोंकी शरण लेता हूँ । या पदोंकी समष्टिरूप भ्रमसी सदा मेरे मुखकमलमें वास करे ॥

( पट्पदीस्तोत्रं सम्पूर्ण )

### श्रीकृष्णाष्टकस्तोत्रम्

श्रियाश्तुष्टो विष्णुः स्तिरचरगुरुर्वेदविषयो विद्यां साक्षी शुद्धो हरिरसुरहन्ताव्यनयनः ।  
गदी शही चक्री विमलवनमाली स्थिररुचिः शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ १  
यतः सर्वं जातं विद्यदनिलमुख्यं जगदिदं स्थितौ निःशेषं योऽवति निजसुखांशेन मधुहा ।  
लये सर्वं स्वसिन् हरति कलया यस्तु स विभुः शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ २  
असूनायस्यादौ यमनियममुख्यैः सुकरणैर्निरुच्येदं चित्तं हृदि विलयमानीय सकलम् ।  
यमीडव्य पश्यन्ति प्रवरमतयो मायिनमसौ शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ३  
पृथिव्यां तिषुन् यो यमयति महीं वेद न धरा यमित्यादौ वेदो वदति जगतामीशममलम् ।  
नियन्तारं ध्येयं मुनिसुरनृणां पोशदमसौ शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ४  
महेन्द्रादिदेवो जयति दितिजान् यस्य बलतो न कस्य खातन्त्र्यं क्वचिदपि कृतौ यत्कृतिमृते ।  
क्वचित्वादेगर्वं परिहरति योऽसौ विजयिनः शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ५ ॥  
विना यस्य ध्यानं व्रजति पशुतां शूकरसुखां विना यस्य ज्ञानं जनिसृतिभयं याति जनता ।  
विना यस्य स्मृत्या कुमिशतजर्नि याति स विभुः शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ६ ॥  
नरातङ्गोऽङ्गः शरणशरणो आन्तिहरणो घनश्यामो रामो व्रजशिद्युवयस्योऽर्जुनसवः ।  
स्वयम्भूर्भूतानां जलक उचिताचारसुखदः शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ७ ॥  
यदा धर्मग्लानिर्भवति जगतां क्षोभकरणी तदा लोकस्यामी प्रकटितवपुः सेतुभृगजः ।  
सतां धाता स्वरूपो निगमगुणगीतो व्रजपतिः शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ८ ॥  
इति हरिरखिलात्माराधितः शङ्करेण श्रुतिविशदगुणोऽसौ मातृमोक्षार्थमायः ।  
यतिवरनिकटे श्रीयुक्त आदिवर्भूव स्वगुणवृत्त उदारः शशन्त्रवाव्यहस्तः ॥ ९ ॥  
॥ श्रीमत्परमहंसपरिनाजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य श्रीमच्छङ्करभगवतः कृती श्रीकृष्णाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्ण ॥

( अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री )

जो चरचर जगत्के गुरु, वेदप्रतिपाद्य, लक्ष्मीके द्वारा आश्रित श्रीविष्णु हैं, जो बुद्धियोंके साक्षी, शुद्धस्वरूप, अमुरोंका नाश करनेवाले, कमलनयन, गदा, शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले श्रीहरि हैं, वे लोकाधिपति, सबको शरण देनेवाले, स्वच्छ वनमाला धारण करनेवाले, नित्योऽज्ज्वल-दीसि श्रीकृष्ण मेरे नयनगोचर हॉ ( मुझे दर्शन प्रदान करें ) ॥ १ ॥

आकाश, वायु आदिका परिणाम स्वरूप यह सारा जगत् जिससे उत्सर्ज हुआ है, स्थितिकालमें जो मधुसूदन निज-सुखांशके द्वारा सबका पालन करते हैं तथा प्रलयकालमें जो अपनी एक कलाके द्वारा सबको अपनेमें विलीन कर लेते हैं, वे लोकाधिपति, सबको शरण देनेवाले विभु श्रीकृष्ण मेरे नयनगोचर हॉ ॥ २ ॥

उत्तम बुद्धिवाले मुनिगण पहले प्राणसंयम करके यम-नियमादि श्रेष्ठ साधनोंके द्वारा इस वित्तका निरोध करके हृदयमें पूर्णतः विलीन कर जिन स्वधन करने योग्य मायाधिपतिको देखते हैं, वे लोकाधिपति, सबको शरण देनेवाले श्रीकृष्ण मेरे नयनगोचर हॉ ॥ ३ ॥

पृथिवीपर रहते हुए जो इस पृथिवीको नियमित करता है, परंतु पृथिवी जिसको नहीं जानती; ‘यः पृथिव्यां तिष्ठन्’ इत्यादि स्थलोंमें श्रुति जिसको निरञ्जन, जगदीश्वर, नियन्ता और ध्येय कहती है; जो देव-मुनि-मानवोंको मोक्ष प्रदान करनेवाले और सबको शरण देनेवाले हैं, वे लोकाधिपति श्रीकृष्ण मेरे नयनगोचर हॉ ॥ ४ ॥

जिनके घलसे इन्द्रादि देवता दैत्योंपर विजय प्राप्त करते हैं, जिनके किये विना कहीं किसी भी कार्यमें किसीका स्वतन्त्र

( श्रीकृष्णाष्टक सम्पूर्ण )

### भगवन्मानसपूजा

हृदस्मोजे कृष्णः सजलजलदश्यमलतनुः सरोजाक्षः स्त्रव्यी मुकुटकटकाद्याभरणवान् ।  
शरद्वाकानाथप्रतिमवद्नः श्रीमुरलिकां वहन् ध्येयो गोपीनाणपरिवृतः कुरुमचितः ॥ १ ॥  
पयोऽस्मोधेर्दीपान्मम हृदयमायाहि भगवन् मणिवातभ्राजत् कलकधरपीडं भज हरे ।  
सुचिङ्गौ ते पादौ यदुकुलज नेनेत्तिम सुजलैर्गृहणेदं दूर्वाफलजलवद्व्यं सुररिपो ॥ २ ॥  
त्वमाच्चामोपेन्द्र विदशसरिदस्मोऽतिशिशिरं भजस्वेमं पञ्चमृतरचितमाप्नुवमध्यहन् ।  
युनयाः कालिन्द्या अपि कनककुम्भस्थितमिदं जलं तेन ऊनं कुरु कुरु कुरुक्ष्वाचमनकम् ॥ ३ ॥

तदिद्वर्णे वस्त्रे भज विजयकान्ताधिहरण प्रलम्बारिभ्रातर्दुलमुपवीतं कुरु गले।  
 ललाटे पाठीरं सूगमदयुतं धारय हरे शृहणेदं माल्यं शतदलतुलस्यादिचितम् ॥५॥  
 दशाङ्गं धूपं सद्ग्रदचरणाश्रेऽपितमिदं मुखं दीपेन्दुप्रभवरजसा देव कलये।  
 इमौ पाणी वाणीपतिनुत सुकर्पूररजसा विशोध्याये दक्षं सत्यिलमिदमाचाम नुहरे ॥५॥  
 सदातृसान्नं पड़सवदखिलव्यञ्जनयुतं सुवर्णामत्रे गोद्वृतचपकयुक्ते स्थितमिदम्।  
 यशोदासूतो त्वं परमदययाऽशान सत्यिभिः प्रसादं वाञ्छङ्गिः सह तदनु नीरं पिव विमो ॥६॥  
 सचन्द्रं ताम्बूलं मुखशुचिकरं भक्षय हरे फलं खादु प्रीत्या परिमलवदासादय विरम्।  
 सपर्यापर्याप्त्यै कनकमणिजातं स्थितमिदं प्रदीपैराराति जलधितनयास्तिष्ठ रचये ॥७॥  
 विजातीयैः पुष्पैरतिसुरभिभिर्विलवतुलसीयुतैश्चेमं पुष्पाङ्गलिमजित ते मूर्धि निदधे।  
 तव प्रादश्मिष्यकमणमधविघ्वंसि रचितं चतुर्वारं विष्णो जनिपथगतश्चान्तिविदुषा ॥८॥  
 नमस्कारोऽपाङ्गः सकलदुरितध्वंसनपद्मः कृतं नृत्यं गतिं स्तुतिरपि रमाकान्त त इयम्।  
 तव प्रीत्यै भूयादहमपि च दासस्तव विमो कृतं छिदं पूर्णं कुरु कुरु नमस्तेऽस्तु भगवन् ॥९॥  
 सदा सेव्यः कृष्णः सजलधननीलः करतले दधानो दध्यन्नं तदनु नवनीतं सुरलिकाम्।  
 कदाचित्कान्तानां कुन्नकलशपत्रालिरचनासमासकः स्त्रियैः सह शिशुविहारं विरचयन् ॥१०॥

॥ इति श्रीमच्छङ्गराचार्यविचितं भगवन्मानसपूजनं सम्पूर्णम् ॥

( अनुवादक—पाण्डेय एं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री )

### भगवन्मानसपूजा ध्यान

भगवान्का ध्यान इस प्रकार करे—हृदयकमलके आसन-पर सजल जलधरके समान श्याम शरीरवाले कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं। उनके गलेमें वनमाल्य शोभा पा रही है। मस्तकपर मुकुट, हाथोंमें कंगन तथा अन्यान्य अङ्गोंमें उनके थोग्य आभूषण धारण किये हुए हैं। शस्त्रकालके चन्द्रमाके समान उनका मनोरम मुख है। वे हाथमें मुरली धारण किये हैं। केसरयुक्त चन्दनसे उनका शृङ्गार किया गया है और गोपियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरकर लड़ी हैं ॥ १ ॥

### आवाहन-आसन-पाद्य-अर्द्ध

भगवन् ! श्रीरासागरके दीपसे मेरे हृदयमन्दिरमें पदार्पण कीजिये। हरे ! रत्नसूहोंसे जटित सुन्दर सर्णमय चिंहासनपर विराजमान होइये। बदुकुलतिलक ! मैं सुन्दर चिंहोंसे सुशोभित आपके दोनों चरणोंको शुद्ध जलसे पवर रहा हूँ। मुरारे ! दूर्वा, फल और जलसे संयुक्त यह अर्द्ध ग्रहण कीजिये ॥ २ ॥

### आचमन, पञ्चामृत-स्थान, शुद्धोदक-स्थान और पुनराचमन

उपेन्द्र ! आप गङ्गाजीके अत्यन्त शीतल जलका आचमन

कीजिये। पापहारी प्रभो ! यह पञ्चामृतसे तैयार किया हुआ तरल पदार्थ आपके स्त्रानके लिये प्रस्तुत है। इसके पश्चात् सोनेके घड़ोंमें रक्खा हुआ जो यह गङ्गा और यमुना का जल है, इससे शुद्ध स्त्रान कीजिये। तदनन्तर पुनः आचमन कीजिये ॥ ३ ॥

### बस्त्र, यज्ञोपवीत, चन्दन और माला

जर्जनके प्रिय मित्र ! और सबकी मानसिक चिन्ता दूर करनेवाले श्रीकृष्ण ! आप विद्युतके समान रंगवाले ये दो पीताम्बर धारण कीजिये। दल्लगमजीके छोटे भैया ! पर कोमल यज्ञोपवीत भी गलेमें डाल लीजिये। हरे ! अपने ललाटमें कस्तूरीमिश्रित चन्दन धारण कीजिये। साथ ही यमल और तुलसी आदिसे निर्मित यह सुन्दर माला ग्रहण कीजिये ॥ ४ ॥

### धूप, दीप, करशुद्धि और आचमन

सत्पुराणोंको वर देनेवाले चार चरणोंसे मुशोभित श्रीहरे ! आपके आगे यह दशाङ्ग-धूप समर्पित है। देव ! मैं कपूरकी रजसे परिपूर्ण दीपकद्वारा आपकी मुख्यनात्मा उद्दीप्त कर रहा हूँ। वाणीपति व्रक्षाजीके द्वारा प्रसादित वृसिंहदेव। सुन्दर कर्पूरचूर्णसे अपने इन दोनों करनालोंमें शुद्ध करके सामने रखे हुए इस जलको आचमनके उपयोगमें लाइये ॥ ५ ॥

## नैवेद्य-निवेदन, आचमन-अर्पण

यशोदानन्दन ! गोवृतकी व्यालीसहित सोनेके पात्रमें  
रखा हुआ यह सम्पूर्ण व्यञ्जनोंसे युक्त घड़रस भोजन प्रस्तुत  
है, जो सदा तृतीय प्रदान करनेवाला है। आप अत्यन्त कृपा  
करके प्रसाद लेनेकी इच्छावाले सखाओंके साथ यह अब  
ग्रहण करें। प्रभो ! तत्पश्चात् यह जल पी लें ॥ ६ ॥

## ताम्बूल, फल, दक्षिणा और आरती

हे ! यह कर्पूरसहित ताम्बूल मुखकी शुद्धि करनेवाला  
है। इसे भक्षण कीजिये। साथ ही स्वादिष्ठ और सुगन्धित  
इन फलोंका प्रेमपूर्वक देस्तक आस्वादन कीजिये। लक्ष्मीसे  
आलिङ्गित श्रीहरे ! इस मानस-पूजाकी पूर्णताके लिये सुवर्ण  
और रक्तोंकी यह राशि यहाँ प्रस्तुत है। अब मैं अनेक उत्कृष्ट  
दीपकोंद्वारा आपकी आरती उतारता हूँ ॥ ७ ॥

## पुष्पाञ्जलि और प्रदक्षिणा

अजित श्रीकृष्ण ! मैं विभिन्न जातिके अत्यन्त सुगन्धित  
पुष्पों और विल्वपत्र तथा तुलसी-दलोंद्वारा यह पुष्पाञ्जलि  
आपके मस्तकपर अर्पित करता हूँ। विष्णो ! जन्मके मार्गपर

( मानसानंसपूजा संपूर्ण )

## श्रीअच्युताष्टकम्

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम् ।  
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥ १ ॥  
अच्युतं केशवं सत्यमामाधवं माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम् ।  
इन्द्रिरामस्त्रिं चेतसा सुन्दरं देवकीनन्दनं नन्दजं संदध्ये ॥ २ ॥  
विष्णवे जिणावे शह्विने चक्रिणे रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये ।  
वल्लवीवल्लभायार्चितायात्मने कंसविघ्नसिने वंशिने ते नमः ॥ ३ ॥  
कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण श्रीपते वासुदेवाजित श्रीनिधे ।  
अच्युतानन्त हे माधवादोक्षज द्वारकानायक द्वौपदीरक्षक ॥ ४ ॥  
राक्षसस्कोमितः सीतया शोभितो दण्डकारण्यभूपृष्यताकारणः ।  
लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितोऽगस्त्यसम्पूजितो राघवः पातु माम् ॥ ५ ॥  
घेनुकारिष्टकानिष्टकृद् द्वेषिहा केशिहा कंसहृदवंशिकावादकः ।  
पृतसाकोपकः सूरजाखेलतो वालगोपालकः पातु मां सर्वदा ॥ ६ ॥  
विद्युद्योतव्यस्फुरद्वाससं प्रावृद्धमोदवत्प्रोल्लसद्विश्रहम् ।  
वन्यया मालया शोभितोऽस्थलं लोहिताङ्गविद्वयं वारिजाक्ष भजे ॥ ७ ॥  
कुञ्जितैः कुन्तलैर्भ्राजमानननं रजमौलि लसकुण्डलं गण्डयोः ।  
हारकेयूरकं कदुण्प्रोज्ज्वलं किञ्चिणीमञ्जुलं श्यामलं तं भजे ॥ ८ ॥

आनेसे जो दुःख उठाना पड़ता है, उसे मैं जानता हूँ;  
इसीलिये मैंने आपकी चार बार पसिक्का की है, जो समस्त  
पापोंका नाश करनेवाली है ॥ ८ ॥

## साषाङ्ग प्रणाम, स्तुति, पूजा-समर्पण, शमा- ग्रार्थना और नमस्कार

रमाकान्त ! सम्पूर्ण पापराशिका विव्वंस करनेमें समर्थ  
मह साषाङ्ग प्रणाम आपको समर्पित है। आपकी प्रसन्नताके  
लिये यह नृत्य, गीत तथा स्तुतिका भी आयोजन किया गया  
है। सर्वव्यापी प्रभो ! यह पूजन आपकी प्रसन्नता बढ़ानेवाला  
हो। मैं आपका दास बना रहूँ। इस पूजनमें जो श्रुटि हो, उसे  
आप पूर्ण करें, पूर्ण करें। भगवन् ! आपको नमस्कारहै ॥ ९ ॥

## उपसंहारकालिक ध्यान

जो अपने हाथमें दही-भास, मक्खन और मुरली लिये  
हुए हैं और अपने स्नेही सदाओंके साथ बालोचित कीड़ाएँ  
करते हैं, जो कभी-कभी प्रेयसी गोपसुन्दरियोंके कुचकलशोंपर  
पत्ररचना करनेमें आसरा होते हैं, वे सजल जलधरके समान  
कन्तिवाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण सदा सेवन करने योग्य  
हैं ॥ १० ॥

अच्युतस्याष्टकं यः पटेदिष्टदं प्रेमतः प्रत्यहं पूरुषः सस्पृहम् ।  
वृत्ततः सुन्दरं कर्त्तविश्वम्भरस्तस्य वश्यो हरिर्जायते सत्वरम् ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतमन्युताष्टकं सम्पूर्णम् ॥

( अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामजागरणदत्तजी शास्त्री )

अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि, श्रीधर, माधव, गोपिकावल्लभ तथा जानकी-नाथक श्रीरामचन्द्रजीको मैं भजता हूँ ॥ १ ॥ अच्युत, केशव, सत्यमामापति, लक्ष्मीपति, श्रीधर, राधिकाजीद्वारा आराधित, लक्ष्मीनिवास, परम सुन्दर, देवकीनन्दन, नन्दकुमारका मैं चित्तसे ध्यान करता हूँ ॥ २ ॥ जो विमुहैं, विजयीहैं, शङ्खचक्रधारीहैं, उक्तिमणीजीके परम प्रेमीहैं, जानकीजी जिनकी धर्मपत्नीहैं तथा जो ब्रजजनाओंके प्राणाधारहैं, उन परम-पूज्य, आत्मस्वरूप, कंसविनाशक, मुरलीमनोहर आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥ हे कृष्ण ! हे गोविन्द ! हे राम ! हे नारायण ! हे रमानाथ ! हे वासुदेव ! हे अजेय ! हे शोभाधाम ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे माधव ! हे अधोक्षज ! ( इन्द्रियातीत ! ) हे द्वारकानाथ ! हे द्वौपदी-रक्षक ! ( मुख पर कृपा कीजिये ) ॥ ४ ॥ जो रक्षसोंपर अति कुपितहैं, श्रीसीताजीसे सुशोभितहैं, दण्डकारण्यकी भूमिकी पवित्रताके कारणहैं, श्रीलक्ष्मणजीद्वारा अनुगतहैं, वानरोंसे सेवितहैं और अगस्त्यजीसे पूजितहैं, वे खुबंशी श्रीरामचन्द्रजी मेरी

रक्षा करें ॥ ५ ॥ धेनुक और अरिष्ठासुर आदिका जीव करनेवाले, शत्रुओंका घ्यंस करनेवाले, केशी और कंसका जीव करनेवाले, वंशीको बजानेवाले, पूतनापर कोप करनेवाले यमुनातटविहारी बाल-गोपाल मेरी सदा रक्षा करें ॥ ६ ॥ विश्वप्रकाशके सदृश जिनका पीताम्बर विभाषित हो रहा है क्षमाकालीन मेघोंके समान जिनका अति शोभायमान शरीर है जिनका वक्षःस्थल बनमालासे विभूषित है और जिनके चरणयुग्म अरुणवर्णहैं, उन कमलनयन श्रीहरिको मैं भजता हूँ ॥ ७ ॥ जिनका सुख धूँधराली अलकोंसे सुशोभित है, मस्तकपर मणियमुकुट शोभा दे रहा है तथा कपोलोंपर कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं, उज्ज्वल हार, केशुर ( बाजूबंद ), कहना और किङ्किणी-कलापसे सुशोभित उन मञ्जुलभूति श्रीश्यामसुन्दरसे मैं भजता हूँ ॥ ८ ॥ जो पुरुष इस अति सुन्दर छन्दवाले और अभीष्ट फलदायक अच्युताष्टकको प्रेम और श्रद्धासे नित पढ़ता है, विश्वम्भर, विश्वकर्ता श्रीहरि शीघ्रही उसके वर्णभूत हो जाते हैं ॥ ९ ॥

( अच्युताष्टक सम्पूर्ण )

## श्रीगोविन्दाष्टकम्

सत्यं शानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशं गोषुप्राङ्गणरिङ्गणलोलमनायासं परमायासम् ।  
मायाकल्पितनानाकारमनाकारं भुवनाकारं क्षमाया नाथमनार्थं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ १ ॥  
मृत्युमत्सर्वाहेति यशोदाताडनशैशवसंत्रासं व्यादितवक्त्रालोकितलोकालोकचतुर्दशालोकालिम् ।  
लोकत्रयपुरमूलस्तस्मं लोकालोकमनलोकं लोकेशं परमेशं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ २ ॥  
त्रैविष्टपरिपुरीरूपं शितिभारचनं भवरोगचनं कैवल्यं नवनीतहारमनाहारं भुवनाहारम् ।  
वैमल्यस्फुटचेतोद्वृत्तिविशेषाभासमनाभासं शैवं कैवलशान्तं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ ३ ॥  
गोपालं भूलीलाविग्रहगोपालं कुलगोपालं गोपीलेनगोवर्धनधृतिलीलालालितगोपालम् ।  
गोभिर्निर्गदितगोविन्दस्फुटनामानं बहुनामानं गोधीगोचरदूरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ ४ ॥  
गोपीमण्डलगोष्ठीभेदं भेदावस्थमभेदाभं शश्वद्रोखुरनिर्धूतोद्धतधूलीधूसरसैभाग्यम् ।  
अद्वामक्तिगृहीतानन्दमचित्स्त्वं चिन्तितसद्वार्थं चिन्तामणिमाहिमानं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ ५ ॥  
स्वानव्याकुलयोषिद्वस्त्रमुपादायागमुपारुदं व्यादित्सन्तीरथं दिव्यस्त्रा दातुमुपाकर्त्तं ताः ।  
निर्धूतद्वयशोकविमोहं शुद्धं बुद्धेरन्तःस्थं सत्तामाशशरीरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ ६ ॥

कालं कारणकारणमादिमनादि कालमनाभासं कालिन्दीशतकालियशिरसि सुज्ञत्यन्तं सुहुरत्यस्तम् ।  
कालं कालकलातीतं कलिताशेषं कलिदोषस्तं कालत्रयगतिदेहे प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ ७ ॥  
बृन्दावनमुवि बृन्दारकगणबृन्दाराच्यं बन्येहं कुन्दाभाप्तमन्दस्मेरसुधानन्दं सुहुदानन्दम् ।  
बन्द्याशेषमहामुनिमानसबन्दानन्दपदद्वन्द्वं बन्द्याशेषगुणार्थं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ ८ ॥  
गोविन्दाष्टकमेतदधीते गोविन्दार्पितनेता यो गोविन्दाच्युत माधव विष्णो गोकुलनाथक कृष्णोति ।  
गोविन्दाष्टकमेतदधीते गोविन्दार्पितनेता यो गोविन्दाच्युत माधव विष्णो गोकुलनाथक कृष्णोति ।

॥ इति श्रीमच्छङ्करात्मार्थविरचितं श्रीगोविन्दाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

( अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शाली )

जो सत्य, ज्ञानस्वरूप, अनन्त एवं नित्य हैं आकाशसे भिन्न होनेपर भी परम आकाश-स्वरूप हैं, जो व्रजके प्राङ्गणमें रेखते हुए चपल हो रहे हैं, परिश्रमसे रहित होकर भी बहुत ही थके-से प्रतीत होते हैं, आकरहीन होनेपर भी मायानिर्भित नानास्वरूप धारण किये विश्वलपसे प्रकट हैं और पृथ्वीनाथ होकर भी अनाथ ( जिना स्वामीके ) हैं, उन परमानन्दमय गोविन्दकी बन्दना करो ॥ १ ॥ 'क्या तू यहाँ मिठी खा रहा है ?' यह पूछती हुई यशोदाद्वारा मारे जानेका जिन्हें शैशव-कालेचित भय हो रहा है, मिठी न खानेका प्रमाण देनेके लिये जो मुँह फैलाकर उसमें लोकालोक पर्वतसहित चौदहो भुवन दिखला देते हैं, त्रिभुवनलप्ती नगरके जो आधारस्तम्भ हैं, आलोकसे परे ( अर्थात् दर्शनातीत ) होनेपर भी जो विश्वके आलोक ( प्रकाश ) हैं, उन परमानन्दस्वरूप, लोकनाथ, परमेश्वर गोविन्दको नमस्कार करो ॥ २ ॥ जो दैत्य-धीरोंके नाशक, पृथ्वीका भार हरनेवाले और संसार-रोगको मिटा देनेवाले कैवल्य ( मोक्ष ) पदस्वरूप हैं, आहारहित होकर भी नवनीतभोजी एवं विश्वमक्षी हैं, आभाससे पृथक् होनेपर भी मलरहित होनेके कारण स्वच्छ चित्तकी बुक्सिमें जिनका विशेषस्वरूपसे आभास मिलता है, जो अद्वितीय शान्त एवं कल्पणस्वरूप है, उन परमानन्द गोविन्दको प्रणाम करो ॥ ३ ॥ जो गौओंके पालक हैं, जिन्हें पृथ्वीपर लीला करनेके निमित्त गोपाल-शरीर धारण किया है, जो बंशद्वारा भी गोगाल ( घाल ) हो जुके हैं, गोपियोंके साथ खेल करते हुए गोवर्धन-धारणवी लीलासे जिन्हें गोपजनोंका पालन किया या, गौओंने स्पष्टस्वरूपसे जिनका गोविन्द नाम बताया था, जिनके अनेकों नाम हैं, उन इन्द्रिय तथा त्रुटिके अविषय परमानन्दस्वरूप गोविन्दको प्रणाम करो ॥ ४ ॥ जो गौरीजनोंकी गोष्ठीके भीतर प्रवेश करनेवाले हैं, भैरवश्चामें रहकर भी अभिन्न भासित होते

हैं, जिन्हें सदा गायोंके खुरसे ऊपर उड़ी हुई धूलिद्वारा धूसरित होनेका सौभाग्य प्राप्त है, जो श्रद्धा और मत्तिसे अनन्दित होते हैं, अचिन्त्य होनेपर भी जिनके सद्ग्राव-का चिन्तन किया गया है, उन चिन्तासिंगिके समान महिमावाले परमानन्दमय गोविन्दकी बन्दना करो ॥ ५ ॥ ज्ञानमें व्यग्र हुई गोपाङ्कनाओंके बख लेकर जो वृक्षपर चढ़ गये थे और जब उन्होंने बख लेना चाहा, तब देनेके लिये उन्हें पास बुलाने लगे, ( ऐसा होनेपर भी ) जो शोक-मोह दोनोंको ही मिटानेवाले शानस्वरूप एवं बुद्धिके भी परंवर्ती हैं, सत्तासात्र ही जिनका शरीर है—ऐसे परमानन्दस्वरूप गोविन्दको नमस्कार करो ॥ ६ ॥ जो कमनीय, कारणोंके भी आदिकारण, अनादि और आभासरहित कालस्वरूप होकर भी यसुनाजलमें रहनेवाले कलियनागके भस्तकपर वारंवार अत्यन्त सुन्दर नृत्य कर रहे थे, जो कालस्वरूप होकर भी कालकी कलाओंसे अतीत और सर्वज्ञ हैं, जो त्रिकाल गतिके कारण और कलियुगीय दोषोंको नष्ट करनेवाले हैं, उन परमानन्दस्वरूप गोविन्दको प्रणाम करो ॥ ७ ॥ जो बृन्दावनकी भूमिपर दैववृन्द तथा बृन्दा नामकी बनदेवताके आराध्यदेव हैं, जिनकी प्रत्येक लोला बन्दनीय है, जिनकी कुन्दके समान तिर्यक मन्द मुसकानमें सुधाका आनन्द भरा है, जो मित्रोंके आनन्ददात्री हैं, जिनका आमोदमय चरणयुगल समस्त बन्दनीय महामुनियोंके भी हृदयके द्वारा बन्दनीय है, उन अभिनन्दनीय अशोषगुणोंके सामग्र परमानन्दमय गोविन्दको नमस्कार करो ॥ ८ ॥ जो भगवान् गोविन्दमें अपना चित्त लगा, गोविन्द ! अन्युत ! माधव ! विष्णो ! गोकुलनाथक ! कृष्ण ! इत्यादि उत्तरारण-पूर्वक उनके चरणकमलोंके ध्यानरूपी सुधा-सुलिलसे अपना समस्त पाप छोकरं इस गोविन्दाष्टकका पाठ करता है, वह अपने अन्तःकरणमें विद्यमान परमानन्दामृतस्वरूप गोविन्दको प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥

( गोविन्दाष्टक सम्पूर्ण )

शरणगतिगच्छ

( यो जित्यसच्युतपदाम्बुजयुग्महक्षमव्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने ।

असहुरोभगवतेऽस्य द्वयैकसिन्धो रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥

( बन्दे वेदान्तकर्त्तामीकरणदक्षम् । रामाञ्जायसूर्यपां चूडामणिमहर्निशम् ॥ )

भगवन्नारायणमिसतानुरूपस्वरूपगुणगणविभवैश्वर्यशीलाद्यनवधिकातिशयासंख्येकल्पणगुण-  
जं पद्मवस्त्रालयं भगवतीं छियं देवीं नित्यानपायिनीं निरवद्यां देवदेवदिव्यमहिमाखिल-  
भन्मातरमसन्मातरमशरण्यशरण्यामनन्यशरणः शरणमहं प्रपद्ये । पारमार्थिकभगवद्बरपारविन्दशुगलै-  
नित्यकात्यन्तिकपरमात्मपरमभक्तिकृतपरिपूर्णत्ववरतनित्यविशदतमात्मन्यप्रयोजनात्मविधिकातिशयाति-  
यगवद्वृभवनितानविधिकातिशयग्रीष्मिकारिताशेषावश्चितादोषेषतैकशतिरूपनित्यकैकर्यप्राप्तवपेक्षया-  
रमार्थिकी भगववरणारविन्दशरणागतिर्थयावस्थिताविरतास्तु मे । अस्तु ते । तयैव सर्वं सम्पत्यते ।  
खिलदेवप्रत्यनीककल्पणैकतान स्वेतरसमस्तवस्तुचिलक्षणानन्तशानन्दैकख्यप्रस्वाभिमतानुरूपकल्पण-  
वेन्त्यदिव्याद्वृतनित्यनिरवद्यनिरतिशयौज्जवल्यसौन्दर्यसौकुमार्यलाघण्ययौचनाद्यनन्तगुणानिधिदिव्य-  
ग्रहप स्वाभाविकानविधिकातिशयशानवलैश्वर्यवीर्यशक्तितेजसौशील्यवात्सल्यमार्द्यार्जवसौहार्दसाम्यकास्य-  
प्राधुर्यगम्भीर्योदार्यचातुर्यस्थैर्यवीर्यशौर्यपराक्रमसत्यकासंसंकल्पकृतिवक्तुशताद्यसंख्येकल्पणगणगौध-  
हार्षप्रब स्वोचितविधिविधिविचित्रानन्ताश्वर्यनित्यनिरवद्यनिरतिशयसुगन्धनिरतिशयसुखस्पर्शनिरतिशयौज्जवल्य-  
केरीटमुकुटचूडावतंसमकरकुण्डलशैवेयकहरकेयूरकटकशीवस्त्रकौरतुमसुकादामोदरवन्धनपीताम्बरकाङ्गी-  
गुणनूपुरादपरिमितदिव्यभूषण स्वानुरूपाचिन्त्यशक्तिशङ्कचक्रगदाशार्हाद्यसंख्येनित्यनिरवद्यनिरतिशय-  
कल्पणादिव्यायुध स्वाभिमतवित्यनिरवद्यनुरूपस्वरूपलूपगुणविभवैश्वर्यशीलाद्यनवधिकातिशयासंख्ये-  
कल्पणगुणगणश्रीवल्लभ एवमभूतभूमिलीलानायक स्वच्छन्दाद्विनिस्तरूपस्थितिप्रवृत्तिभेवादेषप्रतैकरति-  
द्वृपनित्यनिरवद्यनिरतिशयशानक्तियैश्वर्यविनन्तकल्पणगुणगणेषेषोपाशतगरुडप्रभुवनानानविधानतपरि-  
वारकपरिच्छिरितचरणयुगल परमयोगिवाङ्मानसपरिच्छेदस्वरूपस्वभाव स्वाभिमतविधिविधिविचित्रानन्तभोग-  
भोगोपकरणयोगस्थानसमुद्धानन्ताश्वर्यालन्तमहाविभवानन्तपरिमाणनित्यनिरवद्यनिरतिशयवैकुण्ठनाथ, स-  
संकल्पानुविधायिस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिस्तरेषतैकस्यभाव प्रकृतिपुरुषवकालात्मकविधिविधिविचित्रानन्तभोगमोक्त-  
वर्गमोगोपकरणभोगस्थानस्तुपनिलिङ्गद्वयविभवलयलील सत्यकाम सत्यसंकल्प परव्रक्तभूत पुरुषोत्तम-  
महाविभूते श्रीमन्नारायण श्रीवैकुण्ठनाथ अपारकारुण्यसौशील्यवात्सल्यौदायश्वर्यसौन्दर्यमहोदये  
अनलोचितविशेषाशेषलोकशरण्य प्रणतार्तिहर आश्रितवात्सल्यकजलघे अनवरतविधितनिलिङ्गद्वयत-  
याथात्म्य अशेषवराचरभूतनिलियमनविरत अशेषविधिविद्वस्तुशीर्षभूत निलिङ्गद्वयार अविन-  
जगत्स्वामिन् असात्स्वामिन् सत्यकाम सत्यसंकल्प सकलेतरविलक्षण अर्थकरपक आपत्स्य श्री-  
मन्नारायण अद्वैतशरण्यप्रयोगशरण्य अनन्यशरणस्वत्पादारविन्दशुगलं शरणमहं प्रपद्ये ।

पितरं मातरं दारान्पुत्राव्यन्धस्तदीनगुरुन् । रत्नानि धनवान्यानि शेत्राणि च गृहणि च ॥

सर्वधर्माश्च संत्यज्य सर्वकामाश्च साक्षरात् । लोकविकान्तचरणा शूरण तडवज पिता ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव वसुश्च उपर्युक्तं ॥

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सद्गुरुं गुरुर्गीर्याद् ।

**पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥**

८ त्वत्समोऽस्यभ्याधिकः कुताऽन्पा

तस्मात् प्रणन्नं प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।  
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायाहर्सि देव सोहुम् ॥  
मनोवाक्यायैरनादिकालप्रवृत्तानन्ताकृत्यकरणकृत्याकरणभगवदपचारभानवतापचारासप्तापचाररूप-  
नाविधानन्तापचारानारव्यकार्यानन्तरव्यक्तिकार्यान् कृतास् क्रियमाणान् करिष्यमाणांश्च सर्वानशेषतः शमस्त-  
नादिकालप्रवृत्तविपरीतशानमात्मविषयं कृत्स्नजगद्विषयं च विपरीतवृत्तं चाशेषविषयमध्यापि वर्तमानं  
तिष्यमाणं च सर्वं शमस्त । मदीयानादिकर्मणवाहग्रवृत्तां भगवत्खलपतिरोधानकर्णे विपरीतशानजनन्तीं  
विषयायाश्च भोग्यवुद्देश्यनन्तीं देवेन्द्रियत्वेन भोग्यस्थेन सूक्ष्मस्थेण चावस्थितां दैर्वीं गुणमर्यां मायां दासभूतः  
रणागतोऽसि तवास्मि दास इति वक्तारं मां तारय ।

तेषां ज्ञानी निष्प्रयुक्त एकभक्तिविशिष्यते । प्रियो हि ब्राह्मिनोऽत्यथमहं स च मम प्रियः ॥

उदाराः सर्वं एवैते ज्ञानीत्वात्मैव मे भतम् । आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥

ब्रह्मानां जन्मनामन्त ज्ञानवान् मां प्रपथते । वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

इत्यादिश्लोकब्रयोदितशानिन् मा कुरुष्व ।

‘पुरुषः स परः पार्थं भवत्या लभ्यस्त्वनन्यया’ ‘भवत्या त्वनन्यया शक्यो’ ‘मद्भक्तिं लभते पराम्’

इति स्थानत्रयोदितपरमकियुक्तं मां कुरुष्व । परमकिपरज्ञानपरमभक्त्येकसावं मां कुरुष्व ।

परमकिपरज्ञानपरमभक्तिकृतपरिपूर्णनवरतनित्यविशद्वत्तमात्मन्यप्रयोजनानवधिकातिशयप्रियभगवद-  
तुभवजनितानवधिकातिशयप्रीतिकारिताशेषावस्थेचिताशेषावस्थेतैकरतिलपनित्यकिंकरो भवानि । एवम्भूत-  
पत्रकैव्यप्राप्त्युपायतयावकलत्तसमस्तवस्तुविहीनोऽप्यनन्तद्विषयप्रापाकान्तोऽप्यनन्तमदीयापचारयुक्तोऽ-  
प्यनन्तासहायत्वारयुक्तोऽप्येतत्कर्त्तव्यकारणभूतानादिविपरीताहंकारविशृद्धात्मस्थावाऽप्येतदुभयकार्यकारणभूता-  
नादिविपरीतवासनासन्दद्वोऽप्येतदनुगुणप्रकृतिविशेषसम्बद्धोऽप्येतन्नलाभ्यासिकाभौतिकाविदैविकसुस-  
दुःखतदेतुतदितरोपेक्षणीयविषयानुभवज्ञानसंकोचवलपमवरपारविन्दशुगलैकान्तिकात्यन्तिकपरमकिपरज्ञान-  
परमभक्तिविन्दप्रतिहतोऽपि येन केनापि प्रकारेण द्वयवक्तात्वं केवलं मदीयवैद्यवयात्यनिश्चेषविन्दप्रसेतुकमच्चरणा-  
रविन्दशुगलैकान्तिकात्यन्तिकपरमभक्तिपरज्ञानपरमभक्तिविद्वी मत्यसादलव्यमच्चरणारविन्दशुगलैकान्तिका-  
त्यन्तिकपरमभक्तिपरज्ञानपरमभक्तिर्मत्वसादावेव साक्षात्कात्यथावस्थितमत्त्वलपरुपशुणविभूतिलीलोपकरण-  
विस्तारोऽपरोऽप्यसिद्धमवियाप्त्यतामदलुभवो महास्थैरकरसात्मस्थावात्मस्थलपो मदेकानुभवो मदास्थैकप्रियः  
परिपूर्णनवरतनित्यविशद्वत्तमात्मन्यप्रयोजनानवधिकातिशयप्रीत्यमदनुभवस्त्वं तथाविषयमदनुभवजनितानवधि-  
कातिशयप्रीतिकारिताशेषावस्थेचिताशेषावस्थेतैकरतिलपनित्यकिंकरो भव । एवम्भूतोऽसि । आध्यात्मिकाधि-  
भौतिकाविदैविकदुःखविभगन्धरहितस्त्वं द्वयमर्थानुसंधानेन सह सदैवं वक्ता यावच्छीरपात्तमवैद्य श्रीरङ्गे  
सुखमास्त्व । शरीरपात्तसमये तु केवलं मदीयवैद्यवयात्यपिद्वद्वो मामेवावलोकयन्नप्रव्युतपूर्वसंस्कार-  
मनोरथः जीर्णमिव वद्यन् सुखेनेमां प्रकृतिं स्थूलसूक्ष्मलपां विसृज्य तदानीमेव मत्यसादलव्यमच्चरणारविन्द-  
शुगलैकान्तिकात्यन्तिकपरमभक्तिपरज्ञानपरमभक्तिकृतपरिपूर्णनवरतनित्यविशद्वत्तमात्मन्यप्रयोजनानवधिकाति-  
शयप्रीतिकारिताशेषावस्थेचिताशेषावस्थेतैकरतिलपनित्यकिंकरो भविष्यति । मा ते भूदत्र संशयः ।

‘अनुतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदानन्’ ‘रामो छिर्तमिमापते’ ।

‘सहृदेव प्रपञ्चात तवासीति च याचते । अमयं सर्वमूर्तभ्यो ददाम्येतद् वतं सम् ॥’

‘सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपैषभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥’

श्रुति मयैव तुकम् । अतस्त्वं तत्त्वतो मदवानदर्शनप्राप्तिपु निस्संशयः उत्तमस्त्व ।

अन्यकाले त्वनुतिर्या तु तव कैक्येयकरिता । तागेनां भगवत्प्रवैश्यमाणां कुरुष्व मे ॥

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतानुजार्चार्यविरचितं शारणगतिगद्यं सम्पूर्णम् ॥

( अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामानारायणदत्तजी शास्त्री )

( जिन्होंने नित्य-निरन्तर भगवान् नारायणके युगल चरणारविन्दरूपी सुवर्णके मोहसे उससे भिन्न सभी वस्तुओंको तिनकोे समान समझा था; तथा जो दयाके एकमात्र सारांशे, उन अपने गुरु भगवान् श्रीरामानुजाचार्यके चरणोंकी शरण लेता हूँ ॥ १ ॥ )

( जो वेदान्तरूपी कर्ष्णकी सुरक्षाके लिये सोनेकी बेटीके समान हैं, उन अचार्यरूपोंके चूदामणि श्रीरामानुजको मैं अहंकृति प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ )

जो भगवान् नारायणकी अभिरुचिके अनुरूप स्वरूप, रूप, गुणगण, वैभव, ऐश्वर्य और शील आदि असीम निरति-शय एवं असंख्य कल्याणमय गुणसमूदायसे सुचोभित हैं, जिनका कामलवनमें निवास है; जो भगवान् विष्णुसे कभी अलग नहीं होता—नित्य-निरन्तर उनके हृदयधाममें निवास करती है, जिनमें कोई भी दोष नहीं है, जो देवदेव श्रीहरिकी दिव्य पट्टरानी, सम्पूर्ण जगत्की माता, हमारी माता और अशरणोंको शरण देनेवाली है, उन भगवती श्रीदेवीकी मैं अनन्यशरण होकर शरण अहण करता हूँ। भगवान्के युगल चरणारविन्दोंके प्रति पारमार्थिक अनन्यभवापन, शाश्वत परामर्त्ति, परशान एवं परमभक्तिसे परिपूर्ण, निरन्तर उज्ज्वलतम, अन्य प्रयोजनसे रहित, असीम, निरति-शय, अत्यन्त प्रिय भगवद्वोधजनित अनन्त अतिशय प्रीतिये उत्पादित, सभी अवस्थाओंके अनुरूप, सम्पूर्ण दासभाव-विषयक एकमात्र अनुरागमय नित्य-कैर्कटीकी प्राप्तिकी अपेक्षाते पारमार्थिक भगवच्चरणारविन्दशरणाश्रिति मूँहे निरन्तर यथारूपसे प्राप्त होती है। तुम्हें भी प्राप्त हो । उसीसे सब कुछ समझ होगा। भगवन्! आप सम्पूर्ण हैं गुणगणोंके विरोधी सबके एकमात्र कल्याणमें ही दत्तचित्त हैं। अपने अतिरिक्त समर्थ वस्तुओंसे विलक्षण एकमात्र अनन्तशानानन्दस्वरूप है। आपका दिव्य विग्रह स्वेच्छानुरूप, एकरस, अचिन्त्य दिव्य, अद्भुत, नित्य-निर्मल, निरतिशय औज्ज्वल्य (प्रकाशरूपता), सौन्दर्य, सौभग्य, सौकुमार्य, छावण्य और यौवन आदि अनन्त गुणोंका भंडार है। आप स्वाभाविक असीम अतिशय ज्ञान, बड़, ऐश्वर्य, पराक्रम, शक्ति, तेज, सौश्रील्य, वास्तव्य, मदुता, सरलता, सौहार्द, समता, करुणा, मधुर, गम्भीर, उदारता, चतुरता, स्थिरता, धैर्य, शौर्य, परामर्प, सत्यकामता, सत्य-चतुरता, सत्यकर्म तथा कृतरता आदि असंख्य कल्याणमय संकल्पता, सत्यकर्म तथा कृतरता आदि असंख्य कल्याणमय

गुणसमूहरूप जलप्रवाहके महासागर हैं। आप अपने ही ये विविध विचित्र अनन्त आश्रयमय, नित्य-निर्मल, निरति-सुगन्ध, निरतिशय सुखस्पर्श, निरतिशय औज्ज्वल्यसे १ किरीट, मुकुट, चूदामणि, सकराकृत कुण्डल, कण्ठहारु वे (सुजनन्ध), कंगन, श्रीवत्स, कौस्तुभ, मुकुहारु जै बन्धन, पीताम्बर, काञ्चीसत्र तथा नूपुर आदि अपर्याप्त दिव्य आभूषणोंसे सूक्षित हैं। अपने ही अनुरूप अचि-शक्तिमप्न, शङ्ख, चक्र, शदा, शार्ङ्ग-धनुष आदि असं-नित्य-निर्मल, निरतिशय कल्याणमय दिव्य आनुषंसे सम हैं। अपने अनुरूप नित्य, निरवद्ध, इच्छानुरूप रुग्ण, वैभव, ऐश्वर्य, शील आदि सीमारहित अतिशय असं-कल्याणमय गुणसमूहसे शोभायमान श्रीलक्ष्मीजीके प्रियत हैं। इन्हीं विशेषणोंसे विमूषित भूदेवी और लीलदेवीके। अधिनायक हैं। आपकी इच्छाके अनुसार चलनेवाले ता आपके संकल्पके अनुसार स्वरूप, स्थिति और प्रवृत्ति भेदोंसे सम्पन्न, पूर्ण दासभावविषयक अवन्य अनुरूप मूर्तिमान् स्वरूप नित्य-निरवद्ध निरतिशय ज्ञान, किया। ऐश्वर्य आदि अनन्त कल्याणमय गुणसमूहोंसे युक्त शेषवनाग तथा शेष-भोजी गङ्गड आदि अनेक प्रकारके अनन्त पर्वद और परिचाल-गण आपके युगल चरणारविन्दोंकी परिचर्या करते हैं। आपके स्वरूप एवं समाव वडे-वडे योगियोंके भी मन और वाली अतीत है, आप अपने ही योग्य विविध विचित्र अनन्त भोग्य-भोगसाधन और भोगसाधनोंसे सम्पन्न, अनन्त आश्रयमय भगव-महावैभव और असीम विस्तारसे द्वुक्त नित्य-निर्मल, निरतिशय वैकुण्ठलोकके अधिष्ठित हैं। अपने संकल्पके अनुसरण करने-वाली स्वरूपस्थिति और प्रवृत्तियोंमें सम्पूर्णता ही एकमात्र आपका स्वरूप है। प्रकृति, पुरुष और कालसत्त्व, विधिय विचित्र अनन्त भोग्य, भोक्तुर्वर्ग, भोगोपकरण और भोगसाधनरूप निरिल जगत्का उद्भव, पालन और संहार आपकी दीर्घी है। आप सत्यकाम, सत्यसंकल्प, परद्याहासरूप, पुष्टोपत्तम, महावैभवसम्पन्न श्रीमन्नारायण और श्रीवैकुण्ठनाथ हैं। आप करुणा, दुर्शीलता, वत्सलता, उदारता, ऐश्वर्य और शीदंदंक महासागर हैं। व्यक्तिविदोषका विचार किये विना ही सम्पूर्ण जगत्को शरण देनेके लिये प्रस्तुत रहते हैं। शरणागत्यांती उपर्याप्तीहार्दीको दूर करनेवाले हैं। शरणागत्यलब्धताके पक्षमान समूद्र हैं। आपको सम्पूर्ण भूतोंके यथार्थ स्वरूपका विस्तार ज्ञान बना रहता है। आप ही समस्त जगत्के आधार हैं।

सम्पूर्ण विश्वके और मेरे भी स्वामी हैं। आपकी कामना और तंकल्प सत्य होते हैं। अपने अतिरिक्त समस्त वस्तुओंसे आप विलक्षण हैं, याचकोंकी मनोवाच्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पबुक्षके समान हैं। विपत्तिके समय सबके एकमात्र सखा—सहायक हैं। जिनके लिये कहीं भी शरण नहीं है, उन्हें भी शरण देनेवाले श्रीमन्नारायण ! मैं किसी दूसरेका आश्रय न लेकर केवल आपके युगल चरणारविन्दीकी शरणमें आया हूँ। ( यहाँ इस वाक्यको दो बार कहना चाहिये ) ।

प्रभो ! पिता, माता, स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र, गुरु, रत्न, धन, धान्य, क्षेत्र, गृह, सम्पूर्ण धर्म, समस्त कामनाओं और अक्षर-तत्त्वको भी छोड़कर मैं ( त्रिविक्रमलूपसे ) सम्पूर्ण जगत्‌को लौंघ जानेवाले आपके युगल चरणोंकी शरणमें आया हूँ। देवदेव ! आप ही माता हैं, आप ही पिता हैं, आप ही बन्धु हैं, आप ही गुरु हैं आप ही विद्या, आप ही धन और आप ही मेरे सर्वस्व हैं। अनुप्रम प्रभावशाली परमेश्वर ! आप इस चराचर जगत्-के पिता हैं, आप ही इसके अत्यन्त गौरवशाली पूजनीय गुरु हैं। तीनों लोकोंमें आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है; फिर आपसे बढ़कर तो हो ही कैसे सकता है। इसलिये मैं आपको प्रणाम करके अपने शरीरको आपके चरणोंमें डालकर स्तवन करनेयोग्य आप परमेश्वरको प्रसन्न करना चाहता हूँ। देव ! जैसे पिता पुत्रका, मित्र भित्रका और प्रियतम अपनी प्रेयसीका अपराध सह लेता है, उसी प्रकार आपके लिये भी मेरे अपराधोंको क्षमा करना ही उचित है।

प्रभो ! मन, वाणी और शरोदद्राग्रा अनादिकालसे मेरे किये हुए असंख्य बार न करनेयोग्य काम करने और करने योग्य कार्य न करनेके आपराधोंको, भगवद्पराध, भागवतपराध और असह्य अपराधरूप अनेक प्रकारके अगणित अपराधोंको, जिन्होंने अपना फलभोगदानरूप कार्य आपभ्व कर दिया है अथवा नहीं किया है, जो किये जा चुके हैं, किये जा रहे हैं अथवा किये जानेवाले हैं; उन सभी अपराधोंको निःशेषरूपसे क्षमा कर दीजिये। आत्मा और सम्पूर्ण जगत्‌के विषयमें अनादिकालसे जो विपरीत शानहमरे अंदर चल आ रहा है तथा सबके प्रति जो आज भी विपरीत वर्ताव चल रहा है और भविष्यमें भी चलनेयात्मा है, वह नव भी क्षमा कर दीजिये। मेरे अनादि कर्मोंके प्रवाहरूपमें जिनकी प्रत्युत्ति दिखायी देती है, जो भगवत्स्वरूप-को छिपा देनेवाली और विपरीत शान उत्तर करनेवाली है, जो अपने प्रति भोग्य-नुदि पैदा करती है, देह, इन्द्रिय और भोग्यरूपसे तथा अत्यन्त सूक्ष्मरूपसे जिसकी खिति है,

आपकी उस त्रिगुणमयी दैवी मायाका मैं दासभावसे आश्रय लेता हूँ। 'भगवन् ! मैं आपका दास हूँ।' यों कहनेवाले मुझ सेवकको आप इस संसारसागरसे उत्थापिये।

'उनमें नियुक्त और एकमात्र (मुक्षमें) भक्तिवाला ज्ञानी श्रेष्ठ है; क्योंकि मैं उसका अत्यन्त प्रिय हूँ और वह मेरा प्रिय है। ये सभी उदार हैं, परंतु मेरा मत है कि ज्ञानी तो मेरा आत्मा ही है; क्योंकि वह युक्तात्मा मुक्ष सर्वोत्तम प्राप्य वस्तुमें ही स्थित है। बहुत-से जन्मोंके अन्तमें ज्ञानवान् 'यह सब बासुदेव ही है' इस भावसे जो मेरी शरण ग्रहण करता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।'

इन तीन श्लोकोंमें जिसके स्वरूपका वर्णन किया गया है, वैसा ही ज्ञानी मुझे बनाइये।

'पृथुपुत्र अर्जुन ! वह परमपुरुष सचमुच अनन्य-भक्तिसे प्राप्त करने योग्य है। अनन्यभक्तिके द्वारा मैं तत्त्वसे जाना, देखा और प्रवेश किया जा सकता हूँ', ऐसी पराभक्तिको प्राप्त होता है।' मुझे इन तीनों स्थानोंपर वतायी गयी पराभक्तिसे सम्बन्ध बनाइये। पराभक्ति, परज्ञान और परमभक्ति ही जिसका एकमात्र स्वभाव हो, ऐसा भक्त मुझे बनाइये। मैं पराभक्ति, परज्ञान और परमभक्तिके फलस्वरूप प्ररिणाम, अनवरत, नित्य उज्ज्वलतम, अन्य प्रयोजनसे रहित, अनन्त एवं अतिशय प्रिय भगवद्वौधजनित, सीमारहित, निरतिशय प्रीतिसे उत्पादित समग्र अवस्थाओंके अनुरूप सम्पूर्ण दास्यभावमय अनन्य अनुराग-का मूर्तिमान् स्वरूप नित्य-किंकर होऊँ। प्रभो ! आप मुझे यह वर दीजिये कि 'व्यद्यपि तुम मेरे पूर्ववर्णित नित्य-कैर्कर्यकी प्राप्तिके उपायरूपसे जिनी बत्तुएँ सीकृत हुई हैं, उन सबसे रहित हो; उस नित्य-कैर्कर्यके विरोधी असंख्य पापोंसे दबे हुए हो। मेरे प्रति अनन्त अपराधोंसे भरे हो।' अनन्त असह्य अपराधोंसे युक्त हो। इस कार्यरूप जगत्‌के कारणभूत अनादि विपरीत अहंकारसे वद्यपि तुम्हारा अपना स्वभाव अत्यन्त मूढ़ हो गया है। इस कार्य-कारणमय अनादि विपरीतवासनासे वद्यपि तुम बैधे हुए हो। उस वासनाके अनुरूप विशेष स्वभावने वद्यपि तुम्हें बाँध रखा है। उक्त वासनामूलक आव्यासिक, आधिमौतिक और आधिदैविक सुख-दुःख, उनके कारण और उनसे भिन्न त्याज्य विषयोंके अनुभवरूप ज्ञानको संकुचित करनेवाली जो मेरे युगल चरणारविन्दीके प्रति अनन्य, शाश्वत पराभक्ति, परज्ञान एवं परम भक्तिकी प्राप्ति है, उसके मार्गमें तुम्हें वद्यपि अनेक प्रकारकी विश्व-

बाधाओंने आक्रान्त कर लिया है, तो भी जिस किसी प्रकार से भी दो यार अपनेको दास बतानेवाले तुम केवल मेरी ही हँदयसे मेरे भक्त हो जाओ। मेरे युगल चरणरविन्दोंके प्रति अनन्य प्रवं अन्तरहित पराभक्ति, परज्ञान एवं परमभक्तिकी आशिमें जितने भी चिन्ह हैं, वे सब तुम्हारे लिये अपने मूलकारणोंसे हित सर्वथा नष्ट हो जायें। मेरी कृपासे तुम्हें मेरे युगल चरणरविन्दोंके प्रति अनन्य एवं कभी न नष्ट होनेवाली पराभक्ति, परज्ञान प्रवं परमभक्ति प्राप्त हो जाय। मेरे कृपा-प्रसादसे ही तुम्हें मेरे यथार्थ स्वरूप, रूप, गुण, ऐक्षर्य और लीला-सामग्रीके विस्तार-का सक्षात्कार हो जाय। जीव सदा मेरा नियम्य (वशवर्ती) है, इस भावनाके साथ तुम्हें मेरे स्वरूपकी अनुभूति हो। तुम्हारी अन्तरात्मा एकमात्र मेरे दास्तरसमें भग्न रहनेके स्वभाववाली हो जाय। तुम्हें एकमात्र मेरे तत्त्वका व्यौद्ध हो। एकमात्र मेरी दास्तरति ही तुम्हें प्रिय लगे। परिणी, अनवरत, नित्य परमोल्लक्ष, अनन्य प्रयोजनसे रहित, निस्त्रीम और अतिशय प्रिय मेरे तत्त्वका व्यौद्ध तुम्हें प्राप्त हो। तुम मेरे स्वरूपके बैंसे अनुभवसे प्रकट हुई अनन्त, अतिशय प्रीतिसे उत्पादित अशेषावस्थाके योग्य सम्पूर्ण दास्तरभाव-चिकित्यक अनन्य अनुरागके मूर्तिगान् स्वरूप नित्यकिंकर हो जाओ। ऐसे नित्यकिंकर तुम हो ही। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुर्गत एवं विवरकी गन्धसे रहित हो। तुम अर्थानुरूपधानपूर्वक सदा पूर्वों के दो शरणागमित्यात्क वाक्यों-का पाठ करते हुए जबतक यह शरीर गिर न जाय, तबतक यहाँ श्रीरङ्गसेत्रमें सुखपूर्वक रहो (अथवा यहाँ श्रीलक्ष्मीजीके साथ कीड़ा करनेवाले भगवान् भारवणके विन्दनमें लगे रहो)।

देहपातके समय केवल मेरी ही दयासे अत्यन्त योश  
हो मेरा ही दर्शन करते हुए अपने पूर्वसंस्कार एवं मनो  
भ्रष्ट न होकर पुणे वस्त्रकी माँति इस रथल-मृशालयी  
प्रकृतिका सुखपूर्वक परित्याग करके तकाल ही गेरे ।  
प्रसादसे प्राप्त हुई मेरे युगल चरणामविन्दिविषयक अनल्य  
कभी न नष्ट होनेवाली पराभक्ति, परज्ञान और परमार्थज्ञाने  
परिपूर्ण, नित्य-निरन्तर परमोज्जवल, अन्य प्रयोजनरहित उ  
अतिशय ग्रीविद्वारा उत्तरादित अशोधावस्थाके अनुरूप स  
दास्यभावविषयक अनन्य अनुरागके भूतिसन् सरला फ  
किकर हो जाओगे । इस विषयमें तुम्हें तनिक भी संशय  
होना चाहिये ।

‘मैंने पहले कभी न तो असत्य कहा है और न कभी कहेंगा।’

‘राम दी प्रकारकी वातें नहीं कहता।’

“जो एक बार भी मेरी शरणमें आकर मैं आपका वों कहकर मुझसे रक्षा-श्रावना करता है। उसे मैं सम्पूर्ण भूमिक्य कर देता हूँ। यह मेरा व्रत है।”

सब धर्मोंको छोड़कर तुम एकमात्र मेरी शरणमें  
जाओ, मैं तभी सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा। शोक न क

ये सब बातें मैंने ही कही हैं। अतः तुम यथार्थस्ते ज्ञान, दर्शन और प्राप्तिके विषयमें संज्ञारहित हो सुखसे ग

भगवन् ! अन्तकालमें जो आपके दास्यमामें उद्धा  
आपकी स्मृति होती है, उसकी सावना करनेवाले  
सेवकके लिये आज उसे मुल्लम कर दीजिये ।

( अरण्यगतिरथ सम्पूर्ण )

श्रीरङ्गाद्यम्

स्वाधीनत्रिविधेतत्त्वाद्वेतनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिभेदं कलेशकर्माद्यशोपदोग्यासंस्पृष्टं स्वामीविकासर्थिकातिशयज्ञानवैश्वर्यवीर्यशक्तितेजस्सौशील्यवात्सल्यमाद्वार्जवसौहार्दसाम्यकारुपद्यमाघुर्यगम्भीर्यदिव्यचातुर्यस्त्रैश्वर्यधैर्यद्वार्यपराक्रमसत्यसंकल्पकुलित्वद्वात्क्षताथपंच्यकल्पणागुणार्णीवर्महर्जवं प्रद्वाहभूतं पुरुषोत्तमं श्रीरङ्गशास्त्रिनमसत्त्वामिनं प्रबुद्धनित्यनियमनित्यदास्यैकरसात्मस्वभावेऽहं तदेक तुम्बवस्त्रदेवकप्रियः परिपूर्णं भगवन्तं विशद्वत्समानुभवेन निरन्तरमनुभूय तदुभवजनितानविविकातिशयप्रीतिकारिताद्योग्यावस्थेचितादेष्वशेषतैकरतिश्वस्पनित्यर्थिकरो भवानि। स्वात्मनित्यनियमनित्यदास्यैकरसात्मस्वभावात्मानसंधानपूर्वकभगवदनवधिकातिशयस्वाम्याद्यखिलगुणात्मवजनितानवधिकातिश्यवीर्यातिकारितादेग्यावस्थेचितादेष्वशेषतैकवित्यकैर्यभाप्त्युपायमक्तिदुपायसम्बन्धानातदुपायसमीचीनिक्यातदगुणसारिक-

तास्तिक्यादिसमस्तात्मगुणविहीनः, दुरुत्तरानन्ततद्विपर्ययज्ञानक्रियानुगुणानादिपापवासनामहार्णवा-  
न्तर्निमग्रः, तिलतैलवद्वारुवहिवदुविवेचत्रिगुणक्षणक्षरणस्वभावाचेतनप्रकृतिव्याप्तिरुपुरत्ययभगवन्मायातिरो-  
हितस्वप्रकाशः, अनाद्यविद्यासंचितानन्ताशक्यविस्तृंसनकर्मपाशप्रथितः, अनागतानन्तकालसमीक्षयाप्य-  
दृष्टसंतारोपायः, निखिलजन्मुजातशरण्य श्रीमन्नारायणं तव चरणारविन्दयुगलं शरणमहं प्रपद्ये ।  
एवमवस्थितस्याप्यर्थित्वमन्नेण परमकाशणिको भगवान्, स्वानुभवप्रीत्योपनीतैकान्तिकात्यन्तिकनित्यकैकर्यैक-  
रतिरुपनित्यदास्यं दास्यतीति विश्वासपूर्वकं भगवन्तं नित्यकिंकरतां प्रार्थये ।

तत्रानुभूतिसम्भूतप्रीतिकरितदासताम्

सर्वावस्थाचिताशेषशेषतैकरतिस्तव

। देहि मे कृपया नाथ न जाने गतिमन्यथा ॥

। भवेयं पुण्डरीकाक्षं त्वमेवैवं कुरुत्वं माम् ॥

एवमभूतस्त्वयाथात्म्यावबोधितदिच्छाराहितस्याप्येतदुच्चारणमात्रावलम्बनेनोच्यमानार्थपरमार्थनिष्ठं मे  
मनस्त्वमेवाद्यैव कारय । अपारकरुणास्त्वये अनालोचितविशेषशेषलोकशरण्यं प्रणतार्तिहर आश्रितयात्सल्लै-  
कभद्रोदधे अनवरतविदितनिखिलभूतजातयाथात्म्य अशेषचराचरभूत निखिलनियमनिरत अशेष-  
चिदचिद्वस्तुशेषपीभूत निखिलजगदाधार अखिलजगत्स्वामिन् अस्मत्स्वामिन् सत्यकाम सत्यसंकल्प-  
सकलेतरचिलक्षणं अर्थिकल्पकं आपत्सत्यं काकुत्स्थं श्रीमन्नारायणं पुरुषोत्तमं श्रीरङ्गनाथं मम  
नाथ नमोऽस्तु ते ।

॥ इति श्रीमद्भगवद्रामानुजाचार्यविरचितं श्रीरङ्गमध्यं सम्पूर्णम् ॥

( अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री )

जो चिविधं चेतनाचेतनं जगत्के स्वरूप, स्थिति और प्रवृत्तिके भेदोंको अपने अधीन रखते हैं, क्लेश, कर्म और आश्रय आदि समूर्ण दोष जिनका स्वर्ण नहीं कर सकते, जो स्वाभाविक, असीम, अतिशय, ज्ञान, ब्रह्म, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज, सुशीलता, बत्सलता, मृदुता, सरलता, सौदार्द, ममता, करुणा, माधुर्य, गाम्भीर्य, उदारता, चतुरता, शिरता, धीरता, शौर्य, प्राक्रम, सत्यकामता, सत्यसंकल्पता, सत्यकर्म और कृतज्ञता आदि असंख्य कल्याणमय गुणसमुदाय-स्थीरी जलप्रवाहके परम आश्रयभूत महात्मागर हैं, परब्रह्म-स्वरूप और पुरुषोत्तम हैं, श्रीदेवीकी रङ्गस्तलीमें शयन करनेवाले मेरे स्वामी हैं, उन परिष्ठूर्ण भगवान्के तत्त्वका अत्यन्त निर्मल अनुभव-शक्तिके द्वारा निरन्तर अनुभव करके जीव भगवान्का नित्यव्याप्तिं सेवक हैं। इस भावनाको उद्द्युद करके निय दास्तरतमें ही अपने अन्तरात्माको निमग्न रखनेके स्वभाववाला होकर एकमात्र उन्हींका अनुभव करता हुआ केवल उन्हींको अपना प्रियतम भानकर उनके अनुभवनित अनन्त अतिशय प्रीतिदारा उत्पादित अशोभावस्याके अनुरूप समूर्ण दास्य-भावविपरयक अनन्य अनुरागका मृत्तिमान् स्वरूप होकर भगवान्का मैं नित्य किंकर बैँगू ।

प्रभो ! जीव भगवान्का नित्यव्याप्तिं सेवक है, नित्य

भगवद्दास्य-रसके एकमात्र सिन्धुमें अवगाहन करना उसका निज स्वभाव है । उसे अपने इस स्वभावका निरन्तर अनुसंधान ( विचार ) करते रहना चाहिये । भगवान्में स्वामी होने आदिके समस्त सद्गुण असीम और अतिशय मात्रामें विद्यमान हैं । अपने पूर्वोक्त स्वभावके अनुसंधान-पूर्वक भगवत्प्रभुन्धी समस्त सद्गुणोंके अनुभवसे जो असीम अतिशय प्रीति उत्पन्न होती है, उसके द्वारा सर्वावस्थोच्चित समूर्ण दास्यभावकी उद्घावना होती है । वही नित्य कैकर्य है । उसकी प्रातिका उपाय है—भक्ति और उसका उपाय है—सम्यक् ज्ञान; उस ज्ञानकी प्राप्तिका उपाय है शास्त्रीय कर्मोंका सम्यक् अनुष्ठान । तदनुरूप जो अपनेमें सात्त्विकता, आस्तिकता आदि सद्गुण उद्दित होते हैं, उनसे मैं सर्वथा वशित हूँ ।

इसके सिवा विपरीत ज्ञान और विपरीत कर्मके अनुरूप अनादि पापवासनाके दुष्पार एवं अनन्त महात्मागरमें मैं द्वृढ़ा हुआ हूँ । तिलसे तेल और ईधनसे अधिके प्राकञ्च्यकी भाँति परस्पर मिले हुए तीनों गुणोंका प्रतिक्षण क्षण करनेवाली अनेतन प्रकृतिकी व्याप्तिरूप दुर्लभ्य भगवन्मायाने मेरे प्रकाश ( वोध ) को ढूँक दिया है । मैं अनादि अविद्याद्वारा संचित अनन्त एवं अदृष्ट कर्मपाशसे जकड़ा हुआ हूँ । भावी अनन्तकालकी प्रतीक्षा करनेसे मीं मुझे अपने उद्धारका कोई

उपाय नहीं दिखायी दिया है। अतः सम्पूर्ण जीवोंको शरण देनेवाले श्रीमन्नारायण ! मैं आपके युगल चरणारबिन्दोंकी शरण लेता हूँ। ऐसी दशामें खित होनेपर भी प्राणियोंके याचना करनेमात्रसे परमदयात् भगवान् अपने अनुभवसे प्रकट हुई प्रीतिहारा उत्पादित अनन्य, आत्मनितक नित्यकैर्यविधयक एकमात्र अनुरागरसस्वरूप नित्य दास्यभाव प्रदान करेंगे ही, इस विश्वासके साथ मैं भगवान्‌से नित्य किंकरताकी याचना करता हूँ।

नाथ ! आपके स्वरूपके अनुभवसे प्रकट हुई प्रीतिहारा उत्पादित दास्यभाव मुझे कृपापूर्वक प्रदान करें। इसके लिए दूसरी कोई गति मैं नहीं जानता।

कमलनयन ! मैं सभी अवस्थाओंमें उचित आपके प्रति सम्पूर्ण दास्यभावविधयक अनन्य अनुरागसे युक्त होऊँ; आप मुझे ऐसा ही दास बना दीजिये।

इस प्रकारके तत्त्वका यथावत् बोध करनेवाली जिज्ञासासे हित होनेपर भी इस गद्यके पाठमात्रका अवलम्बन लेनेके

( श्रीरङ्गगदा सम्पूर्ण )

~~~~~

श्रीवैकुण्ठगद्यम्

यामुनार्यसुधाम्भोधिमवगाद्य

यथामति । आदाय भक्तियोगाख्यं रत्नं संदर्शयम्यहम् ॥

स्वाधीनविविधचेतनाचेतनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिभेदं क्लेशकर्माद्यशेषदोषासंस्पृष्टं खामाविकानविधिकाति
हृष्यकानवलैश्वर्यवीर्यशक्तितेजःप्रसूत्यसंख्येयकल्याणगुणगणौघमद्वार्णवं परमपुरुषं भगवन्तं नारायणं
आमित्वेन सुहृत्वेन गुरुत्वेन च परिगृह्णा एकान्तिकात्यन्तिकतत्पादाम्बुजद्वयपरिचर्यैकमनोरथः, तत्पादे
व तत्पादाम्बुजद्वयप्रपत्तेरन्यन्त्र मे कल्पकोटिसहस्रेणापि साधनमस्तीति मन्वानः, तस्यैव भगवतो नारायणसा
खेलसत्वद्यैकसागरस्यानालोचितगुणगुणाखण्डजनानुकूलमर्यादाशीठवतः खामाविकानविधिकातिशय
गुणवत्तया देवतिर्यग्नुभ्याद्यविलजनहृदयानन्दनस्य आथितवात्सत्यैकजलधेर्भक्तजनसंश्लेषैकमोगस
नेत्यशानकियैश्वर्यभोगसाम श्रीसमृद्धस्य महाविभूतेः श्रीमध्बरणारबिन्द्ययुगलमनन्यात्मसंजीवनेन तद्वत्सर्व
भावेन शरणमनुवज्जेत् ।

ततश्च प्रत्यहमात्मोजीवनायैवमनुसरेत् । चतुर्दशभुवनात्मकमण्डं दशगुणितोत्तरं नावरणसप्तकं
समस्तं कार्यकारणजातमतीत्य परमव्योमशब्दाभिधेये ब्रह्मादीनां वाङ्मनसागोचरे श्रीमति वैकुण्ठे दिव्यत्वेन
सत्त्वविधिशिवादिभिरप्यचिन्त्यत्वभावैश्वर्यैर्नित्यसिद्धैरनन्तैर्मगवदानुकूलयैकभोगैर्दिव्यपुरुषैर्महात्मभिग-
पूरिते, तेषामपीयत् परिमाणमियदैश्वर्यमीद्वास्वभावमिति परिच्छेत्तुमयोग्ये दिव्याधरणशतसहस्रावृत्ते दिव्य-
पूरिते, तेषामपीयत् परिमाणमियदैश्वर्यमीद्वास्वभावमिति दिव्योद्यानशतसहस्रकोटिभिरुपशोभिते दिव्यनानारत्नहृतस्थलविनिधित्वेन दिव्या-
दिव्यास्यानमण्डपे दिव्यरत्नस्तम्भशतसहस्रकोटिभिरुपशोभिते दिव्यनानारत्नहृतस्थलविनिधित्वेन दिव्या-
लंकारालंकृते परितः पतितैः पतमानैः पादपस्थैर्थ नानागन्धवर्णैर्दिव्यपुण्यैः शोभमानैर्दिव्यपुण्यमन्मण्ड-
शोभिते, संकीर्णपारिजातादिकल्पदुमोपशोभितैरसंकीर्णश्च कैथिदन्तस्थपुण्यपरलादिनमितिदिव्यरत्नमण्डप-

कारण मेरे मनको आप स्वयं ही अभी इस गद्याल प्रतिपादित तत्त्वमें यथार्थ निष्ठा रखनेवाला बना दीजिये। अगरकरुणावश्यकात् विचार किये तिनि सम्पूर्ण जगत्को शरण देनेवाले परमेश्वर ! प्रणतजनोंकी पीड़ी दूर करनेवाले प्रभो ! शरणागतवत्सलताके एकमात्र महासमुद्र सम्पूर्ण भूतोंके यथार्थ स्वरूपका निरन्तर ज्ञान रखनेवाले विमो समस्त चराचरस्वरूप परमात्मन् ! अग्रिल जगत्रिपति परमेश्वर ! सभसा जडनेतन पदार्थ आपके द्वेष (सेवक अवयव या अंश) हैं और आप सबके शेषी (सामी अवयवी या अंशी) हैं। आप सम्पूर्ण जगत्के आधार, अग्रिल विश्वके स्वामी और मेरे नाथ हैं। आपके काम और संकल सत्य हैं। आप अपनेसे भिन्न सभी वस्तुओंसे विलग्न हैं याचकोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये करुणवृक्ष है। विपत्ति एकमात्र सखा है। आपने श्रीरामरूपसे अवतार लेकर कुत्सन्तुलको गौरव प्रदान किया है। श्रीमन्नारायण पुरुषोत्तम ! श्रीरङ्गनाथ ! मेरे स्वामी ! आपको नमस्कार है

शतसहस्रोपशोभितैस्सर्वदानुभूयमानैरप्यपूर्ववदाश्र्यमावहङ्गिः क्रीडाशौलशतसहस्रैरलंकृतैः, कैश्चिद्वारायण-
दिव्यलीलासाधारणैः कैश्चित् पञ्चवनालयादिव्यलीलासाधारणैः कैश्चिच्छुकशारिकामयूरकोकिलादिभिः
कोमलकूजितैराकुलैर्दिव्योद्यानशतसहस्रकोटिभिराकृते, मणिमुक्ताप्रवालकृतसोपानैर्दिव्यामलामृतरसोदकै-
दिव्याप्णडजवरैरतिरमणीयदर्शनैरतिमनोहरमधुरस्वरैराकुलैरन्तस्थमुक्तामयदिव्यक्रीडास्थानोपशोभितैर्दिव्य-
सौंगन्धिकवापीशतसहस्रैर्दिव्यराजहंसावलीविराजितैराकृते, निरस्तातिशयानन्दैकरसतया चानन्त्याच्च प्रविष्ट-
नुन्मादयङ्गिः क्रीडोदेशैर्विराजिते, तत्र तत्र कृतदिव्यपुष्पपर्यङ्कोपशोभिते, नानापुष्पासवास्वादमत्त्वाभृङ्गावली-
भिरुद्धीयमानदिव्यगान्ध्यर्वेणापूरिते चन्दनागुरुकर्पूरदिव्यपुष्पावगाहिमन्दनिलासेव्यमाने, मध्ये पुष्पसंचय-
विचित्रिते, महति दिव्ययोगपर्यङ्के अनन्तमोगिनि श्रीमद्वैकुण्ठैश्वर्यादिव्यलोकमात्मकान्त्या विश्वमा-
प्याययन्त्या शेषपशेषाशनादिसर्वे परिजनं भगवतस्तत्तदवस्थोचितपरिचर्चायामावापयन्त्या, शीलस्तपुण-
विलासादिभिरात्मानुरूपया श्रिया सहासीनं प्रत्यग्रोत्मीलितसरसिजसदृशनथनयुगलं सच्छन्नीलजीमूत-
संकाशम् अत्युज्ज्वलपीतवाससं स्वया प्रभयातिनिर्मलयातिशीतलयातिकोमलया सच्छुभाणिक्याभया कृत्स्नं
जगद्वावयन्तम् अचिन्त्यदिव्याद्गुतनित्ययौवनस्वभावलावण्यमयामृतसागरम् अतिसौकुमार्यादीपत्रस्वन्नवद्वा-
लक्ष्यमाणललाटफलकदिव्यालकावलीविराजितं प्रबुद्धमुख्यम्बुजवारुलोचनं सविभ्रमधूलतमुज्ज्वलाधरं
शुचिस्तिं कोमलगण्डमुख्यसम् उदग्रपीनांसविलम्बिकुण्डलालकावलीवन्धुरकम्बुकन्धरं षियावतंसोत्पलकर्ण-
भूषणश्लथालकावन्धविमर्दशंसिभिश्चतुर्भिराजानुविलम्बिभुजैर्विराजितम् अतिकोमलदिव्यरेखालंकृताताम्र-
करतलम्, दिव्याङ्गुलीयकविराजितमतिकोमलदिव्यनखावलीविराजितातिरक्ताङ्गुलीमिरलंकृतं तत्क्षणो-
न्मीलितपुण्डरीकसदृशचरणयुगलम् अतिमनोहरकिरीटमुकुटचूडावतंसमकरकुण्डलग्रैवेयकहारकेघूरकटक-
श्रीवत्सकौस्तुभमुक्तादामोद्रवन्धनपीतम्बरकाञ्चीगुणनूपुरादिभिरत्यन्तसुखस्पैदिव्यगन्धैर्भूषणैर्भूषितं श्री-
मया वैजयन्त्या वसमालया विराजितं राङ्गुचक्रगदासिशार्ङ्गदिव्यायुधैस्तेव्यमानं स्वसंकल्पमावावकलृस-
जगज्जन्मस्थितिव्यवसादिके श्रीमति विष्वक्सने व्यस्तसमस्तात्मैश्वर्यं वैनतेयादिभिस्वभावतो निरस्तसमस्त-
सांसारिकस्वभावैर्भगवत्परिचर्चायकरणयोग्यैर्भगवत्परिचर्चायैकमोगैर्नित्यस्त्रैरनन्तैर्थायोग्यं सेव्यमानम् आत्म-
भोगेनानुसंहितपरादिकालं दिव्यामलकोमलावलोकनेन विश्वमाहादयन्तम् ईषदुन्मीलितमुखाम्बुजेदर-
विनिर्गतेन दिव्याननारविन्दशोभाजनेन दिव्यगाभीयैदार्यसौन्दर्यमाधुर्याद्यनवधिकगुणविभूषितेन
अतिमनोहरदिव्यभावगमेण दिव्यलीलालापामृतेन अखिलजनहृदयान्तराण्यपूरयन्तं भगवन्तं नारायणं
ध्यानयोगेन हृषा ततो भगवतो नित्यस्वाम्यमात्मनो नित्यदास्यं च यथावस्थितमनुसंधाय कदाहं भगवन्तं
नारायणं मम कुलनाथं मम कुलदेवतं मम कुलधनं मम भोग्यं मम मातरं मम पितरं मम सर्वं साक्षात्कर-
वाणि चक्षुपा ? कदाहं भगवत्पादाम्बुजद्वयं शिरसा संग्रहीयामि ? कदाहं भगवत्पादाम्बुजद्वयपरिचर्चायाशया
निरस्तसमस्तेतरभोगशोऽपगतसमस्तसांसारिकस्वभावस्तपादाम्बुजद्वयं प्रवेक्ष्यामि ? कदाहं भगवत्-
पादाम्बुजद्वयपरिचर्चायकरणयोग्यस्तपादौ परिचरिष्यामि ? कदा मां भगवान् स्वकीययातिशीतलया द्वशाव-
लोक्य स्तिग्धगम्भीरमधुरया गिरा परिचर्चायामाज्ञापयिष्यतीति भगवत्परिचर्चायामाशां वर्धयित्वा तथैवा-
शया तत्प्रसादोपवृहितया भगवन्तपुषेत्य दूरादेव भगवन्तं शेषभोगे षिया सहासीनं वैनतेयादिभिस्वेव्यमान-
‘समस्तपरिवाराय श्रीमते नारायणाय नमः’ इति प्रणम्योत्थायोत्थाय पुनः पुनः प्रणम्यात्यन्तसाध्वसविनया-
वनतो भूत्वा भगवत्पारिषदगणनायकैद्वारपालैः कृपया स्नेहगर्भया द्वशावलोकितस्सम्यग्मिवन्दितैस्तैस्तै-
रेवानुमतो भगवन्तपुषेत्य श्रीमता मूलमन्त्रेण मामैकान्तिकात्यन्तिकपरिचर्चायकरणाय परिगृहीयेति याचमानः
प्रणम्यात्मानं भगवते निवेदयेत् ।

ततो भगवता स्वयमेवात्मसंजीवनेन मर्यादाशीलवतातिग्रेमान्वितेनावलोकनेनावलोक्य सर्वदेशसर्वे
कालसर्वावस्थोचितात्यन्तशेषभावाय स्वीकृतोऽनुज्ञातश्चात्यन्तसाध्वसविनयावनतः किंकुर्वाणः कृताक्षरिः
पुटो भगवन्तमुपासीत ।

ततश्चानुभूयमानभावविशेषो निरतिशयप्रीत्यान्यत्किञ्चित्कर्तुं द्रष्टुं स्मर्तुमशक्तः पुत्ररपि शेषभावमेव
याचमाने भगवन्तमेवाविच्छिन्नस्तोतोरुपेणावलोकयन्नासीत ।

ततो भगवता स्वयमेवात्मसंजीवनेनावलोकनेनावलोक्य सस्तिमाहृय समस्तक्षेशापहं निरतिशय-
सुखावहमात्मीयं श्रीमत्पादारविन्द्युगलं शिरसि कृतं ध्यात्वामृतसागरान्तर्निमग्नसर्ववयवः सुखमासीत ।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतानुज्ञार्थविरचितं वैकुण्ठघासं सम्पूर्णम् ॥

(अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

मैं परम गुरु श्रीयामुनाचार्यरूपी सुधासागरमें अवगाहन
करके अपनी बुद्धिके अनुसार भक्तियोग नामक रत्न लाकर
सबको दिखा रहा हूँ ।

जो तीनों गुणोंके भेदसे त्रिविध जड-चेतनात्मक जगत्के
त्रूप, स्थिति और प्रवृत्तिके भेदको अपने अधीन रखते हैं,
ज्ञान, कर्म और आशय आदि सम्पूर्ण दोष जिन्हें कभी छू भी न
के हैं, जो स्वाभाविक, असीम और अतिशय ज्ञान, बल,
श्रव्य, वीर्य, शक्ति एवं तेज आदि असंख्य कल्याणमय गुण-
सुदायरूपी जलप्रवाहके महासागर हैं, उन परम पुरुष भगवान्-
रायणको स्वामी, सुहृद और गुरुरूपमें स्वीकारकर साधक
नित्य और कभी न समाप्त होनेवाले भक्तिभावसे उनके युगल
रणारविन्दोंकी परिचर्या (सेवा) की ही अभिलाषा करे । तथा उन
गवच्चरणारविन्दोंकी सेवा प्राप्त करनेके लिये उन्हीं भगवान्के
नें चरणकमलोंकी शरणमें जानेके सिवा मेरे लिये सहस्र
त्रिं क्लवोंतक भी दूसरा कोई साधन नहीं है—ऐसा विश्वास
है । जो सम्पूर्ण जीवोंके प्रति उमड़नेवाली दयाके एकमात्र
पागर है, जो गुण-अवगुणका विचार किये बिना ही सब
प्रेगोंके अनुकूल मर्यादा और शील धारण करते हैं, स्वाभाविक,
असीम और अतिशय गुणोंसे युक्त होनेके कारण जो देवता,
शृणक्षी और मनुष्य आदि सभी जीवोंके हृदयको आनन्द-
दान करनेवाले हैं, शरणागतवत्सलताके एकमात्र सागर हैं,
स्तक्षजनोंको अपने हृदयसे लगा लेना ही जिनका एकमात्र
प्रोग है, जो नित्य ज्ञान, नित्य किया, नित्य ऐश्वर्य
तथा नित्य भोग-सामग्रीसे सम्पन्न है; उन्हीं महावैभव-
शाली भगवान् नारायणके शोभायमान युगल चरणारविन्दों-
की अनन्यभावसे अपना जीवनाधार मानकर अपने मन-
प्राणोंकी सम्पूर्ण भावनाको उन्हींमें समर्पित करके पूर्वोक्त
विश्वासके साथ उन भगवदीय चरणोंकी शरण ग्रहण करे ।

तदनन्तर प्रतिदिन अपने आत्माके उत्थानके लिये थार-
वार इस प्रकार चिन्तन करे—यह जो चौदह भुवनोंमें
विभाजित ब्रह्माण्ड है, उसके जो उत्तरोत्तर दसगुने सत
आवरण हैं तथा जो समस्त कार्य-कारण-समुदाय है, उन
सबसे परे दिव्य शोभासे सम्पन्न अलौकिक वैकुण्ठधाम
विराजमान है । उसका दूसरा नाम है—प्रमव्योम । व्रह्मा
आदि देवताओंके मन-वाणी भी वहाँतक नहीं पहुँच सकते । वह
नित्यधाम वैकुण्ठ असंख्य दिव्य महात्मा पुरुषोंसे भरा हुआ है ।
वे महात्मा नित्यलिङ्ग हैं । भगवान्की अनुकूलता ही उनका एक-
मात्र भोग (सुख-साधन) है । उनका स्वभाव और ऐश्वर्य
कैसा है, इसका वर्णन करना तो दूर रहा, सनकादि महात्मा,
ब्रह्मा और शिव आदि भी इसको मनसे सोचतक नहीं सकते ।
उन महात्माओंका ऐश्वर्य इतना ही है, उसकी इतनी ही मात्रा
है अथवा उसका ऐसा ही स्वभाव है—इत्यादि वर्तोंका
परिच्छेद (निर्धारण या निश्चय) करना भी वहाँके लिये नितान्त
अनुचित है । वह दिव्य धाम एक लाय दिव्य आवरणसे
आवृत है, दिव्य कल्पवृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं, परं
वैकुण्ठलोक शतसहस्र कोटि दिव्य उच्चानोंसे धिर हुआ है ।
उसका दीर्घ विस्तार नापा नहीं जा सकता, वहाँके निवासस्थान
भी अलौकिक हैं । वहाँ एक दिव्य सभाभवन है, जो विषय
एवं दिव्यरत्नोंसे निर्मित है । उसमें शतसहस्रकोटि दिव्य
रत्नमय खंभे लगे हैं, जो उस भवनकी शोभा बढ़ाते रहते हैं ।
उसका कर्ता नाना प्रकारके दिव्य रत्नोंसे निर्मित होते हैं ।
करण अपनी विचित्र छटा दिखाता है । वह गम्भीर
दिव्य अलंकारोंसे सजा हुआ है । कितने ही दिव्य उपम
सब ओरसे उस सभा-भवनकी श्रीवृद्धि करते हैं । उनमें पांग-
भाँतिकी सुगन्धसे भरे हुए रंग-विरंगे दिव्य मुण्ड सुशोभित हैं,
जिनमेंसे कुछ नीचे गिरे रहते हैं, कुछ वृक्षोंसे झाड़ते रहते हैं
और कुछ उन वृक्षोंकी ढाल्यांपर ही लिले रहते हैं ।

वनी श्रेणियोंमें लगे हुए पारिजात आदि कस्यवृक्षोंसे शोभायमान लक्षकोटि दिव्योद्यान भी उक्त समाभवनको पृथक्-पृथक् धेरे हुए हैं। उन उद्यानोंके भीतर पुष्पों तथा रक्त आदिसे निर्मित लाखों दिव्य लीलामण्डप उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे सर्वदा उपभोगमें आते रहनेपर भी अपूर्वकी भाँति वैकुण्ठवासियोंके लिये अत्यन्त आश्र्वयजनक जान पड़ते हैं। लाखों कीडापर्वत भी उक्त उद्यानोंको अलंकृत कर रहे हैं। उनमेंसे कुछ उद्यान तो केवल भगवान् नारायणकी दिव्यलीलाओंके असाधारण स्थल हैं और कुछ पद्मवनमें निवास करनेवाली भगवती लक्ष्मीकी दिव्यलीलाओंके विशेष रङ्गस्थल हैं। कुछ उद्यान शुक, सारिका, मयूर और कोकिल आदि दिव्य विहंगमोंके कोमल कलरखसे व्यास रहते हैं। उक्त समाभवनको सब ओरसे धेरकर दिव्य सौगन्धिक कमल-पुष्पोंसे भरी लाखों वावलियाँ शोभा पा रही हैं। दिव्य राजहंसोंकी श्रेणियाँ उन वावलियोंकी श्रीघृद्धि करती हैं। उनमें उत्तरनेके लिये मणि, मुक्ता और मूँगोंकी सीदियाँ बनी हैं। दिव्य निर्मल अमृतसर ही उनका जल है। अत्यन्त रमणीय दिव्य विहंग-प्रवर, जिनके मधुर कलरव बड़े ही मनोहर हैं, उन वावलियोंमें भरे रहते हैं। उनके भीतर बने हुए मोतियोंके दिव्य कीडास्थान शोभा देते हैं। समाभवनके भीतर भी कितने ही कीडाप्रदेश उसकी शोभा बढ़ाते हैं, जो सर्वाधिक आनन्दकरसस्वभाव एवं अनन्त होनेके कारण अपने भीतर प्रवेश करनेवाले वैकुण्ठवासियोंको आनन्दोन्मादसे उन्मत्त किये देते हैं। उस भवनके विभिन्न भागोंमें दिव्य पुष्पशायाएँ विछी रहती हैं। नाना प्रकारके पुष्पोंका मधु पीकर उन्मत्त हुई भ्रमरावलियाँ अपने गाये हुए दिव्य संगीतकी मधुर ध्वनिसे उक्त समामण्डपको मुखरित किये रहती हैं। नम्बदन, अगुरु, कार्पूर और दिव्य पुष्पोंकी सुगन्धमें ढूँढ़ी हुई मन्द मन्द वायु प्रवाहित होकर उक्त समाके सदस्योंकी सेवा करती रहती है। उस समामण्डपके मध्यभागमें महान् दिव्य योग-शस्य उत्तोभित है, जो दिव्य पुष्पराशिके संचयसे पिन्नित सुप्रसा धारण किये हुए हैं। उसपर भगवान् अनन्त (रामनाम) का दिव्य शरीर शोभा पाता है। उसपर भगवान् अनुन्पशील, रूप और गुण-विलास आदिसे सुशोभित भगवती श्रीदेवीके साथ भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं। वे श्रीदेवी अनुगम शोभाशाली वैकुण्ठके

ऐश्वर्य आदिसे सम्पन्न सम्पूर्ण दिव्य लोकको अपनी अनुपम कान्तिसे आप्यायित (परिपुष्ट) करती रहती हैं। शेष और गरुड आदि समस्त पार्षदोंकी विभिन्न अवस्थाओंमें भगवान्की आवश्यक सेवाके लिये आदेश देती रहती हैं। भगवान्के दोनों नेत्र तुरंतके खिले हुए कमलोंकी शोभाको तिरस्कृत करते हैं। उनके श्रीअङ्गोंका सुन्दर रंग निर्षल द्याम मेवसे भी अधिक मनोहर है। श्रीविग्रहपर पीले रंगका प्रकाशमान वल्ल सुशोभित रहता है। भगवान् अपनी अत्यन्त निर्मल और अतिशय शीतल, कोमल, स्वच्छ माणिक्यकी-सी प्रभासे सम्पूर्ण जगत्को प्रभावित करते हैं। वे अचिन्त्य, दिव्य, अद्भुत, नियन्त्रौन, स्वभाव और लावण्यमय अमृतके समुद्र हैं। अत्यन्त सुकुमाराताके कारण उनका ललाट कुछ पसीनेकी बूँदोंसे विसूचित दिलायी देता है और वहाँतक फैली हुई उनकी दिव्य अलकें अपूर्व शोभा बढ़ाती हैं। भगवान्के मनोहर नेत्र विकसित कोमल कमलके सहश मनोहर हैं। उनकी भ्रूलाकी भज्जिमासे अद्भुत विभ्रम-विलासकी सृष्टि होती रहती है। उनके अरण अधरोंपर उज्ज्वल हासकी छटा विलरी रहती है। उनकी मन्द मुस्तकान अत्यन्त पवित्र है। उनके कपोल कोमल और नाइका ऊँची है। ऊँचे और मांसल कंधोंपर लटकी हुई लर्डे और कुण्डलोंके कारण भगवान्की शङ्खसहश श्रीवायडी सुन्दर दिलायी देती है। प्रियतमा लक्ष्मीके कानोंकी शोभा बढ़ानेवाले कमल, कुण्डल और शियिल केशपाशोंके वेणीवन्धके विर्मदनको सूचित करनेवाली घुटनोंतक लंबी चार मुजाओंसे भगवान्के श्रीविग्रहकी अद्भुत शोभा है। उनकी हथेलियाँ अत्यन्त कोमल दिव्य रेखाओंसे अलंकृत और कुछ-कुछ लाल रंगकी हैं। अकुलियोंमें दिव्य सुद्रिका शोभा देती है। अत्यन्त कोमल दिव्य नखावलीसे प्रकाशित लाल-लाल अद्भुलियाँ उनके करकमलोंको अलंकृत करती हैं। उनके दोनों चरण तुरंतके खिले हुए कमलोंके सौन्दर्यको छीने लेते हैं। अत्यन्त मनोहर किरीठ, मुकुट, चूडामणि, मकराकृत कुण्डल, कण्ठहारु केदूर, कंगन, श्रीवत्स-चिह्न, कौस्तुभमणि, मुक्ताहार, कटिवन्ध, पीताम्बर, काञ्चीसूत और नूपुर आदि अत्यन्त सुखद स्वर्णवाले दिव्य मन्धयुक्त आभूषण भगवान्के श्रीअङ्गोंकी विभूषित करते हैं। शोभाशालिनी वैजयन्ती चन्द्रमाला उनकी शोभा बढ़ाती है। शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग और शार्झधनुष आदि दिव्य

आयुध उनकी सेवा करते हैं। अपने संकल्पमात्रसे सम्पन्न होनेवाले संसारकी सुषिटि, पालन और संहार आदिके लिये भगवान् ने अपना समस्त ऐश्वर्य श्रीमान् विष्वक्सेनको अर्पित कर रखा है। जिनमें ख्वभावसे ही समस्त सांसारिक भावोंका अभाव है, जो भगवान् की परिचर्या करनेके सर्वथा योग्य हैं तथा भगवान् की सेवा ही जिनका एकमात्र भोग है, वे गरुड़ आदि नित्यसिद्ध असंख्य पार्षद यथावतर श्रीभगवान् की सेवामें संलग्न रहते हैं। उनके द्वारा होनेवाले आत्मानन्दके अनुभवसे ही पर, पराद्व आदि कालका अनुसंधान होता रहता है। वे भगवान् अपनी दिव्य निर्मल और कोमल दृष्टिसे सम्पूर्ण विश्वको आहादित करते रहते हैं। भगवान् दिव्यलीला-सम्बन्धी अमृतमय वार्तालापसे सब लोगोंके हृदयको आनन्दसे परिपूर्ण करते रहते हैं। उस दिव्य लीलालापमें अत्यन्त मनोहर दिव्यभाव छिपा रहता है। उनके किंचित् खुले हुए मुखारविन्दके भीतरसे निकला हुआ वह अमृतमय बचन उनके दिव्य मुखकमलकी शोभा बढ़ता है। उस वार्तालापको दिव्य गाम्भीर्य, औदार्य, सौन्दर्य और माधुर्य आदि अनन्त गुणसमुदाय विभूषित करते हैं। इस प्रकार ध्यानयोगके द्वारा भगवान् नारायणका दर्शन करके इस यथार्थ सम्बन्धका मन-ही-मन चिन्तन करे कि भगवान् मेरे नित्य स्वामी हैं और मैं उनका नित्य दास हूँ। मैं कब अपने कुलके स्वामी, देवता और सर्वस्व भगवान् नारायणका, जो मेरे भोग्य, मेरे माता, मेरे पिता और मेरे सब कुछ हैं, इन नेत्रोंद्वारा दर्शन करूँगा। मैं कब भगवान् के युगल चरणारविन्दोंको अपने मस्तकपर धारण करूँगा? कब वह समय आयेगा जब कि मैं भगवान् के दोनों चरणारविन्दोंकी सेवाकी आशासे अन्य सभी भोगोंकी आशा-अभिलाषा छोड़कर समस्त सांसारिक भावनाओंसे दूर हो भगवान् के युगलचरणारविन्दोंमें प्रवेश कर जाऊँगा। कब ऐसा सुयोग प्राप्त होगा जब मैं भगवान् के युगल चरण-कमलोंकी सेवाके योग्य होकर उन चरणोंकी आराधनामें ही लगा रहूँगा। कब भगवान् नारायण अपनी अत्यन्त शीतल दृष्टिसे मेरी ओर देखकर स्नेहयुक्त, गम्भीर एवं मधुर बाणी-द्वारा सुझे अपनी सेवामें लगनेका आदेश देंगे? इस प्रकार

भगवान् की परिचर्याकी आशा-अभिलाषाको बेदाते हुए उसी आशासे, जो उन्होंके कृपाप्रसादसे निरन्तर बढ़ रही है। भवनाद्वारा भगवान् के निकट पहुँचकर दूरसे ही भगवती लक्ष्मीके साथ शेषशस्यापर बैठे हुए और गरुड़ आदि पार्षदोंकी सेवा स्वीकार करते हुए भगवान् को 'समस्त परिवारसहित भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार है' यों कहकर साक्षात् प्रणाम करे। फिर बार-बार उठने और प्रणाम करनेके पश्चात् अत्यन्त भय और विनयसे नतमस्तक होकर खड़ा रहे। जब भगवान् के पार्षदगणोंके नायक द्वारपाल कृपा और स्नेहपूर्ण दृष्टिसे साधककी ओर देखें तो उन्हें भी विधिपूर्वक प्रणाम करे। फिर उन सबकी आशा लेकर श्रीमूलमन्त्र (ॐ तत्त्वे नारायणाय) का जप करते हुए भगवान् के पास पहुँचे और यह याचना करे कि 'प्रभो! मुझे अपनी अनन्य नित्य सेवाके लिये स्वीकार कीजिये।' तदनन्तर पुनः प्रणाम करके भगवान् को आत्मसमर्पण कर दे।

इसके बाद भगवान् स्वयं ही जब अपनेको जीवनदान देनेवाली मर्यादा और शीलसे युक्त अत्यन्त प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखकर सब देश, सब काल और सब अवस्थाओंमें उचित दासभावके लिये साधकको सदाके लिये स्वीकार कर लें और सेवाके लिये आशा दे दें, तब वह अत्यन्त भय और विनयसे विनम्र होकर उनके कार्यमें संलग्न रहकर हाथ जोड़े हुए गदा भगवान् की उपासना करता रहे।

तदनन्तर भावित्येषका अनुभव होनेपर सर्वाधिक प्रीति प्राप्त होती है, जिससे साधक दूसरा कुछ भी करने, देखने वा चिन्तन करनेमें असमर्थ हो जाता है। ऐसी दशामें वह पुनः दासभावकी ही याचना करते हुए निरन्तर अविद्यान्त प्रवाहरूपसे भगवान् की ही ओर देखता रहे। उपरोक्त भगवान् स्वयं ही भक्तको जीवनदान करनेवाली अपनी कृपापूर्ण दृष्टिसे देखकर मंद मुस्कुराहटके माध्यमें तुल्यकर सब कलेशोंको दूर करनेवाले और निरतिशय मुखकी प्राप्ति करनेवाले अपने युगल चरणारविन्दोंको मेरे मस्तकपर रख रहे हैं, ऐसा ध्यान करके आनन्दामृतमहासागरमें गम्भीरपूर्ण निमग्न हो सुखी हो जाय।

(श्रीवैकुण्ठगद सम्पूर्ण)

श्रीराधाष्टकम्

(ॐ) नमस्ते श्रिये राधिकायै परायै नमस्ते नमस्ते मुकुन्दपियायै ।
 सदानन्दस्त्रये प्रसीद त्वमन्तःप्रकाशे स्फुरत्ती मुकुन्देन सार्थम् ॥ १ ॥
 स्ववासोऽपहारं यशोदामुतं वा स्वदध्यादिचौरं समराधयन्तीम् ।
 स्वदग्नोदरं या ववन्धाशु नीव्या प्रपद्ये नु दामोदरप्रेयसीं ताम् ॥ २ ॥
 दुराराध्यमाराध्य कृष्णं वरो त्वं महाप्रेमपूरणं राधाभिधाऽभूः ।
 स्वयं लामकृत्या हरिप्रेम यच्छ प्रपन्नाय मे कृष्णस्त्रये समक्षम् ॥ ३ ॥
 मुकुन्दस्त्वया प्रेमदोरेण वद्धः पतङ्गो यथा त्वामनुभायमाणः ।
 उपक्रीड्यन् हार्दमैवानुगच्छन् कृपा वर्तते कारयातो मर्येष्टिम् ॥ ४ ॥
 वजन्तीं स्ववृन्दावने नित्यकालं मुकुन्देन साकं विद्यायाङ्गमालम् ।
 सदा मोक्ष्यमाणानुकम्याकटाक्षैः श्रियं चिन्तयेत् सच्चिदानन्दस्त्रपाम् ॥ ५ ॥
 मुकुन्दानुरागेण रोमाञ्जिताङ्गीमहं व्याप्यमानां तनुस्वेदविन्दुम् ।
 महाहार्दवृष्ट्या कृपापाङ्गदण्डया समालोक्यन्तीं कदा त्वां विचक्षे ॥ ६ ॥
 पदाङ्गावलोके महालालसौघं मुकुन्दः करोति स्वयं ध्येयपादः ।
 पदं राधिके ते सदा दर्शयात्तर्हदीतो नमन्तं किरद्वौचिषं माम् ॥ ७ ॥
 सदा राधिकानाम जिह्वायतः स्यात् सदा राधिका रूपमक्ष्यत्र आस्ताम् ।
 श्रुतौ राधिकाकीर्तिरन्तःस्वभावे गुणा राधिकायाः श्रिया एतदीहे ॥ ८ ॥
 इदं त्वप्रकं राधिकायाः प्रियायाः पठेयुः सदैवं हि दामोदरस्य ।
 सुतिष्ठन्ति वृन्दावने कृष्णधान्ति सखीमूर्तयो युग्मसेवानुकलाः ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीभावनिभवार्कमहामुनीन्द्रिविरचितं श्रीराधाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

[प्रेपक—ब्रह्माचारी श्रीनन्दकुमारशरणजी]

(अनुवादक—पाण्डिय प० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

(ॐ) श्रीराधिके ! तुम्हीं श्री (लक्ष्मी) हो, तुम्हें नमस्कार है, तुम्हीं पराशक्ति राधिका हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम मुकुन्द-की प्रियतमा हो, तुम्हें नमस्कार है। सदानन्दस्त्रस्त्रये देवि ! तुम मेरे अन्तःकरणके ग्रकाशमें श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके साथ लुशोभित होती हुई मुक्षपर प्रसन्न होओ ॥ १ ॥ जो अपने वस्त्रका अपहरण करनेवाले अथवा अपने दूध-दही, मालवन आदि चुरानेवाले वशोदानन्दन श्रीकृष्णकी आराधना करती हैं, जिन्होंने अपनी नीवीके वन्धनसे श्रीकृष्णके उदर-को शीघ्र ही बाँध लिया था, जिसके कारण उनका नाम ‘दामोदर’ हो गया; उन दामोदरकी प्रियतमा श्रीराधा-रानीकी मैं निश्चय हीं शरण लेता हूँ ॥ २ ॥ श्रीराधे ! जिनकी आराधना कठिन है, उन श्रीकृष्णकी भी आराधना करके तुमने अपने महान् प्रेमसिन्युक्ती वाहसे उन्हें वशमें कर लिया। श्रीकृष्णकी आराधनाके ही कारण तुम राधानामसे विज्ञात हुईं। श्रीकृष्णस्त्रस्त्रये ! अपना यह नामकरण स्वयं तुमने किया है,

इससे अपने सम्मुख अये हुए मुझ शरणगतको श्रीहरिका प्रेम प्रदान करो ॥ ३ ॥ तुम्हारी प्रेमदोरमें बैंधे हुए भगवान् श्रीकृष्ण पतंगकी भाँति सदा तुम्हारे आळ-पास ही चक्कर लगाते रहते हैं, हार्दिक प्रेमका अनुसरण करके तुम्हारे पास ही रहते और क्रीडा करते हैं। देवि ! तुम्हारी कृपा सबपर है, अतः मेरे द्वारा अपनी आराधना (सेवा) करवाओ ॥ ४ ॥ जो प्रतिदिन निश्चत समयमर श्रीदेवामसुन्दरके साथ उन्हें अपने अङ्ककी माला अर्पित करके अपनी लीलाभूमि-वृन्दावन-में विहार करती हैं, भक्तजनोंपर प्रयुक्त होनेवाले कृपा-कटाक्षीसे सुशोभित उन सच्चिदानन्दस्त्रपा श्रीललिलीका सदा चिल्लन करे ॥ ५ ॥ श्रीराधे ! तुम्हारे मन-प्राणीमें आनन्दकन्द श्रीकृष्णका प्रगाढ अनुराग व्याप्त है, अतएव तुम्हारे श्रीअङ्ग सदा रोमाञ्जसे विभूषित हैं और अङ्ग-अङ्ग सूक्ष्म स्वेद-विन्दुओंसे मुशोभित होता है। तुम अपनी कृपा-कटाक्षीसे परिपूर्ण दृष्टिद्वारा महान् प्रेमकी वर्षा करती हुई मेरी ओर

देख रही हो; इस अवस्थामें मुझे कब तुम्हारा दर्शन होगा ? ॥ ६ ॥ श्रीराधिके ! यद्यपि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण स्वयं ही ऐसे हैं कि उनके चार-चरणोंका चिन्तन किया जाय, तथापि वे तुम्हारे चरण-चिह्नोंके अवलोकनकी वड़ी लालसा रखते हैं । देवि ! मैं नमस्कार करता हूँ । इधर मेरे अन्तः-करणके हृदय-देशमें ज्योतिष्पुजा विलेखते हुए अपने चिन्तनीय चरणारविन्दका मुझे दर्शन कराओ ॥ ७ ॥ मेरी जिह्वाके अभ्यागपर सदा श्रीराधिकाका नाम विराजमान रहे । मेरे

नेत्रोंके समक्ष सदा श्रीराधाका ही रूप प्रकाशित हो । क्या श्रीराधिकाकी कीर्ति-कथा गौंजती रहे और अनहृद लक्ष्मीस्वरूपा श्रीराधाके ही असंख्य गुणगणोंका चिन्तन यही मेरी शुभ कामना है ॥ ८ ॥ दामोदरप्रिया श्रीराजा शुतिसे सम्बन्ध रखनेवाले इन आठ श्लोकोंका जो लोग उन्हीं रूपमें पाठ करते हैं, वे श्रीकृष्णपाम वृन्दाकनमें गुरु सरकारकी सेवाके अनुकूल सली-शरीर पाकर सुखदे रहे हैं ॥ ९ ॥

(श्रीराधाक सम्पूर्ण)

प्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि युगकेलिरसाभिषिकं वृन्दावनं सुरमणीयमुदारवृक्षम् ।
सौरीप्रवाहचृतमात्मगुणप्रकाशं युग्माङ्गिरेणुकणिकाञ्जितसर्वसत्त्वम् ॥ १ ॥
प्रातः स्मरामि दधिवोपविनीतनिद्रं निद्रावसानरमणीयमुखानुरागम् ।
उञ्जिद्रपद्मनयनं नवनीरदामं हृषानवद्यलभाञ्जितवामभागम् ॥ २ ॥
प्रातर्भजामि शयनोत्थितयुग्मरूपं सर्वेश्वरं सुखकरं रसिकेशभूपम् ।
अन्योन्यकेलिरसचिह्नचमत्कृताङ्गं सख्यावृतं सुरतकामलोहरं च ॥ ३ ॥
प्रातर्भजे सुरतसारपयोधिविहं गण्डस्थलेन नयनेन च संदधानौ ।
रत्याद्यशेषयुभदौ समुपेतकामौ श्रीराधिकावरपुरन्दरपुण्यपुज्ञौ ॥ ४ ॥
प्रातर्धरामि हृदयेन हृदीक्षणीयं युग्मस्वरूपमनिशं सुमनोरमं च ।
लावण्यधाम ललनाभिरुपेयमानमुत्थाप्यमानमनुमेयमशेषवेषैः ॥ ५ ॥
प्रातर्वीमि युगलौ वपुषामरामौ रायामुकुन्दपशुपालसुतौ वरिष्ठौ ।
गोविन्दचन्द्रचृष्टभानुसुतावरिष्ठौ सर्वेश्वरौ स्वजनपालनतपरेशौ ॥ ६ ॥
प्रातर्नामामि युगलाङ्गिसरोजकोशमष्टाङ्गयुक्तपुषा भवदुखदारम् ।
वृन्दावने सुविचरन्तमुदारचिह्नं लक्ष्म्या उरोजधृतकुहुमरागपुष्टम् ॥ ७ ॥
प्रातर्नमामि वृषभानुसुतापदाङ्गं नेत्रालिभिः परिणुतं वजसुन्दरीणाम् ।
प्रेमातुरेण हरिणा सुविशारदेन श्रीमद्भजेशतनयेन सदाभिवन्द्यम् ॥ ८ ॥
सञ्जिन्तनीयमनुमृम्यसभीष्टदोहं संसारतापशमनं चरणं महार्हम् ।
नन्दात्मजस्य सततं मनसा गिरा च संसेवयामि वपुषा प्रणयेन रम्यम् ॥ ९ ॥
प्रातःस्तवमिमं पुण्यं प्रातर्हत्याय यः पठेत् । सर्वकालं क्रियास्तस्य सफलाः स्युः सदा भुवाः ॥ १० ॥
॥ इति श्रीमाविम्बाकर्महामुनीन्द्रविरचितं श्रीप्रातःस्मरणस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

[प्रेषक—जगद्गारी श्रीनन्दकुमरवरणजी]

(अनुवादक—पाण्डेय प० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

युगल सरकार नन्दनन्दन तथा वृषभानुनन्दनीके ग्रेम-रससे जिसका अभिषेक होता रहता है, जो परम रमणीय है, जहाँके बृक्ष भी मनोवाञ्छित वस्तु देनेमें दक्ष होनेके कारण अत्यन्त उदार हैं, सूर्य-कल्प यमुनाके जल-प्रवाहने जिसे सब

ओरसे धेर रखा है, जहाँका प्रत्येक जीव-जन्तु श्रीवज्राजकिशोर-किशोरीकी चरणरेणुओंकी कणिकासे पूजित एवं धन्यवान्त हो गया है; अपने अलौकिक गुणोंको प्रकाशित करनेवाले उसी श्रीवृन्दावनका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ ॥ १ ॥

मन्त्रे वही भगवेकी आवाज सुनकर जिनकी निद्रा दूर हो गयी है, नींदसे उठनेपर जिनके सुखका रंग बहुत ही रमणीय दिखायी देता है, नेत्र विश्वसित कमल-पुष्पके समान सुन्दर और विशाल जान पड़ते हैं, श्रीअङ्गोंकी कान्ति नवीन जलधरके समान इथाम है; तथा जिनका वास याग मनोहर और अनिन्द्य सौन्दर्य-राशिसे सुशोभित गोपाङ्गनाद्वारा लालित एवं पूजित है, उन श्रीराघवमुन्दर श्रीकृष्णका मैं प्रातःकाल सरण करता हूँ ॥ २ ॥

युगल स्वस्य श्रीकिशोरी और नन्दनन्दन निकुञ्जमें शोकर उठे हैं, उनका एक-एक अङ्ग परस्परके प्रेम-मिलन-स्तरे चमत्कृत जान पड़ता है, मधुर मिलन-कामनासे उनका रूप और भी मनोहर हो उठा है, उन्हें सखियोंने सब ओरसे पेर रखला है, वे रसिकज्ञसरोंके राजा युगल सरकार रक्षके अधीक्ष्वर तथा सभीको मुख देनेवाले हैं; मैं प्रातःकाल उन्हीं प्रिया-प्रियतमका भजन-ध्यान करता हूँ ॥ ३ ॥

जो अपने कपोलों और नस्तोंके द्वारा प्रेममिलनके सार-भूत आनन्द-समृद्धमें अवगाहनके चिह्न धारण करते हैं, जो पूर्णकाम हैं तथा प्रेमी भक्तोंको माधुर्यरति अदि अद्योष वल्याणमय वस्तुएँ देते हैं, उन श्रीशिविका तथा राधावल्लभ श्रीकृष्ण इन पुण्यपुञ्ज सुगल दम्पतिका मैं प्रातःकाल भजन करता हूँ ॥ ४ ॥ जो हृदयमें निरन्तर दर्शन करने योग्य हैं, जिनकी शाँकी अत्यन्त मनोरम है, जो लावण्यके भण्डार हैं, असंख्य लङ्घनाएँ जिनकी ऐवामें उपस्थित होतीं और उड़ती-

बैठती हैं, सभी वेशोंमें जिनका अनुमान हो सकता है, उन युगलस्वरूप श्रीराधा-कृष्णको मैं प्रातःकाल अपने हृदयमें धारण करता हूँ ॥ ५ ॥ जिनके श्रीअङ्ग देखताओंके समान तेजस्वी हैं, तथापि जो श्रेष्ठ ग्यालवालोंके रूपमें अवकाशी हो श्रीराधा और सुकुन्द गामसे विलयात हैं, जो सबके हृश्वर हैं और स्वजनोंके पालनमें सदा तत्पर रहनेवाले हैं, उन श्री-कृष्णनन्द और वृषभानुनन्दनी—युगल दम्पतिको मैं प्रातःकाल पुकारता हूँ ॥ ६ ॥ मैं प्रातःकाल किशोर-किशोरी-के उन युगल चरणोंको साशाङ्ग प्रणाम करता हूँ, जो कमल-कोशके समान कमनीय और सांकारिक दुःखको विदीर्ण करनेवाले हैं, जिनमें उदारतावृचक चिह्न अङ्गित हैं, जो बुद्धावनमें विचरते हैं और लक्ष्मीजीके उरोजोंमें लगे हुए केसरके राग-से परिपूर्ण होते हैं ॥ ७ ॥ परम चतुर ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीहरि प्रेमसे व्याकुल हो जिनकी सदा बन्दना किया करते हैं तथा ब्रज-सुन्दरियोंके नेवलपी भ्रमर जिनकी सुति करते हैं, वृषभानुनन्दनी श्रीराधाके उन चरणारविन्दोंको मैं प्रातःकाल प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥ जो सब प्रकारसे चिन्तन करने योग्य, श्रुतियोंके अनुसन्धानके विषय, मनोवाचिष्ठा वस्तु देनेवाले, संसार-तापको शान्त करनेवाले तथा बहुमूल्य हैं, नन्दनन्दन श्रीकृष्णके उन रमणीय चरणोंका मैं सदा मन, वाणी और शरीरद्वारा प्रेमपूर्वक सेवन करता हूँ ॥ ९ ॥ जो प्रातःकाल उठकर इस प्रातःसरण नामक विश्र लोकोंका सदा याठ करता है, उसकी सभी कियाएँ सदा सफल एवं अश्रम होती हैं ॥ १० ॥

(प्रातःसरण स्तोत्र सम्पूर्ण)

श्रीमधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।

हृदये मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ १ ॥

वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।

वलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ २ ॥

वेणुमधुरो रेणुमधुरः पाणिमधुरः पादौ मधुरौ ।

नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ३ ॥

गीतं मधुरं पीतं मधुरं शुक्लं मधुरं लुप्तं मधुरम् ।

स्पं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ४ ॥

करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं सरणं मधुरम् ।

धमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ५ ॥

गुज्ञा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा बीची मधुरा।
 सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ६ ॥
 गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम्।
 दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ७ ॥
 गोपा मधुरा गांधो मधुरा यथिर्मधुरा सुषिर्मधुरा।
 दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ८ ॥
 ॥ इति श्रीमद्भूमाचार्यकृतं मधुराणकं सम्पूर्णम् ॥

(अनुचादक—पाठ्यं पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर हैं। उनके अधर
 मधुर हैं, मुख मधुर हैं, नेत्र मधुर हैं, हाथ मधुर है,
 हृदय मधुर है और गति भी अति मधुर है ॥ १ ॥
 उनके वचन मधुर हैं, चरित्र मधुर हैं, वस्त्र मधुर है,
 अङ्गभंगी मधुर है, चाल मधुर है और भ्रमण भी अति मधुर
 है, श्रीमधुराधिपतिका सब कुछ मधुर है ॥ २ ॥ उनकी वेणु
 मधुर है, चरणरज मधुर है, करकमल मधुर हैं, चरण मधुर है,
 नृत्य मधुर है और सख्य भी अति मधुर है, श्रीमधुराधिपतिका
 सभी कुछ मधुर है ॥ ३ ॥ उनका गान मधुर है, पान
 मधुर है, भोजन मधुर है, शयन मधुर है, रूप मधुर है
 और तिलक भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी
 कुछ मधुर है ॥ ४ ॥ उनका कार्य मधुर है, तैरना मधुर
 है और तैरना मधुर है ॥

है, हरण मधुर है, सरण मधुर है, उद्धार मधुर है और
 शान्ति भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ
 मधुर है ॥ ५ ॥ उनकी गुज्ञा मधुर है, माला मधुर है
 यमुना मधुर है, उसकी तरड़ों मधुर हैं, उसका जल मधुर है
 और कमल भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी
 कुछ मधुर है ॥ ६ ॥ गोपियाँ मधुर हैं, उनकी लीला मधुर
 है, उनका संयोग मधुर है, भोग मधुर है, निरीक्षण मधुर है
 और प्रताद भी मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ
 मधुर है ॥ ७ ॥ गोप मधुर हैं, गौए मधुर हैं, लकुटी
 मधुर है, रचना मधुर है, दलन मधुर है और उसका फल
 भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर
 है ॥ ८ ॥

(श्रीमधुराणक समाप्त)

श्रीयमुनाष्टकम्

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धहेतुं सुदा मुरारिपदपङ्कजस्कुरदमन्दरेणूक्टटाम् ।
 तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पाम्बुना सुरासुरसुपूजितसरपितुः श्रियं विभ्रतीम् ॥ १ ॥
 कलिन्दगिरिमस्तके पतदमन्दपूरोज्ज्वला विलासगमनोऽहसत्यकटगण्डशैलोन्नता ।
 सद्वोषगतिदन्तुरा समधिरूढदोलोच्चमा मुकुन्दरतिवर्द्धिनी जयति पञ्चवन्धोः सुता ॥ २ ॥
 भुवं भुवनपावनीमधिगतामनेकस्वनैः प्रियाभिरिव सेवितां शुकमयूरहंसादिभिः ।
 तरङ्गभुजकङ्गणप्रकटमुक्तिकावालुकां नितम्बतटसुन्दरीं नमत छप्पतुर्यप्रियाम् ॥ ३ ॥
 अनन्तगुणभूषिते शिवविरञ्चिदेवस्तुते धनाघननिभे सदा ध्वपराशराभीष्टे ।
 विशुद्धमयुरातटे सकलगोपगोपीवृते छपाजलधिसंथिते मम मनः सुखं भावय ॥ ४ ॥
 यथा चरणपद्मजा मुररिदोः प्रियस्मादुका समागमनोऽभवत् सकलसिद्धिद्वा सेवताम् ।
 तथा सदृशात्मियात् कमलजा सपलीव यद्धरिप्रियकलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम् ॥ ५ ॥
 नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं न जातु यमथातना भवति ते पयःपानतः ।
 यमोऽपि भगिनीसुतान् कथमु हन्ति दुष्टानपि प्रियो भवति सेवनात् तव हरेण्यथा गोपिकाः ॥ ६ ॥
 ममास्तु तव सत्रिधौ तनुनवत्वमेतावता न दुर्लभतमा रतिमुररिपौ मुकुन्दमियैः ।
 अतोऽस्तु तव लालना सुरधुनीं परं सङ्गमात् तवैव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुण्यितैः ॥ ७ ॥

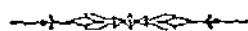
स्तुतिं तव करोति कः कमलजासपति प्रिये हरेयदनुसेवया भवति सौख्यमामोक्षतः ।
 इयं तव कथाधिका सकलगोपिकासङ्गमसरश्रमजलाणुभिः सकलगाव्रजैः सङ्गमः ॥ ८ ॥
 तवापृकमिदं मुदा पठति सूरसूते सदा समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः ।
 तथा सकलसिद्धयो मुररिपुश्च सन्तुष्टति सभाविजयो भवेद् वदति बहुभः श्रीहरेः ॥ ९ ॥
 ॥श्रीमद्भूमाचार्यविरचितं यमुनाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

(अनुच्छवक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

मैं सम्पूर्ण सिद्धियोंकी हेतुभूता यमुनाजीको सानन्द नमस्कार करता हूँ, जो भगवान् मुरारिके चरणारविन्दोंकी चमकीली और अमन्त महिमाली धूल धारण करनेसे अत्यन्त उल्कर्षको प्राप्त हुई हैं और तटवर्ती नूतन कानोंके सुरान्धित पुष्पोंसे मुवासित जलगांशिके द्वारा देव-दानव-वन्दित प्रद्युमनपिता भगवान् श्रीकृष्णकी द्याम सुब्रह्माको धारण करती हैं ॥ १ ॥ कलिन्दपर्वतके शिखरपर गिरती हुई तीव्र वेगवाली जलधारासे जो अत्यन्त उज्ज्वल जान पड़ती हैं, लीलाविलास-पूर्वक चलनेके कारण शोभायमान हैं, सामने प्रकट हुई चट्ठानोंसे जिनका प्रवाह कुछ ऊँचा हो जाता है, गम्भीर गर्जनयुक्त गतिके कारण जिनमें ऊँची-ऊँची लहरें उठती हैं और ऊँचे-नीचे प्रवाहके द्वारा जो उत्तम झूलेपर झूलती हुई-सी प्रतीत होती हैं, भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रगाढ़ अनुरागकी वृद्धि करनेवाली वे सूर्यसूता यमुना दर्बन्त्र विजयिनी हो रही हैं ॥ २ ॥ जो इस भूतलपर पधारकर समस्त भुवनको पवित्र कर रही हैं शुक्रमयूर और हंस आदि पक्षी भाँति भाँतिके कलर्घोद्वारा प्रिय सरियोंकी भाँति जिनकी सेवा कर रहे हैं, जिनकी तरङ्गरूपी भुजाओंके कंगनमें जड़े हुए सुकिरुपी मोतीके कण ही बालुका बनकर चमक रहे हैं तथा जो नितभवसदृश तटोंके कारण अत्यन्त सुन्दर जान पड़ती हैं, उन श्रीकृष्णकी चौथी पटरानी श्रीयमुनाजीको नमस्कार करो ॥ ३ ॥ देवि यमुने ! तुम अनन्त गुणोंसे विभूषित हो । शिव और ब्रह्मा आदि देवता तुम्हारी स्तुति करते हैं । मेघोंकी गम्भीर धटाके समान तुम्हारी अङ्गकान्ति सदा द्याम है । ध्रुव और पराशर जैसे भक्तजनोंको तुम अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाली हो । तुम्हारे तटपर विशुद्ध मधुरापुरी सुशोभित है । समस्त गोद और गोपसुन्दरियाँ तुम्हें धेरे रहती हैं । तुम करुणालग्न भगवान् श्रीकृष्णके आश्रित हो । मेरे अन्तःकरणको सुनी बनाओ ॥ ४ ॥ भगवान् विष्णुके चरणस्त्र-विन्दोंसे प्रकट हुई गदा जिनसे मिलनेके कारण ही भगवान्-

को प्रिय हुई और अपने सेवकोंके लिये सम्पूर्ण सिद्धियोंको देवेवाली ही सकीं, उन यमुनाजीकी समस्त केवल लक्ष्मीजी कर सकती हैं और वह भी एक सप्तलोके सदस्य । ऐसी महत्वशालिनी श्रीकृष्णप्रिया कलिन्दनन्दिनी यमुना सदा मेरे मनमें निवास करें ॥ ५ ॥ यमुने ! तुम्हें सदा नमस्कार है । तुम्हारा चरित्र अत्यन्त अद्भुत है । तुम्हारा जल पीनेसे कभी यमयातना नहीं भोगनी पड़ती है । अपनी वहिनके पुत्र दुष्ट हों तो भी यमराज उन्हें कैसे मार सकते हैं । तुम्हारी सेवासे मनुष्य गोपाङ्गनाओंकी भाँति द्यामसुन्दर श्रीकृष्णका प्रिय हो जाता है ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णप्रिये यमुने ! तुम्हारे समीप मेरे शरीरका नवनिर्माण हो-मुझे नूतन शरीर धारण करनेका अवसर मिले । इतनेसे ही मुरारि श्रीकृष्णमें प्रगाढ़ अनुराग दुर्लभ नहीं रह जाता, अतः तुम्हारी अच्छी तरह स्तुति-प्रशंसा होती रहे-तुमको ल्यड़ लड़ाया जाय । तुमसे मिलनेके कारण ही देवनदी गङ्गा इस भूतलपर उत्कृष्ट वतायी गयी हैं; परंतु पुष्टिमार्गीय वैष्णवोंने तुम्हारे संगमके विना केवल गङ्गाकी कभी स्तुति नहीं की है ॥ ७ ॥ लक्ष्मीकी सप्तली हरिप्रिये यमुने ! तुम्हारी स्तुति कौन कर सकता है ? भगवान्की निरन्तरसेवासे मोक्षार्थी यत्कामी सुख प्राप्त होता है; परंतु तुम्हारे लिये विशेष महत्वकी वात यह है कि तुम्हारे जलका सेवन करनेसे सम्पूर्ण गोपसुन्दरियोंके साथ श्रीकृष्णके समागमसे जो ऐम-लील-जनित स्वेदजलकण सम्पूर्ण अङ्गोंसे प्रकट होते हैं, उनका समर्क सुलभ हो जाता है ॥ ८ ॥ सूर्यकन्ये यमुने ! जो तुम्हारी इस आठ क्षेत्रोंकी स्तुतिका प्रसन्नतापूर्वक सदा पाठ करता है, उसके सारे पापोंका नाश हो जाता है और उसे भगवान् श्रीकृष्णका प्रगाढ़ प्रेम प्राप्त होता है । इतना ही नहीं, सारी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं, भगवान् श्रीकृष्ण सन्तुष्ट होते हैं और स्वभावपर भी विजय प्राप्त हो जाती है । यह श्रीहरिके बहुभक्ता कथन है ॥ ९ ॥

(श्रीयमुनाष्टक सम्पूर्ण)



रोम-रोममें राम

श्रीहनुमान्जी

‘जिस वस्तुमें राम-नाम नहीं, वह वस्तु तो एक दरवारी जौहरीने टोका, तो उन्हें दो कौड़ीकी भी नहीं। उसके रखनेसे लाभ ?’ विचित्र उत्तर मिला।
श्रीहनुमान्जीने अयोध्याके भरे दरवारमें यह बात कही।

स्वयं जानकीमैथाने वहुमूल्य मणियोंकी माला हनुमान्जीके गलेमें ढाल दी थी। राज्य-भिषेक-समारोहका यह उपहार था—सबसे मूल्यवान् उपहार। अयोध्याके रत्नभण्डारमें भी वैसी मणियाँ और नहीं थीं। सभी उन मणियोंके प्रकाश एवं सौन्दर्यसे मुग्ध थे। मर्यादापुरुषोत्तमको श्रीहनुमान्जी सबसे प्रिय हैं—सर्वश्रेष्ठ सेवक हैं पवनकुमार, यह सर्वमान्य सत्य है। उन श्री-आङ्गनेयको सर्वश्रेष्ठ उपहार प्राप्त हुआ—यह न आश्वर्यकी बात थी, न ईर्ष्यकी।

असूयाकी बात तो तब हो गयी जब हनुमान्जी अलग बैठकर उस हारकी महामूल्यवान् मणियोंको अपने दाँतोंसे पटापट फोड़ने लगे।

राम माथ, सुकुट राम, राम सिर, नयन राम, राम कान, नासा राम, ठोड़ी राम नाम है।
राम कंठ, कंध राम, राम भुजा वाजूबंद, राम हृदय अलंकार, हार राम नाम है॥
राम उदर, नाभि राम, राम कटी कटी-सूत्र, राम बसन, जंघ राम, जाल-पेर राम है।
राम मन, वचन राम, राम गदा, कटक राम, मारुतिके रोम रोम व्यापक राम नाम है॥

‘आपके शरीरमें राम-नाम लिखा है। जौहरीने कुदकर पूछा था। लेकिन मुँहके खानी पड़ी उसे। हनुमान्जीने अपने वज्रमखसे अपनी छातीका चमड़ा उधेड़कर दिखा दिया। श्रीराम हृदयमें विराजित थे और रोम-रोममें राम लिखा था उन श्रीराम-दूतके।

‘जिस वस्तुमें राम नहीं, वह वस्तु तो दो कौड़ीकी है। उसे रखनेसे लाभ !’ श्रीहनुमान्जीकी यह बाणी। उन केशरीकुमारका शरीर राम-नामसे ही निर्मित हुआ है। उनके रोम-रोममें राम-नाम अङ्कित है।

उनके वस्त्र, आभूषण, आयुध—सब राम-नामसे बने हैं। उनके कण-कणमें राम-नाम है। जिस वस्तुमें राम-नाम न हो, वह वस्तु उन पवनपुत्रके पास रह कैसे सकती है ?

राम-नाममय है श्रीहनुमान्जीका श्रीविग्रह—



रोम-रोममें राम

कीर्तनीयः सदा हरिः

सबमें भगवान्को देखनेवाला तथा सदा भगवान्के नाम-गुणका कीर्तन करनेवाला भक्त कितना और कैसा विनम्र और सहिष्णु होता है— उसका स्वरूप श्रीचैतन्यमहाप्रभुने बतलाया है—

तृणादपि सुनीनेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिज्ञा मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

तिनका सदा सबके पैरोंके नीचे पड़ा रहता है, वह कभी किसीके सिरपर चढ़नेकी आकांक्षा नहीं करता। हवा जिधर उड़ा ले जाय, उधर ही चला जाता है, पर भक्त तो अपनेको उस नगण्य तृणसे भी बहुत नीचा मानता है, वह जीवमात्रको भगवान् समझकर उनकी चरणधूलि लेता है, उन्हें दण्डवत्-प्रणाम करता है और उनकी सेवामें उनके इच्छानुसार लगा रहता है।

वृक्ष कड़ी धूप सहता है, आँधी और घनधोर वर्षाका आघात सहता है, काटने-जलानेवालेको भी छाया देता है, स्वयं कटकर लोगोंके घरोंकी चौखट, किंवाड़, शहतीर, खंभे बनकर उनको आश्रय और रक्षा देता है, जलकर भोजन बनाता है, यज्ञ सम्पन्न करता है, मरे हुएको भी जलाकर उसके अन्त्येष्टि संस्कारमें अपनेको होम देता है। सभीको अपने पुण्योंकी सुगन्धि देता है, पत्थर मारकर चोट पहुँचानेवालोंको पके फल

देता है। इसी प्रकार भक्त संत भी अपना अपकार करनेवालेको अपना सर्वस्व देकर लाभ पहुँचाता है।

मान सीठा विष है, इसे बड़े चावसे प्रायः सभी पीते हैं। संसारके पद-परिवार और धन-सम्पत्तिका परित्याग करनेवाले भी मानके भूखे रहा करते हैं; परंतु भक्त स्वयं अमानी रहकर जिनको कोई मान नहीं देता, उनको भी मान देता है।

सदा कीर्तन करनेयोग्य कुछ है तो वह भगवान्का नाम-गुण ही है, भक्त सदा कीर्तन करता है। और उस कीर्तनके प्रभावसे उसमें उपर्युक्त दैन्य आ जाता है अथवा उपर्युक्त दैन्यके प्रभावसे ही वह सदा कीर्तन करनेयोग्य होता है। दोनोंमें अन्योन्याश्रय है। इस चित्रमें देखिये—

भक्त—नगण्य तृणको भी अपने पैरोंसे बचाकर उनका सम्मान कर रहा है।

वृक्ष—धाम-वर्षा सहकर, कटकर और पत्थर मारनेवालेको भी मधुर फल देकर भक्तका आदर्श उपस्थित कर रहा है।

भक्त—स्वयं अमानी होकर मानहीनको मान दे रहा है और भक्त—श्रीहरिके कीर्तनरंगमें मस्त होकर नृत्य कर रहा है।

बालबोधः

नत्वा हरि सदानन्द सर्वसिद्धान्तसंग्रहम् । बालप्रबोधनार्थाय वदामि सुविनिश्चितम् ॥ १ ॥
 धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्वत्वारोऽर्था मनीषिणाम् । जीवेश्वरविद्वारेण द्विधा ते हि विचारिताः ॥ २ ॥
 अलौकिकास्तु वेदोक्ताः साध्यसाधनसंयुताः । लौकिका प्रूपिभिः प्रोक्तास्तथैवेश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥
 लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यतः स्थिताः । धर्मशास्त्राणि नीतिश्च कामशास्त्राणि च क्रमात् ॥ ४ ॥
 निर्वर्गसाधकनीतिः न तन्निर्णय उच्यते । मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परतः स्वतः ॥ ५ ॥
 द्विधा द्वे द्वे स्वतस्तत्र सांख्ययोगौ प्रकीर्तितौ । त्यागात्यागविभागेन सांख्ये त्यागः प्रकीर्तिं ॥ ६ ॥
 अहन्ताममतानाशे सर्वथा निरहंकृतौ । स्वरूपस्यो यदा जीवः कृतार्थः स निगद्यते ॥ ७ ॥
 तदर्थं प्रक्रिया काचित् पुराणेऽपि निरूपिता । भूषिभिर्वहुधा प्रोक्ता फलमेकमवाहतः ॥ ८ ॥
 अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि । यमादयस्तु कर्तव्या सिद्धे योगे कृतार्थता ॥ ९ ॥
 पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते । ब्रह्मा ब्राह्मणां यातस्तद्वृपेण सुसेव्यते ॥ १० ॥
 ते सर्वार्थां न चाद्येन शास्त्रं किञ्चिदुदीरितम् । अतः शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ ॥ ११ ॥
 वस्तुनः स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्तकौ । ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतयोदितौ ॥ १२ ॥
 निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छाख्ये तयोः कृता । भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि ॥ १३ ॥
 भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चयः । लोकेऽपि यत् प्रभुर्भुज्ञके तत्र यच्छ्रुतिः कर्हियित् ॥ १४ ॥
 अतिप्रियाय तदपि दीयते कचिदेव हि । नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः ॥ १५ ॥
 प्रत्येकं साधनं चैतद् द्वितीयार्थं महान् श्रमः । जीवाः स्वभावतो दुष्टा दोषाभावाय सर्वदा ॥ १६ ॥
 श्रवणादि ततः प्रेणा सर्वं कार्यं हि सिद्ध्यति । मोक्षस्तु सुलभो विष्णोभौंगश्च शिवतस्था ॥ १७ ॥
 समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं भवेद् भूवम् । अतदीयतया चापि केवलश्चेत् समाप्तिः ॥ १८ ॥
 तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किञ्चित् समाचरेत् । स्वर्धर्ममतुतिष्ठन् वै भारद्वैगुण्यमन्यथा ॥ १९ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ञाने भ्रमः पुनः ।

॥ इति श्रीमद्भुमाचार्यविरचितो बालबोधः सम्पूर्णः ॥

(अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

मैं सदानन्दस्वरूप श्रीहरिको नमस्कार करके बालबुद्धि पुरुषोंके बोधके लिये अच्छी तरह निश्चय किये हुए सम्पूर्ण सिद्धान्तोंका संक्षिप्त संग्रह बता रहा हूँ ॥ १ ॥ मनीषी पुरुषोंके मतमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षनामक चार पुरुषार्थ हैं । वे जीव और ईश्वरके विचारसे दो प्रकारके निश्चित किये गये हैं (अर्थात् एक तो ईश्वरद्वारा विचारित पुरुषार्थ हैं, दूसरे जीवद्वारा विचारित) ॥ २ ॥ ईश्वरद्वारा विचारित पुरुषार्थ अलौकिक माने गये हैं । उनका साध्यसाधनसंहित अलौकिक बोधके लिये जिन पुरुषोंका चर्णन किया है, वे लौकिक कहे महर्षियोंने जिन पुरुषोंका चर्णन किया है, वे लौकिक पुरुषोंका चर्णन कर्त्ता हैं ॥ ३ ॥ मैं यहाँ लौकिक पुरुषोंका चर्णन कर्त्ता हूँ । क्योंकि अलौकिक पुरुषोंकी प्रसिद्धि वेदसे ही होती है ।

धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र और कामशास्त्र—ये क्रमशः धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थोंके साधक हैं । अतः इनका निर्णय यहाँ नहीं किया जाता है ॥ ४ ॥ लौकिक मोक्षके प्रतिपादनके लिये चार शास्त्र हैं । एक तो दूसरेकी कृपासे मोक्ष प्राप्त करना; दूसरे स्वयं प्रयत्न करके मुक्त देना—ये मोक्षके दो भेद हैं । इन दोनोंके ही दो-दो भेद और हैं । स्वयं अपने प्रयत्नसे जो मोक्ष प्राप्त किया जाता है, उसके यापक दो शास्त्र बताये गये हैं—सांख्य और योग । एकमें त्यागका उपदेश है और दूसरमें त्याग न करनेका । इस भेदमें ही ये दोनों शास्त्र भिन्न हैं । सांख्यमें त्यागका प्रतिपादन किया गया है । उन्होंने अहंता और ममताका नाश हो जानेपर सर्वथा अहंता ॥ शून्यताकी स्थितिमें आकर जब जीव अपने स्वरूपमें निष्ठा

, तब उसे कृतार्थ या कृतकृत्य कहते हैं ॥ ५-७ ॥
 लिये ऋषियोंने पुराणोंमें भी कोई-कोई प्रक्रिया बतायी है प्रक्रिया अनेक प्रकारकी कही गयी है तो भी अङ्ग साधन होनेके कारण सबका फल एक है ॥ ८ ॥
 न करनेके पक्षमें योगमार्गका साधन है । उसमें यदि कोई त्याग बताया भी गया है तो वह मनके द्वारा ही योग्य है । योगमार्गमें यम-नियम आदि जो आठ अङ्ग साधन हैं, वे पालन करने योग्य ही हैं, त्याग्य नहीं हैं ।
 हे अनुष्ठानसे योगके सिद्ध होनेपर कृतकृत्यता प्राप्त होती ॥ ९ ॥ दूसरेके आश्रयसे जो मोक्ष प्राप्त होता है, उसका दो प्रकारसे निरूपण किया जाता है—(एक तो भगवान् एके आश्रयसे प्राप्त होनेवाला मोक्ष है और दूसरा वान् शिवके आश्रयसे ।) ब्रह्माजी ब्राह्मणत्वको प्राप्त है, तो ब्राह्मणरूपसे ही उनकी आराधना की जाती है ॥ १० ॥
 ठीक सारे पुरुषार्थ आदिदेव ब्रह्माजीके द्वारा नहीं प्राप्त होते । उन्होंने उन पुरुषायोंकी प्राप्तिके लिये कुछ शास्त्रोंका ग्रन्थ किया है । अतः भगवान् शिव और विष्णु—ये दो ही गतके लिये परम हितकारक हैं ॥ ११ ॥ प्रत्येक वस्तुका रक्षण और संहार—ये दो उनके कार्य हैं । वे दोनों शास्त्रोंके प्रवर्तक हैं । ब्रह्म ही सर्वस्वरूप है; अतः सर्वस्वरूप होनेके कारण वे दोनों (शिव और विष्णु) ब्रह्मस्वरूप ही कहे गये हैं ॥ १२ ॥ उन-उन शास्त्रों (शिव-पुराण, विष्णु-पुराण आदि) में उन दोनोंको निर्दोष और सर्वतत्त्वाणसम्पन्न बताया गया है । यथापि वे दोनों ही भोग और मोक्षरूप फल देनेमें समर्थ हैं, तथापि भोग तो

शिवसे और मोक्ष भगवान् विष्णुसे प्राप्त होता है—यही निश्चय किया गया है । लोकमें भी यह प्रसिद्ध है कि स्वामी जिस वस्तुका स्वयं उपभोग करता है, उसे कभी दूसरेको नहीं देता । (विष्णु महान् ऐश्वर्यका स्वयं उपभोग करते हैं, अतः वे भक्तको मोक्ष देते हैं और दिव मोक्ष-मुखका अनुभव करनेवाले हैं; अतः वे भक्तजनोंको ऐश्वर्य-भोग प्रदान करते हैं) ॥ १३-१४ ॥ अत्यन्त प्रिय व्यक्तिको अपने उपयोगकी वस्तु भी दी जाती है, किन्तु ऐसा कहीं कदाचित् ही होता है । अपने इष्टदेवको नियत वस्तु समर्पित करके उन्हींका बनकर रहना उनका आश्रय लेना कहा गया है । भोग और मोक्षके लिये क्रमशः भगवान् शिव और भगवान् विष्णुका आश्रय ही साधन है । परंतु द्वितीय पुरुषार्थको अर्यात् भगवान् विष्णुको भोग देनेमें तथा भगवान् शिवको मोक्ष देनेमें महान् श्रम होता है । जीव स्वभावसे ही अनेक प्रकारके दोषोंसे युक्त हैं । उन दोषोंकी निवृत्तिके लिये सदा प्रेमपूर्वक श्रवण-कीर्तन आदि नवधा भक्ति करनी चाहिये । उससे सब कार्य सिद्ध होता है । मोक्ष तो श्रीविष्णुसे सुलभ होता है और भोग शिवसे ॥ १५-१७ ॥ भगवान्को आत्मसमर्पण करनेसे निश्चय ही तदीयता (मैं भगवान्का हूँ, इस विश्वास) की प्राप्ति होती है । यदि मैं भगवान्का हूँ, इस सुदृढ़ भावनाके बिना केवल आश्रय ग्रहण किया गया हो तो भगवान् ही मेरे आश्रय है और मैं भगवान्का हूँ, इस भावकी अनुभूतिके लिये स्वधर्मका पालन करते हुए कुछ साधन करे । अन्यथा दूना भार चढ़ जाता है ॥ १८ ॥ इस प्रकार सब सिद्धान्त यहाँ बताया गया है । इसे अच्छी तरह समझ लेनेपर पुनः श्रम होनेकी सम्भावना नहीं रहती ॥ १९ ॥

(वाल्मीकि सम्पूर्ण)

सिद्धान्तमुक्तावली

नत्या हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम् । कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता ॥ १ ॥
 चेतस्तत्प्रवर्णं सेवा तस्तिद्वयै तत्त्विच्छिजा । ततः संसारदुःखस्य विवृतिप्रवृह्योद्घनम् ॥ २ ॥
 परं ब्रह्म तु कृष्णो हि सविद्यानन्दकं वृहत् । द्विरूपं तद्विं सर्वं स्यादेकं तस्साद् विलक्षणम् ॥ ३ ॥
 अपरं तत्र पूर्वसिन् यादिनो वहुधा जगुः । मायिकं सगुणं कार्यं स्वतन्त्रं चेति नैकव्या ॥ ४ ॥
 तदेवैतत् प्रकारेण भवतीति श्रुतेर्भवतम् । द्विरूपं चापि गङ्गावज्ज्वरं सा जलस्त्रिणी ॥ ५ ॥
 माहात्म्यसंयुता नृणां सेवतां भुक्तिमुक्तिदा । मर्यादामार्गविधिना तथा ब्रह्मापि वृद्ध्यताम् ॥ ६ ॥
 तत्रैव देवतामूर्तिर्भक्त्या या दृश्यते कचित् । गङ्गायां च विशेषेण प्रवाहमेदद्विद्ये ॥ ७ ॥
 प्रत्यक्ष्या सा न सर्वेषां प्राकाम्यं स्याद् तथा जले । विहितात् फलात् तद्विप्रतीत्यापि विशिष्यते ॥ ८ ॥

यथा जर्लं तथा सर्वं यथा शक्ता तथा वृहत् । यथा देवी तथा कृष्णस्त्रान्येतदिहोच्यते ॥१॥
जगत् तु चिविधं प्रोक्तं ब्रह्मचिष्णुशिवास्ततः । देवतारूपवत् प्रोक्ता ब्रह्मणीत्थं हरिमतः ॥२॥
कामचारस्तु लोकेऽस्मिन् ब्रह्मादिभ्योन वान्यथा । परमानन्दरूपे तु कृष्णो स्वात्मनि निश्चयः ॥३॥
अतस्तु ब्रह्मवदेन कृष्णो ब्रह्मिविधीयताम् । आत्मनि ब्रह्मरूपे हि छिद्रा व्योमीव चेत्ना ॥४॥
उपाधिनाशे विज्ञाने ब्रह्मात्मत्वावबोधने । गङ्गातीरस्थितो यद्वद् देवतां तत्र पश्यति ॥५॥
तथा कृष्णं परं ब्रह्म स्वस्मिन् ज्ञाती प्रपश्यति । सेसारी यस्तु भजते स दूरस्थो यथा तथा ॥६॥
अपेक्षितजलादीनामभावात् तत्र दुःखभाक् । तस्मात् श्रीकृष्णमार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः ॥७॥
आत्मानन्दसमुद्दर्श्य कृष्णमेव विच्छिन्नत्येत् । लोकार्थी चेद् भजेत् कृष्णं कृष्णो भवति सर्वथा ॥८॥
क्षिप्तेऽपि चेद् भजेत् कृष्णं लोको नश्यति सर्वथा । ज्ञानाभावे पुष्टिमार्गं तिष्ठेत् पूजोत्सवादिषु ॥९॥
सर्यादास्यस्तु गङ्गायां श्रीभागवततत्परः । अनुग्रहः पुष्टिमार्गं नियामकं इति स्थितिः ॥१०॥
उभयोस्तु क्रमेणैव पूर्वोक्तैव फलिष्यति । ज्ञानाधिको भक्तिमार्गं एवं तस्मान्निरुपितः ॥११॥
भक्त्यमावे तु तीरस्थो यथा दुष्टैः स्वर्कर्मभिः । अन्यथाभावमापन्नस्तस्मात् स्थानाच नश्यति ॥१२॥
एवं स्वशाल्बसर्वस्वं मया गुप्तं निरुपितम् । एतद्वुद्ध्वा विमुच्येत् पुरुषः सर्वसंशयात् ॥१३॥

॥ इति श्रीमद्भूषाचार्यविरचिता सिद्धान्तमुकावली सम्पूर्णा ॥

(अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

मैं श्रीहरिको नमस्कार करके अपने सिद्धान्तके विशेष निश्चयका वर्णन करूँगा । सदा भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा करनी चाहिये । वह सेवा यदि मानसी हो (मनके द्वारा की गयी हो) तो सबसे उत्तम मानसी गयी है ॥ १ ॥ चित्तको भगवान्नके चिन्तनमें लगाये रखना मानसी सेवा है । इसकी सिद्धिके लिये तनुजा (शरीरसे होनेवाली) और विच्छना (धनसे सम्पन्न होनेवाली) भगवत्सेवा करनी चाहिये । उस सेवासे संसार-दुःखकी निवृत्ति हो जाती है और परब्रह्म परमात्माका यथार्थ बोध प्राप्त होता है ॥ २ ॥ वह सचिदानन्दस्वरूप व्यापक परब्रह्म साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं । उस व्यापक ब्रह्मके दो रूप हैं—एक तो सर्वजगत्स्वरूप अपर ब्रह्म है और दूसरा उससे विलक्षण (परब्रह्म) है ॥ ३ ॥ पूर्वोक्त विश्वरूप ब्रह्मके विषयमें बहुत-से वादियोंका कहना है कि अपर ब्रह्म 'मायिक', 'सगुण', 'कार्य' और 'स्वतन्त्र' आदि# भेदोंसे अनेक प्रकारका है ॥४॥

* शाङ्कर वेदान्तके अनुसार सबके अधिष्ठानभूत ब्रह्ममें मायासे जगत्की प्रतीति हो रही है; इसलिये सप्त दृश्य प्रपञ्च 'मायिक' है । सांख्यवादी इसे त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका कार्य बताते हैं; अतः उनके मतानुसार यह 'सगुण' है । नैयायिकोंके मतमें जगत् 'कार्य' है, और ईश्वर कर्ता । मीमांसकोंकी मान्यताके अनुसार यह जगत् अनादि कालसे यो ही चला आ रहा है; अतः वे इसे किसीका

वह ब्रह्म ही इस जगत्के रूपमें प्रकट होता है, यह वेदम् मत है । गङ्गाजीके समान ब्रह्मके भी दो रूप जानने चाहिये । (एक जगतरूप और दूसरा अक्षरजग्नरूप) । जैरे गङ्गा एक तो जलरूपिणी हैं और दूसरी अनन्त भावात्म्यसे उक्त सच्चिदानन्दमयी देवी हैं, जो मर्यादामार्गकी विधिसे सेवा का उपासना करनेवाले मनुष्योंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करती है । (पहला उनका आविभौतिक रूप है और दूसरा आधिदैविक) । इसी प्रकार ब्रह्मके विषयमें भी जानना चाहिये ॥ ५-६ ॥ उन जलरूपिणी गङ्गामें ही देवीस्वरूपा गङ्गाकी भी स्थिति है । जो विशेष भक्तिभाव होनेपर कभी-कभी किसीके प्रसरण दर्शन देती है । गङ्गाके जलप्रवाहसे अपनी अधिनलता बोध करनेके लिये ही वे वहाँ दर्शन देती हैं ॥ ७ ॥ वे देवी-स्वरूपा गङ्गा सबको प्रवक्ष नहीं होतीं वो भी गङ्गाजलमें भक्तिभावपूर्वक स्नान आदि करनेसे उन्होंके द्वारा भजोंमें अभीष्ट मनोरथकी पूर्ति होती है । इस प्रकार शालोक कर्ता प्राप्ति और प्रतीतिसे भी वह गङ्गाजीक जल अन्य भगवान् जलम् अपेक्षा विशिष्ट महत्व रखता है ॥ ८ ॥ जैरे गङ्गाजी का जल है, वैसे सम्पूर्ण जगत् है (वह गङ्गायां आविभौतिक कार्य न मानकर 'स्वतन्त्र' कहते हैं । इसी प्रकार अन्यान् दार्ढीर्दी भी 'जगत्' के सम्बन्धमें विभिन्न प्रकारकी भावनाएं रहती हैं । इसीलिये यहाँ इसे अनेक प्रकारता बताया गया है ।

रूप है और यह ब्रह्मका । जैसे शक्तिशालिनी तीर्थस्वरूपा गङ्गा हैं, ऐसे ही ब्रह्म है (वह गङ्गाका व्यापक रूप है और यह ब्रह्मका) । और जैसे देवीस्वरूपा गङ्गा हैं, वैसे ही यहाँ श्रीकृष्ण कहे गये हैं (वह गङ्गाका परम मनोहर सगुण साकार विग्रह है और यह ब्रह्मका) ॥ ९ ॥ सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे जगत् तीन प्रकारका व्रताया गया है; अतः उन तीनोंके अधिदेवतास्वरूपसे विष्णु, ब्रह्म और शिवका प्रतिपादन किया गया है । जैसे शरीरमें आत्मा है, उसी प्रकार ब्रह्ममें श्रीकृष्णकी स्थिति मानी गयी है ॥ १० ॥ इस लोकमें इच्छानुसार भोगोंकी प्राप्ति तो ब्रह्म आदि देवताओंसे ही होती है, और किसी प्रकारसे नहीं होती । परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण सबके आत्मा हैं । अतः अपने भीतर परमानन्दकी उपलब्धि उन्हींसे होती है, यह सिद्धान्त है ॥ ११ ॥ अतः ब्रह्मवाद (शुद्धादैतवाद) के द्वारा अपने ब्रह्मस्वरूप आत्मा श्रीकृष्णमें मन-बुद्धिको लगाओ । जैसे जितने भी छिन या अवकाश हैं वे आकाशमें ही स्थित हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण चेतन (जीवात्मा) सर्वात्मा ब्रह्मरूप श्रीकृष्णमें ही स्थित है ॥ १२ ॥ जैसे गङ्गाजीके तटपर खड़ा हुआ गङ्गाजीका उपासक उनके जल-प्रवाहमें देवीस्वरूपा गङ्गाका दर्शन प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार उपाधिनाश होनेपर जन विज्ञानका उदय होता है और सबकी ब्रह्मरूपताका बोध हो जाता है, उस समय शानी भक्त अपने भीतर परब्रह्म श्रीकृष्णका साक्षात्कार कर लेता है । जो संसारमें आसक्त रहकर भजन करता है, वह गङ्गाजीसे दूर रहनेवाले उपासककी भाँति प्रभुसे दूर रहकर अपेक्षित गङ्गा-जल आदि साधनोंके अभावसे दुखका भागी होता है ।

॥ सिद्धान्तमुक्तावली सम्पूर्ण ॥

—०५५—

पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः

पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषण पृथक्-पृथक् । जीवदेहकियाभेदैः प्रवाहेण फलेन च ॥ १ ॥ वक्ष्यामि सर्वेसंदेहा न भविष्यन्ति यच्छ्रुतेः । भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः ॥ २ ॥ द्वौ भूतसर्गवित्युक्तेः प्रवाहोऽपि व्यवस्थितः । वेदस्य विष्यमानत्वात्मर्यादापि व्यवस्थिता ॥ ३ ॥ कथित्वेव हि भक्तो हि 'यो मङ्गल' इतीरणात् । सर्वत्रोत्कर्पकथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः ॥ ४ ॥ न सर्वोऽतः प्रवाहाद्वि भित्रो वेदाच्च भेदतः । यदा यस्येति वचनान्नाहं वैरितीरणात् ॥ ५ ॥ मार्गेकत्वेऽपि वेदन्तर्यो तनु भक्त्यागमी मतौ । न तद्युक्तं सुत्रतो हि भित्रो युक्त्या हि वैदिकः ॥ ६ ॥ जीवदेहशूर्तीनां च भिजन्वं नित्यताश्रुतेः । यथा तद्वत् पुष्टिमार्गं द्वयोरपि निषेद्यतः ॥ ७ ॥ प्रमाणभेदात् भिजो हि पुष्टिमार्गो निरूपितः । सर्वभिदं प्रवक्ष्यामि स्वरूपाङ्गक्यायाशुतम् ॥ ८ ॥

अतः श्रीकृष्णके भागमें स्थित उपासकको चाहिये कि वह सब लोगोंके समर्पकसे अलग रहकर आत्मानन्द-समुद्रमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णका ही विशेष चिन्तन करे । यदि कोई लौकिक पदार्थोंकी इच्छा रखकर श्रीकृष्णका भजन करे तो वह सब प्रकारसे क्लेशका भागी होता है ॥ १३-१६ ॥ यदि क्लेशमें पड़ा हुआ मनुष्य भी श्रीकृष्णका भजन करे तो उसकी लोकात्मकि सर्वथा नष्ट हो जाती है । पुष्टिमार्गपर चलनेवाला पुरुष ज्ञानके अभावमें भगवान्मृकी पूजा तथा भगवत्सम्बन्धी उत्सव आदिमें संलग्न रहे ॥ १७ ॥ मर्यादा-मार्गपर चलनेवाले भक्तको तो गङ्गाजीके तटपर रहकर श्रीमद्भागवतके स्वाध्याय एवं भगवद्गति पुरुषोंके सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये । पुष्टिमार्गमें केवल श्रीभगवान्नका अनुग्रह नियामक है (अतः उसे भगवत्कृपाका ही आशाभरोसा रखकर भजनमें लगे रहना चाहिये)—यही व्यवस्था है ॥ १८ ॥ मर्यादा और पुष्टि—दोनों मार्गोंमें (अथवा ज्ञानी और भक्त—दोनोंके लिये) क्रमशः पूर्वोक्त भक्ति या मानसिक सेवा ही फल देनेवाली होगी; इसलिये यहाँ ज्ञानकी अपेक्षा भक्तिमार्ग ही श्रेष्ठ है, इस बातका निरूपण किया गया है ॥ १९ ॥ भक्तिके अभावमें मनुष्य अपने दुष्कर्मोद्धारा अन्यथा भावको प्राप्त होकर उत्तम ख्यानसे भ्रष्ट हो जाता है—ठीक वैसे ही, जैसे गङ्गाजीके तटपर स्थित रहनेवाला पुरुष यदि गङ्गामें उसकी आन्तरिक भक्ति न हो तो दुष्टतापूर्ण कर्मोद्धारा पाखण्ड आदिको प्राप्त हो परिव्रत ख्यानसे नीचे गिर जाता है ॥ २० ॥ इस प्रकार मैंने अपने शास्त्रके सर्वस्व सामूहिक गूढ़ सिद्धान्तका निरूपण किया है । इसे जान लेनेपर मनुष्य सब प्रकारके संशयसे मुक्त हो जाता है ॥ २१ ॥

इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सुष्ठवान् हरिः । वचना वेदमार्गं हि पुष्टि कायेन निश्चयः ॥१॥
 मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च । कायेन तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि नैकधा ॥२॥
 तानहं द्विष्टतो वाक्याद् भिन्ना जीवाः प्रवाहिणः । अत एवेतरौ भिन्नौ सात्त्वौ मोक्षप्रवेशतः ॥३॥
 तस्साज्जीवाः पुष्टिमार्गं भिन्ना एव न संशयः । भगवद्वप्सेवार्थं तत्स्त्रिन्नन्यथा भवेत् ॥४॥
 स्वरूपेणावतारेण लिङ्गेन च गुणेन च । तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु च ॥५॥
 तथापि यावता कार्यं तावत् तस्य करोति हि । ते हि द्विधा शुद्धमिश्रभेदान्मिश्राद्यिधा पुनः ॥६॥
 प्रवाहादिविभेदेन भगवत्कार्यसिद्धये । पुष्ट्या विभिन्नाः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारताः ॥७॥
 मर्यादया गुणशास्ते शुद्धाः प्रेमणातिदुर्लभाः । एवं सर्गस्तु तेषां हि फलं त्वं निरूप्यते ॥८॥
 भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेद् भुवि । गुणस्वरूपसेदेन तथा तेषां फलं भवेत् ॥९॥
 आसक्तौ भगवानेव शार्पं दापयति कवित् । अहङ्करेऽथवा लोके तन्मार्गस्थापनाय हि ॥१०॥
 न ते पाषण्डतां यान्ति न च रोगाद्युपद्रवाः । महानुभावाः प्रायेण शार्पं शुद्धत्वहेतवे ॥११॥
 भगवत्सारतम्येन तारतम्यं भजन्ति हि । लौकिकत्वं वैदिकत्वं काषण्डात् तेषु नान्यथा ॥१२॥
 वैष्णवत्वं हि सहजं ततोऽन्यत्र विपर्ययः । सम्बन्धिनस्तु ये जीवाः प्रवाहस्थास्तथापरे ॥१३॥
 चर्षणीशब्दवाच्यास्ते ते सर्वे सर्ववर्त्मसु । क्षणात् सर्वत्वमायान्ति स्त्रिस्तेषां न कुत्रिचित् ॥१४॥
 तेषां क्रियानुसारेण सर्वत्र सकलं फलम् । प्रवाहस्थान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपाङ्गक्रियायुतान् ॥१५॥
 जीवास्ते ह्यासुराः सर्वे प्रवृत्तिं वेति वर्णिताः । ते च द्विधा प्रकीर्त्यन्ते ह्यशुद्धविभेदतः ॥१६॥
 दुर्जास्ते भगवत्योक्ता ह्यशास्ताननु ये पुनः । प्रवाहेऽपि समागत्य पुष्टिस्थैर्न युज्यते ॥१७॥

सोऽपि तैस्तत्कुले जातः कर्मणा जायते यतः ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमद्भुमान्चार्यविरचितः पुष्टिप्रवाहमर्यादभेदः सम्पूर्णः ॥

(अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

अब मैं जीव, शरीर और कियाओंके भेद, प्रवाह तथा का निरूपण करते हुए पुष्टि, प्रवाह और मर्यादा—इन गों मार्गोंका पृथक्-पृथक् वर्णन करूँगा । साथ ही वह भी ऊँग कि वे तीनों मार्ग एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं, कि श्रवण करने मात्रसे सब प्रकारके संदेह दूर हो जे । शास्त्रोंमें भक्तिमार्गका प्रतिपादन होनेसे पुष्टिमार्ग-सत्त्वाका निश्चय होता है ॥ १—२ ॥ श्रीमद्भगवद्गीतामें भृतसगांगे इत्यादि ऋकोंके द्वारा दैवी और आसुरी—दो दिसुष्टियोंका उल्लेख किया गया है; इससे प्रवाह-की भी स्थिति सूचित होती है । वर्णाश्रमादि धर्म-मर्यादा-तिपादक वेद आज भी विद्यमान हैं, अतः मर्यादामार्ग-सत्त्वा भी सुनिश्चित ही है ॥ ३ ॥ गीतामें कहा गया है—क्षौं साधकोंमेंसे कोई एक ही मेरा भक्त मुझे ठीक-ठीक पाता है । ‘जो मेरा भक्त है, वह मूल्ये ग्रिय है’ । गानके इस कथनसे तथा सर्वत्र भगवत्कृपापर निर्भर रहने-भक्तोंके उत्कर्षका भगवान्के श्रीमुखसे ही वर्णन होनेसे

‘पुष्टिमार्ग’ है, यह निश्चय होता है ॥ ४ ॥ श्रीमद्भागवती कहा गया है कि ‘भगवान् जब जितपर अनुग्रह करते हैं तब वह लौकिक और वैदिक फलोंकी आलक्षि (अथवा लोकवैदेश की आस्ता) को त्याग देता है ।’ गीताका भी वचन है कि ‘अर्जुन ! तुमने जिस प्रकार मेरा दर्शन किया है, वैसा मेरा दर्शन किसीको वेदाध्ययन, तपस्या, दान अथवा यज्ञसे भी नहीं हो सकता ।’ इन वचनोंसे सिद्ध होता है कि सब नहीं कोई कोई ही भगवत्कृपासे उनके दर्शनका अधिकारी बन पाता है । अतः स्पष्ट है कि पुष्टिमार्ग प्रवाहसे भिन्न है । वेद अर्याद मर्यादामार्गसे भी उसका भेद है ॥ ५ ॥ यदि कहें, तीनों मार्गोंकी एकता स्वीकार कर ली जाय तो भी कोई इनि नहीं है, क्योंकि अन्तिम दोनों मार्ग (प्रवाहमार्ग और मर्यादामार्ग) पुष्टिमार्गकी अपेक्षा कुर्वल होनेपर भी भक्तीं प्राप्ति करानेवाले ही माने गये हैं, तो यह कहना युक्तिमात्र नहीं है । क्योंकि भक्तिसूत्रके प्रभाणसे तथा युक्तिए भी ऐसा है कि वेदोक्त मर्यादामार्ग पुष्टिमार्गसे भिन्न है ॥ ६ ॥ ऐसे

श्रुतिसे यह सिद्ध है कि जीव, उनके शरीर और उनके कर्म परस्पर भिन्न हैं, परंतु जीवात्मा नित्य है, उसी प्रकार पुष्टिमार्गमें जोप्रदी मार्गोंका निषेध होनेसे तथा उनके प्रमाणोंमें भेद होनेसे पुष्टिमार्गको प्रवाह और मर्यादासे भिन्न प्रतिवादित किया गया है।

अब मैं स्वरूप, अङ्ग और क्रियासहित जीवोंके सुष्टिभेदका वर्णन करूँगा। श्रीहरिने मनके संकल्पमात्रसे प्रवाहकी सृष्टि की है। वाणीसे वेदमार्ग (मर्यादामार्ग) को प्रकट किया है और अपने श्रीअङ्गसे पुष्टिमार्गको उत्पन्न किया है। यह निश्चित मत है ॥ ७—९ ॥ संवारका अनादि प्रवाह परावर्दित्तात्मे उनके मनसे उत्पन्न हुआ है; अतः लोकमें उस मूल इच्छाके अनुसार ही फल प्रकट होता है; वैदिक (मर्यादा) मार्गपर चलनेसे वेदोक्त फलकी प्राप्ति होती है तथा पुष्टिमार्गमें भगवान्के श्रीविष्णवद्वाया फल प्रकट होता है। इस प्रकार फलप्राप्तिकी इच्छाओं वा उद्धमस्थानोंमें भेद होनेसे भी उक्त तीनों मार्गोंको एक नहीं माना जा सकता ॥ १० ॥ गीतामें कहा है—“मैं उन देव करनेवाले अनुभ एवं कूर नरावमोक्तो संसारके भीतर सदा आसुरी योनियोंमें ही ढाल करता हूँ” इस भगवद्वचनसे सिद्ध होता है कि प्रवाहमार्गीय जीव भिन्न हैं; इसीसे यह भी सूचित होता है कि मर्यादामार्ग और पुष्टिमार्गके जीव भी परस्पर भिन्न हैं। साथ ही उनका जीवभाव सान्त (अन्तवान्) है; क्योंकि सोक्षके समय वे भगवान्में प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥ अतः पुष्टिमार्गमें भी जीव भिन्न ही हैं, इसमें संशय नहीं है। भगवत्स्वरूपकी सेवाके लिये ही उनकी सृष्टि हुई है, इसके सिद्ध और कोई उनकी सृष्टिका प्रयोजन नहीं है ॥ १२ ॥ रूप, अवतार, चिह्न और गुणकी वृद्धिसे उनके स्वरूपमें, शरीरमें अथवा उनकी क्रियाओंमें कोई तारतम्य (न्यूनाधिक भाव) नहीं होता है ॥ १३ ॥ तथापि जितना जितके लिये आवश्यक है, उसके लिये उतना तारतम्य भगवान् स्वयं ही कर देते हैं। पुष्टिमार्गीय जीव दो प्रकारके होते हैं—शुद्ध और मिश्र। मिश्र पुष्टिमार्गीय जीवोंके फिर तीन भेद होते हैं—पूर्णमिश्र पुष्टि, मर्यादामिश्र पुष्टि और प्रवाहमिश्र पुष्टि ॥ १४ ॥ भगवत्कार्यकी सिद्धिके लिये प्रवाह अदिके भेदसे ये तीन भेद बनते हैं। पुष्टिमिश्रपुष्टि जीव सर्वज्ञ होते हैं। प्रवाहमिश्रपुष्टि जीव सत्कर्मोंके अनुग्राममें लो रहते हैं ॥ १५ ॥ मर्यादामिश्रपुष्टि जीव भगवद्गुणोंके वाता होते हैं। शुद्ध पुष्टिमार्गीय जीव

भगवत्येससे परिपूर्ण होनेके कारण अत्यन्त दुर्लभ हैं। इस प्रकार जीवोंके सर्वभेदका वर्णन किया गया। अब श्रहं उनके फलका निरूपण किया जाता है ॥ १६ ॥

भगवान् ही पुष्टिमार्गीय जीवोंके अभीष्ट फल हैं। वे हस भूतलपर जिस रूपमें अवतीर्ण होते हैं, उसी रूपसे गुण और स्वरूपके भेदसे जीवोंका जैसा अधिकार है, उसके अनुसार उन्हें फलरूपमें प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ यदि लोकमें उन जीवोंमेंसे किसीको आलक्षि या अहंकार हो तो उसे राघवर लानेके लिये भगवान् ही कमीकमी शाप दिल देते हैं ॥ १८ ॥ शापग्रस्त होनेपर भी वे महानुभाव भक्त पात्तण्डी नहीं होते, रोग आदि उपद्रवोंके भी शिकार नहीं होते। उनकी शुद्धिके लिये प्रायः श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंका स्वाध्याय ही साधन कहा गया है ॥ १९ ॥ भगवान्के तारतम्यसे ही वे तारतम्य धारण करते हैं। पुष्टिमार्गीय जीवोंका लौकिक या वैदिक कर्मोंमें लोगे रहना दिखावामात्र है (वास्तवमें भगवान् के सिवा अन्य किती वस्तुमें उनका प्रेम नहीं होता)। अन्यथा उनमें उन कर्मोंकी कोई संगति नहीं है ॥ २० ॥ वैष्णवता (श्रीकृष्णपरायणता) ही उनका सद्बज धर्म है। उससे भिन्न स्थलोंमें उनकी स्वाभाविक रुचि नहीं है। वे भिन्न सम्बन्धोंमें वैष्ण द्वारा विद्युत जीव हैं, वे “चर्वणी” कहलाते हैं। (“चर्वणी” का अर्थ करछुल है, करछुल जैसे भोजन और व्यञ्जनमें दूधी रहनेपर भी उसके रसका आखादन नहीं करती, उसी प्रकार) वे सब चर्वणी जीव क्षण भरमें सभी मार्गोंमें जाकर तदनुरूप हो जाते हैं; तथापि उनकी स्वाभाविक रुचि कहीं भी नहीं होती ॥ २१—२२ ॥ उन्हें अपनी क्रियाके अनुसार सर्वत्र सभी फल प्राप्त होते हैं।

अब मैं प्रवाहमार्गमें स्थित जीवोंका उनके स्वरूप, अङ्ग और कर्मोंके सहित वर्णन करूँगा ॥ २३ ॥ वे उभी जीव आसुर कहे गये हैं, जिनका गीतामें पृथ्वीति च निवृत्ति च इत्यादि शोकोद्धारा वर्णन किया गया है। वे आसुर जीव दो प्रकारके हैं, अज और दुर्ज ॥ २४ ॥ भगवान्ने श्रीमुखसे जिन आसुर जीवोंका वर्णन किया है, वे दुर्ज हैं; जो उनका अनुकरण करते हैं, वे अज हैं। प्रवाह (जगत्) में अकार भी पुष्टिमार्गीय जीव ऐसे लोगोंसे भेल-जोड़ नहीं रखता है ॥ २५ ॥ क्योंकि उनके संसरसे वह भी उन्होंके कुलमें उत्सन्न होकर कर्मसे भी असुर बन सकता है ॥ २६ ॥

(पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद सम्पूर्ण)

सिद्धान्तरहस्यम्

श्रावणस्थाले पक्षे पकादद्यां महानिशि । साक्षाद् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश्च उच्यते ॥ १ ॥
 ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः । सर्वदोषनिवृत्तिर्हिं दोषाः पञ्चविद्याः स्मृताः ॥ २ ॥
 सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः । संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कथञ्चन ॥ ३ ॥
 अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन । असमर्पितवस्तूनां तस्माद् वर्जनमाचरेत् ॥ ४ ॥
 निवेदिभिः समर्पयेव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः । न मतं देवदेवस्य सामिभुक्तसमर्पणम् ॥ ५ ॥
 तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम् । दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः ॥ ६ ॥
 न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम् । सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिद्धति ॥ ७ ॥
 तथा कार्यं समर्पयेव सर्वेषां ब्रह्मता ततः । गङ्गात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवणना ॥ ८ ॥

गङ्गात्वेन निरूप्या स्यात् तद्वदत्रापि चैव हि ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमद्भूमात्मार्यविरचितं सिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम् ॥

(अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

श्रावणके शुक्रपक्षकी एकादशी तिथिको आधीरातके समय साक्षात् भगवान् ने जो बात कही थी, उसे यहाँ अक्षरश्च बताया जा रहा है ॥ १ ॥ सबके शरीर और जीवका ब्रह्मके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेसे (ब्रह्मार्पण कर देनेसे) सब प्रकारके दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है । दोष पाँच प्रकारके कहे गये हैं ॥ २ ॥ सहज, देश-कालसम्भूत, लोकवेदनिरूपित, संयोगज और स्पर्शज—ये पाँचों दोष किसी तरह भी अज्ञीकार करने योग्य नहीं हैं ॥ ३ ॥ ब्रह्म-सम्बन्ध (भगवत्समर्पण) किये बिना किसी प्रकार भी सब दोषोंकी निवृत्ति नहीं हो सकती; अतः जो वस्तुएँ भगवान् के अर्पण न की गयी हों, उनका सर्वथा परित्याग करे ॥ ४ ॥ जो आत्मनिवेदन (ब्रह्म-सम्बन्ध) कर चुके हों, ऐसे लोगोंको सब वस्तुएँ भगवान् के अर्पित करके ही अपने उपयोगमें लानी चाहिये । यही भक्तका आचार है । जिसमेंसे आधे भागका उपयोग कर लिया गया हो, ऐसी वस्तुका देवाधिदेव भगवान् के लिये अर्पण करना कदापि

(सिद्धान्तरहस्य सम्पूर्ण)

उचित नहीं है ॥ ५ ॥ इसलिये सभी कायोंमें पहले सब वस्तुओंको भगवान् की सेवामें समर्पित करना चाहिये । प्रत्यादरूपसे उनका उपयोग करनेमें दत्तापहार (दिये हुएका अपहरण) रूप दोष नहीं आता; क्योंकि सभी वस्तुओंके स्वामी सदा श्रीहरि ही हैं (अतः उन्हींकी वस्तु उन्हें दी जाती है) ॥ ६ ॥ द्वी हुई वस्तु नहीं ग्रहण करनी चाहिये । यह वचन भक्तिमार्गसे भिन्न खलोंसे सम्बन्ध रखता है । जैसे लोकमें सेवकोंका व्यवहार चलता है (वे स्वामीको उनकी वस्तु समर्पण करके उनके देनेपर स्वयं उसका उपयोग करते हैं) उसी प्रकार सब कुछ भगवान् को समर्पित करके ही प्रत्यादरूपमें ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकार समर्पण करनेसे सभी वस्तुएँ ब्रह्मरूप मानी गयी हैं । गङ्गाजीमें पहनेपर सभी दोष गङ्गारूप हो जाते हैं । उन गुण-दोषोंका वर्णन भी गङ्गारूपसे ही करनेयोग्य है । उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिये (अर्थात् ब्रह्मसम्बन्धसे सब कुछ ब्रह्म ही हो जाता है, यह जानना चाहिये) ॥ ७-९ ॥

नवरत्नम्

चिन्ता कापि न कार्योनिवेदितात्मभिः कदापीति । भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकों च गतिश्च ॥ १ ॥
 निवेदनं तु स्तरव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः । सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति ॥ २ ॥
 सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो न प्रत्येकमिति स्थितिः । अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपि चेत् ॥ ३ ॥
 अज्ञानादथवा ज्ञानात् कृतमात्मनिवेदनम् । यैः कृष्णसात्कृतप्राणैस्तेषां का परिदेवना ॥ ४ ॥
 तथा निवेदने चिन्ता त्यज्या श्रीपुरुषोत्तमे । विनियोगेऽपि सा त्यज्या समर्थो हि दृष्टिःखतः ॥ ५ ॥
 लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति । पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात् साक्षिणो भवतात्मिलाः ॥ ६ ॥

सेवाकृतिगुरुरेश्वा वाधनं वा हरीच्छया । अतः सेवापरं चित्तं विद्याय स्थीयतां सुखम् ॥ ७ ॥
चित्तोद्वेगं विद्यायापि हरिष्वद्यत् करिष्यति । तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्वजेत् ॥ ८ ॥
तस्मात् सर्वात्मता चित्तं श्रीकृष्णः शरणं मम । बद्धिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमद्भूमाचार्यविरचितं नवरत्नं सम्पूर्णम् ॥

(अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

जिन्होंने भगवान्को आत्मसमर्पण कर दिया है, उन्हें दिया है, उनके प्राण श्रीकृष्णके अधीन हो गये हैं; अतः उन्हें अपनी रक्षाके लिये क्या चिन्ता अथवा शोक है ? ॥ ३-५ ॥

भी किसी वातकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये । भगवान् भी दा अनुग्रह करनेमें तत्पर हैं, वे अपने शरणागत भक्तोंकी गैकिक (अमक्त जनोंकी भाँति साधारण) गति नहीं रंगे ॥ १ ॥ वैसे आत्मनिवेदनशील पुरुषोंको सर्वथा इस वातका सरण रखना चाहिये कि हमारा जीवन भगवान्को उपर्युक्त है । सबके ईश्वर और सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपनी इच्छासे जैसी उचित समझेंगे वैसी ही सेवकके लिये सब व्यवस्था करेंगे ॥ २ ॥ सबका भगवान्को सम्बन्ध है, किसी एकका ही नहीं, यही वस्तुस्थिति है । अतः भगवदिच्छासे यदि दूसरेके लिये किसी वस्तुका उपयोग हो गया तो अपने लिये अपनेको वया चिन्ता है; क्योंकि वह दूसरा भी तो भगवान्का ही है । (जैसे उसके लिये भगवान् कुछ करते हैं, वैसे मेरे लिये भी स्वयं करेंगे । मैं क्यों चिन्ता करूँ ?) जिन्होंने विना जाने अथवा जान-बूझकर भगवान्को आत्मसमर्पण कर

(नवरत्नं सम्पूर्ण)

इसी प्रकार श्रीपुरुषोत्तमके लिये निवेदन या अन्यके लिये विनियोगके विषयमें भी चिन्ता त्याग देनी चाहिये; क्योंकि श्रीहरि स्वतः सब कुछ करनेमें समर्थ हैं ॥ ५ ॥ भगवान् लोक अथवा वेदमें भी स्वस्थता नहीं करेंगे; क्योंकि वे पुष्टिमार्य (अनुग्रहके पथ) में स्थित हैं, इस वातके सब लोग साक्षी रहें ॥ ६ ॥ हरि-इच्छासे भगवान्की सेवा बने, गुरुकी आशाका पालन हो अथवा उसमें कोई वाधा पड़ जाय—यह सब कुछ सम्भव है, अतः चिन्ता न करे । चित्तको सेवापरायण बनाकर सुखसे रहे ॥ ७ ॥ चित्तमें उद्देश ढालकर भी भगवान् जो-जो करेंगे, वैसी ही उनकी लीला हो रही है—ऐसा मानकर तत्काल चिन्ता त्याग देनी चाहिये ॥ ८ ॥ इसलिये सब प्रकारसे सदा ‘श्रीकृष्ण’ ही मेरे लिये शरण हैं, इसका निरन्तर जप करते हुए ही स्थिर रहना चाहिये । वही मेरा मत है ॥ ९ ॥

अन्तःकरणप्रबोधः

अन्तःकरण मद्भाक्यं सावधानतया शृणु । कृष्णात् परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम् ॥ १ ॥
चाण्डाली चेद् राजपत्नी जाता राजा च मानिता । कदाचिद्दप्तमानेऽपि मूलतः का क्षतिर्भवेत् ॥ २ ॥
समर्पणदहूँ पूर्वसुक्तमः किं सदा स्थितः । का ममाध्यमता भव्या पश्चात्तापो यतो भवेत् ॥ ३ ॥
सत्यसंकल्पतो विष्णुर्नान्यथा तु करिष्यति । आशैव कार्या सततं स्वामिद्वैहोऽन्यथा भवेत् ॥ ४ ॥
सेवकस्य तु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति । आशा पूर्व तु या जाता गङ्गासागरसङ्घमे ॥ ५ ॥
यापि पश्चान्मुखने न कुर्तं तद् द्वयं मया । देहदेशपरित्यागस्तृतीयो लोकगोचरः ॥ ६ ॥
पश्चात्तापः कथं तत्र सेवकोऽहं न चान्यथा । लौकिकप्रभुवत् कृष्णो न द्रष्टव्यः कदाचन ॥ ७ ॥
सर्वे समर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि सुखी भव । ग्रौढापि दुहिता यद्यत् स्नेहान्न प्रेष्यते वरे ॥ ८ ॥
तथा देहे न कर्तव्यं धरस्तुष्यति नान्यथा । लोकवच्चेत् श्चित्तिर्म स्यात् किं स्यादिति विचारय ॥ ९ ॥
अशक्ये हरिरेवास्ति मोहं मा गा: कथञ्चन । इति श्रीकृष्णदासस्य बलभस्य हितं वचः ॥ १० ॥
चित्तं प्रति यदाकार्यं भक्तो निधिन्ततां वजेत् ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमद्भूमाचार्यविरचितान्तःकरणप्रबोधः सम्पूर्णः ॥

(अनुवादक—पाण्डेय व० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

मेरे अन्तःकरण ! तुम सावधान होकर मेरी बात सुनो । वास्तवमें श्रीकृष्णसे बढ़कर दूसरा कोई दोषरहित देवता नहीं है ॥ १ ॥ यदि कोई चाण्डाल-कन्या राजाकी पनी हो गयी और राजा ने उसे सम्मान दे दिया तो उसका महस्य तो बढ़ ही गया । फिर कदाचित् राजद्राश उसका अपमान भी हो तो भी मूलतः उसकी क्या हानि हुई ? (वह पहले ही कौन बड़ी सम्मानित थी ! इस समय तो चाण्डालीसे रानी बन गयी ! अब रानीसे चाण्डाली नहीं हो सकती) ॥ २ ॥ भगवान् को आत्मसमर्पण करनेसे पूर्व मैं क्या सदा उत्तम ही रहा ? और अब उम्मेद में किस अधिष्ठाता की सम्भावना हो गयी, जिसके लिये पश्चात्ताप हो ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सत्यसंकल्प हैं, वे अपनी सच्ची प्रतिज्ञाके विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे । अतः हम लोगोंको सदा उनकी आज्ञाका ही पालन करना चाहिये; अन्यथा स्वामीसे द्रोह करनेका अपराध होगा ॥ ४ ॥ सेवक-का तो यही धर्म है कि वह स्वामीकी आज्ञाका पालन करे । स्वामी अपने कर्तव्यका पालन स्वयं करेंगे । पूर्वकालमें गङ्गासागरसङ्क्रमण और फिर वृन्दावनमें मेरे लिये जो आज्ञाएँ ग्रात हुईं, उन दोनोंका पालन मुश्खसे न हो सका ।

देह और देशके परित्यागके सम्बन्धमें जो तीसरा भादेश है वह सब लोकोंके समक्ष है ॥ ५-६ ॥ मैं तो सेवक हूँ, जो स्वामीकी आज्ञाके विपरीत कुछ नहीं कर सकता, जिसे पश्चात्ताप कैसा ? श्रीकृष्णको लौकिक प्रभुओंकी भाँति कहाँ नहीं देखना चाहिये । यदि भक्तिभावसे तुमने उस रुद्ध भगवान्‌को सौंप दिया, तो कृतार्थ हो गये । अब हुंदे रहो । जैसे कोई-कोई माता-पिता ज्ञेहाधिक्यके काम सायानी कन्याको भी उसके पतिके पास नहीं भेजते (और वरको असंतुष्ट होनेका अवसर देते हैं) वही वर्तमान शशीरके विषयमें भी नहीं करना चाहिये । अर्थात् मगता ये आसक्तिवश इस शशीरको अपने स्वामी श्रीकृष्णकी सेवामें लगानेसे न चूके; अन्यथा वर असंतुष्ट हो जायगा । मेरे मन, यदि साधारण लोगोंकी ही भाँति मेरी भी स्थिति रही तो वह होगा, यह तुम स्वयं विचार लो ॥ ७-९ ॥ अशक्तावशसे श्रीहरि ही एकमात्र सहायक है । अतः तुम्हें किसी प्रकार मोहमें नहीं पड़ना चाहिये । यह चित्तके प्रति श्रीकृष्णदास बहुमका बचन है, जिसे सुनकर भक्त पुरुष चित्तार्पित हो जाता है ॥ १०-११ ॥

(अन्तःकरणप्रबोध सम्पूर्ण)

विवेक-धैर्याश्रय-निरूपण

विवेकधैर्यं सततं रक्षणीये तथाश्रयः । विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति ॥ १ ॥
 प्रार्थिते वाततः कि स्यात् स्वाम्यमिग्रायसंशयात् । सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च ॥ २ ॥
 अभिमालश्च संत्याज्यः स्वाम्यधीनत्वभावनात् । विशेषतश्चेदाज्ञा स्यादन्तःकरणगोचरः ॥ ३ ॥
 तदा विशेषगत्यादि भाव्य भिन्नं तु हैहिकात् । आपद्वगत्यादिकार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा ॥ ४ ॥
 अनाश्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्मग्रदर्शनम् । विवेकोऽयं समाख्यातो धैर्यं तु विनिरूप्यते ॥ ५ ॥
 त्रिदुःखसहनं धैर्यमासृतेः सर्वतः सदा । तकवद् देहवद् भाव्यं जडवद् गोपभार्यवत् ॥ ६ ॥
 प्रतीकारो यद्वच्छातः सिद्धश्चेत्प्राप्ती भवेत् । भार्यादीनां तथान्येषामसतश्चाक्रमं सहेत् ॥ ७ ॥
 स्वयमिन्द्रियकार्याणि कायचाल्लानसा त्यजेत् । अशूरेणापि कर्तव्यं स्वस्यासामर्थ्यभावनात् ॥ ८ ॥
 अशक्ये हरिरेवास्ति सव्यमाश्रयतो भवेत् । एतत् सहनमत्रोक्तमाश्रयोऽतो निरूप्यते ॥ ९ ॥
 ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः । दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे ॥ १० ॥
 भक्तद्वेषे भक्त्यभावे भक्तैश्चातिकमे कृते । अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः ॥ ११ ॥
 अहंकारकृते चैव पोष्यपोषणरक्षणे । पोष्यातिकमणे चैव तथान्तेवास्यतिकमे ॥ १२ ॥
 अलौकिकमनःसिद्धौ सर्वार्थं शरणं हरिः । एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत् ॥ १३ ॥
 अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च । प्रार्थनाकर्यमाचेऽपि ततोऽन्यद्विवर्जयेत् ॥ १४ ॥

अधिश्वासो म कर्तव्यः सदया वाधकस्तु सः । ब्रह्माचारात्मकौ भाव्यौ प्राप्तं संवेत निर्ममः ॥ १५ ॥
यथाकर्थचित् कार्यीणि कुर्यादुच्चावचान्यपि । किं वा प्रोक्तेन वहुना शरणं भवयेद्विरिम् ॥ १६ ॥
एवमाश्रयणं प्रोक्तं सर्वेषां सर्वदा हितम् । कलौ भक्त्यादिमार्गा हि दुस्साध्या इति मे मतिः ॥ १७ ॥
॥ इदं श्रीमद्भगवान्विरितं विवेकवैष्णवनिरूपणं समूजम् ॥

(अनुवादक—पाठेव प०० श्रीरामलालादामदत्तजी, शास्त्री)

सदा विवेक और वैर्यकी रक्षा करनी चाहिये । इसी प्रकार भगवान्मत्ता आश्रम लेकर रहना भी उचित है । भगवान् सब कुछ अपनी इच्छाएं करें, ऐसा विवर होना ही विकेत है ॥ १ ॥ जब स्वामी सर्वं ही तेवकर्ता इन्द्रा पूर्णं करते हैं तब उन्होंने मुँह खोलकर नीनेदेश भी उठाये अधिक कदा विलोग । स्वामीके अधिकारों को समझनेमें चेवकके सदा संशय रहता है । अतः वह उन्हें श्रीमुखोंसे प्राप्त हुई आश्रिता ही पालन करता है; परंतु स्वामी तो सर्वेषां है, पिर उन्होंने पार्थिवा करनेवाला वा आकर्षका । उनकी सर्वत्र पूँछ है; सब कुछ उन्होंना है और उन्होंने सब कुछ जानने तया करनेवाली शक्ति है ॥ २ ॥ मैं यहा स्वामीकी आश्रिती हूँ ऐसी भवना करके अहंकारका सब प्रभासे त्वयं करना चाहिये । शब्द आत्मकरणमें प्रभुकी कोई विशेष आशा स्फुरित हो। तो देह-सम्बन्धसे भिन्न भगवत्तन्मन्दी विशेष गति आदिती भवना करनी चाहिये । आधिकारिता आदि कर्मादें हठाता सर्वेषां त्वयं करना चाहिये ॥ ३-४ ॥ कर्मी भी आश्रित न रहना और सर्वत्र धर्मार्थवर्ग कहले ही बिनान करेणा—यह विवेक कहा गया है ।

अब वैर्यका निरूपण किया जाता है—॥ ५ ॥ सदा सब और सब हुए आधिकारिक, अधिदेविक और आत्माभिक—सीनों प्रकारसे दुखोंको मृत्युर्पर्वता सान्त्वनामुख सहाये रहना ईर्य कहलाता है । इसके द्वारात हैं—तक, शरीर जटभ्रत और गोपमार्या ॥ ६ ॥ यदि भगवान्मत्ती इच्छाएं दुखोंकी निवृत्तिका उत्तम सत्ता विद्य ही जाव तो उन दुखोंको भोगनेवा भी आश्रित न रहे । छो-पुत्रोंके दुखोंके तत्त्व दुर्घोषे भी अक्रमणद्वारा दुष्पाप सह ले ॥ ७ ॥ सर्वं यतीर्त, वाणी और मनके द्वारा हनिदर्योंके कामों (विद्यों) को त्वयं दे । अतामर्थको भी अपनी असमर्थताकी भवना करके विषयोंको सम्बन्ध देना चाहिये ॥ ८ ॥ जित कार्यके साधनमें हल्लोरा

(विवेक-धैर्य-निरूपण समूजम्)

* ये सेवनादेन विवेकसे दुखोंको संभव या और वे उससे कैसे नी गये थे, परंतु राजनको उपर विवेत न हुवा अतः उसमें भैरवी गोटी अंजीरसे उसे कैसे दिया । इससे भगवान्मत्ते अपना कृदन दीला का दिया । फल वह हुआ कि दुर्मालीने जा चुकत्ती भी गैरि दिया । एवं कविशास्त्री दीक्षिता उत्तराय है । चालकों नेतृत्व विशास-रहना है, वह वह उसकी प्यारी उत्तरायें द्यायेंगा वह सतात ही है, एवं दीक्षिता उत्तराय है ।

श्रीकृष्णाश्रमः

सर्वभार्तृपु लग्नेषु कलौ च खलधर्मिणि । पालण्डप्रसुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम ॥ १
 म्लेच्छाकालेषु देशेषु पापैकातिलयेषु च । सत्पीडावध्यलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ २
 गजादितीर्थवर्येषु दुष्टैरवावृतेष्विह । तिरोहिताविद्येषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ३
 अहङ्कारविमूढेषु सन्तु पापानुवर्तिषु । लाभपूजार्थयनेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ४
 आपरिज्ञाननन्देषु मन्त्रव्यवदत्योगिषु । तिरोहिताविद्येषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ५
 नानावादविमृष्टेषु सर्वकर्मव्रतादिषु । पापण्डैकप्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ६
 अजामिलादिदेवाणां नाशकोऽनुभवे स्थितः । शपिताविलमाहात्म्यः कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ७
 प्राकृताः सकला देवा गणितानन्दक वृहत् । पूर्णानन्दो हरिस्तसात् कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ८
 विषेकर्त्तर्यमक्ष्याविहितस्य विशेषतः । पापासक्षय दीनश्च कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ९
 सर्वसामर्थ्यसहितः सर्वत्रैवायिकार्थकृत् । शरणस्थानसुद्धारे कृष्ण विजापयामहम् ॥ १०
 कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेत् कृष्णसंनिधियो । तस्याव्यये भवेत् कृष्णहति श्रीबल्लभोऽत्रवीत् ॥ ११
 ॥ इति श्रीमद्भागवत्प्रिरचित श्रीकृष्णाश्रवत्सोत्रं सम्पूर्णम् ॥

इति दुष्टवर्याले कलिषुगमें साधनके सभी मार्ग नष्ट कैलक वापण्डके लिये प्रयत्नशील हैं । अतएव श्री गणे और लोगोंमें अत्यन्त पालण्ड फैल गया है । अतएव कृष्ण ही मेरे रक्षक हैं ॥ १ ॥ समस्त देश म्लेच्छोंके द्वाय जान्त हो गये और एक सात वापके निवासस्थान वन , सत्पुरुषोंकी लोगोंसे लोग व्यग्र हो रहे हैं । अतएव कृष्ण ही मेरे रक्षक हैं ॥ २ ॥ दुष्ट लोगोंके द्वाय आपेक गजादि श्रेष्ठ हीयोंके अविग्राहा देवता तिरोहित हो रहे हैं । अतएव श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक हैं ॥ ३ ॥ (इस य) सत्पुरुष भी अद्वितीये चिमूढ़ हो चले हैं । वापका उकरण कर रहे हैं और सांसारिक आम तथा पूजा प्राप नेके प्रयत्नमें लग गये हैं । अतएव श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक ॥ ४ ॥ मन्त्रोंका शान न होनेसे वे प्रायः लुप्त हो गये हैं । उनके और प्रोग अशात हैं तथा उनके वासविक वर्य और ता भी तिरोहित हो गये हैं । इस दरामें श्रीकृष्ण ही एक व मेरे आश्रय है ॥ ५ ॥ नाना भवद्याहोंके कारण समस्त ग्रीय कर्म और वत आदिका नाश हो गया है । लोग

(श्रीकृष्णाश्रय सम्पूर्ण)

चतुःश्लोकी

सर्वदा सर्वभावेव भजन्नायो भजाविषः । स्वस्याययेव धर्मो हि नान्यः कापि कदाचत ॥ १ ॥
 एवं सदा स्त्र कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यते । प्रमुः सर्वसामयो हि ततो लिङ्घन्तत्वं यजेत् ॥ २ ॥
 यदि श्रीगोकुलार्थीशो वृद्धः सर्वात्मना द्विदि । ततः किमपरं व्रहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ॥ ३ ॥
 अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वरप्रापद्योः । स्वरणं भजनं लापि न व्याप्तमिति मे भावितः ॥ ४ ॥
 ॥ इति श्रीमद्भागवत्प्रिरचित चतुःश्लोकी सम्पूर्ण ॥

(अनुवादक—प्राप्तेय पं० श्रीरामनारायणदत्तनी शास्त्री)

सदा सर्वतोभाषीन (इदयके सम्पूर्ण अनुग्रहके साथ)
वजेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी ही आराधना करनी चाहिये ।
आपना (जीव-मात्रका) यही धर्म है । करी कहों भी
इसके लिया दूरा धर्म नहीं है ॥ १ ॥ सदा ऐसा ही
(सम्पूर्णभाषणे भगवानका भजन ही) करना चाहिये ।
प्रभु श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान् है, वे सर्व ही इमारी संभाल
सकते हैं । ऐसा सर्वानन्द आपने योग्योद्धी और वे निश्चिन-

(चतुर्थलोधी संस्कृती)

भारतीय धिनी

यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्याद् तथोपायो निरुच्यते । वीजमावे द्वहे तु स्याद् त्यागाच्छ्रवणकीरतनात् ॥ १ ॥
 वीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहे शिखा सर्वमर्तः । अश्वाहुत्तो भजेत् द्रवणं पूजया श्रवणादिभिः ॥ २ ॥
 व्यावृत्तोऽपि हरौविचं श्रवणाद्वै यतेव सदा । ततः प्रेम तथासकिर्व्यसनं च यदा भवेत् ॥ ३ ॥
 वीजं तदुच्यते शाखे द्वहं उज्जापि नद्यति । स्नेहाद् रामविनाशः स्याद् गृहावनिः ॥
 गृहस्थानं वाप्तकर्त्तव्यमनात्मत्वं च भासते । यदा स्याद् क्ष्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात् तदैव हि ॥ ५ ॥
 तादृशस्थापि सततं गृहस्थानं विनाशकम् । स्यां शृत्वा यतेव वस्तु तद्वर्थैर्कमलसः ॥ ६ ॥
 लभते सुद्धां भक्ति सर्वतोऽप्यविद्यां प्रगाम । त्यगे वाप्तकर्मयस्त्वं दुःसंसर्गात् तथान्तः ॥ ७ ॥
 अतः स्येवं हरिस्यामे तदीयैः सह तप्तपैः । अद्वैते विप्रकर्त्तै वा यथा नितं च दुष्यति ॥ ८ ॥
 सेवायां वा कथयां वा यस्यासकिर्दण्डं भवेत् । यावज्जीवं तस्य नाशो न काशीति मरिर्मम ॥ ९ ॥
 वावसभावनायां तु नैकान्ते वास इष्यते । हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः ॥ १० ॥
 इत्येवं भगवच्छालं गृहतत्वं निरुचितम् । य एतत् समधीयीत तस्यापि स्याद् द्वहा रतिः ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवतप्रिच्छिता भक्तिवर्धिनी सुखणा ॥

(अनुवादक—पण्डिय पै. श्रीरामलालाकांडसर्जी शास्त्री)

जिससे भक्तिमालकी हृदि हो, वैसे उमायका निरुपण
किया जाता है—वीजभाषकी हृद हीनेपर तथा व्याघरे और
भगवान्मने नाम, वश एवं लिला आदिके श्रवण-कीर्तनसे
भक्तिकी बृद्धि हो सकती है ॥ १ ॥ वीजभाषकी हृदताका
प्रकार यह है—परपर रहकर स्वर्म-पालनसे विमुख न
होकर भगवत्प्रसादी देहा-पृजा और भगवत्का-श्रवण
आदिके हृषी श्रीकृष्णका भजन करे ॥ २ ॥ जो कमोंके
अनुष्ठानसे दूर हटा हुआ है, वह भी भगवान्मने चित्त लगावे
और तदा उनके श्रवण-कीर्तन आदिके लिये प्रयत्नील रहे ।
इससे जब भगवान्मने प्रेम, आराधक और अस्तन हो जाते हैं,
तब वीजती हृदता होती है ॥ ३ ॥ शाश्वतमें उसी वीजतो
हृद करा जाता है, जो कभी नहीं होता । भगवान्मने
स्वेच्छे लेनेसे लौकिक रागाचित्ता नाश होता है और

पलमसुही कथमें लिखी जीवनभर हइ आणकि कर्ता सब ओरे रहा करोऽहमें अदिक ये रंगेन्
जहाँ हे उत्तम जपी करी भी नया (अपाधन) नहीं ॥ १० ॥ हर पकार गृह तस्मै परे दुर भावन्तः
होता ऐसा श्या विश्वास है ॥ १ ॥ ये दाकारी सम्भावना निरपाक दिय नया है । जे इस्ता अवधार फेणा चु
हो तो एकत्म में रहता अर्थहै नहीं है । भगवन् शीर्ष भी भगवन्ते द्वारा अनुष्ठान होता ॥ ११ ॥

(अस्तित्वानि समूह)

जलभेदः

भगवन्त्य हर्म वक्ष्ये तदग्न्यानां विशेषकान् । भावान् विशालाभिलात् सर्वेददेवतानां ॥ १ ॥
गुणभेदाल्पु तावन्तो यावन्तो हि जले भवतः । भगवान् कृपसंजाता गन्धवा इति विशुद्धा ॥ २ ॥
कृपमन्तस्तु चावस्तासावलस्तेऽपि समस्ताः । कुल्याः पौरीराजाः प्रोक्ताः पारमदयुत भुवि ॥ ३ ॥
क्षेत्रविश्वास्ते चापि संवादोपर्यचिह्नेवतः । वेदविश्विता भवता भावव गत्वसेवताः ॥ ४ ॥
जलायेष्व गवांस्तु तीवा गावेष्वान्विताः । हृदास्तु पण्डिताः प्रोक्ता भगवद्वज्ञातावापाः ॥ ५ ॥
संदेहवाकासत्र सदा गम्भीरमात्माः । सरः कमलसमूर्धाः प्रेमसुकासत्य तुष्टा ॥ ६ ॥
शतशुकुलः प्रेमसुका वेशनाः । कर्मगुदाः एवलक्षणं तथासंकुष्ठमकथः ॥ ७ ॥
योगावलादिसंयुक्ता गुण वर्णाः प्रकीर्तिताः । तपोकालादिप्रवेष्ट व्येदज्ञास्तु प्रकीर्तिताः ॥ ८ ॥
अर्हौकिरेन जातेन वे तु प्रोक्ता हरेश्वराः । कावदाचित्काः शब्दग्रामाः प्रकीर्तिताः ॥ ९ ॥
देवाद्युपासनेन्द्राः शूद्रा भूमेरिवेदतः । साक्षात्तदिश्वकारेण वशाभ्यक्तिमार्गतः ॥ १० ॥
प्रेममूर्धं स्फुरद्वासाः स्थन्दमानाः प्रकीर्तिताः । वायासासादाशाः प्रोक्ता वृद्धिभूषयिर्वर्णताः ॥ ११ ॥
श्वावरास्ते समाध्यात् समावैक्यवत्तिताः । अलेकजमसरिद्वा जन्मप्रवृत्ति दर्शदा ॥ १२ ॥
स्त्राहादिषुपदोषस्त्र्य वृद्धिशयगुणा भुवि । निरन्तरोद्यमयुता नद्यस्ते शरीकीर्तिताः ॥ १३ ॥
यताद्वासाः सदन्वास्तेन्द्रियन्वयः परिकीर्तिताः । पूर्णं समवदीया वे शेषव्यासाप्रिमात्माः ॥ १४ ॥
उद्वन्द्वैमैत्रायस्ते उद्धुवाः प्रकीर्तिताः । लोकदेवयुग्मैश्वर्यमावैके हरेश्वराः ॥ १५ ॥
वर्णयस्ति ससुद्धास्ते धारायाः पद्मप्रकीर्तिताः । युग्मातिततया शुद्धान् सविदानन्दद्वयाण ॥ १६ ॥
सद्विशेषं गुणान् विश्वार्थांश्चित विचक्षणाः । तेऽप्यतोदाः समाध्यादास्ताक्षयानं सुदृढं गमय ॥ १७ ॥
ताद्वासां छिन्निद वाक्यं द्रुतावासिम्ब वर्णतम् । अवामिलाकर्णवद् निरुपानं प्रकीर्तितम् ॥ १८ ॥
रायासामादिमात्माः सर्वत्र नाशनं यतः । तदा लेहामिस्तुकं स्वानन्ददेवताकाशाद् ॥ १९ ॥
उद्वृत्तोदेवक्षत् सर्वं पतिलोकवक्षत् तथा । उक्तालिरिक्तव्यापानि कलं चापि तथा ततः ॥ २० ॥
इति जीवेश्वराता नाताभावं नता भुवि । सरदा पलवद्वैष्व गुणा विष्णोर्मिश्विताः ॥ २१ ॥

(वद्वासक—पाठ्ये १८ वीरामावाप्तिराजीको लक्ष्मे चमूर्धः ॥

अब मैं अङ्गरिको नन्दका अरके उच्चारण गुणेण
हृष्टत्वे दी जली है ॥ २ ॥ कामे जिने में है
में दृष्टित जरोवले वीरं प्रकाके भावोका जे व्यतीर्णोंमें
उठने ही उनके जी हैं । वे जोर इति एहत ग्रन्ति
में दृष्ट्य शोक द्वय प्रकाके वीरेण्याका निवारण करोते हैं
एवराते युक्त होकर सुम्बकथा कहते हैं । उठने वर्ण
हैं वर्णन कहेगा ॥ ३ ॥ यद्यपि किन्तु विनियोग यह मने
जान याया गया है ॥ ४ ॥ इसे नदला पानी में
गये हैं उठने ही वक्तव्योंके भी विनाश यह है । गहर
एवनेपर लेहान्ते उड़जानेवाय होता है । उसी प्रद
करोवाले लोग भावावै नामसे विश्वात हैं । उठनी उमाम
परम्पराप्राप्त जीविकाके लिये कथा हड्डेवाले ऐराजिक द

संसारकी उत्पत्तिमें ही कारण होते हैं। जो वेश्या आदिके साथ रहकर उन्मत्तभावसे गान करनेवाले हैं, वे गढ़ोंके जलके समान हैं ॥ ४ ॥ गानसे जीविका चलानेवाले लोग उन गहरे गढ़ोंके समान हैं, जो गँदले जलके संग्रहके लिये ही बने होते हैं। परंतु जो भगवत्-शास्त्रोंके अनुशीलनमें तत्पर रहते हैं, उन पण्डितजनोंको अगाध जलसे परिपूर्ण हृद (सरोबर) कहा गया है ॥ ५ ॥ उनमें भी जो श्रोताओंके संदेहका निवारण करनेवाले, गम्भीर-हृदय तथा भगवत्प्रेमसे पूर्ण विद्वान् हैं, वे सच्छ जल और कमलोंसे भरे हुए सुन्दर सौतोंके समान हैं ॥ ६ ॥ जिन्होंने शाश्वात्ययन तो बहुत कम किया है, किंतु जो भगवान्‌के प्रेमी हैं, वे वेशन्त (छोटे जलाशय) के तुल्य कहे गये हैं। जिनमें शाश्वा-ज्ञान और भक्ति दोनों ही अल्पमात्रामें हैं, किंतु जो कर्मसे शुद्ध हैं, वे पल्लव (जङ्गलके छोटे-से तालब) के सदृश हैं ॥ ७ ॥ योग और ध्यान आदिसे संयुक्त गुण वर्षाके जलके समान बताये गये हैं। तप, ज्ञान आदि भावोंसे पुक्त गुणोंको स्वेदज (परीनेके जल) के तुल्य कहा गया है ॥ ८ ॥ कभी-कभी शब्दप्रमाणगम्य जो भगवदुण अलौकिक ज्ञानद्वारा वर्णित होते हैं, वे जलप्राप्ततके सदृश कहे गये हैं ॥ ९ ॥ देवता आदि-की उपासनासे उद्भूत होनेवाले गुण या भाव उपासकोंके नहीं हैं, तो भी उनके-से प्रतीत होते हैं। जैसे ओसके कण पृथ्वीसे नहीं प्रकट हुए हैं तथापि उससे उद्भूत हुए-से जान पड़ते हैं। साधन आदिके भेदसे नवधा भक्तिके मार्गसे चलकर प्रेमके रूपमें अभिव्यक्त होनेवाले जो भगवत्सरणरूपी स्वधर्म हैं, वे ज्ञानेनके समान कहे गये हैं। जिनमें भावकी वृद्धि या न्यूनता नहीं होती, इसीलिये जो जैसे-कै-तैसे कहे गये हैं तथा जो एकमात्र मर्यादामार्गमें ही प्रतिष्ठित हैं, उन्हें स्थान कहा गया है। जो अनेक जन्मोंसे पिण्डिके लिये प्रयत्नशील रहकर सदा जन्मसे ही साधनमें लगे रहते हैं तथा हस पृथ्वीपर सत्सङ्ग और कुसङ्ग आदिके

(जलभेद सम्पूर्ण)

पञ्चपद्मानि

श्रीशृणुरसविद्यिक्षमानसाऽरतिवर्जिताः । अनिर्वृता लोकवेदे ते मुख्याः श्रवणोत्सुकाः ॥ १ ॥
 त्तिःसंदिग्धं कृष्णतत्त्वं सर्वभावेन ये विदुः । ते त्वावेशात् तु विकला निरोधाद् वा न चान्यथा ॥ २ ॥
 विश्विभ्रमनसो ये तु भगवत्स्मृतिविद्वलाः । अर्थैकनिष्ठास्ते चापि मध्यमाः श्रवणोत्सुकाः ॥ ३ ॥
 पूर्णभावेन पूर्णार्थाः कदाचित्प तु सर्वदा । अन्यासकास्तु ये केचिदध्यमाः परिकीर्तिताः ॥ ४ ॥
 अनन्यभ्रमनसो भर्त्या उत्तमाः श्रवणादिपु । देशकालद्रव्यकर्तृमन्त्रकर्मप्रकारतः ॥ ५ ॥
 ॥ इति श्रीमद्भूमाचार्यविरचितानि पञ्चपद्मानि सम्पूर्णानि ॥

(अनुवादक—पाण्डेय पं० शीरभगारवणदत्तजी शासी)

जिनका हृदय श्रीकृष्ण-चिन्तन-रसमें निमग्न है, जो श्रीकृष्ण-के सिवा, अन्यत्र लौकिक और वैदिक भोगोंमें आनन्द नहीं मानते हैं, जिनके भगवत्कथासे कभी अचूचि नहीं होती तथा जो सदा भगवान्‌की लीला-कथा सुननेके लिये अत्यन्त उत्सुक रहते हैं वे उत्तम श्रोता हैं ॥ १ ॥ जिनका सब भगवत्प्रेसे वनीभूत होता है, जो भगवान्‌के स्वरणसे विहळ हो उठते हैं और उनकी कथा सुननेके लिये उत्सुक हो कथाके अर्थपर ही विशेष ध्यान देते हैं, वे मध्यम श्रोता हैं ॥ २ ॥ जो संदेह-रहित श्रीकृष्णतत्त्वको सब प्रकारसे जानते हैं, कथा सुनते समय आवेदनसे अथवा कथामें सहाय एकत्र हो जानेमर

शोकसे विकल हो उठते हैं जो किंतु अज या दम—वास्तविक रूपसे ही विहळता प्रदर्शित करते हैं, भक्त हैं ॥ ३ ॥ जो कर्मी-कर्मी सम्पूर्ण भक्तते ही के अनुभव करते हैं, परंतु इस भावमें लदा जिनकी नहीं होती तथा जो कथा सुनते समय मी हूंसर कारोंगे रहते हैं, वे अध्यम श्रोता कहे गये हैं ॥ ४ ॥ देख, द्रव्य, कर्ता, मन्त्र और कर्मके प्रकारको जानकर क्यात्माका अनुष्ठान करनेवाले पुरुषोंकी अपेक्षा वे उत्तम हैं, जो कि अन्य मनसे ब्रह्म-कीर्तन आदि; भक्तिमें लगे रहते हैं ॥ ५ ॥

(पञ्चषष्ठ सम्पूर्ण)

संन्यासनिर्णयः

पश्चात्तापनिवृत्यर्थं परित्यागो विचार्यते । स मार्गाद्वितये प्रोक्तो भक्तौ ज्ञाने विशेषतः । कर्मसार्गे न कर्तव्यः सुतरां कलिकालातः । अत आदौ भक्तिभार्गे कर्तव्यत्वाद् विचारणा ॥ अव्याप्तिदिव्यवृत्यर्थं कर्तव्यवेष नेष्टते । सहाय्यसङ्गसाध्यतात् साधनानां च रक्षणात् ॥ अभिमानावियोगात् तद्वर्मेश्व विरोधतः । शृङ्खिर्विधकत्वेन साधनार्थं तथा यदि ॥ अग्रेऽपि तादृशैव सङ्गो भवति नान्यथा । स्वर्य च विषयाकान्तः पात्तण्डी स्थानु कालतः ॥ विषयाकान्तदेहानां नावेशः सर्वदा होते । अतोऽत्र साधने भक्तौ नैव त्यागः सुखावहः ॥ विरहात्मवार्यं तु परित्यागः प्रशस्यते । स्वीयवन्धनिवृत्यर्थं वेषः सोऽत्र न चान्यथा ॥ कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ता गुरुः साधनं च तत् । भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्टते ॥ विकलत्वं तथा स्वास्थ्यं प्रकृतिः प्राकृतं न हि । ज्ञानं गुणाश्च तस्यैव वर्तमानस्य वाधकः ॥ सत्यलोके शिरित्वानात् संन्यासेन विशेषितात् । भावना साधनं यत्र फलं चापि तथा भवेत् ॥१ तादृशः सत्यलोकादौ तिष्ठत्येव न संन्यथः । वहित्तेत् प्रकटः स्वात्मा वहित्त प्रविशेष् यदि ॥२ तदैव सकलो वन्धो नाशेति न चान्यथा । गुणास्तु सङ्गताहित्याजीविनार्थं भवन्ति हि ॥३ भगवान् फलस्तप्तवादात्र वाद्यक इत्यते । स्वास्थ्यवाक्यं न कर्तव्यं द्यातुर्न विश्वर्थते ॥४ दुर्लभेऽप्य परित्यागः ऐमा विधयनि नान्यथा । ज्ञानसार्गे तु संन्यासो द्विविदेऽपि विचारितः ॥५ ज्ञानार्थमुच्चराहङ्क च सिद्धिर्जन्मशतैः परम् । ज्ञानं च साधनापेक्षं वशादिवयणान्मतम् ॥६ अतः कलौ स संन्यासः पश्चात्तापाय नान्यथा । पाषण्डित्वं भवेषापि तस्माज्जाने न संन्यासेत् ॥७ सुतरां कलिदोषाणां प्रवलत्वादितिस्तिः । भक्तिमानेऽपि चेद् दोषस्तदा किं कार्यमुच्यते ॥८ अत्रारभमें न नाशः स्यद् द्वाष्टान्तस्याप्यमावतः । स्वास्थ्यहेतोः परित्यागाद् वाधः केनास सम्भवेत् ॥९ हरिरज्ञ न शक्तेति कर्तुं वाधां कुतोऽपरे । अन्यथा मातरो वालान् न स्तन्यैः पुपुषु क्वचित् ॥१० ज्ञानिनामपि वाक्येन न भक्तं मोहयिष्यति । आत्मप्रदः प्रियशापि किमर्थं मोहयिष्यते ॥११ तस्मादुक्तप्रकारेण परित्यागो विशीयत्वात् । अन्यथा अश्यते स्वार्थदिति मे निश्चिता मतिः ॥१२ हृति कृष्णप्रसरदेव वल्लभेन विनिधितम् । संन्यासवर्णं भक्तवान्यथा यतितो भवेत् ॥१३ हृति श्रीमद्भूमान्वार्षिरचितः हन्म्यसनिर्णयः सम्पूर्णः ॥

(अनुवादको-पाण्डेय प० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

प्रियतम हैं और उन्हें अपने-आप तकको दे डालते हैं, वे भगवान् भला किसलिये भक्तोंको मोहमें डालेंगे ? ॥ २० ॥

अतः उपर्युक्त प्रकारसे व्यवस्थापूर्वक ही संन्यासका विधान करना चाहिये। अन्यथा संन्यासी अपने पुरुषार्थसे भ्रष्ट हो

जाता है। यह मेरा निश्चित विचार है ॥ २१ ॥ इस प्रकार वल्लभने श्रीकृष्ण-कृपासे भक्तिमार्गमें ही संन्यासका निश्चित किया है; अन्यथा (इसके विपरीत) संन्यास सीतल करनेवाला पुरुष पतित ही जाता है ॥ २२ ॥

(संन्यास-निर्णय, सम्पूर्ण)

निरोधलक्षणम्

यद्युःखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले । गोपिकानां तु यद्युःखं तद्युःखं स्यान्मम कचित् ॥ १ ॥
 गोकुले गोपिकानां तु सर्वेषां व्रजवासिनाम् । यत्सुखं समभूत् तन्मे भगवान् किं विधास्यति ॥ २ ॥
 उद्घवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा । वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि कचित् ॥ ३ ॥
 महतां कृपया यद्युः भगवान् दययिष्यति । तावदानन्दसंदोहः कीर्त्यमानः सुखाय हि ॥ ४ ॥
 महतां कृपया यद्युः कीर्तनं सुखदं सदा । न तथा लौकिकानां तु स्त्रियोजनरूपवत् ॥ ५ ॥
 गुणगाने सुखावासिर्गोविन्दस्य प्रजायते । यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतोऽन्यतः ॥ ६ ॥
 किलश्यमानाऽऽजनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् । सदा सर्वं सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ॥ ७ ॥
 सर्वानन्दमयस्थापि कृपानन्दः सुदुर्लभः । हृदगतः स्वगुणाऽश्रुत्वा पूर्णः प्रावयते जनान् ॥ ८ ॥
 तसात् सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः । सदानन्दपरैर्गेयाः सच्चिदानन्दता ततः ॥ ९ ॥
 अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदबीं गतः । निरुद्धानां तु रोधाय निरोधं चर्णयामि ते ॥ १० ॥
 हरिण्य ये विनिरुक्तास्ते मग्ना भवसागरे । ये निरुद्धास्ते एवात्र मोदमायान्त्यहर्निशम् ॥ ११ ॥
 संसारावेशदुष्टानामिन्द्रियाणां हिताय वै । कृष्णस्य सर्ववस्तूनि भूम्न ईशस्य योजयेत् ॥ १२ ॥
 गुणेष्वाविष्टचित्तानां सर्वदा मुख्यैरिणः । संसारविरहक्लेशौ न स्यातां हरिवत् सुखम् ॥ १३ ॥
 तदा भवेद् दयालुत्त्वमन्यथा क्रूरता मता । वाधशङ्कापि नास्त्यत्र तदध्यासोऽपि सिद्ध्यति ॥ १४ ॥
 भगवद्धर्मसामर्थ्यात् विरागो विषये स्थिरः । गुणैर्हरैः सुखस्पर्शान्व दुःखं भाति कर्हिचित् ॥ १५ ॥
 एवं ज्ञात्वा ज्ञानमार्गदुक्तवौ गुणवर्णने । अमत्सरैरुद्भव्येष्व वर्णनीयाः सदा गुणाः ॥ १६ ॥
 हरिमूर्तिः सदा ध्येया संकल्पादपि तत्र हि । दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा ॥ १७ ॥
 अवरणं कीर्तनं स्पष्टं पुचे कृष्णप्रिये रतिः । पायोर्मलांशत्यागेन शेषभागं तनौ तयेत् ॥ १८ ॥
 यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न हृश्यते । तदा विनिग्रहस्तस्य कर्तव्यं इति निश्चयः ॥ १९ ॥
 नातः परतरो मन्त्रो नातः परतरः स्तवः । नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात् परम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमद्भूमान्नार्यविरचितं निरोधलक्षणं सम्पूर्णम् ॥

(अनुवादक—पाण्डेय एं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

जब व्रजेन्द्रनन्दन भगवान् इयामसुन्दर गोकुलसे मथुरा जाने लगे, उस समय यशोदा मैयाको, नन्द आदि गोपोंको और समस्त गोप-सुन्दरियोंको जो विरहके महान् दुःखका अनुभव हुआ था, क्या वैसा ही दुःख कभी मेरे अनुभवमें भी आ सकता है ? ॥ १ ॥ गोकुलमें गोपाङ्गनाओं तथा समस्त व्रजवासियोंने भगवान् के जिस सांनिध्य-सुखका आस्तादन किया था; क्या वही सुख कभी भगवान् मुझे भी देंगे ? ॥ २ ॥ श्रीवृन्दावन अथवा गोकुलमें उद्घवजीके पधारने-

पर प्रत्येक घरमें जैसा महान् उत्सव छा गया था, क्या कैसा ही उत्सव या उत्साह कभी मेरे मनमें भी होगा ? ॥ ३ ॥ महात्मा पुरुषोंकी कृपासे दयासिन्दु भगवान् जयतक थामें कपर दया करेंगे, तवतक उन आनन्दसंदोहस्तरूप प्रभु-की संकीर्तन ही अग्ने लिये सुखकर होगा ॥ ४ ॥ महात्माओंकी कृपासे भगवान्के नाम, गुण और लीलाओंका दीर्घन जैसा सुखद जान पड़ता है, वैषा लौकिक मनुष्योंके नरिशन वर्णन नहीं । धीरे स्त्रिय भोजन और हरवे भाजनमें भी

स्तर है, वही भगवन्नचरित्र और लौकिक पुरुषोंके चरित्रके नीतिनामे है ॥ ५ ॥ शुक्र आदि महात्माओंको गोविन्दके गुणगानमें जैसा सुख मिलता है, वैसा आत्मचिन्तनमें भी नहीं मिलता; फिर अन्य किसी साधनसे तो मिल ही कैसे सकता है ? ॥ ६ ॥ भक्तजनोंको अपनी प्राप्तिके लिये कलेश उठाते देख जब भगवान् कृष्णपरवश हो जाते हैं, उस समय हृदय-के भीतरका सम्पूर्ण सत्स्वरूप आनन्द बाहर प्रकट हो जाता है ॥ ७ ॥ प्रसु पूर्णानन्दधन-रूप हैं, तो भी उनको कृष्णानन्द अल्यन्त दुर्लभ है। वे हृदयके भीतर बैठें-बैठे जब अपने गुणोंको सुनते हैं, तब वे पूर्ण परमात्मा उन भक्तजनोंको आनन्द-सिन्धुमें आप्लाचित कर देते हैं ॥ ८ ॥ इसलिये सदामनन्द-स्वरूप प्रभुकी आराधनामें तत्पर भक्तोंको चाहिये कि वे अपनी चित्त-वृत्तियोंके निरोधपूर्वक सदा सवकी आसक्ति छोड़कर प्रभुके गुणोंका निरन्तर गमन करें। इससे सच्चिदानन्दस्वरूपताकी प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥ मैं इन्द्रिय-नियन्त्रित-पूर्वक भगवान्में निरद्व (आसक्त) हो निरोधमार्गको प्राप्त हुआ हूँ। अहं: जो संसारमें निरद्व (आसक्त) हैं उनका भगवत्स्वरूपमें निरोध (स्थापन) करनेके लिये मैं निरोध-का स्वरूप बता रहा हूँ ॥ १० ॥ भगवान्में जिन्हें छोड़ दिया है, वे भवसारमें हूँदे हुए हैं और जिनको उन्होंने अपनेमें निरद्व कर लिया है, वे ही यहाँ निरन्तर आनन्द-मग्न रहते हैं ॥ ११ ॥ संसारके आवेशसे दूषित इन्द्रियोंके हितके लिये सम्पूर्ण वस्तुओंका सर्वव्यापी जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णके साथ सम्बन्ध जोड़ दे ॥ १२ ॥ जिनका चित्त सदा मुरारि भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंमें आसक्त है, उन्हें संसार-वन्धन

और भगवद्विद्वके कलेश नहीं प्राप्त होते। वे साक्षात् श्रीहरि-के ही तुल्य मुख पाते हैं ॥ १३ ॥ ऐसी व्यवस्था होनेपर ही भगवान्में दयालुता मानी गयी है; अन्यथा कूरता ही मानी जाती। यहाँ वादकी शङ्का भी नहीं है। भगवान्में किया हुआ अग्न्यात (आरोप) भी सफल होता है ॥ १४ ॥ भगवद्वर्मकी शक्तिसे विषयोंमें खिर बिराग उत्पन्न होता है। भगवद्वृणोंके गानेसे जो मुख प्राप्त होता है, उससे कभी किसी दुःखका पता ही नहीं चलता ॥ १५ ॥ इस प्रकार ज्ञान-मार्गकी अपेक्षा भगवद्वृणानके मार्गमें अधिक उत्कर्षकी प्राप्ति होती है। इसीलिये मत्सरता और लोभ छोड़कर सदा श्रीहरिके गुणोंका कीर्तन करना चाहिये ॥ १६ ॥ ज्ञानसिक संकल्पसे भी भगवन्मूर्तिका सदा ध्यान करते रहना चाहिये। उस मूर्तिमें दर्शन, स्पर्श, कृति और गति आदिकी सदा स्पष्ट भावना करनी चाहिये ॥ १७ ॥ भगवद्वृणोंका श्रवण और कीर्तन तो स्पष्टरूपसे करना उचित है। श्रीकृष्णप्रेमी पुत्रका जन्म हो, इस उद्देश्यसे ही स्त्री-सहवास करे (अथवा श्रीकृष्ण-प्रेमी पुत्रवर ही प्रीति या अनुराग रखें)। पायु (गुदा) आदिके मलांशको छोड़कर शरीरके शेष सभी भागोंको भगवान्मूर्ती सेवामें लाए दे ॥ १८ ॥ जिस इन्द्रियके द्वारा जब भगवत्स्वरूपी कार्य होता स्पष्ट न दिखायीदे, उस समय उस इन्द्रियको अवश्य वशमें करके भगवत्सेवामें नियुक्त रखना चाहिये, यही निश्चय है ॥ १९ ॥ इससे बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। इससे श्रेष्ठ कोई स्तोत्र नहीं है। इससे बड़ी कोई विद्या नहीं है और इससे बढ़कर कोई परात्मर तीर्थ नहीं है ॥ २० ॥

(निरोधलक्षण सम्पूर्ण)

सेवाफलम्

याद्वद्वी सेवना प्रोक्ता तत्सद्वौ फलमुच्यते। अलौकिकस्य दाने हि चाद्यः सिद्ध्येन्मनोरथः ॥ १ ॥
 फलं वा द्युधिकारो वा न कालोऽत्र नियामकः। उद्गेनः प्रतिवन्धो वा भोगो वा स्यादत्तु वाधकम् ॥ २ ॥
 अकर्तव्यं भगवतः सर्वथा चेद् गतिर्व हि। यथा वा तत्वनिर्वारो विवेकः साधनं भतम् ॥ ३ ॥
 वाधकानां परित्यागो भोगेऽप्येकं तथापरम्। निष्पत्यूहं महान् भोगः प्रथमे विशते सदा ॥ ४ ॥
 सविन्द्रोऽत्योधातकः स्याद् वलादेतौ सदा मतौ। द्वितीये सर्वथा चिन्ता त्वाज्या संसारनिश्चयात् ॥ ५ ॥
 नन्वये दातुता नास्ति तृतीये वायकं गृहम्। अवश्येयं सदा भाव्या सर्वमन्यन्मनोभ्रमः ॥ ६ ॥
 तदीयैरपि तत्कार्यं पुण्यौ नैव विलम्बयेत्। गुणक्षेमेऽपि द्रष्टव्यमेतदेवेति मे मतिः ॥ ७ ॥
 कुसुमिरत्र वा काचिद्वृत्पद्येत् स वै भ्रमः ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीमद्भूमाचार्यविरचित् सेवाफलं सम्पूर्णम् ॥

(अनुवादक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणहस्तजी शास्त्री)

भगवान्की सेवाका जैसा स्वरूप कहा गया है, उसके मिहँ हो जानेपर तदनुकूल फल बताया जाता है। अलौकिक फल-के दान (या समर्पण) से साधकके प्रधान मनोरथकी सिद्धि होती है ॥ १ ॥ भगवत्सेवाके फल या अधिकारके विषयमें वालका कोई नियन्त्रण नहीं है। उद्देश, प्रतिवन्ध अथवा भोग—यही सेवामें बाधक होता है ॥ २ ॥ उद्देश तभी होता है, जब भगवान्को सर्वथा वह सेवा न करानी हो अथवा उसका फल न देना हो; उस दशामें तो उस सेवाको सम्पन्न करनेका कोई उपाय भी नहीं है। अथवा उद्देश-दशामें भी तच्चका निश्चय और विवेक—ये सेवाके साधन माने गये हैं ॥ ३ ॥ प्रतिवन्धकोंका परित्याग (निवारण) भी आवश्यक है। भोगके दो भेद हैं—एक लौकिक और दूसरा अलौकिक। इनमें भी पहला ही त्यज्य है। दूसरा विवन्धित है, उससे सेवामें कोई बाधा नहीं आती । महान् अर्थात् अलौकिक भोग सदा सेवाके प्रधान फलकी श्रेणीमें आता है; अतः उसका कोई विरोध नहीं है ॥ ४ ॥

अत्य अर्थात् लौकिक भोग विवन्धयुक्त होनेके कारण सेवामें (सेवाफल सम्पूर्ण) .

बाधक होता है । ये दोनों—उद्देश और प्रतिवन्ध सदा बहुपूर्वक विवन्धकारक माने गये हैं। प्रतिवन्धरूप द्वितीय बाधके विषयमें सर्वथा चिन्ता त्याग देनी चाहिये; क्योंकि उसके होने पर संसार-वन्धनका होना निश्चित है (अतः अवश्यमात्र परिणामके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है) ॥ ५ ॥ आदि बाधक उद्देशके होनेपर वह समझना चाहिये कि भगवान्को इस समय सेवाका फल देनेकी इच्छा नहीं है, तीसरी श्रेणीके बाधक भोगकी उपस्थिति होनेपर घर ही भगवत्सेवामें बाधक होता है। इन सब बातोंपर अवश्य विचार करना चाहिये। इसले भिन्न जो कुछ कहा गया है, वह मनका भ्रम है ॥ ६ ॥ भगवदीय जनोंको भगवत्सेवन निरन्तर करते रहना चाहिये। भगवान् अनुग्रहमें कभी विलम्ब नहीं कर तकते। त्रिगुणात्मक विषयोंके द्वारा क्षोभ होनेपर भी इन्हीं उपर्युक्त बातोंपर दृष्टि रखनी चाहिये। यही मेरा मत है। यदि इति विषयमें किसीके द्वारा कोई विपरीत कल्पना या कुतर्क उपस्थिति किया गया तो निश्चय ही वह भी भ्रम है ॥ ७-८ ॥

श्रीदामोदराष्ट्रकम्

नसामीश्वरं सच्चिदानन्दरूपं लसस्तुपडलं गोकुले भाजमानम् ।
 यशोदाभियोद्युखलाद्वावभानं परामृष्टमत्यन्ततो द्रुत्य गोप्या ॥ १ ॥
 रुदन्तं सुहुर्नेत्रयुग्मं सृजन्तं कराम्भोजयुग्मेन सातङ्केनम् ।
 मुहुः श्वासकम्पत्रिरेखाङ्ककण्ठस्थितप्रैवदामोदरं भक्तिवद्म् ॥ २ ॥
 इतीद्वक् स्वलीलाभिरानन्दकुण्डे स्वघोषं निमज्जन्तमात्यापयन्तम् ।
 तदीयेशितव्येषु भक्तैर्जितत्वं पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे ॥ ३ ॥
 वरं देव मोक्षं न मोक्षावधिं चा न चान्यं वृणेऽहं वरेशादपीह ।
 इदं ते वयुर्नाथ गोपालवालं सदा मे मनस्याविरास्तां किमन्यैः ॥ ४ ॥
 इदं ते मुखाम्भोजमव्यक्तनीलैर्वृत्तं कुन्तलैः स्त्रिघरकैश्च गोप्या ।
 मुहुश्चुम्बितं विघ्वरकताधरं मे मनस्याविरास्तामलं लक्ष्मामैः ॥ ५ ॥
 नमो देव दामोदरानन्त विष्णो प्रसीद प्रभो दुःखजालाच्यिमग्नम् ।
 कृपाद्विवृष्ट्यातिदीनं बतानुगृहाणेश मामकमेध्यक्षिदश्यः ॥ ६ ॥
 कुबेरात्मजौ बद्धमूल्यैव यद्भृत् त्वया मोचितौ भक्तिभाजौ कृतौ च ।
 तथा प्रेमभक्तिं स्वकां मे प्रयच्छ न मोक्षे ग्रहो मेऽस्ति दामोदरेह ॥ ७ ॥
 नमस्तेऽस्तु दामे स्फुरदीतिधाम्ने त्वदीयोदरायाथ विश्वस्य धामने ।
 नमो राधिकायै त्वदीयपित्र्यायै नमोऽनन्तलीलाय देवाय तुभ्यम् ॥ ८ ॥
 ॥ इति श्रीसत्यन्तमुनिप्रकृतं श्रीदामोदराष्ट्रं सम्पूर्णम् ॥

जिनके कानोंमें मकराकुत कुण्डल सुशोभित हैं, जो गोकुलमें अपनी अलौकिक प्रभाका प्रसार करते हुए माँ यशोदाके भयसे छोकेर रखते हुए मालनको जुरानेका प्रयत्न छोड़कर उलटाये हुए ऊबलपरसे भाग छूटते हैं और जिन्हें उसी दशामें नन्दरानी वेगपूर्वक दौड़कर पकड़ लेती हैं, उन सचिदानन्द-विग्रह सर्वेश्वर श्रीकृष्णकी मैं बन्दना करता हूँ ॥ १ ॥ जननीके तर्जनसे भग्नभीत होकर रोते हुए वे बार-बार अपने दोनों सभीत नेत्रोंको युगल हस्तकमलोंसे मसल रहे हैं, बार-बार सुब्रक्नेके कारण जिनके त्रिरेखायुक्त कण्ठमें पही हुई मोतियोंकी भाला कम्पित हो रही है । माता यशोदाने अपनी अनुपम भक्तिके बलसे उनकी कमरको रस्सीसे बाँध दिया है । इस प्रकार अपने दामोदर नामको चरितार्थ करते हुए श्रीनन्दननन्दनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ जो अपनी ऐसी-ऐसी लीलाओंके द्वारा गोकुलवासियोंको आनन्दसरोवरमें निभग करते तथा अपने दालोंपर इस प्रकार अपनी भक्तपरवशता प्रकट करते रहते हैं, उन लीला-विहारी प्रभुकी मैं पुनः प्रेम-पूर्वक शत-शत बन्दना करता हूँ ॥ ३ ॥ हे देव ! यद्यपि आप वर देनेमें सब प्रकार सर्वार्थ हैं, फिर भी मैं आपसे वरहूपमें न तो मोक्षकी याचना करता हूँ और न मोक्षकी परम अवधिरूप श्रीचैकुण्ठादि लोकोंकी प्राप्ति ही चाहता हूँ । न मैं इस जगत्से सम्बन्ध रखनेवाला कोई दूसरा वरदान ही आपसे माँगता हूँ । मैं तो आपसे इतनी ही कृपाकी

भीम्ब माँगता हूँ कि नाथ ! आपका यह वाल-गोपल रूप ही निरन्तर मेरी चित्तभूमिसर अनग्नित रहे, मुझे और वस्तुओंसे कथा प्रयोजन है ॥ ४ ॥ अस्यन्त नीलवर्ण, सुनिक्कण एवं कुछ-कुछ लालिमा लिये हुए हुँधराले लालोंसे घिरा हुआ तथा नन्दरानी यशोदाके प्राण बार-बार चूमा हुआ तुम्हारा कमल-ना सुखदा तथा उके हुए निम्फल-सदृश लाल-लाल अधर-फलव मेरे मानस-पटलपर मदा धिरकते रहे; मुझे लालों प्रकारके दूसरे लालोंसे कोई प्रयोजन नहीं है ॥ ५ ॥ हे देव ! हे दामोदर ! हे अनन्त ! हे विष्णो ! तुम्हें प्रणाम है । प्रभो ! मुक्षपर प्रसन्न होओ एवं हुँखममूहस्य समुद्रमें छूटे हुए मुझ अति दीन एवं अज्ञ प्राणीको कृपाहास्त्रिकी वर्षसे निहाल कर दो और हे स्वामिन् ! तुम सदा ही मेरे नेत्रगोचर बने रहो ॥ ६ ॥ हे दामोदर ! जिस प्रकार तुमने अपने दामोदरहूपसे ही ऊखलमें बैधे रहकर कुवेलके यमज युवतीोंका वृक्षयोनिसे उद्धार तो किया ही, साय-ही-साय उन्हें अपना भक्त भी बना लिया, उसी प्रकार मुझे भी अपनी प्रेमभक्तिका दान करो । मेरा मोक्षके लिये तनिक भी आग्रह नहीं है ॥ ७ ॥ जगमगाते हुए प्रकाशपुञ्जसदृश उस रुजुको प्रणाम है ! सम्पूर्ण विश्वके आधारभूत तुम्हारे उदरको मेरी नमस्कार है; तुम्हारी प्रियतमा श्रीसाधारानीके चरणोंमें मेरा बार-बार प्रणाम है और अनन्त लीलामय देवाधिदेव तुम्हको भी मेरो शत-शत प्रणाम है ॥ ८ ॥

(श्रीदामोदराष्टक सम्पूर्ण)



श्रीजगद्वाथाष्टकम्

कदाचित् कालिन्दीतट-विपिन-संगीत-तरलो मुदामीरीनारी-चदन-कमलास्वाद-मधुपः ।
रमा-शम्भु-व्रह्मामरपतिगणेशाचिंतपदो जगद्वाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ १ ॥
भुजे सव्ये वेणुं शिरसि शिखपिच्छं कटितटे दुकूलं नेत्रान्ते सहचर-कटाक्षं विदधते ।
सदा श्रीमद्वृत्तावत-वसति-लीला-परिचयो जगद्वाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ २ ॥
महाम्पोदेस्तरि कत्तकरुचिरे नीलशिखरे वसन् प्रासादान्तः सहजवलभद्रेण वलिना ।
सुभद्रामव्यस्थः सकलसुरसेवावसरदो जगद्वाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ३ ॥
हृषपारावारः सजलजलदध्रेणिरनिरो रमाचार्णीरसः स्फुरदमल्पक्षेष्वसुखः ।
सुरेन्द्रैरराध्यः श्रुतिरणशिष्यगर्वितनरितो जगद्वाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ४ ॥
रथासडो गच्छन् पथि मिलितभूदेवपटलैः स्तुतिप्रादुर्भावं प्रतिपदमुपाकर्ष्य सदयः ।
दथसिन्धुरन्धुः सकलजगतां सिन्धु-सदयो जगद्वाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ५ ॥
परग्रहापीडः कुचलयदलोकुलचयनो निवासी नीलाद्वै निहितचरणोऽनन्तशिरसि ।
रसामन्दी राधा-सरसवपुरालिङ्गनसुखो जगद्वाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ६ ॥

त वै याचे राज्यं त च कलकमाणिक्यविभवं त याचेऽहं रस्यं सकलजनकाम्यं वरवधूम् ।
सदा काले काले प्रमथपतिना गीतचरितो जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ७ ॥
हर त्वं संसारं द्रुतरमसारं सुरपते । हर त्वं पापानां वित्तिमपरं यादवपते ॥
अहो दीनेऽनाये निहितचरणो निश्चितमिदं जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ८ ॥
जगन्नाथाष्टकं पुण्यं यः पदेत् प्रयतः शुचिः । सर्वपापविद्युद्धात्मा विष्णुलोके स गच्छति ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीगौरचन्द्रमखपद्मविनिर्गतं श्रीश्रीजगद्धातृकं सम्पूर्णम् ॥

जो कभी श्रीयमुनाके तटवर्ती घनमें गायन-रत होकर
अत्यन्त चश्चल रहते हैं और कभी भ्रमरके समान आभीरानारियोंके
मुखरविन्दका आनन्दपूर्वक आत्मादन करते हैं तथा
श्रीलक्ष्मीजी, भगवान् शंकर, सुषिकर्ता ब्रह्मा, देवराज इन्द्र
और श्रीगणेशजी जिनके चरणोंका अर्चन करते हैं, वे मेरे
म्बामी जगन्नाथजी कृपापूर्वक मेरे नयनगोचर हों ॥ १ ॥

जो वायें हाथमें बंशी, मस्तकपर भोरपंख, कटितमैं
 पीताम्बर तथा नेत्रोंके प्रान्तमें सखाओंके प्रति कटाक्षर्पूर्ण
 दृष्टि धारण करते हैं, जो सदा-सर्वदा नितिशय शोभाशाली
 वृन्दावनधाममें ही निवास करते हैं तथा वहीं जिनकी
 विविध लीलाओंका परिचय होता है, वे मेरे स्वामी जगन्नाथजी
 कपापूर्वक मेरे नेत्रपथमें प्रकट हों ॥ २ ॥

जो महासागरके तटपर स्वर्णकीसी कान्तिवाले नीलान्ध-
पर दिव्यातिदिव्य प्राप्तादमें अपने अग्रज महाबली श्रीबलभद्रजी
एवं ब्रह्मन सुभद्राके बीचमें विराजमान रहकर समस्त देव-
वृन्दोंको अपनी पुनीत सेवाका शुभ अवसर प्रदान करते हैं,
वे जगन्नाथ स्वामी सदा मेरे नेत्रोंके समसुख रहें ॥ ३ ॥

जो कृपाके सागर हैं, जिनकी छटा सजल मेघोंकी
 घटाको मात करती है, जो अपनी शुहियों श्रीलक्ष्मी तथा
 सरस्वतीको धानान्दित करते रहते हैं, जिनका श्रीमुख
 देदीप्यमान निर्मल कमलकी शोभाको धारण करता है, वडे-
 वडे देवताओंके द्वारा जो आराधन किये जाने योग्य हैं तथा
 श्रुतियोंके शीर्षस्थानीय उपनिषदोंमें जिनके पावन चरित्रोंका
 गान किया गया है, वे मेरे प्रभु श्रीजगदाथजी सदा मुझे
 दर्शन देते रहें ॥ ४ ॥

जो रथयात्राके समय मार्गमें एकनित हुए भूमुखवृन्दोंके द्वारा किये हुए स्तबनको सुनकर पद-पद्मपर दयासे द्रवित होते रहते हैं, वे दयासागर, निखिल ब्रह्माण्डोंके बन्धु एवं

समुद्रपर कृपा करके उसके तटपर निवास करनेवा
श्रीजगत्याथ स्वामी मेरे नयनोंके अतिथि बनें ॥ ५ ॥

सत्काशात् परब्रह्म ही जिनके मस्तकपर भूषणला
विद्यमान हैं, जिनके नेत्र दिले हुए कमलके समान मुद्दे
हैं, जो नीलचलपर भक्तोंको सुख देनेके लिये निवास क
हैं तथा जो शेषशारीरूपसे भगवान् अनन्तके महाक
चरण रखे रहते हैं और प्रेमानन्दमय विग्रहसे श्रीराध
रसमय शरीरके आलिङ्गनका अनुपम सुख लटते रहते हैं
मेरे प्रभु श्रीजगन्धार्थजी निरन्तर मेरे नेत्रोंको आनन्दि
करते रहें ॥ ६ ॥

न तो मैं राज्यकी ही याचना करता हूँ और न स्व-
एवं सामिक्यादि रत्नोंके वैभवकी ही प्रार्थना करता हूँ
जिसे सब लोग चाहते हों, ऐसी सुन्दरी एवं श्रेष्ठ समाजी-
भी मुझे कामना नहीं है; मैं तो केवल यही चाहता हूँ।
भगवान् भूतपति समय-समयपर जिनके निर्मल चरित्रोंका गा-
करते रहते हैं वे मेरे प्रभु श्रीजगद्वाराथजी सदा-सर्वदा मेरे नेतृत्वे
सम्मख नाचते रहें ॥ ७ ॥

हे सुरेश्वर ! शीघ्रातिशीघ्र इस अलार-संतारको ;
नेत्रोंके सामनेसे हटा दो । हे यदुनाथ ! मेरे पापोंकी अग्नि
राशिको भस्त कर दो । ओरे ! अह ध्रुव सत्य है कि
स्वामी दीन-अनाथीको अपने श्रीचरणोंका प्रसाद अवश्य है
है । वे ही श्रीजगद्वायजी मेरे नेत्रोंको भी दर्शनसे कुता
करें ॥ ८ ॥

इस पवित्र श्रीजगन्नाथकक्षा जो एकायचित्त ८
 पवित्र होकर पाठ करता है उसके अन्तःकरणके कारण ९
 धुल जाते हैं और अन्तमें उसे विपुलोककी प्राप्ति हो
 ले ॥ ९ ॥

श्रीमुकुन्दमुकावली

नवजलधरवर्णं चम्पकोद्धासिकर्णं विकसितनलिनास्यं विस्फुरन्मन्दहस्यम् ।
 कनकरुचिदुकूलं चारुबर्हावच्चूलं कमपि निखिलसारं नौमि गोपीकुमारम् ॥ १ ॥
 मुखजितशरदिन्दुः केलिलावण्यसिन्धुः करविनिहितकन्दुः वल्लवीप्राणवन्धुः ।
 वपुरुपसूतरेणुः कक्षनिक्षिपत्रेणुः वचनवशगथेनुः पातु मां नन्दसूनुः ॥ २ ॥
 ध्वस्तदुष्टशङ्खचूड वल्लवीकुलोपगूढ भक्तमानसाधिरुद्ध नीलकण्ठपिच्छूड ।
 कण्ठलभिवमज्जुगुञ्ज केलिलधरम्यकुञ्ज कर्णवर्तिमुल्लकुन्द पाहि देव मां मुकुन्द ॥ ३ ॥
 यश्वभङ्गरघुशक तुव्रघोरभेघचक्र वृष्टिपूर विश्वगोपवीक्षणोपजातकोप ।
 श्विप्रसव्यहस्तपद्म धारितोचशैलसञ्चगुतगोषु रक्ष रक्ष मां तथाद्य पङ्कजाक्ष ॥ ४ ॥
 मुक्ताहारं दधुडुचक्राकारं सारं गोपीमनसि मनोजारोपी ।
 कोपी कंसे खलनिकुरम्बोत्तर्से वंशे रङ्गी दिशतु रति नः शार्ङ्गी ॥ ५ ॥
 लीलोदामा जलधरमाला श्यामा क्षामाः कामादभिरचयन्ती रामाः ।
 सा मामव्यादखिलमुनीनां स्तव्या गव्यापूर्तिः प्रभुरघशत्रोमूर्तिः ॥ ६ ॥
 पर्ववर्तुलशर्वरीपतिगर्वरीतिहराननं नन्दनन्दनमिन्दिराकृतवन्दनं धृतचन्दनम् ।
 सुन्दरीरतिमन्दिरीकृतकन्दरं धृतमन्दरं कुण्डलद्युतिमण्डलप्लुतकन्धरं भज सुन्दरम् ॥ ७ ॥
 गोकुलाङ्गणमण्डनं कृतपूतनामवभोचनं कुन्दसुन्दरदन्तमम्बुजवृन्दवन्दितलोचनम् ।
 सौरभाकरफुलपुष्करविस्फुरत्करपलवं दैवतवजदुर्लभं भज वल्लवीकुलवल्लभम् ॥ ८ ॥
 तुण्डकान्तिदण्डतोरुपाण्डुराण्डुमण्डलं गण्डपालिताण्डवालिशालिरत्नकुण्डलम् ।
 फुलपुण्डरीकपण्डकलृसमालयमण्डनं चण्डवाहुदण्डभत्र नौमि कंसखण्डनम् ॥ ९ ॥
 उत्तरङ्गदङ्गरागसंगमातिपिङ्गलस्तुङ्गशङ्गसङ्गिपाणिरङ्गनालिमङ्गलः
 दिग्बिलासिमल्लिहासिकीर्तिवल्लवस्त्वां स पातु फुल्लचारुचिलिरव्य वल्लवः ॥ १० ॥
 इन्द्रनिवारं वजपतिवारं निर्धुतवारं हृतघनवारम् ।
 रक्षितगोत्रं प्रीणितगोत्रं त्वां धृतगोत्रं नौमि सगोत्रम् ॥ ११ ॥
 कंसमहीपतिहृष्टशूलं संततसेवितयामुनकूलम् ।
 वन्दे सुन्दरचन्द्रकच्चूलं त्वामहमखिलचराचरमूलम् ॥ १२ ॥
 मलयजरुचिरस्तनुजितमुदिरः पालितविवृद्धस्तोषितवसुधः ।
 मामतिरसिकः केलिभिरधिकः सितसुभगरदः कृपयतु वरदः ॥ १३ ॥
 उररीकृतमुरलीरुतभङ्गं नवजलधरकिरणोल्लसदङ्गम् ।
 शुवतिहृदयधृतमन्दनतरङ्गं प्रणमत यामुनतटकृतरङ्गम् ॥ १४ ॥
 नवाम्भोदनीलं जगत्तोषिशीलं मुखासङ्गिवंशं शिखण्डावतंसम् ।
 करालभिवेत्रं वराम्भोजनेत्रं धृतस्फीतगुञ्जं भजे लब्धकुञ्जम् ॥ १५ ॥
 हृतक्षोणिभारं कृतक्लेशहारं जगदीतसारं महारत्नहारम् ।
 मृदुशयामकेशं लसद्वन्यवेशं कृपाभिनदेशं भजे वल्लवेशम् ॥ १६ ॥
 उल्लसद्वल्लवीवाससां तस्करस्तेजसा तिर्जितप्रस्फुरङ्गास्करः ।
 पीनदोःस्तम्भयोरुल्लसवन्दनः पातु वः सर्वतो देवकीनन्दनः ॥ १७ ॥

संसृतेस्तारकं तं गवां चारकं वेणुना पण्डितं क्रीडने पण्डितम् ।
 धातुभिर्वेषिणं दानवदेविणं विन्तय सामिनं बल्लवीकामिनम् ॥ १८ ॥

उपात्तकवलं परागशबलं सदेकशरणं सरोजचरणम् ।
 अरिष्टदलनं विकृष्टपूललनं नमामि समहं सदैव तमहम् ॥ १९ ॥

विहारसदनं मनोश्वरदनं प्रणीतमदनं शशाङ्कवदनम् ।
 उरःस्थकमलं यशोभिरमलं करात्तकमलं भजस्व तमलम् ॥ २० ॥

दुष्टधंसः कर्णिकारावतंसः खेलद्वशीपञ्चमच्छानदांसी ।
 गोपीचेतः केलिभङ्गीनिकेतः पातु स्वैरी हन्त वः कंसवैरी ॥ २१ ॥

दृष्ट्वादव्यां केलिमानन्दनव्यां कुर्वन्नारी चित्तकन्दपधारी ।
 नर्माद्वारी मां दुक्त्वापहारी नीपारुदः पातु वर्हावचूडः ॥ २२ ॥

खचिरनखे रचय सखे बलितर्ति भजनतिम् ।
 त्वमविरतिस्त्वरितगतिर्नितशरणे हरिचरणे ॥ २३ ॥

खचिरपटः पुलिननटः पशुपगतिर्गुणवसतिः ।
 स मम शुचिर्जलदखचिर्मनसि परिस्फुरतु हरिः ॥ २४ ॥

केलिविहितयमलार्जुनयज्ञन खुललितचरितनिखिलजनरज्ञन ।
 लोचननर्तनजितचलखज्ञन मां परिपालय कालियगज्ञन ॥ २५ ॥

भुवनविसृत्वरमहिमाङ्गस्वर विरचितनिखिलखलोत्कर संवर ।
 वितर यशोदातनय वरं वरमभिलषितं मे धृतपीताम्बर ॥ २६ ॥

चिकुरकरमितचारशिखण्डं भालविनिर्जितवरशशिखण्डम् ।
 रदखचिनिर्धुतमुद्रितकुन्दं कुरुत दुधा हृदि सपदि मुकुन्दम् ॥ २७ ॥

यः परिरक्षितसुरभीलक्षस्तदपि च दुरभीमर्दनदक्षः ।
 मुरलीवादनखुरलीशाली स दिशतु कुशलं तव वनमाली ॥ २८ ॥

रमितनिखिलडिस्वे वेणुपीतोष्ठविस्वे हतखलनिकुरस्वे बल्लवीदत्तचुम्बे ।
 भवतु महितनन्दे तत्र वः केलिकन्दे जगदविरलतुन्दे भक्तिरुर्वी मुकुन्दे ॥ २९ ॥

पशुपयुवतिगोष्ठी चुम्बितथीमदोष्ठी सरतरलितदण्ठिर्निर्मितानन्दद्वृष्टिः ।
 नवजलधरधामा पातु वः कृष्णनामा भुवनमधुरवेशा मालिनी मूर्त्तिरेपा ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमद्भूपांस्त्वामिविरचिता

जिनका वर्ण नवीन जलधरके समान है, जिनके कानोंमें चम्पाके पूल सुशोभित हैं, खिले हुए पद्मके समान जिनका मुख है, जिसपर मन्दहास्य सदा खेलता रहता है, जिनके बलकी कान्ति स्वर्णके समान है, जो मस्तकपर मोरमुकुट धारण किये रहते हैं, उन सबके सारलूप श्रीयशोदाकुमारका मैं स्तबन करता हूँ ॥ १ ॥

जिनके मुखकी अनुपम शोभा शरदकृतुके पूर्ण चन्द्रका पराभव करती है, जो क्रीडारत एवं लावण्यके समुद्र हैं, जो हाथमें कन्दुक लिये रहते हैं तथा गोपियोंके प्राणबन्धु हैं,

जिनका मङ्गलविग्रह गोधूलिसे धूसरित रहता है, जो वगल बंशी लिये रहते हैं और गौण जैसे जिनकी वाणीके वशीभूत रह हैं, वे नन्दनन्दन मेरी रक्षा करें ॥ २ ॥

है मुकुन्द ! आपने शङ्खचूड़-जैसे दुष्टका वात-की-वात संहार कर दिया । भाग्यवती गोपरमणियाँ वडे ही प्रेमसे आप को दृदयसे लगाती हैं । भक्तोंकी मानस-भूमिपर आप ही ही आलढ़ रहते हैं । मयूरपिंचके द्वारा आप अपने वेदगाढ़ को सजाये रहते हैं । आपके कण्ठदेशमें मनोहर गुलाओंके दीलटकते रहते हैं । अपनी रसमयी कीदाढ़ोंके लिये आप रमगी-

* श्रीमुकुन्दसुक्तावली *

मुझोंका आश्रय लेते हैं और अपने कानोंमें लिले हुए
कुन्दके फूल खोंसे रहते हैं । देव ! आप मेरी रक्षा करें ॥ ३ ॥

हे कमलनयन ! यज्ञ बंद कर दिये जानेसे रुष्ट हुए
इन्द्रने भयंकर मेघमण्डलीको प्रेरितकर जब ब्रजभूमिपर
खुलधार वर्षा प्रारम्भ की, उस समय इस अतर्कित विपत्तिसे
हुई हुए गोपालोंको देखकर आपके क्रोधका पर नहीं रहा
और आपने तुरंत अपने वाँयें करकमलपर उचुङ्ग गोवर्धन
गरिको धारणकर उसीकी छत्रछायासे सम्पूर्ण ब्रजमण्डलको
उचार लिया, उसी प्रकार आज मुझ अनाथकी भी
रक्षा करें ॥ ४ ॥

जो अपने वक्षःख्यलपर नक्षत्रमण्डलीके समान मोतियों-
का बहुमृत्य एवं श्रेष्ठ हार धारण किये रहते हैं, जो
गोपज्ञनाओंके चित्तमें प्रेमका संचार करते रहते हैं,
दुष्टमण्डलीका शिरोभूषणरूप कंस जिनके क्रोधका शिकार बन
गया और जिनकी वंशीयर विशेष प्रीति है, वे श्रीकृष्ण हमें
अपने हुर्लभ प्रेमका दान करें ॥ ५ ॥

खच्छन्द बीडामें रस रहनेवाली, मेघमालाके समान श्याम,
गोपवालाओंको प्रेम-व्याधिसे जर्जर कर देनेवाली, अखिल मुनि-
मण्डलीके द्वारा स्वतनके योग्य एवं दूध, मक्कलन आदि गव्य
पदार्थोंसे पूर्ण तृतिका अनुभव करनेवाली भगवान् अवधृतन
श्रीनन्दननन्दनकी सर्वशर्वपूर्ण मञ्जुलमूर्ति मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥

जिनका मनोहर मुखमण्डल पूर्णिमाके चन्द्रमाके गर्वको
चूर्ण कर देता है (जिससे वह लज्जासे मानो पुनः क्षीण
होने लगता है), भगवती लक्ष्मी जिनके चरणोंका सदा ही
बन्दन किया करती है, जो अपने श्रीविग्रहपर दिव्यातिदिव्य
चन्दनका लेप किये रहते हैं, जो ब्रजसुन्दरियोंका प्रेमोपहार
स्त्रीकार करनेके लिये गिरिराजकी कम्दराओंको मन्दिर बना
लेते हैं, धनधोर वारोंसे ब्रजको बचानेके लिये जिन्होंने
गोवर्धनगिरिको लीलासे ही अपने करकमलपर धारण कर लिया
है एवं जिनकी ग्रीवा चमचमाते हुए कुण्डलोंके प्रभामण्डलसे
परिव्याप्त रहती है, उन श्यामसुन्दर नन्दननन्दनका ही निरन्तर
सेवन करते रहो ॥ ७ ॥

जो गोकुलके प्राङ्गणयों अपनी मनोमुग्धकरी लीलाओंसे
मण्डित करनेवाले, पूतना-जैसी रात्रिकी जन्म-मरणके चक्रसे
सदाके लिये तुझा देनेवाले हैं, जिनकी दन्तावली कुन्दपठक्तिके
समान गुरु एवं मनोहर है, जिनके विशाल लोचन अम्बुज-
बृन्दके द्वारा अनिदित है, जिनके कर-पल्लव सौरभके निधान
कुल-मङ्गजोंके समान शोभाभसान हैं और जिनका दिव्य-नर्दन

देव-बृन्दके लिये भी हुर्लभ है, उन गोपीजनवल्लभ भरवान्
श्रीकृष्णका सदा स्मरण करते रहो ॥ ८ ॥

जिनके मनोहर मुखमण्डलीकी कान्ति पूर्णिमाके चन्द्र-
मण्डलके गर्वको भी खण्डित करती रहती है, रत्ननिर्मित
कुण्डल जिनके गण्ड-मण्डलपर ताण्डव करते रहते हैं, पूले
हुए कमलोंकी मालसे जिनका वक्षःख्यल सदा मण्डित रहता
है और जिनके बाहुदण्ड शत्रुओंके लिये बड़े ही प्रचण्ड हैं;
उन कंससूदन भगवान् श्रीकृष्णकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ९ ॥

उठती हुई तरङ्गोंके समान अङ्गरागके लेपसे जिनकी
अङ्गकान्ति पीताम हो गयी है, जो हस्तकमलमें लंबा-सा सींग
धारण किये हुए हैं, जो ब्रजाङ्गनाओंकी मण्डलीके लिये
अत्यन्त मङ्गलरूप हैं, जिनकी कीर्तिवल्लीके पल्लव दिशाओं-
को मण्डित करनेवाले मलिकाके पुष्पोंका परिहास करते हैं
और जिनकी कमनीय छूलताएँ कान्तिसे उल्लसित रहती हैं,
वे वस्त्रवशुभार आज आपकी रक्षा करें ॥ १० ॥

हे श्रीकृष्ण ! आपने ही तो अपने पिता ब्रजराज (श्रीनन्दजी)
को इन्द्रपूजासे रोका था तथा मखमङ्गसे रुष्ट हुए इन्द्रका
निवारण किया था और अपने संकल्पसे ही उनके द्वारा
बरसायी हुई अपार जलराशिका शोषण किया था; आपने ही
बादलोंके द्वारा खड़ी की हुई सोटी दीवारको हटाया था और
इस प्रकार ब्रजकी रक्षा करके अपने कुलको आनन्दित किया
था । उन ब्रजेन्द्रनन्दन गिरिधारी श्रीकृष्णकी उनके कुलके
सहित मैं स्तुति करता हूँ ॥ ११ ॥

आप महावली राजा कंसके हृदयमें शूलकी भाँति
खटकते रहते हैं तथा निरन्तर यमुनातटका ही सेवन किया
करते हैं । आपके श्रीमत्सकपर सुन्दर मयूरपिंच्छ सुशोभित
रहता है । सम्पूर्ण चराचर जगत्के आदिकारण आपकी मैं
बन्दना करता हूँ ॥ १२ ॥

जिनका श्रीविग्रह चन्दनके लेपसे अत्यन्त सुशोभित है,
जो अपनी अङ्गकान्तिसे नवीन जलधरका भी तिरस्कार
करनेवाले हैं, जिन्होंने देवबृन्दकी रक्षाका व्रत ले रखा है
और जो पृथ्वीके भाररूप दानवोंका संहार करके उसे संषुष्टु
करते रहते हैं, जिनकी दन्तपठकी कुन्दके समान उज्ज्वल
एवं कमनीय है और जो अपनी आनन्ददायिनी, विविध
लीलाओंमें अन्य सभी भगवत्स्वरूपोंसे आगे बढ़े हुए हैं, वे
रसिकशिरोमणि वरदाता श्रीकृष्ण मुक्षपर कृपा करें ॥ १३ ॥

जो भुलीरवकी उन्मादकारी तरङ्गोंका सज्जन करते रहते हैं,
जिनके श्रीअङ्गोंसे नवीन जलधरकी-सी कान्ति फूटती
रहती है, जो ब्रजयुवतियोंके हृदयमें प्रेमकी लहरें उठाते रहते

हैं और जो यमुनाजीके तटपर श्रीदा करते रहते हैं उन भगवान् दयामसुन्दरको प्रणाम करो ॥ १४ ॥

जिनका नवीन जलधरके समान द्यामवर्ण है, जो अपने मधुर स्वगत एवं आनन्दसे सुमस्त वद्यागड़को संतुष्ट करते रहते हैं जिनके श्रीमुखसे घंटी कभी अल्प नहीं होती, जो मधूरपिंचका मुकुट धारण किये रहते हैं, जिनके करकमल-में वेददण्ड सुशोभित हैं, जिनके नेत्र कलाके समान द्योमायगान हैं, जो बड़े-बड़े गुजारोंकी मालाएँ धारण किये रहते हैं और जो बृन्दावनके कुओंमें विद्वार करते रहते हैं, उन श्रीकृष्णका ही मैं आश्रय महण करता हूँ ॥ १५ ॥

जो महाप्रलश्चाली दानवोंका संहार करके पृथ्वीका भार हरण करते हैं और प्रणत एवं साधुजनोंका क्लेश दूर करते हैं, जिनके बलका जन्मतुम्हें यशोगान होता है, जो असूल रुदोंके हार धारण किये रहते हैं; जिनके केश अत्यन्त मुदु एवं रस्यम हैं, जो बनवारियोंका-सा वेद धारण किये रहते हैं तथा कृपाके पारवार हैं, उन गोपेन्द्रकुमारका मैं आश्रय महण करता हूँ ॥ १६ ॥

जो गोपवालाओंके चमकिले बलोंका हरण करे लेते हैं तथा अपने दिव्य प्रकाशसे तेजोमय भगवान् भासकरको भी पराजित करते हैं, जिनकी पीन कुजाओंमें चन्दनका लेप सुशोभित है, वे भगवान् यशोदानन्दन आपलोंगोंकी सब प्रकार रक्षा करें ॥ १७ ॥

जो प्रणतजनोंको संसारसे तार देते हैं तथा गौओंके बृन्दको बनवनमें धूमकर चराते रहते हैं, बंसीसे विशृणित रहते हैं और विविध प्रकारकी कीड़ाओंमें अत्यन्त कुशल हैं, जो गैरिक धातुओंसे अपने श्रीअङ्गोंको मणिष्ठ किये रहते हैं तथा दानवोंके शत्रु हैं, उन गोपीजनोंके ब्रेमी जगदीश्वर श्रीकृष्णका ही चिन्तन किया करो ॥ १८ ॥

जो हाथमें दही-भातका कौर लिये रहते हैं, जिनके श्रीअङ्ग रेणुवे विश्वविचित्र बने रहते हैं, जो सजनोंके एकमान आश्रय हैं, जिनके पाद-पल्लव कमलके सद्वा कोमल हैं, जो अरिष्ठसुर एवं भक्तजनोंके अकुमका विनाश करनेवाले हैं जो अपनी प्रेमभरी चेष्टाओंसे कामनियोंका विच्छ चुरानेवाले हैं और जो सदा ही आनन्दसे पूर्ण रहते हैं, उन नन्दननन्दन-को मैं शदैव नमन करता हूँ ॥ १९ ॥

जो विविध प्रकारकी लीलाओंके धाम हैं, जिनकी दन-

पद्मक बड़ी ही मनोहर है, जो बज्जुबतियोंके हृदयमें प्रेस संचार करते रहते हैं, जिनका मुलमण्डल चन्द्रिमके सदा है, जिनके वक्षस्थालर द्व्यन्नरेखाके रूपमें मायती लक्ष सदा निवास करती हैं, जिनकी निर्मल वीर्ति समस्त द्विष्ठों में फैली हुई है और जो हाथमें लीलाकमल पिसते रहते हैं उन श्रीकृष्णका ही सर्वतोमावैत भजन करो ॥ २० ॥

जो हुद्योंका दल्म करते एवं कनोरके झूलोंको कांमूलरे रूपमें धारण किये रहते हैं, जो अपनी जामन्मोहिनी मुर्दी पञ्चम सरका सर्वत्र विस्तार करते रहते हैं, श्रीमोर्यजतो चित्त जिनकी विविध विलसयूर्ण भक्तिपूर्ण भक्तिपूर्ण निकेतन वन् बृहुत् है, वे परम स्वतन्त्र कंतारा श्रीकृष्ण आप तदकी रक्षा करें ॥ २१ ॥

बृन्दाकाननमें नित्य नवीन आनन्द देनेवाली श्रीकृष्ण करते हुए जो गोपाङ्गवालाओंके विद्यमें नित्य बृहुत् अनुग उत्सव करते रहते हैं, गोपवालाओंकी प्रेमदृष्टिके द्विने मधुर परिहास करते हुए उनके बलोंका अपहरण किये कदम्बके वृक्षपर चढ़ जाते हैं, वे मधूरपिंचका मुकुट धारण करनेवाले श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करें ॥ २२ ॥

जिनके नदी अत्यन्त सुन्दर हैं और जो प्रणतजनों आश्रय हैं, उन श्रीहरिके चरणोंका है मिन। तुम जल्दी-से-जरूर एक क्षणका भी विराम न लेकर अनुरागाहित निरन्तर भजन करो ॥ २३ ॥

जिनके बल अत्यन्त सुन्दर हैं, जो श्रीमुनार्जुनीं तीरपर वृत्य करते रहते हैं, जो भजवाती गोपोंकी एकावत गति हैं और अनन्त कल्याण हुणोंके सदा हैं, वे जलदाति एवं अत्यन्त निर्मलस्वरूप श्रीहरि मेरे चित्तपद्मर भजा ही प्रकाशित रहें ॥ २४ ॥

हे कलियामर्दन श्रीकृष्ण ! आप लेल-ही लेलों अर्जुनों दो छुड़ाँ बृहोंको जड़से उतारा देते हैं, अपने अपनत दो छुड़ाँ बृहोंको जड़से उतारा देते हैं, आपने अपनत नर्तनसे चपल सज्जनका तिरस्तार बताते हैं। आप मेरा सब ओरसे पोषण करें ॥ २५ ॥

हे यशोदानन्दन ! आपकी महिमाका विद्वार धृष्ट भुवनोंमें व्याप हो रहा है, आप लम्ब तुष्टजनोंका गंड सकनेवाले हैं तथा पीताम्बर धारण किये रहते हैं। आप हाँ करके मुझे भननाहा उत्तम-से-उत्तम वरदान दीजिये ॥ २६ ॥

जिनके हुद्योंके बालोंमें मनोहर मधूरपिंच शांत रहता है

जिनका ललाट सुन्दर अष्टमीके चन्द्रका भी परामर्श करनेवाला है, जिनकी दशनकानिति कुन्दकलियोंको मात करती है, है विनारचन् पुरुषो ! उन श्रीमुकुन्दकी शीघ्रसेशीघ्र अपने इदयासनपर विराजमान करो ॥ २७ ॥

जो लाजों गौओंका पालन करते हैं और देवताओंके भयको दूर करनेमें अत्यन्त कुशल हैं तथा जिन्हें निरन्तर मुरली बजानेका अभ्यास हो गया है, वे बनमालाधारी भगवान् श्रीकृष्ण आपका सब प्रकार कुशल करे ॥ २८ ॥

जो अपने प्रेमीस्वभाव एवं मधुर व्यवहारसे समस्त गोपकालोंका रखन करते रहते हैं, भाग्यवती मुरली जिनके वधरमूलका निरन्तर पान करती रहती है, जो दुर्जनवृत्तका

नश करते रहते हैं, गोपरमणियाँ जिन्हें अपने हृदयका प्यार देती रहती हैं, जो पितृमत्तिके कारण नन्दरायजीका आदर करती हैं, जो विविध लीलासरकी वर्षा करनेवाले मेघके समान हैं और अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड जिनके उदरमें समाये रहते हैं, उन मुकिदाता भगवान् श्रीकृष्णमें आपलोगोंकी प्रदूर भक्ति हो ॥ २९ ॥

गोपसुत्तियोंका वृन्द जिसे सब ओरसे प्यार करता है और जिसकी हृषि उनके प्रति अनुरागसे भरी रहती है तथा जो उनपर सदा आमन्दकी वर्षा करती रहती है, जिसकी अङ्गकानिति नवीन जलधरके समान है और जो अपने देशसे निशुद्धनको मोहित करती रहती है, वह श्रीकृष्णनामकी बनमालाविभूषित दिव्य मूर्ति आपलोगोंकी रक्षा करे ॥ ३० ॥

(श्रीमुकुन्दमुक्ताकी सामान)

श्रीयुगलकिशोराष्ट्रकम्

नवजगलधरविद्युद्योतवर्णौ प्रसन्नौ वदननयतपद्मौ चारचम्प्रावतंसौ ।
अलकतिलकभालौ केशवेशप्रकूलौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥ १ ॥
वसन्तहरितनीलौ चन्द्रवालेपनाङ्गौ मणिमरकतदीपौ स्वर्णमालाप्रयुक्तौ ।
कनकवलयहस्तौ रासनाट्यप्रसक्तौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥ २ ॥
आति मधुरसुवेशो रङ्गमङ्गीत्रिमङ्गो मधुरमुद्दलहास्यौ कुण्डलाकीर्णकणौ ।
नटवरवररम्यौ सृत्यगीतानुरक्तौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥ ३ ॥
विविधगुणविद्यौ वन्दनीयौ सुवेशौ मणिमयकरादैः शोभितदौ सुररस्तौ ।
सितनमितकदाक्षौ धर्मकर्मप्रदत्तौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥ ४ ॥
कनकमुकुटचूडौ पुष्पितेत्रूपिताङ्गौ सकलवनलिविष्टौ सुन्दरानन्दपुञ्जौ ।
चरणकमलदिव्यौ देवदेवादिसेव्यौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥ ५ ॥
अतिसुवलितमात्रौ गच्छमालैर्विराजौ कातिकतिरमणीनो सेव्यमालौ सुवेशौ ।
मुनिसुरगणभाव्यौ वेदशास्त्रादिविष्टौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥ ६ ॥
अतिसुमधुरमूर्ती दुप्रदर्पशाल्ती सुरवरधरदौ द्वौ सर्वसिद्धियदानौ ।
अतिरसवशमग्नौ गीतवाद्यप्रतानौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥ ७ ॥
अगमनिगमसारौ सुष्टिसंहारकारौ वयति नवकिशोरै नित्यवृन्दावनस्तौ ।
शमनभयविनाशौ पापिनस्तारयन्तौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥ ८ ॥

इदं मनोहरं स्तोत्रं श्रद्धया यः पठेत् ॥
राधिकाकृष्णचन्द्रौ च सिद्धिदौ तात्र संशयः ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमद्भगवत्सामिविरचितं श्रीयुगलकिशोराष्ट्रकम् ॥

जिनका वर्ण क्रमशः नवीन जलपूर्ण मेघ एवं विद्युच्छटके समान है, जिनके मुखपर सदा प्रसन्नता छायी रहती है, जिनके मुख एवं नेत्र कमलके समान प्रकृतित हैं, जिनके मस्तकपर क्रमशः मधूरपिञ्चका मुकुट एवं स्वर्णमय चन्द्रिका सुशोभित है, जिनके ललाटपर सुन्दर तिलक किया हुआ है और अलकावली विशुरी हुई है और जो अद्भुत केश-रचनाके कारण फूले-फूले-से लगते हैं, अरे मेरे मन ! तू उन श्रीराधिका एवं श्रीकृष्णचन्द्रका ही निरन्तर सेवन कर ॥ १ ॥

जिनके श्रीअङ्गोपर क्रमशः पीछे और नीले बब्ल सुशोभित हैं, जिनके श्रीविग्रह चन्दनसे चर्चित हो रहे हैं, जिनकी अङ्गकान्ति क्रमशः मरकतमणि एवं स्वर्णके सदृश है, जिनके वक्षःस्थलपर स्वर्णहार सुशोभित है, हाथोंमें सोनेके कंगन चमक रहे हैं और जो रासकीडामें संलग्न हैं, अरे मन ! उन श्रीवृषभानुकिशोरी एवं श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका ही नित्य सेवन किया कर ॥ २ ॥

जिन्होंने अत्यन्त मधुर एवं सुन्दर वेष बना रखा है, जो अत्यन्त मधुर भज्जीसे त्रिभज्जी होकर स्थित हैं, जो मधुर एवं मृदुल हँसी हँस रहे हैं, जिनके कानोंमें कुण्डल एवं कर्णफूल सुशोभित हैं, जो श्रेष्ठ नट एवं नटीके रूपमें सुसज्जित हैं तथा नृत्य एवं गीतके परम अनुरागी हैं, अरे मन ! उन राधिका-कृष्णचन्द्रका ही तू भजन किया कर ॥ ३ ॥

जो विविध गुणोंसे विभूषित हैं और सदा बन्दनके योग्य हैं, जिन्होंने अत्यन्त मनोहर वेष धारण कर रखा है, जिनके श्रीअङ्गोंमें मणिमय मकराकृत कुण्डल आदि आभूषण सुशोभित हैं, जिनके अङ्गोंसे प्रकाशकी किरणें प्रस्फुटित हो रही हैं, जिनके नेत्रप्रान्तोंमें मधुर हँसी खेलती रहती है और जो हमार धर्म-कर्मके फलस्वरूप हमें प्राप्त हुए हैं, अरे मन ! उन वृषभानुकिशोरी एवं नन्दनन्दन श्रीकृष्णमें ही सदा लबलीन रह ॥ ४ ॥

जो मस्तकपर स्वर्णका मुकुट एवं सोनेकी ही चन्द्रिका धारण किये हुए हैं, जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग फूलोंके शूङ्गार एवं

विविध आभूषणोंसे विभूषित हैं, जो ब्रजभूमिके समस्त वन-प्रान्तोंमें प्रवेश करके नाना प्रकारकी लीलाएँ रखते रहते हैं जो सौन्दर्य एवं आनन्दके मूर्तल्प हैं, जिनके चरणकाल अत्यन्त दिव्य हैं और जो देवदेव महादेव आदिके भी आराध्य हैं, अरे मन ! उन श्रीराधा-कृष्णका ही तू निस्ता चिन्तन किया कर ॥ ५ ॥

जिनके अङ्गोंका संचालन अत्यन्त मधुर प्रतीत होता है जो नाना प्रकारके सुगान्धित द्रव्योंका लेप किये हुए और नाना प्रकारके पुष्पोंकी मालाओंसे सुसज्जित हैं, असंख्य ब्रजसुन्दरियाँ जिनकी सेवामें सदा संलग्न रहती हैं, जिनका वेश अत्यन्त मनोमोहक है, बड़े-बड़े देवता एवं मुनिगण भी जिनका ध्यानमें ही दर्शन कर पाते हैं और जो वेद-शास्त्रादिके महान् पण्डित हैं, अरे मन ! तू उन कीर्तिकुमारी एवं यशोदानन्दनका ही ध्यान किया कर ॥ ६ ॥

जिनका श्रीविग्रह अत्यन्त मधुर है, जो दृष्टजनोंके दर्पको चूर्ण करनेमें परम दक्ष हैं, जो बड़े-बड़े देवताओंको भी वर देनेकी सामर्थ्य रखते हैं और सब प्रकारकी सिद्धियोंको प्रदान करनेवाले हैं, जो सदा ही परमोक्तुष प्रेमके वशीभूत होकर आनन्दमें मरन रहते हैं तथा गीतबादका विस्तार करते रहते हैं, अरे मन ! उन्हीं दोनों राधा-कृष्णकी तू भावना किया कर ॥ ७ ॥

जो अगम्य वेदोंके सारभूत हैं, सृष्टि और संहार जिनकी लीलामात्र हैं, जो सदा नवीन किशोरावस्थामें प्रकट रहते हैं, बृन्दावनमें ही जिनका नित्य-निवास है, जो यमराजके भयका नाश करनेवाले और पापियोंको भी भवसागरसे तार देनेवाले हैं, अरे मन ! तू उन राधिका-कृष्णचन्द्रकों ही भजता रह ॥ ८ ॥

इस मनोहर स्तोत्रका जो कोई मनुष्य शदापूर्वक पाठ करेगा, उसके मनोरथको श्रीराधा-कृष्ण निसंदेह पूर्ण करेगे ॥ ९ ॥

(श्रीयुगलकिशोराराधक सम्पूर्ण)



उपदेशामृतम्

वाचोवेगं	मनसः	क्रोधवेगं	जिह्वावेगमुदरोपश्वेगम् ।
एतान् वेगान् यो विश्वेत वीरः सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात् ॥ १ ॥			
अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पोऽनियमाग्रहः । जनसङ्क्षश्च लौत्यं च षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति ॥ २ ॥			
उत्साहान्निश्चयाद् धैर्यात् तत्तत्कर्मप्रवर्त्तनात् । सङ्गत्यागात् सतो वृत्तेः षड्भिर्भक्तिः प्रसीदति ॥ ३ ॥			
ददाति प्रतिगृह्णति गुणमाख्याति पृच्छति । भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्भिर्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥ ४ ॥			
कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत दीक्षास्ति चेत् प्रणतिभिश्च भजन्तमीशम् ।			
शुश्रूषया	भजनविज्ञमनन्यमन्यनिन्दादिशून्यहृदभीज्जितसङ्गलब्ध्या ॥ ५ ॥		
हृष्टैः स्वभावजनितैर्वैपुषस्तु दोषैर्न प्राकृतत्वमिह भक्तजनस्य पश्येत् ।			
गङ्गाम्भसां न खलु वृद्धुदफेनपङ्कैर्वृह्मद्वत्वमपगच्छति नीरधर्मैः ॥ ६ ॥			
स्यात् कृष्णनामचरितादिसितात्थविद्यापितोपतत्तरसनस्य न रोचिका तु ।			
कित्वादरादनुदिनं खलु सैव जुषा स्वाद्वी क्रमाद् भवति तद्दद्मूलहन्त्री ॥ ७ ॥			
तत्त्वामस्पचरितादिसुकीर्त्तनानुस्मृत्योः क्रमेण रसनामनसी नियोज्य ।			
तिष्ठन् वजे तदनुरागिजनानुगामी कालं नयेन्निखिलमित्युपदेशसारः ॥ ८ ॥			
वैकुण्ठाङ्गनिता वरा मधुपुरी तत्रापि रासोत्सवाद्			
वृन्दारण्यमुदारपाणिरमणात्तत्रापि		गोवर्जनः ।	
राधाकृष्णमिहापि	गोकुलपतेः	प्रेमामृतप्लावनात्	
कुर्यादस्य विराजतो गिरितटे सेवां विवेकी न कः ॥ ९ ॥			
कर्मिभ्यः परितो हरेः प्रियतया ख्यातिं ययुर्ज्ञानिन-			
स्तेभ्यो ज्ञानविमुक्तभक्तिपरमाः प्रेमैकनिष्ठा यतः ।			
तेभ्यस्ताः पशुपालपङ्कजदशस्ताभ्योऽपि सा राधिका			
प्रेष्ठा तद्विद्यं तदीयसरसी तां नाश्रयेत् कः कृती ॥ १० ॥			
कृष्णस्योऽच्चैः प्रणयवसतिः प्रेयसीभ्योऽपि राधा			
कुण्डं चास्या मुनिभिरभितस्ताहगेव व्यधायि ।			
यद्येष्टैरप्यलमसुलभं किं पुनर्भक्तिभाजां			
तत् प्रेमादः सकृदपि सरः स्नातुराविष्करोति ॥ ११ ॥			
॥ इति श्रीजीवगोस्तमिपादशिरार्थं श्रीमद्भूगोस्तमिपादेनोक्तमुपदेशामृतं समाप्तम् ॥			

वाणीका वेग (उच्छृङ्खल प्रयोग), मनका क्रोधस्त्री वेग, जिह्वाका चटोरेपनका वेग, उदरका क्षुधारूप वेग और उपरथेन्द्रियका वेग—इन समस्त वेगोंको जो वीर पुरुष सह लेता है, विचलित नहीं होता, वह इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर भी शास्तन कर सकता है ॥ १ ॥

अधिक भोजन, घूतोंसे अधिक परिश्रम, अधिक वक्तव्याद, भजन आदिका नियम न रखना, अधिक लोगोंसे मिलना-

जुलना और चपलता—इन छः दोषोंसे भक्तिका पौधा मुरक्का कर न एष हो जाता है ॥ २ ॥ भजनमें उत्साह, भगवान्के अस्तित्व एवं कृगका दृढ़ निश्चय, विष्टिके समय धैर्य रखना, भजनमें सहायक कर्मोंमें प्रवृत्त होना, आसक्तिका त्याग और सदाचारका सेवन—इन छः गुणोंसे भक्ति विल उठती है ॥ ३ ॥ वस्तु एवं द्रव्यका आदान-प्रदान, गुप्त-से-गुप्त चात निस्संकोच होकर कहना और पूछना, आना और सिलना—ये छः प्रीतिके लक्षण हैं ॥ ४ ॥

जिसकी जिहापर श्रीकृष्णका नाम हो, उस पुरुषका मनसे आदर करना चाहिये; यदि उसे किसी वैष्णव-मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त हो तो उसे शरीरसे भी प्रणाम करना उचित है। यदि वह भगवान्‌का भजन करता हो तो उसे सेवासे भी प्रसन्न करे। यदि उसकी भजनमें परिपक्व निश्च हो गयी हो और वह श्रीकृष्णका अनन्य उपासक होनेके साथ निन्दादिसे शून्य हृदयवाला हो तो उसका यथेष्ट सङ्ख भी करे ॥ ५ ॥ शरीरगत स्वभावसे (उत्तम हुए दोषोंको देखकर भक्त-जनोंके प्रति प्राकृत-दृष्टि (सामान्य-बुद्धि) कदापि न करे। बुद्धुद, केन और पङ्क आदि जलके धर्मोंसे गङ्गाजलकी ब्रह्मद्रवता नष्ट नहीं हो जाती ॥ ६ ॥

जिनकी जिहाका स्वाद अविद्यारूपी पित्तके दोषसे विगड़ा हुआ है, उन्हें कृष्ण-नाम एवं उनकी लीला आदिका गानहृष मिश्री भी मीठी नहीं लगती। किंतु उसी मिश्रीका आदर-पूर्वक प्रतिदिन सेवन किया जाय तो कमशः वह निश्चय ही मीठी लगती है और पित्तके विकारका समूल नाश भी कर देती है ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णके नाम-रूप-चरितादिकोंके कीर्तन और स्वरणमें क्रमसे रसना और मनको लगा दे—जिहासे श्रीकृष्ण-नाम रटता रहे और मनसे उनकी रूप-लीलाओंका स्वरण करता रहे तथा श्रीकृष्णके प्रेमीजनोंका दास होकर व्रजमें निवास करते हुए अपने जीवनके सम्पूर्ण कालको व्यतीत करे। यही सारे उपदेशोंका सार है ॥ ८ ॥

वैकुण्ठकी अपेक्षा भी मथुरापुरी अधिक श्रेष्ठ हो गयी है और रासोत्सवकी भूमि होनेके कारण वृन्दावन मथुराकी अपेक्षा

(उपदेशमूल सम्पूर्ण)

भी अधिक वरणीय है। वृन्दावनमें भी उदारपाणि भगवान् श्रीकृष्णको विशेष आनन्द देनेके कारण गोवर्धनकी तोरी और भी श्रेष्ठ है। गोवर्धनकी तोरीमें भी भगवान् गोकुलेश्वर-को प्रेमामृतमें अवगाहन करानेके कारण राधाकुण्ड और भी वरेण्य है; अतः ऐसा कौन विवेकी पुरुष होगा, जो उक्त गोवर्धनकी तोरीमें विराजमान श्रीराधाकुण्डका सेवन नहीं करेगा ॥ ९ ॥

कर्मियोंकी अपेक्षा (जो भगवान्‌की अपने-अपने कर्मोंके द्वारा आराधना करते हैं) शानीजन (भगवान्‌के तत्को जानेवाले) श्रीहरिके विशेष प्रियरूपमें प्रसिद्ध हैं। उनकी अपेक्षा भी अभेदज्ञानरहित भक्तिके परायण हुए लोग अधिक प्रिय हैं। भक्तोंकी अपेक्षा भी श्रीकृष्णप्रेमकी अनन्य निश्च-वाले प्रेमीजन और भी विशेष प्रिय हैं। ऐसे प्रेमियोंकी अपेक्षा भी व्रजगोपीजन प्रियतर हैं और उनमें भी वे प्रसिद्ध श्रीराधिका तो भगवान्‌को सर्वांपेक्षा अधिक प्रिय हैं तथा उनका यह राधाकुण्ड उन्हीं श्रीराधाके समान ही श्रीकृष्णको प्रिय है। ऐसी दशामें ऐसा कौन विवेकी पुरुष है जो इस राधाकुण्डका सेवन नहीं करेगा ॥ १० ॥ वृषभानुकिशोरी श्रीराधिका श्रीकृष्ण-की प्रेयसियोंकी अपेक्षा भी अधिक प्रेमपात्री हैं और उनके कुण्ड (राधाकुण्ड) को मुनियोंने सब प्रकार उन्हीं श्रीराधाके समान दर्जा दिया है; क्योंकि उसकी प्राप्ति, भक्तोंकी तो बात ही क्या, श्रीकृष्णके प्रेमियोंको भी दुर्लभ है। उस राधाकुण्ड-में जो एक बार भी स्नान कर लेता है, उसके हृदयमें वह कुण्ड उसी श्रीकृष्णप्रेमको प्रकट कर देता है ॥ ११ ॥

स्वयम्भगवत्स्वाष्टकम्

स्वजन्मन्त्यश्वय बलमिह वधे दैत्यवितर्त्येषः पार्थचाणे यदुपुरि महासम्पदमधात् ।
परं ज्ञानं जिष्णौ मुसलमनु वैराग्यमनु यो भग्नैः षड्भिः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥ १ ॥
चतुर्बाहुत्वं यः स्वजनिसमये यो मृदशते जगत्कोटि कुक्ष्यन्तरपरिमितत्वं स्वपुरः ।
दधिस्फोटे ब्रह्मण्यतनुत परानन्ततनुतां महैश्वर्यैः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥ २ ॥
बलं बक्यां दन्तच्छदनवरयोः केशिनि नगे चुपे बाहोरङ्गेः फणिनि चपुषः कंसमरुतोः ।
गिरिचे दैत्येष्वप्यतनुत निजाख्यस्य यदतो महैजोभिः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥ ३ ॥
असंख्याता गोप्यो वजसुवि महिष्यो यदुपुरे सुताः प्रद्युम्नाद्याः सुरतरुसुधर्मादि च धनम् ।
बहिर्द्वारि ब्रह्माद्यपि वलिवहं स्तौति यदतः श्रियां पूरैः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥ ४ ॥
यतो दत्ते मुक्ति रिपुवितरये यन्वरजनिर्विजेता रुद्रादेवपि नतजनाधीन इति यत् ।
सभायां द्रौपद्या वरकृदतिपूज्यो नृपमखे यशोभिः स्वैः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥ ५ ॥

न्यधाद् गीतारत्नं चिजगदतुलं यत् प्रियसखे परं तत्त्वं प्रेषणोद्घवपरमभक्ते च निगमम् ।
निजप्राप्णप्रेषास्यपि रसभृतं गोपकुलजास्तो ज्ञानैः पूर्णैः स भवतु सुदे नन्दतनयः ॥ ६ ॥
कृतागस्कं व्याधं सततुमपि वैकुण्ठमन्यमत्वस्यैकाग्रानपि परिजनान् हन्त विजहौ ।
यद्व्येते श्रुत्या ध्रुवत्तुतयोक्तास्तदपि हा स्वैराग्यैः पूर्णैः स भवतु सुदे नन्दतनयः ॥ ७ ॥
अजत्वं जन्मित्वं रतिररतितेहारहितता सलीलत्वं व्यासिः परिमितिरहंतामतयोः ।
पदे त्यागात्यागाद्युभयमपि तित्यं सदुररीकरोतीशः पूर्णैः स भवतु सुदे नन्दतनयः ॥ ८ ॥
समुद्यत्संदेहज्यरशतहरं भेषजवरं जनो यः सेवेत प्रथितभगवत्स्वाष्टकमिदम् ।
तदैश्वर्यास्यादैः स्वधियमतिवेलं सरसयन् लभेतासौ तस्य प्रियपरिजनानुग्यपदवीम् ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्तिठन्दुरविरचितस्वाष्टकम् श्रीश्रीस्वयम्भगवत्त्वाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

जिन्होंने अपने ग्राकल्यके समय श्रीवसुदेव-देवकीके मुख अपना ऐश्वर्य (ईश्वररूप) धारण किया, दैत्यबुद्धका करते समय बलका प्रकाश किया, पाण्डवोंकी रक्षाके बसरपर निर्मल कीर्तिका विस्तार किया, यादवोंकी राजधानी रिकामें अतुल वैभवको स्वीकार किया, सखा अर्जुनको पदेश देते समय श्रीमद्भगवद्गीताके रूपमें सर्वश्रेष्ठ नको प्रकट किया और अन्तमें लोहमय मुसल्लके व्याजसे दुकुलका संहार करते समय वैराग्यका आदर्श उपस्थित किया, वे उक्त छहों भगवद्गुणोंसे परिपूर्ण भगवान् नन्दन नन्दन सबका आनन्दवर्धन करें ॥ १ ॥

इतना ही नहीं, जिन्होंने अपने ग्राकल्यके समय चतुर्भुजरूप ग्रहण किया, मृद्दभक्षणके अवसरपर करोड़ों ब्रह्माण्ड अपनी मुखमें प्रकट किये, दधिभाण्ड फोड़ देनेपर दयावश माताके हाथों बँधकर असेय होनेपर भी अपने शरीरको उदरके परिमाणका करके दिखा दिया तथा ब्रह्माजीको छकानेके लिये अनन्त परात्पर स्वरूप धारण किये, वे महान् ऐश्वर्यशाली भगवान् नन्दकिशोर सबको आनन्दित करें ॥ २ ॥

जिन्होंने पूतनावधके समय अपने श्रेष्ठ ओठोंका बल, केशी दैत्यको मारते तथा राजा नृगको पिरगिटके रूपमें कुँएसे बाहर निकालते समय बाहुबल, कालियनागका दर्प चूर्ण करनेके लिये चरणोंका बल, महावली कंस एवं वंबदरके रूपमें प्रकट होनेवाले तृणावर्ती दैत्यका संहार करते समय शरीरका गुरुतारूप बल और बाणासुरके साथ युद्ध करते समय उक्त असुरके पक्षमें युद्ध करनेके लिये आये हुए भगवान् नंदरको भोहित करनेके लिये तथा दैत्योंका वध करते समय

अखंबल प्रकट किया, वे महान् बलशाली भगवान् नन्दसनु हमें सदा आनन्दित करते रहें ॥ ३ ॥

ब्रजमें रासलीलाके समय जिन्होंने असंख्य गोपियोंके साथ कीड़ी की, यदुपुरी द्वारिकामें सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके साथ विहार किया, प्रद्युम्न आदि लक्ष्माधिक पुत्र उत्पन्न किये तथा पारिजात एवं मुधर्मा सभा आदिके रूपमें अतुल वैभव प्रकट किया और जिनकी छोटीपर ब्रह्मादि लोक-पालगण उपहार लेकर स्तुति करते हुए खड़े रहते थे, वे परम श्रीसम्पन्न भगवान् नन्दकुमार हमें आनन्दसुद्रमें निःसन्न करते रहें ॥ ४ ॥

जिन्होंने शत्रुवर्गको भी खुले हाथों सुकिका दान किया, नररूपमें प्रकट होकर भी कर्द्र आदि देवगणोंपर विजय प्राप्त की और सर्वेश्वर एवं परमस्वतत्त्व होकर भी भक्त-जनोंकी अधीनता स्वीकार की, कौरवोंकी सभामें द्वौपदीको अनन्त वस्त्राशीरूप वर प्रदान किया और महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें उपस्थित सुर-सुनिजनोंके समक्ष प्रथम पूजा ग्रहण की, वे अमितयशस्त्री भगवान् ब्रजेन्द्र-नन्दन हम सबको आहादित करें ॥ ५ ॥

यही नहीं, जिन्होंने अपने प्रिय सखा अर्जुनको गीतारूप ऐसा देदीप्यमान रत्न प्रदान किया, जिसकी त्रिलोकीमें कोई तुलना नहीं है, परम भक्त उद्धवको परमधाम पधारते समय प्रेमके वशीभृत होकर परमतत्त्वका उपदेश किया तथा अपनी प्राणप्रियतमा श्रीगोपाङ्गनाओंके लिये परम रहस्यमय रस-तत्त्वका निरूपण किया; वे सम्पूर्ण ज्ञानके आश्रय-स्वरूप भगवान् गोपेन्द्रकुमार हम सबका आनन्द सम्पादन करें ॥ ६ ॥

जिन्होंने अपने अपराधी जगा नामक व्याधको (जिसने उनके चरणको मृग समझकर बाणसे बींध दिया था) सदेह बैकुण्ठ भेज दिया और इसके विपरीत यादबोंका—जो उनके कुटुम्बी थे और ममताके मुख्य पात्र थे—परित्याग कर दिया, यद्यपि वेदोंने उनकी देहको भगवान्की ही भाँति नित्य बताया है, वे परम बैराग्यशाली भगवान् नन्दनन्दन हमें आनन्दमग्न करते रहे ॥ ७ ॥

जो अजन्मा होते हुए भी जन्म-ग्रहणकी लीला करते हैं, जिनमें आसक्ति और अनासक्ति एक कालमें विद्युमान रहती हैं, जो चेष्टारहित होते हुए भी विविध प्रकारकी लीलाएँ

(श्रीस्वयम्भगवत्त्वाष्टक सम्पूर्ण)

करते हैं, जो एक ही साथ सर्वव्यापक और परिच्छिन्न दोनों हैं तथा जो सदा ही अहंता और ममताके आश्रयभूत अपने श्रीविग्रह एवं निज जनोंका त्याग और रक्षा दोनों स्वीकार करते हैं, वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नन्दनन्दन सदा हम सबके आनन्दके हेतु बनें ॥ ८ ॥

उपर्युक्त भगवत्त्वाष्टक नामक इस विख्यात स्तोत्रका—जो बढ़ते हुए संदेहरूप सैकड़ों प्रकारके ज्वरोंको शात करनेवाली श्रेष्ठ ओषधिके समान है, जो भी मनुष्य सेवन करेगा, वही भगवान् नन्दनन्दनके ऐश्वर्य-रसास्वादनके द्वारा अपनी नीरस बुद्धिको असीम सरस बनाता हुआ उनके प्रिय परिजनोंके सेवकपदको प्राप्त करेगा ॥ ९ ॥

श्रीजगन्मोहनाष्टकम्

गुञ्जावलीवेष्टित्वित्रपुष्पचूडावलन्मञ्जुलनव्यपिच्छम् ।
गोरोचनाचारुतमालपत्रं वन्दे जगन्मोहनमिष्टदेवम् ॥ १ ॥
भूवल्लानोन्मादितगोपनारीकटाक्षवाणावलिच्छनेत्रम् ।
नासाग्रराजन्मणिचारुमुक्तं वन्दे जगन्मोहनमिष्टदेवम् ॥ २ ॥
आलोलवक्रालककान्तिचुम्बिगण्डस्थलप्रोक्षतचारुहास्यम् ।
वामप्रगण्डोच्चलकुण्डलास्तं वन्दे जगन्मोहनमिष्टदेवम् ॥ ३ ॥
वन्धुकविम्बद्युतिनिन्दिकुञ्चत्प्राप्ताधरभ्राजितवेणुवक्त्रम् ।
किञ्चित्सिरश्चीनशिरोऽधिभातं वन्दे जगन्मोहनमिष्टदेवम् ॥ ४ ॥
अकुण्ठरेखाप्रयराजिकण्ठखेलत्स्वरालिश्रुतिरागराजिम् ।
वक्षःस्फुरत्कौस्तुभमुक्तांसं वन्दे जगन्मोहनमिष्टदेवम् ॥ ५ ॥
आजानुराजद्वलयाङ्गदाञ्चिसरार्गलाकारसुवृत्तवाहुम् ।
अनर्घमुक्तामणिपुण्यमालं वन्दे जगन्मोहनमिष्टदेवम् ॥ ६ ॥
श्वासैजद्वृष्ट्यदलाभतुन्दमध्यस्थरोमावलिरम्यरेखम् ।
पीताम्बरं मञ्जुलकिङ्गिणीकं वन्दे जगन्मोहनमिष्टदेवम् ॥ ७ ॥
व्यत्यस्तपादं मणिनूपुराढ्यं द्यामं त्रिभङ्गं सुरशाखिमूले ।
श्रीराघवा सार्वमुदारलीलं वन्दे जगन्मोहनमिष्टदेवम् ॥ ८ ॥
श्रीमञ्जगन्मोहनदेवमेतत्पद्याषुकेन सरतो जनस्य ।
प्रेमा भवेद् येन तदङ्गविसाक्षात्सेवामृतेनैव निमज्जनं स्यात् ॥ ९ ॥

॥ श्रति श्रीमदिशनाथन्यकवत्तिठकुरविरचितस्तवामृतलहर्यां श्रीजगन्मोहनाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

जिनके श्रीमतकपर गुडामाला से परिवेष्टित चित्र-विचित्र नौंके बने हुए मुकुटके बीचोबीच सुन्दर नदीन मध्यरीणच्छ हराता रहता है तथा जो गोरोचनसे चर्चित कमनीय तमालपत्रकी गोपाको धारण करते हैं, उन आपने इष्टदेव जगन्मोहन श्रीकृष्णकी मैं बन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

भूचालनमालसे उन्मादित हुई गोपाङ्गनाओंके कटाक्ष-शरणसे जिनके नेत्र सदा विद्ध रहते हैं और जिनकी नासिका-के अग्रभागमें मणिजटित सुन्दर मुक्तफल सुशोभित रहता है, उन अपने इष्टदेव विश्वविमोहन मोहनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥

लहराते हुए धूंधराले बलोंकी कान्तिको चूमनेवाले जिन-के नील कपोलीपर मञ्जुल एवं उद्घास दास्य स्तेलता रहता है तथा जिनके बायें कंधेपर मकराङ्कित कुण्डलोंका निम्नमाम शूलता रहता है, उन अपने इष्टदेव त्रिभुवनमोहन श्रीकृष्णको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

बन्धकपुष्प एवं पक्ष्य यिन्नफलकी शोभाको मात करनेवाले जिनके कुञ्जित अधरप्रान्तोंमें मुरलीका अग्रभाग सुशोभित है तथा जिनका मस्तक किंचित् हुका हुआ है, उन अपने इष्टदेव त्रैलोक्यमोहन श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरा प्रणाम है ॥ ४ ॥

अत्यन्त स्पष्टरूपमें रेखात्रयसे सुशोभित जिनके श्रीकण्ठमें विविध स्तरोंसे भूषित मूर्छनाएँ तथा राग-रागिनियाँ खेलती रहती हैं, जिनके बक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि देवीप्रामान रहती है और जिनके कंधे कुछ उभरे हुए हैं, उन अपने सेव्य

त्रिभुवनमोहन श्रीकृष्णको बारन्वार प्रणाम है ॥ ५ ॥

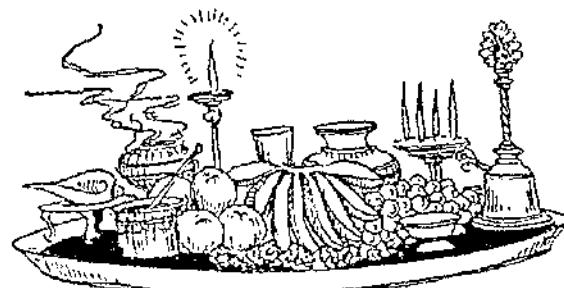
धूटनोपर्यन्त लटकती हुई तथा केयर-कङ्कण आदि विविध भूषणोंसे विभूषित जिनकी गोल-गोल भुजाएँ कामदेवका तिरस्कार करनेवाली अग्रलाञ्छोंके समान सुशोभित हैं और जो अपने उरःस्थलपर अमूल्य मुक्तामणि एवं पुण्यमाला धारण किये हुए हैं, उन अपने आराध्यदेव जगन्मोहनके चरणोंमें मेरी प्रणाम स्वीकार हो ॥ ६ ॥

ध्वन-प्रश्वासके कारण काँपते हुए, पीपलके पत्तेके समान आकरसवाले जिनके उदरके बीचोबीच रोमराजि सुरम्य रेताके रूपमें विद्यमान है, जो पीताम्बर धारण किये हुए हैं और जिनके कटिप्रदेशमें ध्वन्द्वधणिट्काओंका मधुर शब्द हो रहा है, उन अपने परमाराध्य जगन्मोहन श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरा मस्तक नत है ॥ ७ ॥

कल्पबृक्षके नीचे जो वायें चरणको दाहिनी ओर एवं दाहिने चरणको बायी ओर रख्ये हुए ललित त्रिभुवनसे खड़े रहकर श्रीकृष्णानुकिशोरीके साथ अत्यन्त मनोहर लीला कर रहे हैं, जिनके चरणोंमें मणिमय नूपुर सुशोभित हैं, उन अपने आराध्यदेव जगन्मोहन श्यामसुन्दरके चरणोंमें हम सिर नवाते हैं ॥ ८ ॥

जो कोई भक्तजन उपर्युक्त आठ पद्मोंके द्वारा जगन्मोहन श्रीकृष्णका स्वरण करेगा, उसे निश्चय ही प्रेमाभक्ति प्राप्त होगी, जिसके द्वारा वह उन्हीं प्रभुके चरणोंकी साक्षात् खेल-रूप अमृत-सरोकरमें निमज्जित हो जायगा ॥ ९ ॥

(श्रीजगन्मोहनाष्टक सम्पूर्ण)



साथ क्या गया !

मृत्युशत्र्यापर सिकंदर

इकट्ठे गर जहाँके जर सभी सुल्कोंके माली थे ।

• सिकंदर जब गया दुनियाँसे दोनों हाथ खाली थे ॥

नगर खँडहर हुए, राज्य ध्वस्त हुए, सुषिंके सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानवके शरीर शृगाल, कुत्ते, गीध आदिके आहार बननेको छोड़ दिये गये । यह सब इसलिये कि सिकंदरको विजय प्राप्त करना था ।

शस्त्रयामल खेत धूलिमें मिल गये, उपवन तो क्या—बनतक उजड़ते चले गये, शान्त सुखी निरीह नागरिक भय-विहृल हो उठे; क्योंकि सिकंदरको अपनी विजयके लिये किसी भी विनाशकी सृष्टि करनेमें संकोच नहीं था ।

धर-द्वार छूटा, खजन-सम्बन्धी छूटे और शरीरका मोह छूटा । अथक यात्राएँ, घोर परिश्रम, भयंकर मार-काट—सहस्रों मनुष्य सैनिक बनकर मृत्युके दूत बन गये और वे ऐसे अपरिचित देशोंमें संहार करने पहुँचते रहे, जहाँके लोगोंसे उनकी कोई शत्रुता नहीं थी, जहाँके लोगोंने उनका नामतक नहीं सुना था । अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर दूसरोंकी हत्यापर उतारू ये सहस्र-सहस्र सैनिक केवल इसलिये दौड़ रहे थे कि एक मनुष्यको अपने अहंकारको संतुष्ट करना था । वह मनुष्य था सिकंदर ।

पृथ्वी रक्तसे लथ-पथ हुई, मैदानोंमें शवोंके समूह बिछ गये, अनाथ बच्चों एवं निराश्रय नारियोंके क्रन्दनसे आकाश गूँजता रहा और यह केवल इसलिये कि सिकंदरको विजय मिले ।

सिकंदर महान्—विश्व-विजयी सिकंदर; किंतु क्या मिला उसे ? उसे विजय मिली । उसके खजानोंमें रत्तराशियाँ एकत्र हुई । विश्वका वैभव उसके चरणोंपर लोटने लगा । आप यही तो कह सकते हैं ।

सिकंदर मरा पड़ा है । उसके दोनों हाथ उसीके आदेशसे कफनसे बाहर कर दिये गये हैं। खाली हैं उसके दोनों हाथ । उसके अन्तःपुस्की सुन्दरियाँ रो रही हैं । केवल इतना ही तो वे कर सकती हैं सिकंदर महान्के लिये । कोषकी स्तन-राशि खुली पड़ी है । पत्थरोंसे अधिक मूल अब उनका नहीं है । कोई बहुत अधिक करे तो उन चमकते पत्थरोंमें सिकंदरका शव दवा देणा । लेकिन ये पत्थर क्या उस शवको कीड़ोंद्वारा खाये जानेसे बचा रक्खेंगे ? शान्त और विषण्ण खड़ी है उस महान् सप्राट्की विश्व-विजयिनी वाहिनी । सैनिक किसीको मार ही सकते हैं, जिला तो सकते नहीं—अपने सप्राट्को भी नहीं । अब रही वह महान् विजय—उसका क्या अर्थ है ? सिकंदरका जय-धोप—केवल भवनोंपरके कबूतर, कौवे और गौरैये उसरे आतङ्कित होकर उड़ सकते हैं ।

इस सब उद्योगमें क्या मिला सिकंदरको ? हत्या, परोत्पीडन, पाप और यही पाप उसके साथ गया । किसीके साथ भी उसके सुकृत और दुःकृत-को छोड़कर और कुछ भी तो नहीं जाता ।

साथ क्या गया !

मृत्युशथ्यापर सिकंदर

इकट्ठे गर जहाँके जर सभी सुल्कोंके माली थे ।

सिकंदर जब गया दुनियाँसे दोनों हाथ खाली थे ॥

नगर खँडहर हुए, राज्य ध्वस्त हुए, सूषिके सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानवके शरीर शृगाल, कुत्ते, गीध आदिके आहार बननेको छोड़ दिये गये । यह सब इसलिये कि सिकंदरको विजय प्राप्त करना था ।

शास्यामल खेत धूलिमें मिल गये, उपवन तो क्या—बनतक उजड़ते चले गये, शान्त सुखी निरीह नागरिक भय-विद्धुल हो उठे; क्योंकि सिकंदरको अपनी विजयके लिये किसी भी विनाशकी सूषि करनेमें संकोच नहीं था ।

घर-द्वार छूटा, खजन-सम्बन्धी छूटे और शरीरका मोह छूटा । अथक यात्राएँ, घोर परिश्रम, भयंकर मार-काट—सहस्रों मनुष्य सैनिक बनकर मृत्युके दूत बन गये और वे ऐसे अपरिचित देशों-में संहार करने पहुँचते रहे, जहाँके लोगोंसे उनकी कोई शक्ति नहीं थी, जहाँके लोगोंने उनका नामतक नहीं सुना था । अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर दूसरोंकी हत्यापर उतारू ये सहस-सहस सैनिक केवल इसलिये दौड़ रहे थे कि एक मनुष्य-को अपने अहंकारको संतुष्ट करना था । वह मनुष्य था सिकंदर ।

पृथ्वी रक्तसे लथ-पथ हुई, मैदानोंमें शवोंके समूह बिछ गये, अनाथ बच्चों एवं निराश्रय नारियोंके क्रन्दनसे आकाश गूँजता रहा और यह केवल इसलिये कि सिकंदरको विजय मिले ।

सिकंदर महान्—विश्व-विजयी सिकंदर, किंतु क्या मिला उसे ? उसे विजय मिली । उसके खजानोंमें रत्तराशियाँ एकत्र हुईं । विश्व कैभव उसके चरणोंपर लोटने लगा । आप यही तो कह सकते हैं ।

सिकंदर मरा पड़ा है । उसके दोनों हाथ उसीके आदेशसे कफनसे बाहर कर दिये गये हैं । खाली हैं उसके दोनों हाथ । उसके अन्तःपुरकी सुन्दरियाँ रो रही हैं । केवल इतना ही तो वे कर सकती हैं सिकंदर महान्के लिये । कोपकी रत्तराशि खुली पड़ी है । पत्थरोंसे अधिक मूल्य अब उनका नहीं है । कोई बहुत अधिक करे तो उन चमकते पत्थरोंमें सिकंदरका शब दशा देखा । लेकिन ये पत्थर क्या उस शबको कीड़ोंद्वारा खाये जानेसे बचा याकेंगे ? शान्त और विषणु खड़ी है उस महान् सम्राट्की विश्व-विजयिनी वाहिनी । सैनिक किसीको मार ही सकते हैं, जिला तो सकते नहीं—अपने सम्राट्को भी नहीं । अब रही वह महान् विजय—उसका क्या अर्थ है ? सिकंदरका जय-धोप—केवल भवनोंपरके कच्चतर, कौवे और गौरैये उससे आतङ्कित होकर उड़ सकते हैं ।

इस सब उद्योगमें क्या मिला सिकंदरको ? हत्या, परोत्पीडन, पाप और यही पाप उसके साथ गया । किसीके साथ भी उसके सुकृत और दुष्कृत-को छोड़कर और कुछ भी तो नहीं जाता ।

साथ क्या गया !

मृत्युशास्यापर सिकंदर

इकट्ठे गर जहाँके जर सभी मुल्कोंके माली थे ।
सिकंदर जब गया तुनियाँसे दोनों हाथ साली थे ॥

नगर खँडहर हुए, राज्य अवस्था हुए, सूषिकं
सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानवके शरीर मृगाल, कुत्ते, गीध
आदिके आहार बननेको छोड़ दिये गये । यह
सब इसलिये कि सिकंदरको विजय प्राप्त करना था ।

शस्यामल खेत धूलिमें मिल गये, उपवन
तो क्या—बनतक उजड़ते चले गये, शान्त सुली
निरीह नागरिक भय-विहृल हो उठे; क्योंकि
सिकंदरको अपनी विजयके लिये किसी भी
विनाशकी सुष्टि करनेमें संकोच नहीं था ।

धर-द्वार छूटा, खजन-सम्बन्धी छूटे और
शरीरका मोह छूटा । अथवा प्राताएँ, घोर परिश्रम,
भयंकर मार-काट—सहस्रों मनुष्य सैनिक बनकर
मृत्युके दूत बन गये और वे ऐसे अपमिच्छित देशों-
में संहार करने पहुँचते रहे, जहाँके लोगोंसे उनकी
कोई शक्ति नहीं थी, जहाँके लोगोंने उनका
नामतक नहीं सुना था । अपने प्राणोंकी बाजी
लगाकर दूसरोंकी हत्यापर उतार ये सहस्र-सहस्र
सैनिक केवल इसलिये दौड़ रहे थे कि एक मनुष्य-
को अपने अहंकारको संतुष्ट करना था । वह मनुष्य
था सिकंदर ।

पृथ्वी रक्तसे लथ-पथ हुई, मैदानोंमें शवोंके
समूह बिछ गये, अनाथ बच्चों एवं निराश्रय
नारियोंके कङ्दमसे आकाश गूँजता रहा और यह
केवल इसलिये कि सिकंदरको विजय मिले ।

सिकंदर महान्—विश्व-विजयी तिकंद
किंतु क्या मिला उसे? उसे विजय मिली । उस
के सजानोंमें रत्नशियाँ एकत्र हुईं । विजय
वैसब उसके चरणोंपर लोटने लगा । आप यहीं
कह सकते हैं ।

सिकंदर मरा पड़ा है । उसके दोनों हाँ
उसीके आदेशसे कफनसे बाहर कर दिये गये हैं
खाली हैं उसके दोनों हाथ । उसके अन्तःपुर
सुन्दरियाँ रो रही हैं । केवल इतना ही तो वे क
सकती हैं सिकंदर महान्के लिये । कोपकी तर
राशि खुली पड़ी है । पत्थरोंसे अधिक मूल
अब उनका नहीं है । कोई बहुत अधिक का
तो उन चमकते पत्थरोंमें सिकंदरका शव दब
देगा । लेकिन ये पत्थर क्या उस शवके
कीड़ोंद्वारा खाये जानेसे बचा जाएगे? शान्त और
विषणु खड़ी है उस महान् सम्राट्की विभ
विजयिनी वाहिनी । सैनिक किसीको गार ही
सकते हैं, जिला तो सकते नहीं—अपने सम्राट्को
भी नहीं । अब यही वह महान् विजय—उसका
क्या अर्थ है? १ सिकंदरका जय-शोप—केवल
मनोंपरके कबूल, कौवे और गाँवें उससे
आतङ्कित होकर उड़ सकते हैं ।

इस सब उद्योगमें क्या मिला सिकंदरको?
हत्या, परत्वीडन, पाप और यही पाप उसके साथ
गया । किसीके साथ भी उसके सुकृत और दुष्कृत-
को छोड़कर और कुछ भी तो नहीं जाता ।

संत, संत-वाणी और क्षमा-प्रार्थना

बैठड़े रहत समाज चित हित अनहित नहिं कोइ ।
अंजलि गत सुन सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ ॥
संत सरल कित जमत हित जानि सुभाड सेहु ।
आल विनय मुनि करि कृपा राम चरन रहि देहु ॥

संत-वाणीकी महिमा

अन्धकारमें पढ़ी हुई मानव-जातिको प्रकाशमें लानेके लिये संत-वचन कभी न बुझनेवाली अमोघ दिव्य ज्योति हैं । दुख-संकट और पाप-तापसे प्रपीड़ित प्राणियोंके लिये संत-वचन सुख-शान्तिके गम्भीर और अगाव समुद्र हैं । कुमार्गीर प्रजाते हुए जीवनको वहाँसे हटाकर सच्चे सन्मार्गपर लानेके लिये संत-वचन परम सुदृढ़-वन्धु हैं । प्रबल मोह-सरिताके प्रवाहमें बहते हुए जीवोंके उद्धारके लिये संत-वचनं सुखमय सुदृढ़ जहाज हैं । मानवतामें अस्य हुई दानवताका दलन करके मानवको मानव ही नहीं, महामानव बना देनेके लिये संत-वचन दैवी-र्षार्क-सम्पन्न संचालक और आचार्य हैं । अज्ञानके गहरे गहरेमें गिरे हुए चिर-संतस जीवोंको सहज ही वहाँसे निकालकर भगवान्के तत्त्व-स्वरूपका अथवा मधुर मिलनका परमानन्द प्रदान करनेके लिये संत-वचन तत्त्वशान और आत्मनित्क आनन्दके अटूट भण्डार हैं । आपातमधुर विषय-विषयसे जर्जरित जीवसमूहको घोरपरिणामी विष-व्याधिसे विमुक्त करके सचिदानन्दस्वरूप महान् आरोग्य प्रदान करनेके लिये संत-वचन दिव्य सुधा-महोपय देहु । जन्म-जन्मान्तरोंके संचित भीषण पाप-पादपोंसे पूर्ण महारण्यको तुरंत भस्त कर देनेके लिये संत-वचन उत्तरोत्तर बढ़नेवाला भीषण दावानल है । विषयात्मक और भोग-कामनाके परिणाम-स्वरूप नित्य-निरन्तर अशान्तिकी अग्निमें जलते हुए जीवोंको विशुद्ध भगवद-मुरागी और भगवत्कामी नवाकर उन्हें भगवत्-मिलनके लिये अभिभावये निमुक्त कर प्रेमानन्द-संसुधा-सागर सचिदानन्द-विग्रह परमानन्दप्रसन्न विश्विमोहन् भगवात्-की अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यमयी परम मधुरतम मुख्यस्थिका दर्शन करानेके लिये संत-वचन भगवान्के नित्यसज्जी प्रेमी पार्दद हैं ।

संत-वाणीसे बना नहीं हो सकता । संत-वाणी मानव-हृदयको तमोर्भभूत, अकर्ता और पतित परिस्थितिसे उठाकर सहज ही अस्यन्ता नमुदत और नमुद्द्वाल कर देती है । संत-वाणीसे बातना-दामनके प्रबल आजातोंसे चूर्ण-विचूर्ण

दुर्बल हृदयमें विद्युच्छक्षिके सहजा नवीनतम निष्ठ-शराभव-रहित भगवदीय बलका संचार हो जाता है । संत-वाणीसे भय-शोकविहल, चिन्ता-विषाद-निकल, मानमर्दित, म्लान मुखमध्यल सत्यानन्दस्वरूप श्रीभगवान्की सचिदानन्द-ज्योतिर्मयी निरणों-से समुद्भासित और उपसब्द हो उठता है । संत-वाणीसे त्रिविध तारोंकी तीव्र ज्वाला, दुख-दैन्य-दारिद्र्यकी दावाग्नि, मानसिक अशान्तिका आन्तर-आवेग प्रशान्त थोकर परम सुखद शीतलता और शाश्वत शान्तिकी अनुभूति होने लगती है । संत-वाणीसे अज्ञानतिमिरान्धल अन्तास्तल भगवान् भास्करकी प्रबलतम किरणोंसे छिन्न-भिन्न होकर प्रगत हुए मेषसमूहके सहज अशान्तिमिरिके आन्दाजसे मुक्त होकर विशुद्ध अद्रय-भास्करके प्रकाशसे आलोकित हो उठता है । और निय-निरन्तर विषय-मल-मलिन निभग्रदेशमें वढ़नेवाली विष-दुर्गम्भ-दूषित चित्तरुत्तिरसिरा दिव्य प्रेमामूल-प्रवानामीनी मधुर मन्दाकिनीके स्वरूपमें परिणत होकर सुप्रग-नीगन्धनती और अविराम-प्रवाह-प्रतिजाशीला बनी हुई गदा-संबंद्ध परम विशुद्ध प्रेमवन श्रीनन्दनन्दनके पावन पादपद्मोंकी विशीत करनेके लिये केवल उन्हीकी ओर वहने लगती है ।

संत कौन हैं ?

जिन संतोंकी वाणीका इतना महत्व है, जिनका इतना विलक्षण मद्भलमय परिणाम होता है, वे कौन कौन हैं ? उनका तात्त्विक स्वरूप क्या है ? और उनके पहचानके लक्षण क्या हैं ? स्वामीनित ही यह प्रश्न होता है । इनका उत्तर यह है कि संतोंकी यथार्थ रूपान्वय वाह्य लक्षणोंसे नहीं हो सकती । इतना यमर लेना नाइये कि संत वे हैं, जो नित्यपिद गत्यतत्त्वका नामा करते हैं, उन्हीं अपरोक्ष उपलब्धि करके उन निष्ठिदानन्द-स्वल्पमें प्रतिष्ठित हो चुके हैं । वह मत ही जैतन है, वह जैतन ही आनन्द है । अर्थात् वह मत जैतन और आनन्दनन्द है, वह जैतन मत् और आनन्दस्वरूप है और वह आनन्द मत् भी जैतनस्वरूप है । इस आदिमध्यान्तहीन गच्छनन्दनमें त्रै-नामा प्रतिष्ठित है, वे ही संत हैं । अपवा वे नेत हैं, जो मोक्षदा निरामय करके प्रेम-दुखार्थ भगवान्के इन प्रेमर्धी द्वाम कर चुके हैं । निरुपी और प्रेमी भंगोंके भगवान् वी निष्ठिदानन्द प्रकार हैं, वे ही परमामा हैं और वे ही प्रेमामर भगवान् हैं । यह दोनों

विसुज्जति हृदये न वस्य साक्षात् निश्चामभिहितोऽप्यवौधनाशः ।
प्रणव्यशान्त्या द्विताद्विपद्यः स अवति आनन्दप्रदान उक्तः ॥

(धोमस्त्रा० ११ । २ । ४८—५५)

जो श्रोत्र नेत्र आदि इन्द्रियोंके द्वारा शब्द-रूप आदि विषयोंका प्रहण तो करता है, परंतु अपनी हृदयके प्रतिकूल विषयोंसे द्वेष नहीं बरता और अनुकूल विषयोंके मिलनेपर हरित नहीं होता—उसकी कह हाटि वनी रहती है कि वह सब इसारे भगवान्की माया—लीला है, वह उत्तम भागवत है। संसारके धर्म है—जन्म मृत्यु, भूम-प्यास, अम कष्ट और भय-तृष्णा । ये क्रमशः शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिको प्राप्त होते ही रहते हैं । जो पुरुष भगवान्की स्मृतिमें इतना तन्मय रहता है वह इनके बार-बार होते-जाते रहनेपर भी उनसे मोहित नहीं होता, परान्त नहीं होता, वह उत्तम भागवत है । जिसके मनमें विषयभोगकी इच्छा, कर्मप्रदृच्छा और उनके दीज-वासनाओंका उदय नहीं होता और जो एक-मात्र भगवान् वासुदेवमें ही निवास करता है, वह उत्तम भगवद्गुरु है । जिसका दूसरा शरीरमें न तो सत्कूलमें जन्म, तपस्या आदि कर्मसे तथा न वर्ण, आश्रम एवं जातिसे ही अटंभाव होता है, वह निधय ई भगवान्का प्यारा है । जो धन-सम्पत्तिसे अभवा शरीर आदिरे, यह अपना है और यह पराया—इस प्रकारका देवद्भाव नहीं रखता, समर्पण-पदार्थमें समस्वरूप परमात्माको देखता रहता है, सम्भाव रखता है तथा प्रत्येक स्थितिये शान्त रहता है, वह भगवान्का उत्तम भक्त है । वंड वडे उड़ता और ऋषि-मुनि भी अपने अन्तःकरणको भगवन्मय बनाते हुए जिन्हें हूँडते रहते हैं—भगवान्के प्रेसे चरणकरणलोंसे आधे अण, पलक पड़नेके आधे

खयं भगवान् श्रीहरि जिसके हृदयको ज्ञानभरके लिये भी नहीं छोड़ते हैं, क्योंकि उनने प्रेमकी रसमिसे उनके चरणकरणलोंके हृदयमें बाँध रखता है, बालबालमें ऐसा ही पुरुष भगवान्के भक्तोंमें प्रधान होता है ।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सुनि श्रीनारदजीसे कहते हैं—

मुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ । जिन्हे ते मैं उन्ह के वस नहऊँ ॥
पट विकार जित अनघ अकामा । अच्चर अविंतन मृत्ति मुख लामा ॥
अगित बौध अनीह मित भौमी । सत्यसार कवि कौविद लौमी ॥
सावधान मनद मठ हीना । पीछे जर्म ननि परम प्रकीना ॥

मुनापाठ संसार दुख गहित विषय गद्धि ।

तजि गम चानसरोत्र प्रिय लिङ्ग अङ्ग देह न गेह ॥

निज गुन श्वन सुनत मकुचाही । यह गुन सुनत अधिक हमाही ॥
सम सीता नहिं त्यागहिं नीती । मरण मृमाड मत्तहि मन प्रीती ॥
जप तप ब्रत दृष्टि दृष्टि नैमा । गुरु लविंदि विष्प एद भ्रेमा ॥
श्रद्धा दृष्टि मयकी दासा । मृदिता भम पद प्रीति अमासा ॥
विरति विवेक विनय विम्माना । बोन जगारथ बेद पूर्णा ॥
दंभ मान मद करहि न काऊ । मृनि न देहि कुमार आङ ॥
गाहहि मुनहि सदा मन गीता । देतु गहित पर इन भत मीना ॥

मुनि मुनु सावुन्ह के गुन जेते । कहि न मकहि मारद शुति तेते ॥

भगवान् श्रीरामचन्द्र भरतजीसे कहते हैं—

संतन्ह के लक्ष्म गुनु भाल । आननि श्रुति पुरान विस्माता ॥
संत असंतन्ह के अभि करनी । जिनि बुद्ध लैदेन आचारी ॥
काढ़ परनु मलय गुनु नहीं । निज गुरु देव गुरुंग नमारी ॥

तते सुर सीमन्ह ज्वल जग बहुन शीर्मंड ।

अनल दाहि पंटन घनहि करन जदन यह दें ॥

— बहुत ही दूर तक इसके मीमांसा नहीं हो सकती। न-दि और अभेद, सत्यवेद और विश्ववेद अथवा और अधिग्राहक अनुग्राह पर्याप्त क्षमता नहीं है। व्याख्या और सद्गम लक्षण प्रातिकृति द्युष्मनी अनुग्राही का व्याख्यासिकारिता क्षमता नहीं है। इसलिए ऐनार विद्याक फर्मेंटी आवश्यकता नहीं है। हाँ शास्त्रीय इश्या ग्रन्थोंके बहुत दूर विद्यासंबोधी—संत, राजा, प्रेमी, मठक, भावतक, ग्रेटरी, आदि—स्वित्तप्रकार दुक वादी अनेक विद्यार्थी अनेक रूपन किया है। जो यादवराजोंसे उभे सर्वाधारी शैरै साक्ष हैं। शर उन श्री लंगोंके कुछ प्रेतोंसे लगाया गया है जो ग्राम-समाजनालों तर्ज पढ़ने जाते हैं। उनमें से कुछ लोग इश्यादार वर्यों श्रीमद्भगवान् वाम और श्रीरामचरितमाला का अनुवाद कीजिये।

श्री विश्वामित्र महाप्रभु के हैं

कृपालुक्तुरदेविप्रियिः सर्वे द्विनाम् ।
 सर्वस्ततो ज्वलशास्त्रा सदः सर्वोपकारकः ॥
 कार्यहर्षवीर्यो दीन्ति मृदुः प्रुद्योगिकिः ।
 अर्थात् भिस्तुर्विशुद्ध शास्त्रे त्वयो चक्रवर्णो द्वयो द्वयः ॥
 अपमाने नवीनीरात्रा चरितादित्तद्वयाण् ।
 असाधी दण्डः कल्पे दैत्ये करुणिः कर्त्ता ॥
 (श्रीकाटा ११११ २९-३)

{ श्रीकांत ११।११। २९-३ }

उद्देश्य। मेरा मक्क बृहती सुनि होता है, वह किसी भी प्राणी के द्वारा नहीं कहला जा सकता क्योंकि उसके द्वारा दुख-दुर्दशोंमें अवस्थाएँ दृष्ट होती रहती हैं तो कोने जैविका सही समझता है? उसके सभी कठीनी प्रबलताएँ परावरता नहीं हैं उसकी वह विश्व समर्पणों और लक्षण अपारण उत्तम लक्षणों से होता है। उसकी बुद्धि कामोंमें इन्हें नहीं होती। एवं इन्हें विजयी। कोभल-स्वाधीन और विविध होता है, उसके बाद अपनी कोई विश्व नहीं होती। किसी भी विकल्प के द्वारा कही कठीन चौड़ी नहीं कहला जाता, अपर्दित भोगम करता है, कहा गया रहता है। उसकी बुद्धि द्वितीय होती है, वह केवल से वह अथवा रहता है, जिसमें मनवाई रहता है। वह कठीन प्रबल नहीं कहता, नामांश स्वाधीन और विषयवाचक होता है। एक व्यक्ति, योगी भी और करुणा भी और जन-सम्मुख—इन छहों पर विश्व प्रसाद कर सकता है। वह सब कठीनी किसीपनि कठीनी प्रबलमें मन नहीं बालता और दूसरोंकी समझें देता रहता है। नामांशकर्त्ता वार्ता संस्कृतमें गहरा शिशु होता है और भ्रातृतत्त्वमें उत्ते उत्तेके द्वारा भी रहता है।

मध्यांक विलक्षण भौतिकीय तथा देखुकीयों का सूचना है।
विनिश्चयक कार्यशिका युद्धः सर्वविजय
अवाक्याद्वयः शासना शासनः साक्षात् प्राप्ति
सम्बन्धीय समय लक्षित उपर्युक्त ते एव
मात्रते व्यक्तस्थापयन्त्रयज्ञविद्या
सद्गुणात्मा कथा दृष्टा शुद्धविद्या इत्यन्ति ३
त्रिविनिश्चयित्वात्मक वैतामन्त्रयज्ञविद्या
त एव त्रै त्रायते त्रिविद्या विद्याविद्याविद्या
सञ्चारोपयथ ते प्राप्ते तद्विद्यापूर्व है ते ५

दीपालिकर हस्तिनी राजा निर्मलोंग कहते हैं—
यहूँस्वर्णपरिषेद्यन् एव म ह्रेष्ट न हम
विष्णोंसामित्यिदं पद्मन् स वै भगवत्पति
स्त्रेहैष्वर्णशशासनोदिशो वै जगत्प्रभुं अप्यव्याप्त
संसारधनैर्विमुक्तमः स्मृत्युं इन्द्रोऽप्याप्तम्
न अप्यक्षमंकोटान् एवं वैतति सम्भ
प्रत्युद्देश्यकृतिया स वै भगवत्पति
न अस्य अन्धकरण्यां च अप्यस्मान्तरित
स्वत्तेष्वर्णपरिषेद्यो ह्रेष्ट वै स हृषि
न अस्य एव एव हृषिवित्तिसंवित्ति एव
प्रबुत्तुमुक्तमः शास्त्रं स दै भगवत्पति
प्रियुद्देश्यकृतियोद्यम्बाद्या—
स्त्र॒रिवित्तिसम्मुद्दिश्यत्तिस्मृत्यु
त चाहति मयविद्युतिनिर्दिता—
दृश्यनिर्विवर्णम् एव स एव
प्राप्तत उचितिमान्याद्यावानामाग्नीनिर्दिता एव
स्त्रि क्षम्यमानेद्युम् एव स प्रभावति च च इति

सूजति हृदयं त वस्य साक्षात् दिवशामिहितोऽप्यवौद्धनादः ।
गयरक्षान्त्या धूसाञ्छिपथः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥
(श्रीमद्भा० ११ । २ । ४८—५५)

जो श्रोत्रनेत्र आदि हृदियोंके द्वारा शब्द-रूप आदि वेष्योंका अहण तो करता है, परंतु अपनी इच्छाके प्रतिकूल वेष्योंसे हृषे नहीं करता और अनुकूल विषयोंके मिलनेपर इर्षित नहीं होता—उसकी यह दृष्टि बनी रहती है कि यह सब इसरे भगवान्की माया—लीला है, वह उत्तम भागवत है। संसारके धर्म हैं—जन्म-मृत्यु, भूख-प्यास, श्रम-कष्ट और भय-तृणा । ये क्रमशः शरीर, प्राण, हृदय, मन और बुद्धिको प्राप्त होते ही रहते हैं । जो पुरुष भगवान्की स्मृतिमें इतना तन्मय रहता है कि इनके बार-बार होते-जाते रहनेपर भी उनसे मोहित नहीं होता, पराभूत नहीं होता, वह उत्तम भागवत है । जिसके मनमें विषयभोगकी इच्छा, कर्मप्रवृत्ति और उनके बीज—वासनाओंका उदय नहीं होता और जो एक-मात्र भगवान् वासुदेवमें ही निवास करता है, वह उत्तम भगवद्धक्षत है । जिसका इस शरीरमें न तो सत्कुलमें जन्म, तपस्या आदि कर्मसे तथा न वर्ण, आश्रम एवं जातिसे ही अहंग्रह होता है, वह निश्चय ही भगवान्का प्यासा है । जो घन-सम्पत्तिमें अथवा शरीर आदिसे व्यह अपना है और यद्य पराया—इस प्रकारका भेदभाव नहीं रखता, समस्त प्राणिपदार्थोंमें समर्वरूप परमात्माको देखता रहता है, समभाव रखता है तथा प्रत्येक खितिमें शान्त रहता है, वह भगवान्का उत्तम भक्त है । वडे-वडे देवता और शृणि-मुनि भी अपने अन्तःकरणको भगवन्मय बनाते हुए जिन्हें हृदृष्टि रहते हैं—भगवान्के ऐसे चरणकर्मणोंसे आधे क्षण, पलक पङ्केके आधे समयके लिये भी जो नहीं हृता, निरन्तर उन चरणोंकी सेवामें ही लगा रहता है, यहाँतक कि कोई स्वयं उसे त्रिमुखन-की राज्यलक्ष्मी दे तो भी वह भगवत्-स्मृतिका तार जरा भी नहीं तोड़ता, उस राज्यलक्ष्मीकी ओर ध्यान ही नहीं देता; वही पुरुष वास्तवमें भगवद्धक्षत—वैष्णवोंमें अग्रगण्य है, सर्वश्रेष्ठ है । रासलीलाके अवसरपर नृत्य-गतिसे भाँति-भाँतिके पद-विन्यासं करनेवाले निखिल-सौन्दर्य-मातुर्य-निधि भगवान्के श्रीचरणोंके अंगुल-नखकी मणिचन्द्रिकासे जिन शरणागत भक्तजनोंके हृदयका विरहजनित संतार एक बार दूर हो चुका है, उनके हृदयमें वह फिर कैसे आ सकता है, जैसे चन्द्रमाके उदय होनेपर सूर्यका ताप नहीं लग सकता । विवशतासे नामोज्ञान करनेपर भी सम्पूर्ण अघराशिको नष्ट कर देनेवाले

स्वयं भगवान् श्रीहरि जिसके हृदयको क्षणपरके लिये भी नहीं छोड़ते हैं, क्योंकि उसने प्रेमकी रसीसे उनके चरणकमलोंको हृदयमें बाँध रखता है, वास्तवमें ऐसा ही पुरुष भगवान्के भक्तोंमें प्रधान होता है ।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मुनि श्रीनारदजीसे कहते हैं—

सुनु मुनि संतन्ह के गुम कहऊँ । जिन्ह ते मैं उन्ह के बस रहऊँ ॥
षट विकार जित अनव अकामा । अचल आकिंचन सुचि सुख धामा ॥
अमित बोक अनीह मित भोगी । सत्यसार कवि कोविद जोगी ॥
सावधान मानद मद हीना । धीर धर्म गति परम प्रबीना ॥

गुनागार संसार दुख गहित विगत सदैह ।

तजि मम चरनसरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥

निज गुन अचन सुनत सकुचाहीं । पर गुन सुनत अधिक हराहीं ॥
सम सीतल नहिं त्यागहीं नीती । सरल सुमाड सबहि सन प्रीती ॥
जप तप ब्रत दम संज्ञम नेमा । गुरु चार्विंद विप्र पद प्रेमा ॥
श्रद्धा छमा मयीं दाया । मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥
विरति विवेक विनय विग्यामा । बोध जयारथ वेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ । मूळि न देहि कुमारग पाऊ ॥
गावहिं सुमहिं सदा भम लीला । हेतु रहित पर हित रत सीला ॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुम जेते । कहि न सकहिं सारद क्षुति तेते ॥

भगवान् श्रीरामचन्द्र भरतजीसे कहते हैं—

संतन्ह के लङ्घन सुनु भ्राता । अग्नित श्रुति पुरान विस्माता ॥
संत असंतन्हि के असि करनी । जिमि कुठर आंदन आचरनी ॥
काठइ परसु मलय सुनु माई । भिज गुन देइ सुगंध बसाई ॥

ताते सुर सीसन्ह चक्त लग बल्म श्रीसंद ।

अनल दाहि पांत धनहिं परसु बदन यह दंड ॥

विष्य अलंपट सोल गुमाकर । पर दुख दुख मुख सुख देखे पर ॥
सम अमृतिरिपु विमद विरागी । लोभामरण हरण भय त्यागी ॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया । मन वच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम भम ते प्रानी ॥
धित काम मम नाम परायन । साति विरति विनीती मुदितव्यन ॥
सीतलता सरलता मयीं । द्विज पद प्रीति धर्म जनश्री ॥
ए सब लङ्घन बसहिं जासु उर । जानेहु तात संत संत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोगहि । परुष वचन कवहु नहिं वोलहि ॥

निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज ।

ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मदिर सुख उंज ॥

संत इदम नवनीत समाग्ना । कहा कविन्ह पै कहह न जाना ॥
निज परिताप द्रवह नवनीता । पर दुख द्रवह संत सुपुनीता ॥

* * *

पर उफकार दृश्य मन काया । संत सहज सुभाड लगराया ॥
संत सहहि दुख परहित लागी । परदुख हेतु असंत अमागी ॥
संत उदय संतत सुखकारी । विस्त्र सुखद जिमि इंदु तमारी ॥

इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय २। ५५ से ७२) में
'पश्यतप्रश्न' के नाम से तथा (अध्याय १२ श्लोक १३-२० में)
'प्रिय भक्त' के नाम से संतोंके लक्षण बतलाये हैं।
महाभारतके अन्यान्य स्थलोंमें तथा प्रायः सभी पुराणोंमें
संतोंके लक्षणोंका विवरण वर्णन है।

परमात्माको प्राप्त हुए संतोंके ये सहज लक्षण हैं। शान-
योग, निष्ठाम कर्मयोग, भक्तियुक्त निष्ठाम कर्मयोग, भक्तियोग,
प्रपत्तियोग और अष्टाङ्गयोग आदि सभी परमात्माकी प्राप्तिके
साधन हैं। जिनकी जिस साधनमार्यमें इच्छा और अधिकार होता
है, वे उसी मार्गसे चलकर परमात्माको प्राप्त कर सकते हैं।
साधनमार्यके अनुसार परमात्माको प्राप्त पुरुषोंमें इन लक्षणों-
की स्वाभाविक उसी प्रकार अभिव्यक्ति और स्थिति होती है
जिस प्रकार चन्द्रमामें चाँदनी, सूर्यमें प्रकाश और उमा वथा
अद्विमें दाहिका-शक्ति होती है और प्राप्तिके पथपर अग्रसर
होते हुए साधकोंमें उनके मार्गके अनुसार ये लक्षण
आदर्शरूपमें रहते हैं—वे इन गुणोंको आदर्श मानकर
हनके अनुसार अन्वरण करनेका प्रयत्न करते हैं।

संत वथा करते हैं?

परमात्माको प्राप्त ऐसे संत स्वयं ही कृतार्थ नहीं
होते, वे संपारसागरमें द्वयते-उत्तरते हुए असंख्य प्राणियोंका
उद्धार करके उन्हें परमात्माके परम धारमें पहुँचानेके
लिये सुटड जहाज बन जाते हैं। उनका सङ्ग करके
उनके बचनानुसार आचरण करनेपर उद्धार होता है,
इसमें तो आश्र्य ही क्या है, उनके सारणमात्रसे, केवल
स्मरण करनेवालेका मन ही नहीं, उसका घरतक
तत्काल विशुद्ध हो जाता है। महराजा परीक्षित्
मुनिवर शुक्रदेवजीसे कहते हैं—

येषां संस्करणात् तुंसां सथः शुभ्यन्ति वै गृहाः ।

किं पुनर्जन्मन्तस्तर्थपदद्यांचासनादिभिः ॥

(श्रीमद्भा० १।१९।३३)

मुनिवर ! आप-जैसे महात्माओंके सारणमात्रे ही
गृहस्थोंके घर तत्काल पवित्र हो जाते हैं। पर दृश्य
स्वर्ण, पादप्रक्षालन और आसनादि ग्रदानका मुञ्चन
मिल जाय, तब तो कहना ही क्या है ?

ऐसे महात्माओंका संसारमें रहना और विचलन
चेतन प्राणियोंको नहीं—जड जल, मृतिका और वायु
आदिको भी पवित्र करने और उनको तरन-तारन
बनानेके लिये ही होता है। धर्मराज युधिष्ठिरजी महाभा०
विदुरजीसे कहते हैं—

भवद्विभा भाद्रवतास्तीर्थभूताः स्वयं विमो ।

तीर्थकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन यदाशृता ॥

(श्रीमद्भा० १।१३।१०)

'प्रभो ! आप-जैसे भगवत् (भगवन्के प्रिय भक्त)
स्वयं ही तीर्थरूप हैं। आपलोग अपने हृदयमें
विराजमान भगवान्के (नाममात्रके) द्वारा तीर्थोंमें
(सच्चे) तीर्थ बनाते हुए—अर्थात् उक्त तीर्थस्थलोंमें
जानेवाले लोगोंको उद्धार करनेकी क्षक्ति उन तीर्थोंको
प्रदान करते हुए विचरण करते हैं।'

पाप करनेवाले तो गिरते ही हैं, 'सक्राममात्र' हते
मी परमात्माकी ग्राति कठिन है।

यह उन महात्मा-संतोंकी महिमा है, जो परमात्माके
प्राप्त करके परमात्म-स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो चुके हैं।
परमात्माकी इस प्राप्तिके लिये साधन चाहे किसी
प्रकारका हो—चित्तका संयोग परमात्मासे होना चाहिये।
अभिप्राय यह कि एकमात्र परमात्मा ही लक्ष्य या लाभ
होने चाहिये। अन्य किसी भी विषयकी कामना मनमें
नहीं रहनी चाहिये और न अन्यत्र कहीं समता और
आसक्ति ही होनी चाहिये।

जो लोग शास्त्रनियिद्ध कर्मोंमें, पाप-प्रबृत्तियों द्वारा रहते
हैं, वे तो परमात्माको प्राप्त न होकर वार-वार असुरी योनिकी
तथा अधम गतिको प्राप्त होते ही हैं (गीता १६।२०),
जो सकाम भाव रखते हैं—सकाम भावसे इष्ट-पूर्वादि श्रम
कर्म करते हैं, उनको भी सहजमें परमात्माकी प्राप्ति नहीं
होती; क्योंकि मनमें कामना होनेपर पाप हुए विना रहते
नहीं। भगवान्ने गीतामें स्पष्ट कहा है कि पाप दोनोंमें
कामना ही प्रधान कारण है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्धवः ।
महाबानो महापापा विद्धेनमिह देशिणम् ॥
(३ । ३७)

भजोगुणसे उत्पन्न यह कामना ही क्रोध (बन जाती) है । यह काम ही महा अशन अर्थात् अग्रिके सदृश भोगोंसे तूस न होनेवाला और बड़ा पापी है । पाप बननेमें तू इसको ही बैरी जान ।

कितना ही बुद्धिमान् पुरुष हो, विषयासक्तिसे पाप बनने लगते हैं और पापोंसे अन्तःकरणके अद्गुद तथा मर्लिन हो जानेपर वह परमात्मासे विमुख हो जाता है । ऐसी अवस्थामें दूसरोंको तारनेकी बात तो दूर रही वह स्वयं ही नीचे गिर जाता है । मुण्डकोपनिषदमें कहा गया है—

अविद्यायमन्तरे	वर्तमानः
स्वयं धीराः पृष्ठितं मन्त्यमानाः ।	
ब्रह्मन्यमानाः परियन्ति मूढा	
अन्देनैव नीयमाना यथान्दाः ॥	
अविद्याय ब्रह्मा वर्तमाना	
वर्यं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः ।	
यत् कर्मिणो न प्रवैद्यन्ति शगात्	
तेनानुशः क्षीणलोकाच्छ्यवन्ते ॥	
दृष्टापूर्तं मन्त्यमाना वरिष्ठं	
जान्यस्त्वेयो वैद्यन्ते प्रमूढाः ।	
वाक्स्थ पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूये	
यं कोऽहं हीनतरं वा विशन्ति ॥	

(१ । २ । ८—१०)

‘अविद्यामें शित होकर भी अपने-आप ही बुद्धिमान् बने हुए और अपनेको विद्वान् माननेवाले वे मूर्खलोग बार-बार कष्ट सहते हुए वैसे ही भटकते रहते हैं, जैसे अंधेके द्वारा ही चलाये जानेवाले अंधे भटकते हैं । वे मूर्ख विविध प्रकारसे अविद्यारूप सकाम कर्मोंमें लगे हुए ‘हम कृतार्थ हो गये’ ऐसा अभिमान करते हैं; क्योंकि वे सकाम-कर्मों लोग विषयासक्तिके कारण श्रेय—कर्त्याणके वर्थार्थ भारको नहीं जान पाते । इसीसे वे बार-बार दुःखातुर होकर शुभ लोकोंसे निकाले जाकर नीचे गिर जाते हैं । इष्ट-पूर्तरूप सकाम कर्मोंको ही श्रेष्ठ माननेवाले वे अत्यन्त मूढ़ उस (सांसारिक भोग सुखोंको प्राप्तिके साधनरूप सकामकर्म) से

भिन्न वर्थार्थ कर्त्याणको नहीं जानते । वे पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप सर्वगंके उच्चस्तरपर पहुँचकर वहाँके भोगोंका अनुभव करके पुनः इस मनुष्यलोकमें अथवा (पापोंके परिणामभोगका समय आ गया हो तो) उससे भी हीन (कीट-पतंग, शूकर-कूकर या बृक्ष-पत्थर आदि) योनियोंमें जाते हैं ।

इसी भावसे रामचरितमानसकी वेदस्तुतिमें मिथ्या शानाभिमानी लोगोंका सर्वगंके उच्चतम स्थानोंसे नीचे गिरना बतलाया गया है—

‘ते पाइ सुर दुरलम पदादिपि परत हम देवत हरी ।
भगवान्ने गीतामें भी कहा है—
ते तं मुक्त्वा स्वर्गलोकं विकार्ल
क्षीणे पुण्ये मर्त्यंलोकं विशन्ति ॥

(९ । २१)

‘वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर पुनः मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं ।’

इसलिये परमात्माकी प्राप्तिके इच्छुक साधकको पापमें तो कभी प्रवृत्त होना ही नहीं चाहिये । पुण्यकर्मोंमें भी सकामभावका सर्वथा त्याग करके उनका केवल भगवत्प्रीत्यर्थ ही यथायोग्य आचरण करना चाहिये । तभी उसे परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है और तभी वह परमात्माका प्रिय होकर संसारके लोगोंको परमात्माके पुनीत पथपर लाने और अप्रसर करनेका सौभाग्य प्राप्त कर सकता है ।

उच्चकोटिके संत

ऐसे साधनसिद्ध संतोंके अतिरिक्त परमात्मा जीवोंके प्रति दयापरवश होकर कभी-कभी उच्च कोटिके संतोंको, अपने खास पार्षदोंको—आधिकारिक पुरुषोंको भी संसारके उन हुस्ती जीवोंका उद्धार करनेके लिये भेज दिया करते हैं । वे महापुरुष त्रितापानल—से जले हुए जीवोंको समझा-बुझाकर—उनके सामने परम विगुद आदर्श रखकर और उनकी यथायोग्य सेवा कर उनके हृदयोंमें परमात्मस्वरूपको जाननेकी जिज्ञासा और परमात्माको प्राप्त करनेकी शुभाकाङ्क्षा उत्पन्न कर देते हैं और फिर उनको भगवत्-साक्षात्कारके योग्य बनाकर कृतार्थ कर देते हैं ।

भगवान् स्वयं श्रीउद्धवजीसे कहते हैं—

यथोपश्चयमाणस्य भगवन्तं विश्वादसुम् ।
दीर्तं अमं तमोऽप्येति साधून् संसेवतस्या ॥

सिमद्योन्याज्ञर्ण द्वेरे भवाभवी परमायगम् ।
सन्तो प्रदुषिदः शान्ता नैर्देवाप्सु मज्जताम् ॥
अन्ते हि प्राणिना प्राण आत्माने शशणं त्वहम् ।
समो विच्छ नृणां प्रेत्य संतोऽर्जाग् विभृतोऽरणम् ॥
सन्तो दिशनि वक्षुषि पहिरङ्कः समुत्तितः ।
देवता गान्धवा: सन्तः सन्त आम्बाहमेव च ॥

(श्रीमद्भा० ११।२६।३१—३४)

जिसने उन संत पुरुषोंकी शरण प्रहण कर लीं उनकी कर्मजडता, संतारभय और अशान आदि सर्वथा निवृत्त हो जाते हैं । भला, जिसने धार्मिन भगवान्का आश्रय ले लिया, उसे क्या कभी शीत, भय अथवा अन्धकारका दुख हो सकता है । जो इस सकारात्मक मूल्य उत्तरा रहे हैं, उनके लिये ब्रह्मवेत्ता और शान्त-स्वरूप संत वैसे ही एकमात्र आश्रय हैं, जैसे जलमें हूबते हुए लोगोंके लिये दृढ़ नौका । जैसे अन्ये प्राणियोंके धारणकी रक्षा होती है, जैसे मैं आर्त प्राणियोंका एकमात्र आश्रय हूँ, जैसे मनुष्यके लिये परलोकमें घर्म ही एकमात्र पूँजी है—जैसे ही अंतरस्ते भवधीत लोगोंके लिये संत-जन ही परम आश्रय है । जैसे सूर्य आकाशमें उदय होकर लोगोंको ज्ञात तथा अपनेको देखनेके लिये नेत्रदान करता है, वैसे ही संत-पुरुष अपनेको तथा भगवान् को देखनेके लिये अनन्दैष्टि देते हैं । संत अनुग्रहशील देवता हैं । संत अपने हितोंपी सुहृद हैं, संत अपने प्रियतम आपना हैं, अधिक वद्या संतके रूपमें स्वर्य मैं ही प्रकट हूँ ।

इतना ही नहीं, संत भगवान्के स्वरूप ही नहीं है, उनके भजनीय भी हैं—भगवान् कहते हैं—

निरपेक्षं लुभि धान्तं लिवैर्व समदर्शनम् ।
अचुदजास्यहं नित्यं पूर्वेत्यव्याप्तिरेणुभिः ॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।१६)

जिसे किसीकी अपेक्षा नहीं, जो ज्ञातके विनाशसे सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनमें तल्लीन रहता है, जो कभी किसी भी प्राणिसे दैर नहीं रखता, जो सर्वत समर्पित है, उस भगवान्माके पीछे-नीछे मैं विरत्तर इस विचारसे दूरा करता हूँ कि उसके चरणोंकी धूल उड़कर मुहायर पड़े और मैं पवित्र हो जाऊँ ।

यह है उच्चक्रोटिके संतकी महिमा ।

वचनोक्ता अनुसरण करना चाहिये, आचरणोंका नहं

यहाँ लहज ही वह प्रश्न होता है कि लोक स्थान 'संत-वचन-अङ्क' में जिन संतोंकी वाणियाँ संकलित की गई हैं, वे सभी हसी कोटिके पुणीत संत हैं ?

इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि हमें इसका कुछ नहं जान नहीं है ।

ऊरं कहा जा चुका है कि संतकी पहचन वहाँ लक्षणोंसे नहीं हो सकती और संतकी परीक्षा करनी भी नहं चाहिये । सच वाल तो यह है कि लैखिक विश्वास बुद्धिवाल पुरुष संतकी परीक्षा वैसे ही नहीं कर सकता, जैसे बड़े-बड़े परथर तौलनेके कानेसे बड़मूल्य हीरा नहीं तोला र सकता ।, हम जिसे पहुँचा हुआ महात्मा समझते हैं सभी हैं, वह पूरा दंपी और डग हो; और हमारी बुद्धिये व साधारण मनुष्य जँचता हो, वह सच्चा महापुरुष हो । कौन पुरुष श्र्यार्घ महापुरुष या संत है आ नहीं, अपनी अकोशतां कारण इसकी छान-बीन न करके हमने तो पवित्रत्वं संत वाणी का, (संतकी वाणीका नहीं) बंकलन करनेका प्रयत्न किया है संत-वाणीका अभिप्राय यह है कि उस वाणीमें कोई 'असाध वात नहीं है । वह वाणी 'स्वाधु' है, पूर्ववत् है और उस वाणी अनुसार आचरण करनेसे कहयाग हो सकता है । उस वाणी वक्ता किसे है, किस श्लोकमें है, वे सिद्ध हैं या साधक अप विश्वी—इसकी परीक्षा करनेकी क्षमता हमलोगोंमें नहीं और असलमें शुभ वचनके अनुसार ही शुभ आचरण करने आवश्यकता है, वक्ता के आचरणके अनुसार नहीं । आचरण अनुसरण हो यी नहीं सकता । श्रीभगवान्स्ते जर्म श्रीम भगवान्में ईश्वरकोटिके लोगोंके भी सब आचरणोंका अनुस न करनेकी आवश्यकता दी है—

वैत्त समाचरेजातु मनसापि शून्यिष्ठ ।

विनश्यन्याचार्द्द योद्याद चया रद्दोऽविज्ञेयिष्य ॥

ईश्वराणां वक्तः स्वर्यं तथैवाचरितं पवित्रित् ।

तेषां यत् स्ववच्चो युवतं बुद्धिमोक्ष समाचरेण ॥

(१०।३३।३१-३२)

जिन लोगोंमें वैसी (ईश्वर-जैवी) सामर्य नहीं है, मनमें भी वैसी बात कभी नहीं सोचनी चाहिये । यदि मूल मनसे भी वैसी बात कभी नहीं सोचनी चाहिये । यदि मूल वश कोई ऐसा काम कर देटे तो उसका साम दो जाता भगवान् शङ्करने हालाहल विष पी लिया, दूसरा योई पिरे भगवान् शङ्करने हालाहल विष पी लिया, दूसरा योई पिरे भगवान् ही जायगा । इसलिये इस प्रकारके जो शङ्कर और ईश्वर हैं, वे पवित्र अधिकारके अनुसार उनके पवित्रनी ही ।

(अनुकरण करने योग्य) मानना चाहिये और उसीके अनुसार आचरण करना चाहिये। उनके आचरणका अनुकरण तो कहीं-कहीं ही किया जाता है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उनका जो आचरण उनके उपदेशके अनुकूल हो, उसीको जीवनमें उतारे।'

उपनिषद् के ऋषि उपदेश करते हैं—

× × यान्वनदशानि कर्मणि । तानि सेवितव्यानि ।
नो इतरणि । यान्वस्ताकः सुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि ।
नो इतरणि । × ×

(तैतिरीय १ । १३ ।)

'जो-जो निर्देश कर्म है, उन्हींका तुम्हें सेवन करना चाहिये। उनसे मिथ्या जो (दूषित) कर्म हैं, उनका कभी आचरण नहीं करना चाहिये। हमलोगोंमें भी जो अच्छे आचरण हैं, उन्हींका तुम्हें अनुकरण—सेवन करना चाहिये, दूसरोंका कभी नहीं।'

अतएव किसीके आचरणकी ओर न देखकर वाणीके अर्थकी ओर देखना चाहिये। संत वाणी वही है जो पंत भावकी प्राप्तिमें साधनरूप हो सकती है। इसी दृष्टिसे संत वाणी— साधु आचरणका उपदेश करनेवाली वाणी, पापप्रवृत्तिसे हटाकर परमात्माकी ओर प्रवृत्त करनेवाली वाणीका चुनाव और संकलन किया गया है।

वाणीके भेद

‘तो क्या सभी वाणियोंका अनुमरण सभी कर सकते हैं?’—नहीं, कदापि नहीं। वाणीमें देश, काल, व्यक्ति, प्रसङ्ग, अधिकार, रचि आदि कारणोंसे भेद होता है। जैसे किसी ठंडे देशमें या मंसूरी, शिमला, नैनीताल आदि स्थानोंमें गरम कपड़ा पहनने-ओढ़ने तथा आग तापनेको कहा जायगा और गरम देशमें गरम कपड़ेका त्याग करके शीतल वायु-सेवनकी सलाह दी जायगी। शीत ऋतुमें गरम कपड़ेकी आवश्यकता बतलायी जायगी और ग्रीष्म ऋतुमें शीतल वायु-सेवनकी। अतिसारके रोगीको दूधका त्याग करनेको कहा जायगा और दुर्बल मनुष्यको दूप पीकर पुष्ट होनेका उपदेश दिया जायगा। यो देश-काल-पात्रके अनुसार कथनमें भेद होगा, चाहे कहनेवाला एक ही व्यक्ति हो।

इसी प्रकार गरीब, निर्देश प्राणीको प्राण-रक्षाके लिये मिथ्याका प्रयोग भी आवश्यक बताया जायगा, पर अन्य सभी समय मिथ्या भाषणको पाप बताया जायगा। भगवान् शङ्करकी

पूजाके प्रसङ्गमें धनूरके फूल चढ़ानेकी विविधतायी जायगी और भगवान् विष्णुके पूजा प्रसङ्गमें उक्तका निषेध किया जायगा। छोटे बच्चेको पाव-आधसेर बजनकी वस्तु उठानेके लिये ही कहा जायगा, पर पहलवानको भारी-मारी तौलकी वस्तु उठानेपर शावाशी दी जायगी। निवृत्तिमार्गी शुकदेव मुनिकी रचिके अनुसार उनके लिये संन्यासका विवाह होगा, पर योद्धा अर्जुनको भगवान् रणझणमें जूझनेका ही उपदेश देंगे। इस प्रकार प्रसङ्ग, अधिकार और रचिके अनुसार कथनमें भेद होगा। कोमल सौम्य प्रकृतिका साधक सौन्दर्य-माधुर्य-निधि वृन्दावनविहारी मुरली-मनोहरकी उपासनामें इस प्राप करेगा और कठोर कूर वृन्दिचालेको दृष्टिहृदेव, काली या छिन्नमस्तकी उपासना उपस्थित होगी। इसलिये संतकी सभी वाणी सभीके लिये समान उपयोगी नहीं हुआ करती। अपनी रचि और अधिकारके अनुसार ही चुनाव करना उचित है। तथापि, दैवी सम्पत्तिके गुण, उत्तम और उज्ज्वल चरित्र, यम-नियम, भगवान्की ओर अभिरुचि, विषय-वैराग्य और साधनमें उत्साह आदि कुछ ऐसे भाव, विचार और गुण हैं जो सभीमें होने चाहिये और ऐसी सभी संत वाणियोंका अनुसरण सभीको करना चाहिये।

हमारी क्षमा-प्रार्थना

संत वाणीको पढ़ते समय यह देखना आवश्यक नहीं है कि यह पहुँचे हुए संतकी वाणी है या साधककी। साधककी भी वाणी, यदि वह वाणी ‘संत’ है तो पालन करनेयोग्य है। साधकमें क्या दोष था, यह देखनेकी जरूरत नहीं है। साधनामें ल्या हुआ पुरुष किसी कारणवश कभी-कभी मार्गसे स्वलिप्त हो सकता है। इसने वह सर्वथा दूषित हो जायगा, सो बात भी नहीं है। गिरनेवालेको गिरा हुआ ही नहीं मान लेना चाहिये, वह यदि गिरनेपर पश्चात्तप करता है और पुनः उठना चाहता है तो ऐसा दोषी नहीं है। फिर हमारे लिये तो इस प्रसङ्गमें एक वड़ी निरापद स्थिति यह है कि इस ‘संत-वाणी-आङ्ग’में केवल दिवंगत पुरुषोंकी ही वाणियोंका संग्रह किया गया है। किसीकी वाणीके प्रति आकर्षित होकर कोई किसीका सङ्ग करके—उसके आचरणोंको देखकर पतित हो जाय, ऐसी आशङ्का ही यहाँ नहीं है। मनुष्य जब तक मर न जाय, तबतक तो कहा नहीं जा सकता कि उसका अन्त कैसा होगा। सोलनने कहा है—‘कोई भी मनुष्य जीवित अवस्थामें अच्छा नहीं कहा जा सकता।’ आज जो अच्छे माने जाते हैं, वे ही कल खराब साहित



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

होते हैं। पर इस संसारसे किया होनेके बाद तो उसके जीवनमें न तो कोई सथ परिवर्तन होनेकी गुणवत्ता रहती है और न उसके सज्जसे किसीके विश्वासे था। मिसेंकी ही। इतिहाये हम दायेके साथ यह कहनेमें समर्थ न होते हुए भी कि इस अङ्कमें प्रकाशित वाणियोंके बक्का तभी लोग आधिकारिक, महापुरुष, प्रेमानन्द प्रमुके प्रेमी संत, पहुँचे हुए महात्मा, उच्च कोटिके साधक या साधक ही थे, और साथ ही यह भी स्वीकार करते हुए भी कि—‘सम्भव है इनमें कोई ऐसे व्यक्ति भी आ गये हों जिनकी बुराइयोंका इसे परिचय न हो, पर जो संतकोटिसे सर्वथा विपरीत हों।—इतना अवश्य कह सकते हैं कि इनमें अपेक्षा आधिकारिक महापुरुष, परम प्रेमी महात्मा, पहुँचे हुए संत और उच्च कोटिके साधक भी अवश्य ही हैं। और जो ऐसे नहीं हैं उनकी भी बाजी तो ‘संत’ ही है, इतिहाये इन वाणियोंको जीवनमें उतारनेसे निश्चितरूपसे परम कल्याण ही होगा। हमने अपनी समझके अनुसार यथासाध्य ‘पाठ्य’ वाणियोंका ही संकलन करनेका प्रयत्न किया है। इनमें कहीं द्वारा प्रामाद भी ही सकता है और उसके लिये हम शाय जोड़कर पाठकोंसे खमा-प्रार्थना करते हैं।

इस अङ्कमें देनेके विचारसे हमारी कुनी हुई भी कुछ वाणियाँ रह गयी हैं। कुछ संतोंकी वाणियाँ देनेकी इच्छा थी, पर वे मिल नहीं सकीं; कुछ वाणियाँ दरसे मिलीं, कुछ संतोंकी वाणियाँ बहुत संक्षेपमें दी गयीं संतोंके आयाचित्र भी बहुतसे नहीं दिये जा सके। परिच्छितिवद्य ये क्षब अवाञ्छनीय बातें हो गयीं, इसके लिये हम क्षमा चाहते हैं। संतोंके काल-सान आदिके परिचयमें कहीं प्रामादवद्य भूल रह गयी हो तो उसके लिये भी सभी सज्जनहमें झक्का करें।

इस अङ्कमें जो वाणियाँ ही गयी हैं, उनमेंसे पुराण, महाभारतादि प्राचीन ग्रन्थोंके अतिरिक्त बहुत-सी विभिन्न लेखकोंके ग्रन्थोंसे ही ली गयी हैं। जिनमें लेखोंद्वारा प्रेसद्वारा प्रकाशित ‘संत-वाणी-संग्रह’, श्रीपरशुरामजी चतुर्वेदी लिखित ‘संतकाव्य’, श्रीविद्योगी हरिजीहारा विलित ‘संत-तुयाकाव्य’ और ‘भजमातुरीकाव्य’ पं० श्रीरामनरेशजी विपाठी लिखित ‘कविता-कौमुदी’ तथा ‘पितमार्कमातुरी’, ‘भारतेन्दुभग्नावली’ आदि सुख्य हैं। अन्य भी कई ग्रन्थोंसे सहायता ली गयी है। हम अत्यन्त कृतत्व द्वादसे उन सब लेखक वहानामोंका आभार मानते हैं। उनके उद्दावोंका, उनके

‘कलशण’के वेगों पाठक लाभ उठायेंगे, इससे ‘सभी लेखक वहानामोंको प्रसन्नता ही होगी। ऐसा ही विश्वास है। उन लेखक वहानामोंकी हांसे ही अङ्कका प्रकाशन हो सकता है। इतिहाये इसका लाभ उन्हींको है। उनकी कृतियोंसे लोगोंको लाभ ही होगा, ही इसमें केवल विनाम निर्मितमात्र हैं।

इसमें प्रकाशित संत-वाणियोंके संकलनमें हमारे सभी श्रीसुदर्शनसिंहजी, श्रीरामलोल्जी वी. ए०, श्रीनाथजी दुबे साहित्यकासे पर्याप्त राहायता पिली है। अनुवादोंमें पाठदेव ए० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, श्रीवीरीजीका द्वितीयने बड़ा काम किया है। संस्कृतका अनुवाद अधिकांश श्रीशास्त्रीजीने ही किया है। इनके अतिरिक्त, इसके सम्पादन आदि सभी काव्योंमें अपने सभी लाइफे पर्याप्त सहयोग और सहायता मिली है। इनको अन्य देना तो अपेक्षा ही देना होगा। ‘वाणी-संकलनमें ही समान्य विभ्रांतिवहुमारजी कोविधायने भी बड़ी सहायता’ है। इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

इस भंत-वाणी-अङ्क के सम्पादनमें हमें बड़ा लाभ हुआ है। ऐसीजौने संतोंकी दिव्य वाणियोंके सुधा-सायरमें यात्यन्य द्वयकी ल्यानोंका सुधावस्तर प्राप्त हुआ, यह हमार मानवादी बड़ी छापा है। वाणी-संकलनमें हमसे प्रमादवद्य उन दिनों संतोंका कोई अंपराष ही गवा हो तो वे अपने सहज जा सम्पादनवद्य हमें क्षमा करें। भवरेति के कथगातुरार—अपने सुख-दुःखभोगमें बब्रसे भी कठोर होते हैं, पर दूर्योगे वे कुसुमसे भी कोमल होते हैं—

वज्रादपि कटोरणि मुद्दनि कुसुमदपि ।

संतोंका यह स्वभाव ही द्वारा तहारा है। हम उसभी संतोंकी पावन चरणरक्को श्रद्धागूर्ध्व द्वयोंपर प्रणा करते हैं। पाठकोंसे प्रार्थना है वे इस अङ्कके एक-एक शब्दों व्यालपूर्वक वढ़ें। संत-वाणीजी कोई ऐसे वात भी लायना उत्तर गयी तो उसीसे मनुष्य-जीवन सफल हो सकता है।

इस अङ्कमें प्रकाशित विनायपर तथा विनायपर रूपमें प्रकाशित ‘ब्लू’ लेखोंपर भी विशेषत्वते ध्यान देनें पाठकोंसे प्रार्थना है।

विनाय—संत-न्दर्शन-रक्के दा

{ हुमानवसाद् पंदा
विमानलाल गायाः
सम्पादक